ओ३म्

# सामवेद

## (सम्पूर्ण हिन्दी भाष्य, शब्दार्थ सहित)

इस वेद में कुल 1875 मन्त्र संग्रहित हैं। उपासना को प्रधानता देने के कारण चारों वेदों में आकार की दृष्टि से लघुतम सामवेद का विशिष्ट महत्त्व है। श्रीमद्‌भगवद् गीता में स्वविभूतियों का उल्लेख करते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण ने स्वयं को वेदों में सामवेद कहकर इसकी महिमा का मण्डन किया है-''वेदानां सामवेदोऽस्मि। (गीता 10/22)-वेदों में मैं सामवेद हूँ।''

भाष्यकार:

**आचार्य ( डॉ. ) रामनाथ वेदालंकार**

# भाष्यकार का परिचय

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के बरेली जनपद के फरीदपुर ग्राम में महाशयजी के नाम से विख्यात स्वतन्त्रतासेनानी लाला गोपालरामजी के यहाँ 7 जुलाई 1914 को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा फरीदपुर में आर्यसमाज द्वारा स्थापित पाठशाला में हुई। दो वर्ष काशी में भी अध्ययन किया।

आपके पिताजी 'सादा जीवन, उच्च विचार' के मूर्त्त रूप थे। वे मोटा जुलह खद्दर का सादा कुर्ता, वैसी ही चार हाथ की ऊँची धोती, कन्धे पर अंगोछा धारण करते थे। महर्षि दयानन्द एवं आर्यसमाज के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी। वे प्रतिवर्ष नियमपूर्वक गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर जाया करते थे। एक बार वहाँ से लौटकर उन्होंने गुरुकुल की विशेषताओं एवं कार्यकलापों का वर्णन करते हुए आपसे पूछा—"गुरुकुल पढ़ने जाओगे?" आपके 'हाँ' कहने पर उन्होंने प्रवेश-फार्म मँगाकर भर दिया और उसे डाक से भेज दिया। चूँकि गुरुकुल में आठ वर्ष से अधिक आयु के बालक प्रविष्ट नहीं होते थे और आपकी आयु नौ वर्ष की हो गई थी। इसलिए गुरुकुल से अस्वीकृति का पत्र आ गया, पर आपके पिताजी ने हिम्मत नहीं हारी। वे बरेली के प्रतिष्ठित आर्यसमाजी नेता डॉ० श्यामस्वरूप जी से परिचय-पत्र लेकर गुरुकुल गये। उस समय गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं० विश्वम्भरनाथजी थे, जो नियमों का कठोरता से पालन करते थे। जब आपके पिताजी आपको लेकर उनसे मिले तो पं० श्री ने पुनः प्रवेश से मना कर दिया। परिणामतः वे चिन्तित एवं निराश मुद्रा में मुख्य द्वार के निकट खड़े कुछ विचार कर ही रहे थे कि सभा के पूर्वप्रधान श्री रामकृष्णजी प्रबन्ध-समिति की बैठक में भाग लेने के लिए उधर आये। उन्होंने पिता-पुत्र दोनों को उस दशा में देखकर पूछा—"आपको क्या किसी से मिलना है?" इस पर आपके पिताजी ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपने गुरुकुल आने का कारण तथा मुख्याधिष्ठाताजी द्वारा प्रवेश से इन्कार करने की जानकारी उन्हें दी। पं० रामकृष्णजी उनकी बातचीत आदि से प्रभावित हुए और प्रवेश-फार्म लेकर प्रबन्ध-समिति की बैठक में चले गए। काफी जद्दोजहद के बाद पंडितजी ने मुख्याधिष्ठाताजी को मना लिया और आपको प्रवेश की स्वीकृति मिल गई। यह है आपके गुरुकुल-प्रवेश की कहानी।

आप प्रारम्भ से ही मेधावी एवं प्रतिभा-सम्पन्न छात्र थे तथा अपनी असाधारण योग्यता के कारण आपने गुरुजनों का मन मोह रखा था। न केवल अध्ययन में, वरन् लेखन एवं भाषणादि में भी आपकी विशेष रुचि थी। छात्र-जीवन में आप महाविद्यालय के छात्रों द्वारा निकाली जाने वाली हस्तलिखित संस्कृत-पत्रिका 'देवगोष्ठी' के सम्पादक, 'संस्कृतोत्साहिनी परिषद्' के मन्त्री और कुलमन्त्री रहे। चौदह वर्ष तक अनुशासित एवं नियमपूर्वक रहते हुए सन् १९३६ में आपने विशेष योग्यता के साथ प्रथम श्रेणी में वेदालङ्कार की उपाधि प्राप्त की। स्नातक परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण आपको अनेक स्वर्णपदक प्राप्त हुए। यह वह समय था, जब गुरुकुल की उपाधियों की कहीं मान्यता नहीं थी; यहाँ के स्नातक किसी भी विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त नहीं कर सकते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम आगरा विश्वविद्यालय ने गुरुकुल के स्नातकों को अपने यहाँ से एम० ए० करने की स्वीकृति प्रदान की। जिन स्नातकों ने सर्वप्रथम इस सुविधा का लाभ उठाया उनमें आप भी थे। आपने सन् १९५० में आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत-साहित्य में प्रथम श्रेणी में एम०ए० की उपाधि प्राप्त की और विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया।

आपको प्रारम्भ से ही वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा तथा वैदिक विषयों पर शोध करने में रुचि थी। अतः आपने पी-एच०डी० उपाधि के लिए शोध का विषय-"वेदों की वर्णन-शैलियाँ" चुना और आगरा विश्वविद्यालय में पंजीकरण करवाया। १९६६ में आपने डी०ए०वी० कालेज देहरादून में संस्कृत-विभागाध्यक्ष डॉ० धर्मेन्द्रनाथजी शास्त्री के निर्देशन में शोधपूर्ण प्रबन्ध प्रस्तुत करके पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। डॉ० मंगलदेव शास्त्री, पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति आदि विद्वानों ने आपके शोध-प्रबन्ध को आद्योपान्त देखा और इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

**कार्यक्षेत्र**—स्नातक बनने के बाद जयपुर रियासत के अन्तर्गत ठिकाना खूँड के ठिकाने पर तथा महाराज जयपुर के ए०डी०सी० ठाकुर जयसिंह द्वारा शिक्षा-प्रसार हेतु आश्रम खोलने के लिए किसी स्नातक को भेजने का अनुरोध किये जाने पर गुरुकुल की ओर से आपको भेजा गया, जहाँ आपने आश्रम की स्थापना की और उसके प्रधानाध्यापक रहे। आपने लगभग डेढ़ वर्ष तक

इस आश्रम का सफलतापूर्वक संचालन किया, परन्तु बाद में अनुकूलता न रहने के कारण आप वापस आ गये। सन् १९३८ में आप गुरुकुल कांगड़ी के विद्यालय-विभाग में शिक्षक पद पर नियुक्त हो गये। तदनन्तर कुछ समय वेदानुसन्धानकर्त्ता के रूप में कार्य किया। १९३९ में आप वेद महाविद्यालय में वैदिक साहित्य के प्राध्यापक नियुक्त हुए तथा १९ वर्ष तक वेदाध्यापन करते रहे। १९५८ में आप संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष तथा कुलसचिव नियुक्त हुए। १९६२-६३ में आपने कुलसचिव पद से त्याग-पत्र दे दिया तथा पूर्णरूपेण अध्ययन-अध्यापन में व्यस्त हो गये। आप वेद तथा संस्कृत जैसे नीरस एवं दुर्बोध समझे जानेवाले विषयों को इतने सरस, रोचक एवं सुबोध ढंग से पढ़ाते थे कि छात्रों में उनके प्रति अनायास ही रुचि उत्पन्न हो जाती थी।

अप्रैल १९७४ में आप वेद एवं कला महाविद्यालय के अध्यक्ष, आचार्य एवम् उपकुलपति चुने गये। यद्यपि आप प्रशासनिक दायित्वों से दूर रहकर अपना समय केवल अध्ययन-अध्यापन में ही लगाये रहना चाहते थे, परन्तु सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, गुरुकुल की विद्यासभा एवं सीनेट के अधिकारियों एवं सदस्यों के आग्रह को दृष्टिगत रखते हुए इसे स्वीकार करना पड़ा। जुलाई १९७६ तक आप इस पद पर कार्य करते रहे। इस अवधि में अपने प्रशासनिक दायित्वों को आपने इस कुशलता से निभाया कि जनसामान्य की यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो गई कि एक अच्छा शिक्षक 'कुशल प्रशासक' नहीं हो सकता है।

आपकी विद्वत्ता, योग्यता एवं वैदिक शोध में अभिरुचि को दृष्टिगत रखते हुए १९७६ में आपको पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में नवस्थापित महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसन्धान पीठ के प्रथम प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के रूप में मनोनीत किया गया। आपने इसी वर्ष अगस्त मास में गुरुकुल की सेवा से निवृत्त हो उक्त पद का कार्यभार सँभाल लिया और अक्तूबर १९७९ तक वहाँ कार्य करते रहे। इस अवधि में आपने जहाँ एक ओर महर्षि दयानन्द की वेदार्थ-प्रक्रियाओं, उनके शिक्षा, राजनीति और कला-कौशल सम्बन्धी विचारों आदि पर स्वयम् अनुसन्धान करके शोधपूर्ण कृतियाँ तैयार कीं, वहीं दूसरी ओर अनेक छात्रों को वैदिक वाङ्मय से सम्बन्धित विषयों पर शोध-कार्य करने

में निर्देशन भी प्रदान किया।

इस समय आप वेदमन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार) में रहते हुए स्वाध्याय, वैदिक शोध एवं लेखन में व्यस्त हैं।

**साहित्य-साधना**—आपको प्रारम्भ से ही अध्यापन के साथ-साथ लेखन में भी विशेष अभिरुचि रही है। आपने वैदिक वाङ्मय के गम्भीर अध्ययन, विस्तृत अनुशीलन, निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर अनेक उच्चकोटि के शोधपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया है। आपकी प्रथम कृति ''वैदिक वीर-गर्जना'' है, जिसमें वीरता की तरंगों से तरंगित करने वाले वेदमन्त्रों का अर्थसहित संकलन किया गया है। इस पुस्तक की रचना एवं प्रकाशन सन् १९४६ में उस समय किया गया था, जब देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन जोरों पर था। इस पुस्तक को पाठकों द्वारा इतना पसन्द किया गया कि इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। इसके बाद सन् १९४९ में आपकी दूसरी कृति "वैदिक सूक्तियाँ" प्रकाशित हुई, जिसमें अथर्ववेद से विविध विषयों पर चुनी गई एक सहस्र सूक्तियाँ अर्थसहित दी गई हैं।

कालान्तर में आप द्वारा वेदार्थ की विविध शैलियों (प्रहेलिकात्मक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक, प्रश्नोत्तरात्मक, प्रेरणात्मक, आश्वासनात्मक, आशीर्वादात्मक, अर्थवादात्मक आदि) एवं प्रक्रियाओं (अधिदैवत, अध्यात्म, आर्ष, अधियज्ञ, अधिभूत, परिव्राजक, वैयाकरण, नैरुक्त आदि) का तुलनात्मक अध्ययन करने के प्रयोजन से लिखी गईं—"वेदों की वर्णन-शैलियाँ" एवं "वेदभाष्यकारों की वेदार्थ-प्रक्रियाएँ" तथा "महर्षि दयानन्द के शिक्षा, राजनीति और कला कौशल सम्बन्धी विचार" शीर्षक शोधपूर्ण कृतियाँ वैदिक साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। इसी शृंखला में आपने संस्कृत भाषा में "वैदिकशब्दार्थविचारः" नाम से एक अनुपम ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि सामान्यतया एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने वाले 'अज', 'असुर', 'वृषभ' आदि शब्द वेदों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। यह ग्रन्थ यास्कीय निरुक्त का पूरक कहा जा सकता है। इनमें से प्रथम-श्रद्धानन्द शोध-प्रतिष्ठान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से और अब नवीन संस्करण भी घूड़मल प्रह्लाद कुमार धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी तथा शेष महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसन्धान पीठ चण्डीगढ़ के तत्त्वावधान में विश्वेश्वरानन्द-विश्वबन्धु संस्कृत-भारती-शोध-संस्थान होशियापुर से प्रकाशित हुई हैं।

आपकी अन्य रचनाएँ निम्नाङ्कित हैं–

(१) **वैदिक वीर-गर्जना**–(प्रकाशन वर्ष १९४२) वीरता की तरंगें उठाने वाली पुस्तक। अब इसके पाँच संस्करण निकल चुके हैं।

(२) **यज्ञमीमांसा**–(प्रकाशन वर्ष १९८१) इसमें वैदिक यज्ञ चिकित्सा, अग्निहोत्र के प्रेरक तथा लाभ-प्रतिपादक वेदमन्त्रों की व्याख्या, आत्मिक अग्निहोत्र एवम् अग्निहोत्र के भावनात्मक लाभ आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। यह पुस्तक उत्तर प्रदेश संस्कृत-संस्थान द्वारा १९८१ में पुरस्कृत हो चुकी है।

(३) **वेद-मञ्जरी**–(प्रकाशन वर्ष १९८३) इसमें चारों वेदों से संकलित ३६५ मन्त्रों की भावभीनी प्रवाहमय, मनोरम व्याख्या प्रस्तुत की गई है। ग्रन्थ की प्रारम्भिक भूमिका में वैदिक भाषा की अर्थ-गरिमा, वेदमन्त्रों के ऋषि, वेदमन्त्रों के देवता, वैदिक छन्द, ऋषि, देवता और छन्द के ज्ञान का महत्त्व तथा वैदिक भाषा के कुछ सामान्य नियम आदि पर प्रकाश डाला गया है।

(४) **वैदिक नारी**–(प्रकाशन वर्ष १९८४) इसमें वैदिक नारी के–प्रकाशवती, वीरांगना, वीरप्रसवा, विदुषी, स्नेहमयी, माँ, धर्मपत्नी, सद्गृहिणी आदि विविध रूप वेदमन्त्रोल्लेखपूर्वक वर्णित किये गये हैं। नारी के विषय में स्वामी दयानन्द के विचार भी संकलित हैं। इसमें नारी-विषयक विविध वैदिक मान्यताओं पर प्रकाश डालते हुए, प्रतिपक्षियों के वैदिक नारी पर किये गये आक्षेपों का प्रमाणपूर्वक उत्तर दिया गया है।

(५) **वैदिकमधुवृष्टि**–(प्रकाशन वर्ष १९९१) यह ३२ निबन्धों का संग्रह है। ये निबन्ध परमेश्वर के गुण-कर्म के महत्त्व, आचार्य-शिष्य, आश्रम-व्यवस्था, विश्वबन्धुत्व, मानवता, अर्थव्यवस्था आदि कई विषयों से सम्बन्ध रखते हैं।

(6) **आर्षज्योतिः**–(प्रकाशन वर्ष १९९१) इसमें लेखक के "वैदिक योगार्थ प्रक्रिया एवं दयानन्द की तद्विषयक सूक्ष्म-दृष्टि, वेद व्याख्या के प्रयास तथा स्वामी दयानन्द का महान् योगदान, अथर्ववेद के कौशिककृत विनियोगों पर एक दृष्टि, वेद के अनेक देवों में एक ईश्वर की झाँकी, वेदों में पुनरुक्ति की समस्या, वेदों में व्यत्यय का प्रश्न, वृष्टियज्ञ, वैदिक पर्यावरण वेद की दृष्टि में–आदि विषयों पर १७ निबन्ध संकलित हैं।

आप द्वारा महर्षि दयानन्द की भाष्य-शैली को आधार मानते

हुए 'सामवेद' का सरल एवं सुबोध भाषा में संस्कृत-हिन्दी-भाष्य किया गया है।

उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त आपके भिन्न वैदिक ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। चारों वेदों की ज्योतियाँ लिखने का कार्य आपने आरम्भ किया था जिनमें विस्तृत भूमिका के अतिरिक्त प्रत्येक में दो-दो सौ मन्त्रों की व्यवस्था अपेक्षित थी। इनमें से ऋग्वेद-ज्योति, यजुर्वेद-ज्योति तथा अथर्ववेद-ज्योति का प्रकाशन हो चुका है। सामवेद-ज्योति आशा है एक या डेढ़ वर्ष में पाठकों के हाथों में पहुँच जायेगी।

**सम्मान**—अर्थ, यश एवं सम्मान की लालसा से नहीं, वरन् 'स्वान्तःसुखाय' तथा वेदों में निहित ज्ञान को वेद-प्रेमियों तक पहुँचाने के उद्देश्य से साहित्य-सृजन में व्यस्त आचार्य-वेदालङ्कार को अनवरत वेद-सेवा के लिए सन् १९८८ में आर्यसमाज सान्ताक्रुज बम्बई द्वारा वेदवेदाङ्ग पुरस्कार से तथा १९८९ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से विद्यामार्तण्ड की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। आपके द्वारा संस्कृत के प्रचार-प्रसार एवं विकास कार्य हेतु की गई दीर्घकालीन विशिष्ट सेवा तथा वैदिक साहित्य के शोधपूर्ण ग्रन्थों के प्रणयन के लिए उत्तर-प्रदेश संस्कृत ग्रन्थ अकादमी द्वारा १९९० मे २५००० रुपये के विशिष्ट पुरस्कार से आदृत किया गया। आप सन् १९९८ में महामहिम राष्ट्रपति जी द्वारा संस्कृत के विशिष्ट विद्वान् के रूप में सम्मानित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय विद्याभवन बैंगलूरू ने सन् २००१ के अपने गुरु गंगेश्वरानन्द वेदरत्न पुरस्कार से, उत्तराञ्चल संस्कृत अकादमी ने वर्ष २००३-२००४ के अपने राष्ट्रीय बदरीश संस्कृत-सम्मान से और श्री राव हरिश्चन्द्र आर्य चैरिटेबल ट्रस्ट नागपुर ने सन् २००६ के अपने आर्यरत्न अनूचान साहित्य- पुरस्कार से आपको अभिनन्दित किया है। श्री स्वामी समर्पणानन्द जी के जन्मदिवस पर उनकी स्मृति में स्थापित 'समर्पण शोध-संस्थान' ने श्री पं० जी द्वारा लिखित एवं सम्पादित सामवेद-भाष्य के लोकार्पण-समारोह के अवसर पर १ अगस्त, १९९१ को २५००० सहस्र की राशि प्रदान कर सम्मानित किया।

आपका विशुद्ध सात्त्विक जीवन, सरल व्यवहार, मितभाषिता, माधुर्य, विशुद्ध ब्राह्मणवृत्ति से वेदों का गम्भीर अनुशीलन एवं विशिष्ट अध्ययन शैली अनुकरणीय है।

# विषयानुक्रमणिका


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| भाष्यकार का परिचय | 5-10 |
| विषयानुक्रमणिका | 11-12 |
| सामवेदभाष्यभूमिका | 13-87 |
| मंगलाचरण, गुरुस्मरण आदि | 13-17 |
| चार वेद और उनकी शाखाएँ | 17-19 |
| वेदों के प्रतिपाद्य विषय | 19-20 |
| सामवेद का नामकरण | 20-22 |
| सामवेद का बहिरङ्ग परिचय | 22-25 |
| पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक का सम्बन्ध | 25-26 |
| सामवेद की स्वराङ्कन-पद्धति | 26-31 |
| **ऋषि, देवता, छन्द और गान-स्वर** | 31-45 |
| ऋषि-31, देवता-35, छन्द-38, गायत्र्यादि सप्तक-39, अतिजगत्यादि सप्तक-42, कृत्यादि सप्तक-42, निचृद्, भुरिक्, विराट्, स्वराट्-42, शङ्कुमती, ककुम्मती, पिपीलिकामध्या, यवमध्या-43, चतुर्विध पाद-43, एकपदा तथा द्विपदा ऋचाएँ-44, गानस्वर-44 | |
| **सामवेद का साहित्य** | 45-48 |
| ब्राह्मणग्रन्थ-45, आरण्यक, उपनिषद् वेदाङ्गादि-47 | |
| **व्याकरण-सम्बन्धी कतिपय नियम** | 48-63 |
| भूतवाची लकार वर्तमानादि अर्थों में भी-49 लेट् लकार का प्रयोग-49 , दीर्घविधान-52, ए या ओ से अ परे होने पर प्रकृतिभाव-55, प्रकृतिभाव के अन्य स्थल-57, न् को रु और पूर्व को अनुनासिक-58, विसर्ग को सकार-59, सकार को मूर्धन्यादेश-61, विसर्गलोप अथवा विसर्ग के सकार का लोप-63 | |

| | |
|---|---|
| वेद-व्याख्या के प्रयत्न | 63-69 |
| दयानन्द से पूर्व के संस्कृत-भाष्य-63, विदेशी विद्वानों का प्रयास-68 | |
| स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य | 69-77 |
| वैदिक देवों का अर्थानुसन्धान-69, वेदमन्त्रों की अनेकार्थकता-71, ऐतिहासिक अर्थों की उपेक्षा-72, पूर्व-विनियोगों से स्वतन्त्र वेदार्थ-74, वेदों में विविध विद्याओं का आविष्कार-75, कतिपय अन्य विशेषताएँ-76 | |
| प्रस्तुत सामवेद-भाष्य | 77-86 |
| व्याख्या-क्रम-78, व्याख्या-दृष्टि-79, अलंकार-81, जड़ पदार्थ को सम्बोधन-84 | |
| अन्तिम निवेदन | 86-87 |
| संक्षेप-सूची | 88 |
| **सामवेद पूर्वार्चिक** | **89-604** |
| **आग्नेयं काण्डम्** | **89-180** |
| **ऐन्द्रं काण्डम्** | **181-470** |
| **पवमानं काण्डम्** | **471-547** |
| **आरण्यं काण्डम्** | **548-592** |
| **महानाम्न्यार्चिक** | **593-604** |
| **सामवेद उत्तरार्चिक** | **605-1279** |
| **मन्त्रानुक्रमणिका** | **1280-1304** |

॥ ओ३म् ॥

# अथ सामवेदभाष्यभूमिका

नमाम्यादौ परेशं तं जगन्मङ्गलहेतुकम्।
विविधज्ञानपूर्णं यश्चक्रे वेदचतुष्टयम्॥१॥
पदे-पदे नवं यस्य पाठे-पाठे मनोहरम्।
राजते वेदकाव्यं यन्न ममार न जीर्यति॥२॥

ततो महर्षीन् सकलान् नमामि, व्याख्यासु वेदस्य कृतश्रमा ये।
शाकल्यगार्ग्यप्रमुखान् सुधीन्द्रान्, यास्कादिकान् वेदरहस्यविज्ञान्॥३॥
श्रद्धान्वितो वेदधुरीणमाप्तं, देवं दयानन्दमहं प्रणौमि।
वेदार्थमार्गे निजभाष्यजातां, कीर्त्तिं वरेण्यां भुवि यस्ततान॥४॥

आर्याणां मुन्यृषीणां या व्याख्यारीतिः सनातनी।
तां समाश्रित्य मन्त्रार्था विहिता येन नान्यथा॥५॥
यस्य भाष्यप्रतापेन कलङ्का वेददूषकाः।
सर्वेऽप्यपगताः सूर्यात् तमोजालं यथा क्षणात्॥६॥
ऋग्यजुर्भाष्ययोरेव लेखनी तेन चालिता॥
तस्मात्तु सामवेदस्य भाष्यं तन्तन्यते मया॥७॥
नास्मिन् मद्गौरवं किञ्चिन्महर्षेरेव गौरवम्।
तेनैव दर्शितान् मार्गाननुधावामि यत्नतः॥८॥

गुरुकुलमतिरम्यं काँगड़ीनाम यत्र,
कृतवसतिरदभ्रं वेदविद्यापिपासुः।
विविधविमलशास्त्रे दत्तचित्तो यतात्मा,
गुरुचरणकृपातो ज्ञानबिन्दूनविन्दम्॥९॥

श्रीविश्वनाथगुरुवर्यसुरेन्द्रशर्मवागीश्वरप्रभृतिभिः कृपया सुधीन्द्रैः।
सत्यव्रताच्युतचमूपतिलालचन्द्रैः पूताशिषां वितरणेन कृती कृतोऽस्मि॥१०॥
अभयदेवगुरुं प्रणमाम्यहं गुणगणं किल तस्य वदाम्यहम्।
यतिरसौ निजदिव्यशुभाशिषा श्रुतिपथेऽभिरुचिं मम योऽकरोत्॥११॥

तान् सर्वान् शिरसा वन्दे पीतं ज्ञानामृतं यतः।
गुरूणां च गुरुं वन्दे श्रद्धानन्दं तपस्विनम्॥१२॥
तातं गोपालरामाख्यं वन्दे 'भगवतीं' प्रसूम्।
ययोः कृपाकटाक्षाणामानृण्यं कर्तुमक्षमः॥१३॥
तां प्रकाशवतीं भार्यां सद्धर्मसुखवर्णिणीम्।
स्मृत्वा मनः प्रकुर्वेऽहं श्रुतिमर्मप्रकाशने॥१४॥
सुतो विनोदचन्द्रो मे 'विद्यालङ्कार'-भूषितः।
तत्पत्नी निर्मला हृद्या स्वस्तिश्च तत्सुतः प्रियः॥१५॥
भारती मे सुता दक्षा महेन्द्रस्तत्पतिर्गुणी।
दीप्त्यादयोऽथ तत्पुत्र्यः सर्वे नन्दन्तु श्रेयसा॥१६॥
प्रीयन्तां पाठकाः सर्वे वर्धतां च रुचिः श्रुतौ।
श्रद्धा मातेव कल्याणी मङ्गलं तनुतात् सदा॥१७॥

सर्वप्रथम मैं जगन्मङ्गलकारी उस परमेश्वर को प्रणाम करता हूँ, जिसने विविध ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण चारों वेदों की रचना की है और जिसका प्रत्येक पद में नवीन एवं प्रत्येक पाठ में मनोहर प्रतीत होने वाला वह वेदकाव्य शोभित है, जो न कभी मरता है, न पुराना होता है॥१-२॥

तदनन्तर मैं शाकल्य, गार्ग्य आदि सुधीन्द्र और यास्काचार्य आदि वेद-रहस्य के ज्ञाता सब महर्षियों को नमस्कार करता हूँ, जिन्होंने वेद की व्याख्याओं में भूरि-भूरि परिश्रम किया है॥३॥

मैं श्रद्धान्वित होकर वेदधुरीण, आप्त, देव दयानन्द को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने वेदार्थ के मार्ग में अपने वेदभाष्य से उत्पन्न श्रेष्ठ कीर्त्ति को भूमण्डल में सर्वत्र विस्तीर्ण कर दिया है; जिन्होंने ब्रह्मा से लेकर जैमिनि-पर्यन्त जो आर्य मुनि और ऋषि हुए हैं उन्हीं की व्याख्यापद्धति का आश्रय लेकर मन्त्रों के अर्थ किये हैं, विपरीत नहीं; और जिनके भाष्य के प्रताप से वेदों पर दोषों का आरोप करनेवाले सब कलंक वैसे ही दूर हो गये हैं जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार का जाल क्षणभर में विलीन हो जाता है॥४-६॥

क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने केवल ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के भाष्य में अपनी लेखनी को प्रवृत्त किया था, सामवेद का भाष्य वे नहीं कर सके थे, इसलिए उन्हीं की भाष्य-पद्धति से मैं सामवेद का भाष्य कर रहा हूँ॥७॥

इसमें मेरा कुछ गौरव नहीं है, प्रत्युत उन महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का ही गौरव है, क्योंकि उन्हीं के द्वारा दर्शाये गये मार्गों का मैं यत्नपूर्वक अनुसरण कर रहा हूँ॥८॥

हरिद्वार के निकट महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा स्थापित एक सुरम्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय है, वहीं छात्र रूप में निवास करते हुए, अतिशय वेदादि विद्याओं की पिपासा लिये हुए, विविध निर्मल शास्त्रों में दत्त-चित्त होकर संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए मैंने गुरुचरणों की कृपा से कतिपय ज्ञान-विन्दुओं को प्राप्त किया॥९॥

गुरुवर पण्डित विश्वनाथ विद्यालंकार (वेदोपाध्याय), पण्डित सुरेन्द्रनाथ शर्मा सप्ततीर्थ (दर्शनशास्त्रोपाध्याय), साहित्याचार्य पण्डित वागीश्वर विद्यालंकार एम० ए० (संस्कृतसाहित्योपाध्याय), पण्डित सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार (आर्यसिद्धान्तोपाध्याय), अर्थशास्त्रवाचस्पति 'अच्युत' पण्डित केशवदेव वेदालंकार (अर्थशास्त्रोपाध्याय), आचार्य चमूपति एम० ए० (आस्तिकवादोपाध्याय), प्रोफेसर लालचन्द, एम० ए० (आंग्लभाषोपाध्याय) आदि विद्वान् गुरुओं ने अपने पवित्र आशीर्वादों से मुझे कृतार्थ किया॥१०॥

मैं अपने आचार्य स्वामी अभयदेव को प्रणाम करता हूँ और उनके गुण-गण का गान करता हूँ। उन संन्यासी ने अपने दिव्य, शुभ आशीर्वाद से मेरी रुचि को वेदमार्ग पर अग्रसर किया था॥११॥

उन सभी गुरुओं को मैं नत-मस्तक होकर वन्दना करता हूँ, जिनसे मैंने ज्ञानरूप अमृत का पान किया है। साथ ही मैं अपने गुरुओं के गुरु, गुरुकुलशिक्षापद्धति के पुनरुद्धारक, तपस्वी श्रद्धानन्द संन्यासी को भी प्रणाम करता हूँ॥१२॥

मैं अपने पिता श्री गोपालराम जी और माता श्रीमती भगवती देवी जी को हाथ जोड़कर वन्दन करता हूँ, जिनकी कृपाओं से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता॥१३॥

मैं परिवार में सद्धर्म और सुख को वरसाने वाली अपनी स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती प्रकाशवती को स्मरण करके वेद का मर्म प्रकाशित करने के लिए अपने मन को प्रवृत्त करता हूँ॥१४॥

मेरे पुत्र विनोदचन्द्र विद्यालंकार, पुत्रवधू निर्मला देवी, पौत्र

स्वस्ति, पुत्री भारती, जामाता महेन्द्र और दौहित्री दीप्ति, प्रीति तथा उदिता सब वेदमार्ग पर चलते हुए कल्याणभाजन हों, यह मेरी कामना है॥१५-१६॥

इस सामवेदभाष्य से पाठक तृप्तिलाभ करें। वेद में उनकी रुचि बढ़े और कल्याणकारिणी माता के समान श्रद्धा उनका सदा मंगल करती रहे॥१७॥

## ईश प्रार्थना

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद भद्रं तन्न आ सुव॥१॥ —ऋ० ५।८२।५

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥२॥
—यजुः० ३४।५

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥३॥ --साम० उ० ६।३।१०।१

**यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।**
**स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥४॥**
—अथर्व० १०।८।१

हे सच्चिदानन्दस्वरूप, परम दयालु अनन्तविद्य, सर्वविद्या-प्रकाशक, सर्वानन्दप्रदाता, सकल जगदुत्पादक परमात्मन्! इस वेदभाष्य में आनेवाले विघ्नरूप दुरितों को आने से पूर्व ही आप दूर कर दीजिए और यदि मेरी असावधानी के कारण वे विघ्न आ भी जाएँ तो मुझे ऐसा बल प्रदान कीजिए कि मैं उन्हें तत्क्षण दूर कर सकूँ, और जो शरीर का आरोग्य, बुद्धिकौशल, सत्यविद्याप्रकाश आदि भद्र है वह कृपा कर मुझे प्राप्त कराइये, जिससे वेद का यथार्थ भाष्य मैं कर सकूँ।

हे भगवन् कृपानिधे! जिस मन में ऋचाएँ, साम और यजुः रथनाभि में अरों के समान प्रतिष्ठित होते हैं और जिसमें प्रजाओं का स्मृतिरूप चित्त सूत्र में मणिगणों के समान प्रोत रहता है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शिवसंकल्पोंवाला हो, जिससे वेद के सत्यार्थ को ही मैं प्रकाशित करूँ।

सर्वजगदुत्पादक, सन्मार्गप्रेरक, निखिलज्ञानविज्ञानप्रकाशक, सर्वसुखदाता, सर्वान्तर्यामी परब्रह्म का, जो सकल अविद्या का प्रदाहक, तेजस्वी, श्रेष्ठ स्वरूप है, उसे मैं अपने अन्तःकरण में धारण करूँ। वह परब्रह्म मेरी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करता रहे, जिससे उत्कृष्ट वेदार्थों के प्रकाशक, वेद, ब्राह्मण, आरण्यक,

उपनिषद्, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त आदि के सुप्रमाणों से युक्त और पारमार्थिक तथा व्यावहारिक अर्थों से अलंकृत वेदभाष्य को मैं कर सकूँ।

जो भूत-भविष्यत्-वर्तमान कालों का तथा पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर आदि सबका अधिष्ठाता है और लेशमात्र भी दुःख से रहित नितान्त सुख जिसे सदा प्राप्त रहता है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म को मेरा नमस्कार है।

## १. चार वेद और उनकी शाखाएँ

ऋग्, यजुः, साम और अथर्व ईश्वरप्रोक्त चार वेद हैं। किसी समय इनकी बहुत-सी शाखा-प्रशाखाएँ हो गयीं, जो संख्या में ११२७ तक पहुँच गयी थीं। अनेक वेदप्रेमी जन इन शाखाओं को भी वेद के अन्तर्गत मानकर वेदवत् इनका प्रामाण्य स्वीकार करते हैं। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती मूल वेद प्रायः उन्हें मानते हैं जो आजकल शाकल ऋग्वेद (बालखिल्य-सूक्तों सहित), वाजसनेयी **माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद, कौथुम एवं राणायनीय** सामवेद तथा **शौनकीय अथर्ववेद नाम से प्रचलित हैं और** शाखाओं को इन मूल वेदों के अनुकूल **होने पर** ही **प्रमाण मानते** हैं। उनके मतानुसार शाखाएँ ईश्वरकृत नहीं हैं प्रत्युत ईश्वरकृत वेदों के ऋषिकृत वेदव्याख्यान हैं।[1]

पातञ्जल महाभाष्य में लिखा है कि ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० तथा अथर्ववेद की ९ शाखाएँ हो गयी थीं।[2] किन्तु सम्प्रति ऋग्वेद की केवल शाकल ही उपलब्ध है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और काण्व तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक और कठ, कापिष्ठल संहिताएँ प्राप्त हैं। अथर्ववेद की शौनकीय एवं पैप्पलाद संहिताएँ मिलती हैं। सामवेद केवल तीन प्रकार का उपलब्ध है—कौथुम, राणायनीय

---

१. तथैवैकादशशतानि सप्तविंशतिश्च वेदशाखा वेदार्थव्याख्याना अपि वेदानुकूलतयैव प्रमाणमर्हन्ति। ऋ० भा० भू०, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः। "ये सब शाखा वेद नहीं हैं, क्योंकि इनमें ईश्वरकृत वेदों की प्रतीक धरके व्याख्या और संसारी जनों के इतिहासादि लिखे हैं।" —स० प्र०, समु० ११।

२. "एकविंशतिधा बाह्वृच्यम् एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, नवधाऽथर्वणो वेदः।" पातञ्जल महा०, पस्पशाह्निक। एवं महाभाष्योक्त २१+१०१+१०००+९=११३१ में से चार मूल वेद निकाल देने पर शाखाओं की संख्या ११२७ होती है।

तथा जैमिनीय।

कौथुम एवं राणायनीय दोनों सामवेदों में मन्त्रसंख्या एक समान १८७५ है, विशेष अन्तर विभाजन का है। कौथुम के पूर्वार्चिक में 'प्रपाठक, अर्धप्रपाठक, दशति एवं मन्त्रों' का क्रम है तो राणायनीय के पूर्वार्चिक में 'अध्याय, खण्ड एवं मन्त्रों का। इसी प्रकार कौथुम के उत्तरार्चिक में 'प्रपाठक, अर्धप्रपाठक, सूक्त एवं मन्त्रों' का विभाजन है तो राणायनीय के उत्तरार्चिक में 'अध्याय, खण्ड, सूक्त एवं मन्त्रों' का क्रम है। स्वामी दयानन्द प्रपाठकों वाले क्रम को आदर देते हैं। यतः उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थसंकेत-विषय में सामवेद का ग्रन्थसंकेत देने के लिए इसी क्रम को स्वीकार किया है। कौथुम तथा राणायनीय में क्वचित् स्वल्प पाठभेद भी है। यथा—कौथुम में ऋग्वेद के समान 'वाजेपु नो' तथा राणायनीय में 'वाजेपु णो' पाठ मिलता है।[१] सामगान में कौथुमशाखाध्येता वेदपाठी 'हाउ' तथा 'राइ' बोलते हैं। किन्तु राणायनीयशाखाध्येता वेदपाठी इनके स्थान पर क्रमशः 'हावु' तथा 'रायि' उच्चारण करते हैं। आजकल जो सामवेद की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं उनमें प्रायः अध्याय आदि तथा प्रपाठक आदि दोनों ही विभाजन प्रदर्शित किये होते हैं। इस प्रकार उनमें कौथुम संहिता तथा राणायनीय संहिता दोनों मिश्रित रहती हैं। वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित सामवेद-संहिता में प्रधानता प्रपाठक के क्रम को दी गयी है, किन्तु शीर्ष पर प्रपाठक और अध्याय दोनों ही क्रमों का निर्देश है। स्वाध्याय-मण्डल से प्रकाशित संहिता में शीर्ष पर भी और मध्य में भी दोनों विभाजन प्रदर्शित किये गये हैं।

जैमिनीय संहिता की मन्त्रसंख्या डॉ० डब्ल्यू० कैलेण्ड के अनुसार १६८७ है, इस प्रकार इसमें कौथुम एवं राणायनीय संहिता की अपेक्षा १८८ मन्त्र न्यून हैं। इस संहिता में ऋग्वेद में विद्यमान कई ऐसी ऋचाएँ भी हैं जो कौथुम एवं राणायनीय संहिताओं में नहीं हैं। मन्त्रों का क्रम भी कई स्थानों पर कौथुम

१. 'वाजेपु' और 'नो (या णो)' दोनों शब्द इकट्ठे केवल साम क्रमसंख्या ७९८ तथा १८५५ में आये हैं। वैदिक यन्त्रालय अजमेर तथा स्वाध्यायमण्डल औंध (या पारडी) दोनों से प्रकाशित सामवेद में 'वाजेपु नो' पाठ मिलता है।

एवं राणायनीय के क्रम से भिन्न है।

सामवेद की कौथुम संहिता का संस्करण जर्मन विद्वान् थियोडोर बेन्फे (Theodor Benfy) ने १८४८ ई० में जर्मन भाषा के अनुवाद-सहित प्रकाशित कराया था। राणायनीय संहिता सर्वप्रथम १८४२ ई० में लन्दन से जे० स्टेवेन्सन (J. Stevenson) के अंग्रेजी-अनुवाद-सहित प्रकाशित हुई थी। जैमिनीय संहिता का भूमिकायुक्त रोमनाक्षर-संस्करण अंग्रेज विद्वान् डॉ० डब्ल्यू० कैलेण्ड (Dr. W. Caland) द्वारा १९०७ ई० में प्रकाशित किया गया था। स्वाध्यायमण्डल से जो सामवेदसंहिता प्रकाशित हुई है उसमें कौथुम एवं राणायनीय तो सम्मिलित रूप से हैं ही, किन्तु अन्त में जैमिनीय संहिता के पाठ-विशेष, क्रमभेद तथा अधिक मन्त्र भी दर्शा दिये गये हैं।

## २. वेदों के प्रतिपाद्य विषय

प्रत्येक वेद का अपना-अपना महत्त्व है। ऐसा नहीं है कि किसी वेद का कम महत्त्व हो, दूसरे वेद का अधिक हो। वेदों के चार वर्ण्य विषय हैं—विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान। ज्ञान किसी पदार्थ के सामान्य बोध को तथा विज्ञान उसके साक्षात् बोध को कहते हैं। चारों विषयों में विज्ञान सब से मुख्य है, यतः उसमें परमेश्वर से लेकर तृण-पर्यन्त सब पदार्थों का हस्तामलकवत् साक्षात् बोध होता है। उसमें भी परमेश्वर का अनुभव सर्वमुख्य है, क्योंकि सब वेदों का प्रधानतः उसी में तात्पर्य है।[1]

चारों ही वेदों में विज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के विषय वर्णित हैं। तथापि प्रधानतः ऋग्वेद[2] गुण-गुणियों के ज्ञान-विज्ञान का उपदेश अर्थात् ईश्वर से लेकर भूमिपर्यन्त पदार्थों का गुण-वर्णन-रूप ज्ञानकाण्ड एवं विज्ञानकाण्ड हैं और यजुर्वेद में ईश्वर-पूजा, विद्वत्सत्कार, शिल्पादि क्रियाओं से संगतिकरण, शुभ विद्या, गुण, धन आदि का दान एवं यज्ञादि

१. अत्र चत्वारो वेदविषयाः सन्ति, विज्ञानकर्मोपासनाज्ञानकाण्डभेदात् तत्रादिमो विज्ञानमयो हि सर्वेभ्यो मुख्योऽस्ति तस्य परमेश्वरादारभ्य तृणपर्यन्तपदार्थेषु साक्षाद् बोधान्वयत्वात्। तत्रापीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति। कुतः? अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात्। ऋ० भा० भू०, वेदविषयविचार

ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकर्मस्वभावाननया सा ऋक्, ऋक् चासौ वेदश्चर्ग्वेदः। दयानन्द, ऋग्भाष्यारम्भ

कर्तव्य कर्मों का उपदेशरूप कर्मकाण्ड वर्णित है।[1] सामवेद में ज्ञान-विज्ञान, कर्म और उपासना तीनों का समन्वय है अर्थात् यह बतलाया गया है कि मनुष्य ज्ञान-विज्ञान, कर्म और उपासना तीनों का समन्वय है अर्थात् यह बतलाया गया है कि मनुष्य ज्ञान-विज्ञान, कर्म और उपासना की कहाँ तक उन्नति कर सकता है तथा उसका क्या फल होता है। अथर्ववेद उक्त विद्या-विषयों का पूरक है।[2]

## ३. सामवेद का नामकरण

वेद शब्द 'विद सत्तायाम्' (दिवादि), 'विद ज्ञाने' (अदादि), 'विद्लृ लाभे' (तुदादि), 'विद विचारणे' (रुधादि) तथा 'विद चेतनाख्याननिवासेषु' (चुरादि) धातुओं से करण और अधिकरण कारक में घञ् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। जिसमें विविध ज्ञान-विज्ञानों की सत्ता है (विद सत्तायाम्), जिससे या जिसमें विविध विद्याएँ जानी जाती हैं (विद ज्ञाने), जिससे या जिसमें विविध विद्याओं को पाते हैं (विद्लृ लाभे), जिससे या जिसमें विविध विद्याओं का विचार किया जाता है (विद विचारणे), जिससे गुरु द्वारा शिष्यों को चेताया जाता है, जिससे या जिसमें विविध विषयों का आख्यान किया जाता है, जिसमें विविध विद्याएँ निवास करती हैं अथवा जिससे शिष्यों के हृदय में अध्यात्म, अधिदैवत, अधिभूत आदि विद्याओं का निवास कराया जाता है (विद चेतनाख्याननिवासेषु) उसका नाम वेद है।[3]

---

१. ईश्वरेण जीवानां गुणगुणिविज्ञानोपदेशाय ह्यृग्वेदे सर्वान् पदार्थान् व्याख्यायेदानीं मनुष्यैस्तेभ्यो यथायथोपकारग्रहणाय क्रिया: कथं कर्तव्या इत्युपदिश्यते। येन मनुष्या ईश्वरं धार्मिकान् विदुषश्च पूजयन्ति सर्वचेष्टासाङ्गत्यं शिल्पविद्यासङ्गतिकरणं शुभविद्यागुणदानं यथायोग्यतया सर्वोपकारं शुभे व्यवहारे विद्वत्सु च द्रव्यादिव्ययं कुर्वन्ति तद् यजु:।। दयानन्द यजुर्वेदभाष्यभूमिका

२. ऋग्वेदे सर्वेषां पदार्थानां गुणप्रकाश: कृतोऽस्ति तथा यजुर्वेदे विदितगुणानां पदार्थानां सकाशात् क्रियया ऽनेकविद्योपकारग्रहणाय विधानं कृतमस्ति, तथा सामवेदे ज्ञानक्रियाविद्ययोर्दीर्घविचारेण फलावधिपर्यन्तं विद्याविचार:। एवमथर्ववेदेऽपि त्रयाणां वेदानां मध्ये यो विद्याफलविचारो विहितोऽस्ति तस्य पूर्तिकरणेन रक्षणोन्नती विहिते स्त:।।

—ऋ०भा०भू०, प्रश्नोत्तरविषय:

तथा ज्ञानकर्मकाण्डयोरुपासनायाश्च कियत्युन्नतिर्भवितुमर्हति किञ्चैतेषां फलं भवति, सामवेद एतद्विधायकत्वात् तृतीयो गण्यत इति।।—वही

३. विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विद्लृ लाभे, विद विचारणे एतेभ्यो 'हलश्च' (अ० ३।३।१२१) इति सूत्रेण करणाधिकरणयोर्घञ्प्रत्यये कृते वेदशब्द: साध्यते। विन्दन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति, विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते, विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्या: सर्वा: सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा:। —ऋ० भा० भू०, वेदोत्पत्तिविषय:।

'साम' को अथर्ववेद में 'सा' और 'अम' के योग से निष्पन्न किया गया है। वहाँ चतुर्दश काण्ड के विवाह-सूक्त में वर वधू से कहता है कि तू 'सा' है, मैं 'अम' हूँ,[1] इस प्रकार हमारा युगल 'साम' है। यहाँ 'सा' से वाणी और 'अम' से प्राणबल अभिप्रेत है।[2] जैसे वाणी और प्राण के मिलन से साम-संगीत की उत्पत्ति होती है, वैसे ही वधू-वर के मिलने से गृहस्थ-संगीत उत्पन्न होता है। शतपथ ब्राह्मण[3], काठक संहिता[4] तथा जैमिनीय-उपनिषद्-ब्राह्मण[5] में भी 'सा' और 'अम' के योग से 'साम' की निष्पत्ति मानी गयी है। सामविधान ब्राह्मण[6] में 'सम' से 'साम' निष्पन्न हुआ बताया गया है। वहाँ कहा गया है कि ऋग्वेद के छन्द और सामवेद के छन्द समान हैं, सम छन्दवाला होने के कारण ही सामवेद का नाम 'साम' पड़ा है।

यास्कीय निरुक्त में 'साम' शब्द की तीन प्रकार से निष्पत्ति दर्शायी गयी है। प्रथम, सम् उपसर्ग-पूर्वक मानार्थक माङ् धातु से। ऋचा से समान परिमाणवाला होने से 'साम' कहलाता है, अर्थात् ऋचाएँ जैसे छन्दोबद्ध होती हैं वैसे ही 'साम' भी होता है (सम्मा=साम)। द्वितीय प्रकार में 'साम' को 'षो अन्तकर्मणि' धातु से व्युत्पन्न किया गया है। सामयोनिमन्त्र को या सामगान को 'साम' इस कारण कहते हैं क्योंकि यह मानसिक अशान्ति, दुःख आदि का अन्त कर देता है। तृतीय पक्ष नैदानों के नाम से दिया गया है, जिसके अनुसार 'सम'-पूर्वक 'मन ज्ञाने' (दिवादि) या 'मनु अवबोधने' (स्वादि) धातु से 'साम' शब्द बनता है। ऋचा के समान माना जाने के कारण सामयोनिमन्त्र 'साम' कहलाता है।[7]

उणादि कोष में 'साम' की सिद्धि में निरुक्तवर्णित द्वितीय

१. अमोऽहमस्मि सा त्वम्। —अथ० १४।२।७१

२. प्राणो वाव अमो वाक् सा, तत् साम (जै० उ० ब्रा० ४।११।२।३), वागेव सा प्राणोऽमः, तत्साम। (छा० उ० प्रपा० १, खण्ड ७)।

३. सा च अमश्चेति तत् साम्नः सामत्वम्। —श० १४।४।१।२४

४. सा त्वमसि अमोऽहम्, अमोऽहमस्मि सा त्वम्। ता एहि संरभावहै पुरं वाय कर्तवे।। —काठ० ३५।१८।

५. तद्यत् सा च अमश्च तत् सामाऽभवत्, तत्साम्नः सामत्वम्। —जै० उ० ब्रा० १।१७।१।५

६. समा उ ह वा अस्मिंश्छन्दांसि साम्यादिति तत् साम्नः सामत्वम्। —सा० वि० ब्रा० १।१।५

७. साम सम्मितम् ऋचा, स्यतेर्वा, ऋचा समं मेने इति नैदानाः। —निरु० ७।१२

प्रकार को ही ग्रहण किया है। वहाँ 'षो' अन्तकर्मणि' धातु से मनिन्[1] प्रत्यय करके 'सामन्' शब्द निष्पन्न किया गया है। उसी के नपुंसकलिंग, प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'साम' रूप बनता है। पाप-ताप का अन्त इसके अर्थज्ञानपूर्वक पाठ या गान से होता है, अतः इसे 'साम' कहते हैं। एक अन्य धातु 'साम सान्त्वप्रयोगे' (चुरादि) है, इस धातु से अन् प्रत्यय करने पर भी 'सामन्' की सिद्धि हो सकती है। तदनुसार इसे 'सामन्' इस कारण कहते हैं, यतः इससे शान्ति प्राप्त होती है। उणादि सूत्रों के एक वृत्तिकार श्वेतवनवासी 'षो' धातु को गानार्थक मानकर 'साम' का यह अर्थ करते हैं कि जो गाया जाए वह साम है।[2]

## ४. सामवेद का बहिरङ्ग परिचय

यहाँ सामवेद से कौथुम एवं राणायनीय सामवेद-संहिता ही अभिप्रेत है, जिसे मूल प्रामाणिक सामवेद कहा जा सकता है। सामवेद में तीन आर्चिक हैं—आरम्भ में पूर्वार्चिक, अन्त में उत्तरार्चिक और मध्य में एक छोटा-सा महानाम्नी आर्चिक। पूर्वार्चिक को छन्द-आर्चिक भी कहते हैं, क्योंकि इसमें स्वतन्त्र छन्द (सामयोनि ऋचाएँ) पठित हैं। पूर्वार्चिक आरण्यकाण्ड के अन्त, साम-मन्त्र-संख्या ६४० तक है। सामवेदसंहिता के पं० सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित सायण-भाष्य में भी आरण्यकाण्ड के अन्त में पूर्वार्चिक (छन्द आर्चिक) को समाप्त किया गया है।[3] महानाम्नी आर्चिक के आरम्भ में पं० सामश्रमी ने टिप्पणी दी है कि महानाम्नियों का पाठ सर्वत्र छन्द आर्चिक की समाप्ति पर ही मिलता है, उन्हें न छन्द आर्चिक में सम्मिलित किया गया है, न उत्तरार्चिक में।[4] कुछ लोग पावमानकाण्ड के अन्त में

---

१. सातिभ्यां मनिन्मनिणौ (उ० ४।१५४)। धात्वर्थ इस प्रकार संगत होगा—स्यति समापयति पापम् अशान्ति दुःखादिकं च यत् तत् साम।

२. षो अन्तकर्मणि अनेकार्थकत्वाद् गाने वर्तते, सीयते गीयते इति साम वेदः।
—उ० ४।१५४ की श्वेतवनवासी-वृत्ति।

३. समाप्तम् आरण्यम् पर्व आरण्यङ्काण्डं वा। सामवेद-संहितायां छन्द-आर्च्चिकः समाप्तः।—सायणभाष्य

४. महानाम्नीनां पाठस्तु न तु छन्द-आर्चिके नापि उत्तरार्चिके परं छन्द-आर्चिके समाप्ते तत्पुस्तकान्त्यभाग एव सर्वत्र दृश्यते, एवमारण्यगाने समाप्ते च ततोऽनन्तरं महानाम्नी-सामपाठस्तत्रैव पुस्तके सर्वत्र।—सामश्रमी

(साम-मन्त्र-संख्या ५८५ पर) पूर्वार्चिक (छन्दआर्चिक) को समाप्त मानते हैं। उनके मत में आरण्यकाण्ड पूर्वार्चिक से पृथक् है। सामभाष्यकार माधवाचार्य[1] और भरतस्वामी[2] पावमान काण्ड के भाष्य के अनन्तर ही पूर्वार्चिक को समाप्त करते हैं। महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्द उदासीन के सामवेद-संहिता के भाष्य में भी ऐसा ही किया गया है; उन्होंने आरण्यकाण्ड को एक पृथक् आर्चिक 'आरण्यार्चिक' माना है। किन्तु वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित मूल सामवेद-संहिता में पूर्वार्चिक, महानाम्नी आर्चिक और उत्तरार्चिक ये तीन ही आर्चिक हैं तथा आरण्यकाण्ड की समाप्ति तक पूर्वार्चिक है।

पूर्वार्चिक में चार काण्ड हैं जिन्हें पर्व भी कहते हैं—आग्नेय, ऐन्द्र, पावमान और आरण्य। आग्नेय काण्ड या पर्व में कुल ऋचाएँ ११४ हैं, जिनमें अधिकांश का देवता अग्नि है। इस काण्ड में अग्नि नाम से परमात्मा की उपासना का तथा राजा, सेनापति, आचार्य आदि के गुण-कर्मों का वर्णन है। ऐन्द्र काण्ड या पर्व में कुल ऋचाएँ ३५२ हैं, जिनका प्रायः इन्द्र देवता है।[3] इसमें इन्द्र नाम से परमात्मा की उपासना एवं जीवात्मा को उद्बोधन है, और राजा, सेनापति, आचार्य आदि के गुण-कर्मों का वर्णन है। पावमान काण्ड या पर्व में कुल ११९ ऋचाएँ हैं; सभी ऋचाओं का देवता पवमान सोम है। इसमें पवित्रताकारक 'सोम' परमात्मा की उत्कृष्ट भक्ति करने की प्रेरणा दी गयी है। 'सोम' शब्द भक्ति-रस, श्रद्धा-रस, कर्म-रस आदि का भी वाचक है, अतः जिन ऋचाओं में परमात्मा के प्रति सोम-रस प्रवाहित करने का वर्णन है उनमें 'सोम' से भक्ति-रस आदि ग्राह्य हैं। इसके अतिरिक्त 'सोम' नाम से जीवात्मा, राजा, सेनानी

---

१. माधवकृत सामसंहिताभाष्य में क्रमसंख्या ५८५ के भाष्य की समाप्ति पर लिखा है—'इति छन्दसिकाविवरणं माधवाचार्यकृतं परिसमाप्तम्।

२. भरतस्वामी उक्त मन्त्रसंख्या के भाष्य के अनन्तर लिखते हैं—शतानि पञ्चाशीतिश्च पञ्च चाप्यखिला ऋचः।। इत्थं श्रीभरतस्वामी काश्यपो यज्ञदासुतः। नारायणार्यतनयो व्याख्यत् साम्नामृचोऽखिलाः।। इति षष्ठे नवमी दशतिः। षष्ठः प्रपाठकः।

३. आग्नेय काण्ड में अग्नि के अतिरिक्त तथा ऐन्द्र काण्ड में इन्द्र के अतिरिक्त अन्य कौन-कौन-से देवता किस-किस ऋचा के हैं—एतदर्थ भाष्य में प्रत्येक काण्ड के आरम्भ की भूमिका द्रष्टव्य है।

आदि के गुण-कर्मों का भी वर्णन किया गया है। आरण्यकाण्ड या पर्व में कुल ऋचाएँ ५५ हैं। इसमें कोई एक प्रमुख देवता न होकर जैसे अरण्य (जंगल) में विभिन्न प्रकार के वृक्ष उगे होते हैं, वैसे पवमान सोम, वायु, प्रजापति, अग्नि, इन्द्र, पुरुष, द्यावापृथिवी, सूर्य आदि विभिन्न देवता हैं। इन विविध नामों से परमात्मा की उपासना तथा राजा, आचार्य, प्राण आदि की विशेषताओं का वर्णन है। इस काण्ड को आरण्यक इस कारण भी कहते हैं, क्योंकि इसमें पठित ऋचाओं पर अरण्ये-गेय गान किया जाता है।

पूर्वार्चिक में चारों काण्डों में मिलाकर कुल ६४० ऋचाएँ हैं। महानाम्नी आर्चिक में ऋचाओं की संख्या केवल १० है। पूर्वार्चिक ६ प्रपाठकों में विभक्त है। प्रथम पाँच प्रपाठकों में प्रथमार्ध तथा द्वितीयार्ध दो-दो अर्ध हैं, किन्तु षष्ठ प्रपाठक में तीन अर्ध हैं। प्रत्येक अर्ध में पाँच-पाँच दशतियाँ हैं। प्रत्येक दशति में सामान्यतः दस-दस ऋचाएँ हैं, किन्तु कुछ दशतियों में ऋचाओं की संख्या १० से न्यूनाधिक भी है। एक दशति में ६, एक दशति में ७, सात दशतियों में ८-८, पाँच दशतियों में ९-९, एक दशति में ११, पाँच दशतियों में १२-१२, एक दशति में १३, और तीन दशतियों में १४-१४ ऋचाएँ हैं। यह ऋचाओं की न्यूनता या अधिकता इस कारण है कि ऐसा प्रयास किया गया है कि एक छन्द की ऋचाएँ उसी दशति में आ जाएँ। उदाहरणार्थ प्रथम प्रपाठक, प्रथम अर्ध की तीसरी दशति में १४ ऋचाएँ हैं, जिनका गायत्री छन्द है, जब कि अगली दशति का छन्द बृहती है। यदि तीसरी दशति की चार ऋचाएँ अगली चौथी दशति में डाली जातीं तो उसमें चार ऋचाओं का छन्द गायत्री और शेष का बृहती होता है, जो कि वांछनीय नहीं था।

जिस प्रकार ऋग्वेद में 'मण्डल, सूक्त, ऋचा' का विभाजन-क्रम प्राचीन तथा 'अष्टक, अध्याय, वर्ग, ऋचा' का विभाजन-क्रम अर्वाचीन है, उसी प्रकार सामवेद में 'प्रपाठक, अर्धप्रपाठक, दशति, ऋचा' का विभाजन प्राचीन तथा 'अध्याय, खण्ड, ऋचा' का विभाजन पश्चाद्वर्ती है। दूसरे विभाजन के अनुसार पूर्वार्चिक में ६ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में आग्नेय काण्ड या पर्व सम्पूर्ण हुआ है जिसमें १२ खण्ड हैं और जो ऋक् संख्या

११४ तक है। ऐन्द्र काण्ड या पर्व द्वितीय से चतुर्थ अध्याय तक है, जिसमें प्रत्येक अध्याय में १२ खण्ड हैं। द्वितीय अध्याय ऋक् संख्या २३२ तक तृतीय अध्याय ऋक् संख्या ३५१ तक और चतुर्थ अध्याय ऋक्संख्या ४६६ तक है। पावमान काण्ड या पर्व पंचम अध्याय में है, जिसमें ११ खण्ड हैं तथा ऋक्संख्या ५८५ तक है। आरण्य काण्ड या पर्व षष्ठ अध्याय में है, जिसमें ५ खण्ड हैं तथा ऋक्संख्या ६४० तक है। महानाम्नी आर्चिक स्वतन्त्र है, वह किसी प्रपाठक या अध्याय के अन्तर्गत नहीं है।

उत्तरार्चिक में प्रथम विभाजन के अनुसार 'प्रपाठक, अर्ध-प्रपाठक, सूक्त और ऋचा' तथा द्वितीय विभाजन के अनुसार 'अध्याय, खण्ड, सूक्त एवं ऋचा' हैं। इनमें प्रथम विभाजन प्राचीन तथा द्वितीय अर्वाचीन है जो अध्ययन-अध्यापन एवं गान की सुविधा के लिए किया गया है। उत्तरार्चिक में कुल ९ प्रपाठक, २२ अर्धप्रपाठक, २१ अध्याय, १२० खण्ड तथा ४०० सूक्त हैं। सूक्त अधिकतर तीन-तीन ऋचाओं के हैं तो भी कुछ सूक्त कम या अधिक ऋचाओं के भी मिलते हैं। गणना से ज्ञात होता है कि उत्तरार्चिक में १३ एकर्च, ६६ द्व्यृच, २८७ तृच, ९ चतुर्ऋच, ४ पञ्चर्च, १० षड्ऋच, २ सप्तर्च, १ अष्टर्च, ३ दशर्च और २ द्वादशर्च सूक्त हैं। उत्तरार्चिक की कुल ऋक्संख्या १२२५ है। इस प्रकार सामवेद की सम्पूर्ण ऋक्संख्या (पूर्वार्चिक ६४०+महानाम्नी आर्चिक १०+उत्तरार्चिक १२२५) १८७५ होती है।

## ५. पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक का सम्बन्ध

पूर्वार्चिक में ६४० ऋचाएँ तथा उत्तरार्चिक में १२२५ ऋचाएँ हैं, यह अभी हमने देखा है। पूर्वार्चिक की ऋचाओं में से २६२ ऋचाएँ उत्तरार्चिक में वैसी की वैसी पुनरुक्त हुई हैं। इन पुनरुक्त में से पूर्वार्चिक की १७० ऋचाएँ उत्तरार्चिक के तृचों की आदिम ऋचाओं के रूप में पठित हैं। २० ऋचाएँ ऐसी हैं जो तृचों के आदि में पठित न होकर उनके मध्य या अन्त में अथवा मध्य और अन्त दोनों स्थानों में पठित हैं। ६० ऋचाएँ ऐसी हैं जो उत्तरार्चिक के प्रगाथ सूक्तों के आदि में पठित हैं। १२ ऋचाएँ

चार से लेकर द्वादश ऋचा तक की संख्यावाले सूक्तों के आदि, मध्य या अन्त में पठित हैं। उत्तरार्चिक के कुल ४०० सूक्तों में से २०० से अधिक सूक्तों की आदिम ऋचाएँ पूर्वार्चिक की ही हैं। जो उत्तरार्चिक के सूक्तों के आदि में पठित पूर्वार्चिक की ऋचाएँ हैं वे उत्तरार्चिक के ऊह गानों और ऊह्य गानों की योनि ऋचा बनती हैं अर्थात् उनके आधार पर गान होता है। उत्तरार्चिक के ऊह गानों की प्रकृति पूर्वार्चिक के गेय गान तथा उत्तरार्चिक के ऊह्य गानों की प्रकृति पूर्वार्चिक के आरण्य गान हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि पूर्वार्चिक की ऋचा आरम्भ में पठित हुए बिना उत्तरार्चिक के सूक्तों पर गान न होता हो। पूर्वार्चिक से भिन्न स्वतन्त्र ऋचा आदिम होने पर भी किसी सूक्त पर गान हो सकता है। ऐसा भी नहीं है कि यदि पूर्वार्चिक की कोई ऋचा उत्तरार्चिक के किसी सूक्त के आदि में है तो उस पर गान अवश्य बना हो; ऐसे कई सूक्तों पर गान नहीं हैं। सामगानों के विषय में हम आगे प्रकाश डालेंगे, अतः यहाँ इस सम्बन्ध में अधिक नहीं लिखा जा रहा है।

## ६. सामवेद की स्वराङ्कन-पद्धति

मूलतः स्वर तीन हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। इन्हीं को महर्षि पतञ्जलि ने प्रकारान्तर से सात भी बताया है—उदात्त, उदात्ततर, अनुदात्त, अनुदात्ततर, स्वरित, स्वरितपूर्व उदात्त और एकश्रुति।[1] संहिता में स्वरित से परे अनुदात्तों को एकश्रुति स्वर हो जाता है, जिसे प्रचय भी कहते हैं और जिसका उच्चारण उदात्तवत् होता है।[2] किन्तु उस अनुदात्त को एकश्रुति नहीं होती जिससे परे उदात्त या स्वरित हो[3], अपितु वह अनुदात्त अनुदात्ततर उच्चारित होता है।[4] स्वरित दो प्रकार का होता है, एक परतन्त्र

१. उदात्त उदात्तगुणः, अनुदात्तोऽनुदात्तगुणः य, इदानीमुभयगुणः स तृतीयामाख्यां लभते स्वरित इति। त एते तन्त्रे तरनिर्देशे सप्त स्वरा भवन्ति—उदात्तः, उदात्ततरः अनुदात्तः, अनुदात्ततरः, स्वरितः, स्वरिते य उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः, एकश्रुतिः सप्तमः।—महाभाष्य १।२।३३

२. स्वरितादनुदात्तानां परेषां प्रचयः स्वरः। उदात्तश्रुतितां यान्त्येकं द्वे वा बहूनि वा॥—ऋ० प्रा० ३।१९; स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्। —अ० १।२।३९

३. नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम्। —अ० ८।४।६७

४. उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः। —अ० १।२।४०

स्वरित, जिसे उदात्ताश्रित स्वरित भी कहते हैं, और दूसरा स्वतन्त्र स्वरित। परतन्त्र स्वरित वह कहलाता है, जो उदात्त से परे स्थित अनुदात्त का स्वरित बना होता है।[1] स्वतन्त्र स्वरित वह होता है जो स्वयं स्वरित है। इस स्वतन्त्र स्वरित में स्वाभाविक स्वरित और सन्धिज स्वरित दोनों समाविष्ट हैं। स्वाभाविक स्वरित का ही पारिभाषिक नाम 'जात्य' स्वरित है, अर्थात् जो जाति, स्वभाव या मूल से ही स्वरित है। यथा–

कन्या, धान्यम्, क्व, स्वः।[2]

सन्धिज स्वरित में क्षैप्र स्वरित, प्रश्लिष्ट स्वरित और अभिनिहित स्वरित आते हैं। जो उदात्त इकार, उकार के स्थान में यण् (य्, व्) होने पर अगला अनुदात्त स्वर स्वरित हो जाता है[3], वह क्षैप्र स्वरित कहाता है। यथा–

स्वाधी+असु=स्वाध्यः, चमू+ओस्=चम्वोः।

दीर्घ, गुण अथवा वृद्धि एकादेश से होनेवाले स्वरित को प्रश्लिष्ट स्वरित कहते हैं। यथा–

**हि+इन्द्र=हीन्द्र, क्व+इयथ=क्वेयथ।**[4]

ए अथवा ओ से ह्रस्व अ परे होने पर पूर्वरूप एकादेश से निष्पन्न होने वाला स्वरित अभिनिहित स्वरित कहाता है। यथा–

ते+अवर्धन्त तेऽवर्धन्त, वेदः+असि=वेदो असि=वेदोऽसि।[5]

स्वर-विषयक इस सामान्य परिचय के अनन्तर अब सामवेदसंहिता की स्वराङ्कनपद्धति दर्शाते हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में उदात्त, अनुदात्त आदि स्वर रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं, किन्तु सामवेद की स्वराङ्कनपद्धति उनसे भिन्न है। उनमें १, २ तथा ३ अंकों द्वारा स्वरों को सूचित किया जाता है। कहीं-कहीं इन अंकों के साथ र, क तथा उ अक्षर भी लिखे जाते हैं। नियम निम्नलिखित हैं–

१. सामान्यतः उदात्त अक्षर पर १ का, स्वरित पर २ का और अनुदात्त पर ३ का अंक लिखा जाता है। यथा–वीतये, बर्हिषि (साम १)।

१. नीचमुच्चात्। ऋक्तन्त्र ५५, उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः। –अ० ८।४।६६

२. कन्या, धान्य और क्व में क्रमशः यत्, ण्यत् और अत् प्रत्यय 'तित् स्वरितम्, (अ० ६।१।१८५) से स्वरित हैं। 'स्वः' 'यङ्स्वरौ स्वरितौ (फिट्० ७५) से स्वरित है।

३. उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य।–अ० ८।२।४

४-५. एकादेश उदात्तेनोदात्तः।–अ० ८।२।५

२. यदि उदात्त से परे अनुदात्ततर हो तो उदात्त पर २ का अंक लिखा जाता है। यथा–अग्न आ (साम १) और यज्ञानां होता (साम २) में अनुदात्ततर परे होने के कारण क्रमशः उदात्त अ तथा ज्ञा पर २ का अंक है।

३. यदि अनुदात्ततर जिनके परे है ऐसे दो या अधिक उदात्त इकट्ठे हों तो प्रथम उदात्त पर २ अंक के साथ उ अक्षर भी लिखा जाता है, शेष उदात्त अनंकित रहते हैं। यथा–आदित् प्रत्नस्य (साम २०), यं समिदन्य इन्धते (साम ६०)। प्रथम उदाहरण में अनुदात्ततर से पूर्व आ, दि दो उदात्त हैं तथा द्वितीय उदाहरण में यं, स, मि तीन उदात्त हैं।

४. यदि उदात्त से परे विराम–चिह्न हो तो भी उदात्त पर २ का अंक लिखा जाता है। यथा–हितः। (साम २), गिरा। (साम ८)।

५. यदि विराम जिनके परे है ऐसे दो या अधिक उदात्त इकट्ठे हों तो प्रथम उदात्त पर ही २ का अंक लिखा जाता है, शेष उदात्त अनंकित रहते हैं। यथा–महाँ हि षः। (साम ३८१)। यहाँ हाँ, हि, षः ये तीन उदात्त विराम से पूर्व इकट्ठे हैं।

६. यदि दो या अधिक उदात्त इकट्ठे आये हों तथा उनसे परे स्वरित हो तो प्रथम उदात्त पर १२ लिखा जाता है, शेष उदात्त अनङ्कित रहते हैं और स्वरित पर २र लिखते हैं। यथा–नि होता (साम १), युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो (साम २५)।[१]

७. यदि स्वतन्त्र स्वरित (जात्य, क्षैप्र प्रश्लिष्ट या अभिनिहित स्वरित) से पूर्व अनुदात्त अक्षर हो तथा परे अनुदात्ततर, एकश्रुति या विराम हो तो स्वरित पर २र तथा पूर्ववर्ती अनुदात्त पर ३क लिखते हैं। यथा, अनुदात्ततर परे होने पर–विश्व स्वर्दृशे (साम ८९१), चम्वोः सुत (साम ४९०)। एकश्रुति पर होने पर–वीर्याय चोदय (साम १५०७), वाज्यस्थात् (साम ५३१)। विराम परे होने पर–वीर्यम्। (साम ९५), वरूथ्यः। (साम ४४८), गार्यः (साम ४०९)।

८. नियम–संख्या ७ की स्थिति में यदि स्वरित से पूर्व

१. सामसंहिता की कुछ पुस्तकों में उदात्त पर १२ न लिखकर केवल १ लिखते हैं। यथा स्वाध्याय-मण्डल से प्रकाशित सामवेदसंहिता में। वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से प्रकाशित सामवेद में १२ है। स्वरित पर २र सभी पुस्तकों में मिलता है।

अनुदात्त न हो, प्रत्युत स्वरित ऋचा के या अर्धर्च के आदि में आता हो तो भी स्वरित पर २र लिखते हैं। यथा—क्वेयथ क्वेदसि (साम २७१), न्यस्मिन् दध्र (साम ७२७), नीव शीर्षाणि (साम १६५६)।

९. स्वरित से परे एक या अधिक अनुदात्तों को जो एकश्रुति या प्रचय स्वर होता है उसे सूचित करने के लिए ऋग्वेद के समान सामवेद में भी कोई चिह्न नहीं है। वह अनंकित ही रहता है। यथा।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर् (साम ४) में अनङ्कित 'जङ्घनद् द्रविण' एकश्रुति या प्रचय है।

१०. एक से अधिक अनुदात्त इकट्ठे आयें तो प्रथम अनुदात्त पर ही ३ का अंक लिखा जाता है, शेष अनङ्कित रहते हैं। यथा—और्वभृगुवत् (साम १८)।

११. उदात्त या स्वरित परे होने पर जो अनुदात्त को अनुदात्ततर होता है, उसके लिए कोई पृथक् चिह्न नहीं है, वह अनुदात्त के समान ३ के अंक से प्रदर्शित किया जाता है।

**स्वरित में कम्प**

उदात्त स्वर पर स्वतन्त्र स्वरित होने पर (जात्य, क्षैप्र, प्रश्लिष्ट और अभिनिहित स्वरित) कम्पसहित उच्चारण किया जाता है। सामवेद में इसे सूचित करने के लिए स्वरित पर २ का अंक लगाकर प्लुत के सदृश लिखने की पद्धति है। यथा—

जात्य स्वरित—क्वा३स्य (साम १४२)।

क्षैप्र स्वरित—पाह्यू३त (साम १५४४)।

अभिनिहित स्वरित—वृधे३ऽस्माँ (साम २३९)।[1]

स्वरित के कम्प का विधान ऋक्प्रातिशाख्य में इन शब्दों में किया गया है—

**जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षैप्रः प्रश्लिष्ट एव च।**
**एते स्वराः प्रकम्पन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः॥**—ऋ०प्रा० ३।३४

अर्थात् उदात्त या स्वरित परे हो तो जात्य, अभिनिहित, क्षैप्र

१. प्रश्लिष्ट स्वरित के कम्प का उदाहरण सामवेद में उपलब्ध नहीं हुआ। ऋग्वेद का उदाहरण है—अभीईदम् (ऋ० १०।४८।७)। यहाँ 'अभि इदम्' में उदात्त तथा अनुदात्त इ की प्रश्लिष्ट सन्धि होने पर एकादेश ई स्वरित होता है। उदात्त द परे होने पर उसका कम्पसहित उच्चारण होता है।

और प्रश्लिष्ट स्वरित कम्प के साथ उच्चारित होते हैं।

यह स्वरित दो प्रकार का होता है—ह्रस्व तथा दीर्घ। ऋग्वेद में कम्पयुक्त ह्रस्व तथा दीर्घ स्वरितों को लिखने की पद्धति यह है—

ह्रस्व—प्राह्यु१त—ऋ० ८।६०।१

दीर्घ—वृधे३ऽस्माँ—ऋ० ८।३।१

परन्तु सामवेद में सकम्प ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों स्वरितों को एक ही प्रकार से प्लुत की पद्धति से लिखा जाता है। यथा—

ह्रस्व—प्राह्यू३त—साम० ३६, १५४४

दीर्घ—वृधे३ऽस्माँ—साम० २३९

सामवेद में सकम्प दीर्घ स्वरित केवल मन्या, पथ्या, 'मा न इन्द्राभ्या दिशः', सन्ध्यक्षर ए-ओ और 'शग्ध्यू पु' आदि। (जहाँ इ-उ की सन्धि तथा दीर्घ हुआ होता है) में पाया जाता है।[1] यथा—

समन्या३वसानो (साम १४००), पथ्या३अनु (१५७७), मा न इन्द्राभ्या३दिशः (१२८), तन्वे३चारुरेधि (६५), जुह्वो३मम (१५४२), शग्ध्यू३षु शचीपते (२५३)।

इनसे अतिरिक्त स्थलों में सकम्प ह्रस्व स्वरित है। यथा—

न्या३त्रिणम् (साम २२), दूत्यां३चरन् (६४), प्रतीव्यां३यजस्व (१०३), क्वा३स्य (१४२), त्वा३स्य (१६५), त्वा३ह्य (२९५), उक्थ्या३मिन्द्र (३७४), अप्स्वा३न्तरा (४१७, ५१२), उर्वा३न्तरिक्ष (६०४)।

इस प्रकरण में यह उल्लेखनीय है कि यदि स्वतन्त्र स्वरित (पूर्वोक्त जात्य, क्षेप्र, प्रश्लिष्ट तथा अभिनिहित स्वरित) से पूर्व और पर दोनों स्थलों में उदात्त रहता है तब उस कम्पित स्वरित पर २ का अंक नहीं लिखा जाता, प्रत्युत उससे पूर्व के उदात्त पर २ का अंक लिखते हैं। यदि पूर्व एकाधिक उदात्त हों तो प्रथम उदात्त पर २ का अंक लिखा जाता है, शेष उदात्त अनङ्कित रहते हैं। यथा—

विद्धी त्वा३स्य (साम १३२), त्वं ह्या३ङ्ग (५८३), सं न ऊर्जे व्या३व्ययं (१४३८), दृशे कं स्वा३र्ण (१४४७)।

---

१. इकारान्ते पदे चैव उकारद्वयपदे परे।
दीर्घं कम्पं विजानीयात् शग्ध्यूष्विति निदर्शनम्।।
त्रयो दीर्घास्तु विज्ञेया ये च सन्ध्यक्षरेषु वै।
मन्या, पथ्या, न इन्द्राभ्याश्शेषा ह्रस्वाः प्रकीर्तिताः।।—नारद शिक्षा

### कम्प का अभिप्राय

कम्प स्वतन्त्र स्वरित से परे उदात्त वर्ण आने पर ही होता है, यह हम देख चुके हैं। स्वरित में उदात्त और अनुदात्त का मिश्रण होता है।[1] पूर्वोक्त सकम्प स्वतन्त्र स्वरितों (जात्य, क्षैप्र, प्रश्लिष्ट तथा अभिनिहित) के विषय में यह नियम है कि उनका पूर्वभाग उदात्ततर तथा शेष भाग अनुदात्त उच्चारित होता है।[2] स्वरित से परे जब उदात्त अक्षर होता है, तब "उदात्ततर–अनुदात्त–उदात्त" यह क्रम हो जाने पर उच्चारण में श्रम होना स्वाभाविक है, क्योंकि उदात्ततर उच्चारण करने के तुरन्त बाद अनुदात्त अंश का उच्चारण करने के लिए ध्वनि को नीचे उतरना पड़ता है और फिर परवर्ती उदात्त का उच्चारण करने के लिए पुनः ध्वनि को तुरन्त ऊपर चढ़ना पड़ता है। इस प्रकार मध्य के अनुदात्त अंश में सकम्प उच्चारण होता है।

## ७. ऋषि, देवता, छन्द और गान-स्वर

अन्य वेद संहिताओं के समान सामवेद-संहिता में भी ऋचाओं के ऋषि, देवता और छन्द निर्दिष्ट हैं। वैदिक यन्त्रालय से मुद्रित साम-संहिता में इनके अतिरिक्त प्रत्येक ऋचा के षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि स्वरों का भी निर्देश मिलता है। यहाँ संक्षेप से इनका विवेचन कर लेना उपयोगी होगा।

### १. ऋषि

वेदों पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले कतिपय भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान् ऋषियों को ऋचाओं का रचयिता मानते हैं। उनके मतानुसार जिस ऋचा का जो ऋषि निर्दिष्ट है, उसी ने उस ऋचा को रचा था। परन्तु वेदज्ञ मनीषियों की प्राचीन परम्परा वेदों को ईश्वरप्रदत्त ज्ञान तथा ऋषियों को ऋचाओं का रचयिता नहीं, प्रत्युत अर्थद्रष्टा मानती है। यही मान्यता निरुक्त-सम्मत भी है।[3] तपस्या एवं चिन्तन करते हुए जिन मनुष्यों के हृदय में किन्हीं मन्त्रों का अर्थ साक्षात् प्रकाशित हुआ तथा उस अर्थ को जिन्होंने अध्यापन, उपदेश आदि द्वारा अन्यों में प्रचारित किया, वे उन मन्त्रों के ऋषि कहलाये। स्वामी

---

१. एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः (उदात्तानुदात्तयोः) स्वरितः स्वरः।–ऋ० प्रा० ३।३; समाहारः स्वरितः। तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम्। अ० १।२।३१, ३२

२. द्रष्टव्य ऋ० प्रा० ३।३–६ तथा उन पर डॉ० वीरेन्द्रकुमार वर्मा की टिप्पणियाँ।

३. ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः। ऋषिर्दर्शनात्, स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तद् ऋषीणाम् ऋषित्वमिति विज्ञायते।–निरु० २।११

दयानन्द सरस्वती भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। वे ऋ० भा० पू० के प्रश्नोत्तर विषय में अपने कथन की पुष्टि में निरुक्त का प्रमाण देते हुए[1] लिखते हैं—

"ईश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका तभी से प्राचीन ऋषि लोग वेद मन्त्रों के अर्थों का विचार करने लगे। फिर उनमें से जिस-जिस मन्त्र का अर्थ जिस-जिस ऋषि ने प्रकाशित किया, उस-उसका नाम उसी-उसी मन्त्र के साथ लिखा गया है। इसी कारण से उनका ऋषि नाम भी हुआ है। और जो उन्होंने ईश्वर के ध्यान और अनुग्रह से बड़े-बड़े प्रयत्न के साथ वेदमन्त्रों के अर्थों को यथावत् जानकर सब मनुष्यों के लिए पूर्ण उपकार किया है, इसलिए विद्वान् लोग वेदमन्त्रों के साथ उनका स्मरण रखते हैं।[2]

वेदों में इन ऋषि-नामों के साथ क्योंकि पितृ-पितामह का नाम या गोत्र-नाम भी प्रायः जुड़ा हुआ है, अतः ऋषियों के ऐतिहासिक व्यक्ति होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता है। ये ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, इसलिए यह भी स्पष्ट है कि जब सृष्टि के आदि में वेदों का प्रकाश हुआ, तब वेदमन्त्रों के साथ ऋषि नाम जुड़े हुए नहीं थे। ये ऋषियों के उपकार-स्मरणार्थ बाद में जोड़े गए। कई मन्त्रों के एक से अधिक ऋषि भी हैं। यथा— सामवेद में मन्त्र क्रमांक ९० के ऋषि वामदेव, अथवा कश्यप मारीच, अथवा वैवस्वत मनु हैं। क्रमांक ९२-९३ के ऋषि वामदेव काश्यप, अथवा असित देवल हैं। क्रमांक ११० के प्रयोग भार्गव, अथवा सौभरि काण्व हैं। क्रमांक १५४ के शुनःशेप आजीगर्त्ति, अथवा वामदेव हैं। क्रमांक १५७ के मेधातिथि काण्व और प्रियमेध आंगिरस हैं। क्रमांक २२० के विश्वामित्र गाथिन अथवा जमदग्नि हैं। दो या अधिक ऋषियों को दर्शाने के लिए प्रायः 'वा' लिखा जाता है। यथा—वामदेव काश्यपः असितो

१. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः।
—निरु० १। २०

२. यतो वेदानामीश्वरोक्त्यनन्तरं येन येनर्षिणा यस्य-यस्य मन्त्रस्यार्थो यथावद् विदितस्तस्मात् तस्य तस्योपरि तत्तदृषेर्नामाभिलेखनं कृतमस्ति। कुतः? तैरीश्वरध्यानानुग्रहाभ्यां महता प्रयत्नेन मन्त्रार्थस्य प्रकाशितत्वात् तत्कृतमहोपकारस्मरणार्थं तन्नामलेखनं प्रतिमन्त्रस्योपरि कर्त्तुं योग्यमस्त्यतः।
—ऋ० भा० भू०, प्रश्नोत्तरविषय।

देवलो वा। (साम० ९२-९३)। इस 'वा' का अभिप्राय संदेह व्यक्त करना नहीं है कि अमुक मन्त्र का या तो वामदेव ऋषि है या देवल, प्रत्युत 'वा' समुच्चय-बोधक है। ऋग्वेद में तो ३० मन्त्रों के एक सूक्त ऋ० ९।६६ के ऋषि '१०० वैखानस' हैं; यद्यपि वहाँ संख्या मात्र लिखी है, उन सौ ऋषियों के नाम नहीं दिये। एकाधिक ऋषि जब किसी मन्त्र का पृथक्-पृथक् रूप में कोई चामत्कारिक अर्थदर्शन करते थे तब विद्वन्मण्डल की ओर से सभी को उस मन्त्र के ऋषि होने का गौरव दिया जाता था।

किस ऋषि ने किस मन्त्र का क्या अर्थदर्शन या अर्थानुसन्धान किया, इसका विवरण आज हमारे पास विद्यमान नहीं है। कितना अच्छा होता! यदि हम जान सकते कि वे क्या चामत्कारिक अर्थ थे, जिनके कारण कोई व्यक्ति ऋषि कहलाये। सम्भवत: उन्होंने मौखिक ही अपने वेदार्थ का प्रचार किया होगा। यदि लिखित भी रहा होगा तो आज वह हमारे देखने के लिए उपलब्ध नहीं है। मन्त्रों के ऋषि आज भी होते हैं, आज भी विद्वज्जन समाहित होकर विभिन्न कोटि के अर्थदर्शन करते हैं। पर आज उन्हें उन-उन मन्त्रों के ऋषि कहने की परिपाटी नहीं है। कहें भी तो किस-किसको ऋषि कहें? आज का ऋषि अनुवादक, भाष्यकार या व्याख्याकार कहलाता है।

अनेक ऋषि ऐसे भी हैं जिनके नाम उन वेदमन्त्रों में ही पठित हैं जिनके वे ऋषि हैं। उदाहरणार्थ सामवेद के ऐसे कतिपय ऋषि निम्न तालिका में दिये गये हैं—

| **ऋषि-नाम** | **क्रमांक** | **सामवेद का मन्त्र-खण्ड जिसमें ऋषिनाम आया है** |
|---|---|---|
| वत्स | ८ | आ ते **वत्सो** मनो यमत् |
| गोपवन | २९ | तं त्वा **गोपवनो** गिरा |
| सुदीति, पुरुमीढ | ४९ | अग्निं राये **पुरुमीढ** श्रुतं नरोऽग्नि: **सुदीतये** छर्दि: |
| कश्यप, मनु | ९० | पिता यत् **कश्यपस्याग्नि:** श्रद्धा माता **मनु:** कवि: |
| श्रुतकक्ष | ११८ | अरमश्वाय गायत **श्रुतकक्षारं** गवे |
| दध्यङ् आथर्वण | १७७ | द्युमद् गामन्**नाथर्वण** |
| वसिष्ठ | ३३० | समर्ये महया **वसिष्ठ** |
| प्रियमेध | ३६२ | **प्रियमेधासो** अर्चत |
| भुवन आप्त्य | ४५२ | इमा न कं **भुवना** |

| | | |
|---|---|---|
| एवयामरुत् | ४६२ | मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् |
| प्रथ | ५९९ | प्रथश्च यस्य सप्रथश्च |
| विभ्राट् सौर्य | ६२८ | विभ्राट् बृहत् पिबतु |

यहाँ प्रश्न उठता है कि ऋषि मन्त्रकर्ता न होकर मन्त्रद्रष्टा हैं तो उत्तरवर्त्ती ऋषियों के नाम पूर्ववर्ती वेदमन्त्रों में कैसे पठित हो गए? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि उन ऋषियों का वास्तविक नाम कुछ और ही था। जिन मन्त्रों का उन्होंने अर्थदर्शन किया उनमें से किसी मन्त्र में पठित किसी नाम से चमत्कृत होकर उन्होंने वह अपना उपनाम रख लिया तथा वह उपनाम ही उनके असली नाम के रूप में प्रचलित हो गया। इस कारण यह साम्य दृष्टिगत होता है।

सामवेद के कई मन्त्र ऐसे भी हैं जो ऋग्वेद में भी मिलते हैं, किन्तु सामवेद में उनका ऋषि ऋग्वेद से भिन्न है। उदाहरणार्थ निम्न तालिका द्रष्टव्य है[1]—

| **मन्त्रांश** | **साम-क्रमांक** | **ऋग्वेद का पता** | **साम० में ऋषि** | **ऋग्वेद में ऋषि** |
|---|---|---|---|---|
| नमस्ते अग्न | ११ | ८।७५।१० | आयुङ्क्ष्वाहि | विरूप आङ्गिरसः |
| प्र मंहिष्ठाय | १०७ | ८।१०३।८ | प्रयोगो भार्गवः | सौभरिः काण्वः |
| तमिन्द्रं वाज० | ११९ | ८।९३।७ | श्रुतकक्षः | सुकक्षः |
| य आनयत् | १२७ | ६।४५।१ | भारद्वाजः | शंयुर्बार्हस्पत्यः |
| त्वावतः पुरुवसो | १९३ | ८।४६।१ | वत्सः | वशोऽश्व्यः |
| त्रातारमिन्द्र | ३३३ | ६।४७।११ | भरद्वाजः | गर्गो भारद्वाजः |
| उभे यदिन्द्र | ३७९ | १०।१३४।१ | मेधातिथिः काण्वः | मान्धाता यौवनाश्वः |
| त्वं न इन्द्रा भर | ४०५ | ८।९८।१० | नृमेध आङ्गिरसः | सौभरिः काण्वः |

यह ऋषिभेद इसी कारण है क्योंकि ऋग्वेद में अर्थदर्शन किसी अन्य ऋषि ने किया और सामवेद में उसी मन्त्र का अर्थदर्शन किसी अन्य ऋषि ने। दोनों का अर्थदर्शन भिन्न रहा होगा। ऋग्वेद और सामवेद में जिन मन्त्रों के ऋषि समान हैं, उनमें दोनों वेदों में अर्थदर्शन एक ही ऋषि का किया हुआ है। ऋग्वेद में ऋषि जिसका अर्थदर्शन कर चुका था, उसी अर्थ में सामवेद के अध्येताओं ने भी ले लिया होगा।

१. इस तालिका में दिये गये स्थलों से अतिरिक्त भी अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें ऋषिभेद पाया जाता है।

## २. देवता

वेदमन्त्रों के देवता कई प्रकार के होते हैं। 'देवता' को समझने के लिए सामान्य लक्षण यह किया जा सकता है—"मन्त्र में जिस नाम से किसी विषय का वर्णन होता है वह उसका देवता कहलाता है।" यथा—'अग्निमीळे पुरोहितम्' ऋ० १।१।१, आदि मन्त्र में 'अग्नि' नाम से परमेश्वर, भौतिक अग्नि, राजा, सेनापति, आचार्य आदि विविध विषयों का वर्णन होने से 'अग्नि' इस मन्त्र का देवता है। मन्त्रगत वर्णन कई प्रकार के हो सकते हैं। अग्नि आदि देवता-नामों से क्वचित् स्तुति, क्वचित् प्रार्थना, क्वचित् उपासना, क्वचित् समर्पण, क्वचित् आह्वान क्वचित् आत्म-परिचय आदि मन्त्रों में निबद्ध रहता है। परन्तु उक्त देवता-लक्षण अपने-आपमें पूर्ण नहीं है, यतः सभी देवताओं में यह व्याप्त नहीं होता।

अनेक वैदिक देवता इससे भिन्न प्रकार के हैं। यथा—मन आवर्तन (ऋ० १०।५८) धनान्नदान प्रशंसा (ऋ० १०। ११७), भाववृत्तम् (ऋ० १०।१२९, १९०), सपत्नीबाधनम् (ऋ० १०।१४५), अलक्ष्मीघ्नम् (ऋ० १०।१५५)। यक्ष्मनाशनम् (ऋ० १०।१६३), दुःस्वप्ननाशनम् (ऋ० १०।१६४), राज्ञः स्तुतिः (ऋ० १०। १७३) इन नामों से वेदमन्त्रों में कुछ नहीं कहा गया है, प्रत्युत ये देवता कविता के स्वतन्त्र शीर्षक के तुल्य हैं। इसी प्रकार यम-यमी-संवाद (ऋ० १०।१०), पुरूरवा-उर्वशी-संवाद (ऋ० १०।९५), सरमा-पणि-संवाद (ऋ० १०।१०८) आदि संवाद-सूक्तों में जो वक्ता है वह ऋषि तथा जो श्रोता है वह देवता कहलाता है। यथा, यम-यमी-सूक्त में जो मन्त्र यम की ओर से यमी को कहे गये हैं उनमें यम ऋषि तथा यमी देवता है।

कई मन्त्रों का देवता मन्त्रोल्लिखित नाम न होकर उसका पर्यायवाची अन्य शब्द होता है। यथा— तीन मन्त्रों के सूक्त ऋ० १०।१८६ 'वात आ वातु भेषजम्' आदि में तीनों मन्त्रों में वात शब्द पठित है, किन्तु सर्वानुक्रमणी में 'देवता' 'वायु' लिखा है। तदनुसार सभी मुद्रित ऋग्वेद-संहिताओं में भी वायु देवता ही अंकित है। तीन मन्त्रों के एक अन्य सूक्त ऋ० १०।१८९ में पठित तो हैं 'गौः' और 'पतङ्गः' शब्द, किन्तु सर्वानुक्रमणी में

देवता 'आत्म एवं सूर्य' लिखा है।[1] यजुर्वेद में कर्मकाण्डक विनियोग के अनुसार शाखा आदि देवता कल्पित किये गये हैं, जो मन्त्रों में पठित नहीं हैं। यजुर्वेद-संहिता के दयानन्द-भाष्य में भी यज्ञ, ईश्वर, सेनापति, राजा, राजपत्नी, योगी, गृहपति, वैद्य आदि देवता लिखे हैं,[2] जो मन्त्रों में कहीं नहीं हैं। अतः वैदिक देवताओं को किसी एक परिभाषा में निबद्ध कर सकना कठिन है।

यास्काचार्य ने मन्त्र के देवता पर विचार करते हुए लिखा है—**"यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति।"** (नि० ७।१)। यह पंक्ति अपने-आप में बहुत स्पष्ट नहीं है। निरुक्त के विभिन्न भाष्यकारों ने इसकी विभिन्न व्याख्याएँ की हैं। इसकी एक व्याख्या यह हो सकती है—

(ऋषिः) मन्त्र का रचयिता ज्ञानी परमेश्वर (यत्कामः) जिस अर्थ के प्रतिपादन की इच्छा वाला होकर (यस्यां देवतायाम्) जिस देवता में (आर्थपत्यम् इच्छन्) उस प्रतिपाद्य अर्थ का पतित्व चाहता हुआ (स्तुतिं प्रयुङ्क्ते) स्तुति को प्रयुक्त करता है। (तद्दैवतः) उस देवता वाला (स मन्त्रः भवति) वह मन्त्र होता है।

अभिप्राय यह है कि मन्त्र के रचयिता ने सर्वप्रथम प्रतिपाद्य अर्थ को सोचा, फिर यह विचार किया कि किस नाम को इस प्रतिपाद्य अर्थ का स्वामी (शीर्षक) बनाऊँ। जो शीर्षक उसे प्रतिपाद्य अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उपयुक्त जान पड़ा उसे ही उसने मन्त्र का देवता निर्धारित किया।

इस व्याख्या के अनुरूप यदि ऋषि का अर्थ मन्त्र-रचयिता ज्ञानी परमेश्वर किया जाए तो वेद-मन्त्रों के समान 'देवता' भी ईश्वरकृत तथा नित्य सिद्ध होते हैं, किन्तु यदि ऋषि से

---

१. आयं गौः सार्पराज्ञी आत्मदैवतं सौर्यं वा—सर्वा०। वैदिकयन्त्रालय-मुद्रित ऋग्वेदसंहिता में देवता 'सार्पराज्ञी सूर्यो वा' तथा स्वाध्यायमण्डल-मुद्रित ऋक्-संहिता में 'आत्मा सूर्यो वा' है।

२. यथा, यज्ञो देवता यजु० १। २७, २८, ईश्वरो देवता यजु० ३६।१७-१९, २१-२२, सेनापतिर् देवता यजु० ६।२१, प्रजासभ्यराजानौ देवते यजु० ६।३१, सभापती राजा देवता यजु० ६।३२, आसन्दी राजपत्नी देवता यजु० १०। २६, योगी देवता यजु० ७।६, गृहपतयो देवता यजु० ८।१७-२३, वैद्यो देवता यजु० १२।७५-७७, ७९, ८१ आदि।

मन्त्रार्थ-द्रष्टा ऋषि अभीष्ट समझा जाये तो देवता ऋषिकृत तथा अनित्य ठहरते हैं। फिर उपर्युक्त पंक्ति के अतिरिक्त अनादिष्ट देवताक मन्त्रों में देवता-ज्ञान की विधि यास्क ने पृथक् बतलायी है। इससे यह ज्ञात होता है कि उक्त पंक्ति केवल आदिष्ट देवताक मन्त्रों के लिए है।

अनादिष्टदेवताक मन्त्रों में देवतोपपरीक्षा की जो विधि निरुक्तकार ने वर्णित की है, उसके अनुसार एक कसौटी कामदेवता[1] की भी है, अर्थात् देवता की इच्छानुसार कल्पना हो सकती है।

वेदों में क्वचित् आदिष्टदेवताक मन्त्रों के भी आदिष्ट से भिन्न देवता कल्पित किये गये हैं। उदाहरणार्थ सामवेद पूर्वार्चिक के निम्ननिर्दिष्ट मन्त्रों के देवता ऋग्वेद-पठित उन्हीं मन्त्रों के देवताओं से भिन्न हैं। ऋग्वेद में देवता का उल्लेख मन्त्रादिष्ट के अनुरूप है, किन्तु सामवेद में ऐन्द्र काण्ड में पठित होने से इन सब का इन्द्र देवता माना गया है, यद्यपि ऐन्द्र काण्ड में भी अन्यत्र इन्द्र देवता से भिन्न कई देवता स्वीकृत किये गये हैं।[2]

| **मन्त्रांश** | **साम क्रमांक** | **ऋग्वेद का पता** | **मन्त्र में आदिष्ट नाम** | **ऋग्वेद में देवता** |
|---|---|---|---|---|
| आ घा ये | १३३ | ८।४५।१ | अग्निः, इन्द्रः | अग्नीन्द्रौ |
| सोमानां स्वरणं | १३९ | १।१८।१ | ब्रह्मणस्पतिः | ब्रह्मणस्पतिः |
| अद्या नो देव | १४१ | ५।८२।४ | सविता | सविता |
| यदिन्द्रो अनयद् | १४८ | ५।५७।४ | इन्द्रः, पूषा | इन्द्रापूषणौ |
| सदसस्पतिमद्भुतं | १७१ | १।१८।६ | सदसस्पतिः | सदसस्पतिः |
| अस्ति सोमो | १७४ | ८।९४।४ | सोमः, मरुतः, अश्विनौ | मरुतः |
| एषो उषा | १७८ | १।४६।१ | उषाः, अश्विनौ | अश्विनौ |
| वात आ वातु | १८४ | १०।१८६।१ | वातः | वायुः |
| यं रक्षन्ति | १८५ | १।४१।१ | वरुणः, मित्रः, अर्यमा | वरुणमित्रार्यमणः |
| महि त्रीणामवर् | १९२ | १०।१८५।१ | वरुणः, मित्रः, अर्यमा | आदित्याः |
| इन्द्र इषे | १९९ | ८।९३।३४ | इन्द्रः, ऋभुः | इन्द्र ऋभवश्च |
| इन्द्रा नु पूषणा | २०२ | ६।५७।१ | इन्द्रः, पूषा | इन्द्रापूषणौ |

१. तद् येऽनादिष्टदेवता मन्त्रास्तेषु देवतोपपरीक्षा। यद्देवतः स यज्ञो वा यज्ञाङ्गं व तद्देवता भवन्ति। अथान्यत्र यज्ञात्प्राजापत्या इति याज्ञिकाः, नाराशंसा इति नैरुक्ताः। अपि वा सा कामदेवता स्यात्।-निरु० ७।४

२. द्रष्टव्य : भाष्य में ऐन्द्रकाण्ड की भूमिका के प्रारम्भ की टिप्पणी।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ऋजुनीती नो | २१८ | १।९०।१ | वरुणः, मित्रः, अर्यमा | विश्वेदेवाः |
| आ नो मित्रावरुणा | २२० | ३।६२।१६ | मित्रः, वरुणः | मित्रावरुणौ |
| इदं विष्णुर् | २२२ | १।२२।१७ | विष्णुः | विष्णुः |
| वास्तोष्पते | २७५ | ८।१७।१४ | वास्तोष्पतिः इन्द्रः | इन्द्रः वास्तोष्पतिर्वा |
| अयं वां मधुमत्तमः | ३०६ | १।४७।१ | अश्विनौ | अश्विनौ |
| त्यमूषु वाजिनं | ३३२ | १०।१७८।१ | तार्क्ष्यः | तार्क्ष्यः |
| इन्द्रापर्वता | ३३८ | ३।५३।१ | पर्वतः | पर्वतेन्द्रौ |

इसके अतिरिक्त कतिपय स्थल ऐसे भी हैं जिनमें मन्त्र में तो देवता पठित नहीं हैं, किन्तु प्रकरण से देवताबोध हो सकता है। उनके विषय में भी क्वचित् सामवेद तथा ऋग्वेद में प्रकरण-भेद के कारण देवता-भेद पाया जाता है। यथा—साम ११७ 'गाव उपवदावटे' आदि 'उपावतावतं' पाठभेद के साथ ऋ० ८।७२।१२ में भी है। ऋग्वेद में इसका देवता 'अग्निर्हवींषि वा' है, किन्तु सामवेद में इन्द्र। साम १३५ 'इहेव शृण्व' आदि ऋ० १।३७।३ में भी है। ऋग्वेद में १५ मन्त्रों के पूरे सूक्त १।३७ का देवता 'मरुतः' है, किन्तु सामवेद में इसका भी देवता इन्द्र है। साम २१९ 'दूरादिहेव यत्सतः' आदि किञ्चित् पाठभेद के साथ ऋ० ८।५।१ में भी पठित है। ऋग्वेद में इसका देवता प्रकरणानुसार 'अश्विनौ' है, किन्तु सामवेद में इसका देवता भी इन्द्र है। साम २२१ 'उदु त्ये सूनवो गिरः' ऋ० १।३७।१० में भी है, जहाँ सम्पूर्ण सूक्त का ही देवता 'मरुतः' है, किन्तु सामवेद में देवता इन्द्र है। ऐन्द्र काण्ड में पठित होने से इन सब में इन्द्र की ही महिमा का दर्शन पाठकों को करना होता है।

## ३. छन्द

वैदिक छन्द आर्ष, दैव, आसुर, प्राजापत्य, याजुष, साम्न, आर्च तथा ब्राह्म आठ प्रकार के होते हैं।

दैव से लेकर ब्राह्म तक के छन्दों के परिचयार्थ नीचे तालिका दी जा रही है—

| छन्द नाम | गायत्री | उष्णिक् | अनुष्टुप् | बृहती | पङ्क्ति | त्रिष्टुप् | जगती | अक्षरों में वृद्धि या ह्रास |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १. दैवी | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | वृद्धि १ अ[illegible] |
| २. आसुरी | १५ | १४ | १३ | १२ | ११ | १० | ९ | ह्रास १ अक्षर |
| ३. प्राजापत्य | ८ | १२ | १६ | २० | २४ | २८ | ३२ | वृद्धि ४ अक्षर |

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ४. याजुषी | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | वृद्धि १ अक्षर |
| ५. साम्नी | १२ | १४ | १६ | १८ | २० | २२ | २४ | वृद्धि २ अक्षर |
| ६. आर्ची | १८ | २१ | २४ | २७ | ३० | ३३ | ३६ | वृद्धि ३ अक्षर |
| ७. ब्राह्मी | ३६ | ४२ | ४८ | ५४ | ६० | ६६ | ७२ | वृद्धि ६ अक्षर |

परन्तु वेदों में आर्ष छन्दों का ही प्रयोग अधिक हुआ है। आर्ष छन्दों के तीन सप्तक होते हैं– १. गायत्र्यादि सप्तक, २. अतिजगत्यादि सप्तक, और ३. कृत्यादि सप्तक। इनका परिचय निम्न तालिका में अंकित है–

| गायत्र्यादि सप्तक | | अतिजगत्यादि सप्तक | | कृत्यादि सप्तक | |
|---|---|---|---|---|---|
| नाम | अक्षर-संख्या | नाम | अक्षर-संख्या | नाम | अक्षर-संख्या |
| गायत्री | २४ | अतिजगती | ५२ | कृति | ८० |
| उष्णिक् | २८ | शक्वरी | ५६ | प्रकृति | ८४ |
| अनुष्टुप् | ३२ | अतिशक्वरी | ६० | आकृति | ८८ |
| बृहती | ३६ | अष्टि | ६४ | विकृति | ९२ |
| पङ्क्ति | ४० | अत्यष्टि | ६८ | संकृति | ९६ |
| त्रिष्टुप् | ४४ | धृति | ७२ | अभिकृति | १०० |
| जगती | ४८ | अतिधृति | ७६ | उत्कृति | १०४ |

वैदिक छन्द ऋक्प्रातिशाख्य (पटल १६–१८), पिङ्गलच्छन्दः सूत्र (अ० १–४), सामवेद के निदान सूत्र (प्रपा० १, खण्ड १–७), उपनिदानसूत्र, ऋक्सर्वानुक्रमणी, माधवीय ऋग्वेदानुक्रमणी की छन्दोऽनुक्रमणी, पादविधान आदि में वर्णित हैं। नीचे हम उपर्युक्त आर्ष सप्तकों का विस्तृत विवरण दे रहे हैं–

## गायत्र्यादि सप्तक

| | गायत्री के भेद | पाद-विवरण | अक्षर-संख्या |
|---|---|---|---|
| १. | गायत्री | ८+८+८ | २४ |
| २. | पादनिचृत् | ७+७+७ | २१ |
| ३. | अतिपादनिचृत् | ६+८+७ | २१ |
| ४. | नागी | ९+९+६ | २४ |
| ५. | वाराही | ६+९+९ | २४ |
| ६. | प्रतिष्ठा | ८+७+६ | २१ |
| ७. | यवमध्या | ७+१०+७ | २४ |
| ८. | वर्धमाना | ६+७+८ | २१ |
| ९. | भुरिग् | ८+१०+७ | २५ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०. | चतुष्पाद | ६+६+६+६ | २४ |
| ११. | त्रिपाद विराड्[1] | ११+११+११ | ३३ |
| १२. | पदपंक्ति | ५+५+५+५+५ | २५ |
| १३. | द्विपाद विराड् | १२+८ | २० |
| | **उष्णिक् के भेद** | **पाद-विवरण** | **अक्षर-संख्या** |
| १. | ककुब् | ८+१२+८ | २८ |
| २. | पुर उष्णिक् | १२+८+८ | २८ |
| ३. | परा उष्णिक् | ८+८+१२ | २८ |
| ४. | ककुब् न्यङ्कुशिरा: | ११+१२+४ | २७ |
| ५. | तनुशिरा: | ११+११+६ | २८ |
| ६. | पिपीलिकामध्या | ११+६+११ | २८ |
| ७. | चतुष्पाद | ७+७+७+७ | २८ |
| | **अनुष्टुप् के भेद** | **पाद-विवरण** | **अक्षर-संख्या** |
| १. | चतुष्पाद | ८+८+८+८ | ३२ |
| २. | मध्ये ज्योति: | १२+८+१२ | ३२ |
| ३. | पुरस्ताज्ज्योति: | ८+१२+१२ | ३२ |
| ४. | उपरिष्टाज्ज्योति: | १२+१२+८ | ३२ |
| ५. | त्रिपदा विराट् | ११+११+११ | ३३ |
| | **बृहती के भेद** | **पाद-विवरण** | **अक्षर-संख्या** |
| १. | पथ्या बृहती | ८+८+१२+८ | ३६ |
| २. | उरोबृहती[2] | ८+१२+८+८ | ३६ |
| ३. | उपरिष्टाद् बृहती | ८+८+८+१२ | ३६ |
| ४. | पुरस्ताद् बृहती | १२+८+८+८ | ३६ |
| ५. | (युगलपदा) बृहती | १०+१०+८+८ | ३६ |
| ६. | (नवाक्षरा) बृहती | ९+९+९+९ | ३६ |
| ७. | महाबृहती या सतोबृहती | १२+१२+१२ | ३६ |
| ८. | विष्टारबृहती | ८+१०+१०+८ | ३६ |
| ९. | विषमपदा बृहती | ९+८+११+८ | ३६ |

१. आगे अनुष्टुप् के प्रकरण में इसे अनुष्टुप् का भेद भी बताया गया है। कहाँ गायत्री है और कहाँ अनुष्टुप् इसका निर्णय प्रकरण, देवता, वृत्त-नियम आदि के आधार पर किया जाता है।

२. उरोबृहती के स्कन्धोग्रीवी और न्यङ्कुसारिणी बृहती भी नाम हैं।

| | पङ्क्ति के भेद | पाद-विवरण | अक्षर-संख्या |
|---|---|---|---|
| १. | पथ्या पङ्क्ति | ८+८+८+८+८ | ४० |
| २. | सतोबृहती पङ्क्ति | १२+८+१२+८ | ४० |
| ३. | विपरीता पङ्क्ति | ८+१२+८+१२ | ४० |
| ४. | आस्तारपङ्क्ति | ८+८+१२+१२ | ४० |
| ५. | प्रस्तारपङ्क्ति | १२+१२+८+८ | ४० |
| ६. | संस्तारपङ्क्ति | १२+८+८+१२ | ४० |
| ७. | विष्टारपङ्क्ति | ८+१२+१२+८ | ४० |
| ८. | विराट् पङ्क्ति | १०+१०+१०+१० | ४० |
| | **त्रिष्टुप् के भेद** | **पाद-विवरण** | **अक्षर-संख्या** |
| १. | त्रिष्टुप् | ११+११+११+११ | ४४ |
| २. | जागती त्रिष्टुप् | १२+१२+११+११ | ४६ |
| ३. | अभिसारिणी त्रिष्टुप् | १०+१०+१२+१२ | ४४ |
| ४. | विराड्रूपा या परानुष्टुप् | ११+११+११+८ | ४१ |
| ५. | पुरस्ताज्ज्योति:[1] | ८+१२+१२+१२ | ४४ |
| | | ११+८+८+८+८ | ४३ |
| ६. | मध्ये ज्योति:[2] | १२+८+१२+१२ | ४४ |
| | | १२+१२+८+१२ | ४४ |
| | | ८+८+११+८+८ | ४३ |
| | | १२+१२+१२+८ | ४४ |
| ७. | उपरिष्टाज्ज्योति:[3] | ८+८+८+८+११ | ४३ |
| ८. | महाबृहती | १२+८+८+८+८ | ४४ |
| ९. | महाबृहती यवमध्या | ८+८+१२+८+८ | ४४ |
| | **जगती के भेद** | **पाद-विवरण** | **अक्षर-संख्या** |
| १. | जगती | १२+१२+१२+१२ | ४८ |
| २. | उपजगती[4] | १२+१२+११+११ | ४६ |
| ३. | महासतोबृहती | ८+८+८+१२+१२ | ४८ |
| ४. | षट्पदा महापङ्क्ति | ८+८+८+८+८+८ | ४८ |
| ५. | पुरस्ताज्ज्योति: | १२+८+८+८+८ | ४४ |
| ६. | मध्ये ज्योति: | ८+८+१२+८+८ | ४४ |
| ७. | उपरिष्टाज्ज्योति: | ८+८+८+८+१२ | ४४ |

१,२,३. पिङ्गल ने ११ एवं १२ अक्षर के पाद को ज्योति माना है तथा ऋक्प्रातिशाख्यकार एवम् ऋक्सर्वानुक्रमणीकार ने ८ अक्षर के पाद को। तदनुसार पुरस्ताज्ज्योति, मध्येज्योति एवं उपरिष्टाज्ज्योति नाम रखे गये हैं।

४. यह क्रम त्रिष्टुप् के भेदों में भी आ चुका है, जहाँ इसे जागती त्रिष्टुप् कहा गया था। कहाँ इसे जागती त्रिष्टुप् कहेंगे और कहाँ उपजगती यह प्रकरण, देवता, वृत्त-नियम आदि पर निर्भर है।

सामवेद में गायत्र्यादि सप्तक के गायत्री, उष्णिग् आदि सभी छन्दों का प्रयोग हुआ है।

**अतिजगत्यादि सप्तक**

अतिजगत्यादि सप्तक के अतिजगती छन्द में सामान्यतः पाँच पाद होते हैं, जिनमें (१२+१२+१२+८+८=५२), (१३+१३+१०+८+८=५२), (१३+१२+७+१२+८=५२) आदि पादक्रम हो सकता है। शक्वरी में प्रायः ८-८ अक्षरों के सात पाद रहते हैं। अतिशक्वरी में प्रायः पाँच या सात पाद होते हैं, जिनमें (१६+१६+१२+८+८=६०), ८+८+८+८+८+१२+८=६०) आदि क्रम होता है। अष्टि में (१६+१६+१६+८+८=६४) आदि क्रम के पाँच पाद, अत्यष्टि में (१२+१२+८+८+८+१२+८=६८) आदि क्रम के सात पाद, धृति में (१२+१२+८+८+८+१६+८=७२) आदि क्रम के सात पाद और अतिधृति में सामान्यतः (१२+१२+८+८+८+१२+८+८=७६) आदि क्रम के आठ पाद होते हैं। इस अतिजगत्यादि सप्तक में उक्त पादों की अपेक्षा पाद-संख्या न्यूनाधिक भी हो सकती है।

सामवेद-संहिता में अतिजगत्यादि सप्तक के अतिजगती (यथा—साम-क्रमांक ४५८, ४६०, ४६२), अतिशक्वरी (यथा—क्रमांक ४६४), अष्टि (यथा— क्रमांक ४५७), अत्यष्टि (यथा—क्रमांक ४५९, ४६१, ४६३-४६५) छन्द प्रयुक्त हैं।

**कृत्यादि सप्तक**

कृत्यादि सप्तक में पादों की कोई व्यवस्था निर्दिष्ट कर सकना सम्भव नहीं है। ये मन्त्र गद्यवत् होते हैं। पाद-विभाग करना भी हो तो प्रत्येक मन्त्र में भिन्न-भिन्न होगा। इनमें मुख्यतः अक्षर-संख्या देखनी होती है। सामवेद-संहिता में कृत्यादि सप्तक का कोई छन्द प्रयुक्त नहीं हुआ है।

**निचृद् भुरिग्, विराट्, स्वराट्**

उपर्युक्त सभी छन्दों के लिए यह सामान्य नियम है कि उनमें यदि निर्दिष्ट अक्षर-संख्या में एक अक्षर की न्यूनता हो तो वह छन्द निचृत् तथा एक अक्षर की अधिकता हो तो भुरिक् कहलाता है। यथा—२३ अक्षर की गायत्री निचृद् गायत्री और २५ अक्षर की गायत्री भुरिग् गायत्री कही जाती है। इसी प्रकार दो अक्षरों की न्यूनता होने पर कोई छन्द विराट् तथा २ अक्षरों की

अधिकता होने पर स्वराट् कहलाता है। यथा— २२ अक्षर की गायत्री विराड् गायत्री तथा २६ अक्षरों की गायत्री स्वराड् गायत्री कहाती है। २६ अक्षर का छन्द विराट् उष्णिक् भी हो सकता है, क्योंकि उष्णिक् की निर्दिष्ट अक्षर-विधा २८ से इसमें दो अक्षर न्यून हैं। कहाँ २६ अक्षर के छन्द को स्वराड् गायत्री और कहाँ विराट् उष्णिक् कहें, इसके नियामक प्रकरण, देवता, पाद आदि होते हैं।

**शङ्कुमती, ककुम्मती, पिपीलिकामध्या, यवमध्या**

पिंगल (३।५९-६३) के अनुसार छन्दों के शङ्कुमती, ककुम्मती, पिपीलिकामध्या और यवमध्या नामक भेद भी होते हैं। किसी छन्द में कोई एक पाद ५ अक्षर का होने पर वह छन्द शङ्कुमती विशेषण से विशिष्ट कहलाता है। किसी छन्द में कोई एक पाद छः अक्षरों का होने पर वह छन्द ककुम्मती विशेषण से विशिष्ट माना जाता है। किसी त्रिपाद् छन्द में मध्य का पाद इतर पादों से छोटा होने पर पिपीलिका (चिउँटी) जैसी आकृति बनने के कारण वह छन्द पिपीलिकामध्या विशेषण से युक्त होता है। किसी त्रिपाद छन्द का बीच का पाद अधिक अक्षरों का होने पर जौ जैसी मोटे मध्य वाली आकृति बनने के कारण वह छन्द यवमध्या कहाता है। यवमध्या को मध्य में बैल की पीठ के समान कुब्ब निकला होने के कारण ककुब् भी कहते हैं। वेदमन्त्रों के छन्द प्रदर्शित करने वाले कोई आचार्य इन शङ्कुमती आदि विशेषणों को प्रयुक्त करते हैं, कोई नहीं भी करते।

**चतुर्विध पाद**

८ अक्षर का पाद गायत्र पाद, १० अक्षर का पाद वैराज पाद, ११ अक्षर का पाद त्रैष्टुभ पाद तथा १२ अक्षर का पाद जागत पाद कहाता है। सभी छन्द इन चार प्रकार के पादों से ही युक्त होते हैं, भिन्नाक्षर पाद इन्हीं चार के अन्तर्गत हो जाते हैं। यह नियम है कि गायत्र और जागत पादों का उपोत्तम (अन्तिम से पहला) अक्षर लघु होता है तथा वैराज और त्रैष्टुभ पादों का उपोत्तम अक्षर गुरु। यह वृत्त-नियम कहलाता है।[१] उपोत्तम अक्षर लघु है या गुरु, इससे पाद के ज्ञान में सहायता मिलती है कि

१. पादौ गायत्रवैराजावष्टाक्षरदशाक्षरौ। एकादशिद्वादशिनौ विद्यात् त्रैष्टुभजागतौ।
वर्षिष्ठाणिष्ठयोरेषां लघूपोत्तममक्षरम्। गुर्वेतरयोर्ऋक्षु तद् वृत्तं प्राहुश्छन्दसाम्।।
—ऋ० प्रा० १७।३७-३९

अमुक पाद गायत्र, वैराज, त्रैष्टुभ एवं जागत में से कौन-सा है।[1]

**एकपदा तथा द्विपदा ऋचाएँ**

उपर्युक्त गायत्री आदि चतुर्विध पादों से एकपदा तथा द्विपदा ऋचाएँ भी बनती हैं[2]। यथा, ८ अक्षर के पाद वाली ऋचा एकपदा गायत्री तथा ८-८ अक्षर के दो पादों वाली ऋचा द्विपदा गायत्री कहलाती है। १० अक्षर के एक पाद वाली ऋचा एकपदा विराट् तथा १०-१० अक्षर के दो पादों वाली ऋचा द्विपदा विराट् होती है। ११ अक्षर के एक पाद वाली ऋचा एकपदा त्रिष्टुप् तथा ११-११ अक्षर के दो पादों वाली ऋचा द्विपदा त्रिष्टुप् कहलाती है। इसी प्रकार १२ अक्षर के एक पाद वाली ऋचा एकपदा जगती तथा १२-१२ अक्षर के दो पादों वाली ऋचा जगती कहाती है।[3]

गान-स्वर

ऋचाओं के षड्ज, ऋषभ आदि गान-स्वर केवल वैदिक यन्त्रालय अजमेर से मुद्रित वेद संहिताओं में ही दर्शाये गये हैं। मुद्रित स्वामी दयानन्दकृत ऋग्वेदभाष्य तथा यजुर्वेदभाष्य में भी दिये गये हैं। किस छन्द के साथ किस स्वर का सम्बन्ध है, यह केवल पिङ्गलच्छन्दःसूत्र में ही बताया गया है, अन्य किसी ग्रन्थ के छन्दःप्रकरण में नहीं। पिङ्गलच्छन्दःसूत्र में भी केवल गायत्र्यादि वर्ग के छन्दों पर ही स्वर परिगणित किये गये हैं। तदनुसार गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती के क्रमशः षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद स्वर होते हैं।[4] अतिजगत्यादि सप्तक तथा कृत्यादि सप्तक के अन्तर्गत जो छन्द हैं, उनके स्वर पिङ्गलच्छन्दःसूत्र में नहीं बताये गये हैं। स्वामी दयानन्दकृत वेदभाष्य में तथा वैदिक यन्त्रालय से मुद्रित संहिताओं में इनके जो स्वर लिखे हैं वे निम्न तालिका में द्रष्टव्य हैं—

---

१. प्रायोऽर्थो वृत्तमित्यते पादज्ञानस्य हेतवः। विशेषसन्निपाते तु पूर्वं-पूर्वं परं परम्॥
—ऋ० प्रा० १७।२५, २६

२. एकपदा एवं द्विपदा ऋचाओं के उदाहरणों के लिए, द्रष्टव्य
साम-मन्त्रसंख्या ४२७ से ४५६ तक।

३. एका एकपदैतेषां द्वौ पादौ द्विपदोच्यते। ते तु तेनैव प्रोच्येते सरूपे यस्य पादतः।
ऋ० प्रा० १७।४१, माधवीया छन्दोऽनुक्रमणी श्लोक १५ भी द्रष्टव्य।

४. स्वराः षड्जादयः पिङ्गल ३।३४। षड्जर्षभगान्धारमध्यमपञ्चमधैवतनिषादाः।
स्वराः गायत्र्यादिषु क्रमेण द्रष्टव्याः॥ —हलायुधवृत्ति।

| गायत्र्यादिछन्द | अतिजगत्यादिछन्द | कृत्यादिछन्द | गान-स्वर |
|---|---|---|---|
| गायत्री | अतिधृति | उत्कृति | षड्ज |
| उष्णिग् | धृति | अभिकृति | ऋषभ |
| अनुष्टुप् | अत्यष्टि | संकृति | गान्धार |
| बृहती | अष्टि | विकृति | मध्यम |
| पङ्क्ति | अतिशक्वरी | आकृति | पञ्चम |
| त्रिष्टुप् | शक्वरी | प्रकृति | धैवत |
| जगती | अतिजगती | कृति | निषाद |

अर्थात् गायत्री, अतिधृति और उत्कृति तीनों का षड्ज स्वर होता है; उष्णिक् धृति और अभिकृति तीनों का ऋषभ स्वर होता है। इसी प्रकार आगे समझना चाहिए।

प्रगाथों के स्वर उन ऋचाओं के आधार पर लिखे जाते हैं। यथा—साम० उ० प्रपा० १, अर्ध १, सूक्त ९ के बार्हत प्रगाथ में प्रथम ऋचा बृहती तथा द्वितीय ऋचा सतोबृहती पङ्क्ति है। तदनुसार सम्पूर्ण प्रगाथ का कोई एक स्वर न लिखकर प्रथम ऋचा बृहती का 'मध्यम' स्वर तथा द्वितीय ऋचा पङ्क्ति का 'पञ्चम' स्वर निर्दिष्ट किया गया है।

## ८. सामवेद का साहित्य

अन्य वेदों के समान सामवेद का भी विपुल साहित्य है, जिसमें ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषदें, कल्पसूत्र आदि आते हैं।

### ब्राह्मणग्रन्थ

सामवेद के ब्राह्मणग्रन्थों की संख्या अन्य वेदों के ब्राह्मणों की अपेक्षा सब से अधिक है। आठ ब्राह्मणग्रन्थ कौथुम या राणायनीय सामवेद के तथा तीन जैमिनीय शाखा के हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

**१. ताण्ड्य महाब्राह्मण**—यह तण्डि ऋषि द्वारा प्रोक्त होने के कारण ताण्ड्य, २५ अध्यायों में विभक्त होने के कारण पञ्चविंश तथा विशालकाय होने के कारण महाब्राह्मण कहलाता है।

इसमें १७७ यागों का विशद वर्णन किया गया है, जिनमें ७५ एकाह याग, ३४ अहीन याग, ६५ सत्र याग तथा ३ अग्निष्टोम, द्वादशाह एवं गवामयन हैं। इनमें एक दिन से लेकर सहस्र[1] संवत्सर

१. सहस्रसंवत्सर याग के विषय में अनेक पक्ष हैं। सहस्र वर्ष किसी की आयु नहीं हो सकती, अतः उत्तरोत्तर पुत्र-पौत्रादि सन्तति द्वारा यह पूर्ण होता है, यह एक पक्ष है। संवत्सर से दिन ग्राह्य है यह सायण-भाष्य में अन्तिम सिद्धान्त पक्ष दिया गया है।

तक चलने वाले याग हैं।

प्रथम अध्याय में उद्गातृगण से सम्बद्ध यजुर्मन्त्रों का उल्लेख है, द्वितीय-तृतीय में त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश आदि स्तोमों का और उनकी विष्टुतियों का वर्णन है। चतुर्थ-पञ्चम में गवामयन[1] याग, षष्ठ-अष्टम में अग्निष्टोम एवम् उक्त यागसंस्थाएँ तथा नवम में अतिरात्र यागसंस्था एवं प्रायश्चित्त आदि हैं। दशम से पञ्चदश तक द्वादशाह याग का निरूपण है। अध्याय १६ से २० तक समग्र एकाह यागों का विवेचन है। अध्याय २० के अन्तिम खण्डों में तथा अध्याय २१-२२ में सम्पूर्ण अहीन[2] यागों की और अध्याय २३ से २५ तक समस्त सत्र[3] यागों की मीमांसा की गयी है।

२. **षड्विंश ब्राह्मण**—नाम से यह स्पष्ट है कि यह ब्राह्मण पञ्चविंश (ताण्ड्य) ब्राह्मण का पूरक है। इसमें कुल छह अध्याय या पाँच प्रपाठक हैं। अध्याय या प्रपाठक खण्डों में विभक्त हैं। **इसमें प्रधानतः इन पाँच यागों का वर्णन है—श्येनयाग, इषुयाग, संदंशयाग, वज्रयाग और वैश्वदेव त्रयोदशरात्र सत्रयाग। अन्तिम याग में सन्ध्यानुष्ठान तथा अद्भुतशान्ति-प्रकरण है। अद्भुतशान्ति के** प्रकरण को पृथक् 'अद्भुत ब्राह्मण' नाम भी दिया जाता है।

३. **सामविधान ब्राह्मण**—इसमें तीन अध्याय हैं, जिनमें कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र आदि व्रतों का अनुष्ठान, शान्तिकरण, आयुष्यवर्धन, शत्रुविनाश, अभिषेक आदि का वर्णन है। इसमें वर्णित अनेक बातें अवैदिक होने से प्रमाण-कोटि की नहीं हैं।

४. **देवताध्याय ब्राह्मण**—इस लघुकाय ब्राह्मण में तीन खण्ड हैं, जिनमें निधन-भेद से साम देवताओं का नाम-निर्देश, छन्दों के देवता एवं वर्णों का निर्देश और छन्दों के नामों की निरुक्तियाँ हैं।

५. **आर्षेय ब्राह्मण**—इसमें तीन अध्याय या प्रपाठक तथा ८२ खण्ड हैं। यह एक प्रकार से सामवेद की आर्षानुक्रमणी है,

१. यह याग एक वर्ष तक चलता है तथा समस्त सत्रों का प्रकृतिभूत है।

२. अहीन-संज्ञक सोमयाग के अधिकारी तीनों वर्ण होते हैं, यह दक्षिणायुक्त, अतिरात्र संस्था वाला तथा एक, दो, तीन, चार आदि अनेक यजमानों से सम्पाद्य होता है।

३. उस सोमयाग-विशेष का नाम सत्र है जिसे केवल ब्राह्मण करता है, जिसमें दक्षिणा नहीं होती तथा अतिरात्र संस्था होती है।

जिसमें पूर्वार्चिक के छन्द, देवता और ऋषियों का वर्णन है।

६. **मन्त्र ब्राह्मण**—इसे छान्दोग्य ब्राह्मण भी कहते हैं। इसके प्रथम दो प्रपाठकों में गृह्य संस्कारों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का संग्रह है। अन्तिम आठ प्रपाठकों में प्रसिद्ध छान्दोग्योपनिषद् है।

७. **संहितोपनिषद् ब्राह्मण**—पाँच खण्डों का यह ब्राह्मण सूत्रों में विभक्त है। इसमें विविध गान-संहिताओं का स्वरूप तथा अध्ययन-फल, गान-संहिता की विधि, स्तोभ, स्वर, षट्तीर्थ[1] (विद्यादान के पात्र), विद्या के अनधिकारी, गुरुदक्षिणा एवं पयोव्रत आदि तपश्चरण का विषय वर्णित है। यास्कीय निरुक्त का विद्या के अधिकारी-अनधिकारी का प्रकरण इसी ब्राह्मण के आधार पर लिखा गया है।

८. **वंश ब्राह्मण**—तीन खण्डों का यह ब्राह्मण सामवेद के आचार्यों की वंश परम्परा का वर्णन करता है। अन्तिम भाग में षड् वेदांगों की भी चर्चा है।

९. **जैमिनीय ब्राह्मण**—यह विशालकाय ब्राह्मण तलवकार ब्राह्मण भी कहलाता है। इसका अन्तिम भाग उपनिषद् है। महाब्राह्मण-भाग के अतिरिक्त इसमें द्वादशाह, महाव्रत, एकाह, अहीन एवं सत्रयागों का भी वर्णन है।

१०. **जैमिनीय आर्षेय ब्राह्मण**—इसे सामवेद की तलवकार शाखा की ऋष्यनुक्रमणी कहा जा सकता है। ऊपर उल्लिखित आर्षेय ब्राह्मण से यह सर्वथा भिन्न है। ऊपर जिस आर्षेय ब्राह्मण की चर्चा की गयी है उसमें कई मन्त्रों के दो या अधिक ऋषि भी वर्णित हैं, किन्तु इस ब्राह्मण में उन्हीं प्रसंगों में एक मन्त्र का एक ही ऋषि प्रोक्त है।

११. **जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण**—इसे तलवकार आरण्यक भी कहा जाता है। प्रसिद्ध केनोपनिषद् इसी से ली गयी है। इसमें अनेक मन्त्रों की हृदयग्राही व्याख्या के अतिरिक्त कई साम भी वर्णित हुए हैं।

**आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्गादि**

सामवेद का तलवकार आरण्यक और केन तथा छान्दोग्य उपनिषद् उपलब्ध हैं। इसकी चर्चा अभी ब्राह्मणग्रन्थों के प्रसंग में

१. ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियो, विद्यया वा विद्यां यः प्राह तानि तीर्थानि षण्ममेति।
—संहि० ब्रा० खण्ड ३, सूत्र १

की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त सामवेद से सम्बद्ध अन्य भी बहुत-सा साहित्य प्राप्त होता है। यथा—

१. **श्रौतसूत्र**—द्राह्यायणसूत्रम्, लाट्यायनश्रौतसूत्रम्, अनुपदसूत्रम्, निदानसूत्रम्[१], मशककल्पसूत्रम्, उपग्रन्थसूत्रम्, क्षुद्रकल्पसूत्रम्, पञ्चविधसूत्रम्, कल्पानुपदसूत्रम्, अनुस्तोत्रसूत्रम्, श्रौतप्रयोगः।

२. **गृह्यसूत्र**—खादिरगृह्यसूत्रम्, गृह्यपरिशिष्टम्, गोभिलगृह्यसूत्रम्।

३. **धर्मसूत्र**—गौतमधर्मसूत्रम्, गौतमसूत्रपरिशिष्टम्, अपरसूत्रम्।

४. **प्रातिशाख्य**—पुष्पसूत्रम् (फुल्लसूत्रम्), फुल्लपोतम्, ऋक्तन्त्रम्, सामतन्त्रम्।

५. **शिक्षाग्रन्थ**—नारदशिक्षा, गौतमशिक्षा, लोमशशिक्षा।

६. **छन्दोग्रन्थ**—छन्दोविचितिसूत्रम् (निदानसूत्रान्तर्गतम्), उपनिदानसूत्रम्।

७. **लक्षणग्रन्थ**—गायत्रविधानम्, लघुऋक्तन्त्रम्, ऋक्तन्त्र-विवृतिः, अक्षरतन्त्रम्, सामतन्त्रप्रकाशिका, सामतन्त्रपोतम्, आर्षेय-दीपिका, सप्तलक्षणम्, अवग्रहसूत्रम्, हितवाक्यम्, स्तोभानु-संहारः, मात्रालक्षणम्, आर्चिकलक्षणम्, छलाक्षरम्, पदछलाक्षरम्, प्रकृतिसाम छलाक्षरम्, छलप्रक्रिया, छलाक्षरकारिका, साम-प्रकाशनम्, गीतिकल्पम्।

## ९. व्याकरण-सम्बन्धी कतिपय नियम

अन्य वैदिक संहिताओं के समान सामवेद में भी वैदिक व्याकरण के कुछ नियम प्रयुक्त हुए हैं, जो लौकिक संस्कृत में नहीं पाये जाते। वेदभाष्य में हमने विशिष्ट पदों की व्याकरणप्रक्रिया प्रायः प्रदर्शित कर दी है, जिससे पाठकों को मन्त्रों में आये पदों के वैदिक व्याकरण का बोध हो सकेगा। तथापि यहाँ कतिपय महत्त्वपूर्ण नियमों का उल्लेख कर देना उपयोगी प्रतीत होता है। ऊपर केवल नियम दर्शाकर नीचे टिप्पणी में सूत्र दिये जा रहे हैं। सूत्रार्थ काशिका-वृत्ति के हैं। जहाँ वृत्ति सिद्धान्तकौमुदी से ली है वहाँ उसका निर्देश कर दिया गया है। नियमों के साथ उदाहरण

---

१. निदानसूत्र के प्रथम प्रपाठक के पहले सात खण्डों में छन्दों का विषय है, जो 'छन्दोविचिति' नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेद से ही दे रहे हैं। उदाहरणों के सम्मुख कोष्ठक में जो संख्या लिखी है वह साममन्त्रों की क्रमसंख्या है।

**भूतवाची लकार वर्तमानादि अर्थों में भी**

लौकिक संस्कृत में लुङ्, लङ् और लिट् लकार भूतकाल के अर्थ में आते हैं। परन्तु वेद में इनका प्रयोग वर्तमान आदि अर्थों में भी होता है।[1] इसके अतिरिक्त लिट् लकार जो लोक में परोक्ष भूत अर्थ में प्रयुक्त होता है, वेद में प्रत्यक्ष भूत में भी आता है।[2] पाणिनिमुनि-प्रोक्त इस नियम को ध्यान में न रखने के कारण ही प्रायः भाष्यकारों ने लुङ्, लङ् और लिट् इन भूतवाची लकारों का मन्त्रों में प्रयोग देखकर वेदों में किन्हीं ऋषियों, राजाओं आदि का इतिहास कल्पित कर लिया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित मन्त्रों में—

**य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्।**
**इन्द्रः स नो युवा सखा॥** —साम०१२७

**अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे।**
**तत्रादर्दिष्ट पौंस्यम्॥** —साम०१३१

**इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।**
**जघान नवतीर्नव॥** —साम० १७९

**अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।**
**विश्वा यदजय स्पृधः॥** —साम० २११

अपने सामभाष्य में हम ने इन तथा इसी प्रकार के अन्य मन्त्रों में तथाकथित इतिहास का उल्लेख करते हुए उसका खण्डन तथा सत्यार्थ दे दिया है।

**लेट् लकार का प्रयोग**

लोक में लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, लिट्, लुट्, लृट्, आशीर्लिङ्, लुङ्, लृङ् ये दस लकार ही प्रयुक्त होते हैं। किन्तु वेद में एक अतिरिक्त लकार लेट् भी आता है। इसका प्रयोग

---

१. छन्दसि लुङ्लङ्लिटः। अ० ३।२।१०५, छन्दसि विषये धातुसम्बन्धे सर्वेषु कालेषु लुङ्लङ्लिटः प्रत्यया भवन्ति।

२. परोक्षे लिट्। अ० ३।२।११५, छन्दसि लिट्। अ० ३।२।१०५, 'भूतसामान्ये' इति सि० कौ०। यथा— अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह (साम० १५२)।

प्रायः लिङ् के अर्थ में या उपसंवाद और आशंका अर्थों में होता है।[१] परिचयार्थ यहाँ यज धातु के परस्मैपद और आत्मनेपद में लेट् लकार के रूप दिये जा रहे हैं।

## परस्मैपद

**प्रथम पुरुष**

| | |
|---|---|
| एकवचन | यजति, यजाति,[२] यजिषति[३], यजिषाति, याजिषति,[४] याजिषाति, यजत्-द्[५], यजात्-द्, यजिषत्-द्, यजिषात्-द्, याजिषत्-द्, याजिषात्-द्। |
| द्विवचन | यजतः, यजातः, यजिषतः, यजिषातः, याजिषतः, याजिषातः। |
| बहुवचन | यजन्ति, यजान्ति, यजिषन्ति, यजिषान्ति, याजिषन्ति, याजिषान्ति, यजन्, यजान्, यजिषन्, यजिषान्, याजिषन्, याजिषान्। |

**मध्यम पुरुष**

| | |
|---|---|
| एकवचन | यजसि, यजासि, यजिषसि, यजिषासि, याजिषसि, याजिषासि, यजः, यजाः, यजिषः, यजिषाः, याजिषः याजिषाः। |
| द्विवचन | यजथः, यजाथः यजिषथः, यजिषाथः, याजिषथः याजिषाथः। |
| बहुवचन | यजथ, यजाथ, यजिषथ, यजिषाथ, याजिषथ, याजिषाथ। |

---

१. लिङ्र्थे लेट्। अ० ३।४।७, विध्यादौ हेतुहेतुमद्भावादौ च धातोर्लेट् स्याच्छन्दसि। (सि० कौ०)। उपसंवादाशङ्कयोश्च। अ० ३।४।८, पणबन्धे आशङ्कायां च लेट् स्यात्। 'अहमेव पशूनामीशै', नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम' (सि० कौ०)।

२. लेटोऽडाटौ। अ० ३।४।९४, लेटोऽडाटावागमौ भवतः पर्यायेण। तारिषत्, मन्दिषत्, पताति दिद्युत्, उदधिं च्यावयाति।

३. सिब्बहुलं लेटि। अ० ३।१।३४, धातोः सिप् प्रत्ययो भवति बहुलं लेटि परतः। जोषिषत्, तारिषत्, मन्दिषत्।

४. सिब्बहुलं णिद् वक्तव्यः।–वा०, णित्वाद् वृद्धिः।

५. इतश्च लोपः परस्मैपदेषु। अ० ३।४।९७, लेट् सम्बन्धिन इकारस्य परस्मैपदविषयस्य लोपो भवति। वाऽनुवृत्तेः पक्षे श्रवणमपि भवति। वावसाने। अ० ८।४।५६, अवसाने झलां चरो वा स्युः।

**उत्तम पुरुष**

| | |
|---|---|
| एकवचन | यजामि, यजिषामि, याजिषामि, यजाम्, यजिषाम्, याजिषाम् |
| द्विवचन | यजावः, यजाव,[1] यजिषावः, यजिषाव, याजिषावः, याजिषाव। |
| बहुवचन | यजामः, यजाम, यजिषामः, यजिषाम, याजिषामः, याजिषाम। |

## आत्मनेपद

**प्रथम पुरुष**

| | |
|---|---|
| एकवचन | यजते, यजाते, यजिषते, यजिषाते, याजिषते, याजिषाते, यजतै[2], यजातै, यजिषतै, यजिषातै, याजिषतै, याजिषातै। |
| द्विवचन | यजैते[3], यजिषैते, याजिषैते। |
| बहुवचन | यजन्ते, यजान्ते, यजिषन्ते, यजिषान्ते, याजिषन्ते, याजिषान्ते, यजन्तै, यजान्तै, यजिषन्तै, यजिषान्तै, याजिषन्तै, याजिषान्तै। |

**मध्यम पुरुष**

| | |
|---|---|
| एकवचन | यजसे, यजासे, यजिषसे, यजिषासे, याजिषसे, याजिषासे, यजसै, यजासै, यजिषसै, यजिषासै, याजिषसै, याजिषासै। |
| द्विवचन | यजैथे, यजिषैथे, याजिषैथे। |
| बहुवचन | यजध्वे, यजाध्वे, यजिषध्वे, यजिषाध्वे, याजिषध्वे, याजिषाध्वे, यजध्वै, यजाध्वै, यजिषध्वै, यजिषाध्वै, याजिषध्वै, याजिषाध्वै। |

---

१. स उत्तमस्य। अ० ३।४।९८, लेट्सम्बन्धिन उत्तमपुरुषस्य सकारस्य वा लोपो भवति। करवाव, करवाम। न च भवति—करवावः, करवामः।

२. वैतोऽन्यत्र। अ० ३।४।९६, लेट् सम्बन्धिन एकारस्य वा ऐकारादेशो भवति। अन्यत्रेत्यनन्तरो विधिरपेक्ष्यते। 'आत ऐ' इत्येतद्विषयं वर्जयित्वा, एत ऐ भवति। सप्ताहानि शयै। अहमेव पशूनामीशै। मद्‌ग्रा एव वो ग्रहा गृह्यान्तै। न च भवति, 'यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तमम्। अन्यत्रेति किम्? मन्त्रयैथे।

३. आत ऐ। अ० ३।४।९५, लेट्सम्बन्धिन आकारस्य ऐकारादेशो भवति। प्रथमपुरुषमध्यमपुरुषात्मनेपदद्विवचनयोः। मन्त्रयैते, मन्त्रयैथे। करवैते, करवैथे।

**उत्तम पुरुष**

| | |
|---|---|
| एकवचन | यजे, यजै, यजिषे, यजिषै, याजिषे, याजिषै। |
| द्विवचन | यजावहे, यजावहै, यजिषावहे, यजिषावहै, याजिषावहे, याजिषावहै। |
| बहुवचन | यजामहे, यजामहै, यजिषामहे, यजिषामहै, याजिषामहे, याजिषामहै। |

सामवेद में प्रयुक्त लेट् लकार के कतिपय रूप निम्नलिखित हैं—स्तुषे (साम० ५, ८७, १७८, ४००), वर्धासे (७), यंसत् (२२), दाशत् (५८), मृडयासि (१७३), याचिषत् (३०८), असः (३१४), जयासि (३२४), जीवात् (३४१), तारिषत् (३५८), भ्यसात् (३७१), पिबाति (३८६), स्तवाम (३८७), अविषत् (४११), तिष्ठाति (४२४), स्पृशद् (४४१), तरत् (५००)।

**दीर्घ-विधान**

वेद में क्वचित् लिट् लकार में अभ्यास को दीर्घ हो जाता है, जो लोक में अप्राप्त है। यथा—ववृते, ववृधानम्, ववृधे, दधार, के स्थान पर क्रमशः वावृते (३७२, ४२३) वावृधानम् (३७४), वावृधे (५२९), दाधार (१८४५)।[1]

ऋचाओं में तु, नु, घ, मक्षु, लोट्-मध्यमपुरुष-बहुवचन के त तथा कु, त्र और उरुष्य को भी वैकल्पिक दीर्घ होता है।[2] कु तथा उरुष्य के उदाहरण सामवेद में नहीं मिलते। अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं—आ तू न इन्द्र (१६७, १८१), नू नो रयिम् (९२६), घा (१३३, २०६, २३०, ४०४), क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे (६८६), पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे (८६६), आपो न मक्षू (१४७३), अत्रा (१८०८), सपर्यता (६३), भरता (९८) सुनोता, पचता (२८५), प्रार्चता (३६२), अर्चता (३८०), पिञ्चता (५१२)। सामवेद में अनेक स्थलों में इन्हें दीर्घ नहीं भी होता। यथा—विदा गाधं तुचे तु नः

१. तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य। अ० ६।१।७ तूतुजानः। मामहानः। अनड्वान् दाधार। स्वधां मीमाय। स तूताव। दीर्घश्चैषां छन्दसि प्रत्ययविशेषे एव दृश्यते, ततोऽन्यत्र न भवति। तुतोज शबलान्।

२. ऋचि तुनुघमक्षुतङ्कुत्रोरुष्याणाम्। अ० ६।३।१३३ ऋचि विषये तु, नु, घ, मक्षु, तङ्, कु, त्र, उरुष्य इत्येषां दीर्घो भवति।

(८१), प्र तु द्रव (५२३), उपो नु स सपर्यन् (१९६), इन्द्रा नु पूषणा वयम् (२०२), वयं घ त्वा (२६१), अर्चत (३६२), तत्र पूषा भुवत् सचा (१४८)। मक्षु सामवेद में तीन ही बार प्रयुक्त है, जहाँ वह दीर्घान्त है।

इगन्त को सुञ् (सु) निपात परे होने पर दीर्घ हो जाता है।[१] यथा, इममू षु (२८), ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये। (५७), स्तुष ऊ षु वो (३९०), अभी षु णः सखीनाम्। (६८४)।

दो अच् वाले अदन्त तिङन्तों के अन्तिम अ को दीर्घ होता है।[२] यथा, रक्षा (२४), युङ्क्ष्वा (२५), वहा (४०), रास्वा (४३), तिष्ठा (५७) अर्चा (८८), यजा (९६), पिबा (१२४, १९१, २२९, २३९), स्तोता (१४४, २४२), द्रवा (१५९), तृम्पा (१६१), मत्स्वा (२३९), विदा (२४०), शिक्षा (२५९), भवा (२६०), भरा (२७२), भजा (३१८), योजा (४१५, १६), अर्पा (५०३), हता (५५३)। द्व्यक्षर पद से यदि संयुक्ताक्षर परे हो अथवा वह पादान्त में हो तो दीर्घ नहीं होता। यथा—तेषां मत्स्व प्रभूवसो (२१२), **आ जाता सुक्रतो पृण (५२), शश्वत्तमं हवमानाय** साध (७६), **अग्न ओजिष्ठ मा भर (८१), देवान् देवयते यज (१००)।**

निपातों को भी क्वचित् ऋचाओं में दीर्घ हो जाता है[३]। जैसे एव, अथ, अध, अच्छ, अद्य, यदि आदि निपातों को। उदाहरणार्थ, एवा (२३२, ६५०), अथा ते अन्तमानाम् (१०८९), अधा हीन्द्र गिर्वणः (४०६), अधा हिन्वान इन्द्रियम् (८३९), अच्छा व इन्द्रं मतयः (३७५), अच्छा कोशं मधुश्चुतम् (६५८), अच्छा समुद्रमिन्दवो। (६५९), अद्या नो देव सवितः (१४१), यदी वहन्त्याशवः (३५६), तक्षद् यदी मनसो वेनतो वाग् (५३७)। क्वचिद् दीर्घ नहीं भी होता है। यथा—अध ज्मो अध वा दिवो (५२), अध धारया मध्वा (१०२०)।

ऋक्तन्त्र में द्व्यच् तिङन्त तथा निपात दोनों को द्व्यक्षर पद में सम्मिलित करके यह नियम बनाया है कि द्व्यक्षर पद के अन्त

---

१. इकः सुञि। अ० ६।३।१३४, सुञ् निपातो गृह्यते। इगन्तस्य सुञि परतो मन्त्रविषये दीर्घो भवति। अभी षु णः सखीनाम्। उद्‌ध्र्व ऊ षु ण ऊतये। सुञ इति षत्वम्। नरच धातुस्थोरुषुभ्य इति णत्वम्।

२. द्व्यचोऽतस्तिङः। अ० ६।३।१३५, द्व्यचस्तिङन्तस्यात ऋग्विषये दीर्घो भवति।

३. निपातस्य च। अ० ६।३।१३६, निपातस्य च ऋग्विषये दीर्घादेशो भवति।

का लघु अक्षर दीर्घ होता है।[1]

उक्त नियमों के अतिरिक्त कतिपय अन्य स्थलों में भी वैदिक प्रयोगों में दीर्घ पाया जाता है। उनके लिए पाणिनि ने एक सामान्य सूत्र बना दिया है।[2] सामवेद में अन्यत्र दीर्घ के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं—सं महेमा (६६), रिषामा (६६), ईळिष्वा हि महे वृषन् (९३), तं गृर्धया स्वर्णरम् (१०९), ररिमा (१२४), सुपमा (१९१), यावया दिद्युमेभ्यः (२६६), च्यावया सदसस्परि (२९८), अध्वर्यो द्रावया त्वम् (३०८), त्यं सुमेषं महया स्वर्विदम् (३७७), आ जभारा (५९९), पूरुषः (६२०, ६२१), श्रुधी (२९, ३४६), जही (१३४), कृणुही (४५५), कृधी (४७९)।

दीर्घ-सम्बन्धी उपर्युक्त नियम प्रायः पाणिनि-व्याकरण के आधार पर लिखे गये हैं। प्रातिशाख्यों में इस विषय में अधिक विचार मिलता है। यथा, ऋक्तन्त्र प्रातिशाख्य के अनुसार 'ईळिष्वा हि' उस नियम के अन्तर्गत आता है जिसके अनुसार ह्रस्व से परे पाद का तृतीय अक्षर दीर्घ हो जाता है, यदि उसके पश्चात् लघ्वक्षर पद हो।[3] यकारान्त 'यावया' एवं 'च्यावया' में दीर्घ इस नियम के अनुसार है कि पाद के तृतीय अक्षर यकार को दीर्घ होता है।[4] 'गृर्धया', 'द्रावया' एवं 'महया' में यह नियम लगता है कि जब पद में तृतीय अक्षर यकार हो तथा उसके परे ऊष्म अक्षर हो तो यकार को दीर्घ होता है।[5]

दीर्घविधान के विस्तृत विवेचनार्थ ऋक्प्रातिशाख्य (पटल ७,

१. युग्मं घु। ऋक्तन्त्र सूत्र २३६, युग्मं लघु। द्व्यक्षरपदस्य लघ्वक्षरं दीर्घीभवति। एव हि असि=एवा ह्यसि। एव हि एव = एवा ह्येव। अर्च देवाय = अर्चा देवाय। योज नु इन्द्र = योजा न्विन्द्र। पिब सोमम् = पिबा सोमम्। भव नः = भवा नः। अच्छ कोशम् = अच्छा कोशम्। युग्ममिति किम्? वचः देवाय शस्यते। लघ्विति किम्? पञ्च क्षितीनाम्। अत्र क्षि इति संयोगपरत्वात् च शब्दस्य गुरुत्वम्।

२. अन्येषामपि दृश्यते। अ० ६।३।१३७, अन्येषामपि दीर्घो दृश्यते, स शिष्टप्रयोगादनुगन्तव्यः। यस्य दीर्घत्वं विहितं न, दृश्यते च प्रयोगे, तदनेन कर्त्तव्यम्।

३. द्रष्टव्य, ऋक्तन्त्र, सूत्र २४३।

४. द्रष्टव्य, ऋक्तन्त्र, सूत्र २४४।

५. द्रष्टव्य, ऋक्तन्त्र, सूत्र २४५।

८,९) एवं सामवेदीय प्रातिशाख्य (ऋक्तन्त्र (सूत्र २१२-२६५) द्रष्टव्य हैं। ऋक्प्रातिशाख्य में कतिपय परिगणित अपवादों-सहित दीर्घभाव का एक यह नियम प्रोक्त है कि एकादशाक्षर तथा द्वादशाक्षर पाद का अष्टम अक्षर दीर्घ हो जाता है, यदि संहितापाठ में लघु अक्षर परे हो।[1] 'तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से (ऋ० १।३२।४)' में एकादशाक्षर पाद का त्ल दीर्घ हो गया है। 'अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव (ऋ०।८९।१) में द्वादशाक्षर पाद का अष्टम अक्षर म दीर्घ हुआ है। एकादशाक्षर और द्वादशाक्षर पाद के दशम अक्षर को भी दीर्घ होता है लघु परे होने पर।[2] यथा—'अहा विश्वा सुमना दीदिही नः। (ऋ० ३।५४।२२)', 'अव रुद्रा अशसो हन्तना वधः। (ऋ० २।३४।९)'। इसी प्रकार लघु अक्षर परे होने पर अष्टाक्षर पाद में षष्ठ अक्षर को दीर्घ होता है।[3] यथा—'ईशानो यवया वधम् (ऋ० १।५।१०)'। सामवेद में इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं—वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम्। (८६१), अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव। (१०६४), वृत्रेषु शत्रून्त्सहना कृधी नः। (६२५), प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो। (३८०), एहीमस्य द्रवा पिब। (१५९)।

**ए या ओ से अ परे होने पर प्रकृतिभाव**

लोक में पदान्त ए या ओ से ह्रस्व अ परे होने पर पूर्वरूप एकादेश होता है, अर्थात् ए या ओ ही अवशिष्ट रहते हैं, अ लुप्त हो जाता है।[4] परन्तु वेद में अनेक स्थलों पर यह पूर्वरूप सन्धि नहीं होती। यथा, सामवेद में—नमस्ते अग्न ओजसे (११), सो अग्ने (१०८), भद्रो अध्वरः (१११), विप्रो अजायत (१४३), दधीचो अस्थभिः (१७९), राधो अद्रिवः (१९४), ज्यायो अस्ति (२०३), गौरो अपा (२५२), नो अभयं (२७४), वो अजरं (२८३), बृहन्तो अद्रयो (२९६), इन्द्रो अङ्ग (३८९), वरुणो अति (४२६), अध्वर्यो अद्रिभिः (४९९), नर्यो अप्सु (५१२), स्वानो अद्रिभिः (५१३), वराहो अभ्येति (५२४), पुनानो अर्षति (५४६), विराजो अधि पूरुषः। (६२१), जातो अत्यरिच्यत (६२१),

---

१. एकादशिद्वादशिनोर्लघावष्टममक्षरम्, उदये संहिताकाले नः कारे च गुरावपि।
—ऋ० प्रा० ८।३६, ३७

२. दशमं चैतयोरेवम्।—ऋ० प्रा० ८।३८

३. षष्ठं चाष्टाक्षरेऽक्षरम्।—ऋ० प्रा० ८।३९

४. एङः पदान्तादति।—अ० ६।१।१०९,
एङ् यः पदान्तस्तस्मादति परतः पूर्वपरयोः स्थाने पूर्वरूपमेकादेशो भवति। अग्नेऽत्र, वायोऽत्र।

वो अस्तु (६२६)।

इसका नियम है कि पाद के मध्य में स्थित ए और ओ को ह्रस्व अ परे होने पर प्रकृतिभाव हो जाता है, अर्थात् पूर्वरूप-सन्धि नहीं होती, यदि उस अ से परे व न हो। यदि ए या ओ पाद के अन्त में होगा तथा अ दूसरे पाद के आदि में तो यह प्रकृतिभाव नहीं होगा, प्रत्युत पूर्वरूप सन्धि हो जायेगी। यथा– वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन्। (१३२), आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः। (२३९), मा त्वा केचिन्नियेमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि। (२४६), पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत। (२५०), प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः। (४७८), अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् (५०३), इसी प्रकार अ के पश्चात् व होने पर भी प्रकृतिभाव न होकर पूर्वरूप-सन्धि हो जाती है। यथा, नोऽवित्ता (२६३), अयं वामह्वेऽवसे (३०४), प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् (१२२०), अपां यद् गर्भोऽवृणीत देवान् (१२५५), नूनं पुनानोऽविभिः (१३१४), इन्द्रं गायन्तोऽवसे (१५८२), दिवाभिपित्वेऽवसा गमिष्ठाः। (१७५३)। पाणिनि ने अ से य परे होने पर भी सन्धि मानी है।[१] किन्तु सामवेद में अ से य परे होने पर सन्धि का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं हुआ। य परे होने पर प्रकृतिभाव के उदाहरण तो मिलते हैं। यथा– अयं शुक्रो अयामि ते (६००), अस्ति सोमो[२] अयं सुतः (१७४), वायो शुक्रो अयामि ते (१६२८)। सामवेद-प्रातिशाख्य ऋक्तन्त्र में भी केवल व का नियम है, य का नहीं।[३] य का पाणिनि-प्रोक्त नियम अन्य संहिताओं के लिए समझना चाहिए।

ऋक्तन्त्र से यह भी ज्ञात होता है कि ए या ओ से अ परे

१. प्रकृत्याऽन्तःपादमव्यपरे। अ० ६।१।११५, ऋक्पादमध्यस्थ एङ् प्रकृत्या स्यादति परे, न तु वकारयकारपरेऽति। उपप्रयन्तो अध्वरम्। सुजाते अश्वसूनृते। अन्तःपादं किम्? एतास एतेऽर्चन्ति। अव्यपरे किम्? तेऽवदन् तेऽयजन्। –सि० कौ०।

२. अयं परे होने पर पाणिनि ने भी प्रकृतिभाव माना है। अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च। –अ० ६।१।११६

३. अवयावे न्यूने। ऋक्तन्त्र, सूत्र ७६, एकारः ओकारश्च न्यूने पादे अवपरे प्रत्यये न सन्धीयते।

होने पर पादमध्य में प्रकृतिभाव तभी होता है यदि सन्धि करने पर पादाक्षर-संख्या न्यून हो जाती है।[1] यथा—'नमस्ते अग्न ओजसे' (११) में यदि 'नमस्तेऽग्न ओजसे' इस प्रकार पूर्वरूप-सन्धि कर दें तो अक्षर ७ होने से न्यून हो जायेगी, क्योंकि गायत्री छन्द का पाद अष्टाक्षर होता है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझना चाहिए। जहाँ सन्धि करने पर पादाक्षर-संख्या न्यून नहीं होती वहाँ प्रकृतिभाव नहीं होगा। यथा—'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' में सन्धि करने पर ८ अक्षर ही रहते हैं, अतः सन्धि हो गयी है। प्रकृतिभाव करने पर तो ९ अक्षर हो जाते, जबकि अपेक्षित ८ ही हैं।

**प्रकृतिभाव के अन्य स्थल**

पूर्वरूप एकादेश सन्धि से अन्यत्र भी वैदिक संहिताओं में प्रकृतिभाव होता है, अर्थात् अभीष्ट सन्धि नहीं होती। सामवेद में प्रकृतिभाव की कतिपय स्थितियाँ निम्न हैं—

उ पद की किसी के साथ सन्धि नहीं होती। यथा— तस्मा उ अद्य (२७२), प्रत्यु अदर्श्यायती (३०३), इत्थमु आद्वन्यथा (३०५), तमु अभि प्र गायत (३८२)[2]। किन्तु इसके कुछ अपवाद भी हैं—आद् उ अन्यथा (आद्वन्यथा ३०५) में उ पद को सन्धि हो गयी है।[3]

उ पद जब पूर्ववर्ती अक्षर के साथ सन्धि होकर ओ रूप में स्थित हो जाता है, तब भी उसकी किसी के साथ सन्धि नहीं होती। यथा— दोषो आगात् (१७७), एषो उषा (१७८), प्रो अयासीत् (५५७)।[4]

पाद के अन्त में आ पद हो तो उसकी उत्तरवर्ती पादादि अच् के साथ सन्धि नहीं होती। यथा—'क इमं नाहुषीष्वा, इन्द्रं सोमस्य तर्पयात्। (१९०)', 'कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ, अव श्मशा रुधद् वाः। (२२८), 'यदिन्द्र नाहुषीष्वा, ओजो नृम्णं च

१. द्रष्टव्य वही। 'नमस्ते अग्न ओजसे' अत्र अकारस्य प्रश्लेपत्वे सति न्यूनपादत्वं स्यात्। 'न्यूने' इति किम्? पादोऽस्य सर्वा भूतानि।

२. दमु। ऋक्तन्त्र, सूत्र ६९, उकारं पदं न सन्निकृष्यते। तम् उ अभि (तमु अभि) प्रगायत। उ पदमिति किम्? त्वां वृत्रेषु इन्द्र (त्वां वृत्रेष्विन्द्र)।

३. द्रष्टव्य ऋक्तन्त्र, सूत्र ७२।

४. ओ भूतञ्च। ऋक्तन्त्र, सूत्र ७०, ओ भूतञ्च उ पदं न सन्निकृष्यते। दोषा उ आ अगात्=दोषो आगात् एषा उ उषाः =एषा उ उषाः = एषो उषाः। प्र उ अयासीत् = प्रो अयासीत्।

कृष्टिषु (२६२)'।[1]

पाद के आदि में ऋ हो तो पूर्वपाद के अन्त्य अक्षर के साथ उसकी सन्धि नहीं होती। यथा, 'प्र मंहिष्ठाय गायत, ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे (१०७।'।[2]

पाद के आदि में ओजस् शब्द हो तो उसकी पूर्वपदान्तस्थ वर्ण के साथ सन्धि नहीं होती। यथा– 'त्वन्न इन्द्राभर, ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे। (४०५)।[3]

'कि–इन्' और 'वी–उत' की भी सन्धि नहीं होती। यथा, 'न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् (२०३)'। 'अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः (५९०)।'[4]

**न् को रु और पूर्व को अनुनासिक**

समानपाद में पादान्त में दीर्घ से परे न् हो तथा उस न् से परे अट् प्रत्याहार का कोई अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र) हो तो न् को रु हो जाता है तथा पूर्व को अनुनासिक। न् से पूर्व यदि दीर्घ आ होता है तो उस रु का य, होकर कुछ शेष नहीं रहता, अन्यत्र रेफ शेष रहता है।[5] यथा–

१. आऽणि। ऋक्तन्त्र, सूत्र ७१, पादादेः अण् इति संज्ञा। आकारं पदम् अणि। (पादादौ प्रत्यये) न सन्निकृष्यते। कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव। अत्र 'हर्यते आ अव' इति पदपाठः। एवम्, क इमं नाहुषीपु, य इन्द्र नाहुषीपु इत्यादौ। पदमिति किम्? पुनानः सोम धारया अपः (पुनानः सोम धारयाऽपो) अत्र आकारः सन्निकृष्यते। अणि इति किम्? दिवः पृष्ठानि आ अरुहन् (पृष्ठान्यारुहन्)।

२. ऋति। ऋक्तन्त्र, सूत्र ८५ अणि (पादादौ) इत्यनुवर्त्तते। पादादौ प्रत्यये परे न सन्निकृष्यते। 'प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने' अत्र त इत्यस्य ऋत्परत्वात् न सन्निकर्षः। अणि (पादादौ) इति किम्? अभि ऋतस्य (अभ्यृतस्य)।

३. ओजि। ऋक्तन्त्र, सूत्र ८६, अणि (पादादौ) इत्यनुवर्त्तते। पादादौ ओजि प्रत्यये न सन्निकृष्यते। त्वन्न इन्द्रा भर ओजो नृम्णम्। अणि (पादादौ) इति किम्? अमितौजा अजायत। अत्र 'अमित ओजः' इति पदं, तत्र सन्धिः।

४. कि–इन वी उत्। ऋक्तन्त्र, सूत्र ८८, एतावपि न सन्निकृष्येते। न कि इन्द्र त्वदुत्तरम्। अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।

५. दीर्घादटि समानपादे। अ० ८।३।९, दीर्घादुत्तरस्य पदान्तस्य नकारस्य रुर्भवति अटि परतः, तौ चेन्निमित्तनिमित्तिनौ समानपादे भवतः। अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा। अ० ८।३।२, इत उत्तरं यस्य स्थाने रुर्विधीयते ततः पूर्वस्य तु वर्णस्य वानुनासिको भवतीत्येदधिकृतं वेदितव्यम् आतोऽटि नित्यम्। अ० ८।३।३, अटि परतो रोः पूर्वस्य आकारस्य स्थाने नित्यमनुनासिकादेशो भवति।–इस विषय में ऋक्तन्त्र, सूत्र २१२ भी द्रष्टव्य है।

महाँ असि ( २३, ३९, २७६, ३४६), देवाँ उषर्बुध: (४०), रुद्राँ आदित्याँ उत (९६), महाँ इन्द्र: (१६६), महाँ अभिष्टि: (१८०), महाँ इव (२२७), ताँ इहि (२४६), स्वर्वाँ असुरेभ्य: (२५४), सुतावाँ आ विवासति (२६४), वस्याँ इन्द्रासि (२९२), ताँ आ (२९३), बद्बधानाँ अरम्णा: (३१५), महाँ हि ष: (३८१), देवाँ अच्छ (४६१), द्युमाँ असि (५०४), देवाँ अयास्य: (५०९), मधुमाँ इन्द्र (५३१), मधुमाँ ऋतावा (५३२), मधुमाँ अचिक्रदत् (५५६), वसूँरिह (९६), ऋतूँरनु (२२९, ३६७), परिधीँरति (५१६)। 'अपो वृणान: पवते कवीयान्, व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म (५३९)'—यहाँ समानपाद न होने के कारण 'कवीयाँ व्रजं' नहीं हुआ।

**विसर्ग को सकार**

लोक में सामान्यत: क और प परे होने पर विसर्ग को विसर्ग ही रहते हैं। परन्तु वेद में किन्हीं विशेष परिस्थितियों में क या प परे होने पर विसर्ग को स हो जाता है। यदि मूर्धन्य का निमित्त विद्यमान हो तो उस स को मूर्धन्य ष होता है। वेद में विसर्ग को सकार होने की परिस्थितियाँ अग्रलिखित हैं—

क:, करत्, करति, कृधि और कृत परे होने पर विसर्ग को सकार होता है, 'अदिति:' की विसर्ग को छोड़कर।[1] यथा— मयस्करत् (१०२), वरिवस्कृधि (८४२), वस्यसस्कृधि (१०४८-५६), तवसस्कृतानि (७८)। सामवेद में क: और करति के उदाहरण नहीं मिलते। ऋक्तन्त्र प्रातिशाख्य में इस नियम को इस रूप में कहा गया है कि पाद के मध्य में वर्तमान विसर्जनीय को सकार हो जाता है यदि कृ धातु परे हो।[2] 'कदा न: सूनृतावत:, कर इदर्थयास इद् (४१६)' में विसर्ग पादान्त में तथा कृ धातु अगले पाद के आदि में होने के कारण सकार नहीं होता।

पञ्चमी के विसर्ग को सकार हो जाता है 'परि' परे होने पर, यदि वह 'परि' अधि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो[3]। यथा—

१. क: करत् करति कृधि कृतेष्वनदिते:।—अ० ८।३।५०

२. अडि। ऋक्तन्त्र, सूत्र, १४३, पादमध्ये वर्तमान: विसर्जनीय: सकारमापद्यते कृञ् धातौ परे। अथा नो वस्यसस्कृधि (१०४८)। कृञ् परे इति किम्? ज्योति: पश्यन्ति (२०)। अडि (पादमध्ये) इति किम्? सूनृतावत:, कर इत् (४१६)

३. 'पञ्चम्या: परावध्यर्थे।—अ० ८।३।५१

सदस्परि (२९८), दिवः सदोभ्यस्परि (३१२), दिवो अन्तेभ्यस्परि (३६७)। ऋक्तन्त्र में यह नियम इस रूप में वर्णित हुआ है कि अवर्ण से परे विद्यमान विसर्जनीय को सकार हो जाता है यदि पादोपान्तीय प परे हो, जिसके बाद र आया हो।[1]

पा धातु के परे होने पर पञ्चमी के विसर्ग को सकार आदेश होता है।[2] यथा, सूर्यो नो दिवस्पातु, ऋ० १०।१५८।१। सामवेद में इसका उदाहरण प्राप्त नहीं होता। पा धातु परे होने पर प्रथमा बहुवचन के विसर्ग को सकार होने का उदाहरण तो सामवेद में है। यथा—मित्रास्पान्ति (२०६)। साम प्रातिशाख्य ऋक्तन्त्र में पा धातु परे होने पर पञ्चमी-विसर्ग को सकार होने का कोई नियम वर्णित नहीं है। उसके स्थान पर यह नियम है कि पाद का तृतीय अक्षर दीर्घ पकार परे हो तो पूर्व विसर्ग को स होता है।[3] यथा, दिवस्पायुर्दुरोणयुः (३९), मित्रास्पान्त्यद्रुहः (२०६)। 'त्वमग्ने महोभिः, पाहि विश्वस्या अरातेः (६)' में पा परे होने पर भिः के विसर्ग को सकार नहीं होता, यतः पा पाद का तृतीय अक्षर नहीं है।

पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष परे होने पर षष्ठी के विसर्ग को सकार आदेश होता है।[4] यथा, ब्रह्मणस्पतिः (५६, २९९), सदसस्पतिम् (१७१), शवसस्पतिः (२४८), वाचस्पतिः (८७३), सहसस्पुत्रम् (९०८), दिवस्पदे (८७६), दिवस्पदम् (११२७)। सामवेद में पृष्ठ, पार, पयस् और पोष के उदाहरण नहीं मिलते। पृष्ठ परे होने पर सकार न होने के उदाहरण उपलब्ध हैं—दिवः पृष्ठानि (९२), दिवः पृष्ठम् (८७६)।

इसके अतिरिक्त रायस्पूर्द्धि (३४६, ८८३), वरिवस्कृण्वन्

---

१. पि। ऋक्तन्त्र, सूत्र १४६, रेफे पर इत्यनुवर्तते। रेफपरे पादोपान्तीये पकारे प्रत्यये अस्थात् (अवर्णात्) परः विसर्जनीयः सकारमापद्यते। उद् वयं तमसस्परि। पादोपान्तीय इति किम्? भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो। अस्थात् पर इति किम्? 'अहमिद्धि पितुः परि'।

२. पातौ च बहुलम्। अ० ८।३।५२, पातौ च धातौ परतः पञ्चमीविसर्जनीयस्य सकार आदेशो भवति छन्दसि विषये।

३. घेऽणः। ऋक्तन्त्र, सूत्र १४८, पादतृतीयस्य अण इति संज्ञा। पादतृतीये दीर्घाक्षरे प्रत्यये विसर्जनीयस्य सकारापत्तिः। दिवस्पायुर्दुरोणयुः। मित्रास्पान्ति। घे (दीर्घाक्षरे) पादतृतीये इति किम्? गिर्वणः पाहि।

४. षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु।—अ० ८।३।५३

(५४०), अधस्पदम् (१०९२) आदि में भी विसर्ग को सकार पाया जाता है। ऋक्तन्त्र के अनुसार 'रायस्पूर्द्धि' में यह नियम प्रवृत्त होता है कि 'यः' के विसर्ग को सकार हो जाता है, यदि पाद का तृतीय अक्षर रूप दीर्घ पकार या ककार परे हो।[1] 'यः पात्रं हारियोजनम् (४२४)' में पार परे होने पर 'यः' के विसर्ग को सकार नहीं होता, यतः यहाँ 'पा' पाद का तृतीय अक्षर न होकर द्वितीय अक्षर है। 'वरिवस्कृण्वन्' रूप ऋक्तन्त्र के उस नियम का अनुसरण करता है जिसके अनुसार 'वः' के विसर्ग को सकार होता है, यदि कृ या पृ परे हो।[2] 'अधस्पदम्' रूप पाणिनि[3] के विधान के अनुसार है तथा ऋक्तन्त्र[4] में इसे कौतस्कुतादि गण में पठित मानकर सकार किया गया है।

कतिपय स्थल ऐसे भी हैं जिनमें ऋग्वेद में विसर्ग को सकार हो जाता है, किन्तु सामवेद में विसर्ग ही रहते हैं (यथा—अग्ने त्रातर्ऋतस्कविः (ऋ० ८।६०।५), अग्ने त्रातर्ऋ तः कविः। (साम० ४२)। गिरिर्न **विश्वतस्पृथुः**[5] (ऋ० ८।९८।४), गिरिर्न **विश्वतः पृथुः (साम ३९३)।**

**सकार को मूर्धन्यादेश**

कतिपय स्थलों में सकार को षत्व होता है। तप धातु परे होने पर अन्यत्र निस् के स् को षत्व होता है।[6] किन्तु सामवेद में इसका कोई उदाहरण प्राप्त नहीं है। युष्मद् के आदेश त्वं, त्वा, ते, तव, तत् और ततक्षुः परे होने पर पाद के मध्य में इण् से परे स् को षत्व होता है।[7] यथा— नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते (२७०), नकिष्टदामिनाति ते (२९६), योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि (३१४),

---

१. यः। ऋक्तन्त्र, सूत्र १४९, यः शब्दस्य विसर्जनीयः पादतृतीये दीर्घे अक्षरे प्रत्यये सकारमापद्यते। रायस्पूर्द्धि महाँ असि। पादतृतीय इति किम्? यः पात्रं हारियोजनम्। यः शब्दः इति किम्? विशः पूर्वीः प्रचर चर्षणिप्राः। सोमः पूषा।
२. द्रष्टव्य, ऋक्तन्त्र सूत्र १४४
३. अधःशिरसी पदे।—अ० ८।३।४७
४. कौतस्तकुतादीनाम्।—ऋक्तन्त्र, सूत्र १२८
५. सिद्धान्तकौमुदी में सकार के ये दोनों उदाहरण 'छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः।' अ० ८।३।४९ सूत्र पर प्रदत्त हैं।
६. निसस्तपतावनासेवने। अ० ८।३।१०२, निष्टप्तं रक्षो निष्टप्ता अरातयः।—य० १।७
७. युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तःपादम्।—अ०।३।१०३

त्विभोष्ट इन्द्र राधसो (३६६), गोभिष्टे वर्णमभिवासयामसि (५७५), आभिष्ट्वमभिष्टिभिः (६४२), नकिष्टं कर्मणा नशत् (११५५), तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः (१२३४), धेनुष्ट इन्द्र सूनृता (१८३६)। पाद के मध्य में न होने पर षत्व नहीं होता। यथा—'त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे। (६१)।' यहाँ 'गृहपतिष्ट्वं' नहीं हुआ, क्योंकि 'गृहपतिस्' पर पाद समाप्त है तथा 'त्वं' से नये पाद का आरम्भ है। 'तव' का उदाहरण सामवेद में नहीं मिलता।[1]

यदि पूर्वपद में षत्व का कोई निमित्त (इण् या कवर्ग) वर्त्तमान हो तो उसके परे आने वाले स को ष हो जाता है[2]। यथा—सुष्टुतयः (६८), नृषद्मा (७७), नृषाहम् (१४४), मन्युषाविणम् (२२३), ऋचीषमः (२६९), नृषूतः (२७९), पृर्विणेष्ठाम् (३५३), गह्वरेष्ठाम् (३५३), त्रिष्टुभम्, (३६०), पुरुष्टुत (३७३, ३८२), गिरिष्ठाः (४७५), बर्हिषदः (५६३), अभिमातिषाहः (६०३), रथेष्ठाम् (१४२६)। क्वचित् नहीं भी होता। यथा—गोसखा (१२२), पुरुस्पृहम् (२९८), दिविस्पृशः (१४०५)।

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे सुञ् निपात के स् को ष् होता है।[3] यथा—एह्यू षु ब्रवाणि ते (७), उपो षु जातमार्यस्य वर्धनम् (४७), मो षु त्वा वाघतश्चन (२८४), उपो षु शृणुही गिरः (४१६), उपो षु जातमप्तुरम्। (४८७।

पूर्वपदस्थ निमित्त से परे सन् (षणु दाने) धातु के स् को ष् हो जाता है।[4] यथा, गोषाता (३४), नृषाता (३१८), गोषातिः (८१६), गोषा इन्द्रो नृषा असि (१०४५), उत नो गोषणिं[5]

---

१. ऋग्वेद तथा यजुर्वेद का उदाहरण—अप्स्वग्ने सधिष्टव।—ऋ० ८।४३।९, य० १२।३६

२. पूर्वपदात्। ८।३।१०६, पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति छन्दसि विषये एकेषामाचार्याणां मतेन।

३. सुञः। अ० ८।३।१०७, सुञिति निपात इह गृह्यते, तस्य पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य मूर्धन्यादेशो भवति छन्दसि विषये।

४. सनोतेरनः। ८।३।१०८, सनोतेरनकारान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

५. टि० २ में प्रदत्त सूत्र के अनुसार 'गोषणिम्' में षत्व नहीं होना चाहिए, यतः यहाँ सन् धातु नकारान्त विद्यमान है। किन्तु ऋग्वेद (६।५३।१०, ९।२०।१०) तथा सामवेद में 'गोषणिम्' और वा० मा० यजुर्वेद ८।१२ में 'गोसनिः' एवम् अथर्ववेद (३।२०।१०) में 'गोसनिम्' पाठ प्राप्त होता है।

धियमश्वसा वाजसामुत (१५९३)। यहाँ अश्वसां वाजसा' में 'सा' षणु धातु के होते हुए भी उसको पूर्वपदस्थ निमित्त न होने से षत्व नहीं होता।

इसके अतिरिक्त सामवेद में षत्व के अनु ष्यात् (८२), पितुष्परि (१५२), अभीषत् (२००), ज्योतिष्कृणोति (३०३), अभी ष्याम (३३६), विष्कभिते (३७८), महाँ हि षः (३८१) निषीद (५२३), धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् (५५१), सुषुतः (५६१), ज्योतिष्कृत्, (६३५), आविष्कृणोति (१२५९), पितुष्पिता (१३९७), पृतनाषाट् (१४३३, १४७३, १८५५), शोचिष्केशम् (१८१४) आदि उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।[1]

### विसर्गलोप अथवा विसर्ग के सकार का लोप

सकार परे होने पर पूर्वपद के अन्त में विद्यमान विसर्ग का लोप होता है। यथा–'विशः स्तवेत' अथवा 'विशस् स्तवेत'= विश स्तवेत (८५), 'गिरः स्तोमासः' अथवा 'गिरस् स्तोमासः'=गिर स्तोमासः (२५१), **'वीरः स्तवते' अथवा 'वीरस् स्तवते'=वीर स्तवते (३८५), 'वः स्तुपे' अथवा 'वस् स्तुपे'=व स्तुपे (४००), 'ऋषिः स्तोमेभिः' अथवा 'ऋषिस् स्तोमेभिः'=ऋषि स्तोमेभिः** (४१८)। इसे ऋक्प्रातिशाख्य में विसर्ग का लोप तथा ऋक्तन्त्र में सकार का लोप कहा गया है।[2] ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार यह लोप उसी अवस्था में होता है जब (ऊष्म) सकार से परे अघोष वर्ण हो। घोष वर्ण परे होने पर लोप नहीं होता। यथा— 'त्रिः स्म माहः (ऋ० १०।९५।५)'—यहाँ सकार से परे घोष वर्ण म है, अतः त्रिः' के विसर्ग का लोप नहीं हुआ।

यहाँ केवल व्याकरण के कुछ सामान्य नियमों का ही परिचय दिया गया है। विस्तृत वैदिक व्याकरण के अध्ययनार्थ विभिन्न प्रातिशाख्य, पाणिनिकृत अष्टाध्यायी, काशिकावृत्ति, सिद्धान्तकौमुदी (वैदिकी प्रक्रिया) आदि ग्रन्थ देखने चाहिए।

## १०. वेद-व्याख्या के प्रयत्न

प्राचीन युग में वेद का अध्येता वैदिक भाषा से सुपरिचित होने के कारण वेदार्थ को भली-भाँति हृदयंगम कर लेता था।

---

१. षत्व के नियमों के लिए द्रष्टव्य :
ऋक्प्रातिशाख्य, पटल ५, ऋक्तन्त्र, सूत्र २७६-८६, पाणिनि ८।३।५५-११९

२. द्रष्टव्य : ऋक्प्रातिशाख्य ४।३६, ऋक्तन्त्र, सूत्र १६८

किन्तु शनैः-शनैः वेदार्थ के ह्रास का युग आ गया, यहाँ तक कि कौत्स-सदृश वेदों के श्रद्धालुजन भी यह कहने लगे कि वेदों का अर्थ कुछ नहीं होता, वेदमन्त्र तो पाठमात्र से अदृष्ट उत्पन्न कर यज्ञादि में मन्त्रों का उच्चारण करनेवाले को स्वर्ग या मोक्ष दिलाते हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो गया कि वेदार्थ को सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए वेदार्थ-ज्ञापक ग्रन्थों की रचना की जाए। तब वेदज्ञों ने शिक्षा, वैदिक व्याकरण, निरुक्त एवं छन्दः-शास्त्र नामक वेदांगों की रचना की।[1] वैदिक कर्मकाण्ड को सुरक्षित रखने के लिए ब्राह्मणग्रन्थों का तथा श्रौत एवं गृह्यसूत्रों का निर्माण किया गया। वेदों में निहित अध्यात्म-तत्त्व को उजागर करने के लिए आरण्यक एवम् उपनिषदें रची गयीं।

ब्राह्मणग्रन्थ केवल कर्मकाण्ड के विवेचन द्वारा ही नहीं, अपितु वेद में अध्यात्म, अधिराष्ट्र एवम् अधिदेवत तत्त्वों के अनुसन्धान-सम्बन्धी दिशानिर्देश द्वारा भी हमें उपकृत करते हैं। वे अग्नि, इन्द्र आदि वैदिक देवों का भौतिक जगत् में, शरीर में एवं राष्ट्र या समाज में भी स्थान निश्चित करने का प्रयास करते हैं। यथा—उनके अनुसार बाह्य जगत् में सूर्य, वायु या विद्युत् इन्द्र है, शरीर में प्राण या मन इन्द्र है, राष्ट्र में राजा या सेनापति इन्द्र है।[2] ऐसे ही संकेत प्रायः सभी वैदिक देवों के सम्बन्ध में ब्राह्मण-ग्रन्थों में आते हैं। किसी प्रसंग को अध्यात्म, अधिदेवत, अधियज्ञ, एवम् अधिभूत में घटाने की प्रवृत्ति भी ब्राह्मणग्रन्थों की विशेष देन है।

वेद-व्याख्या के प्रसंग में वैदिक निघण्टुकोष के व्याख्याता यास्कीय निरुक्त को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसमें वेद के सभी नाम-पदों के धातुज होने के सिद्धान्त का सयुक्ति प्रतिपादन किया गया है, जिसमें लगभग १३०० वैदिक शब्दों के निर्वचन एवम् अर्थ किये गये हैं, जिसमें लगभग २५० सम्पूर्ण मन्त्रों तथा ४०० से अधिक मन्त्रांशों की व्याख्या प्रस्तुत कर दी गयी है, और साथ ही जिसमें कई मन्त्रों के व्याख्यान अधिदेवत,

---

१. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च।—निरु० १।१९

२. अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः। श० ८।५।३।२, यो वै वायुः स इन्द्रो, य इन्द्रः स वायुः। वही ४।१।३।१९, वाग् वा अग्निः, प्राण इन्द्रः। वही ६।१।२।२८, यन्मनः स इन्द्रः। गो० उ० ४।११, क्षत्रं वा इन्द्रो विशो मरुतः। श० २।५।२।२७, सेना इन्द्रस्य पत्नी। गो० उ० २।९

अध्यात्म, अधियज्ञ आदि विविध दृष्टियों से किये गये हैं। मन्त्रों के विविध क्षेत्रों में व्याख्यान सब से पूर्व निरुक्त में ही उपलब्ध होते हैं। यद्यपि इस व्याख्या-शैली के दिग्दर्शक स्वयं वेद ही हैं तथा ब्राह्मणग्रन्थ भी इस शैली का संकेत कर चुके थे।

इसके अनन्तर वेद-व्याख्या में योगदान करने वालों में वेदभाष्यकार आते हैं, जिन्होंने एकाधिक वेदों का, किसी एक वेद का अथवा वेद के किसी अंश का भाष्य किया गया है। इनमें सर्वप्रथम उल्लेखनीय नाम **स्कन्दस्वामी** (संवत् ६८७) का है, जिनका ऋग्वेद के प्रथम अष्टक सम्पूर्ण का तथा अष्टक ४-५ के कतिपय सूक्तों का मुद्रित भाष्य उपलब्ध है। इनकी अपनी ही प्रतिज्ञा के अनुसार इनका भाष्य कर्मकाण्ड का उपकारक है।[1] **उद्गीथ** इन्हीं के सहकारी थे तथा इनका अपना स्वतन्त्र भाष्य ऋग्वेद १०म मण्डल के सूक्त ५, मन्त्र ४ से सूक्त ८६, मन्त्र ६ तक ही मुद्रित उपलब्ध है। यह भी कर्मकाण्ड का ही समर्थक है।

**वेंकट माधव** (१२वीं विक्रमी शती) ने प्रायः सम्पूर्ण ऋग्वेद पर भाष्य किया है, जो स्वल्पाक्षर है तथा याज्ञिक पद्धति पर ही आश्रित है। **आनन्दतीर्थ** (संवत् १२५५-१३३५) ने ऋग्वेद के प्रथम ४० सूक्तों पर आध्यात्मिक भाष्य की रचना की है, जिसमें अग्नि, वायु आदि नामों से नारायण को प्रतिपाद्य माना है। **आत्मानन्द** (१३वीं विक्रमी शती) का ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त (ऋग्० १।१६४) पर अध्यात्मपरक भाष्य है। **सायण** (संवत् १३७२-१४४४) का वालखिल्य सूक्तों को छोड़कर सम्पूर्ण ऋग्वेद पर भाष्य उपलब्ध है। इन्होंने अन्य वेदों पर भी भाष्य किया है। इनकी भाष्यपद्धति यज्ञपरक है, यद्यपि कहीं-कहीं इन्होंने अध्यात्म-अर्थ भी प्रदर्शित किये हैं।[2]

यजुर्वेद वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता पर उव्वट (संवत् ११००) तथा महीधर (संवत् १६४५) के कर्मकाण्डपरक भाष्य हैं, जो

---

१. सर्वमन्त्राणां कर्माङ्गत्वसिद्ध्यर्थं यतो बोद्धव्योऽर्थः, अत ऋग्वेदस्यार्थबोधनार्थमस्माभिर्भाष्यं करिष्यते। स्कन्द, ऋग्भाष्य के आरम्भ में।

२. सायण के अध्यात्मपरक अर्थों के लिय द्रष्टव्यः ऋग्भाष्य, मण्डल १, सूक्त ५०, ८६, १६४; मण्डल ६, सूक्त ९, ४७; मण्डल १०, सूक्त ८१, ८२, ११४, १७७; अथर्वभाष्य, काण्ड २, सूक्त १; काण्ड ११, सूक्त ४; काण्ड १९, सूक्त ५८; सामभाष्य, क्रमांक २५९, ६३५।

शतपथ ब्राह्मण एवं कात्यायन श्रौतसूत्र की पृष्ठभूमि पर रचे गये हैं और जिनमें यह साहस नहीं किया गया है कि कर्मकाण्ड में जो अयुक्तियुक्त तथा मन्त्रार्थविरुद्ध विनियोग प्रचलित थे उन पर प्रश्नचिह्न लगाया जाता। सायण का शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता पर तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता पर भाष्य है। ये भाष्य भी कर्मकाण्डानुसारी हैं। तैत्तिरीय संहिता पर भट्ट भास्कर (संवत् ११००) का भाष्य भी कर्मकाण्डपरक है।

सामवेद के तीन भाष्यकार उल्लेखनीय हैं—माधव, भरत स्वामी और सायण। माधव और भरत स्वामी दोनों का एक-साथ प्रो० कुन्हन राजा द्वारा सम्पादित एक भाष्य अड्यार लायब्रेरी से सन् १९४१ में प्रकाशित हुआ था, जो केवल पूर्वार्चिक (मन्त्र क्रमांक ५८५ तक) है। शेष भाग अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। माधव का काल अनुमानतः ७वीं शती विक्रमी है। इनके पिता का नाम नारायण है। इनका भाष्य पदों के मन्त्रोक्त क्रम का अनुसरण करता है। अनेक स्थलों पर अध्यात्मपरक अर्थ भी निरूपित किये गये हैं। इनकी प्रवृत्ति वैकल्पिक एकाधिक अर्थ देने की बहुत है। इन्होंने स्थान-स्थान पर अपने भाष्य में व्यत्यय स्वीकार किये हैं। इनके भाष्य का नाम 'विवरण' है। ये अपने पूर्वार्चिक के भाष्य को 'छन्दसिका विवरण' तथा उत्तरार्चिक के भाष्य को 'उत्तर विवरण' कहते हैं।[1] भरत स्वामी कश्यपगोत्री थे, इनके पिता का नाम नारायण आर्य और माता का नाम यज्ञदा था। इन्होंने होसलाधीश्वर रामनाथ के राजत्व-काल में श्री रंगपट्टम् में निवास करते हुए सामवेद का भाष्य किया था।[2] उक्त होसलाधीश्वर का काल बर्नल के अनुसार सन् १२७२-१३१० है। इस दृष्टि से भरत स्वामी ने सामभाष्य विक्रमी संवत् १३६० के आस-पास किया होगा।

---

१. "छन्दसिकोत्तररहस्यात्मकं पञ्चाग्निना माधवेन श्री नारायणसूनुना सवितुः परां भक्तिमालम्ब्य तत्प्रसादाद् भाष्यं कृतम्"—माधवभाष्यभूमिका। "इति छन्दसिकाविवरणं माधवाचार्यकृतं परिसमाप्तम्"—पूर्वार्चिकभाष्य के अन्त में।

२. "नत्वा नारायणं तातं तत्प्रसादादवाप्तधीः। साम्नां श्रीभरतस्वामी काश्यपो व्याकरोत्यृचम्।। होसलाधीश्वरे पृथ्वीं रामनाथे प्रशासति। व्याख्या कृतेयं क्षेमेण श्रीरङ्गे वसता मया। इत्थं श्रीभरतस्वामी काश्यपो यज्ञदासुतः नारायणार्यतनयोव्याख्यत् साम्नामृचोऽखिलाः।।"

—भरतस्वामिभाष्यभूमिका

इन्होंने भी कई मन्त्रों के अध्यात्मपरक अर्थ प्रदर्शित किये हैं। माधव और भरत स्वामी दोनों कई स्थानों पर अपने मन्त्र-व्याख्यानों के लिए प्रमाणस्वरूप वेदमन्त्र उद्धृत करते हैं, ब्राह्मण ग्रन्थों के उद्धरण भी देते हैं।

सायण का काल अनुमानतः संवत् १३७२-१४४४ है। ये महाराज बुक्क प्रथम के राजमन्त्री थे और उन्हीं के आदेशानुसार वेदभाष्य में प्रवृत्त हुए थे। इन्होंने याजुष तैत्तिरीय संहिता तथा ऋग्वेद का क्रमशः व्याख्यान करके तदनन्तर सामवेद का भाष्य किया था।[1] ऋग्वेदगत साममन्त्रों का भाष्य इन्होंने अपने ऋग्वेदभाष्य से ही ले लिया है। इसी कारण ऋग्वेदीय मन्त्र की अपेक्षा सामवेद में जहाँ भिन्न पाठ है, वहाँ भी ऋग्वेदीय पाठ की ही व्याख्या इनके सामभाष्य में पायी जाती है। यह इनके सामभाष्य की एक विसंगति है। यह दोष माधव और भरतस्वामी के भाष्यों में नहीं है।

हमने अपने पूर्वार्चिक के सामवेदभाष्य में स्थान-स्थान पर टिप्पणी में किन्हीं पदों पर तुलनार्थ माधव, भरतस्वामी एवं सायण के भाष्यों को उद्धृत किया है। उससे पाठकों को इनके भाष्यों के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिल सकेगी। अतः यहाँ इनके भाष्यों के विषय में अधिक लिखना अनावश्यक है।

अथर्ववेद (शौनकीय) पर सायण का ही भाष्य उपलब्ध है[2], जो कौशिक सूत्र तथा वैतानसूत्र के विनियोगों का अनुसरण करता है। तथा जिसमें टोने-टोटके, मन्त्र-तन्त्र, कृत्या-अभिचार आदि का वर्णन एवम् अरूपसमृद्ध विनियोग स्थान-स्थान पर हैं। उपर्युक्त समस्त भाष्यों पर दृष्टिपात करके हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि उनमें से अधिकतर केवल कर्मकाण्ड को आधार बनाकर लिखे गये हैं, असम्भव किस्से-कहानी एवं मनघड़न्त इतिहास को पदे-पदे दर्शाते हैं, अग्नि-अग्नायी, इन्द्र-इन्द्राणी आदि वैदिक देव-देवियों का वाच्यार्थ कुछ भी स्पष्ट नहीं करते,

---

१. "यज्ञं यजुर्भिरध्वर्युर्निर्मिमीते ततो यजुः। व्याख्यातं प्रथमं पश्चाद् ऋचां व्याख्यानमीरितम्।। साम्नामृगाश्रितत्वेन साम व्याख्याथ वर्ण्यते।" —सायणीयसामभाष्यभूमिका

२. अथर्ववेद के इन अंशों पर सायणभाष्य नहीं मिलता—काण्ड ५, ८ (सूक्त ७ से अन्त तक), ९, १०, १२-१५, २० (सूक्त ३८ से अन्त तक)।

अभिमानी देवता की मनमानी कल्पना से ओतप्रोत हैं। मांसभक्षण, पशुबलि, मन्त्र, तन्त्र, मारण-उच्चाटन आदि की पैशाचिकता को प्रश्रय देते हैं, अतः उनसे व्यापक और विशुद्ध वेदार्थ पाठक के सम्मुख नहीं आता। जो अध्यात्मपरक भाष्य हैं वे एक तो वेद के बहुत छोटे-से भाग पर किये गये हैं, दूसरे उन पर प्रायः वेदान्तिक विचारधारा का ही प्रभाव है, अतः वेद के सच्चे स्वरूप को उजागर नहीं कर पाते।

**विदेशी विद्वानों का प्रयास**

वेद-व्याख्या के प्रसंग में विदेशी विद्वानों के प्रयास की भी चर्चा कर लेना उचित होगा। जर्मन विद्वान् मैक्समूलर (Max Mueller) ने अपनी 'सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट' नामक शृंखला के एक भाग में मरुत्, रुद्र, वायु और वात देवताओं के ऋक्सूक्तों का अंग्रेजी भाषान्तर किया था। सन् १८५० में डॉक्टर एच०एच० विल्सन (H.H. Wilson) ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद किया, जिसमें सायणभाष्य को आधार रखा गया है। जर्मन विद्वान् एच० ग्रासमान (Hermann Grassmann) ने १८७६-७७ ई० में ऋग्वेद का जर्मन भाषा में पद्यानुवाद किया, जो सायणभाष्य से सर्वथा स्वतन्त्र है तथा रॉथ की भाषा वैज्ञानिक पद्धति पर आश्रित है। जर्मनी के ही ए० लुडविग (Alfred Ludwig) ने १८७५-८६ में छह जिल्दों में ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद विस्तृत भूमिका तथा व्याख्या के साथ किया। कार्ल गैल्डनर (Karl Geldner) ने १९२३-५१ ई० में सम्पूर्ण ऋग्वेद का अपना अनुवाद प्रकाशित कराया। आर० टी० एच० ग्रिफिथ (Ralph T.H. Griffith) ने १८८९-९८ ई० में चारों वेदों का अंग्रेजी पद्यानुवाद किया। जर्मन विद्वान् डॉक्टर एच० ओल्डनबर्ग (H. Oldenberg) ने १९०९-१२ ई० में जर्मन भाषा में ऋग्वेद की विवेचना पूर्ण व्याख्या दो जिल्दों में प्रकाशित करायी। लांग्ल्वा (Langlois) नामक एक विद्वान् ने सम्पूर्ण ऋग्वेद का चार भागों मे फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया है।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता का एक अंग्रेजी अनुवाद डॉक्टर ए०बी० कीथ (A.B. Keith) ने किया, जो हार्वर्ड ओरियण्टल सिरीज में सन् १९१४ में अमेरिका से छपा था। जे० स्टेवेन्सन (J. Stevenson) ने सामवेद की राणायनीय शाखा का संस्करण

अंग्रेजी अनुवाद-सहित सम्पादित किया, जिसे विल्सन ने १८४३ ई० में प्रकाशित किया। थियोडोर बेन्फे (Theodor Benfey) ने सामवेद की कौथुम शाखा का संस्करण जर्मनभाषानुवाद-सहित १८४८ ई० में प्रकाशित कराया। अथर्ववेद की शौनकीय शाखा का डब्ल्यू० एच० ह्विटने (W.H. Whitney) ने भूमिकायुक्त अपूर्ण सटिप्पण अनुवाद किया था। जिसे सी० आर० लेनमेन (C.R. Lanman) ने पूरा करके १९०९ ई० में प्रकाशित किया। ब्लूमफील्ड (M. Bloomfield) ने अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा का अंग्रेजी अनुवाद १९०१ ई० में प्रकाशित कराया था। इसके अतिरिक्त विविध वैदिक संहिताओं, भाष्यों, ब्राह्मणग्रन्थों आदि के शुद्ध संस्करण, व्याख्या सहित वेदमन्त्रसंकलन, कोश आदि का प्रकाशन भी वैदेशिक विद्वानों ने किया है।

विदेश के अन्वेषकों द्वारा किये गये वेदभाषान्तर या वेद-व्याख्यान या तो सायणभाष्य पर आधारित हैं, अथवा नूतन हैं, तो भारतीय परम्परा की उपेक्षा करके विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक पद्धति का अवलम्बन लेकर चले हैं, अतः इनका प्रयास किसी अंश में प्रशंसनीय होते हुए भी वेदों के रहस्यार्थ को प्रकट करने में सर्वथा असमर्थ रहा है।

## ११. स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेदसंहिता का प्रारम्भ से लेकर ७म मण्डल के, ६१वें सूक्त के २य मन्त्र तक और वाजसनेयी माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेदसंहिता सम्पूर्ण का भाष्य किया है। उनका यह वेदभाष्य पूर्ववर्ती भाष्यों की अपेक्षा अनेक नवीन विशेषताएँ रखता है, जिनमें से कुछ का यहाँ दिग्दर्शन करा देना उपयोगी होगा।

### १. वैदिक देवों का अर्थानुसन्धान

वेदों में अग्नि, वायु, इन्द्र, अश्विनौ, मित्र, वरुण, अर्यमा, रुद्र, सविता आदि पुंल्लिङ्गी देवों का तथा अदिति, उषस्, सरस्वती, पृथिवी आदि स्त्रीलिङ्गी देवताओं का पुनः-पुनः वर्णन आता है। उव्वट, सायण, महीधर आदि पूर्ववर्ती भाष्यकारों ने इन्हें पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र देव-देवियाँ स्वीकार किया था तथा यह माना था कि वेदवर्णित प्रत्येक प्राकृतिक देवता उषा, सूर्य, पृथिवी, आपः, नदी, ओषधि आदि का एक-एक स्वतन्त्र चेतन

अभिमानी देवता है, उसी चेतन देवता की इन नामों से वेद में स्तुति की गयी है। जिन देवताओं का प्राकृतिक स्वरूप निश्चित नहीं है वे भी स्वतन्त्र चेतन देवता हैं। यज्ञों में आवाहन करने पर ये देवता हवि से प्रसन्न होकर यजमान को पुत्र, पौत्र, पशु, धन आदि प्रदान करते हैं। परन्तु स्वामी दयानन्द ने प्रमाणपुरस्सर यह घोषणा की कि वेद अनेकेश्वरवादी नहीं हैं, अपितु वेदों के विभिन्न पुंल्लिङ्गी और स्त्रीलिङ्गी देवता पिता और माता के रूप में एक परमेश्वर के ही गुणकर्म बोधक विभिन्न नाम हैं। वेद की वर्णनशैली की यह अद्भुतता है कि साथ ही वे देवता शरीर में आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, अपान, उदान, चक्षु, श्रोत्र आदि के, राष्ट्र में राजा, सेनापति, न्यायाधीश, गृहपति, आचार्य आदि के और भौतिक जगत् में प्रकृति, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल आदि के भी वाचक होते हैं। जहाँ जैसा प्रकरण हो वहाँ वैसे अर्थ करने चाहिएँ।

इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर दयानन्द-भाष्य में प्रसंग या औचित्य के अनुसार **'अग्नि'** के अग्रणी, विज्ञानस्वरूप, सर्वविद्योपदेष्टा, स्वयंप्रकाशमान, प्रकाशक परमेश्वर, विद्वान् अध्यापक, उपदेशक, नायक राजा, वीर सेनापति, यज्ञाग्नि, शिल्प में प्रयोक्तव्य भौतिक अग्नि आदि अर्थ किये गये हैं। **'इन्द्र'** को ऐश्वर्यशाली परमेश्वर, शत्रुविदारक राजा, सभाशालासेनान्यायाधीश, विद्यार्थियों की जड़ता का विच्छेदक, गुरु, वायु, विद्युत्, सूर्य आदि अर्थों में ग्रहण किया गया है। **'रुद्र'** को दुष्टरोदक परमात्मा, जीवात्मा, वैद्य, वायु, प्राण, शत्रुसंहारक सेनापति, ब्रह्मचारी आदि अर्थों में व्याख्यात किया गया है। **'अश्विनौ'** के राजा-अमात्य, प्राण-अपान, जल-अग्नि, वायु-विद्युत्, सूर्य-चन्द्र, अध्यापक-उपदेशक, सभेश-सेनेश आदि अर्थ किये गये हैं।

वैदिक देवियों को भी स्वामी दयानन्द ने भौतिक जगत् एवं शरीर में घटाने के साथ-साथ समाज में भी घटाया है। तदनुसार उनके भाष्य में 'उषा' का अर्थ प्रभातवेला या सन्ध्या के अतिरिक्त 'उषा' के समान ज्ञान से समस्त रूपों की प्रकाशिका विदुषी स्त्री' भी किया गया है।[1] इसी प्रकार **'सरस्वती'** का अर्थ

१. (उषः) उषर्वत् सर्वरूपप्रकाशिके विदुषि स्त्रि। ऋ० भा० ६।४९।७, (उषः) उषर्वद् विद्यमाने विदुषि। वही १।११३।१२ (उषसः) प्रभातवेला इव स्त्रियः।—वही १।११३।२०।

वाणी एवं वेगवती नदी के अतिरिक्त विदुषी कन्या, प्रशस्तज्ञानवती विदुषी स्त्री, प्रशस्तविज्ञानयुक्ता पत्नी, शिक्षिता माता एवं वेदादिशास्त्रविज्ञानयुक्ता अध्यापिका भी किया है।[1] प्रचुरता के साथ वैदिक देवताओं को सामाजिक या राष्ट्रिय अर्थों में लेकर सम्पूर्ण मन्त्र को सामाजिक या राष्ट्रपरक अर्थ की रंगत देना स्वामी दयानन्द की ही महत्त्वपूर्ण देन है। इससे पूर्व ब्राह्मणग्रन्थों में ऐसे अर्थों के क्वचित् संकेतमात्र दिये गये थे। स्वामी दयानन्द ने वैदिक देवताओं के जो अर्थ किये हैं वे स्वयं वेदों से तथा ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक आदि साहित्य से समर्थित हैं।

**२. वेदमन्त्रों की अनेकार्थकता**

वेदमन्त्रों के अध्यात्म, अधिदैवत, अधियज्ञ आदि अर्थ करने की परम्परा पहले से ही प्रवृत्त थी। यास्क ने अपने निरुक्त में कई स्थलों पर इस प्रकार की मन्त्र-व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। स्वामी दयानन्द ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। उन्होंने मन्त्रार्थों को दो भागों में विभक्त किया है—पारमार्थिक अर्थ और व्यावहारिक अर्थ।[2] इन्हीं दो में पूर्व-आचार्यों से निर्धारित आध्यात्मिक, आधिदैवत, अधियज्ञ, अधिभूत आदि सकल अर्थ-प्रक्रियाएँ समाविष्ट हो जाती हैं। परमेश्वर तथा परमेश्वर प्राप्ति सम्बन्धी अर्थ पारमार्थिक प्रक्रिया में और शेष सब अर्थ व्यावहारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत होते हैं।

स्वामी दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में वेदमन्त्रों की अनेकार्थक योजना अनेक स्थलों पर की है। ऋग्वेद के प्रथम पाँच अग्निदेवताक मन्त्रों की व्याख्या उन्होंने परमेश्वरपरक तथा शिल्पाग्निपरक की है। 'धूर्रसि धूर्व धूर्वन्तम्' यजु० १।८ में भी अग्नि के अर्थ परमेश्वर तथा शिल्पसाधक अग्नि दोनों लिये हैं। वायुदेवताक ऋग्० १।२।१-३ इन तीनों मन्त्रों की व्याख्या परमेश्वर तथा भौतिक वायु दोनों पक्षों में की है। इन्द्र देवता के

---

१. (सरस्वती) विज्ञानाढ्या (विदुषी कन्या)। ऋ० भा० ६।४९।७, प्रशस्तं सरो विज्ञानं विद्यते यस्याः सा (विदुषी स्त्री)। य० भा० १९।८३, प्रशस्तज्ञानयुक्ता पत्नी। वही १९।८२, विदुषी शिक्षिता माता। वही २०।६४ (सरस्वतीम्) बहुविधं सरो वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्यते यस्यास्तां विज्ञानयुक्ताम् अध्यापिकां स्त्रियम्। वही १।२७

२. अथात्र यस्य-यस्य मन्त्रस्य पारमार्थिकव्यावहारिकयोर्द्वयोरर्थयोः श्लेषालङ्कारादिना सप्रमाणः सम्भवोऽस्ति तस्य-तस्य द्वौ द्वावर्थौ विधास्येते। —ऋ० भा० भू०, प्रतिज्ञाविषय

'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषम्' ऋग्० १।६।१ मन्त्र को परमेश्वर, आदित्य और प्राण तीन पक्षों में व्याख्यात किया है। 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो' ऋग्० १।३५।२ आदि सवितृदेवताक मन्त्र के अर्थ परमेश्वर तथा सूर्य उभय पक्ष में किये हैं। सूर्यपरक अर्थ में सूर्य की आकर्षणशक्ति का वर्णन किया है। 'अदित्यास्त्वगसि' यजु० ४।३० आदि वरुणदेवताक मन्त्र की व्याख्या परमेश्वर, सूर्य तथा वायु तीन पक्षों में की है। 'कद्रुद्राय प्रचेतसे' ऋग्० १।४३।१ आदि रुद्र देवता के मन्त्र को परमेश्वर, जीवात्मा तथा भौतिक वायु तीन पक्षों में घटाया है। इन्द्र देवता के 'योगे योगे तवस्तरम्' ऋग्० १।३०।७ आदि मन्त्र की ईश्वर तथा सेनाध्यक्ष दो पक्षों में व्याख्या की है। प्रसिद्ध मन्त्र 'यां मेधां देवगणाः' यजु० ३२।१४ में अग्नि पद से जगदीश्वर तथा विद्वान् अध्यापक का ग्रहण किया है। 'अयं मित्रो नमस्यः' ऋग्० ३।५९।४ आदि मन्त्र में मित्र के अर्थ ईश्वर तथा राजा लेकर व्याख्यान किया गया है। 'पुरां भिन्दुर्' ऋग्० १।११।४ आदि इन्द्रविषयक मन्त्र की व्याख्या सूर्य और सेनापति उभय पक्षों में की है। सोम देवता का 'त्वं सोमासि सत्पतिः' ऋग्० १।९१।५ आदि मन्त्र श्लेष से परमेश्वर, शालाध्यक्ष तथा सोम ओषधी तीन पक्षों में व्याख्यात किया गया है। 'वृत्रखादो बलंरुजः' ऋग् ३।४५।२ आदि इन्द्रदेवताक मन्त्र की अर्थयोजना विद्युत् सूर्य, वायु और राजापरक की गयी है। ऐसे मन्त्र दो सौ से भी अधिक हैं जिनमें श्लेषालंकार मानकर स्वामी जी एकाधिक अर्थ करते हैं। मन्त्रों की एकाधिक व्याख्याएँ जितनी स्वामी जी ने अपने वेदभाष्य में की हैं उतनी अन्य किसी वेदभाष्यकार ने नहीं की हैं।[1]

**३. ऐतिहासिक अर्थों की उपेक्षा**

वेदमन्त्रों में प्रयुक्त नामों को किन्हीं ऐतिहासिक ऋषियों, ऋषिकाओं, राजाओं, रानियों, नदियों, नगरों आदि के नाम मान लेने की प्रवृत्ति वेदभाष्यकारों में पायी जाती है। वेदार्थ का ऐतिहासिक सम्प्रदाय यास्काचार्य (७०० ई० पू०) से भी पहले विद्यमान था, क्योंकि उन्होंने अपने निरुक्त ग्रन्थ में कई प्रसंगों में इस सम्प्रदाय का उल्लेख किया है। पर अपनी सम्मति उन्होंने इसके विरोध में ही दी है।[2] आधुनिक युग के वेदविचारक

१. अधिक विस्तार के लिए द्रष्टव्य : लेखक का ग्रन्थ 'वेदभाष्यकारों की वेदार्थप्रक्रियाएँ', अध्याय ४

२. द्रष्टव्यः निरु० २।१७, १२।१, १२।१०

विदेशी विद्वानों का तो आधारस्तम्भ ही यह है, अतएव वेद में पदे-पदे इतिहास का अन्वेषण करने का पूर्वाग्रह उन्होंने बनाया हुआ है। विदेशों के विद्वान् वेदों में लौकिक इतिहास भले ही मानें, पर आश्चर्य तो तब होता है जब वेदों को सृष्टि के आदि में प्रकट हुआ ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले स्कन्दस्वामी, उव्वट, सायण, महीधर आदि भारतीय भाष्यकार भी अनेक स्थलों पर वेदमन्त्रों की इतिहासपरक व्याख्याएँ करते हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने सुदीर्घ वेदभाष्य में एक स्थल पर भी इतिहास नहीं माना है। ऋ० भा० भू० में वे स्पष्ट घोषणा करते हैं कि वेदमन्त्रों में इतिहास का लेश भी नहीं है, अतः सायणाचार्य आदि ने जहाँ-कहीं इतिहास का वर्णन किया है वह भ्रममूलक ही है।[१]

अपने वेदभाष्य में भी कई स्थलों पर स्वामी दयानन्द ने सायण के ऐतिहासिक अर्थों का विरोध किया है। यथा—सायण ने ऋ० १।३१।११ में नहुष को राजा-विशेष, ऋ० १।१८।१ में कक्षीवान् औशिज को उशिक् नामक की माता का पुत्र कक्षीवान् ऋषि, ऋ० १।३१।१७ में ययाति को इस नाम का राजा, ऋ० १।३६।१८ में तुर्वश, यदु, उग्रदेव, नववास्तु, बृहद्रथ और तुर्वीति को राजर्षि-विशेष माना है, पर स्वामी दयानन्द इन स्थलों पर नैरुक्त प्रक्रिया के अनुसार व्याख्यान करते हैं और सायण का नाम लेकर उसके इतिहासपरक अर्थों का खण्डन करते हैं। उनका तर्क है कि राजा नहुष आदि तो इदानींतन हैं और वेद सनातन हैं, अतः सनातन वेदों में परवर्ती ऐतिहासिक राजा आदियों की गाथा नहीं हो सकती।[२]

वेदों में लौकिक इतिहास न होने की स्थापना तो अपने ऋग्वेदभाष्य के उपोद्घात में सायण ने भी की थी[३], पर

१. नात्र मन्त्रभागे हीतिहासलेशोऽप्यस्तीत्यवगन्तव्यम्। अतो यच्च सायणाचार्यादिभिर्वेदप्रकाशादिषु यत्र कुत्रेतिहासवर्णनं कृतं तद् भ्रममूलमेवास्तीति मन्तव्यम्। —ऋ० भा० भू०, वेदसंज्ञाविचारविषय।

२. नहुषस्येत्यत्र सायणाचार्येण नहुषनामकराजविशेषो गृहीतः, तदसत्। कस्यचिन्नहुषस्येदानींतनत्वाद् वेदानां सनातनत्वात् तस्य गाथाऽत्र न सम्भवति, निघण्टौ नहुषस्येति मनुष्यनाम्नः प्रसिद्धेश्च।
—द० भा०, ऋ० १।३१।११

३. बबराद्यनित्यदर्शनं यदुक्तं तस्य किमुत्तरमित्याशङ्क्य उत्तरं सूत्रयति— परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम् (जै० सू० १।१।३१) इति।
यत् परं बबरादिकं तत् शब्द सामान्यमेव न तु मनुष्यो बबरनामकोऽत्र विवक्षितः बबरध्वनियुक्तस्य प्रवहणस्वभावस्य वायोरत्र वक्तुं शक्यत्वात्।
—सायण, ऋग्भाष्य, उपोद्घात, पूनासंस्करण पृ० १५

वेदभाष्य में वे उसका निर्वाह नहीं कर पाये। किन्तु महर्षि दयानन्द ने अपनी प्रतिज्ञा का अपने वेदभाष्य में सर्वत्र निर्वाह किया है। वे अगस्त्य, अत्रि, अम्बरीष, कुत्स, कुशिक, त्रसदस्यु, दिवोदास, वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र, शुनःशेप प्रभृति समस्त ऐतिहासिक प्रतीत होनेवाले नामों की नैरुक्त पद्धति से व्याख्या करते हैं। सचमुच वेद में लौकिक इतिहास की कल्पना वेद को जर्जर कर देने वाली है। वेदों में इतिहास न मानकर योगार्थ के बल से जो अर्थ करने की पद्धति है उसी से वेद का रहस्यार्थ हृदयंगम किया जा सकता है। अन्यथा ऐतिहासिक कथाएँ जैसी भाष्यकारों ने रचकर वेदों पर थोपी हैं, वैसी प्रत्येक वेदमन्त्र पर बनायी जा सकती हैं। वेद के ऐतिहासिक सम्प्रदाय को व्यापक क्रियात्मक उत्तर देने का श्रेय एकमात्र वेदधुरन्धर दयानन्द को है।

### ४. पूर्व-विनियोगों से स्वतन्त्र वेदार्थ

पूर्वकाल में दर्श, पौर्णमास, वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सोमयाग आदि विविध श्रौत यागों में, ब्रह्मयज्ञादि पञ्च यज्ञों में, जातकर्मादि विभिन्न संस्कारों में तथा अन्य अनेक विधि-विधानों में वेदमन्त्रों का विनियोग किया गया था। उन विनियोगों की परीक्षा करने से ज्ञात होता है कि उनमें कुछ विनियोग रूपसमृद्ध अर्थात् मन्त्रार्थ से अनुमोदित हैं और कुछ अरूपसमृद्ध हैं अर्थात् या तो मन्त्रार्थ से विरुद्ध हैं या मन्त्रार्थ से असम्बद्ध हैं। ब्राह्मणग्रन्थकारों ने रूपसमृद्ध विनियोगों से ही यज्ञ की परिपूर्णता मानी थी[१]। तथापि अरूपसमृद्ध विनियोग भी चलते रहे और उन्हें प्रामाणिक भी माना जाता रहा। स्वामी दयानन्द ने यह स्पष्ट घोषणा की कि पूर्वकृत विनियोगों में जो युक्तिसिद्ध, वेदादि प्रमाणों के अनुकूल और मन्त्रार्थ का अनुसरण करने वाले विनियोग हैं वे ही ग्राह्य हो सकते हैं।[२] साथ ही यह भी माना कि वेदव्याख्या के लिए रूपसमृद्ध विनियोगों का भी अनुसरण करना अनिवार्य नहीं है, उन विनियोगों से स्वतन्त्र

---

१. एतद् वै यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धं यत् कर्म क्रियमाणम् ऋगभिवदति। ऐ० ब्रा० १।१६,
एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद् रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणम् ऋग् यजुर्वाऽभिवदति। गो० उ० २।६

२. तस्माद् युक्तिसिद्धो वेदादिप्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो ग्रहीतुं योग्योऽस्ति।
ऋ० भा० भू० प्रतिज्ञा-विषय।

होकर भी वेद के व्याख्यान किये जा सकते हैं। अतएव उन्होंने ऋग्वेद एवं यजुर्वेद का अपना भाष्य पूर्व-विनियोगों का अनुसरण किये बिना ही लिखा है और भूमिका में यह निर्देश कर दिया है कि मैं तो शब्दार्थतः ही मन्त्रों की व्याख्या करूँगा, जिन्हें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त कर्मकाण्ड का परिचय पाना हो वे ऐतरेय, शतपथ, पूर्वमीमांसा, श्रौतसूत्रादि को देख सकते हैं, किन्तु उनमें जो वेदविरुद्ध विनियोग हैं उन्हें न मानें।

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य से यह स्पष्ट है कि पूर्व-विनियोगों से स्वतन्त्र होकर की गयी उनकी वेदव्याख्या महोपकारक सिद्ध हुई है और उससे पाठक को वेदों में मानवोपयोगी विविध ज्ञान विज्ञानों एवं कर्तव्यों का दर्शन हो जाता है तथा उसे यह भ्रान्ति नहीं होती कि वेद में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। महीधर ने पूर्व-विनियोगों से बद्ध होकर तथा उनकी प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता का विचार किये बिना अपना यजुर्वेदभाष्य किया, अतः अनेक स्थलों पर वह भाष्य भ्रान्त है, यथा छठे अध्याय में अग्नीषोमीय पशुप्रयोग के प्रकरण में अज (बकरे) का वध, अश्वमेध प्रकरण में २३वें अध्याय में राजमहिषी का अश्वमेधीय अश्व के समीप शयन (मन्त्र १९-२१), राजपत्नियों तथा पुरोहितों के मध्य अश्लील हास-परिहास, राजपत्नियों द्वारा अश्व के शरीर को सलाइयों से गोदना (मन्त्र ३३-३७) और अश्व का पेट काटना (मन्त्र ३९-४२), २५वें अध्याय में अश्व के काटे गये अंगों का देवताओं के लिए होम करना, ३५वें अध्याय में पितृमेध-प्रकरण में गाय की चर्बी का होम करना (मन्त्र २०) आदि।[१] इन स्थलों पर पूर्व-विनियोगों का अनुसरण न करते हुए लिखा गया दयानन्द-भाष्य अत्यन्त चामत्कारिक तथा वेद के सत्य स्वरूप का प्रकाशक है।

### ५. वेदों में विविध विद्याओं का आविष्कार

पूर्व-भाष्यकारों में से अधिकांश ने वेदों में कर्मकाण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी विद्या का आविष्कार नहीं किया था। परन्तु स्वामी दयानन्द 'वेदों में सब विद्याएँ हैं' यह घोषणा करते

---

१. विशेष विस्तार के लिए द्रष्टव्य : आर्यसमाज पानीपत से प्रकाशित "धर्म और संस्कृति" ग्रन्थ में लेखक का लेख 'स्वामी दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य पर एक तुलनात्मक दृष्टि।'

हैं।[1] उन्होंने अपने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' ग्रन्थ में ब्रह्मविद्या, सृष्टिविद्या, पृथिव्यादिलोकभ्रमणविद्या, आकर्षणानुकर्षणविद्या, प्रकाश्यप्रकाशकविद्या, गणितविद्या, उपासनाविद्या, मुक्तिविद्या, नौविमानादि-निर्माणचालनविद्या, तारयन्त्रविद्या, वैद्यकविद्या, राजविद्या, यज्ञविद्या, कृषिविद्या, शिल्पविद्या, वर्णाश्रम विद्या आदि विविध विद्याओं का वैदिक प्रमाणों सहित प्रतिपादन किया है तथा स्वकीय वेदभाष्य में भी इनका प्रकाश किया है।

**६. कतिपय अन्य विशेषताएँ**

स्वामी दयानन्द के वेदभाष्य में कुछ अन्य विशेषताएँ भी पायी जाती हैं, जो अन्य वेदभाष्यकारों के भाष्यों में उपलब्ध नहीं होतीं। उदाहरणार्थ कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(क) दयानन्द सरस्वती वेदमन्त्रों के अश्लील, परमात्मा के स्वभाव एवं सृष्टिनियम के विरुद्ध और लोकविद्वेषकारी अर्थ कहीं नहीं करते।

(ख) वे वेदों में मांसभक्षण, पशुबलि, जड़पूजा, मृतकश्राद्ध, जादू-टोना, असम्भव चमत्कार आदि नहीं मानते हैं। जिन भाष्यकारों ने इस पक्ष के अर्थ अपने वेदभाष्यों में किये हैं उन्हें वे भ्रान्त ठहराते हैं।

(ग) निर्वचनशास्त्र को भी उनका विशेष योगदान है, यत: अपने वेदभाष्य में तथा उणादिकोष की व्याख्या में उन्होंने अनेक नवीन निर्वचन प्रस्तुत किये हैं।

(घ) वे वैदिक शब्दों को व्यापक अर्थों में लेते हैं। यथा देव शब्द से परमेश्वर, विद्वान्, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, ज्ञानेन्द्रिय आदि का ग्रहण करते हैं।[2] यज्ञ में केवल अग्निहोत्र को नहीं, प्रत्युत देवपूजा, संगतिकरण, शिल्प, दान आदि को भी सम्मिलित करते हैं।[3] धनवाचक रे, राधस्, रयि, धन, वसु प्रभृति शब्दों से

१. वेदेषु सर्वा विद्या: सन्ति आहोस्विन्? अत्रोच्यते, सर्वा: सन्ति मूलोद्देशत:।
—ऋ० भा० भू०, ब्रह्मविद्या विषय का आरम्भ।

२. द्रष्टव्य: ऋ० भा० भू०, वेदविषयविचार।

३. धात्वर्थाद् यज्ञार्थस्त्रिधा भवति। विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिक-पारमार्थिकसुखसम्पादनाय सत्करणं, सम्यक् पदार्थगुणसम्मेलविरोधज्ञानसङ्गत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणं, नित्यं विद्वत्समागमानुष्ठानं, शुभविद्यासुखधर्मादिगुणानां नित्यं दानकरणमिति।—य० भा०।१।२

सुवर्ण आदि धन के साथ-साथ विद्या, धर्म, आरोग्य, चक्रवर्ती राज्य, मोक्ष आदि धन को भी गृहीत करते हैं।[1] रश्मि आदि किरणवाची शब्दों से केवल भौतिक प्रकाश की किरणों को ही नहीं, अपितु विद्या-विज्ञान के तेजों एवम् अन्त:प्रकाशक गुणों का भी बोध कराते हैं।[2] रथ शब्द का प्राय: सर्वत्र ही भूयान, जलयान एवं विमान अर्थ लेते हैं।[3] यही स्थिति वृत्र, वृक, नमुचि, नदी, धनुष्, इषु आदि अन्य अनेक शब्दों की भी है।[4]

(ङ) उनका वेदभाष्य मानव को अभ्युदय तथा नि:श्रेयस दोनों की प्राप्ति के लिए उद्बोधन देता है। लौकिक उत्कर्ष में वे समग्र भूमण्डल के धर्मपूर्ण चक्रवर्ती राज्य तक पहुँचाते हैं तो दिव्य उत्कर्ष में मोक्ष के परमानन्द तक ले जाते हैं।

इस प्रकार अनेक नवीनताओं एवं विशेषताओं के कारण स्वामी दयानन्द का वेदभाष्य अत्यन्त उपादेय है।

## १२. प्रस्तुत सामवेद-भाष्य

**प्रस्तुत सामवेद-भाष्य संस्कृत तथा आर्यभाषा** दोनों में है। प्राचीनकाल में संस्कृत ही बोलचाल की भाषा होने से प्राचीन परिपाटी संस्कृत में ही वेद-व्याख्यान करने की रही है। मध्यकालीन भाष्यकारों ने भी अपने भाष्यों में संस्कृत को ही अपनाया,

---

१. (राय:) विद्याचक्रवर्तिराज्यश्रियादीनि धनानि।–य० भा० २।२४, (राधस:) विद्यासुवर्णचक्रवर्तिराज्यादिधनस्य।–ऋ० भा० १।२२।७, (धनानि) विद्याधर्मचक्रवर्तिराज्यश्रीप्रसिद्धानि।–ऋ० भा० १।४२।६, (रयिम्) धर्ममोक्षविद्याचक्रवर्तिराज्यारोग्यादिस्वरूपं धनम्। वेदभाष्य नमूना–ऋ० १।१।३, (वसु) सुखेषु वसन्ति येन तद् धनं विद्याऽऽरोग्यादि सुवर्णादि वा।–ऋ० भा० १।१०।६

२. (रश्मिभि:) प्रकाशकैर्गुणै: किरणैर्वा। (रश्मिभि:) अन्त:प्रकाशकैर्गुणै:।–य० भा० १।३१

३. (रथे) भूजलाकाशगमनार्थे याने।–ऋ० भा० १।६।२

४. (वृत्रम्) मेघमिव अविद्याम्।–ऋ० भा० ४।१८।११, प्रकाशावरकं मेघमिव धर्मात्मावरकं (दुष्टं शत्रुम्)।–य० भा० ३३।२६, (वृक:) वृकवदुत्कोचकरचोर:।–ऋ० भा० २।२८।१०, (नमुचिम्) योऽधर्म न मुञ्चति तम् (अधर्मात्मानं जनम्)। ऋ० भा० २।१४।५, (नमुचे:) न मुञ्चति परपदार्थान् दुष्टाचारान् वा य: स्तेनस्तस्य।–य० भा० १०।१४, (नदीनाम्) सरितामिव विद्यमानानां विदुषीणाम्।–ऋ० भा० ३।३३।१२, (नदीभि:) सरिद्भिरिव नाडीभि:।–ऋ० भा० ५।४१।१९, (धनु:) शस्त्रास्त्रम्।–य० भा० २९।३९, (इषव:) शस्त्रास्त्राणि।–य०भा० १६।६६

क्योंकि संस्कृत किसी अंश तक समग्र भारत में समझी जाती थी। ज्यों-ज्यों संस्कृत का प्रचलन न्यून होता गया, त्यों-त्यों संस्कृतेतर भारतीय भाषाओं में तथा अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी वेदों के भाषान्तर किये जाने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत तथा आर्यभाषा दोनों में भाष्य किया है। वे ऋग्वेद-संहिता (अपूर्ण) तथा यजुर्वेद-संहिता (सम्पूर्ण) का तो भाष्य कर गये, किन्तु सामवेद और अथर्ववेद सर्वथा अछूते ही रहे। इस कारण स्वामी दयानन्द की ही शैली से सामवेद और अथर्ववेद का भाष्य किये जाने की आवश्यकता सार्वदेशिक सभा, परोपकारिणी सभा, प्रान्तीय सभाओं, विद्वानों, वेद-प्रेमियों एवम् आर्य साहित्य-प्रकाशकों की ओर से निरन्तर अनुभव की जा रही थी। अन्य किन्हीं मान्य विद्वानों को इस विषय में आगे आता न देखकर आर्यसमाज के मूर्धन्य संन्यासियों एवं जागरूक नेताओं से प्रेरणा तथा आशीर्वाद पाकर मैंने ही इस दिशा में प्रवृत्त होने तथा सामवेद का अभीष्ट संस्कृत-आर्यभाषा-भाष्य करने का कठिन कार्य अपने हाथ में लिया। परोपकारिणी सभा (अजमेर) के मुखपत्र 'परोपकारी' के अप्रैल १९८५ के अंक में सामवेद के प्रथम १० मन्त्रों का नमूना-भाष्य प्रकाशित होने पर उसे समीक्षात्मक दृष्टि से देखकर अनेक विद्वानों ने प्रशस्ति-पत्र भेजकर तथा आवश्यक परामर्श देकर मेरा उत्साहवर्धन किया, जिससे मध्य-मध्य में अनेक प्रतिकूलताएँ उपस्थित होते रहने पर भी भाष्य के कार्य में लगे रहने की प्रेरणा मुझे मिली।

**व्याख्या-क्रम**

महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेद-भाष्य तथा यजुर्वेद-भाष्य में प्रत्येक मन्त्र पर भाष्य-क्रम[1] इस प्रकार है--१.मन्त्रार्थभूमिका (उत्थानिका), संस्कृत में, २. मन्त्रार्थभूमिका, आर्यभाषा में, ३.मूल मन्त्र सस्वर, ४. पदपाठ सस्वर, ५. पदार्थ (सप्रमाण), संस्कृत में, ६. अन्वय, ७. भावार्थ, संस्कृत में ८. अन्वयानुसारी पदार्थ, आर्यभाषा में, ९. भावार्थ, आर्यभाषा में।[2]

१. मन्त्रार्थभूमिका ह्यत्र मन्त्रस्तस्य पदानि च। पदार्थान्वयभावार्थाः क्रमाद् बोध्या विचक्षणैः॥
—ऋ० भा० भू०, ग्रन्थ समाप्ति।

२. दयानन्द-भाष्य में संख्या ८ तथा ९ को क्रमशः 'पदार्थान्वयभाषा' और 'भावार्थभाषा' में लिखा है।

दयानन्द-भाष्य में आर्यभाषा-पदार्थ तो सान्वय है, किन्तु संस्कृत-पदार्थ सान्वय न होकर उस क्रम से है जिस क्रम से मन्त्र में पद आये हैं तथा अन्वय पृथक् दे दिया गया है। यद्यपि यह दयानन्द भाष्य में सोद्देश्य ही है, तथापि हमने इसमें कुछ परिवर्तन किया है। हमने अन्य व्याख्या-क्रम तो दयानन्द-भाष्य के समान ही रखा है, केवल इतना अन्तर किया है कि पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखकर संस्कृत-पदार्थ भी आर्यभाषा-पदार्थ के समान सान्वय दिया है। इसके अतिरिक्त आर्यभाषा की मन्त्रार्थभूमिका को आर्यभाषा-भाष्य के साथ जोड़ दिया है, जिससे संस्कृत-भाष्य तथा आर्यभाषा-भाष्य दोनों सम्पूर्ण पृथक्-पृथक् हो गये हैं। इस पद्धति का आश्रय लेने से संस्कृत-माध्यम के पाठक केवल संस्कृत-भाष्य से ही वेदार्थ समझ सकेंगे, उन्हें आर्यभाषा-भाष्य देखना आवश्यक नहीं होगा। जिन्हें आर्यभाषा के माध्यम से वेदार्थ-ज्ञान अपेक्षित है वे आर्यभाषा-भाष्य से उपकृत हो सकेंगे, केवल प्रमाणभाग के लिए उन्हें संस्कृत-भाष्य पर निर्भर रहना होगा।

स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद-भाष्य में प्रत्येक सूक्त के अन्त में तथा यजुर्वेद-भाष्य में प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस-उस सूक्त एवम् अध्याय की पूर्व-पूर्व सूक्त एवम् अध्याय के साथ संगति भी दर्शायी है। उसी पद्धति पर हमने भी प्रस्तुत सामवेद-भाष्य में पूर्वार्चिक की प्रत्येक दशति के पश्चात् उसकी पूर्व दशति के साथ संगति दिखाने का प्रयास किया है।

**व्याख्या-दृष्टि**

स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के अपने भाष्य में पारमार्थिक तथा व्यावहारिक दोनों दृष्टियाँ सम्मुख रखी हैं। उसी का अनुसरण हमने भी अपने इस सामवेद-भाष्य में किया है। सामवेद का उपासना से विशेष सम्बन्ध होने के कारण पारमार्थिक या अध्यात्म व्याख्या तो हमने प्रत्येक मन्त्र पर ही की है, उसके साथ अनेक स्थलों पर ब्रह्म-क्षत्र, राजा-प्रजा, आचार्य-शिष्य सेनापति-सैनिक, गृहपति गृहजन, प्राण-इन्द्रिय, भौतिक सूर्य, भौतिक अग्नि, भौतिक वायु, आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्प आदि से सम्बद्ध व्यावहारिक अर्थों का दर्शन भी किया गया है। इसी कारण भाष्य में दो अर्थ अनेक मन्त्रों के हो गये हैं। कुछ मन्त्र तीन, चार या पाँच दृष्टियों से भी व्याख्यात हुए हैं। सामवेद की इस व्याख्या में ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों का प्रतिपादन हुआ

है। ऐसा करने में महर्षि दयानन्द की 'चतुर्वेदविषयसूची' से भी प्रेरणा मिली है।

जो मन्त्र यास्कीय निरुक्त में व्याख्यात है उस पर स्वकृत संस्कृत-पदार्थ के पश्चात् निरुक्त की व्याख्या भी सम्पूर्ण या आंशिक रूप में प्रायः उद्धृत कर दी गयी है, चाहे वह व्याख्या हमारी व्याख्या से भिन्न भी क्यों न हो। किन्तु आर्यभाषा-भाष्य में नैरुक्त व्याख्या का अभिप्राय नहीं खोला गया है।

प्रस्तुत भाष्य में महर्षि दयानन्द की वेद-विषयक धारणाओं को यथाशक्ति ध्यान में रखा गया है। वेदमन्त्रों के अर्थ लौकिक इतिहासपरक कहीं नहीं किये गये हैं। जिन मन्त्रों पर अन्य भाष्यकारों ने लौकिक इतिहास वर्णित किया है, वहाँ उनके इतिहास का संकेत करते हुए उसका यथोचित प्रत्याख्यान कर दिया है।

मन्त्रों का भावार्थ लिखते हुए यह ध्यान रखा गया है कि वह मन्त्र-व्याख्या के अनुरूप हो। भाष्य में जिन मन्त्रों के एकाधिक अर्थ दर्शाये गये हैं, उनके भावार्थ सभी अर्थों को सम्मुख रखकर लिखे गये हैं।

पूर्वार्चिक में प्रत्येक दशति से पूर्व उसमें पठित मन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्द और गान-स्वरों का निर्देश कर दिया गया है, जिसमें हमने प्रायः वैदिक यन्त्रालय से मुद्रित सामवेदसंहिता का अनुसरण किया है। उक्त सामवेदसंहिता में ऋषि-नामों के साथ गोत्र-नाम क्वचित् ही दिये गये हैं, अधिकतर ऋषि गोत्रनाम-रहित ही छपे हैं। हमने अपने भाष्य में ऋषि-सूची पृथक् भी दे दी है, उसमें गोत्र-नाम लिख दिये हैं।

व्याख्या में गार्ग्यकृत पदपाठ पर प्रायः सर्वत्र ही ध्यान दिया गया है। जो मन्त्र सामवेद तथा ऋग्वेद में समान हैं उनमें कई स्थलों पर गार्ग्यकृत पदपाठ शाकल्य के पदपाठ से भिन्न है। हमने वहाँ गार्ग्य के पदपाठ का ही अनुसरण किया है। जहाँ गार्ग्य के पदपाठ में स्वर-सम्बन्धी या अन्य किसी प्रकार की असंगति प्रतीत होती है वहाँ हमने टिप्पणी में उसका संकेत कर दिया है। यद्यपि किसी आचार्य के पदपाठ का वेदमन्त्र के साथ कोई नित्य सम्बन्ध नहीं है और स्वरादि से विरुद्ध होने पर वह

त्याज्य भी हो सकता है[1], और जहाँ स्वरादि अनुकूल है वहाँ भी उसके स्थान पर वैकल्पिक अन्य भी पदपाठ कल्पित किये जा सकते हैं, तथापि जहाँ तक सम्भव हो प्रचलित पदपाठ का अनुसरण किया जाना उचित है। स्वामी दयानन्द ने अपने ऋग्वेदभाष्य में सायणकृत एक पदार्थ को इस दृष्टि से अशुद्ध ठहराया है कि वह पदपाठ के विरुद्ध है।[2] इससे ज्ञात होता है कि वे युक्तियुक्त पदपाठ का अनुसरण किया जाना आवश्यक समझते थे। सामवेद के कई आधुनिक अनुवादकों द्वारा पदपाठ का उपयोग न किये जाने का परिणाम यह हुआ है कि कई स्थलों पर उन्होंने स्वरविरुद्ध तथा व्याकरणविरुद्ध पदच्छेद कर लिये हैं और क्रियापद को नामपद एवं नामपद को क्रियापद मान लिया है।

### अलंकार

काव्यशास्त्रियों ने अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकार तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अर्थालंकार कल्पित किये हैं, जिनमें से शब्दालंकार भाषा को तथा अर्थालंकार अर्थ को अलंकृत करते हैं। पर ऐसा नहीं है कि काव्यशास्त्रियों ने अलंकार पहले निश्चित कर लिये हों और उसे देखकर कवियों ने अपने काव्यों में उनका प्रयोग किया हो। वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास, भवभूति आदि कवियों के काव्यों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करके उनमें शब्दार्थों के सौष्ठव को देखकर ही भामह, दण्डी, रुद्रट, मम्मट आदि आचार्यों ने नामोल्लेखपूर्वक अलंकारों की उद्भावना की। आद्य काव्यशास्त्री भरतमुनि ने

---

१. यास्क ने 'वने न वा यो न्यधायि चाकन्। ऋ० १०।२९।१' मन्त्र पर शाकल्य के "वने। न। वा। यः। निः अधायि। चाकन्।" इस पदपाठ को स्वरदोष तथा अर्थदोष के कारण अस्वीकार करते हुए स्वयं 'वायः' को एक पद माना है।—"वन इव वायो वेः पुत्रः चायन्निति वा कामयमान इति वा। वेति च य इति च चकार शाकल्यः। उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यत्, असुसमाप्तश्चार्थः।"—निरु० ६।२८।११४

२. रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह। ऋ० १।३६।२०, पदपाठ—यातुऽमावतः। "यातवो यातनाः तान् मिमते निर्मिमते इति राक्षसव्यापारा यातुमाः, 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कः। तदेषामस्तीति मतुप्"—सायण। "(यातुमावतः) यान्ति प्राप्नुवन्ति ते यातवः, मत्सदृशाः इति मावन्तः। यातवश्च ते मावन्तश्च तान्। अत्र सायणाचार्येण यातुरिति पूर्वपदं मावानित्युत्तरपदं चाविदित्वा यातुमापदान्मतुप् कृतस्तदिदं पदपाठविरुद्धत्वादशुद्धम्।" —दयानन्दभाष्य।

केवल यमक, उपमा, रूपक और दीपक इन चार अलंकारों का ही निर्देश किया था। शनैः-शनैः इनकी संख्या बढ़ती गयी और १२५ तक जा पहुँची। आज भी लगभग ६५ अलंकार तो माने ही जाते हैं।

अलंकारों का नामकरण तो बाद में हुआ, किन्तु इनका प्रयोग लौकिक काव्यों से भी पूर्व वेद संहिताओं में अत्युत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में लिखा है कि शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन छह वेदांगों के अतिरिक्त सातवाँ वेदांग अलंकार है, क्योंकि उसके स्वरूप-परिज्ञान के बिना वेदार्थ का ज्ञान नहीं होता, यह यायावरीय आचार्य का मत है।[1] उदाहरण-रूप में उसने 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' ऋ० १।१६४।२८ आदि ऋचा प्रस्तुत की है कि इसमें अलंकार का ज्ञान न हो तो पाठक शाब्दिक अर्थ तक ही रह जायगा, आत्मा-परमात्मा आदि परक रहस्यार्थ तक नहीं पहुँच पायेगा।

स्वामी दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'अलंकारभेदविषय' में उपमा, रूपक और श्लेष अलंकारों के भेद सोदाहरण प्रतिपादित करके लिखा है कि "इस प्रकार के और भी बहुत अलंकार हैं, सो जहाँ-जहाँ वेदभाष्य में आवेंगे वहाँ-वहाँ लिखे जायेंगे।"[2] अपने ऋग्वेद-भाष्य तथा यजुर्वेद-भाष्य में उन्होंने श्लेष और उपमा तो स्थान-स्थान पर लिखे हैं, क्वचित् रूपक भी लिखा है।[3] उपमा में पूर्णोपमा के अतिरिक्त वाचकलुप्तोपमा अनेक स्थलों पर प्रदर्शित की है। एक मन्त्र के भाष्य में प्रतीप अलंकार[4] भी दर्शाया है। अन्य अलंकारों को वे नहीं दर्शा पाये, क्योंकि प्रामाणिक अर्थों का दर्शन कराने पर उनका अधिक बल रहा।

---

१. 'शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दोविचितिः, ज्यौतिषं च षडङ्गानि' इत्याचार्याः। 'उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गम्' इति यायावरीयः। ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद् वेदार्थानवगतिः।—का० मी०, अध्याय २

२. एवंविधा अन्येऽपि बहवोऽलङ्काराः सन्ति। ते सर्वे नात्र लिख्यन्ते। यत्र यत्र त आगमिष्यन्ति तत्र तत्र व्याख्यायिष्यन्ते। —ऋ० भा० भू०, अलङ्कारभेदविषयः।

३. द्रष्टव्य—ऋ० १।१६४।२०, २६, ३० का दयानन्द-भाष्य।

४. द्रष्टव्य—ऋ० १।३०।१४ का दयानन्द-भाष्य।

प्रस्तुत सामवेद-भाष्य में अलंकार अपेक्षाकृत अधिक दर्शाने का यत्न किया गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, पुनरुक्तवदाभास और श्लेष का उल्लेख किया गया है। शब्दालंकार विशिष्ट स्थलों में ही दर्शाये गये हैं, सर्वत्र नहीं। लौकिक काव्यों के टीकाकार भी शब्दालंकारों का क्वचित् ही उल्लेख करते हैं। अर्थालंकारों में प्रमुखतः उपमा, अनन्वय, रूपक, उत्प्रेक्षा अर्थश्लेष, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, दीपक, व्यतिरेक, विभावना, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास, विरोध, स्वभावोक्ति, काव्यलिंग, परिकर, उल्लेख, अन्योन्य, सम, विषम तथा भाविक अलंकारों का निर्देश किया गया है।

यथास्थान काव्यप्रकाश अथवा साहित्यदर्पण से उस-उस अलंकार का लक्षण भी दे दिया गया है, जिससे उसका स्वरूप समझकर वेदमन्त्र में उसका सौन्दर्य देखा जा सके।

अलंकारों के विषय में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि **लक्षण घटने पर भी उस उक्ति में अलंकार नहीं माना जाता, जिसमें चमत्कार न हो। अतः अनेक वेद मन्त्रों में जहाँ किसी** अलंकार का **अन्वेषण किया जा सकता था, हमने** अलंकार **नहीं** लिखा है। किसी सूक्ति में एकाधिक अलंकार होने पर उन अलंकारों की संसृष्टि या उनके संकर भी होते हैं। इस विस्तार में हम प्रायः नहीं गये हैं।

वेदों में किसी मन्त्र के एकाधिक अर्थ निकलने पर किसी अर्थ को प्रस्तुत और किसी को अप्रस्तुत कहना सामान्यतः सम्भव न होने से अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति आदि अलंकारों की उद्भावना न करके ऐसे स्थलों को श्लेषालंकार में डालना ही संगत होता है। अतएव दयानन्द के वेदभाष्य में श्लेषालंकार बहुत व्यापक रहा है। वही स्थिति प्रस्तुत भाष्य में भी है।

लौकिक काव्यों में अर्थ निश्चित होने के कारण अलंकार-दर्शन सब के द्वारा प्रायः समान ही होता है, यद्यपि क्वचित् वहाँ भी मतभेद की सम्भावना रहती है। पर वेदमन्त्र का तो जो अर्थ कोई व्याख्याता करता है उसके अनुरूप ही वह उसमें अलंकार दर्शाता है। दूसरा व्याख्याकार अपने अर्थ के अनुसार उसमें भिन्न अलंकार दर्शा सकता है। इसी दृष्टि से इस भाष्य में प्रदर्शित अलंकारों को देखना चाहिए।

## जड़ पदार्थ को सम्बोधन

निरुक्त में ऋचाएँ तीन प्रकार की कही गयी हैं—परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत और आध्यात्मिक[1]। परोक्षकृत ऋचाओं में क्रियापद प्रथम पुरुष का होता है तथा प्रतिपाद्य देवता के वाचक पद में कोई भी नाम-विभक्तियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं। यथा—'इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः' (ऋ० १०।८९।१०) 'इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्' (ऋ० १।७।१) आदि। प्रत्यक्षकृत ऋचाओं में क्रियापद मध्यम पुरुष का होता है तथा प्रतिपाद्य देवता को सम्बोधन करते हुए उसके लिए त्वम्, युवाम् या यूयम् साक्षात् प्रयुक्त रहता है या अध्याहृत होता है। यथा 'त्वमिन्द्र बलादधि' (ऋ०१०।१५३।२), 'वि न इन्द्र मृधो जहि' (ऋ० १०।१५२।४), 'अग्न आ या[हि] वीतये' (साम १।१।१)। आध्यात्मिक ऋचाएँ वे होती हैं जि[नमें] क्रियापद उत्तम पुरुष का रहता है तथा 'अहम्' सर्वनाम [के] प्रयोग द्वारा देवता स्वयम् अपना वर्णन करता है। यथा—'अहं भुव वसुनः पूर्व्यस्पतिः' (ऋ० १०।४८) में इन्द्र द्वारा आत्म-परिचय दिया गया है।

जो प्रत्यक्षकृत ऋचाएँ हैं उनमें जब देवतावाची पद के चेतन परमेश्वर, जीवात्मा, राजा, सेनापति, आचार्य आदि अर्थ किये जाते हैं तब तो संगति लग जाती है। किन्तु जब भौतिक अग्नि, भौतिक सूर्य आदि अर्थ करते हैं तब जड़पूजा की शंका होने लगती है। यथा— 'अग्न आ याहि वीतये' (साम० १।१।१) में अग्नि का अर्थ यदि यज्ञाग्नि या शिल्पाग्नि करें तो 'हे यज्ञाग्नि, हे शिल्पाग्नि, तू आ' इस अर्थ में जड़ में चेतनवत् व्यवहार होने से जड़-पूजा की भ्रान्ति होती है।

---

१. तास्त्रिविधा ऋचः—परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृताः आध्यात्मिक्यश्च। तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नाम-विभक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य। 'इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः—ऋ० १०।८९।१०', 'इन्द्रमिद् गाथिनो बृहत्—ऋ० १।७।१', 'इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणाः—ऋ० ७।१८।१५', इन्द्राय साम गायत—ऋ० ८।९८।१', 'नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन—ऋ० ९।६९।६', 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्—ऋ० १।३२।१', 'इन्द्रे कामा अयंसत' इति।। अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना। 'त्वमिन्द्र बलादधि—ऋ० १०।१५३।२' 'वि न इन्द्र मृधो जहि—ऋ० १०।१५२।४' इति।। अथाध्यात्मिक्य उत्तमपुरुषयोगा अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना। यथैतदिन्द्रो वैकुण्ठो—ऋ० १०।४८, लवसूक्तं—ऋ० १०।११९, वागाम्भृणीयम्—ऋ० १०।१२५ इति।

अतएव स्वामी दयानन्द ऋ० भा० भू० के वैदिकप्रयोगविषय में निरुक्त को उद्धृत करते हुए लिखते हैं कि—"व्याकरण की रीति से प्रथम, मध्यम और उत्तम (पुरुष) अपनी-अपनी जगह होते हैं, अर्थात् जड़ पदार्थों में प्रथम (पुरुष), चेतन में मध्यम वा उत्तम (पुरुष) होते हैं। सो यह तो लोक और वेद के शब्दों में साधारण नियम है। परन्तु वेद के प्रयोगों में इतनी विशेषता होती है कि जड़ पदार्थ भी प्रत्यक्ष हों तो वहाँ निरुक्तकार के उक्त नियम[1] से मध्यम पुरुष का प्रयोग होता है। और इससे यह भी जानना आवश्यक है कि ईश्वर ने संसारी जड़ पदार्थों को प्रत्यक्ष कराके उनसे अनेक उपकार लेना जनाया है, दूसरा प्रयोजन नहीं है। परन्तु इस नियम को नहीं जानकर सायणाचार्य आदि वेदों के भाष्यकारों तथा उन्हीं के बनाए हुए भाष्यों के अवलम्ब से यूरोपदेशवासी विद्वानों ने भी जो वेदों के अर्थों को अन्यथा कर दिया है, सो यह उनकी भूल है। और इसी से वे ऐसा लिखते हैं कि वेदों में जड़ पदार्थों की पूजा पाई जाती है, जिसका कि कहीं चिह्न भी नहीं है।"[2]

इस लेख से यह स्पष्ट है कि जड़ पदार्थों में सम्बोधन तब होता है जब स्तोता उन्हें हस्तामलकवत् स्पष्ट देख रहा होता है। इसलिए स्वामी दयानन्द का कथन है कि 'जहाँ-कहीं पदार्थ विद्या के उपदेश के लिए जड़ में जो चेतनभाव की कल्पना कर ली जाती है, वहाँ उस बात में दोष नहीं आ सकता।'[3]

फिर भी किसी प्रकार की भ्रान्ति इस विषय में किसी को न

---

१. अथापि प्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवन्ति परोक्षकृतानि स्तोतव्यानि।—निरु० ७।२, दुर्गाचार्य आदि ने इसका व्याख्यान अन्य प्रकार से किया है।

२. व्याकरणरीत्या प्रथममध्यमोत्तमपुरुषाः क्रमेण भवन्ति। तत्र जडपदार्थेषु प्रथमपुरुष एव, चेतनेषु मध्यमोत्तमौ च। अयं लौकिकवैदिकशब्दयोः सार्वत्रिको नियमः। परन्तु वैदिकव्यवहारे जडेऽपि प्रत्यक्षे मध्यमपुरुषप्रयोगास्सन्ति। तत्रेदं बोध्यं, जडानां पदार्थानामुपकारार्थं प्रत्यक्षकरणमात्रमेव प्रयोजनमिति। इमं नियमम् अबुद्ध्वा वेद-भाष्यकारैः सायणाचार्य्यादिभिस्तदनुसारतया स्वदेशभाषयाऽवादकारकैर्यूरोपाख्यदेशनिवास्यादिभिर्मनुष्यैर्वेदेषु जडपदार्थानां पूजास्तीति वेदार्थोऽन्यथैव वर्णितः—ऋ० भा० भू०, वैदिक प्रयोग विषय।

३. विद्योपदेशार्थं यदाख्यानं भवति तत्राचेतने चेतनवद् व्यवहारे न दोषो भवति।—ऋ० १।२।१, स्वामिदयानन्दकृत नमूनाभाष्य, 'परोपकारी', नवम्बर १९८६ में प्रकाशित।

रहे तथा वेदों में जड़पूजा की मिथ्या कल्पना पाठक न करें, इस विचार से मन्त्र में जहाँ जड़ पदार्थ को सम्बोधन होता है वहाँ स्वामी जी व्यत्यय मानकर अर्थ करते हैं। किसी मन्त्र के चेतनपरक और अचेतनपरक दो अर्थ करते हैं तो चेतनपरक में व्यत्यय नहीं करते, किन्तु अचेतनपरक में व्यत्यय करते हैं। यथा–

**"वायवा याहि दर्शत"** (ऋ० १।२।१)–(**वायो**) अनन्तबल सर्वप्राणान्तर्यामिन्नीश्वर तथा सर्वमूर्त्तद्रव्याधारो जीवनहेतुः भौतिको वा, (**आयाहि**) आगच्छ, आगच्छति वा। अत्र पक्षे व्यत्ययः।"

हमने सामवेद के प्रस्तुत भाष्य में सम्बोधनान्त पदों के जड़ परक व्याख्यान प्रायः नहीं किये हैं। यदि क्वचित् ऐसे स्थलों में जड़वस्तुपरक अर्थ दर्शाया भी गया है तो वह इस रूप में है कि उससे पाठकों को जड़-पूजा का भ्रम नहीं होगा। असल में अचेतनों में चेतनवत् व्यवहार भाषा की एक आलंकारिक शैली है, जो सभी भाषाओं में पायी जाती है। अतः इससे किसी को शंकित होने की आवश्यकता नहीं है।

## अन्तिम निवेदन

स्वामी दयानन्द द्वारा वेदों का नाद गुंजाया जाने के पश्चात् वेदों के व्याख्यान एवम् अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति बढ़ी है। आर्यभाषा और अंग्रेजी भाषा में वेदों के कई अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। सामवेद के आर्यभाषा-भाष्यों में पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, स्वामी ब्रह्ममुनि, पं० विश्वनाथ विद्यालंकार, पं० श्रीपाद दामोदार सातवलेकर, पं० वैद्यनाथ शास्त्री, पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार के भाष्य उल्लेखनीय हैं। इन सबसे पूर्व पं० तुलसीराम स्वामी सामवेद का एक उत्कृष्ट भाष्य कर चुके थे, जो संस्कृत तथा आर्यभाषा दोनों में है। संस्कृत तथा आर्यभाषा में सामवेद का एक अच्छा अध्यात्म भाष्य स्वामी भगवदाचार्य ने भी लिखा है, जो सामसंस्कारभाष्य नाम से है। महामण्डलेश्वर स्वामी गंगेश्वरानन्द उदासीन के नाम से सामवेदसंहिता का एक भूमिकासहित सटिप्पण हिन्दी-भाष्य सद्गुरु गंगेश्वर-इण्टरनेशनल-वेदमिशन, बम्बई से दो भागों में छपा है, जिसमें प्रत्येक मन्त्र के तीन-तीन अर्थ दिये गये हैं, प्रथम सायणानुसारी अर्थ है, द्वितीय

आत्मयाजी अर्थ है और तृतीय अर्वाचीन अर्थ है जो प्रायः जयदेव विद्यालंकार के भाष्य से लिया गया है। अंग्रेजी भाषा में सामवेद का एक उल्लेखनीय अनुवाद पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति विद्यामार्तण्ड कृत है, जिसमें संस्कृत-टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। इन सब भाष्यों के बाद भी स्वामी दयानन्द सरस्वती की वेदभाष्यपद्धति पर किये जाने वाले एक संस्कृत आर्यभाषा-युक्त सुप्रमाण-भूषित भाष्य की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, जिसकी यत्किञ्चित् सम्पूर्ति प्रस्तुत भाष्य द्वारा हो सकेगी ऐसी आशा है।

**वेद-मन्दिर** **—रामनाथ वेदालंकार**
ज्वालापुर (हरिद्वार)
२३-१२-१९८७

# संक्षेप-सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| अ० | अष्टाध्यायी | द० भा० | दयानन्दभाष्यम् |
| अथ० | अथर्ववेदसंहिता | निघं० | निघण्टुकोष: |
| आप० ध० सू० | आपस्तम्बधर्मसूत्रम् | निरु० | निरुक्तम् (यास्ककृतम्) |
| उ० | उणादिकोष: | पा० | पाणिनि: |
| ऋ० | ऋग्वेदसंहिता | पार० गृह्य० | पारस्करगृह्यसूत्रम् |
| ऋ० प्रा० | ऋग्वेदप्रातिशाख्यम् | प्रपा० | प्रपाठक: |
| ऋ० भा० | ऋग्वेदभाष्यम् | प्रश्न० | प्रश्नोपनिषद् |
| ऋ० भा० भू० | ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका | बृहदा० | बृहदारण्यकोपनिषद् |
| ऐ० आ० | ऐतरेयारण्यकम् | ब्र० सू० | ब्रह्मसूत्रम् |
| ऐ० उ० | ऐतरेयोपनिषद् | भ० | भरतस्वामी |
| ऐ० ब्रा० | ऐतरेयब्राह्मणम् | म० | महीधर: |
| कठ० | कठोपनिषद् | म०भा० | महाभाष्यम् (पातञ्जलम्) |
| का० | कात्यायन: | मु० | मुण्डकोपनिषद् |
| काठ० | काठकसंहिता | मै० सं० | मैत्रायणी संहिता |
| का० प्र० | काव्यप्रकाश: | य० | यजुर्वेदसंहिता |
| का० मी० | काव्यमीमांसा | य० भा० | यजुर्वेदभाष्यम् |
| केन० | केनोपनिषद् | योग० | योगदर्शनम् |
| कौ० ब्रा० | कौषीतकिब्राह्मणम् | रघु० | रघुवंश: |
| ग० | गणपाठसूत्रम् | वा० | वार्तिकम् |
| गो० उ० | गोपथब्राह्मणम्, उत्तरभाग: | वा० मा० | वाजसनेयमाध्यन्दिनसंहिता |
| गो० पू० | गोपथब्राह्मणम्, पूर्वभाग: | वि० | विवरणकार: माधव: |
| छा० उ० | छान्दोग्योपनिषद् | श० | शतपथब्राह्मणम् |
| जै० उ० ब्रा० | जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणम् | श्वेता० | श्वेताश्वतरोपनिषद् |
| जै० ब्रा० | जैमिनीयब्राह्मणम् | ष० ब्रा० | षड्विंशब्राह्मणम् |
| जै० सू० | जैमिनिसूत्रम् | स० प्र० | सत्यार्थप्रकाश: |
| तां० ब्रा० | ताण्ड्यमहाब्राह्मणम् | सा० | सायणाचार्य: |
| तुलसी० | तुलसीराम: स्वामी | सा० द० | साहित्यदर्पण: |
| तै० उ० | तैत्तिरीयोपनिषद् | साम० | सामवेदसंहिता |
| तै० ब्रा० | तैत्तिरीयब्राह्मणम् | सा० वि० ब्रा० | सामविधानम् ब्राह्मणम् |
| तै०सं० | तैत्तिरीयसंहिता | सि० कौ० | सिद्धान्तकौमुदी |
| द० | दयानन्द: स्वामी | संहि० ब्रा० | संहितोपनिषद्ब्राह्मणम् |

# अथ सामवेदभाष्यारम्भः क्रियते

## पूर्वार्चिकः ( छन्द आर्चिकः )

### आग्नेयं काण्डं पर्व वा

आग्नेयकाण्डे तावच्चतुर्दशोत्तरशतं (११४) मन्त्रा वर्तन्ते येषां प्रायेण[1] अग्निरेव देवता। अग्निदेवताकत्वादेवाग्नेयमिति संज्ञा। ज्ञानकर्मकाण्डयोरुपासनायाश्च चरमोत्कर्षो ज्ञानकर्मणोरुपासनायां परिणतिश्च सामवेदस्य विषयः[2]। द्विविधौ खलु वेदानामर्थौ, पारमार्थिको व्यावहारिकश्च। पारमार्थिकदृष्ट्याऽग्निशब्दस्यात्र मुख्योऽर्थः परमात्मैव—यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। ऋ० १।१६४।३९, एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। ऋ० १।१६४।४६, तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः। य० ३२।१, ब्रह्म ह्यग्निः श० १।४।२।११ इत्यादिप्रामाण्यात्। परमात्मातिरिक्तम् अग्निशब्दस्य परमार्थविषयाणि आत्ममनः-प्राणवागादीन्यपि वाच्यानि भवितुमर्हन्ति। उक्तं च—आत्मैवाग्निः श० ६।७।१।२०, मन एवाग्निः। श० १०।१।२।३, प्राणो वा अग्निः। श० ९।५।१।६८, वागेवाग्निः। श० ३।२।२।१३ इति। व्यावहारिकदृष्ट्या पार्थिवाग्नि-विद्युत्-सूर्य-विद्वद्-नृप-सेनाधीशादयोऽर्था अग्निशब्दस्य वाच्या भवन्ति।

अग्निशब्दं तावद् यास्काचार्य एवं निर्वक्ति—अग्निः कस्माद्? अग्रणीर्भवति, अग्रम् यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति संनममानः। अक्नोपनो भवतीति स्थौलाष्ठीविः, न क्नोपयति न स्नेहयति। त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायत इति शाकपूणिः। इताद् अक्ताद् दग्धाद् वा नीतात्। स खल्वेतेरकारमादत्ते, गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा, नीपरः। नि० ७।१४।

---

१. केवलमधस्तनाः षडेव मन्त्रा भिन्नदैवताः सन्ति—५६ ब्रह्मणस्पतिः, ५७ यूपः, ७५ पूषा, ९१ विश्वेदेवाः, १०१ पवमानः सोमः, १०२ अदितिः। एता अपि देवता अग्निसम्बद्धत्वादेवाग्नेये पर्वणि समाविष्टाः।

२. ज्ञानकर्मणोरुपासनायाश्च कियत्युन्नतिर्भवितुमर्हति, किञ्चैतेषां फलं भवति। सामवेद, एतद्विधायकत्वात् तृतीयो गण्यत इति दयानन्दः।—ऋ० भा० भू० प्रश्नोत्तरविषयः।

अग्निशब्दवाच्यः परमात्मा हि सर्वेषामुपासकानामग्रणीः अग्रनायकः मार्गप्रदर्शक इति यावत्। स च सर्वेषु यज्ञेषु अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तेषु, अध्ययनाध्यापनादिषु वापीकूपताडागोद्यान-चिकित्सालयादिनिर्माणरूपेषु इतरेषु च परोपकारयज्ञेषु अग्रं प्रणीयते, आदर्शरूपेण सम्मुखं स्थाप्यते। यं कं चोपासकं प्रति संनतो भवति तम् अङ्गं नयति, आश्रयरूपे स्वक्रोडे स्थापयति। यद्वा, न क्नोपयति[1] नार्द्रीकरोति स्वोपासकं दुःखद्रवरसेन पापपङ्केन वा यः सोऽक्निः, अक्निरेव चाग्निः। यद्वा, एति क्रियाशीलो भवति स्वोपासकमुन्नेतुम्, अनक्ति सम्मार्ष्टि उपासकहृदयम्, दहति हृत्स्थं मालिन्यम्, नयति च लक्ष्यं प्रति[2] यः स परमात्मा अग्निपदेनोच्यते।

अगि गतौ धातोरप्यग्निशब्दः सिध्यति[3]। गतेस्त्रयोऽर्था ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च। यः अङ्गति जानाति सर्वं, गच्छति सर्वत्र व्यापको भवति, प्राप्नोति च स्वोपासकान्, तस्मात् परमात्मा अग्निरुच्यते। किं च, पार्थिवाग्नि-विद्युदग्नि-सूर्याग्निवत् प्रकाशमानत्वात्, प्रकाशकत्वाच्चापि **परमात्मा** रूपकातिशयोक्तिमाश्रित्य अग्निनाम्ना **स्मर्यते।**

**अग्नेः कर्माणि निरुक्तकार एवमाह—अथास्य कर्म।** वहनं च हविषाम् आवाहनं च देवतानाम्, यच्च किञ्चिद् दार्ष्टिविषयिकम् अग्निकर्मैव तत्। निरु० ७।८। यज्ञाग्निवत् परमात्माग्निरपि अध्यात्म-याज्ञिभिर्हविष्कृत्वा हुतानि सर्वाणि ज्ञानकर्मादीनि वाक्चक्षुःश्रोत्रप्राणमनोबुद्ध्यादीनि च वहति स्वीकरोति, तेषां हृदयरूपे यज्ञस्थले देवान् दिव्यगुणान् आवाहयति, मानसं तमो निवार्य प्रकाशदृष्टिं च प्रयच्छति। तस्मात् परमात्मनोऽग्निरूपस्य चिन्तनं योगसाधकाय महत् कल्याणकरम्। अत एवाग्नेयपर्वणि परमात्माऽग्निरूपेण ध्याय्यते।

अब सामवेद का भाष्य आरम्भ करते हैं। उसमें प्रथम पूर्वार्चिक (छन्द आर्चिक) है। उसमें भी सर्वप्रथम आग्नेय

---

१. क्नूयी शब्दे उन्दे च। णिजन्तः।

२. इण् गतौ धातोर्निष्पन्नाद् 'अयन' शब्दाद् 'अकारः', अञ्चू धातोर्निष्पन्नाद् 'अक्त' शब्दाद्, दह धातोर्निष्पन्नाद् 'दग्ध' शब्दाद् वा 'गकारः', णीञ् प्रापणे धातोः 'निः'। एवं त्रिभ्यो धातुभ्योऽग्निशब्दः सिध्यतीति शाकपूणिमतम्।

३. अगि धातोः 'अङ्गेर्नलोपश्च' उ० ४।५१। इत्युणादिसूत्रेण निप्रत्ययः, धातोरिदित्वाज्जातस्य नुमो नकारस्य च लोपः।

काण्ड या पर्व की व्याख्या करनी है। आग्नेय काण्ड में कुल ११४ मन्त्र हैं, जिनका प्रायः अग्नि ही देवता है। अग्नि देवता वाला होने से ही इस काण्ड का आग्नेय नाम पड़ा है। ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासना के चरम उत्कर्ष का वर्णन तथा ज्ञान और कर्म की उपासना में परिणति ही सामवेद का विषय है। वेदों के दो प्रकार के अर्थ होते हैं– पारमार्थिक और व्यावहारिक। पारमार्थिक दृष्टि से अग्नि शब्द का यहाँ मुख्य अर्थ परमात्मा ही है। इसमें प्रमाण भी हैं–"जिसने वेदमन्त्रों के प्रतिपाद्य परमात्मा को नहीं जाना, वह वेदमन्त्रों से क्या लाभ उठा सकेगा?' ऋ० १।१६४।३९, 'एक ही परमात्मा को ज्ञानीजन अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। ऋ० १।१६४।४६', 'उसी परमात्मा का नाम अग्नि है, आदित्य है, वायु है, चन्द्रमा है। य० ३२।१', 'ब्रह्म ही अग्नि है। श० १।४।२।११' आदि। परमात्मा के अतिरिक्त परमार्थ विषय में अग्नि शब्द के आत्मा, मन, प्राण, वाणी आदि भी वाच्यार्थ हो सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा भी है–'आत्मा ही अग्नि है। श० ६।७।१।२०', 'मन ही अग्नि है। श० १०।१।२।३', 'प्राण ही अग्नि है। श० ९।५।१।६८', 'वाणी ही अग्नि है। श० ३।२।२।१३।' व्यावहारिक दृष्टि से पार्थिव अग्नि, बिजली, सूर्य, विद्वान् पुरुष, राजा, सेनापति आदि अग्नि शब्द के वाच्यार्थ होते हैं।

अग्नि शब्द का यास्काचार्य ने निरुक्त (७।१४) में जो निर्वचन दिखाया है उसके अनुसार अग्नि शब्द 'अग्र-नी' या 'अङ्ग-नी' से निष्पन्न होता है। परमात्मा का नाम अग्नि इस कारण है, क्योंकि वह उपासकों का अग्र-णी अर्थात् अग्र-नायक या पथप्रदर्शक बनता है और वह अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध-पर्यन्त यज्ञों में या अध्ययन-अध्यापन-रूप यज्ञों में अथवा सार्वजनिक बावड़ी, कुआँ, तालाब, उद्यान, चिकित्सालय आदि के निर्माणरूप यज्ञों में तथा अन्य परोपकार के यज्ञों में आदर्श रूप में सब से आगे लाया जाता है (अग्र-नी)। वह जिस उपासक के अनुकूल होता है, उसे अपने अङ्क में अर्थात् अपनी आश्रयरूप गोदी में ले लेता है (अङ्ग-नी)। निरुक्त के अनुसार स्थौलाष्ठीवि आचार्य 'न'-पूर्वक गीला करने अर्थ वाली क्नूयी धातु से अग्नि शब्द की सिद्धि करते हैं। जो दुःख-द्रव से या

पाप-पंक से अपने उपासक को गीला नहीं होने देता, वह परमात्मा अग्नि है (न-क्नि = अग्नि)। निरुक्त में उद्धृत शाकपूणि आचार्य के मत में अग्नि शब्द तीन धातुओं से मिलाकर बना है। अग्नि का अ गत्यर्थक इण् धातु के 'अयन' से लिया गया है, क् या ग् माँजने अर्थ वाली अञ्जू धातु के 'अक्त' से या दाहार्थक 'दह' धातु के 'दग्ध' से लिया है और नि नयनार्थक नी (णीञ् प्रापणे) से गृहीत किया गया है। परमात्मा अग्नि इस कारण है, क्योंकि वह अपने उपासक को उन्नत करने में गतिशील या सक्रिय होता है, उपासक के हृदय को माँजकर स्वच्छ कर देता है, हृदय-स्थित मालिन्य को दग्ध करता है और उसे उसके निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचा देता है।

उणादि-प्रक्रिया के अनुसार अग्नि शब्द की सिद्धि गत्यर्थक 'अगि' धातु से होती है। अगति के तीन अर्थ होते हैं—ज्ञान, गमन और प्राप्ति। जो सर्वज्ञ है, सर्वगत अर्थात् सर्वव्यापक है और अपने उपासकों को प्राप्त होने वाला है, उस परमात्मा का नाम अग्नि है। परमात्मा को अग्नि एक अन्य हेतु से भी कह सकते हैं। पार्थिव अग्नि, बिजलीरूप अग्नि और सूर्यरूप अग्नि के समान प्रकाशमान और प्रकाशक होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार का आश्रय लेकर उसे साक्षात् अग्नि ही कह दिया जाता है।

अग्नि के कर्म बताते हुए निरुक्तकार ने कहा है कि—"अग्नि हवियों का वहन करता है, देवताओं का आवाहन करता है और जो दर्शनविषयक प्रकाश-प्रदान आदि का कर्म है, वह भी अग्नि का ही है।" (निरु० ७।८) यज्ञाग्नि के समान परमात्मा-रूप अग्नि भी इन कर्मों को करता है। वह अध्यात्मयाजियों द्वारा हवि-रूप में समर्पित किये हुए सब ज्ञान, कर्म आदियों को तथा वाक्, चक्षु, श्रोत्र, प्राण, मन, बुद्धि आदियों को वहन अर्थात् स्वीकार करता है, हृदय-रूप यज्ञस्थल में देवों अर्थात्, दिव्य गुणों का आवाहन करता है और मन की तामसिकता का निवारण कर प्रकाशदृष्टि प्रदान करता है। इस कारण परमात्मा के अग्निरूप का चिन्तन योगसाधक के लिए महान् कल्याण करनेवाला होता है। इसीलिए आग्नेय पर्व में परमात्मा का अग्निरूप से ध्यान किया गया है।

ओ३म्

# सामवेद-संहिता

## पूर्वार्चिकः

## अथ आग्नेयं काण्डम्

## अथ प्रथमोऽध्यायः

### प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

### प्रथमा दशतिः

ऋषिः—१, २, ४, ७, ९ भरद्वाजः; ३ मेधातिथिः; ५ उशनाः; ६ सुदीतिपुरुमीढौ तयोर्वान्यतरः; ८ वत्सः; १० वामदेवः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री; २ शङ्कुमती पिपीलिकामध्या गायत्री; ५ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से परमात्मा, विद्वान्, राजा आदि का आह्वान करते हुए कहते हैं।

१. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥१॥

**अन्वित पदार्थ** :—(प्रथम) परमात्मा के पक्ष में। हे (अग्ने) सर्वाग्रणी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वसुखप्रापक, सर्वप्रकाशमय, सर्वप्रकाशक परमात्मन्! आप (गृणानः) कर्तव्यों का उपदेश करते हुए (वीतये) हमारी प्रगति के लिए, हमारे विचारों और कर्मों में व्याप्त होने के लिए, हमारे हृदयों में सद्गुणों को उत्पन्न करने के लिए, हमसे स्नेह करने के लिए, हमारे

अन्दर उत्पन्न काम-क्रोध आदि को बाहर फेंकने के लिए, और (**हव्य-दातये**) देय पदार्थ श्रेष्ठ बुद्धि, श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ धर्म, श्रेष्ठ धन आदि के दान के लिए (**आ याहि**) आइए। (**होता**) शक्ति आदि के दाता एवं दुर्बलता आदि के हर्ता होकर (**बर्हिषि**) हृदयरूप अन्तरिक्ष में (**नि सत्सि**) बैठिए॥

(**द्वितीय**) विद्वान् के पक्ष में। विद्वान् भी अग्नि कहलाता है। इसमें 'विद्वान् अग्नि है, जो ऋत का संग्रहीता और सत्यमय होता है। ऋ० १।१४५।५', 'विद्वान् अग्नि है, जो बल प्रदान करता है।' ऋ० ३।२५।२ इत्यादि मन्त्र प्रमाण हैं। हे (**अग्ने**) विद्वन्! (**गृणानः**) यज्ञविधि और यज्ञ के लाभों का उपदेश करते हुए आप **वीतये** यज्ञ को प्रगति देने के लिए, और (**हव्य-दातये**) हवियों को यज्ञाग्नि में देने के लिए (**आ याहि**) आइये। (**होता**) होम के निष्पादक होकर (**बर्हिषि**) कुशा से बने यज्ञासन पर (**नि सत्सि**) बैठिए। इस प्रकार हम यजमानों के यज्ञ को निरुपद्रव रूप से संचालित कीजिए॥

(**तृतीय**) राजा के पक्ष में। राजा भी अग्नि कहलाता है। इसमें 'हे नायक! तुम प्रजापालक, उत्तम दानी को प्रजाएँ राष्ट्रगृह में राजा रूप में अलंकृत करती हैं। ऋ० २।१।८। 'राजा अग्नि है, जो राष्ट्ररूप गृह का अधिपति और राष्ट्रयज्ञ का ऋत्विज् होता है।' ऋ० ६।१५।१३ इत्यादि प्रमाण हैं। हे (**अग्ने**) अग्रनायक राजन्! आप (**गृणानः**) राजनियमों को घोषित करते हुए (**वीतये**) राष्ट्र को प्रगति देने के लिए, अपने प्रभाव से प्रजाओं में व्याप्त होने के लिए, प्रजाओं में राष्ट्र-भावना और विद्या, न्याय आदि को उत्पन्न करने के लिए तथा आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को परास्त करने के लिए, और (**हव्य-दातये**) राष्ट्रहित के लिए देह, मन, राजकोष आदि सर्वस्व को हवि बनाकर उसका उत्सर्ग करने के लिए (**आ याहि**) आइये। (**होता**) राष्ट्रयज्ञ के निष्पादक होकर (**बर्हिषि**) राज-सिंहासन पर या राजसभा में (**नि सत्सि**) बैठिए॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'तये, तये' में छेकानुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :--जैसे विद्वान् पुरोहित यज्ञासन पर बैठकर यज्ञ को संचालित करता है, जैसे राजा राजसभा में बैठकर राष्ट्र

की उन्नति करता है, वैसे ही परमात्मा रूप अग्नि हमारे हृदयान्तरिक्ष में स्थित होकर हमारा महान् कल्याण कर सकता है, इसलिए सब को उसका आह्वान करना चाहिए। सब लोगों के हृदयों में परमात्मा पहले से ही विराजमान है तो भी लोग क्योंकि उसे भूले रहते हैं, इस कारण वह उनके हृदयों में न होने के बराबर है। इसलिए उसे पुनः बुलाया जा रहा है। आशय यह है कि सब लोग अपने हृदय में उसकी सत्ता का अनुभव करें और उससे सत्कर्म करने की प्रेरणा ग्रहण करें।।१।।

वह परमात्मा ही सब यज्ञों का निष्पादक है, यह कहते हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

**२. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।**

३ २ ३ १ २ ३ १ २

**देवेभिर्मानुषे जने॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**अग्ने**) परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**विश्वेषाम्**) **सब** (**यज्ञानाम्**) उपासकों से किये जाने वाले ध्यानरूप यज्ञों के (**होता**) निष्पादक ऋत्विज् हो, अतः (**देवेभिः**) विद्वानों के द्वारा (**मानुषे**) मनुष्यों के (**जने**) लोक में (**हितः**) स्थापित अर्थात् प्रचारित किये जाते हो।।२।।

इस मन्त्र की श्लेष द्वारा सूर्य-पक्ष में भी अर्थ-योजना करनी चाहिए। तब परमात्मा सूर्य के समान है यह उपमा ध्वनित होगी।।२।।

**भावार्थ** :–जैसे सूर्य सौर-लोक में सब अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, दक्षिणायन, उत्तरायण, वर्ष आदि यज्ञों का निष्पादक है, वैसे ही परमात्मा अध्यात्ममार्ग का अवलम्बन करने वाले जनों से किये जाते हुए सब आन्तरिक यज्ञों को निष्पन्न करके उन योगी जनों को कृतार्थ करता है। और जैसे सूर्य अपनी प्रकाशक किरणों से मनुष्य-लोक में अर्थात् पृथिवी पर निहित होता है, वैसे ही परमात्मा विद्वानों से मनुष्य-लोक में प्रचारित किया जाता है।।२।।

वह परमेश्वर हमारे द्वारा दूत रूप में वरण करने योग्य है यह कहते हैं।

३. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥३॥

**पदार्थ** :—हम (**होतारम्**) दिव्य गुणों का आह्वान करने वाले, (**विश्ववेदसम्**) विश्व के ज्ञाता, विश्व भर में विद्यमान तथा सब आध्यात्मिक एवं भौतिक धन के स्रोत, (**अस्य**) इस अनुष्ठान किये जा रहे (**यज्ञस्य**) अध्यात्म-यज्ञ के (**सुक्रतुम्**) सुकर्ता, सुसंचालक ऋत्विज्रूप (**अग्निम्**) परमात्मा को (**दूतं वृणीमहे**) दिव्य गुणों के अवतरण में दूत रूप से वरते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे दूत रूप में वरा हुआ कोई जन हमारे सन्देश को प्रियजन के समीप ले जाकर और प्रियजन के सन्देश को हमारे पास पहुँचाकर उसके साथ हमारा मिलन करा देता है, वैसे ही सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, न्याय, विद्या, श्रद्धा, सुमति इत्यादि दिव्य गुणों के और हमारे बीच में दूत बनकर परमात्मा हमारे पास दिव्य गुणों को बुलाकर लाता है, इसलिए सब उपासकों को उसे दूत रूप में वरण करना चाहिए॥३॥

वरण किया हुआ परमात्मा पापों को सर्वथा नष्ट कर दे, यह प्रार्थना करते हैं।

४. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः॥४॥

**पदार्थ** :—(**द्रविणस्युः**) उपासकों को आध्यात्मिक धन और बल देने का अभिलाषी (**अग्निः**) तेजोमय परमात्मा (**विपन्यया**) विशेष स्तुति से (**समिद्धः**) संदीप्त, (**शुक्रः**) प्रज्वलित, और (**आहुतः**) उपासकों की आत्माहुति से परिपूजित होकर (**वृत्राणि**) अध्यात्म-प्रकाश के आच्छादक पापों को (**जङ्घनत्**) अतिशय पुनः-पुनः नष्ट कर दे॥४॥

श्लेष से यज्ञाग्नि-पक्ष में भी इस मन्त्र की अर्थ-योजना करनी चाहिए॥४॥

**भावार्थ** :—याज्ञिक जनों द्वारा हवियों से आहुत प्रदीप्त

यज्ञाग्नि जैसे रोग आदिकों को निःशेष रूप से विनष्ट कर देता है, वैसे ही परमात्मा-रूप अग्नि योगाभ्यासी जनों के द्वारा हार्दिक स्तुति से बार-बार संदीप्त तथा प्राण, इन्द्रिय, आत्मा, मन, बुद्धि आदि की हवियों से आहुत होकर उनके पाप विचारों को सर्वथा निर्मूल कर देता है।।४।।

उस परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ, यह कहते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**५. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।**
२ ३ २ ३ १ २र
**अग्ने रथं न वेद्यम्॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रणी परमात्मन्! (**प्रेष्ठम्**) सबसे अधिक प्रिय (**अतिथिम्**) अतिथिरूप, (**मित्रम् इव**) मित्र के समान (**प्रियम्**) प्रिय, (**रथं न**) रथ के समान, (**वेद्यम्**) प्राप्तव्य (**वः**) आपकी, मैं (**स्तुषे**) स्तुति करता हूँ।।५।।

**यहाँ 'मित्र के समान प्रिय' और 'रथ के समान प्राप्तव्य'** में उपमालंकार है। **अग्नि में अतिथित्व के आरोप में** रूपक है।।५।।

**भावार्थ** :—मित्र जैसे सबको प्रिय होता है, वैसे परमात्मा उपासकों को प्रिय है। रथ जैसे गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए प्राप्तव्य होता है, वैसे ही परमात्मा प्रेय-मार्ग और श्रेय-मार्ग के लक्ष्यभूत ऐहिक और पारलौकिक उत्कर्ष को पाने के लिए सबसे प्राप्त करने योग्य तथा स्तुति करने योग्य है। हृदयप्रदेश में विद्यमान परमात्मा साक्षात् घर में आया हुआ सबसे अधिक प्रिय अतिथि ही है, अतः वह अतिथि के समान सत्कार करने योग्य है।।५।।

परमात्मा हमारी किससे रक्षा करे, यह कहते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**६. त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।**
३ २ ३ १ २र
**उत द्विषो मर्त्यस्य॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) सबके नायक तेजःस्वरूप परमात्मन्! (**त्वम्**) जगदीश्वर आप (**महोभिः**) अपने तेजों से (**विश्वस्याः**)

सब (अ-रातेः) अदान-भावना और शत्रुता से, (उत) और (मर्त्यस्य) मनुष्य के (द्विषः) द्वेष से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिए॥६॥

**भावार्थ** :—अदानवृत्ति से ग्रस्त मनुष्य अपने पेट की ही पूर्ति करने वाला होकर सदा स्वार्थ ही के लिए यत्न करता है। उससे कभी सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। दान और परोपकार की तथा मैत्री की भावना से ही पारस्परिक सहयोग द्वारा लक्ष्यपूर्ति हो सकती है। अतः हे जगदीश्वर, हे राजन् और हे विद्वन्! आप अपने तेजों से, अपने क्षत्रियत्व के प्रतापों से और अपने विद्या प्रतापों से सम्पूर्ण अदान-भावना तथा शत्रुता से हमारी रक्षा कीजिए। और, जो मनुष्य हमसे द्वेप करता है तथा द्वेषबुद्धि से हमारी प्रगति में विघ्न उत्पन्न करता है उसके द्वेष से भी हमारी रक्षा कीजिए, जिससे सूत्र में मणियों के समान परस्पर सांमनस्य में पिरोये रहते हुए हम उन्नत होवें॥६॥

उस परमात्मा की मैं वेदवाणियों से स्तुति करता हूँ, यह कहते हैं।

**७. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।**
**एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) परमात्मन्! आप (आ इहि उ) मेरे हृदय-प्रदेश में आइये। मैं (ते) आपके लिए (इत्था) सत्य भाव से (इतराः) सामान्य-विलक्षण (गिरः) वेदवाणियों को (सु) सम्यक् प्रकार से, पूर्ण मनोयोग से (ब्रवाणि) बोलूँ, अर्थात् वेदवाणियों से आपकी स्तुति करूँ। आप (एभिः) इन मेरे द्वारा समर्पित किये जाते हुए (इन्दुभिः) भावपूर्ण भक्तिरस-रूप सोमरसों से (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त करें। जैसे चन्द्र-किरणों से समुद्र और वनस्पति बढ़ते हैं, यह ध्वनित होता है, क्योंकि इन्दु चन्द्र-किरणों का भी वाचक होता है॥७॥

**भावार्थ** :—मनुष्यकृत वाणियाँ सामान्य होती हैं, पर वेदवाणियाँ परमेश्वरकृत होने के कारण उनसे विलक्षण हैं।

उनमें प्रत्येक पद साभिप्राय तथा विविध अर्थों का प्रकाशक है। उपासक लोग यदि उन वाणियों से परमात्मा को भजें और उसके प्रति अपने भक्तिरस-रूप सोमरसों को प्रवाहित करें तो वह चन्द्र-किरणों से जैसे समुद्र, वनस्पति आदि बढ़ते हैं, वैसे उन भक्तिरसों से तृप्त होकर उन उपासकों के हृदय में अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त करके उन्हें कृतकृत्य कर दे।।७।।

मैं तुझ परमात्मा में अपना प्रेम बाँधता हूँ, यह कहते हैं।

**८. आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात्।**
**अग्ने त्वां कामये गिरा॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) जगत्पिता परमात्मन्! (**ते**) तेरा (**वत्सः**) प्रिय पुत्र (**परमात् चित्**) सुदूरस्थ भी (**सधस्थात्**) प्रदेश से (**मनः**) अपने मन को (**आयमत्**) लाकर तुझमें केन्द्रित कर रहा है। अर्थात् मैं तेरा प्रिय पुत्र तुझमें मन को केन्द्रित कर रहा हूँ। मैं (**गिरा**) स्तुति-वाणी से (**त्वाम्**) तुझ परमात्मा की (**कामये**) कामना कर रहा हूँ, अर्थात् तेरे प्रेम में आबद्ध हो रहा हूँ।।८।।

**भावार्थ** :—जब मनुष्य सांसारिक विषयों की निःसारता को देख लेता है, तब दूर से दूर भू-प्रदेशों में भटकते हुए अपने मन को सभी प्रदेशों से लौटा कर परमात्मा में ही संलग्न कर लेता है और वाणी से परमात्मा के ही गुण-धर्मों का बारम्बार स्तवन करता है और उसके प्रेम से परिप्लुत हृदयवाला होकर सम्पूर्ण पृथिवी के भी राज्य को उसके समक्ष तुच्छ गिनता है।।८।।

अगले मन्त्र में योगीजन परमात्मा को मस्तिष्क-पुण्डरीक में प्रकट करते हैं, यह विषय है।

**९. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।**
**मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) तेजःस्वरूप परमात्मन्! (**अथर्वा**) चलायमान न होने वाला स्थितप्रज्ञ योगी (**त्वाम्**) आपको

**(विश्वस्य)** सकल ज्ञानों के **(वाहकात्)** वाहक **(पुष्करात् मूर्ध्नः अधि)** कमलाकार मस्तिष्क में **(निरमन्थत)** मथकर प्रकट करता है।।

परमात्मा रूप अग्नि को मथकर प्रकट करने की प्रक्रिया बताते हुए श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है—"अपने आत्मा को निचली अरणी बनाकर और ओंकार को उपरली अरणी बनाकर ध्यान-रूप मन्थन के अभ्यास से छिपे हुए परमात्मा-रूप अग्नि को प्रकट करे (श्वेता०२।१४)" कमल के पत्ते (पुष्करपर्ण) के ऊपर अग्नि उत्पन्न हुआ था, यह कथा इसी मन्त्र के आधार पर रच ली गयी है।।९।।

**भावार्थ** :—जैसे अरणियों के मन्थन से यज्ञवेदि-रूप कमलपत्र के ऊपर यज्ञाग्नि उत्पन्न की जाती है, वैसे ही स्थितप्रज्ञ योगियों को ध्यान-रूप मन्थन से कमलाकार मस्तिष्क में परमात्मा-रूप अग्नि को प्रकट करना चाहिए।।९।।

विवरणकार **माधव** ने इस मन्त्र के **भाष्य** में यह **इतिहास लिखा है—"सर्वत्र घोर अन्धकार छाया हुआ था। तब मातरिश्वा वायु को आकाश में सूक्ष्म अग्नि दिखाई दी। उसने और** अथर्वा ऋषि ने उस अग्नि को मथकर प्रकट किया।" उसका किया हुआ मन्त्रार्थ साररूप में इस प्रकार है—"(अग्ने) हे अग्नि! (अथर्वा) अथर्वा ऋषि ने (त्वाम्) तुझे (मूर्ध्नः) प्रधानभूत (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से (विश्वस्य वाघतः) सब ऋत्विज् यजमानों के लिए (निरमन्थत) अतिशय रूप से मथकर निकाला है।" वस्तुतः विवरणकारप्रदत्त कथानक सृष्ट्युत्पत्ति-प्रक्रिया में अग्नि के जन्म का इतिहास समझना चाहिए। आकाश के बाद वायु और वायु के बाद अग्नि, यह उत्पत्ति का क्रम है। उत्पन्न हो जाने के बाद आकाश में सूक्ष्म रूप से अग्नि भी विद्यमान थी। उसे अथर्वा परमेश्वर ने पूर्वोत्पन्न वायु के साहचर्य से मथ कर प्रकट किया, यह अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए।

भरतस्वामी के भाष्य का यह आशय है—'अथर्वा ने (मूर्ध्नः) धारक, (विश्वस्य वाघतः) सबके निर्वाहक (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से या कमलपत्र से, अग्नि को मथकर निकाला।' सायण का अर्थ है—'(अग्ने) हे अग्नि! (अथर्वा) अथर्वा नाम के ऋषि

ने (मूर्ध्नः) मूर्धा के समान धारक (विश्वस्य) सब जगत् के (वाघतः) वाहक (पुष्करात् अधि) पुष्करपर्ण अर्थात् कमलपत्र के ऊपर (त्वाम्) तुझे (निरमन्थत) अरणियों में से उत्पन्न किया।' यहाँ भी पुष्करपर्ण सचमुच का कमलपत्र नहीं है, किन्तु यज्ञवेदि का आकाश है, और अथर्वा है। स्थिर चित्त से यज्ञ करनेवाला यजमान, जो यज्ञकुण्ड में अरणियों से अग्नि उत्पन्न करता है, यह तात्पर्य जानना चाहिए।

उवट ने य० ११।३२ के भाष्य में 'जल ही पुष्कर है, प्राण अथर्वा है' श० ४।२।२।२ यह शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देकर मन्त्रार्थ किया है—'तुझे हे अग्नि, (पुष्करात्) जल में से (अथर्वा) सतत गतिमान् प्राण ने (निरमन्थत) मथकर पैदा किया।' यही अर्थ महीधर को भी अभिप्रेत है। यहाँ प्राण से प्राणवान् परमेश्वर या विद्वान् मनुष्य, जल से बादल में स्थित जल और अग्नि से विद्युत् जानने चाहिएँ। अथवा शरीरस्थ प्राण खाये-पिये हुए रसों से जीवनाग्नि को उत्पन्न करता है, यह तात्पर्य समझना चाहिए। महीधर ने दूसरा वैकल्पिक अर्थ पुष्करपर्ण (कमलपत्र) के ऊपर अग्नि को मथने-परक ही किया है। भाष्यकारों ने तात्पर्य प्रकाशित किये बिना ही कथाएँ लिख दी हैं, जो भ्रम की उत्पत्ति का कारण बनी हैं।

वस्तुतः अथर्वा नामक किसी ऋषि का इतिहास इस मन्त्र में नहीं है, क्योंकि वेदमन्त्र ईश्वर-प्रोक्त हैं तथा सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत हुए थे और पश्चाद्वर्ती ऋषि आदिकों के कार्यकलाप का पूर्ववर्ती वेद में वर्णन नहीं हो सकता।।९।।

अब परमात्मा के पास से परम ज्योति की प्रार्थना करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**१०. अग्ने विवस्वदाभरास्मभ्यमूतये महे।**
३ १ २र ३ २
**देवो ह्यसि नो दृशे॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे **( अग्ने )** परमपिता परमात्मन्! आप **( महे )** महान् **( ऊतये )** रक्षा के लिए **( अस्मभ्यम् )** हमें **( विवस्वत् )** अविद्यान्धकार को निवारण करने वाला अध्यात्म-प्रकाश **( आ भर )** प्रदान कीजिए। **( हि )** क्योंकि, आप **( नः )** हमारे **( दृशे )** दर्शन के लिए, हमें विवेक-दृष्टि प्रदान करने के लिए **( हि )**

निश्चय ही (देवः) प्रकाश देने वाले (असि) हैं।।१०।।

श्लेपालङ्कार से मन्त्र की सूर्यपरक अर्थयोजना भी करनी चाहिए।।१०।।

**भावार्थ** :—सूर्यरूप अग्नि जैसे जीवों की रक्षा के लिए अन्धकार-निवारक ज्योति प्रदान करता है, वैसे ही परमेश्वर अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, मोह आदि रूप अन्धकार के निवारण के लिए हमें आध्यात्मिक तेज प्रदान करे।।१०।।

## द्वितीया दशतिः

**ऋषिः—१ आयुङ्क्ष्वाहिः; २ वामदेवः; ३, ८, ९ प्रयोगः; ४ मधुच्छन्दाः; ५, ७ शुनःशेपः; ६ मेधातिथिः; १० वत्सः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और राजा की स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना करते हैं।

**११. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।**
**अमैरमित्रमर्दय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (देव) ज्योतिर्मय तथा विद्या आदि ज्योतियों के देने वाले (अग्ने) लोकनायक जगदीश्वर अथवा राजन्! (कृष्टयः) मनुष्य (ते) आपके (ओजसे) बल के लिए (नमः) नमस्कार के वचन (गृणन्ति) उच्चारण करते हैं, अर्थात् बार-बार आपके बल की प्रशंसा करते हैं। आप (अमैः) अपने बलों से (अमित्रम्) शत्रु को (अर्दय) नष्ट कर दीजिए।।१।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेपालङ्कार है।।१।।

**भावार्थ** :—हे जगदीश्वर तथा हे राजन्! कैसा आप में महान् बल है, जिससे आप निःसहायों की रक्षा करते हो और जिस बल के कारण आपके आगे बड़े-बड़े दर्प वालों के भी दर्प चूर हो जाते हैं। आप हमारे अध्यात्म मार्ग में विघ्न उत्पन्न करने वाले काम, क्रोध आदि षड् रिपुओं को और संसार-मार्ग में बाधाएँ उपस्थित करने वाले मानव शत्रु-दल को अपने उन बलों से समूल उच्छिन्न कर दीजिए, जिससे

शत्रु-रहित होकर हम निष्कण्टक आत्मिक तथा बाह्य स्वराज्य का भोग करें॥१॥

किन गुणोंवाले परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ, यह कहते हैं।

**१२. दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्।**
**यजिष्ठमृञ्जसे गिरा॥२॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मन्! (**दूतम्**) दूत अर्थात् सद्गुणों को हमारे पास लाने के लिए दूत के समान आचरण करने वाले, (**विश्ववेदसम्**) पूर्वजन्म तथा इस जन्म में किये हुए सब कर्मों को जानने वाले, (**हव्यवाहम्**) दातव्य कर्मफल प्राप्त कराने वाले, (**अमर्त्यम्**) अमर, (**यजिष्ठम्**) सबसे अधिक यज्ञकर्ता—महान् सृष्टिचक्र प्रवर्तनरूप यज्ञ के संचालक (**वः**) आपको, मैं (**गिरा**) वेदवाणी से (**ऋञ्जसे**) रिझाता हूँ॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है, परमेश्वर उसी क्षण उन्हें जान लेता है और समय आने पर उनका फल अवश्य देता है। बुढ़ापे और मृत्यु से रहित, सृष्टि-रूप यज्ञ के परम याज्ञिक परमेश्वर की हमें श्रद्धा के साथ वेदमन्त्रों के उच्चारणपूर्वक सदा वन्दना करनी चाहिए॥२॥

मेरी वाणियाँ परमात्मा की महिमा का वर्णन कर रही हैं, यह कहते हैं।

**१३. उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।**
**वायोरनीके अस्थिरन्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे अग्ने! हे ज्योतिर्मय परमात्मन्! (**हविष्कृतः**) अपने आत्मा को हवि बनाकर आपको समर्पित करने वाले मुझ यजमान की (**जामयः**) बहिनें अर्थात् बहिनों के समान प्रिय और हितकर (**गिरः**) स्तुति वाणियाँ (**त्वा**) आपका (**देदिशतीः**) पुनः-पुनः अधिकाधिक बोध कराती हुई (**वायोः**) प्राणप्रद आपके (**अनीके**) समीप (**उप अस्थिरम्**) उपस्थित हुई हैं॥३॥

इस मन्त्र में वाणियों में जामित्व (भगिनीत्व) के आरोप

से रूपकालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :–हे परमात्मन्! आन्तरिक यज्ञ का अनुष्ठान करने की इच्छा वाला मैं श्रद्धालु होकर अपने आत्मा, मन, प्राण आदि को हवि-रूप से आपको समर्पित करता हुआ स्तुति-वाणियों से आपके गुणों का कीर्तन कर रहा हूँ। मेरे प्रेमोपहार को स्वीकार कीजिए।।३।।

अगले मन्त्र में परमात्मा को नमस्कार करते हैं।

**१४. उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।**
**नमो भरन्त एमसि॥४॥**

**पदार्थ** :–हे **(दोषावस्तः)** मोह-रात्रि को निवारण करने वाले **(अग्ने)** प्रकाशमय परमात्मन्! **(वयम्)** हम उपासक लोग **(दिवे दिवे)** प्रत्येक ज्ञानप्रकाश के लिए **(धिया)** ध्यान, बुद्धि और कर्म के साथ **(नमः)** नम्रता को **(भरन्तः)** धारण करते हुए **(त्वा)** आपकी **(उप एमसि)** उपासना करते हैं।।४।।

**भावार्थ** :–जो लोग मोह-रात्रि से ढके हुए हैं उन्हें अपने अन्तःकरण में अध्यात्म-ज्ञान का प्रकाश पाने के लिए नमस्कार की भेंटपूर्वक योगमार्ग का अनुसरण करके ध्यान, बुद्धि और कर्म के साथ परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए।।४।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के प्रति स्तोत्र का उपहार दिया जा रहा है।

**१५. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।**
**स्तोमं रुद्राय दृशीकम्॥५॥**

**पदार्थ** :–हम उपासक लोग **(विशेविशे)** सब मनुष्यों के हितार्थ **(यज्ञियाय)** पूजायोग्य, **(रुद्राय)** सत्योपदेश प्रदान करने वाले, अविद्या, अहंकार, दुःख आदि को दूर करने वाले तथा काम, क्रोध आदि शत्रुओं को रुलाने वाले परमात्मा-रूप अग्नि के लिए **(दृशीकम्)** दर्शनीय **(स्तोमम्)** स्तोत्र को [उपहार रूप में देते हैं।] हे **(जराबोध)** स्तुति को तारतम्यरूप से

जानने वाले अथवा स्तुति के द्वारा हृदय में उद्बुद्ध होने वाले परमात्मन्! आप (**तत्**) उस हमारे स्तोत्र को (**विविड्ढि**) स्वीकार करो॥

अथवा इस प्रकार अर्थयोजना करनी चाहिए। उपासक स्वयं को कह रहा है— हे (**जराबोध**) स्तुति करना जानने वाले मेरे अन्तरात्मन्! तू (**विशे विशे**) मन, बुद्धि आदि सब प्रजाओं के हितार्थ (**यज्ञियाय**) पूजायोग्य (**रुद्राय**) सत्य उपदेश देने वाले, दुःख आदि को दूर करने वाले, शत्रुओं को रुलाने वाले परमात्मा रूप अग्नि के लिए (**तत्**) उस प्रभावकारी, (**दृशीकम्**) दर्शनीय (**स्तोमम्**) स्तोत्र को (**विविड्ढि**) कर, अर्थात् उक्त गुणोंवाले परमात्मा की स्तुति कर॥५॥

**भावार्थ** :—हे जगदीश्वर! आप सबके पूजायोग्य हैं। आप ही रुद्र होकर हमारे हृदय में सद्गुणों को प्रेरित करते हैं, अविवेक, आलस्य आदिकों को निरस्त करते हैं, अन्तःकरण में जड़ जमाये हुए कामादि शत्रुओं को रुलाते हैं। अतः हम आपको हृदय में जगाने के लिए आपके लिए बहुत-बहुत स्तोत्रों को उपहार रूप में लाते हैं। किसी के स्तोत्र हार्दिक हैं या कृत्रिम हैं यह आप भली प्रकार जानते हैं। इसलिए हमारे द्वारा किये गये स्तोत्रों की हार्दिकता, दर्शनीयता तथा चारुता को जानकर आप उन्हें कृपा कर स्वीकार कीजिए। हे मेरे अन्तरात्मन्! तू परमात्मा की स्तुति से कभी विमुख मत हो॥५॥

अब परमात्मा रूप अग्नि का आह्वान करते हुए कहते हैं।

**१६. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।**
**मरुद्भिरग्न आ गहि॥६॥**

**पदार्थ** :—(**त्यम्**) उस हमारे द्वारा किये जाते हुए (**चारुम्**) श्रेष्ठ (**अध्वरम्**) हिंसा, अधर्म आदि दोषों से रहित उपासनायज्ञ या जीवनयज्ञ के (**प्रति**) प्रति (**गोपीथाय**) विषयों में भटकती हुई इन्द्रिय-रूप गौओं की रक्षा के लिए, अथवा हमारे श्रद्धारस-रूप सोमरस के पान के लिए (**प्र हूयसे**) आप बुलाये जा रहे हो। (**अग्ने**) हे ज्योतिर्मय परमात्मन्! आप (**मरुद्भिः**) प्राणों द्वारा अर्थात् हमसे की जाती हुई प्राणायाम

क्रियाओं द्वारा ( आ गहि ) हमारे यज्ञ में आओ।।६।।

**भावार्थ** :–हे परमात्मन्! जैसे पवनों से प्रज्वलित यज्ञाग्नि नाना ज्वालाओं से नृत्य करती हुई सी यज्ञवेदि में हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, वैसे ही हमारे प्राणायामरूप पवनों से प्रज्वलित किये हुए आप हमारे जीवनयज्ञ या उपासनायज्ञ में आओ, और मन, वाणी, चक्षु आदि इन्द्रियों को विषयों से निरन्तर बचाते हुए हमारे श्रद्धारस का रिझकर पान करो।।६।।

अब वन्दना करने के लिए परमात्मा का आह्वान करते हैं।

२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ ३र
**१७. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।**
३ १ २ ३ १ २
**सम्राजन्तमध्वराणाम्॥७॥**

**पदार्थ** :–( वारवन्तम् ) डाँस, मच्छर आदि को निवारण करने वाले बालों से युक्त ( **अश्वं न** ) घोड़े के समान ( **वारवन्तम्** ) विपत्तिनिवारण के सामर्थ्यों से युक्त, ( **अध्वराणाम्** ) **हिंसादि दोषों से रहित यज्ञों के** ( **सम्राजन्तम्** ) सम्राट् के समान ( **त्वा** ) आप ( **अग्निम्** ) **तेजस्वी परमात्मा** को ( **मनोभिः** ) नमस्कारों से ( **वन्दध्वै** ) **वन्दना** करने के लिए [ ( आहुवे ) पुकारता हूँ ]।।७।।

'अश्वं न त्वा वारवन्तम्' में श्लिष्टोपमालंकार है। 'सम्राजन्तम् अध्वराणाम्' में लुप्तोपमा है।।७।।

**भावार्थ** :–घोड़ा जैसे बालों से डाँस, मच्छर आदि का निवारण करता है, वैसे परमेश्वर अपने निवारणसामर्थ्यों से विपत्ति आदि का निवारण करता है। जैसे सम्राट् का अपने राज्य में सब पर प्रभुत्व होता है, वैसे ही परमात्मा विविध यज्ञों का प्रभु है। अतः ध्यान-यज्ञ में श्रद्धा के साथ सबको उसे पुकारना चाहिए।।७।।

कैसे परमात्मा का मैं आह्वान करता हूँ, यह कहते हैं।

३ १ २र ३ १ २र
**१८. और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे।**
३ १ २ ३ १ २
**अग्निं समुद्रवाससम्॥८॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। मैं (**और्वभृगुवत्**) पार्थिव पदार्थों को तपाने वाले सूर्य के समान, और (**अप्नवानवत्**) क्रियासेवी वायु के समान (**शुचिम्**) पवित्र व पवित्रताकारक, और (**समुद्रवाससम्**) हृदयाकाश में व ब्रह्माण्डाकाश में निवास करने वाले (**अग्निम्**) ज्योतिष्मान् तथा ज्योतिष्प्रद परमात्मा को (**आहुवे**) पुकारता हूँ।।

(**द्वितीय**) विद्युत् के पक्ष में। बिजली के प्रयोग के विषय में कहते हैं। मैं (**और्वभृगुवत्**) जैसे सूर्य को अर्थात् सूर्य के ताप को यन्त्रों आदि में प्रयुक्त करता हूँ, और (**अप्नवानवत्**) जैसे पाकादि कर्मों का सेवन करने वाले पार्थिव अग्नि को यन्त्रों आदि में प्रयुक्त करता हूँ, वैसे ही (**शुचिम्**) प्रदीप्त, (**समुद्रवाससम्**) अन्तरिक्षनिवासी (**अग्निम्**) वैद्युत अग्नि को (**आहुवे**) प्रकाश के लिए तथा यान आदि में प्रयुक्त करने के लिए अपने समीप लाता हूँ।।८।।

इस मन्त्र में उपमा और श्लेष अलंकार हैं।।८।।

**भावार्थ** :–**जैसे सूर्य और वायु पवित्र, पवित्रताकारक और सबके जीवनाधार हैं, वैसे ही परमात्मा भी है। जैसे सूर्य और वायु आकाश में निवास करते हैं, वैसे ही परमात्मा हृदयाकाश में और विश्वब्रह्माण्ड के आकश में निवास करता है। ऐसे परमात्मा का सबको साक्षात्कार करना चाहिए। साथ ही सूर्याग्नि, पार्थिवाग्नि तथा वैद्युत अग्नि के द्वारा यान आदि चलाने चाहिएँ।।८।।**

'जैसे और्व ऋषि, भृगु ऋषि और अप्नवान ऋषि शुचि अग्नि को बुलाते हैं, वैसे ही मैं बुला रहा हूँ', यह विवरणकार की व्याख्या है। भरतस्वामी का भी यही अभिप्राय है। सायण ने 'और्व' और 'भृगु' अलग-अलग नाम न मानकर एक 'और्वभृगु' नाम माना है। यह सब व्याख्यान असंगत है, क्योंकि सृष्टि के आदि में प्रादुर्भूत वेदों में पश्चाद्वर्ती ऋषि आदिकों का इतिहास नहीं हो सकता।

ईश्वर की आराधना के साथ कर्म भी करे, यह कहते हैं।

**१९. अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः।**
**अग्निमिन्धे विवस्वभिः॥९॥**

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। ( **मनसा** ) मन से ( **अग्निम्** ) हृदय में छिपे परमात्मा-रूप अग्नि को ( **इन्धानः** ) प्रदीप्त अर्थात् प्रकट करता हुआ ( **मर्त्यः** ) मरणधर्मा मनुष्य ( **धियम्** ) कर्म को ( **सचेत** ) सेवे–यह वैदिक प्रेरणा है। उस प्रेरणा से प्रेरित हुआ मैं ( **विवस्वभिः** ) अज्ञान को विध्वस्त करने वाली, आदित्य के समान भासमान मनोवृत्तियों से ( **अग्निम्** ) ज्योतिर्मय परमात्माग्नि को तथा कर्म की अग्नि को ( **इन्धे** ) प्रदीप्त करता हूँ, हृदय में प्रकट करता हूँ।

( **द्वितीय** ) यज्ञाग्नि के पक्ष में। यज्ञकर्म के लिए प्रेरणा है। ( **मनसा** ) श्रद्धा के साथ ( **अग्निम्** ) यज्ञाग्नि को ( **इन्धानः** ) प्रदीप्त करता हुआ ( **मर्त्यः** ) यजमान मनुष्य ( **धियम्** ) यज्ञविधियों को भी ( **सचेत** ) करे–यह वेद का आदेश है। तदनुसार मैं भी यज्ञकर्म करने के लिए ( **विवस्वभिः** ) प्रातः सूर्य किरणों के उदय के साथ ही ( **अग्निम्** ) यज्ञाग्नि को ( **इन्धे** ) प्रदीप्त करता हूँ। इससे यह सूचित होता है कि प्रातः यज्ञ का समय सूर्यकिरणों का उदय-काल है।।९।।

**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।९।।**

**भावार्थ** :–यहाँ 'मर्त्य' पद साभिप्राय है। मनुष्य मरणधर्मा है, न जाने कब मृत्यु की पकड़ में आ जाये। इसलिए जैसे यज्ञकर्म करने के लिए अग्नि को प्रज्वलित करता है, वैसे ही इसी जन्म में योगाभ्यास से हृदय में परमात्मा को प्रकाशित करके जीवन-पर्यन्त अग्निहोत्र आदि तथा समाज-सेवा आदि कर्मों को करे। यह न समझे कि यदि परमेश्वर का साक्षात्कार कर लिया तो फिर कर्मों से क्या प्रयोजन, क्योंकि 'कर्मों को करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे'। (य० ४०।2), यही वैदिक मार्ग है।।९।।

योगी जन कब परमेश्वर की अलौकिक ज्योति का दर्शन करते हैं, इस विषय को कहते हैं।

**२०. आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।**
**परो यदिध्यते दिवि॥१०॥**

**पदार्थ** :–( **आत् इत्** ) उसके अनन्तर ही ( **प्रत्नस्य** ) सनातन,

(रेतसः) वीर्यवान् परमसामर्थ्यशाली परमात्म-सूर्य की (वासरम्) राग, द्वेष, मोह आदि के अन्धकार को दूर करने वाली, अथवा अणिमा आदि ऐश्वर्यों की निवासक, अथवा दिव्य दिन उत्पन्न कर देने वाली (ज्योतिः) ज्योति को—योगदर्शनोक्त ज्योतिष्मती वृत्ति को, ज्ञानदीप्ति को या विवेकख्याति को, योगीजन (पश्यन्ति) देख पाते हैं, (यत्) जब, वह परमात्म-सूर्य (परः) परे (दिवि) आत्मारूप द्युलोक में (इध्यते) प्रदीप्त हो जाता है।।१०।।

श्लेष से सूर्य के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए।।१०।।

**भावार्थ** :—जैसे प्रातःकाल उदित सूर्य जब मध्याह्न के आकाश में पहुँच जाता है तभी लोग उसके अन्धकार-निवारक, देदीप्यमान, दिन को उत्पन्न करने वाले सम्पूर्ण प्रभामण्डल को देख पाते हैं, वैसे ही जब योगियों से ध्यान किया गया परमात्मा उनके आत्म-लोक में जगमगाने लगता है तभी वे उसके राग, द्वेष आदि के विनाशक, योगसिद्धियों के निवासक, जीवन्मुक्तिरूप दिन के जनक दिव्य प्रकाश का साक्षात्कार करने में समर्थ होते हैं।।१०।।

इस दशति में परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन करते हुए उसे रिझाने का, उसके प्रति नमस्कार करने का, उसे स्तोत्र अर्पण करने का, मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति के साथ-साथ कर्म में भी प्रेरित करने का और परम ज्योति के दर्शन का वर्णन है, अतः इस दशति के अर्थ की पूर्व दशति के अर्थ के साथ संगति है।।

## तृतीया दशतिः

**ऋषिः—१ प्रयोगः; २, ५ भरद्वाजः; ३, १० वामदेवः; ४, ६ वसिष्ठः; ७ विरूपः; ८ शुनःशेपः; ९ गोपवनः; ११ प्रस्कण्वः; १२ मेधातिथिः; १३ सिन्धुद्वीप आम्बरीषः, त्रित आप्त्यो वा; १४ उशनाः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री; २-१४ गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्माग्नि की उपासना के लिए मनुष्यों को प्रेरित किया गया है।

**२१. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।**
**अच्छा नप्त्रे सहस्वते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो, (**वः**) आप लोग (**सहस्वते**) प्रशस्त बल से युक्त (**नप्त्रे**) पतन को प्राप्त न होने वाली तथा पतित न करने वाली भौतिक सन्तान तथा सद्गुणादिरूप दिव्य सन्तान की प्राप्ति के लिए, (**वृधन्तम्**) वृद्धि करने वाले, (**अध्वराणाम्**) अग्निहोत्रादि-अश्वमेधपर्यन्त, हिंसा-रहित, कर्मकाण्डमय यज्ञों के अथवा स्तुति, प्रार्थना, उपासना, स्वाध्याय, ब्रह्मयज्ञादि ज्ञानयज्ञों के (**पुरूतमम्**) अतिशय पूरक (**अग्निम्**) तेजोमय, अग्रणी परमात्मा के (**अच्छ**) अभिमुख होवो, अर्थात् उसकी आराधना करो॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर उपासकों की उन्नति करता है, उनसे किये जाने वाले ज्ञानयज्ञ, भक्तियज्ञ और कर्मयज्ञों को पूर्ण करता है, और उन्हें सुप्रशस्त सन्तान तथा सद्गुण प्राप्त कराता है॥१॥

परमात्मा स्तोता को क्या फल प्रदान करे, यह कहते हैं।

**२२. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्या३त्रिणम्।**
**अग्निर्नो वंसते रयिम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अग्निः**) तेजोमय परमात्मा (**तिग्मेन**) तीक्ष्ण (**शोचिषा**) तेज से (**विश्वम्**) समस्त (**अत्रिणम्**) भक्षक काम-क्रोधादि अन्तःशत्रुवर्ग को और चोर, लुटेरे आदि सामाजिक शत्रुवर्ग को (**नियंसत्**) नियन्त्रित करे। (**अग्निः**) वह अग्निपदवाच्य परमात्मा (**नः**) हमारे लिए (**रयिम्**) सोना-चाँदी, प्रजा-पशु आदि लौकिक धन तथा सत्य, अहिंसा आदि आध्यात्मिक धन (**वंसते**) बाँटकर देवे॥२॥ श्लेष से भौतिक अग्नि के पक्ष में भी अर्थ योजना करनी चाहिए॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे पार्थिव अग्नि या विद्युत् तीक्ष्ण तेज से अपने पास आयी वस्तु को दग्ध करता है और शिल्पादि कर्मों में प्रयुक्त होकर धन प्रदान करता है, वैसे ही परमात्मा-रूप अग्नि उपासकों के आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं का निग्रह करता है और उन उपासकों को सांसारिक एवं आध्यात्मिक सम्पत्ति वितीर्ण करता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से सुख की प्रार्थना करते हैं।

१ २ ३ २ ३ ३ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**२३. अग्ने मृड महाँ अस्यय आ देवयुं जनम्।**
३ १ २ ३ २ ३ १ २
**इयेथ बर्हिरासदम्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**हे अग्ने**) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप मुझे (**मृड**) सुखी कीजिए। आप (**महान्**) महान् (**असि**) हो। आप (**देवयुम्**) दिव्यगुणों की कामना करने वाले अथवा परमात्माभिलाषी (**जनम्**) मुझ जन को (**अयः**) प्राप्त हुए हो। मेरे (**बर्हिः**) हृदयरूप आसन पर (**आसदम्**) बैठने के लिए (**आ इयेथ**) आये हो।।३।।

**भावार्थ** :–हे परमेश्वर, हे अन्तर्यामिन्, आप बड़ी कृपा करके मुझ अपने भक्त के हृदयासन पर आसीन होने के लिए आये हैं। निरन्तर दिव्यगुणों का सान्निध्य चाहता हुआ मैं आपके अनुग्रह की याचना करता हूँ। आप महान् हैं, मेरे विषय में भी अपनी महत्ता को चरितार्थ करें। सदा मुझे आनन्दित करते रहें।।३।।

अब परमात्मा से पाप आदि से रक्षा की प्रार्थना करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**२४. अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः।**
१ २ ३ १ २
**तपिष्ठैरजरो दह॥४॥**

**पदार्थ** :–(**हे अग्ने**) ज्योतिष्मन् परमात्मन्! आप (**नः**) हमारा (**अंहसः**) पापाचरण से (**रक्ष**) त्राण कीजिए। हे (**देव**) दिव्यगुणकर्मस्वभाव, सकलैश्वर्यप्रदाता, प्रकाशमान, सर्वप्रकाशक जगदीश्वर! (**अजरः**) स्वयं नश्वरता, जर्जरता आदि से रहित आप (**रिषतः**) हिंसापरायण आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को (**तपिष्ठैः**) अतिशय संतापक स्वकीय सामर्थ्यों से (**प्रति दह स्म**) भस्मसात् कर दीजिए।।

इस मन्त्र की श्लेष से भौतिक अग्नि तथा राजा के पक्ष में भी अर्थ-योजना करनी चाहिए।।४।।

**भावार्थ** :–जैसे भौतिक अग्नि शीत से, अन्धकार से और बाघ आदिकों से रक्षा करता है, अथवा राजा पापियों को दण्डित कर, आक्रमणकारियों और शत्रुओं को पराजित कर

प्रजा की पाप तथा शत्रुओं से रक्षा करता है, वैसे ही परमात्मा हमें आत्मरक्षा करने का सामर्थ्य प्रदान कर पापाचरण से तथा आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं से हमारी रक्षा करे॥४॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**२५. अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।**
**अरं वहन्त्याशवः॥५॥**

**पदार्थ** :–हे (**देव**) कर्मोपदेशप्रदाता (**अग्ने**) जगन्नायक परमेश्वर! (**ये**) जो (**तव**) आपके अर्थात् आप द्वारा रचित (**साधवः**) कार्यसाधक (**आशवः**) वेगवान् (**अश्वासः**) इन्द्रिय, प्राण, मन एवं बुद्धि रूप घोड़े (**अरम्**) पर्याप्त रूप से (**वहन्ति**) हमें निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचाते हैं, उनको आप (**हि**) अवश्य (**युङ्क्ष्व**) कर्म में नियुक्त कीजिए॥५॥

**भावार्थ** :–हे परमात्मदेव! किये हुए कर्मफल के भोगार्थ तथा नवीन कर्म के सम्पादनार्थ शरीररूप रथ तथा इन्द्रिय, प्राण, मन एवं बुद्धि रूप घोड़े आपने हमें दिए हैं। आलसी बनकर हम कभी निरुत्साही और अकर्मण्य हो जाते हैं। आप कृपा कर हमारे इन्द्रिय, प्राण आदि रूप घोड़ों को कर्म में तत्पर कीजिए, जिससे वैदिक कर्मयोग के मार्ग का आश्रय लेते हुए निरन्तर अग्रगामी होवें॥५॥

परमात्मा को हम हृदय में धारण करते हैं, यह कहते हैं।

**२६ नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम्।**
**सुवीरमग्न आहुत॥६॥**

**पदार्थ** :–हे (**नक्ष्य**) प्राप्तव्य, शरणागतों के हितकर, (**विश्पते**) प्रजापालक, (**आहुत**) बहुतों से सत्कृत (**अग्ने**) सबके अग्रणी, ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! (**वयम्**) हम उपासक (**द्युमन्तम्**) दीप्तिमान्, (**सुवीरम्**) श्रेष्ठ वीरतादि गुणों को प्राप्त कराने वाले (**त्वा**) आपको (**निधीमहे**) निधिवत् अपने अन्तः-करण में धारण करते हैं अथवा आपका ध्यान करते हैं॥६॥

**भावार्थ** :–सबको चाहिए कि शरणागतवत्सल, प्रजाओं के पालनकर्त्ता, बहुत जनों से वन्दित, वीरता को देनेवाले, तेज के निधि परमेश्वर को अपने हृदय में धारण करें और उसका ध्यान करें।।६।।

अब सूर्य दृष्टान्त से परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हैं।

**२७. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।**
**अपां रेतांसि जिन्वति॥७॥**

**पदार्थ** :–**प्रथम**, परमात्मा के पक्ष में। (**अग्निः**) सबका अग्रनेता परमेश्वर (**मूर्द्धा**) शरीर में मूर्द्धा के समान जगत् का शिरोमणि है, (**दिवः**) प्रकाशमान द्युलोक का (**ककुत्**) सर्वोन्नत स्वामी है, और (**पृथिव्याः**) पृथिवी का (**पतिः**) पालक है। (**अयम्**) यह परमेश्वर (**अपाम्**) अन्तरिक्ष के (**रेतांसि**) जलों को (**जिन्वति**) वर्षा द्वारा भूमि पर पहुँचाता है।

**द्वितीय**, सूर्य के पक्ष में। (**अग्निः**) प्रकाशक सूर्यरूप अग्नि (**मूर्द्धा**) त्रिलोकी का सिर–सदृश, (**दिवः**) द्युलोकरूपी बैल का (**ककुत्**) कुब्ब–सदृश और (**पृथिव्याः**) भूमि का (**पतिः**) पालनकर्त्ता स्वामी है। यह (**अपाम्**) अन्तरिक्ष के (**रेतांसि**) जलों को (**जिन्वति**) भूमि पर प्रेरित करता है, बरसाता है।।७।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। परमेश्वर सूर्य के समान है, यह उपमाध्वनि है। मूर्द्धा के समान, ककुत् के समान, इस प्रकार लुप्तोपमा है, अथवा अग्नि में मूर्द्धत्व तथा ककुत्त्व के आरोप होने से रूपकालङ्कार है। अग्नि में ककुत्त्व का आरोप शाब्द तथा द्युलोक में वृषभत्व का आरोप आर्थ है, अतः एकदेशविवर्ती रूपक है।।७।।

**भावार्थ** :–जैसे सूर्य सौरलोक का मूर्धातुल्य, द्युलोक का कुब्ब–तुल्य और भूमि का पालनकर्त्ता है, वैसे ही हमारे द्वारा उपासना किया जाता हुआ यह परमेश्वर सकल ब्रह्माण्ड का शिरोमणि है, उज्ज्वल नाना नक्षत्रों से जटित द्युलोक का अधिपति है और विविध पर्वत, नदी, नद, सागर, सरोवर, लता, वृक्ष,

पत्र, पुष्प आदि की शोभा से युक्त भूमण्डल का पालक है। वही सूर्य के समान आकाश में स्थित मेघजलों को भूमि पर बरसाता है। अतः वह सबका धन्यवाद-योग्य है॥७॥

परमात्मा ने ही सृष्टि के आदि में वेदविज्ञान का प्रवचन किया था, यह कहते हैं।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**२८. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।**
१ २ ३ २ ३ १ २
**अग्ने देवेषु प्र वोचः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अनन्तविद्यामय जगदीश्वर! (**त्वम्**) सब मङ्गलों को देने वाले आप (**इमम्**) इस (**अस्माकम्**) हम मनुष्यों के (**सनिम्**) बहुत बोधप्रद (**नव्यांसम्**) नवीनतर (**गायत्रम्**) गायत्र्यादि छन्दों से युक्त चारों वेदों को (**देवेषु**) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् ऋषियों के प्रति (**सुप्रवोचः**) सम्यक्तया सृष्टि के आदि में प्रवचन करते हो॥८॥

**भावार्थ** :—जगत्पिता, परम कारुणिक परमेश्वर मनुष्यों के कर्त्तव्यबोध के लिए सृष्टि के आदि में महर्षियों के हृदयों में चारों वेदों का उपदेश करता है, जिनका अध्ययन करके हम ज्ञानी बनते हैं। उसकी इस महती कृपा का कौन अभिनन्दन नहीं करेगा?॥८॥

कौन उस परमात्मा को हृदय में प्रकट करता है, यह कहते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र
**२९. तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।**
१ २ ३ १ २
**स पावक श्रुधी हवम् ॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**अङ्गिरः**) मेरे प्राणभूत (**अग्ने**) ज्ञान के सूर्य, जगन्नेता परमात्मन्! (**तम्**) उस समस्त गुणगणों से युक्त (**त्वा**) आपको (**गो-पवनः**) इन्द्रियरूप या वाणीरूप गौओं का शोधक, पवित्रेन्द्रिय, पूतवाक् स्तोता, अथवा (**गोपवनः**) आत्मसेवी स्तोता (**गिरा**) स्तुतिवाणी या वेदवाणी से (**जनिष्ठत्**) अपने अन्तःकरण में प्रकट करता है। हे (**पावक**) शुद्धिकर्त्ता

देव! (**सः**) वह तू (**हवम्**) मेरे आह्वान को (**श्रुधि**) सुन॥९॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर अव्यक्त रूप से सबके हृदय में सन्निविष्ट है। उसे पवित्रेन्द्रिय, पवित्र वाणी वाला, आत्मसेवी मनुष्य ही वेदमन्त्रों से स्तुति करता हुआ प्रकट करने में समर्थ होता है, और परमेश्वर प्रकट होकर हृदय को पवित्र करता है॥९॥

परमेश्वर स्तोता का क्या उपकार करता है, यह कहते हैं।

**३०. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।**
**दधद्रत्नानि दाशुषे॥१०॥**

पदार्थ :—**प्रथम**, परमेश्वर के पक्ष में। (**वाजपतिः**) आत्मिक बलों का अधीश्वर (**कविः**) मेधावी, दूरदर्शी (**अग्निः**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (**दाशुषे**) अपने आत्मा को हवि बनाकर ईश्वरार्पण करने वाले आत्मदानी स्तोता के लिए (**रत्नानि**) रमणीय सद्‌गुणरूप धन (**दधत्**) प्रदान करता हुआ, उसकी (**हव्यानि**) आत्मसमर्पणरूप हवियों को (**परि अक्रमीत्**) सब ओर से प्राप्त करता है अर्थात् स्वीकार करता है॥

(**द्वितीय**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। (**वाजपतिः**) अन्नों और बलों का प्रदाता तथा पालक (**कविः**) गतिमान् (**अग्निः**) यज्ञाग्नि (**दाशुषे**) हवि देने वाले यजमान के लिए (**रत्नानि**) आरोग्य आदि रूप रमणीय फलों को (**दधत्**) देता हुआ (**हव्यानि**) सुगन्धित, मधुर, पुष्टिकर तथा रोगनाशक घृत, केसर, कस्तूरी आदि हवियों को (**परि अक्रमीत्**) सूक्ष्म करके चारों ओर फैला देता है॥१०॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है और उपमानोपमेयभाव ध्वनित होता है॥१०॥

**भावार्थ** :—जैसे अन्नों और बलों की उत्पत्ति का निमित्त यज्ञाग्नि हवि देने वाले यजमान को दीर्घायुष्य, आरोग्य आदि फल प्रदान करता है, वैसे ही आत्मसमर्पणरूप हवि देने वाले स्तोता को परमेश्वर सद्‌गुण आदि रूप फल देता है॥१०॥

अगले मन्त्र में सूर्य के दृष्टान्त से परमेश्वर विषय का

उपदेश है।

**३१. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।**
**दृशे विश्वाय सूर्यम्॥११॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) सूर्य के पक्ष में। (**केतवः**) किरणें (**त्यम्**) उस प्रसिद्ध (**जातवेदसम्**) उत्पन्न पदार्थों को प्रकाशित करने वाले (**देवम्**) प्रकाशमान, प्रकाशक, दिन-रात आदि के प्रदाता तथा द्युलोक में स्थित (**सूर्यम्**) सूर्य-रूप अग्नि को (**विश्वाय दृशे**) सब प्राणियों के दर्शन के लिए (**उद् वहन्ति**) पृथिवी आदि लोकों में पहुँचाती हैं, अर्थात् सूर्य ऊपर स्थित हुआ भी किरणों द्वारा सब लोकों में पहुँच जाता है।।

(**द्वितीय**) परमेश्वर के पक्ष में। (**केतवः**) जिन्हें ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो गई है वे योगी लोग (**त्यम्**) स्वयम् अनुभव किये गये उस प्रसिद्ध (**जातवेदसम्**) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, धनों के उत्पादक और ज्ञानप्रदायक, (**देवम्**) दिव्यगुणप्रदाता (**सूर्यम्**) सूर्य के सदृश ज्योतिर्मय परमेश्वर-रूप अग्नि को (**विश्वाय दृशे**) सबके साक्षात्कार के लिए (**उद् वहन्ति**) सर्वत्र प्रचारित करते हैं।।११।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। सूर्य और परमेश्वर का उपमानोपमेयभाव व्यंग्य है।।११।।

**भावार्थ** :–जैसे सूर्य के प्रकाश को उसकी किरणें भूमि आदि लोकों को पहुँचाती हैं, जिससे सब लोग देख सकें, वैसे ही योगी विद्वान् जन परमेश्वर का स्वयं साक्षात्कार करके अन्यों के दर्शनार्थ उसे सर्वत्र प्रचारित करते हैं।।११।।

भौतिक अग्नि के समान परमेश्वर के भी गुण सबके जानने योग्य हैं, यह कहते हैं।

**३२. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।**
**देवममीवचातनम्॥१२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। हे मनुष्य, तू (**अध्वरे**) हिंसादि-रहित जीवनयज्ञ में (**कविम्**) वेदकाव्य के

कवि एवं क्रान्तदर्शी, **(सत्यधर्माणम्)** सत्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, **(देवम्)** सुख आदि के दाता, **(अमीवचातनम्)** अज्ञान आदि तथा व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि योगविघ्नकारी मानस रोगों को विनष्ट करने वाले **(अग्निम्)** तेजस्वी परमेश्वर की **(उप स्तुहि)** उपासना कर॥

**(द्वितीय)** भौतिक अग्नि के पक्ष में। हे मनुष्य, तू **(अध्वरे)** शिल्पयज्ञ में **(कविम्)** गतिमान्, **(सत्यधर्माणम्)** सत्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, **(देवम्)** प्रकाशमान, प्रकाशक और व्यवहार-साधक, **(अमीवचातनम्)** ज्वरादि रोगों को नष्ट करने वाले, **(अग्निम्)** आग, बिजली और सूर्य के **(उप स्तुहि)** गुणों का वर्णन कर॥१२॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥१२॥

**भावार्थ** :-मनुष्यों को शिल्पविद्या की सिद्धि के लिए जैसे भौतिक आग, बिजली और सूर्य का गुणज्ञानपूर्वक सेवन करना चाहिए, वैसे ही धर्म-प्राप्ति के लिए परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का ज्ञान, वर्णन और अनुकरण करना चाहिए॥१२॥

अग्नि-ज्वालाओं के तुल्य ईश्वरीय दिव्यशक्तियाँ हमारे लिए क्या करें, यह कहते हैं।

**३३. शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये।**
**शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥१३॥**

**पदार्थ** :-**(देवीः)** भौतिक अग्नि की दिव्य ज्वालाओं के समान परमात्माग्नि की दिव्य शक्तियाँ **(अभिष्टये)** अभीष्ट की प्राप्ति के अर्थ **(नः)** हमारे लिए **(शम्)** कल्याणकारिणी **(भवन्तु)** हों, **(पीतये)** प्राप्त के रक्षार्थ **(नः)** हमारे लिए **(शम्)** कल्याणकारिणी **(भवन्तु)** हों। **(नः)** हमारे **(शं योः)** आगत कष्टों के मनार्थ तथा अनागत कष्टों को दूर रखने के लिए **(अभिस्रवन्तु)** चारों ओर प्रवाहित होती रहें॥१३॥

**भावार्थ** :-'अभिष्टि' और 'पीति' शब्दों से क्रमशः योग और क्षेम का ग्रहण होता है। अप्राप्त की प्राप्ति को 'अभिष्टि' या 'योग' कहते हैं और प्राप्त की रक्षा को 'पीति' या 'क्षेम'।

परमेश्वर की दिव्य शक्तियाँ हमें योग-क्षेम प्रदान करें, यह अभिप्राय है। साथ ही जिन आपदाओं से ग्रस्त होकर हम पीड़ित होते हैं और जिन अनागत आपदाओं के भय से संत्रस्त होते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि वे हमें धर दबोचें, वे सब आपत्तियाँ परमेश्वर की दिव्य शक्तियों के प्रभाव से और हमारे पुरुषार्थ से दूर हो जाएँ।।१३।।

कौन परमेश्वर की कृपा का पात्र होता है, यह कहते हैं।

**३४. कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते।**
**गोषाता यस्य ते गिरः॥१४।**

**पदार्थ** :—हे (**सत्पते**) सज्जनों के पालक ज्योतिर्मय परमात्मन्! आप (**नूनम्**) निश्चय ही (**कस्य**) किस मनुष्य की (**धियः**) बुद्धियों को (**परीणसि**) बहुत अधिक (**जिन्वसि**) सन्मार्ग में प्रेरित करते हो? **यह प्रश्न है। इसका उत्तर देते हैं–(यस्य) जिस मनुष्य को (ते) आपकी (गिरः) उपदेशवाणियाँ (गोसाता)** श्रेष्ठ गायों, श्रेष्ठ इन्द्रियबलों, श्रेष्ठ पृथिवी-राज्यों और श्रेष्ठ आत्म-किरणों को प्राप्त कराने में सफल होती हैं, उसी की बुद्धियाँ सन्मार्ग में आप द्वारा प्रेरित की गयी हैं, यह मानना चाहिए।।१४।।

**भावार्थ** :—जो मनुष्य परमात्मा के उपदेश को सुनकर अधिकाधिक भौतिक और आध्यात्मिक सम्पदा को प्राप्त कर लेता है, वही परमात्मा का कृपापात्र है, यह समझना चाहिए।।१४।।

इस दशति में परमात्मा आदि के महत्त्व का वर्णन करते हुए उनकी स्तुति के लिए प्रेरणा होने से इसके विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।।

## चतुर्थी दशतिः

**ऋषिः—१, ३ शंयुः; २, ५, ८, ९ भर्गः; ४ वसिष्ठः; ६ प्रस्कण्वः; ७ तृणपाणिः; १० सोभरिः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

कोई विद्वान् उपदेशक मनुष्यों को प्रेरणा कर रहा है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**३५. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।**
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
**प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो, (**यज्ञायज्ञा**) प्रत्येक यज्ञ में (**वः**) तुम लोगों को (**अग्नये**) सद्गुणप्रेरक परमात्मा की आराधना करने के लिए, मैं नियुक्त करता हूँ। (**गिरागिरा च**) और प्रत्येक वाणी से अर्थात् प्रभावजनक वाक्यावली के विन्यास से (**दक्षसे**) बढ़ने अर्थात् उन्नति करने के लिए, प्रेरित करता हूँ। इस प्रकार (**वयम्**) तुम-हम सब मिलकर (**अमृतम्**) अमरणधर्मा, अविनाशी (**जातवेदसम्**) सर्वज्ञ और सर्वव्यापक परमेश्वर की (**प्र प्र**) पुनः-पुनः प्रशंसा करते हैं। मैं पृथक् भी (**प्रियम्**) प्रिय (**मित्रं न**) मित्र के समान, उस परमेश्वर की (**प्र प्र शंसिषम्**) पुनः पुनः प्रशंसा करता हूँ॥१॥

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों द्वारा जो भी नित्य या नैमित्तिक यज्ञ आयोजित किये जाते हैं उनमें परमेश्वर का अवश्य स्मरण और आराधन करना चाहिए। महापुरुष मनुष्यों को यह प्रेरणा दें कि तुम निरन्तर वृद्धि और समुन्नति के लिए प्रयत्न करो। इस प्रकार उपदेश देने वाले और उपदेश सुनने वाले सब मिलकर एकमति से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति करें तथा ऐहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय को प्राप्त करें॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और विद्वान् मनुष्य से प्रार्थना करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**३६. पाहि नो अग्न एकया पाह्यू३त द्वितीयया।**
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**ऊर्जां पते**) अन्नों, रसों, बलों और प्राणों के अधिपति, (**वसो**) सर्वत्र बसने वाले सर्वान्तर्यामी तथा निवासप्रदायक (**अग्ने**) परमात्मन्!

आप (**नः**) हमारी (**एकया**) एक ऋग्-रूप वाणी से (**रक्ष**) रक्षा कीजिए; (**उत**) और (**द्वितीयया**) दूसरी यजुःरूप वाणी से (**पाहि**) रक्षा कीजिए; (**तिसृभिः**) तीन ऋग्, यजुः और सामरूप सम्मिलित (**गीर्भिः**) वाणियों से (**पाहि**) रक्षा कीजिए, (**चतसृभिः**) चार ऋग्, यजुः, साम और अथर्व रूप सम्मिलित वाणियों से (**पाहि**) रक्षा कीजिए। यहाँ चार बार 'पाहि' के प्रयोग से परमेश्वर द्वारा करणीय रक्षा की निरन्तरता सूचित होती है।।

(**द्वितीय**) विद्वान् के पक्ष में। हे (**ऊर्जां पते**) बलों के पालक, (**वसो**) उत्तम निवास देने वाले, (**अग्ने**) अग्नि के तुल्य विद्या-प्रकाश से युक्त विद्वन्! आप (**एकया**) एक उत्तम शिक्षा से (**नः**) हमारी (**पाहि**) रक्षा कीजिए; (**उत**) और (**द्वितीयया**) दूसरी अध्यापन क्रिया से (**पाहि**) रक्षा कीजिए; (**तिसृभिः**) कर्म-काण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञान-काण्ड को जताने वाली तीन (**गीर्भिः**) **वाणियों से** (**पाहि**) रक्षा कीजिए; (**चतसृभिः**) **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका** विज्ञान कराने वाली **चार प्रकार की वाणियों से** (**पाहि**) **रक्षा** कीजिए।।२।।

**भावार्थ** :—चार **वेदवाणियाँ परमेश्वर** ने हमारे हित के लिए प्रदान की हैं। यदि हम वेद-**वर्णित** ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान विषयों को पढ़कर कर्तव्य कर्मों का आचरण करें तो निस्सन्देह हमारी रक्षा होगी। विद्वानों को चाहिए कि वेद पढ़ाकर वेदविहित धर्म, अर्थ, कर्म, काम और मोक्ष का उपदेश देकर हमारी रक्षा करें।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**३७. बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा। भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत् पावक दीदिहि॥३॥**

**पदार्थ** –हे (**यविष्ठ्य**) अतिशय युवा (**पावक**) पवित्रकर्ता (**देव**) दाता (**अग्ने**) तेजस्वी परमेश्वर! (**बृहद्भिः**) महान् (**अर्चिभिः**) तेजों से, और (**शुक्रेण**) शुद्ध (**शोचिषा**) ज्ञान-प्रकाश से (**भरद्वाजे**) अपने आत्मा में बल भरने वाले

पुरुषार्थप्रिय मुझ स्तोता के अन्दर अथवा बल एवं उत्साह से सम्पन्न मेरे मन के अन्दर (**समिधानः**) प्रकाशित होते हुए आप (**रेवत्**) समृद्धिपूर्वक (**दीदिहि**) देदीप्यमान हों॥३॥

**भावार्थ** –मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर ही परमेश्वर का आह्वान करना चाहिए। अकर्मण्य की प्रार्थना वह नहीं सुनता॥३॥

कौन लोग परमात्मा के प्रिय हों, यह कहते हैं।

**३८. त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः। यन्तारो ये**
**मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम्॥४॥**

**पदार्थ** –हे (**स्वाहुत**) श्रद्धारसों की हवियों से सम्यक् आहुतिप्राप्त (**अग्ने**) तेजोमय परमात्मन्! आपके (**सूरयः**) स्तोता विद्वान् जन (**त्वे**) आपकी दृष्टि में (**प्रियासः**) प्रिय (**सन्तु**) होवें, (**मघवानः**) लौकिक एवं आध्यात्मिक धनों से सम्पन्न (**ये**) जो (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**यन्तारः**) शुभ एवं अशुभ कर्मों में नियन्त्रणकर्ता होते हुए (**गोनाम्**) चक्षु आदि इन्द्रियों के (**ऊर्वम्**) हिंसक दोष को (**दयन्त**) नष्ट करते हैं; अथवा (**गोनाम्**) वेदवाणियों के (**ऊर्वम्**) समूह को (**दयन्त**) अन्यों को प्रदान करते हैं; अथवा (**गोनाम्**) गायों की (**ऊर्वम्**) गोशाला की (**दयन्त**) रक्षा करते हैं॥४॥

**भावार्थ** –जो विद्वान् श्रद्धालु लौकिक और आध्यात्मिक सब प्रकार के धन को उपार्जित कर, योग्य होकर, लोगों का नियन्त्रण करते हैं, अपने और दूसरों के इन्द्रिय-दोषों को दूर करते हैं, वेद-वाणियों का प्रसार करते हैं और अमृत प्रदान करने वाली गायों की रक्षा करते हैं, वे ही परमात्मा के प्रिय होते हैं॥४॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा का महत्त्व वर्णित किया गया है।

**३९. अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः।**
**अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः॥५॥**

**पदार्थ** –(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। हे (**जरितः**) सज्जनों के गुणों के प्रशंसक (**अग्ने**) परमात्मन्! आप (**विश्पतिः**) प्रजापालक हो। हे (**देव**) ज्योतिर्मय! आप (**रक्षसः**) राक्षसी वृत्ति वाले मनुष्यों के (**तपानः**) सन्तापक हो। हे (**गृहपते**) ब्रह्माण्डरूप गृह के स्वामिन्! (**अप्रोषिवान्**) ब्रह्माण्डरूप गृह से कभी प्रवास न करने वाले, (**दिवः पायुः**) प्रकाशमान द्युलोक के अथवा प्रकाशमान जीवात्मा के रक्षक, (**दुरोणयुः**) सबको निवास गृह दिलाना चाहने वाले आप (**महान्**) महान् (**असि**) हो॥

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**जरितः**) परमेश्वर के स्तोता (**अग्ने**) राष्ट्रनायक राजन्! आप (**विश्पतिः**) प्रजाओं के पालक हो। हे (**देव**) दानादि गुणों से देदीप्यमान राजन्! आप (**रक्षसः**) दुष्ट शत्रुओं के (**तपानः**) सन्तापक हो। हे (**गृहपते**) राष्ट्र-गृह के स्वामिन्! (**अप्रोषिवान्**) राष्ट्र से प्रवास न करने वाले, (**दिवः पायुः**) विद्या आदि के प्रकाश के रक्षक (**दुरोणयुः**) राष्ट्र-रूप घर की उन्नति चाहने वाले आप (**महान्**) महान् (**असि**) हो॥५॥

इस मन्त्र में **अर्थश्लेष** अलंकार है॥५॥

**भावार्थ** :–जैसे परमेश्वर सज्जनों की रक्षा करता हुआ, दुर्जनों को दण्ड देता हुआ सबकी समुन्नति चाहता है, वैसे ही राजा भी प्रजाओं का पालन करता हुआ, दुष्टों का उन्मूलन करता हुआ राष्ट्र को उत्कर्ष की ओर ले जाए॥५॥

परमेश्वर हमें क्या प्रदान करे, यह कहते हैं।

**४०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।**
**आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः॥६॥**

**पदार्थ** –हे (**अमर्त्य**) स्वरूप से मरणधर्मरहित, (**जातवेदः**) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, ज्ञाननिधि, (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**अद्य**) आज (**दाशुषे**) धन-धान्य, विद्या आदि का दान करने वाले मुझे (**उषसः**) उषा के (**चित्रम्**) अद्भुत, (**विवस्वत्**) अज्ञान, दरिद्रता आदि के अन्धकार को दूर करने वाले (**राधः**) सत्यरूप अथवा ज्योति-रूप धन को और

( **उपर्बुधः** ) उषःकाल में स्वयं जागने तथा अन्यों को जगाने वाले ( **देवान्** ) उत्तम विद्वानों तथा दिव्यगुणों को ( **आ वह** ) प्राप्त कराओ।।६।।

**भावार्थ** –सब मनुष्य उषःकाल में प्रबुद्ध होने वाले दिव्यगुणों को हृदय में धारण करते हुए उषा के समान तेज की किरणों से युक्त, प्राणवान्, यज्ञवान्, प्रबोधवान् और सत्यवान् होकर विद्वानों के संग से सदा जागरूक, सदाचारी और धर्मात्मा होवें।।६।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से धन की प्रार्थना की गयी है।

**४१. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय। अस्य**
**रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः॥७॥**

**पदार्थ** :–हे ( **वसो** ) निवासक ( **अग्ने** ) परमात्मन्! ( **चित्र** ) अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाव वाले, पूज्य और दर्शनीय ( **त्वम्** ) आप ( **ऊत्या** ) रक्षा के साथ ( **नः** ) हमारे लिए ( **राधांसि** ) विद्या, सुवर्ण, चक्रवर्ती राज्य, मोक्ष आदि धनों को ( **चोदय** ) प्रेरित कीजिए। ( **त्वम्** ) आप ( **अस्य** ) इस दृश्यमान ( **रायः** ) लौकिक तथा पारमार्थिक धन के ( **रथीः** ) स्वामी ( **असि** ) हो। अतः ( **नः** ) हमें तथा ( **तुचे** ) हमारे पुत्र-पौत्र आदि सन्तान को ( **तु** ) शीघ्र व अवश्य ( **गाधम्** ) पूर्वोक्त धन की थाह को, अर्थात् अपरिमित उपलब्धि को, ( **विदा** ) प्राप्त कराओ।।७।।

**भावार्थ** :–हे जगदीश्वर! सब प्राणियों के तथा नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदिकों के निवासक होने से आप 'वसु' कहलाते हो। वह आप जगत् में दिखायी देने वाले चाँदी, सोना मोती, मणि हीरे आदि, कन्द, मूल फल आदि, दूध, दही मक्खन आदि, अहिंसा, सत्य अस्तेय आदि, शौच, सन्तोष तप स्वाध्याय आदि और धर्म, अर्थ काम मोक्ष आदि धनों के परम अधिपति हो। आप कृपा कर हमारे अन्दर पुरुषार्थ उत्पन्न करो, जिससे हम भी उन भौतिक और आध्यात्मिक धनों के अधिपति हो सकें।।७।।

अब परमात्मा किन गुणों से युक्त है और कौन उसकी पूजा करते हैं, यह बताते हैं।

४२. त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः। त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः॥८॥

**पदार्थ** :—हे (**त्रातः**) रक्षक (**अग्ने**) अग्रणी परमेश्वर! (**त्वम् इत्**) आप निश्चय ही (**सप्रथाः**) परम यशस्वी एवं सर्वत्र विस्तीर्ण, (**ऋतः**) सत्यस्वरूप, और (**कविः**) वेदकाव्य के रचयिता एवं मेधावियों में अतिशय मेधावी (**असि**) हो। हे (**समिधान**) सम्यक् प्रकाशमान, (**दीदिवः**) प्रकाशक परमेश्वर! (**वेधसः**) कर्मयोगी (**विप्रासः**) ज्ञानीजन (**त्वाम्**) आपकी (**आ विवासन्ति**) सर्वत्र पूजा करते हैं॥८॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर सज्जनों का रक्षक, सत्य गुण, कर्म स्वभाव वाला, अतिशय मेधावी, वेद-काव्य का कवि, परम कीर्तिमान्, सर्वत्र व्यापक, ज्योतिष्मान् और प्रकाशकों का भी प्रकाशक है। उसके इन गुणों से युक्त होने के कारण कर्म-कुशल विद्वान् जन सदा ही उसकी पूजा करते हैं॥८॥

परमेश्वर हमें कैसा धन दे, यह कहते हैं।

४३. आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम्। रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम्॥९॥

**पदार्थ**:—हे (**पावक**) चित्तशोधक, पतितपावन (**अग्ने**) सन्मार्गदर्शक परमात्मन्! आप (**वयोवृधम्**) आयु को बढ़ाने वाले, (**शंस्यम्**) प्रशंसायोग्य (**रयिम्**) धन को (**नः**) हमारे लिए (**आ**) लाइए, और लाकर, हे (**उपमाते**) उपमानभूत, सर्वोपमा योग्य परमात्मन्! (**पुरुस्पृहम्**) बहुत अधिक चाहने योग्य अथवा बहुतों से चाहने योग्य (**सुयशस्तरम्**) अतिशय कीर्तिजनक उस धन को (**सुनीती**) सन्मार्ग पर चलाकर (**नः**) हमें (**रास्व च**) प्रदान भी कीजिए॥९॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से और अपने पुरुषार्थ से सन्मार्ग का अनुसरण करते हुए हम चाँदी, सोना, पृथिवी का राज्य आदि भौतिक तथा विद्या, विनय, योगसिद्धि, मोक्ष आदि आध्यात्मिक धन का संचय करें, जो भरपूर धन हमारी आयु को बढ़ाने वाला तथा उजली कीर्ति को उत्पन्न करनेवाला हो॥९॥

अगले मन्त्र में परमात्मा को स्तोत्र अर्पित करने के लिए कहा गया है।

४४. यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये॥१०॥

**पदार्थ** :–(**होता**) विविध वस्तुओं और शुभ गुणों का प्रदाता, (**जनानाम्**) मनुष्यों का (**मन्द्रः**) आनन्दजनक (**यः**) जो परमेश्वर (**विश्वा**) समस्त (**वसु**) धनों को (**दयते**) प्रदान करता है, (**अस्मै**) ऐसे इस (**अग्नये**) नायक परमेश्वर के लिए (**मधोः**) शहद के (**प्रथमा**) श्रेष्ठ (**पात्रा न**) पात्रों के समान (**स्तोमाः**) मेरे स्तोत्र (**प्रयन्तु**) भलीभाँति पहुँचें॥१०॥

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है॥१०॥

**भावार्थ** :–जैसे घर में आये हुए विद्वान् अतिथि को मधु, दही, दूध आदि से भरे हुए पात्र सत्कारपूर्वक समर्पित किये जाते हैं, वैसे ही परम दयालु, परोपकारी परमात्मा के लिए भक्तिभाव से भरे हुए स्तोत्र समर्पित करने चाहिएँ॥१०॥

इस दशति में परमात्मा के गुणवर्णनपूर्वक उससे समृद्धि-आदि की याचना की गयी है, अतः इसके विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## पञ्चमी दशतिः

**ऋषिः–१ वसिष्ठः; २ भर्गः; ३, ७ सोभरिः; ४ मनुः; ५ सुदीतिपुरुमीढौ; ६ प्रस्कण्वः; ८ मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च; ९ विश्वामित्रः; १० कण्वः॥ देवता–१-७, ९, १० अग्निः; ८ इन्द्रः॥ छन्दः–बृहती॥ स्वरः–मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के गुणों का वर्णन है।

४५. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्॥१॥

**पदार्थ** :–मैं (**एना**) इस (**नमसा**) नमस्कार द्वारा (**ऊर्जः नपातम्**) बल एवं प्राणशक्ति के पुत्र अर्थात् अतिशय बलवान्

और प्राणवान् (**प्रियम्**) प्रिय, (**चेतिष्ठम्**) सबसे अधिक ज्ञानी और ज्ञानप्रदाता, (**अरतिम्**) सर्वव्यापक वा सुखप्रापक, (**स्वध्वरम्**) उत्कृष्ट, अहिंसामय सृष्टिसंचालन-रूप यज्ञ के कर्ता, (**विश्वस्य**) सबके (**दूतम्**) दुःख, दोष आदि को दूर करनेवाले, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करानेवाले तथा काम-क्रोधादि शत्रुओं को उपतप्त करनेवाले, (**अमृतम्**) स्वरूप से नाश-रहित (**वः**) आप (**अग्निम्**) परमात्मा को या (**आहुवे**) पुकारता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :–जो परमात्मा बल और प्राण का खजाना, भक्तवत्सल, पूर्णज्ञानी, सर्वव्यापक, सुखज्ञान आदि का प्रदाता, दुःख-दारिद्र्य आदि का विनाशक, विविध यज्ञ करने में कुशल, दोषों को दग्ध करने वाला, गुणों को प्राप्त कराने वाला और मरणधर्म से रहित है, उसकी सबको प्रेम से श्रद्धापूर्वक स्तुति करनी चाहिए॥१॥

**अब भौतिक अग्नि के सादृश्य से परमात्मा के कर्म का वर्णन करते हैं।**

**४६. शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते। अतन्द्रो**
**हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि॥२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। हे यज्ञाग्नि! तू (**वनेषु**) वनों में, वन के काष्ठों में, और (**मातृषु**) अपनी माता-रूप अरणियों के गर्भ में (**शेषे**) सोता है, छिपे रूप से विद्यमान रहता है। (**त्वा**) तुझे (**मर्तासः**) याज्ञिक मनुष्य (**समिन्धते**) अरणियों को मथकर प्रज्वलित करते हैं। प्रज्वलित हुआ तू (**अतन्द्रः**) तन्द्रारहित होकर, निरन्तर (**हविष्कृतः**) हवि देने वाले यजमान की (**हव्यम्**) आहुत हवि को (**वहसि**) स्थानान्तर में पहुँचाता है। (**आत् इत्**) इसके अनन्तर ही, तू (**देवेषु**) विद्वान् जनों में (**राजसि**) राजा के समान प्रशंसित होता है॥२॥

यहाँ अचेतन यज्ञाग्नि में चेतन समान व्यवहार आलंकारिक है। अचेतन में शयन और तन्द्रा का सम्बन्ध सम्भव न होने से शयन की प्रच्छन्न रूप से विद्यमानता होने में लक्षणा है, इसी

प्रकार अतन्द्रत्व की नैरन्तर्य में लक्षणा है। 'वनों में शयन करता है,' इससे 'अग्नि एक वनवासी मुनि के समान है', यह व्यंजना निकलती है।

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। हे परमात्मन्! आप (**वनेषु**) वनों में और (**मातृषु**) वनों की मातृभूत नदियों में (**शेषे**) शयन कर रहे हो, अदृश्य रूप से विद्यमान हो। (**त्वा**) उन आपको (**मर्तासः**) मनुष्य, योगाभ्यासी जन (**समिन्धते**) संदीप्त करते हैं, जगाते हैं, योगसाधना द्वारा आपका साक्षात्कार करते हैं। अन्यत्र कहा भी है—पर्वतों के एकान्त में और नदियों के संगम पर ध्यान द्वारा वह परमेश्वर प्रकट होता है। साम० १४३। (**अतन्द्रः**) निद्रा, प्रमाद, आलस्य आदि से रहित आप, उनकी (**हव्यम्**) आत्मसमर्पणरूप हवि को (**वहसि**) स्वीकार करते हो। (**आत् इत्**) तदनन्तर ही, आप (**देवेषु**) उन विद्वान् योगी जनों में, अर्थात् उनके जीवनों में (**विराजसि**) विशेषरूप से शोभित होते हो॥२॥

यहाँ भी **परमात्मा** के निराकार होने से उसमें शयन और संदीपन रूप धर्म संगत नहीं हैं, इस कारण शयन की गूढ़ रूप से विद्यमानता होने में और संदीपन की योग द्वारा साक्षात्कार करने में लक्षणा है॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है, और भौतिक अग्नि एवं परमेश्वर का उपमानोपमेयभाव ध्वनित हो रहा है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे भौतिक अग्नि वन के काष्ठों में अथवा अरणियों में अदृश्य हुआ मानो सो रहा होता है और अरणियों के मन्थन से यज्ञकुण्ड में प्रदीप्त हो जाता है, वैसे ही परमेश्वर भी वनों के तरु, लता, पत्र, पुष्प, नदी, सरोवर आदि के सौन्दर्य में प्रच्छन्न रूप से स्थित रहता है और वहाँ ध्यानस्थ योगियों द्वारा हृदय में प्रदीप्त किया जाता है। जैसे यज्ञवेदि में प्रदीप्त किया हुआ भौतिक अग्नि सुगन्धित, मधुर, पुष्टिदायक और आरोग्यवर्धक घी, कस्तूरी, केसर, कन्द, किशमिश, अखरोट, खजूर, सोमलता, गिलोय आदि की आहुति को वायु के माध्यम से स्थानान्तर में पहुँचाकर वहाँ आरोग्य की वृद्धि करता है, वैसे ही परमेश्वर उपासकों की

आत्मसमर्पण-रूप हवि को स्वीकार करके उनमें सद्‌गुणों को बढ़ाता है।।२।।

परमेश्वर की हमें स्तुति-वाणियों से पूजा करनी चाहिए, यह कहते हैं।

**४७. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः।**
**उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**गातुवित्तमः**) सबसे बढ़कर कर्तव्य-मार्ग का प्रदर्शक वह अग्रणी परमेश्वर (**अदर्शि**) हमारे द्वारा साक्षात् कर लिया गया है (**यस्मिन्**) जिस परमेश्वर में, मुमुक्षुजन (**व्रतानि**) अपने-अपने कर्मों को (**आदधुः**) समर्पित करते हैं अर्थात् ईश्वरार्पण-बुद्धि से निष्काम कर्म करते हैं। (**उ**) और (**सुजातम्**) भलीभाँति हृदय में प्रकट हुए (**आर्यस्य**) धार्मिक गुण-कर्म-स्वभाव वाले, ईश्वर-पुत्र आर्यजन के (**वर्द्धनम्**) बढ़ाने वाले (**अग्निम्**) ज्योतिर्मय, नायक परमेश्वर को (**नः**) हमारी (**गिरः**) स्तुति-वाणियाँ (**उप नक्षन्तु**) समीपता से प्राप्त करें।।३।।

**भावार्थ** :–मोक्षार्थी मनुष्य फल की इच्छा का परित्याग करके परमेश्वर में अपने समस्त कर्म समर्पित कर देते हैं और परमेश्वर सदैव प्रज्वलित दीपक के समान उनके मन में कर्तव्याकर्तव्य का विवेक पैदा करता है। सब आर्य गुण-कर्म-स्वभाव वालों के उन्नायक उसकी स्तुति से हमें अपने हृदय को पवित्र करना चाहिए।।३।।

अब उपासना-यज्ञ की प्रक्रिया का वर्णन करते हैं।

**४८. अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे। ऋचा यामि**
**मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम्॥४॥**

**पदार्थ** :–(**उक्थे**) स्तुतिमय (**अध्वरे**) हिंसादि के दोष से रहित उपासना-यज्ञ में (**अग्निः**) ज्योतिर्मय परमात्मा (**पुरोहितः**) संमुख निहित है; (**ग्रावाणः**) स्तुति-शब्द-रूप यज्ञिय सिल-बट्टे भी (**पुरोहिताः**) संमुख निहित हैं; (**बर्हिः**) हृदय-रूप पवित्र

कुशा-निर्मित आसन भी (**पुरोहितम्**) सम्मुखस्थ है। हे (**मरुतः**) प्राणो! हे (**ब्रह्मणः पते**) ज्ञानगुणविशिष्ट जीवात्मन्! हे (**देवाः**) इन्द्रिय-मन-बुद्धि रूप ऋत्विजो! मैं (**ऋचा**) ईश-स्तुतिरूप वाणी के साथ, आपकी (**वरेण्यम्**) वरणीय (**अवः**) रक्षा को (**यामि**) माँग रहा हूँ।।४।।

**भावार्थ** :–जैसे बाह्य यज्ञ में यज्ञ-वेदि में अग्नि प्रज्वलित की जाती है, वहाँ सोम-आदि ओषधियों को पीसने के साधनभूत सिल-बट्टे तथा ऋत्विजों के बैठने के लिए कुशानिर्मित आसन भी तैयार रहते हैं; वैसे ही उपासना-यज्ञ में परमात्मा-रूप अग्नि समिद्ध की जाती है; स्तुतिशब्द ही सिल-बट्टे होते हैं; हृदय ही कुशानिर्मित आसन होता है, ब्रह्मणस्पति नामक जीवात्मा ही यजमान बनता है; प्राण-इन्द्रिय-मन-बुद्धि ऋत्विज् बनकर हृदयासन पर बैठकर उस यज्ञ को फैलाते हैं, जिनकी सहायता **और जिनकी रक्षा यज्ञ की सफलता के लिए अनिवार्य है। इसलिए सब उपासकों को आभ्यन्तर यज्ञ में उनकी रक्षा की याचना करनी चाहिए।।४।।**

किसलिए मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए, यह कहते हैं।

**४९. अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्। अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः॥५॥**

**पदार्थ** :–हे (**पुरुमीढ**) अनेक गुणों से सिक्त स्तोता! तू (**अवसे**) रक्षा, प्रगति, सर्वजनप्रीति और तृप्तिलाभ के लिए (**शीरशोचिषम्**) सर्वत्र व्यापक ज्योतिवाले (**अग्निम्**) तेजस्वी परमात्मा की (**गाथाभिः**) मन्त्रवाणियों से (**ईडिष्व**) स्तुति और आराधना कर। (**श्रुतम्**) महिमा वर्णन करने वाले वेदादि शास्त्रों से सुने हुए (**अग्निम्**) उस परमात्मा की, तू (**राये**) भौतिक एवं आध्यात्मिक सब प्रकार के धनों की प्राप्ति के लिए (**ईडिष्व**) स्तुति और आराधना कर। हे (**नरः**) पौरुषवान् मनुष्यो! (**अग्नि**) जगत् का नायक परमात्मा (**सुदीतये**) उत्तम कर्मवाले पुरुषार्थी जन के लिए (**छर्दिः**) शरण होता है।।५।।

भावार्थ :—धन आदि समस्त कल्याणों के अभिलाषी मनुष्यों को चाहिए कि वे पुरुषार्थी होकर सर्वत्र व्याप्त तेजों वाले परमगुरु परमात्मा का भजन करें॥५॥

अब परमात्मा और राजा से प्रार्थना करते हैं।

**५०. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः। आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**श्रुत्कर्ण**) सुनने वाले कानों से युक्त अर्थात् अपरिमित श्रवणशक्ति वाले (**अग्ने**) परमात्मन्! आप (**वह्निभिः**) घोड़ों के समान वहनशील अर्थात् जैसे घोड़े अपनी पीठ पर बैठाकर लोगों को लक्ष्य पर पहुँचा देते हैं, वैसे ही जो स्तोता को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देते हैं। ऐसे (**सयावभिः**) आपके साथ ही आगमन करने वाले (**देवैः**) दिव्य गुणों के साथ, आप (**श्रुधि**) मेरी प्रार्थना को सुनिए। (**अध्वरे**) हिंसा आदि मलिनता से रहित, प्रातः किये जाने वाले मेरे उपासना-यज्ञ में (**प्रातर्यावभिः**) प्रातःकाल यज्ञ में आने वाले दिव्य गुणों के साथ (**मित्रः**) मित्र के समान स्नेहशील, (**अर्यमा**) न्यायशाली आप (**बर्हिषि**) हृदयासन पर (**आसीदतु**) बैठें॥६॥

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**श्रुत्कर्ण**) बहुश्रुत कानों वाले राजनीतिशास्त्रवेत्ता (**अग्ने**) विद्याप्रकाशयुक्त राजन्! आप (**वह्निभिः**) राज्यभार को वहन करने में समर्थ (**सयावभिः**) आपके साथ आगमन करने वाले (**देवैः**) विद्वान् मन्त्री आदि राजपुरुषों के साथ (**श्रुधि**) हमारे निवेदन को सुनिए। (**अध्वरे**) राष्ट्रयज्ञ में (**प्रातर्यावभिः**) जो प्रजा का सुख-दुःख सुनने के लिए प्रातःकाल सभा में उपस्थित होते हैं ऐसे राज्याधिकारियों सहित (**मित्रः**) मित्रवत् व्यवहार करनेवाले राजसचिव और (**अर्यमा**) श्रेष्ठों को सम्मानित तथा अन्य अश्रेष्ठों को दण्डित करनेवाले न्यायाधीश (**बर्हिषि**) राज्यासन पर (**आसीदतु**) बैठें॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥६॥

**भावार्थ** :—उपासक लोग पवित्र भावों के प्रेरक प्रभातकाल में जो उपासना-यज्ञ करते हैं, उसमें परमात्मा के साथ शम, दम, तप, स्वाध्याय, दान, दया, न्याय आदि विविध गुण भी हृदय में प्रादुर्भूत होते हैं। उस काल में अनुभव किये गये परमात्मा को और सद्गुणों को स्थिर रूप से हृदय में धारण कर लेना चाहिए। और प्रजापालक राजा को यह उचित है कि वह राज्य-संचालन में समर्थ, योग्य मन्त्री, न्यायाधीश आदि राजपुरुषों को नियुक्त करके उनके साथ प्रजा के सब कष्टों को सुनकर उनका निवारण करे॥६॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**५१. प्र देवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना। अनु मातरं**
**पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि॥७॥**

**पदार्थ** :—**(देवोदासः)** धार्मिक जनों का प्रिय, **(देवः)** प्रकाशक **(अग्निः)** जगन्नायक **(इन्द्रः न)** बलवान् राजा के समान **(मज्मना)** बल से **(प्र)** प्रभावशाली और समर्थ बना हुआ है। आगे उसके सामर्थ्य का ही वर्णन है—वह **(मातरम्)** माता **(पृथिवीम्)** भूमि को **(अनु वि वावृते)** अनुकूलता से सूर्य के चारों ओर घुमा रहा है। वही परमेश्वर **(नाकस्य)** सूर्य के **(शर्मणि)** घर, सूर्यमण्डल में **(तस्थौ)** स्थित है अर्थात् सूर्य का संचालक भी वही है॥७॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे कोई मानव राजा अपने बल से राष्ट्रभूमि को नियमों में चलाता है वैसे ही परमात्मा भूमि को सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण कराता है और आदित्य में भी निवास करता हुआ उसके द्वारा पृथिवी आदि ग्रहोपग्रहों को प्रकाशित करता है॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है।

**५२. अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि।**
**अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण॥८॥**

**पदार्थ** :—( **अध** ) और, हे इन्द्र परमात्मन्! आप ( **ज्मः** ) पृथिवी लोक से, ( **अध वा** ) तथा ( **दिवः** ) द्युलोक से, और ( **बृहतः** ) महान् ( **रोचनात् अधि** ) प्रदीप्त चन्द्रलोक अथवा अन्तरिक्षलोक से उन-उन लोकों की वस्तुएँ लाकर हमें ( **आ पृण** ) परिपूर्ण कीजिए। अभिप्राय यह है कि पृथिवी, द्यौ तथा अन्तरिक्ष में जो अग्नि, वायु, प्रकाश, ओषधि, वनस्पति, फल, मूल, सोना, चाँदी, मणि, मोती आदि वस्तुएँ हैं, उन्हें आप मुक्त हस्त से हमें प्रदान कीजिए। आप ( **मम** ) मेरी ( **अया** ) इस ( **तन्वा** ) विस्तीर्ण ( **गिरा** ) स्तुति-वाणी से ( **वर्धस्व** ) मेरे अन्तःकरण में वृद्धि को प्राप्त होइए। हे ( **सुक्रतो** ) उत्कृष्ट प्रज्ञावाले और उत्कृष्ट कर्मोंवाले! आप ( **जाता** ) उत्पन्न सन्तानों को ( **आ पृण** ) प्रज्ञाओं, कर्मों और सम्पदाओं से तृप्त कीजिए।८।।

**भावार्थ** :—भूलोक के पर्वत, नदी, नद, सागर, वृक्ष, वनस्पति, लता, पत्र, पुष्प आदि में, द्युलोक के नक्षत्र, आकाशगंगा, सूर्य, सूर्यकिरण आदि में और अन्तरिक्ष-लोक के चन्द्रमा, वायु, बादल आदि में जो ऐश्वर्य है, उस सबको परमेश्वर हमें निःशुल्क प्रदान करता है। इसलिए हमें वाणी से उसकी महिमा का प्रकाश करने वाले गीत गाने चाहिए।।८।।

परमात्मा रूप अग्नि को अपने हृदय में प्रदीप्त करना चाहता हुआ मनुष्य कह रहा है।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ २
**५३. कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः।**
१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३२उ ३ १ २
**न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः॥९॥**

**पदार्थ** :—( **अग्ने** ) प्रकाशक परमात्मारूप अग्नि! ( **त्वम्** ) आप ( **वना** ) अपने तेज की किरणों को ( **कायमानः** ) प्रकट करना चाहते हुए अर्थात् स्वयं हमारे आत्मा, मन, बुद्धि आदि में प्रज्वलित होना चाहते हुए भी ( **यत्** ) जो ( **मातः अपः** ) मातृभूत जलों में ( **अजगन्** ) प्रविष्ट हो अर्थात् जलों से अग्नि के समान शान्त हुए पड़े हो, ( **तत्** ) वह ( **ते** ) आपकी ( **निवर्तनम्** ) निवृत्ति अर्थात् मेरे प्रति उदासीनता को, मैं ( **न** ) नहीं ( **प्रमृष्ये** ) सह सकता हूँ, ( **यत्** ) क्योंकि ( **दूरे सन्** ) इस

समय दूर होते हुए भी आप, पहले (इह) यहाँ मेरे समीप (अभुवः) रह चुके हो। पहले के समान अब भी आपकी तेजोरश्मियाँ मेरे अन्दर क्यों नहीं प्रकाशित होतीं?॥९॥

इस मन्त्र में 'प्रदीप्त होना चाहते हुए भी प्रदीप्त नहीं हो रहे हो, प्रत्युत शान्त हो गये हो' यहाँ कारण विद्यमान होने पर भी कार्य का उत्पन्न न होना रूप विशेषोक्ति अलंकार है। 'दूर होते हुए यहाँ विद्यमान हो' में विरोधालङ्कार व्यङ्ग्य है, व्याख्यात प्रकार से विरोध का परिहार हो जाता है॥९॥

**भावार्थ** :–जो परमात्मा का साक्षात्कार कर चुका है ऐसा मनुष्य असावधानी के कारण उसे भूल जाने पर अपने उद्गार प्रकट कर रहा है–हे देव! पहले आप सदा ही मेरे आत्मा, मन, बुद्धि आदि में प्रदीप्त रहते थे। पर अब दुःख है कि जलों से बुझे भौतिक अग्नि के समान शान्त हो गये हो। आपकी मेरे प्रति इस उदासीनता को मैं नहीं सह सकता हूँ। कृपा करके प्रसुप्तावस्था को छोड़कर पहले के समान मेरे अन्दर प्रदीप्त होओ॥९॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३
**५४. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते । दीदेथ**
१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः॥१०॥**

**पदार्थ** :–हे (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप प्रकाशक परमात्मन्! (**मनुः**) मननशील जन (**त्वाम्**) अत्युच्च महिमा वाले आपको (**निदधे**) निधि के समान अपने अन्तःकरण में धारण करता है। आप (**शश्वते**) शाश्वत, सनातन (**जनाय**) जीवात्मा के लिए (**ज्योतिः**) दिव्य ज्योति प्रदान करते हो। (**ऋतजातः**) सत्य में प्रसिद्ध, (**उक्षितः**) हृदय में सिक्त आप (**कण्वे**) मुझ मेधावी के अन्दर (**दीदेथ**) प्रकाशित होवो, (**यम्**) जिस आपको (**कृष्टयः**) उपासक जन (**नमस्यन्ति**) नमस्कार करते हैं॥१०॥

**भावार्थ** :–सब मेधावी जनों को चाहिए कि मननशीलों के सबसे बड़े खजाने, जीवात्माओं को दिव्य ज्योति प्रदान

करने वाले परमेश्वर को अपने हृदय में प्रदीप्त करें और उसकी उपासना करें॥१०॥

इस दशति में परमात्मा के कर्तृत्व और महत्त्व के वर्णनपूर्वक मनुष्यों को उसकी स्तुति के लिए प्रेरित किया गया है और हृदय में उसकी समीपता एवं वृद्धि की याचना की गयी है, इसलिए इसके विषय की पूर्व दशति में वर्णित विषय के साथ संगति है, यह जानना चाहिए॥

**इति प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

## षष्ठी दशतिः

**ऋषिः—१, ७ वसिष्ठः; २, ३, ५ कण्वः; ४ सोभरिः; ६ उत्कीलः; ८ विश्वामित्रः॥ देवता—१, ४-८ अग्निः; २ ब्रह्मणस्पतिः; ३ यूपः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यम॥**

प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को प्रेरणा दी जा रही है।

**५५. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्। उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वो देव ओहते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! (**द्रविणोदाः**) धन और बल का दाता (**देवः**) दिव्यगुणमय परमेश्वर (**वः**) तुम्हारी (**पूर्णाम्**) भक्तिरस रूप सोम से परिपूर्ण (**आसिचम्**) मनरूप स्रुवा की (**विवष्टु**) कामना करे। तुम (**उत् सिञ्चध्वं वा**) श्रद्धारस से उस परमेश्वर को स्नान कराओ, (**उप पृणध्वं वा**) और तृप्त करो। (**आत् इत्**) तदनन्तर ही (**देवः**) परमेश्वर (**वः**) तुम्हें (**ओहते**) वहन करेगा अर्थात् लक्ष्य पर पहुँचाएगा॥१॥

**भावार्थ** :—सब उपासक जनों को चाहिए कि प्रेमरस से भरी हुई अपनी मनरूप स्रुवाओं से परमेश्वर को श्रद्धारस से सींचें और तृप्त करें। इस प्रकार सींचा हुआ और तृप्त किया हुआ वह उपासकों को उनके निर्धारित लक्ष्य की ओर ले जाता है॥१॥

अगले मन्त्र का देवता ब्रह्मणस्पति है। हमें क्या-क्या प्राप्त

हो, यह कहते हैं।

**५६. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।**
**अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं, देवा यज्ञं नयन्तु नः॥२॥**

**पदार्थ** :–( **ब्रह्मणस्पतिः** ) वेद, ब्रह्माण्ड तथा सकल ऐश्वर्य का स्वामी जगदीश्वर ( **प्र एतु** ) हमें प्राप्त हो। ( **देवी** ) दिव्यगुणयुक्त ( **सूनृता** ) प्यारी सच्ची वाणी ( **प्र एतु** ) हमें प्राप्त हो। ( **देवाः** ) विद्वान् और विदुषियाँ ( **नः** ) हमारे ( **यज्ञम्** ) राष्ट्ररूप यज्ञ के ( **अच्छ** ) प्रति ( **नर्यम्** ) नरहितकारी, ( **पङ्क्तिराधसम्** ) धर्मात्मा वीर मनुष्यों की पंक्तियों के सेवक और पंक्तियों के हितार्थ अपने धन को लगानेवाले, ( **वीरम्** ) शरीर और आत्मा के पूर्ण बल से युक्त सन्तान को ( **नयन्तु** ) प्राप्त करायें॥२॥

**भावार्थ** :–वेद, ब्रह्माण्ड और सकल ऐश्वर्य का स्वामी जगदीश्वर, मधुर-प्रिय-सत्य वाणी और नरहितकर्ता, धर्मात्माओं का सेवक, सत्कार्यों में धन का दान करनेवाला पुत्र यदि प्राप्त हो जाता है तो निश्चय ही सभी सिद्धियाँ हाथ में आ जाती हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यूप देवता है। यूप के समान उन्नत परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**५७. ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।**
**ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भि-र्विह्वयामहे॥३॥**

**पदार्थ** :–हे यज्ञस्तम्भ के समान उन्नत परमात्मन्! आप ( **नः** ) हमारी ( **ऊतये** ) रक्षा के लिए ( **देवः** ) प्रकाशक ( **सविता न** ) सूर्य के समान ( **उ** ) निश्चय ही ( **सु** ) भलीभाँति ( **ऊर्ध्वः** ) हमारे हृदय में समुन्नत होते हुए ( **वाजस्य** ) आत्मिक बल के ( **सनिता** ) प्रदाता होवो, ( **यत्** ) क्योंकि ( **अञ्जिभिः** ) स्वच्छ किये हुए ( **वाघद्भिः** ) स्तुति का वहन करनेवाले मन-बुद्धि-इन्द्रिय रूप ऋत्विजों के द्वारा, हम आपको

(**विह्वयामहे**) विशेष रूप से पुकार रहे हैं, आपकी स्तुति कर रहे हैं॥३॥

इस मन्त्र में उपमेय के निगरणपूर्वक उपमेय परमात्मा में यूपत्व का आरोप होने से अतिशयोक्ति अलंकार है। 'देव सविता के समान उन्नत' में पूर्णोपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा को यज्ञस्तम्भ के समान और सूर्य के समान जब अपने हृदय में हम समुन्नत करते हैं, तब वह हमें महान् फल प्रदान करता है॥३॥

अब पुरुषार्थी परमेश्वरोपासक क्या प्राप्त करता है, यह कहते हैं।

**५८. प्र यो राये निनीषति, मर्तो यस्ते वसो दाशत्। स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**वसो**) सर्वान्तर्यामिन्, सबके निवासक (**अग्ने**) जगन्नायक परमात्मन्! (**यः**) जो कोई (**मर्तः**) मनुष्य (**राये**) विद्या-विवेक-विनय आदि धन के लिए, श्रेष्ठ सन्तान रूप धन के लिए और सुवर्ण आदि धन के लिए (**प्र निनीषति**) अपने-आपको प्रगति के मार्ग पर ले जाना चाहता है, पुरुषार्थ में नियुक्त करना चाहता है, और (**यः**) जो (**ते**) आपके लिए (**दाशत्**) आत्मसमर्पण करता है, (**सः**) वह मनुष्य (**त्मना**) अपने आप (**सहस्रपोषिणम्**) सहस्रों निर्धनों को धनदान से और सहस्रों अविद्याग्रस्तों को विद्यादान से परिपुष्ट करने वाले (**वीरम्**) वीर सन्तान को (**धत्ते**) प्राप्त करता है॥४॥

**भावार्थ** :—पुरुषार्थी परमेश्वरोपासक मनुष्य सुयोग्य सन्तान, विद्या, धन, चक्रवर्ती राज्य, मोक्ष आदि बहुत प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है॥४॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा का विषय वर्णित है।

**५९. प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्। अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते॥५॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमेश्वर के अर्थ में। (**देवयतीनाम्**)

अपने लिए दिव्य भोग, दिव्य गुण और दिव्य आनन्दों को चाहने वाली, (**पुरूणाम्**) बहुत-सी (**विशां वः**) तुम प्रजाओं के हितार्थ (**यह्वम्**) गुणों से महान् (**अग्निम्**) परमेश्वर को, हम (**सूक्तेभिः**) उत्तम प्रकार से गाये गये (**वचोभिः**) साम-मन्त्रों तथा अन्य स्तोत्रों से (**प्र वृणीमहे**) प्रकृष्ट रूप से भजते हैं, (**यम्**) जिस परमेश्वर को (**अन्ये इत्**) अन्य भी भक्तजन (**सम् इन्धते**) भलीभाँति अपने अन्तःकरणों में प्रदीप्त करते हैं।।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**देवयतीनाम्**) अपने लिए विजयाभिलाषी राजा को चाहने वाली (**पुरूणाम्**) बहुत-सी (**विशां वः**) तुम प्रजाओं के मध्य से (**यह्वम्**) महान् (**अग्निम्**) अग्नि के समान तेजस्वी वीर पुरुष को, हम (**सूक्तैः**) भली-भाँति उच्चारित (**वचोभिः**) उद्बोधक वचनों के साथ (**प्र वृणीमहे**) प्रकृष्टतया राजपद पर निर्वाचित करते हैं, (**यम्**) जिस गुणी पुरुष को (**अन्ये**) अन्य भी राष्ट्रवासी जन (**सम् इन्धते**) इस पद के लिए समुत्साहित या समर्थित करते हैं।।५।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।।५।।

**भावार्थ** :–जैसे राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए राजोचित सकल गुणगणों से विभूषित कोई महान् पुरुष राजपद के लिए चुना जाता है, वैसे ही सुमहान् परमेश्वर को हमें भली-भाँति उच्चारण किये गये स्तुतिवचनों द्वारा मार्गप्रदर्शक रूप में वरण करना चाहिए।।५।।

अब परमात्मा और राजा किस-किस वस्तु के अधीश्वर हैं, यह कहते हैं।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र
**६०. अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य।**
३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम्॥६॥**

**पदार्थ** :–(**अयम्**) यह सम्मुख विद्यमान (**अग्निः**) जगत् का अग्रनायक परमेश्वर और प्रजाओं से चुना गया राष्ट्रनायक राजा (**सुवीर्यस्य**) शारीरिक और आध्यात्मिक बल का तथा (**सौभगस्य**) धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदि सौभाग्यों का

(हि) निश्चय ही (ईशे) अधीश्वर है, (स्वपत्यस्य) उत्कृष्ट सन्तान से युक्त तथा (गोमतः) गाय, पृथिवी, सूर्यकिरण, वेदवाणी आदि से युक्त (रायः) ऐश्वर्य का (ईशे) अधीश्वर है। (वृत्रहथानाम्) पापसंहारों का व शत्रु-संहारों का (ईशे) अधीश्वर है॥६॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालङ्कार है। 'ईशे' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है॥६॥

**भावार्थ** :—जैसे राजा अपनी राष्ट्रभूमि का तथा राष्ट्रभूमि में विद्यमान धन, धान्य, वीर पुरुष आदिकों का और गाय आदि पशुओं का अधीश्वर होता है, वैसे ही परमेश्वर सब भौतिक और आध्यात्मिक धनों का अधीश्वर है। वही शारीरिक बल, आत्मिक बल, धृति, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान, वैराग्य, श्रेष्ठ सन्तान, गाय, भूमि, सूर्य और वेदवाणी हमें प्रदान करता है। वही जीवन के विनाशकारी पापों से हमारी रक्षा करता है। इसलिए उसे भूरि-भूरि धन्यवाद हमें देने चाहिएँ॥६॥

परमेश्वर किस गुण-कर्म-स्वभाव वाला है, यह कहते हैं।

**६१. त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे। त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम्॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान, सबके अग्रनेता परमात्मन्! (त्वम्) जगदीश्वर आप (गृहपतिः) ब्रह्माण्ड रूप गृह के स्वामी और पालक हो। (त्वम्) आप (नः) हमारे (अध्वरे) हिंसादिदोषरहित जीवनयज्ञ में (होता) सुख आदि के दाता हो। हे (विश्ववार) सबसे वरणीय! (प्रचेताः) प्रकृष्ट चित्त वाले (त्वम्) आप (पोता) सांसारिक पदार्थों के अथवा भक्तों के चित्तों के शोधक हो। आप (वार्यम्) वरणीय सब वस्तुएँ (यक्षि) प्रदान करते हो, (यासि च) और उनमें व्याप्त होते हो॥७॥

इस मन्त्र में श्लेष से यज्ञाग्नि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे यज्ञाग्नि यजमान के घर का रक्षक होता

है, वैसे परमेश्वर ब्रह्माण्ड रूप घर का रक्षक है। जैसे यज्ञाग्नि अग्निहोत्र में स्वास्थ्य का प्रदाता होता है, वैसे परमेश्वर जीवन-यज्ञ में सुख-सम्पत्ति आदि का प्रदाता होता है। जैसे यज्ञाग्नि वायुमण्डल का शोधक होता है, वैसे परमेश्वर सूर्य आदि के द्वारा सांसारिक पदार्थों का और दिव्यगुणों के प्रदान द्वारा भक्तों के चित्तों का शोधक होता है॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मा को वरण करने के लिए कहा गया है।

**६२. सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये।**
**अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम्॥८॥**

**पदार्थ** :-( **मर्तासः** ) मरणधर्मा, ( **सखायः** ) समान ख्याति वाले हम साथी लोग ( **देवम्** ) ज्योतिर्मय और ज्योति देनेवाले, ( **अपां नपातम्** ) व्याप्त प्रकृति का और जीवात्माओं का विनाश न करनेवाले ( **सुभगम्** ) उत्तम ऐश्वर्यवाले ( **सुदंससम्** ) शुभ कर्मों वाले ( **सुप्रतूर्तिम्** ) अत्यन्त शीघ्रता से कार्यों को करने वाले ( **अनेहसम्** ) हिंसा न किये जा सकने योग्य, निष्पाप, सज्जनों के प्रति क्रोध न करनेवाले ( **त्वा** ) तुझ परमेश्वर रूप अग्नि को ( **ऊतये** ) आत्मरक्षा और प्रगति के लिए ( **ववृमहे** ) वरण करते हैं॥८॥

इस मन्त्र में विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकरालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :-कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्यों को चाहिए कि वे मिलकर परम तेजस्वी, तेजःप्रदाता, प्रलयकाल में नश्वर पदार्थों के विनाशक, नित्य पदार्थों के अविनाशक, सर्वैश्वर्यवान्, शुभ कर्मकर्ता, विचारे हुए कार्यों को शीघ्र पूर्ण करने वाले, किसी से हिंसित या पराजित न होने वाले, निष्पाप, सज्जनों पर क्रोध न करने वाले, दुष्टों पर कुपित होने वाले, जगद् व्यावस्थापक, सबके मंगलकारी परमेश्वर की श्रद्धा से उपासना करें॥८॥

इस दशति में अग्नि, यूप, द्रविणोदस् और बृहस्पति नामों

से परमेश्वर के गुण-कर्मों का वर्णन होने से और उसके प्रति आत्म-समर्पण करने का फल वर्णित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है, यह जानना चाहिए।।

## सप्तमी दशतिः

ऋषिः—१ श्यावाश्ववामदेवौ; २ उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः; ३ बृहदुक्थः; ४ कुत्सः; ५, ६ भरद्वाजः; ७ वामदेवः; ८, १० वसिष्ठः; ९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ५-९ त्रिष्टुप्; २, ४ जगती; १० त्रिपाद् विराड् गायत्री॥ स्वरः१,३, ५-९ धैवतः; २, ४ निषादः; १० षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में यह कहते हैं कि परमात्मा का सबको ध्यान और पूजन करना चाहिए।

**६३. आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्। इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे स्तोताओ! तुम (**हविषा**) आत्मसमर्पण रूप हवि से (**आजुहोत**) परमात्माग्नि में अग्निहोत्र करो, (**मर्जयध्वम्**) अपने आत्मा को शुद्ध और अलंकृत करो। (**होतारम्**) यज्ञ का फल देने वाले (**गृहपतिम्**) शरीररूप घर के रक्षक उस परमात्माग्नि को (**निदधिध्वम्**) हृदय में धारण करो—अर्थात्, उसका निरन्तर ध्यान करो। (**रातहव्यम्**) दातव्य सांसारिक वस्तुओं को और सद्गुणों को देने वाले, (**पस्त्यानाम्**) प्रजाओं के (**यजतम्**) पूजनीय उस परमात्माग्नि को (**इडः पदे**) हृदयरूप यज्ञवेदि-स्थल में (**नमसा**) नमस्कार द्वारा (**सपर्यत**) पूजो।।१।।

इस मन्त्र में 'आजुहोत, मर्जयध्वम्, निदधिध्वम्, सपर्यत' इन अनेक क्रियाओं का एक कर्ता कारक से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—आत्म-कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को अपने

आत्मा को परमात्मारूप अग्नि में समर्पित करके आत्मशुद्धि करनी चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में अग्नि की समानता से परमेश्वर की महिमा का वर्णन है।

**६४. चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे। अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत्सद्यो महि दूत्यां३ चरन्॥२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। (**शिशोः**) नवजात शिशु होते हुए भी (**तरुणस्य**) जो युवक है, युवक के समान कार्य करने वाला है, उस यज्ञाग्नि का (**वक्षथः**) हवि वहन का गुण (**चित्रः इत्**) अद्भुत ही है; (**यः**) जो यज्ञाग्नि (**धातवे**) दूध पीने के लिए (**मातरौ**) माता-पिता बनी हुई अरणियों का (**न अन्वेति**) अनुसरण नहीं करता। (**अनूधाः**) बिना ऊधस् वाली माता अरणी (**यत्**) जब, यज्ञाग्नि को (**अजीजनत्**) उत्पन्न करती है (**अध चित्**) उसके बाद ही (**सद्यः**) तुरन्त (**महि**) महान् (**दूत्यम्**) दूत-कर्म को (**चरन्**) करता हुआ, वह (**आववक्षत्**) होम की हुई हवि को वहन करने लगता है॥

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। (**शिशोः**) शिशु के समान प्रिय, और (**तरुणस्य**) युवक के समान महान् कर्मों को करने वाले परमात्मा का (**वक्षथः**) जगत् के भार को वहन करने का गुण (**चित्रः**) आश्चर्यकारी है, (**यः**) जो परमात्मा, अन्य प्राणियों के समान (**धातवे**) दूध पीने के लिए अर्थात् पुष्टि पाने के लिए (**मातरौ**) माता-पिता को (**न अन्वेति**) प्राप्त नहीं करता, प्रत्युत स्वयं परिपुष्ट है। (**अनूधाः**) ऊधस्-रहित प्रकृति (**यत्**) जब (**अजीजनत्**) इस जगत् को उत्पन्न करती है (**अध चित्**) उसके बाद ही (**सद्यः**) तुरन्त (**महि**) महान् (**दूत्यम्**) दूत-कर्म को (**चरन्**) करता हुआ, वह परमात्मा (**आ ववक्षत्**) जगत् के भार को वहन करना आरम्भ कर देता है॥२॥

यहाँ 'वह कौन है जो शिशु होते हुए भी तरुण है, शिशु होते हुए भी पोषण पाने या दूध पीने के लिए माता-पिता के पास नहीं जाता और पैदा होते ही महान् दूत-कर्म करने लगता है'-इस प्रकार प्रहेलिकालंकार है। अथवा विरोधालंकार व्यङ्ग्य है॥२॥

**भावार्थ** :-शिशु होते हुए कोई भी शक्तिसाध्य कार्य नहीं करता है, किन्तु माता का दूध पीने से और पिता के संरक्षण से पुष्ट होकर ही भारी काम करने में समर्थ होता है। परन्तु यह आश्चर्य है कि अरणी-रूप माता-पिताओं से उत्पन्न यज्ञाग्नि शिशु होता हुआ भी उत्पन्न होते ही हवि-वहन रूप दुष्कर दूत-कर्म को करने लगता है। वैसे ही परमेश्वर भी शिशु होते हुए भी युवक है, क्योंकि वह भक्तों को शिशु के समान प्रिय है और युवक के समान जगत् के भार को उठाने रूप महान् कार्य को करने में समर्थ है। सब लोग माता-पिता से रसपान करके ही अपने शरीर में बल संचित करते हैं, किन्तु परमेश्वर उनसे रसपान किये बिना ही स्वभाव से परम बलवान् है और प्रकृति से उत्पन्न विशाल ब्रह्माण्ड के भार को उठाने वाला है। परमेश्वर का यह सामर्थ्य और कर्म बड़ा ही अद्भुत है॥२॥

अगला मन्त्र परमात्मा और जीवात्मा को लक्ष्य करके कहा गया है।

**६५. इदं त एकं पर ऊ त एकं, तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व। संवेशनस्तन्वे३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे॥३॥**

**पदार्थ** :-( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हे परमात्मन्! ( **इदम्** ) यह, मेरे समीप विद्यमान पार्थिव अग्नि रूप ( **ते** ) तेरी ( **एकम्** ) एक ज्योति है, ( **उ** ) और ( **परः** ) परे द्युलोक में विद्यमान, सूर्यरूप ( **ते** ) तेरी ( **एकम्** ) एक दूसरी ज्योति है। तू-उससे भिन्न ( **तृतीयेन ज्योतिषा** ) तीसरी ज्योति से, निज ज्योतिर्मय स्वरूप से ( **संविशस्व** ) मेरे आत्मा में भलीभाँति

प्रविष्ट हो। ( **परमे** ) श्रेष्ठ ( **जनित्रे** ) आविर्भाव-स्थान मेरे आत्मा में ( **संवेशनः** ) प्रवेशकर्ता तू ( **तन्वे** ) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों सहित शरीर के लिए ( **चारुः** ) हितकारी, तथा ( **देवानाम्** ) इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि देवों का ( **प्रियः** ) प्रियकारी ( **एधि** ) हो।

( **द्वितीय** ) जीवात्मा के पक्ष में। हे जीवात्मन्! ( **इदम्** ) यह चक्षु आदि इन्द्रिय रूप ( **ते** ) तेरी ( **एकम्** ) एक ज्योति है, ( **उ** ) और ( **परः** ) उससे परे मन रूप ( **ते** ) तेरी ( **एकम्** ) एक दूसरी ज्योति है। तू ( **तृतीयेन** ) तीसरी परमात्मा रूप ( **ज्योतिषा** ) ज्योति से ( **संविशस्व** ) संगत हो। ( **परमे** ) सर्वोत्कृष्ट ( **जनित्रे** ) उत्पादक परमात्मा में ( **संवेशनः** ) संगत हुआ तू ( **तन्वे** ) अपने आश्रयभूत देह-संघात के लिए ( **चारुः** ) कल्याणकारी, और ( **देवानाम्** ) दिव्य गुणों का ( **प्रियः** ) स्नेहपात्र ( **एधि** ) हो॥३॥

**भावार्थ** :-पार्थिव अग्नि तथा सूर्यरूप अग्नि में परमात्मा की ही ज्योति प्रदीप्त हो रही है, जैसा कि कहा भी है-'अग्नि में परमेश्वर रूप अग्नि प्रविष्ट होकर विचर रहा है, ऋ० ४।३९।९'; 'जो आदित्य में पुरुष बैठा है, वह मैं परमेश्वर ही हूँ, य० ४०।१७'; 'उसी की चमक से यह सब-कुछ चमक रहा है, कठ० ५।१५'। इसलिए पार्थिव अग्नि और सूर्याग्नि दोनों परमात्मा की ही ज्योतियाँ हैं। परन्तु परमात्मा की वास्तविक तीसरी ज्योति उसका अपना स्वाभाविक तेज ही है। उसी तेज से भक्तों के आत्मा में प्रवेश करके वह उनका कल्याण करता है और शरीर, प्राण, मन, बुद्धि आदि का हित-सम्पादन करता है। अतः उसकी तीसरी ज्योति को प्राप्त करने के लिए योगाभ्यास की विधि से सबको प्रयत्न करना चाहिए। मन्त्र के द्वितीय अर्थ में जीवात्मा को सम्बोधित किया गया है। हे जीवात्मन्! तेरी एक ज्योति चक्षु, श्रोत्र आदि हैं, दूसरी ज्योति मन है, जैसा कि वेद में अन्यत्र कहा है-प्राणियों के अन्दर सबसे अधिक वेगवान् एक मनरूप ध्रुव ज्योति दर्शन करने के लिए निहित है, ऋ० ६।९।५ । पर ये दोनों ज्योतियाँ साधन रूप हैं, साध्य रूप ज्योति तो तीसरी परमात्म-ज्योति ही है। अतः उसे ही प्राप्त करने के लिए प्राणपण से यत्न कर॥३॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमेश्वर की स्तुति और उसकी संगति से हम क्या प्राप्त करें।

**६६. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।**
**भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा**
**वयं तव॥४॥**

**पदार्थ** :–(**अर्हते**) पूजायोग्य (**जातवेदसे**) सब उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान, सकल धन के उत्पादक और वेदज्ञान को प्रकट करनेवाले परमेश्वर के लिए (**मनीषया**) मनोयोग के साथ (**स्तोमम्**) स्तोत्र को (**संमहेम**) सत्कारपूर्वक भेजें, (**रथम् इव**) जैसे किसी पूज्य जन को बुलाने के लिए उसके पास रथ भेजा जाता है। (**अस्य**) इस परमेश्वर की (**संसदि**) संगति में (**नः**) हमारी (**प्रमतिः**) प्रखर बुद्धि (**भद्रा हि**) भद्र ही होती है। हे (**अग्ने**) तेजस्वी परमात्मन्! (**वयम्**) हम प्रजाजन (**तव**) आपकी (**सख्ये**) मित्रता में (**मा**) मत (**रिषाम**) हिंसित होवें।।४।।

'स्तोत्र को रथ के समान सत्कारपूर्वक भेजें'–यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है। जैसे किसी सुयोग्य विद्वान् को अपने उत्सवों में लाने के लिए उसके निमित्त रथ भेजा जाता है, वैसे ही पूज्य परमेश्वर को अपने हृदय-गृह में लाने के लिए उसके निमित्त स्तोत्र भेजा जाए। यह भाषा आलंकारिक समझनी चाहिए क्योंकि परमेश्वर तो पहले से ही हमारे हृदयों में विद्यमान है।।४।।

**भावार्थ** :–अव्यक्त रूप से हृदय में स्थित परमेश्वर हमारे स्तोत्र से जाग जाता है और हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाली भद्र बनाकर विनाश से हमारी रक्षा करता है।।४।।

कैसे परमेश्वर का विद्वान् लोग दर्शन करते हैं, इस विषय में कहते हैं।

**६७. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ**
**जातमग्निम्। कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं**
**जनयन्त देवाः॥५॥**

**पदार्थ** :-(**दिवः**) द्युलोक के (**मूर्धानम्**) शिरोमणि (**पृथिव्याः**) भूमि के (**अरतिम्**) सूर्य के चारों ओर तथा अपनी धुरी पर घुमाने वाले, (**वैश्वानरम्**) सब नरों के हितकारी, सबके नेता, (**ऋते**) सत्य में (**आ जातम्**) सर्वत्र प्रसिद्ध (**कविम्**) मेधावी, (**सम्राजम्**) ब्रह्माण्ड रूप साम्राज्य के सम्राट्, (**जनानाम्**) प्रजाओं के (**अतिथिम्**) अतिथितुल्य सत्कार करने योग्य (**नः**) हमारे (**पात्रम्**) रक्षक (**अग्निम्**) तेजस्वी परमेश्वर को (**देवाः**) विद्वान् उपासकजन (**आसन्**) मुख में जप द्वारा और हृदय-गुहा में ध्यान द्वारा (**जनयन्त**) प्रकट करते हैं, अर्थात् जप द्वारा और ध्यान द्वारा उसका साक्षात्कार करते हैं॥५॥

इस मन्त्र में विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है॥५॥

**भावार्थ** :-जो परमात्मा द्यावापृथिवी का सञ्चालक, सबका हित करने वाला, उत्कृष्ट सत्य नियमों वाला, महाकवि, विश्व का सम्राट् और सबका विपदाओं से त्राण करने वाला है, उसका ध्यान करके मनुष्यों को सब सुख प्राप्त करने चाहिए॥५॥

स्तोता विद्वान् लोग परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं, यह कहते हैं।

**६८. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः। तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्ववाहो जिग्युरश्वाः॥६॥**

**पदार्थ** :-हे (**अग्ने**) सबके नायक परमात्मन्! (**पर्वतस्य**) बादल अथवा पहाड़ के (**पृष्ठात्**) पृष्ठ से (**देवाः**) सूर्यकिरणें और पवन (**आपः न**) जैसे वर्षाजल और नदियों को उत्पन्न करते हैं, बहाते हैं, वैसे ही (**देवाः**) विद्वान् स्तोता लोग (**उक्थेभिः**) वेदमन्त्रों द्वारा (**त्वत्**) आपके पास से (**आपः**) आनन्द-धाराओं को (**विजनयन्त**) विशेष रूप से उत्पन्न करते हैं, अपने आत्मा में प्रवाहित करते हैं। (**तम्**) उस परोपकारी (**त्वा**) आपको (**सुष्टुतयः**) उनकी उत्तम स्तुति रूप (**गिरः**)

वाणियाँ (**वाजयन्ति**) पूजती हैं। (**अश्वाः**) घोड़े (**आजिं न**) जैसे युद्ध को जीत लेते हैं, वैसे ही (**गिर्व-वाहः**) स्तोत्रों को आपके प्रति पहुँचाने वाले स्तोता जन आपको (**जिग्युः**) जीत लेते हैं, पा लेते हैं॥६॥

इस मन्त्र में 'आपो न पर्वतस्य पृष्ठात्' और 'आजिं न जिग्युरश्वाः' इन दोनों स्थलों में उपमालंकार है। 'देवाः' और 'आपः' पद श्लिष्ट हैं॥६॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य किरणें और पवन मेघों से वृष्टि-जलों को और पर्वतों से नदियों को प्रवाहित करते हैं, वैसे ही परमेश्वर के उपासक विद्वान् लोग परमेश्वर के पास से शुद्ध परमानन्द की धाराओं को अपने अन्तःकरण में प्रवाहित करते हैं। और जैसे शिक्षित घोड़े संग्राम-भूमि को जीत लेते हैं, वैसे ही परमेश्वरोपासक लोग परमेश्वर को जीत लेते हैं॥६॥

अगले मन्त्र में यह उपदेश किया गया है कि आत्मरक्षा के लिए परमात्मा का सेवन करो।

**६१. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्॥७॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! आप लोग (**वः**) अपने (**अध्वरस्य**) जीवन-यज्ञ के (**राजानम्**) सम्राट् (**रुद्रम्**) पापियों को रुलाने वाले और पुण्यात्माओं के दुःख को दूर करने वाले, सत्योपदेशकर्ता, (**होतारम्**) सृष्टि के प्रदाता और संहर्ता (**रोदस्योः**) द्यावापृथिवी में (**सत्ययजम्**) सच्चा सामंजस्य स्थापित करने वाले (**हिरण्यरूपम्**) ज्योतिर्मय (**अग्निम्**) नायक परमात्मा को (**अवसे**) आत्मरक्षा के लिए (**तनयित्नोः**) बिजली के समान अचानक आक्रमण कर देने वाले, (**अचित्तात्**) मोहावस्था के प्रापक मृत्यु के आने से (**पुरा**) पहले ही (**आकृणुध्वम्**) सेवन कर लो॥७॥

**भावार्थ** :—मृत्यु बिजली की चकाचौंध के समान न जाने कब अचानक आकर हमारा गला पकड़ ले, इस कारण उसके

आने से पहले ही विविध गुणों से समृद्ध परमात्मा का सेवन करके हमें आत्मोद्धार कर लेना चाहिए।।७।।

अगले मन्त्र में यज्ञाग्नि के सादृश्य से परमात्माग्नि का विषय वर्णित है।

**७०. इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन।**
**नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि॥८॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। (**अर्यः**) हवि-वहन के कर्म का स्वामी (**राजा**) वेदि में विराजमान यज्ञाग्नि (**नमोभिः**) सुगन्धित, मधुर, पुष्टिवर्धक और आरोग्यवर्द्धक हवि के अन्नों से (**सम् इन्धे**) भलीभाँति प्रदीप्त किया जाता है, (**यस्य**) जिस यज्ञाग्नि का (**प्रतीकम्**) ज्वाला-रूप मुख (**घृतेन**) घृत से (**आहुतम्**) आहुत होता है। (**सबाधः**) ऋत्विज् (**नरः**) मनुष्य, उस यज्ञाग्नि का (**हव्येभिः**) हवियों से (**ईडते**) सत्कार करते हैं। (**अग्निः**) वह यज्ञाग्नि (**उषसाम्**) उषाओं के (**अग्रम्**) सामने (**आ अशोचि**) चारों ओर यज्ञवेदि में प्रदीप्त किया जाता है।।

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। (**अर्यः**) सबका स्वामी (**राजा**) सम्राट् परमात्मा (**नमोभिः**) नमस्कारों द्वारा (**सम् इन्धे**) हृदय में भलीभाँति प्रकाशित होता है, (**यस्य**) जिस परमात्मा का (**प्रतीकम्**) स्वरूप (**घृतेन**) तेज से (**आहुतम्**) व्याप्त है। (**सबाधः**) बाधाओं से आक्रान्त (**नरः**) मनुष्य (**हव्येभिः**) आत्म-समर्पण रूप हवियों से, उस परमात्मा की (**ईडते**) पूजा करते हैं। (**अग्निः**) वह परमात्मा (**उषसाम्**) उषाओं के (**अग्रम्**) आगे (**आ अशोचि**) उपासकों के हृदय में प्रदीप्त होता है। अभिप्राय यह है कि प्रभात काल में धारणा, ध्यान एवं समाधि के सुगम होने से हृदय में परमेश्वर के तेज का अनुभव सुलभ होता है।।८।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। यज्ञाग्नि और परमेश्वराग्नि में उपमानोपमेयभाव व्यङ्ग्य है।।८।।

**भावार्थ** :–जैसे यज्ञवेदि में यज्ञाग्नि को हवियों से प्रदीप्त

करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि हृदय में परमात्मा को नमस्कार द्वारा प्रदीप्त करें॥८॥

अब सर्वत्र परमेश्वर की महिमा का दर्शन करते हैं।

**७१. प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।**
**दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध॥९॥**

**पदार्थ** :—( **अग्निः** ) ज्योतिर्मय जगन्नायक परमेश्वर ( **बृहता** ) विशाल ( **केतुना** ) ज्ञानराशि के साथ ( **प्रयाति** ) उपासक को प्राप्त होता है, ( **रोदसी** ) आकाश और भूमि में ( **आ** ) व्याप्त होता है। ( **वृषभः** ) सुख आदि को बरसाने वाला वह ( **रोरवीति** ) सबको बार-बार उपदेश करता है। वह ( **दिवः** ) द्युलोक के ( **चित्** ) भी ( **अन्तात्** ) प्रान्त से ( **उपमाम्** ) सूर्य के समान प्रकाशक, नक्षत्रों के समान कान्तिमान्, ध्रुव तारे के समान अचल इत्यादि रूप से उपमा को ( **उदानट्** ) प्राप्त करता है। ( **महिषः** ) महान् वह ( **अपाम्** ) जलों के ( **उपस्थे** ) स्थिति-स्थान अन्तरिक्ष में भी ( **ववर्ध** ) महिमा को प्राप्त किये हुए है॥९॥

इस मन्त्र में 'याति, रोरवीति, उदानट्, ववर्ध' इन अनेक क्रियाओं का एक कर्ता-कारक से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलंकार है॥९॥

**भावार्थ** :—एक ही अग्नि जैसे द्युलोक में सूर्य-रूप में, अन्तरिक्ष में विद्युत्-रूप में और पृथिवी पर अग्नि के रूप में भासित होता है, वैसे ही एक ही परमात्मा सूर्य, तारा-मण्डल, बिजली, बादल, अग्नि आदि सब स्थानों में प्रकाशित होता है॥९॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमात्मा रूप अग्नि को सब मनुष्य हृदयों में प्रदीप्त करें।

**७२. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्। दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम्॥१०॥**

**पदार्थ** :—( **नरः** ) आप उपासक लोग ( **हस्तच्युतम्** ) हाथ,

पैर, आँख, कान आदि से रहित, (**प्रशस्तम्**) प्रशस्तियुक्त, (**दूरेदृशम्**) दूरदर्शी, (**गृहपतिम्**) ब्रह्माण्ड-रूप अथवा शरीर-रूप घर के पालनकर्ता, (**अथव्युम्**) अचल, स्थिरमति (**अग्निम्**) परमात्मा-रूप अग्नि को (**दीधितिभिः**) ध्यानक्रिया रूप अंगुलियों से (**अरण्योः**) मन और आत्मा रूप अरणियों के मध्य में (**जनयत**) प्रकट करो॥१०॥

इस मन्त्र में श्लेष से यज्ञाग्नि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए॥१०॥

**भावार्थ** :—अरणियों को रगड़कर जैसे यज्ञवेदि में यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करते हैं, वैसे ही ध्यानरूप रगड़ से परमात्मा को हृदय में प्रकाशित करना चाहिए॥१०॥

इस दशति में परमेश्वर का माहात्म्य वर्णित होने से, और उसकी पूजा के लिए, उसकी ज्योति का साक्षात्कार करने के लिए तथा ध्यान-रूप मन्थन-क्रियाओं से उसे प्रकाशित करने के लिए मनुष्यों को प्रेरित किये जाने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## अष्टमी दशतिः

**ऋषिः—१ बुधगविष्ठिरौ; २, ५ वत्सप्रीः; ३ भरद्वाजः; ४, ७ विश्वामित्रः; ६ वसिष्ठः; ८ पायुः॥ देवता—१, २, ४-८ अग्निः; ३ पूषा॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में उषाकाल में यज्ञाग्नि और परमात्माग्नि को समिद्ध करने का विषय है।

**१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३१ २ ३ २३ १ २**
**७३. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।**
**३ १२३ २ ३ २३ १ २ ३ २ ३१ २ ३ २ ३**
**यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाक-**
**१ २**
**मच्छ॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। (**धेनुम् इव**) दुधारू गाय के समान (**आयतीम्**) आती हुई (**उषासं प्रति**) उषा के काल में (**जनानाम्**) यजमान-जनों के (**समिधा**) समिदाधान द्वारा (**अग्निः**) यज्ञाग्नि (**अबोधि**) यज्ञवेदि में प्रबुद्ध हुआ

है। (**वयाम्**) शाखा को (**उज्जिहानाः**) ऊपर ले जाते हुए (**यह्वाः इव**) विशाल वृक्षों के समान (**भानवः**) यज्ञाग्नि की ज्वालाएँ (**नाकम् अच्छ**) सूर्य की ओर (**प्र सस्रते**) प्रसरण कर रही हैं।।

(**द्वितीय**) परमात्माग्नि के पक्ष में। (**धेनुम् इव**) दुधारू गाय के समान (**आयतीम्**) आती हुई (**उषासं प्रति**) उषा के काल में (**जनानाम्**) उपासक जनों के (**समिधा**) आत्मसमर्पण रूप समिदाधान द्वारा (**अग्निः**) परमात्माग्नि (**अबोधि**) हृदय-वेदि में प्रबुद्ध हुआ है। (**वयाम्**) शाखा को (**उज्जिहानाः**) ऊपर ले जाते हुए (**यह्वाः इव**) विशाल वृक्षों के समान (**भानवः**) परमात्माग्नि के तेज (**नाकम् अच्छ**) जीवात्मा की ओर (**प्र सस्रते**) प्रसरण कर रहे हैं।।१।।

इस मन्त्र में यज्ञाग्नि और परमात्माग्नि रूप दो अर्थों के प्रकाशित होने के कारण श्लेषालंकार है और 'धेनुम् इव', 'यह्वाः इव' में उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :–दूध से परिपूर्ण गायों के समान प्रकाश से परिपूर्ण उषाएँ आकाश और भूमि में बिखर गयी हैं। इस शान्तिदायक प्रभात में जैसे अग्निहोत्री लोग यज्ञवेदि में यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करते हैं, वैसे ही अध्यात्मयाजी लोग हृदय में परमात्मा को प्रबुद्ध करते हैं। जैसे विशाल वृक्षों की चोटी की शाखाएँ आकाश की ओर जाती हैं, वैसे ही यज्ञवेदि में प्रज्वलित यज्ञाग्नि की ज्वालाएँ सूर्य की ओर और हृदय में जागे हुए परमात्मा के तेज जीवात्मा की ओर जाते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कैसे परमात्मा की पूजा करनी चाहिए और कैसे पुरुष को राजा के पद पर बैठाना चाहिए।

**७४. प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्।**
**नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा**
**धनर्चिम्॥२॥**

**पदार्थ** :–हे मनुष्य! तू (**प्र भूः**) समर्थ बन, प्रकृष्ट गुणों

वाला हो। और (**जयन्तम्**) विजेता, (**महान्**) महान्, (**विपोधाम्**) बुद्धिमानों के सहायक (**मूरैः**) मारने वालों से (**अमूरम्**) न मारे जा सकने वाले, (**पुराम्**) शत्रु-नगरियों के (**दर्माणम्**) विदारक, (**गीर्भिः**) स्तुति-वाणियों से (**वना**) भजने-योग्य, (**धियम्**) प्रज्ञा व कर्म को (**नयन्तम्**) प्राप्त कराने वाले, (**हरिश्मश्रुं न**) स्वर्णिम किरणों वाले सूर्य के समान (**वर्मणा**) रक्षा के हेतु से (**धनर्चिम्**) ज्योतिरूप धन वाले (**अग्निम्**) परमात्मा को (**धाः**) अपने हृदय में धारण कर, और उक्त गुणों वाले (**अग्निम्**) वीर पुरुष को (**धाः**) राजा के पद पर प्रतिष्ठित कर॥२॥

इस मन्त्र में उपमा और अर्थश्लेष अलंकार है।

**भावार्थ** :—सब प्रजाजनों को चाहिए कि वे समर्थ और गुणवान् होकर सब शत्रुओं के विजेता, महामहिमाशाली, बुधजनों के मित्र, हिंसकों से भी हिंसा न किये जा सकने योग्य, शत्रु की किलेबन्दियों को तोड़ने वाले, स्तुतियों से सम्भजनीय, ज्ञानप्रदाता, सत्कर्मों में प्रेरित करने वाले, सूर्य के सदृश ज्योतिष्मान् परमात्मा को पूजें और उक्त गुणों वाले वीर पुरुष को राजा के पद पर प्रतिष्ठित करें॥२॥

अगले मन्त्र का पूषा देवता है। पूषा नाम से परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है।

**७५. शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**पूषन्**) सब दृष्टियों से परिपुष्ट तथा पुष्टि देने वाले परमात्मन्! (**ते**) आपका, आप द्वारा रचा हुआ (**अन्यत्**) एक अर्थात् दिन (**शुक्रम्**) सफेद है, (**ते**) आपकी रची हुई (**अन्यत्**) दूसरी अर्थात् रात्रि (**यजतम्**) यज्ञ-धूम के समान कृष्णवर्ण भी है। इस प्रकार आपके रचे हुए (**अहनी**) दिन-रात (**विषुरूपे**) विषम रूप वाले हैं। किन्तु स्वयम् आप (**द्यौः इव**) सूर्य के समान प्रकाशमान (**असि**) हैं। हे

(स्वधावन्) सब भोग्य पदार्थों के स्वामिन्! आप (विश्वा: हि) सभी (माया:) बुद्धिकौशलपूर्ण जगत्प्रपंचों की (अवसि) रक्षा करते हो। (ते) आपका (भद्रा) कल्याणकारी (राति:) दान (इह) हमारे जीवन में (अस्तु) हमें प्राप्त हो॥३॥

इस मन्त्र में स्वयं सूर्य के समान भास्वर भी परमेश्वर सफेद और काली दोनों रूपों वाली सृष्टि करता है, इस प्रकार कारण और कार्य के गुणों में आंशिक विरोध वर्णित होने से विषम अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जिस परमात्मा ने दिन–रात आदि विलक्षण वस्तुएँ बनायी हैं और जो सारे जगत्प्रपंच का रक्षक है, उसके उपकार हमें सदा स्मरण करने चाहिएँ॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**७६. इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गो: शश्वत्तमं हवमानाय साध। स्यान्न: सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे॥४॥**

**पदार्थ** :–हे (अग्ने) सबके अग्रनायक परमात्मन्! आप (हवमानाय) अग्निहोत्र करने वाले तथा आत्मसमर्पण–रूप हवि देने वाले मेरे लिए (इडाम्) भूमि, अन्न और प्रशस्त वाणी तथा (गो:) गाय की (पुरुदंसम्) अनेक यज्ञकर्मों को सिद्ध करने वाली (सनिम्) दूध, दही, मक्खन आदि देनों को (शश्वत्तमम्) निरन्तर (साध) प्रदान करते रहिए। (न:) हमारा (सूनु:) पुत्र (तनय:) वंश, धन, सुख, कीर्ति आदि का विस्तार करने वाला, (विजावा) विजयशील और विविध ऐश्वर्यों का उत्पादक (स्यात्) होवे। हे (अग्ने) ज्योतिष्प्रदाता परमात्मन्! (सा) वह प्रसिद्ध (ते) आपकी (सुमति:) अनुग्रहात्मक बुद्धि (अस्मे) हमें (भूतु) प्राप्त होवे॥४॥

**भावार्थ** :–हे परमपिता परमात्मन्! अग्निहोत्र रूप देवयज्ञ को तथा स्तुति, प्रार्थना, उपासना, समर्पण रूप ब्रह्मयज्ञ को करने वाले मुझे कृपा कर कृषि एवं साम्राज्य के लिए भूमि, भोजन के लिए भोज्य अन्न आदि, ज्ञान–प्रसार के लिए प्रशस्त

वाणी और शरीर की पुष्टि तथा दान के लिए गाय का दूध-दही-घी आदि प्रदान कीजिए। हमारी सन्तान को कुल, धन, धर्म, सुख, सामर्थ्य, न्याय, कीर्ति, चक्रवर्ती राज्य आदि का विस्तार करने वाला और सब रिपुओं को जीतने वाला बनाइए।।४।।

अगले मन्त्र में परमात्मा कैसा है, यह वर्णित है।

**७७. प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते।**
**दधद्यो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः॥५॥**

**पदार्थ** :-(**महान्**) महान् (**नभोवित्**) द्युलोक, सूर्य तथा अन्तरिक्ष में विद्यमान परमात्मा-रूप अग्नि (**होता**) हमारे लिए सब सुखों का दाता (**प्र जातः**) हुआ है। (**नृषद्मा**) मनुष्यों के अन्दर निवास करने वाला वह (**अपाम्**) नदियों के (**विवर्ते**) भँवर में भी (**सीदत्**) स्थित है। (**धायी**) जगत् को धारण करने वाला (**यः**) जो परमात्मा-रूप अग्नि (**सुते**) उत्पन्न जगत् में (**वयांसि**) भोग्य पदार्थों को स्थापित करता है, (**वसूनि**) नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि लोकलोकान्तरों को (**यन्ता**) नियम में रखने वाला वही (**विधते**) पूजा करने वाले मनुष्य के लिए (**तनूपाः**) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों का रक्षक होता है।।५।।

इस मन्त्र में 'नभ में विद्यमान होता हुआ भी मनुष्यों में विद्यमान है, मनुष्यों में विद्यमान होता हुआ भी नदियों के भँवर में विद्यमान है'-इस प्रकार विरोधालंकार ध्वनित हो रहा है। परमेश्वराग्नि के सर्वव्यापी होने से विरोध का परिहार हो जाता है।।५।।

**भावार्थ** :-परमेश्वर गगन में भी, पृथिवी में भी; मनुष्यों में भी, पशु-पक्षी आदिकों में भी, बादलों में भी, सूर्यकिरणों में भी, पर्वतों में भी, नदियों में प्रवाहों में भी, नक्षत्रों में भी, ग्रहोपग्रहों में भी-सभी जगह विद्यमान होता हुआ विश्व का संचालन कर रहा है।।५।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के कर्म वन्दनीय हैं, यह वर्णन है।

**७८. प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य। इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु॥६॥**

**पदार्थ** :—हे मित्रो! तुम (**असुरस्य**) दोषनाशक, प्राणप्रदाता, (**पुंसः**) पौरुषवान् (**कृष्टीनाम्**) मनुष्यों के (**अनुमाद्यस्य**) प्रसादनीय अग्निनामक प्रकाशप्रदाता नेता परमात्मा के (**प्रशस्तम्**) कीर्तियुक्त (**सम्राजम्**) साम्राज्य की (**प्र**) प्रकृष्ट रूप से स्तुति करो। (**वन्दमाना**) वन्दनाशील नारी भी (**इन्द्रस्य इव**) सूर्य के समान (**तवसः**) महान् उस परमात्मा के (**कृतानि**) यशोमय कर्मों को (**वन्दद्वारा**) वन्दना द्वारा (**प्र विवष्टु**) भलीभाँति गाने की इच्छा करे॥६॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :—सब नर-नारियों को दोषापहारक, बलवान् परमेश्वर की वन्दना सदा करनी चाहिए और उसके गुणों को ग्रहण करना चाहिए॥६॥

सर्वत्र अव्यक्तरूप में स्थित परमात्माग्नि को प्रकाशित करना चाहिए, यह अगले मन्त्र में वर्णन है।

**७९. अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइवेत् सुभृतो गर्भिणीभिः। दिवेदिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥७॥**

**पदार्थ** :—(**जातवेदाः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ को जानने वाला परमात्मा (**अरण्योः**) अरणियों के तुल्य विद्यमान जीवात्मा प्रकृति, जीवात्मा-शरीर, द्युलोक-पृथिवीलोक और बुद्धि-मन में (**निहितः**) स्थित है। (**गर्भिणीभिः**) गर्भिणी स्त्रियों द्वारा (**गर्भ इव**) जैसे गर्भ धारण किया जाता है, (**इत्**) वैसे ही, वह (**सुभृतः**) उनके द्वारा सम्यक् प्रकार से धारण हुआ है।

( **अग्निः** ) वह परमात्मा ( **जागृवद्भिः** ) जागरूक ( **हविष्मद्भिः** ) आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदि को हवि बनाकर समर्पित करने वाले ( **मनुष्येभिः** ) अध्यात्मयाजी मनुष्यों द्वारा ( **ईड्यः** ) पूजा करने योग्य है॥७॥

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। गर्भ-गर्भि, दिवे-दिवे में छेकानुप्रास है॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे गर्भिणियों में प्रच्छन्न-रूप से गर्भ स्थित होता है, वैसे ही परमात्मा-रूप अग्नि सब पदार्थों में प्रच्छन्नरूप से विद्यमान है। जैसे गर्भ के बाहर आने पर सम्बन्धी जन पुत्र-पुत्री के जन्म का उत्सव रचाते हैं, और पुत्र-पुत्री का लालन-पालन करते हैं, वैसे ही गुह्यरूप से सर्वत्र स्थित परमात्मा-रूप अग्नि को अपने सम्मुख प्रकट करके आध्यात्मिक जनों को महोत्सव मनाना चाहिए और परमात्माग्नि को आत्मसमर्पण-रूप हवि देकर पूजा करनी चाहिए॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से राक्षस-संहार की प्रार्थना की गयी है।

**८०. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः। अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) अग्रणी परमात्मन्! अथवा शत्रुसंहारक राजन्! आप ( **सनात्** ) चिरकाल से ( **यातुधानान्** ) पीड़ादायक, घात-पात, हिंसा, उपद्रव आदि दोषों को और दुष्टजनों को ( **मृणसि** ) विनष्ट करते आये हो। ( **रक्षांसि** ) काम-क्रोध-लोभ आदि और ठग-लुटेरे-चोर आदि राक्षस ( **त्वा** ) आपको ( **पृतनासु** ) आन्तरिक और बाह्य देवासुर-संग्रामों में ( **न जिग्युः** ) नहीं जीत पाते। आप ( **कयादः** ) सुख-नाशक दुर्विचारों तथा दुष्टजनों को ( **सहमूरान्** ) समूल ( **अनुदह** ) एक-एक करके भस्म कर दीजिए। ( **ते** ) वे दुष्टभाव और दुष्टजन ( **ते** ) आपके ( **दैव्यायाः** ) विद्वज्जनों का हित करने वाले ( **हेत्याः** ) दण्डशक्तिरूप वज्र से एवं शस्त्रास्त्रों से ( **मा मुक्षत** ) न छूट

सकें॥८॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है, वीर रस है॥८॥

**भावार्थ** :–हे धर्मपालक, विधर्मविध्वंसक, सद्गुणप्रसारक जगदीश्वर वा राजन्! आपके प्रशंसक हम जब-जब मानसिक या बाह्य देवासुर-संग्राम में काम-क्रोध-लोभ-मोह आदिकों से और ठग-लुटेरे-हिंसक-चोर-शराबी-व्यभिचारी-भ्रष्टाचारी आदि दुष्टजनों से पीड़ित हों, तब-तब आप हमारे सहायक होकर उन्हें जड़-समेत नष्ट करके हमारी रक्षा कीजिए। दुर्जनों का यदि हृदय-परिवर्तन सम्भव हो तो उनका राक्षसत्व नष्ट करके उन्हें शुद्ध अन्तःकरण वाला कर दीजिए, जिससे संसार में सज्जनों की वृद्धि से सर्वत्र सुख और सौहार्द की धारा प्रवाहित हो॥८॥

इस दशति में परमात्माग्नि को जाग्रत् करने का, अग्नि, पूषन् और जातवेदस् नामों से परमात्मा के गुणों का और उसके द्वारा किये जाने वाले राक्षस-विनाश का वर्णन होने से तथा मनुष्यों को परमात्मा की पूजा की प्रेरणा किये जाने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## नवमी दशतिः

**ऋषिः—१ गय आत्रेयः; २ वामदेवः; ३, ४ भरद्वाजः; ५ मृक्तवाहा द्वितः; ६ वसूयव आत्रेयः; ७, ९ गोपवनः; ८ पूरुरात्रेयः; १० वामदेवः, कश्यपो वा मारीचो मनुर्वा वैवस्वतः; उभौ वा॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से परमेश्वर, राजा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**८१. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो।**
**प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम्॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (अध्रिगो) बेरोक गति वाले और अप्रतिरुद्ध तेज वाले (अग्ने) अग्रनेता परमात्मन् राजन् और आचार्य!

आप ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिए ( ओजिष्ठम् ) अतिशय ओजयुक्त, अतिप्रबल ( द्युम्नम् ) यश, तेज और अन्न ( आ भर ) प्रदान कीजिए। ( नः ) हमारे लिए ( पनीयसे ) अतिशय प्रशंसा के योग्य ( राये ) ऐहिक एवं पारमार्थिक धन की प्राप्ति के लिए और ( वाजाय ) शारीरिक एवं आध्यात्मिक बल की प्राप्ति के लिए ( पन्थाम् ) मार्ग को ( प्र रत्सि ) तैयार कीजिए।।१।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेप अलंकार है।

**भावार्थ** :–परमात्मा, राजा और विद्वान् आचार्य हमें उस सन्मार्ग का उपदेश करें, जिस पर चलते हुए, हम प्रबल जगद्व्यापिनी कीर्ति को, अनतिक्रमणीय श्लाघ्य दीप्ति को, सकल भोज्य पदार्थों को, सोना-चाँदी-हीरे-मोती-मणि-गाय-पुत्र-पौत्र-रथ-महल- शस्त्रास्त्र -विद्या-धर्म-आरोग्य-चक्रवर्तीराज्य-मोक्ष आदि रूप वाले अनेक प्रकार के धन को और शारीरिक तथा आत्मिक बल को अपने पुरुषार्थ से व उनके अनुग्रह से प्राप्त कर लें।।१।।

अगले मन्त्र में यह प्रार्थना की गयी है कि हमारी सन्तान कैसी हो।

**८२. यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।**
**आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :–( **यदि** ) यदि ( **वीरः** ) पुत्र ( **अनु** ) वेदानुकूल व्रतों वाला ( **स्यात्** ) हो, ( **मर्त्यः** ) मरणधर्मा वह ( **अग्निम्** ) यज्ञाग्नि को, राष्ट्रीयता की अग्नि को और परमात्माग्नि को ( **इन्धीत** ) अपने अन्दर प्रदीप्त किया करे, और ( **आनुषक्** ) निरन्तर नैत्यिक कर्त्तव्य के रूप में ( **हव्यम्** ) यज्ञाग्नि के प्रति सुगन्धित-मधुर-पुष्टिवर्धक और आरोग्यवर्धक हवि को, राजा के प्रति राजदेय कर रूप हवि को तथा परमात्मा के प्रति मन-बुद्धि-प्राण आदि की हवि को ( **आजुह्वत्** ) समर्पित करता रहे तो वह ( **दैव्यम्** ) प्रकाशक यज्ञाग्नि, राजा वा परमात्मा से प्रदत्त ( **शर्म** ) सुख को ( **भक्षीत** ) सेवन कर सकता है।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :–हमारे पुत्र और पुत्रियाँ अपनी मरणधर्मता को

विचारकर यदि वेदानुकूल आचरण रखकर नित्य यज्ञाग्नि में घी-कस्तूरी-केसर आदि हवि, राजाग्नि में राजदेय कर रूप हवि, और परमात्माग्नि में अपने आत्मा-अग्नि-बुद्धि-प्राण-इन्द्रिय आदि की हवि होमें, तो वे समस्त अभ्युदय और निःश्रेयस-रूप सुख को भोग सकते हैं।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के प्रताप और प्रभाव का वर्णन किया गया है।

**८३. त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः।**
**सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मारूप अग्नि! **(ते)** आपका **(त्वेषः)** दीप्त **(धूमः)** धुएँ के समान प्रसरणशील शत्रुप्रकम्पक प्रभाव **(ऋण्वति)** सर्वत्र पहुँचता है, जो **(दिवि)** आत्माकाश में **(आततः)** विस्तीर्ण **(सन्)** होता हुआ **(शुक्रः)** शुद्धिकारी होता है। हे **(पावक)** शुद्धिकर्ता परमात्मन्! **(द्युता)** दीप्ति से **(सूरः न)** जैसे सूर्य चमकता है वैसे **(हि)** निश्चय ही **(त्वम्)** आप **(कृपा)** अपने प्रभाव के सामर्थ्य से **(रोचसे)** रोचमान हो।।३।।

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। श्लेष से यज्ञाग्नि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे यज्ञाग्नि का ज्वालाओं से जटिल, प्रदीप्त, सुगन्धित धुआँ आकाश में फैलकर शुद्धिकर्ता और रोगहर्ता होता है, वैसे ही परमात्मा का प्रभाव मनुष्य के आत्मा और हृदय में फैलकर अज्ञान आदि दोषों को कँपाने वाला और शोधक होता है। साथ ही जैसे सूर्य अपने तेज से चमकता है, वैसे परमात्माग्नि अपने प्रभाव-सामर्थ्य से चमकता है।।३।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणों का वर्णन किया गया है।

**८४. त्वं हि क्षैतवद् यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे।**
**त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि॥४॥**

**पदार्थ** :-हे **( अग्ने )** परमात्मन्! **( त्वम् )** आप **( हि )** निश्चय ही **( क्षैतवत् )** राजा के समान, और **( मित्रः न )** सूर्य के समान **( यशः )** यश के **( पत्यसे )** स्वामी हो। हे **( विचर्षणे )** सर्वद्रष्टा, **( वसो )** निवासक सर्वव्यापी परब्रह्म! **( त्वम् )** आप **( पुष्टिं न )** जैसे शारीरिक और आत्मिक पुष्टि को देते हो, वैसे ही हमें **( श्रवः )** कीर्ति को भी **( पुष्यसि )** देते हो।।४।।

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। "क्षैतवत्, मित्रः न, पुष्टिं न' ये तीन उपमाएँ हैं।।४।।

**भावार्थ** :-जैसे राजा राष्ट्र का संचालक होने से और सूर्य पृथिवी आदि ग्रहोपग्रहों का संचालक होने से यश से प्रख्यात होता है, वैसे ही परमेश्वर जड़-चेतन ब्रह्माण्ड का संचालक होने से जगद्व्यापिनी परम कीर्ति को प्राप्त किये हुए है और वह प्रार्थी मनुष्यों को भी कीर्ति प्रदान करता है।।४।।

अगले मन्त्र में परमात्मा का अतिथि के समान उपकारक होना वर्णित है।

**८५. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः।**
**विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते॥५॥**

**पदार्थ** :-**( प्रातः )** प्रभातकाल में **( पुरुप्रियः )** बहुत प्यारा **( अतिथिः )** अतिथि के समान पूज्य तथा सन्मार्गप्रदर्शक **( अग्निः )** अग्रणी परमेश्वर **( विशः )** अध्यात्म-यज्ञ में संलग्न प्रजाओं को **( स्तवेत )** यथायोग्य साधुवाद दे तथा उपदेश देता रहे, **( यस्मिन् )** जिस **( अमर्त्ये )** अमर परमात्माग्नि में **( विश्वे )** सब **( मर्तासः )** मरणधर्मा उपासक मनुष्य **( हव्यम् )** अपनी आत्मारूप हवि को **( इन्धते )** समर्पित करके प्रदीप्त करते हैं।।५।।

**भावार्थ** :-जैसे घर में आये विद्वान् अतिथि का जो लोग प्रदान करने योग्य वस्तुओं से सत्कार करते हैं, उन्हें वह वेदादिशास्त्रों का उपदेश करता है, वैसे ही अतिथि के तुल्य परमात्मा को जो लोग श्रद्धा से आत्मसमर्पण करते हैं उन्हें वह साधुवाद और आशीर्वाद देता हुआ सन्मार्ग का उपदेश करता है।।५।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमात्मा को हृदय से निकला हुआ स्तोत्र ही अर्पित करना चाहिए।

**८६. यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो।**
**महिषीव त्वद् रयिस्त्वद् वाजा उदीरते॥६॥**

**पदार्थ** :–( **यत्** ) जो स्तोत्र ( **वाहिष्ठम्** ) हृदयगत भक्तिभाव का अतिशय वाहक हो ( **तत्** ) वही ( **अग्नये** ) तेजःस्वरूप परमात्मा के लिए, देय होता है। तदनुसार, हे ( **विभावसो** ) तेजोधन जीवात्मन्! तू उस परमात्मा की ( **बृहत्** ) बहुत ( **अर्च** ) पूजा कर। हे परमात्मन्! ( **त्वत्** ) आपके पास से ( **महिषी इव** ) महती भूमि के समान ( **रयिः** ) समस्त धन तथा ( **त्वत्** ) आपके पास से ( **वाजाः** ) अन्न और बल ( **उदीरते** ) उत्पन्न होते हैं॥६॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे विशाल पृथिवी तुझसे उत्पन्न होती है, वैसे ही तुझसे 'रयि' और 'वाज' भी उत्पन्न होते हैं, यह भाव है॥६॥

**भावार्थ** :–जैसे परमात्मा ने हमारे उपकार के लिए भूमि रची है, वैसे ही सब धन-धान्य आदि और बल-पराक्रम, सद्गुण आदि भी हमें दिए हैं। इसलिए हार्दिक भक्तिभाव से उसकी वन्दना करनी चाहिए॥६॥

अगले मन्त्र में परमात्मा-रूप अतिथि की अर्चना का वर्णन है।

**८७. विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।**
**अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः॥७॥**

**पदार्थ** :–हे मनुष्यो! ( **वः** ) तुम ( **विशः विशः** ) प्रत्येक मनुष्य के ( **अतिथिम्** ) अतिथि के समान पूज्य, ( **पुरुप्रियम्** ) बहुत प्रिय परमेश्वर रूप अग्नि की ( **वाजयन्तः** ) अर्चना करो। ( **दुर्यम्** ) घर के समान शरणभूत ( **अग्निम्** ) उस अग्रनायक जगदीश्वर को ( **वः** ) तुम्हारा ( **वचः** ) स्तुति-वचन, प्राप्त हो। मैं भी उस जगदीश्वर की ( **शूषस्य मन्मभिः** ) बल और सुख के स्तोत्रों से–अर्थात् सबल और सुखजनक स्तोत्रों से ( **स्तुषे** )

स्तुति करता हूँ।।७।।

**भावार्थ** :-सबके हृदय में अतिथि-रूप से विराजमान भक्तवत्सल परमेश्वर का सब मनुष्यों को स्तुतिवचनों से अभिनन्दन करना चाहिए।।७।।

अगले मन्त्र में मनुष्य को परमात्माग्नि की अर्चना के लिए प्रेरित किया गया है।

**८८. बृहद् वयो हि भानवेऽ र्चा देवायाग्नये।**
**यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः॥८॥**

**पदार्थ** :-हे मनुष्य! तू (**भानवे**) आदित्य के समान भास्वर (**देवाय**) दिव्य गुण-कर्मों से युक्त (**अग्नये**) परमात्मा के लिए (**बृहत्**) बड़ी (**वयः**) आयु को (**अर्च**) समर्पित कर, (**यम्**) जिस परमात्मा को (**मित्रं न**) मित्र के समान (**प्रशस्तये**) प्रशस्त जीवन के लिए (**मर्तासः**) उपासक मनुष्य (**पुरः**) सम्मुख (**दधिरे**) स्थापित करते हैं।।८।।

इस मन्त्र में 'मित्रं न' में उपमालङ्कार है।।८।।

**भावार्थ** :-जो जगत् के नेता, उत्कृष्ट ज्ञानी, सदाचार-प्रेमी महान् लोग होते हैं वे सदा ही परमात्मा को सम्मुख रखकर और उससे शुभ प्रेरणा प्राप्त करके सब कार्य करते हैं, जिससे उनकी प्रशस्ति और ख्याति सब जगह फैल जाती है। वैसे ही हे नर-नारियो! तुम्हें भी चाहिए कि अपनी सम्पूर्ण आयु दिव्य गुण-कर्मों वाले, ज्योतिष्मान् परमात्मा को समर्पित करके उसकी प्रेरणा से कर्त्तव्य कर्मों में बुद्धि लगाकर संसार में प्रशस्ति प्राप्त करो।।८।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणों का वर्णन है।

**८९. अगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्।**
**यः स्म श्रुतर्वन्नार्क्षे बृहदनीक इध्यते॥९॥**

**पदार्थ** :-हम (**वृत्रहन्तमम्**) पापों के अतिशय विनाशक, (**ज्येष्ठम्**) सर्वाधिक प्रशंसनीय और महान् (**आनवम्**) मनुष्यों के हितकारी (**अग्निम्**) तेजस्वी परमेश्वर को (**अगन्म**) प्राप्त

हुए हैं। (यः स्म) जो (श्रुतर्वन्) प्रसिद्ध किरणरूप अश्वों वाले ज्योतिर्मय सूर्य में तथा (आर्क्षे) तारापुंज में (बृहदनीकः) विशाल तेज वाला होकर (इध्यते) भासमान होता है॥९॥

अगले मन्त्र में मनुष्य-जन्म ग्रहण किये हुए जीवात्मा को सम्बोधन करके कहा गया है।

**१०. जातः परेण धर्मणा यत् सवृद्भिः सहाभुवः। पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कविः॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे जीवात्मन्! तू (**परेण**) उत्कृष्ट (**धर्मणा**) धर्मनामक संस्कार के कारण (**जातः**) मानवयोनि में जन्मा है, (**यत्**) क्योंकि तू (**सवृद्भिः सह**) साथ रहने वाले सूक्ष्मशरीरस्थ पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच सूक्ष्मभूत और मन तथा बुद्धि, इन सत्रह तत्त्वों के साथ (**अभुवः**) विद्यमान था। (**यत्**) क्योंकि (**कश्यपस्य**) तुझ द्रष्टा का (**पिता**) पिता अर्थात् मनुष्यशरीरदाता (**अग्निः**) अग्रणी तेजोमय परमात्मा है, अतः (**श्रद्धा**) श्रद्धा (**माता**) तेरी माता के तुल्य हो और तू स्वयम् (**मनुः**) मननशील तथा (**कविः**) मेधावी बन॥१०॥

**भावार्थ** :—जब जीवात्मा मृत्यु के समय शरीर से निकलता है, तब सूक्ष्म शरीर उसके साथ विद्यमान होता है, और सूक्ष्मशरीरस्थ चित्त में धर्माधर्म नामक शुभाशुभ कर्म-संस्कार आत्मा के साथ जाते हैं। धर्म से वह मनुष्य-जन्म और अधर्म से पशु-पक्षी आदि का जन्म पाता है। जीवात्मा ज्ञानग्रहण के सामर्थ्य वाला होने से कश्यप अर्थात् द्रष्टा है। इसलिए उसे सकल ज्ञान-विज्ञान का संचय करना चाहिए। क्योंकि परमेश्वर उसका शरीर में जन्म-दाता होता है, अतः पिता की महत्ता का विचार करके उसे जीवन में श्रद्धा को माता के समान स्वीकार करना चाहिए और स्वयं मननशील तथा मेधावी बनना चाहिए॥१०॥

जो लोग यह कहते हैं कि कश्यप ऋषि का नाम है, श्रद्धा देवी का नाम है और मनु से वैवस्वत मनु का ग्रहण है, उनका मत वेदों में लौकिक इतिहास न होने से संगत नहीं है॥

इस दशति में परमात्मा से यश, तेज, धन, बल आदि की

प्रार्थना, परमात्मा के प्रभाव का वर्णन, अतिथि परमात्मा के प्रति हव्य-समर्पण और उसके पूजन की प्रेरणा होने से तथा परमात्मा को पिता और श्रद्धा को माता के रूप में वर्णित करने से इसके विषय की पूर्वदशति के विषय के साथ संगति है, ऐसा जानो।।

## दशमी दशतिः

**ऋषिः—१ अग्निस्तापसः; २ वामदेवः; ३ काश्यपोऽसितो देवलो वा; ४ सोमाहुतिर्भार्गवः; ५ पायुः; ६ प्रस्कण्वः॥ देवता—१ विश्वेदेवाः; २ अङ्गिराः; ३-६ अग्निः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में सोम, वरुण आदि का आह्वान किया गया है।

**९१. सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे।**
**आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हम (**राजानम्**) सबके राजा, (**सोमम्**) चन्द्रमा के समान आह्लाद देनेवाले, चराचर जगत् के उत्पादक सोम नामक परमात्मा का, (**वरुणम्**) सब शिष्ट, मुमुक्षु, धर्मात्मा जनों को वरने वाले और उन सबके द्वारा वरे जाने वाले वरुण नामक परमात्मा का, (**अग्निम्**) सबके अग्रनायक, प्रकाशस्वरूप अग्निनामक परमात्मा का, (**आदित्यम्**) प्रलयकाल में सब जगत् को प्रकृति के गर्भ में ग्रहण कर लेने वाले, अविनाशीस्वरूप, सूर्य के समान सत्य, न्याय और धर्म के प्रकाशक आदित्य नामक परमात्मा का, (**विष्णुम्**) चराचर में व्यापक विष्णु नामक परमात्मा का, (**ब्रह्माणम्**) सबसे महान् ब्रह्मा नामक परमात्मा का, (**बृहस्पतिं च**) और विशाल आकाशादिकों के स्वामी, वृद्धि के अधिपति बृहस्पति नामक परमात्मा का (**अनु आ रभामहे**) आश्रय लेते हैं।।

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। मन्त्रोक्त सब देव विभिन्न राज्यमन्त्री अथवा राज्याधिकारी हैं, यह समझना चाहिए। जैसाकि

मनु ने कहा है—राजा को चाहिए कि अपने देश के मूल निवासी, वेदादिशास्त्रों के ज्ञाता, शूरवीर, लक्ष्य को पा लेने वाले, कुलीन, सुपरीक्षित सात या आठ मन्त्री बनाये (मनु॰ ७।५४)। हम प्रजाजन (**सोमम्**) चन्द्रमा के समान प्रजाओं को आह्लाद देनेवाले (**राजानम्**) राजा का, (**वरुणम्**) दण्डाधिकारी का, (**अग्निम्**) सेना के अग्रनायक सेनाध्यक्ष का, (**आदित्यम्**) कर-अधिकारी का, (**विष्णुम्**) व्यापक रूप से प्रजाओं का कार्य सिद्ध करने वाले प्रधानमन्त्री का, (**सूर्यम्**) सूर्य के समान रोग-निवारक स्वास्थ्य-मन्त्री का, (**ब्रह्माणम्**) यज्ञाधिकारी का, (**बृहस्पतिं च**) और शिक्षा-मन्त्री का, (**अनु आ रभामहे**) राष्ट्र के उत्कर्ष के लिए आश्रय लेते हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥१॥

**भावार्थ** :—अग्नि, सोम, वरुण, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा, बृहस्पति आदि अनेक नामों से वेदों में जिसकी कीर्ति गायी गयी है उस एक परमेश्वर का सबको आश्रय लेना चाहिए। उसी प्रकार राष्ट्र में अनेक मन्त्रियों और राज्याधिकारियों के साथ मिलकर राष्ट्र का संचालन करने वाले राजा का भी सब प्रजाजनों को आश्रय ग्रहण करना चाहिए तथा अपना सहयोग देकर उसका सत्कार करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में योगी लोग क्या करते हैं, इसका वर्णन है।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**१२. इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन्।**
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**प्र भूर्जयो यथा पथोद् द्यामङ्गिरसो ययुः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**एते**) ये (**अङ्गिरसः**) अग्निस्वरूप, अंगारे के समान तेजस्वी, अंगों के रसभूत, प्राणप्रिय परमेश्वर का ध्यान करने वाले तपस्वी योगीजन (**इतः**) इस अन्नमय कोश से या मूलाधार चक्र से (**उत् आरुहन्**) ऊर्ध्वारोहण करते हैं, क्रमशः (**दिवः पृष्ठानि**) अन्तरिक्ष के सोपानों पर, अर्थात् मध्यवर्ती कोशों या मध्यवर्ती चक्रों पर (**आरुहन्**) चढ़ जाते हैं, और फिर (**द्याम्**) द्युलोक पर अर्थात् आनन्दमय रूप सर्वोच्च कोश पर या सहस्रार-रूप सर्वोच्च चक्र पर (**उद्**

ययुः) पहुँच जाते हैं। हे सखे! तू भी वैसे ही (प्र भूः) उत्कृष्ट बन अथवा समर्थ बन, (यथा) जिससे (पथा) सन्मार्ग पर चलकर, तुझे (जयः) विजय प्राप्त हो॥२॥

**भावार्थ** :—मानव-शरीर में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय ये पाँच कोश और मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, ललित, आज्ञा, सहस्रार ये आठ चक्र हैं। योगाभ्यासी लोग स्थूल कोश से सूक्ष्म-सूक्ष्मतर कोशों के प्रति आरोहण करते हुए सूक्ष्मतम आनन्दमय कोश को प्राप्त कर परम ब्रह्मानन्द का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार निचले चक्र मूलाधार से प्राणों का ऊर्ध्व चङ्क्रमण करते-करते अन्त में सहस्रार चक्र में प्राणों को केन्द्रित कर मस्तिष्क और हृदय में परमात्म-ज्योति की अविच्छिन्न धारा को प्रवाहित कर लेते हैं। हे मित्र! तुम भी वैसा ही सामर्थ्य संग्रह करो, जिससे उत्तरोत्तर अधिकाधिक उत्कृष्ट मार्ग पर चलते हुए तुम्हें विजय हस्तगत हो सके॥२॥

अगले मन्त्र में अग्नि नाम से जीवात्मा को सम्बोधित किया गया है।

**९३. राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि।**
**ईडिष्वा हि महे वृषं द्यावा होत्राय पृथिवी॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) शरीरस्थ, मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि देवों में अग्रणी हमारे जीवात्मन्! हम (महे राये) प्रचुर धन के लिए अर्थात् प्रचुर सोना, चाँदी, विद्या, विवेक आदि धन को कमाने के लिए और (दानाय) उसके दान के लिए (त्वा) तुझे (समिधीमहि) प्रदीप्त-प्रबुद्ध करते रहें। हे (वृषन्) बली जीवात्मन्! तू (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोक की (महे होत्राय) महान् होम के लिए (ईडिष्व) स्तुति कर, प्रशंसा कर। ये द्यावापृथिवी जगत् के हितार्थ सृष्टि-संचालन-यज्ञ में सर्वस्व-होम कर रहे हैं, इस रूप में उनके गुणों का वर्णन कर और उनसे प्रेरणा लेकर स्वयं भी परोपकारार्थ होम कर, यह भाव है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि अपने आत्मा को प्रबोधन देकर दानशील आकाश-भूमि से शिक्षा लेकर धनों के कमाने तथा दान देने में प्रवृत्त हों॥३॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कौन परमेश्वर को जानता है।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २उ ३ २ ३ २
**१४. दधन्वे वा यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत्।**
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत्॥४॥**

**पदार्थ** :—**(यत्)** जब, उपासक **(ईम्)** इस परमात्मा-रूप अग्नि को **(अनु दधन्वे)** अनुकूलतापूर्वक अपने हृदय में धारण कर लेता है, **(वा)** और **(ब्रह्म इति)** यह साक्षात् ब्रह्म है, ऐसा **(वोचत्)** कह सकता है, **(तत् उ)** तभी, वह उसे **(वेः)** जानता है, जो परमात्मा रूप अग्नि **(विश्वानि)** सब **(काव्या)** वेद-काव्यों अथवा सृष्टि-काव्यों को **(परि अभुवत्)** चारों ओर व्याप्त किये हुए है, **(नेमिः)** रथ के पहिए की परिधि **(चक्रम् इव)** जैसे रथ के पहिए को चारों ओर व्याप्त किये होती है॥४॥

इस मन्त्र में 'नेमिश्चक्रमिव' में उपमालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—जब परमात्मा के ध्यान में संलग्न योगी परमात्मा को धारणा, ध्यान, समाधि के मार्ग से अपने हृदय के अन्दर भली-भाँति धारण कर लेता है और हस्तामलकवत् उसकी अनुभूति करता हुआ 'यह ब्रह्म है, जिसका मैं साक्षात् कर रहा हूँ', इस प्रकार कहने में समर्थ होता है, तभी वस्तुतः उसने ब्रह्म जान लिया है, यह मानना चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में राक्षसों के विनाश के लिए परमेश्वर, जीवात्मा, राजा, सेनापति और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**१५. प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि।**
३ १ २ ३ २ ३ २ ३क २र ३क २र
**यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्ज वीर्यम्॥५॥**

**पदार्थ** :—हे **(अग्ने)** ज्योतिर्मय, मेरे अन्तरात्मा, राजा, सेनापति और आचार्यप्रवर! आप **(यातुधानस्य)** यातना देने वाले **(रक्षसः)**

पापरूप राक्षस के तथा पापी दुष्ट शत्रु के (**बलम्**) सैन्य को, और (**वीर्यम्**) पराक्रम को (**न्युब्ज**) निर्मूल कर दीजिए। (**विश्वतः परि**) सब ओर से (**तस्य**) उसके (**हरः**) हरणसामर्थ्य, क्रोध और तेज को (**हरसा**) अपने हरणसामर्थ्य, मन्यु और तेज से (**प्रतिश्शृणाहि**) विनष्ट कर दीजिए॥५॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे परमेश्वर की उपासना से, अपने अन्तरात्मा को जगाने से, राजा और सेनापति की सहायता से तथा गुरुओं के सदुपदेश-श्रवण से, अपने हृदय और समाज में से सब पापों को तथा राष्ट्र के सब शत्रुओं को निर्मूल करें॥५॥

अगले मन्त्र में राष्ट्रवासी जन परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं।

**९६. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत।**
**यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम्॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) परमात्मन्! (**त्वम्**) जगदीश्वर आप (**इह**) हमारे इस राष्ट्र में (**वसून्**) धन-धान्य आदि सम्पत्ति से अन्य वर्णों को बसाने वाले उत्कृष्ट वैश्यों को, (**रुद्रान्**) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर क्षत्रियों को, (**आदित्यान्**) प्रकाशित सूर्यकिरणों के समान विद्याप्रकाश से युक्त ब्राह्मणों को, (**उत**) और (**स्वध्वरम्**) शुभ यज्ञ करने वाले, (**मनुजातम्**) मनुष्य-समाज के कल्याणार्थ जन्म लेने वाले, (**घृतप्रुषम्**) यज्ञाग्नि में अथवा सत्पात्रों में घृत आदि को सींचने वाले (**जनम्**) पुत्र को (**यज**) प्रदान कीजिए॥६॥

अब वसुओं, रुद्रों और आदित्यों के उपर्युक्त अर्थ करने में प्रमाण लिखते हैं। 'वसवः' से वैश्यजन गृहीत होते हैं, क्योंकि यजुर्वेद ८।१८ में वसुओं से धन की याचना की गयी है। रुद्रों से क्षत्रिय अभिप्रेत हैं, क्योंकि रुद्रों का वर्णन वेदों में इस रूप में मिलता है—'हे रुद्र, तेरी सेनाएँ हमसे भिन्न हमारे शत्रु को विनष्ट करें' (ऋ० २।३३।११); 'उस रुद्र के सम्मुख अपनी वाणियों को प्रेरित करो, जिसके पास स्थिर धनुष है, वेगगामी

वाण हैं, जो स्वयं आत्म-रक्षा करने में समर्थ है, किसी से पराजित नहीं होता, शत्रुओं का पराजेता है और तीव्र शस्त्रास्त्रों से युक्त है (ऋ० ७।४६।१)। आदित्यों से ब्राह्मण ग्राह्य हैं, क्योंकि तै० संहिता में कहा है कि 'ब्राह्मण ही आदित्य है' (तै० सं० १।१।९।८)॥६॥

**भावार्थ** :—हे जगत्-साम्राज्य के संचालक, देवाधिदेव, परमपिता परमेश्वर! ऐसी कृपा करो कि हमारे राष्ट्र में धन-दान से सब वर्णाश्रमों का पालन करने वाले उत्तम कोटि के वैश्य, युद्धों में शत्रुओं को जीतने वाले वीर क्षत्रिय और आदित्य के समान ज्ञान-प्रकाश से पूर्ण विद्वद्वर ब्राह्मण उत्पन्न हों और सब लोग तरह-तरह के परोपकार-रूप यज्ञों का अनुष्ठान करने वाली, मानव-समाज का कल्याण करने वाली, अग्निहोत्र-परायण, अतिथियों का घृतादि से सत्कार करने वाली सुयोग्य सन्तान को प्राप्त करें॥६॥

इस दशति में सोम, अग्नि, वरुण, विष्णु आदि विविध नामों से परमेश्वर का स्मरण होने से, परमेश्वर के आश्रय से अंगिरस योगियों की उत्कर्ष-प्राप्ति का वर्णन होने से, परमेश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए उससे राक्षसों के संहार तथा राष्ट्रोत्थान के लिए प्रार्थना करने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

**इति प्रथमः प्रपाठकः समाप्तः॥**

# अथ द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः।

## एकादशी दशतिः

**ऋषिः—१ दीर्घतमाः; २, ४ विश्वामित्रः; ३ गोतमः; ५ त्रितः; ६ इरिम्बिठिः; ७, ८, १० विश्वमना वैयश्वः; ९ ऋजिष्वा भारद्वाजः॥ देवता—१-४, ७-१० अग्निः, ५ पवमानः; ६ अदितिः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम मन्त्र में मनुष्य परमात्मा को आत्म-समर्पण करता हुआ उसकी स्तुति कर रहा है।

**९७. पुरु त्वा दाशिवाँ वोचेऽ रिरग्ने तव स्विदा।**
**तोदस्येव शरण आ महस्य॥१॥**

**पदार्थ** :-( **दाशिवान्** ) आत्म-समर्पण किये हुए मैं ( **त्वा** ) आप परमात्मा की ( **पुरु** ) बहुत ( **वोचे** ) स्तुति करता हूँ। ( **अग्ने** ) हे तेजस्वी जगदीश्वर! आप ( **अरिः** ) समर्थ हैं। मैं ( **तव स्वित्** ) आपका ही हूँ, अतः मेरे समीप ( **आ** ) आइए। ( **तोदस्य इव** ) अमृत-जल से परिपूर्ण कुएँ के समान ( **महस्य** ) महिमाशाली आपकी ( **शरणे** ) शरण में, मैं ( **आ** ) आया हूँ॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :-हे जगत्पति! हे परमपिता! मैं आपका ही हूँ। आपको छोड़कर अन्यत्र कहाँ जाऊँ! आपके ही गुण गाता हूँ, आपको ही स्वयं को समर्पित करता हूँ। स्वच्छ जल से भरे हुए कुएँ के सदृश आप अमृतमय आनन्द-रस से परिपूर्ण हैं। उस आनन्द-रस से कुछ रस की बूँदें मेरे भी हृदय में छिड़ककर मुझे रस-सिक्त कर दीजिए। मैं आपकी शरण में आया हूँ॥१॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को परमेश्वर की आराधना करने की प्रेरणा दी गयी है।

**९८. प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽ ग्नये भरता बृहत्।**
**विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे॥२॥**

**पदार्थ** :-हे मनुष्यो! तुम ( **विपाम्** ) मेधावी छात्रों के ( **ज्योतींषि** ) विद्या-तेजों को ( **बिभ्रते** ) परिपुष्ट करने वाले, ( **वेधसे न** ) द्विज बनाने के लिए द्वितीय जन्म देने वाले आचार्य के लिए जैसे स्तुति-वचन उच्चारण किये जाते हैं, वैसे ही ( **विपाम्** ) व्याप्त सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र आदि के ( **ज्योतींषि** ) तेजों को ( **बिभ्रते** ) परिपुष्ट करने वाले ( **वेधसे** ) जगद्-विधाता, ( **होत्रे** ) सुख-समृद्धि-प्रदाता ( **अग्नये** ) तेजस्वी परमेश्वर के लिए ( **बृहत्** ) महान् ( **पूर्व्यम्** ) श्रेष्ठ ( **वचः** ) वेद के स्तोत्र को ( **प्र भरत** ) प्रकृष्ट रूप से उच्चारण करो॥२॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे कोई विद्वान् शिक्षक अपने उपदेश और शिक्षा से बुद्धिमान् विद्यार्थियों को विद्या-तेज प्रदान करता है, वैसे ही जो परमेश्वर सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र, बिजली आदिकों को ज्योति देता है, उस परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर में सबको श्रद्धा करनी चाहिए।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा विद्वान् और राजा से प्रार्थना की गयी है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**९९. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।**
३ १ २ ३ २ ३ १ २
**अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सहसः यहो**) बल के पुतले, बलियों में बली, (**जातवेदः**) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सब धन और ज्ञान के उत्पादक (**अग्ने**) ज्योतिर्मय **परमात्मन्!** अथवा, हे (**सहसः यहो**) शत्रुपराजयशील, बलवान् पिता के पुत्र, (**जातवेदः**) शास्त्रों के ज्ञाता (**अग्ने**) विद्वन् वा राजन्! (**गोमतः**) प्रशस्त गाय, पृथिवी, वेदवाणी आदि से युक्त (**वाजस्य**) ऐश्वर्य के (**ईशानः**) अधीश्वर आप (**अस्मे**) हमें (**महि**) महान् (**श्रवः**) कीर्ति, प्रशंसा और धन-धान्य आदि (**देहि**) प्रदान कीजिए।।३।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि जगदीश्वर की उपासना से पुरुषार्थी होकर अपने पुरुषार्थ से और सब शास्त्र पढ़े हुए विद्वानों तथा राजनीतिज्ञ राजा की सहायता से समस्त धन, धान्य, विद्या, साम्राज्य आदि ऐश्वर्य और अत्यन्त विस्तीर्ण यश को प्राप्त करें।।३।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

२ ३ १ २ ३२ ३ १ २ ३१ २
**१००. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज।**
१ २ ३ १ ३२ ३ २ ३ १ २
**होता मन्द्रो वि राजस्यति स्त्रिधः॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) ज्ञानप्रकाशयुक्त परमेश्वर अथवा

आचार्य! ( **यजिष्ठः** ) अतिशय रूप से जीवनयज्ञ वा अध्ययन-अध्यापन-रूप यज्ञ के साधक आप ( **अध्वरे** ) हिंसादिदोष से रहित जीवन-यज्ञ वा अध्ययन-अध्यापन-रूप यज्ञ में ( **देवयते** ) दिव्य गुण-कर्म-स्वभावों के अभिलाषी मुझे ( **देवान्** ) दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव ( **यज** ) प्राप्त कराइए। ( **होता** ) विद्या, सदाचार आदि के दाता, ( **मन्द्रः** ) आह्लादकारी आप ( **विराजसि** ) विशेष रूप से शोभित हो। आप ( **स्रिधः** ) हिंसकों को अर्थात् विद्या के विघातक आलस्य, मद, मोह आदि को तथा ब्रह्मचर्य के विघातक काम-क्रोध आदि को ( **अति** ) हम से दूर कर दीजिए।।४।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है, 'यजि, यज', 'देवा, देव' में छेकानुप्रास है।।४।।

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर उपासकों को दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव प्रदान करता है और पापों से उन्हें बचाता है, वैसे ही आचार्य शिष्यों को विद्या, सच्चरित्रता और दिव्य गुण-कर्म-स्वभावों की शिक्षा देकर ब्रह्मचर्य-विघातक तथा विद्या-विघातक दुर्व्यसनों से दूर रखे।।४।।

अगले मन्त्र का पवमान देवता है। उसकी कल्याणकारिता का वर्णन करते हैं।

**१०१. जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।**
**अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा॥५॥**

**पदार्थ** :—पवमान सोम अर्थात् चित्तशोधक परमात्मा ( **सप्त** ) सात ( **मातृभिः** ) माता के तुल्य गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदवाणियों द्वारा ( **जज्ञानः** ) उपासक के हृदय में प्रादुर्भूत होकर ( **श्रिये** ) सम्पदा की प्राप्ति के लिए ( **मेधाम्** ) धारणावती बुद्धि को ( **आ अशासत** ) प्रदान करता है, जिससे ( **ध्रुवः** ) स्थितप्रज्ञ हुआ ( **अयम्** ) यह उपासक ( **रयीणाम्** ) श्रेष्ठ अध्यात्म-सम्पत्तियों को ( **आ चिकेतत्** ) प्राप्त कर लेता है।।५।।

**भावार्थ** :—गायत्री आदि सात छन्दों में बद्ध वेदवाणियों के गान से परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त किये हुए योगी को

ऋतम्भरा प्रज्ञा के उत्पन्न हो जाने से सब अध्यात्मसम्पदाएँ प्राप्त हो जाती हैं॥५॥

अगले मन्त्र में अदिति देवता है, इसमें परमेश्वर का जगन्माता के रूप में वर्णन है।

**१०२. उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्।**
**सा शन्ताता मयस्करदप स्रिधः॥६॥**

**पदार्थ** :—(**उत**) और (**स्या**) वह (**मतिः**) सब कुछ जानने वाली (**अदितिः**) अखण्डनीय जगन्माता (**ऊत्या**) रक्षा के साथ (**नः**) हमारे समीप (**आ गमत्**) आये। (**सा**) वह (**शन्ताता**) शान्तिकर्म में (**मयः**) सुख (**करत्**) करे, और (**स्रिधः**) हिंसा-वृत्तियों तथा हिंसकों को (**अप**) दूर करे॥६॥

**भावार्थ** :—'हे शतकर्मन्! तू ही हमारा पिता है, तू ही हमारी माता है' (साम: ११७)—यहाँ **परमात्मा** को माता कहा **गया है। उसके माता होने का ही यहाँ 'अदिति' नाम से** वर्णन है। **जगन्माता अदिति** है **क्योंकि वह कभी** खण्डित नहीं होती तथा अदीन, **अजर, अमर और** नित्य रहती है। विलाप, लूटपाट, हाहाकार से पीड़ित इस जगत् में वह कृपा करके शान्तिप्रिय सज्जनों से किये जाते हुए शान्ति के प्रयत्नों को सफल करके सारे भूमण्डल में सुख की वर्षा करे और हिंसकों को भी अपनी शुभ प्रेरणा से धर्मात्मा बना दे॥६॥

अगले मन्त्र में भौतिक अग्नि के सादृश्य से परमात्मा का विषय वर्णित है।

**१०३. ईडिष्वा हि प्रतीव्यां३ यजस्व जातवेदसम्।**
**चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्॥७॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्य! तू (**प्रतीव्यम्**) प्रत्येक वस्तु में व्यापक, (**चरिष्णुधूमम्**) जिसका धुएँ के तुल्य शत्रु-प्रकम्पक प्रभाव संचरणशील है ऐसे, (**अगृभीतशोचिषम्**) अप्रतिरुद्ध तेज वाले (**जातवेदसम्**) सद्गुणरूप दिव्य धन को उत्पन्न करने वाले परमात्माग्नि की, (**ईडिष्व हि**) अवश्य ही स्तुति कर और

(यजस्व) उसकी पूजा कर।।७।।

श्लेष से भौतिक अग्नि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए।।७।।

**भावार्थ** :–जैसे धूमशिखाओं को उठाने वाले, चमकीली ज्वालाओं वाले भौतिक अग्नि का शिल्पीजन शिल्पयज्ञों में प्रयोग करते हैं, वैसे ही प्रतापरूप धूम से शोभित, दीप्त तेजों वाले, सत्य-अहिंसा-अस्तेय आदि दिव्य धनों के जनक परमात्माग्नि की, उत्कर्ष चाहने वाले मनुष्यों को स्तुति और पूजा करनी चाहिए।।७।।

परमात्माग्नि में हवि देने से क्या फल होता है, इसका अगले मन्त्र में वर्णन है।

**१०४. न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः।**
**यो अग्नये ददाश हव्यदातये॥८॥**

**पदार्थ** :–(**मायया च न**) छल से भी (**तस्य**) उस परमात्मोपासक को (**मर्त्यः**) मानव (**रिपुः**) शत्रु (**न ईशीत**) वश में नहीं कर सकता, (**यः**) जो उपासक (**हव्यदातये**) देय पराक्रम, विजय आदि को देने वाले (**अग्नये**) परमेश्वर के लिए (**ददाश**) आत्मसमर्पण रूप हवि को देता है।।८।।

**भावार्थ** :–तरह-तरह के विघ्न-बाधा और संकटों से घिरे हुए इस जगत् में अनेक मानव शत्रु विद्वेषरूप विष से लिप्त होकर सज्जनों को ठगने, लूटने, जलाने व मारने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु जो लोग परमात्मा को आत्मसमर्पण करके उससे शत्रु-पराजय के लिए बल की याचना करते हैं, उन्हें वह पुरुषार्थ में नियुक्त करके विजय पाने में ऐसा समर्थ कर देता है कि बलवान् और बड़ी संख्या वाले भी शत्रु माया से भी उन्हें वश में नहीं कर पाते।।८।।

अगले मन्त्र में रिपुओं को दूर करने की प्रार्थना की गयी है।

**१०५. अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्।**
**दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम्॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**सत्पते**) सज्जनों के पालनकर्ता (**अग्ने**) पराक्रमशाली परमात्मन्, विद्वान् जन अथवा राजन्! आप (**त्यम्**) उस (**वृजिनम्**) छोड़ने योग्य पाप को, (**रिपुम्**) कामक्रोधादि षड्रिपुवर्ग को, अथवा बाह्य शत्रु को, (**स्तेनम्**) चोर को, और (**दुर्-आध्यम्**) बुरा चिन्तन करनेवाले द्वेषी को (**दविष्ठम्**) दूर से दूर (**अप अस्य**) फेंक दीजिए॥९॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥९॥

**भावार्थ** :—पाप विचार या पापी जन, काम-क्रोध आदि आन्तरिक रिपु या बाह्य शत्रु, चोरी के विचार या चोर लोग, दुश्चिन्ताएँ या दुश्चिन्तनकारी मनुष्य, जो भी हम पर आक्रमण करते हैं, उन्हें हम परमात्मा, विद्वान् लोगों और राजा की सहायता से दूर कर दें। सद्विचार और सद्विचारशील लोग सहयोगी बनकर हमारे साथ विचरें॥९॥

**अगले मन्त्र में राक्षसों के विनाश की प्रार्थना की गयी है।**

**१०६. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।**
**नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह॥१०॥**

**पदार्थ** :—(**श्रुष्टी**) शीघ्र ही, हे (**वीर**) पराक्रमशाली, (**विश्पते**) प्रजापालक (**अग्ने**) तेजस्वी परमात्मन् वा राजन्! आप (**मे**) मेरे (**नवस्य**) प्रशंसायोग्य (**स्तोमस्य**) आन्तरिक सद्गुणों की सेना के तथा बाह्य योद्धाओं की सेना के (**तपसा**) तेज से (**मायिनः**) मायावी, छल-कपटपूर्ण (**रक्षसः**) राक्षसी भावों और राक्षसजनों को (**नि दह**) पूर्णतः भस्म कर दीजिए॥१०॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :—जो कोई पाप-रूप अथवा पापी-रूप मायावी राक्षस हमें सताते हैं, उन्हें हम अपनी शुभ मनोवृत्तियों से और बलवान् योद्धाओं से तथा परमात्मा और राजा की सहायता से पराजित करके आन्तरिक और बाह्य सुराज्य का उपभोग करें॥१०॥

इस दशति में अग्नि, पवमान और अदिति नामों से परमात्मा

का स्मरण होने से, परमात्मा से धन-कीर्ति आदि की याचना होने से तथा उससे शत्रुविनाश, राक्षसदाह आदि की प्रार्थना होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।।

## द्वादशी दशतिः

ऋषिः—१ प्रयोगो भार्गवः; २, ३, ५–७ सौभरिः; ४ प्रयोगो भार्गवः; सौभरिः काण्वो वा; ८ विश्वमनाः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—ककुबुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को परमेश्वर का गुणगान करने की प्रेरणा दी गयी है।।

**१०७. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।**
**उपस्तुतासो अग्नये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**उपस्तुतासः**) प्रशंसा-प्राप्त मनुष्यो! तुम (**मंहिष्ठाय**) सबसे बढ़कर दानी, (**ऋताव्ने**) सत्य नियमों वाले, (**बृहते**) महान्, (**शुक्रशोचिषे**) उज्ज्वल और पवित्र तेज वाले (**अग्नये**) परमेश्वर के लिए (**प्र गायत**) भली भाँति स्तुति-गीत गाओ।।१।।

भावार्थ :—प्रशंसित जनों को चाहिए कि वे परमेश्वर की उपासना कर, उसके समान दान, सत्य, तेजस्विता, पवित्रता आदि गुणों को धारण कर यशस्वी हों।।१।।

अगले मन्त्र में इसका वर्णन है कि परमात्मा की मैत्री से क्या लाभ होता है।

**१०८. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः।**
**यस्य त्वं सख्यमाविथ॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) प्रकाशमय, प्रकाशदाता परमात्मन्! (**सः**) वह मनुष्य (**सुवीराभिः**) उत्कृष्ट वीर भावों वा वीर पुत्रों को प्राप्त कराने वाली, (**वाजकर्मभिः**) बल एवं उत्साह

को उत्पन्न करने वाली (**तव**) आपकी (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के द्वारा (**प्र तरति**) भलीभाँति विघ्नों को या भव-सागर को पार कर जाता है, (**यस्य**) जिस मनुष्य की (**त्वम्**) आप (**सख्यम्**) मैत्री को (**आविथ**) प्राप्त हो जाते हो॥२॥

**भावार्थ** :–परमात्मा जिसका सखा हो जाता है उस पुरुषार्थी को काम, क्रोध आदि वा ठग, लुटेरा, चोर आदि कोई भी शत्रु पीड़ित नहीं कर सकता॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की अर्चना के लिए प्रेरणा की गयी है।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१०९. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।**
३ २ ३ १ २
**देवत्रा हव्यमूहिषे॥३॥**

**पदार्थ** :–हे मनुष्य! तू (**तम्**) उस प्रसिद्ध, (**स्वर्णरम्**) मोक्ष के **आनन्द को प्राप्त कराने वाले परमात्मारूप** अग्नि को (**गूर्धय**) आराधना कर, जिस (**देवम्**) तेज से देदीप्यमान तथा तेज से प्रदीप्त करने वाले, (**अरतिम्**) सर्वान्तर्यामी, पुरुषार्थ में प्रेरित करने वाले, पाप आदि के संहारक परमात्मा-रूप अग्नि को (**देवासः**) विद्वान् लोग (**दधन्विरे**) अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं। अब परमात्माग्नि को सम्बोधन करते हैं–हे परमात्माग्ने! आप (**देवत्रा**) विद्वानों में (**हव्यम्**) दातव्य बल को (**ऊहिषे**) प्राप्त कराते हो॥३॥

**भावार्थ** :–मनीषी लोग जिस देवाधिदेव, जगत् की रचना करने हारे जगदीश्वर की आराधना करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि के सुख को प्राप्त करते हैं, उसकी सभी जन उपासना क्यों न करें?॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की पूजा और अतिथि के सत्कार का विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २३ १ २ ३ २ ३ २
**११०. मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः।**
२ ३ १ २ ३ २
**यः सुहोता स्वध्वरः॥४॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे भाई! तू (**नः**) हम सबके (**अतिथिम्**) अतिथिरूप, अतिथि के समान पूज्य अग्नि नामक परमात्मा को (**मा हृणीथाः**) उपेक्षा या वेदविरुद्ध आचरण से क्रुद्ध मत कर। (**एषः**) यह (**वसुः**) निवासक, (**अग्निः**) तेजस्वी, अग्रनायक परमात्मा (**पुरुप्रशस्तः**) बहुतों से स्तुति किया गया है, (**यः**) जो (**सुहोता**) उत्तम दाता, और (**स्वध्वरः**) शुभ रूप से हमारे जीवन-यज्ञ का संचालक है।।

(**द्वितीय**)–अतिथि के पक्ष में। हे गृहिणी! तू (**नः**) हमारे (**अतिथिम्**) अतिथिरूप आचार्य, उपदेशक, संन्यासी आदि को (**मा हृणीथाः**) यथायोग्य सत्कार न करके रुष्ट मत कर। (**एषः**) यह (**अग्निः**) धर्म, विद्या आदि के प्रकाश से प्रकाशित अतिथि (**वसुः**) गृहस्थों का निवास-दाता, और (**पुरुप्रशस्तः**) अतिथि-सत्कार को यज्ञ घोषित करने वाले बहुत से वेदादि शास्त्रों से प्रशंसित है, (**यः**) जो विद्वान् अतिथि (**सुहोता**) सदुपदेष्टा, और (**स्वध्वरः**) श्रेष्ठ विद्याप्रचार रूप यज्ञ वाला है।।४।।

इस मन्त्र में **श्लेषालंकार** है।।४।।

**भावार्थ** :–जैसे उत्तम प्रकार पूजा किया गया परमेश्वर पूजा करनेवाले को सद्गुण आदि की सम्पत्ति देकर उसका कल्याण करता है, वैसे ही भलीभाँति सत्कार किया गया अतिथि आशीर्वाद, सदुपदेश आदि देकर गृहस्थ का उपकार करता है। इसलिए परमेश्वर की उपासना में और अतिथि के सत्कार में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए।।४।।

अगले मन्त्र में भद्र की आकांक्षा की गयी है।

**१११. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो**
**अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः॥५॥**

**पदार्थ** :–(**आहुतः अग्निः**) जिसमें सुगन्धित, मधुर, पुष्टिवर्धक तथा आरोग्यवर्धक हवियों की आहुति दी गयी है ऐसा यज्ञाग्नि, सत्कार किया गया अतिथि और जिसमें उपासक द्वारा आत्मसमर्पण की आहुति दी गयी है ऐसा परमात्मा (**नः**) हमारे लिए (**भद्रः**) भद्र को देने वाला हो। (**रातिः**) हमारे

द्वारा दिया गया दान (**भद्रा**) भद्र अथवा भद्र को देने वाला हो। हे (**सुभग**) सौभाग्यशाली मेरे अन्तरात्मन्! तुझसे किया गया (**अध्वरः**) यज्ञ (**भद्रः**) भद्र अथवा भद्रजनक हो। (**उत**) और (**प्रशस्तयः**) तुझसे अर्जित प्रशस्तियाँ वा कीर्तियाँ भी (**भद्राः**) भद्र अथवा भद्रजनक हों॥५॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को अग्निहोत्रादिरूप, अतिथि सत्काररूप और परमात्मा की पूजारूप यज्ञ नित्य करना चाहिए, जिससे उन्हें भद्र प्राप्त हो और उनकी उज्ज्वल कीर्तियाँ सर्वत्र फैलें॥५॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा को वरने का विषय है।

**११२. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्।**
**अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे अग्रणी परब्रह्म परमात्मन्! (**यजिष्ठम्**) अतिशयरूप से सृष्टियज्ञ के विधाता, सुख-ऐश्वर्य आदि के दाता, सूर्य-पृथिवी आदि का परस्पर संगम कराने वाले, (**देवत्रा देवम्**) प्रकाशक सूर्य, बिजली, चन्द्रमा आदि तथा चक्षु, श्रोत्र, मन आदि में सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक (**होतारम्**) मोक्षसुख के प्रदाता, (**अमर्त्यम्**) अमरणशील, (**अस्य यज्ञस्य**) इस मेरे ध्यान-यज्ञ के (**सुक्रतुम्**) सुसंचालक, सफलताप्रदायक (**त्वा**) आपको, हम (**ववृमहे**) उपास्य रूप से वरण करते हैं॥

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे अग्रगन्ता वीर पुरुष! (**यजिष्ठम्**) अतिशय परोपकार-यज्ञ करने वाले, (**देवत्रा देवम्**) दिव्यगुणयुक्त मनुष्यों में विशेपरूप से दिव्य गुणों वाले, (**होतारम्**) प्रजाओं को सुख देने वाले, (**अमर्त्यम्**) अमर कीर्ति वाले, (**अस्य यज्ञस्य**) इस राष्ट्रयज्ञ के (**सुक्रतुम्**) सुकर्ता (**त्वा**) तुझे, हम प्रजाजन (**ववृमहे**) राजा के पद के लिए चुनते हैं॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। 'देवं, देव' में छेकानुप्रास

है।।६।।

**भावार्थ** :—जैसे प्रजाजनों को दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले परमेश्वर का उपास्य रूप में वरण करना चाहिए, वैसे ही वीर, परोपकारी, श्लाघ्य गुणों वाले, सुखप्रदाता, कीर्तिमान्, सुशासक, शत्रुविजेता पुरुष को राजा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए चुनना चाहिए।।६।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से तेज की प्रार्थना की गयी है।

**११३. तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासाहा सदने कं चिदत्रिणम्।**
**मन्युं जनस्य दूढ्यम् ॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) तेजस्वी परमात्मन्! आप (**तत्**) वह (**द्युम्नम्**) तेज (**आभर**) हमें प्रदान कीजिए, (**यत्**) जो (**सदने**) हृदय-सदन और राष्ट्र-सदन में (**कंचित्**) जिस किसी भी (**अत्रिणम्**) भक्षक पाप-रूप अथवा पापीरूप राक्षस को और (**जनस्य**) मनुष्य के (**दूढ्यम्**) दुर्बुद्धिकारी (**मन्युम्**) क्रोध को (**सासाह**) नष्ट कर दे।।७।।

**भावार्थ** :—मनुष्य के हृदय-सदन को बहुत से पाप-रूप राक्षस और राष्ट्र-सदन को भ्रष्टाचार में संलग्न पापी-रूप राक्षस आक्रान्त करके बिगाड़ना चाहते हैं। क्रोध भी मनुष्य का और राष्ट्र का महान् शत्रु है, जिससे ग्रस्त हुए प्रजाजन और राज्य के अधिकारी सहृदयता को छोड़कर नरपिशाच हो जाते हैं। परमेश्वर की प्रेरणा से मनुष्यों को ऐसा तेज धारण करना चाहिए, जिससे वे सभी पाप-विचारों को, पापी लोगों को और क्रोध के नग्न ताण्डव को खण्डित करके अपने हृदय को, जन-हृदय को और राष्ट्र-हृदय को पवित्र करें।।७।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि यज्ञाग्नि, अतिथि, आचार्य, राजा और परमात्मा मनुष्यों का क्या उपकार करते हैं।

**११४. यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।**
**विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥**

**पदार्थ** :–( **यत् वै उ** ) जब ( **विश्पतिः** ) प्रजापालक ( **अग्निः** ) यज्ञाग्नि, अतिथि, आचार्य, राजा वा परमात्मा ( **शितः** ) हवि देने से तीक्ष्ण, भलीभाँति उद्बोधित वा उत्साहित होकर ( **मनुषः** ) सत्कार करने वाले मनुष्य के ( **विशे** ) यज्ञगृह, स्व-गृह, गुरुकुल-रूप गृह, राष्ट्र-गृह वा हृदय-गृह में ( **सुप्रीतः** ) भलीभाँति तृप्त हो जाता है, तब ( **विश्वा इत्** ) सभी ( **रक्षांसि** ) अविद्या, रोग, दुराचार, दुर्गुण आदि राक्षसों तथा शत्रुओं को ( **प्रतिसेधति** ) दूर कर देता है॥८॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालङ्कार है।

**भावार्थ** :–जैसे घृत आदि की आहुति देने से तीक्ष्ण तथा सुतृप्त हुई यज्ञाग्नि रोगरूप राक्षसों को विनष्ट करती है, अथवा जैसे घर में सत्कार से प्रसन्न किया गया विद्वान् अतिथि गृहस्थ के सब अविद्या आदि राक्षसों का विनाश करता है, अथवा जैसे शिष्यों की शुश्रूषा तथा उनके व्रतपालन से वश में किया गया आचार्य उनके सब दोषों को दूर करता है, अथवा जैसे प्रजाजनों से उत्साहित तथा कर आदि के प्रदान से सन्तुष्ट किया गया राजा उनके संकटों को हटाता है, वैसे ही समर्पणरूप हवि देकर उपासना किया गया तथा सुप्रसन्न किया गया परमात्मा उपासकों के सब विघ्नों को और काम, क्रोध आदि राक्षसों को समूल नष्ट कर देता है॥८॥

इस दशति में परमात्मा की मित्रता का फल प्रतिपादन करते हुए उसकी स्तुति की प्रेरणा होने से, उससे तेज आदि की प्रार्थना होने से, उसके द्वारा राक्षसों के निवारण आदि का वर्णन होने से और अग्नि नाम से यज्ञाग्नि, अतिथि, आचार्य, राजा आदि के चरित का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

**इति प्रथमोऽध्यायः॥**

**इति सामवेदसंहितायामाग्नेयं काण्डम्॥**

# अथ एन्द्रं काण्डम्

## अथ द्वितीयोऽध्यायः

### प्रथमा दशतिः

ऋषिः—१ शंयुर्बार्हस्पत्यः; २, ४, ५ श्रुतकक्षः; ३ हर्यतः प्रगाथः; ६ इन्द्रमातरो देवजामयः; ७, ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ; ९, १० मेधातिथिराङ्गिरसः प्रियमेधः काण्वश्च॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर के प्रति स्तोत्र-गान के लिए मनुष्यों को प्रेरित किया गया है।

**११५. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।**
**शं यद्गवे न शाकिने॥१॥**

**पदार्थ** :—हे उपासको! (**वः**) तुम (**सुते**) श्रद्धा-रूप सोमरस के अभिषुत होने पर (**सचा**) साथ मिलकर (**पुरुहूताय**) बहुत या बहुतों से स्तुति किये गये (**सत्वने**) बलशाली इन्द्र परमात्मा के लिए (**तत्**) वह स्तोत्र (**गाय**) गान करो, (**यत्**) जो (**शाकिने**) शाक अर्थात् घास-चारे से युक्त (**गवे न**) बैल के समान (**शाकिने**) शक्तिशाली (**गवे**) स्तोता के लिए (**शम्**) सुख-शान्ति को देने वाला हो। आशय यह है कि जैसे बैल के लिए घास-चारा सुखकर होता है, वैसे वह स्तोत्र स्तोता के लिए सुखकर हो॥१॥

इस मन्त्र में 'गवे न शाकिने' में श्लिष्टोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—स्तुति करने से परमात्मा को कुछ उपलब्धि नहीं होती, प्रत्युत स्तुतिकर्ता को ही आत्मा में सुख, शान्ति और बल प्राप्त होता है॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा से याचना की गयी है।

**११६. यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः।**
**तेन नूनं मदे मदेः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे **( शतक्रतो )** बहुत प्रज्ञाओं, कर्मों, यज्ञों और संकल्पों वाले **( इन्द्र )** परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! **( यः )** जो **( ते )** आपका **( नूनम् )** निश्चय ही **( द्युम्नितमः )** सबसे अधिक यशोमय **( मदः )** आनन्द है, **( तेन )** उससे **( नूनम् )** आज हमें भी **( मदे )** आनन्द में **( मदेः )** मग्न कर दीजिए।।२।।

**भावार्थ** :—परमात्मा का आनन्द-रस जिन्होंने चख लिया है, वे उस रस की कीर्ति को गाते नहीं थकते। 'वह रसरूप है' यह तत्त्ववेत्ताओं का अनुभव है। सबको चाहिए कि उसके रस को प्राप्त कर अपने आपको धन्य करें।।२।।

अगले मन्त्र में स्तोताओं को प्रेरणा दी जा रही है।

**११७. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।**
**उभा कर्णा हिरण्यया॥३॥**

**पदार्थ** :—हे **( गावः )** स्तोताओ! तुम **( अवटे )** रसों के कूप-तुल्य परमेश्वर के विषय में **( उप वद )** महिमा-गान करो। **( मही )** महान् धरती-आकाश **( यज्ञस्य )** उस पूजनीय परमेश्वर के **( रप्सुदा )** स्वरूप को प्रकाशित करने वाले हैं। **( उभा )** दोनों **( हिरण्यया )** सुनहरे सूर्य और चन्द्रमा, जिन धरती-आकाश के **( कर्णा )** कर्ण-कुण्डलों के समान हैं।।३।।

इस मन्त्र में 'सुनहरे सूर्य-चन्द्र मानो कर्ण-कुण्डल हैं' इस कथन में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षालंकार है। कर्ण-कुण्डलों के अर्थ में 'कर्णों' के प्रयोग में लक्षणा है। इन्द्र में अवट ( कूप ) का आरोप होने से रूपक है।।३।।

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर दया, वीरता, आनन्द आदि रसों के कूप के समान है, उसकी सब मनुष्यों को अपनी वाणियों से महिमा अवश्य गान करनी चाहिए। यद्यपि वह निराकार तथा गोरे, काले, हरे, पीले आदि रूपों से रहित है, तो भी

उसके भक्तजन धरती–आकाश के अनेकविध चित्र-विचित्र पदार्थों में उसी के रूप को देखते हैं और उसी की चमक से यह सब–कुछ चमक रहा है, यह बुद्धि करते हैं। इसीलिए धरती–आकाश को उसके स्वरूप–प्रकाशक कहा गया है॥३॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को प्रेरणा की गयी है।

**११८. अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे।**
**अरमिन्द्रस्य धाम्ने॥४॥**

**पदार्थ** :–हे (**श्रुतकक्ष**) वेद को अपनी बगल में या मनरूप कोठे में रखने वाले वेदानुगामी मनुष्य! तू और तेरे सखा मिलकर (**अरम्**) पर्याप्तरूप से (**अश्वाय**) घोड़े, वायु, विद्युत्, अग्नि, बादल, प्राण आदि के लिए (**गायत**) वाणी को प्रेरित करो अर्थात् इनके गुण–कर्मों का वर्णन करो। (**अरम्**) पर्याप्त रूप से (**गवे**) गाय, बैल, द्युलोक, सूर्य, भूमि, चन्द्रमा, जीवात्मा, वाणी, इन्द्रियों आदि के लिए (**गायत**) वाणी को प्रेरित करो अर्थात् इनके गुण–कर्मों का वर्णन करो। (**अरम्**) पर्याप्त रूप से (**इन्द्रस्य**) परमेश्वर के (**धाम्ने**) तेज के लिए (**गायत**) वाणी को प्रेरित करो अर्थात् उसके महत्त्व का वर्णन करो॥४॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर की सृष्टि में उसके रचे हुए जो विविध पदार्थ हैं उनका और परमेश्वर के तेज का ज्ञान तथा महत्त्व का वर्णन सबको करना चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में स्तोता लोग और प्रजाजन कह रहे हैं।

**११९. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।**
**स वृषा वृषभो भुवत्॥५॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**महे**) विशाल, (**वृत्राय**) सूर्यप्रकाश और जलवृष्टि को रोकने वाले मेघ के समान धर्म के बाधक पाप को (**हन्तवे**) नष्ट करने के लिए (**तम्**) उस प्रसिद्ध (**इन्द्रम्**) महापराक्रमी परमात्मा को हम

( **वाजयामसि** ) पूजा करते हैं ( **वृषा** ) वर्षक ( **सः** ) वह परमेश्वर ( **वृषभः** ) धर्म की वर्षा करने वाला ( **भुवत्** ) होवे॥

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। ( **महे वृत्राय** ) महान् शत्रु को ( **हन्तवे** ) मारने के लिए, हम ( **तम्** ) प्रजा से निर्वाचित उस ( **इन्द्रम्** ) अत्यन्त वीर राजा को ( **वाजयामसि** ) सहायता-प्रदान द्वारा बलवान् बनाते हैं, अथवा उत्साहित करते हैं। ( **वृषा** ) मेघतुल्य ( **सः** ) वह राजा ( **वृषभः** ) शत्रुओं के ऊपर आग्नेयास्त्रों की और प्रजा के ऊपर सुखों की वर्षा करने वाला ( **भुवत्** ) होवे॥५॥

इस मन्त्र में 'वृषा, वृष' में छेकानुप्रास अलङ्कार है। 'वृषा-वृषभः' दोनों शब्द बैल के वाचक होने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार भी है, यौगिक अर्थ करने से प्रतीयमान पुनरुक्ति का समाधान हो जाता है॥५॥

**भावार्थ** :—अनावृष्टि के दिनों में बादल जैसे सूर्य के प्रकाश को और जल को नीचे आने से रोककर भूमि पर अन्धकार और अवर्षण उत्पन्न कर देते हैं, वैसे ही पापविचार और पापकर्म भूमण्डल में प्रसार प्राप्त कर सत्य के प्रकाश को और धर्मरूप स्वच्छ जल को रोककर असत्य का अन्धकार और अधर्मरूप अवर्षण उत्पन्न कर देते हैं। इन्द्र नामक परमेश्वर जैसे मेघरूप वृत्र को मारकर सूर्य के प्रकाश को तथा वर्षा जल को निर्बाधगति से भूमि के प्रति प्रवाहित करता है, वैसे ही वह पापरूप वृत्र का विनाश कर संसार में सत्य के प्रकाश को और धर्म की वर्षा को मुक्त हस्त से प्रवाहित करे, जिससे सब भूमण्डल-निवासी लोग सत्य-ज्ञान और सत्य-आचरण में तत्पर तथा धार्मिक होकर अत्यन्त सुखी हों। इसी प्रकार राष्ट्र में राजा का भी कर्त्तव्य है कि वह दुष्ट शत्रुओं को विनष्ट कर सुख उत्पन्न करे॥५॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर और राजा की महिमा का वर्णन है।

**१२०. त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः।**
**त्वं सन्वृषन्वृषेदसि॥६॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) परमवीर परमैश्वर्यवन् परमात्मन् और

राजन्! (त्वम्) आप (बलात्) अत्याचारियों के वध और सज्जन लोगों के धारण आदि के हेतु बल के कारण, (सहसः) मनोबलरूप साहस के कारण, और (ओजसः) आत्मबल के कारण (अधिजातः) प्रख्यात हो। (सन्) श्रेष्ठ (त्वम्) आप, हे (वृषन्) सुखों के वर्षक! (वृषा इत्) वृष्टिकर्ता मेघ ही (असि) हो॥६॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालङ्कार है। इन्द्र में वर्षक मेघ का आरोप होने से रूपक है। 'वृष-वृषे' में छेकानुप्रास है॥६॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर और राजा के राक्षसवधादिरूप और पृथिवी, सूर्य आदि लोकों के तथा राष्ट्र के धारणरूप बहुत से बल के कार्य प्रसिद्ध हैं। उनका मनोबल और आत्मबल भी अनुपम है। उनका वृषा (बादल) नाम सार्थक है, क्योंकि वे बादल के समान सबके ऊपर सुख की वर्षा करते हैं। ऐसे अत्यन्त महिमाशाली परमेश्वर और राजा का हमें दिन-रात अभिनन्दन करना चाहिए॥६॥

अगले मन्त्र में, यज्ञ से ही परमेश्वर की महिमा सर्वत्र फैली हुई है, इस विषय का वर्णन करते हैं।

**१२१. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्।**
**चक्राण ओपशं दिवि॥७॥**

**पदार्थ** :–(**यज्ञः**) परोपकार के लिए किये जाने वाले महान् कर्म ने (**इन्द्रम्**) परमात्मा को अर्थात् उसकी महिमा को (**अवर्धयत्**) बढ़ाया हुआ है। परमात्मा के यज्ञ कर्म का एक दृष्टान्त यह है (**यत्**) कि (**दिवि**) द्युलोक में (**ओपशम्**) सूर्यरूप मुकुट को (**चक्राणः**) रचने वाला वह परमात्मा (**भूमिम्**) भूमि को (**व्यवर्तयत्**) सूर्य के चारों ओर घुमा रहा है॥७॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर यज्ञ का आदर्शरूप है। उससे किये जाते हुए यज्ञ का ही यह उदाहरण है कि वह द्युलोक में महान् मुकुटमणि सूर्य को संस्थापित करके उसके चारों ओर भूमि को अण्डाकार मार्ग से चक्ररूप में घुमा रहा है, जिससे

छहों ऋतुओं का चक्र चलता है।।७।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि यदि मैं परमेश्वर के समान धनपति हो जाऊँ तो क्या करूँ।

१ २ ३२उ ३ १ २र ३ २ ३ २ ३
**१२२. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।**
३ २ ३ १ २
**स्तोता मे गोसखा स्यात्॥८॥**

**पदार्थ** :–(**यत्**) यदि (**इन्द्र**) हे परमेश्वर! (**अहम्**) आपका उपासक मैं (**यथा त्वम्**) जैसे आप हैं वैसे (**विस्वः**) विद्याधन या भौतिकधन का (**एकः इत्**) एकमात्र (**ईशीय**) स्वामी हो जाऊँ, तो (**मे**) मेरा (**स्तोता**) प्रशंसक, शिष्य या सेवक (**गोसखा**) वेदवाणियों का पण्डित अथवा गाय आदि धन का धनी (**स्यात्**) हो जाए।।८।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर सम्पूर्ण विद्याधन का और भौतिक धन का एकमात्र परम अधीश्वर है, और उसने अपने विद्याधन को वेदरूप में तथा भौतिक धन को सोने, चाँदी, सूर्य, वायु, जल, फल, मूल आदि के रूप में हमें दिया है। वैसे ही मैं भी यदि परमेश्वर की कृपा से विद्यादि धन का और भौतिक धन का अधिपति हो जाऊँ, तो मैं भी अपने प्रशंसक शिष्यों को विद्यादान देकर वेदादि श्रेष्ठ शास्त्रों में पण्डित और सेवकों को धन देकर गाय आदि ऐश्वर्यों से भरपूर, अत्यन्त धनी कर दूँ।।८।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि कैसा भक्तिरस परमात्मा को अर्पित करना चाहिए।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१२३. पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय।**
१ २ ३ २ ३ १ २
**सोमं वीराय शूराय॥९॥**

**पदार्थ** :–हे (**सोतारः**) भक्तिरूप सोम-रस को अभिषुत करने वाले उपासको! तुम (**मद्याय**) तृप्ति प्रदान किये जाने योग्य, (**वीराय**) विशेष रूप से सद्गुणों के प्रेरक, (**शूराय**) शूर परमात्मा के लिए (**पन्यं पन्यम् इत्**) प्रशंसनीय-प्रशंसनीय ही (**सोमम्**) श्रद्धा-रस को (**आ धावत**) समर्पित करो।।९।।

इस मन्त्र में 'पन्यं, पन्य' तथा 'राय, राय' में छेकानुप्रास

और 'वीराय, शूराय' में पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। य की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है॥९॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर प्रशंसनीय, हृदय को मोह लेने वाले श्रद्धा-रस को प्राप्त कर स्तोता के हृदय में सद्गुणों को प्रेरित करता है और अपनी शूरता से उसके दुर्गुणों का संहार करता है॥९॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि हम विद्वान् अतिथि और परमात्मा का उपहार से सत्कार करते हैं।

३ १ २ ३२उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१२४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।**

१ २ ३ १ २
**अनाभयिन् ररिमा ते॥१०॥**

**पदार्थ** :–हे (**वसो**) सद्गुणों के निवासक अतिथि अथवा परमात्मन्! आप (**इदम्**) इस हमारे द्वारा समर्पित किये जाते हुए (**सुतम्**) तैयार (**अन्धः**) अन्न या भक्तिरस को (**सूपूर्णम् उदरम्**) खूब पेट भरकर (**पिब**) पीजिए। हे (**अनाभयिन्**) निर्भीक! हम (**ते**) आपको (**ररिम्**) अर्पित कर रहे हैं॥१०॥

**भावार्थ** :–जैसे कोई विद्वान् अतिथि हमसे दिये जाते हुए अन्न, रस, घी, दूध आदि को पेट भरकर पीता है, वैसे ही हे परमात्मन्! आप हमारे द्वारा श्रद्धापूर्वक निवेदित किये जाते हुए भक्तिरस को छककर पीजिए। यहाँ निराकार एवं मुख-पेट आदि से रहित भी परमेश्वर के विषय में 'पेट भरकर पीजिए' यह कथन आलङ्कारिक है॥१०॥

इस दशति में परमात्मा के स्तुतिगान के लिए प्रेरणा, उससे सुख की प्रार्थना और उसकी महिमा का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय से संगति है, यह जानना चाहिए॥१०॥

## द्वितीया दशतिः

ऋषिः–१, २ सुकक्षश्रुतकक्षौ; ३ भरद्वाजः; ४ श्रुतकक्षः; ५, ६ मधुच्छन्दाः; ७, ९, १० त्रिशोकः; ८ वसिष्ठः। देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मारूप सूर्य किसके प्रति उदित होता है।

**१२५. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्।**
**अस्तारमेषि सूर्य॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सूर्य**) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान और प्रकाशकर्ता, चराचर के अन्तर्यामी, सद्बुद्धि के प्रेरक, तमोगुण को प्रकम्पित करने वाले परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**घ**) निश्चय ही (**श्रुतामघम्**) वेदादिशास्त्रों का ज्ञान ही जिसका धन है ऐसे, (**वृषभम्**) विद्या, धन आदि की वर्षा करने वाले, (**नर्यापसम्**) जनहित के कर्मों में संलग्न, (**अस्तारम्**) सब विघ्नबाधाओं को प्रक्षिप्त कर देने वाले मनुष्य को ही (**अभि**) लक्ष्य करके (**उद् एषि**) उदित होते हो, अर्थात् उसके हृदय में प्रकट होते हो॥१॥

**भावार्थ** :—भौतिक सूर्य तो विद्वान्-अविद्वान्, दाता-कृपण, परोपकारी-स्वार्थी, जीते-हारे सबके प्रति उदित होता है। परन्तु परमात्मा-रूप सूर्य उन्हीं के हृदय में प्रकाशित होता है जो वेदादि श्रेष्ठ शास्त्रों के श्रवण को ही धन मानते हैं, जो अपने उपार्जित विद्यादि वैभव को और भौतिक धन को बादल के समान सब जगह बरसाते हैं, जिनके कर्म जन-कल्याणकारी होते हैं और जो बड़े से बड़े शत्रु को और बड़ी से बड़ी बाधा को अपने बल से परास्त कर देने का साहस रखते हैं॥१॥

कौन परमात्मा के वश में होता है, यह कहते हैं।

**१२६. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य।**
**सर्वं तदिन्द्र ते वशे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वृत्रहन्**) अविद्या, पाप, दुराचार आदि, जो धर्म की गति को रोकने वाले हैं, उनके विनाशक, (**सूर्य**) प्रकाशमय, प्रकाशदाता (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! (**अद्य**) आज, आप (**यत् कत् च**) जिस किसी भी मनुष्य को अथवा जिस किसी भी मेरे मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि को (**अभि**) लक्ष्य करके (**उदगाः**) उदित होते हो, (**सर्वं तत्**)

वे सभी मनुष्य अथवा वे सभी मन, बुद्धि आदि (ते) आपके (**वशे**) वश में हो जाते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे भौतिक सूर्य जिन किन्हीं भी पदार्थों के प्रति उदित होता है, वे सभी पदार्थ उसके प्रकाश से परिप्लुत हो जाते हैं, वैसे ही परमात्मारूप सूर्य जिसके अन्त:करण में उदय को प्राप्त होता है वह उसके दिव्य प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसके वश में हो जाता है॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर, विद्युत् और राजा के सख्य की प्रार्थना की गयी है।

**१२७. य आनयत् परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम्।**
**इन्द्रः स नो युवा सखा॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। (**यः**) जो (**परावतः**) दूर से भी (**यदुम्**) यत्नशील मनुष्य को (**सुनीती**) उत्तम नीति की शिक्षा देकर (**तुर्वशम्**) अपने समीप (**आनयत्**) ले आता है, (**सः**) वह (**युवा**) सदा युवा की तरह सशक्त रहने वाला (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**नः**) हमारा (**सखा**) सहायक मित्र होवे॥३॥

(**द्वितीय**) विद्युत् के पक्ष में। (**यः**) जो विमानादियानों में प्रयोग किया गया विद्युत् (**यदुम्**) पुरुषार्थी मनुष्य को (**परावतः**) अत्यन्त दूर देश से भी (**तुर्वशम्**) मनोवाञ्छित वेग से (**सुनीती**) उत्तम यात्रा के साथ अर्थात् कुछ भी यात्रा-कष्ट न होने देकर (**आनयत्**) देशान्तर में पहुँचा देता है (**सः**) वह प्रसिद्ध (**युवा**) यन्त्रों में प्रयुक्त होकर पदार्थों के संयोजन या वियोजन की क्रिया द्वारा विभिन्न पदार्थों के रचने में साधनभूत (**इन्द्रः**) विद्युत् (**नः**) हमारा (**सखा**) सखा के समान कार्यसाधक होवे॥

(**तृतीय**) राजा के पक्ष में। (**यः**) जो राजा (**परावतः**) अधममार्ग से हटाकर (**यदुम्**) प्रयत्नशील, उद्योगी, (**तुर्वशम्**) हिंसकों को वश में करने वाले मनुष्य को (**सुनीती**) उत्तम धर्ममार्ग पर (**आनयत्**) ले आता है, (**सः**) वह (**युवा**)

शरीर, मन और आत्मा से युवक (इन्द्रः) अधर्मादि का विदारक राजा (नः) हम प्रजाओं का (सखा) मित्र होवे॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे विमानादि यानों में प्रयुक्त विद्युद्रूप अग्नि सुदूर प्रदेश से भी विमान चालकों की इच्छानुकूल गति से लोगों को देशान्तर में पहुँचा देता है, अथवा जैसे कोई सुयोग्य राजा अधर्ममार्ग पर दूर तक गये हुए लोगों को उससे हटाकर धर्ममार्ग में प्रवृत्त करता है, वैसे ही परमेश्वर उन्नति के लिए प्रयत्न करते हुए भी कभी कुसंग में पड़कर सन्मार्ग से दूर गये हुए मनुष्य को कृपा कर अपने समीप लाकर धार्मिक बना देता है॥३॥

इस मन्त्र की व्याख्या में विवरणकार ने लिखा है कि तुर्वश और यदु नाम के कोई राजपुत्र थे। इसी प्रकार भरतस्वामी और सायण का कथन है कि **तुर्वश और यदु नामक दो राजा थे, जिन्हें शत्रुओं ने दूर ले जाकर छोड़ दिया था। उन्हें इन्द्र उत्तम नीति से दूर देश से ले आया था यह उन सबका अभिप्राय है। यह सब प्रलापमात्र है, क्योंकि** वेद सृष्टि के आदि में परब्रह्म परमेश्वर से प्रादुर्भूत हुए थे, अतः उनमें परवर्त्ती किन्हीं राजा आदि का इतिहास नहीं हो सकता। साथ ही वैदिक कोष निघण्टु में 'तुर्वश' मनुष्यवाची तथा समीपवाची शब्दों में पठित है, और 'यदु' भी मनुष्यवाची शब्दों में पठित है, इस कारण भी इन्हें ऐतिहासिक राजा मानना उचित नहीं है॥३॥

अगले मन्त्र में यह प्रार्थना है कि इन्द्र की मैत्री प्राप्त कर हम आक्रान्ता शत्रुओं पर विजय पा लें।

**१२८. मा न इन्द्राभ्याऽऽदिशः सूरो अक्तुष्वा यमत्।**
**त्वा युजा वनेम तत्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमवीर परमात्मन् अथवा राजन्! (**आदिशः**) किसी भी दिशा से (**सूरः**) अवसर देखकर चुपके से आ जाने वाला काम-क्रोधादि राक्षसगण या चोर आदि का समूह (**अक्तुषु**) अज्ञान-रात्रियों में अथवा अँधेरी रातों में (**नः**) हमें (**मा**) मत (**अभि आ यमत्**) आक्रान्त करे। यदि आक्रान्त

करें तो (त्वा) आप (युजा) सहायक के द्वारा हम (तत्) उस कामादि राक्षसगण को अथवा चोरों के गिरोह को (वनेम) विनष्ट कर दें, समूल उन्मूलन करने में समर्थ हों॥४॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—इस संसार में अज्ञानान्धकार में अथवा अँधियारी रात में पड़े हुए हम लोगों की न्यूनता देखकर जो कोई काम-क्रोधादि या चोर-लुटेरा आदि हम पर आक्रमण कर हमें विनष्ट करना चाहे, उसे परमात्मा और राजा की सहायता से हम धूल में मिला दें॥४॥

अगले मन्त्र में इन्द्र से धन की प्रार्थना की गयी है।

**१२९. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्।**
**वर्षिष्ठमूतये भर॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली, परम ऐश्वर्य के दाता परमात्मन् और राजन्! आप (**सानसिम्**) संभजनीय, (**सजित्वानम्**) सहोत्पन्न शत्रुओं को जीतने वाले, (**सदासहम्**) सदा दुष्ट शत्रुओं का अभिभव कराने वाले और दुःखों को सहन कराने वाले, (**वर्षिष्ठम्**) अतिशय बढ़े हुए और बढ़ाने वाले (**रयिम्**) अहिंसा, सत्य, शम, दम आदि दैवी सम्पदा को तथा विद्या, धन, बल, चक्रवर्ती राज्य आदि भौतिक ऐश्वर्य को (**ऊतये**) हमारी रक्षा, प्रगति, प्रीति और तृप्ति के लिए (**आ भर**) प्रदान कीजिए॥५॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को परम धनी परमात्मा और राजा से याचना करके और अपने पुरुषार्थ द्वारा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, शम, दम, तेज, तप, क्षमा, धृति आदि दैवी सम्पदा और विद्या, धन, बल, दीर्घायुष्य, पशु, पुत्र, पौत्र, कलत्र, चक्रवर्ती राज्य आदि भौतिक सम्पदा का उपार्जन करना चाहिए॥५॥

संग्रामों में रक्षा के लिए हम क्या करें, यह कहते हैं।

**१३०. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।**
**युजं वृत्रेषु वज्रिणम्॥६॥**

**पदार्थ** :–(**वयम्**) परमेश्वर के उपासक और राजभक्त हम लोग (**वृत्रेषु**) धर्म के आच्छादक दुष्टजनों व दुर्गुणों पर (**वज्रिणम्**) वज्रदण्ड उठाने वाले, (**युजम्**) सहयोगी सखा (**इन्द्रम्**) वीर परमेश्वर और राजा को (**महाधने**) योग-सिद्धिरूप बड़े धन जिससे प्राप्त होते हैं उस आन्तरिक महासंघर्ष में और सोना, चाँदी आदि महार्घ धन जिससे प्राप्त होते हैं उस वाह्य विकराल संग्राम में (**हवामहे**) पुकारें, (**इन्द्रम्**) उसी परमेश्वर और राजा को (**अर्भे**) छोटे आध्यात्मिक और वाह्य संघर्ष में भी पुकारें।

विद्युत्-पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए। (**इन्द्रम्**) विद्युत् का हम बड़े-बड़े संग्रामों और छोटे संग्रामों में भी (**हवामहे**) उपयोग करें। कैसी विद्युत् का? (**युजम्**) विमानादि यानों में और शस्त्रास्त्रों में जिसे प्रयुक्त किया जाता है, और जो (**वृत्रेषु**) शत्रुओं पर (**वज्रिणम्**) बिजली के गोले आदि रूप वज्रों को फेंकने का साधन है।।६।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।६।।

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि साधारण या विकट, वाह्य और आन्तरिक देवासुर-संग्रामों में विजय के लिए अत्यन्त वीर परमेश्वर तथा राजा का आह्वान करें। साथ ही बिजली से चलने वाले अस्त्रों का निर्माण करके शत्रुओं का समूल उच्छेद करें।।६।।

स्तोता को परमेश्वर की भक्ति से क्या प्राप्त होता है, यह कहते हैं।

**१३१. अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे।**
**तत्राददिष्ट पौंस्यम्॥७॥**

**पदार्थ** :–(**इन्द्रः**) विघ्नविदारक, बलदायक परमेश्वर (**सहस्रबाह्वे**) काम, क्रोध आदि हजार भुजाओं वाले पापरूप

दैत्य को मारने के लिए (**कद्रुवः**) क्रियाशील अथवा स्तुतिशील मनुष्य के (**सुतम्**) भक्तिरूप सोमरस को (**अपिबत्**) पीता है, और (**तत्र**) उस मनुष्य को (**पौंस्यम्**) बल, पौरुष (**अददिष्ट**) प्रदान करता है॥७॥

**भावार्थ** :—मनुष्य बड़ा ही निर्बल है, काम-क्रोध आदि सहस्र बाहुओं वाला पापरूप दैत्य उसे अपने वश में करना चाहता है। मनुष्य क्रियाशील और पुरुषार्थी होकर भक्तवत्सल, विपत्ति-भंजक, शक्तिदायक परमात्मा की उपासना करके उससे बल का संचय कर उस सहस्रबाहु शत्रु को प्रताड़ित करे॥७॥

यहाँ अपनी कल्पना से ही किसी ने कद्रू नाम की भार्या, किसी ने कद्रु नामक यजमान, किसी ने कद्रु नाम का ऋषि और किसी ने कद्रु नाम का राजा मान लिया है। परस्पर विरुद्ध उनके वचन ही एक-दूसरे की बात को काट देते हैं। असल में तो वेद में लौकिक इतिहास को खोजना खरगोश के सींग लगाने के प्रयत्न के समान निरर्थक ही है, अतः नैरुक्त पद्धति ही श्रेयस्कर है॥७॥

अगले मन्त्र में स्तोताजन परमात्मा से निवेदन कर रहे हैं।

**१३२. वयमिन्द्र त्वायवोऽ भि प्र नोनुमो वृषन्।**
**विद्धी त्वा३स्य नो वसो॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**वृषन्**) अभीष्ट सुखों, शक्तियों और धन आदि की वर्षा करने वाले (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली, दुःखविदारक, शत्रुसंहारक परमात्मन्! (**वयम्**) हम उपासक (**त्वायवः**) आपकी कामना वाले, आपके प्रेम के वश होते हुए (**अभि प्र नोनुमः**) आपकी भलीभाँति अतिशय पुनः-पुनः स्तुति करते हैं। हे (**वसो**) सर्वान्तर्यामी, निवासक देव! आप (**अस्य**) इस किये जाते हुए स्तोत्र को (**विद्धि**) जानिए॥८॥

**भावार्थ** :—हे इन्द्र! हे परमैश्वर्यशालिन्! हे परमैश्वर्यप्रदातः! हे विपत्तिविदारक! हे धर्मप्रसारक! हे अधर्मध्वंसक! हे मित्रों को सहारा देने वाले! हे शत्रुविनाशक! हे आनन्दधारा को प्रवाहित करने वाले! हे सद्गुणों की वर्षा करने वाले! हे

मनोरथों के पूर्णकर्ता! हे हृदय में बसने वाले! हे निवासक! आपके प्रेमरस में मग्न, आपकी प्राप्ति के लिए उत्सुक हम बार-बार आपकी वन्दना करते हैं, आपको प्रणाम करते हैं, आपके गुणों का कीर्तन करते हैं। नतमस्तक होकर हमसे किये जाते हुए वन्दन, प्रणाम और गुणकीर्तन को आप जानिए, स्वीकार कीजिए और हमें उद्बोधन दीजिए॥८॥

परमात्मा की मित्रता का और अग्नि प्रदीप्त करने का क्या लाभ है, यह बताते हैं।

**१३३. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।**
**येषामिन्द्रो युवा सखा॥९॥**

**पदार्थ** :–(**ये**) जो लोग (**घ**) निश्चय ही (**अग्निम्**) यज्ञ की अग्नि, उत्साह की अग्नि, संकल्प की अग्नि, महत्त्वाकांक्षा की अग्नि और आत्मा की अग्नि को (**आ इन्धते**) अभिमुख होकर प्रदीप्त करते हैं और (**येषाम्**) जिन लोगों का (**युवा**) सदा युवा अर्थात् सदा सशक्त रहने वाला (**इन्द्रः**) पराक्रमशाली परमात्मा (**सखा**) सहायक हो जाता है, वे लोग (**आनुषक्**) क्रमशः (**बर्हिः**) कुशा आदि यज्ञ साधनों और यज्ञ को (**स्तृणन्ति**) फैलाते हैं अर्थात् निरन्तर यज्ञकर्मों में संलग्न रहते हैं॥९॥

भावार्थ :–जिनके हृदय में अग्नि जाज्वल्यमान नहीं है, वे लोग आलसी जीवन बिताते हैं। वे तो स्वार्थसाधन में भी मन्द होते हैं, फिर परार्थसाधनरूप यज्ञ-कर्म करने का तो कहना ही क्या है। परन्तु जो नित्य अग्निहोत्र की अग्नि को और उससे प्रेरणा प्राप्त कर उत्साह, संकल्प और महत्त्वाकांक्षा की अग्नि को तथा आत्मारूप अग्नि को प्रज्वलित करते हैं और जो सदा युवक, दूसरों की दुःख-दरिद्रता को दूर करने वाले, शत्रुविजयी, सृष्टियज्ञकर्ता, शतक्रतु इन्द्र परमेश्वर को सखा बना लेते हैं, वे सदा ही मन में स्फूर्ति, कर्मण्यता और उदारता को धारण करते हुए निरन्तर परोपकार के कामों में लगे रहते हैं॥९॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा और आचार्य से विघ्नों के

नाश तथा धन प्रदान करने की प्रार्थना है।

**१३४. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।**
**वसु स्पार्हं तदा भर॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! विद्यावीर, दयावीर, बलवीर परमात्मन् राजन् व आचार्य! आप (**विश्वाः**) सब (**द्विषः**) द्वेष-वृत्तियों को और काम, क्रोध, लोभ आदि असुरों तथा मानव राक्षसों की सेनाओं को (**अप भिन्धि**) विदीर्ण कर दीजिए। (**बाधः**) बाधक, सन्मार्ग में विघ्न डालने वाले (**मृधः**) संग्राम करने वाले पापों को (**परि जहि**) सर्वत्र नष्ट कर दीजिए। (**तत्**) वह प्रसिद्ध (**स्पार्हम्**) स्पृहणीय (**वसु**) सत्य, अहिंसा, आरोग्य, विद्या, सुवर्ण आदि आध्यात्मिक और भौतिक धन (**आभर**) हमें प्रदान कीजिए।।१०।।

**भावार्थ** :—**मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा, राजा और आचार्य की सहायता द्वारा रास्ते से राग, द्वेष, पाप, विघ्न-बाधा आदि को हटाकर और सब प्रकार का धन प्राप्त करके विजयी हों।।१०।।**

इस दशति में इन्द्र नामक परमेश्वर आदि के गुणों का वर्णन होने से, उसके पास से ऐश्वर्यों की प्रार्थना होने से, उसके प्रति प्रणाम अर्पित होने से और उससे शत्रु-विनाश तथा स्पृहणीय धन की याचना होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है यह जानना चाहिए।।

## तृतीया दशतिः

**ऋषिः—१ कण्वो घौरः; २ त्रिशोकः; ३, ९ वत्सः काण्वः; ४ कुसीदी काण्वः; ५ मेधातिथिः; ६ श्रुतकक्षः; ७ श्यावाश्वः; ८ प्रगाथः काण्वः; १० इरिम्बिठिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

अब इन्द्र के सहायक मरुतों का वर्णन करते हैं। यहाँ यद्यपि इन्द्र के सहायक मरुतों की स्तुति है, तथापि सैनिकों

की स्तुति से सेनापति की ही स्तुति मानी जाती है, इस न्याय से देवता इन्द्र माना गया है। ऋग्वेद में इस मन्त्र के देवता साक्षात् 'मरुतः' ही हैं। इन्द्र से शरीर का सम्राट् जीवात्मा और राष्ट्र का सम्राट् राष्ट्रपति गृहीत होता है। जीवात्मा रूप इन्द्र के सहायक मरुत् प्राण हैं और राष्ट्रपति रूप इन्द्र के सहायक मरुत् सैनिक हैं, यह समझना चाहिए।

**१३५. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्।**
**नि यामं चित्रमृञ्जते॥१॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) सैनिकों के पक्ष में। (**एषाम्**) इन सैनिकों के (**हस्तेषु**) हाथों में, युद्धकाल में (**यत्**) जो (**कशाः**) चाबुकें (**वदान्**) बोलती हैं, वह इनका शब्द (**इह इव**) मानो यहीं, युद्ध से भिन्न स्थल में भी (**शृण्वे**) मैं सुन रहा हूँ। यह सैनिकों का गण (**यामन्**) संग्राम में (**चित्रम्**) अद्भुत (**निऋञ्जते**) प्रसाधन करता है।

वेद में सैनिकों का वेशप्रसाधन इस रूप में वर्णित हुआ है–"तुम्हारे कंधों पर ऋष्टियाँ हैं, पैरों में पादत्राण हैं, वक्षःस्थलों पर सोने के तमगे हैं, तुम रथ पर शोभायमान हो। तुम्हारी बांहुओं में अग्नि के समान चमकने वाले विद्युदस्त्र हैं, सिरों पर सुनहरी पगड़ियाँ हैं। ऋ० ५।५४।११, तुम उत्कृष्ट हथियारों से युक्त हो, गतिमान् हो, उत्कृष्ट स्वर्णालंकार धारण किये हो। ऋ० ७।५६।११।"

(**द्वितीय**) प्राणों के पक्ष में। (**एषाम्**) इन प्राणों के (**हस्तेषु**) पूरक-कुम्भक क्रियारूप हाथों में (**यत्**) जो (**कशाः**) कानों से न सुनायी देने वाली सूक्ष्म वाणियाँ (**वदान्**) ध्वनित होती हैं, उस आवाज को (**इह इव**) मानो यहीं, प्राणाभ्यास से अतिरिक्त दशा में भी (**शृण्वे**) सुन रहा हूँ। यह प्राणगण (**यामन्**) अभ्यासमार्ग में (**चित्रम्**) अद्भुत रूप से (**निऋञ्जते**) प्राणायामाभ्यासी योगी को योगैश्वर्यों से अलंकृत कर देता है॥१॥

इस मन्त्र में भूतकाल की वस्तु को वर्तमान काल में प्रत्यक्ष घटित के समान वर्णन करने के कारण भाविक अलंकार

है। सैनिक तथा प्राण इन दो अर्थों को अभिहित करने से श्लेष भी है॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे राजा के सहायक सैनिक लोग राष्ट्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही योगी के सहायक प्राण योगी के योग की रक्षा करते हैं। युद्धों में शत्रुओं के सम्मुख सैनिकों की चाबुकें आवाज करती हैं, उस दृश्य को जिन्होंने देखा होता है उससे चमत्कृत होने के कारण युद्ध से भिन्न स्थलों में भी उन्हें ऐसा लगता है कि वे आवाजें सुनायी दे रही हैं। सैनिकों का वीरोचित वेश-विन्यास भी अद्भुत ही प्रतीत होता है। प्राण भी योगियों के सैनिक ही हैं, जो शरीर में उत्पन्न सब दोषों को बाहर निकाल देते हैं, इन्द्रियों को निर्मल करते हैं और योगेश्वर्य की प्राप्ति के प्रयास को सफल बनाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि परमात्मा के सखा लोग उसके दर्शन की प्रतीक्षा करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१३६. इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः।**
३ १ २ ३ १ २ ३ २
**पुष्टावन्तो यथा पशुम्॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! (**इमे उ**) ये (**सोमिनः**) भक्तिरसरूप सोम को परिस्रुत किये हुए (**सखायः**) आपके मित्र उपासक (**त्वा**) आपकी (**विचक्षते**) प्रतीक्षा कर रहे हैं, (**पुष्टावन्तः**) पशुओं के खाने योग्य परिपुष्ट घास आदि से युक्त पशुपालक (**यथा**) जिस प्रकार (**पशुम्**) गाय आदि पशु की प्रतीक्षा करते हैं॥२॥

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे पशुओं के खाने योग्य घास आदि को तैयार किये हुए पशुपालक लोग गाय आदि पशु की प्रतीक्षा करते हैं कि वह आकर भक्ष्य को खाकर उसकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान् दूध हमें दे, वैसे ही भक्तिरूप सोमरस को तैयार किये हुए उपासक लोग परमात्मा की प्रतीक्षा करते हैं कि वह उनके हृदय-सदन में आकर भक्तिरस का पान करे और उसकी अपेक्षा हजार गुणा मूल्य वाला आनन्दरसरूप दूध

हमें प्रदान करे।।२।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा के मन्यु के सम्मुख सब झुकते हैं।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१३७. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।**

३ १ २ ३ १ २
**समुद्रायेव सिन्धवः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**अस्य**) इस परमैश्वर्यवान् पराक्रमशाली इन्द्र परमेश्वर के (**मन्यवे**) अन्याय, पाप आदि को सहन न करने वाले तेज के लिए अर्थात् उस तेज को पाने के लिए (**विश्वाः**) सब (**कृष्टयः**) कृषि करने वाली, अर्थात् मनोभूमि में सद्गुणरूप बीजों को बोने वाली (**विशः**) प्रजाएँ, (**सं नमन्त**) परमेश्वर के प्रति नत हो जाती हैं, (**समुद्राय**) समुद्र को प्राप्त करने के लिए (**सिन्धवः इव**) जैसे नदियाँ नत होती हैं अर्थात् नीचे की ओर बहती हैं।।३।।

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है।।३।।

**भावार्थ** :–मन्यु उस मानसिक तेज को कहते हैं, जिसके कारण कोई अधर्म, दुराचार, पाप आदि को सहन नहीं कर सकता। इन्द्र नामक परमेश्वर उस मन्यु का आदर्श है। मन्यु के खजाने उस परमेश्वर के मन्यु को प्राप्त करने के लिए नम्रतापूर्वक सबको यत्न करना चाहिए।।३।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्राप्तव्य रक्षण तथा विद्वानों से प्राप्तव्य ज्ञान की प्रार्थना करते हैं।

३ २ ३ १ ३र ३ १ २र ३ २
**१३८. देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २
**वृष्णामस्मभ्यमूतये॥४॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। इन्द्र परमेश्वर है, उसके दिव्य सामर्थ्य देव हैं। (**देवानाम्**) इन्द्र परमेश्वर के दिव्य सामर्थ्यों का (**इत्**) ही (**अवः**) संरक्षण (**महत्**) महान् है। (**वृष्णाम्**) सुखों की वर्षा करने वाले उन दिव्य सामर्थ्यों के (**तत्**) उस संरक्षण को (**वयम्**) हम उपासक लोग (**ऊतये**) प्रगति के प्राप्त्यर्थ (**अस्मभ्यम्**) अपने लिए (**आवृणीमहे**)

प्राप्त करते हैं।

**(द्वितीय)** विद्वानों के पक्ष में। इन्द्र आचार्य है, उसके विद्वान् शिष्य देव हैं। **(देवानाम्)** विद्वानों का **(इत्)** ही **(अवः)** शास्त्रज्ञान **(महत्)** विशाल होता है। **(वृष्णाम्)** विद्या की वर्षा करने वाले उन विद्वानों के **(तत्)** उस शास्त्रज्ञान को **(वयम्)** हम अल्पश्रुत लोग **(ऊतये)** प्रगति के प्राप्त्यर्थ **(अस्मभ्यम्)** अपने लिए **(आवृणीमहे)** भजते हैं।।४।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।४।।

**भावार्थ** :—इन्द्र नाम से वेदों में जिसकी कीर्ति गायी गयी है उस परमेश्वर के दिव्य सामर्थ्य बहुमूल्य हैं, जिनका संरक्षण पाकर क्षुद्र शक्ति वाला मनुष्य भी सब विघ्नों और संकटों को पार करके विविध कष्टों से आकुल भी इस संसार में सुरक्षित हो जाता है। अतः परमेश्वर के दिव्य सामर्थ्यों का संरक्षण सबको प्राप्त करना चाहिए। साथ ही विद्वान् लोग भी देव कहलाते हैं। उनका उपदेश सुनकर ज्ञानार्जन भी करना चाहिए।।४।।

अगले मन्त्र में वेदादि के अधिपति इन्द्र परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

३ २ ३ १२ ३ १ २
**१३९. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।**

३ १ २ ३ १ २ ३ २
**कक्षीवन्तं य औशिजः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे **(ब्रह्मणःपते)** वेद, ब्रह्माण्ड और सकल ऐश्वर्य के स्वामिन् इन्द्र जगदीश्वर! **(यः)** जो मैं **(औशिजः)** मेधावी आचार्य का विद्यापुत्र हूँ, उस **(कक्षीवन्तम्)** मुझ क्रियावान् को **(सोमानाम्)** ज्ञानों का **(स्वरणम्)** प्रकाश करने वाला तथा उपदेश करने वाला **(कृणुहि)** बना दीजिए।।५।।

इस मन्त्र की यास्काचार्य ने निरु० ६।१० में व्याख्या की है।

**भावार्थ** :—गुरुकुल में विद्या पढ़कर आचार्य का विद्यापुत्र होकर मैं विद्या के अनुरूप कर्म कर रहा हूँ। ऐसे मुझ को हे परमेश्वर! आप विद्या का प्रकाशक और उपदेशक बना दीजिए, जिससे मैं भी सत्पात्रों को विद्यादान करूँ।।५।।

विवरणकार माधव, भरतस्वामी और सायणाचार्य ने यहाँ 'औशिजः' से उशिक् नामक माता का पुत्र कक्षीवान् ऋषि कल्पित किया है और दीर्घतमा को उसका पिता बताया है। लुप्तोपमा मानकर यह व्याख्यान किया है कि उशिक् माता के पुत्र कक्षीवान् ऋषि के समान मुझे कीर्तिमान् कर दीजिए। विचार करने पर यह यथार्थ प्रतीत नहीं होता, क्योंकि वेदों के सृष्टि के आदि में परमेश्वर द्वारा प्रोक्त होने से उनमें परवर्ती इतिहास नहीं हो सकता॥५॥

अगले मन्त्र में यह कहा है कि परमेश्वर हमारी प्रार्थना को सुने।

**१४०. बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।**
**शृणोतु शक्र आशिषम्॥६॥**

**पदार्थ** :–(**वृत्रहा**) पापों का विनाशक (**भूर्यासुतिः**) बहुत रसमय इन्द्र परमेश्वर (**नः**) हमारे लिए (**बोधन्मनाः**) मन को प्रबुद्ध करने वाला (**इत्**) ही (**अस्तु**) होवे। वह (**शक्रः**) शक्तिशाली परमेश्वर (**आशिषम्**) हमारी महत्त्वाकांक्षा को (**शृणोतु**) सुने, पूर्ण करे॥६॥

इस मन्त्र में 'वृत्रहा' और 'शक्रः' शब्द क्योंकि इन्द्र अर्थ में प्रसिद्धि पा चुके हैं, अतः पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। यौगिक अर्थ लेने पर पुनरुक्ति का परिहार हो जाता है। 'शृणोतु' में श्रु धातु की पूर्ण करने अर्थ में लक्षणा है॥६॥

**भावार्थ** :–जो परमात्मा दोषों का हन्ता, अधर्मों का पराजेता, पापों का विनाशक, आनन्दरस का सागर और सर्वशक्तिमान् है, वह हमारे मन को प्रबुद्ध करके हमारी दीर्घायुष्य, समृद्धि, विजय, मोक्ष आदि की महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करे॥६॥

अगले मन्त्र में प्रेरक परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१४१. अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम्।**
**परा दुःष्वप्न्यं सुव॥७॥**

**पदार्थ** :–मन्त्र का देवता इन्द्र होने से मन्त्रोक्त 'देव' और 'सवितः' उसी के विशेषण हैं। हे **(देव)** ऐश्वर्यप्रदायक, प्रकाशमय, प्रकाशक, सर्वोपरि विराजमान, **(सवितः)** उत्तम बुद्धि आदि के प्रेरक इन्द्र परमात्मन्! **(अद्य)** आज, आप **(नः)** हमारे लिए **(प्रजावत्)** सन्ततियुक्त अर्थात् उत्तरोत्तर बढ़ने वाले **(सौभागम्)** धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य आदि का धन **(सावीः)** प्रेरित कीजिए, **(दुःष्वप्न्यम्)** दिन का दुःस्वप्न, रात्रि का दुःस्वप्न और उनसे होने वाले कुपरिणामों को **(परासुव)** दूर कर दीजिए॥७॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की उपासना से मनुष्य निरन्तर बढ़ने वाले सद्गुणरूप बहुमूल्य धन को और दोषों से मुक्ति को पा लेता है॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के विषय में प्रश्न उठाया गया है।

**१४२. क्वा३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।**
**ब्रह्मा कस्तं सपर्यति॥८॥**

**पदार्थ** :–**(क्व)** कहाँ है **(स्यः)** वह **(वृषभः)** आनन्द की वर्षा करने वाला, **(युवा)** नित्य युवा, अर्थात् युवक के समान सदा शक्तिशाली, **(तुविग्रीवः)** अतिशय रूप से प्रलयकाल में जगत् को निगलने वाला अर्थात् प्रकृति में लय करने वाला और बहुत उपदेश देने वाला, **(अनानतः)** शत्रु के सम्मुख कभी न झुकने वाला, इन्द्र परमेश्वर? **(कः)** कौन सा **(ब्रह्मा)** विद्या-वृद्ध जन **(तम्)** पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त उस इन्द्र परमेश्वर को **(सपर्यति)** पूजता है? ॥८॥

**भावार्थ** :–तुम कहते हो कि ब्रह्माण्ड का कोई शासक है, जो बादल के समान सबके ऊपर सुख बरसाता है, जो न कभी बालक होता है, न कभी बूढ़ा, किन्तु सदा युवा ही रहता है, जो मानो हजार ग्रीवाओं वाला होकर प्रलयकाल मे सब पदार्थों को निगलता है और सृष्टिकाल में सहस्रों जनों को ज्ञान का उपदेश करता है, जो कभी शत्रुओं के सम्मुख झुकता नहीं, अपितु उन्हें ही झुका लेता है। हम पूछते हैं कि

वह कहाँ है? यदि है, तो दिखाओ। तुम कहते हो कि वह पूजनीय है। हम पूछते हैं कि भला कौन विद्वान् है जो उस निराकार, अशरीरी, अदृश्य, अश्रव्य की पूजा कर सके? इसलिए वह है ही नहीं, न ही कोई उसकी पूजा कर सकता है, यह प्रश्नकर्ता का अभिप्राय है।

अगले मन्त्र में पूर्व प्रश्न का उत्तर दिया गया है।

**१४३. उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।**
**धिया विप्रो अजायत॥९॥**

**पदार्थ** :–(**गिरीणाम्**) पर्वतों के (**उपह्वरे**) एकान्त में अथवा समीप में (**नदीनां च**) और नदियों के (**सङ्गमे**) संगम-स्थल पर (**धिया**) द्वारा (**विप्रः**) वह सर्वव्यापक और मेधावी इन्द्र परमेश्वर (**अजायत**) प्रकट होता है।।९।।

**भावार्थ** :–तुम्हारा प्रश्न है कि वह इन्द्र परमेश्वर कहाँ है? उस पर हमारा उत्तर है–वह सर्वव्यापक है, किन्तु उसका दर्शन बाह्य आँख से होना सम्भव नहीं है, ध्यान द्वारा आन्तरिक चक्षु से ही वह साक्षात्कार किये जाने योग्य है। और ध्यान कोलाहल-भरे वातावरण में नहीं, अपितु पर्वतों और नदियों के शान्त प्रदेश में सुगम होता है। उन्हीं ध्यानयोग्य प्रदेशों में ध्यान करने वालों को परमेश्वर का साक्षात्कार होता है। तुम्हारा दूसरा प्रश्न यह है कि कौन उसकी पूजा कर सकता है? इसका उत्तर भी पहले उत्तर में आ जाता है। निराकार, शरीर-रहित, आँख से अगोचर परमेश्वर की भी पूर्वोक्त प्रकार से ध्यान करता हुआ मनुष्य पूजा कर सकता है, उसकी मूर्ति रचकर उस पर पत्र, पुष्प, जल आदि चढ़ाने वाला उसका वास्तविक पूजक नहीं है।।९।।

मनुष्यों परमात्मा और राजा की स्तुति करने की प्रेरणा करते हैं।

**१४४. प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः।**
**नरं नृषाहं मंहिष्ठम्॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे भाइयो! तुम (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**सम्राजम्**) सम्राट्, (**नव्यम्**) नवीन वा स्तवनयोग्य, (**नरम्**) नेता, पौरुषवान्, (**नृषाहम्**) दुष्टजनों को पराजित करने वाले, (**मंहिष्ठम्**) अतिशय दानी (**इन्द्रम्**) वीर परमात्मा और राजा का (**गीर्भिः**) वेद-वाणियों तथा निज वाणियों से (**प्र स्तोत**) भलीभाँति कीर्तिगान करो॥१०॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा और राजा की धवल कीर्ति का गान करें और उनके गुणों को अपने जीवन में धारण करें॥१०॥

इस दशति में इन्द्र के सहायक मरुतों के वर्णनपूर्वक इन्द्र का महत्त्व प्रतिपादित होने से; ब्रह्मणस्पति, वृत्रहा, सविता, शक्र नामों से इन्द्र की स्तुति होने से, इन्द्र से दुःस्वप्न-विनाश की प्रार्थना होने से और इन्द्र की स्तुति के लिए प्रेरणा होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

**इति द्वितीयः प्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ द्वितीयप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

## चतुर्थी दशतिः

**ऋषिः—१ श्रुतकक्षः; २ मेधातिथिः; ३ गोतमः; ४ भरद्वाजः; ५ बिन्दुः पूतदक्षो वा; ६, ७ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा; ८ वत्सः काण्वः; ९ शुनःशेपः; १० शुनःशेपो वामदेवो वा॥ देवता—इन्द्रः; ५ मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में यह वर्णन है कि इन्द्र समर्पणकर्ता के सोमरस को स्वीकार करता है।

**१४५. अपादु शिप्रयन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः।**
**इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः॥१॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**शिप्री**) सर्वव्यापक (**इन्द्रः**) परमात्मा (**सुदक्षस्य**) अतिकुशल, (**प्रहोषिणः**) प्रकृष्ट रूप से आत्मसमर्पण रूप हवि का होम करने वाले, (**इन्द्रोः**) चन्द्रमा के समान सौम्य उपासक के (**यवाशिरः**) यवों के तुल्य सात्त्विक ज्ञान और कर्मों के साथ परिपक्व (**अन्धसः**) भक्ति-रूप सोमरस का (**अपात् उ**) निश्चय ही पान करता है, अर्थात् ज्ञान-कर्म-पूर्वक की गयी भक्ति को अवश्य स्वीकार करता है।।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**शिप्री**) राजमुकुटधारी (**इन्द्रः**) राजा (**सुदक्षस्य**) सुसमृद्ध, (**प्रहोषिणः**) कर-रूप से राजा के लिए देय भाग को कर-विभाग में देने वाले, (**इन्दोः**) राष्ट्र को सींचने वाले प्रजाजन के (**यवाशिरः**) जौ, गेहूँ, तिल, चावल, मूँग, उड़द आदि सहित (**अन्धसः**) खाद्य, पेय, वस्त्र, सोना, चाँदी, मुद्रा आदि रूप में प्रदत्त राज-कर को (**अपात् उ**) अवश्य ग्रहण करता है।।

**(तृतीय) सूर्य के पक्ष में। (शिप्री) किरणों वाला (इन्द्रः)** सूर्य (**सुदक्षस्य**) अतिशय समृद्ध, (**प्रहोषिणः**) अपने जल रूप हवि का होम करने **वाले भूमण्डल के** (**यवाशिरः**) संयोगविभागकारी ताप से पककर भापरूप में परिणत होने वाले (**अन्धसः**) भोज्यरूप (**इन्दोः**) जल का (**अपात् उ**) अवश्य पान करता है।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :–जैसे राजा प्रजाजनों के कररूप उपहार को और सूर्य भूमण्डल के जलरूप उपहार को स्वीकार करता है, वैसे ही परमात्मा उपासकों के ज्ञानकर्ममय भक्तिरस के उपहार को प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है।।१।।

इस मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने जो 'सुदक्ष' शब्द से सुदक्ष नाम के ऋषि का ग्रहण किया है वह अन्य भाष्यकारों के विरुद्ध होने से ही खण्डित हो जाता है, क्योंकि 'सुदक्ष' का अर्थ विवरणकार माधव ने 'भले प्रकार उत्साहित' और भरतस्वामी ने 'अतिशय बलवान्' किया है। इस प्रकार के प्रसिद्धार्थक शब्दों को भी नाम मान लेने पर तो वेदों के सभी

सुबन्त पद किसी ऋषि या राजा के नाम हो जाएँगे।

अगले मन्त्र में उपासक जन परमात्मा को कह रहे हैं।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**१४६. इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुवुर्गिरः।**
१ २ ३ २उ ३ १ २
**गावो वत्सं न धेनवः॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**पुरूवसो**) विद्या, सुवर्ण, (**सद्गुण**) आदि बहुत से धनों के स्वामी परमात्मन्! (**इमाः उ**) ये हमारे द्वारा उच्चारण की जाती हुई (**गिरः**) भावपूर्ण स्तुतिवाणियाँ (**त्वा अभि**) आपको लक्ष्य करके (**प्र नोनुवुः**) प्रकृष्ट रूप से अतिशय पुनः-पुनः शब्दायमान हो रही हैं, (**धेनवः**) अपना दूध पिलाने के लिए उत्सुक (**गावः**) गौएँ (**वत्सं न**) जैसे अपने बछड़े को लक्ष्य करके रँभाती हैं॥२॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ :–हे जगदीश्वर! जैसे गौएँ अपने प्यारे बछड़े को** देखकर **पौस कर उसे अपना दूध पिलाने के लिए रँभाती हैं,** वैसे ही हमारी **रस-भरी स्तुति-वाणियाँ भक्ति**-रस को उद्वेल्लित सा करती हुई प्राणों से भी प्रिय आपको वह रस पिलाने के लिए आपके प्रति बहुत अधिक शब्दायमान हो रही हैं और आपकी स्तुति कर रही हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि सूर्य से चन्द्रमा और परमेश्वर से स्तोता का हृदय प्रकाशित होता है।

२उ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
**१४७. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।**
३ २ ३ १ २ ३ २
**इत्था चन्द्रमसो गृहे॥३॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) सूर्य से चन्द्रमा के प्रकाशित होने के पक्ष में। (**त्वष्टुः**) विच्छेदक, प्रकाश द्वारा शीघ्र व्याप्तिशील, देदीप्यमान सूर्य की (**गोः**) सुषुम्णानामक रश्मि के (**अत्र अह**) इस (**चन्द्रमसः गृहे**) चन्द्रमण्डल में (**अपीच्यम्**) प्रच्छन्न रूप से (**नाम**) अवस्थान को, विद्वान् लोग (**इत्था**) सत्य रूप में (**अमन्वत**) जानते हैं। अर्थात् चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित

होता है इस रहस्य को विद्वान् लोग भलीभाँति समझते हैं।

निरुक्त में कहा है कि आदित्य का एक रश्मिसमूह चन्द्रमा में जाकर दीप्त होता है, अर्थात् आदित्य से चन्द्रमा की दीप्ति होती है, जैसा कि वेद में कहा है— "सुषुम्ण नामक सूर्य रश्मियाँ हैं, चन्द्रमा उन रश्मियों को धारण करने के कारण गन्धर्व है" (य॰ १८।४०)। 'अत्राह गोरमन्वत' आदि मन्त्र में 'गोः' पद चन्द्रमा को प्रकाशित करने वाली उन सुषुम्ण नामक सूर्यरश्मियों के लिए ही आया है।।

**( द्वितीय )** परमात्मापरक अर्थ। **( त्वष्टुः )** दुःखों के विच्छेदक, सर्वत्र व्यापक, तेज से प्रदीप्त और जगत् के रचयिता इन्द्र नामक परमेश्वर की **( गोः )** दिव्य प्रकाशरश्मि का **( अत्र अह )** इस **( चन्द्रमसः गृहे )** मन रूप चन्द्र के निवासस्थान हृदय में **( अपीच्यं नाम )** आगमन को, उपासक लोग **( इत्था )** सत्य रूप में **( अमन्वत )** अनुभव करते हैं।।३।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है, वैसे ही परमेश्वर के प्रकाश से स्तुतिकर्ताओं के हृदय प्रकाशित होते हैं।।३।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमेश्वर ही सूर्य द्वारा भूमियों और जलों को गति देता है।

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २र

**१४८. यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २

**तत्र पूषाभुवत् सचा॥४॥**

**पदार्थ** :—**( वृषन्तमः )** अतिशय बलवान् अथवा वृष्टिकर्ता **( इन्द्रः )** परमेश्वर **( यत् )** जब **( रितः )** गति करने वाली **( महीः )** पृथिवी, चन्द्र आदि ग्रह-उपग्रह रूप भूमियों को **( अनयत् )** अपनी-अपनी कक्षाओं में सूर्य के चारों ओर घुमाता है, और **( अपः )** जलों को **( अनयत् )** भाप बनाकर ऊपर और वर्षा द्वारा नीचे पहुँचाता है, तब **( तत्र )** उस कर्म में **( पूषा )** पुष्टिप्रद सूर्य **( सचा )** सहायक **( अभुवत् )** होता है।।४।।

**भावार्थ** :—महामहिमाशाली जगदीश्वर ही सूर्य, विद्युत्, बादल,

पवन आदि को साधन बनाकर सब प्राकृतिक नियमों का संचालन कर रहा है॥४॥

अगले मन्त्र में 'गौः' शब्द द्वारा भूमि, गाय, वाणी, विद्युत् आदि के गुण-कर्म वर्णित हैं। इन्द्र से रचे गये भूमि आदि के वर्णन से रचयिता इन्द्र की ही स्तुति होती है, इस दृष्टि से मन्त्र का देवता इन्द्र है।

**१४९. गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्।**
**युक्ता वह्नी रथानाम्॥५॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) भूमि के पक्ष में। (**मघोनाम्**) ऐश्वर्यवान् (**मरुताम्**) मनुष्यों को (**श्रवस्युः**) मानो अन्न प्रदान करना चाहती हुई (**माता**) माता (**गौः**) भूमि (**धयति**) वर्षाजल को पीती है। (**युक्ता**) सूर्य से सम्बद्ध वह (**रथानाम्**) गतिमान् अग्नि, वायु, जल, पशु, पक्षी, मनुष्य आदिकों को (**वह्निः**) एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाली होती है।

(**द्वितीय**)–गाय के पक्ष में। (**मघोनाम्**) यज्ञ रूप ऐश्वर्य से युक्त (**मरुताम्**) यजमान मनुष्यों को (**श्रवस्युः**) दूध-घी प्रदान करना चाहती हुई (**माता गौः**) गौ माता के तुल्य गाय (**धयति**) स्वच्छ जल पीती है। (**युक्ता**) यज्ञ के लिए नियुक्त वह (**रथानाम्**) यज्ञ-रूप रथों की (**वह्निः**) चलाने वाली होती है।

(**तृतीय**)–विद्युत् के पक्ष में। (**मघोनाम्**) साधनवान् (**मरुताम्**) मनुष्यों को (**श्रवस्युः**) मानो धन प्रदान करना चाहती हुई (**माता**) निर्माण करने वाली (**गौः**) अन्तरिक्ष में स्थित विद्युत् (**धयति**) मेघ के जलों को पीती है। और (**युक्ता**) शिल्पकर्म में प्रयुक्त हुई वह (**रथानाम्**) कलायन्त्र, भूयान, जलयान, विमान आदिकों की (**वह्निः**) चलाने वाली होती है।

(**चतुर्थ**)–वाणी के पक्ष में। (**मघोनाम्**) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि के ऐश्वर्य से युक्त (**मरुताम्**) मनुष्यों को (**श्रवस्युः**) मानो अन्न, धन, विद्या, कीर्ति आदि प्रदान करने की इच्छुक (**माता गौः**) माता वेदवाणी (**धयति**) ज्ञानरस का पान कराती है। (**युक्ता**) अध्ययन-अध्यापन में उपयोग

लायी हुई वह (रथानाम्) रमणीय आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन ब्रह्मवर्चस आदि की (वह्निः) प्राप्त कराने वाली होती है॥५॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'श्रवस्युः—मानो अन्न, धन, कीर्ति आदि प्राप्त कराना चाहती हुई' में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षा है॥५॥

**भावार्थ** :—इन्द्र परमात्मा से रची हुई भूमि, गाय, विद्युत्, वेदवाणी रूप गौओं का उपयोग लेकर सबको आध्यात्मिक, शारीरिक, भौतिक, वैज्ञानिक, याज्ञिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति करनी चाहिए॥५॥

अगले मन्त्र में उपासक परमात्मा को और बालक के माता-पिता आचार्य को कहते हैं।

**१५०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते।**
**उप नो हरिभिः सुतम्॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**मदानां पते**) आनन्दों के अधिपति परमात्मन्! आप (**नः**) हमारे (**हरिभिः**) ज्ञान को आहरण करने वाली ज्ञानेन्द्रियों से (**सुतम्**) उत्पन्न किये ज्ञान को (**उप याहि**) प्राप्त हों। (**नः**) हमारे (**हरिभिः**) कर्म को आहरण करने वाली कर्मेन्द्रियों से (**सुतम्**) उत्पादित कर्म को (**उप याहि**) प्राप्त हों॥

(**द्वितीय**) आचार्य के पक्ष में। हे (**मदानां पते**) हर्षप्रदायक ज्ञानों के अधिपति, विविध विद्याओं में विशारद आचार्यप्रवर! आप (**हरिभिः**) ज्ञान का आहरण कराने वाले अन्य गुरुजनों के साथ (**नः**) हमारे (**सुतम्**) गुरुकुल में प्रविष्ट पुत्र के (**उप याहि**) पास पहुँचिए। (**हरिभिः**) दोषों को हरने वाले अन्य गुरुओं के साथ (**नः**) हमारे (**सुतम्**) गुरुकुल में प्रविष्ट पुत्र के (**उप याहि**) पास पहुँचिए॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है, 'उप नः हरिभिः सुतम्' की आवृत्ति में पादावृत्ति यमक है॥६॥

**भावार्थ** :—उपासक लोग परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमारे प्रत्येक ज्ञान और प्रत्येक कर्म में यदि आप व्याप्त हो

जाते हैं, तभी हमारा जीवन-यज्ञ सफल होगा। और अपने पुत्र को गुरुकुल में प्रविष्ट कर माता-पिता कुलपति से प्रार्थना करते हैं कि आप विद्याओं को पढ़ाने और चरित्र-निर्माण के लिए अन्य गुरुजनों सहित कृपा करके प्रतिदिन हमारे पुत्र के साथ सान्निध्य करते रहना॥६॥

अगले मन्त्र में यजमानों का व्यवहार वर्णित है।

**१५१. इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे।**
**अच्छावभृथमोजसा॥७॥**

**पदार्थ** :-( **अध्वरे** ) हिंसादि दोषों से रहित अग्निहोत्र में, जीवन-यज्ञ में अथवा उपासना-यज्ञ में ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्यशाली, दुःखविदारक, मुक्तिदायक परमात्मा को ( **वृधन्तः** ) बढ़ाते हुए अर्थात् उत्तरोत्तर हृदय में विकसित करते हुए यजमानगण **( ओजसा ) बलपूर्वक अर्थात् पूरे प्रयास से ( अवभृथम् अच्छ ) यज्ञान्त स्नान को लक्ष्य करके अर्थात् हम शीघ्र यज्ञ को पूर्ण करके यज्ञान्त स्नान करें बुद्धि से ( इष्टाः )** अभीष्ट ( **होत्राः** ) आहुतियों को ( **असृक्षत** ) छोड़ते हैं।

यहाँ यह अर्थ भी ग्रहण करना चाहिए कि राष्ट्रयज्ञ को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए पूरे प्रयत्न से राजा को बढ़ाते हुए अर्थात् अपने सहयोग से शक्तिशाली करते हुए प्रजाजन राष्ट्र के लिए सब प्रकार का त्याग करने के लिए उद्यत होते हैं॥७॥

**भावार्थ** :-अग्निहोत्र, जीवनयज्ञ, ध्यानयज्ञ, राष्ट्रयज्ञ, सभी यज्ञ आहुति देने से, परार्थ त्याग करने से या आत्मबलिदान करने से पूर्णता को प्राप्त होते हैं॥७॥

अगले मन्त्र में उपासक अपनी उपलब्धि का वर्णन कर रहा है।

**१५२. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।**
**अहं सूर्य इवाजनि ॥८॥**

**पदार्थ** :-( **अहम्** ) मैंने ( **इत् हि** ) सचमुच ( **पितुः परि** ) पिता इन्द्र परमेश्वर से ( **ऋतस्य मेधाम्** ) सत्याचरण की मेधा

को अथवा ऋतम्भरा प्रज्ञा को (**जग्रह**) ग्रहण कर लिया है। उससे प्रकाशमान हुआ (**अहम्**) अध्यात्मपथ का पथिक मैं (**सूर्यः इव**) सूर्य के समान (**अजनि**) हो गया हूँ॥८॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—पिता परमेश्वर की उपासना से मनुष्य सत्यज्ञान, सत्य आचरण और ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त करके सूर्य के समान प्रकाशमान होकर मुक्ति उपलब्ध कर सकता है॥८॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमात्मा और राजा के संरक्षण में सब सुखी हों।

**१५३. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।**
**क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥९॥**

**पदार्थ** :—(**नः**) हमारी (**रेवतीः**) प्रशस्त ऐश्वर्य वाली **प्रजाएँ** (**सधमादे**) जिसके साथ रहते हुए लोग आनन्द प्राप्त करते हैं ऐसे (**इन्द्रे**) परमैश्वर्यशाली परमात्मा और राजा के आश्रय में (**तुविवाजाः**) बहुत बल और विज्ञान से सम्पन्न (**सन्तु**) होवें, (**याभिः**) जिन प्रजाओं के साथ (**क्षुमन्तः**) प्रशस्त अन्नादि भोग्य सामग्री से सम्पन्न, प्रशस्त निवास से सम्पन्न और प्रशस्त कीर्ति से सम्पन्न हम (**मदेम**) आनन्दित हों॥९॥

**भावार्थ** :—सब प्रजाजनों को चाहिए कि वे इन्द्रनामक परमात्मा और राजा के मार्गदर्शन में सब कार्य करें, जिससे वे रोग, भूख, अकालमृत्यु आदि से पीड़ित न हों, प्रत्युत सब सात्त्विक खाद्य, पेय आदि पदार्थों को और बल, विज्ञान आदि को प्राप्त करते हुए समृद्ध होकर अधिकाधिक को उपलब्ध करें॥९॥

अगले मन्त्र में सोम और पूषा के गुण-कर्मों के वर्णन द्वारा इन्द्र परमेश्वर की महिमा प्रकट की गयी है।

**१५४. सोमः पूषा च चेततुर्विश्वासां सुक्षितीनाम्।**
**देवत्रा रथ्योर्हिता॥१०॥**

**पदार्थ** :–( **सोमः पूषा च** ) चन्द्रमा और सूर्य अथवा मन और आत्मा ( **विश्वासाम् सुक्षितीनाम्** ) सब उत्कृष्ट प्रजाओं का ( **चेततुः** ) उपकार करना जानते हैं, वे ( **देवत्रा** ) विद्वज्जनों में ( **रथ्योः** ) रथारूढ़ों के समान उन्नति के लिए प्रयत्नशील गुरु–शिष्य, माता–पिता, पिता–पुत्र, पत्नी–यजमान, स्त्री–पुरुष, शास्य–शासक आदि के ( **हिता** ) हितकारी होते हैं॥१०॥

**भावार्थ** :–इन्द्र नामक परमेश्वर की ही यह महिमा है कि उसकी रची हुई सृष्टि में सौम्य चन्द्रमा और तैजस सूर्य तथा मानव शरीर में सौम्य मन और तैजस आत्मा दोनों प्राण आदि के प्रदान द्वारा सब प्रजाओं का उपकार करते हैं। जैसे रथारूढ़ रथस्वामी और सारथि अथवा रानी और राजा क्रमशः मार्ग को पार करते चलते हैं, वैसे ही जो भी गुरु–शिष्य, माता–पिता, पिता–पुत्र, पत्नी–यजमान, स्त्री–पुरुष, शास्य–शासक आदि उन्नति के लिए प्रयत्न करते हैं उनके लिए पूर्वोक्त दोनों चन्द्र–सूर्य और मन–आत्मा परम हितकारी होते हैं॥१०॥

इस दशति में इन्द्र और इन्द्र द्वारा रचित भूमि, गाय, वेदवाणी, चन्द्र, सूर्य आदि का महत्त्व वर्णित होने से और इन्द्र के पास से ऋतु की मेधा की प्राप्ति का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है, यह जानना चाहिए॥

## पञ्चमी दशतिः

**ऋषि :–१, ४ श्रुतकक्षः; २ वसिष्ठः; ३ मेधातिथि-प्रियमेधौ; ५ इरिम्बिठिः; ६, १० मधुच्छन्दाः; ७ त्रिशोकः; ८ कुसीदी; ९ शुनःशेपः॥ देवता–इन्द्रः; ६ प्रजापतिः॥ छन्दः–१ अनुष्टुप्; गायत्री। स्वरः–१ गान्धारः; षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र के महिमागान के लिए मनुष्यों को प्रेरित किया गया है।

**१५५. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।**
**विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१॥**

**पदार्थ** :–हे मनुष्यो! ( **वः** ) तुम ( **अन्धसः** ) भोग्य वस्तुओं के ( **आ पान्तम्** ) सब ओर से रक्षक, ( **विश्वासाहम्** ) समस्त शत्रुओं के विजेता, ( **शतक्रतुम्** ) बहुत बुद्धिमान्, बहुत कर्मण्य, बहुत से यज्ञों को करने वाले, ( **चर्षणीनाम्** ) मनुष्यों को ( **मंहिष्ठम्** ) अतिशय दान करने वाले ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्यशाली वीर परमात्मा और राजा को ( **अभि** ) लक्षित करके ( **प्र गायत** ) प्रकृष्ट रूप से गान करो अर्थात् उनके गुण–कर्म–स्वभावों का वर्णन करो।।१।।

इस मन्त्र में श्लेष और परिकर अलंकार है।।१।।

**भावार्थ** :–सब मनुष्यों को योग्य है कि वे जगत् के रक्षक, समस्त काम-क्रोधादि रिपुओं के विजेता, असंख्य प्रज्ञाओं, असंख्य कर्मों और असंख्य यज्ञों से युक्त, सब मनुष्यों को विद्या, धन, धर्म आदि का अतिशय दान करने वाले परमात्मा के और राष्ट्र के रक्षक, शत्रु–सेनाओं को हराने वाले, विद्वान्, कर्मठ, अनेक यज्ञों के याज्ञिक, प्रजाओं को अतिशय विद्या, आरोग्य, धन आदि देने वाले राजा के प्रति उनके गुण–कर्म–स्वभाव का वर्णन करने वाले स्तुति–गीत और उद्बोधन–गीत गायें।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः इन्द्र के प्रति स्तोत्र–गान के लिए प्रजाओं को प्रेरित किया गया है।

**१५६. प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत।**
**सखायः सोमपाव्ने॥२॥**

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हे ( **सखायः** ) साथियो! ( **वः** ) तुम ( **हर्यश्वाय** ) जिसके द्वारा रचित घोड़े पशु या सूर्य–चन्द्र–वायु–बादल–प्राण आदि बड़े वेगवान् हैं ऐसे, ( **सोमपाव्ने** ) भक्तिरूप सोमरस का पान करने वाले और चन्द्रादि लोकों के रक्षक ( **इन्द्राय** ) परमैश्वर्यवान् परमात्मा के लिए ( **मादनम्** ) आनन्ददायक तृप्तिकारी स्तोत्र को ( **प्र गायत** ) प्रकृष्ट रूप से गाओ।।

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। हे ( **सखायः** ) मित्रभूत प्रजाजनो!

(**वः**) तुम (**हर्यश्वाय**) जिसके अश्वयान, अग्नियान, वायुयान, विद्युत्-यान आदि बहुत वेगवान् हैं उस (**सोमपाव्ने**) राष्ट्र में ब्रह्म-क्षत्र के रक्षक, और यज्ञ के रक्षक (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यशाली शत्रुविदारक राजा के लिए (**मादनम्**) हर्षप्रद और उत्साहकारी उद्बोधनगीत या विजयगीत (**प्र गायत**) भलीभाँति गान करो॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—सब सखाओं को मिलकर परमेश्वर के प्रति स्तुति-गीत और प्रजाओं को मिलकर युद्धारम्भ, विजयोत्सव आदि में राजा के प्रति उद्बोधन-गीत तथा विजय-गीत लयपूर्वक गाने चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि हम परमात्मा की आर्चना करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**१५७. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।**
१ २ ३ १ २
**कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**त्वायन्तः**) आपके पाने की कामना करते हुए (**सखायः**) आपके सखा (**वयम् उ**) हम उपासक लोग (**तदिदर्थाः**) आपके दर्शन को ही प्रयोजन मानते हुए (**त्वा**) आपकी स्तुति करते हैं। न केवल हम, प्रत्युत (**कण्वाः**) सभी मेधावी जन (**उक्थेभिः**) स्तोत्रों से आपकी (**जरन्ते**) स्तुति करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—हे परमानन्दप्रदायक परमेश्वर! आपके दर्शनों की लालसा वाले हम सभी बड़ी उत्सुकता से आपकी चाहना करते हैं और बार-बार भक्ति से गद्गद होकर आपकी स्तुति करते हैं॥३॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा की अर्चना का विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**१५८. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः।**
३ १ २ ३ १ २
**अर्कमर्चन्तु कारवः॥४॥**

**पदार्थ** :—(**मद्वने**) आनन्दमय (**इन्द्राय**) परमेश्वर्यवान् परमात्मा के लिए (**सुतम्**) अभिषुत भक्तिरूप सोमरस को

(**नः**) हमारी (**गिरः**) वाणियाँ (**परिष्टोभन्तु**) तरंगित करें। (**अर्कम्**) उस अर्चनीय देव की (**कारवः**) अन्य स्तोता जन भी (**अर्चन्तु**) मिलकर अर्चना करें।।४।।

**भावार्थ** :–आनन्द प्राप्त करने की कामना वाला मैं प्रेमरस से परिप्लुत हृदय वाला होकर परमानन्दमय परमात्मा के लिए जिन भक्तिरसों को प्रवाहित कर रहा हूँ उनमें मेरी स्तुति-वाणियाँ मानो तरंगें उत्पन्न कर रही हैं। अन्य स्तोता जन भी उसी प्रकार परमात्मा की अर्चना करें जिससे सारा ही वातावरण भक्तिमय और संगीत से तरंगित हो जाए।।४।।

अगले मन्त्र में इन्द्र को रसपान के लिए बुलाया जा रहा है।

**१५९. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।**
**एहीमस्य द्रवा पिब॥५॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् परमात्मन्! (**अयम्**) यह (**सोमः**) श्रद्धारस (**तुभ्यम्**) तेरे लिए (**बर्हिषि अधि**) हृदयरूप अन्तरिक्ष में (**निपूतः**) पूर्णतः पवित्र कर लिया गया है। (**एहि आ, ईम्**) इसके प्रति (**द्रव**) दौड़, (**अस्य**) इसके भाग को (**पिब**) पान कर।।५।।

**भावार्थ** :–जैसे अन्तरिक्षस्थ मेघ-जल पवित्र होता है वैसे ही हृदयान्तरिक्ष में स्थित श्रद्धा-रस को तेरे भक्त मैंने पूर्णतः पवित्र कर लिया है। उस मेरे पवित्र श्रद्धा-रस का पान करने के लिए तू शीघ्र ही आ और उत्कंठित होकर पी, जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ। यहाँ परमात्मा के सर्वव्यापक और निरवयव होने के कारण उसमें शीघ्र आने, पीने आदि का व्यवहार नहीं घट सकता, इसलिए आगमन का अर्थ प्रकट होना तथा पीने का अर्थ स्वीकार करना लक्षणावृत्ति से समझना चाहिए।।५।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा, राजा और आचार्य को बुलाया जा रहा है।

**१६०. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।**
**जुहूमसि द्यविद्यवि॥६॥**

**पदार्थ** :–हम उपासक लोग, प्रजाजन अथवा शिष्यगण (**सुरूपकृत्नुम्**) सृष्ट्युत्पत्ति-स्थिति आदि सुरूप कर्मों के कर्ता परमात्मा को, प्रजापालन-राष्ट्रनिर्माण आदि सुरूप कर्मों के कर्ता राजा को और विद्याप्रदान-सदाचारनिर्माण आदि सुरूप कर्मों के कर्ता आचार्य को (**ऊतये**) क्रमशः उपासना के फल की प्राप्ति के लिए, राष्ट्ररक्षा के लिए और विद्याप्राप्ति के लिए (**द्यविद्यवि**) प्रतिदिन (**जुहूमसि**) पुकारते हैं, (**गोदुहे**) गाय दुहने वाले गोदुग्ध के इच्छुक मनुष्य के लिए (**सुदुघाम् इव**) जैसे दुधारू गाय को बुलाया जाता है॥६॥

इस मन्त्र में श्लेष तथा उपमालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :–जैसे दूध के इच्छुक लोग दूध प्राप्त करने के लिए दुधारू गाय को बुलाते हैं, वैसे ही उपासक लोग, उपासनाजन्य आनन्द की प्राप्ति के लिए परमात्मा को, प्रजाजन राष्ट्र की रक्षा के लिए राजा को और शिष्यजन विद्याग्रहण के लिए आचार्य को प्रतिदिन सत्कारपूर्वक बुलाया करें॥६॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य को सम्बोधन कर कहा गया है।

**१६१. अ॒भि त्वा॑ वृषभा सु॒ते सु॒तं सृ॑जामि पी॒तये॑।**
**तृ॒म्पा व्य॑श्नुही॒ मद॑म्॥७॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**वृषभ**) सुखशान्ति की वर्षा करने वाले परमात्मन्! (**सुते**) इस उपासना-यज्ञ में (**पीतये**) आपके पीने अर्थात् स्वीकार करने के लिए (**सुतम्**) निष्पादित भक्तिरस को (**त्वा अभि**) आपके प्रति (**सृजामि**) समर्पित करता हूँ, आप इससे (**तृम्प**) तृप्त हों। अपने भक्त को अपने प्रेम में डूबे हुए हृदय वाला देखकर (**मदम्**) आनन्द को (**वि अश्नुहि**) प्राप्त करें, जैसे पिता पुत्र को अपने प्रति श्रद्धालु देखकर प्रमुदित होता है॥

(**द्वितीय**) आचार्य के पक्ष में। गुरुकुल में अपने बालक को आचार्य के हाथों में सौंपते हुए पिता कह रहा है–हे (**वृषभ**) ज्ञान-वर्षक आचार्यप्रवर! (**सुते**) इस अध्ययन-अध्यापन रूप सत्र के प्रवृत्त होने पर (**पीतये**) विद्यारस के पान के

लिए (सुतम्) अपने पुत्र को (त्वा अभि) आपके प्रति (सृजामि) छोड़ता हूँ अर्थात् आपके अधीन करता हूँ। आगे पुत्र को कहता है—हे पुत्र! तू आचार्य के अधीन रहकर (तृम्प) ज्ञानरस से तृप्तिलाभ कर, (मदम्) आनन्दप्रद सदाचार को भी (वि अश्नुहि) प्राप्त कर, इस प्रकार आचार्य से विद्या की शिक्षा और व्रतपालन की शिक्षा ग्रहण करके विद्यास्नातक और व्रतस्नातक बन।।७।।

इस मन्त्र में श्लेष और 'सुते-सुतं' में छेकानुप्रास अलंकार है।।७।।

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर भूमि पर मेघ-जल और उपासकों के हृदय में सुख-शान्ति की वर्षा करता है, वैसे ही आचार्य शिष्य के हृदय में विद्या और सदाचार को बरसाता है। अतः सबको परमेश्वर की उपासना और आचार्य की सेवा करनी चाहिए।।७।।

**अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा, जीवात्मा और राजा को कहा गया है।**

**१६२. य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः।**
**पिबेदस्य त्वमीशिषे॥८॥**

**पदार्थ** :—**(प्रथम)** परमात्मा और जीवात्मा के पक्ष में। हे **(इन्द्र)** दुःखविदारक, सुखप्रदाता परमात्मन् अथवा शक्तिशाली जीवात्मन्! **(यः)** जो यह **(सोमः)** भक्तिरस अथवा ज्ञानरस और कर्मरस **(चमसेषु)** ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियरूप चमसपात्रों में, और **(चमूषु)** प्राण-मन-बुद्धिरूप अधिषवणफलकों में **(आ सुतः)** चारों ओर से अभिषुत किया हुआ तैयार है, **(तम्)** उसे **(पिब इत्)** अवश्य पान कर, **(अस्य)** इस भक्तिरस का और इस ज्ञान एवं कर्म के रस का, हे परमात्मन् और हे जीवात्मन्! **(त्वम्)** तू **(ईशिषे)** अधीश्वर है।।

**(द्वितीय)** राजा के पक्ष में। हे **(इन्द्र)** शत्रु को दलन करने में समर्थ पराक्रमशाली राजन्! **(यः)** जो यह **(ते)** आपके **(चमसेषु)** मेघों के समान ज्ञान की वर्षा करने वाले

ब्राह्मणों में, और ( चमूषु ) आपकी क्षत्रिय सेनाओं में ( सोमः ) क्रमशः ब्रह्मरूप और क्षत्ररूप सोमरस ( आसुतः ) अभिषुत है, उसका ( पिब इत् ) अवश्य पान कीजिए, अर्थात् आप भी ब्रह्मबल और क्षत्रबल से युक्त होइए। ( अस्य ) इस ब्रह्मक्षत्ररूप सोम के ( त्वम् ) आप ( ईशिषे ) अधीश्वर हो जाइए॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—परमात्मा स्तोताओं के भक्तिरूप सोम रस को, जीवात्मा ज्ञान और कर्मरूप सोमरस को तथा राजा ब्रह्म-क्षत्र-रूप सोम-रस को यदि ग्रहण कर लें तो स्तोताओं, जीवों और राष्ट्रों का बड़ा कल्याण हो सकता है॥८॥

अगले मन्त्र में आत्मरक्षा के लिए इन्द्र को पुकारा जा रहा है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २

**१६३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २

**सखाय इन्द्रमूतये॥९॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। ( **योगेयोगे** ) योग के विभिन्न स्तरों यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, सविकल्पक-निर्विकल्पक समाधि में ( **तवस्तरम्** ) क्रमशः बढ़ने वाले, योग-विघ्नों को नष्ट करने वाले तथा साधक की उन्नति करने वाले ( **इन्द्रम्** ) सिद्धिप्रदायक परमेश्वर को ( **सखायः** ) हम साथी योगी-जन ( **वाजेवाजे** ) प्रत्येक आन्तरिक देवासुर-संग्राम में ( **ऊतये** ) रक्षा वा विजय-प्राप्ति के लिए ( **हवामहे** ) पुकारें॥

( **द्वितीय** ) सेनाध्यक्ष के पक्ष में। ( **योगेयोगे** ) राष्ट्र के प्रत्येक अप्राप्त की प्राप्तिरूप उत्कर्ष के निमित्त ( **तवस्तरम्** ) अतिशय क्रियाशील, बलवृद्ध, विघ्नविनाशक ( **इन्द्रम्** ) दुष्ट शत्रुओं के विदारक, विजयप्रद, धार्मिक, वीर सेनाध्यक्ष को ( **सखायः** ) परस्पर सखिभाव से निवास करते हुए हम प्रजाजन ( **वाजेवाजे** ) प्रत्येक युद्ध में ( **ऊतये** ) रक्षा और विजय की प्राप्ति के लिए ( **हवामहे** ) पुकारें, उद्बोधन दें॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'योगेयोगे, वाजेवाजे' इस आवृत्ति में छेकानुप्रास है॥९॥

**भावार्थ** :–योगाभ्यास करते हुए मनुष्य के सम्मुख व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि बहुत से विघ्न आते हैं। ईश्वरप्रणिधान या प्रणवजप से वे हटाये जा सकते हैं। इसलिए जब-जब हमारे अन्त:करण में देवासुर-संघर्ष प्रवृत्त होता है, तब-तब हम विघ्नों को पराजित करने और योगसिद्धि को प्राप्त करने के लिए बलवृद्ध परमेश्वर को पुकारते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र में भी जब-जब शत्रुओं का आक्रमण होता है तब-तब उन्हें जीतने के लिए और राष्ट्र की रक्षा के लिए हम शूरवीर सेनापति को उद्बोधन दें, जिससे राष्ट्र शत्रुरहित और उन्नतिशील हो॥९॥

अगले मन्त्र में स्तुतिगीत गाने के लिए सखाओं को निमन्त्रित किया गया है।

**१६४. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।**
**सखाय: स्तोमवाहस:॥१०॥**

**पदार्थ** :–हे (**स्तोमवाहस:**) उपास्य के प्रति स्तोत्रों को ले जाने वाले अथवा जनता का नेतृत्व करने वाले (**सखाय:**) मित्रो! तुम (**तू**) शीघ्र ही (**आ इत**) आओ, (**आ निषीदत**) आकर उपासना के लिए अथवा राष्ट्रोत्थान के लिए बैठो, (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवान्, दु:खविदारक, सुखप्रद परमात्मा को और राष्ट्र को (**अभि**) लक्ष्य करके (**प्र गायत**) गीत गाओ॥१०॥

**भावार्थ** :–सबको उपासनागृह में एकत्र होकर दु:खभंजक, सुखोत्पादक इन्द्र परमेश्वर के प्रति सामगीत गाने चाहिएँ और राष्ट्रोत्थान के लिए कृतसंकल्प होकर तथा कमर कसकर राष्ट्रगीत गाने चाहिएँ॥१०॥

इस दशति में इन्द्र नाम से परमात्मा के गुणवर्णनपूर्वक उसके प्रति स्तुतिगीत गाने के लिए और उसे भक्तिरस एवं कर्मरस रूप सोम अर्पित करने के लिए प्रेरणा होने से तथा उपासकों द्वारा उसका आह्वान होने इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति जाननी चाहिए॥१०॥

## षष्ठी दशतिः

ऋषिः—१ विश्वामित्रः; २ मधुच्छन्दाः; ३ कुसीदी काण्वः; ४ प्रियमेधः; ५, ८ वामदेवः; ६, ९ श्रुतकक्षः; ७ मेधातिथिः; १० बिन्दुः पूतदक्षो वा। देवताः—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में इन्द्र से प्रार्थना की गयी है।

**१६५. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते।**
**पिबा त्वा३स्य गिर्वणः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**राधानां पते**) आध्यात्मिक तथा भौतिक धनों के स्वामी परमात्मन्! (**इदं हि**) यह भक्ति और कर्म का सोमरस (**ओजसा**) सम्पूर्ण बल और वेग के साथ (**अनुसुतम्**) हमने अनुक्रम से अभिषुत किया है। हे (**गिर्वणः**) वाणियों द्वारा संभजनीय और याचनीय देव! आप (**तु**) शीघ्र ही (**अस्य**) इस मेरे भक्तिरस को और कर्मरस को (**पिब**) स्वीकार करें॥१॥

**भावार्थ** :—हे परमेश्वर! आप आध्यात्मिक और भौतिक सकल ऋद्धि-सिद्धियों के परम अधिपति हैं। आपके पास किसी वस्तु की कमी नहीं है, तो भी हमारे प्रति प्रेमाधिक्य के कारण ही आप हमारे प्रेमोपहार को स्वीकार करते हैं। हे देव! आपके लिए हमने सम्पूर्ण बल के साथ भक्तिरस और कर्मरस तैयार किया है। उसे स्वीकार कर हमें अनुगृहीत कीजिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा के महत्त्व का वर्णन है।

**१६६. महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे।**
**द्यौर्न प्रथिना शवः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान्, दुःखविदारक सुखशान्तिप्रदाता परमेश्वर वा राजा (**महान्**) अतिशय महान् है, (**च**) और वह (**नः**) हमारे (**पुरः**) समक्ष ही है। (**वज्रिणे**) उस

न्यायदण्डधारी का (**महित्वम्**) महिमागान, जयजयकार (**अस्तु**) हो। (**शवः**) उसका बल (**प्रथिमा**) विस्तार में (**द्यौः न**) विस्तीर्ण सूर्यप्रकाश के समान है॥२॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—न्यायकारी, परमबली परमेश्वर और राजा का यशोगान करके स्वयं भी सबको न्यायकारी और बलवान् बनना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**१६७. आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय।**
**महाहस्ती दक्षिणेन॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) राजा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली राजन्! (**महाहस्ती**) बड़ी सूँड वाले हाथी के समान विशाल भुजा वाले आप (**तु**) शीघ्र ही (**दक्षिणेन**) दाहिने हाथ से (**नः**) हमारे लिए अर्थात् हमें दान करने के लिए (**क्षुमन्तम्**) प्रशस्त अन्नों से युक्त (**चित्रम्**) आश्चर्यकारी (**ग्राभम्**) ग्राह्य धन को (**आ**) चारों ओर से (**संगृभाय**) संग्रह कीजिए।

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! आप (**तु**) शीघ्र ही (**नः**) हमें देने के लिए (**क्षुमन्तम्**) भौतिक धन, अन्न आदि से युक्त (**चित्रम्**) अद्भुत (**ग्राभम्**) ग्राह्य अध्यात्मसम्पत्ति रूप धन को (**संगृभाय**) संगृहीत कीजिए, जैसे (**महाहस्ती**) विशाल भुजाओं वाला कोई मनुष्य (**दक्षिणेन**) अपने दाहिने हाथ से वस्तुओं का संग्रह करता है, अथवा, जैसे (**महाहस्ती**) प्रशस्त किरणों वाला हिरण्यपाणि सूर्य (**दक्षिणेन**) अपने समृद्ध किरणजाल से भूमि पर स्थित जलों का संग्रह करता है, अथवा, जैसे (**महाहस्ती**) विशाल हाथी (**दक्षिणेन**) अपने बलवान् सूँड-रूप हाथ से विविध वस्तुओं का संग्रह करता है॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'महाहस्ती' में लुप्तोपमा है॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर और राजा सब प्रजाजनों को पुरुषार्थी

करके प्रचुर धन-धान्य से सम्पन्न, विद्यावान्, धार्मिक और योगविद्या के ऐश्वर्य से युक्त करें।।३।।

अगले मन्त्र में मनुष्य को प्रेरणा की गयी है।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २ ३ २
**१६८. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।**
३ २ ३ २ ३ १ २
**सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्य! तू (**गोपतिम्**) सूर्य, पृथिवी आदि लोकों के अथवा राष्ट्रभूमि के स्वामी और पालनकर्ता, (**सत्यस्य सूनुम्**) सत्य ज्ञान और सत्य कर्म के प्रेरक, (**सत्पतिम्**) सज्जनों के रक्षक एवं दुष्टों को दण्ड देने वाले (**इन्द्रम्**) परमात्मा और राजा को (**अभि**) लक्ष्य करके (**गिरा**) वाणी से (**प्र अर्च**) भलीभाँति स्तुति कर अर्थात् इनके गुण-कर्मों का वर्णन कर, (**यथा**) जैसे वे (**विदे**) उस स्तुति को जान लें।।४।।

**इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है।।४।।**

**भावार्थ** :—मनुष्यों को योग्य है कि वे विविध गुणगणों से विभूषित परमेश्वर और राजा को लक्ष्य करके उनके यथार्थ गुण-कर्म-स्वभावों का ऐसा वर्णन करें कि वे उसे जान लें, क्योंकि स्तोतव्य की स्तुति तभी फलदायक होती है जब वह उसके अन्तःकरण को छू लेती है।।४।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नामक परमेश्वर और राजा की कृपा का वर्णन किया गया है।

१ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१६९. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।**
२ ३ १ २ ३ २
**कया शचिष्ठया वृता॥५॥**

**पदार्थ** :—(**चित्रः**) अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाव वाला वह इन्द्रनामक परमेश्वर और राजा (**कया**) कैसी अद्भुत (**ऊती**) रक्षा के द्वारा, और (**कया**) कैसी अद्भुत (**शचिष्ठया**) अतिशय बुद्धिपूर्ण (**वृता**) विद्यमान क्रिया के द्वारा (**नः**) हमारा (**सदावृधः**) सदा बढ़ाने वाला (**सखा**) सखा (**आ भुवत्**) बना हुआ है।।५।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है।।५।।

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर अपनी विलक्षण रक्षा से और विलक्षण क्रियाशक्ति से सब की रक्षा और उपकार करता है, वैसे ही राजा प्रजाजनों का रक्षण और उपकार करे।।५।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा के वरण का विषय है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१७०. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।**
१ २ ३ १ २
**आ च्यावयस्यूतये॥६॥**

**पदार्थ** :—हे स्तोता! तू (**सत्रासाहम्**) जो सत्य को ही सहन करता है, असत्य को नहीं, अथवा जो सत्य से शत्रुओं को परास्त करता है ऐसे (**विश्वासु**) सब (**गीर्षु**) वेदवाणियों में (**आयतम्**) विस्तीर्ण (**त्यम्**) उस इन्द्र नामक वीर परमेश्वर और राजा को (**वः**) वरण कर, स्वात्मशासन और राष्ट्रशासन के लिए चुन, और (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**आ च्यावयसि**) स्वाभिमुख प्रेरित कर।।६।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है।।६।।

**भावार्थ** :—जैसे राष्ट्र की प्रगति और रक्षा के लिए सुयोग्य राजा को चुनना आवश्यक होता है, वैसे ही अपने आत्मा की प्रगति और रक्षा के लिए सत्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले परमात्मा को वरण करना चाहिए।।६।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, सभाध्यक्ष राजा और आचार्य से मेधा की याचना की गयी है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**१७१. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।**
३ २ ३ १ २
**सनिं मेधामयासिषम्॥७॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। मैं (**अद्भुतम्**) आश्चर्यमय गुण-कर्म-स्वभाव वाले, (**इन्द्रस्य**) शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा के (**प्रियम्**) प्रिय, (**काम्यम्**) उपासकों के स्पृहणीय, (**सनिम्**) कृत पाप-पुण्य-रूप कर्मों के फलप्रदाता (**सदसः पतिम्**) हृदयरूप अथवा ब्रह्माण्डरूप यज्ञसदन के

स्वामी परमात्मा से (**मेधाम्**) धारणावती बुद्धि को (**अयासिषम्**) माँगता हूँ।

(**द्वितीय**) सभाध्यक्ष के पक्ष में। मैं (**अद्भुतम्**) अन्यों की अपेक्षा विशिष्ट गुण-कर्म-स्वभाव वाले, इसीलिए (**इन्द्रस्य**) परमात्मा के (**प्रियम्**) प्रिय, (**काम्यम्**) सब प्रजाजनों द्वारा चाहने योग्य, (**सनिम्**) राष्ट्र में धन का संविभाग करने वाले, प्रजाओं को सत्कर्मों का पुरस्कार देने वाले और असत्कर्मों का यथायोग्य दण्ड देने वाले (**सदसः पतिम्**) राष्ट्रसभा के अध्यक्ष राजा से (**मेधाम्**) विद्याप्रचार और धन की (**अयासिषम्**) याचना करता हूँ।।

(**तृतीय**) आचार्य के पक्ष में। मैं (**अद्भुतम्**) ज्ञान-विज्ञान के अद्भुत भण्डार, (**इन्द्रस्य**) विद्याप्रचारक राजा के (**प्रियम्**) प्रिय, (**काम्यम्**) सब विद्यार्थियों द्वारा चाहने योग्य, (**सनिम्**) विविध विद्याओं और व्रतों के दाता (**सदसः पतिम्**) विद्यार्थी-कुल के अध्यक्ष आचार्य से (**मेधाम्**) विद्याबोध की (**अयासिषम्**) याचना करता हूँ।।७।।

**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।७।।**

**भावार्थ** :—जो मनुष्य अद्भुत गुण-कर्म-स्वभाव वाले, अद्भुत ज्ञानविज्ञान की राशि, न्यायकारी, प्रिय परमात्मा, सभाध्यक्ष राजा और आचार्य की शरण में जाते हैं, वे मेधावी, शास्त्रवेत्ता, पुण्यकर्ता और धनवान् होकर सुखी होते हैं।।७।।

अगले मन्त्र में यह विषय वर्णित है कि सब प्रजाएँ आकाशमार्गों को, पृथिव्यादिलोकों के भ्रमण की विद्या को और विमानादि की विद्या को भलीभाँति जानें।

२ ३ १ २ ३ २ ३ २उ ३क २र ३ १ २
**१७२. ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः।**
३ १ २ ३ १ २
**उत श्रोषन्तु नो भुवः॥८॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे इन्द्र! लोकलोकान्तरों के व्यवस्थापक परमेश्वर! (**ये**) जो (**ते**) आपके रचे हुए (**पन्थाः**) मार्ग (**दिवः**) द्युलोक के (**अधः**) नीचे, अन्तरिक्ष में हैं (**येभिः**) जिनसे (**व्यश्वम्**) बिना घोड़ों के चलने वाले पृथिवी, चन्द्र, मंगल, बुध आदि ग्रहोपग्रहसमूह

को (ऐरय:) आप चलाते हो, उन मार्गों को (नः) हमारी (भुवः) भूलोकवासी प्रजाएँ भी (श्रोषन्तु) सुनें, और सुनकर जानें।

(द्वितीय) राजा के पक्ष में। हे इन्द्र राजन्! (ये) जो (ते) आपके निर्धारित (पन्थाः) आकाश-मार्ग (दिवः) द्युलोक से (अधः) नीचे अर्थात् भूमि, समुद्र और अन्तरिक्ष में हैं, (येभिः) जिन (व्यश्वम्) बिना घोड़ों से चलने वाले भूयान, जलयान और विमानों को (ऐरयः) आप चलवाते हैं, उन भूमि, समुद्र, आकाश के मार्गों के विषय में (नः) हमारी (भुवः उत) जन्मधारी राष्ट्रवासी प्रजाएँ भी (श्रोषन्तु) वैज्ञानिकों के मुख से सुनें, और सुनकर भूयान, जलयान, विमान, कृत्रिम उपग्रह आदि के बनाने और चलाने की विद्या को भलीभाँति जानें॥८॥

अन्तरिक्ष मार्गों का वर्णन अथर्ववेद के एक मन्त्र में इस प्रकार है—"**जो विद्वान् लोगों के यात्रा करने योग्य बहुत से मार्ग** द्युलोक **और पृथिवीलोक के मध्य में बने हुए हैं, वे मुझे** सुलभ हों, जिससे **मैं उनसे यात्रा करके विदेशों में** दूध-**घी** बेचकर धन इकट्ठा करके लाऊँ, (अथ० ३।१५।२)। समुद्र और अन्तरिक्ष में चलने वाले यानों का वर्णन भी वेद में बहुत स्थलों पर मिलता है, जैसे "हे ब्रह्मचर्य द्वारा परिपुष्ट युवक! जो तेरे लिए सोने-जैसी उज्ज्वल नौकाएँ अर्थात् नौका जैसी आकृति वाले जलपोत और विमान समुद्र में और अन्तरिक्ष में चलते हैं, उनके द्वारा यात्रा करके तू सूर्यपुत्री उषा के तुल्य ब्रह्मचारिणी कन्या को विवाह द्वारा प्राप्त करने के लिए जाता है (ऋ० ६।५८।३)। बिना घोड़ों के चलने वाले वेगवान् यान का वर्णन वेद में अन्यत्र भी है, यथा—"एक तीन पहियों वाला रथ है, जिसमें न घोड़े जुते हैं, न लगामें हैं, जो बड़ा प्रशंसनीय है और जो आकाश में किसी लोक की परिक्रमा करता है।" (ऋ० ४।३६।१)

**भावार्थ** :—परमेश्वर अन्तरिक्ष-मार्ग में सूर्य को और भूमण्डल-चन्द्रमा-मंगल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि आदि ग्रहोपग्रहों को जैसा चाहिए वैसा उनकी धुरी पर या उनकी अपनी-अपनी

कक्षाओं में संचालित करता है, और राष्ट्र का कुशल राजा भूयान, जलयान, विमान, कृत्रिम उपग्रह आदिकों को कुशल वैज्ञानिकों के द्वारा चलवाता है। तद्विषयक सारी विद्या राष्ट्रवासियों को पढ़नी-पढ़ानी और प्रयोग करनी चाहिए।।८।।

अगले मन्त्र में इन्द्र से भद्र की प्रार्थना की गयी है।

**१७३. भद्रंभद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो।**
**यदिन्द्र मृडयासि नः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**शतक्रतो**) अनन्त शुभ कर्मों को करने वाले प्रभो! तुम (**भद्रंभद्रम्**) भद्र-भद्र (**इषम्**) अन्न, धन, विज्ञान आदि और (**ऊर्जम्**) बल, प्राण, रस आदि (**नः**) हमारे लिए (**आ भर**) लाओ। (**यत्**) क्योंकि, हे (**इन्द्र**) दयानिधि परमात्मन्! आप (**नः**) हमें (**मृडयासि**) सदा सुखी ही करते हो।।९।।

**भावार्थ** :—मनुष्यों को भद्र-भद्र ही धन आदि का उपार्जन करके अपनी और दूसरों की उन्नति करनी चाहिए।।९।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कौन सोम का पान करते हैं।

**१७४. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।**
**उत स्वराजो अश्विना॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे मेरे आत्मारूप इन्द्र! (**अयम्**) यह (**सोमः**) भक्तिरस, ज्ञानरस, कर्मरस, वीरतारस या सेवा आदि का रस (**सुतः**) अभिषुत (**अस्ति**) है। (**मरुतः**) शरीर में प्राण तथा राष्ट्र में वीर क्षत्रिय जन (**उत**) और (**स्वराजः**) शरीर में अपने तेज से शोभायमान मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार तथा राष्ट्र में अपने ब्रह्मवर्चस से देदीप्यमान ब्राह्मणजन और (**अश्विना**) शरीर में अपने-अपने विषय में व्याप्त होने वाले ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय तथा राष्ट्र में कृषि-व्यापार एवं शिल्प में व्याप्त होने वाले वैश्य और शिल्पकार लोग (**अस्य**) इस पूर्वोक्त सोम रस का (**पिबन्ति**) यथायोग्य पान करते हैं।।१०।।

इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :—शरीर में मन, बुद्धि, आत्मा, प्राण एवं इन्द्रिय रूप देव तथा राष्ट्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शिल्पी रूप देव यथायोग्य भक्ति, ज्ञान, कर्म, वीरता, सेवा आदि के सोमरसों का पान करके ही जीवन-संग्राम में सफल होते हैं॥१०॥

इस दशति में इन्द्रनामक परमेश्वर के प्रति सोम अभिषुत करने का, परमेश्वर की महिमा का और उससे समृद्धि, मेधा आदि की याचना का वर्णन होने से और परमेश्वर की अर्चना के लिए प्रेरणा होने से तथा उसके अधीन रहने वाले अन्य शारीरिक एवं राष्ट्रीय देवों के सोमपान का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## सप्तमी दशतिः

**ऋषिः—१ इन्द्रमातरो देवजामयः; २ गोधा; ३ दध्यङ्ङाथर्वणः; ४ प्रस्कण्वः; ५ गोतमः; ६ मधुच्छन्दाः; ७ वामदेवः; ८ वत्सः; ९ शुनःशेपः; १० वातायन उलः॥**

**देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर की उपासना और राजा के अभिनन्दन का वर्णन है।

३ १ २    ३ २ ३ १ २    ३ १ २र<br>
**१७५. ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते।**<br>
३   १ २   ३ १ २<br>
**वन्वानासः सुवीर्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**ईङ्खयन्तीः**) हर्ष से उछलती हुई, (**अपस्युवः**) कर्म करने की अभिलाषा वाली प्रजाएँ (**सुवीर्यम्**) श्रेष्ठ वीर्य से युक्त ऐश्वर्य की (**वन्वानासः**) चाहना या याचना करती हुई (**जातम् इन्द्रम्**) हृदय में प्रादुर्भूत परमेश्वर की (**उपासते**) उपासना करती हैं, अथवा (**जातम् इन्द्रम्**) निर्वाचित तथा अभिषिक्त राजा का (**उपासते**) अभिनन्दन व सेवन करती हैं॥१॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—राष्ट्र की प्रजाएँ ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए जैसे राजा का सेवन करती हैं, वैसे ही उन्हें भौतिक तथा आध्यात्मिक

सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में प्रजाएँ अपने आचरण की शुद्धि के विषय में प्रतिज्ञा कर रही हैं।

**१७६. न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि।**
**मन्त्रश्रुत्यं चरामसि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन् अथवा हे इन्द्र राजन्! (**देवाः**) हे दिव्य ज्ञान और दिव्य आचरण वाले विद्वज्जनो! हम (**नकि**) न तो (**इनीमसि**) हिंसा करते हैं (**नकि**) और न ही (**आ योपयामसि**) छल-छद्म करते हैं, अपितु (**मन्त्रश्रुत्यम्**) वेदमन्त्रों में निर्दिष्ट कर्त्तव्य का ही (**चरामसि**) पालन करते हैं और करते रहेंगे॥२॥

इस मन्त्र में तीनों क्रियापदों का एक कारक से सम्बन्ध होने के कारण दीपकालंकार है। 'मसि' की तीन बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को हिंसा, उपद्रव, चोरी आदि और छल-कपट-ठगी आदि छोड़कर वेदों के अनुसार पवित्र जीवन बिताना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में मनुष्य को परमात्मा और राजा की स्तुति के लिए प्रेरणा की गयी है।

**१७७. दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण।**
**स्तुहि देवं सवितारम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**द्युमद्गामन्**) विद्यादिसद्गुणों से प्रकाशित आचरण वाले (**आथर्वण**) अचंचल वृत्ति वाले अतिशय स्थितप्रज्ञ विद्वन्! देख, (**दोषा उ**) अज्ञान, मोह, दुर्व्यसन, दुराचार आदि की अँधियारी रात (**आ अगात्**) आ गयी है, इसलिए तू (**बृहत्**) बहुत अधिक (**गाय**) गान कर अर्थात् सदुपदेश, शुभ शिक्षा आदि के द्वारा धर्मवाणी को फैला, (**देवम्**)

प्रकाशमय और प्रकाशक (सवितारम्) सद्विद्या आदि के प्रेरक इन्द्र प्रभु की (अर्च) अर्चना कर, अथवा (सवितारम्) सद्विद्या आदि के प्रेरक इन्द्र राजा को (अर्च) उद्बोधन दे। इस ऋचा का देवता इन्द्र होने से 'सविता' यहाँ इन्द्र का ही विशेषण जानना चाहिए।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे गगन में उदित हुआ सूर्य अपनी किरणों से घनघोर अन्धकार वाली रात्रि को हटाकर सर्वत्र प्रकाश फैला देता है, वैसे ही मनुष्यों के हृदयों में प्रकट हुआ परमात्मा और राष्ट्र में राजा के पद पर अभिषिक्त हुआ वीर मनुष्य सर्वत्र व्याप्त अधर्म, अज्ञान, दुश्चरित्रता, दुराचार आदि की काली रात को विदीर्ण कर धर्म, विद्या, सच्चरित्रता आदि के उज्ज्वल प्रकाश को चारों ओर फैला देता है। अतः विद्वानों को चाहिए कि वे उस परमात्मा और राजा की उनके गुणों के वर्णन द्वारा पुनः-पुनः स्तुति करें।।३।।

अगले मन्त्र में रात्रि के हट जाने पर छिटकी हुई उषा का वर्णन किया गया है।

**१७८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।**
**स्तुषे वामश्विना बृहत्॥४॥**

**पदार्थ** :—(**एषा उ**) यह (**अपूर्व्या**) अपूर्व, (**प्रिया**) प्रिय (**उषाः**) उषा के समान प्रकाशमयी धर्म, विद्या आदि की ज्योति (**दिवः**) द्युतिमान् इन्द्र अर्थात् परमेश्वर, आचार्य या राजा के पास से उत्पन्न होकर (**व्युच्छति**) अधर्म, अज्ञान आदि रूप अन्धकार को विदीर्ण कर छिटक रही है। (**अश्विना**) हे प्राकृतिक उषा से प्रकाशित द्यावापृथिवी के समान धर्म, ज्ञान आदि से प्रकाशित स्त्री-पुरुषो! मैं (**वाम्**) तुम्हारी (**बृहत्**) बहुत अधिक (**स्तुषे**) स्तुति करता हूँ।।४।।

**भावार्थ** :—पहले मन्त्र में रात्रि को दूर करने की प्रार्थना की गयी थी। सौभाग्य से उस हृदयव्यापिनी राष्ट्रव्यापिनी और विश्वव्यापिनी अधर्मरूपिणी या अविद्यारूपिणी रात्रि को हटाकर दिव्य प्रकाशमयी धर्मरूपिणी या विद्यारूपिणी उषा

प्रकट हो गयी है। जैसे प्राकृतिक उषा के प्रादुर्भाव से द्यावापृथिवी प्रकाश से भर जाते हैं, वैसे ही इस धर्म, विद्या, सच्चरित्रता, आध्यात्मिकता आदि की ज्योति से परिपूर्ण दिव्य उषा के प्रकाश से स्त्री-पुरुष-रूप द्यावापृथिवी दिव्य दीप्ति से देदीप्यमान हो उठे हैं।।४।।

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि रात्रि में जो निशाचर प्रकट हो जाते हैं, उनका वध कैसे होता है।

**१७९. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।**
**जघान नवतीर्नव ॥५॥**

**पदार्थ** :-( **अप्रतिष्कुतः** ) आन्तरिक देवासुर-संग्राम में असुरों से प्रतिकार न किया गया अथवा असुरों के मुकाबले में पराजित न होता हुआ ( **इन्द्रः** ) बलवान् जीवात्मा व परमात्मा ( **दधीचः** ) ध्यान में संलग्न मन को ( **अस्थभिः** ) अस्थि-तुल्य सुदृढ़ सात्त्विक **वृत्तियों** से ( **नवतीःनव** ) निन्यानवे ( **वृत्राणि** ) घेरने वाले **निशाचरों को** ( **जघान** ) **नष्ट कर देता है।** निन्यानवे निशाचर हैं-दस इन्द्रियाँ, दस प्राण, आठ चक्र, अन्तः करण चतुष्टय और शरीर इन तैंतीस साधनों से भूतकाल में किये गये, वर्तमान में किये जा रहे तथा भविष्य में किये जाने वाले पाप। उन सबको जीवात्मा और परमात्मा सावधान मन की सात्त्विक वृत्तियों से नष्ट कर देते हैं।।५।।

**भावार्थ** :-पूर्व के दो मन्त्रों में रात्रि का और उसके निवारणार्थ उषा के प्रादुर्भाव का क्रमशः वर्णन किया गया था। इस मन्त्र में रात्रियों में उत्पन्न होने वाले निशाचरों के विनाश का वर्णन है कि इन्द्र दध्यङ् की हड्डियों से उन्हें मार देता है। यह इन्द्र मनुष्य के शरीर में विद्यमान जीवात्मा और हृदय में स्थित परमात्मा है। दध्यङ् मन है। उस मन की सात्त्विक वृत्ति रूप हड्डियों से उन निशाचरों का वध हो जाता है।।५।।

इस मन्त्र की व्याख्या में विवरणकार माधव ने इस प्रकार इतिहास प्रदर्शित किया है-"कालकंज नामक असुर थे। उन

असुरों से सताये जाते हुए देव ब्रह्मा के समीप पहुँचकर बोले—भगवन्, कालकंज असुर हमें सता रहे हैं, उनके मारने का उपाय कीजिए। यह सुनकर उसने देवों को कहा—दधीचि नाम का ऋषि है, उसके पास जाकर उसे कहो, वह मारने का उपाय कर देगा। यह सुनकर वैसा ही करना स्वीकार करके उस दधीचि के समीप पहुँचकर बोले—भगवन्, हमारे अस्त्रों को असुरों का पुरोहित शुक्र चुरा लेता है, उससे उनकी रक्षा कीजिए। उस ऋषि ने उनसे कहा कि इन अस्त्रों को मेरे मुख में डाल दो। तब मरुद्गणों सहित इन्द्र आदि देवों ने अस्त्र उसके मुख में डाल दिये। फिर समय आने पर जब देवासुरसंग्राम उपस्थित हुआ तब ऋषि के पास पहुँच देव बोले—भगवन्, अब वे अस्त्र हमें दे दीजिए। तब ऋषि ने कहा—वे तो पच गये। अब वे पुनः नहीं मिल सकते। तब प्रजापति आदि देव बोले—भगवन्, प्राणत्याग कर दीजिए। यह सुनकर उसने प्राणत्याग कर दिया। तब दधीचि की अस्थियों से इन्द्र ने वृत्रों का वध किया।

सायण ने शाट्यायनियों का उल्लेख करते हुए उनके नाम से यह इतिहास लिखा है—अथर्वा के पुत्र दधीचि जब जीवित थे तब उनके देखने से ही असुर पराजित हो जाते थे। फिर जब वे स्वर्गवासी हो गये तब भूमि असुरों से भर गयी। तब इन्द्र ने उन असुरों से युद्ध करने में स्वयं को असमर्थ पाकर जब उस ऋषि की खोज की तब उसने सुना कि वे तो स्वर्ग चले गये। तब वहाँ के लोगों से पूछा कि क्या उन ऋषि का कोई अंग बचा हुआ है? उन लोगों ने उसे बतलाया कि उसका घोड़े वाला सिर अवशिष्ट है, जिस सिर से उसने अश्वि देवों को मधुविद्या का प्रवचन किया था, पर हम यह नहीं जानते कि वह कहाँ है। तब इन्द्र ने उनसे कहा कि उसे खोजो। उन्होंने उसे खोजा और शर्यणावत् सरोवर में, जो कुरुक्षेत्र के जघनार्ध में प्रवाहित होता है, उसे पाकर ले आये। उसके सिर की अस्थियों से इन्द्र ने असुरों का वध किया।

कुछ नवीन पात्रों को कल्पित कर पुराण, महाभारत आदि में भी कुछ-कुछ भेद से इस प्रकार की कथाएँ वर्णित हैं। ये सब कथाएँ इसी मन्त्र को आधार बनाकर रची गयी हैं। वे

वास्तविक नहीं, अपितु आलंकारिक ही जाननी चाहिए। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक क्षेत्रों में सर्वत्र ही देवासुरसंग्राम चल रहा है। मनुष्य के मन में दिव्य प्रवृत्तियों और आसुरी प्रवृत्तियों का संग्राम आध्यात्मिक क्षेत्र का संग्राम है, जैसा हमारे द्वारा कृत इस मन्त्र की व्याख्या में स्पष्ट है। इन्द्र परमेश्वर दध्यङ् सूर्य की अस्थियों से अर्थात् अस्थिसदृश किरणों से मेघों का और रोग आदियों का वध करता है, यह अधिदैवत व्याख्या है। इन्द्र राजा दध्यङ् सेनापति की अस्थियों अर्थात् अस्थियों के समान सुदृढ शस्त्रास्त्रों से शत्रुओं का संहार करता है, यह अधिभूत व्याख्या है। वेदों में दध्यङ् नाम के किसी ऐतिहासिक मुनिविशेष की गाथा का होना तो सम्भव ही नहीं है, क्योंकि वेद सभी ऐतिहासिक मुनियों से पूर्व ही विद्यमान थे और पूर्ववर्ती वेद में परवर्तियों का इतिहास कैसे हो सकता है?

ऋषि दयानन्द ने ऋग्भाष्य (ऋ० १।८४।१३) में इस मन्त्र की व्याख्या **में सूर्य के दृष्टान्त से सेनापति का कृत्य वर्णित** किया है। वहाँ उन **द्वारा प्रदर्शित भावार्थ यह है—"यहाँ** वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। **मनुष्यों को उसे ही सेनापति** बनाना चाहिए जो सूर्य के समान दुष्ट शत्रुओं का हन्ता और अपनी सेना का रक्षक हो।"

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर और विद्वान् का आह्वान किया गया है।

**१८०. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।**
**महाँ अभिष्टिरोजसा॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) दुर्गुणों को विदीर्ण तथा सद्गुणों को प्रदान करने वाले परमेश्वर! आप (**आ इहि**) हमारे जीवन-यज्ञ में आइए, (**अन्धसः**) हमारे पुरुषार्थरूप अन्न से तथा (**विश्वेभिः**) सब (**सोमपर्वभिः**) भक्ति-समारोहों से (**मत्सि**) प्रसन्न होइए। आप (**महान्**) महान् और (**ओजसा**) बल से (**अभिष्टिः**) हमारे कामादि रिपुओं के प्रति आक्रमण करने वाले हो॥

(**द्वितीय**) विद्वान् के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) विद्यारूप ऐश्वर्य से युक्त विद्वन्! आप (**आ इहि**) आइए, (**अन्धसः**) सात्त्विक अन्न से, तथा (**विश्वेभिः**) सब (**सोमपर्वभिः**) बल बढ़ाने वाली सोम आदि ओषधियों के खण्डों से (**मत्सि**) तृप्त होइए। आप महान् गुणों में महान्, तथा (**ओजसा**) विद्याबल से (**अभिष्टिः**) अभीष्ट प्राप्त कराने वाले और समाज के अविद्या दुराचार आदि दुर्गुणों पर आक्रमण करने वाले, बनिए।।६।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।६।।

**भावार्थ** :—जैसे पुरुषार्थ और भक्ति से प्रसन्न किया गया परमेश्वर मनुष्यों के काम, क्रोध, हिंसा, उपद्रव आदि सब शत्रुओं को क्षण भर में ही विनष्ट कर देता है, वैसे ही विद्वान् मनुष्य को चाहिए कि वह सात्त्विक एवं पुष्टिप्रद अन्न, ओषधि आदि से परिपुष्ट होकर राष्ट्र से अविद्या आदि दुर्गुणों का शीघ्र ही विनाश करे।।६।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा और विद्वान् आचार्य को पुकारा गया है।

**१८१. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि।**
**महान्महीभिरूतिभिः॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (**वृत्रहन्**) अविद्या, विघ्न, दुःख, पाप आदि के विनाशक (**इन्द्र**) परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! आप (**तु**) शीघ्र ही (**नः**) हमारे समीप (**आ**) आइए। आप (**अस्माकम्**) हम स्तोताओं व शिष्यों के (**अर्धम्**) अपूर्ण जीवन में (**आ गहि**) आइए। आप (**महीभिः**) अपनी महान् रक्षाओं से (**महान्**) महान् हैं।।७।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'महा, मही' में छेकानुप्रास है।।७।।

**भावार्थ** :—अपूर्ण, बहुत से दोषों से युक्त, विविध विघ्नों से प्रताड़ित मनुष्य अपने जीवन में परमात्मा, राजा और गुरु की सहायता से ही उन्नति कर सकता है।।७।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के ओज का वर्णन है।

**१८२. ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत्।**
**इन्द्रश्चर्मेव रोदसी॥८॥**

**पदार्थ** :–(**तत्**) वह (**अस्य**) इस इन्द्र परमेश्वर का (**ओजः**) ओज अर्थात् महान् बल और तेज (**तित्विषे**) प्रकाशित हो रहा है, (**यत्**) जो कि (**इन्द्रः**) वह शक्तिशाली परमेश्वर (**उभे**) दोनों (**रोदसी**) द्युलोक और भूलोक को (**चर्म इव**) मृगछाला के आसन के समान (**समवर्तयत्**) सृष्टिकाल में फैलाता है और प्रलयकाल में समेट लेता है॥८॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :–जैसे कोई योगी सन्ध्योपासना के लिए मृगछाला के आसन को बिछाता है और सन्ध्योपासना समाप्त करके उसे समेट लेता है, वैसे ही परमात्मा अपने ओज से सृष्ट्युत्पत्ति के समय सब जगत् को फैलाता है और प्रलय के समय समेट लेता है॥८॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के साथ अपना स्नेह-सम्बन्ध सूचित किया गया है।

**१८३. अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम्।**
**वचस्तच्चिन्न ओहसे॥९॥**

**पदार्थ** :–हे इन्द्र परमात्मन्! (**अयम्**) यह उपासक (**उ**) सचमुच (**तव**) तेरा ही है, जिसके पास तू (**समतसि**) पहुँचता है, (**कपोतः**) कबूतर (**इव**) जैसे (**गर्भधिम्**) अण्डों से नये निकले हुए बच्चों के आवास-स्थान घोंसले में पहुँचता है। (**तत् चित्**) इसी कारण, (**नः**) हमारे (**वचः**) स्नेहमय स्तुति-वचन को, तू (**ओहसे**) स्वीकार करता है॥९॥

यास्काचार्य ने इस मन्त्र के प्रथम पाद को 'उ' के पदपूरक होने के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया है। निरु० १।१० इस मन्त्र में उपमालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :–जैसे कबूतर घोंसले में स्थित शिशुओं के पालन के लिए घोंसले में जाता है, वैसे ही परमेश्वर अपने शिशु

उपासकों के पालन के लिए उनके पास जाता है। और, जैसे कबूतर अपने शिशुओं के शब्द को उत्कण्ठापूर्वक सुनता है, वैसे ही परमेश्वर स्तोताओं के स्तुतिवचन को प्रेमपूर्वक सुनता है॥९॥

अगले मन्त्र में 'वात' से भेषज आदि की आकांक्षा की गयी है।

**१८४. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।**
**प्र न आयूँषि तारिषत्॥१०॥**

**पदार्थ** :–( **वातः** ) वायु को चलाने वाला इन्द्र परमेश्वर, अथवा परमेश्वर द्वारा रचित वायु और प्राण ( **भेषजम्** ) औषध को ( **आ वातु** ) प्राप्त कराये, ( **यत्** ) जो ( **नः** ) हमारे ( **हृदे** ) हृदय के लिए ( **शम्भु** ) रोगों का शमन करने वाला, और ( **मयोभु** ) सुखदायक हो। वह परमेश्वर, वायु और प्राण ( **नः** ) हमारे ( **आयूंषि** ) आयु के वर्षों को ( **प्रतारिषत्** ) बढ़ायें॥१०॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'वात, वातु' में छेकानुप्रास है॥१०॥

**भावार्थ** :–ईश्वरप्रणिधानपूर्वक प्राणायाम करने से चित्त की शुद्धि, हृदय का बल, शरीर का आरोग्य और दीर्घायुष्य प्राप्त होते हैं।

इस दशति में इन्द्र परमेश्वर की सहायता से अविद्या, अधर्म आदि के अन्धकार से पूर्ण रात्रि के निवारण का, दिव्य उषा के प्रादुर्भाव का, इन्द्र द्वारा वृत्र के संहार का, परमात्मा, वायु और प्राण से औषध-प्राप्ति का और यथायोग्य राजा एवं आचार्य के भी योगदान का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति जाननी चाहिए॥

## अष्टमी दशतिः

**ऋषिः–१ कण्वः; २, ३, ९ वत्सः; ४ श्रुतकक्षः; ५ मधुच्छन्दाः; ६ वामदेवः; ७ इरिम्बिठिः; ८ वारुणिः सत्यधृतिः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में मित्र, वरुण और अर्यमा का विषय है।

**१८५. यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा।**
**न किः स दभ्यते जनः॥१॥**

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) अध्यात्मपक्ष में। ऋचा का देवता इन्द्र होने से इन्द्र को सम्बोधन अपेक्षित है। हे ( **इन्द्र** ) मेरे अन्तरात्मन्! ( **यम्** ) जिस मनुष्य को ( **प्रचेतसः** ) हृदय में सदा जागने वाले ( **वरुणः** ) पाप-निवारण का गुण, ( **मित्र** ) मित्रता का गुण और ( **अर्यमा** ) न्यायकारिता का गुण ( **रक्षन्ति** ) विपत्तियों से बचाते तथा पालते हैं, ( **सः** ) वह ( **जनः** ) मनुष्य ( **न किः** ) कभी नहीं ( **दभ्यते** ) हिंसित होता है।।

( **द्वितीय** ) राष्ट्रपक्ष में। ( **यम्** ) जिस राजा की ( **प्रचेतसः** ) प्रकृष्ट चित्तवाले, प्रकृष्ट विज्ञान वाले, सदा जागरूक ( **वरुणः** ) पाशधारी, शस्त्रास्त्रों से युक्त, शत्रुनिवारक, सेनापति के पद पर चुना गया सेनाध्यक्ष, ( **मित्रः** ) देश-विदेश में मित्रता के सन्देश को फैलाने वाला मैत्रीसचिव, और ( **अर्यमा** ) न्यायाधीश वा न्यायमन्त्री ( **रक्षन्ति** ) रक्षा करते हैं, ( **सः** ) वह ( **जनः** ) राजा ( **नकिः** ) कभी भी किसी से नहीं ( **दभ्यते** ) पराजित या हिंसित होता है।।१।।

**भावार्थ** :–सब मनुष्यों को चाहिए कि पाप-निवारण, मैत्री तथा न्याय के गुणों को अपने हृदय मे धारण करें, और राजा को चाहिए कि वह अपने राष्ट्र में सेनाध्यक्ष, मैत्रीसचिव, न्यायाधीश आदि के विविध पदों पर सुयोग्य जनों को ही नियुक्त करे, जिससे शत्रुओं का उच्छेद और प्रजा का उत्कर्ष निरन्तर सिद्ध होते रहें।।१।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**१८६. गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया।**
**वरिवस्या महोनाम्॥२॥**

**पदार्थः**–हे इन्द्र! परमैश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मन् और राजन्! आप ( **गव्या** ) गायों, भूमियों, वाक्शक्तियों, विद्युद्विद्याओं और

अध्यात्मप्रकाश की किरणों को प्रदान करने की इच्छा से, (उ सु) और (अश्वया) घोड़ों, प्राण-बलों, अग्नि तथा सूर्य की विद्याओं को प्रदान करने की इच्छा से, (उत) और (रथया) भूमि, जल व अन्तरिक्ष में चलने वाले यानों एवं मानव-देह-रूप रथों को प्रदान करने की इच्छा से, तथा (महोनाम्) हम महानों को (वरिवस्या) धन प्रदान करने की इच्छा से (यथा पुरा) पहले के समान अब भी (नः) हमारे पास, आइये॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥२॥

**भावार्थ** :-परमेश्वर की कृपा से, राजा की सुव्यवस्था से और अपने पुरुषार्थ से मनुष्यों को दुधारू गौएँ, बलवान् घोड़े, तेल-गैस-बिजली-सूर्यताप आदि से चलाये जाने वाले भूमि, जल और अन्तरिक्ष में चलने वाले यान, वाणी का बल, प्राण-बल, अग्नि-वायु-बिजली एवं सूर्य की विद्याएँ, अध्यात्म-प्रकाश और चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करने चाहिएँ॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र की पृश्नियाँ क्या करती हैं, इसका वर्णन है।

**१८७. इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम्।**
**एनामृतस्य पिप्युषीः॥३॥**

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) यज्ञ के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) गोपालक यजमान! (**ऋतस्य**) यज्ञ की (**पिप्युषीः**) बढ़ाने वाली (**इमाः**) ये (**ते**) तेरी (**पृश्नयः**) यज्ञ के उपयोग में आने वाली अनेक रंगों वाली गायें (**घृतम्**) घी, और (**एनाम् आशिरम्**) इस दूध को (**दुहते**) प्रदान करती हैं॥

(**द्वितीय**) अध्यात्म-पक्ष में। हे (**इन्द्र**) जीवात्मन्! (**ऋतस्य**) सत्य का (**पिप्युषीः**) पान कराने वाली (**इमाः**) ये (**पृश्नयः**) वेद-माताएँ ते तेरे लिए (**घृतम्**) तेज-रूप घी को अर्थात् ब्रह्मवर्चस को, और (**एनाम् आशिरम्**) इस परिपक्व आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, विद्या आदि के दूध को (**दुहते**) प्रदान करती हैं॥

(**तृतीय**) वर्षा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**इमाः**)

ये तो आपकी रची हुई (पृश्नयः) रंग-बिरंगी मेघमालाएँ (आशिरम्) सूर्य के ताप से भाप बने हुए (घृतम्) जल को (दुहते) बरसाती हैं, और (एनाम्) इस भूमि को (ऋतस्य) वृष्टिजल का (पिप्युषीः) पान कराने वाली होती हैं।।३।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे यजमान की गायें यज्ञार्थ घी और दूध देती हैं, मेघमालाएँ खेती आदि के लिए वर्षाजल-रूप दूध बरसाती हैं, वैसे ही वेद-माताएँ जीव के लिए ब्रह्मवर्चस-रूप घी और वायु-प्राण आदि रूप दूध देती हैं।।३।।

अगले मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति का उपाय वर्णित है।

**१८८. अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत।**
**यत् सोमेसोम आभुवः॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**पुरुणामन्**) सर्वान्तर्यामिन् एवं वेदों में शक्र, वृत्रहा, मघवान्, शचीपति आदि अनेक नामों से वर्णित, (**पुरुष्टुत**) बहुस्तुत इन्द्र परमात्मन्! (**अया**) इस (**गव्यया**) आत्मा-रूप सूर्य की किरणों को पाने की कामना वाली (**धिया**) बुद्धि तथा ध्यान-शृंखला से (**च**) ही, यह सम्भव है (**यत्**) कि, आप (**सोमेसोमे**) हमारे प्राण-प्राण में, प्रत्येक श्वास में (**आभुवः**) व्याप्त हो जाओ।।४।।

**भावार्थ** :—यदि हम तमोगुण से ढकी हुई आत्मसूर्य की किरणों को निश्चयात्मक बुद्धि और ध्यान से पुनः पाने का यत्न करें, तभी यह सम्भव है कि परमेश्वर हमारे प्राण-प्राण में, श्वास-श्वास में और रोम-रोम में व्याप्त हो जाए।।४।।

अगले मन्त्र में वाणी और विदुषी का विषय वर्णित है।

**१८९. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।**
**यज्ञं वष्टु धियावसुः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) वेदवाणी के पक्ष में। ऋचा का देवता इन्द्र होने से इन्द्र को सम्बोधन किया जाना चाहिए। हे इन्द्र परमेश्वर! आपकी (**वाजिनीवती**) क्रियामयी अथवा कर्म का

उपदेश देने वाली (**सरस्वती**) ज्ञानमयी वेदवाणी (**वाजेभिः**) विज्ञान-रूप बलों से (**नः**) हमें (**पावका**) पवित्र करने वाली हो। (**धियावसुः**) ज्ञान और कर्म के उपदेश से बसाने वाली वह (**यज्ञम्**) हमारे जीवन-यज्ञ को (**वष्टु**) भलीभाँति चलाये, संस्कृत करे।।

(**द्वितीय**) गुरुओं की वाणी के पक्ष में। गुरुजन कामना कर रहे हैं। हे इन्द्र परमात्मन्! आपकी कृपा से (**नः**) हमारी (**वाजिनीवती**) विद्या से पूर्ण (**सरस्वती**) वाणी (**वाजेभिः**) सदाचार-रूप धनों से (**पावका**) शिष्यों को पवित्र करने वाली हो। (**धियावसुः**) बुद्धिपूर्वक शिष्यों में ज्ञान को बसाने वाली वह (**यज्ञम्**) शिक्षा-रूप यज्ञ का (**वष्टु**) भलीभाँति वहन करे।।

(**तृतीय**) विदुषी के पक्ष में। हे इन्द्र! हे विद्वान् गृहपति! (**वाजिनीवती**) क्रियाशील (**सरस्वती**) विदुषी माता (**वाजेभिः**) सात्त्विक, स्वास्थ्यकर अन्न आदि भोज्य पदार्थों, बल-प्रदानों और सदाचार की शिक्षाओं से (**नः**) हम सन्तानों के (**पावका**) शरीर और मन को पवित्र करने वाली हो। (**धियावसुः**) बोध-प्रदान के द्वारा बसाने वाली वह (**यज्ञम्**) गृहस्थ-यज्ञ को (**वष्टु**) वहन करने की कामना रखे।।५।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।५।।

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर की वेदवाणी श्रोताओं का हित-साधन करती है, और जैसे गुरुओं की वाणी शिष्यों का हित-साधन करती है, वैसे ही विदुषी माताएँ सन्तानों का हित सिद्ध करें।।५।।

अगले मन्त्र में इन्द्र को सोमरस से तृप्त करने का विषय है।

**१९०. क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात्।**
**स नो वसून्या भरात्॥६॥**

**पदार्थ** :—(**नाहुषीषु**) मानवीय प्रजाओं में (**कः**) कौन धन्य मनुष्य (**इमम्**) इस, गुणों के आधार (**इन्द्रम्**) परमात्मा, राजा, आचार्य एवं अतिथि आदि को (**सोमस्य**) सोम से

अर्थात् श्रद्धा-रस, ज्ञान-रस, उपासना-रस, कर्म-रस, ब्रह्म-रस, क्षत्र-रस, ब्रह्मचर्य-रस, धर्म-रस, कीर्ति-रस आदि से (**आ तर्पयात्**) चारों ओर से तृप्त करेगा, जिससे (**सः**) तृप्त किया हुआ वह (**नः**) हमारे लिए (**वसूनि**) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (**आ भरात्**) लाये॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना, श्रद्धा, ज्ञान-संग्रह, कर्म, ब्रह्मचर्य, तपस्या, श्रम, धर्म, वैराग्य, व्रत-पालन आदि श्रेष्ठ आचारों से ही परमात्मा, राजा, आचार्य आदि प्रसन्न होते हैं और प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र को सोमपानार्थ बुलाया जा रहा है।

**१९१. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।**
**एदं बर्हिः सदो मम॥७॥**

**पदार्थ** :—(**आयाहि**) आइए, (**ते**) आपके लिए, हमने (**सुषुम हि**) सोमरस को अभिषुत किया है अर्थात् श्रद्धा, ज्ञान, कर्म, उपासना आदि के रस को निष्पादित किया है। हे (**इन्द्र**) परमात्मन्, राजन्, आचार्य, अतिथिप्रवर! (**इमम्**) इस हमारे द्वारा समर्पित किए जाते हुए (**सोमम्**) श्रद्धा, ज्ञान, कर्म, उपासना, राजदेय कर, सोम ओषधि आदि के रस को (**पिब**) पीजिए। (**इदम्**) इस (**मम**) मेरे (**बर्हिः**) हृदयासन, राज्यासन अथवा कुशा के आसन पर (**आ सदः**) बैठिए॥७॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥७॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि वे हृदय में परमात्मा को प्रकाशित कर उसकी पूजा करें और राजा, आचार्य, उपदेशक, संन्यासी आदि को बुलाकर यथायोग्य उनका सत्कार करें॥७॥

अगले मन्त्र में मित्र, वरुण अर्यमा से रक्षण की याचना की गयी है।

**१९२. महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः।**
**दुराधर्षं वरुणस्य॥८॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अध्यात्म और आधिदैवत पक्ष में। ऋचा का देवता इन्द्र होने से इन्द्र को सम्बोधन अपेक्षित है। हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर! आपकी कृपा से (**मित्रस्य**) अकाल-मृत्यु से रक्षा करने वाले वायु और जीवात्मा का, (**अर्यम्णः**) अपने आकर्षण से पृथिवी आदि लोकों का नियन्त्रण करने वाले सूर्यलोक का तथा इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने वाले मन का, और (**वरुणस्य**) आच्छादक मेघ का तथा प्राण का, (**त्रीणाम्**) इन तीनों का (**महत्**) महान्, (**द्युक्षम्**) तेज को निवास कराने वाला और (**दुराधर्षम्**) दुष्पराजेय, दृढ़ (**अवः**) रक्षण (**अस्तु**) हमें प्राप्त हो।

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) प्रजा के कष्टों को दूर करने तथा सुख प्रदान करने वाले राजन्! आपकी व्यवस्था से (**मित्रस्य**) सबके मित्र शिक्षाध्यक्ष का, (**अर्यम्णः**) श्रेष्ठों और दुष्टों के साथ यथायोग्य व्यवहार करने वाले न्यायाध्यक्ष का, और (**वरुणस्य**) पाशधारी, शस्त्रास्त्रयुक्त, धनुर्वेद में कुशल सेनाध्यक्ष का, (**त्रीणाम्**) इन तीनों का (**महि**) महान्, (**द्युक्षम्**) राजनीति के प्रकाश से पूर्ण, (**दुराधर्षम्**) दुष्पराजेय (**अवः**) रक्षण (**अस्तु**) हम प्रजाजनों को प्राप्त हो॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥८॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के अनुशासन में शरीरस्थ आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदि और बाह्य सूर्य, पवन, बादल आदि तथा राजा के अनुशासन में सब राजमन्त्री एवं अन्य राज्याधिकारी अपना-अपना रक्षण आदि हमें प्रदान करें, जिससे हम उत्कर्ष के लिए प्रयत्न करते हुए समस्त प्रेय और श्रेय को प्राप्त कर सकें॥८॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा, जीवात्मा और विद्वान् को सम्बोधन किया गया है।

**१९३. त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः।**
**स्मसि स्थातर्हरीणाम्॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**पुरूवसो**) बहुत धनी, (**प्रणेतः**) उत्कृष्ट नेता, (**हरीणाम्**) आकर्षणगुणयुक्त पृथिवी-सूर्य आदि लोकों

के, अथवा विषयों की ओर ले जाने वाली इन्द्रियों के, अथवा सवारी देने वाले विमान आदि यानों के (**स्थातः**) अधिष्ठाता (**इन्द्र**) परमात्मन्, जीवात्मन्, व विद्वन्! (**वयम्**) हम मनुष्य (**त्वावतः**) हम मनुष्य (**त्वावतः**) तुझ जैसे किसी अन्य के न होने के कारण जो तू तुझ जैसा ही है ऐसे तुझ अद्वितीय के (**स्मसि**) हो गये हैं।।९।।

इस मन्त्र में श्लेष है। 'त्वावतः' में 'कमल कमल के समान है' इत्यादि के सदृश अनन्वय अलंकार है।।९।।

**भावार्थ** :—संसार में बिखरे हुए सब धनों का स्वामी, सब का नेता, सूर्य-आदि लोकों का अधिष्ठाता, अनुपम परमेश्वर जैसे सब का वन्दनीय है, वैसे ही बहुत से ज्ञान, कर्म आदि धनों का स्वामी, मार्गप्रदर्शक, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय एवं प्राण, मन, बुद्धि आदि का अधिष्ठाता जीवात्मा भी सबसे सेवनीय है। इसी प्रकार वेग से यात्रा कराने वाले विमान आदियों के निर्माण और चलाने में कुशल, विविध विद्याओं में पारंगत, शिल्पशास्त्र के वेत्ता विद्वान् भी मनुष्यों द्वारा सेवनीय हैं।।९।।

**इस दशति में इन्द्र से सम्बद्ध वरुण, मित्र और अर्यमा के रक्षण की प्रार्थना होने से, इन्द्र की गौओं की प्रशंसा होने से, इन्द्र से गाय, अश्व आदि की याचना होने से, इन्द्र की सरस्वती का आह्वान होने से, इन्द्र का स्तुतिगान होने से तथा इन्द्र नाम से राजा, विद्वान्, आचार्य आदि का भी विषय वर्णित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।।**

**इति द्वितीयः प्रपाठकः समाप्तः॥**

# अथ तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

## नवमी दशतिः

**ऋषिः—१ प्रगाथः; २ विश्वामित्रः; ३, १० वामदेवः; ४, ६ श्रुतकक्षः; ५ मधुच्छन्दाः; ७ गृत्समदः; ८, ९ भरद्वाजः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में यह वर्णन है कि इन्द्र सोमरस से प्रसन्न

होकर क्या करें।

१९४. उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि॥१॥

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे इन्द्र परमात्मन्! (**सोमाः**) हमारे द्वारा अभिषुत श्रद्धारस, ज्ञानरस और कर्मरस (**त्वा**) तुझे (**उत् मन्दन्तु**) अत्यधिक आनन्दित करें। हे (**अद्रिवः**) मेघों के स्वामिन्! वर्षा करने वाले! तू हमारे लिए (**राधः**) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, धारणा, ध्यान, समाधि, योगसिद्धि आदि आध्यात्मिक ऐश्वर्य (**कृणुष्व**) प्रदान कर। (**ब्रह्मद्विषः**) ब्रह्मविरोधी काम, क्रोध, नास्तिकता आदि मानसिक शत्रुओं को (**अवजहि**) मार गिरा।।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे इन्द्र राजन्! (**सोमाः**) वीर-रस (**त्वा**) तुझे (**उत् मन्दन्तु**) उत्साहित करें। हे (**अद्रिवः**) वज्रधारी, विविध शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित, धनुर्वेद में पारंगत राजन्! तू प्रजाओं के लिए (**राधः**) सब प्रकार के धनधान्यादि (**कृणुष्व**) उत्पन्न कर, प्रदान कर। (**ब्रह्मद्विषः**) ईश्वरविरोधी, विद्याविरोधी, सत्यविरोधी, धर्मविरोधी, न्यायविरोधी एवं प्रजाविरोधी डाकू, चोर आदियों को (**अवजहि**) विनष्ट कर।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :–उपासना किया हुआ परमेश्वर और वीर-रसों से उत्साहित राजा प्रजाओं के ऊपर भौतिक व आध्यात्मिक सम्पत्तियों की वर्षा करते हैं और ब्रह्मद्वेषी शत्रुओं को विनष्ट करते हैं। इसलिए सबको परमेश्वर की उपासना करना और राजा का सत्कार करना तथा उसे प्रोत्साहित करना उचित है।।१।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और गुरु से प्रार्थना की गयी है।

१९५. गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः॥२॥

**पदार्थ** :–हे (**गिर्वणः**) स्तुतिवाणियों व आदरवचनों से सेवनीय वा याचनीय परमात्मन् अथवा आचार्यप्रवर! आप (**नः**)

हमारे ( **सुतम्** ) अर्जित ज्ञानरस को अर्थात् विविध विद्याओं के विज्ञान की ( **पाहि** ) रक्षा कीजिए। आप ( **मधोः** ) मधुर ज्ञानराशि की ( **धाराभिः** ) धाराओं से ( **अज्यसे** ) सिक्त हैं। ( **इन्द्र** ) हे ज्ञानैश्वर्य से सम्पन्न परमात्मन् वा आचार्यप्रवर! ( **त्वादातम्** ) आपके द्वारा शोधित, शोधन द्वारा धवलीकृत ( **इत्** ) ही ( **यशः** ) विविध विद्याओं एवं सदाचार से समुत्पन्न कीर्ति, हमें प्राप्त हो। अथवा, हे परमात्मन् अथवा आचार्यप्रवर! ( **यशः** ) तप, ब्रह्मचर्य, विद्वत्ता, व्रतपालन आदि से उत्पन्न होने वाली कीर्ति ( **त्वादातम् इत्** ) आपके द्वारा ही हमें दातव्य है॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—गुरुकुल में अध्ययन कर रहे शिष्य आचार्य से प्रार्थना करते हैं कि हे आचार्यप्रवर! आप अगाध पाण्डित्य के खजाने और शिक्षणकला में परम प्रवीण हैं। आप भ्रान्ति, अपूर्णता आदि दोषों से रहित स्वच्छ ज्ञान हमारे अन्दर प्रवाहित कीजिए और उसे स्थिर कर दीजिए। तभी हमारा उज्ज्वल यश सर्वत्र फैलेगा। सम्पूर्ण विद्याओं से भासित, स्वच्छ ज्ञान की निधि परमात्मा से भी वैसी ही प्रार्थना की गयी है। वही यश वस्तुतः यश है, जो परमात्मा के आशीर्वाद से धवल हुआ हो॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा के वरण का विषय है।

**१९६. सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा उपो नु स सपर्यन्।**
**न देवो वृतः शूर इन्द्रः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! ( **सदा** ) हमेशा ( **वः** ) तुम्हें, जो ( **इन्द्रः** ) परमेश्वर वा सुयोग्य जन ( **आ चर्कृषत्** ) अतिशय बार-बार कर्मों में प्रेरित करे, और ( **उप उ** ) समीप आकर ( **नु** ) शीघ्र ही ( **सः** ) वह ( **सपर्यन्** ) तुम्हारा सत्कार करे, प्रेम से तुम्हें शुभ कर्मों के लिए साधुवाद और प्रोत्साहन प्रदान करे, वैसा ( **देवः** ) दिव्य गुण, कर्म-स्वभाव वाला ( **शूरः** ) वीर ( **इन्द्रः** ) परमेश्वर वा सुयोग्य मनुष्य ( **वृतः न** ) तुम ने अभी तक नेता रूप में या राजा रूप में वरा नहीं है? बिना वरे पूर्वोक्त लाभ

कैसे मिल सकते हैं? अतः अवश्य ही उसका वरण करो॥३॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे वरण किया हुआ परमेश्वर मनुष्यों को पुरुषार्थ में प्रवृत्त करता है और शुभ कर्म करने वालों को साधुवाद देकर उत्साहित करता है, वैसे ही प्रजाओं द्वारा चुना गया राजा प्रजाओं के लिए करे॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति का विषय है।

**१९७. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।**
**न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥४॥**

**पदार्थ** :—(इन्दवः) चन्द्र-किरणों के सदृश आह्लादक मेरे स्तुतिरूप सोम (त्वा) तुझ परमेश्वर को (आ विशन्तु) प्राप्त करें, (सिन्धवः) नदियाँ (समुद्रम् इव) जैसे समुद्र को प्राप्त करती हैं। हे (इन्द्र) परमैश्वर्यशालिन्, दुःखविदारक, सुखदाता परमात्मन्! (त्वाम्) तुझसे, कोई भी (न अतिरिच्यते) महिमा में अधिक नहीं है॥४॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—जैसे नदियाँ रत्नाकर समुद्र को प्राप्त करके रत्नों से मण्डित हो जाती हैं, वैसे ही सब प्रजाएँ स्तुति द्वारा गुण-रूप रत्नों के खजाने परमेश्वर को प्राप्त करके गुणों की निधि हो जाएँ॥४॥

अगले मन्त्र में सबके द्वारा इन्द्र की स्तुति किया जाना वर्णित है।

**१९८. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।**
**इन्द्रं वाणीरनूषत॥५॥**

**पदार्थ** :—(इन्द्रम्) महान् परमेश्वर की (इत्) ही (गाथिनः) सामगान करने वाले उद्गाता लोग, (इन्द्रम्) उसी महान् परमेश्वर की (अर्केभिः) वेदमन्त्रों द्वारा (अर्किणः) मन्त्रपाठी होता लोग स्तुति करते हैं। और (वाणीः) अन्य जनों की वाणियाँ भी (इन्द्रम्) उसी महान् परमेश्वर की

( बृहत् ) बहुत अधिक ( **अनूषत** ) स्तुति करती हैं॥५॥

**भावार्थ** :—परमैश्वर्यवान्, दुःख-दरिद्रता को मिटाने वाला, सुख-सम्पत्ति का प्रदाता, धर्मात्माओं का प्रशंसक, कुकर्मियों का विध्वंसक, समस्त गुण-गुणों का खजाना, सद्गुणों का आधान करने वाला परमात्मा ही सब मनुष्यों से वन्दना किये जाने योग्य है। उसी की सामगान से और वेद-मन्त्रों के पाठ आदि से स्तुति करनी चाहिए॥५॥

अगले मन्त्र में इन्द्र हमें क्या-क्या दे, इसकी प्रार्थना की गयी है।

**१९९. इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम्।**
**वाजी ददातु वाजिनम्॥६॥**

**पदार्थ** :—( **इन्द्रः** ) सब ऐश्वर्यों का खजाना और सब ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ **परमेश्वर** ( **इषे** ) राष्ट्र की प्रगति, अभ्युदय, **अभीष्टसिद्धि और मोक्ष की प्राप्ति के लिए ( नः ) हमें ( ऋभुम् ) अति तेजस्वी, सत्य से भासमान, सत्यनिष्ठ, मेधावी, विद्वान्** ब्राह्मण और ( **ऋभुक्षणम्** ) मेधावियों का निवासक, महान् ( **रयिम्** ) धन ( **ददातु** ) प्रदान करे। ( **वाजी** ) बलवान् वह ( **वाजिनम्** ) बली, राष्ट्ररक्षाकुशल क्षत्रिय ( **ददातु** ) प्रदान करे॥६॥

इस मन्त्र में 'ददातु' और 'ऋभु' शब्दों की पुनरुक्ति में लाटानुप्रास अलंकार है। 'वाजी, वाजि' में छेकानुप्रास है॥६॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से हमारे राष्ट्र में सत्यशील, उपदेशकुशल, मेधावी, विज्ञानवान्, ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण; बली, धनुर्विद्या में पारंगत, रोगों से आक्रान्त न होने वाले, महारथी, राष्ट्ररक्षा में समर्थ, विजयशील शूरवीर क्षत्रिय और कृषि एवं व्यापार में प्रवीण, धनवान्, दानशील वैश्य उत्पन्न हों। सब राष्ट्रवासी धनपति होकर प्रगति और अभ्युदय को प्राप्त करते हुए आनन्द के साथ धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए मोक्ष के लिए प्रयत्न करते रहें॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र से भय-मुक्त करने की प्रार्थना की गयी है।

२००. इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्।
स हि स्थिरो विचर्षणिः॥७॥

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**अङ्ग**) हे भाई, (**इन्द्रः**) विघ्नविदारक, सिद्धिप्रदाता परमेश्वर (**अभि सत्**) अभिभूत करने वाले (**महत्**) बड़े भारी (**भयम्**) विपत्तियों से उत्पन्न, काम-क्रोध आदि शत्रुओं के उत्पीड़न से उत्पन्न अथवा जन्म-मरण से उत्पन्न भय को (**अप चुच्यवत्**) पूर्णतः दूर कर दे, (**हि**) क्योंकि (**सः**) वह परमेश्वर (**स्थिरः**) भयों से उद्विग्न न होने वाला, स्थिरमति, और (**विचर्षणिः**) भय-निवारण के उपायों का द्रष्टा और दर्शाने वाला है॥

**द्वितीय**-सूर्य के पक्ष में। (**अङ्ग**) हे भाई, (**इन्द्रः**) अन्धकार का विदारक, प्रकाशदाता सूर्य (**अभि सत्**) अभिभूत या उद्विग्न करने वाले (**महत्**) बड़े (**भयम्**) रोगों से उत्पन्न, बाघ आदि हिंसक जन्तुओं से उत्पन्न, पृथिवी आदि ग्रह-उपग्रहों की टक्कर की आशंका से उत्पन्न इत्यादि प्रकार के भयों को (**अप चुच्यवत्**) दूर करता है, (**हि**) क्योंकि (**सः**) वह सूर्य (**स्थिरः**) आकर्षणशक्ति के द्वारा आकाश में स्थिर अर्थात् केवल अपनी धुरी पर ही घूमने के कारण स्थानान्तर गति से रहित, और (**विचर्षणिः**) प्रकाश के दान द्वारा सबको पदार्थों का दर्शन कराने वाला है॥

(**तृतीय**) राष्ट्र के पक्ष में। (**अङ्ग**) हे भाई, (**इन्द्रः**) परम धनी, शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला, प्रजाओं को सुख-सम्पदा देने वाला राजा अथवा सेनापति (**अभि सत्**) राष्ट्र में व्याप्त होने वाले (**महत्**) बड़े (**भयम्**) राष्ट्र के अन्दर के तथा बाहरी शत्रुओं से उत्पन्न किए गये को (**अप चुच्यवत्**) दूर कर दे, (**हि**) क्योंकि (**सः**) वह (**स्थिरः**) अपने पद पर अडिग और (**विचर्षणिः**) गुप्तचर रूपी आँखों से अपने राष्ट्र में होने वाले तथा शत्रु-राष्ट्र में होने वाले सब घटनाचक्र का विशेष रूप से द्रष्टा है॥७॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥७॥

**भावार्थ** :-कभी काम, क्रोध आदि रिपुओं से उत्पन्न होने

वाला भय, कभी दुर्भिक्ष, नदियों की बाढ़, संक्रामक रोग आदि का भय, कभी मानवीय विपत्तियों का भय, कभी बाघ आदि हिंसक जन्तुओं का भय, कभी पड़ोसी शत्रु राष्ट्रों का भय, कभी चोरों, लुटेरों, ठगों, हत्यारों आदि का भय, कभी जन्म-मृत्यु के चक्र का भय मनुष्यों को व्याकुल किए रखता है। स्थिर सर्वद्रष्टा परमात्मा, स्थिर प्रकाशक सूर्य और स्थिर गुप्तचर-रूप आँखों वाला राजा उस सब प्रकार के भय से मुक्त कर दे, जिससे सब लोग सब ओर से निर्भय होते हुए अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त कर सकें॥७॥

अगले मन्त्र में स्तोता जन परमात्मा को कह रहे हैं।

**२०१. इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः।**
**गावो वत्सं न धेनवः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**गिर्वणः**) स्तुतिवाणियों से सेवनीय वा याचनीय परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन्! (**इमाः उ**) ये हमसे उच्चारण की जाती हुई (**गिरः**) वेदवाणियाँ अथवा स्तुतिवाणियाँ (**सुतेसुते**) प्रत्येक ज्ञान, कर्म और उपासना के व्यवहार में (**त्वा**) आपको (**नक्षन्ते**) प्राप्त होती हैं, (**धेनवः**) अपना दूध पिलाने वाली या अपने दूध से तृप्त करने वाली (**गावः**) गौएँ (**वत्सं न**) जैसे बछड़े को प्राप्त होती हैं॥८॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे पौसे हुए पयोधरों वाली नवप्रसूत गौएँ अपना दूध पिलाने के लिए शीघ्रता से बछड़े के पास जाती हैं, वैसे ही हमारी रस बहाने वाली, अर्थपूर्ण स्तुतिवाणियाँ प्रत्येक ज्ञानयज्ञ में, प्रत्येक कर्मयज्ञ में और प्रत्येक उपासनायज्ञ में परमात्मा के समीप पहुँचें॥८॥

अगले मन्त्र में यह वर्णित है कि हम कल्याणार्थ किसे पुकारें।

**२०२. इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये।**
**हुवेम वाजसातये॥९॥**

**पदार्थ** :–( **वयम्** ) हम प्रजाजन ( **इन्द्रा-पूषणा** ) परमात्मा-जीवात्मा, प्राण-अपान, राजा-सेनापति, क्षत्रिय, वैश्य और विद्युत्-वायु को ( **नु** ) शीघ्र ही ( **सख्याय** ) मित्रता के लिए ( **स्वस्तये** ) अविनाश, उत्तम अस्तित्व एवं कल्याण के लिए, और ( **वाजसातये** ) अन्न, धन, बल, वेग, विज्ञान, प्राणशक्ति व आत्मशक्ति को प्राप्त कराने वाले आन्तरिक और बाह्य संग्राम में सफलता के लिए ( **हुवेम** ) पुकारें॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :–मनुष्य के लिए जीवन में प्रत्येक क्षेत्र में मनोभूमि में और बाहर की भूमि पर संग्राम होते हैं। उनमें परमात्मा-जीवात्मा, प्राण-अपान, राजा-सेनापति, क्षत्रिय-वैश्य एवं विद्युत्-वायु की मित्रता का जो वरण करते हैं वे विजयी होते हैं॥९॥

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

**२०३. न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्।**
**न क्येवं यथा त्वम्॥१०॥**

**पदार्थ** :–हे ( **इन्द्र** ) परमात्मन्! ( **त्वत्** ) तुझसे ( **उत्तरः** ) गुणों में अधिक प्रशस्त ( **न कि** ) कोई नहीं है। हे ( **वृत्रहन्** ) विघ्नों के विनाशक! ( **न** ) न ही कोई ( **ज्यायः** ) तुझसे आयु में अधिक बड़ा ( **अस्ति** ) है। ( **न कि** ) न ही ( **एवम्** ) ऐसा है, ( **यथा** ) जैसा ( **त्वम्** ) तू है॥१०॥

**भावार्थ** :–अति विशाल भी इस ब्रह्माण्ड में जिससे अधिक गुणवान् और जिससे अधिक वृद्ध दूसरा कोई भी नहीं है, उस जगदीश्वर की सबको श्रद्धा से पूजा करनी चाहिए॥१०॥

इस दशति में इन्द्र परमात्मा के प्रति ज्ञान, कर्म, उपासना रूप सोम अर्पण करने, उसका स्तुतिगान करने, उससे धन की याचना करने, उसका महत्त्व वर्णन करने और इन्द्र नाम से आचार्य, राजा तथा सूर्य का भी वर्णन करने के कारण इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

# दशमी दशतिः

ऋषिः—१, ४ त्रिशोकः; २ मधुच्छन्दाः; ३ वत्सः; ५ सुकक्षः; ६, ९ वामदेवः; ७ विश्वामित्रः; ८ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ; १० श्रुतकक्षः सुकक्षो वा। देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा, जीवात्मा, सूर्य और राजा की प्रशंसा की गयी है।

**२०४. तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।**
**समानमु प्र शंसिषम्॥१॥**

पदार्थ :—हे मनुष्यो! (जनानां वः) आप जन्मधारियों का (तरणिम्) नौकारूप अर्थात् नाव के समान तारक, विपत्तिरूप नदियों से पार करने वाले, (गोमतः) प्रशस्त गौओं से युक्त, प्रशस्त भूमियों से युक्त, प्रशस्त वाणियों से युक्त, प्रशस्त इन्द्रियों से युक्त, प्रशस्त किरणों से युक्त और प्रशस्त अन्तःप्रकाश से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य के (त्रदम्) प्राप्त कराने वाले इन्द्र नामक परमात्मा, जीवात्मा, राजा और सूर्य की (समानम् उ) सप्राण होकर, सोत्साह (प्रशंसिषम्) मैं प्रशंसा करता हूँ।

पणि लोग इन्द्र की गौओं को चुराकर पर्वत की गुफा में छिपा देते हैं। इन्द्र सरमा को दूती बनाकर अंगिरस्, सोम और बृहस्पति की सहायता से गुफा तोड़कर उन्हें छुड़ाता है, यह वृत्त वेद में बहुत बार वर्णित हुआ है। अध्यात्म-क्षेत्र में गौएँ अन्तःप्रकाश की किरणें या मन की सात्त्विक वृत्तियाँ हैं, इन्द्र परमात्मा अथवा जीवात्मा है, पणि उन गौओं को चुराने वाली तामसिक मनोवृत्तियाँ हैं। अधिदैवत क्षेत्र में गौएँ किरणें हैं, इन्द्र सूर्य है, पणि मेघ अथवा अन्धकारपूर्ण रात्रियाँ हैं। राष्ट्रीय क्षेत्र में गौएँ गाय पशु या भूमि आदि सम्पत्तियाँ हैं, इन्द्र राष्ट्र का पालक राजा है, और पणि उन सम्पत्तियों का अपहरण करने वाले लुटेरे शत्रु हैं। इन्द्र नामक परमात्मा, जीवात्मा, सूर्य और राजा उन-उन पणियों को पराजित करके उनकी गुफा

को तोड़कर उन गौओं को पुनः प्राप्त करके सत्पात्रों को उनका दान करते हैं। इसी प्रसंग से इस मन्त्र में तृद धातु दानार्थक हो गयी है॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। इन्द्र में तरणि (नौका) का आरोप होने से रूपक है॥१॥

**भावार्थ** :—नौका के समान परमात्मा संसार-सागर से जनों का तारक, जीवात्मा कुमार्ग से इन्द्रियों का तारक, सूर्य अन्धकार या रोग से मनुष्यों का तारक और राजा विपत्तियों से प्रजाओं का तारक होता है। ये अपने-अपने क्षेत्र में यथायोग्य दिव्य प्रकाशरूप, दिव्य इन्द्रियरूप, किरणरूप, गायरूप और भूमिरूप गौओं को शत्रु के अधिकार से वापस लौटाने वाले हैं। अतः इनको प्रशंसा, गुण-वर्णन और सेवन सबको करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति का विषय है।

१ २ ३ २३ २ ३ १ २र
**२०५. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।**
३ १ २ ३ १ २र
**सजोषा वृषभं पतिम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) पूजनीय जगदीश्वर! मैं (**ते**) आपके लिए, आपकी स्तुति के लिए (**गिरः**) वेदवाणियों को (**असृग्रम्**) उच्चारित करता हूँ। (**सजोषाः**) प्रीतिपूर्वक उच्चारण की गई वे वेदवाणियाँ (**वृषभम्**) सब अभीष्टों की वर्षा करने वाले (**पतिम्**) पालनकर्ता (**त्वां प्रति**) आपको लक्ष्य करके (**उद् अहासत**) उठ रही हैं, उत्कण्ठापूर्वक आपको पाने का यत्न कर रही हैं॥२॥

यहाँ प्रीतिमयी भार्या जैसे वर्षक पति को पाने के लिए उत्कण्ठापूर्वक जाती है, यह उपमा शब्द-शक्ति से ध्वनित हो रही है। उससे उपासक के प्रेम का अतिशय द्योतित होता है॥२॥

**भावार्थ** :—यदि परमात्मा की प्रीतिपूर्वक वेदवाणियों से स्तुति की जाती है, तो वह अवश्य प्रसन्न होता है और स्तोता के लिए यथायोग्य अभीष्ट धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की वर्षा करता है॥२॥

अगले मन्त्र में मित्र, मरुत् और अर्यमा का विषय वर्णित है।

**२०६. सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा।**
**मित्रास्पान्त्यद्रुहः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) अध्यात्म-पक्ष में। हे इन्द्र परमात्मन्! (**सः**) वह (**मर्त्यः**) मरणधर्मा मनुष्य (**घ**) निश्चय ही (**सुनीथः**) शुभ नीति से युक्त अथवा प्रशस्त हो जाता है, (**यम्**) जिसे (**मरुतः**) प्राण, (**यम्**) जिसे (**अर्यमा**) श्रेष्ठ विचारों का सम्मानकारी आत्मा, और जिसे (**अद्रुहः**) द्रोह न करने वाले (**मित्राः**) मित्रभूत मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, आँख, कान, त्वचा, नासिका और जिह्वा (**पान्ति**) रक्षित-पालित करते हैं॥

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। हे इन्द्र राजन्! (**सः**) वह (**मर्त्यः**) प्रजाजन (**घ**) निश्चय ही (**सुनीथः**) सन्मार्ग पर चलने वाला, सदाचारपरायण हो जाता है (**यम्**) जिसे (**मरुतः**) वीर क्षत्रिय, (**यम्**) जिसे (**अर्यमा**) धार्मिक न्यायाधीश और (**अद्रुहः**) राजद्रोह या प्रजाद्रोह न करने वाले (**मित्राः**) मित्रभूत अन्य राज्याधिकारी-गण (**पान्ति**) विपत्तियों से बचाते तथा पालित-पोषित करते हैं॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–इस जगत् या राष्ट्र में बहुत से लोग योग्य मार्गदर्शन को न पाकर सन्मार्ग से च्युत हो जाते हैं। परन्तु जीवात्मा, प्राण आदि अध्यात्म-मार्ग पर चलते हुए जिस मनुष्य पर अनुग्रह करते हैं, तथा राष्ट्र में राज्याधिकारी जिसकी सहायता करते हैं, वह निरन्तर प्रगति के पथ पर दौड़ता हुआ लक्ष्यसिद्धि को पाने में समर्थ हो जाता है॥३॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि किस प्रकार का धन हमें प्राप्त करना चाहिए।

**२०७. यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम्।**
**वसु स्पार्हं तदा भर॥४॥**

**पदार्थ** :–हे (इन्द्र) परमेश्वर, राजन् और आचार्य! (यत्) जो दृढ़तारूप धन (वीडौ) दृढ़ लोहे, पत्थर, हीरे आदि में, (यत्) जो स्थिरतारूप धन (स्थिरे) अविचल सूर्य, आदि में और (यत्) जो परोपकाररूप धन (पर्शाने) सींचनेवाले बादल में (पराभृतम्) निहित है, (तत्) वह (स्पार्हम्) स्पृहणीय (वसु) धन (आभर) हमें प्राप्त कराइए।।४।।

**भावार्थ** :–दृढ़तारूप गुण से ही लोहा, पत्थर, हीरा आदि कीर्तिशाली हैं। स्थिरतारूप गुण से ही सूर्य, पर्वत आदि गर्व से सिर उठाये खड़े हैं। सींचने–बरसने रूप गुणों से ही बादलों की सब प्रशंसा करते हैं। यह दृढ़ता का, स्थिरता का सींचने–बरसने का गुण हमें भी प्राप्त करना चाहिए।।४।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि हम कैसे इन्द्र की किस प्रयोजन के लिए स्तुति करें।

**२०८. श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्।**
**आशिषे राधसे महे॥५॥**

**पदार्थ** :–हे मित्रो! (श्रुतम्) सर्वत्र प्रख्यात, (वः) तुम्हारे (वृत्रहन्तमम्) पाप, विघ्न, अविद्या आदि को अतिशय विनष्ट करने वाले, (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (प्र शर्धम्) अतिशय बल एवं उत्साह के प्रदाता परमेश्वर, राजा या आचार्य की (राधसे) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए व कार्यसिद्धि के लिए, और (महे) महत्ता तथा पूज्यता की प्राप्ति के लिए, मैं (आशिषे) स्तुति करता हूँ।।५।।

**भावार्थ** :–जो मनुष्य जगदीश्वर, राजा व आचार्य को उनके गुण–कर्मों का वर्णन करते हुए स्मरण करते हैं और उनकी सेवा करते हैं, वे अविद्या, पाप, विघ्न, विपत्ति आदि को पार करके सब कल्याणों के भाजन बनते हैं।।५।।

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा से प्रार्थना की गई है।

**२०९. अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः।**
**अरं शक्र परेमणि॥६॥**

**पदार्थ** :—हे ( **शूर** ) विक्रमी ( **इन्द्र** ) ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! हम ( **त्वावतः** ) जिसके तुल्य अन्य कोई न होने से जो तू अपने समान ही है ऐसे ( **ते** ) तेरे ( **श्रवसे** ) यश को पाने के लिए अथवा यशोगान के लिए ( **अरम्** ) पर्याप्तरूप से, तुझे ( **गमेम** ) प्राप्त करें। हे ( **शक्र** ) शक्तिशालिन्, सब कार्यों को करने में समर्थ जगदीश्वर! हम ( **परेमणि** ) जिससे तेरा साक्षात्कार होता है उस परा विद्या में ( **अरम्** ) पर्याप्त रूप में ( **गमेम** ) पारंगत हों।।६।।

**भावार्थ** :—अनुपम परमेश्वर का कीर्तिगान करने और उसके स्वरूप का हस्तामलकवत् साक्षात्कार करने में सबको प्रवृत्त होना चाहिए। केवल अपरा नामक विद्या की प्राप्ति से ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए, प्रत्युत परा विद्या भी सीखनी चाहिए।।६।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और विद्वान् अतिथि को बुलाया जा रहा है।

**२१०. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।**
**इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः॥७॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) विद्वान् अतिथि के पक्ष में। हे ( **इन्द्र** ) विद्वन्! आप ( **प्रातः** ) इस प्रभातकाल में ( **नः** ) हमारे ( **धानावन्तम्** ) भुने हुए जवों से युक्त, ( **करम्भिणम्** ) घृतमिश्रित सत्तुओं से युक्त, ( **अपूपवन्तम्** ) घी मिले जौ या चावल के पूड़ों से युक्त और ( **उक्थिनम्** ) वेदमन्त्रों के स्तोत्रों से युक्त यज्ञ में ( **जुषस्व** ) प्रीतिपूर्वक आइए।।

( **द्वितीय** ) अध्यात्म-पक्ष में। हे ( **इन्द्र** ) परमात्मन्! आप ( **प्रातः** ) प्रभात-वेला में ( **नः** ) हमारे ( **धानावन्तम्** ) धारणा, ध्यान, समाधियों से युक्त अर्थात् उपासनाकाण्ड से युक्त, ( **करम्भिणम्** ) कर्मकाण्ड से युक्त, ( **अपूपवन्तम्** ) ज्ञानकाण्ड से युक्त, और ( **उक्थिनम्** ) सामगान से युक्त उपासना-यज्ञ को ( **जुषस्व** ) प्रीतिपूर्वक सेवन कीजिए।।७।। इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।।७।।

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि वे जौ, सत्तू, पूड़े

आदि सुगन्धित, मधुर, पुष्टिप्रद तथा आरोग्यदायक द्रव्यों का अग्नि में होम करके वायुमण्डल को स्वच्छ करें। इसी प्रकार ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड का आश्रय लेकर सामगान करते हुए परमात्मा की पूजा करें। इससे अभ्युदय और मोक्ष को साधें।।७।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा, जीवात्मा, वैद्य, राजा, और सेनापति किस प्रकार 'नमुचि' का संहार करते हैं।

३ १ ३र २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**२११. अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।**

२ ३ १ २र ३ १ २
**विश्वा यदजय स्पृधः॥८॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) अध्यात्म-पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमात्मन् व जीवात्मन्! तुम (**अपां फेनेन**) पानी के झाग के समान स्वच्छ सात्त्विक चित्त की तरंग से (**नमुचेः**) न छोड़ने वाले, प्रत्युत दृढ़ता से अपना पैर जमा लेने वाले पाप के (**शिरः**) सिर को अर्थात् ऊँचे उठे प्रभाव को (**उदवर्तयः**) पृथक् कर देते हो, (**यत्**) जब (**विश्वाः**) सब (**स्पृधः**) पापरूप नमुचि के सहायक काम-क्रोध आदि शत्रुओं की स्पर्धाशील सेनाओं को (**अजयः**) जीतते हो।।

(**द्वितीय**) आयुर्वेद के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) रोगविदारक वैद्य! आप (**अपां फेनेन**) समुद्रफेन रूप औषध से (**नमुचेः**) शरीर को न छोड़ने वाले, दृढ़ता से जमे रोग के (**शिरः**) हानिकर प्रभाव को (**उदवर्तयः**) उच्छिन्न कर देते हो, (**यत्**) जब (**विश्वाः**) समस्त (**स्पृधः**) स्पर्धालु, रोग-सहचर वेदना, वमन, मूर्छा आदि उत्पातों को (**अजयः**) जीतते हो।।

(**तृतीय**) राजा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) वीर राजन्! आप (**अपाम्**) राष्ट्र में व्याप्त प्रजाओं के (**फेनेन**) कर-रूप से प्राप्त तथा चक्रवृद्धि ब्याज आदि से बढ़े हुए धन से (**नमुचेः**) राष्ट्र को न छोड़ने वाले, प्रत्युत राष्ट्र में व्याप्त होकर स्थित दुःख, दरिद्रता आदि के (**शिरः**) सिर को, उग्रता को (**उदवर्तयः**) उच्छिन्न कर देते हो, (**यत्**) जब (**विश्वाः**) समस्त (**स्पृधः**) हिंसा, रक्तपात, लूट-पाट, ठगी, तस्कर-व्यापार

आदि स्पर्धालु वैरियों को **(अजय:)** पराजित कर देते हो॥

**(चतुर्थ)** सेनापति के पक्ष में। हे **(इन्द्र)** सूर्यवत् विद्यमान शत्रुविदारक सेनापति! आप **(अपां फेनेन)** जलों के झाग के समान उज्ज्वल शस्त्रास्त्र-समूह के द्वारा **(नमुचे:)** पीछा न छोड़ने वाले शत्रु के **(शिर:)** सिर को **(उदवर्तय:)** धड़ से अलग कर देते हो, **(यत्)** जब **(विश्वा:)** सब **(स्पृध:)** स्पर्धा करने वाली शत्रुसेनाओं को **(अजय:)** जीतते हो॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है, उपमानोपमेयभाव ध्वनित हो रहा है॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे कोई वैद्यराज समुद्रफेन औषध से रोग को नष्ट करता है, जैसे राजा प्रजा से कर-रूप में प्राप्त हुए धन से प्रजा के दु:खों को दूर करता है और जैसे सेनापति शस्त्रास्त्र-समूह से शत्रु का सिर काटता है, वैसे ही परमेश्वर और जीवात्मा मनुष्य के मन की सात्त्विक वृत्तियों से पाप को उन्मूलित करते हैं॥

यहाँ सायणाचार्य ने यह इतिहास प्रदर्शित किया है—"पहले कभी इन्द्र असुरों को जीतकर भी नमुचि नामक असुर को पकड़ने में असमर्थ रहा। उल्टे नमुचि ने ही युद्ध करते हुए इन्द्र को पकड़ लिया। पकड़े हुए इन्द्र को नमुचि ने कहा कि तुझे मैं इस शर्त पर छोड़ सकता हूँ कि तू मुझे कभी न दिन में मारे, न रात में, न सूखे हथियार से मारे, न गीले हथियार से। जब इन्द्र ने यह शर्त मान ली तब नमुचि ने उसे छोड़ दिया। उससे छूटे इन्द्र ने दिन-रात की सन्धि में झाग से उसका सिर काटा (क्योंकि दिन-रात की सन्धि न दिन कहलाती है, न रात, और झाग भी न सूखा होता है, न गीला)।" यह इतिहास दिखा कर सायण कहते हैं कि यही विषय इस ऋचा में प्रतिपादित है। विवरणकार माधव ने भी ऐसा ही इतिहास वर्णित किया है। असल में तो यह काल्पित कथानक है, सचमुच घटित कोई इतिहास नहीं है॥८॥

अगले मन्त्र में इन्द्र को सोमरसों के प्रति निमन्त्रित किया जा रहा है।

२१२. इमें त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः।
तेषां मत्स्व प्रभूवसो॥९॥

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**ते**) आपके लिए (**इमे**) ये वर्तमान काल में प्रस्तुत (**सोमाः**) हमारे मैत्रीरस हैं, (**ये**) जो (**सुतासः**) भूतकाल में भी निष्पादित हो चुके हैं, (**सोत्वाः च**) और भविष्य में भी निष्पादित होते रहेंगे। हे (**प्रभूवसो**) प्रचुर रूप से हमारे अन्दर सद्गुणों के बसाने वाले परमात्मन्! आप (**तेषाम्**) उनसे (**मत्स्व**) प्रमुदित हों।

(**द्वितीय**) जीवात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) जीवात्मन्! (**ते**) तेरे लिए (**इमे**) ये वर्तमान काल में प्रस्तुत (**सोमाः**) ज्ञानरस, कर्मरस और श्रद्धारस हैं, (**ये**) जो (**सुतासः**) पहले भूतकाल में भी निष्पादित हो चुके हैं, (**सोत्वाः च**) और भविष्य में भी निष्पादित किये जाने वाले हैं। हे (**प्रभूवसो**) मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि को बहुत अधिक बसाने वाले जीवात्मन्! (**तेषाम्**) उन रसों से (**मत्स्व**) तृप्ति प्राप्त कर, अर्थात् ज्ञानवान्, कर्मण्य और श्रद्धावान् बन॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :–सबको चाहिए कि उपासकों के मन में सद्गुणों को बसाने वाले, दिव्य धन के स्वामी परमेश्वर को सब कालों में मैत्री-रस से सिक्त करें और अपने आत्मा को ज्ञानरसों, कर्मरसों और श्रद्धारसों से तृप्त करें॥९॥

अगले मन्त्र में यह प्रार्थना की गयी है कि परमेश्वर स्तोताओं को सुख प्रदान करे॥

२१३. तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय॥१०॥

**पदार्थ** :–हे (**विभावसो**) तेज रूप धन वाले परमेश्वर! (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**सोमाः**) हमारे प्रीतिरस (**सुतासः**) निष्पादित किये गये हैं, और (**बर्हिः**) हृदयरूप आसन (**स्तीर्णम्**)

बिछाया गया है। हृदयासन पर बैठकर, हमारे प्रीतिरूप सोमरसों का पान करके, हे (इन्द्र) परमैश्वर्यशाली परब्रह्म! आप स्तोतृभ्यः हम स्तोताओं के लिए (मृडय) आनन्द प्रदान कीजिए।।१०।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना से और उसके प्रति अपना प्रेमभाव समर्पण करने से उपासकों को ही सुख मिलता है।।१०।।

इस दशति में इन्द्र का तरणि आदि रूप में वर्णन होने से, इन्द्र के सहचारी मित्र, मरुत् और अर्यमा की प्रशंसा होने से, इन्द्र द्वारा जल-फेन आदि साधन से नमुचि का सिर काटने आदि का वर्णन होने से और इन्द्र नाम से विद्वान्, वैद्य, राजा, सेनापति आदि के अर्थों का भी प्रकाश होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## एकादशी दशतिः

**ऋषिः—१ शुनःशेपः; २ श्रुतकक्षः; ३ त्रिशोकः; ४, ९ मेधातिथिः; ५ गोतमः; ६ ब्रह्मातिथिः; ७ विश्वामित्रो जमदग्निर्वा; ८ प्रस्कण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के प्रति मनुष्यों का कर्त्तव्य वर्णित किया गया है।

**२१४. आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।**
**मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! (**वाजयन्तः**) बल, विज्ञान या ऐश्वर्य की इच्छा करते हुए (**वः**) तुम लोग (**शतक्रतुम्**) बहुत ज्ञानी और बहुत से कर्मों को करने वाले, (**इन्द्रम्**) परमात्मा को (**इन्दुभिः**) भक्तिरसों से (**आ**) आसिञ्चित करो। जैसे (**वाजयन्तः**) अन्नों की उत्पत्ति चाहने वाले किसान लोग (**क्रिविम्**) कृत्रिम कुएँ को खेतों में सिंचाई करने के लिए (**इन्दुभिः**) जलों से भरते हैं, उसी प्रकार मैं भी (**मंहिष्ठम्**) अतिशय दानी, सबसे महान् और पूज्यतम उस परमात्मा को

(इन्दुभिः) भक्तिरसों से (सिञ्चे) सींचता हूँ।।१।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जो परमात्मा के साथ मित्रता करते हैं वे सदा आनन्दित होते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि इन्द्र किन वस्तुओं के साथ हमें प्राप्त हो।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
**२१५. अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाजया।**
३ २ ३ १ २
**इषा सहस्रवाजया॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**अत:चित्**) इसीलिए, अर्थात् क्योंकि हम पूर्वमन्त्रोक्त रीति से बलादि की कामना करते हुए आपको अपने मैत्रीरसों से सींचते हैं इस कारण हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् जगदीश्वर! आप (**शतवाजया**) सैकड़ों बलों से युक्त और (**सहस्रवाजया**) सहस्रों विज्ञानों से **युक्त (इषा) अभीष्ट आनन्दरस की धारा के साथ (नः) हमें (उप आयाहि) प्राप्त हों।।**

(**द्वितीय**) **राजा** के पक्ष **में।** हे (**इन्द्र**) शत्रुविदारक धनपति राजन्! आप (**अत: चित्**) इस अपनी राजधानी से (**शतवाजया**) बहुत बल और वेग वाली तथा (**सहस्रवाजया**) सहस्र संग्राम करने में समर्थ (**इषा**) सेना के साथ (**नः**) शत्रुओं से पीड़ित हम प्रजाजनों को उप (**उप आयाहि**) प्राप्त हों।।

(**तृतीय**) आचार्य के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) अविद्या के विदारक और ज्ञान-धन से सम्पन्न आचार्यप्रवर! (**त्वम्**) आप (**अत: चित्**) इस अपनी कुटी से (**शतवाजया**) प्रचुर बल से युक्त, (**सहस्रवाजया**) बहुत ज्ञान से युक्त (**इषा**) ब्रह्मचर्यादि व्रतपालन की प्रेरणा के साथ (**नः**) हम शिष्यों को (**उप आयाहि**) प्राप्त हों।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है और उपमानोपमेयभाव ध्वनित हो रहा है। 'वाजया' इस भिन्नार्थक शब्द की एक बार आवृत्ति होने से यमक अलंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे राजा बलवती, संग्रामकुशल सेना के साथ

प्रजाजनों को और आचार्य बलविद्यायुक्त सदाचार-प्रेरणा के साथ शिष्यों को प्राप्त होता है, वैसे ही परमात्मा बलविज्ञानयुक्त आनन्दरस की धारा के साथ हमें प्राप्त हो॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से जीवात्मा, मन और परमात्मा का कृत्य वर्णित किया गया है।

**२१६. आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद्वि मातरम्।**
**क उग्राः के ह शृण्विरे॥३॥**

**पदार्थ :–( प्रथम )** जीव के पक्ष में। **( जातः )** मानवदेह में जन्मा, **( वृत्रहा )** दुष्टों के संहार करने में समर्थ जीवात्मा, **( बुन्दम् )** बाण को, शस्त्रास्त्रसमूह को **( आददे )** ग्रहण करे, और **( मातरम् )** अपनी माता से **( वि पृच्छात् )** पूछे कि हे माँ! **( के )** कौन लोग **( उग्राः )** दुष्ट हैं, **( के ह )** और कौन **( शृण्विरे )** सद्गुणों और सत्कर्मों से प्रख्यात कीर्ति वाले हैं, यह तुम बताओ, **जिससे मैं दुष्टों को दण्डित** करूँ और सज्जनों का **सम्मान** करूँ॥

**( द्वितीय )** मन के पक्ष में। **( जातः )** वेग आदि सामर्थ्य में प्रसिद्ध, **( वृत्रहा )** पापरूप वृत्र का संहार करने वाला इन्द्र अर्थात् सद्विचाररूप परमैश्वर्य वाला मन **( बुन्दम् )** शिवसंकल्परूप बाण को **( आददे )** ग्रहण करे, और **( मातरम् )** सत्-असत् के विवेक की निर्मात्री बुद्धि से **( वि पृच्छात् )** पूछे कि **( के )** कौन से विचार **( उग्राः )** उत्कट पाप वाले हैं, **( के ह )** और कौन से विचार **( शृण्विरे )** पुण्य से प्रख्यात हैं, यह बताओ, जिससे मैं पापात्मक विचारों का खण्डन और पुण्यात्मक विचारों का मण्डन करूँ॥

**( तृतीय )** राजा के पक्ष में। **( जातः )** प्रजाओं द्वारा राजा के पद पर अभिषिक्त, **( वृत्रहा )** राष्ट्र के आन्तरिक और बाह्य शत्रुरूप वृत्रों के संहार में समर्थ राजा **( बुन्दम् )** बाण को अर्थात् शासनदण्ड को अथवा शस्त्रास्त्रसमूह को **( आददे )** ग्रहण करे, और **( मातरम् )** राजा की निर्मात्री जनता से **( वि पृच्छात् )** विशेष रूप से पूछे कि के कौन लोग **( उग्राः )** प्रचण्ड कोप

वाले शत्रु हैं, जो तुम्हें परेशान करते हैं, ( के ह ) और कौन ( शृण्विरे ) सद्गुण, सत्कर्म आदि के कारण विश्रुत हैं, प्रख्यात हैं, जो तुम्हारे साथ मित्र के समान आचरण करते हैं। बताओ, जिस से मैं शत्रुओं को दण्डित और मित्रों को सत्कृत करूँ?॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जिन्होंने मानव-शरीर धारण किया है उन वीरों का और राजा का यह कर्त्तव्य है कि वे दुष्टों को दण्ड देकर पुण्यात्माओं का सत्कार करें। साथ ही सबको चाहिए कि वे मन और बुद्धि की सहायता से पापों को दूर कर पुण्यों का प्रसार करें॥३॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि हम अपनी रक्षा के लिए कैसे परमात्मा और राजा का आह्वान करें।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**२१७. बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।**
१ २ ३ २ ३ १ २
**साधः कृण्वन्तमवसे॥४॥**

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हम ( **बृबदुक्थम्** ) प्रशंसनीय कीर्ति वाले, ( **सृप्रकरस्नम्** ) व्यापक कर्मों में निष्णात, और ( **अवसे** ) प्रगति के लिए ( **साधः** ) सूर्य, वायु, चाँदी, सोना आदि साधन-समूह को ( **कृण्वन्तम्** ) उत्पन्न करने वाले इन्द्र नामक परमात्मा को ( **ऊतये** ) रक्षा के लिए ( **हवामहे** ) पुकारते हैं।

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। हम प्रजाजन ( **बृबदुक्थम्** ) प्रशंसनीय कीर्ति वाले, ( **सृप्रकरस्नम्** ) घुटनों तक लम्बी बाहुओं वाले अथवा शत्रुनिग्रह, प्रजापालन आदि शुभ कर्मों में व्याप्त भुजाओं वाले, और ( **अवसे** ) प्रजाओं की प्रगति के लिए ( **साधः** ) शस्त्रास्त्र-ज्ञानविज्ञान-चिकित्सा आदि की सिद्धि को ( **कृण्वन्तम्** ) करने वाले इन्द्र राजा को ( **ऊतये** )) सुरक्षा के लिए ( **हवामहे** ) पुकारते हैं।

**भावार्थ** :–पुरुषार्थी जन सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की और सुयोग्य राजा की सहायता से ही अपनी और समाज की प्रगति कर सकते हैं, इसलिए सबको उनकी सहायता माँगनी चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में यह प्रार्थना है कि इन्द्र से अधिष्ठित

वरुण, मित्र आदि हमें सरल मार्ग से ले चलें।

**२१८. ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान्।**
**अर्यमा देवैः सजोषाः॥५॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) अध्यात्म पक्ष में। हे इन्द्र परमात्मन्! आपकी सहायता से ( **देवैः** ) चक्षु आदि इन्द्रियों के साथ ( **सजोषाः** ) प्रीति वाला, ( **विद्वान्** ) ज्ञानी ( **वरुणः** ) पापों से निवारण करने वाला जीवात्मा, ( **मित्रः** ) प्राण, और ( **अर्यमा** ) मन ( **नः** ) हमें ( **ऋजुनीती** ) सरल धर्ममार्ग से ( **नयति** ) ले चलें।

( **द्वितीय** ) राष्ट्र के पक्ष में। हे इन्द्र राजन्! ( **देवैः** ) अपने-अपने अधिकार में व्यवहार करने वाले राजपुरुषों के साथ ( **सजोषाः** ) प्रीति वाला अर्थात् अनुकूलता रखने वाला ( **विद्वान्** ) विद्वान् विद्यासभाध्यक्ष, ( **वरुणः** ) शत्रुनिवारक, शस्त्रास्त्रधारी सेनाध्यक्ष, ( **मित्रः** ) कुत्सित आचरणरूप मृत्यु से त्राण करने वाला धर्म-सभा का अध्यक्ष और ( **अर्यमा** ) न्यायसभा का अध्यक्ष ( **नः** ) हम प्रजाजनों को ( **ऋजुनीती** ) सरल धर्ममार्ग से ( **नयति** ) ले चलें।

( **तृतीय** ) विद्वान् के पक्ष में। ( **देवैः** ) विद्या और व्रत-शिक्षा का दान करने वाले सब अध्यापकों से ( **सजोषाः** ) सामञ्जस्य रखता हुआ ( **वरुणः** ) श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव वाला, छात्रों द्वारा आचार्य रूप में वरण किया गया व छात्रों को शिष्य रूप से वरने वाला, ( **मित्रः** ) पापरूप मरण से त्राण कराने वाला, ( **अर्यमा** ) न्यायकारी ( **विद्वान्** ) विद्वान् आचार्य ( **नः** ) हम शिष्यों को ( **ऋजुनीती** ) सरल विद्या-दान और व्रत-पालन करने की नीति से ( **नयति** ) आगे ले चले, अर्थात् हमें सुयोग्य विद्या-व्रत-स्नातक बनाये॥५॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—शरीर में विद्यमान जीवात्मा, प्राण, मन आदि देव परमात्मा के पास से बल प्राप्त कर मनुष्यों को धर्म-मार्ग से ले जाते हैं। उसी प्रकार राष्ट्र में विद्यासभा, धर्मसभा और न्यायसभा के अध्यक्ष तथा सेना का अध्यक्ष प्रजाजनों को

धर्ममार्ग में ले चलें। गुरुकुलवासी सुयोग्य अध्यापकों से युक्त, श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव वाला आचार्य भी शिष्यों को धर्म तथा विद्या के मार्ग में ले चले॥५॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि सूर्य के प्रकाश से और अध्यात्म-प्रकाश से दूरस्थ भी पदार्थ समीपस्थ के समान दीखते हैं॥

३ २ ३२ ३ २ ३ २ ३ २ ३१ २
**२१९. दूरादिहेव यत्सतोऽ रुणप्सुरशिश्वितत्।**
२ ३२ ३ १ २
**वि भानुं विश्वथातनत्॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) खगोल पक्ष में। (**अरुणप्सुः**) चमकीले रूपवाला सूर्यरूपी इन्द्र (**यत्**) जब (**दूरात्**) खगोल में स्थित दूरवर्ती प्रदेश से, मंगल-बुध-चन्द्रमा आदि ग्रहोपग्रहों को (**इह इव सतः**) मानो यहीं समीप में ही स्थिति करता हुआ (**अशिश्वितत्**) चमकाता है, तब (**भानुम्**) अपने प्रकाश को (**विश्वथा**) बहुत प्रकार से (**विअतनत्**) विस्तीर्ण करता है॥

(**द्वितीय**) अध्यात्म पक्ष में। (**अरुणप्सुः**) तेजस्वी रूप वाला इन्द्र परमेश्वर (**यत्**) जब, (**दूरात्**) दूर से अर्थात् व्यवधानयुक्त अथवा दूरस्थ प्रदेश से, पदार्थों को (**इह इव सतः**) यहाँ समीपस्थ के समान करता हुआ (**अशिश्वितत्**) योगी के मानस को प्रकाशित करता है, तब (**भानुम्**) भासमान जीवात्मा को (**विश्वथ**) सर्व प्रकार से (**वि अतनत्**) योगैश्वर्य प्राप्त कराकर विस्तीर्ण अर्थात् व्यापक ज्ञान वाला कर देता है॥६॥

योगाभ्यासी मनुष्य को परमात्मा द्वारा प्रदत्त दिव्य आलोक से सूक्ष्म, ओट में स्थित और दूरस्थ पदार्थों का, दूरस्थित ताराव्यूहों का और ध्रुव आदि नक्षत्रों का समीपस्थ वस्तु के समान हस्तामलकवत् साक्षात्कार हो सकता है, यह योगदर्शन में विभूतिपाद में महर्षि पतंजलि ने कहा है। योगसिद्धियों के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द के विचार इसी मन्त्र की संस्कृत टिप्पणी में देखें।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'दूरस्थित को भी मानो

समीप-स्थित करता हुआ' इसमें उत्प्रेक्षालंकार है।।६।।

**भावार्थ** :—चमकीला सूर्य जब अपने प्रकाश को मंगल, बुध, बृहस्पति, चन्द्र आदि ग्रहोपग्रहों पर फेंकता है, तब उसके प्रकाश से वे प्रकाशित हो जाते हैं और वह प्रकाश हमारी आँखों पर प्रतिफलित होकर उन दूरस्थित पदार्थों को भी समीप में स्थित के समान दिखाता है। उसी प्रकार योगाभ्यास से योगियों के मनों में परमात्मा का दिव्य आलोक प्रतिबिम्बित होकर उनके अन्दर वह शक्ति उत्पन्न कर देता है, जिससे वे सूक्ष्म, ओट में स्थित तथा दूरस्थित पदार्थों को भी साक्षात् समीपस्थ के समान देखने लगते हैं।।६।।

अगले मन्त्र में इन्द्र से अधिष्ठित ब्राह्मण और क्षत्रिय को सम्बोधन किया गया है।

**२२०. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।**
**मध्वा रजांसि सुक्रतू॥७॥**

**पदार्थ** :—इन्द्र परमात्मा और इन्द्र राजा के अधिष्ठातृत्व में चलने वाले हे (**मित्रावरुणौ**) ब्राह्मण और क्षत्रियो! तुम दोनों (**नः**) हमारी (**गव्यूतिम्**) राष्ट्रभूमि को (**घृतैः**) घृत आदि पदार्थों से (**आ उक्षतम्**) सींचो अर्थात् समृद्ध करो। हे (**सुक्रतू**) उत्तम ज्ञान और कर्म वालो! तुम दोनों (**मध्वा**) विद्यामधु के साथ (**रजांसि**) क्षात्रतेजों को उत्पन्न करो।।७।।

**भावार्थ** :—परमात्मा से प्रेरणा और राजा से सहायता पाकर ब्राह्मण और क्षत्रिय राष्ट्र की प्रजाओं में समृद्धि, विद्या, वीरता और क्षात्रतेज को यदि उत्पन्न करते हैं, तो राष्ट्र परम उत्कर्ष को पा सकता है।।७।।

अगले मन्त्र में इन्द्र के अधीन रहने वाले मरुतों का वर्णन है।

**२२१. उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा यज्ञेष्वत्नत।**
**वाश्रा अभिज्ञु यातवे॥८॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) वायुओं के पक्ष में। (**सूनवः**) परमेश्वररूप

अथवा सूर्यरूप इन्द्र के पुत्र (त्ये) वे मरुद्गण अर्थात् पवन (यज्ञेषु) वृष्टि-यज्ञों में, जब (गिरः) विद्युद्गर्जनाओं को तथा (काष्ठाः) मेघजलों को (उद् अत्नत) विस्तीर्ण करते हैं अर्थात् बिजली को गर्जाते हैं तथा बादलों के जलों पर आघात करते हैं, तब (वाश्राः) रिमझिम करते हुए वर्षाजल (अभिज्ञु) पृथिवी की ओर (यातवे) जाना आरम्भ कर देते हैं, अर्थात् वर्षा होने लगती है।।

(द्वितीय) सैनिकों के पक्ष में। (सूनवः) सेनापतिरूप इन्द्र के पुत्रों के समान विद्यमान (त्ये) वे सैनिकरूप मरुद्गण (यज्ञेषु) जिनमें मुठभेड़ होती है ऐसे संग्रामयज्ञों में (गिरः) जयघोषों को (उद् अत्नत) आकाश में विस्तीर्ण करते हैं, तथा (काष्ठाः) दिशाओं को (उद् अत्नत) लाँघ जाते हैं। (अभिज्ञु) घुटने झुका-झुकाकर (यातवे) चलने पर, उनके लिए (वाश्राः) उत्साहवर्धक शब्द उच्चारण किये जाते हैं।

हे मरुतो! शत्रु को परे भगाने के लिए तुम्हारे हथियार चिरस्थायी हों और शत्रुओं का प्रतिरोध करने के लिए सुदृढ़ हों (ऋ० १।३९।२) इत्यादि वैदिक वर्णन मरुतों का सैनिक होना सूचित करते हैं।।

(तृतीय) अध्यात्म पक्ष में। जीवात्मा रूप इन्द्र से सम्बद्ध (त्ये) वे (गिरः) शब्दोच्चारण से साधनभूत (सूनवः) प्रेरक प्राण (यज्ञेषु) योगाभ्यास-रूप यज्ञों में, जब (काष्ठाः) चित्त की दिशाओं को (उत् अत्नत उ) ऊर्ध्वगामिनी कर देते हैं, तब (अभिज्ञु) घुटने मोड़कर पद्मासन बाँधकर (यातवे) मोक्ष की ओर जाने के लिए, उनके चित्त में (वाश्राः) धर्ममेघ समाधिजन्य वर्षाएँ होती हैं।।८।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।८।।

**भावार्थ** :—पवन जैसे आकाश में बिजली की गर्जना करते हैं, वैसे ही सेनापति के अधीन रहने वाले योद्धा लोग संग्रामरूप यज्ञ में जयघोषों से सब दिशाओं को भरपूर कर दें। जैसे पवन बादलों में स्थित जलों को भूमि पर बरसाते हैं, वैसे ही प्राण योगी की चित्तभूमि में धर्ममेघ समाधि को बरसावें।।८।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कैसे विष्णु तीन प्रकार

से अपने कदम भरता है।

२२२. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पाँसुले॥९॥

**पदार्थ** :—यहाँ मन्त्र का देवता इन्द्र है, अतः विष्णु इन्द्र का विशेषण समझना चाहिए। (**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**विष्णु**) चराचर जगत् में व्याप्त होने वाला परमेश्वर (**इदम्**) इस सब जगत् में (**वि चक्रमे**) व्यापक है। (**त्रेधा**) तीन प्रकार से—अर्थात् उत्पादक, धारक और विनाशक इन तीन रूपों में उस जगत् में वह (**पदम्**) अपने पैर को अर्थात् अपनी सत्ता को (**निदधे**) रखे हुए है। किन्तु (**अस्य**) इस परमेश्वर का, वह पैर अर्थात् अस्तित्व (**पांसुले**) पाञ्चभौतिक इस जगत् में (**समूढम्**) छिपा हुआ है, चर्म-चक्षुओं से अगोचर है। जैसे धूलि वाले प्रदेश में (**समूढम्**) छिपा हुआ (**पदम्**) किसी का पैर दिखाई नहीं देता है, यह यहाँ ध्वनि निकल रही है॥

(**द्वितीय**) सूर्य के पक्ष में। (**विष्णुः**) अपने प्रकाश से सबको व्याप्त करने वाला सूर्य (**इदम्**) इस सब ग्रहोपग्रह-चक्र में (**विचक्रमे**) अपने किरणरूप चरणों को रखे हुए है। (**त्रेधा**) भूगर्भ, भूतल और आकाश इन तीनों स्थानों पर, उसने (**पदम्**) अपने किरणसमूह-रूप पैर को (**निदधे**) रखा हुआ है। किन्तु (**पांसुले**) धूलिमय भूगर्भ में (**अस्य**) इस सूर्य का किरणरूप पैर (**समूढम्**) तर्कणा-गम्य ही है, प्रत्यक्ष नहीं है॥९॥

यहाँ श्लेषालंकार और उपमाध्वनि है॥९॥

**भावार्थ** :—विष्णु सूर्य अपनी किरणों से व्याप्त होकर सब ग्रहोपग्रहों को प्रकाशित करता है। सूर्य के ही ताप से ओषधि, वनस्पति आदि पकती हैं। सूर्य यद्यपि तीनों स्थानों पर अपने किरण-रूप पैर रखे हुए है, तो भी उसकी किरणें पृथ्वीतल पर और आकाश में ही प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देती हैं, भूगर्भ में भी पहुँचकर कैसे वे मिट्टी के कणों को लोहे, ताँबे, सोने आदि के रूप में परिणत कर देती हैं यह सबकी आँखें नहीं देख सकतीं, अपितु भूगर्भवेत्ता वैज्ञानिक लोग ही इस रहस्य

को जानते हैं। वैसे ही विष्णु परमेश्वर ने अपनी सत्ता से ब्रह्माण्ड को व्याप्त किया हुआ है। वह सब पदार्थों को सृष्टि के आरम्भ में पैदा करता है, पैदा करके धारण करता है और प्रलयकाल में उनका संहार कर देता है। यह तीन रूपों वाला उसका कार्य तीन प्रकार से पैर रखने के रूप में वर्णन किया गया है। यद्यपि वह सभी जगह अपना पैर रखे हुए है, तो भी जैसे किसी का धूल में छिपा हुआ पैर नहीं दीखता है, वैसे ही उसका सर्वत्र विद्यमान स्वरूप भी दृष्टिगोचर नहीं होता है॥९॥

इस दशति में इन्द्र के गुणवर्णनपूर्वक उसका आह्वान करने के कारण, उसके सहायक मित्र, वरुण और अर्यमा के नेतृत्व की याचना के कारण और मित्रावरुण, मरुत् तथा विष्णु के गुणकर्मों का कीर्तन करने के कारण इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## द्वादशी दशतिः

**ऋषिः—१, ७, ८ मेधातिथिः; २ वामदेवः; ३, ५ मेधातिथिप्रियमेधौ; ४ विश्वामित्रः; ६ कौत्सो दुर्मित्रः सुमित्रो वा; ९ विश्वामित्रो गाथिनोऽभीपाद उदलो वा; १० श्रुतकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में यह कहा गया है कि इन्द्र किसके सोमरस का पान करे।

**२२३. अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय।**
**अस्य रातौ सुतं पिब॥१॥**

**पदार्थ :—(प्रथम)** अध्यात्म-पक्ष में। हे इन्द्र परमात्मन्! आप **(मन्युषाविणम्)** जो उदासीन भाव से अर्थात् हृदय में प्रीति रखे बिना उपासना करता है उसे **(अति इहि)** लाँघ जाइये। **(सुषुवांसम्)** हार्दिक प्रीति से उपासनारस अभिषुत करने वाले को **(उप-आ-ईरय)** अपने समीप ले आइये। **(अस्य)** इस यजमान के **(रातौ)** आत्म-समर्पण-प्रवृत्त होने पर **(सुतम्)**

अभिषुत श्रद्धारस का ( **पिब** ) पान कीजिए।

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। हे इन्द्र राजन्! आप ( **मन्युपाविणम्** ) क्रोध उगलने वाले दुष्ट शत्रु को ( **अति-इहि** ) पराजित कीजिए। ( **सुषुवांसम्** ) कर-प्रदान रूप सोमयाग करने वाले प्रजाजन को ( **उप-आ-ईरय** ) प्राप्त होकर शुभ कर्मों में प्रेरित कीजिए। ( **अस्य** ) इस प्रजाजन के ( **रातौ** ) करप्रदान के प्रवृत्त होने पर ( **सुतम्** ) दिये हुए कर को ( **पिब** ) स्वीकार कीजिए। और स्वीकार करके उसे सहस्रगुणित रूप में प्रजा-कल्याण के कार्य में ही व्यय कर दीजिए, जैसे सूर्य भूमिष्ठ रसों को सहस्रगुणित रूप में बरसा देने के लिए ही ग्रहण करता है।

( **तृतीय** ) अध्ययनाध्यापन पक्ष में। हे इन्द्र! विद्युत् के समान तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थी! तू ( **मन्युपाविणम्** ) क्रोध, द्वेष आदि से विद्यादान करने वाले गुरु को ( **अति-इहि** ) त्याग दे, उसके पास विद्या पढ़ने के लिए मत जा। ( **सुषुवांसम्** ) प्रेम से विद्या दान करने वाले के पास ही ( **उप-आ-ईरय** ) पहुँचकर विद्या पढ़ने के लिए प्रार्थना कर। ( **अस्य** ) उस गुरु के ( **रातौ** ) विद्यादान के प्रवृत्त होने पर ( **सुतम्** ) ज्ञानरस को ( **पिब** ) पी।

इससे यह अभिप्राय सूचित होता है कि अध्यापक को छात्रों के प्रति दिव्य मन रखते हुए रमण-पद्धति से पढ़ाना चाहिए। अथर्ववेद में छात्रों की ओर से आचार्य को कहा गया है कि हे वाणी के अधिपति तथा विद्याधन के स्वामी आचार्यप्रवर! आप दिव्य मन के साथ हमारे बीच में पुनः-पुनः आइये और ऐसी रमण-पद्धति से हमें विद्यादान दीजिए कि सुना हुआ शास्त्र कभी भूलें नहीं (अथ० १।१।२) ।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर उसके श्रद्धारस को स्वीकार नहीं करता जो उदासीन मन से देता है। राजा भी शत्रु को नहीं, अपितु कर (टेक्स) देने वाले प्रजाजन को ही बढ़ाता है। गुरुओं को भी सरल पद्धति से और प्रेमपूर्वक ही छात्रों को पढ़ाना चाहिए, जटिल पद्धति से तथा क्रोध-विद्वेष आदि के वशीभूत होकर नहीं।।१।।

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि परमात्मा की स्तुति हम क्यों करें।

**२२४. कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते।**
**तदिद्ध्यस्य वर्धनम्॥२॥**

**पदार्थ** :-(**कत् उ**) किसलिए (**प्रचेतसे**) प्रकृष्ट ज्ञान वा प्रकृष्ट चित्त वाले, (**महे**) महान् (**देवाय**) दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले इन्द्र परमेश्वर के लिए (**वचः**) स्तुति-वचन (**शस्यते**) उच्चारण किया जाता है? यह प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर है-(**हि**) क्योंकि (**तत्**) वह स्तुति-वचन (**अस्य**) इस स्तुतिकर्ता यजमान का (**वर्धनम्**) बढ़ाने वाला होता है॥२॥

**भावार्थ** :-परमेश्वर के लिए जो स्तुति-वचन कहे जाते हैं, उनसे स्तोता की ही वृद्धि और उन्नति होती है, यह जानना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताते हैं कि किसका किया हुआ भी कार्य व्यर्थ होता है।

**२२५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।**
**न गायत्रं गीयमानम्॥३॥**

**पदार्थ** :-(**अगोः**) अश्रद्धालु जन का (**न**) न तो (**शस्यमानम्**) उच्चारण किया जाता हुआ (**उक्थम् च**) स्तोत्र ही (**न**) न ही (**रयिः**) दान किया जाता हुआ धन, (**न**) न ही (**गीयमानम्**) गान किया जाता हुआ (**गायत्रम्**) सामगान (**आ चिकेत**) कभी किसी से जाना गया है। अतः श्रद्धापूर्वक ही परमेश्वर-विषयक स्तुति आदि कर्म करना चाहिए।

इस मन्त्र में स्तोत्रोच्चारण, गायत्रगान आदि कारण के होने पर भी उनके ज्ञान-रूप कार्य की अनुत्पत्ति वर्णित होने से विशेषोक्ति अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :-श्रद्धा-रहित मनुष्य का उच्चारण किया गया भी स्तोत्र अनुच्चारित के समान होता है, दिया हुआ भी दान न दिये हुए के समान होता है और गाया हुआ भी सामगान न

गाये हुए के समान होता है। इसलिए श्रद्धा के साथ ही सब शुभ कर्म सम्पादित करने चाहिएँ॥३॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमेश्वर कैसा है, और राजा कैसा हो।

**२२६. इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजानां च वाजपतिः।**
**हरिवान्त्सुतानां सखा॥४॥**

पदार्थ :—(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान्, विघ्नों को विदीर्ण करने वाला, सुख आदि का प्रदाता परमेश्वर (**उक्थेभिः**) वेदमन्त्रों से (**मन्दिष्ठः**) अतिशय आनन्दित करने वाला, (**वाजानां च**) तथा सब बलों का (**वाजपतिः**) बलपति, (**हरिवान्**) प्रशस्त प्राणवाला, और (**सुतानाम्**) सब पुत्र-पुत्रियों का (**सखा**) मित्र है॥

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**इन्द्रः**) राजा (**उक्थेभिः**) कीर्तियों से (**मन्दिष्ठः**) सबको अत्यन्त आनन्द देने वाला, (**वाजानां च**) सब प्रकार के अन्नों, धनों, बलों और विज्ञानों का (**वाजपतिः**) स्वामी, (**हरिवान्**) जितेन्द्रिय अथवा राज्य में विद्युत् आदि से चलने वाले तीव्रगामी भूमियान, जलयान और विमानों का प्रबन्ध करने वाला और (**सुतानाम्**) पुत्रतुल्य प्रजाजनों का (**सखा**) मित्र हो॥४॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'वाजा, वाज' में छेकानुप्रास है॥४॥

**भावार्थ** :—जैसे विश्व का सम्राट् परमेश्वर अनेक प्रकार के गुण-समूहों का अग्रणी है, वैसे ही प्रजाओं के बीच जो मनुष्य यशस्वी, यश देने वाला, धनपति, बलवान्, विज्ञानी, जितेन्द्रिय, सुप्रबन्धक और सबके साथ सौहार्द से बरतने वाला हो, उसी को राजा के पद पर अभिषिक्त करना चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में परमात्मा को उपासनायज्ञ में निमन्त्रित किया जा रहा है।

**२२७. आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः।**
**महाँइव युवजानिः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन्! महान् आप (**वाजेभिः**) आध्यात्मिकबलरूप तथा योगैश्वर्यरूप उपहारों के साथ (**नः**) हमारे (**सुतम्**) प्रारम्भ किये हुए उपासना-यज्ञ में (**आ याहि**) आइये, (**मा हृणीयथाः**) रोष वा संकोच मत कीजिए, (**इव**) जैसे (**युवजानिः**) युवति पत्नी वाला (**महान्**) गुणों से महान् कोई पुरुष, बहुमूल्य उपहारों के साथ पत्नी-सहित दूसरों के यज्ञ में जाता है।।५।।

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है।।५।।

**भावार्थ** :—जैसे रूपवती भार्या वाला कोई महान् पुरुष सामान्यजनों के भी निमन्त्रण को स्वीकार कर, उपहार लेकर भार्या के साथ उनके यज्ञ में जाता है, वैसे ही महान् परमात्मा भी हम तुच्छों से भी आयोजित उपासना-यज्ञ में आध्यात्मिक ऐश्वर्य का उपहार लेकर आये।।५।।

अगले मन्त्र में भौतिक तथा दिव्य वर्षा की कामना करता हुआ कोई कह रहा है।

**२२८. कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः।**
**दीर्घं सुतं वाताप्याय॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) भौतिक वर्षा के पक्ष में। बहुत समय तक वर्षा न होने पर जल के अभाव से पीड़ित मनुष्य कहता है—हे (**वसो**) निवासप्रद इन्द्र जगदीश्वर! वर्षा के लिए (**स्तोत्रम्**) स्तोत्र को (**हर्यते**) आपके प्रति पहुँचाते हुए मेरे लिए (**कदा**) कब (**श्मशा**) वर्षा जल से परिपूर्ण नदी या नहर (**वाः**) जल को (**आ अवरुधत्**) लाकर खेत, जलाशय आदि में रोकेगी? मैंने (**वाताप्याय**) वर्षा-जल के लिए (**दीर्घम्**) लम्बे समय तक (**सुतम्**) वृष्टियज्ञ किया है।।

(**द्वितीय**) अध्यात्म-वर्षा के पक्ष में। दिव्य आनन्दरस से परिपूर्ण परमेश्वर के पास से आनन्दरस की वर्षा की कामना करता हुआ साधक कह रहा है—हे (**वसो**) मुझ निर्धन के धन, निवासदाता जगदीश्वर! आनन्दरस की वर्षा के लिए (**स्तोत्रम्**) स्तुति को (**हर्यते**) आपके प्रति पहुँचाते हुए मेरे

लिए (कदा) कब (श्मशा) आपके पास से बहती हुई आनन्द-रस की धारा (आ अवरूधत्) लाकर मेरे हृदयरूप क्षेत्र या जलाशय में रोकेगी? हे रसागार! चिरकालीन दुःख के दावालन से दग्ध मैंने (वाताप्याय) दिव्य आनन्द-जल की वर्षा पाने के लिए (दीर्घम्) लम्बे समय तक (सुतम्) श्रद्धारस प्रसुत करते हुए अध्यात्म-यज्ञ निष्पन्न किया है तो भी आनन्द-रस की वर्षा मुझे क्योंकि नहीं प्राप्त हो रही है?॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :–जैसे अनावृष्टि होने पर वर्षा के लिए लम्बा वृष्टियज्ञ किया जाता है, वैसे ही आनन्द-रस का प्यासा मैं आनन्द-रस की वर्षा को पाने के लिए दीर्घ ध्यान-यज्ञ चिरकाल से कर रहा हूँ। तो भी हे प्रभो, क्यों आप आनन्द-वारि नहीं बरसा रहे हैं? बरसाओ, बरसाओ, हे देव, दिव्य आनन्द को बरसाओ। नहीं तो अनेक प्रकार के सांसारिक संतापों से संतप्त हुआ मैं जीवन धारण भी नहीं कर सकूँगा॥६॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य की मित्रता की याचना की गयी है।

**२२९. ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु।**
**तवेदं सख्यमस्तृतम्॥७॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! आप (**राधसः**) ध्यानयज्ञ के साधक (**ब्राह्मणात्**) वेद तथा ईश्वर के ज्ञाता मुझसे (**ऋतून् अनु**) ऋतुओं के अनुरूप, समयानुसार (**सोमम्**) मेरे मैत्री-रस का (**पिब**) पान कीजिए। मेरे साथ (**तव**) आपकी (**इदम्**) यह (**सख्यम्**) मित्रता (**अस्तृतम्**) अविनष्ट अर्थात् चिरस्थायी रहे।

(**द्वितीय**) गुरुशिष्य के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) विद्युत् के समान तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थी! तू (**राधसः**) अध्ययन-अध्यापन यज्ञ के साधक (**ब्राह्मणात्**) ब्रह्मवेत्ता, वेदवेत्ता और ब्राह्मण स्वभाव वाले आचार्य से (**ऋतून् अनु**) प्रत्येक ऋतु में (**सोमम्**) ज्ञानरस को (**पिब**) पी। (**तव**) तेरी (**इदम्**) यह गुरुशिष्य-

सम्बन्ध-रूप (**सख्यम्**) मित्रता (**अस्तृतम्**) अविनष्ट रहे॥७॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥७॥

**भावार्थ** :-जो परमात्मा और गुरु की मैत्री प्राप्त करते हैं वे सदा सुखी होते हैं॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के स्तुति-विषय का वर्णन है।

**२३०. वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः।**
**त्वं नो जिन्व सोमपाः॥८॥**

**पदार्थ** :-हे (**गिर्वणः**) वेदवाणियों से भजनीय! (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! (**वयम्**) हम (**स्तोतारः**) स्तोता लोग (**घ**) निश्चय ही (**ते अपि**) तेरे ही (**स्मसि**) हैं। हे (**सोमपाः**) हमारे मैत्री रस का पान करने वाले! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमें (**जिन्व**) तृप्त कर॥८॥

**भावार्थ :-जो लोग परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं, परमात्मा भी उन्हें सदा सुखी करता है॥८॥**

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से बलादि की प्रार्थना की गयी है।

**२३१. एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।**
**सत्राजिदुग्र पौंस्यम्॥९॥**

**पदार्थ** :-हे (**इन्द्र**) शत्रुविदारक तथा दुःखच्छेदक परमात्मन् और राजन्! आप (**कासुचित् पृक्षु**) जिन किन्हीं भी देवासुर-संग्रामों में (**नः**) हमारे (**तनूषु**) शरीरों में (**नृम्णम्**) बल (**आधेहि**) स्थापित कीजिए। हे (**सत्राजित्**) सत्यजयी अथवा सदाजयी, (**उग्र**) तीव्र तेज वाले परमात्मन् व राजन्! आप हममें (**पौंस्यम्**) धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप पुरुषार्थ को स्थापित कीजिए॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :-जैसे परमात्मा सभी आन्तरिक और बाह्य संग्रामों में शत्रुओं को जीतने और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है, वैसे ही राजा भी करे॥९॥

अगले मन्त्र में पुनः इन्द्र नाम से परमात्मा और राजा की स्तुति की गयी है।

**२३२. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन् अथवा राजन्! (**एव हि**) सचमुच, आप (**वीरयुः**) वीरों को चाहने वाले (**असि**) हैं। (**एव**) सचमुच, आप (**शूरः**) शूरवीर (**उत**) और (**स्थिरः**) अविचल हैं। (**एव**) सचमुच ही (**ते**) आपका (**मनः**) मन (**राध्यम्**) सत्कर्मों आदि द्वारा अनुकूल किये जा सकने योग्य है॥१०॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है।

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर स्वयं वीर, सुस्थिर और किसी से जीता न जा सकने वाला होकर संसार में वीरों की ही कामना करता है, डरपोकों की नहीं, वैसा ही राजा भी हो॥१०॥

इस दशति में इन्द्र को सोमपान के लिए निमन्त्रित करने, उसके सखित्व का महत्त्व वर्णन करने, उससे बल की याचना करने, शूर आदि के रूप में उसकी स्तुति करने तथा इन्द्र शब्द से आचार्य, राजा आदि के भी चरित्र का वर्णन करने के कारण इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

**इति द्वितीयोऽध्यायः॥**

# अथ तृतीयोऽध्यायः

## प्रथमा दशतिः

**ऋषिः—१, ६, ९ वसिष्ठः; २ भरद्वाजः; ३ बालखिल्याः; ४ नोधाः; ५ कलिः प्रागाथः; ७ मेधातिथिः; ८ भर्गः; १० प्रगाथः काण्वः॥ देवता—१-८, १० इन्द्रः; ९ मरुतः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में गुणवर्णनपूर्वक परमात्मा की स्तुति की गयी है।

**२३३. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धाइव धेनवः।**
**ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**शूर**) विक्रमशाली (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर! (**अस्य**) इस सामने दिखाई देने वाले (**जगतः**) जंगम के (**ईशानम्**) अधीश्वर, और (**तस्थुषः**) स्थावर के (**ईशानम्**) अधीश्वर, (**स्वर्दृशम्**) मोक्ष-सुख का दर्शन कराने वाले (**त्वा अभि**) आपको लक्ष्य करके, हम प्रजाजन (**अदुग्धाः धेनवः इव**) न दोही गयी गायों के समान, अर्थात् न दोही गयी गायें जैसे अपने बछड़े को देखकर उसे दूध पिलाने के लिए रँभाती हैं वैसे (**नोनुमः**) अतिशय बारंबार आपकी स्तुति कर रहे हैं। आप हमारे लिए वैसे ही प्रिय हैं, जैसे गाय को बछड़ा प्यारा होता है, यह यहाँ ध्वनित हो रहा है॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—**जैसे गौएँ बछड़े को अपना दूध पिलाकर बदले में सुख प्राप्त करती हैं, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर से प्रीति जोड़कर सब प्रकार के अभ्युदय एवं निःश्रेयस का सुख प्राप्त करें॥१॥**

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा का आह्वान किया गया है।

**२३४. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।**
**त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) विपत्ति के विदारक और सब सम्पत्तियों के दाता परमेश्वर व राजन्! (**कारवः**) स्तुतिकर्ता, कर्मयोगी हम लोग (**वाजस्य**) बल की (**सातौ**) प्राप्ति के निमित्त (**त्वाम् इत् हि**) तुझे ही (**हवामहे**) पुकारते हैं। (**नरः**) पौरुष से युक्त हम (**वृत्रेषु**) पापों एवं शत्रुओं का आक्रमण होने पर (**सत्पतिम्**) सज्जनों के रक्षक (**त्वाम्**) तुझे पुकारते हैं। (**अर्वतः**) घोड़े आदि सेनांगों के अथवा आग्नेयास्त्रों और वैद्युतास्त्रों के (**काष्ठासु**) संग्रामों में भी (**त्वाम्**) तुझे पुकारते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर और राजा आदि का आह्वान मनुष्यों को स्वयं कर्मण्य होकर ही करना चाहिए। जब पापरूप या पापीरूप वृत्र आक्रमण करते हैं, अथवा जब दैत्यों के साथ देवपुरुषों का हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, योद्धा इन सेनांगों के द्वारा और आग्नेयास्त्रों या बिजली के अस्त्रों द्वारा घोर भयंकर युद्ध प्रवृत्त होता है, तब परमेश्वर और राजा से सहयोग, प्रेरणा, बल और साहस प्राप्त करके शत्रु को धूल में मिला देना चाहिए।।२।।

अगले मन्त्र में मनुष्यों को परमेश्वर की अर्चना के लिए प्रेरित किया गया है।।३।।

**२३५. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥३॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! (**वः**) तुम (**सुराधसम्**) प्रशस्त धनों वाले और शुभ सफलता को देने वाले (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**अभि**) लक्ष्य करके (**प्र अर्च**) भलीभांति ऐसी अर्चना करो (**यथा**) जिससे कि वह अर्चना (**विदे**) जान ली जाए, (**यः**) जो प्रसिद्ध (**मघवा**) ऐश्वर्यवान् (**पुरूवसुः**) बहुत अधिक बसाने वाला अथवा बहुतों को बसाने वाला परमेश्वर (**जरितृभ्यः**) स्तोताओं के लिए (**सहस्रेण इव**) मानो हजार हाथों से (**शिक्षति**) भौतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति प्रदान करता है।।३।।

इस मन्त्र में 'सहस्रेणेव शिक्षति' में उत्प्रेक्षालङ्कार है।।३।।

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि बहुत सम्पत्ति के स्वामी, पुरुषार्थियों को सफलता देने वाले, निवासक, भूरि-भूरि सुख-सम्पदा को बरसाने वाले परमेश्वर की श्रद्धा के साथ पूजा करें।।३।।

अगले मन्त्र में यह वर्णित है कि वह परमात्मा कैसा है, जिसकी हम स्तुति करते हैं।

**२३६. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः। अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥४॥**

**पदार्थ** :–हे साथियो! (**वः**) तुम्हारे और हमारे (**दस्मम्**) दर्शनीय अथवा दुःखों का क्षय करने वाले, (**ऋतीषहम्**) आक्रान्ता काम–क्रोधादि शत्रुओं को पराजित करने वाले, (**वसोः**) धनभूत (**अन्धसः**) भक्तिरूप सोमरस से (**मन्दानम्**) आनन्दित होने वाले (**तम्**) उस प्रसिद्ध (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**अभि**) लक्ष्य करके (**स्वसरेषु**) दिनों के आविर्भाव–काल में अथवा घरों में (**गीर्भिः**) वाणियों से, हम (**नवामहे**) स्तुति करते हैं, (**न**) जैसे (**धेनवः**) दूध देने वाली गौएँ (**वत्सम् अभि**) बछड़े के प्रति (**स्वसरेषु**) प्रातः दोहन–वेला में अथवा गोशालाओं में रँभाती हैं॥४॥

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है॥४॥

**भावार्थ** :–जैसे दिन निकलने पर गोशालाओं में स्थित गौएँ बछड़े को देखकर दूध पिलाने के लिए प्रेम से रँभाने लगती हैं, वैसे ही परमात्मा के प्रति हम प्रजाओं को प्रेम में भरकर स्तुतिगीत गाने चाहिएँ॥४॥

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर को स्मरण–योग्य कहा गया है।

**२३७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये। बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम्॥५॥**

**पदार्थ** :–हे साथियो! (**वः**) तुम लोग (**सबाधः**) जब बाधाओं से आक्रान्त होओ तब (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**सुतसोमे**) जिसमें श्रद्धा और कर्मरूप सोम का निष्पादन किया गया है ऐसे (**अध्वरे**) हिंसारहित जीवनयज्ञ में (**तरोभिः**) वेगों और बलों के साथ (**विदद्वसुम्**) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले (**इन्द्रम्**) परमेश्वर के (**बृहत्**) बहुत अधिक (**गायन्तः**) गीत गाओ। मैं भी (**भरम् न**) कुटुम्ब का भरण–पोषण करने वाले गृहपति के समान (**कारिणम्**) कर्मशील उस परमेश्वर का (**हुवे**) आह्वान करता हूँ॥५॥

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है॥५॥

**भावार्थ** :–जब–जब मनुष्य अपने जीवन में विघ्न–बाधाओं

से पीड़ित होते हैं, तब-तब उन्हें परमेश्वर का स्मरण करना चाहिए। स्मरण करने पर वह उन्हें पुरुषार्थ में और कर्मयोग में प्रवृत्त करता है। जैसे कोई गृहपति कर्मपरायण होकर ही कुटुम्ब के भरण-पोषण में समर्थ होता है, वैसे ही परमेश्वर भी कर्मपरायण होकर ही विश्व को धारण करता है और सब उपासकों को भी कर्मयोग में प्रेरित करता है।।५।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा की अनुकूलता प्राप्त करने का विषय है।

**२३८. तरणिरित् सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा। आ व**
**इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्॥६॥**

**पदार्थ** :–( **तरणिः** ) दुःखों से तराने वाला इन्द्र परमेश्वर अथवा इन्द्र राजा ( **इत्** ) अवश्य ( **युजा** ) सदा साथ रहने वाली ( **पुरन्ध्या** ) अपनी महती बुद्धि और क्रिया से ( **वाजम्** ) बल, धन और ( **विज्ञान सिषासति** ) बाँटता या देता है। इसलिए मैं ( **पुरुहूतम्** ) बहुतों द्वारा स्तुत ( **इन्द्रम्** ) उस परमेश्वर वा राजा को ( **गिरा** ) वाणी के द्वारा ( **वः** ) आप लोगों के लिए ( **आनमे** ) कार्य में प्रवृत्त करता हूँ, ( **तष्टा इव** ) जैसे शिल्पी ( **नेमिम्** ) रथचक्र की परिधि को ( **सुद्रुवम्** ) सुप्रवृत्त करता है।।६।।

इस मन्त्र में श्लेष तथा उपमा अलंकार है।।६।।

**भावार्थ** :–उत्तम प्रज्ञा वाला तथा उत्तम कर्मों वाला परमेश्वर और राजा यथायोग्य मनुष्यों को सुख, धन, विद्यादि प्रदान करता है, अतः प्रार्थना-वचनों से सबको उन्हें अपनी ओर प्रवृत्त करना चाहिए। जैसे रथ-चक्र के प्रवृत्त होने से ही रथ में बैठे लोग गन्तव्य स्थान को पहुँच सकते हैं, वैसे ही परमेश्वर और राजा की प्रजा की ओर प्रवृत्ति होने से ही लोगों का अभ्युदय हो सकता है।।६।।

अगले मन्त्र में यह प्रार्थना है कि परमेश्वर और राजा हमारी वृद्धि के लिए होवें।

२३९. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽ स्माँ अवन्तु ते धियः॥७॥

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) परमेश्वर के पक्ष में। हे ( **इन्द्र** ) परमेश्वर! आप ( **रसिनः** ) रसीले ( **सुतस्य** ) निष्पादित भक्तिभावरूप सोमरस का ( **पिब** ) पान कीजिए। ( **गोमतः** ) प्रशस्त इन्द्रियों और प्रशस्त वेदवाणियों का पाठ करने वाले ( **नः** ) हमें ( **मत्स्व** ) आनन्दित कीजिए। ( **सधमाद्ये** ) जिसमें सब राष्ट्रों के लोग परस्पर मिलकर आनन्दलाभ करते हैं ऐसे विश्वयज्ञ में ( **वृधे** ) वृद्धि के लिए ( **आपिः** ) बन्धु बनकर ( **नः** ) हमें ( **बोधि** ) बोध प्रदान कीजिए। ( **ते** ) आपकी ( **धियः** ) बुद्धियाँ और कर्म ( **अस्मान्** ) हमें ( **अवन्तु** ) रक्षित करें।।

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। हे ( **इन्द्र** ) ऐश्वर्यशाली राजन्! आप ( **रसिनः** ) रसीले ( **सुतस्य** ) निचोड़कर तैयार किये हुए सोमादि ओषधियों के रस का ( **पिब** ) पान कीजिए। उससे शक्तिशाली होकर आप ( **गोमतः** ) प्रशस्त भूमियों के स्वामी ( **नः** ) हम लोगों को ( **मत्स्व** ) आनन्दित कीजिए। ( **सधमाद्ये** ) जिसमें सब प्रजाजन मिलकर सुखी होते हैं ऐसे राष्ट्रयज्ञ में ( **वृधे** ) वृद्धि के लिए ( **आपिः** ) बन्धु बनकर ( **नः** ) हम प्रजाजनों को ( **बोधि** ) जागरूक कीजिए। ( **ते** ) आपकी ( **धियः** ) राजनीति में चतुर बुद्धियाँ और राष्ट्रोत्थान के कर्म ( **अस्मान्** ) हमें ( **अवन्तु** ) रक्षित करें।।७।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।७।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर की कृपा और राजाओं के पुरुषार्थ से ही राष्ट्र की उन्नति, प्रजाओं का आनन्द और विश्वशान्ति हो सकती है।।७।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा से प्रार्थना की गयी है।

२४०. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥८॥

**पदार्थ** :–हे **( इन्द्र )** परमेश्वर वा राजन्! **( त्वं हि )** आप **( चेरवे )** मुझ पुरुषार्थी के हित के लिए **( आ इहि )** आइए। **( वसुत्तये )** मुझ धन के दानी के लिए **( भगम् )** धन **( विदाः )** प्राप्त कराइए। हे **( मघवन् )** ऐश्वर्यशालिन्! आप **( गविष्टये )** मुझ प्रशस्त इन्द्रिय, पृथिवीराज्य, विद्याप्रकाश आदि के अभिलाषी के लिए **( उद्वावृषस्व )** धन, विद्या आदि की अतिशय पुनः पुनः वर्षा कीजिए। आप **( अश्वमिष्टये )** घोड़े, बल, वेग, प्राण आदि के इच्छुक मेरे लिए **( उद्वावृषस्व )** अतिशयरूप से पुनः-पुनः इन वस्तुओं को बरसाइए॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'आ, जान, बरसा' इन सब क्रियाओं का एक कर्ताकारक से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलंकार भी है। 'ष्टय, ष्टये' में छेकानुप्रास और द्वितीय तथा चतुर्थ पाद के अन्त में 'अये' होने से अन्त्यानुप्रास भी है॥८॥

**भावार्थ :–परमेश्वर और राजा आदि राज्याधिकारीगण उसी की सहायता करते हैं जो 'चरैवेति चरैवेति' 'पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ करो।'** (ऐ० ब्रा० ७।३।३।) के उपदेश को अपने जीवन में चरितार्थ करता है और पुरुषार्थ से धन कमाकर सत्पात्रों में उसका दान भी करता है॥८॥

अगले मन्त्र में आचार्य और परमात्मा का कार्य वर्णित किया है।

**२४१. न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमंसते।**
**अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु**
**कामिनः॥९॥**

**पदार्थ** :–**( प्रथम )** अध्ययनाध्यापन के पक्ष में। हे विद्यार्थीरूप मरुतो! **( वः )** तुम में से **( चरमं च न )** हीनकोटि वाले भी विद्यार्थी को **( वसिष्ठः )** विद्या से बसाने वाला आचार्य **( नहि )** नहीं **( परिमंसते )** छोड़ता है, अर्थात् विद्या से वंचित नहीं करता है। **( अद्य )** आज **( सुते )** विद्यायज्ञ के प्रवृत्त हो जाने पर **( अस्माकम् )** हमारे **( विश्वे )** सब **( कामिनः )** विद्या-ग्रहण

के इच्छुक ( **मरुतः** ) विद्यार्थी ( **सचा** ) साथ मिलकर ( **पिबन्तु** ) विद्या-रस का पान करें।

'मरुतः' का यौगिक अर्थ है मरने वाले। मृत्यु-रूप आचार्य के गर्भ में स्थित होकर पूर्व संस्कारों को छोड़कर (अर्थात् मरकर) विद्या से पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं, इस कारण विद्यार्थी 'मरुत्' कहलाते हैं। अथर्ववेद में स्पष्ट ही आचार्य को मृत्यु कहा है। (अथर्व॰ ११।५।१४), यह भी कहा है कि "आचार्य उपनयन संस्कार करके ब्रह्मचारी को गर्भ में धारण करता है, तीन रात्रि तक उसे अपने उदर में रखता है, फिर जब ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म लेता है, अर्थात् विद्या पढ़कर स्नातक बनता है, तब उसे देखने के लिए अनेक विद्वान् जन आते हैं।" (अथर्व॰ ११।५।३)।।

( **द्वितीय** ) कर्मफल-भोग के पक्ष में। हे मरणधर्मा मनुष्यो! ( **वः** ) तुम्हारे बीच में ( **चरमं चन** ) एक को भी ( **वसिष्ठः** ) अतिशय बसाने वाला सर्वव्यापक परमेश्वर ( **नहि परिमंसते** ) कर्मफल दिये बिना नहीं छोड़ता है, अर्थात् प्रथम से लेकर अन्तिम तक सभी को कर्मफल प्रदान करता है। ( **अद्य** ) आज, वर्तमान काल में ( **सुते** ) उत्पन्न जगत् में ( **अस्माकम्** ) हमारे बीच में ( **विश्वे** ) सभी ( **कामिनः** ) अभ्युदय के इच्छुक ( **मरुतः** ) मरणधर्मा मनुष्य ( **सचा** ) साथ मिलकर ( **पिबन्तु** ) कर्मफलों का भोग करें।।९।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।।९।।

**भावार्थ** :—जैसे वसिष्ठ परमेश्वर निरपवाद रूप में सभी जीवात्माओं को कर्मानुसार फल देता है, वैसे ही वसिष्ठ आचार्य ऐसी सरल शैली से शिष्यों को पढ़ाये जिससे बिना अपवाद के सभी शिष्य विद्या के ग्रहण में समर्थ हों।।९।।

अगले मन्त्र में एक परमेश्वर ही सबके द्वारा उपासनीय है, इस विषय का प्रतिपादन है।

**२४२. मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।**
**इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे **( सखायः )** मित्रो! तुम **( अन्यत् )** दूसरी किसी वस्तु पत्थर की मूर्ति, नदी, पर्वत आदि की **( मा चित् )** कभी मत **( वि शंसत )** उपास्य रूप में पूजा करो, **( मा रिषण्यत )** जो उपासनीय नहीं हैं उनकी उपासना करके हानि प्राप्त मत करो। **( सुते )** ज्ञान, कर्म और भक्ति का रस निष्पादित होने पर **( सचा )** साथ मिलकर **( वृषणम् )** सुखवर्षक **( इन्द्रम् इत् )** परमेश्वर की ही **( स्तोत )** स्तुति-उपासना करो और उसके प्रति **( मुहुः )** पुनः-पुनः **( उक्था च )** स्तोत्रों का भी **( शंसत )** गान करो॥१०॥

**भावार्थ** :—परिवार, समाज, राष्ट्र और जगत् में जो सम्मान के योग्य हैं उनका सम्मान तो करना ही चाहिए, किन्तु उनमें से किसी को भी परमेश्वर के रूप में पूजा नहीं करनी चाहिए, न ही नदी, वृक्ष, पर्वत आदि जड़ पदार्थों की पूजा करनी चाहिए। इन्द्र आदि नामों से वेदों में प्रसिद्ध सुखवर्षी एक जगदीश्वर ही पुनः-पुनः स्तुति, प्रार्थना, अर्चना और उपासना करने योग्य है॥१०॥

इस दशति में मनुष्यों को इन्द्र की स्तुति, अर्चना आदि के लिए प्रेरणा करने, उससे ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना करने और इन्द्र के सहचर मरुतों का आह्वान करने के कारण इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति जाननी चाहिए॥

**इति तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ तृतीयप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

## द्वितीया दशतिः

**ऋषिः—१ आङ्गिरसः पुरुहन्मा; २, ३, ७–९ मेधातिथि-र्मेध्यातिथिश्च; ४ विश्वामित्रः; ५ गोतमः; ६ नृमेधपुरुमेधौ; १० देवातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**२४३. न किष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम्।**
**इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा॥१॥**

**पदार्थ** :–(**यः**) जो मनुष्य (**चकार**) महत्त्वपूर्ण कर्मों को करता है, वह भी (**तम्**) उस प्रसिद्ध (**सदावृधम्**) सदा बढ़ाने वाले, (**विश्वगूर्तम्**) सबसे स्तुति किये जाने वाले, (**ऋभ्वसम्**) बहुत विशाल अर्थात् सर्वव्यापक, सूर्य-किरणों को चन्द्रादिलोकों में भेजने वाले, (**अधृष्टम्**) किसी से पराजित न होने वाले, और (**ओजसा**) अपने बल से (**धृष्णुम्**) कामादि शत्रुओं को परास्त करने वाले (**इन्द्रम्**) परमेश्वर की (**नकिः**) न तो (**कर्मणा**) वीरतापूर्ण कर्म में, (**न**) न ही (**यज्ञैः**) परोपकार आदि यज्ञों में (**नशत्**) बराबरी कर सकता है॥१॥

**भावार्थ** :–संसार में परमेश्वर के जो वीरतापूर्ण कार्य और परोपकार के कार्य हैं उनमें उसकी बराबरी का या उससे अधिक न कोई उत्पन्न हुआ है, न भविष्य में उत्पन्न होगा॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, जीवात्मा, प्राण और शल्यचिकित्सक का कर्तृत्व वर्णित है।

**२४४. यः ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः। सन्धाता**
**सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**यः**) जो (**अभिश्रिषः**) जोड़ने वाले पदार्थ गोंद, सरेस, प्लास्टर आदि के (**ऋते चित्**) बिना ही (**जत्रुभ्यः**) गर्दन की हड्डियों पर से (**आतृदः**) गले के कटने से (**पुरा**) पहले ही (**सन्धिम्**) जोड़ने योग्य अवयव को (**सन्धाता**) जोड़ देता है, अर्थात् शस्त्र आदि से गले के एक भाग के कट जाने पर भी कटे हुए भाग को प्राकृतिक रूप से भरकर पुनः स्वस्थ कर देता है, जिससे सिर कटकर गिरता नहीं। वह (**पुरूवसुः**) बहुत से शरीरावयवों को यथास्थान बसाने वाला (**मघवा**) चिकित्सा-विज्ञान रूप धन का धनी परमेश्वर, जीवात्मा, प्राण वा शल्य-चिकित्सक (**विह्रुतम्**) टेढ़े हुए भी अंग को (**पुनः**) फिर से (**निष्कर्ता**) ठीक कर देता है॥२॥

इस मन्त्र में जोड़ने वाले द्रव्यरूप कारण बिना ही जोड़ने रूपी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होने से विभावना अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—अहो, परमेश्वर की कैसी शरीर-रचना की चतुरता है! यदि वह जोड़ने वाले द्रव्य गोंद आदि के बिना ही बीच में जोड़ लगाकर सिर को धड़ के साथ दृढ़तापूर्वक जोड़ न देता तो कभी भी कहीं भी सिर धड़ से अलग होकर गिर जाता। यह भी परमेश्वर का ही कर्तृत्व है कि शरीर का कोई भी अंग यदि घायल या टेढ़ा हो जाता है तो जीवात्मा और प्राण की सहायता से तथा शरीर की स्वाभाविक क्रिया से फिर घाव भर जाता है और टेढ़ा अंग सीधा हो जाता है। कुशल शल्यचिकित्सक भी उस कर्म में परमेश्वर का अनुकरण करता है। युद्ध में यदि शत्रु के शस्त्र-प्रहार से किसी योद्धा का गले का एक भाग कट जाता है तो वह कटे भाग को सुई से सिलकर और ओषधि का लेप करके पुनः स्वस्थ कर देता है। दुर्घटना आदि से यदि किसी का अंग विकृत या टेढ़ा हो जाता है तो उसे भी वह उचित उपायों से ठीक कर देता है॥२॥

अगले मन्त्र में हरियों द्वारा इन्द्र को वहन किये जाने का वर्णन है।

**२४५. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।**
**ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये॥३॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) अध्यात्म पक्ष में। हे ( **इन्द्र** ) परमात्मन्! ( **हिरण्यये** ) सुवर्ण के समान ज्योतिर्मय ( **रथे** ) शरीररूप रथ में ( **युक्ताः** ) नियुक्त ( **ब्रह्मयुजः** ) ब्रह्म के साथ योग कराने वाले अर्थात् ब्रह्म-साक्षात्कार के साधनभूत ( **केशिनः** ) प्रकाशमय तथा प्रकाशक ( **सहस्रम्** ) सहस्र संख्यावाले ( **हरयः** ) आहरणशील सात्त्विक चित्तवृत्तिरूप अश्व अथवा प्राणरूप अश्व ( **सोमपीतये** ) श्रद्धारूप सोमरस का जिसमें पान किया जाता है ऐसे उपासनायज्ञ के लिए ( **त्वा** ) तुझे ( **आवहन्तु** ) हृदय में लायें, प्रकट करें,

( शतम् ) सौ संख्या वाले सात्त्विक चित्तवृत्तिरूप अश्व ( आ ) हृदय में लायें, प्रकट करें।

पहले हजार कहकर फिर सौ कहना इस बात का ज्ञापक है कि ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए शनैः-शनैः सात्त्विक चित्तवृत्तियों का भी निरोध करना होता है। इसी प्रकार प्राणायाम में पहले श्वासोच्छ्वासों की संख्या अधिक होती है, क्रमशः अभ्यास करते-करते उनकी संख्या न्यून हो जाती है।

**( द्वितीय )** राष्ट्र के पक्ष में। हे **( इन्द्र )** वीर मनुष्य! **( हिरण्यये )** ज्योतिर्मय **( रथे )** राष्ट्ररूप रथ में **( युक्ताः )** नियुक्त, **( ब्रह्मयुजः )** वेदज्ञ चुनाव-अधिकारियों से प्रेरित, **( केशिनः )** ज्ञान-प्रकाश से युक्त **( सहस्रम् )** सहस्र **( हरयः )** मतदान के अधिकारी मनुष्य **( सोमपीतये )** सुखशान्ति की रक्षा जिसमें होती है ऐसे राष्ट्रयज्ञ के सञ्चालनार्थ **( त्वा )** तुझे **( आ वहन्तु )** चुनकर राजा के पद पर लायें, **( शतम् हरयः )** सौ चुनने वाले विधायक लोग तुझे चुनकर **( आ )** राजा के पद पर प्रतिष्ठित करें।

पहले हजार या अधिक प्रजाजन मतदान करके कुछ विधायकों को चुनते हैं, फिर वे विधायक जो संख्या में कम होते हैं राजा को चुनते हैं। यह बात क्रमशः सहस्र और शत शब्दों से सूचित होती है।।३।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे योगीजन प्रकाशपूर्ण सात्त्विक चित्त की भावनाओं से परमात्मा को प्राप्त करते हैं, वैसे ही विवेकशील प्रजाजनों को चाहिए कि मतदान द्वारा सुयोग्य राजा को प्राप्त करें।।३।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि इन्द्र निर्बाध हमारे समीप आ जाए।

**२४६. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥४॥**

**पदार्थ** :—**( प्रथम )** अध्यात्म पक्ष में। हे **( इन्द्र )** परमैश्वर्यवन्

परमात्मन्! आप (**मन्द्रैः**) आनन्ददायक (**मयूररोमभिः**) मोरपंखों के समान मृदु (**हरिभिः**) प्राणों के द्वारा (**आयाहि**) आइये, अर्थात् हमारे हृदय में प्रकट होइये। (**त्वा**) प्रकट होते हुए आपको (**केचित्**) कोई भी योगमार्ग में बाधक व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व रूप विघ्न (**मा नियेमुः**) न रोक सकें, (**न**) जैसे (**पाशिनः**) जाल हाथ में लिये व्याध (**इत्**) गतिमान् अर्थात् भूमि पर चलते हुए अथवा आकाश में उड़ते हुए पशु-पक्षी आदि को जाल द्वारा रोक लेते हैं। (**तान्**) उन प्रतिबन्धकों को (**धन्व इव**) अन्तरिक्ष के समान (**अति इहि**) पार करके प्रकट हो जाइए, अर्थात् जैसे विमानों से अन्तरिक्ष को पार करके कोई आता है, वैसे ही उन बाधकों को पार करके आप हमारे हृदय में प्रकट होइए। अथवा (**धन्व इव**) धनुषधारी के समान आप उन बाधक शत्रुओं को पराजित करके प्रकट हो जाइए।।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) शत्रुविदारक वीर राजन्! आप (**मन्द्रैः**) स्तुतियोग्य अथवा गम्भीर स्वर वाले, (**मयूररोमभिः**) मोरों के रोमों के समान-मृदु केसरों वाले (**हरिभिः**) रथ में जोते हुए उत्कृष्ट जाति के घोड़ों द्वारा (**आयाहि**) संकट-काल में प्रजा की रक्षा के लिए आइए! (**न**) जैसे (**इत्**) भूमि पर चलते या आकाश में उड़ते हुए पशु-पक्षी आदि को (**पाशिनः**) पाशधारी व्याध बाँध लेते हैं, वैसे (**त्वा**) आपको (**केचित्**) कोई भी शत्रुजन (**मा नियेमुः**) बाँध न सकें। (**धन्व इव**) धनुष के समान आप (**तान्**) उन शत्रुओं को (**अति इहि**) अतिक्रान्त अर्थात् पराजित कर दीजिए।।४।।

इस मन्त्र में श्लेष तथा उपमालंकार है। रेफ, मकार और नकार की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है। 'न्द्रै, न्द्र', 'न्नि, न्न' में छेकानुप्रास है।।४।।

**भावार्थ** :–प्राणों का स्वरूप मोर के रोमों के समान मृदु होता है, इसीलिए प्राणविद्या मधुविद्या नाम से प्रसिद्ध है। प्राणायाम द्वारा हम परमात्मा को अपने हृदय के अन्दर प्रकट

कर सकते हैं। प्रकट किया गया वह हमारी योगसाधना में आने वाले विघ्नों को दूर कर देता है। इसी प्रकार प्रजाजनों से पुकारा गया राजा सब शत्रुओं को पराजित करके राष्ट्र को उन्नत करता है।।४।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**२४७. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो**
**मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**अङ्ग**) हे (**शविष्ठ**) सबसे अधिक बली परमात्मन् वा राजन्! (**देवः**) दिव्यगुणयुक्त (**त्वम्**) आप (**मर्त्यम्**) मनुष्य को (**प्रशंसिषः**) प्रशंसा का पात्र कीजिए। हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यशालिन्! (**त्वत् अन्यः**) आपसे भिन्न अन्य कोई भी (**मर्डिता**) सुखदाता (**न अस्ति**) नहीं है। हे (**इन्द्र**) विघ्नविदारक सिद्धिदायक परमेश्वर वा राजन्! मैं (**ते**) आपके लिए (**वचः**) स्तुति-वचन (**ब्रवीमि**) बोल रहा हूँ।।५।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालङ्कार है।।५।।

**भावार्थ** :—हे बलियों में बलिष्ठ, समस्त दिव्य गुणों के पारावार, सकलसम्पत्तिशाली, न्यायविद्या-विवेक-दया आदि ऐश्वर्यों के निधि परमात्मन् वा राजन्! कभी अधर्माचरण में संलग्न होकर हम जगत् में निन्दा के पात्र हो जाते हैं। आप कृपा करके हमें धर्म में नियुक्त करके और शुभ कर्मों में समुत्साहित करके प्रशंसा का पात्र बना दीजिए।।५।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और राजा की महिमा वर्णित की गयी है।

**२४८. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः। त्वं वृत्राणि**
**हंस्यप्रतीन्येक इत् पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमेश्वर अथवा राजन्! (**त्वम्**) आप (**यशाः**) यशस्वी (**असि**) हो, (**ऋजीषी**) सरल धर्ममार्ग पर चलने के इच्छुक अथवा सरल गुण-कर्म-स्वभाव वाले और

**( शवसः पतिः )** बल के स्वामी हो। **( त्वम् )** आप **( एकः इत् )** अकेले ही **( पुरु )** बहुत से **( अप्रतीनि )** अप्रतिद्वन्द्वी **( वृत्राणि )** आन्तरिक व बाह्य पापी शत्रुओं को **( हंसि )** दण्डित या विनष्ट करते हो। **( त्वम् )** आप **( अनुत्तः )** किसी से बलात् प्रेरित किये बिना ही **( चर्षणीधृतिः )** मनुष्यों को धारण करने वाले हो॥६॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालङ्कार है॥६॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर यशस्वी, ऋजुमार्गगामी, बलवान्, पाप आदिकों का विनाशक, स्वयं शुभकार्यों में प्रवृत्त होने वाला तथा मनुष्यों का धारणकर्ता है, वैसे ही राजा और प्रजाजनों को होना चाहिए॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर और राजा का आह्वान किया गया है।

२ ३ २३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३२ १ २ ३२ ३ १ २
**२४९. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो**
३ २ ३ १ २ ३ १ २
**हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥७॥**

**पदार्थ** :—**( इन्द्रम् इत् )** इन्द्र नामक जगदीश्वर और सभापति राजा को **( देवतातये )** विद्वानों के कल्याण के लिए अथवा विद्वानों से फैलाये जाने वाले यज्ञ की पूर्ति के लिए **( हवामहे )** हम पुकारते हैं। **( इन्द्रम् )** जगदीश्वर और राजा को **( प्रयति )** प्रवृत्त होते हुए **( अध्वरे )** हिंसादि दोषों से रहित यज्ञ में **( हवामहे )** हम पुकारते हैं। **( इन्द्रम् )** जगदीश्वर और राजा को **( समीके )** देवासुर-संग्राम में **( वनिनः )** स्तुति, प्रार्थना एवं ज्ञानप्रकाश से युक्त हम लोग **( हवामहे )** पुकारते हैं। **( इन्द्रम् )** जगदीश्वर और राजा को **( धनस्य )** आध्यात्मिक एवं भौतिक ऐश्वर्य की **( सातये )** प्राप्ति के लिए **( हवामहे )** हम पुकारते हैं॥७॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। इन्द्र शब्द की अनेक बार आवृत्ति में लाटानुप्रास अलंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—जगत् में अथवा राष्ट्र में विविध सत्कार्यों की सफलता के लिए और विविध ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए

परमात्मा तथा सभापति राजा का पुनः-पुनः श्रद्धापूर्वक सेवन करना चाहिए॥७॥

अगले मन्त्र में उपासक परमात्मा को कह रहा है।

**२५०. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।**
**पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत॥८॥**

**पदार्थ** :-हे (**पुरूवसो**) बहुत धन वाले अथवा बहुत बसाने वाले इन्द्र परमात्मन् (**इमाः उ**) ये (**याः**) जो (**मम**) मेरी (**गिरः**) वाणियाँ हैं वे (**त्वा**) आपको अर्थात् आपकी महिमा को (**वर्धन्तु**) बढ़ायें। (**पावकवर्णाः**) अग्नि के समान वर्ण वाले अर्थात् तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी, (**शुचयः**) शुद्ध अन्तःकरण वाले (**विपश्चितः**) विद्वान् लोग (**स्तोमैः**) स्तोत्रों से (**अभि अनूषत**) आपकी स्तुति करते ही हैं। जैसे वे आपकी स्तुति करते हैं, वैसे ही मैं भी करूँ॥८॥

**भावार्थ** :-**हमें चाहिए कि हम परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना-**उपासना में और **भाषण-उपदेश-गुणवर्णन आदि में अपनी** वाणियों का उपयोग करके संसार में परमात्मा के अस्तित्व का प्रचार करें, जिससे सब लोग आस्तिक होकर सदाचारी बनें॥८॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि मेरे कैसे स्तोत्र किस प्रकार परमात्मा के प्रति उठ रहे हैं।

**२५१. उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते। सत्राजितो**
**धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव॥९॥**

**पदार्थ** :-(**त्ये**) वे (**मधुमत्तमाः**) अत्यन्त मधुर, (**सत्राजितः**) सत्यजयी, (**धनसाः**) स्तोता को सद्गुणरूप धन प्रदान करने वाले, (**अक्षितोतयः**) अक्षय रक्षा वाले, (**वाजयन्तः**) स्तोता को आत्मबल प्रदान करने वाले, (**गिरः**) परमेश्वर की अर्चना में साधनभूत (**स्तोमासः**) मेरे स्तोत्र (**रथाः इव**) अन्तरिक्ष में चलने वाले विमान-रूप रथों के समान (**उद्-ईरते उ**) उठ रहे हैं। जो विमान-रूप रथ भी (**सत्राजितः**) समवेत शत्रुओं को जीतने में साधनभूत, (**धनसाः**) स्थानान्तर से धन को लाने में साधनभूत, (**अक्षितोतयः**) अक्षय रक्षा के साधनभूत,

(**वाजयन्तः**) अन्न आदि को देशान्तर में पहुँचाने वाले तथा (**मधुमत्तमाः**) अतिशय मधुर गति वाले होते हैं॥९॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की महिमा गाने के लिए मेरी जिह्वा मधुर-मधुर स्तोत्रों को उठा रही है, जैसे विमान-चालक मधुर गति वाले विमान यानों को ऊपर उठाता है॥९॥

अगले मन्त्र में गौरमृग के दृष्टान्त से परमात्मा को प्रीतिरस-पान के लिए बुलाया जा रहा है।

**२५२. यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपित्वे**
**नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब॥१०॥**

**पदार्थ** :—(**यथा**) जिस प्रकार (**गौरः**) गौरमृग (**तृष्यन्**) प्यासा होकर (**इरिणम्**) मरुस्थल को (**अव**) छोड़कर (**अपा**) जल से (**कृतम्**) पूर्ण किये हुए जलाशय अथवा जलप्रचुर देश को (**एति**) चला जाता है, वैसे ही (**आपित्वे**) बन्धुभाव के अर्थात् प्रीतिरस के (**प्रपित्वे**) प्राप्त हो जाने पर, अर्थात् प्रीतिरूप जल से हमारे हृदय के पूर्ण हो जाने पर, आप (**तूयम्**) शीघ्र ही (**नः**) हमारे पास (**आगहि**) आइए, और (**कण्वेषु**) हम मेधावियों के पास आकर (**सचा**) एक साथ (**सु पिब**) भलीभाँति हमारे प्रीतिरस-रूप सोम का पान कीजिए॥१०॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। 'पित्वे, पित्वे' में यमक है॥१०॥

**भावार्थ** :—प्यासा गौर मृग जैसे जल-रहित मरुस्थल को छोड़कर जलप्रचुर प्रदेश में चला जाता है, वैसे ही प्रीतिरस का प्यासा परमात्मा भी प्रीतिरहित हृदयों को छोड़कर प्रीतिरस से जिनके हृदय परिपूर्ण हैं ऐसे मेधावी जनों के पास चला जाता है। परमात्मा के सर्वव्यापक होने से उसमें जाने-आने की क्रियाएँ क्योंकि सम्भव नहीं हैं, इसलिए वेदों में अनेक स्थानों पर वर्णित परमात्मा के गमन-आगमन की प्रार्थना आलंकारिक जाननी चाहिए। गमन से उसे भूल जाना तथा आगमन से उसका स्मरण या आविर्भाव लक्षित होता है॥१०॥

इस दशति में अंगों को शरीर में यथास्थान जोड़ने आदि इन्द्र के कौशल का वर्णन होने से, उसके गुण-कर्मों का

वर्णन होने से और इन्द्र नाम से जीवात्मा, प्राण, शल्यचिकित्सक, राजा आदि के भी चरित्र का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति जाननी चाहिए।।

## तृतीया दशतिः

**ऋषिः—१ भर्गः; २ रेभः काश्यपः; ३ जमदग्निः; ४, ९ मेधातिथिः; ५, ६ नृमेधपुरुमेधौ; ७ वसिष्ठः; ८ रेभः; १० भरद्वाजः॥ देवता—१, २, ४-१० इन्द्रः; ३ आदित्याः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और राजा को सम्बोधित किया गया है।

**२५३. शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। भगं**
**न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**शचीपते इन्द्र**) प्रज्ञा, वाणी एवं कर्म के स्वामी परमात्मन् व राजन्! आप (**विश्वाभिः**) सब (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**उ**) निश्चय ही (**सु**) भलीभाँति (**शग्धि**) हमें शक्तिशाली कीजिए। (**भगं न हि**) सूर्य के समान (**यशसम्**) यशस्वी, (**वसुविदम्**) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले (**त्वा अनु**) आपकी आज्ञाओं के अनुकूल (**शूर**) हे दानशूर, धर्मशूर, विद्याशूर, वीरताशूर परमात्मन् व राजन्! हम लोग (**चरामसि**) आचरण करते हैं।।१।।

इस मन्त्र में श्लेष और उपमालङ्कार है।।१।।

**भावार्थ** :—परमात्मा के समान राजा को भी वाग्मी, कर्मण्य, ज्ञानी, प्रजा की रक्षा करने में समर्थ, सूर्य के समान कीर्तिमान्, प्रजा को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला, दानवीर, धर्मवीर, विद्यावीर और युद्धवीर होना चाहिए। साथ ही प्रजाओं को परमात्मा तथा धर्मात्मा राजा की आज्ञाओं के अनुकूल चलना चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

२५४. या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः। स्तोता-
रमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः॥२॥

पदार्थ :–(प्रथम) परमात्मा के पक्ष में। हे (इन्द्र) परमेश्वर! (स्वर्वान्) धनवान्, प्रकाशवान् और आनन्दवान् आप (अ-सुरेभ्यः) जो सुरापान करके उन्मत्त नहीं हुए हैं, किन्तु जागरूक हैं, उनके लिए (याः भुजः) जिन अन्तःप्रकाशरूप वा आनन्दरूप भोगों को (आ अभरः) लाते हो, उनसे, हे (मघवन्) दिव्य सम्पत्ति के स्वामी! (अस्य) इस अध्यात्म-यज्ञ के (स्तोतारम्) स्तोता यजमान को (इत्) अवश्य ही (वर्धय) बढ़ाओ, (ये च) और जो (त्वयि) आपकी प्राप्ति कराने वाले अध्यात्मयज्ञ में (वृक्तबर्हिषः) मार्गदर्शक ऋत्विज् लोग हैं, उन्हें भी बढ़ाओ॥२॥

(द्वितीय) राजा के पक्ष में। हे (इन्द्र) शत्रुविदारक सम्पत्तिप्रदायक राजन्! (स्वर्वान्) राजनीतिविद्या के प्रकाश से युक्त आपने (असुरेभ्यः) अदानी, अपने कोठों में ही राष्ट्र की सम्पत्ति को भरने वाले कृपणों के पास से (याः भुजः) जिन भोग्य-सम्पदाओं को (आ अभरः) अपहृत किया है, छीना है, उनसे, हे (मघवन्) धनी राजन्! (अस्य) इस राष्ट्रयज्ञ के (स्तोतारम्) स्तोता को, राष्ट्रगीत के गायक को, न कि राष्ट्रद्रोही को (इत्) ही (वर्धय) समृद्ध कीजिए, (ये च) और जो (त्वे) आपके लिए, आपकी सहायता के लिए (बर्हिषः) राष्ट्रयज्ञ का विस्तार करने वाले राजपुरुष हैं उन्हें भी समृद्ध कीजिए।

राजा को उचित है कि अपने राज्य के कृपण धनपतियों को प्रेरणा करे कि वे निर्धनों को अपने धन का दान करें। फिर भी जो दान न करें उनके धन को बलात् उनसे छीन ले, यह वैदिक मर्यादा अनेक वेदवाक्यों से प्रमाणित होती है, यथा 'हे तेजस्वी पोषक राजन्, जो अपनी सम्पत्ति का दान नहीं करना चाहता उसे आप दान के लिए प्रेरित कीजिए। ऋ० ६।५३।३', हे राष्ट्र के स्वामी राजन्! दान न करने वालों के धन को आप छीन लीजिए–ऋ० १।८१।९। यही बात प्रस्तुत

मन्त्र में भी कही गयी है॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर धार्मिक उपासकों को ज्ञान-प्रकाश से और दिव्य आनन्द से समृद्ध करता है, वैसे ही राजा भी राष्ट्र-भक्तों को समृद्ध करे और राष्ट्रद्रोहियों को दण्डित करे॥२॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि इन्द्र के अतिरिक्त अन्य कौन-कौन गुण-वर्णन द्वारा स्तुति करने योग्य हैं। मन्त्र के देवता आदित्य अर्थात् अदिति के पुत्र मित्र, अर्यमा और वरुण हैं।

२ ३ २ ३ २ ३ १ २३क २र
**२५५. प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो।**
३ २ १ २ ३ २ ३ १ २ ३१ २र
**वरूथ्ये३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) वायु आदि के पक्ष में। हे (**ऋतावसो**) सत्यरूप धन वाले मानव! तू (**मित्राय**) वायु के लिए, (**अर्यम्णे**) आदित्य के लिए और (**वरूथ्ये**) शरीर रूप गृह के लिए हितकर (**वरुणे**) अग्नि के लिए (**सचथ्यम्**) सेवनीय, (**छन्द्यम्**) छन्दोबद्ध (**वचः**) स्तुति-वचन को (**प्र प्र**) भलीभाँति गान कर, गान कर। हे भाइयो! तुम भी (**राजसु**) उक्त शोभायमान वायु, आदित्य और अग्नि के सम्बन्ध में (**स्तोत्रम्**) स्तोत्र का (**गायत**) गान करो॥

(**द्वितीय**) प्राणों के पक्ष में। हे (**ऋतावसो**) प्राणायाम रूप यज्ञ को धन मानने वाले प्राणसाधक! तू (**मित्राय**) पूरक प्राण के लिए, (**अर्यम्णे**) कुम्भक प्राण के लिए और (**वरूथ्ये**) शरीररूप गृह के हितकारी (**वरुणाय**) रेचक प्राण के सम्बन्ध में (**सचथ्यम्**) एक साथ मिलकर पढ़ने योग्य, (**छन्द्यम्**) छन्दोबद्ध (**वचः**) प्राणमहिमापरक वचन का (**प्र प्र**) भलीभाँति उच्चारण कर। हे दूसरे प्राणसाधको! तुम भी (**राजसु**) प्रदीप्त हुए पूर्वोक्त पूरक, कुम्भक एवं रेचक प्राणों के विषय में (**स्तोत्रम्**) प्राण का महत्त्व प्रतिपादित करने वाले स्तोत्र का (**गायत**) गान करो।

प्राण का महत्त्व प्रतिपादन करने वाले छन्दोबद्ध वेदमन्त्र अथर्व० ११।४ में देखने चाहिए। जैसे, "अन्दर आने वाले

पूरक प्राण को हम अनुकूल करें, बाहर जाने वाले रेचक प्राण को अनुकूल करें" आदि अथर्व० ११।४।८।।

(**तृतीय**) राष्ट्र के पक्ष में। हे (**ऋतावसो**) राष्ट्रयज्ञ को धन मानने वाले राष्ट्रभक्त! तू राजा रूप इन्द्र के साथ-साथ (**मित्राय**) देश-विदेश में मैत्री के सन्देश का प्रसार करने वाले राज्याधिकारी के लिए, (**अर्यम्णे**) न्यायाध्यक्ष के लिए और (**वरूथ्ये**) सेना के लिए हितकारी (**वरुणे**) शत्रुनिवारक सेनाध्यक्ष के लिए (**सचथ्यम्**) सहगान के योग्य, (**छन्द्यम्**) छन्दोबद्ध गीत को (**प्र प्र**) भलीभाँति गा। हे दूसरे राष्ट्रभक्तो! तुम भी (**राजसु**) पूर्वोक्त राज्याधिकारियों के विषय में (**स्तोत्रम्**) उन-उनके गुण वर्णन करने वाले स्तोत्र को (**गायत**) गाओ।।३।।

इस मन्त्र में श्लेपालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :-परमात्मा की सृष्टि में जो वायु-सूर्य और अग्नि आदि, मनुष्य के शरीर में जो प्राण आदि और राष्ट्र में जो विभिन्न राज्याधिकारी हैं, उनके गुण-कर्मों का वर्णन करते हुए उनसे यथायोग्य लाभ सबको प्राप्त करने चाहिएँ।।३।।

अगले मन्त्र में इस विषय का वर्णन है कि कौन-कौन परमात्मा की स्तुति करते हैं।

**२५६. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।**
**समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥४॥**

**पदार्थ** :-हे (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**पूर्वपीतये**) जिसका श्रेष्ठ रसास्वादन होता है उस आनन्द के लिए (**आयवः**) मनुष्य (**स्तोमेभिः**) स्तोत्रों से (**त्वा**) आपकी (**अभि**) चारों ओर स्तुति करते हैं। (**समीचीनासः**) सम्यक् शुभकर्मों में संलग्न अथवा परस्पर संगत हुए (**ऋभवः**) मेधावी लोग (**समस्वरन्**) आपकी स्तुति करते हैं, (**रुद्राः**) सदुपदेशक, प्राणसाधक स्तोता लोग (**पूर्व्यम्**) पूर्वकाल में भी विद्यमान अर्थात् सनातन आपकी (**गृणन्त**) अर्चना करते हैं।।४।।

**भावार्थ** :-आयुष्मान् सामान्यजन, कर्मयोगी मेधावीजन, सदुपदेशक स्तोताजन सभी जिस परमात्मा की आराधना करते हैं, उसकी आराधना हम भी क्यों न करें।।४।।

अगले मन्त्र में यह विषय है कि परमात्मा और सेनाध्यक्ष हमारे शत्रुओं का संहार करें।

**२५७. प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत**
**वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥५॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**मरुतः**) मेरे प्राणो! (**वः**) तुम (**बृहते**) महान् (**इन्द्राय**) परमेश्वर के लिए (**ब्रह्म**) साम-स्तोत्र को (**प्र अर्चत**) प्रेरित करो। वह (**वृत्रहा**) पापहन्ता (**शतक्रतुः**) अनन्त प्रज्ञावाला तथा अनन्त कर्मों वाला परमेश्वर, अपने (**शतपर्वणा**) बहुमुखी (**वज्रेण**) वीर्य से (**वृत्रम्**) पाप को (**हनति**) नष्ट करे॥

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। हे (**मरुतः**) राष्ट्रवासी प्रजाजनो! (**वः**) तुम लोग (**बृहते**) महान् (**इन्द्राय**) वीर सेनाध्यक्ष के लिए (**ब्रह्म**) स्तोत्र अर्थात् प्रार्थनावचन (**अर्चत**) प्रेरित करो। वह (**वृत्रहा**) **अत्याचारियों का संहारक** (**शतक्रतुः**) **अनेक शत्रु-विध्वंसक कार्यों का कर्ता सेनाध्यक्ष** (**शतपर्वणा वज्रेण**) **सौ कीलों से युक्त गदादि वज्र से अथवा सौ गोलों या गोलियों** के आधारभूत तोप, बन्दूक आदि शस्त्र से (**वृत्रम्**) राष्ट्र की उन्नति में प्रतिबन्धक मायावी शत्रु को (**हनति**) मारे॥५॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है 'वृत्रं, वृत्र में छेकानुप्रास और 'शत, शत' में लाटानुप्रास है॥५॥

**भावार्थ** :–जैसे परमेश्वर उपासक के काम-क्रोध आदि तथा पाप आदि रिपुओं का संहार करता है, वैसे ही सेनाध्यक्ष को चाहिए कि राष्ट्र के सब शत्रुओं के सब शत्रुओं का समूल उन्मूलन करे॥५॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को परमेश्वर के स्तुतिगीत गाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है।

**२५८. बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन**
**ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि॥६॥**

**पदार्थ** :–हे (**मरुतः**) मनुष्यो! तुम (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यवान्

परमात्मा के लिए (**वृत्रहन्तमम्**) विघ्नों व पापों के अतिशय विनाशक (**बृहत्**) "त्वामिद्धि हवामहे" साम २३४, ८०९ ऋचा पर गाये जाने वाले बृहत् नामक सामगान को (**गायत**) गाओ, (**येन**) जिस गान से (**ऋतावृधः**) सत्य को बढ़ाने वाले सिद्ध योगी लोग (**देवाय**) योगाङ्गों में क्रीड़ा करने वाले साधक के लिए (**देवम्**) प्रकाशमान, (**जागृवि**) जागरणशील (**ज्योतिः**) अन्तःज्योति को (**अजनयन्**) उत्पन्न कर देते हैं॥६॥

**भावार्थ** :—जिस सामगान से सिद्ध योगी लोग योगाभ्यासी शिष्य को योगविद्या में निष्णात कर देते हैं, वह सामगान हमें भी गाना चाहिए॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर, आचार्य और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**२५९. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा। शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परम ऐश्वर्य को देने वाले जगदीश्वर, आचार्य वा राजन्! आप (**नः**) हमें (**क्रतुम्**) विज्ञान और कर्म (**आभर**) प्रदान करो, (**यथा**) जिस प्रकार (**पिता**) पिता (**पुत्रेभ्यः**) अपने पुत्रों और पुत्रियों के लिए विज्ञान और कर्म प्रदान करता है। हे (**पुरुहूत**) बहुस्तुत जगदीश्वर, आचार्य वा राजन्! आप (**अस्मिन्**) इस सामने विद्यमान (**यामनि**) जीवनमार्ग, जीवनयज्ञ अथवा योगमार्ग में (**नः**) हमें (**शिक्ष**) सभी सामर्थ्य प्रदान करो अथवा शिक्षा दो कि (**जीवाः**) जीवित और जागरूक रहते हुए हम (**ज्योतिः**) आशारूप ज्योति को, कर्त्तव्याकर्त्तव्यदर्शनरूप ज्योति को, आत्मज्योति को, अथवा परब्रह्म की दिव्य ज्योति को (**अशीमहि**) प्राप्त कर लेवें॥७॥

इस मन्त्र में श्लेष और उपमा अलंकार हैं॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे पिता अपनी सन्तानों को ज्ञान देता है, कर्म करना सिखाता है, मार्ग में चलना और दौड़ना सिखाता है, जिससे आत्मनिर्भर होकर वे जीवन में सफल होते हैं, वैसे

ही परमात्मा, आचार्य और राजा हमें प्रचुरज्ञान, महान् कर्मयोग, अतुल सामर्थ्य और श्रेष्ठ शिक्षा प्रदान करें, जिससे हम जीवन से निराशा के अन्धकार को दूर कर जीवित-जागृत रहते हुए, उत्तरोत्तर ज्योति का दर्शन करते हुए सर्वोत्कृष्ट ईश्वरीय दिव्य ज्योति को पा सकें॥७॥

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर, आचार्य और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**२६०. मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये। त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परावृणक्॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर, आचार्य व राजन्! आप (नः) हमें (**मा परावृणक्**) मत छोड़ो। (**सधमाद्ये**) जहाँ साथ-साथ आनन्द से रहते हैं उस घर यज्ञ गुरुकुल सभास्थल, राष्ट्र आदि में, आप (**नः**) हमारे (**भव**) सहायक होओ। (**त्वम्**) आप (**नः**) हमारी (**ऊती**) रक्षा के लिए होओ। (**त्वम् इत्**) आप ही (**नः**) हमारे (**आप्यम्**) बन्धु बनो। हे (**इन्द्र**) परमेश्वर आचार्य व राजन्! (**नः मा परावृणक्**) आप हमें असहाय मत छोड़ो।

यहाँ पुनरुक्ति से उत्कट इच्छा सूचित होती है। निरुक्तकार ने भी कहा है कि पुनरुक्ति में बहुत बड़ा अर्थ छिपा होता है, जैसे किसी अद्भुत वस्तु को देखकर द्रष्टा कहता है—"अहो दर्शनीय है, अहो दर्शनीय है।" (निरु० १०।४०)॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—परमात्मा, गुरुजन और राजा का यथायोग्य पूजन व सत्कार करके उनसे बहुमूल्य लाभ प्राप्त करने चाहिएँ॥८॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि क्यों हम परमेश्वर की उपासना करते हैं।

**२६१. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते॥९॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन्! (**वृक्तबर्हिषः**) जिन्होंने अन्तरिक्ष

को छोड़ दिया है ऐसे (आपः न) मेघजलों के समान (वृक्तबर्हिषः) सांसारिक एषणाओं को छोड़े हुए (सुतावन्तः) उपासना-रसों को अभिषुत किये हुए (वयं घ) हम (त्वा) आपकी स्तुति करते हैं, क्योंकि, हे (वृत्रहन्) पापविनाशक परमेश्वर! (स्तोतारः) आपके स्तोता लोग (पवित्रस्य) शुद्ध सात्त्विक आनन्द के (प्रस्रवणेषु) प्रवाहों में (परि आसते) तैरा करते हैं, जैसे अन्तरिक्ष को छोड़े हुए उपर्युक्त मेघ-जल (प्रस्रवणेषु) नदियों, झरनों आदियों में (आसते) बहते हैं।।९।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है। साथ ही कारणरूप उत्तरार्द्धवाक्य कार्यरूप पूर्वार्द्धवाक्य का समर्थन कर रहा है अतः कारण से कार्यसमर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है।।९।।

**भावार्थ** :—जैसे मेघों के जल आकाश को छोड़कर भूमि पर आकर धान्य, **वनस्पति आदि को** उत्पन्न करते हैं, वैसे **ही हम पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा आदि** का परित्याग करके **परमात्मा को प्राप्त कर आनन्द-रस को** उत्पन्न करें।।९।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि किन-किनका क्या-क्या गुण हमें प्राप्त करना चाहिए।

**२६२. यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।**
**यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) दान के महारथी परमेश्वर! (यत्) जो (नाहुषीषु) संघरूप में परस्पर बँधी हुई मानव-प्रजाओं में (ओजः) संघ का बल, और (कृष्टिषु) कृषि आदि धन कमाने के कामों में लगी हुई प्रजाओं में (नृम्णम्) धन का बल (आ) आता है, (यद् वा) और जो (पञ्चक्षितीनाम्) निवास में कारणभूत पाँच ज्ञानेन्द्रियों का अथवा प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन पाँचों का (द्युम्नम्) यश है, वह (आभर) हमें प्रदान कीजिए। (सत्रा) साथ ही (विश्वानि) सब (पौंस्या) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थों को भी

(आभर) प्रदान कीजिए॥१०॥

**भावार्थ** :—संघ का बल, ऐश्वर्य का बल, इन्द्रियों का बल, प्राणसहित अन्तःकरणचतुष्टय का बल, और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का बल परमेश्वर की कृपा से हमें प्राप्त हो, जिससे हमारा मनुष्य-जीवन सफल हो॥१०॥

इस दशति में इन्द्र तथा उससे सम्बद्ध मित्र, वरुण, अर्यमा के महत्त्ववर्णनपूर्वक उसकी स्तुति के लिए प्रेरणा होने से, इन्द्र से ओज, क्रतु, नृम्ण, द्युम्न आदि की याचना होने से और इन्द्र नाम से आचार्य, राजा, सेनाध्यक्ष आदि के भी गुण-कर्मों का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## चतुर्थी दशतिः

**ऋषिः—१ मेधातिथिः; २ रेभः; ३ वत्सः; ४ भरद्वाजः; ५ नृमेधः; ६ पुरुहन्मा; ७ नृमेधपुरुमेधौ; ८ वसिष्ठः; ९ मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च; १० कलिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर के गुणों का वर्णन किया गया है।

**२६३. सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता। वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमेश्वर! (सत्यम् इत्था) सचमुच-सचमुच आप (वृषा इत्) ऐश्वर्यवर्षी होने से वर्षा करने वाले बादल ही (असि) हो, और (वृषजूतिः) विद्युत् आदि पदार्थों को मन के वेग के समान वेग प्रदान करने वाले (नः) हमारे (अविता) रक्षक हो। हे (उग्र) प्रबल ऐश्वर्य वाले! आप (परावति) उत्कृष्ट मोक्षलोक में (वृषा हि) निश्चय ही मोक्ष के आनन्दों की वर्षा करने वाले (शृण्विषे) सुने जाते हो, और (अर्वावति) इस लोक में भी (वृषः) धर्म-अर्थ-काम-आनन्दों के वर्षक (श्रुतः) सुने गये हो॥१॥

इस मन्त्र में 'वृषे, वृष, वृषा, वृषो' में वृत्त्यनुप्रास अलंकार है। 'वृषेदसि'—'आप बादल ही हो' यहाँ परमेश्वर में बादल का आरोप होने से रूपक है। 'वति, वति' में छेकानुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—समस्तगुणगणों में अग्रणी, इहलोक तथा परलोक में विविध आनन्दों की वृष्टि करने वाले, परोपकारी परमेश्वर की हम वन्दना क्यों न करें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन करके उसकी उपासना का विषय कहा गया है।

**२६४. यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्। अतस्त्वा**
**गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**शक्र**) शक्तिशाली परमेश्वर! (**यत्**) क्योंकि, तुम (**परावति**) सुदूरस्थ सूर्य, नक्षत्र, चन्द्रमण्डल आदियों में अथवा पराविद्या से प्राप्तव्य मोक्षलोक में (**असि**) विद्यमान हो, और हे (**वृत्रहन्**) अविद्या आदि दोषों के विनाशक! (**यत्**) क्योंकि, तुम (**अर्वावति**) समीप स्थित पर्वत, नदी, सागर आदि में अथवा अपरा विद्या से प्राप्तव्य इहलोक के ऐश्वर्य में (**असि**) विद्यमान हो, (**अतः**) इसलिए, हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर! (**सुतावान्**) उपासना-रस को अभिषुत किये हुए यजमान (**त्वा**) तुम्हारी (**द्युगत्**) शीघ्र ही अथवा जिससे मोक्ष प्राप्त हो सके इस प्रकार (**केशिभिः**) ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान (**गीर्भिः**) वेदवाणियों से (**आ विवासति**) पूजा कर रहा है॥२॥

इस मन्त्र में शक्र, वृत्रहन्, इन्द्र इन सबके इन्द्रवाचक प्रसिद्ध होने से पुनरुक्ति प्रतीत होती है, किन्तु योगार्थ ग्रहण करने से पुनरुक्ति का परिहार हो जाता है, अतः पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। 'वति, वति' तथा 'सुता, सति' में छेकानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—सब कर्म करने में समर्थ, दूर से दूर और समीप से समीप विद्यमान, अविद्या-पाप आदि के विनाशक,

सब ऐश्वर्यो के स्वामी परमात्मा की ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश से भरपूर साममन्त्रों के गान से सबको भक्तिपरायण होकर शीघ्र ही उपासना करनी चाहिए और उसकी उपासना से ऐहिक तथा पारलौकिक आनन्द प्राप्त करना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर के स्तुतिगान की प्रेरणा की गयी है।

**२६५. अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम्। इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा॥३॥**

**पदार्थ** :—हे उद्गाताओ! **(वः)** तुम **(अन्धसः)** श्रद्धारस की **(मदेषु)** तृप्तियों में **(महा)** महती **(गिरा)** वेदवाणी से **(वीरम्)** विक्रमशाली अथवा शत्रुओं को प्रकम्पित करने वाले, **(विचेतसम्)** विशिष्ट ज्ञान से पूर्ण, **(श्रुत्यम्)** श्रुतियों में प्रसिद्ध, **(शाकिनम्)** शक्तिमान् **(इन्द्रं नाम)** इन्द्र नामक परमेश्वर को **(अभि)** अभिलक्ष्य करके **(वचः यथा)** जैसा विधिवचन हो उसके अनुसार **(गाय)** गाओ, सामगान करो॥३॥

**भावार्थ** :—काम, क्रोध आदि आन्तरिक शत्रुओं को तथा मानव-समाज में भ्रष्टाचारियों को अपनी वीरता से पराजित करने वाले, सर्वज्ञ, वेदों में प्रसिद्ध, सब कार्य करने में समर्थ परमेश्वर की सबको सामगानपूर्वक अर्चना करनी चाहिए॥३॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि कैसा घर, शरीर और कैसी परमात्मा की शरण हमें सुलभ हो।

**२६६. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये। छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः॥४॥**

**पदार्थ** :—**(प्रथम)** राष्ट्र के पक्ष में। हे **(इन्द्र)** दुःख-विदारक, सुखप्रदाता, परमैश्वर्य के स्वामी राजन्! आप **(मघवद्भ्यः च)** धनिकों के लिए **(मह्यं च)** और मुझ सामान्य प्रजाजन के लिए **(स्वस्तये)** सुख, उत्तम अस्तित्व व अविनाश के निमित्त **(त्रिधातु)** तीन मंजिलों वाला अथवा कम से कम तीन कोठों वाला **(शरणम्)** आश्रय-योग्य, **(त्रिवरूथम्)** सर्दी, गर्मी और

वर्षा तीनों को रोकने वाला (**छर्दिः**) घर (**यच्छ**) प्रदान कीजिए। और (**एभ्यः**) इन जनों के लिए उक्त घर में (**दिद्युम्**) बिजुली के प्रकाश को भी (**यावय**) संयुक्त कीजिए, अथवा (**एभ्यः**) इन घरों से (**दिद्युम्**) आकाशीय बिजुली को (**यावय**) दूर कर दीजिए अर्थात्, घरों में विद्युद्-वाहक ताँबे का तार लगवाकर ऐसा प्रबन्ध करवा दीजिए कि आकाश से गिरी हुई बिजुली भी घर को क्षति न पहुँचा सके।।

(**द्वितीय**) मानव-शरीर के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमेश्वर! आप इस राष्ट्र के (**मघवद्भ्यः**) विद्या, स्वास्थ्य आदि धनों से सम्पन्न लोगों के लिए (**मह्यं च**) और मुझ उपासक के लिए (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ, पुनर्जन्म में (**त्रिधातु**) सत्त्व-रजस्-तमस्‌रूप, वात-पित्त-कफरूप, प्राण-मन-बुद्धिरूप, बाल्यावस्था-यौवन-वार्धक्यरूप या अस्थि-मज्जा-वीर्यरूप तीन धातुओं से युक्त, (**शरणम्**) आत्मा का आधारभूत, (**त्रिवरूथम्**) ज्ञान-कर्म-उपासनारूप तीन वरणीय व्रतों से युक्त (**छर्दिः**) मानव-शरीर रूप घर (**यच्छ**) प्रदान कीजिए और (**एभ्यः**) इन शरीर-गृहों से (**दिद्युम्**) सन्तापक रोग आदि तथा दुष्कर्म आदि को (**यावय**) दूर करते रहिए।।

(**तृतीय**) अध्यात्म-परक। हे (**इन्द्र**) दुःखविदारक, सुखप्रदाता, परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! आप (**मघवद्भ्यः**) योगसिद्धिरूप धन के धनिक सिद्ध योगी जनों के लिए (**मह्यं च**) और मुझ योग-साधक के लिए (**स्वस्तये**) मोक्षरूप उत्तम अस्तित्व के प्राप्त्यर्थ (**त्रिधातु**) सत्त्व, चित्त्व और आनन्दरूप तीन धातुओं वाली, (**त्रिवरूथम्**) आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक रूप तीनों दुःखों को दूर करने वाली, (**छर्दिः**) पापों का वमन कराने वाली (**शरणम्**) अपनी शरण (**यच्छ**) प्रदान कीजिए। (**एभ्यः**) इन योग में संलग्न लोगों के हितार्थ (**दिद्युम्**) उत्तेजक काम, क्रोध आदि को (**यावय**) दूर कर दीजिए।।४।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। पूर्वार्ध में तकार का अनुप्रास और उत्तरार्ध में यकार का अनुप्रास भी है।।४।।

**भावार्थ** :—राजकीय सहायता से राष्ट्रवासियों के रहने के

घर यथायोग्य तिमंजिले, कम से कम तीन कोठों वाले, सर्दी-गर्मी-वर्षा से त्राण करने वाले, सब ऋतुओं में सुखकर, बिजली के प्रकाश से युक्त और आकाश की बिजली गिरने पर क्षतिग्रस्त न होने वाले हों परमात्मा की छत्रछाया रूप घर भी हमें सुलभ हो। साथ ही हम सदा ऐसे कर्म करें जिनसे हमें पुनः-पुनः मानव-शरीर-रूप घर ही मिले, कभी ऐसे कर्मों में लिप्त न हों जिनसे हमें शेर, बाघ, कीड़े-पतंगों की योनियों अथवा स्थावर योनियों में जन्म लेना पड़े।।४।।

अगले मन्त्र में यह विषय है कि परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव हमें धारण करने चाहिएँ।

**२६७. श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! (**श्रायन्तः**) फल पकाने वाले वृक्ष आदि अथवा पकाने वाले अग्नि आदि (**सूर्यम् इव**) जैसे सूर्य का सेवन करते हैं, वैसे (**श्रायन्तः**) अपने आत्मा को परिपक्व करते हुए तुम लोग (**इन्द्रस्य**) जगत् के सम्राट् परमेश्वर के (**विश्वा इत्**) सभी परोपकार, दयालुता, न्यायकारिता आदि स्वरूपों का (**भक्षत**) सेवन करो। (**जातः**) प्रसिद्ध वह परमेश्वर (**ओजसा**) अपने बल से (**वसूनि**) समस्त धनों को, और (**जनिमानि**) विविध जन्मों को देता है। हम (**भागं न**) जैसे पुत्र दायभाग को ग्रहण कर अपने पास रख लेता है, वैसे ही उस इन्द्र परमेश्वर को (**प्रतिदीधिमः**) अपने हृदय में धारण करते हैं।।५।।

इस मन्त्र में दो उपमालंकारों की संसृष्टि है।।५।।

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य के बिना फल आदि नहीं पकते हैं, ऐसे ही परमेश्वर के बिना जीवात्माओं का परिपाक नहीं होता है। जैसे पुत्र अपने दायभाग को अपने पास रख लेते हैं, ऐसे ही सबको चाहिए कि परमात्मा को अपने अन्दर धारण करें।।५।।

अगले मन्त्र का यह विषय है कि पुरुषार्थी मानव ही जीवन में सफल होता है।

**२६८. न सीमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः। एतग्वा चिद्य एतशो युयोजत इन्द्रो हरी युयोजते॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**दीर्घायो**) दीर्घायु यजमान! (**अदेवः**) जो देव अर्थात् तेजस्वी और महत्त्वाकांक्षी नहीं है वह (**मर्त्यः**) मनुष्य (**तत्**) उस प्रसिद्ध (**इषम्**) अभीप्सित विजय, साम्राज्य, मोक्ष आदि को (**न सीम् आप**) नहीं प्राप्त कर पाता। (**यः**) जो यजमान (**एतशः**) गतिशील एवं कर्मण्य होकर (**एतग्वा**) ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-रूप अथवा मन-प्राण-रूप अश्वों को (**चित्**) निश्चय ही (**युयोजते**) कार्यों में नियुक्त करता है, उसके प्रति (**इन्द्रः**) परमेश्वर भी (**हरी**) अपने ज्ञान-कर्म-रूप अश्वों को (**युयोजते**) नियुक्त करता है, अर्थात् ज्ञान और कर्म से उसकी सहायता करता है।

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि विद्याविस्तार, शत्रुविजय, चक्रवर्ती साम्राज्य, मोक्ष आदि को लक्ष्य बनाकर मन, बुद्धि, प्राण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय आदि साधनों का उपयोग कर, कर्मण्यता को स्वीकार कर पुरुषार्थ करें, क्योंकि आलसी लोगों का परमेश्वर भी सहायक नहीं होता है।।६।।

अगले मन्त्र में यह विषय वर्णित है कि सर्वत्र युद्धों में परमेश्वर आह्वान करने योग्य है।

**२६९. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत। उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम॥७॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! तुम (**विश्वासु समत्सु**) सब देवासुर-संग्रामों में (**नः**) हमारे और तुम्हारे, सबके (**हव्यम्**) पुकारने योग्य (**इन्द्रम्**) शत्रुविदारक परमात्मा को (**आभूषत**) नेता के पद पर अलंकृत करो। हे (**वृत्रहन्**) पाप आदि असुरों के विनाशक, हे (**ऋचीषम**) वेदज्ञों का सत्कार करने वाले, स्तोताओं को मान देने वाले, स्तुति के अनुरूप परमात्मन्! (**परमज्याः**) प्रबल कामक्रोधादि रिपुओं के विध्वंसक, आप (**ब्रह्माणि**) हमारे स्तोत्रों को और (**सवनानि**) जीवनरूप यज्ञ के बचपन,

यौवन–बुढ़ापा रूप प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन तथा सायंसवनों को (उप) प्राप्त होवो।।७।।

**भावार्थ** :–मनुष्य के जीवन में जो बाह्य और आन्तरिक देवासुर–संग्राम उपस्थित होते हैं, उनमें यदि वह परमेश्वर को स्मरण कर उससे बल प्राप्त करे तो सभी प्रतिद्वन्द्वियों को पराजित कर सकता है।।७।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि संसार में विद्यमान सब धन परमात्मा का ही है।

**२७०. तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्। सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते॥८॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर! (**अवमम्**) निचला अर्थात् पृथिवी अथवा शरीर में स्थित (**वसु**) धन (**तव इत्**) तेरा ही है। (**त्वम्**) तू ही (**मध्यमम्**) मध्यलोक अन्तरिक्ष में अथवा मनरूपी लोक में विद्यमान धन को (**पुष्यसि**) परिपुष्ट करता है। (**सत्रा**) सचमुच ही तू (**विश्वस्य**) सब (**परमस्य**) उच्च द्यौलोक में अथवा आत्मलोक में विद्यमान धन का भी (**राजसि**) राजा है। (**त्वा**) तुझे (**गोषु**) पृथिवी आदि लोकों में अथवा गाय आदि धनों के दानों में (**न किः**) कोई भी नहीं (**वृण्वते**) रोक सकते हैं।।८।।

**भावार्थ** :–निचले भूलोक में जो चाँदी, सोना, मणि, मोती, हीरे, कन्द, फल, रस, गाय, घोड़े, सन्तान आदि ऐश्वर्य हैं, बीच के अन्तरिक्षलोक में जो बिजली, बादल, ग्रह, चन्द्रमा आदि ऐश्वर्य है, और उच्च द्युलोक में जो सूर्यकिरण, तारामण्डल आदि धन है, उस सबका परमेश्वर ही राजा है। उसी प्रकार हमारे अध्यात्म–जगत् में स्थूल शरीर का त्वचा, हड्डी, मज्जा, वीर्य, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय आदि जो धन है, बीच के मनोलोक का जो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूप धन है, और परम लोक आत्मा का जो ज्ञान आदि ऐश्वर्य है, उसका भी परमेश्वर ही शासक और पोषक है। उस परमेश्वर की पृथिवी आदि लोकों में कहीं भी गति रोकी नहीं जा सकती। वह अपने

ऐश्वर्य में से जो कुछ भी गाय आदि धन जिस किसी को भी देना चाहता है उसके उस दान में भी कोई विघ्न नहीं डाल सकता है॥८॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा का आह्वान किया गया है।

**२७१. क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः। अलर्षि**
**युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः॥९॥**

**पदार्थ** :–हे इन्द्र जगदीश्वर अथवा राजन्! तू (**क्व**) कहाँ (**इयथ**) चला गया है? (**क्व इत्**) कहाँ (**असि**) है? (**पुरुत्रा चित्**) बहुतों में अर्थात् बहुतों के उद्धार में (**ते**) तेरा (**मनः**) मन लगा हुआ है। हे (**युध्म**) युद्धकुशल! हे (**खजकृत्**) शत्रुओं का मन्थन करने वाले! हे (**पुरन्दर**) शत्रु की नगरियों को विदीर्ण करने वाले! तू (**अलर्षि**) गतिमय अर्थात् कर्मण्य है। (**गायत्राः**) प्रभुस्तुति के अथवा राष्ट्रगान के गायक जन (**अगासिषुः**) तेरा यशोगान कर रहे हैं।

वास्तव में परमात्मा हमें छोड़कर कहीं नहीं चला जाता, हम ही उसे छोड़ते हैं। यह भाषा की शैली है कि स्वयं को उपालम्भ देने के स्थान पर परमात्मा को उपालम्भ दिया जा रहा है। अन्यत्र परमात्मा के अनुग्रह-रहित होने पर स्वयं को ही उपालम्भ दिया गया है। जैसे "हे वरुण परमात्मन्! मुझसे क्या अपराध हो गया है कि आप मुझ अपने सबसे बड़े स्तोता का वध करना चाह रहे हैं? मेरा अपराध मेरे ध्यान में ला दीजिए, जिससे मैं उस अपराध को छोड़कर नमस्कारपूर्वक आपकी शरण में आ सकूँ।" ऋ० ७।८६।४। एवं दोनों प्रकार की शैली वेदों में प्रयुक्त हुई है। राजा-परक अर्थ में शत्रु से पीड़ित प्रजाजन राजा को पुकार रहे हैं और उसे उद्बोधन दे रहे हैं, यह समझना चाहिए॥९॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है। 'क्वे क्वे' में छेकानुप्रास और 'युध्म, खजकृत्, पुरन्दर' में पुनरुक्तवदाभास है॥९॥

**भावार्थ** :–जैसे काम, क्रोध आदि शत्रुओं से पीड़ित जन सहायता के लिए परमात्मा को पुकारते हैं, वैसे ही मानव-शत्रुओं

से और दैवी विपत्तियों से व्याकुल किये गये आर्त प्रजा जन राजा को बुलाते हैं॥९॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा का विषय वर्णित है।

**२७२. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्। तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) अध्यात्म पक्ष में। (**वयम्**) हम उपासक लोग (**वज्रिणम्**) दुर्जनों वा दुर्गुणों के प्रति वज्रधारी अर्थात् उनके विनाशक, (**एनम्**) प्रसिद्ध गुणों वाले इस इन्द्र परमेश्वर को (**इदा**) इस समय और (**ह्यः**) कल (**इह**) इस उपासना यज्ञ में (**अपीपेम**) स्तुतिगान से रिझा चुके हैं। हे भाई! तू भी (**तस्मै उ**) उस इन्द्र परमेश्वर के लिए (**अद्य**) आज (**सवने**) अपने जीवन-यज्ञ में (**सुतम्**) श्रद्धारूप सोमरस को (**भर**) हृदय में धारण कर अथवा अर्पित कर। हे साथियो! तुम सब भी (**नूनम्**) निश्चय ही (**श्रुते**) वेदादि द्वारा उसकी महिमा सुनी जाने पर, उसे (**आभूषत**) स्तोत्ररूप उपहारों से अलंकृत करो॥

**द्वितीय**–राष्ट्र के पक्ष में। (**वयम्**) हम लोगों ने (**वज्रिणम्**) दुष्ट शत्रुओं तथा चोर, ठग, लुटेरे आदियों के प्रति दण्डधारी (**एनम्**) इस अपने सम्राट् को (**इदा**) वर्तमान काल में, और (**ह्यः**) भूतकाल में (**इह**) इस राष्ट्र-यज्ञ में (**अपीपेम**) कर-प्रदान द्वारा बढ़ाया है। हे भाई! तू भी (**तस्मै उ**) उस सम्राट् के लिए (**अद्य**) आज (**सवने**) राष्ट्ररूप यज्ञ में (**सुतम्**) अपनी आमदनी की राशि में से पृथक् किये हुए राजदेय कर को (**भर**) प्रदान कर। हे दूसरे प्रजाजनो! तुम भी (**नूनम्**) निश्चयपूर्वक (**श्रुते**) राजाज्ञा के सुनने पर, राजा को (**आभूषत**) अपना-अपना देय अंश देकर अलंकृत करो॥१०॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :–सब मनुष्यों को चाहिए कि दुर्जनों और दुर्गुणों के विनाशक तथा सज्जनों और सद्गुणों के पोषक परमेश्वर की उपासना करें। उसी प्रकार दुष्ट शत्रुओं, चोर, लम्पट, ठग,

लुटेरे आदियों तथा अशान्ति फैलाने वालों को दण्ड देने वाले और सज्जनों तथा शान्ति के प्रेमियों को बसाने वाले सम्राट् का भी कर (टैक्स) देकर सम्मान करना चाहिए॥१०॥

इस दशति में इन्द्र के गुणों का वर्णन करके उसकी महिमा गाने की प्रेरणा होने से, उससे गृह आदि की याचना होने से, उसका आह्वान होने से और इन्द्र नाम से राजा आदि का भी वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## पञ्चमी दशतिः

**ऋषिः—१, ६ पुरुहन्मा; २ भर्गः; ३ इरिम्बिठिः; ४ जमदग्निः; ५, ७ देवातिथिः; ८ वसिष्ठः; ९ भरद्वाजः; १० बालखिल्याः॥ देवता—१-३, ५-८, १० इन्द्रः; ४ सूर्यः; ९ इन्द्राग्नी॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

**प्रथम मन्त्र में परमात्मा और राजा के गुणों का वर्णन किया गया है।**

**२७३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।**
**विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**यः**) जो इन्द्र परमेश्वर (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों का (**राजा**) सम्राट् (**रथेभिः याता**) मानो रथों से यात्रा करने वाला अर्थात् रथयात्री के समान शीघ्रव्यापी, (**अध्रिगुः**) बेरोक गति वाला तथा (**विश्वासाम्**) सब (**पृतनानाम्**) शत्रु-सेनाओं का, अर्थात् शत्रुभूत कामज-क्रोधज आदि गणों का (**तरुता**) पराजित करने वाला है, (**यः**) और जो (**वृत्रहा**) पापों का संहारक है, उस (**ज्येष्ठम्**) गुणों में सबसे श्रेष्ठ तथा अनादि होने से आयु में भी सबसे वृद्ध परमेश्वर की, मैं (**गृणे**) स्तुति और अर्चना करता हूँ॥

कामज और क्रोधज गणों का उल्लेख मनु ने इस प्रकार किया है—शिकार करना, जुआ खेलना, दिन में सोना, दूसरों

की निन्दा करना, दूसरों की स्त्रियों का सेवन करना, नशा करना, अनुचित रूप से बाजे बजाने में लगे रहना, व्यर्थ इधर-उधर घूमना ये दस काम के गण हैं। चुगली, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थशुचि न होना, वाणी और दण्ड की कठोरता होना, ये आठ क्रोध के गण हैं। (मनु० ७।४७, ४८)। साधक की उपासना में विघ्न डालने वाले इन शत्रुगणों को परमेश्वर पराजित कर देता है।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**यः**) जो (**चर्षणीनाम्**) मानुषी प्रजाओं का (**राजा**) राजा, (**रथेभिः**) जल, स्थल और अन्तरिक्ष में चलने वाले यानों से (**याता**) आवागमन करने वाला, (**अध्रिगुः**) न रोकी जा सकने योग्य गति वाला और (**विश्वासाम्**) सब (**पृतनानाम्**) रिपुसेनाओं का (**तरुता**) पराजेता है, (**यः**) और जो (**वृत्रहा**) विघ्नकारी शत्रुओं का संहारक है, उस (**ज्येष्ठम्**) वीरता आदि गुणों में श्रेष्ठ राजा को, मैं (**गृणे**) पुकारता हूँ, उसकी स्तुति करता हूँ, उसे प्रोत्साहित करता हूँ, उसका सत्कार करता हूँ॥१॥

इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है। परमेश्वर-पक्ष में 'याता रथेभिः' में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षा है॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे ब्रह्माण्ड का राजराजेश्वर, संकटों से बचाने वाला, किसी से प्रतिहत न होने वाला, विजयार्थ प्रयत्नशील दिव्य गुणों की सेनाओं को विजय दिलाने वाला, काम-क्रोध आदि की सेनाओं का ध्वंस करने वाला, ज्येष्ठ और श्रेष्ठ परमात्मा सबके द्वारा उपासना करने योग्य है, वैसे ही बिजली आदि से चलाये जाने वाले विमान आदि यानों से जाने-आने वाला, समस्त शत्रुओं को जीतने वाला वीर राष्ट्रनायक भी संकटकाल में प्रजाजनों द्वारा पुकारने योग्य, प्रोत्साहन देने योग्य तथा गुण-कर्मों की प्रशंसा करके कीर्ति गाने योग्य है॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और राजा से निर्भयता की याचना है।

**२७४. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघव-**
**ञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) शत्रुविदारक परमात्मन् अथवा राजन्! हम लोग (**यतः**) जिससे (**भयामहे**) भय खाते हैं, (**ततः**) उससे (**नः**) हमारी (**अभयम्**) निर्भयता (**कृधि**) कर दो। हे (**मघवन्**) निर्भयतारूप धन के धनी! आप (**शग्धि**) हमें शक्तिशाली बनाओ, (**तव**) आपका (**तत्**) वह अभय-प्रदान (**नः**) हमारी (**ऊतये**) रक्षा के लिए होवे, आप (**द्विषः**) द्वेष-वृत्तियों को अथवा द्वेष करने वालों को (**विजहि**) विनष्ट कर दो, (**मृधः**) हिंसावृत्तियों को अथवा आपस के युद्धों को (**विजहि**) समाप्त कर दो॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। 'भया, भयं' में छेकानुप्रास है। तकार की आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :–महाबली परमात्मा को हृदय में धारण करके और महापराक्रमी पुरुष को **राजा के पद पर** अभिषिक्त करके, **उनसे अभय पाकर, महत्त्वाकांक्षा जगाकर, महान् कार्यों को करके संसार से द्वेषवृत्तियाँ, हिंसावृत्तियाँ और युद्ध समाप्त करने चाहिएँ और राष्ट्रों में शान्ति एवं सद्भावना स्थापित** करनी चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा तथा शिल्पी के गुण-कर्मों का वर्णन है।

**२७५. वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणां सत्रं सोम्यानाम्। द्रप्सः**
**पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**वास्तोः पते**) ब्रह्माण्डरूप घर के स्वामी इन्द्र परमात्मन्! आप (**सोम्यानाम्**) शान्तिमय, दूसरों को शान्ति देने वाले अथवा ब्रह्मानन्दरूप सोमरस को प्रवाहित करने योग्य स्तोता जनों के (**ध्रुवा स्थूणा**) स्थिर आधारस्तम्भ अर्थात् आधारस्तम्भ के समान आश्रयभूत हैं, एवं (**अंसत्रम्**) धनुष तथा कवच हैं अर्थात् धनुष के समान विघ्नकर्ताओं पर बाण-प्रहार करने वाले और कवच के समान रक्षक हैं। (**द्रप्सः**) रसमय अथवा सूर्य के समान ज्योतिष्मान् तथा (**शश्वतीनाम्**) चिरकाल से चली आ रही

(**पुराम्**) काम-क्रोधादि शत्रुओं की किलेबन्दियों के (**भेत्ता**) तोड़ने वाले (**इन्द्रः**) इन्द्र नामक आप (**मुनीनाम्**) मुनियों के (**सखा**) मित्र हैं।।

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। हे (**वास्तोः पते**) राष्ट्ररूप गृह के अधिपति इन्द्र राजन्! आप राष्ट्रयज्ञ रूप सोमयाग करने वाले प्रजाजनों के (**ध्रुवा स्थूणा**) स्थिर आधार-स्तम्भ और (**अंसत्रम्**) धनुष तथा कवच बनें अर्थात् आप आधारस्तम्भ बनकर प्रजाजनों को सहारा दें और धनुष बनकर शत्रुओं पर आक्रमण करें एवं कवच बनकर प्रजा का शत्रुजन्य आघातों से त्राण करें। साथ ही (**द्रप्सः**) प्रेमरस के अगार और सूर्य के समान तेजस्वी तथा (**शश्वतीनाम्**) चिरकाल से सुदृढ़ रूप में बनायी हुई (**पुराम्**) शत्रु-नगरियों को (**भेत्ता**) विदीर्ण करने वाले (**इन्द्रः**) सम्राट् आप (**मुनीनाम्**) मुनिवृत्ति से वनों में बसने वाले वानप्रस्थों के (**सखा**) मित्र के समान हितचिन्तक हों।।

(**तृतीय**) वास्तुकला-विशेषज्ञ शिल्पी के पक्ष में। हे (**वास्तोः पते**) वास्तुकलाविशेषज्ञ, गृहनिर्माण-कुशल शिल्पी! ध्यान रख कि (**सोम्यानाम्**) यज्ञ अथवा ऐश्वर्य के अधिकारी गृहस्थ जनों की (**स्थूणा**) मकानों के आधारभूत खम्भे व दीवारें (**ध्रुवा**) सुदृढ़ हों, और (**अंसत्रम्**) मकानों के कन्धों के तुल्य खम्भों, दीवारों आदि की रक्षक छतें भी सुदृढ़ हों, क्योंकि कभी-कभी (**द्रप्सः**) वर्षा-जल (**शश्वतीनाम्**) चिरकाल से भी स्थित (**पुराम्**) नगरियों का, उनमें बने हुए मकानों का (**भेत्ता**) तोड़कर गिरा देने वाला हो जाता है। यदि कहो कि मुनियों के घरों के विषय में निवेदन क्यों नहीं करते हो, तो उसका उत्तर है कि—(**मुनीनाम्**) वानप्रस्थवृत्ति से वन में निवास करने वाले मुनियों का तो (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**सखा**) मित्र होता है, अर्थात् वे तो एक परमेश्वर की ही शरण में स्थित रहते हुए, बाह्य सुख की अपेक्षा न करते हुए वन में वृक्षों के नीचे कुटियों में रहते हुए भी स्वयं को सुखी मानते हैं।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। प्रथम दो व्याख्याओं में इन्द्र में अंसत्र और स्थूणा का आरोप होने से रूपक अलंकार भी

है॥३॥

**भावार्थ** :—वही राजा श्रेष्ठ है जो परमेश्वर के गुणों का अनुसरण करता हुआ प्रजा का आधारस्तम्भ, शत्रुओं का संहारक, स्वजनों का रक्षक, प्रेमरस का अगार, सूर्य के समान तेजस्वी और ऋषिमुनियों का मित्र-सदृश हितकर्ता हो। और वास्तुकला के विशेषज्ञ इंजीनियरों का कर्त्तव्य है कि वे राष्ट्र में ऐसे सुदृढ़ मकान कुशल शिल्पियों द्वारा बनवायें कि वे मूसलाधार वर्षा, आँधी आदि से भी कुछ भी क्षतिग्रस्त न हों॥३॥

अगले मन्त्र का सूर्य देवता है। सूर्य नाम से परमेश्वर, राजा, आचार्य आदि की स्तुति की गयी है।

**२७६. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि॥४॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। (**बट्**) सचमुच हे (**सूर्य**) सर्वव्यापक, सर्वजगत् को उत्पन्न करने वाले, दुष्टों को प्रकम्पित करने वाले, सूर्यसदृश प्रकाशमान एवं सर्वप्रकाशक जगदीश्वर! आप (**महान्**) अतिशय महान् (**असि**) हो। (**बट्**) सचमुच, हे (**आदित्य**) अविनाशी-स्वरूप परमात्मन्! आप (**महान्**) परम महिमा वाले (**असि**) हो। हे (**पनिष्टम**) अतिशय स्तुति के पात्र परब्रह्म परमेश्वर! (**महः**) महान् (**सतः**) होते हुए (**ते**) आपकी (**महिमा**) महिमा (**महान्**) अपार है। (**मह्ना**) महिमा से, आप (**महान्**) सबसे बड़े (**असि**) हो।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**बट्**) सचमुच, हे (**सूर्य**) अपने राष्ट्र में सूर्य के समान विद्या का प्रकाश फैलाने वाले राजन्! आप (**महान्**) बड़े दिग्विजेता (**असि**) हो। (**बट्**) सचमुच, हे (**आदित्य**) राष्ट्रभूमि के पुत्र अर्थात् राष्ट्रवासियों द्वारा मत देकर राज्य के अन्दर से ही चुने राजन्! आप (**महान्**) प्रजापालनरूप महान् कर्म वाले (**असि**) हो। हे (**पनिष्टम**) व्यवहार के श्रेष्ठ ज्ञाता! (**महः सतः**) प्रजा के पूज्य होते हुए (**ते**) आपकी (**महिमा**) गरिमा (**महान्**) बहुत बड़ी है, क्योंकि आप में मनुस्मृति (७।४) के अनुसार इन्द्र, वायु, यम, सूर्य

आदि सब देवों के गुण विद्यमान हैं। हे (**देव**) प्रजाओं को सुख देने वाले राजन्! आप (**मह्ना**) गुणों के गौरव के कारण (**महान्**) बड़े कीर्तिशाली (**असि**) हो।

(**तृतीय**) आचार्य के पक्ष में। (**बट्**) सचमुच, हे (**सूर्य**) प्रकाशमय सूर्य के समान विद्या के प्रकाश से परिपूर्ण आचार्यवर! आप (**महान्**) महान् पाण्डित्य से युक्त (**असि**) हो। (**बट्**) सचमुच, हे (**आदित्य**) आदित्य ब्रह्मचारी! आप (**महान्**) महान् व्रतों का अनुष्ठान करने वाले (**असि**) हो। हे (**पनिष्टम**) अत्यधिक विद्याव्यवहार के ज्ञाता! (**महः सतः**) शिष्यों के पूज्य (**ते**) आपकी (**महिमा**) महिमा (**महान्**) अपार है। हे (**देव**) दिव्यगुणों वाले आचार्यप्रवर! आप (**मह्ना**) विद्या, शिक्षणकला आदि की महिमा से (**महान्**) गौरवशाली (**असि**) हो।।४।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।।४।।

**भावार्थ** :—ब्रह्माण्ड में परमेश्वर, राष्ट्र में राजा और गुरुकुल में गुरु तीनों ही महान्, परोपकारी और कीर्तिमान् हैं। उनसे यथायोग्य उपकार सबको ग्रहण करना चाहिए।।४।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा और आचार्य की मैत्री का फल कहा गया है।

**२७७. अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा।**
**श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति**
**सभामुप॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) दुःखविदारक, सुखदाता परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर राजन् वा आचार्य! (**यत्**) जब कोई (**ते**) आपका (**सखा**) मित्र हो जाता है, तब वह (**अश्वी**) प्रशस्त घोड़ों का स्वामी और प्रशस्त मन, प्राण एवं इन्द्रियों का स्वामी, (**रथी**) प्रशस्त स्थलयानों, जलयानों एवं विमानों का स्वामी और प्रशस्त मानव-देह रूप रथ का स्वामी, (**सुरूपः**) प्रशस्त रूप एवं प्रशस्त गुणों का स्वामी, और (**गोमान्**) प्रशस्त गौओं, भूमियों तथा वाणियों आदि का स्वामी (**इत्**) अवश्य

हो जाता है। (सः) वह (सदा) हमेशा (श्वात्रभाजा) धन वाली, विज्ञान वाली और शीघ्र किये जाने वाले कर्मों वाली (वयसा) आयु से (सचते) संयुक्त होता है, और (चन्द्रैः) चन्द्रमा के समान आह्लादक गुणों से युक्त होकर (सभाम्) प्रजा की सभा, विद्वानों की सभा और राजसभा में (उपयाति) जाता है।।५।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।५।।

**भावार्थ** :—जो मनुष्य परमात्मा, राजा एवं आचार्य से मैत्री जोड़ लेता है वह पुरुषार्थी, बलवान्, वाग्मी, जितेन्द्रिय, मेधावी, रथवान्, अश्ववान्, गोमान्, प्राणवान्, धनवान्, विज्ञानवान्, कर्मवान्, गुणवान्, आयुष्मान् होकर जनता का नेतृत्व करता हुआ जनसभाओं, विद्वत्सभाओं और राजसभाओं में प्रतिष्ठा पाता है।।५।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा का वर्णन है।

**२७८. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**वज्रिन्**) वज्रधारी के समान सब सूर्य, चन्द्र, मेघ आदि को नियम में चलाने वाले (**इन्द्र**) महामहिम परमेश्वर! (**यत्**) यदि (**ते**) आपके रचे हुए (**द्यावः**) द्यौ लोक (**शतम्**) सौ, (**उत**) और (**भूमीः**) भूमियाँ भी (**शतम्**) सौ (**स्युः**) हो जाएँ और (**सूर्याः**) सूर्य (**सहस्रम्**) हजार हो जाएँ, तो भी वे (**त्वा**) तेरी (**न**) नहीं (**अनु**) बराबरी कर सकते। (**न**) न ही (**रोदसी**) आकाश-भूमि के मध्य में (**जातम्**) उत्पन्न वायु, बादल, पहाड़, झरने, नदी, सागर आदि जो कुछ हैं, वे सब भी (**अष्ट**) तेरी महिमा का पार पा सकते हैं। अर्थात् तेरी महिमा अपरम्पार है।।६।।

इस मन्त्र में द्यौ, भूमि और सूर्य से शत तथा सहस्र संख्याओं का सम्बन्ध न होने पर भी उनके साथ सम्बन्ध वर्णित होने से असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है। साथ ही उपमानों से उपमेय का आधिक्य वर्णित होने से व्यतिरेक अलंकार भी है। 'शतं, शतं' में लाटानुप्रास है।।६।।

**भावार्थ** :–उषा, सूर्य, चाँद, तारे, भूमि, नदियाँ, पहाड़, समुद्र, वृक्ष, वनस्पतियाँ, दिन–रात, ऋतुएँ, वर्ष ये सब सौ हजार या लाख भी क्यों न हो जाएँ, परमेश्वर की महिमा को प्राप्त नहीं कर सकते॥६॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि प्रत्येक दिशा में परमेश्वर मनुष्यों द्वारा पुकारा जा रहा है।

**२७९. यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः।**
**सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे॥७॥**

**पदार्थ** :–( **यत्** ) क्योंकि, ( **इन्द्र** ) हे जगदीश्वर! तू ( **प्राक्** ) पूर्व दिशा में, ( **अपाक्** ) पश्चिम दिशा में, ( **उदक्** ) उत्तर दिशा में ( **न्यक् वा** ) और दक्षिण दिशा में ( **नृभिः** ) स्तोता जनों के द्वारा ( **हूयसे** ) पुकारा जाता तथा महिमा गान किया जाता है, इस कारण ( **नृषूतः** ) उन स्तोता जनों के द्वारा प्रेरित-प्रचारित होकर तू ( **पुरु** ) बहुत रूपों में ( **सिमा** ) सर्वत्र ( **आनवे** ) मानव–जाति में ( **असि** ) विदित हो जाता है। ( **प्रशर्ध** ) हे प्रकृष्ट रूप से शत्रुओं को परास्त करने वाले! तू ( **तुर्वशे** ) मार्ग में आने वाली विघ्नबाधाओं के विनाशक पुरुषार्थी मनुष्य में, उसकी सहायता के लिए ( **असि** ) विद्यमान रहता है॥७॥

**भावार्थ** :–दिशा–दिशा में परमात्मा का प्रचार हमें करना चाहिए, तभी मानव जाति का कल्याण हो सकता है॥७॥

इस मन्त्र पर सायण ने यह लिखा है कि अनु नाम का एक राजा था, उसका राजर्षि पुत्र 'आनव' है, और 'तुर्वश' भी एक राजा का नाम है। उसका यह व्याख्यान असंगत है, क्योंकि सृष्टि के आदिकाल में प्रादुर्भूत वेदों में परवर्ती मानव–इतिहास का वर्णन असम्भव है। निघण्टु में अनु और तुर्वश मनुष्यवाची नामों में पठित होने से ऐतिहासिक नाम नहीं हैं।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमेश्वर में श्रद्धा करने से क्या प्राप्त होता है।

**२८०. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा हि**
**ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥८॥**

**पदार्थ** :–हे (**त्वावसो**) कोई दूसरा निवासक न होने से जो स्वयं ही अपना निवासक है ऐसे आत्मनिर्भर (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**कः मर्त्यः**) भला कौन मनुष्य (**तम् आदधर्षति**) उसका बाल भी बाँका कर सकता है, जो (**मघवन्**) हे ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! (**पार्ये दिवि**) पार करने योग्य सम्पूर्ण दिन में (**ते**) तेरे प्रति (**श्रद्धा**) श्रद्धा से (**हि**) निश्चय ही (**वाजी**) अन्न, धन, विद्या, आत्मबल आदि से युक्त होकर (**वाजम्**) अन्न, धन, विद्या आत्मबल आदि को (**सिषासति**) दूसरों के लिए देना चाहता है॥८॥

**भावार्थ** :–जो दिन-रात परमेश्वर में श्रद्धा रखकर उसकी कृपा से अन्न, धन, विद्या, बल, वेग आदि प्राप्त करके सत्पात्रों को उसका दान करता है, उस परोपकारी का सब आदर करते हैं॥८॥

**अगले मन्त्र में इन्द्राग्नी देवता हैं। पहेली द्वारा श्रद्धा, उषा, विद्युत् आदि का वर्णन है।**

**२८१. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः। हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत् त्रिंशत् पदा न्यक्रमीत्॥९॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) श्रद्धा के पक्ष में। हे (**इन्द्राग्नी**) परमात्मन् और जीवात्मन्! तुम्हारे सान्निध्य से (**अपात्**) पैरों से रहित भी (**इयम्**) यह पूर्व मन्त्र में वर्णित श्रद्धा (**पद्वतीभ्यः**) पैरों वाली प्रजाओं से (**पूर्वा**) पूर्वगामिनी होती हुई (**आ अगात्**) आ गयी है। (**शिरः**) सिर को (**हित्वा**) छोड़कर भी, अर्थात् बिना सिर वाली होती हुई भी यह (**जिह्वया**) जिह्वा से (**रारपत्**) पुनः-पुनः बोलती हुई सी, अर्थात् अपना सन्देश सुनाती हुई सी (**चरत्**) विचर रही है। और यह (**त्रिंशत् पदानि**) शरीरस्थ दस इन्द्रियों, दस प्राणों, पाँच कोशों और आत्मासहित अहङ्कारचतुष्टय इन तीसों स्थानों को (**अक्रमीत्**) व्याप्त कर रही है॥

(**द्वितीय**) उषा के पक्ष में। हे (**इन्द्राग्नी**) ब्राह्मणो और क्षत्रियो! (**अपात्**) पैरों से रहित भी (**इयम्**) यह उषा (**पद्वतीभ्यः**) सोयी हुई पैरों वाली प्रजाओं से (**पूर्वा**) पहले

जागकर (आ अगात्) आ गयी है। यह उषा (शिरः) सिर को (हित्वा) छोड़कर भी अर्थात् विना सिर के भी (जिह्वया) जिह्वा-सदृश अपनी प्रभा से (रारपत्) जागरण का सन्देश पुनः-पुनः बोलती हुई सी (चरत्) विचर रही है। (त्रिंशत् पदानि) अहोरात्र के तीसों मुहूर्तों को (अक्रमीत्) पार करके आ गयी है, क्योंकि एक पूरे अहोरात्र के पश्चात् उषा का पुनः प्रादुर्भाव होता है।

(तृतीय) विद्युत् के पक्ष में। हे (इन्द्राग्नी) राजप्रजाजनो! देखो, (अपात्) पैरों से रहित भी (इयम्) यह विद्युत् (पद्वतीभ्यः) पैरों वाली मनुष्य, पशु आदि प्रजाओं से (पूर्वा) तीव्रगामिनी होती हुई (आ अगात्) हमारे उपयोग के लिए हमें प्राप्त हुई है। यह विद्युत् (शिरः हित्वा) सिर के विना भी (जिह्वया) सन्देशवाहक विद्युत्-तारयन्त्र द्वारा (रारपत्) पुनः-पुनः सन्देश-प्रेषक के सन्देश को बोलती हुई (चरत्) तार में चलती है। यह (त्रिंशत् पदानि) महीने के तीसों दिनों को व्याप्त करके (अक्रमीत्) प्रकाश-प्रदान, सन्देशवहन, यन्त्रचालन आदि कार्यों में पग रखती है अर्थात् इन कार्यों को करती है।।९।।

इस मन्त्र में 'पैर-रहित होती हुई भी पैरों वालियों से पहले पहुँच जाती है', 'सिर-रहित होती हुई भी जिह्वा से बोलती है', यहाँ विना कारण के कार्योत्पत्ति का वर्णन होने से विभावना अलंकार है। श्रद्धा, उषा, विद्युत् आदि किसी का नाम लिये विना संकेतों से सूचना देने के कारण प्रहेलिकालंकार भी है।।९।।

**भावार्थ** :—श्रद्धा के धारण से धर्म में प्रवृत्ति और वैयक्तिक तथा सामाजिक उन्नति होती है। उषा जागरण का सन्देश देती है। विद्युत् के प्रयोग से रात में भी दिन के समान प्रकाश प्राप्त होता है और दूरभाषयन्त्र, आकाशवाणीयन्त्र, ऐक्सरेयन्त्र, भार ऊपर उठाने, अस्त्र छोड़ने आदि के विविध यन्त्र और स्थलयान, जलयान एवं विमान चलाये जाते हैं। इस प्रकार श्रद्धा, उषा और विद्युत् सब जनों के लिए अतिलाभकारी हैं। अतः उनका यथोचित उपयोग सबको करना चाहिए।।९।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर, राजा, विद्वान् आदि का आह्वान किया गया है।

**२८२. इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।**
**आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे **(इन्द्र)** परमेश्वर, राजन् वा विद्वन्! आप **(मितमेधाभिः)** मेधापूर्ण **(ऊतिभिः)** रक्षाओं के साथ **(नेदीयः इत्)** हमारे अधिक समीप **(आ इहि)** आइए। हे **(शन्तम)** अतिशय कल्याण करने वाले! आप **(शन्तमाभिः)** अतिशय कल्याण करने वाली **(अभिष्टिभिः)** अभीष्ट प्राप्तियों के साथ **(आ)** आइए। हे **(स्वापे)** सुबन्धु! आप **(स्वापिभिः)** उत्कृष्ट बन्धुभावों के साथ **(आ)** आइए॥१०॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालङ्कार है। दकार, तकार, मकार की आवृत्ति में, 'भि' की आवृत्ति में और 'रभि', 'भिरा' में वृत्त्यनुप्रास है। 'शन्तम, शन्तमा' और 'स्वापे, स्वापि' में छेकानुप्रास है॥१०॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर की रक्षाएँ बुद्धिपूर्ण, दान कल्याणकारी और बन्धुभाव शुभ होते हैं, वैसे ही राष्ट्र में राजा और विद्वान् अध्यापक के भी हों॥१०॥

इस दशति में इन्द्र नाम से परमेश्वर, राजा, आचार्य आदि के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन करके उनसे अभय आदि की याचना होने से, सूर्य नाम से भी इनकी स्तुति होने से और श्रद्धा आदि का भी महत्त्व वर्णित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## षष्ठी दशतिः

**ऋषिः—१ नृमेधः; २, ३ वसिष्ठः; ४ भरद्वाजः; ५ पुरुच्छेपः; ६ वामदेवः; ७ मेध्यातिथिः; ८ भर्गः; ९, १० मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च॥ देवता—१-४, ७-१० इन्द्रः; ५ अश्विनौ; ६ वरुणः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर और राजा के गुण वर्णित किये गये हैं।

२८३. इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम्॥१॥

**पदार्थ** :–हे मनुष्यो! (**वः**) तुम लोग (**ऊती**) रक्षा के लिए (**अजरम्**) बुढ़ापे अथवा जीर्णता से रहित, (**प्रहेतारम्**) शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाले, (**अ-प्रहितम्**) स्वयं किसी अन्य से प्रेरित न होने वाले, (**आशुम्**) शीघ्रकारी, न कि व्यर्थ ही कार्यों को लटकाने वाले, (**जेतारम्**) विजयी, (**हेतारम्**) वृद्धि करने वाले, (**रथीतमम्**) गतिशील, सूर्यचन्द्रादिरूप रथों के तथा ब्रह्माण्डरूप रथ के श्रेष्ठ रथी, अथवा श्रेष्ठ रथारोही, (**अतूर्तम्**) किसी से हिंसित न होने वाले, (**तुग्रियावृधम्**) अन्न में रहने वाले अन्नरस, आकाश में रहने वाले मेघजल या वायु, यज्ञ में रहने वाले फलसाधनत्व तथा वरिष्ठ जनों में रहने वाले धर्माचार के वर्धक इन्द्र परमेश्वर को अथवा प्रजाओं की वृद्धि करने वाले इन्द्र राजा को (**इतः**) इधर अपने अभिमुख करो॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। तकार और रेफ की अनेक वार आवृत्ति में, 'तार' की तीन बार आवृत्ति में और 'तम, मतू' में वृत्त्यनुप्रास है। 'प्रहेता, प्रहित' में छेकानुप्रास, और 'हेतार' की आवृत्ति में यमक है॥१॥

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि सांसारिक विषय-विलासों में अति प्रवृत्ति को छोड़कर विविध गुणों वाले परमेश्वर की उपासना करके और राजा को प्रजाओं के अनुकूल करके अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि करें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

२८४. मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्। आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि॥२॥

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे इन्द्र परमात्मन्! (**वाघतः**) हमारे शरीर-यज्ञ के ऋत्विज् इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि (**च न**) निश्चय ही (**त्वा**) तुझे (**अस्मत्**) हमसे

(आरे) दूर (मा उ सु) मत (निरीरमन्) रमायें अर्थात् इन्द्रिय आदियों से विषयों में आकृष्ट हुआ मैं तुझे अपने पास से दूर न रखूँ। तू (आरात्तात् वा) दूर से भी (नः) हमारे (सधमादम्) जीवन-यज्ञ या उपासना-यज्ञ में (आ गहि) आ, (इह वा सन्) और यहीं हृदय में रहता हुआ (उपश्रुधि) हमारी स्तुति और प्रार्थना को सुन।।

(द्वितीय) राजा के पक्ष में। हे इन्द्र राजन्! (वाघतः) बुद्धिमान् राजमन्त्री, नगराधीश आदि राज्याधिकारी (चन) निश्चय ही (त्वा) तुझे (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (मा उ सु) मत (निरीरमन्) रोकें, अर्थात् तुझ राजा को हमारे लिए सुलभ करायें। हे राजन्! (आरात्ताद् वा) सुदूरस्थ भी अपनी राजधानी से, तू (नः) हमारे (सधमादम्) यज्ञ-समारोह में (आ गहि) आ, (इह वा सन्) और यहीं हमारे मध्य में विराजमान होता हुआ तू (उपश्रुधि) हमारे सुखदु:खादि के निवेदन को सुन।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। रेफ की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है।।२।।

**भावार्थ** :—राजराजेश्वर परमात्मा और मानव राजा हम प्रजाजनों को सदा सुलभ रहता हुआ हमारे सुख-दु:ख को जाने।।२।।

अगले मन्त्र में इन्द्र के लिए सोम अभिषुत करने की प्रेरणा दी गयी है।

**२८५. सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे। पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे मरणधर्मा मनुष्यो! तुम (सोमपाव्ने) उपासकों के श्रद्धारस का पान करने वाले, (वज्रिणे) पापाचारियों के प्रति दण्डधारी (इन्द्राय) जगदीश्वर के लिए (सोमम्) श्रद्धारस को (सुनोत) अभिषुत करो, (पक्तीः) ज्ञान, कर्म आदि के परिपाकों को (पचत) पकाकर तैयार करो, और (अवसे) जगदीश्वर की प्रीति के लिए (कृणुध्वम् इत्) उन श्रद्धारसों और ज्ञान, कर्म आदि के परिपाकों को उसे समर्पित करो। (पृणते) समर्पण करने वाले मनुष्य के लिए वह जगदीश्वर

( मयः ) सुख को ( पृणन् इत् ) अवश्य प्रदान करता है॥३॥

**भावार्थ** :–इस मन्त्र में 'समर्पण करने वाले को सुख मिलता है' इससे सोमसवन एवं पाकों के परिपाक के समर्पण रूप कार्य का समर्थन होता है, अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'सोम-सोम' में लाटानुप्रास तथा 'पृण-पृण' में छेकानुप्रास है॥३॥

सुखार्थी जनों को चाहिए कि परमेश्वर में श्रद्धा और अपनी अन्तरात्मा में ज्ञान, कर्म, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि का परिपाक अवश्य करें॥३॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि कैसे परमेश्वर और राजा को हम पुकारें और उससे क्या याचना करें।

**२८६. यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्।**
**सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे॥४॥**

**पदार्थ** :–( **यः** ) जो परमात्मा वा राजा ( **सत्राहा** ) सत्य से असत्य का हनन करने वाला अथवा सत्य व्यवहार करने वाला और ( **विचर्षणिः** ) विशेष रूप से द्रष्टा है, ( **तम्** ) उस ( **इन्द्रम्** ) दुःख, विघ्न आदि के विदारक तथा सुख एवं ऐश्वर्य के प्रदाता परमात्मा और राजा को ( **वयम्** ) हम प्रजाजन ( **हूमहे** ) पुकारते हैं। हे ( **सहस्रमन्यो** ) पापों और पापियों के विनाशार्थ अनन्त उत्साह को धारण करने वाले, ( **तुविनृम्ण** ) बहुत बली तथा बहुत धनी, ( **सत्पते** ) सज्जनों के पालक! तू ( **समत्सु** ) जीवन के संघर्षों में एवं देवासुरसंग्रामों में ( **नः** ) हमारी ( **वृधे** ) वृद्धि के लिए ( **भव** ) हो॥४॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलङ्कार है॥४॥

**भावार्थ** :–जैसे ब्रह्माण्ड में परमेश्वर सत्य का हन्ता, सर्वद्रष्टा, पापों को सहन न करने वाला, बहुत बलवान्, बहुत धनवान् और देवासुरसंग्रामों में देवपुरुषों को विजय दिलाने वाला तथा बढ़ाने वाला है, वैसे ही राष्ट्र में राजा हो॥४॥

अगले मन्त्र में अश्वियुगल देवता हैं। उनसे याचना की गयी है।

**२८७. शचीभिर्नः शचीवसू दिवानक्तं दिशस्यतम्। मा वां रातिरुप दसत्कदा च नास्मद्रातिः कदा च न॥५॥**

**पदार्थ** :–हे (**शचीवसू**) कर्म-रूप धन वाले परमात्मा-जीवात्मा, गुरु-शिष्य, अध्यापक-उपदेशक, वैद्य-शल्य चिकित्सक, राजा-राजमन्त्री, सभापति-सेनापति आदि अश्वीदेवो! तुम (**शचीभिः**) अपने-अपने कर्मों से (**नः**) हमें (**दिवा नक्तम्**) दिन-रात (**दिशस्यतम्**) अपनी-अपनी देनें प्रदान करो। (**वाम्**) तुम्हारा (**रातिः**) दान (**कदा च न**) कभी (**न उपदसत्**) समाप्त न हो, वैसे ही (**अस्मत्**) हमारे अन्दर से (**रातिः**) दान का गुण (**कदा च न**) कभी (**न उपसदत्**) समाप्त न हो, अर्थात् हम भी निरन्तर दान में संलग्न रहें॥५॥

इस मन्त्र में 'शची, शची', 'राति, रातिः', तथा 'कदा च न, कदा च न' में लाटानुप्रास अलङ्कार है॥५॥

**भावार्थ :–उक्त अश्वी-युगल जैसे अपनी-अपनी आध्यात्मिक, वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, शिल्पात्मक, चिकित्सात्मक आदि देनों से हमारा उपकार करते रहें, उसी प्रकार हम भी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार दूसरों का उपकार करें॥५॥**

अगले मन्त्र में वरुण देवता है। उसकी उपासना के लिए प्रेरणा की गयी है।

**२८८. यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः। आदिद् वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम्॥६॥**

**पदार्थ** :–(**यदा कदा च**) जब कभी (**स्तोता**) स्तोता (**मर्त्यः**) मनुष्य (**मीढुषे**) बादल के समान ऐश्वर्यवर्षक परमैश्वर्यशाली इन्द्र परमात्मा को अनुकूल करने के लिए (**जरेत**) उसकी अर्चना करे, (**आत् इत्**) उसके अनन्तर ही वह (**विव्रतानाम्**) व्रत-रहितों को (**धर्तारम्**) कर्म-पाशों से जकड़ने वाले, (**वरुणम्**) कर्मानुसार फल देकर पापों से निवारण करने वाले वरुण परमात्मा की भी (**विपा**) मेधायुक्त (**गिरा**) वाणी से (**वन्देत**) वन्दना कर लिया करे॥६॥

**भावार्थ** :—इन्द्र और वरुण दोनों ही परमेश्वर के नाम हैं। इन्द्र नाम से उसकी परमैश्वर्यवत्ता तथा ऐश्वर्यवर्षकता सूचित होती है, और वरुण नाम से उसका पाशधारी होना तथा कर्म-पाशों से बाँधकर और दण्ड देकर पापनिवारक होना सूचित होता है। परमेश्वर के इन दोनों ही स्वरूपों के चिन्तन करने, स्मरण करने तथा सदा अपने सामने धारण रखने से मनुष्य अपने जीवन में सन्मार्गगामी होकर सफलता प्राप्त कर सकता है। ऐश्वर्य पाकर मनुष्य कुमार्ग में प्रवृत्त न हो जाए, इसके लिए, परमेश्वर के वरुण स्वरूप को भी ध्यान में रखना आवश्यक है॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र के आतिथ्य की प्रेरणा दी गयी है।

**२८९. पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे। यः सम्मिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (**मेध्यातिथे**) पवित्र इन्द्र रूप अतिथि वाले स्तोता! तू (**अन्धसः**) भक्तिरस के (**मदे**) आनन्द में विह्वल होकर (**इन्द्राय**) इन्द्र परमेश्वर के लिए, अर्थात् उसके आतिथ्य के लिए (**गाः**) स्तुतिवाणियों को (**पाहि**) पाल-पोसकर प्रवृत्त कर, (**यः**) जो इन्द्र परमेश्वर (**हर्योः**) मन-प्राणरूप घोड़ों को (**संमिश्लः**) शरीर में नियुक्त करने वाला है, और (**यः**) जो (**हिरण्ययः**) ज्योतिर्मय तथा यशोमय है, और जो (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**वज्री**) वज्र के समान विद्यमान आक्रामक तथा रक्षक बल से युक्त होकर दुर्जनों को दण्डित एवं सज्जनों को रक्षित करने वाला, और (**हिरण्ययः**) सत्यरूप स्वर्णालङ्कार से अलंकृत है॥७॥

इस मन्त्र में 'इन्द्राय गाः पाहि' इससे यह उपमालंकार ध्वनित होता है कि जैसे कोई गृहस्थ विद्वान् अतिथियों के सत्कार के लिए गाय पालता है। 'इन्द्रा, इन्द्रे' में छेकानुप्रास, 'हर्यो र्योहि' में वृत्त्यनुप्रास, तथा 'हिरण्यय, हिरण्ययः' में यमक अलंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—अतिथि-सत्कार मनुष्य का परम धर्म है। इन्द्र परमेश्वर भी मनुष्य के हृदय-गृह का अतिथि है। उसके

आतिथ्य के लिए उसे श्रद्धारस में विभोर होकर स्तुतिवाणीरूप अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। इन्द्र परमेश्वर एक विलक्षण अतिथि है जो अपना आतिथ्य करने वाले को ज्योति, यश एवं सत्यादिरूप सुवर्ण प्रदान करता है, अपने बल से उसकी रक्षा करता है, उसके शरीर में मन और प्राण को नियुक्त करके उसे लम्बी आयु और सामर्थ्य देता है॥७॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि परमात्मा और राजा हमारे वचन को सुनें।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
**२९०. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः। सत्राच्या**
३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥८॥**

**पदार्थ** :–(**इन्द्रः**) सुखप्रदाता, दुःखहर्ता जगदीश्वर एवं राजा (**अर्वाक्**) हमारे अभिमुख हो, (**च**) और (**नः**) हमारे (**इदम्**) इस (**उभयम्**) मानसिक तथा वाचिक अथवा लिखित एवं मौखिक दोनों प्रकार के (**वचः**) निवेदन को (**शृणवत्**) सुने। साथ ही (**मघवान्**) सकल ऐश्वर्य का स्वामी, (**शविष्ठः**) सबसे अधिक बली वह जगदीश्वर एवं राजा (**सोमपीतये**) मानस तथा बाह्य शान्ति की रक्षा के लिए (**सत्राच्या**) सत्य अनुसरण करने वाली (**धिया**) विचारशृङ्खला के साथ (**आ गमत्**) हमारे पास आये॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।

**भावार्थ** :–जैसे परमात्मा मनुष्यों के अन्तःकरण में भ्रातृभाव और शान्ति के विचारों को प्रेरित करता है, वैसे ही राजा लोग राष्ट्रों में और संसार में पारस्परिक विद्वेष को समाप्त करके शान्ति का विस्तार करें॥८॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि परमेश्वर को हम बड़े-से-बड़े मूल्य पर भी न छोड़ें।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ २
**२९१. महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे। न**
३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
**सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥९॥**

**पदार्थ** :–हे (**अद्रिवः**) आनन्दरूप मेघों के स्वामी, आनन्द-

रसवर्षक इन्द्र परमात्मन्! (त्वा) तुम (महे च) किसी बड़ी भी (शुल्काय) कीमत पर, हमसे (न) नहीं (परादीयसे) छोड़े जा सकते हो। हे (वज्रिवः) प्रशस्त विज्ञानमय नीति के अनुसार चलने वाले! (न) न (सहस्राय) हजार मुद्रा आदि का मूल्य लेकर, और (न) न ही (अयुताय) दस हजार मुद्रा आदि का मूल्य लेकर, छोड़े जा सकते हो। हे (शतामघ) अनन्त सम्पदा वाले! (न) न ही (शताय) दस हजार से भी सौ गुणा अधिक अर्थात् दस लाख मुद्रा आदि का मूल्य लेकर छोड़े जा सकते हो॥९॥

इस मन्त्र में 'अद्रिवः, वज्रिवः और शतामघ' विशेषण साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। जो मेघ के समान सुखवर्षक, प्रशस्त नीति से चलने वाला और अनन्त धनवान् है वह भला किसी मूल्य पर कैसे छोड़ा जा सकता है॥९॥

**भावार्थ** :—हे राजराजेश्वर परमात्मन्! तुम्हें हमने अपने प्रेम से वश में कर लिया है। अब तुम्हें सौ, हजार, दस हजार, **लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़ मूल्य के बदले भी हम छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं॥९॥**

अगले मन्त्र में परमात्मा की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता का वर्णन है।

**२९२. वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः। माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे॥१०॥**

पदार्थ :—हे (इन्द्र) परमेश्वर! आप (**अभुञ्जतः**) पालन न करने वाले (**मे**) मेरे (**पितुः**) पिता से (**उत**) और (**भ्रातुः**) सगे भाई से (**वस्यान्**) अधिक निवासप्रद (**असि**) हो। हे (**वसो**) निवासक जगदीश्वर! आप, (**मे माता च**) और मेरी माता (**समा**) दोनों समान हो, क्योंकि तुम दोनों ही (**वसुत्वनाय**) धन के लिए और (**राधसे**) सफलता के लिए (**छदयथः**) हमें अपनी शरण से सत्कृत करते हो॥१०॥

इस मन्त्र में 'अभुञ्जतः' पद का अर्थ पिता और भ्राता की अपेक्षा इन्द्र के अधिक निवासक होने में तथा 'वसुत्वनाय राधसे छदयथः' इस वाक्य का अर्थ इन्द्र और माता के समान

होने में हेतु होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है। 'तरु, तुर', 'वसो, वसु' में छेकानुप्रास है॥१०॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर सभी सांसारिक बन्धुबान्धवों की अपेक्षा सर्वाधिक प्रिय और श्रेष्ठ है। केवल माता से उसकी कुछ तुलना हो सकती है, क्योंकि माता भूमि से भी अधिक गौरवमयी है ऐसा शास्त्रकार कहते हैं॥१०॥

इस दशति में इन्द्र के गुणों का वर्णन तथा आह्वान होने से, उससे वृद्धि आदि की प्रार्थना होने से, उससे सम्बद्ध अश्विनों से दान की याचना होने से तथा इन्द्र नाम से राजा आदि का भी चरित्र वर्णित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

तृतीय प्रपाठक में द्वितीय अर्ध की पाँचवीं दशति समाप्त।

**इति तृतीयः प्रपाठकः समाप्तः॥**

# अथ चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

## सप्तमी दशतिः

**ऋषिः—१ वसिष्ठः; २, ६, ७ वामदेवः; ३ मेधातिथि-मेध्यातिथी; विश्वामित्र इत्येके; ४ नोधाः; ५ मेधातिथिः; ८ बालखिल्याः; ९ मेध्यातिथिः; १० नृमेधः॥ देवता—१-६, ८-१० इन्द्रः; ७ बहवः—(पर्जन्यब्रह्मणस्पत्यदितयो विश्वेदेवाः)॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र को सोमपान के लिए बुलाया जा रहा है।

**२९३. इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः। ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अतिथि के पक्ष में। (**इमे**) ये (**दध्याशिरः**) दही के साथ मिलाये हुए (**सोमासः**) सोमादि ओषधियों के रस (**इन्द्राय**) तुझ विद्वान् अतिथि के लिए (**सुन्विरे**) तैयार रखे हैं। हे (**वज्रहस्त**) हमारे दोषों को नष्ट

करने के लिए उपदेशवाणीरूप वज्र को धारण करने वाले विद्वन्! ( **तान्** ) उन दधिमिश्रित सोमरसों को ( **मदाय** ) तृप्त्यर्थ ( **पीतये** ) पीने के लिए ( **हरिभ्याम्** ) ऋक् और साम के ज्ञान के साथ अथवा दो घोड़ों से चलने वाले रथ पर बैठकर, मुझ गृहस्थ के ( **ओकः** ) घर पर ( **आयाहि** ) आइए॥

( **द्वितीय** ) परमात्मा के पक्ष में। ( **इमे** ) ये ( **दध्याशिरः** ) कर्मरूप दही के साथ मिलाये या पकाये हुए ( **सोमासः** ) हमारे श्रद्धा-रस ( **इन्द्राय** ) तुझ जगदीश्वर के लिए ( **सुन्विरे** ) तैयार किये हुए हैं। हे ( **वज्रहस्त** ) वज्रधारी के समान दोषों को नष्ट करने वाले परमेश्वर! ( **तान्** ) उन कर्ममिश्रित श्रद्धारसों को ( **मदाय** ) तृप्त्यर्थ ( **पीतये** ) पान करने के लिए ( **हरिभ्याम्** ) जैसे कोई रथ में घोड़ों को नियुक्त करके वेगपूर्वक आता है वैसे ( **ओकः** ) हमारे हृदय-सदन में ( **आयाहि** ) आइए॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है, **परमात्मपक्ष** में लुप्तोपमा भी है॥१॥

**भावार्थ :–जैसे दही में मिलाकर सोमादि ओषधियों का रस अतिथियों को समर्पित किया जाता है, वैसे ही** श्रद्धारस को कर्म के साथ मिलाकर ही **परमेश्वर** को अर्पित करना चाहिए, क्योंकि कर्महीन भक्ति कुछ भी लाभ नहीं पहुँचाती है॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र से प्रार्थना की गयी है।

**२९४. इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः।**
**मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय**
**गिर्वणः॥२॥**

**पदार्थ :–( इमे )** ये ( **उक्थिनः** ) स्तोत्रयुक्त ( **सोमाः** ) हमारे श्रद्धारस, हे ( **इन्द्र** ) परमेश्वर! ( **ते** ) आपकी ( **मदाय** ) तृप्ति के लिए ( **चिकित्रे** ) जाने गये हैं, सर्वविदित हैं। हमारे ( **मधोः** ) मधुर श्रद्धारस का ( **पपानः** ) पान करते हुए ( **नः** ) हमारी ( **गिरः** ) प्रार्थना-वाणियों को ( **उप शृणु** ) समीपता से सुनिए। हे ( **गिर्वणः** ) वाणियों द्वारा सेवन करने अथवा याचना करने योग्य परमात्मन्! आप ( **स्तोत्राय** ) मुझ स्तुतिकर्ता को ( **रास्व** )

अभीष्ट फल प्रदान कीजिए॥

अतिथि के पक्ष में भी अर्थयोजना कर लेनी चाहिए। उस पक्ष में 'उक्थिनः सोमाः' से प्रशंसित सोमादि ओषधियों के रस अभिप्रेत हैं। उनसे सत्कृत होकर वह गृहस्थों की प्रार्थना को सुनकर उन्हें अभीष्ट उपदेश आदि प्रदान करे॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर और अतिथि हमारी प्रार्थना को सुनकर अभीष्ट फल हमें प्रदान करें॥२॥

अगले मन्त्र में दूध देने वाली गाय के रूप में इन्द्र की स्तुति की गयी है।

**२९५. आ त्वा३ऽ द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम्।**
**इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अद्य**) आज (**तु**) शीघ्र ही (**सबर्दुघाम्**) ज्ञानरूप दूध को देने वाली, (**गायत्र-वेपसम्**) जिसके कर्मों का सर्वत्र गान हो रहा है ऐसी, (**सुदुघाम्**) भलीभाँति कामनाओं को पूर्ण करने वाली, (**अन्याम्**) विलक्षण, (**इषम्**) चाहने योग्य, (**उरुधाराम्**) बड़ी-बड़ी धारों वाली, (**अरंकृतम्**) अलंकृत करने वाली (**इन्द्रं धेनुम्**) परमेश्वररूप गाय को (**आहुवे**) पुकारता हूँ॥३॥

इस मन्त्र में परमेश्वर में गाय का आरोप होने से रूपक अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे गाय दूध देती है, वैसे परमेश्वर ज्ञान-रस देता है। गाय और परमेश्वर दोनों के यज्ञ-साधकत्व रूप कर्म का गान किया जाता है। दोनों ही मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। गाय अन्य पशुओं से विलक्षण है, परमेश्वर अन्य चेतन-अचेतनों से विलक्षण है। गाय दूध की बड़ी-बड़ी धारों को देती है, परमेश्वर आनन्द की धारें बरसाता है। गाय पुष्टि और आरोग्य देकर मनुष्यों को शोभित करती है, परमेश्वर अध्यात्मबल से शोभित करता है। इस प्रकार दोनों की समता होने से परमेश्वर की गाय के समान सेवा और पूजा करनी योग्य है॥३॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर का दान करने का धर्म वर्णित है।

**२९६. न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीडवः। यच्छि-**
**क्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमेश्वर! (**बृहन्तः**) विशाल (**वीडवः**) दृढ़ (**अद्रयः**) पर्वत भी (**त्वा**) तुझे (**न**) नहीं (**वरन्त**) रोक सकते हैं, (**यत्**) जब कि तू (**मावते**) मुझ जैसे (**स्तुवते**) स्तोता जन के लिए (**वसु**) आध्यात्मिक और भौतिक धन (**शिक्षसि**) देता है। (**तत्**) उस तेरे दानरूप कर्म को (**न किः**) कोई भी नहीं (**आ मिनाति**) नष्ट कर सकता है॥४॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर का जो गुण-कर्म-स्वभाव है उसके फलीभूत होने में संसार की कोई भी बाधा रुकावट नहीं डाल सकती॥४॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि स्तुति किया हुआ जगदीश्वर क्या करता है।

**२९७. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे। अयं**
**यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**सुते**) उपासना-यज्ञ में (**सचा**) एक-साथ (**पिबन्तम्**) यजमान के श्रद्धारस का पान करते हुए (**ईम्**) इस इन्द्र परमेश्वर को (**कः वेद**) कौन जानता है? (**कत्**) कब वह (**वयः**) उपासक के जीवन को (**दधे**) सहारा दे देता है, इसे भी कौन जानता है? अर्थात् यदि कोई जानता है तो उपासक ही जानता या अनुभव करता है। कैसे परमेश्वर को? इसका उत्तर देते हैं—(**अयम्**) यह (**यः**) जो (**शिप्री**) प्रशस्त स्वरूप वाला परमेश्वर (**अन्धसः**) यजमान के श्रद्धारस से (**मन्दानः**) प्रसन्न होता हुआ (**ओजसा**) बलपूर्वक (**पुरः**) उसकी मनोभूमि में दृढ़ता के साथ जमी हुई काम-क्रोधादि असुरों की नगरियों को (**विभिनत्ति**) तोड़-फोड़ देता है॥५॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना का यही लाभ है कि वह उपासक के मन में सब शत्रुओं को पराजित कर सकने वाले पुरुषार्थ को उत्पन्न करके उसे समरभूमि में विजयी बना देता है॥५॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर और राजा को सम्बोधित किया गया है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**२९८. यदिन्द्र शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि।**
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय॥६॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। (**यत्**) क्योंकि, हे (**इन्द्र**) दुर्गुणनिवारक जगदीश्वर! आप (**शासः**) शासक और नियामक हैं, इस कारण (**अव्रतम्**) व्रतहीन और कर्महीन मनुष्य को (**सदसः परि**) सज्जनों के समाज से (**च्यावय**) निकाल दीजिए। हे (**मघवन्**) सद्गुणरूप धनों के धनी! (**अस्माकम्**) हमारे (**पुरुस्पृहम्**) बहुत अधिक प्रिय (**अंशुम्**) मन को (**वसव्ये अधि**) आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक दोनों प्रकार के धन-समूह की प्राप्ति के निमित्त से (**बर्हय**) श्रेष्ठ बना दीजिए।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**यत्**) क्योंकि, हे (**इन्द्र**) पाप और पापियों के विनाशक राजन्! आप (**शासः**) शासक हैं, इस कारण (**अव्रतम्**) वर्णाश्रम की मर्यादा का पालन न करने वाले मनुष्य को (**सदसः परि**) राष्ट्ररूप यज्ञगृह से (**च्यावय**) निष्कासित कर दो। अथवा (**अव्रतम्**) राष्ट्रसेवा के व्रत से रहित मनुष्य को (**सदसः परि**) संसत् की सदस्यता से (**च्यावय**) च्युत कर दो। हे (**मघवन्**) धनों के स्वामिन्! (**अस्माकम्**) हमारे (**पुरुस्पृहम्**) अतिशय प्रिय (**अंशुम्**) प्रदत्त कर रूप अंशदान को (**वसव्ये अधि**) राष्ट्रहित के कार्यों में (**बर्हय**) व्यय करो॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥६॥

**भावार्थ** :–वे ही राष्ट्रपरिषत् के सदस्य होने योग्य हैं जो राष्ट्रसेवा के व्रत में दीक्षित हों। प्रजाजनों को भी वर्णाश्रम की मर्यादा का पालन करने वाला और कर्मपरायण होना चाहिए। प्रजाओं को चाहिए कि स्वेच्छा से राजा को कर प्रदान करें और राजा को चाहिए कि कर द्वारा प्राप्त धन को राष्ट्रहित के कार्यों में व्यय करे॥६॥

इस मन्त्र के देवता मन्त्रोक्त त्वष्टा, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति और अदिति हैं। इन्द्र के प्रकरण में उनसे भी रक्षा आदि की

याचना की गयी है।

**२९९. त्वष्टा नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः। पुत्रै-**
**र्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः॥७॥**

**पदार्थ** :–(**त्वष्टा**) दोषनिवारक, तेजस्वी, दुःखच्छेदक विद्वान् मनुष्य, (**पर्जन्यः**) बादल के समान उपदेश की वर्षा करने वाला संन्यासी, और (**ब्रह्मणः पतिः**) ज्ञान का अधिपति आचार्य (**नः**) हमारे लिए (**दैव्यं वचः**) ईश्वरीय वेदवचन का उपदेश करें। (**पुत्रैः**) पुत्रों सहित, और (**भ्रातृभिः**) भाई–बन्धुओं सहित (**नः**) हमें (**अदितिः**) जगन्माता (**नु**) शीघ्र ही (**पातु**) रक्षा प्रदान करती रहे। हमारा (**वचः**) वचन (**दुष्टरम्**) दुस्तर, अकाट्य तथा (**त्रामणम्**) दूसरों की रक्षा करने वाला होवे॥७॥

**भावार्थ** :–विद्वानों के उपदेश से पुत्र, पौत्र, बन्धु, बान्धव आदि सहित सब लोग वेद के ज्ञाता, सत्कर्मों में संलग्न और परमेश्वर–प्रेमी होते हुए व्यवहार में सत्य, मधुर, प्रभावजनक तथा कुतर्कों से अकाट्य वचन बोला करें॥७॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमेश्वर की अर्चना कभी निष्फल नहीं होती।

**३००. कदा च न स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।**
**उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते॥८॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) सुखप्रदाता परमेश्वर! आप (**कदाचन**) कभी (**स्तरीः**) वन्ध्या गौ के समान निष्फल (**न असि**) नहीं होते, प्रत्युत (**दाशुषे**) आत्मदान करने वाले उपासनायज्ञ के यजमान को फल देने के लिए (**सश्चसि**) प्राप्त होते हो। हे (**मघवन्**) धनों के स्वामी! (**देवस्य ते**) तुझ दानादिगुणयुक्त का (**दानम्**) दान (**इत् नु**) निश्चय ही (**भूयः**) पुनः–पुनः (**उप–उप पृच्यते**) यजमान को प्राप्त होता है, अवश्य प्राप्त होता है॥८॥

**भावार्थ** :–जो स्वयं को परमेश्वर के लिए समर्पित कर देता है उसे वह दुधारु गाय के समान सदा फल प्रदान करता

रहता है॥८॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और सेनाध्यक्ष को सम्बोधित किया गया है।

**३०१. युङ्क्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः। अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि॥९॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**वृत्रहन्तम**) पापरूप वृत्रासुरों का अतिशय वध करने वाले (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**परावतः**) अपने परम स्वरूप में स्थित होकर आप (**हरी**) हमारे ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रियरूप घोड़ों को (**युङ्क्ष्व हि**) कार्य में प्रवृत्त कीजिए, अर्थात् हमें ज्ञानवान् और कर्मवान् बनाइए। (**उग्रः**) तीक्ष्ण बल वाले आप (**अर्वाचीनः**) हमारे अभिमुख होते हुए (**सोमपीतये**) हमारे आत्मा के रक्षणार्थ (**ऋष्वेभिः**) महान् वीरता, दया, उदारता आदि गुणों के साथ अर्थात् हमारे लिए उनका उपहार लेकर (**आगहि**) आइए॥

(**द्वितीय**)–राष्ट्र के पक्ष में। राष्ट्र में शत्रु का संकट आ जाने पर प्रजा द्वारा सेनाध्यक्ष को सैनिकों के साथ बुलाया जा रहा है। हे (**वृत्रहन्तम**) शत्रुओं का अत्यधिक संहार करने वाले (**इन्द्र**) सेनाध्यक्ष! आप (**परावतः**) अपने उत्कृष्ट सैन्यावास से (**हरी**) संकटों को हरने वाले अपने आक्रामक और रक्षक दोनों सेना-दलों को (**युङ्क्ष्व हि**) शत्रुओं के उच्छेद और राष्ट्र के रक्षण के लिए नियुक्त कीजिए। हे (**मघवन्**) वीरतारूप धन के धनी! (**उग्रः**) प्रचण्ड आप (**सोमपीतये**) शान्ति के रक्षणार्थ (**ऋष्वेभिः**) अपने महाबली सैनिकों के साथ (**अर्वाचीनः**) रणभूमि की ओर (**आगहि**) आइए॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है॥९॥

**भावार्थ** :–देहधारी जीवात्मा के ज्ञान एवं पौरुष से रहित तथा पापग्रस्त हो जाने पर जैसे परमेश्वर का आह्वान श्रेयस्कर होता है, वैसे ही राष्ट्र जब शत्रुओं से आक्रान्त हो जाता है तब सेनाध्यक्ष का आह्वान श्रेयस्कर होता है॥९॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर वा राजा का आह्वान किया गया है।

३०२. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥१०॥

**पदार्थ** :—हे (**वज्रिन्**) वज्रधारी, अर्थात् दुर्जनों के दलन और सज्जनों के रक्षण की शक्ति से युक्त परमात्मन् वा राजन्! (**त्वाम्**) आपको (**भूर्णयः**) लोगों का भरण-पोषण करने वाले (**नरः**) नेताजन (**इदा**) इस समय, तथा (**ह्यः**) भूतकाल में (**अपीप्यन्**) बढ़ाते हैं और बढ़ाते रहे हैं, अर्थात् सदा आपका प्रचार करते हैं। (**सः**) वह आप (**इन्द्र**) हे दुर्मति के विदारक और सुमति के दाता परमात्मन् वा राजन्! (**स्तोमवाहसः**) स्तुति करने वाले हम लोगों को अर्थात् हमारे निवेदनों को (**इह**) यहाँ (**श्रुधि**) सुनिए और (**स्वसरम्**) हमारे हृदयसदन में अथवा प्रजा के सभागृह में (**उप आ गहि**) आइए।।१०।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है।।

**भावार्थ** :—समाज में जो नेताजन होते हैं और उन्हें चाहिए कि सर्वत्र परमात्मा वा प्रजारञ्जक राजा का प्रचार करें, जिससे राष्ट्र के सब लोग आस्तिक तथा राजभक्त हों।।१०।।

इस दशति में इन्द्र के प्रति सोमरस अर्पित होने, गाय के रूप में इन्द्र का स्मरण करके उसका आह्वान होने, इन्द्र से सम्बन्ध रखने वाले त्वष्टा, पर्जन्य, बृहस्पति एवं अदिति का आह्वान होने और इन्द्र नाम से राजा, सेनापति आदि का भी वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्वदशति के विषय के साथ संगति है।।

## अष्टमी दशतिः

**ऋषिः—१, २, ७, ८ वसिष्ठः; ३ पौर आत्रेयः; ४ प्रस्कण्वः; ५ मेधातिथिमेध्यातिथी; ६ देवातिथिः; ९ नृमेधः; १० नोधाः॥ देवता—१ उषा; २, ३ अश्विनौ; ४-१० इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में देवता उषा है। इसमें उषा के आविर्भाव का वर्णन है।

**३०३. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः। अपो मही**
**वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी॥१॥**

**पदार्थ** :–( **आयती** ) आती हुई, ( **उच्छन्ती** ) उदित होती हुई ( **दिवः दुहिता** ) द्यौ-लोक की पुत्री उषा ( **प्रति अदर्शि उ** ) दिखाई दी है। ( **मही** ) महती यह उषा ( **चक्षुषा** ) दर्शनप्रदान से ( **तमः** ) अन्धकार को ( **अप उ वृणुते** ) दूर कर रही है। ( **सूनरी** ) सुनेत्री यह उषा ( **ज्योतिः** ) ज्योति को ( **कृणोति** ) उत्पन्न कर रही है॥१॥

इस मन्त्र में स्वभावोक्ति अलंकार है, और प्राकृतिक उषा के वर्णन से आध्यात्मिक उषा का वर्णन ध्वनित हो रहा है।

**भावार्थ** :–जैसे सूर्योदय से पूर्व व्याप्त घने रात्रि के अन्धकार को विच्छिन्न करता हुआ प्राकृतिक उषा का प्रकाश सर्वत्र फैल जाता है, वैसे ही परमात्मारूप सूर्य के उदय से पूर्व मनोभूमि में व्याप्त तामसिक वृत्तियों के जाल को विच्छिन्न कर आध्यात्मिक उषा का प्रकाश आत्मा में फैलता है। यह उषा योगमार्ग में ऋतम्भरा प्रज्ञा के नाम से प्रसिद्ध है॥१॥

अगले दो मन्त्रों का देवता 'अश्विनौ' है। इस मन्त्र में अश्विनौ के नाम से परमात्मा-जीवात्मा और अध्यापक-उपदेशक की स्तुति की गयी है।

**३०४. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना। अयं**
**वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः॥२॥**

**पदार्थ** :–हे ( **अश्विनौ** ) परमात्मा और जीवात्मा अथवा अध्यापक-उपदेशको! ( **उस्रा वाम्** ) आप निवासकों को ( **इमाः उ** ) ये ( **दिविष्टयः** ) ज्ञान-प्रकाश को चाहने वाली प्रजाएँ ( **हवन्ते** ) पुकार रही हैं। हे ( **शचीवसू** ) कर्मरूप और प्रज्ञारूप धन वालो! ( **अयम्** ) यह मैं भी ( **अवसे** ) रक्षा के लिए ( **वाम्** ) तुम्हें ( **अह्वे** ) पुकार रहा हूँ, ( **हि** ) क्योंकि, तुम ( **विशं विशम्** ) प्रत्येक प्रजा के पास ( **गच्छथ** ) जाते हो॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे परमात्मा और जीवात्मा मनुष्यों का मार्गदर्शन

करते हैं, वैसे ही अध्यापक और उपदेशक भी शिक्षा और उपदेश के द्वारा सदाचार का मार्ग दर्शाते हैं। अतः उनकी संगति सबको करनी चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया है कि किस कारण से उक्त अश्वी तप्त या रुष्ट होते हैं।

**३०५. कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः।**
**घ्नता वामश्नया क्षपमाणोऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**देवा**) दानादि गुणों से युक्त, तेज से प्रकाशमान (**अश्विना**) परमात्मा-जीवात्मा और अध्यापक-उपदेशको! (**युवाम्**) तुम (**कु**) कहाँ (**स्थः**) हो? (**कः मर्त्यः**) कौन मनुष्य (**वाम्**) तुम्हें (**तपानः**) संतप्त करने वाला है? तुम कहाँ हो? प्रेरणा, शिक्षण या उपेदश क्यों नहीं करते हो? क्या रुष्ट हो? तुम्हारे रोष का क्या कारण है? आगे स्वयं ही उत्तर देता है–(**प्रथम**) परमात्मा-जीवात्मा के पक्ष में–(**अश्नया**) मन में व्याप्त, (**वाम् घ्नता**) तुम्हारे पास पहुँचने वाले (**अंशुना**) ज्ञान-कर्म-श्रद्धारूप सोमरस से (**क्षपमाणः**) तुम्हें वंचित करने वाला ही तुम्हारा संतापक है। (**द्वितीय**) अध्यापक-उपदेशक के पक्ष में–(**अश्नया**) भूख से (**घ्नता**) पीड़ित (**वाम्**) तुम्हें (**अंशुना**) भोजन, वस्त्र, वेतन आदि देयांश से (**क्षपमाणः**) वंचित करने वाला ही तुम्हारा संतापक है। आगे (**उभयपक्ष**) में–(**इत्थम् उ**) ऐसा ही है न ? (**आत् उ**) अथवा (**अन्यथा**) इससे भिन्न अन्य ही कोई तुम्हारे संताप और रोष का कारण है? अभिप्राय यह है कि अन्य कोई कारण नहीं हो सकता।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।

**भावार्थ** :–परमात्मा और जीवात्मा रूप अश्वी सदा मनुष्यों के हृदय में बैठे हुए हैं। जो ज्ञान, कर्म, श्रद्धा, भक्ति आदि का सोमरस यथायोग्य उन्हें अर्पित करता है, उसे वे सदा सत्प्रेरणा देते रहते हैं। पर जो उनकी उपेक्षा करता है उससे वे रुष्ट के समान हो जाते हैं। इसी प्रकार जो शिक्षण और उपदेशों से उपकार करने वाले अध्यापक और उपदेशक को दक्षिणारूप में भोजन-वस्त्र आदि अथवा निश्चित वेतन नहीं

देता वह उनके प्रति अपराध करता है।।३।।

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा से अधिष्ठित आत्मा और मनरूप अथवा इन्द्र राजा से अधिष्ठित अध्यापक और उपदेशकरूप अश्विनों से याचना की गयी है।

**३०६. अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टिषु। तमश्विना**
**पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे॥४॥**

**पदार्थ** :–हे **(अश्विना)** आत्मा और मन रूप अथवा अध्यापक और उपदेशक रूप अश्वी देवो! **(दिविष्टिषु)** अध्यात्म-दीप्ति के यज्ञों में अथवा व्यवहार-यज्ञों में **(अयम्)** यह **(मधुमत्तमः)** अत्यन्त मधुर **(सोमः)** ज्ञान, कर्म, श्रद्धा, शान्ति आदि का रस अथवा सोमादि ओषधियों का रस **(वाम्)** तुम्हारे लिए **(सुतः)** मैंने तैयार किया है। **(तिरोअह्न्यम्)** पवित्रता में दिन को भी तिरस्कृत करने वाले अर्थात् उज्ज्वल दिन से भी अधिक पवित्र **(तम्)** उस रस को, तुम **(पिबतम्)** पान करो, और **(दाशुषे)** देने वाले मुझ यजमान के लिए **(रत्नानि)** उत्कृष्ट प्रेरणा, उत्कृष्ट संकल्प, उत्कृष्ट शिक्षा, उत्कृष्ट उपदेश आदि बहुमूल्य रमणीय धन **(धत्तम्)** प्रदान करो।।४।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।

**भावार्थ** :–मन के शिवसंकल्पपूर्वक जीवात्मा जिस ज्ञान, कर्म, श्रद्धा, भक्ति आदि को परमात्मा के प्रति अर्पण की बुद्धि से करता है, वह बहुत फलदायक होता है। उसी प्रकार राष्ट्र में अध्यापक और उपदेशक के यथायोग्य सत्कार से उनके पास से बहुत अधिक ज्ञान, विज्ञान आदि प्राप्त किया जा सकता है।।४।।

अगला मन्त्र इन्द्र परमात्मा को सम्बोधित किया गया है।

**३०७. आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या। भूर्णिं**
**मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥५॥**

**पदार्थ** :–हे इन्द्र परमात्मन्! **(सोमस्य)** शान्तरस के

(गल्दया) प्रवाह के साथ (ज्या) जिह्वा द्वारा (त्वा) तुझसे (सदा) हमेशा (याचन्) याचना करता हुआ (अहम्) मैं (सवनेषु) बहुत-से घृत द्वारा सिद्ध होने वाले यज्ञों में (भूर्णिम्) अपने दूध-घी से भरण-पोषण करने वाले (मृगम् न) गाय पशु के समान (सवनेषु) जीवन-यज्ञों में (भूर्णिम्) भरण-पोषण-कर्ता तथा (मृगम्) मन को शुद्ध करने वाले तुझे मैं (न आचुक्रुधम्) क्रुद्ध न करूँ। सदा याचना से दाता क्रुद्ध क्यों न हो जाएगा, इसका उत्तर देते हैं—(ईशानम्) स्वामी से (कः) कौन (न याचिषत्) याचना नहीं करता॥५॥

इस मन्त्र में 'भूर्णिं मृगं न सवनेषु' में श्लिष्टोपमालङ्कार है। 'न' उपमार्थक तथा निषेधार्थक दोनों हैं। जब 'मृगं' से सम्बद्ध होता है तब बाद में प्रयुक्त होने के कारण उपमार्थक है, और जब 'सवनेषु' से सम्बद्ध होता है तब पहले प्रयुक्त होने के कारण निषेधार्थक है। अभिप्राय यह है कि जैसे यज्ञ में बार-बार दूध-घी माँगने पर भी गाय क्रुद्ध नहीं होती, ऐसे ही मेरे बार-बार माँगने से आप क्रुद्ध न हों। 'कः ईशानम् न याचिषत्—स्वामी से कौन नहीं माँगता' इस सामान्य से अपने माँगने रूप विशेष का समर्थन होने से यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

**भावार्थ** :—बार-बार भी याचना करके जगदीश्वर से सद्गुण, सदाचार आदि सबको प्राप्त करने चाहिएँ॥५॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा के लिए शान्तरस को प्रवाहित करने के लिए कहा गया है।

**३०८. अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति। उपो**
**नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (अध्वर्यो) अध्यात्म-यज्ञ के अध्वर्यु मेरे मन! (त्वम्) तू (सोमम्) शान्तरस को (आ द्रावय) चारों ओर से प्रवाहित कर, (इन्द्रः) आत्मा (पिपासति) उसका प्यासा है। (नूनम्) मानो, (वृत्रहा) शान्ति के बाधक अशान्त विचारों के हन्ता परमात्मा ने भी, तेरे अध्यात्म-यज्ञ में आने के लिए (वृषणा) बलवान् (हरी) वेग से ले जाने वाले घोड़ों को

(**उपो युयुजे**) रथ में नियुक्त कर लिया है, और साथ ही साथ (**आजगाम च**) वह आ भी गया है॥६॥

इस मन्त्र में उत्प्रेक्षालंकार है। 'नूनम्' शब्द उत्प्रेक्षावाचक है। कहा भी है—'मन्ये, शङ्के, ध्रुवम्, प्रायः, नूनम्, इव आदि शब्द उत्प्रेक्षावाचक होते हैं।' शरीररहित परमात्मा का रथ में घोड़ों को नियुक्त करना असंभव होने से 'मानो घोड़ों को नियुक्त किया है' इस रूप में उत्प्रेक्षा की गयी है। साथ ही 'आत्मा शान्तिरस का प्यासा है' इस कारण द्वारा शान्तरस-प्रवाह करने रूप कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार भी है। इसके अतिरिक्त 'घोड़ों को नियुक्त करते ही आ पहुँचा है' इस प्रकार कारण-कार्य की एक-साथ प्रतीति होने से अतिशयोक्ति अलंकार भी है॥६॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा को शान्तरस से तृप्त करने के लिए अपने मन को अध्वर्यु बनाकर सबको आन्तरिक शान्तियज्ञ का विस्तार करना चाहिए, क्योंकि शान्त आत्मा में ही परमात्मा का निवास होता है॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम द्वारा परमेश्वर, गुरु, राजा आदि से ऐश्वर्य की याचना की गयी है।

**३०९. अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः।**
**पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः॥७॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) उपास्य-उपासक के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमेश्वर! (**कनीयसः सतः**) आपकी अपेक्षा अल्प शक्ति और अल्प धन आदि वाले मुझे (**तत्**) वह आपके पास विद्यमान (**ज्यायः**) अत्यधिक प्रशस्त तथा अधिक महान् आध्यात्मिक एवं भौतिक धन और बल (**अभि आ भर**) प्राप्त कराओ। हे (**मघवन्**) प्रशस्त ऐश्वर्य वाले परमात्मन्! आप (**पुरूवसुः**) बहुत धनी (**बभूविथ**) हो, (**भरे-भरे च**) और प्रत्येक अन्तर्द्वन्द्व में, प्रत्येक देवासुर-संग्राम में, प्रत्येक संकट में विजयप्रदानार्थ (**हव्यः**) पुकारे जाने योग्य हो॥

(**द्वितीय**) गुरु-शिष्य के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) दोषविदारक तथा उपदेशप्रदायक आचार्यवर! (**कनीयसः सतः**) आयु और

विद्या में आपसे अत्यल्प मुझ अपने शिष्य को आप (**तत्**) उस अपने पास विद्यमान (**ज्यायः**) प्रशंसनीय तथा विशाल विद्या और व्रतपालन के भण्डार को (**अभि आ भर**) प्रदान करो, (**हि**) क्योंकि (**मघवन्**) हे ज्ञान-धन के धनी! आप (**पुरूवसुः**) अनेक विद्याओं में विशारद (**बभूविथ**) हो, (**भरे-भरे च**) और शिष्यों का प्रत्येक भार उठाने के निमित्त (**हव्यः**) ग्रहण करने योग्य हो।।

(**तृतीय**) राजा-प्रजा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) शत्रुविदारक सुखादिप्रदायक राजन्! (**कनीयसः सतः**) धन, शूरवीरता आदि में आपकी अपेक्षा बहुत कम मुझ प्रजाजन को (**तत्**) वह स्पृहणीय, प्रसिद्ध (**ज्यायः**) प्रशस्यतर तथा विशालतर, धन-धान्य, शस्त्रास्त्र, कला-कौशल, सुराज्य आदि ऐश्वर्य (**अभि आ भर**) प्रदान कीजिए। हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यशालिन्! आप (**पुरूवसुः**) बहुत-सी प्रजाओं को बसाने वाले (**बभूविथ**) हो, (**भरे भरे च**) और राष्ट्र के अन्दर तथा बाहर जो शत्रु हैं उनके साथ होने वाले प्रत्येक संग्राम में (**हव्यः**) पुकारे जाने योग्य हो।।७।।

नन्हे पात्र में बड़ी वस्तु नहीं समा सकती, अतः 'ज्यायः कनीयसः' में वैषम्य प्रतीत होने के कारण विषमालंकार व्यङ्ग्य है।।७।।

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास अत्यन्त प्रशस्त और अत्यन्त विशाल भौतिक तथा आध्यात्मिक धन, गुरु के पास प्रचुर विद्याधन तथा सच्चारित्र्य का धन और राजा के पास प्रभूत, चाँदी, सोने, धान्य, शस्त्रास्त्र, कलाकौशल, चिकित्सा-साधन आदि का धन है। वे अपने-अपने धन से हमें धनी करें।।७।।

अगले मन्त्र में यह वर्णित है कि धनस्वामियों को धन का व्यय कहाँ करना चाहिए।

**३१०. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमि-**
**द्दिधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम्॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**यत्**) यदि (**यावतः**) जितने धन के (**त्वम्**) आप स्वामी हैं (**एतावत्**) उतने धन

का (**अहम्**) मैं (**ईशीय**) स्वामी हो जाऊँ, तो हे (**रदावसो**) पवित्रताकारक धन वाले, अथवा दानियों को बसाने वाले परमात्मन्! मैं (**स्तोतारम्**) आपके स्तोता, पुण्यकर्ता मनुष्य को (**इत्**) ही (**दधिषे**) धन-दान से धारण करूँ, (**पापत्वाय**) पाप के लिए कभी (**न**) नहीं (**रंसिषम्**) दान करूँ॥८॥

**भावार्थ** :—धन पाकर किसी को कंजूस नहीं होना चाहिए, किन्तु उस धन का यथायोग्य सत्पात्रों में दान करना चाहिए। पर पाप-कार्य के लिए कभी धन-दान नहीं करना चाहिए॥८॥

अगले मन्त्र में परमात्मा वा राजा से शत्रुसंहार की प्रार्थना की गयी है।

**३११. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।**
**अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) शूरवीर परमात्मन् वा राजन्! (**त्वम्**) आप (**प्रतूर्तिषु**) झटापटी वाले देवासुर-संग्रामों में (**विश्वाः**) सब (**स्पृधः**) स्पर्धालु शत्रु-सेनाओं को (**अभि असि**) परास्त करते हो। आप (**अशस्तिहा**) अप्रशस्ति को दूर करने वाले, (**जनिता**) प्रशस्तिप्रद सद्गुणों और सच्चारित्र्यों को हृदय में वा राष्ट्र में उत्पन्न करने वाले, (**वृत्रतूः**) पाप वा पापियों की हिंसा करने वाले (**असि**) हो। (**त्वम्**) आप (**तरुष्यतः**) हिंसकों की (**तूर्य**) हिंसा करो॥९॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष और कारण से कार्य का समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'तूर्' की तीन बार आवृत्ति तथा तकार की ग्यारह बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है। परमात्मा और राजा का उपमानोपमेयभाव व्यङ्ग्य है॥९॥

**भावार्थ** :—जैसे परमात्मा मानस देवासुर-संग्रामों में काम, क्रोध आदि असुरों को परास्त कर, अप्रशस्ति को दूर कर, प्रशस्ति दिलाने वाले श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों को उत्पन्न कर, पापों का निर्मूलन कर स्तोता की कीर्ति का विस्तार करता है, वैसे ही राजा को भी राष्ट्र के अन्दर तथा बाहर के शत्रुओं का उन्मूलन करके, राष्ट्र की अप्रशस्ति का निवारण करके,

प्रजाओं में सद्गुणों और सदाचार का प्रचार करके सुप्रबन्ध द्वारा कीर्ति उत्पन्न करनी चाहिए॥९॥

अगले मन्त्र में इन्द्र की महिमा का वर्णन है।

**३१२. प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सदोभ्यस्परि। न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! (**यः**) जो आप (**ओजसा**) बल और प्रताप से (**दिवः**) द्यो लोक के (**सदोभ्यः**) सदनों—सूर्य—तारामण्डल आदियों से (**परि**) ऊपर होकर (**प्र रिरिक्षे**) महिमा में उनसे बढ़े हुए हो, (**त्वा**) ऐसे आपको (**पार्थिवं रजः**) पार्थिव लोक भी (**न विव्याच**) नहीं छल सकता है, अर्थात् महिमा में पराजित नहीं कर सकता है। सचमुच आप (**विश्वम् अति**) सारे विश्व को अतिक्रमण करके (**ववक्षिथ**) महान् हो॥१०॥

**भावार्थ** :—परमात्मा का बल, महत्त्व, प्रताप और प्रभाव द्यावापृथिवी आदि सारे ब्रह्माण्ड से अधिक है॥१०॥

इस दशति में प्राकृतिक उषा के वर्णन द्वारा आध्यात्मिक उषा के आविर्भाव को सूचित कर, अश्विनौ के नाम से परमात्मा–जीवात्मा, आत्मा–मन और अध्यापक–उपदेशक का स्तवन कर, इन्द्र नाम से जगदीश्वर की स्तुति करके उससे धन, शत्रुविनाश आदि की प्रार्थना कर उसकी महिमा का वर्णन होने से और इन्द्र नाम से राजा, सेनापति आदि के भी कर्तव्यों का बोध कराने से इस दशति के विषय की पूर्वदशति के विषय के साथ संगति जाननी चाहिए॥

## नवमी दशतिः

**ऋषिः—१, २, ६ वसिष्ठः; ३ गातुः; ४ पृथुर्वैन्यः; ५ सप्तगुः; ७ गौरिवीतिः; ८ वेनो भार्गवः; ९ बृहस्पतिर्नकुलो वा; १० सुहोत्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर को श्रद्धारस अर्पण करने का वर्णन है।

**३१३. असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषे-मुवोच। बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु॥१॥**

**पदार्थ** :—हमारे द्वारा **(देवम्)** दीप्तियुक्त, तेजस्वी **(गोऋजीकम्)** इन्द्रियरूप गौओं की सरलगामिता में हेतुभूत **(अन्धः)** श्रद्धारस **(असावि)** अभिषुत कर लिया गया है। **(अस्मिन्)** इसमें **(इन्द्रः)** परमेश्वर **(जनुषा ईम्)** स्वभावतः ही **(नि उवोच)** अतिशय सम्बद्ध हो गया है। हे **(हर्यश्व)** वेगवान् भूमि, चन्द्र, विद्युत् आदि व्याप्त पदार्थों के स्वामी परमात्मन्! हम **(यज्ञैः)** योगाभ्यासरूप यज्ञों से **(त्वा)** आपको **(बोधामसि)** जानते हैं, आप **(अन्धसः)** आनन्द रस की **(मदेषु)** तृप्तियों में **(नः)** हमें **(बोध)** जानिये॥१॥

**इस मन्त्र में इन्द्र तथा उसके स्तोताओं द्वारा** परस्पर एक **बोधनरूप क्रिया किये जाने का वर्णन होने से अन्योन्य अलंकार है। 'बोधा'** की एक बार आवृत्ति में यमक तथा 'मन्धो, मन्ध' में छेकानुप्रास है।

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना से योगाभ्यासी मनुष्य की इन्द्रियाँ सरल मार्ग पर चलने वाली हो जाती हैं। इसलिए सबको श्रद्धापूर्वक परमेश्वर की अर्चना करनी चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर और राजा को सम्बोधित किया गया है।

**३१४. योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि। असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः॥२॥**

**पदार्थ** :—**(प्रथम)** परमेश्वर के पक्ष में। हे **(इन्द्र)** दुःखविदारक सुखप्रद परमेश्वर! **(ते)** आपके **(सदने)** बैठने के निमित्त **(योनिः)** हृदय-गृह **(अकारि)** हमने संस्कृत कर लिया है। हे **(पुरुहूत)** बहुस्तुत! **(तम्)** उस हृदय-गृह में

(**नृभिः**) उन्नति कराने वाले सत्य, अहिंसा, दान, उदारता आदि गुणों के साथ (**आ प्र याहि**) आप आइए, (**यथा**) जिससे, आप (**नः**) हमारे (**अविता**) रक्षक और (**वृधः चित्**) वृद्धिकर्ता भी (**असः**) होवें, (**वसूनि**) आध्यात्मिक एवं भौतिक धनों को (**ददः**) देवें, (**च**) और (**सोमैः**) शान्तियों से (**ममदः**) हमें आनन्दित करें।।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) शत्रुविदारक शान्तिप्रदाता राजन्! (**ते**) आपके (**सदने**) बैठने के निमित्त (**योनिः**) सिंहासन (**अकारि**) बनाया गया है। हे (**पुरुहूत**) बहुत-से प्रजाजनों द्वारा निर्वाचित राजन्! आप (**नृभिः**) नेता राज्याधिकारियों के साथ (**आ**) आकर (**प्रयाहि**) विराजिए, (**यथा**) जिससे, आप (**नः**) हम प्रजाओं के (**अविता**) रक्षक और (**वृधः चित्**) उन्नतिकर्ता भी (**असः**) होवें, (**वसूनि**) धनों को (**ददः**) देवें, (**च**) और (**सोमैः**) शान्तियों से (**ममदः**) **हम प्रजाजनों को आनन्दित करें।।२।।**

**इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।।२।।**

**भावार्थ :–परमेश्वर हृदयासन** पर और राजा सिंहासन पर बैठकर सबको आध्यात्मिक तथा भौतिक रक्षा, वृद्धि, सम्पदा और शान्ति प्रदान कर सकते हैं।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर के वर्षा आदि तथा मुक्तिप्रदानरूपी कार्य का वर्णन है।

**३१५. अदर्दरुत् समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ**
**अरम्णाः। महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा**
**अव यद्दानवान् हन्॥३॥**

**पदार्थ :–(प्रथम)**। हे (**इन्द्र**) परमेश्वर! (**त्वम्**) सकलसृष्टि के व्यवस्थापक आप, अपने द्वारा रचित सूर्य को साधन बनाकर (**उत्सम्**) जल के आधार बादल का (**अदर्दः**) विदारण करते हो, (**खानि**) उसके बन्द छिद्रों को (**वि असृजः**) खोल देते हो। (**बद्बधानान्**) न बरसने वाले बादल में दृढ़ता से बँधे हुए (**अर्णवान्**) जल के पारावारों को (**अरम्णाः**) छोड़ देते

हो। इस प्रकार वृष्टिकर्म के वर्णन के बाद पहाड़ों से जलधाराओं के प्रवाह का वर्णन है। (**यत्**) जब (**महान्तम्**) विशाल (**पर्वतम्**) बर्फ के पर्वत को (**विवः**) पिघला देते हो और (**यत्**) जब (**दानवान्**) जल-प्रवाह में बाधक शिलाखण्ड आदियों को (**हन्**) दूर करते हो, तब (**धाराः**) नदियों की धाराओं को (**अव सृजत्**) बहाते हो।।

इससे राजा का विषय भी सूचित होता है। जैसे परमेश्वर वा सूर्य वृष्टि-प्रतिबन्धक मेघ को विदीर्ण कर उसमें रुकी हुई जलधाराओं को प्रवाहित करते हैं, वैसे ही राजा भी राष्ट्र की उन्नति में प्रतिबन्धक शत्रुओं को विदीर्ण कर उनसे अवरुद्ध ऐश्वर्य की धाराओं को प्रवाहित करे।

(**द्वितीय**) । हे (**इन्द्र**) परमेश्वर! (**त्वम्**) आप (**उत्सम्**) ज्ञान के रुके हुए स्रोत को (**अदर्दः**) खोल देते हो, (**खानि**) अन्तरात्मा से पराङ्मुख हुई बहिर्मुख इन्द्रियों को (**वि-असृजः**) **बाह्य विषयों से पृथक् कर देते हो**, (**बद्बधानान्**) आनन्दमय कोशों में रुके हुए (**अर्णवान्**) आनन्द के पारावारों को (**अरम्णाः**) मनोमय आदि कोशों में फव्वारे की तरह छोड़ देते हो। (**यत्**) जब, आप (**महान्तम्**) विशाल (**पर्वतम्**) योगमार्ग में विघ्नभूत व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदियों के पहाड़ को (**विवः**) विदीर्ण कर देते हो, और (**यत्**) जब (**दानवान्**) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूप दानवों को (**हन्**) विनष्ट कर देते हो, तब (**धाराः**) कैवल्य प्राप्त कराने वाली धर्ममेघ समाधि की धाराओं को (**अव सृजत्**) प्रवाहित करते हो।।३।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।

**भावार्थ** :—परमेश्वर जैसे वर्षा करना, नदियों को बहाना आदि प्राकृतिक कार्य सम्पन्न करता है, वैसे ही योगाभ्यासी मुमुक्षु मनुष्य के योगमार्ग में आये हुए विघ्नों को निवारण कर उसकी आत्मा में आनन्द की वृष्टि करके उसे मोक्ष भी प्रदान करता है।।३।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से याचना की गयी है।

**३१६. सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम्। आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्याम त्वोताः॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**तुविनृम्ण**) बहुत बली और बहुत धनी (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**सुष्वाणासः**) श्रद्धारस को अभिषुत किये हुए हम (**वाजम्**) आत्मबल और अध्यात्मधन को (**सनिष्यन्त**) पाना चाहते हुए (**त्वा**) तेरी (**स्तुमसि**) स्तुति करते हैं। तू (**नः**) हमें (**सुवितम्**) सद्गति और उत्कृष्ट प्रजा (**आ भर**) प्रदान कर, (**यस्य**) जिसकी (**नः**) हमें (**कोना**) कामना है। (**त्वोताः**) तुझ से रक्षित हम (**त्मना**) आत्मबल द्वारा (**तना**) इधर-उधर फैले शत्रुओं को (**सह्याम**) परास्त कर दें।।४।।

**भावार्थ** :—आत्मा, मन, प्राण, शरीर आदि का बल और आत्मिक एवं सांसारिक धन पाने के लिए अनन्त बल और अपार धन वाले परमेश्वर से ही हमें याचना करनी चाहिए। उसी की कृपा से हम उत्तम गति और उत्तम प्रजा को पाने तथा शत्रु का पराजय करने में समर्थ होते हैं।।४।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**३१७. जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम्। विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**वसूनां वसुपते**) समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक ऐश्वर्यों के अधिपति (**इन्द्र**) परमात्मन्, राजन् और आचार्य! (**वसूयवः**) धन, धान्य, राज्य, विद्या, शम, दम, वैराग्य आदि ऐश्वर्यों की कामना वाले हम (**ते**) आपके (**दक्षिणं हस्तम्**) दाहिने हाथ को अर्थात् आपकी शरण को (**जगृह्म**) पकड़ रहे हैं। हे (**शूर**) दानवीर परमात्मन् राजन् और आचार्य! हम (**त्वा**) आपको (**गोनां गोपतिम्**) समस्त

वाणी, इन्द्रिय, गाय, भूमि आदियों का स्वामी (**विद्म**) जानते हैं। आप (**अस्मभ्यम्**) हमें (**चित्रम्**) गुण आदि में अद्भुत, (**वृषणम्**) व्यक्ति, समाज, राष्ट्र वा जगत् में सुख की वर्षा करने वाला (**रयिम्**) ऐश्वर्य (**दाः**) प्रदान कीजिए।।५।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है।।५।।

**भावार्थ** :—परमात्मा, राजा और आचार्य यथायोग्य अनेक प्रकार के धन, धान्य, विद्या, आरोग्य, सत्य, अहिंसा, शम, दम, योगसिद्धि, चक्रवर्ती राज्य, मोक्ष आदि ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। उनकी शरण में जाकर हम भी इन ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।।५।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**३१८. इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः।**
**शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः॥६॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रम्**) वीर परमात्मा वा राजा को (**नरः**) प्रजाजन (**नेमधिता**) आन्तरिक वा बाह्य संग्राम में और यज्ञ में (**हवन्ते**) सहायतार्थ पुकारते हैं। (**पार्याः**) पार होने योग्य वे, आन्तरिक और बाह्य विघ्नों को पार करने के लिए (**यत्**) जिस साधन का (**युनजते**) उपयोग करते हैं (**ताः**) वे (**धियः**) बुद्धियाँ और कर्म हैं, अर्थात् बुद्धि और कर्म का अवलम्बन करके वे सब शत्रुओं और विघ्नों को पार करते हैं। हे परमात्मन् वा राजन्! (**शूरः**) शूरवीर (**त्वम्**) आप (**नृषाता**) संग्राम में (**यशसः च**) और यश की (**कामे**) अभिलाषा-पूर्ति में, और (**गोमति व्रजे**) प्रशस्त भूमि, वाणी, इन्द्रिय, दुधारु गायों आदि के समूह में (**नः**) हमें (**आ भज**) भागी बनाइए, अर्थात् आप हमारी यशस्वी होने की कामना को पूर्ण कीजिए तथा हमें पृथिवी का राज्य, वाणी का बल, इन्द्रियों का बल और उत्तम जाति की गायें आदि प्राप्त कराइए।।६।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है।।६।।

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा, राजा की सहायता एवं

अपने बुद्धिकौशल तथा पुरुषार्थ से शत्रुविजय, परम कीर्ति, भूमण्डल का साम्राज्य आदि सब अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं॥६॥

अगले मन्त्र में पहेली द्वारा बहुत-से अर्थों का वर्णन है।

**३१९. वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः। अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्द्धि चक्षुर्मुमुग्ध्या३स्मान्निधयेव बद्धान्॥७॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) सूर्य और सूर्य-किरणों के पक्ष में। (**सुपर्णाः वयः**) सुन्दर पंखों वाले पक्षियों के समान सुन्दर उड़ान लेने वाली सूर्य-किरणें, मानो (**इन्द्रम्**) सूर्य के (**उपसेदुः**) समीप पहुँचती हैं। (**प्रियमेधाः**) बुद्धि बढ़ाना अथवा प्रकाशप्रदानरूप यज्ञ करना जिन्हें प्रिय है ऐसी (**ऋषयः**) दर्शन में सहायक वे (**नाधमानाः**) मानो याचना करती हैं कि हे सूर्य (**निधया इव**) मानो जाल से (**बद्धान्**) बँधी हुई (**अस्मान्**) हमें आप (**मुमुग्धि**) छोड़ दो, हमारे द्वारा (**ध्वान्तम्**) अन्धकार के आवरण को (**अप-ऊर्णुहि**) परे हटा दो, और (**चक्षुः**) प्राणियों की आँख को (**पूर्धि**) प्रकाश से पूर्ण कर दो॥

(**द्वितीय**) आचार्य और शिष्यों के पक्ष में। (**सुपर्णाः**) ज्ञान, कर्म, उपासना रूप सुन्दर पंखों वाले, (**वयः**) उड़ने में समर्थ पक्षियों के समान पढ़ी हुई विद्या के प्रचार में समर्थ शिष्यगण (**इन्द्रम्**) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य के (**उपसेदुः**) समीप पहुँचते हैं। (**प्रियमेधाः**) मेधा और यज्ञ से प्रीति रखने वाले, (**ऋषयः**) वेदादि शास्त्रों के द्रष्टा होते हुए वे (**नाधमानाः**) आचार्य से याचना करते हैं कि (**निधया इव बद्धान्**) मानो जाल से बाँधकर इस गुरुकुल में रखे हुए (**अस्मान्**) हमें, आप (**मुमुग्धि**) बाहर जाने के लिए छोड़ दीजिए, (**ध्वान्तम्**) संसार में फैले हुए अविद्या के अन्धकार को, (**अप-ऊर्णुहि**) हमारे द्वारा हटा दीजिए, और लोगों में (**चक्षुः**) ज्ञान के प्रकाश को (**पूर्धि**) भर दीजिए॥

(**तृतीय**) परमात्मा और जीवात्मा के पक्ष में। (**सुपर्णाः**) ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि रूप सुन्दर पंखों वाले (**वयः**) पक्षियों के तुल्य जीवात्मा (**इन्द्रम्**) परमेश्वर के (**उपसेदुः**) पास पहुँचते हैं। (**प्रियमेधा**) बुद्धि अथवा यज्ञ के प्रेमी, (**ऋषयः**) पदार्थों का दर्शन करने वाले वे (**नाधमानाः**) परमात्मा से याचना करते हैं कि हमारे (**ध्वान्तम्**) तमोगुण के आवरण को (**अप-ऊर्णुहि**) हटा दो, और हमारे अन्दर (**चक्षुः**) ज्ञानप्रकाश को (**पूर्धि**) भर दो। (**निधया इव**) जाल के तुल्य जन्म, जरा, मरण आदि से (**बद्धान्**) शरीर या संसार में बँधे हुए (**अस्मान्**) हमें (**मुमुग्धि**) मुक्त कर दो, मोक्ष प्रदान कर दो।।

(**चतुर्थ**) राजा और प्रजा के पक्ष में। (**सुपर्णाः**) विविध साधनरूप शुभ पंखों वाले (**वयः**) कर्मण्य प्रजाजन (**इन्द्रम्**) **परमैश्वर्यवान्** और वीर राजा के (**उपसेदुः**) समीप पहुँचते हैं। (**प्रियमेधा**) मेधाप्रिय एवं यज्ञप्रिय, (**ऋषयः**) दृष्टिसम्पन्न, प्रबुद्ध वे (**नाधमानाः**) राजा से याचना करते हैं कि (**ध्वान्तम्**) राष्ट्र में व्याप्त अविद्या, भ्रष्टाचार आदि के अन्धकार को (**अप-ऊर्णुहि**) हटा दीजिए, हमारे अन्दर (**चक्षुः**) सद्विज्ञान, सद्विचार, सदाचार आदि का प्रकाश (**पूर्धि**) भर दीजिए। (**निधया इव**) मानो पापों और दुर्व्यसनों के जाल से (**बद्धान्**) बँधे हुए (**अस्मान्**) हम प्रजाजनों को (**मुमुग्धि**) श्रेष्ठ शिक्षा, दण्ड आदि उपायों द्वारा पापों और दुर्व्यसनों से छुड़ा दीजिए।।७।।

इस मन्त्र में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। अप्रस्तुत सूर्य तथा रश्मियों के वृत्तान्त से प्रस्तुत गुरु-शिष्य, परमात्मा-जीवात्मा और राजा-प्रजा का वृत्तान्त सूचित हो रहा है। 'निधयेव बद्धान्—मानो जाल में बँधे हुए' में उत्प्रेक्षा है।।७।।

**भावार्थ** :—कवि उत्प्रेक्षा कर रहा है कि रात्रि में सूर्य-किरणें जाल में बँधे पक्षियों के समान मानो सूर्यमण्डल के अन्दर बद्ध हो जाती हैं, तब वे मानो सूर्य से याचना करती हैं कि हमें छोड़ दो, जिससे हम भूतल पर जाकर अँधेरा मिटाकर सर्वत्र प्रकाश फैला दें। इसी प्रकार विद्याध्ययन किये हुए शिष्य आचार्य से याचना करते हैं कि आप हमें गुरुकुल से

मुक्त कर दीजिए, जिससे बाहर जाकर हम संसार में फैले हुए अविद्या के अँधेरे को मिटाएँ। जीवात्मा-गण परमात्मा से याचना करते हैं कि ज्ञान की सलाई से हमारी चक्षु को दोषमुक्त करके जन्म, जरा, मरण आदि से बँधे हुए हमें मोक्ष का अधिकारी बना दीजिए। प्रजाजन राजा से याचना करते हैं कि राष्ट्र में व्याप्त अज्ञान, दुराचार आदि के अन्धकार को विच्छिन्न कर राष्ट्र को पतन की ओर ले जाने वाले सब दुर्व्यसनों से हमें छुड़ा दीजिए।।७।।

अगले मन्त्र में सूर्य के दृष्टान्त से परमात्मा के गुण वर्णन करते हुए उसके दर्शन का उपाय कहा गया है।

**३२०. नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्॥८॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन्! (**नाके**) आत्मलोक में (**उपपतन्तम्**) पहुँचते हुए, (**हिरण्यपक्षम्**) ज्योतिरूप पंखों वाले, (**वरुणस्य दूतम्**) पापनिवारक मन के प्रेरक, (**यमस्य**) शरीरस्थ इन्द्रियों के नियामक जीवात्मा के (**योनौ**) हृदयरूप गृह में उदित, (**शकुनम्**) शक्तिशाली, (**भुरण्युम्**) धारक और पोषक, (**सुपर्णम्**) शुभ पालनगुणों से युक्त (**त्वा**) आपको (**यत्**) जब, स्तोता जन (**वेनन्तः**) सच्ची कामना करते हैं, तब वे (**हृदा**) मन से (**अभ्यचक्षत**) आपका साक्षात्कार कर लेते हैं, जैसे (**नाके**) मध्याह्नाकाश में (**उपपतन्तम्**) जाते हुए (**हिरण्यपक्षम्**) किरणरूप सुनहरे पंखों वाले, (**वरुणस्य दूतम्**) रोगनिवारक अन्तरिक्षस्थानीय वायु के (**दूतम्**) दूत के समान उपकारक (**यमस्य**) रथ, यन्त्र आदियों को नियन्त्रित करने वाले वैद्युत अग्नि के (**योनौ**) गृहरूप अन्तरिक्ष में (**शकुनम्**) पक्षी के समान विद्यमान, (**भुरण्युम्**) भ्रमणशील (**सुपर्णम्**) सूर्य को, लोग (**अभ्यचक्षत**) आँख से देखते हैं।।८।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार और उपमाध्वनि है।।८।।

**भावार्थ** :—जो मनुष्य उत्कण्ठापूर्वक परमेश्वर की कामना

करते हैं वे मन द्वारा उसका वैसे ही साक्षात्कार कर लेते हैं, जैसे आँख से सूर्य को देखते हैं॥८॥

अगले मन्त्र में सूर्य तथा परमेश्वर के महान् कार्य का वर्णन किया गया है।

**३२१. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥९॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) सूर्य के पक्ष में। ( **प्रथमम्** ) श्रेष्ठ ( **ब्रह्म** ) महान् आदित्यरूप ज्योति ( **पुरस्तात्** ) पूर्व दिशा में ( **जज्ञानम्** ) प्रकट हो रही है। ( **वेनः** ) कान्तिमान् सूर्य ने ( **सीमतः** ) चारों ओर अथवा मर्यादापूर्वक ( **सुरुचः** ) सम्यक् रोचमान किरणों को ( **वि आवः** ) रात्रि के अन्धकार के अन्दर से आविर्भूत कर दिया है। ( **सः** ) वह सूर्य ( **उपमाः** ) सबके समीप स्थित ( **अस्य** ) इस जगत् की ( **विष्ठाः** ) विशेष रूप से स्थितिसाधक ( **बुध्न्याः** ) अन्तरिक्षवर्ती दिशाओं को ( **विवः** ) अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है, और ( **सतः च** ) व्यक्त अर्थात् कार्यरूप में परिणत, ( **असतः** ) और कारण के अन्दर अव्यक्तरूप से विद्यमान पदार्थ :—समूह के ( **योनिम्** ) गृहरूप भूमण्डल को ( **विवः** ) प्रकाशित करता है॥

( **द्वितीय** ) परमात्मा के पक्ष में। ( **प्रथमम्** ) श्रेष्ठ ( **ब्रह्म** ) जगत् का आदिकारण ब्रह्म ( **पुरस्तात्** ) पहले, सृष्टि के आदि में ( **जज्ञानम्** ) प्रकृति के गर्भ से महत् आदि जगत्प्रपञ्च का जनक हुआ। ( **वेनः** ) मेधावी उस परब्रह्म ने ( **सीमतः** ) मर्यादा से अर्थात् महदादि क्रम से व्यवस्थापूर्वक ( **सुरुचः** ) सुरोचमान पदार्थों को ( **वि आवः** ) उत्पन्न किया। ( **सः** ) उसी परब्रह्म ने ( **उपमाः** ) समीपता से धारण तथा आकर्षण की शक्तियों द्वारा एक–दूसरे को स्थिर रखने वाले, और ( **अस्य** ) इस जगत् के ( **विष्ठाः** ) विशेष रूप से स्थिति के निमित्त ( **बुध्न्याः** ) आकाशस्थ सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, तारे आदि लोकों को ( **विवः** ) प्रकाशित किया। उसी ने ( **सतः च** ) व्यक्त भूमि, जल, अग्नि,

पवन आदि (असतः च) और अव्यक्त महत्, अहंकार, पंचतन्मात्रा आदि की (योनिम्) कारणभूत प्रकृति को (विवः) कार्य पदार्थों के रूप में प्रकट किया॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'सतश्च-सतश्च' की एक बार आवृत्ति में यमक है॥९॥

**भावार्थ** :—कान्तिमान् सूर्य पूर्व दिशा में प्रकट होता हुआ अपनी सुप्रदीप्त किरणों को आकाश और भूमि पर प्रसारित करता हुआ सब दिशाओं को तथा सौर जगत् को प्रकाशित करता है। कान्तिमान् मेधावी परमेश्वर प्रकृति के मध्य से सुरोचमान पदार्थों को और सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, तारे आदि लोकों को प्रकट करता है। उस सूर्य का भलीभाँति उपयोग और उस परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना सबको करनी चाहिए॥९॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि कैसे परमात्मा के लिए कौन लोग कैसे स्तुतिवचनों को कहें।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**३२२. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।**
३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः॥१०॥**

**पदार्थ** :—(**अस्मै**) इस (**महे**) महान् (**वीराय**) वीर अथवा कामादि शत्रुओं के प्रकम्पक, (**तवसे**) बलवान् (**तुराय**) शीघ्र कार्यों को करने वाले इन्द्र परमेश्वर के लिए और (**अस्मै**) इस (**विरप्शिने**) विशेष रूप से वेदों के प्रवक्ता तथा विशेषरूप से स्तुतियोग्य, (**वज्रिणे**) वज्रधारी के समान दुष्टों को दण्ड देने वाले, (**स्थविराय**) प्रवृद्धतम चिरन्तन पुराण पुरुष इन्द्र परमेश्वर के लिए, स्तोता जन (**अपूर्व्या**) अपूर्व (**पुरुतमानि**) बहुत सारे (**शन्तमानि**) अतिशय शान्तिदायक (**वचांसि**) स्तोत्रों को (**तक्षुः**) रचते या प्रयुक्त करते हैं॥१०॥

इस मन्त्र में विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। 'तमान्-तमानि', 'वीराय-विराय' आदि में छेकानुप्रास और 'राय' की तीन बार आवृत्ति में तथा 'वीर-विर-विरा' में

वृत्त्यनुप्रास है॥१०॥

**भावार्थ** :—पुराण पुरुष परमेश्वर सबसे अधिक महान्, सबसे अधिक वीर, सबसे अधिक बली, सबसे अधिक शीघ्रकारी, सबसे अधिक स्तुतियोग्य, सबसे अधिक दुर्जनों का दण्डयिता, सबसे अधिक वयोवृद्ध, सबसे अधिक ज्ञानवृद्ध और सबसे अधिक प्राचीन है। वैदिक, स्वरचित और अन्य महाकवियों द्वारा रचित स्तोत्रों से उसकी पूजा सबको करनी चाहिए॥१०॥

इस दशति में इन्द्र को प्रबोधन देने, उसके गुण वर्णन करने, उसके द्वारा सृष्ट्युत्पत्ति आदि वर्णित करने, उसकी स्तुति करने तथा इन्द्र नाम से सूर्य, राजा, आचार्य आदि के कर्मों का वर्णन करने के कारण इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## दशमी दशतिः

**ऋषिः—१, २, ४ द्युतानः; ३ बृहदुक्थः; ५ वामदेवः; ६, ८ वसिष्ठ; ७ विश्वामित्रः; ९ गौरिवीतिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-५, ७-९ त्रिष्टुप्; ६ त्रिपदा विराडनुष्टुप्॥ स्वरः—१-५, ७-९ धैवतः; ६ गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में यह विषय है कि पापादि रूप असुरों से आक्रान्त जीवात्मा का कैसे उद्धार होता है।

**३२३. अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः। आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः॥१॥**

**पदार्थ** :—( द्रप्सः ) जल की बूँद के समान अणुरूप जीवात्मा ( अंशुमतीम् ) चक्षु आदि इन्द्रिय, प्राण और मन से युक्त देहपुरी में ( अव-अतिष्ठत् ) स्थित होता है, अर्थात् संचित कर्मों के फल भोगने के लिए और नवीन कर्म करने के लिए परमात्मा से प्रेरित होकर देहपुरी में आता है। ( कृष्णः ) काला तमोगुण ( दशभिः सहस्रैः ) दस हजार योद्धाओं के

साथ अर्थात् अपने-अपने गणों सहित अनेकों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि रिपुओं के साथ (इयानः) उस आत्मा पर आक्रमण कर देता है। तब (धमन्तम्) तरह-तरह की पैंतरेबाजी करते हुए अथवा साँस फेंकते हुए (तम्) सैन्यसहित उस काले तमोगुण पर (इन्द्रः) जीवात्मा का सहायक परमैश्वर्यवान् परमात्मा (शच्या) उत्कृष्ट ज्ञान वा कर्म के साथ (आवत्) झपटता है। तदनन्तर (नृमणाः) सज्जनों पर ध्यान व प्रेम रखने वाला वह परमात्मा (स्नीहितिम्) तमोगुण की उस हिंसक सेना को (अप) भगाकर, आत्मा में (राः) सद्गुणरूप सम्पत्तियों को (अधत्) आधान कर देता है। अभिप्राय यह है कि जब-जब देहधारी जीवात्मा पर तमोगुणरूप कृष्णासुर आक्रमण करता है, तब-तब इन्द्र परमात्मा उसका उससे उद्धार कर देता है॥१॥

**भावार्थ** :-देह में स्थित जीवात्मा को काम, क्रोध आदि अनेक दानव पीड़ित करना चाहते हैं, जिनका पराजय उसे अपने पुरुषार्थ द्वारा और परमात्मा की सहायता से करना चाहिए। तभी वह आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकता है॥१॥

इस मन्त्र पर सायण इस प्रकार ऐतिहासिक अर्थ लिखते हैं-"पहले कभी कृष्ण नामक असुर दस हजार असुरों के साथ अंशुमती नाम की नदी के किनारे ठहरा हुआ था। वहाँ जंगल के मध्य में स्थित उस कृष्णासुर के पास इन्द्र बृहस्पति के साथ पहुँचा। आकर उसने उस कृष्णासुर को और उसके अनुचरों को बृहस्पति की सहायता से मार डाला था।" यह सब वृत्तान्त अप्रामाणिक ही है, क्योंकि वेदों में लौकिक इतिहास नहीं है। इस इतिहास की यदि आध्यात्मिक, आधिदैविक, अधियज्ञ या अधिभूत व्याख्या की जाए तो संगति लग सकती है, जैसे हमने अपनी व्याख्या में आध्यात्मिक अर्थ की दिशा प्रपंचित की है।

अपनी मति से चारों वेदों का अंग्रेजी भाषा में टिप्पणीसहित अनुवाद करने वाले ग्रिफिथ महोदय ने इस मन्त्र पर टिप्पणी

में लिखा है कि यहाँ 'कृष्ण द्रप्स' अन्धकारावृत चन्द्रमा है, और अंशुमती अन्तरिक्ष की कोई रहस्यमय नदी है, दस हजार असुर अन्धकार-रूप दानव हैं, जिनके वध के पश्चात् चन्द्रमा अन्धकार से मुक्त हो जाता है। ग्रिफिथ का यह लेख आधिदैविक व्याख्या की ओर एक संकेत है।

अगले मन्त्र में यह विषय वर्णित है कि इन्द्र वृत्र की सेनाओं को कैसे जीते।

**३२४. वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः। मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि॥२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) जीवात्मा के पक्ष में। आन्तरिक देवासुरसंग्राम में अपने आत्मा को, जिसका साथ सबने छोड़ दिया है, अकेला देखकर कोई कह रहा है–(**वृत्रस्य**) तमोगुण के प्रधान हो जाने से उत्पन्न कामक्रोधादिरूप वृत्रासुर की (**श्वसथात्**) फुंकार से (**ईषमाणाः**) भयभीत हो पलायन करती हुई (**विश्वे देवाः**) सब चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियों ने (**त्वा**) तुझ आत्मा को (**अजहुः**) अकेला छोड़ दिया है, (**ये**) जो इन्द्रियाँ (**सखायः**) पहले तेरी मित्र बनी हुई थीं। हे (**इन्द्र**) जीवात्मन् (**मरुद्भिः**) प्राणों के साथ (**ते**) तेरी (**सख्यम्**) मित्रता (**अस्तु**) हो, (**अथ**) उसके अनन्तर, तू (**इमाः**) इन (**विश्वाः**) सब (**पृतनाः**) काम-क्रोध आदि शत्रुओं को (**जय**) जीत ले॥

इस प्रसंग में वृत्रवध के आख्यान में ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि –इन्द्र और उसके साथी वृत्र को मारने की इच्छा से दौड़े। उसने जान लिया कि ये मुझे मारने के लिए दौड़ रहे हैं। उसने सोचा, इन्हें डरा दूँ। यह सोचकर उसने उनकी ओर साँस छोड़ी, फुंकार मारी। उसकी साँस या फुंकार से भयभीत हो सब देव भाग खड़े हुए। केवल मरुतों ने इन्द्र को नहीं छोड़ा। 'भगवन् प्रहार करो, मारो, वीरता दिखाओ'–इस प्रकार वाणी बोलते हुए वे उसके साथ उपस्थित रहे। ऋषि

इसी अर्थ का दर्शन करता हुआ कह रहा है—'वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा:' आदि। ऐ० ब्रा० ३।२०। यह आख्यान उक्त अर्थ को ही स्पष्ट करने के लिए है।

छान्दोग्य उपनिषद् की एक कथा भी इस मन्त्र के भाव को स्पष्ट करती है। वहाँ लिखा है—"देव और असुरों में लड़ाई ठन गयी, दोनों प्रजापति के पुत्र थे। देव उद्गीथ को ले आये कि इससे इन्हें परास्त कर देंगे। उन्होंने नासिक्य (नासिका से आने-जाने वाले) प्राण को उद्गीथरूप में उपासा। असुरों ने उस पाप से बींध दिया। इसी कारण नासिक्य प्राण से सुगन्धित और दुर्गन्धित दोनों प्रकार के पदार्थ सूँघता है, यत: यह पाप से बिंध चुका है। इसके बाद उन्होंने वाणी को उद्गीथरूप में उपासा। उसे भी असुरों ने पाप से बींध दिया। इसी कारण वाणी से सत्य और असत्य दोनों बोलता है, यत: यह पाप से बिंध चुकी है। इसके बाद उन्होंने आँख को उद्गीथरूप में उपासा। उसे भी असुरों ने पाप से बींध दिया। इसी कारण आँख से दर्शनीय और अदर्शनीय दोनों को देखता है, यत: यह पाप से बिंध चुकी है। फिर उन्होंने श्रोत्र को उद्गीथरूप में उपासा। उसे भी असुरों ने पाप से बींध दिया। इसी कारण श्रोत्र से श्रवणीय और अश्रवणीय दोनों सुनता है, यत: यह पाप से बिंध चुका है। तत्पश्चात् उन्होंने मन को उद्गीथरूप में उपासा। उसे भी असुरों ने पाप से बींध दिया। इसी कारण मन से उचित और अनुचित दोनों प्रकार के संकल्प करता है, यत: यह पाप से बिंध चुका है। तदनन्तर उन्होंने मुख्य प्राण को उद्गीथरूप में उपासा। असुर जब उसे भी बींधने के लिए झपटे तो वे उससे टकराकर ऐसे विध्वस्त हो गये, जैसे मिट्टी का ढेला पत्थर से टकराकर चूर-चूर हो जाता है। इस प्रकार जो मुख्य प्राण से साहचर्य कर लेता है उसके सब शत्रु ऐसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे मिट्टी का ढेला पत्थर से टकराकर चूर-चूर हो जाता है। इस कथा से स्पष्ट है कि चक्षु-श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ आत्मा की सच्ची सहायक नहीं हैं, मुख्य प्राण की ही सहायता से वह काम, क्रोधादि असुरों को परास्त करने में सफल हो सकता है।।

(द्वितीय) राष्ट्र के पक्ष में। संग्रामों में जिसका प्रजाजनों ने

साथ छोड़ दिया है, ऐसे अकेले पड़े हुए राजा को राजमन्त्री कह रहा है–( **वृत्रस्य** ) अत्याचारी शत्रु के ( **श्वसथात्** ) विनाशक शस्त्रास्त्र–समूह से ( **ईषमाणाः** ) भयभीत हो भागते हुए ( **विश्वे देवाः** ) सब प्रजाजनों ने ( **त्वा** ) आपको ( **अजहुः** ) छोड़ दिया है, ( **ये** ) जो प्रजाजन, पहले जब युद्ध उपस्थित नहीं हुआ था तब ( **सखायः** ) आपके मित्र बने हुए थे। हे ( **इन्द्र** ) राजन्! ( **मरुद्भिः** ) वीर क्षत्रिय योद्धाओं के साथ ( **ते** ) आपकी ( **सख्यम्** ) मित्रता ( **अस्तु** ) हो, ( **अथ** ) उसके पश्चात्, आप ( **इमाः** ) इन ( **विश्वाः** ) सब ( **पृतनाः** ) युद्ध करने वाली शत्रु–सेनाओं को ( **जयासि** ) जीत लो॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥

**भावार्थ** :–युद्ध का समय उपस्थित होने पर युद्ध में निपुण शूरवीर क्षत्रिय योद्धा ही रिपुदल से मुठभेड़ कर सकते हैं। इसी प्रकार आन्तरिक देवासुर–संग्राम में प्राण आत्मा के सहायक बनते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि जन्मधारियों की मृत्यु निश्चित है।

**३२५. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।**
**देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥३॥**

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) चन्द्र–सूर्य के पक्ष में। ( **समने** ) अन्धकार के साथ युद्ध में ( **बहूनाम्** ) बहुत से अन्धकाररूप शत्रुओं के ( **दद्राणम्** ) विदारणकर्त्ता ( **विधुम्** ) चन्द्रमा को ( **युवानं सन्तम्** ) युवक होते हुए अर्थात् पूर्णिमा में पूर्ण प्रकाशमान होते हुए को भी ( **पलितः** ) बूढ़े, पके हुए किरणरूप केशों वाले सूर्य ने ( **जगार** ) निगल लिया है, अर्थात् पूर्णिमा के बीत जाने पर प्रतिपदा तिथि से आरम्भ करके धीरे–धीरे एक–एक कला को निगलते–निगलते अमावस्या को पूर्ण रूप से निगल लिया है। ( **देवस्य** ) क्रीडा करने वाले परमेश्वर के ( **महित्वा** ) महान् ( **काव्यम्** ) जगत्–रूप दृश्य काव्य को ( **पश्य** ) देखो। इसमें जो ( **ह्यः** ) कल ( **समान** ) प्राण धारण किए हुए था, जीवित था, ( **सः** ) वह ( **अद्य** ) आज ( **ममार** ) मर जाता है।

चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। पृथिवी के चारों ओर चन्द्रमा के परिभ्रमण करने के कारण इसका जितना भाग पृथिवी की ओट में आ जाता है उतने पर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, अतः वह अप्रकाशित ही रहता है। अमावस्या को चन्द्रमा और सूर्य की बीच में पृथिवी आ जाने से सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर बिल्कुल नहीं पड़ती हैं, इस कारण उस रात चन्द्रमा बिल्कुल दिखाई नहीं देता। इसी को यहाँ वेद काव्य के कवि ने इस रूप में वर्णित किया है कि सूर्य चन्द्रमा को निगल लेता है॥

**(द्वितीय)** अध्यात्म-पक्ष में। **(समने)** प्राणवान् शरीर में **(बहूनाम्)** अनेक ज्ञानेन्द्रियों को **(दद्राणम्)** अपने-अपने विषयों में प्रेरित करने वाले **(विधुम्)** ज्ञान-साधन मन को **(युवानं सन्तम्)** जाग्रदवस्था में युवा के समान पूर्ण शक्तिमान् होते हुए को भी **(पलितः)** अनादि होने से वृद्धा आत्मा **(जगार)** सुषुप्ति अवस्था में निगल लेता है, क्योंकि सुषुप्ति में मन के सब व्यापार शान्त हो जाते हैं। **(देवस्य)** प्रकाशक आत्मा के **(महित्वा)** महान् **(काव्यम्)** जनन, मरण आदि-रूप काव्य को **(पश्य)** देखो। जो **(अद्य)** आज **(ममार)** मरा पड़ा है, **(सः)** वह **(ह्यः)** कल **(समान)** प्राण धारण कर रहा था। यह सब आत्मा के ही आवागमन का खेल है। इसी प्रकार आगे भी आत्मा पुनर्जन्म प्राप्त करके देहधारी होकर देह की दृष्टि से जीवित भी होगा, मरेगा भी॥३॥

इस मन्त्र में 'अद्य ममार स ह्यः समान' इस सामान्य का विधु-निगरणरूप विशेष अर्थ द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'युवक को बूढ़े ने निगल लिया' इसमें विरूपसंघटनारूप विषमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :-इस संसार में शक्तिशालियों की भी मृत्यु निश्चित है, यह मानकर सबको धर्म-कर्मों में मन लगाना चाहिए॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के महान् कर्मों का वर्णन किया गया है।

**३२६. त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽ शत्रुभ्यो अभवः**
**शत्रुरिन्द्र। गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो**
**भुवनेभ्यो रणं धाः॥४॥**

**पदार्थ** :-हे **(इन्द्र)** शूरवीर परमात्मन्! **(त्वं ह)** आप ही

(त्यत्) उस, आगे कहे जाने वाले महान् कर्म को करते हो। किस कर्म को, यह बताते हैं। (जायमानः) उपासक के हृदय में प्रकट होते हुए आप (अशत्रुभ्यः) जिनका आपके अतिरिक्त अन्य कोई विनाशक नहीं है ऐसे (सप्तभ्यः) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा दुर्भाषण इन सात राक्षसों को मारने के लिए, उनके (शत्रुः) शत्रु (अभवः) होते हो। आप ही (गूढे) कारणभूत पंचभूतों के अन्दर छिपे हुए (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवीलोक को (अन्वविन्दः) कार्यावस्था में लाते हो। इस प्रकार (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः) वैभवयुक्त लोक-लोकान्तरों को पैदा करने के लिए, आप (रणम्) संग्राम (धाः) करते हो। अभिप्राय यह है कि जैसे संग्रामों में शूरता का प्रयोग किया जाता है, वैसे ही शूरता का प्रयोग करके आपने प्रकृति से महत् तत्त्व, महत् से अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्रा तथा मन सहित दस इन्द्रियों, पंचतन्मात्राओं से पंचभूत और पंचभूतों से द्यावापृथिवी आदि लोकलोकान्तरों को और प्रजाओं को उत्पन्न किया। उत्तरोत्तर सृष्टि के लिए प्रकृति आदि में जो विक्षोभ उत्पन्न किया जाता है उसी को यहाँ रण की संज्ञा दी है॥४॥

**भावार्थ** :—परमात्मा ही काम, क्रोध आदि अन्तःशत्रुओं को नष्ट करता है। उसी ने प्रकृति के गर्भ से महत् आदि के क्रम से तरह-तरह की विचित्रताओं से युक्त सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि लोकलोकान्तरों में विभक्त, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज जीव-जन्तु, वृक्ष-वनस्पति आदि से समृद्ध और पहाड़, झरने, नदी, तालाब, सागर आदि से अलंकृत सृष्टि उत्पन्न की है। इस कारण उसका गौरवगान हमें मुक्त कण्ठ से करना चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि कैसे परमात्मा की मैं किसके समान स्तुति करता हूँ।

**३२७. मेडिं न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिरप्स्नुम्। करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! (**दुवस्यु:**) आपकी पूजा की चाह वाला मैं (**वज्रिणम्**) दुष्टों को दण्डित करने वाले, (**भृष्टिमन्तम्**) दीप्तिमान्, शत्रु को भून डालने वाले तेज से युक्त, (**पुरुधस्मानम्**) बहुतों के धारणकर्ता, (**वृषभम्**) सुख आदि की वर्षा करने वाले, (**स्थिरप्स्नुम्**) स्थिर रूप वाले अर्थात् स्थिर गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त, (**द्युक्षम्**) कर्तव्याकर्तव्य का प्रकाश देने वाले, (**वृत्रहणम्**) पापों के विनाशक (**त्वा**) आपकी (**मेडिं न**) भूमि को वर्षा से सींचने वाले अथवा विद्युद्गर्जना के आश्रयभूत बादल के समान अर्थात् जैसे वर्षा का इच्छुक कोई मनुष्य बादल की बार-बार प्रशंसा करता है, वैसे (**गृणीषे**) स्तुति करता हूँ। हे परमात्मन्! आप (**अरी:**) प्रजाओं को (**तरुषी:**) आपत्तियों को पार करने में अथवा शत्रु-विनाश में समर्थ (**करोषि**) कर देते हो॥५॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। '**करोष्यर्यस्तरुषी:**' इस कारणात्मक वाक्य से स्तुतिरूप कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास भी है॥५॥

**भावार्थ** :—जैसे वर्षा चाहने वाले किसान लोग वर्षक मेघ की पुन:-पुन: प्रशंसा करते हैं, वैसे ही श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव वाले, सुख-समृद्धि की वर्षा करने वाले परमेश्वर की सबको प्रशंसा और उपासना करनी चाहिए॥५॥

अगले मन्त्र में पुन: परमात्मा की स्तुति का विषय है।

**३२८. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्। विश: पूर्वी: प्र चर चर्षणिप्रा:॥६॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! (**व:**) तुम (**महेवृधे**) जो तेज के लिए मनुष्यों को बढ़ाता है ऐसे, (**महे**) पूजनीय इन्द्र जगदीश्वर के लिए (**प्र भरध्वम्**) पूजा का उपहार लाओ। (**प्रचेतसे**) श्रेष्ठ ज्ञान वाले वाले उसके लिए (**सुमतिम्**) श्रेष्ठ स्तुति को (**प्रकृणुध्वम्**) श्रेष्ठ रूप से करो। हे इन्द्र परमात्मन्! (**चर्षणिप्रा:**) मनुष्यों को पूर्ण करने वाले आप (**पूर्वी:**) श्रेष्ठ

(विशः) प्रजाओं को (प्र चर) धन, धान्य, गुणों आदि से पूर्ण करने के लिए प्राप्त होवो।।६।।

इस मन्त्र में 'महे, महे' में यमक अलंकार है। 'प्र' की पाँच बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास और 'ध्वम्, ध्वम्' तथा 'चर, चर्' में छेकानुप्रास है।

**भावार्थ** :—पूजा के बहुमूल्य उपहार से सत्कृत किया गया महामहिमाशाली जगदीश्वर स्तोताओं को विविध आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्यों से भरपूर कर देता है।।६।।

अगले मन्त्र में यह विषय है कि कैसे इन्द्र को हम पुकारें।

**३२९. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि॥७॥**

**पदार्थ** :—(**अस्मिन्**) इस (**वाजसातौ**) अन्न, धन, बल, विज्ञान आदि की प्राप्ति कराने वाले (**भरे**) संसार-समर, जीवन-संग्राम अथवा शत्रुओं के साथ युद्ध में हम (**शुनम्**) सदा-सुखी, सुख देने वाले और बढ़ाने वाले, (**मघवानम्**) प्रशस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, (**नृतमम्**) सबसे बड़े नायक, (**शृण्वन्तम्**) दीनों की प्रार्थना को सुनने वाले, (**उग्रम्**) ओजस्वी, (**ऊतये**) सज्जनों की रक्षार्थ (**समत्सु**) आन्तरिक एवं बाह्य देवासुर-संग्रामों में (**वृत्राणि**) काम, क्रोध आदि षड् रिपुओं को अथवा मानव-शत्रुओं को (**घ्नन्तम्**) विनष्ट करने वाले, (**धनानि**) आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्यों को (**सञ्जितम्**) जीतने और जिताने वाले (**इन्द्रम्**) विश्व के सम्राट् परमेश्वर को अथवा राष्ट्रनायक राजा को (**हुवेम**) पुकारें।।७।।

इस मन्त्र में श्लेष और परिकर अलंकार हैं।।७।।

**भावार्थ** :—जीवन-संग्रामों में मनुष्यों से सहायता के लिए पुकारा हुआ ब्रह्माण्ड का सम्राट् परमेश्वर उन्हें पुरुषार्थी बनाकर उनका नेतृत्व करता हुआ उन्हें सब संकटों से पार ले जाकर सुखी करता है। इसी प्रकार राष्ट्र का स्वामी राजा शत्रुओं द्वारा

राष्ट्र के आक्रान्त हो जाने पर प्रजाओं का आह्वान सुनकर दुर्दान्त शत्रुओं को जीतकर, उनके धनों को छीनकर प्रजाओं की रक्षा करे।।७।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि विद्वान् जन क्या करें।

**३३०. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।**
**आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि॥८॥**

**पदार्थ** :–उपासक जन (**श्रवस्या**) यश-प्राप्ति की इच्छा से इन्द्र परमेश्वर के प्रति (**ब्रह्माणि**) स्तोत्रों को (**उद् ऐरत उ**) उच्चारण करते हैं। हे (**वसिष्ठ**) सद्गुणकर्मों में और विद्या में अतिशय निवास किए हुए विद्वन्! तू भी (**समर्ये**) जीवन-संग्राम में वा यज्ञ में (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवान् परमात्मा की (**महय**) पूजा कर। (**यः**) जिस परमात्मा ने (**विश्वानि**) सब भुवनों को (**श्रवसा**) यश से (**आ ततान**) विस्तीर्ण किया है, वह (**ईवतः मम**) मुझ पुरुषार्थी के (**वचांसि**) प्रार्थना-वचनों को (**उपश्रोता**) सुनने वाला हो।।८।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर पुरुषार्थी के ही वचनों को सुनता है, पौरुषरहित होकर केवल स्तुति करते रहने वाले के नहीं। जिसने सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि सब भुवनों को यश से प्रसिद्ध किया है वह मुझे भी यशस्वी बनाये, यह आकांक्षा सबको करनी चाहिए और उसके लिए प्रयत्न भी करना चाहिए।।८।।

अगले मन्त्र में जलों में निहित चक्र का वर्णन है।

**३३१. चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात्।**
**पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु॥९॥**

**पदार्थ** :–(**अप्सु**) जलों में (**अस्य**) इस इन्द्र परमात्मा का अर्थात् उससे रचित (**यत्**) जो (**चक्रम्**) ऊपर चढ़ना और नीचे उतरना रूपी चक्र (**निषत्तम्**) स्थित है, (**उत उ**

तत्) वह (अस्मै) इस संसार के लिए (मधु इत्) मधु को ही (चच्छद्यात्) प्रदान करता है। (यत्) जो (ऊधः) अन्तरिक्षरूपी गाय के ऊधस् के समान विद्यमान बादल (पृथिव्याम्) भूमि पर (अतिषितम्) वर्षा की धारों के रूप में छूटता है, उससे हे इन्द्र परमात्मन्! आप (गोषु) गायों में, और (ओषधीषु) ओषधियों में (पयः) क्रम से दूध और रस को (अदधाः) निहित करते हो।।

इस जल के चक्र को अन्यत्र वेद में इस रूप में वर्णित किया गया है—"यह जल समानरूप से दिनों में कभी ऊपर जाता है और कभी नीचे आता है। बादल बरसकर भूमि को तृप्त करते हैं, और अग्नियाँ जल को भाप बनाकर आकाश को तृप्त करती हैं।" ऋ० १।१६४।५१।।९।।

**भावार्थ** :—पृथिवी के नदी, नद, समुद्र आदियों से पानी भाप बनकर आकाश में जाता है, वहाँ बादल के आकार में परिणत होकर **वर्षा द्वारा फिर भूमण्डल पर आ जाता है। वही निर्मल जल गायों में दूध रूप में और वनस्पतियों में रस-रूप में बदल जाता है। परमेश्वर जलों में इस चक्र** को पैदा कर सर्वत्र मधु बरसाता है, इसके लिए उसे सबको धन्यवाद देना चाहिए।।९।।

इस दशति में इन्द्र द्वारा कृष्ण और वृत्र के वध तथा द्यावापृथिवी आदि के जन्म का वर्णन होने से, इन्द्र का आह्वान होने से, और उसके द्वारा जलों में निहित चक्र का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्वदशति के विषय के साथ संगति है।।

# एकादशी दशतिः

**ऋषिः—१ अरिष्टनेमिस्ताक्ष्यः; २ भरद्वाजः; ३ वसुक्रो विमदो वा; ४-६, ७ विश्वामित्रः; ८ रेणुः; ९ वामदेवः; १० गोतमः॥ देवता—१ ताक्ष्यः; २-६, ८-१० इन्द्रः; ७ इन्द्रापर्वतौ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की स्तुति, सेनापतित्व और शिल्प विषय का वर्णन है।

३३२. त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम्।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा
हुवेम॥१॥

**पदार्थ** :-( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हम ( **त्यम् उ** ) उस ( **वाजिनम्** ) सब अन्नों वा धनों के स्वामी, ( **देवजूतम्** ) विद्वान् योगीजनों को प्राप्त अथवा प्रकाशक सूर्य, चाँद आदि तथा मन, श्रोत्र आदि में व्याप्त, ( **सहोवानम्** ) साहसी, बलवान्, ( **रथानाम्** ) शरीररूप रथों के अथवा गतिशील पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आदि लोकों के ( **तरुतारम्** ) चलाने वाले, ( **अरिष्टनेमिम्** ) अप्रतिहत दण्डशक्ति वाले, ( **पृतनाजम्** ) काम, क्रोध आदि की सेनाओं को परे फेंकने वा जीतने वाले और सत्य, दया, उदारता आदि सद्गुणों की सेनाओं को प्राप्त कराने वाले, ( **आशुम्** ) शीघ्रकारी ( **तार्क्ष्यम्** ) विस्तीर्ण जगत् में निवास करने वाले, सकलभुवनव्यापी, प्राप्तव्य परमात्मा को ( **इह** ) अपने इस जीवन में ( **स्वस्तये** ) कल्याण के लिए ( **सु हुवेम** ) भलीभाँति पुकारें॥

( **द्वितीय** ) सेनापति के पक्ष में। हम ( **त्यम् उ** ) उस ( **वाजिनम्** ) अन्न आदि सात्त्विक आहार करने वाले, बलवान्, संग्रामकारी, ( **देवजूतम्** ) राजा द्वारा युद्धार्थ प्रेरित, ( **सहोवानम्** ) क्षात्र-तेज से युक्त, ( **रथानाम्** ) युद्ध के विमानों को ( **तरुतारम्** ) उड़ाने वाले, ( **अरिष्टनेमिम्** ) अक्षत रथचक्र वाले, ( **पृतनाजम्** ) संग्राम में अपनी सेनाओं को भेजने वाले, तथा शत्रु-सेनाओं को उखाड़ फेंकने वाले, ( **आशुम्** ) शीघ्रकारी, आलस्यरहित ( **तार्क्ष्यम्** ) गरुड़ के समान आक्रमण करने वाले अथवा वायु के समान स्वपक्ष को जीवन देने वाले तथा परपक्ष का भञ्जन करने वाले सेनापति को ( **इह** ) इस संग्रामकाल में ( **स्वस्तये** ) राष्ट्र के उत्तम अस्तित्व के लिए ( **सु हुवेम** ) भलीभाँति पुकारें अथवा उत्साहित करें॥

( **तृतीय** ) वायु और विद्युत् के पक्ष में। हम ( **त्यम् उ** ) उस ( **वाजिनम्** ) अतिशय वेगवान्, ( **देवजूतम्** ) शिल्पविद्या के वेत्ता कुशल शिल्पियों द्वारा यान आदियों में प्रेरित,

**( सहोवानम् )** अतिशय बलयुक्त, **( रथानाम् )** समुद्र, पृथिवी और अन्तरिक्ष में चलने वाले वायु-यानों वा विद्युद्-यानों के **( तरुतारम् )** तराने या उड़ाने में साधनभूत, **( पृतनाजम् )** सांग्रामिक सेनाओं को देशान्तर में पहुँचाने में निमित्तभूत अथवा संग्राम को जीतने में साधनभूत, **आशुभ्** यानों की तेज गति में निमित्तभूत, **( तार्क्ष्यम् )** अन्तरिक्षशायी वायु वा विद्युत् रूप अग्नि को **( इह )** इस शिल्पयज्ञ में **( स्वस्तये )** सुख के लिए **( हुवेम )** यान आदियों में प्रयुक्त करें।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'तरु, तारं' में छेकानुप्रास और वकार, रेफ आदि की आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है।।१।।

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि उपासना-यज्ञ में सकलजगद्व्यापी परमेश्वर का, राष्ट्रयज्ञ में गरुड़ के समान परपक्षाक्रान्त सेनापति का और शिल्पयज्ञ में कलाकौशल के साधक वायु वा विद्युत् का ग्रहण और उपयोग करें।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा आह्वान करने योग्य हैं, यह इन्द्र नाम से दर्शाया गया है।

३ २३ १ २ ३ २३ २ ३ १२ ३ २ ३ २३ १ २
**३३३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम्।**
३२उ ३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ २३ १ २ ३ १ २
**हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः॥२॥**

**पदार्थ** :—मैं **( त्रातारम् )** आपत्तियों से त्राण करने वाले **( इन्द्रम् )** शत्रुविदारक जगदीश्वर वा राजा को, **( अवितारम् )** सुखादि के प्रदान द्वारा पालना करने वाले **( इन्द्रम् )** ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर वा राजा को, **( हवे हवे )** प्रत्येक संग्राम में, प्रत्येक संकट में **( सुहवम् )** सरलता से पुकारने योग्य **( शक्रम् )** शक्तिशाली, **( पुरुहूतम् )** बहुत स्तुति किये गये अथवा बहुतों से बुलाये गये **( इन्द्रम् )** अविद्या, दुःख आदि के भञ्जक जगदीश्वर वा राजा को **( नु )** शीघ्र ही **( हुवे )** पुकारता हूँ। **( सः )** वह **( मघवा )** प्रशस्त धन वाला **( इन्द्रः )** जगदीश्वर वा राजा **( इदम् )** इस मेरे द्वारा दी जाती हुई **( हविः )** आत्मसमर्पण रूप अथवा राजकर रूप हवि को **( वेतु )** स्वीकार करे।।२।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है, विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकरालंकार भी है। इन्द्र शब्द की चार बार पुनरुक्ति उसकी बहुक्षमता को तथा अन्यों से विलक्षण आह्वानयोग्यता को द्योतित करती है। निरर्थक 'तारमिन्द्रं' की दो बार, 'रमिन्द्रं' की तीन बार, 'मिन्द्र' की चार बार आवृत्ति होने से यमक अलंकार है। इसी प्रकार 'हवे, हवे, हवं, हवं हुवे, हवि' में वृत्त्यनुप्रास है। 'त्रातारम्, अवितारम्' में और 'इन्द्रम्, शक्रम्, पुरुहूतम्' में पुनरुक्तवदाभास है।।२।।

**भावार्थ** :—सबको चाहिए कि विपत्त्राता, शुभ पालनकर्त्ता, सुख से आह्वान किये जाने योग्य, अनेक जनों से वन्दित, शूर परमेश्वर तथा राजा का आत्मकल्याण और जनकल्याण के लिए वरण करें। साथ ही परमेश्वर को आत्म-समर्पण और राजा को कर-प्रदान भी नियम से करना चाहिए।।२।।

अगले मन्त्र में यह विषय है कि कैसे परमेश्वर और राजा का हम पूजन व सत्कार करें।

**३३४. यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्या३ं विव्रतानाम्।**
**प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो**
**वि राधसा॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हम (**वज्रदक्षिणम्**) जिसका न्यायरूप दण्ड सदा जागरूक है ऐसे, (**विव्रतानाम्**) विविध कर्मों से युक्त (**हरीणाम्**) आकर्षणशक्ति वाले, गतिमय सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी आदि लोकों के (**रथ्यम्**) रथी (**इन्द्रम्**) सर्वद्रष्टा परमात्मा की (**यजामहे**) पूजा करते हैं। वह (**श्मश्रुभिः**) सूर्य-किरणों द्वारा (**प्र दोधुवत्**) रोग आदियों को अतिशय पुनः-पुनः प्रकंपित कर देता है, (**ऊर्ध्वधा**) सर्वोन्नत वह (**सेनाभिः**) सेनाओं के समान विद्यमान अपनी शक्तियों से (**भयमानः**) दुर्जनों को भयभीत करता हुआ (**वि भुवत्**) वैभवशाली बना हुआ है, और (**राधसा**) ऐश्वर्य से (**वि**) वैभवशाली बना हुआ है।

(**द्वितीय**) राजा-प्रजा के पक्ष में। हम राष्ट्रवासी प्रजाजन

(**वज्रदक्षिणम्**) दाहिने हाथ में वज्रतुल्य दृढ़ शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाले, (**विव्रतानाम्**) विविध कर्मों वाले (**हरीणाम्**) अग्नि, वायु, विद्युत् और सूर्यकिरणों को (**रथ्यम्**) अग्नियानों, वायुयानों, विद्युत्यानों और सूर्यताप से चलने वाले यानों में प्रयुक्त करने वाले (**इन्द्रम्**) शूरवीर राजा वा सेनाध्यक्ष को (**यजामहे**) सत्कृत करते हैं। वह शत्रुओं की (**श्मश्रुभिः दोधुवत्**) मूँछें नीची करता हुआ अर्थात् उनका गर्व चूर करता हुआ (**ऊर्ध्वधा**) उन्नत (**भुवत्**) होता है, तथा (**सेनाभिः**) अपनी दुर्दान्त सेनाओं से (**भयमानः**) शत्रुओं को भयभीत करता हुआ (**वि भुवत्**) विजयी होता है, और (**राधसा**) ऐश्वर्य से (**वि**) वैभवशाली होता है॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—दुष्टों और पापों के प्रति दण्डधारी, न्यायकारी, सब लोकों को नियम से अपनी-अपनी परिधि पर और सूर्य के चारों ओर घुमाने वाला, शौर्य आदि गुणों में सबसे बढ़ा हुआ परमेश्वर जैसे सब जनों से पूजनीय है, वैसे ही अनेक शस्त्रास्त्रों से युक्त, राष्ट्र में विमानादि यानों का प्रबन्धकर्ता, सेनाओं द्वारा शत्रुओं को पराजित करने वाला सेनाध्यक्ष अथवा राजा भी सब प्रजाओं द्वारा सम्माननीय है॥३॥

पुनः वह परमेश्वर और राजा कैसा है यह कहते हैं।

**३३५. सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम्।**
**हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा**
**सुराधाः॥४॥**

पदार्थ :—हम (**सत्राहणम्**) सत्य से असत्य का खण्डन करने वाले, (**दाधृषिम्**) पापों व पापियों का अतिशय धर्षण करने वाले अथवा अत्यन्त प्रगल्भ, (**तुम्रम्**) शुभ कर्मों में प्रेरित करने वाले, (**महाम्**) महान्, (**अपारम्**) अपार अर्थात् अनन्त विद्या वा पराक्रम वाले, (**वृषभम्**) सुखों की वर्षा करने वाले, (**सुवज्रम्**) उत्कृष्ट दण्डशक्ति वाले (**इन्द्रम्**) अधर्म, अविद्या आदि के विदारक परमात्मा वा राजा का (**यजामहे**)

पूजन वा सत्कार करते हैं, (**मघवा**) ऐश्वर्यवान् (**सुराधाः**) उत्कृष्ट न्याय व धर्म रूप धन वाला (**यः**) जो परमात्मा वा राजा (**वृत्रम्**) विघ्नभूत शत्रु को (**हन्ता**) मारता है, (**उत**) और (**वाजम्**) अन्न, बल, विज्ञान आदि को (**सनिता**) बाँटता है तथा (**मघानि**) धनों को (**दाता**) देता है।।४।।

इस मन्त्र में 'यजामहे' क्रियापद पूर्व मन्त्र से आया है। अर्थश्लेष और परिकर अलंकार है। 'न्ता, निता' और 'मघा, मघ' में छेकानुप्रास, तथा मकार, तकार की अनेक वार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है।।४।।

**भावार्थ** :—सब राष्ट्रवासी प्रजाजनों को चाहिए कि मन्त्रोक्त गुणों से विभूषित परमात्मा की पूजा और राजा का सत्कार करें।।४।।

अगले मन्त्र में यह विषय है कि परमात्मा और राजा की सहायता से हम क्या करें।

**३३६. यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा। क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमण-स्त्वोताः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**यः मर्तः**) जो मनुष्य (**वनुष्यन् क्रोध**) क्रोध करता हुआ (**उगणा वा**) और सैन्यगणों अथवा आयुध गणों को तैयार किये हुए (**मन्यमानः**) अभिमान करता हुआ, अथवा (**उगणा**) अपनी शस्त्रास्त्रों से सज्जित सेनाओं को (**मन्यमानः**) बहुत मानता हुआ (**तुरः**) शीघ्रकारी यमराज भी होकर (**नः**) हमारी (**अभिदाति**) हिंसा पर उतारू होता है, हे (**इन्द्र**) शत्रुविदारक परमात्मन् वा राजन्। (**तम्**) उस मनुष्य को (**त्वम्**) आप (**युधा**) युद्ध से (**शवसा वा**) और बल से (**क्षिधि**) विनष्ट कर दो। हे (**वृषमणः**) बलवान् मन वाले परमात्मन् वा राजन्! (**त्वोताः**) आपसे रक्षित हम, उसे (**अभिस्याम**) परास्त कर दें।।५।।

**भावार्थ** :—जो वैरी शत्रु विशाल सेना लेकर अपने बल का अभिमान करता हुआ सज्जनों को उद्विग्न करे उसे वे

परमात्मा से पुरुषार्थ की प्रेरणा लेकर और राजा की सहायता से युद्ध में पराजित कर दें।।५।।

अगले मन्त्र में इन्द्र का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

**३३७. यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते।**
**यं शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते**
**स इन्द्रः॥६॥**

**पदार्थ** :—**(प्रथम)** राजा के पक्ष में। **(वृत्रेषु)** अविद्या, भ्रष्टाचार आदियों के व्याप्त हो जाने पर **(स्पर्धमानाः)** उस पर विजय पाना चाहते हुए **(क्षितयः)** प्रजाजन **(यं हवन्ते)** जिस जननायक को पुकारते हैं, **(युक्तेषु)** किन्हीं महान् कर्मों के प्रारम्भ करने पर **(तुरयन्तः)** कार्यसिद्धि के लिए शीघ्रता करते हुए प्रजाजन **(यं हवन्ते)** जिस कार्यसाधक को पुकारते हैं, **(शूरसातौ)** **शूरों को विजयोपलब्धि कराने वाले संग्राम में** **(यं हवन्ते)** **जिस वीर को पुकारते हैं,** **(अपाम्)** **सरोवर,** नहर आदियों के **(उपज्मन्)** **निर्माण के लिए** **(यं हवन्ते)** जिस राष्ट्रनिर्माता को पुकारते हैं, **(विप्रासः)** ज्ञानी ब्राह्मण लोग **(यं वाजयन्ते)** जिसे अपना परामर्श देकर बलवान् करते हैं, **(सः)** वह दुःखविदारक, सुखप्रदाता राजा **(इन्द्रः)** इन्द्र कहाता है।

**(द्वितीय)** परमात्मा के पक्ष में। **(वृत्रेषु)** योगमार्ग में व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि विघ्नों के उपस्थित होने पर **(स्पर्धमानाः)** उन्हें जीतने की इच्छा वाले योगीजन **(यं हवन्ते)** जिस सहायक को पुकारते हैं, **(युक्तेषु)** इन्द्रिय, मन, प्राण आदियों के योग में लग जाने पर **(तुरयन्तः)** योगसिद्धि पाने के लिए शीघ्रता करते हुए योगीजन **(यं हवन्ते)** जिस सिद्धिप्रदाता को पुकारते हैं, **(शूरसातौ)** आन्तरिक देवासुर-संग्राम के उपस्थित होने पर **(यं हवन्ते)** जिस सिद्धिप्रदाता को पुकारते हैं, **(अपाम्)** प्राणों के **(उपज्मन्)** उपरले-उपरले चक्र में चंक्रमण करने के निमित्त **(यं हवन्ते)** जिस योगक्रियाओं में सहायक को पुकारते हैं, **(यम्)** और जिसकी **(विप्रासः)**

ज्ञानी योगीजन ( वाजयन्ते ) अर्चना करते हैं, ( सः ) वह धारणा-ध्यान-समाधि से प्राप्तव्य परमेश्वर ( इन्द्रः ) इन्द्र कहलाता है।।६।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।६।।

**भावार्थ** :—वेदों में इन्द्र नाम से जिसका बहुत स्थानों पर वर्णन है वह विघ्नविदारक, आरम्भ किये कार्यों में सिद्धिप्रदायक, देवासुरसंग्रामों में विजयप्रदाता, जलधाराओं को प्रवाहित कराने वाला, ज्ञानीजनों की स्तुति का पात्र ब्रह्माण्ड में परमेश्वर तथा राष्ट्र में राजा है। उनकी यथायोग्य उपासना-प्रार्थना और सत्कार से अभीष्ट लाभ सबको उनसे प्राप्त करने चाहिएँ।।६।।

इस मन्त्र पर विवरणकार ने यह अपनी कल्पना से ही घड़ा हुआ इतिहास लिखा है कि इन्द्र के अत्यन्त भक्त होने के कारण इन्द्र का रूप धारण किये हुए वामदेव ऋषि को जब असुर पकड़कर मारने लगे तब वह इस मन्त्र को कह रहा है कि इन्द्र मैं नहीं हूँ, इन्द्र तो ऐसा-ऐसा है। इसी प्रकार का इतिहास 'स जनास इन्द्रः' इस प्रकार इन्द्र का परिचय देने वाले, गृत्समद ऋषि से दृष्ट ऋग्वेदीय द्वितीय मण्डल के १२वें सूक्त पर गृत्समद के नाम से किन्हीं लोगों ने कल्पित कर लिया था, जो सायण के ऋग्वेदभाष्य में उद्धृत है। यह सब प्रामाणिक नहीं है, किन्तु कथाकारों का लीलाविलास है।

अगले मन्त्र में देवता 'इन्द्र-पर्वत' हैं। इन नामों से जीवात्मा-प्राण के युगल की स्तुति की गयी है।

**३३८. इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः। वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता॥७॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्रापर्वता** ) जीवात्मा और प्राण! तुम दोनों ( **बृहता** ) महान् ( **रथेन** ) शरीर-रूप रथ द्वारा ( **सुवीराः** ) उत्तम वीर सन्तानों से अथवा वीर भावों से युक्त ( **वामीः** ) प्रशस्त वा संभजनीय ( **इषः** ) अभीष्ट आध्यात्मिक और भौतिक सम्पदाएँ ( **आ वहतम्** ) प्राप्त कराओ। हे ( **देवा** ) दिव्य गुण-कर्मों

वाले जीवात्मा और प्राण! तुम दोनों (**अध्वरेषु**) शरीरधारणरूप यज्ञों में (**हव्यानि**) भोज्य, पेय आदि हवियों का (**वीतम्**) आस्वादन करो। (**गीर्भिः**) वाणियों से, और (**इडया**) अन्न तथा गोदुग्ध आदि से (**मदन्ता**) तृप्त होते हुए (**वर्द्धेथाम्**) वृद्धि को प्राप्त करो।।७।।

**भावार्थ** :—जीवात्मा संचित कर्मों के फलभोग के लिए तथा नवीन कर्म करने के लिए मन, इन्द्रिय आदियों से युक्त प्राण के साथ सर्वश्रेष्ठ शरीर-रूप रथ में बैठता है। वे दोनों जीवात्मा और प्राण शरीर के माध्यम से उत्कृष्ट सन्तान और विविध दिव्य तथा भौतिक सम्पदा को प्राप्त कराने की योग्यता रखते हैं। यथायोग्य खाद्य, पेय, ज्ञान, कर्म, प्राणायाम आदि की हवि देकर उनकी शक्ति सबको बढ़ानी चाहिए।।७।।

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**३२९. इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत् सगरस्य बुध्नात्। यो अक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम्॥८॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्राय**) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर के लिए अर्थात् उसकी महिमा का **गान** करने के लिए (**अनिशितसर्गाः**) अतीक्ष्ण प्रयोग वाली अर्थात् मधुर (**गिरः**) मेरी स्तुतिवाणियाँ, प्रवृत्त हों। जो जगदीश्वर (**सगरस्य**) अन्तरिक्ष के (**बुध्नात्**) शीर्षस्थान से (**अपः**) मेघ-जलों को (**प्रैरयत्**) भूमि की ओर प्रेरित करता अर्थात् भूमि पर बरसाता है। (**यः**) जो (**विष्वक्**) विविध कर्मों में संलग्न होता हुआ अथवा विशेषरूप से सर्वान्तर्यामी होता हुआ (**शचीभिः**) अपने बुद्धिकौशल से व जगद्धारण की क्रियाओं से (**पृथिवीम्**) भूमि को (**उत**) और (**द्याम्**) द्यौ लोक को (**तस्तम्भ**) थामे हुए है, परस्पर सन्तुलित कर रहा है, (**इव**) जैसे (**अक्षेण**) रथ के बीच में पड़ी हुई कीली के द्वारा (**चक्रियौ**) दोनों रथचक्रों को रथचालक थामे रखता है।।८।।

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है।।८।।

**भावार्थ** :—परमात्मा की ही यह विलक्षण महिमा है कि वह अन्तरिक्ष से वर्षा करता है और द्यावापृथिवी में परस्पर सामंजस्य स्थापित करता है॥८॥

अगले मन्त्र में इन्द्र की मित्रता का विषय है।

**३४०. आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवां जगम्याः। पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः ॥९॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमेश्वर! (**सखायः**) आपके सखा स्तोता लोग सदा ही (**त्वा**) आपको (**सख्या**) सखिभाव से (**आ ववृत्युः**) स्वीकार करें। (**तिरः**) उनको प्राप्त होकर आप (**पुरु चित्**) बहुत अधिक (**अर्णवान्**) आनन्द के सागरों को (**जगम्याः**) प्राप्त कराओ। (**वेधाः**) स्तुति और पुरुषार्थ का कर्ता वह **आपका सखा** (**अस्मिन् क्षये**) इस घर में, गृहस्थाश्रम में (**प्रतराम्**) अत्यधिक (**दीद्यानः**) तेज और यश से प्रदीप्त होता हुआ (**पितु**) **अपने पिता के, वैसे ही तेजस्वी** और यशस्वी (**नपातम्**) पौत्र को अर्थात् अपने पुत्र को (**आदधीत**) उत्पन्न करे॥९॥

**भावार्थ** :—जो जगदीश्वर से मित्रता जोड़ता है उसे वह आनन्द-सागर में निमग्न कर देता है। जगदीश्वर का वह सखा शास्त्रोक्त विधि से गृहस्थाश्रम का पालन करता हुआ अपने अनुरूप तेजस्वी और यशस्वी पुत्र का पिता बनता है॥९॥

इन्द्र देवता वाले भी अगले मन्त्र में इन्द्र को क्योंकि सत्य प्रिय है, अतः सत्य का विषय वर्णित है।

**३४१. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्। आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्॥१०॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अध्यात्म पक्ष में। (**कः**) कौन मनुष्य (**अद्य**) आज (**शिमीवतः**) कर्मवान्, आलस्यरहित, (**भामिनः**)

तेजस्वी, **( दुर्हणायून् )** दुष्पराजेय, **( अप्सुवाहः )** नदी की धाराओं के सदृश बाधाओं के बीच से भी वहन कर ले जाने वाले, **( मयोभून् )** सुखप्रापक **( गाः )** ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-प्राण-मन-बुद्धि रूप बैलों को **( ऋतस्य )** सत्यरूप रथ के **( धुरि )** धुरे में **( युङ्क्ते )** जोड़ेगा। **( एषाम् )** गतिशील **( एषाम् )** इन पूर्वोक्त इन्द्रियादिरूप बैलों के **( आसन् )** मुख में **( यः )** जो मनुष्य **( भृत्याम् )** उन-उनके उत्कृष्ट ग्राह्यविषयरूप जीविकाद्रव्य को **( ऋणधत् )** वृद्धि के साथ प्रदान करेगा **( सः )** वह **( जीवात् )** प्रशस्त जीवन से युक्त होगा।।

यहाँ 'सत्य के धुरे में' इस कथन से सत्य में रथ का आरोप ध्वनित होता है। सत्य के धुरे में सामान्य बैल क्योंकि नहीं जोड़े जा सकते, अतः आरोप के विषय बैलों में आरोप्यमाण इन्द्रियादि गृहीत होते हैं। इन्द्रियादि में बैलों का आरोप होने से ही उनके मुख की भी कल्पना कर ली गयी है। अतिशयोक्ति अलंकार है।

**( द्वितीय )** राष्ट्र के पक्ष में। **( कः )** कौन मनुष्य **( अद्य )** आज, संकट के समय **( शिमीवतः )** कर्मशूर, **( भामिनः )** क्षात्र तेज से युक्त, **( दुर्हणायून् )** दुष्पराजेय, **( अप्सुवाहः )** युद्धयात्रा में नदी, समुद्र आदि के जलों में युद्धपोत को खेकर ले जाने वाले, **( मयोभून् )** शत्रुओं को जीतकर राष्ट्रवासियों को सुख देने वाले **( गाः )** गतिशील सैनिकों को **( ऋतस्य )** राष्ट्ररूप यज्ञ के **( धुरि )** रक्षा के धुरे में **( युङ्क्ते )** नियुक्त करेगा? राजा ही नियुक्त करेगा यह अभिप्राय है। **( आसन्नेषाम् )** जिनके तरकस में बाण हैं अर्थात् जिन्होंने प्रचुर शस्त्रास्त्रों का संचय किया हुआ है ऐसे **( एषाम् )** इन सैनिकों के **( यः )** जो राजा **( भृत्याम् )** वेतन को **( ऋणधत् )** समय-समय पर बढ़ायेगा **( सः )** वह राजा **( जीवात् )** शत्रु-विजय करके प्रजाओं के साथ चिरकाल तक जीवित रहेगा।।१०।।

इस मन्त्र में अध्यात्म और अधिराष्ट्र उभयविध अर्थ वाच्य होने से श्लेषालंकार है।।१०।।

**भावार्थ** :—सत्य के ज्ञानार्थ तथा प्रचारार्थ आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण एवं इन्द्रियों का यथोचित उपयोग मनुष्यों को

करना चाहिए, और राष्ट्र के शासक राजा को चाहिए कि राष्ट्र के रक्षक सैनिकों का भरपूर वेतन-प्रदान आदि से सत्कार करे॥१०॥

इस दशति में तार्क्ष्य नाम से परमेश्वर का स्मरण करने, इन्द्र-पर्वत के युगल की स्तुति पूर्वक इन्द्र का स्तवन करने, उसके सख्य की याचना करने, इन्द्रिय-रूप गौओं का महत्त्व वर्णन करने तथा राजा, सैनिक आदि अर्थों के भी सूचित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

इति चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥

# अथ चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

## द्वादशी दशतिः

**ऋषिः—१ मधुच्छन्दाः; २ जेता माधुच्छन्दसः; ३, ६ गोतमः; ४ अत्रिः; ५, ८, ९ तिरश्चीः; ७ काण्वो नीपातिथिः; १० शंयुर्बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में यह विषय है कि इन्द्र की महिमा का सब गान करते हैं।

**३४२. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।**
**ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**शतक्रतो**) बहुत बुद्धिमान् तथा बहुत कर्मों को करने वाले परमैश्वर्यवान् परमात्मन्! (**गायत्रिणः**) सामगान करने वाले गायक जन अथवा यज्ञ के उद्गाता नामक ऋत्विज् (**त्वा**) तेरा (**गायन्ति**) गान करते हैं। (**अर्किणः**) वेदमन्त्रार्थों का अध्ययन करने वाले जन अथवा पूजक होता और अध्वर्यु नामक ऋत्विज् (**त्वा**) तेरी (**अर्चन्ति**) स्तुति करते हैं। (**ब्राह्मणाः**) ब्रह्मोपासक ब्राह्मण अथवा यज्ञ के ब्रह्मा नामक

ऋत्विज् (त्वा) तुझे (वंशम् इव) ध्वजदण्ड के समान (उद्येमिरे) ऊपर उठाते हैं, अर्थात् जैसे पताकाधारी लोग पताका के डण्डे को ऊँचा उठाकर आकाश में पताका को फहराते हैं, वैसे ही ब्राह्मण जन और यज्ञ के ब्रह्मा लोग तेरी कीर्ति को सर्वत्र फहराते हैं॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। 'गाय, गाय' में यमक है। द्वितीय पाद में अनुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि सांगोपांग वेदों को पढ़कर, यज्ञ आदि में मन्त्रोच्चारणपूर्वक और सामगान सहित परमेश्वर की अर्चना करते हुए उसकी महिमा को गगन में ऊँची उठायी हुई, हवा से लहराती हुई ध्वजा के समान सर्वत्र प्रसारित करें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः इन्द्र की महिमा का विषय वर्णित है

**३४३. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।**
**रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। (**विश्वाः**) सब (**गिरः**) स्तुति-वाणियाँ वा वेद-वाणियाँ (**समुद्रव्यचसम्**) सागर और अन्तरिक्ष के समान व्याप्ति वाले, (**रथीनाम्**) रथवालों में (**रथीतमम्**) सबसे बढ़कर रथ वाले अर्थात् पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आदि अनेक रथसदृश गतिशील लोकों के सर्वोच्च स्वामी, (**वाजानाम्**) सब बलों के (**पतिम्**) अधीश्वर, (**सत्पतिम्**) सज्जनों, सद्गुणों व सदाचारों के रक्षक (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवान् परमात्मा का (**अवीवृधन्**) वर्धन अर्थात् महिमागान द्वारा प्रचार-प्रसार करती हैं॥

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**विश्वाः**) सब (**गिरः**) राष्ट्रवासी प्रजाजनों की वाणियाँ (**समुद्रव्यचसम्**) जलपोतों से सागर में और विमानों से अन्तरिक्ष में व्याप्त, (**रथीनाम्**) यान-स्वामियों में (**रथीतमम्**) भूयान, जलयान और विमानों के सबसे बड़े स्वामी, (**वाजानाम्**) दैहिक, मानसिक और आत्मिक बलों, अन्नों वा युद्धों के (**पतिम्**) अधीश्वर, (**सत्पतिम्**) सज्जनों वा सत्कर्मों के रक्षक (**इन्द्रम्**) शत्रुविदारक

तथा सुखप्रद राजा को (अवीवृधन्) बढ़ायें, उत्साहित करें॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'रथी, रथी' में लाटानुप्रास और 'पतिम्, पतिम्' में यमक है॥२॥

**भावार्थ** :—सब वेदवाणियाँ और स्तोताओं की वाणियाँ परमेश्वर की ही महिमा का गान करती हैं। वैसे ही राष्ट्र में प्रजाओं की वाणियाँ प्रजावत्सल राजा की महिमा का गान करें॥२॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि इन्द्र सोमरस का पान करे।

**३४४. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।**
**शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) अध्यात्मसम्पत्ति के प्रदाता **परमैश्वर्यवन् परमात्मन्**! तुम (**इमम्**) इस (**ज्येष्ठम्**) अतिशय प्रशंसनीय, (**अमर्त्यम्**) दिव्य, (**मदम्**) स्तोता को आनन्द देने वाले (**सुतम्**) तैयार किये हुए हमारे श्रद्धारसरूप सोम का (**पिब**) पान करो। (**ऋतस्य**) ध्यान-यज्ञ के (**सादने**) सदनभूत हृदय में (**शुक्रस्य**) दीप्त, पवित्र श्रद्धारस की (**धाराः**) धाराएँ (**त्वा अभि**) तुम्हारे प्रति (**अक्षरन्**) बह रही हैं।

(**द्वितीय**) गुरु-शिष्य पक्ष में। शिष्य के प्रति यह आचार्य की उक्ति है। हे (**इन्द्र**) जिज्ञासु एवं विद्युत् के समान तीव्रबुद्धि वाले मेरे शिष्य! तू (**इमम्**) मेरे द्वारा दिये जाते हुए इस (**ज्येष्ठम्**) श्रेष्ठ, (**अमर्त्यम्**) चिरस्थायी, (**मदम्**) तृप्तिप्रद, (**सुतम्**) अध्ययन-अध्यापन-विधि से निष्पादित ज्ञानरस को (**पिब**) पान कर, जिस ज्ञानरस को (**शुक्रस्य**) पवित्र (**ऋतस्य**) अध्ययन-अध्यापन-रूप यज्ञ के (**सादने**) सदन में, अर्थात् गुरुकुल में (**धाराः**) मेरी वाणियाँ (**त्वा अभि**) तेरे प्रति (**अक्षरन्**) सींच रही हैं॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—सब लोग दुःखविदारक, आनन्द के सिन्धु परमेश्वर के प्रति श्रद्धा को हृदय में धारण कर उसकी उपासना करें

और गुरुजन शिष्यों के प्रति प्रेम से प्रभावी शिक्षा-पद्धति द्वारा विद्या प्रदान करें।।३।।

अगले मन्त्र में इन्द्र से धन के दान की प्रार्थना की गयी है।

**३४५. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः।**
**राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर॥४॥**

**पदार्थ** :-( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हे ( **चित्र** ) अद्भुत गुणकर्मस्वभाव वाले, ( **अद्रिवः** ) वज्रधारी के समान दुष्कर्मों का दण्ड देने वाले ( **इन्द्र** ) जगदीश्वर! ( **यत्** ) जो आध्यात्मिक और भौतिक धन, हमारे कर्मों के परिपाक के कारण अथवा हमारी पौरुषहीनता के कारण ( **त्वादातम्** ) तेरे द्वारा काटा या रोका हुआ ( **मे** ) मुझे ( **इह** ) यहाँ ( **नास्ति** ) नहीं मिल रहा है, ( **तत् राधः** ) वह धन, हे ( **विदद्वसो** ) ज्ञात अथवा प्राप्त धन वाले परमेश्वर! तू ( **उभयाहस्ति** ) दोनों हाथों को प्रवृत्त करके ( **आ भर** ) मुझे प्रदान कर।

यहाँ निराकार भी परमेश्वर के विषय में दोनों हाथों से दान का वर्णन दान की प्रचुरता को द्योतित करने के लिए आलंकारिक जानना चाहिए।

( **द्वितीय** ) राजा-प्रजा के पक्ष में। दुर्भिक्ष, महामारी, नदियों में बाढ़ आदि विपत्तियों से पीड़ित प्रजा राजा से याचना कर रही है। हे ( **चित्र** ) अद्भुत दानी, ( **अद्रिवः** ) मेघों वाले सूर्य के समान राष्ट्र में धन आदि की वृष्टि करने वाले ( **इन्द्र** ) विपत्तियों के विदारक राजन्! ( **त्वादातम्** ) आपके द्वारा देय ( **यत्** ) जो धन ( **मे** ) मुझे ( **इह** ) इस संकटकाल में, अब तक ( **नास्ति** ) नहीं मिला है, ( **तत् राधः** ) वह धन, हे ( **विदद्वसो** ) धन का संचय किये हुए राजन्! आप ( **उभयाहस्ति** ) दोनों हाथों से भर-भर कर ( **आभर** ) मुझे दीजिए, देकर मुझ विपत्तिग्रस्त की सहायता कीजिए।।४।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।४।।

**भावार्थ** :-आध्यात्मिक और भौतिक धन से रहित लोग पुरुषार्थ करते हुए यदि परमेश्वर से धन माँगते हैं, तो उसकी

कृपा से उनके ऊपर धन की वर्षा अवश्य होती है। इसी प्रकार राजा को भी संकटग्रस्त प्रजाओं की रक्षा के लिए पुष्कल धन देकर उनकी सहायता अवश्य करनी चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में पुनः इन्द्र से धनों को प्रार्थना की गयी है।

३ १ २र ३ २उ ३ १ २ ३ १ २
**३४६. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।**
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) भक्तवत्सल परमात्मन्! (**यः**) जो मनुष्य (**त्वा**) आपकी (**सपर्यति**) आराधना करता है, उस (**तिरश्च्याः**) आपको प्राप्त होकर पुरुषार्थ करने वाले अथवा लम्बे जटिल मार्ग को छोड़कर बाण के समान चीरते हुए आगे बढ़ते चले जाने वाले मनुष्य के (**हवम्**) आह्वान को, आप (**श्रुधि**) सुनिए अर्थात् पूर्ण कीजिए। साथ ही उसके लिए (**गोमतः**) प्रशस्त गाय, पृथिवी, वाणी आदि से युक्त (**रायः**) विद्या, आरोग्य, चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्य की (**पूर्धि**) पूर्ति कीजिए। आप (**महान्**) महान्, उदार हृदय वाले (**असि**) हैं॥५॥

**भावार्थ** :—जो श्रद्धावनत होकर परमेश्वर की पूजा करता है, उससे प्रेरणा लेकर पुरुषार्थ करता है और लम्बे मार्ग पर जाने से शक्ति तथा समय का व्यय न करके लक्ष्य के प्रति बाण के समान सीधा चलता चला जाता है, उसे सब सम्पत्तियाँ शीघ्र ही हस्तगत हो जाती हैं॥५॥

अगले मन्त्र में इन्द्र को सोमपान के लिए पुकारा गया है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**३४७. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि।**
१ २ ३२उ २ ३ २ ३ १ २
**आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) जीवात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) मेरे अन्तरात्मन्! (**ते**) तेरे लिए (**सोमः**) ज्ञान, उत्साह आदि का रस (**असावि**) मेरे द्वारा अभिषुत किया गया है। हे (**शविष्ठ**) बलिष्ठ, (**धृष्णो**) कामादि शत्रुओं को परास्त करने वाले! (**आ गहि**) तू रसपान के लिए आ, अर्थात् अभिमुख हो।

(इन्द्रियम्) ज्ञान की साधनभूत मेरी मन, चक्षु आदि इन्द्रिय **(रश्मिभिः)** ज्ञान-प्रकाशों से (त्वा) तुझे **(आ पृणक्तु)** भरपूर करें, **(सूर्यः)** सूर्य **(न)** जैसे **(रश्मिभिः)** अपनी किरणों से **(रजः)** पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि लोक को भरपूर करता है॥

अथवा, सोम से योगदर्शन १।४७ में प्रोक्त अध्यात्मप्रसाद अभिप्रेत है। इन्द्रिय से अभीष्ट है अध्यात्मप्रसाद में उत्पन्न, योग॰ १।४८ में प्रोक्त ऋतम्भरा प्रज्ञा। वह प्रज्ञा तुझ आत्मा को रश्मियों अर्थात् निर्बीजसमाधि के प्रकाशों से पूर्ण करे, यह आशय ग्रहण करना चाहिए॥

**(द्वितीय)**—सेनाध्यक्ष आदि वीर मनुष्य के पक्ष में। हे **(इन्द्र)** वीर नरपुंगव सेनाध्यक्ष! **(ते)** तेरे लिए अर्थात् तेरे पीने के लिए, हम प्रजाजनों ने **(सोमः)** सोम आदि ओषधियों का रस **(असावि)** निचोड़ा है। उसके पानार्थ, हे **(शविष्ठ)** बलिष्ठ, **(धृष्णो)** शत्रुधर्षक वीर! तू **(आ गहि)** आ। **(इन्द्रियम्)** मनरूप आन्तरिक इन्द्रिय **(त्वा)** तुझे **(रश्मिभिः)** उत्साह की **किरणों से (पृणक्तु) भर देवे,** जैसे सूर्य अपनी **किरणों से भूमण्डल आदि को भर देता है,** इत्यादि शेष पूर्ववत् अर्थ जानना **चाहिए॥६॥**

इस मन्त्र में श्लेष और उपमा अलंकार हैं॥६॥

**भावार्थ** :—सबको चाहिए कि अपने आत्मा को उद्बोधन देकर ज्ञान, कर्म, योगसिद्धि आदि का संचय करें। इसी प्रकार राष्ट्र के कर्णधार सेनापति आदि वीरता का संचय करके राष्ट्र की रक्षा करें॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से जगदीश्वर का आह्वान किया गया है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**३४८. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।**
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥७॥**

**पदार्थ** :—हे **(इन्द्र)** जगदीश्वर! आप **(हरिभिः)** अपनी अध्यात्म-प्रकाश की किरणों के साथ **(कण्वस्य)** मुझ मेधावी की **(सुस्तुतिम्)** शुभ स्तुति को **(उप आयाहि)** समीपता से प्राप्त कीजिए। आगे स्तोता अपने आत्मा को कहता है—हे

( **दिवावसो** ) दीप्तिधन के इच्छुक मेरे अन्तरात्मन्! तू ( **शासतः** ) शासक, ( **अमुष्य** ) चर्मचक्षुओं से न दीखने वाले उस ( **दिवः** ) दीप्तिमान् परमात्मा के ( **दिवम्** ) प्रकाशक तेज को ( **यय** ) प्राप्त कर॥७॥

इस मन्त्र में 'दिवो, दिवं, दिवा' में वृत्त्यनुप्रास अलंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—यदि हमारी स्तुति हृदय से निकली है, तो परमेश्वर उसे सुनता ही है। हमें भी उसका सान्निध्य प्राप्त कर उसके तेज से तेजस्वी बनना चाहिए॥७॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की स्तुति का विषय है।

**३४९. आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।**
**अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८॥**

**पदार्थ** :—हे ( **गिर्वणः** ) वाणियों से सेवनीय इन्द्र परमात्मन्! ( **सुतेषु** ) ज्ञान-कर्म-श्रद्धा रूप सोमरसों के अभिषुत हो जाने पर ( **गिरः** ) मेरी वाणियाँ ( **त्वा** ) तेरे पास ( **आ अस्थुः** ) आकर स्थित हो गयी हैं, ( **रथीः इव** ) जैसे रथ-स्वामी रथ पर स्थित होता है। वे मेरी वाणियाँ ( **त्वा अभि** ) तेरे अभिमुख होकर ( **समनूषत** ) भलीभाँति स्तुति कर रही हैं, ( **धेनवः गावः** ) दूध पिलाने वाली प्रीतियुक्त गौएँ ( **वत्सं न** ) जैसे बछड़े के अभिमुख होकर रंभाती हैं॥८॥

इस मन्त्र में दो उपमालंकारों की संसृष्टि और अनुप्रास अलंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—रथी जन जैसे रथ का आश्रय लेते हैं, वैसे स्तोताओं की वाणियाँ परमात्मा का आश्रय लें, और उसके सम्मुख हो ऐसे प्रेम से उसकी स्तुति करें जैसे गौएँ बछड़े को सम्मुख पाकर रंभाती हैं॥८॥

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर की स्तुति का विषय है।

**३५०. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।**
**शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु॥९॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! (**एत उ**) आओ, (**नु**) शीघ्र ही, तुम और हम मिलकर (**शुद्धम् इन्द्रम्**) पवित्र जगदीश्वर की (**शुद्धेन साम्ना**) पवित्र सामगान से (**स्तवाम**) स्तुति करें। (**शुद्धैः**) पवित्र (**उक्थैः**) स्तोत्रों से (**वावृध्वांसम्**) वृद्धि को प्राप्त हममें से प्रत्येक जन को (**आशीर्वान्**) आशीषों का अधिपति जगदीश्वर (**शुद्धैः**) पवित्र आशीर्वादों से (**ममत्तु**) आनन्दित करे॥९॥

इस मन्त्र में पूर्वार्ध में 'शुद्धं, शुद्धे' 'शुद्धेरु, शुद्धैरा' में छेकानुप्रास, और उत्तरार्ध में 'शुद्धे, शुद्धे' इन निरर्थकों की आवृत्ति में यमक अलंकार है। सम्पूर्ण मन्त्र में संयुक्ताक्षरों का वैशिष्ट्य है॥९॥

**भावार्थ** :—स्तोताओं के द्वारा शुद्ध सामगानों द्वारा प्रेम से स्तुति किया हुआ जगदीश्वर शुद्ध आशीर्वादों से उन्हें बढ़ाता और आनन्दित करता है॥९॥

इस मन्त्र पर सायणाचार्य ने यह इतिहास प्रदर्शित किया है—"पहले कभी इन्द्र वृत्र आदि असुरों का वध करके ब्रह्महत्या आदि के दोष से स्वयं को अशुद्ध मानने लगा। उस दोष के परिहार के लिए इन्द्र ने ऋषियों से कहा कि तुम मुझ अपवित्र को अपने साम से शुद्ध कर दो। तब उन्होंने शोधक साम से और शस्त्रों से उसे परिशुद्ध किया। बाद में शुद्ध हुए उस इन्द्र के लिए याग आदि कर्म में सोम आदि हवियाँ भी दीं।" पर इस इतिहास में देवता भी, वध्य को भी मार कर, पाप से लिप्त होते हैं यह कल्पना की गयी है, जो बड़ी असंगत है।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की आनन्ददायकता का वर्णन है।

**३५१. यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः।**
**सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः॥१०॥**

**पदार्थ** :—(**रयिन्तमः**) अतिशय ऐश्वर्ययुक्त (**यः**) जो (**वः**) तुम्हारे लिए (**रयिम्**) ऐश्वर्य को देता है, और (**द्युम्नवत्तमः**) अतिशय तेजस्वी (**यः**) जो (**द्युम्नैः**) तेजों से, तुम्हें अलंकृत करता है, (**सः**) वह (**सुतः**) हृदय में प्रकट हुआ (**सोमः**)

चन्द्रमा के समान आह्लादक और सोम ओषधि के समान रसागार परमेश्वर, हे (**स्वधापते**) अन्नों के स्वामी अर्थात् अन्नादि सांसारिक पदार्थों के भोक्ता (**इन्द्र**) विद्वन्! (**ते**) तुम्हारे लिए (**मदः**) आनन्ददायक (**अस्ति**) है॥१०॥

इस मन्त्र में 'रयिं, रयिं' में लाटानुप्रास अलंकार है। 'तमो, तमः' 'द्युम्नै, द्युम्न' में छेकानुप्रास है। य्, स्, त् और म् की पृथक्-पृथक् अनेक वार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है॥१०॥

**भावार्थ** :–हृदय में प्रत्यक्ष किया गया परमेश्वर योगी को समस्त आध्यात्मिक ऐश्वर्य, ब्रह्मवर्चस और आनन्द प्रदान करता है, अतः सबको यत्नपूर्वक उसका साक्षात्कार करना चाहिए॥१०॥

इस दशति में इन्द्र के महिमागान का वर्णन होने, उसके प्रति श्रद्धारस आदि का अर्पण करने, उससे ऐश्वर्य माँगने, उसका आह्वान होने तथा उसकी स्तुति के लिए प्रेरणा होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

**इति तृतीयोऽध्यायः॥**

# अथ चतुर्थोऽध्यायः

## प्रथमा दशतिः

**ऋषिः—१ भरद्वाजः; २ वामदेवः शाकपूतो वा; ३ प्रियमेधः; ४ प्रगाथः; ५ श्यावाश्व आत्रेयः; ६ शंयुः; ७ वामदेवः; ८ जेता माधुच्छन्दसः॥ देवता—१-४, ६, ८ इन्द्रः; ५ मरुतः; ७ दधिक्रावा अग्निः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर और आचार्य के प्रति मनुष्यों का कर्त्तव्य बताया गया है।

**३५२. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।**
**अरङ्गमाय जग्मयेऽ पश्चादध्वने नरः॥१॥**

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) जगदीश्वर के पक्ष में। हे नर! तू (**पिपीषते**) तेरी मित्रता के प्यासे, (**विदुषे**) सर्वज्ञ, (**अरङ्गमाय**) पर्याप्तरूप में धनादि प्राप्त कराने वाले, (**जग्मये**) सहायता के लिए सदा आगे बढ़ने वाले, और (**नरः**) मनुष्यों को (**अ-पश्चा-दध्वने**) पीछे न धकेलने वाले, प्रत्युत सदा विजयार्थ आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करने वाले इन्द्र जगदीश्वर के लिए (**विश्वानि**) अपनी सब मित्रताओं को (**प्रति भर**) भेंट कर।

(**द्वितीय**) आचार्य के पक्ष में। हे राजन् वा प्रजाजन! तुम (**पिपीषते**) गुरुकुल चलाने के लिए धनादि पदार्थों के प्यासे, (**अरङ्गमाय**) विद्या आदि में पारंगत, (**जग्मये**) क्रियाशील (**अ-पश्चा-दध्वने**) कभी पग न हटाने वाले, किन्तु सदा आगे बढ़ने वाले (**विदुषे**) विद्वान् आचार्य के लिए (**विश्वानि**) सब उत्तम धन आदियों को, और विद्याप्रदान तथा आचार-निर्माण के लिए (**नरः**) **प्रतिभाशाली बालकों को** (**प्रतिभर**) **सौंपो॥१॥**

**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥**

**भावार्थ :-सब राजा-प्रजा आदि को चाहिए कि वे जगदीश्वर** के साथ **मित्रता करें और विद्वानों को** धन, **धान्य आदि** से सत्कृत करके उन्हें विद्या तथा उपदेश देने के लिए निश्चिन्त कर दें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा जनसमाज के प्रति मनुष्य का कर्त्तव्य बताया गया है।

**३५३. आ नो वयो वयःशयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।**
**महान्तं पूर्विनेष्ठामुग्रं वचो अपावधीः॥२॥**

**पदार्थ** :-हे मानव! तू (**नः**) हम सबके (**वयोवयःशयम्**) अन्न-अन्न, आयु-आयु, प्राण-प्राण में विद्यमान, (**महान्तम्**) सर्वव्यापक होने से परिमाण में महान्, (**गह्वरेष्ठाम्**) हृदय-गुहा में प्रच्छन्न रूप से स्थित, (**महान्तम्**) गुणों में महान्, (**पूर्विणेष्ठाम्**) पूर्वजों से रचित भक्तिस्तोत्र, भक्तिकाव्य आदि में वर्णित इन्द्र परमेश्वर को (**आ**) अध्यात्मयोग से प्राप्त कर

और ( उग्रं वचः ) 'मारो-काटो-छेदो-भेदो' इत्यादि हिंसा-उपद्रव से उत्पन्न होने वाले 'हाय, बड़ा कष्ट है, बड़ी सिर में पीड़ा है, कैसे जीवन धारण करें' आदि रोग के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले, और 'हाय भूखे हैं, प्यासे हैं, कोई भी हमें नहीं पूछता, अन्न का एक दाना मुख में डाल दो, पानी की एक बूँद से जीभ गीली कर दो' इत्यादि भूख-प्यास से उत्पन्न होने वाले उग्र वचनों को ( **अपावधीः** ) दूर कर॥२॥

इस मन्त्र में 'वयो-वयः' में छेकानुप्रास तथा 'महान्तं' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि महामहिमाशाली जगदीश्वर की उपासना कर, उसका सर्वत्र प्रचार कर, जनजीवन से सब प्रकार के हाहाकार को समाप्त करके समाज, राष्ट्र और जगत् में शान्ति लायें॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और राजा को सम्बोधित किया गया है।

**३५४. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि।**
**तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **शविष्ठ** ) बलिष्ठ! ( **ऊतये** ) सांसारिक दुःख, विघ्न आदियों से रक्षा के लिए, और ( **सुम्नाय** ) ऐहिक एवं पारलौकिक सुख के लिए हम ( **तुविकूर्मिम्** ) बहुत-से कर्मों के कर्ता, ( **ऋतीषहम्** ) शत्रुसेनाओं के पराजयकर्ता, ( **सत्पतिम्** ) सदाचारियों के पालनकर्ता ( **त्वा** ) तुझ ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्यवान् परमात्मा वा राजा को ( **आवर्तयामसि** ) अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं, ( **यथा** ) जैसे ( **ऊतये** ) शत्रुओं से रक्षा के लिए और ( **सुम्नाय** ) यात्रा-सुख के लिए ( **तुविकूर्मिम्** ) व्यापार आदि द्वारा बहुत-से धनों को उत्पन्न करने में साधनभूत, ( **ऋतीषहम्** ) वायु, वर्षा आदि के आघात को सहने वाले, ( **सत्पतिम्** ) बैठे हुए श्रेष्ठ यात्रियों के पालन के साधनभूत ( **रथम्** ) भूयान, जलयान, विमान आदि को लोग प्रवृत्त करते हैं॥३॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥३॥

जैसे हवा, धूप, वर्षा आदि से बचाव के लिए और यात्रासुख के लिए रथ प्राप्तव्य होता है, वैसे ही रोग आदि से होने वाले दु:खों से त्राणार्थ और शिक्षा, चिकित्सा, न्याय, वर्णाश्रमधर्म की प्रतिष्ठा, शान्तिस्थापना आदि द्वार योगक्षेम के सुखप्रदानार्थ राजा को तथा त्रिविध तापों से त्राणार्थ और मोक्षसुख आदि के प्रदानार्थ परमात्मा को प्राप्त करना चाहिए।।३।।

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**३५५. स पूर्व्यो महोनां वेनः क्रतुभिरानजे।**
**यस्य द्वारा मनुः पिता देवेषु धिय आनजे॥४॥**

**पदार्थ** :–(**महोनाम्**) पूजनीयों में भी (**पूर्व्यः**) पूज्यता में श्रेष्ठ, (**वेनः**) मेधावी और कमनीय (**सः**) वह परमैश्वर्यवान् इन्द्र जगदीश्वर (**क्रतुभिः**) सृष्टिसंचालन आदि कर्मों से (**आनजे**) व्यक्त होता है, अनुमान किया जाता है, (**यस्य द्वारा**) जिस जगदीश्वर के द्वारा (**मनुः**) मननशील (**पिता**) शरीर का पालक जीवात्मा (**देवेषु**) शरीरवर्ती मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि में (**धियः**) उन-उनकी क्रियाओं को (**आनजे**) प्राप्त कराता है।।४।।

इस मन्त्र में नकार का अनुप्रास है, 'नजे' की आवृत्ति में यमक है।।४।।

**भावार्थ** :–संसार में दिखायी देने वाली सूर्यचन्द्रोदय, ऋतुचक्रप्रवर्तन आदि क्रियाएँ किसी कर्ता के विना नहीं हो सकतीं, अतः परमात्मा का अनुमान कराती हैं। देह का स्वामी जीवात्मा भी परमात्मा की ही सहायता से देह में स्थित मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि में संकल्प, निश्चय, प्राणन, दर्शन, स्पर्शन आदि क्रियाओं को प्रवृत्त करता है।।४।।

अगली ऋचा के 'मरुतः' देवता हैं। इसमें इन्द्रसहचारी मरुतों का शरीर में कार्य वर्णित किया गया है।

**३५६. यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा।**
**पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते॥५॥**

**पदार्थ** :–(**यदि**) जिस समय (**रथेषु**) देहरूप रथों में (**भ्राजमानाः**) तेज से दीप्यमान (**आशवः**) शीघ्रगामी मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय रूप शीर्षण्य प्राण (**मदिरम्**) आनन्दजनक (**मधु**) अपने-अपने विषयों संकल्प, अध्यवसाय, रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श के मधुर रस को (**पिबन्तः**) पान करते हुए (**आ वहन्ति**) रथी जीवात्मा को जीवनयात्रा कराते हैं, (**तत्र**) उस समय (**श्रवांसि**) यशों को (**कृण्वते**) उत्पन्न करते हैं।।५।।

**भावार्थ** :–देहरथ में नियुक्त मन, बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियों का ही यह कार्य है कि वे जीवात्मा के ज्ञान में साधन बनकर उसे यशस्वी बनाते हैं।।५।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि इन्द्रपदवाच्य परमात्मा और राजा कैसा है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**३५७. त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम्।**
१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठं विश्ववेदसम्॥६॥**

**पदार्थ** :–हे प्रजाजनो! मैं (**वः**) तुम्हारे व अपने हितार्थ (**त्यम् उ**) उस, (**अप्रहणम्**) किसी से न मारे जा सकने योग्य अथवा अन्याय से किसी को न मारने वाले, (**शवसः पतिम्**) बल और सेना के अधिपति, (**विश्वासाहम्**) सब शत्रुओं वा विघ्नों को परास्त करने वाले, (**नरम्**) नेता, (**शचिष्ठम्**) अतिशय कर्मनिष्ठ, (**विश्ववेदसम्**) ब्रह्माण्ड वा राष्ट्र के सब घटनाचक्र को जानने वाले (**इन्द्रम्**) शूरवीर परमात्मा वा राजा की (**गृणीषे**) गुण-कर्मों के वर्णन द्वारा स्तुति करता हूँ।।६।।

**भावार्थ** :–जो प्रजाओं का हित चाहते हैं उन मन्त्री, पुरोहित आदियों को चाहिए कि मन्त्रोक्त गुणों से अलंकृत जगदीश्वर का गुण-कर्मों के कीर्तन द्वारा और उसकी गरिमा के गान द्वारा सर्वत्र प्रचार करें और वैसे ही गुणी राजा को उसके गुणों के वर्णन द्वारा कर्त्तव्य के प्रति प्रोत्साहित करें।।६।।

अगले मन्त्र में 'दधिक्रावा' अग्नि देवता है। इस नाम से

परमात्मा, यज्ञाग्नि और राजा की स्तुति की गयी है।

**३५८. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।**
**सुरभि नो मुखा करत् प्र न आयूंषि तारिषत्॥७॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। मैं ( **जिष्णोः** ) विजयशील तथा विजय प्रदान करने वाले, ( **अश्वस्य** ) सब शुभ गुणों में व्याप्त, ( **वाजिनः** ) बल और विज्ञान से युक्त ( **दधिक्राव्णः** ) धारक पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि लोकों को अपनी-अपनी धुरी पर अथवा किसी पिण्ड के चारों ओर घुमाने वाले, अथवा स्तोत्र-धारकों, धर्म-धारकों वा सद्गुण-धारकों को कर्मयोगी बनाने वाले जगदीश्वर का ( **अकारिषम्** ) स्वागत करता हूँ। स्वागतवचन द्वारा सत्कृत वह जगदीश्वर ( **नः** ) हमारे ( **मुखा** ) मुखों को ( **सुरभि** ) सुगन्धित अर्थात् कटु-वचन, पर-निन्दा आदि से रहित मधुर सत्य-भाषण के सौरभ से सम्पन्न ( **करत्** ) करे, और ( **नः** ) हमारी ( **आयूंषि** ) आयुओं को ( **प्र तारिषत्** ) बढ़ाये।

( **द्वितीय** ) यज्ञाग्नि के पक्ष में। मैं ( **जिष्णोः** ) रोग आदि पर विजय पाने वाले, ( **अश्वस्य** ) फैलने के स्वभाव वाले, ( **वाजिनः** ) हव्यान्नों से युक्त ( **दधिक्राव्णः** ) हवियों को धारण कर रूपान्तरित करके देशान्तर में पहुँचा देने वाले आहवनीय अग्नि का ( **अकारिषम्** ) यज्ञ में उपयोग करता हूँ, अर्थात् उसमें हवियों को होम करता हूँ। आहुति दिया हुआ वह यज्ञाग्नि ( **नः** ) हमारे ( **मुखा** ) मुख को, अर्थात् मुखवर्ती नासिका-प्रदेश को ( **सुरभि** ) सुगन्धित ( **करत्** ) कर दे, और ( **नः आयूंषि प्रतारिषत्** ) हम अग्निहोत्रियों के आयु के वर्षों को बढ़ाये। अभिप्राय यह है कि नियम से अग्निहोत्र करते हुए हम चिरञ्जीवी हों।

अग्नि में होमे हुए सुगन्धित हव्य से सुगन्धित हुआ वायु जब श्वास-प्रश्वास-क्रिया फेफड़ों के अन्दर जाता है, तब रक्त को शुद्ध कर, उसमें जीवनदायक तत्त्व समाविष्ट करके, उसकी मलिनता को हरकर बाहर निकाल देता है। वेद में कहा भी है—"हे वायो, तू अपने साथ औषध अन्दर ला, जो

मल है उसे बाहर निकाल। तू सब रोगों की दवा है, तू विद्वान् वैद्यों का दूत होकर विचरता है।" (ऋ० १०।१३७।३) एक अन्य मन्त्र में वैद्य कह रहा है—"हे रोगी! मैं हवि के द्वारा तुझे जीवन देने के लिए अज्ञात रोग से और राजयक्ष्मा से छुड़ा दूँगा। यदि तुझे गठिया रोग ने जकड़ लिया है तो उससे भी वायु और अग्नि तुझे छुड़ा देंगे"। (ऋ० १०।१६१।१)

**( तृतीय )** राजा के पक्ष में। मैं **( जिष्णोः )** विजयशील **( अश्वस्य )** अश्व के समान राष्ट्र-रूप रथ को वहन करने वाले, **( वाजिनः )** अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त, बलवान् और युद्ध करने में समर्थ, **( दधिक्राव्णः )** बहुत-से लोगों तथा पदार्थों के धारक विमानादि यानों को चलवाने वाले राजा के **( अकारिषम् )** राजनियमों का पालन करता हूँ। **( सः )** वह राजा, सदाचारमार्ग में प्रवृत्त करके **( नः )** हम प्रजाजनों के **( मुखा )** मुखों को **( सुरभि )** यश के सौरभ से युक्त **( करत् )** करे, और **( नः )** हम प्रजाजनों की **( आयूंषि )** आयु के वर्षों को **( प्रतारिषत् )** बढ़ाये। भाव यह है कि आयुर्वेद के शिक्षण, चिकित्सा के सुप्रबन्ध, कृषि-व्यापार-पशुपालन के उत्कर्ष, हिंसा-उपद्रव आदि के निवारण, शत्रुओं के उच्छेद, इस प्रकार के सब उपायों द्वारा राष्ट्रवासियों को अकाल मृत्यु का ग्रास बनने से बचाये।।७।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है; तृतीय-चतुर्थ पादों में अन्त्यानुप्रास भी है। दधिक्रावा, अश्व और वाजी इन सबके अश्ववाचक होने से पुनरुक्ति प्रतीत होती है, किन्तु यौगिक अर्थ करने से पुनरुक्ति का परिहार हो जाता है, अतः पुनरुक्तवदाभास अलंकार है।।७।।

**भावार्थ** :—परमात्मा की स्तुति, अग्निहोत्र और राजनियमों के पालन द्वारा हमें यशःसौरभ और दीर्घायुष्य प्राप्त करना चाहिए।।७।।

महीधर ने इस मन्त्र पर यजुर्वेदभाष्य में कात्यायन श्रौतसूत्र की अश्वमेधविधि का अनुसरण करते हुए यह लिखा है कि घोड़े के पास सोयी हुई यजमान की प्रथम परिणीत पत्नी महिषी को वहाँ से उठाकर अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता, होता और

क्षत्ता नामक ऋत्विज् इस मन्त्र को पढ़े। साथ ही 'सुरभि नो मुखा करत्' की व्याख्या में लिखा है कि अश्लील भाषण से दुर्गन्ध को प्राप्त हुए मुखों को यज्ञ सुगन्धित कर दे। यह सब प्रलापमात्र है। कौन बुद्धिमान् ऐसा होगा जो पहले तो अश्लील भाषण करके मुखों को दुर्गन्धयुक्त करे और फिर उसकी शुद्धि का उपाय खोजे? 'कीचड़ लगाकर फिर उसे धोने की अपेक्षा कीचड़ को हाथ न लगाना ही अधिक अच्छा है' इस नीति का अनुसरण क्यों न किया जाये?

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर, सूर्य, राजा आदि की महिमा वर्णित है।

**३५९. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।**
**इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥८॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**पुराम्**) मन में दृढ़ हुई **तमोगुण की नगरियों** का (**भिन्दुः**) विदारक, (**युवा**) नित्य युवा रहने वाला अर्थात् अजर-अमर, (**कविः**) वेदकाव्य का कवि, अथवा क्रान्तदर्शी, (**अमितौजाः**) अपरिमित तेज वाला, (**वज्री**) न्याय-दण्ड को धारण करने वाला, (**पुरुष्टुतः**) बहुस्तुत (**इन्द्रः**) ब्रह्माण्ड का सम्राट् परमात्मा (**विश्वस्य कर्मणः**) सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि के भ्रमण, ऋतु-निर्माण, नदी-प्रवाह, वर्षा, पाप-पुण्य का फल प्रदान आदि सब कर्मों का (**धर्ता**) नियामक (**अजायत**) बना हुआ है॥

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। (**पुराम्**) शत्रु की नगरियों या किलेबन्दियों का (**भिन्दुः**) तोड़ने वाला, (**युवा**) तरुण, (**कविः**) राजनीतिशास्त्र का पण्डित व दूरदर्शी, (**अमितौजाः**) अपरिमित पराक्रम वाला, (**वज्री**) विविध शस्त्रास्त्रों का संग्रहकर्ता और उनके प्रयोग में कुशल, (**पुरुष्टुतः**) अनेक प्रजाजनों से प्रशंसित (**इन्द्रः**) शूरवीर राजा वा सेनापति (**विश्वस्य कर्मणः**) सब राजकाज वा सेनासंगठन-कार्य का (**धर्ता**) भार उठाने वाला (**अजायत**) होता है॥

(**तृतीय**) सूर्य के पक्ष में। (**पुराम्**) अन्धकार, बादल,

वर्फ आदि नगरियों का ( भिन्दुः ) विदारणकर्ता, ( युवा ) पदार्थों को मिलाने और अलग करने वाला, ( कविः ) अपनी धुरी पर घूमने वाला, अथवा पृथिवी, मंगल, बुध, चन्द्रमा आदि ग्रहोपग्रहों को अपने चारों ओर घुमाने वाला, ( अमितौजाः ) अपरिमित बल और प्रकाश वाला, ( वज्री ) किरणरूप वज्र वाला, ( पुरुष्टुतः ) बहुत-से खगोलज्योतिष को जानने वाले विद्वान् वैज्ञानिकों द्वारा वर्णन किया गया ( इन्द्रः ) सूर्य ( विश्वस्य कर्मणः ) सौरमण्डल में दिखायी देने वाले सब प्राकृतिक कर्मों का ( धर्ता ) धारक ( अजायत ) बना हुआ है॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे राष्ट्र का राजा सब राज्यकार्य का और सेनापति सेना के संगठनकार्य का नेता होता है, अथवा जैसे सूर्य सौरमण्डल का धारणकर्ता है, वैसे ही विविध लोक-लोकान्तरों के समष्टिरूप इस महान् ब्रह्माण्ड में विद्यमान सम्पूर्ण व्यवस्था का करने वाला राजाधिराज परमेश्वर है, यह सबको जानना चाहिए॥८॥

इस दशति में इन्द्र की महिमा का वर्णन होने, उसके प्रति आत्मसमर्पण आदि की प्रेरणा होने तथा इन्द्र नाम से राजा, सेनापति, आचार्य आदि का भी वर्णन होने से इस दशति के विषय की पर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## द्वितीया दशतिः

**ऋषिः—१, ३, ५ प्रियमेधः; २, १० वामदेवः; ४ मधुच्छन्दाः; ६ भरद्वाजः; ७ अत्रिः; ८ प्रस्कण्वः; ९ आप्त्यस्त्रितः॥ देवता—१-७ इन्द्रः; ८ उषाः; ९ विश्वेदेवाः; १० ऋक्सामौ॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में यह विषय है कि स्तुति किया परमेश्वर क्या करता है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २

**३६०. प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे।**

३ १ २ ३ १ २ ३ २३ १ २

**धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति॥१॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! ( **वः** ) तुम लोग ( **वन्दद्वीराय** ) वीरजनों से वन्दित ( **इन्दवे** ) तेजस्वी, स्नेह की वर्षा करने वाले और चन्द्रमा के समान आह्लादकारी इन्द्र परमात्मा के लिए ( **त्रिष्टुभम्** ) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों सुखों को स्थिर कराने वाली अथवा ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीन से स्थिर होने वाली ( **इषम्** ) प्रीति और श्रद्धा को ( **प्र प्र** ) प्रकृष्टरूप से समर्पित करो, समर्पित करो। प्रीति और श्रद्धा से पूजित वह ( **मेधसातये** ) योगयज्ञ की पूर्णता के लिए ( **पुरन्ध्या** ) पूर्णता प्रदान करने वाली ( **धिया** ) ऋतम्भरा प्रज्ञा से ( **आ विवासति** ) सत्कृत अर्थात् संयुक्त करता है॥१॥

**भावार्थ** :—वीरजन भी अपनी विजय का कारण परमात्मा को ही मानते हुए जिस परमात्मा की बार-बार वन्दना करते हैं, उसकी सभी लोग प्रीति और श्रद्धा के साथ वन्दना क्यों न करें॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र के सहयोगियों के विषय में कहा गया है।

**३६१. कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति।**
**ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) ब्रह्माण्ड के पक्ष में। विद्वान् लोग ( **यौ** ) जिन अग्नितत्त्व और सोमतत्त्व को ( **स्वर्विदः** ) प्रकाश वा आनन्द को प्राप्त कराने वाले ( **कश्यपस्य** ) सर्वद्रष्टा इन्द्र जगदीश्वर के ( **सयुजौ इति** ) सहयोगी ( **आहुः** ) कहते हैं, और ( **ययोः** ) जिनके ( **विश्वम् अपि** ) सारे ही ( **व्रतम्** ) कर्म को ( **यज्ञम् आहुः** ) यज्ञरूप कहते हैं ( **तौ** ) उन अग्नितत्त्व और सोमतत्त्व को ( **निचाय्य** ) जानकर, हे मनुष्यो! तुम ( **धीराः** ) पण्डित बनो।

इस मन्त्र का देवता इन्द्र होने से 'कश्यप' यहाँ इन्द्र का नाम है। वेद में उस इन्द्र के प्रधान सहचारी अग्नि और सोम हैं, क्योंकि अग्नि और सोम के साथ बहुत-से स्थलों में उसका वर्णन मिलता है।

जैसे 'इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ऋ॰ १।२१।६', 'इन्द्राग्नी वृत्रहणा

जुषेथाम्। ऋ० ७।९३।१ में अग्नि इन्द्र का सहचारी है और 'इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टम्। ऋ० २।३०।६। 'इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतम् अथ० ८।४।१' में सोम इन्द्र का सहचारी है। एक मन्त्र में इन्द्र, अग्नि और सोम तीनों एक साथ मिलते हैं–'यशा इन्द्रो यशा अग्निर्यशाः सोमो अजायत।' अथ० ६।५८।३। निरुक्त में भी इन्द्र के सहचारी देवों में सर्वप्रथम अग्नि और सोम ही परिगणित हैं (निरु० ७।१०)। यह जगत् अग्नि और सोम से (आग्नेय तत्त्व और सौम्य तत्त्व) से ही बना है। वे ही प्रश्नोपनिषद् में रयि और प्राण नाम से वर्णित किये गये हैं। वहाँ कहा गया है कि कबन्धी कात्यायन ने भगवान् पिप्पलाद के पास जाकर प्रश्न किया कि भगवन्! ये प्रजाएँ कहाँ से उत्पन्न हो गई हैं? उसे उन्होंने उत्तर दिया कि प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न करने की कामना से तप किया और तप करके रयि और प्राण के जोड़े को पैदा किया, इस विचार से कि ये दोनों मिलकर बहुत-सी प्रजाओं को उत्पन्न कर देंगे। वहीं पर प्राण और रयि को सूर्य-चन्द्र, उत्तरायण-दक्षिणायन, शुक्ल-कृष्ण पक्ष तथा अहोरात्र के रूप में वर्णित किया है। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा है कि सूर्य आग्नेय है, चन्द्रमा सौम्य है; दिन आग्नेय है, रात्रि सौम्य है; शुक्लपक्ष आग्नेय है, कृष्णपक्ष सौम्य है (श० १।६।३।२४)। ये ही अग्नि-सोम इन्द्र के सहचररूप में प्रस्तुत मन्त्र में अभिप्रेत हैं, ऐसा समझना चाहिए। इन्द्र परमेश्वर इन्हीं के माध्यम से जगत् को उत्पन्न करता है और उसका संचालन करता है। इनका सब कर्म यज्ञरूप है, यह भी मन्त्र में कहा गया है। अन्यत्र भी वेद अग्नि और सोम की महिमा वर्णित करते हुए कहता है–हे शुभकर्मों वाले अग्नि और सोम, तुम दोनों ने आकाश में चमकीले पिण्डों को धारण किया है, तुम ही पर्वतों पर बर्फ जम जाने से रुकी हुई नदियों को बहाते हो। हे अग्नि और सोम, तुम दोनों ब्रह्म से वृद्धि पाकर यज्ञ के लिए विशाल लोक को उत्पन्न करते हो (ऋ० १।९३।५, ६)। जो लोग इन्द्र के सहचारी इन अग्नि और सोम का यह वेदप्रतिपादित महत्त्व जान लेते हैं, वे ही पण्डित हैं।

**(द्वितीय)** शरीर के पक्ष में। विद्वान् लोग **(यौ)** जिन बुद्धि-मन अथवा प्राण-अपानरूप अग्नि-सोम को **(स्वर्विदः)** विवेक-प्रकाश तथा आनन्द प्राप्त करने वाले **(कश्यपस्य)** ज्ञान के द्रष्टा जीवात्मारूप इन्द्र के **(सयुजौ)** सहयोगी **(आहुः)** कहते हैं, और **(ययोः)** जिन बुद्धि-मन अथवा प्राण-अपान के **(विश्वम् अपि)** सारे ही **(व्रतम्)** कर्म को **(यज्ञम्)** ज्ञान-यज्ञ अथवा शरीरसंचालन-यज्ञ कहते हैं, (तौ) उन बुद्धि-मन अथवा प्राण-अपान को **(निचाय्य)** भलीभाँति जानकर, प्रयुक्त करके और सबल बनाकर, हे मनुष्यो, तुम **(धीराः)** ज्ञानबोध से युक्त अथवा शरीर-धारण में समर्थ होओ। अभिप्राय यह है कि बुद्धि और मन का सम्यक् उपयोग करके ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से ज्ञान एकत्र करने में समर्थ होओ और प्राणायाम से प्राणापानों को वश में करके शरीर-धारण में समर्थ होओ॥

**(तृतीय)** राष्ट्र के पक्ष में। राजनीतिज्ञ लोग **(यौ)** जिन सेनाध्यक्ष और **राज्यमन्त्री** रूप **अग्नि और सोम को** **(स्वर्विदः)** प्रजाओं को सुख **पहुँचाने** वाले, **(कश्यपस्य)** राजपुरुषों के कार्य और प्रजा के सुख-दुःख के द्रष्टा राजा के **(सयुजौ)** सहायक **(आहुः)** कहते हैं, और **(ययोः)** जिन सेनाध्यक्ष तथा राज्यमन्त्री के **(विश्वम् अपि)** सारे ही **(व्रतम्)** राज्यसंचालनरूप तथा शत्रुनिवारणरूप कर्म को **(यज्ञम्)** राष्ट्रयज्ञ का पूर्तिरूप **(आहुः)** कहते हैं, उनका **(निचाय्य)** सत्कार करके, हे प्रजाजनो, तुम **(धीराः)** धृत राष्ट्र वाले होओ।

**(चतुर्थ)** आदित्य और अहोरात्र के पक्ष में। विद्वान् लोग **(यौ)** जिन दिन-रात्रिरूप अग्नि और सोम को **(स्वर्विदः)** प्रकाश प्राप्त कराने वाले **(कश्यपस्य)** पदार्थों का दर्शन कराने वाले अथवा गतिमय पृथिव्यादि लोकों के रक्षक आदित्य के **(सयुजौ)** सहयोगी **(आहुः)** कहते हैं, और **(ययोः)** जिन दिन-रात्रि के **(विश्वम् अपि)** सारे ही **(व्रतम्)** कर्म को **(यज्ञम्)** यज्ञात्मक अर्थात् परोपकारात्मक **(आहुः)** बताते हैं **(तौ)** उन दिन-रात्रि को **(निचाय्य)** जानकर, हे मनुष्यो! तुम भी **(धीराः)** परोपकार-बुद्धि से युक्त होओ॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के सहचर अग्नितत्त्व और सोमतत्त्व को, जीवात्मा के सहचर मन और बुद्धि अथवा प्राण और अपान को, राजा के सहचर सेनाधीश और अमात्य को तथा सूर्य के सहचर दिन और रात्रि को भलीभाँति जानकर उनसे यथोचित लाभ सबको प्राप्त करने चाहिएँ॥२॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को इन्द्र के अर्चनार्थ प्रेरित किया गया है।

**३६२. अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत।**
**अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद् धृष्ण्वर्चत॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**नरः**) नेतृत्वशक्ति से युक्त स्त्री-पुरुषो! तुम (**अर्चत**) पूजा करो। हे (**प्रियमेधासः**) बुद्धिप्रेमी जनो! (**अर्चत**) पूजा करो। (**पुत्रकाः उत**) तुम्हारे पुत्र-पुत्री भी (**अर्चन्तु**) पूजा करें। (**पुरम् इत्**) पूर्ति ही करने वाले, (**धृष्णु**) अन्तःशत्रुओं तथा विघ्नों के धर्षणकर्ता इन्द्र जगदीश्वर की (**अर्चत**) पूजा करो॥३॥

इस मन्त्र में 'अर्चत' की पुनरुक्ति अधिकता, निरन्तरता तथा अवश्यकर्त्तव्यता को द्योतित करने के लिए है॥३॥

**भावार्थ** :—सब स्त्रीपुरुषों को चाहिए कि अपने पुत्र-पुत्री आदि परिवार सहित प्रातः-सायं नियम से परमेश्वर की पूजा किया करें। पूजा किया हुआ परमेश्वर पूजकों के मार्ग में आये शत्रुओं तथा विघ्नों को हटाकर उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से भरपूर करता है॥३॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि किस प्रयोजन से कैसा स्तोत्र इन्द्र के लिए उच्चारण करना चाहिए।

**३६३. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे।**
**शक्रो यथा सुतेषु नो रारणत् सख्येषु च॥४॥**

**पदार्थ** :—हमें पुत्र, स्त्री, मित्र आदि सहित (**पुरुनिष्षिधे**) बहुतों को पाप-पंक से अथवा संकट से उबारने वाले (**इन्द्राय**)

परम उपदेशक परमात्मा के लिए, ऐसा (**उक्थम्**) स्तोत्र (**शंस्यम्**) गान करना चाहिए, जो (**वर्धनम्**) हम स्तोताओं को बढ़ाने वाला हो, (**यथा**) जिससे (**शक्रः**) वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा (**नः**) हम स्तोताओं के (**सुतेषु**) पुत्रों को (**सख्येषु च**) और सखाओं को (**रारणत्**) अतिशय पुनः-पुनः प्रेरणात्मक उपदेश देता रहे॥४॥

**भावार्थ** :—स्तुति किया हुआ परमेश्वर स्तोताजनों को और उनके स्तोता पुत्र, मित्र आदि को पुरुषार्थ आदि की शुभ प्रेरणा और सदुपदेश देकर उनकी उन्नति करता है॥४॥

अगले मन्त्र में बलाधिपति परमेश्वर और राजा का आह्वान किया गया है।

**३६४. विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः।**
**एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम्॥५॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे इन्द्र जगदीश्वर! (**विश्वानरस्य**) सब जगत् के संचालक (**अनानतस्य**) कहीं भी न झुकने वाले अर्थात् पराजित न होने वाले (**शवसः**) बल के (**पतिम्**) अधीश्वर (**वः**) आपको (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों की (**एवैः**) सत्कामनाओं की पूर्तियों के लिए, और (**रथानाम्**) उनके शरीररूप रथों को (**ऊती**) लक्ष्य के प्रति प्रेरित करने तथा रक्षित करने के लिए, मैं (**हुवे**) पुकारता हूँ॥

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे राजन्! (**विश्वानरस्य**) सबसे आगे जाने वाली, (**अनानतस्य**) शत्रुओं के आगे न झुकने वाली अर्थात् उनसे पराजित न होने वाली (**शवसः**) सेना के (**पतिम्**) स्वामी (**वः**) आपको (**चर्षणीनाम्**) प्रजाजनों की (**एवैः**) महत्त्वाकांक्षाओं तथा प्रारब्ध कार्यों की पूर्ति के लिए, और (**रथानाम्**) विमानादि यानों को (**ऊती**) चलाने के लिए (**हुवे**) पुकारता हूँ॥५॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर ही जीवात्माओं को उनकी जीवनयात्रा के लिए कर्मानुसार उत्कृष्ट मानव-शरीररूप रथ प्रदान करता

है। वैसे ही राजा राष्ट्र में प्रजाजनों की शीघ्र यात्रा के लिए विमानादि रथों का निर्माण कराये॥५॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि परमेश्वर के ध्यान से क्या फल होता है।

**३६५. स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः।**
**ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति॥६॥**

**पदार्थ** :—हे परम धीमान् इन्द्र परमेश्वर! (**यः नरः**) जो मनुष्य (**मर्तस्य**) मारने वाले, (**शमतः**) लौकिक शान्ति को तथा मोक्षरूप परमशान्ति को देने वाले, (**दिवः**) कमनीय (**ते**) आपके (**धिया**) ध्यान में मग्न होता है, (**सः**) वह, (**सः घ**) निश्चय से वही, (**बृहतः**) महान्, (**दिवः**) ज्योतिर्मय आपकी (**ऊती**) रक्षा से (**अंहः न**) पाप के समान (**द्विषः**) द्वेषवृत्तियों को भी (**तरति**) पार कर लेता है॥६॥

**भावार्थ** :—जैसे मनुष्य मरणधर्मा होने से 'मर्त' कहलाता है, वैसे ही जगदीश्वर मारने वाला होने से 'मर्त' है। वेद में कहा भी है—"जो मारता है, जो जिलाता है।" (अथ॰ १३।३।३) मारने वाला होने से उसके नाम मर्त, मृत्यु, शर्व और यम हैं, जन्म देने और प्राण प्रदान करने के कारण वह भव, जनिता, प्राण आदि कहाता है। उसके ध्यान से बल पाकर मनुष्य सब विघ्नों और समस्त शत्रुओं को पार कर सकता है॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र से याचना की गयी है।

**३६६. विभोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो।**
**अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (**शतक्रतो**) बहुत ज्ञानी तथा बहुत-से कर्मों को करने वाले (**इन्द्र**) विश्वम्भर परमात्मन्! (**विभोः ते**) व्यापक आपके (**राधसः**) शम, दम, न्याय, सत्य, अहिंसा आदि आध्यात्मिक और चाँदी, सोना, हीरा, मोती, मणि, माणिक्य, विद्या, आरोग्य, यश, चक्रवर्ती राज्य आदि भौतिक धन की

( रातिः ) देन ( विभ्वी ) बड़ी व्यापक है। ( अथ ) इस कारण, हे ( विश्वचर्षणे ) विश्वद्रष्टा! हे ( सुदत्र ) शुभ दानी जगदीश्वर! आप ( नः ) हमारे लिए ( द्युम्नम् ) आत्मिक तेज, भौतिक धन और उससे उत्पन्न होने वाले यश को ( मंहय ) प्रदान कीजिए।।

इस मन्त्र की राजा तथा आचार्य के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए। व्यापक धन वाले राजा का धनदान व्यापक होता है, और व्यापक विद्या वाले आचार्य का विद्यादान व्यापक होता है। राजा गुप्तचर रूपी आँखों से सकलद्रष्टा होता है, और आचार्य अपने ज्ञान के बल से सकलद्रष्टा होता है।।७।।

इस मन्त्र में 'विभु परमात्मा की देन भी विभु है' इसमें समालंकार व्यङ्ग्य है, क्योंकि समालंकार वहाँ होता है जहाँ अनुरूप वस्तुओं के मिलन की प्रशंसा होती है।।७।।

**भावार्थ** :—जो जगदीश्वर, राजा और आचार्य धन, विद्या, तेज, यश आदि की प्रचुर वर्षा करते हैं, वे हमारे लिए भी इनकी धारा को प्रवाहित करें।।७।।

अगले मन्त्र का देवता उषा है। इसमें यह वर्णित है कि प्राकृतिक उषा के समान आध्यात्मिक उषा के प्रादुर्भाव होने पर कौन क्या करते हैं।

**३६७. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि।**
**उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि॥८॥**

जैसे प्रभात में सूर्योदय से पूर्व प्राची दिशा के आकाश में उषा प्रकाशित होती है, वैसे ही अध्यात्म-साधना में तत्पर योगियों के हृदयाकाश में परमात्मारूप सूर्य के उदय से पूर्व उसके आविर्भाव की द्योतक आत्मप्रभारूप उषा खिलती है। उसी को यहाँ उषा नाम से कहा गया है।

**पदार्थ** :—हे ( अर्जुनि ) जनमानस में प्रकट होती हुई शुभ्र, सत्त्वगुणप्रधान अध्यात्म-प्रभा! ( दिवः ) आत्मलोक के ( अन्तेभ्यः परि ) प्रान्तों से ( ते ) तेरे ( ऋतून् अनु ) आगमनों पर ( पतत्रिणः वयः चित् ) पंखों वाले पक्षियों के समान ( पतत्रिणः ) उत्क्रमणशील, अर्थात् मूलाधार आदि निचले-निचले चक्रों से

ऊपर-ऊपर के चक्रों में प्राण के उत्क्रमण के लिए प्रयत्न करने वाले योगीजन, और (**द्विपात्**) अपरा और परा विद्या रूप दो प्राप्तव्य पदार्थों वाले, अथवा ज्ञान और कर्म रूप दो गन्तव्य मार्गों वाले, अथवा अभ्युदय और निःश्रेयस रूप दो गन्तव्य मार्गों वाले, और (**चतुष्पात्**) मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार इन अन्तःकरणचतुष्टयरूप साधनों वाले, अथवा क्रमशः सुख-दुःख-पुण्य-अपुण्य विषयों वाली मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा ये चार वृत्तियाँ जिनके चित्तप्रसादन के उपाय हैं वे, अथवा बाह्य-आभ्यन्तर-स्तम्भवृत्ति-बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी ये चार प्राणायाम जिनके प्रकाशावरणक्षय के उपाय हैं वे, अथवा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चार पुरुषार्थों वाले मनुष्य (प्रारन्) प्रगति में तत्पर हो जाते हैं॥८॥

इस मन्त्र में 'वयः चित् पतत्रिणः' में श्लिष्टोपमालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे प्रभातकालीन प्राकृतिक उषा के खिलने पर पंखयुक्त पक्षी, दोपाये मनुष्य और चौपाये पशु नींद छोड़कर सचेष्ट और प्रयत्नशील होते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक उषा के प्रकट होने पर योगमार्ग में प्रवृत्त, आगे-आगे उत्क्रान्ति करने वाले, दो साधनों या चार साधनों वाले योगीजन अपने हृदय में और जन-मानस में अध्यात्म-सूर्य के उदय के लिए सचेष्ट हो जाते हैं॥८॥

अगले मन्त्र के देवता 'विश्वेदेवाः' हैं। इसमें देवों के विषय में तीन प्रश्न उठाये गये हैं।

**३६८. अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः।**
**कद्ध ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**देवाः**) अपने-अपने विषय के प्रकाशक ज्ञानेन्द्रियरूप देवो! (**अमी ये**) ये जो तुम (**दिवः**) ऊर्ध्वस्थान सिर के (**मध्ये**) अन्दर (**रोचने**) रोचमान अपने-अपने गोलक में (**आ स्थन**) आकर स्थित हुए हो, अथवा, हे (**देवाः**) प्रकाशक सूर्यकिरणो! (**अमी ये**) ये जो तुम (**दिवः**) द्युलोक के (**मध्ये**) बीच (**रोचने**) दीप्तिमान् सूर्य में (**आ स्थन**)

आकर स्थित हो, अथवा, हे (**देवाः**) ज्ञान के प्रकाश से युक्त तथा ज्ञान के प्रकाशक विद्वानो! (**अमी ये**) ये जो तुम (**दिवः**) कीर्ति से प्रकाशित राष्ट्र के (**मध्ये**) अन्दर (**रोचने**) यशस्वी पद पर (**आ स्थन**) नियुक्त हुए हो, उन तुमसे पूछता हूँ कि (**कत्**) क्या (**वः**) तुम्हारा (**ऋतम्**) सत्य है, (**कत्**) क्या (**अमृतम्**) अमरतत्त्व है, (**का**) और क्या (**वः**) तुम्हारी (**प्रत्ना**) पुरातन (**आहुतिः**) होमक्रिया है?॥९॥

**भावार्थ** :—यहाँ उत्तर दिये बिना ही केवल प्रश्न करके जिज्ञासा उत्पन्न की गयी है कि इन प्रश्नों के उत्तर अपनी प्रतिभा से स्वयं दो। इन प्रश्नों के उत्तर ये हो सकते हैं— सिर में जो ज्ञानेन्द्रियरूप देव स्थित हैं उनका ऋत है, जीवात्मा में सत्यज्ञान को पहुँचाना; उनका अमृत है वास्तविक इन्द्रियतत्त्व, जो देह के साथ इन्द्रिय-गोलकों के विनष्ट हो जाने पर भी मरता नहीं, प्रत्युत सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहता है; उनकी सनातन आहुति है शरीररक्षारूप यज्ञ में तथा ज्ञानप्रदानरूप यज्ञ में अपना होम करना। इसी प्रकार द्युलोकस्थ सूर्य मे जो किरण-रूप देव स्थित हैं, उनका ऋत है वह सत्यनियम जिसके अनुसार प्रतिदिन सूर्योदय के साथ वे आकाश और भूमण्डल में व्याप्त होते हैं; उनका अमृत है शुद्ध मेघ-जल, जिसे वे समुद्र आदि से भाप बनाकर ऊपर ले जाते हैं; उनकी सनातन आहुति है मेघजल का पार्थिव अग्नि में होम करना, जिससे पृथिवी पर ओषधि, वनस्पति आदि उगती हैं और प्राणी जीवन धारण करते हैं, अथवा सब ग्रहोपग्रहों में अपना होम करना, जिससे पृथिवी, मंगल, बुध, चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र में जो विद्या दान करने वाले विद्वान् लोग हैं उनका ऋत है वह सत्यनिष्ठा जिसका अनुसरण कर वे विद्यादान में दत्तचित्त होते हैं; उनका अमृत है वह ज्ञान जिसे वे सत्पात्रों को देते हैं; उनकी सनातन आहुति है अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ में अपना होम करना, इत्यादि सुधी जनों को स्वयं ऊहा कर लेनी चाहिए॥९॥

विवरणकार माधव ने यह देखकर कि इस ऋचा का ऋषि आप्त का पुत्र त्रित है और देवता 'विश्वेदेवाः' हैं, इस

पर निम्नलिखित इतिहास लिखा है—"आप्त ऋषि के तीन पुत्र थे, एकत, द्वित और त्रित। उन्होंने यज्ञ करने की इच्छा से यजमानों से गौएँ माँगीं और पा लीं। उन्हें लेकर वे घर चल पड़े। जब वे सरस्वती नदी के किनारे-किनारे जा रहे थे तब परले पार बैठे गवादक ने उन्हें देख लिया। वह उठा और सरस्वती के जलों को पार करके रात में उसने उनको डराया। जब वे डरकर भागे तब उनमें से त्रित घास-फूस और लताओं से ढके हुए एक निर्जल कुएँ में गिर पड़ा। कुएँ में गिरने का कारण अन्य कुछ लोग यह बताते हैं कि एकत और द्वित को कम गौएँ मिली थीं, त्रित को बहुत सारी मिल गयी थीं, इसलिए जान-बूझकर उन्होंने त्रित को कुएँ में धकेल दिया था। वहीं उसके मन में आया कि मैंने यज्ञ का संकल्प किया था, अब यदि बिना यज्ञ किये ही मर जाता हूँ तो मेरा कल्याण नहीं होगा, इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि यहाँ कुएँ में पड़ा-पड़ा ही मैं सोम-पान कर लूँ। वह यह विचार कर ही रहा था कि अकस्मात् ही उसने उसी कुएँ में एक लता उतरी हुई देखी। उसने उसे लेकर और यह सोम ही है ऐसा मन में निश्चय करके अन्य भी यज्ञ-साधनों का मन में संकल्प करके बजरी को सोम कूटने के सिल-बट्टे बनाकर उस लता को अभिषुत किया और अभिषुत करके देवों को पुकारा। पुकारे गये देवों को पुकारे जाने का कारण समझ में न आया, अतः वे आविग्न हो उठे।

बृहस्पति ने भी पुकार को सुना और सुनकर वह देवों से बोला कि त्रित का यज्ञ है वहाँ चलते हैं। तब वे सब देव वहाँ आये। उन्हें आया देखकर कुएँ से उद्धार की इच्छा वाले त्रित ने उनकी स्तुति की और उन्हें उपालम्भ दिया कि तुम्हारा सत्यासत्य का विवेक नष्ट हो गया है, तुम बड़े अकृतज्ञ हो कि मुझे इस कुएँ से बाहर नहीं निकालते हो। त्रित का उपालम्भ ही प्रस्तुत ऋचा में प्रकट किया गया है, इत्यादि।" यह सब कल्पना-कला का विलास है, वास्तविकता इसमें कुछ भी नहीं है, यह सुधी जन स्वयं ही समझ लें।

अगले मन्त्र का देवता 'ऋक्सामौ' है, इसमें ऋक् और साम के अध्ययन का विषय है।

**३६९. ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कृण्वते।**
**वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः॥१०॥**

**पदार्थ :**—हम (**ऋचम्**) ऋग्वेद का, और (**साम**) सामवेद का (**यजामहे**) अर्थज्ञानपूर्वक तथा गीतिज्ञानपूर्वक, अध्ययन करते हैं, और अध्यापन कराते हैं, (**याभ्याम्**) जिनसे अर्थात् जिनका अध्ययन-अध्यापन करके (**कर्माणि**) तदुक्त कर्मों को वेदपाठी लोग (**कृण्वते**) करते हैं। (**ते**) वे ऋग्वेद और सामवेद (**सदसि**) निवासगृह तथा सभागृह में (**राजतः**) शोभा पाते हैं, क्योंकि वहाँ उनका पाठ और गान किया जाता है। और वे (**देवेषु**) विद्वानों में (**यज्ञम्**) यज्ञ-भावना को (**वक्षतः**) प्राप्त कराते हैं॥१०॥

**भावार्थ :**—हमें चाहिए कि ऋग्वेद, सामवेद, सामयोनि ऋचा, ऋचा पर किया जाने वाला सामगान यह सब योग्य गुरुओं से अर्थज्ञानपूर्वक पढ़कर घर में, सभा में और विभिन्न समारोहों के अवसरों पर सस्वर वेदपाठ और सामगान किया करें॥१०॥

इस दशति में इन्द्र नाम से और कश्यप नाम से इन्द्र का स्मरण करने से, उसकी अर्चनार्थ प्रेरणा होने से, उसके ध्यान का फल प्रतिपादित होने से, उसके दान की याचना होने से, दिव्य उषा का प्रभाव वर्णित होने से और ऋक् तथा साम के अध्ययन का संकल्प वर्णित होने इस दशति के विषय की पूर्व-दशति के विषय के साथ संगति है॥

## तृतीया दशतिः

**ऋषिः—१ रेभः; २ सुवेदाः शैलूषिः; ३ वामदेवः; ४, ७, ८ सव्य आङ्गिरसः; ५ विश्वामित्रः; ६ कृष्ण आङ्गिरसः; ९ भरद्वाजः; १० मेधातिथिः; ११ कुत्सः॥ देवता—१-८, १०, ११ इन्द्रः; ९ द्यावापृथिवी॥ छन्दः—१-९, ११ जगती; १० महापङ्क्तिः॥ स्वरः—१-९, ११ निषादः; १० पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में यह वर्णित है कि कैसे परमेश्वर और वीरपुरुष को लोग सम्राट् बनाते हैं।

**३७०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे। क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम्॥१॥**

**पदार्थ** :–(**विश्वाः**) सब (**पृतनाः**) शत्रुसेनाओं को (**अभिभूतरम्**) अतिशय पराजित करने वाले, (**वरे**) उत्कृष्ट (**स्थेमनि**) स्थिरता में विद्यमान, (**आ मुरीम्**) चारों ओर प्रलयकर्ता अथवा विपदाओं के संहारक (**उत**) और (**उग्रम्**) प्रचण्ड, (**ओजिष्ठम्**) सबसे बढ़कर ओजस्वी, (**तरसम्**) तरने और तराने में समर्थ, (**तरस्विनम्**) अति बलवान् (**इन्द्रम्**) परमेश्वर वा वीरपुरुष को (**नरः**) प्रभुभक्त व राजभक्त लोग (**सजूः**) इकट्ठे मिलकर (**ततक्षुः**) स्तुतियों व उत्साह-वचनों से तीक्ष्ण करते हैं (**च**) और (**राजसे**) हृदय-साम्राज्य में वा राष्ट्र में राज्य करने के लिए और (**क्रत्वे**) कर्मयोग की प्रेरणा देने के लिए अथवा कर्म करने के लिए (**जजनुः**) सम्राट् के पद पर अभिषिक्त करते हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'तरसं, तरस्विनम्' में छेकानुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, दुःख, दौर्मनस्य आदि की सेनाओं के पराजेता, अविचल, प्रलयकर्ता, अति ओजस्वी, तारक, बलिष्ठ परमात्मा को उपासकजन अपना हृदय-सम्राट् बनाते हैं, वैसे ही प्रजाजन शत्रुविजयी, दृढ़संकल्पवान्, विपत्तिविदारक, संकटों से तरने-तराने में समर्थ शूरवीर मनुष्य को उत्साहित करके राजा के पद पर अभिषिक्त करें॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से जगदीश्वर की महिमा का गान किया गया है

**३७१. श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद् दस्युं नर्यं विवेरपः। उभे यत्त्वा रोदसी धावतामनु भ्यसात्ते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश्वर! मैं (**ते**) तेरे (**प्रथमाय**) सर्वोत्कृष्ट (**मन्यवे**) तेज के प्रति (**श्रत् दधामि**) श्रद्धा करता हूँ, (**यत्**) क्योंकि, तू (**दस्युम्**) यज्ञादि कर्मों के विध्वंसक दुर्भिक्ष को अथवा रात्रि के अन्धकार को (**अहन्**) नष्ट करता है, (**नर्यम्**) मनुष्यों के हितकर रूप में (**अपः**) मेघ-जलों को (**विवेः**) भूमि पर बरसाता है, और (**यत्**) क्योंकि (**उभे रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी-लोक दोनों (**त्वा**) तेरे (**अनु धावताम्**) पीछे-पीछे दौड़ते हैं। हे (**अद्रिवः**) प्रतापरूप वज्रवाले! तेरे (**शुष्मात्**) बल से (**पृथिवी चित्**) अन्तरिक्ष भी (**भ्यसाते**) भय से काँपता है॥२॥

**भावार्थ** :—सूर्य के प्रकाश से रात्रि के अन्धकार का निवारण होना, बादल से वर्षा होना, द्यावापृथिवी के मध्य में विद्यमान लोक-लोकान्तरों का नियन्त्रण होना, सूर्य और भूमि का परस्पर सामंजस्य होना इत्यादि जो कुछ भी व्यवस्था जगत् में दिखायी देती है उसका करने वाला जगदीश्वर ही है। इसलिए हमें उसके प्रताप पर श्रद्धा करनी चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है।

**३७२. समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद्**
**भूरतिथिर्जनानाम्। स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं**
**वर्त्तनीरनु वावृत एक इत्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे प्रजाओ! (**विश्वाः**) तुम सब (**ओजसा**) तेज और बल से (**दिवः**) सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, नीहारिका आदि सहित समस्त खगोल के (**पतिम्**) स्वामी इन्द्र जगदीश्वर को (**समेत**) प्राप्त करो, (**यः**) जो (**एकः इत्**)) एक ही है, और (**जनानाम्**) सब स्त्री-पुरुषों का (**अतिथिः**) अतिथि के समान पूज्य (**भूः**) है। (**पूर्व्यः**) पुरातन भी (**सः**) वह (**नूतनम्**) नवीन उत्पन्न जड़-चेतन जगत् को (**आ जिगीषन्**) जीत लेता है, क्योंकि वह पुराणपुरुष सर्वाधिक महिमा वाला है। (**तम्**) उस जगदीश्वर की ओर (**एकः इत्**) एक ही (**वर्तनीः**) मार्ग—अर्थात् अध्यात्ममार्ग, न कि भोगमार्ग (**अनु वावृते**) जाता

है। उसी मार्ग पर चलकर उसे पाया जा सकता है।।३।।

**भावार्थ** :—अकेला भी परमेश्वर सब लोकों का अधिपति, सबसे अधिक पूज्य और महिमा में सबसे बड़ा है। उसे पाने के लिए एक धर्ममार्ग का ही आश्रय लेना चाहिए।।३।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर के प्रति उद्‌गार प्रकट किये गये हैं।

**३७३. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो। न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः॥४॥**

**पदार्थ** :—हे **(पुरुष्टुत)** बहुत यशोगान किये गये अथवा बहुतों से यशोगान किये गये, **(प्रभूवसो)** समर्थ और निवासक **(इन्द्र)** जगदीश्वर! **(इमे)** ये **(ते)** वे लब्धप्रतिष्ठ **(वयम्)** हम उपासक **(ते)** तुम्हारे हो गये हैं, **(ये)** जो **(त्वा आरभ्य)** तुम्हारा आश्रय लेकर **(चरामसि)** विचर रहे हैं। हे **(गिर्वणः)** स्तुतिवाणियों से संभजनीय भगवन्! **(त्वत् अन्यः)** तुमसे भिन्न कोई भी **(गिरः)** हमारी स्तुतिवाणियों का **(न हि)** नहीं **(सघत्)** पात्र हो सकता है। **(तत्)** इस कारण तुम **(नः वचः)** हमारे स्तुतिवचन की **(प्रति हर्य)** कामना करो, **(क्षोणीः इव)** जैसे कोई राजा भूमियों की कामना करता है।।४।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है। 'गिर्, गिरः' में छेकानुप्रास है।।४।।

**भावार्थ** :—जो परमात्मा के साथ हार्दिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उन्हीं की स्तुतियों को वह सुनता है।।४।।

अगले मन्त्र में यह विषय है कि वह जगदीश्वर और राजा कैसा है, जिसकी हम स्तुति करें।

**३७४. चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीर-भ्यनूषत। वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे॥५॥**

**पदार्थ** :–(**चर्षणीधृतम्**) मनुष्यों के धारणकर्ता, (**मघवानम्**) प्रशस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय, (**सुवृक्तिभिः**) शुभ क्रियाओं से (**वावृधानम्**) वृद्ध, (**पुरुहूतम्**) बहुतों से पुकारे गये, (**अमर्त्यम्**) अमर कीर्ति वाले, (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**जरमाणम्**) सत्कर्मकर्ताओं की प्रशंसा करने वाले अथवा सत्कर्मों का उपदेश करने वाले (**इन्द्रम्**) परमेश्वर वा राजा को (**बृहतीः**) महान् (**गिरः**) वेदवाणियाँ अथवा मेरी अपनी वाणियाँ (**अभ्यनूषत**) स्तुति अथवा प्रशंसा का विषय बनाती हैं॥५॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है, विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर भी है॥५॥

**भावार्थ** :–जैसे सब मनुष्यों का धारणकर्ता, शुभकर्मा, अमरकीर्ति, सत्कर्मों का उपदेष्टा परमेश्वर सबसे स्तुति किया जाता है, वैसे ही उन गुणों से युक्त राजा भी प्रजाओं की प्रशंसा का पात्र बनता है॥५॥

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर की स्तुति का विषय है।

**३७५. अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशती रनूषत। परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये॥६॥**

**पदार्थ** :–(**स्वर्युवः**) विवेक-प्रकाश की कामना वाली, (**सध्रीचीः**) मिलकर उद्यम करने वाली, (**उशतीः**) प्रीतियुक्त (**विश्वाः**) सब (**मतयः**) मेरी बुद्धियाँ (**इन्द्रं वः**) हृदयसम्राट् आप जगदीश्वर के (**अच्छ**) अभिमुख होकर (**अनूषत**) स्तुति कर रही हैं, और वे (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**मर्यं न शुन्ध्युम्**) अग्नि के समान शोधक, (**मघवानम्**) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यप्रदाता आपका (**परिष्वजन्त**) आलिंगन कर रही हैं, (**जनयः**) स्त्रियाँ (**यथा पतिम्**) जैसे पति का आलिंगन करती हैं॥६॥

इस मन्त्र में दो उपमालंकारों की संसृष्टि है॥६॥

**भावार्थ** :–जो परमेश्वर अग्नि के सदृश हमारे हृदयों का

शोधक और सद्विचाररूप ऐश्वर्यों का प्रदाता है, उसके प्रति सबको अपनी मतियाँ सदा प्रवृत्त करनी चाहिएँ॥६॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि वाणियों द्वारा जगदीश्वर और राजा की सबको अर्चना करनी चाहिए।

**३७६. अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्। यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत॥७॥**

**पदार्थ** :–(**त्यम्**) उस प्रसिद्ध, (**मेषम्**) सुखों से सींचने वाले, (**पुरुहूतम्**) बहुतों से पुकारे गये, (**ऋग्मियम्**) अर्चना के योग्य, (**वस्वः अर्णवम्**) धन के समुद्र (**इन्द्रम्**) परमेश्वर वा राजा को (**गीर्भिः**) वाणियों से (**मदत**) हर्षयुक्त करो। (**यस्य**) जिस परमेश्वर वा राजा की (**द्यावः**) दीप्तियाँ, तेजस्विताएँ (**मानुषम्**) मनुष्य का (**न विचरन्ति**) अपकार नहीं करतीं, उस (**मंहिष्ठम्**) अतिशय महान् व दाता (**विप्रम्**) मेधावी विद्वान् परमेश्वर व राजा को (**भुजे**) अपने पालन के लिए (**अर्चत**) पूजित वा सत्कृत करो॥७॥

'वस्वः अर्णवम्' में समुद्रवाची अर्णव पद का लक्षणावृत्ति से निधि लक्ष्यार्थ होता है, निधि न कहकर अर्णव कहने में अतिशय धनवत्त्व व्यङ्ग्य है। इन्द्र में अर्णव का आरोप होने से रूपक अलंकार है॥७॥

**भावार्थ** :–जैसे सुखवर्षक, ऐश्वर्य का पारावार, सबसे अधिक महान्, सबसे बड़ा दानी, मेधावी परमेश्वर सबसे पूजा करने योग्य है, वैसे ही इन गुणों से युक्त राजा प्रजाजनों से सत्कृत और प्रोत्साहित किये जाने योग्य है॥७॥

विवरणकार माधव ने इस मन्त्र पर यह इतिहास लिखा है–"अङ्गिरा नामक ऋषि था। उसने इन्द्र को पुत्र रूप में पाने की याचना करते हुए आत्म-ध्यान किया। उसके योगैश्वर्य के बल से उसी ध्यान के फलस्वरूप उसे सव्य नाम से इन्द्र पुत्र रूप में प्राप्त हुआ। उसे इन्द्र मेष का रूप धारण करके हर ले गया। यह कथा देकर वे कहते हैं कि इसी इतिहास

को बताने वाली प्रस्तुत ऋचा है, जिसमें मेषरूपधारी इन्द्र की स्तुति की गयी है।" किन्तु यह घटना वास्तविक नहीं है। मन्त्र का ऋषि आङ्गिरस सव्य है, और मन्त्र में इन्द्र को मेष कहा गया है, यही देखकर उक्त कथा रच ली गयी है।

सायण ने पहले मेष शब्द को तुदादिगण की स्पर्धार्थक मिष धातु से निष्पन्न मानकर 'मेष' का यौगिक अर्थ 'शत्रुओं से स्पर्धा करने वाला' करके भी फिर वैकल्पिक रूप से यह इतिहास भी दे दिया है कि—कण्व का पुत्र मेधातिथि यज्ञ कर रहा था, तब इन्द्र मेष का रूप धरकर आया और उसने उसका सोमरस पी लिया। तब ऋषि ने उसे मेष कहा था, इसलिए अब भी इन्द्र को मेष कहते हैं। यह कथा भी काल्पनिक है, वास्तव में घटित किसी इतिहास का वर्णन इस मन्त्र में नहीं है, यह सुधीजन समझ लें।।

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर वा राजा की अर्चना का विषय है।

**३७७. त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः**
**साकमीरते। अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं**
**ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे सखे! तू (**त्यम्**) उस प्रसिद्ध, (**मेषम्**) सुखों से सींचने वाले, (**स्वर्विदम्**) भूमि पर सूर्य के प्रकाश को अथवा राष्ट्र में बिजली के प्रकाश को प्राप्त कराने वाले जगदीश्वर वा राजा की (**सु महय**) भलीभाँति पूजा वा सत्कार कर, (**यस्य**) जिस जगदीश्वर वा राजा की (**शतम्**) सैकड़ों जन (**साकम्**) साथ मिलकर (**सुभुवः**) उत्तम स्तुतियों को (**ईरते**) उच्चारण करते हैं। मैं भी (**वाजम्**) बलवान् (**हवनस्यदम्**) आह्वान के प्रति तुरन्त पहुँचने वाले, (**अत्यम्**) निरन्तर कर्मशील (**इन्द्रम्**) जगदीश्वर वा राजा को (**अवसे**) रक्षा के लिए (**सुवृक्तिभिः**) शुभ स्तुतियों से (**ववृत्याम्**) अपनी ओर प्रवृत्त करूँ, (**न**) जैसे (**वाजम्**) वेगवान् (**हवनस्यदम्**) विजयस्पर्धा में ले जाये जाने वाले (**अत्यम्**)

निरन्तर चलने वाले (रथम्) विमानादि यान को (अवसे) देशान्तर में ले जाने के लिए (सुवृक्तिभिः) शोभन क्रियाओं अथवा यन्त्र-कलाओं से, चलने के लिए प्रवृत्त करते हैं॥८॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमा अलंकार है॥८॥

**भावार्थ** :–जैसे देशान्तर में जाने के लिए निरन्तर चल सकने वाले रथ को प्रवृत्त करते हैं, वैसे ही रक्षा प्राप्त करने के लिए निरन्तर कर्मशील परमेश्वर वा राजा को अपनी ओर प्रवृत्त करना चाहिए॥८॥

अगले मन्त्र के देवता द्यावापृथिवी हैं। इसमें कैसे द्युलोक और भूलोक किस प्रकार धृत हैं यह वर्णन है।

**३७८. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा॥९॥**

**पदार्थ** :–(**घृतवती**) दीप्ति वाले और जल वाले, (**भुवनानाम्**) सब लोकों के (**अभिश्रिया**) शोभा-जनक, (**उर्वी**) बहुत-से पदार्थों से युक्त, (**पृथ्वी**) विस्तीर्ण, (**मधुदुघे**) मधुर आदि रसों से भरने वाले, (**सुपेशसा**) उत्कृष्ट सुवर्ण वा उत्कृष्ट रूप-रंग से युक्त, (**अजरे**) अजीर्ण, अच्छिन्न (**भूरिरेतसा**) बहुत वीर्य व जल को उत्पन्न करने वाले (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और भूमिलोक (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ जगदीश्वर, सूर्य वा वायु के (**धर्मणा**) आकर्षण, धारण आदि गुण से (**विष्कभिते**) विशेष रूप से धृत हैं॥९॥

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि भूगोलविद्या और खगोलविद्या को भलीभाँति जानकर सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदियों से तथा पृथिवी से यथायोग्य लाभ प्राप्त करें। वरुण परमेश्वर ही सूर्य, वायु आदि के द्वारा सब लोकों को आकर्षण, धारण आदि से स्थिर किये हुए है, इसलिए उसे भी कभी नहीं भूलना चाहिए॥९॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और राजा की महिमा

का वर्णन है।

**३७९. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइव।**
**महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्।**
**देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) जगत्पति परमात्मन्! (**यत्**) जो आप (**उषाः इव**) प्रभात में खिलने वाली उषा के समान (**उभे रोदसी**) द्युलोक-भूलोक दोनों को अथवा आत्मा और शरीर दोनों को (**आपप्राथ**) प्रकाश से पूर्ण कर रहे हो अथवा यश से प्रसिद्ध कर रहे हो, उन (**महीनां महान्तम्**) महत्त्वशालियों में भी महत्त्वशाली, (**चर्षणीनां सम्राजम्**) मनुष्यों के सम्राट् (**त्वा**) आपको (**देवी जनित्री**) प्रकाशक दिव्य ऋतम्भरा प्रज्ञा (**अजीजनत्**) योगी के हृदय में प्रकाशित करती है, (**भद्रा जनित्री**) आविर्भाव करने वाली श्रेष्ठ विवेकख्याति (**अजीजनत्**) योगसाधक के हृदय में आविर्भूत करती है। जनन से यहाँ प्रकाशन और आविर्भाव अभिप्रेत हैं, उत्पत्ति नहीं, क्योंकि परमेश्वर अनादि है।।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) राजन्! (**यत्**) जो आप (**उषाः इव**) उषा के समान (**उभे रोदसी आपप्राथ**) भूमि-आकाश दोनों को अपने यश से पूर्ण किये हुए हो, अथवा राष्ट्रवासी स्त्रियों-पुरुषों दोनों को विद्या के प्रकाश से पूर्ण कर रहे हो, उन (**महीनां महान्तम्**) महत्त्वशालियों में भी महत्त्वशाली, और (**चर्षणीनाम् सम्राजम्**) प्रजाओं के सम्राट् (**त्वा**) आपको (**देवी जनित्री**) दिव्य गुणों वाली माता ने (**अजीजनत्**) पैदा किया है; (**भद्रा जनित्री**) श्रेष्ठ माता ने (**अजीजनत्**) पैदा किया है; इसी कारण आप इतने गुणी और भद्र हो।।१०।।

इस मन्त्र में उपमा और श्लेष अलंकार हैं। पुनरुक्ति जननी और जन्य के गौरवाधिक्य को सूचित कर रही है। 'महा, मही' में छेकानुप्रास और 'जनित्र्यजीजनत्' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है।।१०।।

**भावार्थ** :–उषा जैसे भूमि-आकाश को अपने प्रकाश से

परिपूर्ण करती है, वैसे जगदीश्वर इन्हें स्वरचित अग्नि, सूर्य, विद्युत्, चन्द्र, नक्षत्र आदियों के प्रकाश से और राजा प्रजारंजन से पैदा की हुई अपनी धवल कीर्ति से परिपूर्ण करता है॥१०॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य के गुण-कर्मों का वर्णन किया गया है।

**३८०. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना। अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हुवेमहि॥११॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे मनुष्यो! तुम (**मन्दिने**) आनन्दयुक्त तथा आनन्दप्रदाता इन्द्र जगदीश्वर के लिए (**पितुमत्**) श्रद्धारूप रस से युक्त (**वचः**) स्तुतिवचन को (**प्र अर्चत**) प्रेरित करो, (**यः**) जो जगदीश्वर (**ऋजिश्वना**) सीधी जाने वाली किरणों से युक्त सूर्य के द्वारा (**कृष्णगर्भाः**) अन्धकारपूर्ण रात्रियों को (**निरहन्**) नष्ट करता है। आओ (**अवस्यवः**) रक्षा की कामना वाले हम-तुम (**वृषणम्**) बादल से वर्षा करने वाले अथवा सुखों के वर्षक, (**वज्रदक्षिणम्**) न्यायदण्ड जिसके प्रताप को बढ़ाने वाला है ऐसे, (**मरुत्वन्तम्**) प्रशस्त प्राणों वाले इन्द्र जगदीश्वर को (**सख्याय**) मित्रता के लिए (**हुवेमहि**) पुकारें॥

(**द्वितीय**) गुरु-शिष्य के पक्ष में। हे सहपाठियो! तुम (**मन्दिने**) आनन्ददाता तथा विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य के लिए (**पितुमत्**) उत्कृष्ट अन्न सहित (**वचः**) आदरपूर्ण प्रियवचन (**प्र अर्चत**) उच्चारण करो, (**यः**) जो आचार्य (**ऋजिश्वना**) सरल शिक्षापद्धति से (**कृष्णगर्भाः**) काला अज्ञान जिनके गर्भ में है ऐसी अविद्यारात्रियों को (**निरहन्**) नष्ट करता है। (**अवस्यवः**) विद्या की तृप्ति को चाहने वाले हम-तुम (**वृषणम्**) सद्गुणों की वर्षा करने वाले, (**वज्रदक्षिणम्**) कुपथ से हटाने वाला है विद्यादान जिसका ऐसे, और (**मरुत्वन्तम्**) विद्यायज्ञ के ऋत्विज् प्रशस्त विद्वान् अध्यापक जिसके पास हैं ऐसे आचार्य को (**सख्याय**) मैत्री के लिए (**हुवेमहि**

**४०४. गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः।**
**रिहते ककुभो मिथः॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**समन्यवः**) तेजस्वी (**गावः**) स्तोता ब्राह्मणो! (**सजात्येन**) समान जाति वाला होने से (**मरुतः**) क्षत्रिय योद्धाजन (**चिद् घ**) निश्चय ही (**सबन्धवः**) तुम्हारे सबन्धु हैं, जो (**मिथः**) परस्पर मिलकर, युद्ध में (**ककुभः**) दिशाओं को (**रिहते**) व्याप्त करते हैं, अर्थात् सब दिशाओं में फैलकर शत्रु के साथ लड़कर राष्ट्र की रक्षा करते हैं। अथवा जो क्षत्रिय (**मिथः**) तुम ब्राह्मणों के साथ मिलकर (**ककुभः**) ककुप् छन्दों वाली प्रस्तुत दशति की ऋचाओं का (**रिहते**) पाठ तथा अर्थज्ञानपूर्वक आस्वादन करते हैं।

प्रस्तुत दशति में ककुब् उष्णिक् छन्द है, जिसमें प्रथम और तृतीय पाद आठ-आठ अक्षर के तथा मध्य का द्वितीय पाद बारह अक्षर का होता है।॥६॥

**भावार्थ** :—स्तोता ब्राह्मण और रक्षक क्षत्रिय दोनों ही राष्ट्र के अनिवार्य अंग हैं। जैसे ब्राह्मण विद्यादान से क्षत्रियों का उपकार करते हैं, वैसे ही युद्ध उपस्थित होने पर क्षत्रिय लोग दिशाओं को व्याप्त कर, शत्रुओं को पराजित कर ब्राह्मणों का उपकार करते हैं। इसलिए ब्राह्मणों और क्षत्रियों को राष्ट्र में भ्रातृभाव से रहना चाहिए।॥६॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम द्वारा परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**४०५. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।**
**आ वीरं पृतनासहम् ॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (**शतक्रतो**) बहुत ज्ञानी, बहुत कर्मों को करने वाले, (**विचर्षणे**) विशेष द्रष्टा (**इन्द्र**) वीर, परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर वा राजन्! (**त्वम्**) आप (**नः**) हमें (**ओजः**) ब्रह्मवर्चस और (**नृम्णम्**) धन (**आभर**) प्रदान कीजिए। साथ ही (**पृतनासहम्**) शत्रुसेनाओं को पराजित करने वाला (**वीरम्**)

वीर योद्धा (आभर) प्रदान कीजिए॥७॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेपालंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और राजा के प्रयत्न से हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण, शूरवीर क्षत्रिय और धनी वैश्य उत्पन्न हों। और सब प्रजाजन भी बलवान्, धनवान् तथा वीर पुत्रों वाले हों॥७॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**४०६. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे।**
**उदेव ग्मन्त उदभिः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**गिर्वणः**) स्तुतिवाणियों से संसेवनीय (**इन्द्र**) परमधनी परमेश्वर! (**अध हि**) इस समय, हम (**कामे**) मनोरथों की पूर्ति हेतु (**त्वा**) आपको (**उप ईमहे**) समीपता से प्राप्त करते हैं, तथा (**ससृग्महे**) आपसे संसर्ग करते हैं, (**उदा इव**) जैसे जलमार्ग से (**ग्मन्तः**) जाते हुए लोग (**उदभिः**) जलों से संसर्ग को प्राप्त करते हैं॥८॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। 'महे' की आवृत्ति में यमक और 'उदे, उद' में छेकानुप्रास है॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे नदी के कम गहराई वाले जल को पैरों से चलकर और गहरे जल को तैरकर पार करते हुए लोग जल के संसर्ग को प्राप्त होते हैं और गीले हो जाते हैं, वैसे ही परमेश्वर के समीप पहुँच हम उससे संसृष्ट होकर उसके संसर्ग द्वारा प्राप्त आनन्दरस से सराबोर हो जाएँ॥८॥

अगले मन्त्र में पक्षी के दृष्टान्त से परमेश्वर की स्तुति का विषय वर्णित है।

**४०७. सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे।**
**अभि त्वामिन्द्र नोनुमः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) मधुवर्षक परमेश्वर! (**वयः यथा**) पक्षियों के समान अर्थात् जैसे जलचर पक्षी जलाशय में एकत्र

होते हैं वैसे, हम (ते) आपके (गोश्रीते) गोदुग्ध के समान पवित्र अन्तःप्रकाश से मिश्रित, (मदिरे) हर्षजनक, (विचक्षणे) मुक्ति प्राप्त कराने वाले (मधौ) आनन्द रूप सोमरस में (सीदन्तः) समवेत होकर बैठते हुए (त्वाम् अभि) आपको लक्ष्य करके (नोनुमः) अतिशय पुनः पुनः स्तुति करते हैं॥९॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :—जल-पक्षी जैसे जल के ऊपर मिलकर बैठते हैं और क्रें-क्रें करते हैं, वैसे ही प्रेमरसधन परमात्मा के आनन्दरस में समवेत होकर उसके उपासक लोग उसे लक्ष्य कर पुनः पुनः स्तुतिगीत गाते हैं। जैसे सोमरस में गाय का दूध मिलाया जाता है, वैसे ही परमात्मा के आनन्दरस में दिव्यप्रकाश का संमिश्रण है, यह जानना चाहिए॥९॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर, आचार्य वा वैद्य का आह्वान किया गया है।

**४०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः।**
**वज्रिञ्चित्रं हवामहे॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे (**अपूर्व्य**) अपूर्व गुण-कर्म-स्वभाव वाले, (**वज्रिन्**) शस्त्रधारी के समान दोषनाशक परमेश्वर आचार्य वा वैद्यराज! (**कच्चित्**) किसी (**स्थूरं न**) स्थूल गढ़े आदि के समान (**स्थूरम्**) मन, चक्षु आदि के स्थूल छिद्र को (**भरन्तः**) भरना चाहते हुए (**अवस्यवः**) रक्षा के इच्छुक (**वयम्**) हम (**चित्रम्**) पूज्य (**त्वाम्**) आपको (**हवामहे**) पुकारते हैं॥१०॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :—जैसे विशाल निर्जल अन्धे कुएँ आदि को भरना चाहते हुए लोग सहायक मित्रों को बुलाते हैं, वैसे ही मन, चक्षु आदियों के रोगरूप या अशक्तिरूप छिद्र को भरने के लिए परमेश्वर, आचार्य वा वैद्य की सहायता पानी चाहिए॥१०॥

इस दशति में इन्द्र का महत्त्व वर्णित होने से, उसकी स्तुति होने से, उसका आह्वान होने से और उससे बल-धन

आदि की याचना होने से तथा इन्द्र नाम से राजा, आचार्य, वैद्य आदि के भी कर्त्तव्य का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## सप्तमी दशतिः

**ऋषिः—१-८ गोतमः; ९ त्रितः; १० अवस्युः॥ देवता—१-८ इन्द्रः; ९ विश्वेदेवाः; १० अश्विनौ॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में आत्मिक और राष्ट्रिय स्वराज्य की आकांक्षा की गयी है।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३क २र
**४०९. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः।**
१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३
**या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा।**
२ ३ १ २ ३ १ २
**वस्वीरनु स्वराज्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अध्यात्म पक्ष में। (**गौर्यः**) सात्त्विक चित्तवृत्तियाँ (**इत्था**) सचमुच (**वि-सुवतः**) ब्रह्मानन्द को विशेष रूप से अभिषुत करने वाले जीवात्मा से (**स्वादोः**) स्वादु, (**मधोः**) मधुर ब्रह्मानन्द-रस का (**पिबन्ति**) पान करती हैं, (**वृष्णा**) आनन्दवर्षक (**इन्द्रेण**) जीवात्मा के (**सयावरीः**) साथ गति करने वाली (**वस्वीः**) सद्गुणों की निवासक (**याः**) जो चित्तवृत्तियाँ (**स्वराज्यम् अनु**) आत्मिक स्वराज्य के अनुकूल होकर (**शोभथा**) शुभ प्रकार से (**मदन्ति**) हृष्ट होती हैं।

(**द्वितीय**) राष्ट्रपक्ष में। (**गौर्यः**) उद्यम वाली सेनाएँ (**इत्था**) सत्य ही (**वि-सुवतः**) विशेषरूप से वीरता की प्रेरणा देने वाले सेनापति से (**स्वादोः**) स्वादु (**मधोः**) मधुर वीररस का (**पिबन्ति**) पान करती हैं, (**वृष्णा**) शस्त्रास्त्रवर्षक (**इन्द्रेण**) शत्रुविदारक सेनापति के (**सयावरीः**) साथ युद्ध में प्रयाण करने वाली (**वस्वीः**) अपनी शूरता से राष्ट्र की निवासक (**याः**) जो सेनाएँ (**स्वराज्यम् अनु**) स्वराज्य स्थापित करके (**शोभथा**) शोभा के साथ (**मदन्ति**) विजयोल्लास मनाती हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे जीवात्माओं को परमात्मा के साथ मेल करके ब्रह्मानन्द को अभिपुत कर, मन, प्राण, इन्द्रिय आदियों के साथ स्वराज्य की अर्चना करनी चाहिए, वैसे ही सेनाओं को शूरता प्राप्त कर सेनापति के साथ सहयोग करके विजय प्राप्त कर स्वराज्य को बढ़ाना चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में शरीर और राष्ट्रभूमि से शत्रु को बाहर निकाल देने का विषय है।

**४१०. इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकार वर्धनम्।**
**शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा**
**अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**इत्था हि**) सचमुच (**सोमः**) ब्रह्मानन्दरस अथवा वीररस (**इत्**) निश्चय ही (**मदः**) हर्षकारी होता है, उससे (**ब्रह्म**) जीवात्मा वा राजा (**वर्धनम्**) उन्नति (**चकार**) करता है। उससे अनुप्राणित होकर हे (**शविष्ठ**) बलिष्ठ, (**वज्रिन्**) दुष्टताओं वा दुष्टों पर वज्र-प्रहार करने वाले जीवात्मन् वा राजन्! तू (**स्वराज्यम्**) स्वराज्य की (**अनु अर्चन्**) अनुकूल अर्चना करता हुआ (**ओजसा**) अपने बल द्वारा (**पृथिव्याः**) शरीर से अर्थात् शरीरवर्ती मन, बुद्धि, प्राण व इन्द्रियों से तथा राष्ट्रभूमि से (**अहिम्**) दुःसंकल्पादिरूप, पापरूप, रोगादिरूप, लुटेरे-चोर-ठग आदि रूप और शत्रुरूप असुर को (**निःशशाः**) बाहर निकाल दे।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—शरीर में आत्मा और राष्ट्र में राजा ब्रह्मानन्द-रस और वीर-रस का पान कर शरीर और राष्ट्र के शत्रुओं को निःशेष करके वाणी के निर्घोष तथा दुन्दुभिघोष के साथ स्वराज्य की अर्चना करें।।२।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा, जीवात्मा, राजा और सेनापति का युद्ध में विजय के लिए आह्वान किया गया है।

४११. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः। तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽ विषत्॥३॥

**पदार्थ** :–( **वृत्रहा** ) शत्रुहन्ता ( **इन्द्रः** ) वीर परमात्मा, जीवात्मा, राजा वा सेनापति ( **मदाय** ) हर्ष प्रदान के लिए, और ( **शवसे** ) बल के कर्म करने के लिए ( **नृभिः** ) मनुष्यों द्वारा ( **वावृधे** ) बढ़ाया या प्रोत्साहित किया जाता है। ( **तम् इत्** ) उसी ( **ऊतिम्** ) रक्षक को ( **महत्सु आजिषु** ) बड़े युद्धों में, और ( **अर्भे** ) छोटे युद्ध में, हम ( **हवामहे** ) पुकारते हैं। ( **सः** ) वह ( **वाजेषु** ) युद्धों में ( **नः** ) हमारी ( **प्र अविषत्** ) उत्तमता से रक्षा करे।।३।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है।।३।।

**भावार्थ** :–आनन्द, आत्मबल और शारीरिक बल को पाने के लिए परमात्मा को स्तुति से, जीवात्मा को उत्कृष्ट उद्बोधन से तथा राजा और सेनापति को जयकार से हर्षित करना चाहिए। साधारण सा विकट आन्तरिक और बाह्य देवासुरसंग्राम में वे ही हमारे सहायक होते हैं।।३।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, जीवात्मा, राजा और सेनापति के शौर्य की प्रशंसा की गयी है।

४१२. इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽ नुत्तं वज्रिन् वीर्यम्।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु
स्वराज्यम्॥४॥

**पदार्थ** :–हे ( **अद्रिवः** ) मेघयुक्त अन्तरिक्ष के तुल्य विद्यमान अर्थात् मेघयुक्त अन्तरिक्ष जैसे जल बरसाता है वैसे सुख बरसाने वाले, ( **वज्रिन्** ) शत्रुओं को दण्ड देने वाले ( **इन्द्र** ) परमात्मन्, जीवात्मन्, राजन् और सेनापते! ( **तुभ्यम् इत्** ) तेरा ही ( **अ-नुत्तम्** ) शत्रुओं से अप्रतिहत ( **वीर्यम्** ) शौर्य है। ( **यत्** ) जो, तू ( **स्वराज्यम् अनु** ) स्वराज्य के अनुकूल ( **अर्चन्** ) कर्म करता हुआ ( **त्यम्** ) उस कुख्यात ( **मायिनम्** ) छलादिदोषयुक्त, ( **मृगम्** ) पशुतुल्य शत्रु को ( **मायया** ) कौशल से ( **अवधीः** ) मार गिराता है, ( **त्यत्** ) वह कर्म ( **तव** ) तेरा ही है, अन्य कोई उस कर्म को नहीं कर सकता है।।४।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—परमात्मा को स्मरण कर और जीवात्मा, राजा तथा सेनापति को उद्बोधन देकर, उनके द्वारा समस्त आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं का उन्मूलन करके सबको आत्मा और राष्ट्र के स्वराज्य का उपभोग करना चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा, राजा तथा सेनापति को विजयार्थ प्रोत्साहित किया जा रहा है।

**४१३. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते। इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम्॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जीवात्मन्, राजन् वा सेनापते! तू (**प्रेहि**) आगे बढ़, (**अभीहि**) आक्रमण कर, (**धृष्णुहि**) शत्रुओं का पराभव कर। (**ते**) तेरे (**वज्रः**) वज्रतुल्य शत्रुविनाश-सामर्थ्य का अथवा शस्त्रास्त्र-समूह का (**न नियंसते**) अवरोध या प्रतीकार नहीं किया जा सकता। (**ते**) तेरा (**शवः**) बल (**नृम्णं हि**) तेरे लिए धनरूप है। तू (**स्वराज्यम् अनु**) स्वराज्य के अनुकूल (**अर्चन्**) कर्म करता हुआ, (**वृत्रम्**) पाप एवं शत्रु को (**हनः**) विनष्ट कर दे, (**अपः**) शत्रु से प्रतिरुद्ध सत्कर्मसमूह को (**जयाः**) जीत ले॥५॥

इस मन्त्र में वीर रस है, श्लेषालंकार है, अनेक क्रियाओं के साथ एक कारक का योग होने से दीपक भी है॥५॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा, राजा और सेनाध्यक्ष जब अपनी शत्रुओं से दुर्दमनीय महान् शक्ति को पहचान लेते हैं, तब सब आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को धूल में मिलाकर निश्चय ही विजयी होते हैं॥५॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**४१४. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्।**
**युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥६॥**

**पदार्थ** :-( **यत्** ) जब ( **आजयः** ) देवासुरसंग्राम ( **उदीरते** ) उपस्थित होते हैं, तब ( **धृष्णावे** ) जो शत्रु का पराजय कर सकता है उसे ही ( **धनम्** ) ऐश्वर्य ( **धीयते** ) मिलता है। इसलिए हे ( **इन्द्र** ) मेरे अन्तरात्मन्, सेनापति अथवा राजन्! तुम ( **मदच्युता** ) शत्रुओं के मद को चूर करने वाले ( **हरी** ) ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों को अथवा युद्धरथ को चलाने के साधनभूत जल-अग्नि रूप या वायु-विद्युत् रूप घोड़ों को ( **युङ्क्ष्व** ) कार्य में नियुक्त करो। ( **कम्** ) किसी को अर्थात् शत्रुजन को ( **हनः** ) विनष्ट करो, ( **कम्** ) किसी को अर्थात् मित्रजन को ( **वसौ** ) ऐश्वर्य में ( **दधः** ) स्थापित करो। ( **अस्मान्** ) दिव्य कर्मों में संलग्न हम धार्मिक लोगों को ( **वसौ** ) ऐश्वर्य में ( **दधः** ) स्थापित करो॥६॥

**भावार्थ** :-आन्तरिक अथवा बाह्य देवासुरसंग्रामों के उपस्थित होने पर सबको चाहिए कि असुरों को पराजित कर, देवों को उत्साहित कर विजयश्री और दिव्य तथा भौतिक सम्पदा प्राप्त करें॥६॥

इस मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने इस प्रकार इतिहास दर्शाया है-"रहूगण का पुत्र गोतम कुरु-सृञ्जय राजाओं का पुरोहित था। उन राजाओं का शत्रुओं के साथ युद्ध होने पर उस ऋषि ने इस मन्त्र से इन्द्र की स्तुति करके स्वपक्ष वालों के विजय की प्रार्थना की थी।" रहूगण का पुत्र गोतम इस मन्त्र का द्रष्टा ऋषि है। उसके विषय का ही यह इतिहास जानना चाहिए॥

अगले मन्त्र में विद्वानों के सत्कार, उनके उपदेश के श्रवण, तदनुकूल आचरण आदि का विषय है।

**४१५ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।**
**अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र**
**ते हरी॥७॥**

**पदार्थ** :-( **विप्राः** ) इन विद्वान् अतिथियों ने ( **अक्षन्** ) भोजन कर लिया है, ( **अमीमदन्त हि** ) निश्चय ही ये तृप्त

हो गये हैं। (**प्रियाः**) इन प्रिय अतिथियों ने (**अव अधूषत**) मुझ आतिथ्यकर्ता के दोषों को प्रकम्पित कर दिया है। (**स्वभानवः**) स्वकीय तेज से युक्त इन्होंने (**नविष्ठया मती**) नवीनतम मति के द्वारा (**अस्तोषत**) स्वस्ति का आशीर्वाद दिया है। अब, (**इन्द्र**) हे मेरे आत्मन्, तू (**नु**) शीघ्र ही (**ते हरी**) अपने ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों को (**युङ्क्ष्व**) नियुक्त कर अर्थात् विद्वान् अतिथियों के उपदेश पर मनन, चिन्तन और आचरण करने का प्रयत्न कर॥७॥

इस मन्त्र में अक्षन्, अमीमदन्त, अधूषत, अस्तोषत इन अनेक क्रियाओं में एक कर्तृकारक के योग के कारण दीपक अलंकार है। 'षत' की एक बार आवृत्ति में छेकानुप्रास है॥७॥

**भावार्थ** :—गृहस्थों से सत्कार पाये हुए अतिथि जन अपने बहुमूल्य उपदेश से उन्हें कृतार्थ करें, और गृहस्थ जन प्रयत्नपूर्वक उसके अनुकूल आचरण करें॥७॥

इस मन्त्र के यजुर्वेदभाष्य में उव्वट और महीधर ने **कात्यायनश्रौतसूत्र का अनुसरण करते हुए यह व्याख्या की है कि पितृयज्ञ कर्म में जो पितर आये हैं उन्होंने हमारे दिये हुए हविरूप अन्न को खा लिया है और वे तृप्त हो गये हैं आदि।** इस विषय में यह जान लेना चाहिए कि मृत पितरों को भोजन देना आदि वेदसम्मत नहीं है।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा, अपने अन्तरात्मा वा राजा से प्रार्थना की गयी है।

**४१६. उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथाइव। कदा नः**
**सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यशाली, दानशील परमेश्वर, मेरे अन्तरात्मा अथवा राजन्! तुम (**गिरः**) मेरी वाणियों को (**सु उप-उ शृणुहि**) भलीभाँति समीपता के साथ सुनो। (**अतथाः इव**) जैसे पहले मेरे अनुकूल थे उसके विपरीत (**मा**) मत होओ। तुम (**कदा**) कब (**नः**) हमें (**सूनृतावतः**) प्रिय-सत्य वाणियों से युक्त, वेदवाणियों से युक्त, आध्यात्मिक उषा से युक्त तथा आवश्यक भोज्य पदार्थों से युक्त (**इत्**) निश्चय

ही ( करः ) करोगे? क्यों तुम ( अर्थयासे इत् ) माँगते ही जा रहे हो, देते नहीं? हे ( इन्द्र ) शक्तिशाली मेरे अन्तरात्मा! तुम ( नु ) शीघ्र ही ( ते ) अपने ( हरी ) ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप अश्वों को ( योज ) सक्रिय करो तथा श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ कर्म के उपार्जन द्वारा समृद्ध होओ। और, हे ( इन्द्र ) परमात्मन्! तुम ( ते ) अपने ( हरी ) ऋक्-सामों को ( नु ) शीघ्र ही ( योज ) हमारे आत्मा में प्रेरित करो, जिससे सर्वविध ज्ञान और साम-संगीत से सम्पन्न होकर हम उत्कर्ष प्राप्त करें। और, हे ( इन्द्र ) राजन्! तुम, हमारे समीप आने के लिए ( ते ) अपने ( हरी ) जल-अग्नि, वायु-विद्युत् आदि को ( योज ) विमान आदि रथों में नियुक्त करो और हमारे समीप आकर हमें अपनी सहायता का भागी करो॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—सर्वैश्वर्यवान्, सफलताप्रदायक परमेश्वर का आह्वान करके तथा अपने अन्तरात्मा और राष्ट्र के राजा को उद्बोधन देकर हम समस्त अभीष्टों को प्राप्त कर सकते हैं॥८॥

अगले मन्त्र के विश्वेदेवाः देवता हैं। इसमें सूर्य, चन्द्र आदि की गति के प्रसङ्ग से इन्द्र की महिमा वर्णित है।

**४१७. चन्द्रमा अप्स्वा३ऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि।**
**न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं**
**मे अस्य रोदसी॥९॥**

**पदार्थ** :—( **चन्द्रमाः** ) चन्द्रमा ( **अप्सु अन्तः** ) अन्तरिक्ष के मध्य में, और ( **सुपर्णः** ) किरणरूप सुन्दर पंखों वाला सूर्य ( **दिवि** ) द्युलोक में ( **आ धावते** ) चारों ओर दौड़ रहा है, अर्थात् चन्द्रमा अपनी धुरी पर घूमने के साथ-साथ पृथिवी और सूर्य के चारों ओर भी घूम रहा है, तथा सूर्य केवल अपनी धुरी पर घूम रहा है, इस बात को सब जानते हैं, किन्तु हे ( **हिरण्यनेमयः** ) स्वर्णिम चक्रों वाले ( **विद्युतः** ) विद्योतमान चन्द्र, सूर्य, विद्युत् आदियो! ( **वः** ) तुम्हारे ( **पदम्** ) गतिप्रदाता को, कोई भी ( **न विन्दन्ति** ) नहीं जानते हैं। हे ( **रोदसी** ) स्त्रीपुरुषो अथवा राजा-प्रजाओ! तुम ( **मे** ) मेरी

(अस्य) इस बात को (वित्तम्) समझो। अभिप्राय यह है कि उस इन्द्र परमात्मा का साक्षात्कार करने का तुम प्रयत्न करो, जिसकी गति से यह सब-कुछ गतिमान् बना है।।९।।

**भावार्थ** :—मनुष्यों को प्राकृतिक पदार्थों के गति, प्रकाश आदि विषयक ज्ञान से ही सन्तोष नहीं करना चाहिए, किन्तु उसे भी जानना चाहिए जो इन पदार्थों को पैदा करने वाला, इन्हें गति, प्रकाश आदि प्रदान करने वाला और इनकी व्यवस्था करने वाला है।।९।।

इस ऋचा की व्याख्या में विवरणकार माधव ने त्रित विषयक वही इतिहास लिखा है जो पूर्व संख्या ३६८ के मन्त्र पर प्रदर्शित किया जा चुका है। भरत स्वामी ने भिन्न इतिहास दिखाया है—"एकत, द्वित और त्रित ये तीनों आप्त के पुत्र थे। वे जब यज्ञ कराकर, गौएँ लेकर लौट रहे थे, तब मरुस्थल में प्यास से व्याकुल होकर, वहाँ एक कुएँ को देखकर वहीं रुक गये और कुएँ में उतरने का विचार करने लगे। पहले त्रित कुएँ में उतर गया। शेष दोनों को बाहर ही पानी मिल गया और वे पानी पीकर तृप्त हो गये तथा कुएँ को एक चक्र से बन्द करके गौएँ लेकर चलते बने। इधर कुएँ में बन्द पड़ा हुआ त्रित देवों की स्तुति करने लगा। वह कुआँ निर्जल था, जिसमें त्रित प्यास से व्याकुल होकर उतरा था। वहीं पड़ा-पड़ा वह रात्रि में चन्द्रमा को देखकर विलाप करने लगा कि चन्द्रमा पानी में स्थित हुआ अन्तरिक्ष में दौड़ रहा है आदि। किसी तरह मेरी प्यास बुझ जाए, इसलिए उसका विलाप है। वह कहता है कि हे आकाश और भूमि, तुम मेरे इस संकट को जानो।"

यहाँ माधव और भरत स्वामी के इतिहासों में अन्तर ही उनके कल्पनाप्रसूत होने में प्रमाण है।

अगले मन्त्र के देवता अश्विनौ हैं। इसमें शरीर-रथ और शिल्प-रथ का विषय वर्णित है।

**४१८. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्।**
**स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी**
**मम श्रुतं हवम्॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) शरीर-रथ के पक्ष में। हे (**अश्विनौ**) परमात्मन् और जीवात्मन्! (**प्रियतमम्**) सर्वाधिक प्रिय, (**वृषणम्**) बलवान्, (**वसुवाहनम्**) वासक इन्द्रियों द्वारा वहन किये जाने वाले (**रथम्**) शरीररूप रथ को (**प्रति**) लक्ष्य करके (**स्तोता**) स्तुतिकर्ता (**ऋषिः**) तत्त्वार्थद्रष्टा विद्वान् (**स्तोमेभिः**) तुम्हारे स्तोत्रगानों के साथ (**वाम्**) तुमसे (**प्रतिभूषति**) याचना कर रहा है, अर्थात् मैं याचना कर रहा हूँ। हे (**माध्वी**) मधुर परमात्मन् और जीवात्मन्! तुम (**मम**) मेरे (**हवम्**) आह्वान को (**प्रतिश्रुतम्**) सुनो। भाव यह है कि मैं आगामी जन्म में मानवशरीर ही प्राप्त करूँ, पशु, पक्षी, सरकने वाले जन्तु, स्थावर आदि का शरीर नहीं।।

(**द्वितीय**) शिल्प-रथ के पक्ष में। हे (**अश्विनौ**) रथों के निर्माता और चालक शिल्पिजनो! (**प्रियतमम्**) अतिशय प्रिय, (**वृषणम्**) शत्रुसेना के ऊपर शस्त्रास्त्रों की वर्षा के साधनभूत, (**वसुवाहनम्**) धन-धान्य आदि को देशान्तर में पहुँचाने वाले (**रथम्**) विमानादि यान को (**वाम्**) तुम्हारा (**स्तोता**) प्रशंसक (**ऋषिः**) विद्वान् मनुष्य (**स्तोमेभिः**) देशान्तर में ले जाये जाने वाले पदार्थ-समूहों से (**प्रतिभूषति**) अलंकृत करता है। हे (**माध्वी**) मधुर गति की विद्या को जानने वाले शिल्पी जनो! तुम (**मम**) मेरी (**हवम्**) विमानादि यानों के निर्माण करने तथा उन्हें चलाने विषयक पुकार को (**प्रति श्रुतम्**) पूर्ण करो।।१०।।

इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है।।१०।।

**भावार्थ** :–सब मनुष्यों को ऐसे कर्म करने चाहिएँ, जिससे पुनर्जन्म में मानवशरीर ही प्राप्त हो। इसी प्रकार राष्ट्र में शिल्पविद्या की उन्नति से वेगवान् भूयान, जलयान और अन्तरिक्षयान बनवाने चाहिएँ और देशान्तरगमन, व्यापार, युद्ध आदि में उनका प्रयोग करना चाहिए।।१०।।

इस दशति में इन्द्र की सहयोगिनी गौरियों का, इन्द्र के स्वराज्य का, उसके आह्वान, उद्बोधन और स्तवन का, चन्द्र-सूर्य आदि की गतियों के तत्कर्तृक होने का और उसके द्वारा दातव्य रथ का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्वदशति के विषय के साथ संगति है।।

# अष्टमी दशतिः

**ऋषिः—१, ७ वसुश्रुतः; २, ४ विमदः; ३ सत्यश्रवाः; ५, ६ गोतमः; ८ अंहोमुग्वामदेव्यः॥ देवता—१, २, ७ अग्निः; ३ उषाः; ४ सोमः; ५, ६ इन्द्रः; ८ विश्वेदेवाः॥ छन्दः—१-७ पङ्क्तिः; ८ उपरिष्टाद् बृहती॥ स्वरः—१-७ पञ्चमः; ८ मध्यमः॥**

प्रथम दो ऋचाओं का अग्नि देवता है। इस मन्त्र में अग्नि परमेश्वर के दिव्य प्रकाश की याचना है।

**४१९. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्।**
**यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं**
**स्तोतृभ्य आ भर॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**देव**) सर्वप्रकाशक (**अग्ने**) अन्तर्यामी जगदीश्वर! हम (**ते**) तेरे (**द्युमन्तम्**) दीप्तिमान्, (**अजरम्**) कभी जीर्ण न होने वाले प्रकाश को (**आ इधीमहि**) हृदय में प्रदीप्त करें। (**यत्**) जो (**ते**) तेरी (**स्या**) वह प्रसिद्ध (**पनीयसी**) अतिशय स्तुतियोग्य (**समित्**) दीप्ति (**द्यवि**) सूर्य में (**दीदयति**) प्रकाशित है, उस (**इषम्**) व्याप्त दीप्ति को (**स्तोतृभ्यः**) हम स्तोताओं को भी (**आ भर**) प्रदान कर॥१॥

**भावार्थ** :—जो कुछ भी प्रकाशमान अग्नि, विद्युत्, चन्द्र, सूर्य, तारे आदि भूमि पर और आकाश में विद्यमान हैं, वे सब परमात्मा के ही प्रकाश से प्रकाशित हैं। उस प्रकाश से सब मनुष्यों को अपना आत्मा भी प्रकाशित करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि कैसे गुण वाले अग्नि परमेश्वर को हम वरते हैं।

**४२०. आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।**
**शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं**
**विवक्षसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हम लोग (**न**) इस समय (**होतारम्**) सुख आदि के दाता, (**शीरम्**) सर्वत्र शयन करने वाले, सर्वव्यापक, (**पावकशोचिषम्**) पवित्रताकारक दीप्ति वाले (**त्वा अग्निम्**) आप अग्रनायक परमेश्वर को (**स्व-वृक्तिभिः**) अपनी सूक्तियों अथवा क्रियाओं से (**आ वृणीमहे**) वरते हैं। हम (**वः मदे**) आपके प्राप्त कराये हुए आनन्द में (**वि**) उत्कर्ष को प्राप्त करें। आप (**यज्ञेषु**) ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि पञ्च यज्ञों में तथा अन्य विविध परोपकार-रूप यज्ञों में (**स्तीर्णबर्हिषम्**) जिसने आसन बिछाया है अर्थात् उन यज्ञों को करने में जो प्रवृत्त हुआ है उसे (**विवक्षसे**) विशेष रूप से उन्नत कर देते हो॥२॥

**भावार्थ** :—परम आनन्द के प्रदाता, सर्वत्र व्यापक, अपने तेज से मनों को पवित्र करने वाले, महान् परमेश्वर का सब यज्ञकर्ताओं को भौतिक अग्नि के समान वरण करना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र का उषा देवता है। इसमें उषा से बोध प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है।

**४२१. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।**
**यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते**
**अश्वसूनृते॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**उषः**) प्राकृतिक उषा के समान मेरे आत्मलोक में उदित होती हुई अध्यात्मप्रभा! (**दिवित्मती**) विवेकख्याति को प्रदीप्त करने वाले गुणों से युक्त तू (**नः**) हमें (**अद्य**) आज (**महे राये**) योगसिद्धिरूप महान् ऐश्वर्य के लिए (**बोधय**) बोध प्रदान कर, (**यथा**) जैसे हे (**सुजाते**) शुभ जन्म वाली, (**अश्वसूनृते**) व्यापक प्रिय दिव्य वाणी वाली उषा! तू (**सत्यश्रवसि**) सत्य यश वाले (**वाय्ये**) विस्तार योग्य जीवन में, हमें (**अबोधयः**) बोध प्रदान करती रही है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे प्रभातदीप्ति रूप उषा सबको निद्रा से जगाती है, वैसे ही आध्यात्मिक उषा हमें जागृति और प्रबोध प्रदान करे॥३॥

अगले मन्त्र का सोम देवता है। उससे याचना की गयी है।

**४२२. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।**
**अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो**
**न यवसे विवक्षसे॥४॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे रसागार परमात्मन्! आप (**नः**) हमारे लिए (**भद्रम्**) श्रेष्ठ (**मनः**) मनोबल, (**दक्षम्**) शारीरिक बल, (**उत**) और (**क्रतुम्**) प्रज्ञान तथा कर्म (**अपि वातय**) प्राप्त कराओ। (**अथ**) और (**ते**) आपके अपने (**अन्धसः**) शान्तिरस के (**सख्ये**) सखित्व में, तथा (**वः**) आपके अपने (**मदे**) आनन्द में, हमें (**विरण**) विशेष रूप से रमाओ, (**गावः न**) जैसे गौएँ (**यवसे**) घास में रमती हैं। हे सोम परमात्मन्! आप (**विवक्षसे**) महान् हो॥४॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की **उपासना से मनुष्य आत्मा, मन, बुद्धि आदि के बल को और आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं॥४॥**

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और सेनापति का कर्म वर्णित है।

**४२३. क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः।**
**श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवां दधे**
**हस्तयोर्वज्र मायसम्॥५॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**क्रत्वा**) दिव्य प्रज्ञा और जगत् के धारण आदि कर्म से (**महान्**) महान्, (**भीमः**) नियम तोड़ने वालों के लिए भयंकर वह इन्द्र परमेश्वर (**अनु-स्वधम्**) अपनी धारणशक्ति के अनुरूप (**शवः**) बलवान् सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि को (**आ वावृते**) घुमा रहा है। (**ऋष्वः**) लोकलोकान्तरों को अपनी-अपनी कक्षाओं में गति कराने वाला, (**शिप्री**) जगत् का विस्तारक, (**हरिवान्**) अकर्मण्यता आदि दोषों को हरने के सामर्थ्य वाला वह (**श्रिये**) ऐश्वर्यप्रदानार्थ (**उपाकयोः**) परस्पर सम्बद्ध (**हस्तयोः**) मनुष्य

के हाथों में ( **आयसम्** ) दृढ़ ( **वज्रम्** ) शस्त्रास्त्रसमूह को ( **आ दधे** ) थमाता है।।

( **द्वितीय** ) सेनापति के पक्ष में। ( **क्रत्वा** ) शत्रुवध आदि कर्म से ( **महान्** ) महान् ( **भीमः** ) दुष्टों के लिए भयंकर इन्द्र अर्थात् वीर सेनापति ( **अनुस्वधम्** ) पौष्टिक अन्न के भक्षण के अनुरूप, अपने शरीर में ( **शवः** ) बल ( **आ वावृते** ) उत्पन्न करता है। ( **ऋष्वः** ) गतिमान्, कर्मण्य, ( **शिप्री** ) शत्रुओं में आक्रोश या हाहाकार पैदा करने वाला, ( **हरिवान्** ) प्रशस्त घोड़ों अथवा हरणसाधन विमानादि यानों वाला वह ( **श्रिये** ) विजयश्री प्राप्त करने के लिए ( **उपाकयोः** ) निकट पहुँचे शत्रुदलों के ऊपर प्रहारार्थ ( **हस्तयोः** ) हाथों में ( **आयसम्** ) लोहे के बने, अथवा लोहे जैसे दृढ़ ( **वज्रम्** ) शस्त्रास्त्रसमूह को ( **नि दधे** ) धारण करता है।।५।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।५।।

**भावार्थ :**—जैसे परमेश्वर अकर्मण्य लोगों के भी हृदय में वीरता का संचार करके उनके हाथों में शस्त्रास्त्र ग्रहण करा देता है, वैसे ही सेनापति अपने हाथों में शत्रु का वध करने में समर्थ दृढ़ शस्त्रास्त्रों को धारण कर, शत्रुओं पर प्रहार करके उन्हें पराजित करे।।५।।

अगले मन्त्र में मानवदेहरूप रथ को कौन प्राप्त करता है इसका वर्णन है।

**४२४. स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।**
**यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्रा चिकेतति योजा**
**न्विन्द्र ते हरी॥६॥**

**पदार्थ :**—हे ( **इन्द्र** ) मेरे अन्तरात्मन्! ( **स घ** ) वही मनुष्य ( **तम्** ) उस श्रेष्ठ, ( **वृषणम्** ) बलवान्, ( **गोविदम्** ) इन्द्रियरूप बैलों से युक्त ( **रथम्** ) मानव-शरीर-रूप रथ का ( **अधितिष्ठाति** ) अधिष्ठाता बनता है, ( **यः** ) जो ( **हारियोजनम्** ) प्राणयुक्त मानव-शरीर को प्रदान करने में समर्थ ( **पात्रम्** ) सत्कर्मों के कोष को ( **पूर्णम्** ) भरा हुआ ( **चिकेतति** ) जान लेता है।

इसलिए, हे ( **इन्द्र** ) मेरे अन्तरात्मन्! तू ( **ते हरी** ) अपने ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों को ( **नु** ) शीघ्र ही ( **योज** ) नियुक्त कर, अर्थात् पुनर्जन्म में मनुष्य-शरीर प्राप्त करने के लिए ज्ञानेन्द्रियों से सत्य ज्ञान प्राप्त कर और कर्मेन्द्रियों से उत्कृष्ट कर्म कर।।६।।

**भावार्थ** :—जो मनुष्य इस जन्म में मानवदेह प्राप्त कराने योग्य सत्कर्मों को करता है, वही अगले जन्म में मानवदेह प्राप्त करता है, यह जानकर सब मनुष्यों को श्रेष्ठ ही कर्म करने चाहिएँ।।६।।

अगले मन्त्र का अग्नि देवता है। सब परमेश्वर से ही शक्ति ग्रहण करते हैं, इस विषय का वर्णन है।

**४२५. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।**
**अस्तमर्वन्त आशवोऽ स्तं नित्यासो वाजिन इषं**
**स्तोतृभ्य आ भर॥७॥**

**पदार्थ** :—मैं ( **तम् अग्निम्** ) उस अग्रनायक एवं अग्नि के समान प्रकाशमान और प्रकाशक परमेश्वर की ( **मन्ये** ) अर्चना करता हूँ, ( **यः** ) जो ( **वसुः** ) सबका निवास-प्रदाता है, ( **अस्तम्** ) गृहरूप ( **यम्** ) जिसके पास ( **धेनवः** ) वाणियाँ ( **यन्ति** ) शक्ति पाने के लिए जाती हैं, ( **अस्तम्** ) गृहरूप ( **यम्** ) जिसके पास ( **आशवः** ) शीघ्रगामी ( **अर्वन्तः** ) प्राण ( **यन्ति** ) शक्ति पाने के लिए जाते हैं, ( **अस्तम्** ) गृहरूप ( **यम्** ) जिसके पास ( **नित्यासः** ) अनादि और अनन्त ( **वाजिनः** ) बलवान् आत्माएँ ( **यन्ति** ) शक्ति पाने के लिए जाती हैं। हे परमात्मन्! तू ( **स्तोतृभ्यः** ) तेरे गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन करने वालों के लिए ( **इषम्** ) अभीष्ट पदार्थों व अभीष्ट गुणों के समूह को ( **आ भर** ) प्रदान कर।।७।।

इस मन्त्र में अग्नि परमेश्वर में 'अस्त' (गृह) का आरोप होने से रूपकालंकार है।।७।।

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास से ही सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि और आत्मा, मन, चक्षु, श्रोत्र, प्राण आदि अपनी-अपनी

क्रियाशक्ति पाते हैं। वही स्तोताओं के मनोरथों को पूर्ण करता है।।७।।

अगले मन्त्र का देवता विश्वेदेवाः है। इसमें मित्र, वरुण और अर्यमा के अनुग्रह का फल वर्णित है।

**४२६. न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्। सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति द्विषः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे **(देवासः)** विद्वानो! **(तं मर्त्यम्)** उस मनुष्य को **(न अंहः)** न अपराध, **(न दुरितम्)** न पाप **(अष्ट)** प्राप्त होता है, **(यम्)** जिसे **(सजोषसः)** समान प्रीति वाले, परस्पर सामंजस्य रखने वाले, **(अर्यमा)** मन, सूर्य वा न्यायाधीश, **(मित्रः)** प्राण, वायु वा मित्र और **(वरुणः)** आत्मा, चन्द्रमा वा राजा **(द्विषः)** विपत्ति, विघ्नसमूह वा शत्रुसंघ से **(अति नयति)** पार कर देते हैं।।८।।

**भावार्थ** :—शरीर में, जड़ जगत् में, समाज में और राष्ट्र में क्रमशः जो मन, प्राण आदि, जो सूर्य आदि, जो श्रेष्ठ मित्र आदि और जो राजा आदि मुख्य हैं, उनकी रक्षा प्राप्त करके मनुष्य पापों और शत्रुओं को पराजित कर सकते हैं।।८।।

इस दशति में इन्द्र के तथा इन्द्र से सम्बद्ध अग्नि, उषा, सोम, मित्र, वरुण और अर्यमा के गुण-कर्म वर्णित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## नवमी दशतिः

ऋषिः—१, ३-५, १० धिष्ण्या ऐश्वरयोऽग्नयः; २, ६ त्र्यरुणत्रसदस्यू; ७ वसिष्ठः; ८, ९ वामदेवः॥ देवता—१-६, १० पवमानः; ७ मरुतः; ८ अग्निः; ९ वाजिनां स्तुतिः॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ७, १० द्विपदा पङ्क्तिः; २, ६ त्रिपदा पिपीलिकामध्यानुष्टुप्; ८ पदपङ्क्तिः; ९ पुरउष्णिक्॥ स्वरः—१, ३-५, ७, ८, १० पञ्चमः; २, ६ गान्धारः; ९ ऋषभः॥

आदि की छः ऋचाओं का पवमान सोम देवता है। इस मन्त्र में सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**४२७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रसागार एवं शान्तिमय जगदीश्वर! (**स्वादुः**) मधुर आप, मेरे (**इन्द्राय**) आत्मा के लिए, (**मित्राय**) मित्रभूत मन के लिए, (**पूष्णे**) पोषक प्राण के लिए और (**भगाय**) सेवनीय बुद्धितत्त्व के लिए (**परि प्र धन्व**) सब ओर से माधुर्य और शान्ति को क्षरित करो॥१॥

**भावार्थ** :—रसागार और शान्त परमेश्वर ही हमें रसमय और शान्तिप्रिय कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में अपने अन्तरात्मा और वीरपुरुष को वीरकर्म करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है।

**४२८. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः। द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे वीररसमय मेरे अन्तरात्मन् अथवा वीर पुरुष! तू (**वाजसातये**) संग्राम के लिए अर्थात् शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिए, (**उ सु**) भलीभाँति (**परि प्र धन्व**) चारों ओर प्रयाण कर, (**सक्षणिः**) हिंसक होकर तू (**वृत्राणि**) आच्छादक पापों पर (**परि**) चारों ओर से आक्रमण कर। (**ऋणयाः**) ऋणों को चुकाने वाला होकर तू (**द्विषः**) लोभ आदि द्वेषियों को (**तरध्यै**) पार करने के लिए (**नः**) हमें (**ईरसे**) प्रेरित कर॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि लोभवृत्तियों को छोड़कर ऋण समय पर चुकायें और वीरतापूर्वक शत्रुओं को पराजित करें॥२॥

अगले मन्त्र में सोम नाम से परमेश्वर और राजा से प्रार्थना की जा रही है।

**४२९. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम॥३॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**सोम**) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर! आप (**महान्**) महान् हो, (**समुद्रः**) रस के पारावार हो, (**देवानाम्**) प्रकाशक विद्वानों के, सूर्य-चन्द्र-विद्युत्-अग्नि आदियों के और ज्ञानेन्द्रिय-मन-बुद्धि आदियों के (**पिता**) पालनकर्ता हो। आप (**विश्वा धाम**) सब स्थानों को वा हृदयधामों को (**अभि पवस्व**) व्याप्त करके पवित्र करो।।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**सोम**) चन्द्रमा के समान आह्लादक प्रजारञ्जक राजन्! आप (**महान्**) गुणों और कर्मों में महान् हो, (**समुद्रः**) प्रेमरस, शौर्य और सम्पदाओं के सागर हो, (**देवानाम्**) दानादि गुणों से युक्त प्रजाजनों के (**पिता**) पालक हो। आप (**विश्वा धाम**) राष्ट्र के शिक्षा, न्याय, कृषि, व्यापार, उद्योग, सेना आदि सब विभागों में (**अभि**) पहुँचकर (**पवस्व**) उन्हें निर्दोष और पवित्र करो।।३।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है और सोमपदवाच्य परमात्मा और राजा में समुद्र का आरोप होने से रूपकालंकार भी है।।३।।

**भावार्थ** :–जैसे परमात्मा सबके हृदयों को पवित्र करता है, वैसे ही राजा राष्ट्र के सब विभागों को भ्रष्टाचार से रहित तथा पवित्र करे।।३।।

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**४३०. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय॥४॥**

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) रसागार परमेश्वर और राजन्! (**अश्वः न**) अग्नि, बादल वा सूर्य के समान (**निक्तः**) शुद्ध, शुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वाले और (**वाजी**) बलवान् आप (**महे**)

महान् (**दक्षाय**) बल के लिए तथा (**धनाय**) धन के लिए (**पवस्व**) हमें पवित्र कीजिए॥४॥

इस मन्त्र में उपमालंकार तथा अर्थश्लेषालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर के समान राजा भी स्वयं शुद्ध आचरण वाला होकर सबके आचरण को पवित्र करे। वही बल और धन सबका उपकारक होता है, जो पवित्रता के साथ तथा पवित्र साधनों से कमाया जाता है॥४॥

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर और राजा का विषय है।

**४३१. इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय॥५॥**

**पदार्थ** :–(**चारुः**) रमणीय, (**कविः**) दूरदर्शी, मेधावी (**इन्दुः**) चन्द्रमा के समान आह्लादक और सोम ओषधि के समान रसागार, शान्ति के सौम्य प्रकाश से प्रदीप्त करने वाला परमेश्वर और राजा (**मदाय**) आनन्द उत्पन्न करने के लिए, और (**भगाय**) ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिए (**अपाम्**) प्राणों के वा जल के समान शान्त प्रजाओं के (**उपस्थे**) मध्य में स्थित होकर (**पविष्ट**) पवित्रता देवे॥५॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥५॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर के समान राजा भी चारुदर्शन, विवेकी, क्रान्तदर्शी, चन्द्रमा के समान मधुर, प्रेमरस तथा वीररस से परिप्लुत, परमानन्द और धन का दाता, पवित्र एवं पवित्रतादायक होवे॥५॥

अगले मन्त्र में सोम नाम से परमात्मा, जीवात्मा और राजा को सम्बोधित किया गया है।

**४३२. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये।**
**वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे॥६॥**

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) परमात्मन्, जीवात्मन् वा राजन्! (**सुतम्**) अभिषिक्त किये हुए (**त्वा**) तुम्हारा (**अनु**) अनुगमन करके, हम (**महे**) महान् (**समर्यराज्ये**) देवासुरसंग्राम में कुशल दिव्य भावों व वीर क्षत्रियों के राज्य में (**मदामसि हि**) निश्चय ही

आनन्द लाभ करते हैं। हे **(पवमान)** पवित्रकर्ता देव! तुम **(वाजान् अभि)** हमें बल, विज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त कराने के लिए **(प्र गाहसे)** प्रकृष्ट रूप से आलोडित करते हो अर्थात् आलोडित करके क्रियाशील बना देते हो॥६॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥६॥

**भावार्थ** :—परमात्मा, जीवात्मा और वीर मनुष्य को राजा को पद पर अभिषिक्त करके संग्रामकुशल वीरभावों व वीरजनों के राज्य में निवास करते हुए हम देवासुरसंग्राम में विजय और उत्कर्ष पायें॥६॥

अगले मन्त्र के 'मरुतः' देवता हैं। प्राणों और योद्धाओं के विषय में प्रश्न उठाते हुए कहा गया है।

**४३३. क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः॥७॥**

**पदार्थ** :—**(के ईम्)** कौन ये **(व्यक्ताः)** प्रकाशमान, **(नरः)** नेता, **(सनीडाः)** समान आश्रय वाले, **(रुद्रस्य मर्याः)** रुद्र के पुत्र कहे जाने वाले, **(अथ)** और **(स्वश्वाः)** उत्तम घोड़ों वाले हैं? यह प्रश्न है। इसका उत्तर इस प्रकार है—

**(प्रथम)** प्राणों के पक्ष में। ये **(व्यक्ताः)** विशेष गति वाले, **(नरः)** शरीर के नेता, **(सनीडाः)** शरीर-रूप समान गृह में निवास करने वाले, **(रुद्रस्य मर्याः)** रुद्र नामक मुख्य प्राण के सहचर, **(स्वश्वाः)** इन्द्रियरूप उत्तम घोड़ों वाले, **(मरुतः)** प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान हैं॥

**(द्वितीय)** सैनिकों के पक्ष में। ये **(व्यक्ताः)** कन्धों पर बन्दूकें, पैरों में पादत्राण, छातियों पर सोने के तमगे, भुजाओं में विद्युत्-यन्त्र, शिरों पर शिरस्त्राण इन परिचायक चिह्नों से व्यक्त होते हुए, **(सनीडाः)** समान राष्ट्ररूप गृह में निवास करने वाले, **(रुद्रस्य मर्याः)** शत्रुओं को रुलाने वाले सेनापति के मनुष्य **(स्वश्वाः)** उत्तम घोड़ों पर सवार अथवा उत्तम अग्नि, विद्युत् आदि को युद्ध-रथ में प्रयुक्त करने वाले **(मरुतः)** राष्ट्र के वीर सैनिक हैं॥७॥

इस मन्त्र में प्रश्न में ही उत्तर समाविष्ट होने से गूढ़ोत्तर नामक प्रहेलिकालंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे शरीर-रूप गृह में व्यवस्थापूर्वक अपना-अपना स्थान बाँटकर विभिन्न अंगों में आश्रय लेने वाले प्राण शरीर की रक्षा करते हैं, वैसे ही राष्ट्र में निवास करने वाले वीर सैनिक राष्ट्र की रक्षा करते हैं, इस कारण शरीर में प्राणों का और राष्ट्र में सैनिकों का उत्तम खाद्य, पेय आदि से सत्कार करना चाहिए॥७॥

अगले मन्त्र में अग्नि देवता है। इसमें यह विषय है कि कैसे परमात्मा की हम पूजा करें।

**४३४. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्।**
**ऋध्यामा त ओहैः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनेता प्रकाशक परमेश्वर! (**अश्वं न**) घोड़े के समान, और (**क्रतुं न**) रचयिता शिल्पी के समान (**भद्रम्**) कल्याणकर्ता, (**हृदिस्पृशम्**) हृदय को स्पर्श करने वाले (**तम्**) उस जगत्प्रसिद्ध तुझको (**अद्य**) आज (**ते ओहैः**) तुझे हमारी ओर लाने वाले (**स्तोमैः**) स्तोत्रों से (**ऋध्याय**) पूजित करें॥८॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे घोड़ा देशान्तर को जाने में साधन बनकर और शिल्पी विविध यन्त्रकला आदि का निर्माण करके हमारा हित करता है, वैसे ही परमेश्वर हमें उन्नति की ओर ले जाकर और हमारे लिए सूर्य, चन्द्र, वायु, फल, मूल आदि विविध वस्तुओं का निर्माण कर हमारा हितकर्ता होता है॥८॥

अगले मन्त्र में वाजियों की स्तुति का विषय है।

**४३५. आविर्मर्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः**
**सवम्। स्वर्गाँ अर्वन्तो जयत॥९॥**

**पदार्थ** :—(**वाजिनः**) ज्ञानवान् लोग (**वाजम्**) बल को,

और ( **देवस्य** ) प्रकाशक ( **सवितुः** ) प्रेरक परमात्मा की ( **सवम्** ) प्रेरणा को ( **आ अग्मन्** ) प्राप्त करते हैं। हे ( **मर्ताः** ) मनुष्यो! तुम भी ( **आविः** ) अपने आत्मा में बल और परमात्मा की प्रेरणा को प्रकट करो। हे ( **अर्वन्तः** ) उद्योगी मनुष्यो! तुम ( **स्वर्गान्** ) सुखमय ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास लोकों को तथा मुक्तिलोकों को ( **जयत** ) जीत लो।।९।।

इस मन्त्र में 'अर्वन्तः' शब्द के प्रयोग से 'जैसे घोड़े संग्राम को जीत लेते हैं' यह उपमालंकार ध्वनित होता है। 'वाजं, वाजि' तथा 'सवि, सव' में छेकानुप्रास और वकार की अनेक वार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है।।९।।

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि आत्मबल का संचय करके और परमात्मा से सत्प्रेरणा लेकर, शुभ कर्म करके लौकिक तथा पारलौकिक सुख को प्राप्त करें।।९।।

अगले मन्त्र का **पवमान सोम** देवता है। **सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।**

**४३६. पवस्व सोम द्युम्नी सुधारो महाँ अवीनामनुपूर्व्यः॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) आनन्दरसागर परमात्मन्! ( **द्युम्नी** ) यशस्वी, ( **अवीनां महान्** ) बहुत-सी भूमियों से भी अधिक महान्, ( **पूर्व्यः** ) सनातन, ( **सुधारः** ) आनन्दरस की उत्तम धाराओं सहित आप ( **पवस्व** ) मेरे हृदय में परिस्रुत हों।।१०।।

**भावार्थ** :—समाहित मन से निरन्तर उपासना किया गया रसनिधि परमेश्वर आनन्द की बौछारों के साथ हृदय में बरसता है।।१०।।

इस दशति में सोम नाम से परमात्मा की रसमयता का वर्णन करके उससे आनन्दरस और पवित्रता की याचना होने से, अग्नि नाम से उसके तेजोमय रूप का वर्णन होने से, और मरुतों के नाम से प्राणादि का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।।

**इति पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

## दशमी दशतिः

ऋषिः—१, २, ५, ६, ८–१० वामदेवः; ३, ४ अवस्युः; ७ संवर्तः॥ देवता—१–५, ८–१० इन्द्रः; ६ विश्वेदेवाः; ७ उषाः॥ छन्दः—द्विपदाविराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

प्रथम मन्त्र में इन्द्र से धनादि की याचना की गयी है।

**४३७. विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**विश्वतोदावन्**) सब ओर से दान करने वाले परमात्मन् वा राजन्! आप (**विश्वतः**) सब ओर से (**नः**) हमारे लिए (**आ भर**) विद्या, धन, बल आदि लाइए, (**यम्**) जिन (**शविष्ठम्**) बलिष्ठ (**त्वा**) आपसे, हम (**ईमहे**) याचना कर रहे हैं॥१॥

इस मन्त्र में अर्थ-श्लेष अलंकार, तथा 'विश्वतो' की आवृत्ति में लाटानुप्रास अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर हमारे लिए वेदज्ञान, आत्मबल, देहबल तथा सूर्य, वायु, पृथिवी, सुवर्ण आदि धन देता है, वैसे ही राजा भी राष्ट्र में निरक्षरों को विद्या, निर्बलों को बल और निर्धनों को धन प्रदान करे॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा का वर्णन किया गया है।

**४३८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे॥२॥**

**पदार्थ** :—(**एषः**) यह मेरे द्वारा अनुभव किया जाता हुआ परमेश्वर (**ब्रह्मा**) ज्ञान, गुण, कर्म आदि से सर्वतोवृद्ध होने के कारण ब्रह्मा कहलाता है, (**यः ऋत्वियः**) जिसकी पूजा की ऋतु सदा ही रहती है, और जो (**इन्द्रो नाम श्रुतः**) इन्द्र नाम से प्रसिद्ध है, उसकी मैं (**गृणे**) स्तुति करता हूँ॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर सब दृष्टियों से वृद्ध, सब दृष्टियों से भद्र और सब ऋतुओं में उपासनीय है॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र के पूजन वा सत्कार का विषय है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**४३९. ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ॥३॥**

**पदार्थ :–(ब्रह्माणः)** आस्तिक तथा देशभक्त लोग **(अर्कैः)** वेदमन्त्रों से **(इन्द्रम्)** विघ्नविदारक परमेश्वर वा राजा को **(महयन्तः)** पूजित वा सत्कृत करते हुए **(अहये हन्तवै)** सर्प के समान कुटिल गति वाले विघ्नसमूह, पाप वा शत्रु को नष्ट करने के लिए **(उ)** निश्चय ही **(अवर्द्धयन्)** अपने हृदय में वा राष्ट्र में बढ़ाते हैं॥३॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥३॥

**भावार्थ :–**जैसे परमेश्वर योगमार्ग में आये विघ्नों का, अन्तःकरण और समाज में प्रसार पाये पापरूप शत्रुओं का तथा दुष्टों का संहार करता है, वैसे ही राजा को चाहिए कि राष्ट्र की उन्नति के लिए शत्रुओं का विनाश करे॥३॥

अगले मन्त्र में इन्द्र के रथ और वज्र के रचे जाने का विषय है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**४४०. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत**
३ १ २
**द्युमन्तम्॥४॥**

**पदार्थ :–(प्रथम)** जीवात्मा के पक्ष में। हे **(पुरुहूत)** बहुतों से गुणकीर्तन किये गये जीवात्मन्! **(ते)** तेरे लिए **(अनवः)** प्राण **(अश्वाय)** शीघ्रगमनार्थ **(रथम्)** शरीररूप रथ को **(तक्षुः)** रचते हैं, **(त्वष्टा)** जगत् का शिल्पी परमेश्वर **(द्युमन्तम्)** तेजोमय **(वज्रम्)** वाणी रूप वज्र को, रचता है। उस यशोमय शरीर-रथ से जीवनयात्रा करता हुआ तू वाणीरूप वज्र से पाखण्डियों का खण्डन कर॥

**(द्वितीय)** राजा के पक्ष में। हे **(पुरुहूत)** बहुत-से प्रजाजनों द्वारा सत्कृत अखण्ड ऐश्वर्य वाले राजन्! **(ते)** आपके लिए **(अनवः)** शिल्पी मनुष्य **(अश्वाय)** शीघ्रगमनार्थ **(रथम्)** यात्रा के तथा युद्ध के साधनभूत भूमि, जल और अन्तरिक्ष में चलने वाले यान-समूह को **(तक्षुः)** रचें, **(त्वष्टा)** शस्त्रास्त्रों

का निर्माता शिल्पी (द्युमन्तम्) चमचमाते हुए (वज्रम्) शस्त्रास्त्र-समूह को रचे। इस प्रकार रथ, शस्त्रास्त्र आदि युद्धसाधनों से युक्त होकर आप शत्रुओं को पराजित कर प्रजा को सुखी करें॥४॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—जैसे जीवात्मा शरीर-रथ पर स्थित होकर वाणीरूप वज्र से कुतर्कों को खण्डित करता हुआ सत्यपक्ष की रक्षा करता है, वैसे ही राजा भूयान, जलयान और अन्तरिक्षयान में बैठकर वज्र से शत्रुओं का उच्छेद कर राष्ट्र की रक्षा करे॥५॥

अगले मन्त्र में यह विषय है कि धनादि कौन कौन प्राप्त करता है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १
**४४१. शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न**
२ ३ २
**स्पृशद्रयिम्॥५॥**

**प्रदार्थ**—हे मेरे अन्तरात्मा रूपी इन्द्र! (**शम्**) सुख, शान्ति, (**पदम्**) उच्च पद, (**मघम्**) आध्यात्मिक और भौतिक धन (**रयीषिणे**) ऐश्वर्यप्राप्ति की महत्त्वाकांक्षा वाले को ही मिलता है। (**अव्रतः**) व्रतरहित और अकर्मण्य मनुष्य (**कामम्**) किसी उच्च आकांक्षा को (**न हिनोति**) नहीं प्राप्त होता, और (**न**) न ही (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**स्पृशम्**) स्पर्श कर पाता है॥५॥

**भावार्थ** :—धन, सुख, शान्ति और राजा, मन्त्री, न्यायाधीश आदि के उच्च पद एवं मोक्षपद को जो पाना चाहते हैं, उन्हें उसके लिए तीव्र महत्त्वाकांक्षा मन में धारण करके उसकी प्राप्ति के लिए महान् प्रयत्न करना चाहिए॥५॥

अगले मन्त्र में 'विश्वेदेवाः' देवता हैं। उनकी पवित्रता का वर्णन किया गया है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
**४४२. सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा**
२ ३ १ २
**अरेपसः॥६॥**

**पदार्थ** :—(**सदा**) हमेशा (**विश्वधायसः**) सबको अपना रस पिलाने वाली (**गावः**) धेनुएँ, सूर्यकिरणें और वेदवाणियाँ

(शुचयः) पवित्र और पवित्रताकारक होती हैं। (सदा) हमेशा (देवाः) दान करने, प्रकाशित होने, प्रकाशित करने आदि गुण वाले सदाचारी विद्वान् लोग (अरेपसः) निर्दोष एवं पवित्र होते हैं।।६।।

**भावार्थ** :—सब स्त्री-पुरुषों को गौओं, सूर्यकिरणों, वेदवाणियों और विद्वानों के समान सदा निर्दोष और पवित्र रहना चाहिए।।६।।

अगले मन्त्र का देवता उषा है। उषा के नाम से जगन्माता का आह्वान किया गया है।

**४४३. आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः॥७॥**

**पदार्थ** :—हे उषा के समान तेजोमयी जगन्माता! तू (**वनसा सह**) अपने संभजनीय तेज के साथ (**आ याहि**) आ, मेरे हृदय में प्रादुर्भूत हो, (**यत्**) जब (**गावः**) वेदरूपिणी गौएँ (**ऊधभिः**) ज्ञानरस से भरे मन्त्र रूप ऊधसों के साथ (**वर्तनिम्**) मेरे आत्मारूप दोहनगृह में (**सचन्त**) पहुँचें।।७।।

इस मन्त्र में उपमानों द्वारा उपमेयों के निगरण होने से अतिशयोक्ति अलंकार है।।७।।

**भावार्थ** :—उषा का प्रादुर्भाव होने पर जैसे घड़े के समान विशाल ऊधस वाली गौएँ दूध देने के लिए दोहनगृह को प्राप्त होती हैं, वैसे ही जगन्माता के प्रादुर्भूत होने पर ज्ञानरस से पूर्ण वेदरूपिणी गौएँ अपना ज्ञान रूप दूध देने के लिए स्तोता के आत्मा में पहुँचती हैं।।७।।

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से जगदीश्वर को सम्बोधन किया गया है।

**४४४. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) मधु बरसाने वाले जगदीश्वर! हम (**ते**) तुझे (**धीमहे**) अपने अन्तःकरण में धारण करते हैं। तेरे (**मधुमति**) मधुर (**प्रक्षे**) आनन्द के झरने में (**क्षियन्तः**)

निवास करते हुए, हम (**रयिम्**) आनन्द रूप धन को (**पुष्येम**) परिपुष्ट करें॥८॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की उपासना से उसके आनन्द के झरने में अपने–आपको नहलाते हुए हम धन्य हों॥८॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर की आराधना का फल वर्णित है।

**४४५. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स इन्द्रः॥९॥**

**पदार्थ** :—(**स्वर्काः**) उत्तम स्तुति करने वाले, अथवा उत्तम विधि से वेदमन्त्रों का उच्चारण करने वाले (**मरुतः**) ऋत्विज् लोग (**अर्कम्**) अर्चनीय परमेश्वर की (**अर्चन्ति**) पूजा करते हैं। (**श्रुतः**) वेदों में प्रसिद्ध अथवा सुना गया, (**युवा**) सदा युवा, युवा के समान असीम बल वाला (**सः**) वह (**इन्द्रः**) परमेश्वर, उन्हें (**आ स्तोभति**) सहारा देता है॥९॥

इस मन्त्र में अनुप्रास अलंकार है, साथ ही परस्पर उपकार करने रूप वस्तु से परिवृत्ति अलंकार व्यंग्य है॥९॥

**भावार्थ** :—जो मनुष्य वेदमन्त्रों के गानपूर्वक परमात्मा की आराधना करते हैं, उन्हें वह अक्षय अवलम्ब देकर अनुगृहीत करता है॥९॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को प्रेरणा दी गयी है।

**४४६. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे मित्रो! (**वः**) तुम (**वृत्रहन्तमाय**) सबसे बढ़कर पाप, अज्ञान आदि के विनाशक, (**विप्राय**) विद्वान्, मेधावी (**इन्द्राय**) वीर परमेश्वर के लिए (**गाथम्**) स्तोत्र को (**गायत**) गाओ, (**यम्**) जिस स्तोत्र को, वह (**जुजोषते**) प्रीतिपूर्वक सेवन करता है॥१०॥

**भावार्थ** :—सामस्तोत्रों से परमेश्वर की आराधना करके उससे पुरुषार्थ, पापविनाश और धारणावती बुद्धि की प्रेरणा सबको लेनी चाहिए॥१०॥

इस दशति में इन्द्र के गुणवर्णनपूर्वक उसकी स्तुति की प्रेरणा होने से, उसके रथ और वज्र का वर्णन होने से, उससे सम्बद्ध वाणियों, गायों, किरणों और विद्वानों की पवित्रता का वर्णन होने से, उससे सम्बद्ध उषा का आह्वान होने से और उसकी अर्चना का फल वर्णित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।।

# एकादशी दशतिः

**ऋषिः—१, ३, ४, ७, ९, १० वामदेवः; २ बन्धुः; ५ संवर्त्तः; ६ भुवन आप्त्यः; ८ भरद्वाजः॥ देवता—१, २, ३ अग्निः; ४, ८, १० इन्द्रः; ५ उषाः; ६, ७, ९ विश्वेदेवाः॥ छन्दः—१, ३, ४, ७ द्विपदा गायत्री; २, ५, ६ द्विपदा पङ्क्तिः; ८, ९ द्विपदा त्रिष्टुप्; १० एकपदा गायत्री॥ स्वरः—१, ३, ४, ७, १० षड्जः; २, ५, ६ पञ्चमः; ८, ९ धैवतः॥**

आदि की तीन ऋचाएँ अग्नि देवता की हैं। प्रथम ऋचा में अग्नि नाम से परमात्मा का वर्णन है।

१ २ ३ १ २र ३२उ ३ १ २
**४४७. अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् न सुमद्रथः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**अग्निः**) अग्रनेता परमेश्वर (**अचेति**) हमसे जान लिया या अनुभव कर लिया गया है, जो (**चिकितिः**) सर्वज्ञ, तथा (**सुमद्रथः**) श्रेष्ठ विमानादि रथों में प्रयुक्त किये जाने वाले (**हव्यवाड् न**) विद्युत् रूप अग्नि के समान (**सुमद्रथः**) श्रेष्ठ शरीर-रथों को या वेगवान् सूर्य, चन्द्र, भूगोल आदियों को रचने वाला है।।१।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे परमात्मा का सबको साक्षात्कार करना चाहिए, वैसे ही विद्युत्‌रूप अग्नि को भी जानना चाहिए और उसे जानकर समाचार भेजने, विमानादि यानों को चलाने आदि के कार्य सिद्ध करने चाहिएँ।।१।।

अगले मन्त्र में अग्नि नाम द्वारा परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**४४८. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे **( अग्ने )** अग्रनायक परमात्मन् वा राजन्! **( त्वम् )** आप **( नः )** हमारे **( अन्तमः )** समीपतम **( उत )** और **( त्राता )** विपत्तियों से त्राणकर्ता, **( शिवः )** कल्याणकारी तथा **( वरूथ्यः )** वरणीय एवं घरों के लिए हितकर **( भुवः )** होओ॥२॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर हमारे निकटतम, विघ्न-विद्वेष-पाप आदि से त्राण करने वाला, मंगलकारी और शरीररूप गृहों का हितकर्ता होता है, वैसे ही निर्वाचन-पद्धति से चुना हुआ राजा प्रजाओं के समीपतम होकर विपत्तियों से बचाने वाला, सुख शन्ति देने वाला और आवासगृहों के निर्माणार्थ धनादि देने वाला हो॥२॥

अगले मन्त्र में अग्नि नाम से परमेश्वर और राजा की महिमा वर्णित है।

**४४९. भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम्॥३॥**

**पदार्थ** :—**( भगः न )** सेवनीय सूर्य के समान **( चित्रः )** अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला **( अग्निः )** अग्रनेता परमेश्वर वा राजा **( महोनाम् )** तेजस्वी वा महत्त्वाकांक्षी जनों के **( रत्नम् )** रमणीय ऐश्वर्य को **( दधाति )** परिपुष्ट करता है॥३॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं महत्त्वाकांक्षी वा तेजस्वी नहीं हैं, उनकी परमात्मा वा राजा भी भला क्या सहायता करेंगे!

अगले मन्त्र का देवता इन्द्र है। उससे प्रार्थना की गयी है।

**४५०. विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे **( इन्द्र )** सबको सहायता प्रदान करने वाले जगदीश्वर! आप **( विश्वस्य )** सबको **( प्र स्तोभ )** भलीभाँति अवलम्ब दो, **( पुरो वा सन् )** चाहे आप प्रत्यक्ष सामने विद्यमान होवो, **( यदि वा )** अथवा चाहे **( नूनम् )** परोक्ष विद्यमान होओ॥४॥

**भावार्थ** :—प्रत्यक्ष हो चाहे परोक्ष, सदा ही परमेश्वर हमें अवलम्ब देता है। यद्यपि वह सदा सबके समक्ष ही है तो भी जैसे दिनौंधी रोग से ग्रस्त लोग सांसारिक पदार्थों को नहीं देख पाते हैं, वैसे ही अज्ञान से ग्रस्त हम जब उसे नहीं देख पाते, तब वह परोक्ष कहलाता है।।४।।

अगले मन्त्र का देवता उषा है। उषा के महत्त्व का वर्णन है।

**४५१. उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता॥५॥**

**पदार्थ** :—जैसे (**उषाः**) प्रभातकालीन प्राकृतिक उषा (**स्वसुः**) अपनी बहिन रात्रि के (**तमः**) अन्धकार को (**अप**) हटा देती है, और (**सुजातता**) अपने श्रेष्ठ जन्म से (**वर्तनिम्**) मार्ग को (**सं वर्तयति**) प्रकाशित कर देती है, वैसे ही (**उषाः**) योगशास्त्र में प्रसिद्ध आत्मख्याति (**स्वसुः**) आत्मा में राग, द्वेष आदि को प्रक्षिप्त करने वाली अविद्या के (**तमः**) तामसिक प्रभाव को (**तमः**) दूर कर देती है और (**सुजातता**) अपने शुभ जन्म से (**वर्तनिम्**) साधक के योगमार्ग को (**सं वर्तयति**) अध्यात्मप्रकाश से प्रकाशित कर देती है।।५।।

**भावार्थ** :—जो मनुष्य अविद्यारूप रात्रि को दूर करके विवेकख्यातिरूप उषा के प्रकाश को प्राप्त करते हैं, वे मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं।।५।।

अगले दो मन्त्रों के देवता 'विश्वेदेवाः' हैं। इस मन्त्र में भुवनों के प्रसाधन का विषय वर्णित है।

**४५२. इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अध्यात्मपक्ष में। हम, (**इन्द्रः च**) तथा द्रष्टा हमारा जीवात्मा, (**विश्वेदेवाः च**) और ज्ञान के साधन सब मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियाँ (**इमा भुवना**) इन अन्नमय, प्राणमय आदि कोष रूप सब भुवनों को (**कम्**) सुखपूर्वक (**सीषधेम**) प्रसाधित करें।।

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। हम प्रजाजन, (**इन्द्रः च**) और वीर राजनीतिज्ञ राजा, (**विश्वेदेवाः च**) और सब विद्वान् राजसभासद्, मिलकर (**इमा भुवना**) राष्ट्र के इन सब नगरों

को ( कम् ) सुखपूर्वक ( सीपधेम ) अलंकृत और समृद्ध करें॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा, मन, बुद्धि आदि की सहायता से शरीर के और राजा, मन्त्री, सभासदों आदि की सहायता से राष्ट्र के उत्कर्ष को भलीभाँति सिद्ध कर सब लोग सफल जन्म वाले हों॥६॥

अगले मन्त्र में सब विद्वानों तथा इन्द्र के दानों की प्रार्थना है।

**४५३. वि स्रुतयो यथा पथ इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः॥७॥**

**पदार्थ** :—हे सब विद्वानो तथा हे ( इन्द्र ) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर, जीवात्मन् या राजन्! ( त्वत् ) तेरे पास से ( **रातयः** ) दान ( **वि यन्तु** ) विविध दिशाओं में जाएँ, ( **यथा** ) जैसे ( **पथः** ) राजमार्ग से ( **स्रुतयः** ) छोटे-छोटे मार्ग विविध दिशाओं में जाते हैं॥७॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर, जीवात्मा और राजा से धन, धर्म, सत्य, अहिंसा, न्याय, विद्या, दया, उदारता, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य आदि दानों को प्राप्त करके हम श्रेष्ठ नागरिक बनें॥७॥

अगले मन्त्र का देवता इन्द्र है। उससे धनादि की आकांक्षा की गयी है।

**४५४. अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन्, जीवात्मन् अथवा राजन्! हम ( **अया** ) इस देह से अथवा इस बुद्धि से ( **देवहितम्** ) विद्वानों वा इन्द्रियों के लिए हितकर ( **वाजम्** ) धन, बल और विज्ञान को ( **सनेम** ) प्राप्त करें, और ( **सुवीराः** ) उत्तम वीर पुत्रों सहित, हम ( **शतहिमाः** ) सौ वर्ष ( **मदेम** ) आनन्द लाभ करते रहें॥८॥

**भावार्थ** :—वही धन, बल और विज्ञान श्रेष्ठ होता है, जो परोपकार में प्रयुक्त हो। उसे पाकर कम से कम सौ वर्ष जीने वाले सब स्त्री-पुरुष होवें॥८॥

अगले मन्त्र के देवता विश्वेदेवाः हैं। इसमें यह विषय है कि इन्द्र, मित्र और वरुण हमारे लिए क्या करें।

**४५५. ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र॥९॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा आदि के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! आप, (**मित्रः**) सूर्य और (**वरुणः**) वायु, मिलकर (**ऊर्जा**) रस से (**इडाः**) भूमियों को (**पिन्वत**) सींचो। हे इन्द्र परमात्मन्! आप (**नः**) हमारे लिए (**पीवरीम्**) प्रचुर (**इषम्**) धान्य-सम्पत्ति को (**कृणुहि**) उत्पन्न करो, जिससे हम दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित न हों॥

(**द्वितीय**) शरीर के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) मेरे जीवात्मन्! तू, (**मित्रः**) प्राण और (**वरुणः**) अपान मिलकर (**ऊर्जा**) बल के साथ (**इडाः**) मधुर वाणियों को (**पिन्वत**) प्रेरित करो। हे इन्द्र जीवात्मन्! तू (**नः**) हमारे लिए (**पीवरीम्**) प्रचुर (**इषम्**) ज्ञान-सम्पदा को (**कृणुहि**) उत्पन्न कर॥

(**तृतीय**) राष्ट्र के पक्ष में। हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवान् राजन्! आप, (**मित्रः**) राजमन्त्री, और (**वरुणः**) सेनापति, मिलकर (**ऊर्जा**) अन्न के साथ (**इडाः**) भूमियाँ और गौओं को (**पिन्वत**) बहुतायत से प्रदान करो। हे इन्द्र राजन्! आप (**इषम्**) प्रजा को (**पीवरीम्**) समृद्ध (**कृणुहि**) करो॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :–परमात्मा, जीवात्मा और राजा मन, बुद्धि, प्राण, अपान, सूर्य, वायु, सचिव, सेनापति आदियों के साथ मिलकर भोज्य, पेय, बल, वाणी, भूमि, गाय आदि सम्पदाओं से हमें समृद्ध करें॥९॥

अगले मन्त्र में इन्द्र के महत्त्व का वर्णन है।

**४५६. इन्द्रो विश्वस्य राजति॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**इन्द्रः**) परब्रह्म परमेश्वर (**विश्वस्य**) सकल ब्रह्माण्ड का, (**इन्द्रः**) अखण्ड जीवात्मा (**विश्वस्य**) सकल शरीर का, और (**इन्द्रः**) प्रजाओं से निर्वाचित राजा (**विश्वस्य**) सकल राष्ट्र का (**राजति**) सम्राट् है॥१०॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :—परमात्मा, जीवात्मा और राजा को अपने-अपने क्षेत्र का सम्राट् मानकर उनसे यथायोग्य लाभ प्राप्त करने चाहिएँ॥१०॥

इस दशति में अग्नि और इन्द्र नामों से परमात्मा, राजा आदि के गुण-कर्मों का वर्णन होने से, उषा नाम से प्राकृतिक और आध्यात्मिक उषा का वर्णन होने से, और ब्रह्माण्ड, शरीर तथा राष्ट्र में सब देवों के कर्तृत्व आदि का निरूपण होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## द्वादशी दशतिः

**ऋषिः—१, १० गृत्समदः; २ गौराङ्गिरसः; ३, ५, ९ परुच्छेपः; ४ रेभः; ६ एवयामरुत्; ७ अनानतः पारुच्छेपिः; ८ नकुलः॥ देवता—१, ३, ४, १० इन्द्रः; २ सूर्यः; ५ विश्वेदेवाः ६ मरुतः; ७ पवमानः; ८ सविता; ९ अग्निः॥ छन्दः—१, १० अष्टिः; २, ४, ६ जगती; ३, ५, ७, ९ अत्यष्टिः; ८, १० अतिशक्वरी॥ स्वरः—१, १० मध्यमः; २, ४, ६ निषादः; ३, ५, ७, ९ गान्धारः; ८, १० पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में सूर्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध-वर्णन-पूर्वक गुरु के समीप से ज्ञानरसरूप सोम के पान का विषय है।

**४५७. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोमम-पिबद् विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सूर्य-चन्द्र के पक्ष में। (**त्रिकद्रुकेषु**) वायु, बिजली और बादल रूप तीन पदार्थों से युक्त अन्तरिक्षभागों में (**महिषः**) महान्, (**तुविशुष्मः**) बहुत बलवान् सूर्यरूप इन्द्र (**यवाशिरम्**) संयुक्त-वियुक्त होने वाली सूर्यकिरणों से पूर्णता को प्राप्त होने वाले (**सोमम्**) चन्द्रमा को (**तृम्पत्**) तृप्ति

प्रदान करता है, और चन्द्रमा (**विष्णुना**) उस व्याप्तिमान् सूर्य से (**सुतम्**) उत्पन्न किये किरणसमूह को (**यथावशम्**) यथेच्छ (**अपिबत्**) पान करता है। (**सः**) वह चन्द्रमा में प्रविष्ट सूर्यकिरणसमूह (**ईम्**) इस चन्द्रमा को (**महि**) महान् (**कर्म**) प्राण-प्रदान, चान्द्र मासों के निर्माण आदि कार्य (**कर्तवे**) करने के लिए (**ममाद**) हर्षित करता है। (**सः**) वह (**देवः**) प्रकाशमान (**सत्यः**) सत्य नियम वाला (**इन्दुः**) चन्द्रमा (**एनम्**) इस (**देवम्**) प्रकाशक (**सत्यम्**) सत्य नियमों वाले (**इन्द्रम्**) सूर्य का (**सश्चत्**) सेवन करता रहता है।।

(**द्वितीय**) गुरु-शिष्य के पक्ष में। (**त्रिकद्रुकेषु**) ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड रूप तीन सवनों वाले शिक्षायज्ञों में (**महिषः**) महान्, (**तुविशुष्मः**) विद्यार्थी का अतिशय प्रतिभा-बल से युक्त आत्मा (**तृम्पत्**) तृप्ति लाभ करता हुआ (**विष्णुना**) व्याप्त विद्या वाले आचार्य **से** (**सुतम्**) अभिषुत, (**यवाशिरम्**) **व्रतपालनरूप कर्मों से परिपक्व** (**सोमम्**) ज्ञानरस को (**यथावशम्**) यथेच्छ (**अपिबत्**) पान करता है। (**सः**) पान किया हुआ वह ज्ञान-रस (**महाम्**) विद्या में महान्, (**उरुम्**) विशाल हृष्टपुष्ट शरीर वाले, (**ईम्**) विद्यार्थी के इस आत्मा को (**महि**) महान् (**कर्म**) समाजसुधार आदि कर्म (**कर्तवे**) करने के लिए (**ममाद**) हर्षित करता है। (**देवः**) दिव्यगुणयुक्त, (**सत्यः**) सत्य (**सः**) वह (**इन्दुः**) विद्यारस (**देवम्**) दिव्य गुण वाले (**सत्यम्**) सत्यप्रिय (**इन्द्रम्**) आत्मा को (**सश्चत्**) निरन्तर प्राप्त होता रहता है।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'देवो, देवं' में छेकानुप्रास और 'सत्य, सत्य' में यमक है।।१।।

**भावार्थ** :-विद्यार्थी का आत्मा गुरु के पास से ज्ञानरस का पान करके वैसे ही महान् कर्म करने योग्य हो जाता है, जैसे चन्द्रमा सूर्य के पास से प्रकाश का पान कर प्राणप्रदान आदि महान् कर्मों को करता है।।१।।

अगले मन्त्र का देवता सूर्य है। आदित्य, परमेश्वर और आचार्य का वर्णन है।

४५८. अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म।
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
मन्युमन्तश्चिता गोः॥२॥

**पदार्थ** :–(**अयम्**) यह सूर्य, परमेश्वर वा आचार्य (**सहस्रम्**) अकेला भी सहस्र के तुल्य, (**आनवः**) मनुष्यों के लिए हितकर, (**दृशः**) द्रष्टा अथवा दर्शन कराने वाला, (**कवीनाम्**) मेधावी विद्वानों का (**मतिः**) मतिप्रदाता, और (**विधर्मज्योतिः**) विशेष धारक प्रकाश से युक्त है। (**ब्रध्नः**) महान् यह सूर्य, परमेश्वर वा आचार्य (**समीचीः**) सम्यक् गति वाली, (**अरेपसः**) निर्मल (**उषसः**) उषाओं को अथवा ज्ञानदीप्तियों को (**समैरयत्**) भलीभाँति प्रेरित करता है, जिससे (**स्वसरे**) उज्ज्वल दिन अथवा दिन के समान उज्ज्वल विवेक के प्रकट हो जाने पर (**सचेतसः**) सहृदय जन (**मन्युमन्तः**) तेजयुक्त अथवा ब्रह्मवर्चस्वी होकर (**गोः**) किरणसमूह के अथवा वेदवाणी के (**चिताः**) **ज्ञाता हो जाते हैं॥२॥**

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। मतिः और ज्योतिः के अर्थ लक्षणा द्वारा क्रमशः मतिप्रदाता और ज्योतिष्मान् होते हैं। 'तिर्, तिर्', 'समी, समै' और 'चेत, चिता' में छेकानुप्रास तथा सकार, रेफ व तकार की पृथक्-पृथक् अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे सूर्य प्रकाशवती उषाओं को प्रेरित करता है, वैसे ही परमात्मा और आचार्य मनुष्यों में विद्या एवं विवेक की कान्तियों को उत्पन्न करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा और आचार्य का आह्वान किया गया है।

४५९. एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव
सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः। हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः
सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाज-
सातये॥३॥

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् परमात्मन् एवं विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य! (**अयम्**) वह आप (**नः अच्छ**) हमारे प्रति (**उप आ याहि**) आइये, (**परावतः न**) जैसे कोई दूर देश से आता है, और (**सत्पतिः**) श्रेष्ठ गृहपति (**विदथान् इव**) जैसे यज्ञों में आता है, और (**सत्पतिः**) सज्जनों का पालक (**राजा**) राजा (**अस्ता इव**) जैसे राजदरबार में आता है। (**प्रयस्वन्तः**) प्रयत्नवान् हम (**त्वा**) आपको (**सुतेषु**) आनन्द-रसों, वीर-रसों और विद्या-रसों के निमित्त से (**आ हवामहे**) बुलाते हैं। (**पुत्रासः न**) जैसे पुत्र (**पितरम्**) पिता को (**वाजसातये**) अन्नादि की प्राप्ति के लिए बुलाते हैं, वैसे ही (**मंहिष्ठम्**) धन, बल, विद्या आदि के अतिशय दानी आपको, हम (**वाजसातये**) धन, बल, विद्या आदि की प्राप्ति के लिए बुलाते हैं॥३॥

इस मन्त्र में चार उपमाएँ हैं। 'सत्पति' और 'वाजसातये' की एक-एक बार आवृत्ति में यमक अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जगदीश्वर और गुरुजन जिसके अनुकूल होते हैं, वह सब विपत्तियों को पार करके उत्कृष्ट ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा और आचार्य को लक्ष्य करके कहा गया है।

**४६०. तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं**
**श्रवांसि भूरि। मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्त**
**राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री॥४॥**

**पदार्थ** :–मैं (**तम्**) उस प्रसिद्ध (**मघवानम्**) ऐश्वर्यवान्, (**उग्रम्**) अन्यायों और अन्यायियों के प्रति उग्र, (**सत्रा दधानम्**) सत्य को धारण करने वाले, (**अप्रतिष्कुतम्**) शत्रुओं से प्रतिरुद्ध न होने वाले (**इन्द्रम्**) परमात्मा, राजा वा आचार्य से (**भूरि**) अनेकानेक (**श्रवांसि**) यशों की (**जोहवीमि**) बार-बार याचना करता हूँ। (**मंहिष्ठः**) अतिशय दानी, (**यज्ञियः**) पूजा वा सत्कार के योग्य वह (**गीर्भिः**) उपदेशवाणियों के साथ (**आ

ववर्त) हमारे अभिमुख होवे। (वज्री) अविद्या-अन्याय आदि पर, हिंसा-असत्य-तस्करी आदि पर और हिंसकों पर वज्र उठाने वाला वह (राये) ऐश्वर्य के लिए (विश्वा नः) हम सबको (सुपथा) सुपथ से (कृणोतु) ले चले॥४॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥४॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर, राजा और आचार्य जिन पर अनुग्रह करते हैं, वे सन्मार्ग पर चलने वाले और यशस्वी होते हैं॥४॥

अगले मन्त्र के विश्वेदेवाः देवता हैं। इसमें परमात्मा, जीवात्मा, मन, प्राण, अग्नि, सूर्य, वायु एवं बिजली का विषय है।

**४६१. अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे। यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे। अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवाँ अच्छ न धीतयः॥५॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) अध्यात्म पक्ष में। (**अस्तु श्रौषट्**) हमारी प्रार्थना सुनी जाए, अर्थात् हमारी कामनाएँ पूर्ण हों। मैं (**अग्निम्**) अग्रनायक परमात्मा को (**पुरः दधे**) सम्मुख स्थापित करता हूँ। हम सब (**त्यत्**) उस अति उपयोगी (**दिव्यं शर्धः**) प्रकाशपूर्ण आत्म-बल का (**नु**) शीघ्र ही (**आ वृणीमहे**) उपयोग करते हैं। (**इन्द्रवायू**) मन और प्राण का (**वृणीमहे**) उपयोग करते हैं। (**यत् ह**) जब वे मन और प्राण (**नाभा**) केन्द्रभूत हृदय-प्रदेश में (**सन्दाय**) स्वयं को बाँधकर (**नव्यसे**) अतिशय प्रशंसनीय (**विवस्वते**) अज्ञानान्धकार के निवारक आत्मा के लिए (**क्राणा**) उच्च संकल्प, प्राणवशीकरण आदि कर्म को करने वाले होते हैं, (**अध**) तब (**नूनम्**) अवश्य ही (**धीतयः**) धारणा, ध्यान, समाधियाँ (**उप प्रयन्ति**) योगी के समीप आ जाती हैं, सिद्ध हो जाती हैं, (**न**) जिस प्रकार (**धीतयः**) अंगुलियाँ (**देवान् अच्छ**) माता, पिता, अतिथि आदि विद्वानों को 'नमस्ते' करने के लिए (**उप प्रयन्ति**) तत्पर होती हैं॥

(**द्वितीय**) अधिदैवत पक्ष में। (**अस्तु श्रौषट्**) मेरा वचन

सुना जाए। मैं (अग्निम्) भौतिक आग का (धिया) बुद्धि या कर्मकौशल से (पुरः दधे) शिल्पादि कर्मों में उपयोग लेता हूँ। हम सभी (त्यत्) उस (दिव्यम्) द्युलोक में विद्यमान (शर्धः) बलवान् सूर्य का (नु) शीघ्र ही (आ वृणीमहे) शिल्पकर्म में उपयोग करते हैं। (इन्द्रवायू) विद्युत् और वायु का (वृणीमहे) उपयोग करते हैं। (यद् ह) जब वे विद्युत् और वायु (नाभा) केन्द्रभूत अन्तरिक्ष में (सन्दाय) पृथिवी आदि लोकों को आकर्षण-गुण से बाँधकर (नव्यसे) हर ऋतु में नवीन रूप में प्रकट होने वाले (विवस्वते) अन्धकार-निवारक सूर्य के चारों ओर (क्राणा) परिक्रमा कराते हैं, (अध) तब (नूनम्) निश्चय ही (धीतयः) सूर्य-किरणें (उप प्रयन्ति) उन पृथिवी आदि लोकों को प्राप्त होती हैं। शेष पूर्ववत्॥५॥

इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार है। 'वृणीमहे, वृणीमहे' में लाटानुप्रास और 'धीतयो, धीतयः' में यमक है॥५॥

**भावार्थ** :—जैसे शिल्पविद्या की उन्नति से अग्नि, सूर्य, बिजली और वायु को यन्त्र, यान आदियों में भलीभाँति प्रयुक्त करके मनुष्य महान् सुख प्राप्त कर सकते हैं, वैसे ही योगविद्या की उन्नति से जीवात्मा, मन, प्राण एवं इन्द्रियों के सामंजस्य द्वारा योगसमाधि और मोक्ष प्राप्त किये जा सकते हैं॥५॥

अगले मन्त्र के देवता 'मरुतः' हैं। इसमें विष्णु और मरुतों की सहायता से आत्मिक और राष्ट्रिय उत्कर्ष पाने की प्रेरणा है।

**४६२. प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा**
**एवयामरुत्। प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे**
**भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अध्यात्म-पक्ष में। हे साथियो! (**महे**) महान्, (**मरुत्वते**) प्राणयुक्त (**विष्णवे**) सारे शरीर में व्याप्त क्रिया वाले अपने जीवात्मा के प्रोत्साहनार्थ (**वः**) तुम्हारी (**मतयः**) बुद्धियाँ वा वाणियाँ (**प्र यन्तु**) प्रवृत्त हों, जो जीवात्मा (**गिरिजाः**) पर्वत-सदृश शरीर में जन्मा हुआ और (**एवयामरुत्**) वेगवान् प्राण वाला है। (**यज्यवे**) शरीर-संचालन रूप यज्ञ के कर्ता, (**सुखादये**) रोग आदियों को पूर्णतः खा जाने वाले

( **तवसे** ) शरीर से वृद्धिशील, ( **भन्ददिष्टये** ) सुखजनक शतायुष्य रूप इष्टि को करने वाले, ( **धुनिव्रताय** ) शारीरिक और मानसिक दोषों को कंपित करने वाले कर्म से युक्त ( **शवसे** ) बलवान् ( **शर्धाय** ) प्राणबल को पाने के लिए भी, तुम्हारी बुद्धियाँ वा वाणियाँ ( **प्र प्र यन्तु** ) प्रकृष्ट रूप से प्रवृत्त हों।।

( **द्वितीय** ) राष्ट्र के पक्ष में। हे राष्ट्रवासियो! ( **महे** ) महान्, ( **मरुत्वते** ) प्रशस्त योद्धा सैनिकों से युक्त, ( **विष्णवे** ) यानों द्वारा जल, स्थल, अन्तरिक्ष तीनों स्थानों में व्याप्त होने वाले राजा के लिए ( **वः** ) तुम्हारी ( **मतयः** ) वाणियाँ ( **प्र यन्तु** ) प्रवृत्त हों, जो राजा ( **गिरिजाः** ) पर्वततुल्य सर्वोच्च पद पर अभिषिक्त और ( **एवयामरुत्** ) वेगवान् सैनिकों वाला है। और, ( **यज्यवे** ) राष्ट्ररक्षा-रूप यज्ञ के अनुष्ठाता, ( **सुखादये** ) उत्कृष्ट पादत्राणों और हस्तत्राणों से युक्त, ( **तवसे** ) गतिमान्, कर्मण्य, ( **भन्ददिष्टये** ) संग्रामरूप यज्ञ से सुख पाने वाले, ( **धुनिव्रताय** ) शत्रुप्रकम्पक कर्मों वाले, ( **शवसे** ) बलवान् ( **शर्धाय** ) वीर योद्धाओं के सैन्य के लिए भी, तुम्हारी वाणियाँ ( **प्र प्र यन्तु** ) अतिशय प्रवृत्त हों, अर्थात् तुम राजा की तथा उसके सैन्यगण की प्रशंसा करो और उन्हें उत्तम उद्बोधन दो।।६।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।६।।

**भावार्थ** :—मनुष्य जब प्राणायाम से शारीरिक और मानसिक दोषों को जलाकर आत्मिक बल बढ़ाते हैं, तब सब सिद्धियाँ उन्हें हस्तगत हो जाती हैं। वैसे ही राष्ट्र के वीर सैनिक सब शत्रुओं को कँपा कर जब राजा के बल को बढ़ाते हैं, तब राष्ट्र में सब उन्नतियाँ भासित होने लगती हैं।।६।।

अगले मन्त्र का देवता पवमान सोम है। सूर्य के उपमान से आत्मा का वर्णन किया गया है।

**४६३. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति**
**सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः। धारा पृष्ठस्य रोचते**
**पुनानो अरुषो हरिः। विश्वा यद्रूपा परियास्यृ-**
**क्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः॥७॥**

**पदार्थ** :—यह सोम अर्थात् इन्द्रियों को कर्मों में प्रेरित करने वाला आत्मा ( **अया** ) इस ( **हरिण्या** ) हृदयहारिणी ( **रुचा** ) तेजस्विता से ( **पुनानः** ) पवित्रता देता हुआ ( **सयुग्वभिः** ) साथ नियुक्त होने वाले प्राणों के साथ मिलकर ( **विश्वा द्वेषांसि** ) सब द्वेषी विघ्नों अथवा काम, क्रोध आदि छहों रिपुओं को ( **तरति** ) पार कर लेता है, ( **सूरः न** ) जैसे सूर्य ( **सयुग्वभिः** ) सहयोगी किरणों से ( **विश्वा द्वेषांसि** ) सब शत्रुभूत अन्धकारों को ( **तरति** ) पार करता है। ( **पृष्ठस्य** ) प्रकाशसेचक आत्मारूप सोम की ( **धारा** ) प्रकाश-धारा ( **रोचते** ) भासित होती है। ( **अरुषः** ) तेज से आरोचमान ( **हरिः** ) पापहारी तू आत्मारूप सोम ( **पुनानः** ) मन, बुद्धि आदि को पवित्र करता है, ( **यत्** ) जबकि तू ( **ऋक्वभिः** ) प्रशस्तस्तुतियुक्त कर्मों के साथ, और ( **ऋक्वभिः** ) प्रशंसनीय ( **सप्तास्यैः** ) पाँच ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि इन सप्तमुख प्राणों के साथ ( **विश्वा रूपा** ) सब रूपधारी मनुष्यों को ( **परियासि** ) प्राप्त होता है।

यहाँ 'सूरो न सयुग्वभिः' द्वारा सूर्य को उपमान बनाने से शेष मन्त्र सूर्य के पक्ष में भी घटता है। कैसा सूर्य? जो ( **अया** ) इस ( **हरिण्या** ) तमोहारिणी ( **रुचा** ) दीप्ति से ( **पुनानः** ) भूमि को पवित्र करता हुआ ( **सयुग्वभिः** ) सहयोगी किरणों से ( **विश्वा द्वेषांसि** ) सब द्वेषकारी अन्धकार, रोग आदियों को ( **तरति** ) निवारण करता है, ( **पृष्ठस्य** ) वृष्टिकर्ता जिस सूर्य की ( **धारा** ) प्रकाशधारा या वृष्टिधारा ( **रोचते** ) चमकती है, जो ( **अरुषः** ) तेजस्वी रूप वाला ( **हरिः** ) आकर्षण-बल से पृथिवी आदि लोकों का धारणकर्ता सूर्य ( **पुनानः** ) पवित्रता देता है, ( **यत्** ) जबकि ( **सप्तास्येभिः** ) सात मुखों अर्थात् रंगों वाली ( **ऋक्वभिः** ) प्रशंसनीय किरणों से ( **विश्वा रूपाणि** ) सब रूपवान् वस्तुओं को ( **परियाति** ) प्राप्त होता है॥७॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है। 'सयुग्वभिः' और 'ऋक्वभिः' की एक-एक बार आवृत्ति में यमक है॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य अपनी किरणों से रोग, मलिनता आदि को दूर कर समस्त भूमण्डल को पवित्र करता है, वैसे ही मनुष्यों का आत्मा सब पाप, द्वेष आदि कल्मषों को दूर कर जीवन को पवित्र करे॥७॥

अगले मन्त्र का देवता सविता है। सविता नाम से परमेश्वर, राजा और सूर्य का वर्णन किया गया है।

**४६४. अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिर-मिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः॥८॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। मैं (**त्यम्**) उस प्रसिद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वाले, (**ओण्योः**) द्यावापृथिवी के अथवा वाणी और मन के (**देवम्**) प्रकाशक, (**कविक्रतुम्**) क्रान्तदर्शिनी प्रज्ञा वाले अथवा बुद्धिपूर्ण कर्मों वाले, (**सत्यसवम्**) सत्य ऐश्वर्य वाले अथवा सत्य प्रेरणा वाले, (**रत्नधाम्**) रमणीय लोकों के धारणकर्ता, (**प्रियम्**) प्रिय, (**मतिम्**) ज्ञानी (**सवितारम्**) जगदुत्पादक परमेश्वर की (**अभि अर्चामि**) अभिमुख होकर पूजा करता हूँ। (**यस्य**) जिस परमेश्वर की (**ऊर्ध्वा**) उत्कृष्ट (**अमतिः भाः**) आत्मदीप्ति (**अदिद्युतत्**) उपासकों को आत्मिक प्रकाश देती है, उसके (**सवीमनि**) अनुशासन में, हम होवें। (**हिरण्यपाणिः**) ज्योतियों को व्यवहार में लाने वाले, (**सुक्रतुः**) उत्तम प्रज्ञा व कर्मों वाले उस परमेश्वर ने (**कृपा**) अपनी कृपा से (**स्वः**) ज्योतिष्मान् सूर्य को (**अमिमीत**) बनाया है।।

(**द्वितीय**) राष्ट्र के पक्ष में। मैं प्रजाजन (**त्यम्**) उस विशिष्ट गुण-कर्म-स्वभाव वाले, (**ओण्योः**) स्त्रीपुरुषों को (**देवम्**) विद्या आदि से प्रकाशित करने वाले, (**कविक्रतुम्**) बुद्धिपूर्ण कर्मों वाले, (**सत्यसवम्**) सत्य ज्ञान वाले, (**रत्नधाम्**) रमणीय धनों को प्रदान करने वाले, (**प्रियम्**) प्रिय, (**मतिम्**) विचारशील, (**सवितारम्**) सदाचार के प्रेरक राजा का (**अभि अर्चामि**) सत्कार करता हूँ। (**यस्य**) जिस राजा का (**ऊर्ध्वा**) उच्च (**अमतिः**) सर्वाधिक तेजस्वी रूप, और जिसकी (**भाः**) यश की कान्ति (**अदिद्युतत्**) अन्यों को भी तेजस्वी और यशस्वी करते हैं, उसके (**सवीमनि**) अनुशासन में, हम रहें।

(**हिरण्यपाणिः**) सुवर्ण आदि धन को दानार्थ हाथ में ग्रहण करने वाला, (**सुक्रतुः**) शुभ कर्मों वाला वह राजा (**कृपा**) अपने सामर्थ्य से, राष्ट्र में (**स्वः**) सुख को (**अमिमीत**) रचता है।।

(**तृतीय**) सूर्य के पक्ष में। मैं (**त्यम्**) उस सुदूरस्थ, (**ओण्योः**) भूमि–आकाश के (**देवम्**) प्रकाशक, (**कविक्रतुम्**) मेधावियों के कर्मों के सदृश भूमण्डल–धारण, ऋतुचक्रप्रवर्तन आदि कर्मों को करने वाले, (**सत्यसवम्**) जल को ऊपर–नीचे ले जाने वाले, (**रत्नधाम्**) सोना, चाँदी, हीरे, मोती आदि रत्नों को भूमि में स्थापित करने वाले, (**प्रियम्**) तृप्तिप्रदाता, (**मतिम्**) ज्ञान में साधन बनने वाले (**सवितारम्**) सूर्य की (**अभि अर्चामि**) स्तुति करता हूँ, अर्थात् उसके गुण–कर्मों का वर्णन करता हूँ। (**यस्य**) जिस सूर्य की (**अमतिः भाः**) रूपवती प्रभा (**सवीमनि**) उत्पन्न भूमण्डल पर (**अदिद्युतत्**) सब पदार्थों को प्रकाशित करती है, वह (**हिरण्यपाणिः**) सुनहरी किरणों वाला, (**सुक्रतुः**) उत्तम कर्मों वाला सूर्य (**कृपा**) अपने सामर्थ्य से (**स्वः**) प्रकाश को (**अमिमीत**) उत्पन्न करता है।।८।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।८।।

**भावार्थ** :—अनुपम गुण–कर्म–स्वभाव वाले परमेश्वर की पूजा करके, पूजा का सत्कार करके और सूर्य का उपयोग करके प्रजाएँ सुख प्राप्त करती हैं।।८।।

अगले मन्त्र का देवता अग्नि है। परमेश्वर की महिमा का वर्णन है।

**४६५. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो**
**जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया**
**स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा घृतस्य विभ्राष्टिमनु**
**शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥९॥**

**पदार्थ** :—मैं (**होतारम्**) सृष्ट्युत्पत्ति और प्रलय के कर्ता, (**वसोः**) धन के (**दास्वन्तम्**) दाता, (**सहसः सूनुम्**) बल के

प्रेरक, (जातवेदसम्) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, सर्वान्तर्यामी, (विप्रं न) विद्वान् के समान (जातवेदसम्) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (अग्निम्) अग्रनेता परमेश्वर की (मन्ये) पूजा करता हूँ। (देवः) स्वयं प्रकाशित तथा अन्यों का प्रकाशक (यः) जो परमेश्वर (ऊर्ध्वया) उन्नत, (देवाच्या) सूर्य, चन्द्र आदि देवों के प्रति गयी हुई (कृपा) अपनी शक्ति से (स्वध्वरः) उत्कृष्ट सृष्टि-यज्ञ को चला रहा है, वही (आजुह्वानस्य) अग्नि में आहुत किये जाते हुए, (शुक्रशोचिषः) उज्ज्वल दीप्ति वाले (घृतस्य) घृत की (विभ्राष्टिम्) प्रदीप्ति में भी (अनु) अनुप्रविष्ट है, अर्थात् अग्नि का प्रदीप्त होना आदि क्रियाएँ भी परमेश्वर के ही सामर्थ्य से हो रही हैं, जैसा कि उपनिषद् में भी कहा है 'उसी की चमक से यह सब कुछ चमक रहा है' (श्वेता० ६।१४)।।९।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है। 'जातवेदसम्' की पुनरुक्ति में यमक और 'देवो, देवा' में छेकानुप्रास है।।९।।

**भावार्थ** :—अग्नि में घृत की आहुति देने से जो प्रभा होती है, वह धन, बल, ज्ञान, आदि के प्रदाता, सृष्टि के व्यवस्थापक जगदीश्वर की ही प्रभा की ओर निर्देश करती है।।९।।

अगले मन्त्र का देवता इन्द्र है। उसके लोकोपकारक कार्यों का वर्णन है।

**४६६. तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं**
**कृतम्। यो देवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः।**
**भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं शतक्रतुर्विदे**
**दिषम्॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे (नृतो) पृथिवी आदि लोकों को नचाने वाले (इन्द्र) जगदीश्वर! (तव) तुम्हारा (त्यत्) वह प्रसिद्ध, (नर्यम्) नरों का हितकर, (प्रथमम्) श्रेष्ठ, (पूर्व्यम्) पूर्वकाल से चला आ रहा (अपः) कर्म (प्रवाच्यम्) प्रशंसनीय है, (यः) जो तुम (देवस्य) प्रकाशक सूर्य के (शवसा) बल से (असु)

प्राण को ( **रिणन्** ) प्रेरित करना चाहते हुए, ( **अपः** ) अन्तरिक्ष में स्थित जलों को ( **प्रारिणाः** ) वर्षा द्वारा नीचे गिराते हो, और ( **विश्वम्** ) सब ( **अदेवम्** ) अप्रकाश के कारणभूत भौतिक और मानसिक अन्धकार को ( **ओजसा** ) बल से ( **अभिभुवः** ) परास्त करते हो। आगे परोक्षकृत वर्णन है—( **शतक्रतुः** ) अनन्त प्रज्ञा वाला और अनन्त कर्मों वाला वह जगदीश्वर ( **ऊर्जम्** ) बल तथा प्राण को ( **विदेत्** ) प्राप्त कराये, ( **इषम्** ) इच्छासिद्धि को ( **विदेत्** ) प्राप्त कराये॥१०॥

इस मन्त्र में 'रिणा, रिण', 'देव, देव', 'विदेद्, विदेदि' में छेकानुप्रास अलंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर ही सूर्य द्वारा पृथिवी आदि लोकों को नचाता हुआ सूर्य के चारों ओर तथा अपनी धुरी पर घुमाता है। वही जैसे अन्तरिक्ष में रुके हुए जलों को बरसाता है, वैसे ही आत्मलोक में रुकी हुई आनन्द-धाराओं को मनोभूमि पर प्रवाहित करता है। वही जैसे विशाल अन्धकार को विदीर्ण कर भौतिक प्रकाश को उत्पन्न करता है, वैसे ही मन की भूमि पर व्याप्त तमोगुण के जाल को विच्छिन्न करके आत्म-प्रकाश को प्रकट करता है॥१०॥

इस दशति में सूर्य, पवमान, हरि, सविता, अग्नि, विष्णु नामों से जगदीश्वर आदि के गुण-कर्मों का वर्णन होने से तथा 'विश्वे देवाः' और मरुतों का आह्वान होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

**इति सामवेदसंहितायामैन्द्रं काण्डम्॥**

# अथ पवमानं काण्डम्

# अथ पञ्चमोऽध्यायः

## प्रथमा दशतिः

ऋषिः—१, ४ अमहीयुः; २ मधुच्छन्दाः; ३ भृगुर्वारुणिः; ५ त्रितः; ६ कश्यपः; ७ जमदग्निः; ८ दृढच्युत आगस्त्यः; ९, १० काश्यपोऽसितः। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में ऊपर से नीचे की ओर सोम का प्रवाह वर्णित है।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र

**४६७. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।**

३२उ ३ २ ३ १ २

**उग्रं शर्म महि श्रवः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम! पवित्रकर्ता रसागार परमेश्वर! (**ते**) तेरा (**अन्धसः**) आनन्दरस का (**जातम्**) समूह (**उच्चा**) उच्च है, (**दिवि सत्**) प्रकाशमान आनन्दमय कोश में विद्यमान उसको (**भूमि**) भूमि अर्थात् भूमि पर स्थित मनुष्य (**आददे**) ग्रहण करता है। उस आनन्दरस से (**उग्रं शर्म**) तीव्र कल्याण, और (**महि श्रवः**) महान् यश, प्राप्त होता है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे ऊपर अन्तरिक्ष में विद्यमान बादल के रस को अथवा चन्द्रमा की चाँदनी के रस को ग्रहण कर भूमि सस्यश्यामला हो जाती है, वैसे ही उच्च आनन्दमय कोश में अभिषुत होते हुए ब्रह्मानन्द-रस का पान कर सामान्य मनुष्य कृतार्थ हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में यह वर्णित है कि वह सोम अपनी धारा से हमें पवित्र करे।

**४६८. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।**
**इन्द्राय पातवे सुतः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रसागार परमेश्वर! तुम (**स्वादिष्ठया**) स्वादिष्ठ, (**मदिष्ठया**) अतिशय हर्षप्रद (**धारया**) आनन्दधारा से (**पवस्व**) हमें पवित्र करो। तुम (**इन्द्राय**) मेरे आत्मा के (**पातवे**) पान के लिए (**सुतः**) अभिषुत हो॥२॥

**भावार्थ** :—अपने अन्तःकरण में बहती हुई पवित्रतासम्पादिनी आनन्द-रस की सरिता को अनुभव करता हुआ उपासक कह रहा है कि परमात्मा-रूप सोम से अभिषुत होता हुआ ब्रह्मानन्द-रस इसी प्रकार मेरे आत्मा के पानार्थ निरन्तर धारा-रूप में प्रवाहित होता रहे॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः सोमरस के धाराप्रवाह का आह्वान है।

**४६९. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः।**
**विश्वा दधान ओजसा॥३॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्म-सोम! (**वृषा**) अध्यात्म-सम्पत्ति की वर्षा करने वाला तू (**धारया**) धारा-रूप में (**पवस्व**) प्रवाहित हो, (**मरुत्वते च**) और प्राणों के सहचर आत्मा के लिए (**मत्सरः**) आनन्ददायक हो। (**ओजसा**) अपने ओज से (**विश्वा**) सब आत्मा, मन, बुद्धि आदियों को (**दधानः**) धारण करने वाला बन॥३॥

**भावार्थ** :—जब प्राणायाम-साधन और ध्यान के द्वारा रसनिधि परमेश्वर से धारारूप में आनन्दरस का सन्दोह प्रस्रुत होता है, तब शरीर-राज्य के आत्मा, मन, बुद्धि आदि सभी अंग तृप्त हो जाते हैं॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा-रूप सोम से प्रार्थना की गयी है।

**४७०. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।**
**देवावीरघशंसहा॥४॥**

**पदार्थ** :—हे पवित्रतादायक परमात्म-सोम! (**यः ते**) जो

तेरा (**वरेण्यः**) वरणीय (**मदः**) आनन्द-रस है, (**तेन अन्धसा**) उस रस के साथ (**पवस्व**) प्रवाहित हो, और प्रवाहित होकर (**देवावीः**) सन्मार्ग में प्रवृत्त करने के द्वारा मन, इन्द्रिय आदि देवों का रक्षक तथा (**अघशंसहा**) पापप्रशंसक भावों का विनाशक बन॥४॥

**भावार्थ** :—रसनिधि परमात्मा की उपासना से जो आनन्दरस प्राप्त होता है, उससे शरीर के सब मन, इन्द्रियाँ आदि कुटिल मार्ग को छोड़कर सरलगामी बन जाते हैं और पापप्रशंसक भाव पराजित हो जाते हैं॥४॥

अगले मन्त्र में आनन्द-रस के झरने का वर्णन है।

**४७१. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।**
**हरिरेति कनिक्रदत्॥५॥**

**पदार्थ** :—(**तिस्रः वाचः**) ऋग्, यजुः, साम रूप तीन वाणियाँ (**उदीरते**) उठ रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानो (**धेनवः**) नवप्रसूत दुधारू (**गावः**) गौएँ (**मिमन्ति**) बछड़ों के प्रति रंभा रही हों। (**हरिः**) कल्मषहारी, आनन्दमय सोमरस का झरना (**कनिक्रदत्**) झर-झर शब्द करता हुआ (**एति**) उपासकों की मनोभूमि पर झर रहा है॥५॥

इस मन्त्र में व्यंग्योत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति और अनुप्रास अलंकार हैं॥५॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की आराधना में लीन जन पुनः-पुनः ऋग्, यजुः, साम रूप वाणियों का उच्चारण कर रहे हैं, मानो बछड़ों के प्रति प्रेम में भरी हुई धेनुएँ रंभा रही हों। उपासकों की मनोभूमियाँ रसनिधि परमात्मा के पास से प्रस्तुत आनन्दरस के झरने में नहा रही हैं। अहो, कैसा आनन्दमय वातावरण है॥५॥

अगले मन्त्र में इन्दु नाम से परमात्मा-रूप सोम का आह्वान है।

**४७२. इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः।**
**अर्कस्य योनिमासदम्॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) चन्द्रमा के सदृश आह्लादक, रस से

आर्द्र करने वाले रसनिधि परमात्मन्! ( **मधुमत्तमः** ) अतिशय मधुर आप ( **मरुत्वते इन्द्राय** ) प्राणयुक्त मेरे आत्मा के लाभार्थ, ( **अर्कस्य** ) उपासक उस आत्मा के ( **योनिम्** ) निवासगृह हृदय में ( **पवस्व** ) प्राप्त हों।।६।।

**भावार्थ** :—समाधि-दशा में रसागार परमेश्वर से प्रवाहित होता हुआ आनन्द-सन्दोह हृदय में व्याप्त होकर उपासक जीवन का महान् कल्याण करता है।।६।।

अगले मन्त्र में आनन्दरस का वर्णन है।

**४७३. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।**
**श्येनो न योनिमासदत्॥७॥**

पदार्थ :—( **गिरिष्ठाः** ) पर्वत पर स्थित, ( **दक्षः** ) बलप्रद ( **अंशुः** ) सोम ओषधि, जैसे ( **अप्सु** ) जलों में ( **असावि** ) अभिषुत की जाती है, वैसे ही ( **गिरिष्ठाः** ) पर्वत के समान उन्नत परब्रह्म में स्थित, ( **दक्षः** ) आत्मबल को बढ़ाने वाला ( **अंशुः** ) आनन्द-रस ( **मदाय** ) हर्ष के लिए ( **अप्सु** ) मेरे प्राणों वा कर्मों में ( **असावि** ) मेरे द्वारा अभिषुत किया गया है। ( **श्येनः न** ) बाज पक्षी, जैसे ( **योनिम्** ) अपने घोंसले को प्राप्त होता है, वैसे ही यह आनन्दरस ( **योनिम्** ) मेरे हृदय-गृह में ( **आ असदत्** ) आकर स्थित हो गया है।।७।।

इस मन्त्र में पूर्वार्द्ध में श्लिष्ट व्यङ्ग्योपमा तथा उत्तरार्ध में वाच्योपमा अलंकार है।।७।।

**भावार्थ** :—जैसे बाज आदि पक्षी सायंकाल अपने आवासभूत वृक्ष पर आ जाते हैं, वैसे ही परब्रह्म के पास से झरता हुआ आनन्द-रस हृदय-प्रदेश में आता है। और जैसे सोमलता का सोमरस वसतीवरी नामक पात्र में स्थित जल में अभिषुत किया जाता है, वैसे ही आनन्द-रस स्तोता के प्राणों और कर्मों में अभिषुत होता है।।७।।

अगले मन्त्र में आनन्दरस के झरने की प्रार्थना है।

**४७४. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।**
**मरुद्भ्यो वायवे मदः॥८॥**

**पदार्थ** :–हे (**हरे**) उन्नति की ओर ले जाने वाले रसागार परब्रह्म! (**दक्षसाधनः**) बल के साधक आप (**देवेभ्यः पीतये**) विद्वानों द्वारा पान के लिए (**पवस्व**) आनन्दरस को परिस्रुत करो। उन विद्वानों के (**मरुद्भ्यः**) प्राणों के लिए तथा (**वायवे**) गतिशील मन के लिए (**मदः**) तृप्तिप्रदाता होओ॥८॥

**भावार्थ** :–परब्रह्म के पास से जो आनन्द-रस झरता है वह साधक की ऊर्ध्वयात्रा में सहायक होता है, और उस रस से उसका मन, बुद्धि, प्राण आदि सब-कुछ परमतृप्ति को पा लेता है॥८॥

अगले मन्त्र में आनन्दरस के प्रवाह का वर्णन है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**४७५. परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्।**
१ २ ३ १ २
**मदेषु सर्वधा असि॥९॥**

**पदार्थ** :–(**गिरिष्ठाः**) पर्वत पर उत्पन्न (**सोमः**) सोम ओषधि, जैसे (**स्वानः**) निचोड़ने पर (**पवित्रे**) दशापवित्र में क्षरित होती है, वैसे ही (**गिरिष्ठाः**) पर्वत के समान उन्नत परब्रह्म में स्थित और (**स्वानः**) वहाँ से अभिषुत किया जाता हुआ (**सोमः**) आनन्दरस (**पवित्रे**) पवित्र हृदय में (**अक्षरत्**) क्षरित हो रहा है। हे रसागार परमात्मन्! तुम (**मदेषु**) आनन्दरसों के क्षरित होने पर (**सर्वधाः**) सर्वात्मना धारणकर्ता (**असि**) होते हो॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषमूलक वाचकलुप्तोपमालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :–जब रसनिधि परमात्मा से आनन्दरस हृदय में प्रस्रुत होता है, तब रस से संतृप्त योगी पूर्णतः धृत हो जाता है॥९॥

अगले मन्त्र में परमात्मा-रूप सोम की रस द्वारा व्याप्ति का वर्णन है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २र ३क २र ३ २
**४७६. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः।**
३ १ २ ३ १ २
**स्वानैर्याति कविक्रतुः॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**नप्त्योः हितः**) द्यावापृथिवी अथवा प्राणापानों

का हितकर, ( **कविः** ) क्रान्तद्रष्टा, ( **कविक्रतुः** ) बुद्धिपूर्ण कर्मों वाला रसागार सोम परमात्मा ( **स्वानैः** ) अभिषुत किये जाते हुए आनन्द-रसों के साथ ( **दिवः** ) द्योतमान जीवात्मा के ( **प्रिया वयांसि** ) प्रिय मन, बुद्धि, आदि लोकों में ( **परि याति** ) व्याप्त हो जाता है।।१०।।

**भावार्थ** :—रसनिधि परमात्मा का दिव्य आनन्द जब आत्मा में व्याप्त होता है, तब आत्मा से सम्बद्ध सब मन, बुद्धि आदि मानो हर्ष से नाच उठते हैं।।१०।।

इस दशति में परमात्मा रूप पवमान सोम का तथा उसके आनन्दरस का वर्णन होने से और पूर्व दशति में भी इन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवमान आदि नामों से परमात्मा का ही वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।।

## द्वितीया दशतिः

**ऋषिः—१ श्यावाश्वः; २ त्रितः; ३, ८ अमहीयुः; ४ भृगुः; ५, ६ कश्यपः; ७ निध्रुविः काश्यपः; ९, १० काश्यपोऽसितः॥ देवता—पवमानः सोमः॥**

**छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

अगले मन्त्र में दिव्य आनन्दरसों का वर्णन है।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**४७७. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्।**
३ २ ३ १ २
**सुता विदथे अक्रमुः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **सुताः** ) रसागार परमात्मा से अभिषुत, ( **मदच्युतः** ) उत्साहवर्षी ( **सोमासः** ) दिव्य आनन्द-रस ( **मघोनाम्** ) हम ऐश्वर्यवानों के ( **श्रवसे** ) यश के लिए ( **विदथे** ) हमारे जीवन-यज्ञ में ( **प्र अक्रमुः** ) व्याप्त हो रहे हैं।।१।।

**भावार्थ** :—परमात्मा के साथ योग से जो दिव्य आनन्दरस प्राप्त होता है वह मानव के सम्पूर्ण जीवन-यज्ञ में व्याप्त होकर उसे यशस्वी बनाता है।।१।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि दिव्य आनन्दरस की तरंगें क्या करती हैं।

**४७८. प्र सोमासो विपश्चितोऽ पो नयन्त ऊर्मयः।**
**वनानि महिषा इव॥२॥**

**पदार्थ** :–( **ऊर्मयः** ) तरंगरूप, ( **विपश्चितः** ) बुद्धिवर्धक, ( **सोमासः** ) परमात्मा से प्रस्रुत आनन्दरस ( **अपः** ) कर्मों को ( **प्र नयन्ते** ) उत्कृष्ट मार्ग में प्रेरित कर देते हैं, ( **वनानि** ) अन्तरिक्षस्थ जलों को ( **महिषाः इव** ) जैसे माध्यमिक देवगण पवन को ( **प्र नयन्ते** ) वेग से प्रेरित करते हैं॥२॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :–योगियों का योग सिद्ध हो जाने पर दिव्य आनन्दरस की तरंगों से उनके कर्म भी परम उत्कृष्ट हो जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**४७९. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।**
**विश्वा अप द्विषो जहि॥३॥**

**पदार्थ** :–हे ( **इन्दो** ) चन्द्रमा के समान आह्लादक और\ सोमवल्ली के समान रसागार परमात्मन्! ( **वृषा** ) बादल के समान वर्षा करने वाले आप ( **सुतः** ) हृदय में अभिषुत होकर ( **पवस्व** ) हमें पवित्र कीजिए। ( **जने** ) जनसमाज में ( **नः** ) हमें ( **यशसः** ) यशस्वी ( **कृधि** ) कीजिए। ( **विश्वाः** ) सब ( **द्विषः** ) द्वेषवृत्तियों को, और काम-क्रोधादि की द्वेषकर्त्री सेनाओं को ( **अप जहि** ) विनष्ट कीजिए॥३॥

**भावार्थ** :–परब्रह्मरूप सोम से प्रवाहित होती हुई दिव्य आनन्द की धाराएँ योगसाधकों को यशस्वी और शत्रुरहित कर देती हैं॥३॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा का आह्वान किया गया है।

**४८०. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।**
**पवमान स्वर्दृशम्॥४॥**

**पदार्थ** :–हे ( **पवमान** ) पवित्रता देने वाले रसागार परमात्मन्! आप ( **हि** ) क्योंकि ( **भानुना** ) अपने तेज से ( **वृषा** ) आनन्द-रस

की वृष्टि करने वाले (असि) हो, इसलिए (द्युमन्तम्) देदीप्यमान, (स्वर्दृशम्) मोक्षसुख को दर्शाने वाले (त्वा) आपको, हम (हवामहे) पुकारते हैं॥४॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य अपने तेज से जल की वर्षा करता है, वैसे ही परमेश्वर आनन्द-रस का वर्षक होता है। उस रसनिधि, रसवर्षक, तेजस्वी, तेज-वर्द्धक, आनन्दमय, मोक्षानन्द का दर्शन कराने वाले परमेश्वर की सबको उपासना करनी चाहिए॥४॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है।

**४८१. इन्दुः पविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मतिः।**
**सृजदश्वं रथीरिव॥५॥**

**पदार्थ** :—(**चेतनः**) चेतना प्रदान करने वाला, (**कवीनां प्रियः**) मेधावियों का प्रिय, (**मतिः**) ज्ञाता, (**इन्दुः**) चन्द्रमा के समान आह्लादक, सोमलता के समान रसागार परमेश्वर (**पविष्ट**) अन्तःकरण को पवित्र करता है, और (**अश्वम्**) प्राण को (**सृजत्**) ऊर्ध्वारोहण के लिए प्रेरित कर देता है, (**रथीः इव**) जैसे सारथि (**अश्वम्**) रथ में नियुक्त घोड़े को (**सृजत्**) चलने के लिए प्रेरित करता है॥५॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—उपासना किया हुआ परमात्मा-रूप सोम योगी के चित्त को पवित्र करके उसके प्राणों को योगसिद्धियों के प्राप्त्यर्थ ऊर्ध्वारोहण के लिए प्रेरित कर देता है॥५॥

अगले मन्त्र में भक्तिरस को अभिपुत करने का प्रयोजन वर्णित है।

**४८२. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।**
**शुक्रासो वीरयाशवः॥६॥**

**पदार्थ** :—(**वाजिनः**) सबल, (**शुक्रासः**) पवित्र, (**आशवः**) वेगवान् (**सोमासः**) प्रभु-भक्ति के रस (**गव्या**) अन्तः

प्रकाश-प्राप्ति की इच्छा से, (**अश्वया**) प्राणों की ऊर्ध्वप्रेरणा की इच्छा से, और (**वीरया**) वीरता-प्राप्ति की इच्छा से (**प्र असृक्षत**) मेरे द्वारा प्रवाहित किये गये हैं।।६।।

**भावार्थ** :—अन्त:करण में भगवद्भक्ति के रस को प्रवाहित करने से अन्त:प्रकाश की स्फूर्ति, प्राणों का ऊर्ध्वारोहण और दिव्यकर्मों में उत्साह पैदा होता है।।६।।

अगले मन्त्र में परमात्मारूप सोम से प्रार्थना की गयी है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**४८३. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मद:।**
३ १ २र ३ १ २
**वायुमा रोह धर्मणा॥७॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम! हे पवित्रताकारी रसागार परब्रह्म! (**देव:**) दिव्यगुण वाले आप (**आयुषक्**) उपासक मनुष्यों में समवेत होकर (**पवस्व**) प्रस्तुत होओ, आनन्द-रस को प्रवाहित करो। (**ते मद:**) आपका आनन्द-रस (**इन्द्रम्**) आत्मा को (**गच्छतु**) प्राप्त हो। आप (**धर्मणा**) अपने धारक बल से (**वायुम्**) मेरे प्राण पर (**आरोह**) आरूढ़ होओ, अर्थात् मेरे प्राण भी आपकी तरंग से तरंगित हों।।७।।

**भावार्थ** :—परमात्मा-रूप सोम से झरा हुआ आनन्द-रस तभी प्रभावकारी होता है, जब वह आत्मा, प्राण आदि में पूर्णत: व्याप जाता है।।७।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से प्राप्त ज्योति का वर्णन है।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
**४८४. पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।**
१ २ ३ २ ३ २
**ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत्॥८॥**

**पदार्थ** :—(**पवमान:**) पवित्रतादायक सोम परमेश्वर (**दिव:**) आकाश की (**चित्रम्**) चित्र-विचित्र (**तन्यतुं न**) विद्युत् के समान (**बृहत्**) विस्तीर्ण (**वैश्वानरम्**) विश्व का नेतृत्व करने वाली (**ज्योति:**) दिव्य ज्योति को (**अजीजनत्**) उत्पन्न कर देता है।।८।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है।।८।।

**भावार्थ** :–ईश्वर की आराधना से हृदय में विद्युत् के समान अद्भुत ज्योति परिस्फुरित हो जाती है, जिससे मनुष्य विवेकख्याति प्राप्त कर लेता है॥८॥

अगले मन्त्र में आनन्द-रसों का वर्णन है।

**४८५. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा।**
**मधो अर्षन्ति धारया॥९॥**

**पदार्थ** :–हे (**मधो**) मधुर आनन्द से भरपूर सोम परमात्मन्! (**बर्हणा**) श्रेष्ठ (**गिरा**) स्तुति वाणी के द्वारा (**स्वानासः**) आपसे झरते हुए (**इन्दवः**) आनन्द-रस (**मदाय**) मेरे उत्साह के लिए (**धारया**) धारा रूप में (**परि अर्षन्ति**) मेरे अन्तःकरण में प्रवेश कर रहे हैं॥९॥

**भावार्थ** :–भक्ति में लीन मन से स्तोता जन जब परमात्मा की आराधना करते हैं, तब उन्हें परम आनन्द की अनुभूति होती है॥९॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा के साथ तरंगों के झूले में झूलना वर्णित है।

**४८६. परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः।**
**कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम्॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**कविः**) वेदकाव्य का कर्ता, काव्यजनित आनन्द से तरंगित हृदय वाला सोम परमेश्वर (**सिन्धोः**) आनन्दसागर की (**ऊर्मौ**) लहरों पर (**अधिश्रितः**) स्थित हुआ (**पुरुस्पृहम्**) अतिप्रिय (**कारुम्**) स्तुतिकर्ता जीव को (**बिभ्रत्**) अपने साथ धारण किये हुए (**परि प्रासिष्यदत्**) आनन्द की लहरों पर झूला झूल रहा है॥१०॥

वस्तुतः परमात्मा का झूले आदि से सम्बन्ध न होने के कारण यहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :–सच्चिदानन्दस्वरूप रसमय परमेश्वर अपने सहचर

मुझ जीवात्मा का मानो हाथ पकड़े हुए आनन्द-सागर की लहरों पर झूल रहा है। अहो, उसके साथ जैसा पहले कभी अनुभव में न आया हुआ सुख मैं अनुभव कर रहा हूँ। सचमुच, कृतकृत्य हो गया हूँ। मैंने जीवन की सफलता पा ली है॥१०॥

इस दशति में भी रसागार सोम परमेश्वर का तथा तज्जनित आनन्दरस का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

**इति पञ्चमः प्रपाठकः समाप्तः॥**

# अथ षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

## तृतीया दशतिः

ऋषिः—१, ८, ९ अमहीयुः; २ बृहन्मतिराङ्गिरसः; ३ **जमदग्निः; ४ प्रभूवसुः; ५ मेध्यातिथिः; ६, ७ निध्रुविः काश्यपः; १० उचथ्यः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में यह वर्णन है कि विद्वान् लोग कैसे परमेश्वर का अवलम्ब लेते हैं।

**४८७. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।**
**इन्दुं देवा अयासिषुः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सु जातम्**) सुप्रसिद्ध, (**अप्तुरम्**) कर्म करने में शीघ्रतायुक्त, (**भङ्गम्**) दुःखों के भंजक, (**गोभिः परिष्कृतम्**) प्रकाश-किरणों से अलंकृत अर्थात् तेजस्वी (**इन्दुम्**) चाँद के समान आह्लादक, रस से आर्द्र करने वाले तथा सोम ओषधि के समान रसमय परमात्मा को (**देवाः**) विद्वान् लोग (**उप उ अयासिषुः**) निकटता से प्राप्त करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर प्रसिद्ध कीर्ति वाला, जगत् की उत्पत्ति, धारण आदि क्रियाओं को करने वाला, दुःखियों का दुःख दूर करने वाला, दिव्य तेजों से अलंकृत, अपने शान्तिदायक आनन्द-रस में स्नान कराने वाला, चन्द्रमा के समान सुन्दर

और सोमलता के समान रस से पूर्ण है, उसकी सबको उपासना करनी चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा का वर्णन है।

**४८८. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।**
**शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**पुनानः**) मन को पवित्र करता हुआ (**विचर्षणिः**) सर्वद्रष्टा परमेश्वर (**विश्वा मृधः**) काम, क्रोध आदियों की सब संग्रामकारिणी सेनाओं पर अथवा समस्त हिंसावृत्तियों पर (**अभि अक्रमीत्**) आक्रमण कर देता है। उस (**विप्रम्**) मेधावी परमेश्वर को, उपासक जन (**धीतिभिः**) ध्यानों के द्वारा (**शुम्भन्ति**) अपने हृदय के अन्दर शोभित करते हैं।।२।।

**भावार्थ** :—ध्यान किया हुआ परमेश्वर साधक के मार्ग में विघ्नभूत सब आसुरी सेनाओं को पराजित कर चित्त को पवित्र करता है।।२।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा सब शोभाओं को प्रदान करता है।

**४८९. आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः।**
**इन्दुरिन्द्राय धीयते॥३॥**

**पदार्थ** :—(**सुतः**) अभिषुत किया हुआ अर्थात् ध्यान द्वारा प्रकट किया हुआ, (**कलशम्**) हृदय-रूप द्रोणकलश में (**आविशन्**) प्रवेश करता हुआ, (**विश्वाः**) समस्त (**श्रियः**) शोभाओं को अथवा सद्गुणरूप ऐश्वर्यों को (**अर्षन्**) प्राप्त कराता हुआ (**इन्दुः**) चन्द्रमा के समान सौम्य कान्ति वाला और सोम ओषधि के समान रस से परिपूर्ण परमेश्वर (**इन्द्राय**) जीवात्मा की उन्नति के लिए (**धीयते**) सम्मुख स्थापित किया जाता है।।३।।

**भावार्थ** :—परमात्मा में ध्यान लगाने से जीवात्मा सब प्रकार का उत्कर्ष प्राप्त कर सकता है।।३।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमेश्वर की आराधना से स्तोता कैसा बल प्राप्त कर लेता है।

**४९०. असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः।**
**कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत्॥४॥**

**पदार्थ** :–(**चम्वोः**) आत्मा और बुद्धिरूप अधिषवणफलकों में (**सुतः**) अभिषुत अर्थात् ध्यान द्वारा प्रकटीकृत रसनिधि परमेश्वर (**पवित्रे**) दशापवित्र के तुल्य पवित्र हृदय में (**असर्जि**) छोड़ा जाता है, (**रथ्यः यथा**) जैसे रथ में नियुक्त घोड़ा मार्ग में छोड़ा जाता है। उससे (**वाजी**) बलवान् हुआ उपासक (**कार्ष्मन्**) योग-मार्ग में (**न्यक्रमीत्**) सब विघ्नों को पार कर लेता है, जैसे (**वाजी**) बलवान् सेनापति (**कार्ष्मन्**) युद्ध में (**न्यक्रमीत्**) शत्रुसेनाओं को परास्त करता है॥४॥

इस मन्त्र में पूर्वार्द्ध में श्रौति उपमा और उत्तरार्द्ध में श्लेषमूलक लुप्तोपमा है॥४॥

**भावार्थ :–जब हृदय में सोम परमात्मा अवतीर्ण** होता है, **तब मनुष्य सभी विघ्न-बाधाओं को क्षण-भर में** ही परास्त कर लेता है॥४॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा से प्राप्त आनन्द-रस क्या करते हैं।

**४९१. प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः।**
**घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम्॥५॥**

**पदार्थ** :–(**यत्**) जब (**गावः न**) सूर्य-किरणों के समान (**भूर्णयः**) धारण-पोषण करने वाले, (**त्वेषाः**) दीप्तिमान्, (**अयासः**) क्रियाशील आनन्द-रस रूपी सोम (**प्र अक्रमुः**) पराक्रम दिखाते हैं, तब (**त्वचम्**) आवरण डालने वाली (**कृष्णाम्**) तमोगुण की काली रात्रि को (**घ्नन्तः**) नष्ट कर देते हैं॥५॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :–ब्रह्मानन्द-रूप रसों को जब योगी जन पान कर लेते हैं, तब सभी मोह-निशाएँ उनके मार्ग से हट जाती हैं॥५॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**४९२. अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः।**
**नुदस्वादेवयुं जनम्॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) आनन्दरसागार परमेश्वर! आप (**मृधः**) संग्रामकारी काम, क्रोध आदि रिपुओं को (**अपघ्नन्**) विनष्ट करते हुए (**पवसे**) हमें पवित्र करते हो। (**क्रतुवित्**) बुद्धि और कर्म दोनों प्राप्त कराने वाले, (**मत्सरः**) आनन्द-प्रदाता आप (**अदेवयुम्**) दिव्य गुणों की कामना न करने वाले (**जनम्**) मनुष्य को (**नुदस्व**) दिव्य गुण प्राप्त करने के लिए प्रेरित करो॥६॥

**भावार्थ** :—आनन्द-रस के खजाने परमेश्वर की सत्प्रेरणा से अपावन भी पावन और अदिव्य भी दिव्यगुणी हो जाते हैं॥६॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से तेज की धारा माँगी गयी है।

**४९३. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः।**
**हिन्वानो मानुषीरपः॥७॥**

**पदार्थ** :—हे तेज-रूप रस के भण्डार परमेश्वर! आप (**अया**) इस (**धारया**) तेज की धारा के साथ (**पवस्व**) हमें प्राप्त हों, (**यया**) जिस तेज की धारा से, आपने (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अरोचयाः**) चमकाया है। आप (**मानुषीः अपः**) सब मानव प्रजाओं को (**हिन्वानः**) तेज से तृप्त करो॥७॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर तेज से सूर्य, अग्नि, बिजली आदियों को चमकाता है, उसके दिये हुए तेज से सब मनुष्य तेजस्वी होवें॥७॥

अगले मन्त्र में पापरूप वृत्र के वध का विषय है।

**४९४. स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे।**
**वव्रिवांसं महीरपः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे वीर-रस के भण्डार सोम परमेश्वर! (**सः**)

वह प्रसिद्ध आप, हमारे पास (**पवस्व**) अपनी रक्षा-शक्ति के साथ आओ, (**यः**) जो आप (**महीः अपः**) बड़ी धर्मरूप धाराओं को (**वव्रिवांसम्**) वरण करने वाले (**इन्द्रम्**) जीवात्मा को (**वृत्राय हन्तवे**) अधर्म, पाप आदि के विनाशार्थ (**आविथ**) प्राप्त होते हो॥८॥

**भावार्थ** :-देवासुरसंग्राम में विजय पाने के लिए परमेश्वर से प्रेरणा पाकर पुरुषार्थ करना चाहिए॥८॥

सोमरस से तृप्त हुआ मनुष्य क्या करे यह कहते हैं।

**४९५. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा।**
**अवाहन्नवतीर्नव॥९॥**

**पदार्थ** :-हे (**इन्दो**) आनन्दरस वा वीररस के भंडार परमात्मन्! आप (**अया वीती**) इस रीति से (**परिस्रव**) उपासकों के अन्तःकरण में प्रवाहित होओ, कि (**यः**) जो उपासक (**ते मदेषु**) आपसे उत्पन्न किये गये हर्षों में (**आ**) मग्न हो, वह (**नव नवतीः**) निन्यानवे वृत्रों को (**अवाहन्**) विनष्ट कर सके।

मनुष्य की औसत आयु वेद के अनुसार सौ वर्ष है। उसमें से नौ या दस मास क्योंकि माता के गर्भ में बीत जाते हैं, इसलिए शेष लगभग निन्यानवे वर्ष वह जीता है। उन निन्यानवे वर्षों में आने वाले विघ्न निन्यानवे वृत्र कहाते हैं। सोमजनित आनन्द एवं वीरत्व से तृप्त होकर मनुष्य उन सब वृत्रों का संहार करने में समर्थ हो, यह भाव है॥९॥

**भावार्थ** :-परमेश्वर से झरा हुआ आनन्दरस वा वीररस स्तोता को ऐसा आह्लादित कर देता है कि वह जीवन में आने वाले सभी विघ्नों वा शत्रुओं का संहार कर सकता है॥९॥

परमात्मा-रूप सोम क्या-क्या प्रदान करे, यह कहते हैं।

**४९६. परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अन्धसा।**
**स्वानो अर्ष पवित्र आ॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे रसागार परमात्मन्! (**द्युक्षम्**) दीप्ति के निवासक (**रयिम्**) दिव्य ऐश्वर्य को (**सनत्**) देते हुए, और (**अन्धसा**) आनन्द-रस के साथ (**नः**) हमारे लिए (**वाजम्**) आत्म-बल को (**भरत्**) लाते हुए, (**स्वानः**) झरते हुए, आप (**पवित्रे**) दशापवित्र के तुल्य पवित्र हृदय में (**आ अर्ष**) आओ॥१०॥

**भावार्थ** :—उपासक के हृदय में परमात्मा से झरा हुआ आनन्द-रस अनुपम ऐश्वर्य, ब्रह्मवर्चस और आत्मबल आदि प्रदान करता है॥१०॥

इस दशति में परमात्मा-रूप सोम और उससे झरे हुए आनन्द, वीरता आदि के रस का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## चतुर्थी दशतिः

**ऋषिः—१ मेधातिथिः; २, ७ भृगुः; ३ उचथ्यः; ४ अवत्सारः; ५ निध्रुविः काश्यपः; ६, १० असितः; ८, ९ कश्यपो मारीचः; ११ कविः; १२ जमदग्निः; १३ अयास्य आङ्गिरसः; १४ अमहीयुः। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में सोम परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**४९७. अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः।**
**सं सूर्येण दिद्युते॥१॥**

**पदार्थ** :—(**वृषा**) मनोरथों को पूर्ण करने वाला, (**हरिः**) पापहारी सोम परमेश्वर, सबके हृदयों में स्थित हुआ (**अचिक्रदत्**) शब्द कर रहा है अर्थात् उपदेश व सत्प्रेरणा दे रहा है। (**महान्**) महान् वह (**मित्रः न**) मित्र के समान (**दर्शतः**) दर्शनीय है। वही (**सूर्येण**) सूर्य से (**सम्**) संगत हुआ (**विद्युते**) प्रकाशित हो रहा है। कहा भी है—'जो वह आदित्य में पुरुष है, वह मैं ही हूँ'॥१॥ य० ४०।१७

इस मन्त्र में 'अचिक्रदत् वृषा' यहाँ पर शब्दशक्तिमूलक

ध्वनि से 'वर्षा करने वाला बादल गर्ज रहा है' यह दूसरा अर्थ भी सूचित होकर बादल और सोम परमात्मा में उपमानोपमेयभाव को ध्वनित कर रहा है, इसलिए उपमाध्वनि है। 'मित्रो न दर्शतः' में वाच्या पूर्णोपमा है॥१॥

**भावार्थ** :—जो सूक्ष्मदर्शी लोग हैं वे सूर्य, पर्जन्य आदि में परमेश्वर के ही दर्शन करते हैं, क्योंकि ताप, प्रकाश, जल बरसाने आदि की सब शक्ति उसी की दी हुई है॥१॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से बल की प्रार्थना है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**४९८. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे।**
२ ३ १ २ ३ १ २
**पान्तमा पुरुस्पृहम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम, हे पवित्रतादायक आनन्दरसमय परमात्मन्! हम (**ते**) आपके (**मयोभुवम्**) सुखदायक, (**वह्निम्**) लक्ष्य की ओर ले जाने वाले, (**पान्तम्**) रक्षक, (**पुरुस्पृहम्**) बहुत चाहने योग्य (**दक्षम्**) बल को (**अद्य**) आज (**आ वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा से जो बल और शुभकर्मों में उत्साह प्राप्त होता है, उससे सुख, लक्ष्यपूर्ति और रक्षा की वृद्धि होती है॥२॥

अगले मन्त्र में अध्वर्यु को प्रेरित किया गया है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
**४९९. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय।**
३ १ २ ३ १ २
**पुनाहीन्द्राय पातवे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अध्वर्यो**) यज्ञविधि के निष्पादक अध्वर्यु नामक ऋत्विज् के समान ज्ञानयज्ञ को निष्पन्न करने वाले मानव! तू (**अद्रिभिः**) सिलबट्टों के सदृश ज्ञानेन्द्रियों से (**सुतम्**) अभिपुत (**सोमम्**) सोम ओषधि के रस के सदृश ज्ञानरस को (**पवित्रे**) दशापवित्र के सदृश मन में (**आ नय**) ला, उस ज्ञान-रूप सोम-रस को (**इन्द्राय पातवे**) जीवात्मा के पान के लिए (**पुनाहि**) मनन द्वारा शुद्ध कर॥३॥

इस मन्त्र में श्लेष से अभिहित भौतिक सोमपरक द्वितीय

अर्थ उपमान-भाव में परिणत हो रहा है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे यज्ञ में पीसने के साधन सिल-बट्टों से अभिपुत सोम दशापवित्र द्वारा छानकर ही पिया और पिलाया जाता है, वैसे ही ज्ञानार्जन की साधनभूत ज्ञानेन्द्रियों से अर्जित ज्ञान को मन से मनन द्वारा शुद्ध करना चाहिए।।३।।

अब सोम के धाराप्रवाह से क्या फल प्राप्त होता है, यह कहते हैं।

**५००. तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।**
**तरत् स मन्दी धावति॥४॥**

**प्रदार्थ**—(**सुतस्य**) आचार्य के अथवा परमात्मा के पास से अभिपुत (**अन्धसः**) ज्ञान और कर्म के रस की अथवा आनन्द-रस की (**धारा**) धारा से (**मन्दी**) तृप्त हुआ (**सः**) वह आत्मा (**तरत्**) दुःख, विघ्न, विपत्ति आदि के सागर को पार कर लेता है, और (**धावति**) ऐहलौकिक लक्ष्य की ओर वेग से अग्रसर होने लगता है। (**मन्दी**) ज्ञान और कर्म के रस वा आनन्दरस की धारा से तृप्त हुआ (**सः**) वह आत्मा (**तरत्**) दुःखादि के सागर को पार कर लेता है, और (**धावति**) पारलौकिक लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होने लगता है।।४।।

इस मन्त्र में 'तरत् स मन्दी धावति' की पुनरुक्ति में लाटानुप्रास अलंकार है।।४।।

**भावार्थ** :—गुरु के पास से प्राप्त ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड के रस से तथा परमात्मा के पास से प्राप्त आनन्दरस से तृप्त होकर मनुष्य समस्त ऐहलौकिक एवं पारलौकिक उन्नति करने में समर्थ हो जाता है।।४।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा तथा आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**५०१. आ पवस्व सहस्त्रिणं रयिं सोम सुवीर्य्यम्।**
**अस्मे श्रवांसि धारय॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) सर्वैश्वर्यवान् जगदीश्वर अथवा विद्वन्

आचार्य! आप हमारे लिए (**सहस्रिणम्**) सहस्रों की संख्या वाले अथवा प्रचुर, (**सुवीर्यम्**) शुभ बल से युक्त (**रयिम्**) ऐश्वर्य को अथवा विद्याधन को (**आ पवस्व**) प्रवाहित कीजिए, और (**अस्मे**) हम में (**श्रवांसि**) यशों को (**धारय**) स्थापित कीजिए।।५।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से हम धन, धान्य, सुवर्ण आदि और सत्य, न्याय, बल, वीर्य आदि सब प्रकार के अपार ऐश्वर्य को तथा आचार्य की कृपा से अपार सद्विद्या एवं सदाचार के धन को प्राप्त करें, जिससे हमारी अधिकाधिक कीर्ति सर्वत्र फैले।।५।।

अब यह वर्णन है कि परमात्मा की सहायता से मनुष्य क्या प्राप्त कर लेते हैं।

**५०२. अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः।**
**रुचे जनन्त सूर्यम्॥६॥**

**पदार्थ** :—सोम परमात्मा की सहायता से (**प्रत्नासः**) ज्ञान की दृष्टि से पुरातन अर्थात् ज्ञानवृद्ध मनुष्य (**नवीयः**) नवीनतर (**पदम्**) राजमन्त्री, न्यायाधीश आदि के पद को अथवा मोक्षपद को (**अनु अक्रमुः**) अनुकूलतापूर्वक प्राप्त कर लेते हैं, और (**रुचे**) प्रकाश के लिए, वे (**सूर्यम्**) विद्या के सूर्य को अथवा अध्यात्म के सूर्य को (**जनन्त**) प्रकट कर देते हैं।।६।।

इस मन्त्र में 'बूढ़े जीर्ण लोग नवीन पद को प्राप्त करते हैं' में नवीन पद की प्राप्ति के हेतु के अभाव में भी उसकी प्राप्ति का वर्णन होने से विभावनालंकार ध्वनित हो रहा है। 'मनुष्य सूर्य को उत्पन्न करते हैं' में मनुष्यों द्वारा सूर्य का उत्पन्न किया जाना असम्भव होने से सूर्य की विद्या-प्रकाश अथवा अध्यात्म-प्रकाश में लक्षणा है।।६।।

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और अपने पुरुषार्थ से मनुष्य सांसारिक उच्च से उच्च पद को और परम मुक्तिपद को भी प्राप्त करने तथा राष्ट्र और जगत् में ज्ञान-विज्ञान एवं सदाचार के सूर्य को प्रकट करने में समर्थ हो जाते हैं।।६।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा तथा वानप्रस्थ मनुष्य का आह्वान किया गया है।

**५०३. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽ भि द्रोणानि रोरुवत्।**
**सीदन् योनौ वनेष्वा॥७॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हे ( **सोम** ) रस के भंडार परमात्मन्! ( **वनेषु** ) वनों में, वन के लता-कुंज आदियों में, और ( **योनौ** ) नगरस्थ घरों में, सर्वत्र ( **सीदन्** ) विराजमान होते हुए ( **द्युमत्तमः** ) अतिशय तेजस्वी आप ( **रोरुवत्** ) उपदेश करते हुए ( **द्रोणानि अभि** ) हमारे हृदय-रूप द्रोण-कलशों में ( **अर्ष** ) आइए।

( **द्वितीय** ) वानप्रस्थ के पक्ष में। हे ( **सोम** ) विद्वन् वानप्रस्थ! ( **वनेषु** ) वनों में ( **योनौ** ) वृक्ष-मूल रूप घर में ( **आसीदन्** ) निवास करते हुए, ( **द्युमत्तमः** ) अतिशय तेजस्वी आप ( **रोरुवत्** ) पुनः पुनः उपदेश करने की इच्छा रखते हुए ( **द्रोणानि अभि** ) गृहस्थों से आयोजित यज्ञों में ( **अर्ष** ) आइए।।७।।

इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है।।७।।

**भावार्थ** :—जैसे वनों में उगने वाला सोम वहाँ से लाया जाकर दशापवित्र से छाना जाता हुआ शब्द के साथ द्रोण-कलश में आता है और जैसे रसनिधि परमेश्वर उपदेश देता हुआ स्तोताओं के हृदय में प्रकट होता है, वैसे ही वानप्रस्थ मनुष्य नगरवासियों से आयोजित यज्ञों में उपदेशार्थ आये।।७।।

अगले मन्त्र में सोम जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है।

**५०४. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः।**
**वृषा धर्माणि दध्रिषे॥८॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) रसनिधि जगदीश्वर! ( **द्युमान्** ) तेजस्वी आप ( **वृषा** ) तेज के वर्षक सूर्य के समान ( **असि** ) हो, हे ( **देव** ) दान आदि गुणों से युक्त! ( **वृषव्रतः** ) सद्गुण आदि की वृष्टि करने वाले आप ( **वृषा** ) वर्षा करने वाले बादल के समान हो। ( **वृषा** ) धर्म की वर्षा करने वाले आप ( **धर्माणि** ) धर्म कर्मों को ( **दध्रिषे** ) धारण करते हो।।८।।

इस मन्त्र में 'वृषा' की आवृत्ति में यमक अलंकार है। 'वृषा असि' में लुप्तोपमा है॥८॥

**भावार्थ** :—उपासना किया हुआ परमेश्वर सूर्य और बादल के समान वर्षक होकर धन, धर्म, तेज, शान्ति, सुख आदि की वर्षा से उपासक को कृतार्थ करता है॥८॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**५०५. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः।**
**इन्दो रुचाभि गा इहि॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) रस के भण्डार, चन्द्रमा के समान आह्लाददायक परब्रह्म परमेश्वर! (**मनीषिभिः**) चिन्तनशील हम उपासकों द्वारा (**मृज्यमानः**) स्तुतियों से अलंकृत किये जाते हुए आप (**इषे**) इच्छासिद्धि के लिए (**धारया**) आनन्द की धारा के साथ (**पवस्व**) हमारे अन्तःकरण में प्रवाहित होओ। आप (**रुचा**) तेज के साथ (**गाः अभि**) हम स्तोताओं के प्रति (**इहि**) आओ॥९॥

**भावार्थ** :—स्तोताओं से उपासना किया गया रसनिधि परमेश्वर आनन्दरस से उन्हें तृप्त करता है॥९॥

अगले मन्त्र में पुनः सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**५०६. मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः।**
**अव्या वारेभिरस्मयुः॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) सोम ओषधि के समान रसागार परमेश्वर! (**वृषा**) आनन्द के वर्षक, (**देवयुः**) हमें दिव्य गुण प्रदान करने के इच्छुक, (**अस्मयुः**) हम से प्रीति करने वाले आप (**अव्याः वारेभिः**) भेड़ों के बालों से निर्मित दशापवित्रों के सदृश हमारे मन के सात्त्विक भावों के माध्यम से (**मन्द्रया धारया**) आनन्दप्रद धारा के साथ (**पवस्व**) द्रोणकलश के तुल्य हमारे हृदय-कलश में परिस्रुत होओ॥१०॥

**भावार्थ** :—जैसे सोम ओषधि का रस भेड़ के बालों से निर्मित दशापवित्र से छनकर द्रोणपात्र में धारारूप से गिरता है,

वैसे ही परमेश्वर मन के सात्त्विक भावों के माध्यम से आनन्द-धारा के साथ स्तोता के हृदय-कलश में प्रकट होता है॥१०॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा क्या करता है, यह वर्णित है।

**५०७. अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः।**
**मन्दान इद् वृषायसे॥११॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रसागार परमेश्वर! (**महान् सन्**) महान् होते हुए आप (**अया**) इस (**सुकृत्यया**) स्तुतिगान रूप शुभ क्रिया से (**अभ्यवर्द्धथाः**) हृदय में वृद्धि को प्राप्त हो गये हो। आप (**मन्दानः**) आनन्द प्रदान करते हुए (**इत्**) सचमुच (**वृषायसे**) वृष्टिकर्ता बादल के समान आचरण करते हो, अर्थात् जैसे बादल जल बरसाता हुआ सब प्राणियों को और ओषधि-वनस्पति आदियों को तृप्त करता है, वैसे ही आप आनन्द की वर्षा करके हमें तृप्त करते हो॥११॥

**भावार्थ** :—जैसे-जैसे स्तोता स्तुतिगान से परमेश्वर की आराधना करता है, वैसे-वैसे परमेश्वर आनन्द की वृष्टि से उसे प्रसन्न करता है॥११॥

कैसा परमात्मा क्या करता है, यह अगले मन्त्र में कहा है।

**५०८. अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति।**
**हिन्वान आप्यं बृहत्॥१२॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह पूर्ववर्णित (**विचर्षणिः**) विशेष द्रष्टा, (**हितः**) सबका हितकर्ता (**अयम्**) यह रसनिधि परमेश्वर (**पवमानः**) अन्तःकरण को शुद्ध करता हुआ (**बृहत्**) महान् (**आप्यम्**) बन्धुत्व को (**हिन्वानः**) निर्वाह करता हुआ (**चेतति**) बोध दे रहा है॥१२॥

**भावार्थ** :—उपासना किया हुआ परमेश्वर अन्तःकरण को शुद्ध करके, जीवों को जागरूक करके बन्धुत्व का निर्वाह करता है॥१२॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा का आह्वान किया गया है।

**५०९. प्र न इन्दो महे तु न ऊर्मिं न बिभ्रदर्षसि।**
**अभि देवाँ अयास्यः॥१३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) आनन्द-रस से आर्द्र करने वाले रस के सागर परमात्मन्! (**अयास्यः**) प्राणप्रिय तू (**ऊर्मिं न**) मानो लहर को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ (**नः**) हमारी (**महे**) वृद्धि के लिए (**तु**) शीघ्र ही (**देवान् नः अभि**) हम विद्वान् उपासकों को लक्ष्य करके (**अर्षसि**) प्राप्त हो॥१३॥

इस मन्त्र में 'ऊर्मिं न बिभ्रत्' में उत्प्रेक्षालंकार है॥१३॥

**भावार्थ** :—उपासना किया गया प्राणप्रिय परमेश्वर अपने प्यारे उपासक को मानो आनन्द की तरंगों से आप्लावित कर देता है॥१३॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा का कर्म वर्णित है।

**५१०. अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।**
**गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्॥१४॥**

**पदार्थ** :—(**सोम**) पवित्र रस का भण्डार परमेश्वर (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा के (**निष्कृतम्**) संस्कृत किये हुए हृदय रूप घर में (**गच्छन्**) जाता हुआ, (**मृधः**) संग्रामकर्ता पापरूप शत्रुओं को (**अपघ्नन्**) विध्वस्त करता हुआ, और (**अराव्णः**) अदानशील स्वार्थभावों को (**अप**) विनष्ट करता हुआ (**पवते**) पवित्रता प्रदान करता है॥१४॥

**भावार्थ** :—जब पवित्रतादायक आनन्दरस की धार को प्रवाहित करता हुआ सोम परमेश्वर साधक के हृदय में प्रकट होता है तब उसका हृदय सब वासनाओं से रहित और स्वार्थवृत्ति से विहीन होकर पवित्र हो जाता है॥१४॥

इस दशति में सोम परमात्मा तथा उससे उत्पन्न होने वाली आनन्दरसधारा का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

# पञ्चमी दशतिः

**ऋषिः—भरद्वाजः कश्यपो गोतमोऽत्रिर्विश्वामित्रो जमदग्निर्वसिष्ठः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में सोम परमात्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है।

**५११. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि। आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) पवित्र रस के भण्डार परमात्मन्! आप (**धारया**) अपनी आनन्द-धारा से (**पुनानः**) पवित्रता लाते हुए, (**अपः**) कर्म को (**वसानः**) आच्छादित अर्थात् प्रभावित करते हुए (**अर्षसि**) उपासकों के हृदय में व्याप्त होते हो। (**रत्नधाः**) रमणीय गुणरूप रत्नों के प्रदाता आप (**ऋतस्य**) सत्य के (**योनिम्**) गृहरूप जीवात्मा को (**आ सीदसि**) प्राप्त होते हो। आप (**उत्सः**) आनन्द के झरने, (**देवः**) विद्या, सुख आदि के प्रदाता और (**हिरण्ययः**) ज्योतिर्मय तथा यशोमय हो॥१॥

**भावार्थ** :—पवित्र परमेश्वर अपने उपासकों के हृदयों और कर्मों को पवित्र करता हुआ, उनके आत्मा में निवास करता हुआ, उन्हें आनन्द के झरने में स्नान कराता हुआ, ज्योति से प्रदीप्त करता हुआ यशस्वी बनाता है॥१॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को सोम के सेचनार्थ प्रेरित किया गया है।

**५१२. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः। दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सोम ओषधि के रस के पक्ष में। हे मनुष्यो! (**यः सोमः**) जो सोमरस (**उत्तमम्**) उत्तम (**हविः**) हव्य अथवा भोज्य है, उस (**सुतम्**) अभिषुत सोमरस को (**इतः**) इस यज्ञवेदि से अथवा भोजनालय से (**परि सिञ्चत**)

यज्ञाग्नि अथवा जाठराग्नि में चारों ओर सींचो। ( नर्यः ) मनुष्यों का हितकर्मा ( यः ) जो सोमरस ( दधन्वान् ) यजमान को अथवा पीने वाले को धारण करता है, और जिस ( सोमम् ) सोमरस को अभिषोता ( अद्रिभिः ) यज्ञिय सिलबट्टों से, तीव्रता कम करने के लिए ( अप्सु अन्तः ) जलों के अन्दर ( आ सुषाव ) अभिपुत करता है।।

( **द्वितीय** ) अध्यात्मपक्ष में। हे मनुष्यो! ( **यः सोमः** ) जो भक्तिरस, उपासनायज्ञ में ( **उत्तमं हविः** ) उत्कृष्टतम हवि है, उस ( **सुतम्** ) अभिपुत भक्तिरस को, तुम ( **इतः** ) इस हृदय से ( **परि सिञ्चत** ) चारों ओर प्रवाहित करो, ( **नर्यः** ) मनुष्यों का हितकर्ता ( **यः** ) जो भक्तिरस, ( **दधन्वान्** ) उपासक को धारण करता है, और जिस ( **सोमम्** ) भक्तिरस को, उपासनायज्ञ का यजमान आत्मा ( **अद्रिभिः** ) ध्यानरूप सिलबट्टों से ( **अप्सु अन्तः** ) प्राणों के अन्दर ( **आ सुषाव** ) अभिपुत करता है।।२।।

**इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।२।।**

**भावार्थ :—जैसे बाह्य यज्ञ में अथवा भोजन में सोम** ओषधि **का रस सिलबट्टों द्वारा अभिषुत करके जलों में** मिलाया जाता है, वैसे ही अध्यात्मयज्ञ में **भक्तिरस को** ध्यानरूप सिलबट्टों से अभिपुत करके अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए।।२।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा को सम्बोधन किया गया है।

**५१३. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया। जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे॥३॥**

**पदार्थ :—**हे ( **सोम** ) परमात्मारूप सोम! ( **अद्रिभिः** ) ध्यानरूप यज्ञिय सिलबट्टों से ( **आ स्वानः** ) अभिपुत होता हुआ तू ( **अव्यया वाराणि तिरः** ) भेड़ों के बालों से निर्मित दशापवित्रों के समान शुद्धचित्तवृत्तियों से छनकर क्षरित होता है। शुद्ध चित्तवृत्तिरूप दशापवित्रों से क्षरित ( **हरिः** ) दुःख पाप आदि का हर्ता वह रसागार परमेश्वर, ( **चम्वोः** ) अधिषवणफलकों के तुल्य बुद्धि और मन में ( **विशत्** ) प्रवेश करता है, ( **जनः न** ) जैसे मनुष्य ( **पुरि** ) नगरी में प्रवेश करता है। तदनन्तर हे

परमात्म-सोम! तू (**वनेषु**) प्राणों में (**सदः**) स्थिति को (**दध्रिषे**) धारण करता है।।३।।

इस मन्त्र में 'जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः' में उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे यज्ञिय सिलबट्टों से अभिपुत, भेड़ के बालों से निर्मित दशापवित्रों द्वारा क्षारित सोमलता का रस द्रोणकलशों में प्रविष्ट होकर जल से मिल जाता है, वैसे आनन्दरसागार परमेश्वर जब ध्यानों द्वारा अभिपुत, शुद्ध चित्तवृत्तियों से क्षारित और बुद्धि तथा आत्मा में प्रविष्ट होकर प्राणों में अभिव्यक्त हो जाता है, तभी साधक की उपासना सफल होती है।।३।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा को प्रेरणा दी गयी है।

**५१४. प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा। अंशोः**
**पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) जीवात्मन्! (**देववीतये**) दिव्य जीवन की प्राप्ति के लिए, तू (**अर्णसा**) जल से (**सिन्धुः न**) महानदी के समान (**अर्णसा**) ज्ञानरस से (**प्र पिप्ये**) वृद्धि को प्राप्त कर। (**अंशोः**) बादल के (**पयसा**) जल से (**मदिरः न**) हर्ष को प्राप्त किसान के समान (**जागृविः**) जागरूक होकर (**मधुश्चुतम्**) आनन्द को प्रवाहित करने वाले (**कोशम्**) आनन्दरस के खजाने परमात्मा के (**अच्छ**) अभिमुख हो। जैसे किसान जागरूक होकर धान्यरूप मधु के उत्पादक खेत के अभिमुख होता है, यह अभिप्राय है।।४।।

इस मन्त्र में 'सिन्धुर्न' और 'मदिरो न' इस प्रकार दो उपमाओं की संसृष्टि है।।४।।

**भावार्थ** :—जैसे बड़ी नदी वर्षा के जल से बढ़ जाती है, वैसे ही मनुष्य ज्ञानरस से बढ़े। जैसे वर्षा से तृप्त किसान जागरूक रहकर खेत से फसल प्राप्त करने का यत्न करता है, वैसे ही मनुष्य ज्ञानरस से तृप्त होकर निरन्तर जागरूक रहकर भक्ति द्वारा परमात्मा के पास से आनन्दरस पाने का प्रयत्न करे।।४।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि सोमरस अथवा आनन्दरस किस प्रकार प्रवाहित होता है।

**५१५. सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्। अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥५॥**

**पदार्थ** :–( प्रथम ) सोमरस के पक्ष में। **( सोतृभिः )** सोम–रस निचोड़ने वाले मनुष्यों से **( अवीनां स्नुभिः )** भेड़ों के बालों से निर्मित ऊँचे उठाये दशापवित्रों द्वारा **( अधिष्वाणः )** अभिपुत किया जाता हुआ **( सोमः )** सोम ओषधि का रस **( अश्वया इव )** घोड़ी के समान **( हरिता )** वेगवती **( धारया )** धारा के साथ **( याति )** द्रोणकलश में जाता है, **( मन्द्रया )** हर्षकारिणी **( धारया )** धारा के साथ **( याति )** द्रोणकलश में जाता है।।

**( द्वितीया )** अध्यात्मपक्ष में। **( सोतृभिः )** परमात्मा के पास से आनन्दरस को अभिपुत करने वाले उपासकों से **( अवीनां स्नुभिः )** भेड़ों के बालों से निर्मित ऊपर उठाये दशापवित्रों के तुल्य मन की समुन्नत सात्त्विक वृत्तियों द्वारा **( अधिष्वाणः )** अभिपुत किया जाता हुआ **( सोमः )** आनन्दरस **( अश्वया इव )** घोड़ी के समान **( हरिता )** वेगवती **( धारया )** धारा के साथ **( याति )** आत्मा को प्राप्त होता है, **( मन्द्रया )** हर्षकारिणी **( धारया )** धारा के साथ **( याति )** आत्मा में पहुँचता है।।५।।

इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार हैं। 'याति धारया' की पुनरावृत्ति में लाटानुप्रास है।।५।।

**भावार्थ** :–उपासक लोग जब तल्लीन मन से परमात्मा का ध्यान करते हैं, तब अपने आत्मा के अन्दर दिव्य आनन्द के धारा प्रवाह का अनुभव करते हैं।।५।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के सखित्व की याचना है।

**५१६. तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे। पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँ रति ताँ इहि॥६॥**

**पदार्थ** :–हे **( सोम )** चन्द्रमा के समान आह्लादक तथा सोम ओषधि के समान रसागार **( इन्दो )** रस से आर्द्र करने वाले परमात्मन्! **( अहम् )** मैं उपासक **( तव सख्ये )** तेरी मित्रता

में ( दिवेदिवे ) प्रतिदिन ( रारण ) रमूँ। हे ( बभ्रो ) भरणपोषणकर्ता परमेश! ( पुरूणि ) बहुत-से काम, क्रोध आदि राक्षस ( माम् ) मुझ तेरे उपासक को ( नि अव चरन्ति ) उद्विग्न कर रहे हैं, ( परिधीन् ) घेरने वाले ( तान् ) उन राक्षसों को ( अति इहि ) पराजित कर दो॥६॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की मित्रता से मनुष्य सब काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, असत्य, अन्याय आदि शत्रुओं को पराजित कर उन्नति के मार्ग में प्रवृत्त होता है॥६॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि उपासना किया हुआ परमेश्वर क्या करता है।

**५१७. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि।**
**रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि॥७॥**

**पदार्थ** :—हे ( सुहस्त्य ) उत्तम ऐश्वर्यों वाले रसागार सोम परमात्मन्! ( मृज्यमानः ) स्तुतियों से अलंकृत किये जाते हुए आप ( समुद्रे ) उपासक के हृदयान्तरिक्ष में ( वाचम् ) सत्प्रेरणारूप वाणी को ( इन्वसि ) प्रेरित करते हो। हे ( पवमान ) पवित्रता देने वाले जगदीश्वर! आप ( बहुलम् ) बहुत सारे ( पुरुस्पृहम् ) बहुत चाहने योग्य अथवा बहुतों से चाहने योग्य ( पिशङ्ग रयिम् ) पीले धन सुवर्ण को अथवा तेज से युक्त आध्यात्मिक धन सत्य, अहिंसा आदि को ( अभ्यर्षसि ) प्रदान करते हो॥७॥

इस मन्त्र में द्वितीय और चतुर्थ पादों में अन्त्यानुप्रास अलंकार है, पवर्ग जिनके बाद आता है ऐसे अनेक अनुस्वारों के सहप्रयोग में वृत्त्यनुप्रास है॥७॥

**भावार्थ** :—सबके हृदय में स्थित परमेश्वर दिव्य सन्देश निरन्तर देता रहता है, वही जीवन को पवित्र करता हुआ तेजोमय आध्यात्मिक और भौतिक धन भी प्रदान करता है॥७॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कौन कहाँ आनन्दरस को प्रवाहित करते हैं।

**५१८. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।**
**समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः॥८॥**

**पदार्थ** :–(**मनीषिणः**) मनन करने वाले, (**मत्सरासः**) उल्लासयुक्त, (**मदच्युतः**) आनन्द बहाने वाले (**सोमासः**) ब्रह्मानन्दरूप सोमरस का पान किये हुए (**आयवः**) मनुष्य (**समुद्रस्य विष्टपे अधि**) राष्ट्ररूप अन्तरिक्ष के लोक में अर्थात् राष्ट्रवासी जनों में (**मद्यम्**) उल्लासजनक (**मदम्**) ब्रह्मानन्द-रस को (**पवन्ते**) प्रवाहित करते हैं।।८।।

**भावार्थ** :–स्वयं ब्रह्मानन्द-रस में मग्न योगी जन अन्यों को भी ब्रह्मानन्द-रस में मग्न क्यों न करें?।।८।।

अगले मन्त्र में सोम जीवात्मा को उद्बोधित किया गया है।

**५१९.पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः।**
**त्वं विप्रो अभवोऽ ङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्ष णः॥९॥**

**पदार्थ** :–हे (**अङ्गिरस्तम**) अतिशय तेजस्वी (**सोम**) मेरे अन्तरात्मन्! (**जागृविः**) जागरूक, (**अव्याः वारैः**) भेड़ों के बालों से निर्मित दशापवित्रों के सदृश बुद्धि के तर्कों से (**परि पुनानः**) असत्य के त्याग तथा सत्य के स्वीकार द्वारा स्वयं को पवित्र करता हुआ (**प्रियः**) सबका प्रिय (**त्वम्**) तू (**विप्रः**) ज्ञानी (**अभवः**) हो गया है। वह तू (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) जीवन-यज्ञ को (**मध्वा**) माधुर्य से (**मिमिक्ष**) सींचने का प्रयत्न कर।।९।।

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि वे जागरूक, पवित्र, सबके, प्रिय, ज्ञानी, तेजस्वी और मधुर व्यवहार करने वाले होवें।।९।।

अगले मन्त्र में यह वर्णित है कि सोम परमात्मा किसके लिए झरता है।

**५२०. इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः।**
**सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**मदः**) तृप्ति देने वाला, (**सुतः**) ध्यानरूपी सिलबट्टों से अभिषुत (**सोमः**) रसनिधि परमात्मा (**मरुत्वते**) प्राण से सहचरित (**इन्द्राय**) आत्मा के लिए (**पवते**) झरता

है। (**सहस्रधारः**) अनेकों आनन्दधाराओं से युक्त वह (**अव्यम् अति**) पार्थिव अन्नमय कोश को पार कर प्राणमय, मनोमय आदि कोशों में (**अर्षति**) पहुँचता है। (**तम् ई**) उसे (**आयवः**) मनुष्य (**मृजन्तिः**) भक्तिपुष्पों से अलंकृत करते हैं॥१०॥

**भावार्थ** :—रसागार परमेश्वर ध्यानी, भक्तिपरायण जीवात्मा को आनन्द के झरने में स्नान कराता है॥१०॥

अगले मन्त्र में सोम नाम से परमात्मा वा राजा से प्रार्थना की गयी है।

**५२१. पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।**
**त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्म देवेभ्यः सोम मत्सरः॥११॥**

पदार्थ :—हे (**सोम**) ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर वा राजन्! (**वाजसातमः**) ऐश्वर्यों के अतिशय दानी आप (**विश्वानि**) सब (**वार्या**) वरणीय ऐश्वर्यों को (**अभिपवस्व**) प्राप्त कराइये। (**त्वम्**) आप (**समुद्रः**) परमेश्वरोचित वा राजोचित बल, वीर्य आदि के समुद्र हो। आप (**प्रथमे**) श्रेष्ठ (**विधर्मन्**) विशिष्ट जगद्धारण-यज्ञ में वा प्रजा-पालन-यज्ञ में (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए (**मत्सरः**) आनन्ददायक होओ॥११॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर जगत् में सब ऐश्वर्यों को देने वाला है, वैसे राष्ट्र में राजा प्रजाओं को ऐश्वर्य प्रदान करे॥११॥

अगले मन्त्र में ज्ञानरसों की प्राप्ति का वर्णन है।

**५२२. पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया। मरुत्वन्तो**
**मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि प्रयांसि च॥१२॥**

**पदार्थ** :—(**पवमानाः**) पवित्रता देते हुए ये ज्ञानरूप सोमरस (**धारया**) धारा रूप में (**पवित्रम् अति**) पवित्र हृदयरूप दशापवित्र में से छनकर (**असृक्षत**) आत्मारूप द्रोणकलश में छोड़े जा रहे हैं। (**मरुत्वन्तः**) प्राणों से युक्त, (**मत्सरासः**) तृप्तिप्रदाता, (**इन्द्रियाः**) आत्मा रूप इन्द्र से सेवित, (**हयाः**) प्राप्त होने वाले ये ज्ञानरस (**मेधाम्**) धारणावती बुद्धि को

(प्रयांसि च) और आनन्दरसों को (अभि) बरसाते हैं॥१२॥

**भावार्थ** :—मन और प्राण से पवित्र किये गये ज्ञानरस जब आत्मा को प्राप्त होते हैं, तब मेधा और आनन्द के बरसाने वाले होते हैं॥१२॥

इस दशति में भी सोम परमात्मा और उससे प्राप्त आनन्दधारा का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## षष्ठी दशतिः

**ऋषिः—१, ९ उशना: काव्यः; २ वृषगणो वासिष्ठः; ३, ७ पराशरः शाक्त्यः; ४, ६ वसिष्ठो मैत्रावरुणः; ५, १० प्रतर्दनो दैवोदासिः; ८ प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

अगले मन्त्र में जीवात्मा को उद्बोधन दिया गया है।

**५२३. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष। अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति॥१॥**

**पदार्थ** :—हे आत्मन्! तू (तु) शीघ्र ही (प्र द्रव) उत्कृष्ट दिशा में दौड़, (कोशम्) आनन्दमय कोश में (परि निषीद) व्याप्त होकर स्थित हो, (नृभिः) आगे ले जाने वाले अपने पौरुषों से (पुनानः) मन, बुद्धि आदि को पवित्र करता हुआ (वाजम् अभि) देवासुरसंग्राम में (अर्ष) असुरों के पराजय के लिए जा। (वाजिनम्) ज्ञानवान् (त्वा) तुझे (मर्जयन्तः) सद्गुणों से अलंकृत करते हुए (रशनाभिः) यम-नियम की रस्सियों से नियन्त्रित करके, शिक्षक योगी जन (बर्हिः अच्छ) परब्रह्म के प्रति (नयन्ति) प्रेरित कर रहे हैं, (न) जैसे (वाजिनम्) बलवान् (अश्वम्) घोड़े को (मर्जयन्तः) साफ या अलंकृत करते हुए योद्धा लोग (रशनाभिः) लगामों से नियन्त्रित करके (बर्हिः अच्छ) संग्राम

में (नयन्ति) ले जाते हैं॥१॥

इस मन्त्र के उत्तरार्ध में श्लिष्टोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे बलवान् घोड़े को योद्धा लोग लगामों से नियन्त्रित करके युद्ध में ले जाते हैं, वैसे ही योग-प्रशिक्षक लोग मनुष्य के आत्मा को यम, नियम आदि योग-साधनों से नियन्त्रित करके परब्रह्म के प्रति ले जाएँ॥१॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि सोम परमात्मा क्या करता है।

**५२४. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति। महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**काव्यम्**) काव्य का (**प्र ब्रुवाणः**) प्रवचन करते हुए (**उशना इव**) धर्मेच्छु विद्वान् के समान (**काव्यम्**) वेदरूप काव्य का (**प्र ब्रुवाणः**) उपदेश करता हुआ (**देवः**) दान आदि गुणों से युक्त सोम परमात्मा (**देवानाम्**) प्रकाशक अग्नि, सूर्य, विद्युत्, आदि पदार्थों के तथा इन्द्रियों के (**जनिम**) उत्पत्ति-प्रकार को (**प्र विवक्ति**) वेद द्वारा भलीभाँति बतलाता है। (**महिव्रतः**) महान् कर्मों वाला, (**शुचिबन्धुः**) पवित्रात्मा जनों से बन्धुत्व स्थापित करने वाला, (**पावकः**) मनुष्यों को पवित्र करने वाला वह जगदीश्वर (**रेभन्**) गर्जते हुए (**वराहः**) मेघ के समान (**रेभन्**) उद्बोधन के शब्द बोलता हुआ (**पदा**) गन्तव्य सत्पात्र जनों के पास (**अभ्येति**) पहुँचता है॥२॥

इस मन्त्र में 'उशनेव' में वाच्योपमा और 'वराहः' में लुप्तोपमा अलंकार है। 'देवो-देवा' में छेकानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे सोमरस धारापात शब्द करता हुआ पात्रों में जाता है, और जैसे मेघ गर्जना करता हुआ भूमि पर बरसता है, वैसे ही सौम्य परमेश्वर जीभ के बिना भी सत्कर्मों का उपदेश करता हुआ स्तोता जनों के पास पहुँचता है॥२॥

अगले मन्त्र में सोम नाम से परमात्मा, जीवात्मा और आचार्य का वर्णन है।

**५२५. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्। गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥३॥**

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**वह्निः**) जगत् का वहनकर्ता सोम परमेश्वर (**तिस्रः वाचः**) ऋग्, यजुः, साम रूप तीन वाणियों का (**प्र ईरयति**) प्रजाओं के कल्याणार्थ उपदेश करता है। वही (**ऋतस्य**) सत्यमय यज्ञ के (**धीतिम्**) धारण की, और (**ब्रह्मणः**) ज्ञान के (**मनीषाम्**) मनन की (**प्र ईरयति**) प्रेरणा करता है। (**गावः**) पृथिवी आदि लोक अथवा सूर्यकिरण (**गोपतिम्**) अपने स्वामी के विषय में (**पृच्छमानाः**) मानो पूछते हुए (**यन्ति**) चले जा रहे हैं—अर्थात् मानो यह पूछ रहे हैं कि कौन हमारा स्वामी है, जो हमें संचालित करता है। इसी प्रकार (**मतयः**) मेरी स्तुतियाँ (**वावशानाः**) अतिशय पुनः-पुनः चाह रखती हुईं (**सोमम्**) रसागार परमात्मा को (**यन्ति**) प्राप्त हो रही हैं।।

(**द्वितीय**) जीवात्मा के पक्ष में। (**वह्नि**) शरीर का वहनकर्ता जीवात्मा (**तिस्रः वाचः**) ज्ञानरूप में, विचाररूप में तथा जिह्वा के कण्ठ, तालु आदि के संयोग से जन्य शब्दरूप में विद्यमान त्रिविध वाणियों को (**प्र ईरयति**) प्रकट करता है। वही (**ऋतस्य**) सत्य के (**धीतिम्**) धारण को, और (**ब्रह्मणः**) उपार्जित ज्ञान के (**मनीषाम्**) मनन को करता है। (**गावः**) मन-सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ (**पृच्छमानाः**) मानो कर्त्तव्याकर्त्तव्य को पूछती हुई (**गोपतिम्**) इन्द्रियों के स्वामी आत्मा के पास (**यन्ति**) पहुँचती हैं। (**मतयः**) मेरी बुद्धियाँ (**वावशानाः**) निश्चय में साधन बनना चाहती हुई (**सोमम्**) ज्ञाता आत्मा के पास (**यन्ति**) पहुँच रही हैं।।

**तृतीय** आचार्य के पक्ष में। (**वह्नि**) ज्ञान का वाहक आचार्य, शिष्य के लिए (**तिस्रः वाचः**) त्रिविध ज्ञान-कर्म-उपासना की प्रतिपादक, अथवा सत्त्व-राजस्-तमस् की प्रतिपादक, अथवा सृष्टि-स्थिति-प्रलय की प्रतिपादक, अथवा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति की प्रतिपादक, अथवा धर्म-अर्थ-काम की प्रतिपादक वाणियों

का (**प्र ईरयति**) उच्चारण करता है। वही (**ऋतस्य**) सत्य के (**धीतिम्**) धारण को, और (**ब्रह्मणः**) ब्रह्म की अथवा मोक्ष की (**मनीषाम्**) प्रज्ञा को (**प्र ईरयति**) देता है। (**गावः**) मेरी वाणियाँ (**पृच्छमानाः**) ब्रह्मविद्याविषयक प्रश्न पूछती हुई (**गोपतिम्**) वाचस्पति आचार्य को (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं। (**मतयः**) मेरी बुद्धियाँ (**वावशानाः**) ज्ञानोद्घाटन को चाहती हुई (**सोमम्**) ज्ञानरस के अगार, सौम्य आचार्य को (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं॥३॥

इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है। प्रथम दो पक्षों में 'गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः' में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षा है॥३॥

**भावार्थ** :—वाणियों के प्रेरक, सत्य वा यज्ञ को धारण कराने वाले, ज्ञान के प्रदाता और मन-बुद्धि आदियों के संस्कर्ता परमेश्वर, जीवात्मा तथा गुरु का सदा सेवन एवं सत्कार करना चाहिए॥३॥

अगले मन्त्र में आत्मा और परमात्मा का विषय वर्णित है।

**५२६. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्। सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता॥४॥**

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस सौम्य ज्योति वाले सोम परमात्मा की (**प्रेषा**) प्रेरणा से, और (**हेमना**) ज्योति से (**पूयमानः**) पवित्र किया जाता हुआ (**देवः**) द्युतिमान् आत्मा (**देवेभिः**) मनसहित ज्ञानेन्द्रियों के साथ मिलकर (**रसम्**) आनन्द को (**समपृक्त**) अपने अन्दर संपृक्त करता है। (**सुतः**) ध्यान द्वारा अभिषुत परमात्मारूप सोम (**रेभन्**) कर्तव्य का उपदेश करता हुआ (**पवित्रम्**) पवित्र मन में (**पर्येति**) पहुँचता है, (**इव**) जैसे (**होता**) होता नामक ऋत्विज् (**पशुमन्ति**) पशु-युक्त (**मिता**) निर्मित (**सद्म**) गो-सदनों में दूध, घृत आदि लाने के लिए जाता है॥४॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—उपासकों के अन्तःकरण में प्रकट हुआ परमेश्वर उन्हें पवित्र और तेजस्वी बना देता है॥४॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के सर्वजनकत्व का वर्णन है।

**५२७. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**सोमः**) सर्वोत्पादक, रसागार और चन्द्रमा के समान कमनीय परमेश्वर (**पवते**) हृदयों को पवित्र करता है, जो (**मतीनाम्**) बुद्धियों का (**जनिता**) उत्पादक है, (**दिवः**) द्युलोक का तथा मनोमय कोश का (**जनिता**) उत्पादक है, (**पृथिव्याः**) भूलोक का तथा अन्नमयकोश का (**जनिता**) उत्पादक है, (**अग्नेः**) आग का तथा वाणी का (**जनिता**) उत्पादक है, (**सूर्यस्य**) सूर्य का तथा चक्षु का (**जनिता**) उत्पादक है, (**इन्द्रस्य**) वायु का तथा प्राणमयकोश का (**जनिता**) उत्पादक है, (**उत**) और (**विष्णोः**) यज्ञ का (**जनिता**) उत्पादक है।।५।।

इस मन्त्र में पुनः-पुनः 'जनिता' कहने से यह सूचित होता है कि इसी प्रकार अन्य भी अनेक पदार्थों का जनिता है। लाटानुप्रास अलंकार है। कुवलयानन्द का अनुसरण करने पर आवृत्तिदीपक अलंकार है।।५।।

**भावार्थ** :—सर्वोत्पादक परमात्मा ने ही ब्रह्माण्ड के सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युत् आदि और शरीर-पिण्ड के प्राण, मन, बुद्धि, वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि रचे हैं, क्योंकि उनकी रचना करना किसी मनुष्य के सामर्थ्य में नहीं है।।५।।

अगले मन्त्र में कैसा परमात्मा क्या करता है इसका वर्णन है।

**५२८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवाशन्त वाणीः। वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि॥६॥**

**पदार्थ** :—(**त्रिपृष्ठम्**) ऋग्-यजुः-साम रूप, पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ रूप, अग्नि-वायु-आदित्य रूप, सत्त्व-रजस्-तमस् रूप और मन-प्राण-आत्मा रूप तीन पृष्ठों वाले, (**वृषणम्**) सुख आदि

के वर्धक, (**वयोधाम्**) आयु प्रदान करने वाले, (**अङ्गोषिणम्**) अंग-अंग में निवास करने वाले अथवा स्तुति-योग्य परमात्मा का (**वाणीः**) वेदवाणियाँ (**अभि अवावशन्त**) गान करती हैं। (**वरुणः न**) सूर्य के समान (**वना**) तेज की किरणों को (**वसानः**) धारण करता हुआ वह परमात्मा (**रत्नधाः**) रत्नप्रदाता (**सिन्धुः**) समुद्र के समान (**वार्याणि**) वरणीय भौतिक एवं आध्यात्मिक रत्नों को (**वि दयते**) विशेष रूप से प्रदान करता है॥६॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :-सूर्य के समान तेजों का और समुद्र के समान रत्नों का भण्डार परमेश्वर तेजों तथा रत्नों को प्रदान कर सबको समृद्ध करता है॥६॥

अगले मन्त्र में सोम नाम से मेघ और परमात्मा का वर्णन है।

**५२९. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मं जनयन्प्रजा भुवनस्य गोपाः। वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः॥७॥**

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) मेघ के पक्ष में। (**समुद्रः**) जलों का पारावार मेघ (**प्रथमे**) श्रेष्ठ (**विधर्मन्**) विशेष धारणकर्ता अन्तरिक्ष में (**अक्रान्**) व्याप्त होता है। (**प्रजाः**) वृक्ष, वनस्पति आदि रूप प्रजाओं को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ वह (**भुवनस्य**) भूतल का (**गोपाः**) रक्षक होता है। (**वृषा**) वर्षा करने वाला, (**स्वानः**) स्नान कराता हुआ (**अद्रिः**) मेघरूप (**सोमः**) सोम (**पवित्रे**) पवित्र (**अव्ये**) पार्थिव (**सानौ अधि**) पर्वत-शिखर पर (**बृहत्**) बहुत (**वावृधे**) वृद्धि को प्राप्त करता है॥

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। (**समुद्रः**) शक्ति का पारावार परमेश्वर (**प्रथम**) श्रेष्ठ, (**विधर्मन्**) विशेष रूप से जड़-चेतन के धारक ब्रह्माण्ड में (**अक्रान्**) व्याप्त है, (**प्रजाः**) जड़-चेतन प्रजाओं को (**जनयन्**) जन्म देता हुआ वह (**भुवनस्य**) जगत् का (**गोपाः**) रक्षक है। (**वृषा**) सद्गुणों की अथवा अन्तरिक्षस्थ जलों की वर्षा करने वाला, (**स्वानः**) सत्कर्मों में प्रेरित करता

हुआ, (**अद्रिः**) अविनश्वर (**सोमः**) वह परमात्मा (**पवित्रे**) पवित्र (**अव्ये**) अव्यय अर्थात् अविनाशी (**सानौ अधि**) उन्नत जीवात्मा में (**बृहत्**) बहुत (**वावृधे**) महिमा को प्राप्त है, क्योंकि जीवात्मा द्वारा किये जाने वाले महान् कार्यों में उसी की महिमा दृष्टिगोचर होती है॥७॥

इस मन्त्र में मेघ और परमेश्वर दो अर्थों का वर्णन होने से श्लेषालंकार है। दोनों अर्थों का उपमानोपमेयभाव भी ध्वनित हो रहा है॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे अगाध जलराशि वाला मेघ अन्तरिक्ष में व्याप्त होता है, वैसे परमेश्वर सकल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जैसे मेघ बरसकर वृक्ष, वनस्पति आदियों को उत्पन्न करता है, वैसे परमेश्वर जड़-चेतन सब पदार्थों को उत्पन्न करता है। जैसे मेघ भूतल का रक्षक है, वैसे परमेश्वर सब भुवनों का रक्षक है। जैसे मेघ पर्वतों के शिखरों पर विस्तार प्राप्त करता है। वैसे परमेश्वर मनुष्यों के आत्माओं में॥७॥

अगले मन्त्र में हरि नाम से सोम ओषधि और परमात्मा का वर्णन है।

**५३०. कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः। नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः॥८॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सोम ओषधि के पक्ष में। (**हरिः**) हरे रंग का सोम (**आ सृज्यमानः**) द्रोणकलश में छोड़ा जाता हुआ (**कनिक्रन्ति**) शब्द करता है। (**वनस्य**) जंगल के (**जठरे**) मध्य में (**सीदन्**) स्थित वह (**पुनानः**) वायुमण्डल को पवित्र करता है। (**नृभिः**) यज्ञ के नेता ऋत्विजों से (**यतः**) पकड़ा हुआ वह सोम (**गाम्**) गोदुग्ध को (**निर्णिजम्**) अपने संयोग से पुष्ट (**कृणुते**) करता है। (**अतः**) इस कारण, हे यजमानो! तुम (**स्वधाभिः**) हविरूप अन्नों के साथ, सोमयाग के प्रति (**मतिम्**) बुद्धि (**जनयत**) उत्पन्न करो, अर्थात् सोमयाग के निष्पादन में रुचि लो॥

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। (**हरिः**) पापहारी परमेश्वर (**आसृज्यमानः**) मनुष्य के जीवात्मा के साथ संयुक्त होता हुआ (**कनिक्रन्ति**) कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश करता है। (**वनस्य**) चाहनेयोग्य अपने मित्र उपासक मनुष्य के (**जठरे**) हृदय के अन्दर (**सीदन्**) बैठा हुआ वह (**पुनानः**) पवित्रता देता रहता है। (**नृभिः**) उपासक जनों से (**यतः**) हृदय में नियत किया हुआ वह (**गाम्**) इन्द्रिय-समूह को (**निर्णिजम्**) शुद्ध (**कृणुते**) करता है। (**अतः**) इस कारण, हे मनुष्यो! तुम (**स्वधाभिः**) आत्मसमर्पणों के साथ, उस परमेश्वर के प्रति (**मतिम्**) स्तुति (**जनयत**) प्रकट करो॥८॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। उपमानोपमेयभाव गम्य है॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे द्रोणकलश में पड़ता हुआ सोम टप-टप शब्द करता है, वैसे ही मनुष्यों के आत्मा में उपस्थित परमेश्वर कर्त्तव्य का उपदेश करता है। जैसे गोदूध से मिलकर सोम उस दूध को पुष्ट करता है, **वैसे हृदय में निगृहीत किया परमेश्वर इन्द्रियों को पुष्ट और निर्मल करता है। अतः परमेश्वर के प्रति सबको स्तुतिगीत गाने चाहिएँ॥८॥**

अगले मन्त्र में परमात्मा के आनन्दरस का वर्णन है।

**५३१. एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः। परि पवित्रे अक्षाः। सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् परमात्मन्! (**वृष्णः ते**) तुझ वर्षक का (**एषः**) यह (**स्यः**) वह प्रसिद्ध, (**वृषा**) शक्तिवर्षक, (**मधुमान्**) मधुर (**सोमः**) आनन्दरस (**पवित्रे**) मेरे पवित्र हृदयरूप द्रोणकलश में (**परि अक्षाः**) झर रहा है। (**सहस्रदाः**) सहस्र गुणों का प्रदाता, (**शतदाः**) शत बलों का प्रदाता, (**भूरिदावा**) बहुत से लाभों को देने वाला, (**वाजी**) वेगवान् आनन्दरस-रूप सोम (**शश्वत्तमम्**) सनातन (**बर्हिः**) आत्मा रूप दर्भपात्र में (**आ अस्थात्**) आकर स्थित हो गया है॥९॥

इस मन्त्र में 'तुझ वृषा का रस भी वृषा है', इस प्रकार

योग्य समागम की सूचना होने से समालंकार ध्वनित होता है। 'वृषा, वृष्' में छेकानुप्रास है। 'दा' की तीन बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है॥९॥

**भावार्थ** :—जैसे मधुर रस से भरा सोम पवित्र द्रोणकलश में क्षरित होता है, वैसे ही परमेश्वर का मधुर आनन्दरस हृदय-रूप द्रोणकलश में झरता है। जैसे सोमरस बहुशक्तिप्रद होता है, वैसे ही आनन्दरस भी॥९॥

अगले मन्त्र में परमात्मा-रूप सोम को कहा जा रहा है।

**५३२. पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो अधि सानो अव्ये। अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह मदिन्तमो मत्सरः इन्द्रपानः ॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रसागार परमात्मन्! (**मधुमान्**) मधुर आनन्द से युक्त, (**ऋतावा**) सत्यमय आप (**पवस्व**) हमारे प्रति झरो अथवा हमें पवित्र करो। (**अपः**) हमारे कर्मों को (**वसानः**) आच्छादित करते हुए आप (**अव्ये**) अविनाशी (**सानौ**) उन्नत आत्मा में (**अधि**) अधिरोहण करो। (**मदिन्तमः**) अतिशय आनन्दमय, (**मत्सरः**) आनन्दप्रद, (**इन्द्रपानः**) जीवात्मा से पान किये जाने योग्य आप (**घृतवन्ति**) तेजोमय (**द्रोणानि**) इन्द्रिय, मन, प्राण रूप द्रोणकलशों में (**अवरोह**) अवरोहण करो॥१०॥

**भावार्थ** :—यहाँ श्लेष से सोम ओषधि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए। परमात्मा सोम ओषधि के सदृश मधुर रस का भण्डार है। जैसे सोम ओषधि का रस जलों से मिलकर भेड़ के बालों से बने दशापवित्र में परिस्रुत होकर द्रोणकलशों में जाता है, वैसे ही परमात्मा हमारे कर्मों से संसृष्ट होकर आत्मा में परिस्रुत हो इन्द्रिय, मन, प्राण रूप द्रोणकलशों में अवरोहण करता है॥१०॥

इस दशति में भी सोम परमात्मा तथा उससे अभिषुत आनन्दरस का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## सप्तमी दशतिः

**ऋषिः**—१ प्रतर्दनः; २, १० पराशरः शाक्त्यः; ३ इन्द्रप्रमतिर्वासिष्ठः; ४ वसिष्ठो मैत्रावरुणः; ५ मृडीको वासिष्ठः; ६ नोधा गोतमः; ७ कण्वो घौरः; ८ मन्युर्वासिष्ठः; ९ कुत्स आङ्गिरसः; ११ कश्यपो मारीचः; १२ प्रस्कण्वः काण्वः॥ **देवता**—पवमानः सोमः॥ **छन्दः**—त्रिष्टुप्॥ **स्वरः**—धैवतः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का सेनानी रूप में वर्णन है।

**५३३. प्र सेनानीः शूरो अग्ने रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना। भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सेनानीः**) देवजनों का सेनापति (**शूरः**) शूरवीर सोम नामक परमेश्वर (**गव्यन्**) दिव्य प्रकाश-किरणों को प्राप्त कराना चाहता हुआ (**रथानाम्**) शरीररथारोही जीवात्मारूप योद्धाओं के (**अग्रे**) आगे-आगे (**प्र एति**) चलता है, इस कारण (**अस्य**) इसकी (**सेना**) देवसेना (**हर्षते**) प्रमुदित एवं उत्साहित होती है। (**सखिभ्यः**) अपने सखा उपासकों के लिए (**इन्द्रहवान्**) सेनापति के प्रति की गयी पुकारों को (**भद्रान्**) भद्र (**कृण्वन्**) करता हुआ, अर्थात् उपासकों की पुकारों को सफल करता हुआ (**सोमः**) वीररसपूर्ण परमेश्वर (**रभसानि**) बल, वेग आदियों को (**वस्त्रा**) वस्त्रों के समान (**आदत्ते**) ग्रहण करता है, अर्थात् जैसे कोई वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही वीर परमेश्वर अपने सेनापतित्व का निर्वाह करने के लिए बल, वेग आदि को धारण करता है।।१।।

इस मन्त्र में वीररस है। सोम परमात्मा में सेनानीत्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे कोई शूर सेनापति वीरोचित वस्त्रों को धारण कर रथारोही योद्धाओं के आगे-आगे चलता हुआ उन्हें प्रोत्साहित करता है और अपनी सेना को हर्षित करता है, वैसे ही परमेश्वर वीरोचित बल, वेग आदि को धारण करता हुआ

मानसिक देवासुरसंग्राम में मानो सेनानी बनकर दुर्विचाररूप शत्रुओं का संहार करने के लिए और दिव्य विचारों को बढ़ाने के लिए देवजनों को समुत्साहित करता है॥१॥

अगले मन्त्र में पवमान सोम का कार्य वर्णित किया गया है।

**५३४. प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम्।**
**पवमान पवसे धाम गोनां जनयन्त्सूर्यमपिन्वो अर्कैः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे रसमय परमात्मन्! (**ते**) तेरी (**मधुमतीः**) मधुर (**धाराः**) धाराएँ (**प्र असृग्रन्**) प्रवाहित होती हैं, (**यत्**) जब (**पूतः**) पवित्र तू (**अव्यम्**) पार्थिव अर्थात् अन्नमय (**वारम्**) कोश को (**अत्येषि**) अतिक्रान्त करता अर्थात् अन्नमयकोश को पार कर क्रमशः प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमयकोश को भी पार करता हुआ जब तू आनन्दमयकोश में अधिष्ठित हो जाता है तब तेरी मधुर आनन्दधाराएँ शरीर, प्राण, मन और आत्मा में प्रवाहित होने लगती हैं। हे (**पवमान**) पवित्रकारी जगदीश्वर! तू (**गोनाम्**) पृथिव्यादि लोकों के तुल्य इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, आत्मा के (**धाम**) धाम को (**पवसे**) पवित्र करता है और (**सूर्यम्**) आकाशवर्ती सूर्य के समान अध्यात्मप्रकाश के सूर्य को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ, उसकी (**अर्कैः**) किरणों से (**अपिन्वः**) उपासक के आत्मा को सींचता है, अर्थात् उपासक के आत्मा को अध्यात्मसूर्य की किरणों से अतिशय भरकर शान्ति प्रदान करता है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे सोमरस जब भेड़ों के बालों से निर्मित दशापवित्र में से पार होता है तब उसकी मधुर धाराएँ द्रोणकलश की ओर बहती हैं, वैसे ही जब परमेश्वर अन्नमय आदि कोशों को पार कर आनन्दमय कोश में अधिष्ठित हो जाता है, तब उसकी मधुर आनन्दधाराएँ शरीर, प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा के धामों को आप्लावित कर देती हैं॥२॥

अगले मन्त्र में सोम के प्रति मनुष्यों को प्रेरित किया गया है।

५३५. प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय।
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव
इन्दुः॥३॥

पदार्थ :-(प्रथम) सोम ओषधि के पक्ष में। हे साथियो! तुम (प्र गायत) वेदमन्त्रों का गान करो। हम (देवान्) यज्ञ में आये हुए विद्वानों को (अभ्यर्चाम) सत्कृत करें। तुम (महते) महान् (धनाय) यज्ञफल-रूप धन के लिए (सोमम्) सोम ओषधि के रस को (हिनोत) प्रेरित करो। (स्वादुः) स्वादु सोमरस (अव्यम्) भेड़ के बालों से बने हुए (वारम्) दशापवित्र में से (अति पवताम्) छनकर पार हो। (देवः) द्युतिमान्, वह (इन्दुः) सोमरस (कलशम्) द्रोणकलश में (आ सीदतु) आकर स्थित हो।

(द्वितीय)-परमात्मा के पक्ष में। हे उपासको! तुम (प्र गायत) रसागार सोम परमात्मा को लक्ष्य करके गीत गाओ। तुम और हम मिलकर हृदय में आये हुए (देवान्) सत्य, अहिंसा आदि दिव्य गुणों को (अभ्यर्चाम) सत्कृत करें। तुम (महते) महान् (धनाय) दिव्य-धन की प्राप्ति के लिए (सोमम्) रसागार परमेश्वर को (हिनोत) अपने अन्तःकरण में प्रेरित करो। (स्वादुः) मधुर रस वाला वह परमेश्वर (अव्यं वारम्) पार्थिव अन्नमय कोश को (अति) पार करके (पवताम्) प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों में प्रवाहित हो। (देवः) दानादिगुणविशिष्ट वह (इन्दुः) रस से आर्द्र करने वाला परमेश्वर (कलशम्) सोलह कलाओं से युक्त आत्मा को (आ सीदतु) प्राप्त हो॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥३॥

भावार्थ :-जैसे यजमान लोग सोमलता को यज्ञिय सिल-बट्टों पर पीसकर, रस को दशापवित्रों से छानकर, मधुर सोमरस को द्रोणकलशों में भरते हैं, उसी प्रकार परमात्मा के आराधक लोग मधुर ब्रह्मानन्द-रस को आत्मा-रूप कलश में प्रविष्ट करायें॥३॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा का वर्णन है।

**५३६. प्र हिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्न यासीत्। इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरादधानः॥४॥**

**पदार्थ** :–(**रोदस्योः**) द्यावापृथिवी का (**जनिता**) उत्पादक और (**हिन्वानः**) द्यावापृथिवी को गति देता हुआ सर्वप्रेरक सोम परमात्मा, (**वाजम्**) आत्मबल को (**सनिषन्**) देना चाहता हुआ (**प्र अयासीत्**) प्रवृत्त होता है, (**रथः न**) जैसे रथ, मानो (**वाजम्**) अन्न को (**सनिषन्**) देने के लिए (**प्र अयासीत्**) चलता है। वह (**इन्द्रम्**) जीवात्मा के प्रति (**गच्छन्**) जाता हुआ, उसके (**आयुधा**) हथियारों को अर्थात् शम, दम आदि शत्रुपराजय के साधनों को (**सं शिशानः**) भलीभाँति तीक्ष्ण करता हुआ (**विश्वा वसु**) सब आध्यात्मिक ऐश्वर्यों को (**हस्तयोः**) उसके हाथों में (**आदधानः**) थमा देता है।।४।।

इस मन्त्र में 'रथो न वाजम्' आदि में श्लिष्टोपमालंकार है।।४।।

**भावार्थ** :–रथ जैसे प्रचुर अन्नादि की प्राप्ति का साधन बनता है, वैसे ही परमात्मा जीवात्मा के लिए प्रचुर बल, वेग आदि की प्राप्ति का साधन बनता है।।४।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कब स्तोताजन जीवात्मा को परमात्मा में ले जाते हैं।

**५३७. तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके। आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम्॥५॥**

**पदार्थ** :– (**यदि**) जब (**वेनतः**) कामना करने वाले अर्थात् संकल्पवान् (**मनसः**) मन की (**वाक्**) संकल्परूप वाणी, स्तोता को (**ज्येष्ठस्य**) सबसे महान् परमात्मा के (**धर्मन्**) धर्म में अर्थात् गुण-समूह में, और (**द्युक्षोः**) दीप्ति के निवासक उस परमात्मा के (**अनीके**) समीप (**तक्षत्**) करती है, (**आत्**) उसके अनन्तर ही (**आ वावशानाः**) अतिशय पुनः-पुनः प्रीति

करते हुए (गावः) स्तोता जन (ईम्) इस (वरम्) वरणीय वा श्रेष्ठ, (जुष्टम्) प्रिय (पतिम्) शरीर के पालनकर्ता अथवा स्वामी (इन्दुम्) तेजोमय अथवा चन्द्रतुल्य जीवात्मा को (कलशे) सोलह कलाओं से युक्त परमात्मा रूप द्रोणकलश में (आयन्) पहुँचाते हैं।।५।।

**भावार्थ** :—मन का संकल्प सहायक होने पर ही जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।।५।।

अगले मन्त्र में यह वर्णित है कि कब जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करता है।

**५३८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः। हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी॥६॥**

**पदार्थ :—प्रथम** सोम ओषधि के पक्ष में। (**धीरस्य**) बुद्धिमान् यजमान के (**साकमुक्षः**) साथ मिलकर सोमरस को निचोड़ने वाली, (**धनुत्रीः**) प्रेरक, (**दश**) दस (**धीतयः**) अंगुलियाँ, जब सोमरस को (**मर्जयन्ति**) शुद्ध करती हैं, तब (**सूर्यस्य**) सूर्य का (**जाः**) पुत्र (**हरिः**) हरे रंग का सोमरस (**पर्यद्रवत्**) चारों ओर फैल जाता है। (**न**) जैसे (**वाजी**) वेगवान् (**अत्यः**) घोड़ा (**द्रोणम्**) लकड़ी से बने रथ को (**ननक्षे**) व्याप्त करता है अर्थात् रथ में नियुक्त होता है, वैसे ही सोमरस (**द्रोणम्**) द्रोणकलश में (**ननक्षे**) व्याप्त होता है।।

**द्वितीय** परमात्मा के पक्ष में। (**धीरस्य**) ध्यान में स्थित योगी की (**साकमुक्षः**) साथ मिलकर ज्ञानों और कर्मों से सींचने वाली, (**स्वसारः**) बहिनों के समान परस्पर सहायता करने वाली, (**धनुत्रीः**) प्रेरक (**दश**) दस (**धीतयः**) यम-नियम-भावनाएँ, जब (**मर्जयन्त**) आत्मा को शुद्ध करती हैं, तब (**सूर्यस्य**) परमात्मा का (**जाः**) पुत्र (**हरिः**) उन्नति के मार्ग पर जाने वाला आत्मा (**पर्यद्रवत्**) क्रियाशील हो जाता है, और (**न**) जैसे (**वाजी**) वेगवान् (**अत्यः**) घोड़ा (**द्रोणम्**) लकड़ी से बने रथ को (**ननक्षे**) प्राप्त करता है,

अर्थात् उसमें जुड़ता है, वैसे ही वह आत्मा (**द्रोणम्**) क्रियाशील परमात्मा-रूप द्रोणकलश को (**ननक्षे**) प्राप्त कर लेता है।।६।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी' में श्लिष्टोपमा है। सकार-धकार-नकार तथा रेफ की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है।।६।।

**भावार्थ** :-अंगुलियों से परिशुद्ध सोमरस जैसे द्रोणकलश को प्राप्त करता है, वैसे ही यम-नियम की भावनाओं से परिशुद्ध हुआ जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करता है।।६।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा कब क्या करता है, इसका वर्णन है।

**५३९. अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः**
**सूरे न विशः। अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं**
**न पशुवर्धनाय मन्म॥७॥**

**पदार्थ** :-(**यत्**) जब (**अस्मिन्**) इस सोमनामक परमात्मा में (**धियः**) उपासक की ध्यानवृत्तियाँ (**अधि स्पर्धन्ते**) मानो 'मैं पहले प्रवेश करूँ-मैं पहले प्रवेश करूँ' इस प्रकार स्पर्धा-सी करती हैं, किस प्रकार? (**वाजिनि इव**) जैसे घोड़े पर (**शुभ**) शोभाकारक अलंकार मानो उसे शोभित करने की स्पर्धा करते हैं, अथवा (**वाजिनि इव**) जैसे बलवान् पुरुष में (**शुभः**) शोभाकारी गुण निवास करने की स्पर्धा करते हैं, और (**सूरे न**) जैसे सूर्य में (**विशः**) उसकी प्रजाभूत किरणें व्याप्त होने की स्पर्धा करती हैं, तब (**कवीयान्**) अतिशय मेधावी सोम परमेश्वर (**अपः**) उपासक के प्राणों को (**वृणानः**) वरण करता हुआ, उसके (**मन्म**) मन को (**पवते**) पवित्र करता है, (**न**) जैसे, गोपालक मनुष्य (**पशुवर्धनाय**) गाय आदि पशुओं के पोषण के लिए (**व्रजम्**) गोशाला को स्वच्छ-पवित्र करता है।।७।।

इस मन्त्र में 'वाजिनीव शुभः', 'सूरे न विशः' 'व्रजं न पशुवर्धनाय' ये तीन उपमाएँ हैं। चेतन के धर्म स्पर्धा का अलंकार, शुभगुण और ध्यानवृत्ति रूप अचेतनों के साथ योग

में "मानो स्पर्धा करते हैं" यह अर्थ द्योतित होने से व्यंग्योत्प्रेक्षा है।।७।।

**भावार्थ** :—जब साधक लोग परमात्मा में ध्यान केन्द्रित करते हैं, तब परमात्मा उनके हृदयों को पवित्र करके उनकी सब प्रकार से वृद्धि करता है।।७।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा के कर्मों का वर्णन है।

**५४०. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय। हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिव- स्कृण्वन् वृजनस्य राजा॥८॥**

**पदार्थ** :—(**गोन्योधाः**) गो-रसों के समान मधुर आनन्दरसों के समूह का स्वामी, (**वाजी**) वेगवान् (**इन्दुः**) तेजस्वी और रस से आर्द्र करने वाला परमात्मा (**पवते**) उपासक के अन्तःकरण को पवित्र करता है। (**सोमः**) शान्तिदायक वह परमात्मा (**मदाय**) आनन्द देने के लिए (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**सहः**) बल को (**इन्वन्**) प्रेरित करता है। (**वृजनस्य**) बल का (**राजा**) राजा वह परमात्मा, अपने उपासकों को (**वरिवः**) शुभगुणों का अथवा योगसिद्धियों का ऐश्वर्य (**कृण्वन्**) प्रदान करता हुआ (**रक्षः**) पापरूप राक्षस को (**हन्ति**) विनष्ट करता है, (**अरातिम्**) अदानभाव को (**परि बाधते**) सर्वथा दूर कर देता है।।८।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर उपासकों को गाय के दूध के समान मधुर आनन्दरसों को, आत्मबल को, सद्गुणों को एवं अणिमा आदि योगसिद्धियों को प्रदान करता हुआ उनके हृदय से अदानवृत्ति को बाधित करता हुआ और उनके पापरूप शत्रु का संहार करता हुआ उन्हें विजयी बनाता है।।८।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**५४१. अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व। ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चि- त्तकवे नरं धात्॥९॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्दो**) रस से आर्द्र करने वाले परमात्मन्! आप (**अया**) इस (**पवा**) प्रवाहमयी धारा के साथ (**एना**) इन (**वसूनि**) सत्य, अहिंसा आदि ऐश्वर्यों को (**पवस्व**) क्षरित करो। (**मांश्चत्वे**) स्तुतिशब्दयुक्त (**सरसि**) मेरे हृदय-सरोवर में (**प्र धन्व**) भलीभाँति आओ, (**यस्य**) जिन आपका (**ब्रध्नः चित्**) महान् (**वातः**) वायु (**न**) जैसे (**जूतिम्**) वेग को (**धात्**) धारण करता है, वैसे ही (**पुरुमेधाः चित्**) बुद्धिमान् स्तोता (**तकवे**) कर्मयोग के लिए (**नरम्**) नेतृत्व के गुण को (**धात्**) धारण करता है॥९॥

इस मन्त्र में 'वातो न जूतिम्' आदि में उपमालंकार है। 'पवा, पव' में छेकानुप्रास है॥९॥

**भावार्थ** :–जैसे परमेश्वर से रचित महान् वायु तीव्र वेग को धारण करता है, वैसे ही परमेश्वर का स्तोता महान् नेतृत्व-गुण को धारण करता है॥९॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा का महान् कर्म वर्णित है।

**५४२. महत् तत् सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्। अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**महिषः**) महान् (**सोमः**) सोम ओषधि के समान रस का भण्डार, चन्द्रमा के समान आह्लादक तथा प्रेरक परमेश्वर (**तत्**) उस प्रसिद्ध (**महत्**) महान् कर्म को (**चकार**) करता है (**यत्**) कि (**अपां गर्भः**) सबके प्राणों में गर्भ के समान अन्तर्यामी वह (**देवान्**) मन सहित सब आँख, कान आदि इन्द्रियों को (**अवृणीत**) रक्ष्य रूप में वरण करता है। (**पवमानः**) पवित्र करने वाला वह (**इन्द्रे**) जीवात्मा तथा विद्युत् में (**ओजः**) पवित्रता को वा बल को (**अदधात्**) स्थापित करता है। (**इन्दुः**) प्रकाशमय वह (**सूर्ये**) सूर्य में (**ज्योतिः**) ज्योति को (**अदधात्**) स्थापित करता है, अथवा (**सूर्ये**) शरीरस्थ आँख में (**ज्योतिः**) दर्शनशक्ति को (**अदधत्**) स्थापित करता है॥१०॥

इस मन्त्र में 'इन्दु' का प्रसिद्ध अर्थ चन्द्रमा लेने पर 'चन्द्रमा सूर्य में ज्योति उत्पन्न करता है' यह विरोध आभासित होता है, क्योंकि सूर्य चन्द्रमा को ज्योति देता है, न कि चन्द्रमा सूर्य को। 'इन्दु' का यौगिक अर्थ ग्रहण करने पर उस विरोध का समाधान हो जाता है। 'अपि' शब्द न होने से यहाँ विरोधाभास अलंकार व्यंग्य है॥१०॥

**भावार्थ** :–शरीर के अन्दर मन, चक्षु, श्रोत्र आदि में और बाह्य जगत् में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, बादल आदि में जो शक्ति या ज्योति है, वह सब परमात्मा की ही दी हुई है॥१०॥

अगले मन्त्र में प्राण को प्रेरित करने और जीवात्मा को शुद्ध करने का विषय है।

**५४३. असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा। दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ॥११॥**

**पदार्थ** :–(**यथा**) जिस प्रकार (**रथ्ये**) रथों से युद्ध करने योग्य (**आजौ**) संग्राम में (**वक्वा**) शब्द करने वाला घोड़ा (**असर्जि**) प्रेरित किया जाता है, वैसे ही (**मनोता**) जिसमें ज्ञान ओत-प्रोत है ऐसी (**प्रथमा**) श्रेष्ठ (**मनीषा**) मन को गति देने वाली (**धिया**) बुद्धि से (**वक्वा**) शब्दकारी प्राण (**असर्जि**) प्रेरित किया जाता है। जैसे (**दश**) दस (**स्वसारः**) अंगुलियाँ (**सदनेषु अच्छ**) यज्ञ-सदनों में (**अव्ये**) भेड़ के बालों से निर्मित (**सानौ अधि**) ऊपर उठाये हुए दशापवित्र में (**वह्निम्**) यज्ञ के वाहक सोमरस को (**मृजन्ति**) छानकर शुद्ध करती हैं, वैसे ही (**दश**) दस (**स्वसारः**) बहिनों के समान परस्पर सम्बद्ध प्राणशक्तियाँ (**सदनेषु अच्छ**) शरीर रूप सदनों में (**अव्ये**) नाशरहित (**सानौ अधि**) सर्वोन्नत परमात्मा के सान्निध्य में (**वह्निम्**) शरीर के वाहक जीवात्मा को (**मृजन्ति**) शुद्ध करती हैं॥११॥

इस मन्त्र में पूर्वार्द्ध में वाच्य उपमालंकार है। उत्तरार्द्ध में श्लेषमूलक व्यङ्ग्योपमा है। 'मनो, मनी' में छेकानुप्रास है। 'मनोता, प्रथमा, मनीषा' में मकार का और 'रथ्ये यथाजौ

धिया' में यकार का अनुप्रास है॥११॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के आश्रय को प्राप्त करके जीवात्मा वैसे ही शुद्ध हो जाता है, जैसे दशा–पवित्र रूप छन्नी को प्राप्त कर सोमरस शुद्ध होता है॥११॥

अगले मन्त्र में स्तोता की बुद्धियाँ सोम परमात्मा के प्रति कैसे जाती हैं, इसका वर्णन है।

**५४४. अपामिवेदूर्मयस्तर्त्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ। नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम्॥१२॥**

**पदार्थ** :–(**अपाम्**) जलों की (**ऊर्मयः इव**) लहरों के समान (**इत्**) निश्चय ही (**तर्त्तुराणाः**) अतिशय शीघ्रता करती हुई (**मनीषाः**) मेरी बुद्धियाँ (**सोमम् अच्छ**) रस के भण्डार परमात्मा के प्रति (**प्र ईरते**) प्रकृष्ट रूप से जा रही हैं। (**नमस्यन्तीः**) परमात्मा को नमस्कार करती हुई (**उपयन्ति च**) परस्पर समीप आती हैं, (**सं यन्ति च**) परस्पर मिलती हैं, और (**उशतीः**) परमात्मा से प्रीति रखती हुई वे (**उशन्तम्**) प्रीति करने वाले परमात्मा में (**आ विशन्ति च**) प्रविष्ट हो जाती हैं॥१२॥

इस मन्त्र में 'अपामिवेदूर्मयः' इत्यादि में पूर्णोपमालंकार है।

**भावार्थ** :–जैसे नदियों की लहरें कहीं नीची होती हैं, कहीं परस्पर पास जाती हैं, कहीं परस्पर मिलती हैं और लम्बा मार्ग तय करके अन्ततः समुद्र में प्रविष्ट हो जाती हैं, वैसे ही स्तोता की बुद्धियाँ भी परस्पर सान्निध्य करती हुई, परस्पर मिलती हुई परमात्मा की ओर चलती चली जाती हैं और परमात्मा में प्रविष्ट हो जाती हैं॥१२॥

इस दशति में परमात्मा–रूप सोम का सेनापति–रूप में, आनन्दधाराओं को प्रवाहित करने वाले के रूप में, पापादि के नष्टकर्ता के रूप में और ज्योति को उत्पन्न करने वाले के रूप में वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

**इति षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

## अष्टमी दशतिः

**ऋषिः—१ अन्धीगुः श्यावाश्विः; २ नहुषो मानवः; ३ ययातिर्नाहुषः; ४ मनुः सांवरणः; ५, ८ ऋजिष्वाम्बरीषौ; ६, ७ रेभसूनू काश्यपौ; ९ प्रजापतिर्वाच्यो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—१-६, ८, ९ अनुष्टुप्; ७ बृहती॥ स्वरः—१-६, ८, ९ गान्धारः; ७ मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में यह कथन है कि परमानन्द पाने के लिए क्या करना चाहिए।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**५४५. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।**
२ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र
**अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सखायः**) साथियो! (**वः**) तुम (**अन्धसः**) ध्यान करने योग्य परमात्मा रूप सोम के (**मादयित्नवे**) हर्षित करने वाले (**सुताय**) आनन्द-रस को (**पुरोजिती**) आगे बढ़ कर प्राप्त करने के लिए (**दीर्घजिह्व्यम्**) लम्बी जीभ वाले अर्थात् निरन्तर बढ़ते रहने वाले (**श्वानम्**) श्वान के स्वभाव को अर्थात् सांसारिक विषय-भोगों के प्रति लोभ को (**श्नथिष्टन**) नष्ट कर दो। अभिप्राय यह है कि सांसारिक विषयों से मन को हटा कर परमात्मा में केन्द्रित करो॥१॥

इस मन्त्र में लोभवृत्ति को कुत्तेवाची 'श्वन्' शब्द से कथित करने के कारण असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—लम्बी जीभ से विषयभोगों के रस को चाटने वाले लोभ रूप श्वान को विनष्ट करके ही मनुष्य परमात्मयोग-जन्य तीव्र आनन्द को पा सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा की महिमा वर्णित की गयी है।

३ २ ३ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
**५४६. अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।**
२ ३ १ २ ३ १ २क २र ३ १ २ ३ २
**पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे॥२॥**

**पदार्थ** :–( **पूषा** ) पुष्टिकर्ता, ( **रयिः** ) ऐश्वर्यवान् और ऐश्वर्यप्रदाता, ( **भग** ) भजनीय ( **अयं सोमः** ) यह रसागार प्रेरक परमेश्वर ( **पुनानः** ) रची हुई सब वस्तुओं को पवित्र करता हुआ ( **अर्षति** ) सक्रिय हो रहा है। ( **विश्वस्य** ) सकल ( **भूमनः** ) ब्रह्माण्ड का ( **पतिः** ) स्वामी वा रक्षक यह परमेश्वर ( **उभे** ) दोनों ( **रोदसी** ) भूगोल व खगोल को ( **व्यख्यत्** ) तेज से प्रकाशित करता है। इस वर्णन से परमेश्वर का जगत् का शिल्पी होना व्यंजित हो रहा है।।२।।

**भावार्थ** :–सब जगत् का रचयिता, धारक, प्रकाशक, ऐश्वर्यशाली तथा ऐश्वर्य का दाता जगदीश्वर सबके द्वारा भजन करने योग्य है।।२।।

अगले मन्त्र में परमानन्दरूप सोमरस का विषय है।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**५४७. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।**
३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः॥३॥**

**पदार्थ** :–( **मधुमत्तमाः** ) सबसे अधिक मधुर, ( **मन्दिनः** ) हर्षजनक ( **सोमाः** ) परमानन्द-रस ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा के लिए ( **सुतासः** ) अभिषुत किये हुए, ( **पवित्रवन्तः** ) मन रूप दशापवित्र से युक्त होकर ( **अक्षरन्** ) आत्मा रूप कलश में क्षरित होते हैं। वे ( **मदाः** ) परमानन्दरस ( **वः** ) आप ( **देवान्** ) सब विद्वान् जनों को ( **गच्छन्तु** ) प्राप्त होवें।।३।।

**भावार्थ** :–ध्यान द्वारा परमात्मा के पास से प्रादुर्भूत अत्यन्त मधुर परमानन्दरस मन के माध्यम से जीवात्मा को प्राप्त होते हैं।।३।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कैसे परमानन्दरस हमें पवित्र करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**५४८. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।**
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
**मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥४॥**

**पदार्थ** :–( **इन्दवः** ) प्रकाशमय अथवा रस से आर्द्र करने वाले ( **सोमाः** ) परमानन्दरस ( **पवन्ते** ) हमें पवित्र करते हैं, जो

(अस्मभ्यम्) हमारे लिए (गातुवित्तमाः) अतिशय सन्मार्ग को प्राप्त कराने वाले, (मित्राः) मित्रभूत, (स्वानाः) सद्गुणों की ओर प्रेरित करने वाले, (अरेपसः) निष्पाप, निष्कलंक, निर्दोष, (स्वाध्यः) उत्कृष्ट ध्यान में सहायक और (स्वर्विदः) मोक्ष प्राप्त कराने वाले हैं।।४।।

इस मन्त्र में अनेक साभिप्राय विशेषणों का योग होने से परिकरालंकार है।।४।।

**भावार्थ** :—जो ब्रह्मानन्दरस जीवन में सन्मार्ग दिखाने वाले, मित्र के सदृश परम उपकारक, शुभगुण-प्रेरक, ध्यान में सहायक और मोक्षप्रापक होते हैं, वे पवित्रता देने वाले क्यों न होंगे।।४।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से धन की प्रार्थना है।

**५४९. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम्।**
**इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम्॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) आनन्दरस से आर्द्र करने वाले परमात्मन्! आप (**वाजसातमम्**) अतिशय बल के प्रदाता, (**शतस्पृहम्**) बहुतों से स्पृहणीय, (**सहस्रभर्णसम्**) सहस्र गुणों को धारण कराने वाले अथवा **सहस्रों** जनों का **पोषण** करने वाले, (**तुविद्युम्नम्**) बहुत यश को देने वाले, (**विभासहम्**) शत्रु के प्रताप को अभिभूत करने वाले (**रयिम्**) आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्य को (**नः**) हमें (**अभि अर्ष**) प्राप्त कराइए।।५।।

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और अपने पुरुषार्थ से सब लोग सत्य, अहिंसा, अणिमा, महिमा, लघिमा आदि आध्यात्मिक तथा सोना, चाँदी, मणि, मोती आदि भौतिक धन प्राप्त कर सकते हैं, जिससे वे आत्मिक और शारीरिक बल, सहस्रों गुण, सहस्रों के पोषण का सामर्थ्य और कीर्ति प्राप्त करने में तथ शत्रु के तेज को परास्त करने में समर्थ हो जाते हैं।।५।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि मनोवृत्तियाँ परमात्मा का

कैसे स्वाद लेती हैं।

**५५०. अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।**
**वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः॥६॥**

**पदार्थ** :-(**अद्रुहः**) द्रोह न करने वाली, प्रत्युत स्नेह करने वाली, (**मातरः**) माताओं के समान पालन करने वाली मनोवृत्तियाँ (**प्रियम्**) प्रिय, (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा के (**काम्यम्**) चाहने योग्य परमात्मा की (**अभि**) ओर (**नवन्ते**) जाती हैं, और (**जातम्**) हृदय में प्रकट हुए उसे (**रिहन्ति**) चाटती हैं अर्थात् उससे सम्पर्क करती हैं, (**जातम्**) उत्पन्न हुए (**वत्सम्**) अपने बछड़े को (**न**) जैसे (**पूर्वे आयुनि**) प्रथम आयु में (**मातरः**) गो-माताएँ (**रिहन्ति**) चाटती हैं॥६॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है। चाटना जिह्वा से होता है, वह मनोवृत्तियों के पक्ष में घटित नहीं होता। इसलिए यहाँ लक्षणा से संसर्ग अर्थ का बोध होता है, सामीप्य का अतिशय व्यङ्ग्य है। गाय के पक्ष में जिह्वा से चाटना सम्भव होने से लक्षणा नहीं है॥६॥

**भावार्थ** :-जैसे नवजात बछड़े को गौएँ प्रेम से चाटती हैं, वैसे ही हृदय में प्रादुर्भूत परमेश्वर का उसके प्रेम में भरकर मनोवृत्तियाँ रसास्वादन करती हैं॥६॥

अगले मन्त्र में वर्णन है कि सोम परमेश्वर को पाने के लिए उपासक जन क्या करते हैं।

**५५१. आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम्। शुक्रा**
**वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः॥७॥**

**पदार्थ** :-(**हर्यताय**) चाहने योग्य, (**धृष्णवे**) कामादि शत्रुओं का धर्षण करने वाले सोम परमात्मा को पाने के लिए, योगसाधक लोग (**पौंस्यम्**) पुरुषार्थ-रूप (**धनुः**) धनुष को (**आ तन्वन्ति**) तानते हैं अर्थात् पुरुषार्थरूप धनुष पर ध्यानरूप डोरी को चढ़ाते हैं। (**शुक्राः**) पवित्र अन्तःकरण वाले वे (**महीयुवः**) पूजा के इच्छुक साधक लोग (**असुराय**) प्राणप्रदायक जीवात्मा

को ( **निर्णिजे** ) शुद्ध करने के लिए ( **विपाम्** ) मेधावी विद्वानों के ( **अग्रे** ) सम्मुख ( **वि यन्ति** ) विशेष शिष्यभाव से पहुँचते हैं।।७।।

इस मन्त्र में गौस्य में धनुष का आरोप होने से रूपकालंकार है। योगसाधना में धनुष का रूपक मुण्डकोपनिषद् में इस प्रकार बाँधा गया है—"उपनिषदों में वर्णित ब्रह्मविद्यारूप धनुष को पकड़कर, उस पर उपासनारूप बाण चढ़ाये। तन्मय चित्त से धनुष को खींचकर अक्षर ब्रह्म रूप लक्ष्य को बींधे। प्रणव धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म उसका लक्ष्य है। अप्रमत्त होकर ब्रह्म को बींधना चाहिए, उपासक उस समय बाण की भाँति तन्मय हो जाये"।।७।। (मु०२।२।३, ४)

**भावार्थ** :—योगसाधक लोग अपने पुरुषार्थ से, ध्यान से और गुरु की कृपा से अपने आत्मा को शुद्ध कर परमात्मा को पाने योग्य हो जाते हैं।।७।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा के शोधन का विषय वर्णित है।

**५५२. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।**
**यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति॥८॥**

**पदार्थ** :—योगसाधना करने वाले लोग ( **त्यम्** ) उस ( **हर्यतम्** ) चाहने योग्य, ( **बभ्रुम्** ) शरीर के भरण-पोषणकर्ता ( **हरिम्** ) अपने आत्मा को ( **वारेण** ) दोष-निवारक यम, नियम आदि तथा ईश्वरप्रणिधान के द्वारा ( **पुनन्ति** ) शुद्ध करते हैं, ( **यः** ) जो आत्मा योगसिद्ध होने पर ( **मदेन सह** ) आनन्द के साथ ( **विश्वान् इत्** ) सभी ( **देवान्** ) प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रिय आदियों को ( **परिगच्छति** ) व्याप्त कर लेता है।।

सोम ओषधि का रस भी हरि कहलाता है। श्लेष से उसके पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए। उस पक्ष में 'बभ्रु' का अर्थ होता है भूरे रंग का और 'वार' का अर्थ भेड़ के बालों से निर्मित दशापवित्र, जिससे सोमरस को छानकर शुद्ध करते हैं। वह सोमरस आनन्द देता हुआ सब पानकर्ताओं

को प्राप्त होता है॥८॥

**भावार्थ** :—असत्य, हिंसा, छल, कपट, संशय, प्रमाद, आलस्य, भ्रान्ति आदि दोषों से दूषित अपने आत्मा को योग के उपायों से शुद्ध करके ही मनष्य ऐहिक और पारमार्थिक उत्कर्ष पाने योग्य होता है॥८॥

अगले मन्त्र में कहा गया है कि कैसे मनुष्य को समाज से वहिष्कृत करना चाहिए।

**५५३. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः।**
**अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः॥९॥**

**पदार्थ** :—(**अन्धसः**) सोमरस के (**सुन्वानाय**) अभिषुत करने वाले अर्थात् सोमयाग, समाजसेवा और प्रभुभक्ति करने वाले जन के लिए, जो (**मर्तः**) मनुष्य (**तत्**) उस प्रशंसात्मक (**वचः**) वचन को (**न प्र वष्ट**) नहीं कहना चाहना, उस (**अराधसम्**) अयज्ञसेवी, असमाजसेवी और अप्रभुसेवी तथा (**श्वानम्**) श्वान के समान लोभी, अपना ही पेट भरने वाले मनुष्य को (**अपहत**) दूर कर दो, (**न**) जैसे (**भृगवः**) तपस्वी लोग (**मखम्**) चंचलता को दूर करते हैं, अथवा (**न**) जैसे (**भृगवः**) तेजस्वी राजपुरुष (**मखम्**) मखासुर को अर्थात् यज्ञ का ढोंग रचने वाले को दण्डित करते हैं॥९॥

'श्वानम्' साध्यवसानालक्षणामूलक अतिशयोक्ति अलंकार है। निरुक्त की पद्धति से 'श्वानम्' में लुप्तोपमा, अर्थोपमा या व्यंग्योपमा है, जैसा कि निरुक्त (३।१८) में लुप्तोपमा के प्रसंग में कहा है कि श्वा और काक निन्दा अर्थ में लुप्तोपमा के रूप में आते हैं। 'मखं न भृगवः' में उपमालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :—परमेश्वरद्रोही, यज्ञद्रोही, समाजद्रोही, और श्वान के समान विषयलोभी जन को समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिए॥९॥

इस दशति में परमात्मारूप सोम तथा परमात्मजन्य ब्रह्मानन्दरस की प्राप्ति का उपाय वर्णित होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

# नवमी दशतिः

ऋषिः—१-३, ५ कविर्भार्गवः; ४, ६ ऋषिगणः; ७ रेणुर्वैश्वामित्रः; ८ वेनो भार्गवः; ९ वसुर्भारद्वाजः; १० वत्सप्रीः; ११ अत्रिर्भौमः; १२ पवित्र आङ्गिरसः। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥

प्रथम मन्त्र में सोम परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**५५४. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते। आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद् विचक्षणः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**चनोहितः**) आस्वाद में हितकर, (**यह्वः**) महान् परमात्मारूप सोम (**प्रियाणि**) प्रिय, (**नामानि**) नमनशील हृदयों की (**अभि**) ओर (**पवते**) प्रवाहित होता है, (**येषु अधि**) जिन हृदयों में, यह (**वर्द्धते**) बढ़ता है। (**विचक्षणः**) विशेष द्रष्टा, (**बृहन्**) बड़ी शक्ति वाला यही परमात्मा (**बृहतः**) विशाल (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**विष्वञ्चम्**) विविध उत्कृष्ट गति वाले (**रथम् अधि**) रथ के ऊपर (**आ अरुहत्**) आरूढ़ है, अर्थात् आदित्यमण्डल की कार्य-विधि का संचालन भी वही कर रहा है, जैसा कि वेद में परमात्मा स्वयं कहता है—'जो आदित्य में पुरुष है, वह मैं ही हूँ'॥१॥ (य० ४०।१७)

**भावार्थ** :—सूर्य-चन्द्र आदि सकल सृष्टि का सञ्चालक परमेश्वर ध्यान करने पर उपासकों के हृदय में प्रकट हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्दरस आदि की याचना है।

**५५५. अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वानासो बृहद् देवेषु हरयः। वि चिदश्नाना इषयो अरातयोऽर्यो नः सन्तु सनिषन्तु नो धियः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अचोदसः**) अन्य किसी से अप्रेरित अर्थात्

स्वभाव से निकले हुए, (**स्वानासः**) शब्दकारी अर्थात् दिव्य सन्देश सुनाने वाले, (**हरयः**) पापहारी (**इन्दवः**) ब्रह्मानन्दरस (**नः**) हमारे (**देवेषु**) राष्ट्र के विद्वानों में और शरीर के मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि में (**बृहत्**) बहुत अधिक (**प्र धन्वन्तु**) भलीभाँति प्राप्त हों। (**इषयः**) केवल भोग की इच्छा करने वाले, (**अश्नानाः**) स्वयं खाते रहने वाले (**अरातयः**) अदानशील (**नः अर्यः**) हमारे आत्मिक और बाह्य शत्रु (**वि चित् सन्तु**) हमसे दूर ही हो जाएँ, और (**धियः**) सद्विचार (**नः**) हमें (**सनिषन्तु**) प्राप्त हों॥२॥

इस मन्त्र में नकार आदि की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है। 'नः सन्तु, निषन्तु' में छेकानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—हमें चाहिए कि दुर्विचार रूप, कामक्रोधादि रूप और चोर-ठग आदि रूप शत्रुओं को दूर करें, सद्विचारों को पल्लवित करें और ब्रह्मानन्दरसों को अपने आत्मा में प्रवाहित करें॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा रूप सोम की प्राप्ति का फल वर्णित किया गया है।

३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३
**५५६. एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो**
१ २ ३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १
**वपुष्टमः। अभ्यृ३तस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा**
२ ३ १ २ ३ १ २
**अर्षन्ति पयसा च धेनवः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**एषः**) यह (**मधुमान्**) मधुर परमात्मारूप सोम (**कोशे**) हमारे मनोमय कोश में (**प्र अचिक्रदत्**) दिव्य शब्द करा रहा है, जिससे (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा का (**वज्रः**) काम, क्रोध आदि रिपुओं के वर्जन का सामर्थ्य (**वपुषः वपुष्टमः**) दीप्त से दीप्ततम अथवा विशाल से विशालतम हो गया है। (**वाश्राः**) शब्दायमान (**धेनवः**) वेदवाणी रूप गौएँ (**ऋतस्य**) सत्य की (**सुदुघाः**) उत्तम दोहन करने वाली और (**घृतश्चुतः**) तेजरूप घी को क्षरित करने वाली होती हुई (**पयसा**) वेदार्थरूप दूध के साथ (**अभि अर्षन्ति**) हमें प्राप्त हो रही हैं॥३॥

इस मन्त्र में वेदवाणियों में धेनुओं का और वेदार्थ में दूध

का आरोप होने से तथा उपमान द्वारा उपमेय का निगरण हो जाने से अतिशयोक्ति अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जब वेदवाणी-रूपिणी गौएँ अपना पवित्र और पवित्रताकारी वेदार्थरूप दूध पिलाती हैं, तब उस दूध से मनुष्य का आत्मा सत्यमय, तेजोमय, अतिशय बलवान्, पवित्र और परिपुष्ट हो जाता है॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा का मैत्रीविषय वर्णित है।

**५५७. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न प्र मिनाति सङ्गिरम्। मर्यइव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना पथा॥४॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रः**) तेज से दीप्त, श्रद्धारस से परिपूर्ण जीवात्मा (**इन्द्रस्य**) परमात्मा के (**निष्कृतम्**) शरणरूप घर को (**प्र उ अयासीत्**) प्रयाण करता है। (**सखा**) मित्र परमेश्वर (**सख्युः**) अपने मित्र जीवात्मा की (**संगिरम्**) स्तुति और प्रार्थना को (**न प्रमिनाति**) विफल नहीं करता, प्रत्युत पूर्ण ही करता है। (**मर्यः**) मनुष्य (**इव**) जैसे (**शतयामना पथा**) बहुत पद्धतियों वाले व्यवहारमार्ग द्वारा (**युवतिभिः**) पत्नी, पुत्री, बहिन आदि युवतियों से (**समर्षति**) मिलता है, वैसे ही (**सोमः**) जीवात्मा (**शतयामना पथा**) अनेक साधनों वाले योगमार्ग द्वारा (**कलशे**) षोडशकल परमात्मा रूप द्रोणकलश में (**युवतिभिः**) तरुण शक्तियों से (**समर्षति**) मिलता है॥४॥

इस मन्त्र में श्लेष से सोमरस-परक अर्थ की भी योजना करनी चाहिए। सोमरस और जीवात्मा में उपमानोपमेयभाव व्यंजित होता है। सोमरस जैसे दशापवित्र के बहुच्छिद्र मार्ग से द्रोणकलश में पहुँचकर 'आपः' रूप युवतियों से मिलता है, वैसे ही जीवात्मा बहुत साधनों वाले योगमार्ग से परमात्मा को प्राप्त कर शक्तियों से संगत होता है॥ 'मर्य इव युवतिभिः' इत्यादि में श्लिष्टोपमालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के साथ मित्रता स्थापित करके मनुष्य का आत्मा कृतकृत्य हो जाता है॥४॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा के कर्मों का वर्णन है।

**५५८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा॥५॥**

**पदार्थ** :–(**दिवः**) द्युलोक अथवा सूर्य का (**धर्ता**) धारण करने वाला, (**कृत्व्यः**) कर्मकुशल, (**रसः**) आनन्दरसमय, (**देवानाम्**) विद्वानों का (**दक्षः**) बलप्रदाता, (**नृभिः**) पुरुषार्थी मनुष्यों से (**अनुमाद्यः**) प्रसन्न किये जाने योग्य परमात्मा (**पवते**) सब जड़-चेतन जगत् को पवित्र करता है। आगे प्रत्यक्षकृत वर्णन है–(**हरिः**) आकर्षण के बल से सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों के नियामक, (**सृजानः**) जगत् की रचना करने वाले आप (**वृथा**) अनायास ही (**सत्वभिः**) अपने बलों से (**नदीषु**) नदियों में (**पाजांसि**) बलों और वेगों को (**आ कृणुषे**) स्थापित करते हो, (**अत्यः न**) जैसे घोड़ा रथ आदि में वेगों को स्थापित करता है॥५॥

इस मन्त्र में लक्षणावृत्ति से रस का अर्थ रसवान् और दक्ष का अर्थ दक्षकारी है। 'अत्यो न' में उपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :–जो परमेश्वर सारे संसार को रचने वाला, धारण करने वाला और बल, वेग आदि देने वाला है, उसकी सब मनुष्य आराधना क्यों न करें?॥५॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**५५९. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्र-ददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः॥६॥**

**पदार्थ** :–(**विचक्षणः**) विशेष द्रष्टा और दृष्टिप्रदाता (**सोमः**) परमात्मा (**मतीनाम्**) प्रज्ञाओं का (**वृषा**) वर्षक होता हुआ (**पवते**) उपासकों को प्राप्त होता है। वही (**अह्नाम्**) दिनों का, (**उषसाम्**) उषाओं का, और (**दिवः**) सूर्य का (**प्रतरीता**)

संतारक और संचालक होता है। (**प्राणा**) सबका प्राणभूत वह (**सिन्धूनाम्**) नदियों के (**कलशान्**) कल-कल निनाद करने वाले प्रवाहों को (**अचिक्रदत्**) शब्दयुक्त करता है। वही (**मनीषिभिः**) मन को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाले स्तोत्रों से (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा के (**हार्दि**) हृत्प्रदेश में (**आ विशन्**) प्रविष्ट होता है॥६॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि सर्वद्रष्टा, सबको विवेक प्रदान करने वाले, उषा-सूर्य-दिन आदि के व्यवस्थापक, नदियों को कल-कल निनाद कराने वाले परमात्मा को हृदय में धारण करें॥६॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि स्तोता क्या फल प्राप्त करता है।

**५६०. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि। चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत॥७॥**

**पदार्थ** :—(**परमे**) उत्कृष्ट (**व्योमनि**) हृदयाकाश में (**अस्मै**) इस स्तोता के लिए (**त्रि सप्त**) इक्कीस छन्दों वाली (**धेनवः**) वेदवाणी रूप गौएँ (**सत्याम् आशिरम्**) सत्य रूप दूध को (**दुदुह्रिरे**) देती हैं। (**यत्**) जब यह स्तोता (**ऋतैः**) सत्य ज्ञानों और सत्य कर्मों से (**अवर्द्धत**) वृद्धि को प्राप्त करता है, तब (**निर्णिजे**) अपने आत्मा के शोधन वा पोषण के लिए (**चत्वारि**) चार (**अन्या**) अन्य (**चारूणि**) सुरम्य (**भुवनानि**) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप भुवनों का (**चक्रे**) उत्पन्न कर लेता है॥७॥

धेनु निघण्टु (१।११) में वाणीवाची नामों में पठित है। ताण्ड्य एवं गोपथ ब्राह्मण में भी कहा है कि 'वाणी ही धेनु है' (तां० ब्रा० १८।९।२१, गो० पू० २।२१)। अथवा वेदवाणी में धेनुत्व का आरोप होने से तथा उपमेय का उपमान द्वारा निगरण होने से अतिशयोक्ति अलंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—सात गायत्र्यादि छन्द, सात अतिजगत्यादि छन्द और सात कृत्यादि छन्द मिलकर इक्कीस छन्द वेद में होते हैं। उन छन्दों वाली इक्कीस प्रकार की वेदवाणियाँ मानो

साक्षात् गौएँ हैं, जो अपने सेवक को सत्यज्ञानरूप और सत्कर्त्तव्यबोध रूप दूध देती हैं, जिससे परिपुष्ट हुआ वह धर्मार्थकाम-मोक्षरूप भुवनों में निवास करता हुआ जीवन की सफलता को प्राप्त कर लेता है।।७।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस के प्रवाह की प्रार्थना है।

**५६१. इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह। मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) परब्रह्म परमात्मन्! (**सुषुतः**) ध्यान द्वारा भलीभाँति निचोड़े हुए तुम (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए (**परिस्रव**) परिस्रुत होओ, आनन्दरस को प्रवाहित करो। तुम्हारी सहायता से (**रक्षसा सह**) कामक्रोधादि रूप राक्षस के सहित (**अमीवा**) मन का सन्ताप रूप रोग (**अप भवतु**) हमसे दूर हो जाए। (**द्वयाविनः**) मन में कुछ तथा वाणी में कुछ, इस प्रकार दोहरे आचरणवाले कपटी, धूर्त, ठग लोग (**ते**) तुम्हारे (**रसस्य**) आनन्दरस का (**मा मत्सत**) स्वाद न ले सकें। (**इह**) हम सरल स्वभाव वालों के अन्दर (**इन्दवः**) आर्द्र करने वाले ब्रह्मानन्दरस (**द्रविणस्वन्तः**) समृद्ध और सबल (**सन्तु**) होवें।।८।।

इस मन्त्र में सकार की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास अलंकार है।।८।।

**भावार्थ** :—सरलवृत्ति वाले मनुष्य ही ब्रह्मानन्दरस के अधिकारी होते हैं, कुटिल वृत्ति वाले और दूसरों को ठगने वाले लोग नहीं।।८।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्राप्त आनन्दरस के प्रवाह का वर्णन है।

**५६२. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत्। पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत्॥९॥**

**पदार्थ** :-( **अरुषः** ) तेजस्वी, ( **वृषा** ) सुख आदि की वर्षा करने वाले, ( **हरिः** ) पाप आदि को हरने वाले ( **सोमः** ) आनन्दरस के भण्डार परमात्मा को ( **असावि** ) मैंने अपने हृदय में अभिपुत किया है, अर्थात् उससे आनन्दरस को पाया है। ( **दस्मः** ) दर्शनीय अथवा दुर्गुणों का संहारक वह परमात्मा ( **राजा इव** ) जैसे राजा ( **गाः अभि** ) भूमियों अर्थात् भूमिवासियों को लक्ष्य करके ( **अचिक्रदत्** ) उपदेश करता है, राजनियमों को घोपित करता है, वैसे ही ( **गाः अभि** ) स्तोताओं को लक्ष्य करके ( **अचिक्रदत्** ) उपदेश कर रहा है। हे भगवन्! ( **पुनानः** ) पवित्रता देते हुए आप ( **वारम्** ) निवारक या बाधक काम-क्रोधादि को ( **अति** ) अतिक्रमण करके ( **अव्ययम्** ) विनाशरहित जीवात्मा को ( **एषि** ) प्राप्त होते हो। ( **श्येनः न** ) जैसे वायु ( **घृतवन्तम्** ) जलयुक्त ( **योनिम्** ) अन्तरिक्ष में ( **आसदत्** ) आकर स्थित हुआ है, वैसे ही वह परमात्मा ( **घृतवन्तम्** ) घी, जल, दीप्ति आदि से युक्त ( **योनिम्** ) ब्रह्माण्ड रूप घर में ( **आसदत्** ) स्थित है।।९।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है।।९।।

**भावार्थ** :-पहले से ही सबके हृदय में बैठे हुए भी गुप्त रूप में स्थित परमेश्वर का श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि से साक्षात्कार करना चाहिए।।९।।

अगले मन्त्र में विद्वानों का विपय है।

**५६३. प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव**
**आ न धेनवः। बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः**
**परिस्रुतमुस्त्रिया निर्णिजं धिरे॥१०॥**

**पदार्थ** :-( **मधुमन्तः** ) मधुर व्यवहार वाले ( **इन्दवः** ) श्रद्धा-रस से भरपूर विद्वान् जन ( **देवम् अच्छ** ) दिव्यगुणों से युक्त परमात्मा को लक्ष्य करके ( **प्र असिष्यदन्त** ) श्रद्धारस को प्रवाहित करते हैं, ( **न** ) जैसे ( **धेनवः** ) तृप्ति प्रदान करने वाली ( **गावः** ) गौएँ ( **असिष्यदन्त** ) बछड़ों के प्रति अपने दूध को प्रवाहित करती हैं। ( **बर्हिषदः** ) यज्ञिय कुशासन पर

स्थित, (**वचनावन्तः**) स्तुति के उद्‌गार प्रकट करने वाले वे विद्वान् लोग (**निर्णिजम्**) शुद्ध (**परिस्रुतम्**) उत्पन्न श्रद्धारस को (**ऊधभिः**) हृदयरूप ऊधसों में (**धिरे**) धारण करते हैं, जैसे (**बर्हिषदः**) यज्ञ में स्थित (**वचनावत्यः**) हम्भा शब्द करने वाली (**उस्त्रियाः**) गौएँ (**निर्णिजम्**) शुद्ध दूध को (**ऊधभिः**) ऊधसों में (**धिरे**) धारण करती हैं॥१०॥

इस मन्त्र में 'गाव आ न धेनवः' में उपमा और पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। उत्तरार्द्ध में 'उस्रियाः' में लुप्तोपमा है॥१०॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के प्रति सब मनुष्यों को उसी प्रकार भक्तिरस क्षरित करना चाहिए, जैसे गौएँ बछड़ों के प्रति दूध क्षरित करती हैं॥१०॥

अगले मन्त्र में विद्वानों का कर्म वर्णित है।

**५६४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वा भ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते॥११॥**

**पदार्थ** :—उपासक लोग (**क्रतुम्**) कर्मवान् और प्रज्ञावान् परमात्मारूप सोम को (**अञ्जते**) अपने अन्दर व्यक्त करते हैं, (**व्यञ्जते**) विविध रूपों में व्यक्त करते हैं, (**समञ्जते**) उसके साथ संगम करते हैं, (**रिहन्ति**) उसका आस्वादन करते हैं, अर्थात् उससे प्राप्त आनन्दरस का पान करते हैं, (**मध्वा**) मधुर श्रद्धारस से (**अभ्यञ्जते**) उसे मानो लिप्त कर देते हैं। (**सिन्धोः**) आनन्दसागर के (**उच्छ्वासे**) तरंग-समूह में (**पतयन्तम्**) मानो झूला झूलते हुए, (**उक्षणम्**) अपने सखाओं को भी आनन्द की लहरों से सींचते हुए (**पशुम्**) सर्वद्रष्टा तथा सबको दृष्टि प्रदान करने वाले परमेश्वर को (**हिरण्यपावाः**) ज्योति, सत्य और आनन्दामृत से स्वयं को पवित्र करने वाले वे विद्वान् जन (**अप्सु**) अपने प्राणों में (**गृभ्णते**) ग्रहण कर लेते हैं॥११॥

इस मन्त्र में 'ञ्जते' इस अर्थहीन शब्दांश की अनेक बार

आवृत्ति होने से यमकालंकार है। अञ्जते, व्यञ्जते, समञ्जते, रिहन्ति, अभ्यञ्जते, गृभ्णते इन अनेक क्रियाओं का एक कारक से योग होने के कारण दीपक अलंकार है। 'समुद्र के उच्छ्वास में उड़ते हुए बैल को जलों में गोता लगवाते हैं, और चिकना करते हैं' इस वाच्यार्थ के भी प्रतीत होने से प्रहेलिकालंकार भी है। 'अभ्यञ्जते (मानो लिप्त करते हैं), पतयन्तम् (मानो झूला झूलते हुए) में गम्योत्प्रेक्षा है। समुद्र अचेतन होने से उच्छ्वास नहीं छोड़ता अतः उच्छ्वास की तरंगसमूह में लक्षणा है, तरंगों का ऊर्ध्वगमन व्यङ्ग्य है।।११।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर के उपासक योगी जन उसे हृदय में अभिव्यक्त करके, भक्तिरस से मानो स्नान कराकर जब अपने प्राणों का अंग बना लेते हैं तभी उनकी उपासना सफल होती है।।११।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा की पावकता का वर्णन है।

**५६५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद् वहन्तः सं तदाशत॥१२॥**

**पदार्थ** :—हे (**ब्रह्मणः पते**) ब्रह्माण्ड के अथवा ज्ञान के अधिपति सोम परमात्मन्! (**ते**) आपका (**पवित्रम्**) पवित्रता-सम्पादन का गुण (**विततम्**) सर्वत्र व्याप्त है। (**प्रभुः**) पवित्रता करने में समर्थ आप (**विश्वतः**) सब ओर से (**गात्राणि**) शरीरों अर्थात् शरीरधारियों के पास (**पर्येषि**) उन्हें पवित्र करने के लिए पहुँचते हो। किन्तु (**अतप्ततनूः**) जिसने तपस्या से शरीर को तपाया नहीं है ऐसा (**आमः**) कच्चा मनुष्य (**तत्**) उस पवित्रता को (**न अश्नुते**) प्राप्त नहीं कर पाता। (**शृतासः इत्**) पके हुए लोग ही (**वहन्तः**) आपको हृदय में धारण करते हुए (**तत्**) आपसे होने वाली पवित्रता को (**सम् आशत**) भलीभाँति प्राप्त करते हैं।।१२।।

**भावार्थ** :—जो लोग तपस्वी हैं उन्हीं के हृदय और आचरण पवित्र होते हैं।।१२।।

इस दशति में भी सोम परमात्मा तथा उसके आनन्दरस की प्राप्ति का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## दशमी दशतिः

**ऋषिः—१, ७, ११ अग्निश्चाक्षुषः; २ चक्षुर्मानवः; ३, ४, ९, १० पर्वतनारदौ; ५ त्रित आप्त्यः; ६ मनुराप्सवः; ८, १२ द्वित आप्त्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्दरस का विषय है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
**५६६. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।**
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सुताः**) प्रवाहित किये गये (**इमे**) ये (**हरयः**) दुःखहारी ब्रह्मानन्दरस (**वृषणम्**) बलवान् (**इन्द्रम्**) जीवात्मा की (**अच्छ**) ओर (**यन्तु**) जाएँ। (**जातासः**) उत्पन्न हुए वे (**इन्दवः**) उपासक को भिगो देने वाले ब्रह्मानन्दरस (**श्रुष्टे**) शीघ्र ही (**स्वर्विदः**) दिव्य प्रकाश को प्राप्त कराने वाले हों॥१॥

**भावार्थ** :—वे जीवात्मा धन्य हैं जो परमात्मा की उपासना से ब्रह्मानन्दरस प्राप्त करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**५६७. प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेन्दो परि स्रव।**
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**द्युमन्तं शुष्ममा भर स्वर्विदम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रस के भण्डार परमात्मन्! (**जागृविः**) जागरूक आप (**प्र धन्व**) सक्रिय होवो। हे (**इन्दो**) भक्तों को आनन्दरस से भिगोने वाले! आप (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए (**परिस्रव**) परिस्रुत होओ। उसे (**द्युमन्तम्**) देदीप्यमान, (**स्वर्विदम्**) विवेकख्यातिरूप दिव्य प्रकाश को प्राप्त कराने वाला (**शुष्मम्**) बल (**आ भर**) प्रदान करो॥२॥

**भावार्थ** :—मनोयोग से उपासना किया गया परमेश्वर उपासकों को ज्योति-प्रदायक अध्यात्मबल प्रदान करता है॥२॥

उपासनायज्ञ में मित्रों को निमन्त्रित किया जा रहा है।

**५६८. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।**
**शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सखायः**) मित्रो! तुम (**आ निषीदत**) आकर उपासनायज्ञ में बैठो। (**पुनानाय**) हृदय को पवित्र करने वाले परमात्मारूप सोम के लिए (**प्र गायत**) भक्ति-भरे वेदमन्त्रों को गाओ। उस परमात्मारूप सोम को (**श्रिये**) शोभा के लिए (**यज्ञैः**) उपासनायज्ञों से (**शिशुं न**) शिशु के समान (**परिभूषत**) चारों ओर से अलंकृत करो अर्थात् जैसे शोभा के लिए शिशु को अलंकार-वस्त्र आदियों से अलंकृत करते हैं, वैसे ही शोभापूर्वक अपने आत्मा में प्रतिष्ठापित करने के लिए परमात्मा को उपासना-यज्ञों से अलंकृत करो॥३॥

इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। निषीदत, प्रगायत, परिभूषत इन अनेक क्रियाओं का एक कारक से योग होने के कारण दीपकालंकार भी है॥३॥

**भावार्थ** :—उपासना-योग द्वारा रसागार परमात्मा को साक्षात् करके सबको आनन्दरस का उपभोग करना चाहिए॥३॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय को कहा गया है।

**५६९. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत।**
**शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**सखायः**) मित्रो! (**वः**) तुम (**पुनानम्**) पवित्र करने वाले (**तम्**) उस प्रसिद्ध सोम नामक परमात्मा को (**अभि**) लक्ष्य करके (**मदाय**) आनन्दप्राप्ति के लिए (**गायत**) सामगान करो। उपासक जन उस परमात्मा को (**हव्यैः**) आत्मसमर्पणों द्वारा, और (**गूर्तिभिः**) स्तुतियों तथा उद्यमों द्वारा (**स्वदयन्त**) प्रसन्न करते हैं, (**शिशुं न**) जैसे किसी शिशु

को (**हव्यैः**) खिलौने आदि देय पदार्थों द्वारा, और (**गूर्तिभिः**) गोद में उठाने के द्वारा माताएँ प्रसन्न करती हैं।।४।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है।।४।।

**भावार्थ** :—आराधना और पुरुषार्थ से प्रसन्न किया हुआ परमेश्वर पवित्रता आदि के सम्पादन द्वारा और आनन्द-प्रदान द्वारा आराधक का हित करता है।।४।।

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा की महिमा वर्णित है।

**५७०. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।**
**विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता॥५॥**

**पदार्थ** :—(**प्राणा**) उपासकों को प्राण के समान प्रिय, (**महीनाम्**) वेदवाणियों का (**शिशुः**) शिशु-तुल्य स्तवनीय, हृदय में (**ऋतस्य**) सत्य के (**दीधितिम्**) खजाने को या प्रकाश को (**हिन्वन्**) प्रेरित करता हुआ सोम परमात्मा (**विश्वा**) सब (**प्रिया**) प्रिय मन, बुद्धि आदि और अग्नि, जल, वायु आदियों को (**परि भुवत्**) व्याप्त किये हुए हैं। (**अध**) इस कारण (**द्विता**) अन्दर और बाहर दो प्रकार से महिमा को प्राप्त है।।५।।

इस मन्त्र में 'प्राणा' तथा 'शिशुः' में लुप्तोपमालंकार है।।५।।

**भावार्थ** :—शरीररूप पिण्ड में तथा ब्रह्माण्ड में सर्वत्र जिसकी महिमा प्रकाशित है, वह जगदीश्वर किसका वन्दनीय नहीं है।।५।।

अगले मन्त्र में आनन्द-रस के झरने की प्रार्थना है।

**५७१. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।**
**आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः॥६॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) आनन्दरस से भिगोने वाले रसागार परमात्मन्! आप (**देववीतये**) दिव्यगुणों की उत्पत्ति के लिए (**धाराभिः**) धाराओं के साथ (**ओजसा**) वेग से (**पवस्व**) हमारे अन्तःकरण में झरो। हे (**सोम**) जगदीश्वर! (**मधुमान्**)

मधुर आनन्द से परिपूर्ण आप ( नः ) हमारे ( कलशम् ) कलाओं से पूर्ण आत्मा में ( आ सदः ) आकर स्थित होओ।।६।।

इस मन्त्र में श्लेष से भौतिकसोम-परक अर्थ भी ग्राह्य होता है। उससे भौतिक सोम तथा परमात्मा का उपमानोपमेयभाव सूचित होता है। अतः उपमाध्वनि है।।६।।

**भावार्थ** :-जैसे सोम ओषधि का रस धाराओं के साथ द्रोणकलश में आता है, वैसे ही मधुर ब्रह्मानन्दरस आत्मा में आये।।६।।

अगले मन्त्र में पुनः ब्रह्मानन्दरस का विषय है।

**५७२. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति।**
**अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत्॥७॥**

**पदार्थ** :-( **सोमः** ) ब्रह्मानन्दरस ( **पुनानः** ) उपासक को पवित्र करता हुआ ( **ऊर्मिणा** ) लहर के साथ ( **अव्यं वारम्** ) भेड़ की ऊन से बने दशापवित्र के तुल्य दोषनिवारक अविनश्वर आत्मा के प्रति ( **वि धावति** ) वेग से दौड़ रहा है। ( **वाचः** ) प्रोच्चारित स्तुतिवाणी से ( **अग्रे** ) पहले ही ( **पवमानः** ) धारा रूप से बहता हुआ ( **कनिक्रदत्** ) कलकल ध्वनि कर रहा है।।७।।

इस मन्त्र में ब्रह्मानन्द में कारणभूत स्तुति वाणी के उच्चारण से पूर्व ही ब्रह्मानन्द की उत्पत्ति का वर्णन होने से कारण के पूर्व कार्योदय वर्णित होना रूप अतिशयोक्ति अलंकार है।।७।।

**भावार्थ** :-उपासकों से ध्यान किया गया परमेश्वर अपने पास से आनन्दरस की प्रचुर धाराओं को उपासकों के हृदय में प्रेरित करता है।।७।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के प्रति मनुष्य का कर्तव्य बताया गया है।

**५७३. प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते।**
**भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते॥८॥**

**पदार्थ** :-( **पुनानाय** ) उपासक के हृदय को पवित्र करने

वाले, (वेधसे) आनन्द के विधायक (सोमाय) रसागार परमात्मा के लिए (वचः) धन्यवाद का वचन (प्र उच्यते) हमारे द्वारा कहा जा रहा है। हे मित्र! तुम भी (मतिभिः) बुद्धियों से (जुजोषते) तुम्हें तृप्त करने वाले उस परमात्मा के लिए (भृतिं न) वेतन-रूप या उपहार-रूप धन्यवादादि वचन को (भर) प्रदान करो, अर्थात् कार्य करने वाले को जैसे कोई बदले में वेतन या उपहार देता है, वैसे ही बुद्धि देने वाले उसे तुम बदले में धन्यवाद दो॥८॥

इस मन्त्र में 'भृतिं न भर' में उत्प्रेक्षालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर सुमति-प्रदान आदि के द्वारा हमारा उपकार करता है, उसके प्रति हम कृतज्ञता क्यों न प्रकाशित करें॥८॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**५७४. गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव।**
**शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (सुदक्ष) अत्यन्त समृद्ध और (इन्दो) जैसे चन्द्रमा समुद्रों की वृद्धि करता है वैसे ही मनुष्यों की समृद्धि करने वाले परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! (सुतः) हृदय में प्रकट हुए, राष्ट्र में निर्वाचित हुए अथवा हम समित्पाणि शिष्यों से वरण किये गये आप (नः) हमारे लिए (गोमत्) गायों से अथवा भूमियों से अथवा वेदवाणियों से युक्त और (अश्ववत्) घोड़ों अथवा प्राणों से युक्त ऐश्वर्य को (धनिव) प्राप्त कराइये। और (गोषु अधि) राष्ट्र-भूमियों में (शुचिं वर्णं च) पवित्र हृदय वाले ब्राह्मणादि वर्ण को भी, अथवा (गोषु अधि) वाणियों में (शुचिं वर्णं च) पवित्र अक्षर 'ओम्' को भी (धारय) धारण कराइये॥९॥

इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है॥९॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर, राजा और आचार्य स्वयं धन, विद्या आदि से सुसमृद्ध होकर कृपापूर्वक हमें भी धन, विद्या आदि

प्रदान करें। जिस राष्ट्र में पवित्र हृदय वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण होते हैं और जहाँ प्रजाओं की वाणियों में ओंकाररूप अक्षर जप आदि रूप में निरन्तर विराजमान रहता है, वह राष्ट्र धन्य कहलाता है॥९॥

अगले मन्त्र में सोमनामक परमात्मा वा वैद्य को कहा गया है।

**५७५. अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत।**
**गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि॥१०॥**

**पदार्थ :–(प्रथम)** परमात्मा के पक्ष में। हे सोम परमात्मन्! **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिए **(वसुविदम्)** ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले **(त्वा अभि)** आपको लक्ष्य करके **(वाणीः)** हमारी वाणियाँ **(अनूषत)** स्तुति कर रही हैं। हम **(गोभिः)** वेद-वाणियों द्वारा **(ते)** आपके **(वर्णम्)** स्वरूप को **(अभिवासयामसि)** अपने अन्दर बसाते हैं॥

**(द्वितीय)** वैद्य के पक्ष में। हे चिकित्सा के लिए सोम आदि ओषधियों का रस अभिषुत करने वाले वैद्यराज! **(अस्मभ्यम्)** हम रोगियों के लिए **(वसुविदम्)** स्वास्थ्य-सम्पत्ति प्राप्त कराने वाले **(त्वा अभि)** आपको लक्ष्य करके **(वाणीः)** हम कृतज्ञों की वाणियाँ **(अनूषत)** आपकी स्तुति कर रही हैं, अर्थात् आपके आयुर्वेद के ज्ञान की प्रशंसा कर रही हैं—यह रोगियों की उक्ति है। आगे वैद्य कहता है—हे त्वचारोग से ग्रस्त रोगी! **(गोभिः)** गाय से प्राप्त होन वाले दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर रूप पंच गव्यों से हम **(ते)** तेरे, तेरी त्वचा के **(वर्णम्)** स्वाभाविक रंग को **(अभिवासयामसि)** पुनः तुझमें बसा देते हैं, अर्थात् कुष्ठ आदि रोग के कारण तेरी त्वचा के विकृत हुए रूप को दूर करके त्वचा का स्वाभाविक रंग ला देते हैं। इससे कुष्ठ आदि त्वचा-रोगों की पंचगव्य द्वारा चिकित्सा की जाने की सूचना मिलती है॥१०॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१०॥

अगले मन्त्र में परमात्मा रूप सोम से प्रार्थना की गयी है।

**५७६. पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या।**
**अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः॥११॥**

**पदार्थ** :-हे सोम परमात्मन्! (**हर्यतः**) गतिमान्, कर्मण्य, पुरुषार्थी और तुम्हारी चाहवाला तुम्हारा प्रिय (**हरिः**) मनुष्य (**रंह्या**) वेग के साथ (**ह्वरांसि**) कुटिलता के मार्गों को (**अति**) अतिक्रमण करके (**पवते**) सन्मार्गों पर दौड़ रहा है। (**त्वम्**) तुम (**स्तोतृभ्यः**) तुम्हारे गुण-कर्म-स्वभाव की स्तुति करने वाले अपने उपासकों को (**वीरवत्**) वीरभावों अथवा वीर पुत्रों से युक्त (**यशः**) यश (**अभ्यर्ष**) प्राप्त कराओ।।११।।

इस मन्त्र में र्, ह् आदि की पृथक्-पृथक् अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास अलंकार है।।११।।

**भावार्थ** :-पुरुषार्थी, कर्मण्य परमेश्वरोपासक मनुष्य अपने जीवन में कुटिलता छोड़कर और सरलता को स्वीकार करके वीरभावों और वीर सन्ततियों से युक्त होता हुआ परम उज्ज्वल यश से चमकता है।।११।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से आने वाले आनन्दरस का वर्णन है।

**५७७. परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति।**
**अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत॥१२॥**

**पदार्थ** :-(**पुनानः**) अन्तःकरण को पवित्र करता हुआ परमेश्वर अथवा ब्रह्मानन्दरस (**मधुश्चुतम्**) मधुर श्रद्धारस को प्रस्रुत करने वाले (**कोशम्**) मनोमय कोश में (**परि अर्षति**) व्याप्त हो रहा है। उस परमेश्वर वा ब्रह्मानन्दरस की (**ऋषीणां सप्त वाणीः**) वेदों की आर्षेय गायत्री आदि सात छन्दों वाली ऋचाएँ (**अभि नूषत**) सोम नाम से स्तुति करती हैं।।

चौबीस अक्षरों से आरम्भ करके क्रमशः चार-चार अक्षरों की वृद्धि करके गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती नामक सात छन्द ऋषि-छन्द कहाते हैं। वे ही यहाँ 'ऋषीणां सप्त वाणीः' शब्दों से ग्राह्य हैं।।१२।।

**भावार्थ** :-परब्रह्म और ब्रह्मानन्द रस की महिमा को गाने

वाली वेदवाणियों के साथ अपना मन मिलाकर ब्रह्म के उपासक जन अपने हृदय में ब्रह्मानन्दरस के प्रवाह का अनुभव करें॥१२॥

इस दशति में सोम परमात्मा के प्रति सामगान की प्रेरणा होने से तथा परमात्मा और उसके आनन्दरस महिमा का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय से संगति है॥

## एकादशी दशतिः

**ऋषिः—१ गौरिवीतिः शाक्त्यः; २ ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः; ३ ऋजिश्वा भरद्वाजः ४ कृतयशा आङ्गिरसः; ५ ऋणञ्चयः; ६ शक्तिर्वासिष्ठः; ७, ८ उरुराङ्गिरसः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—१-४, ६ ककुबुष्णिक्; ५ यवमध्या गायत्री; ७, ८ काकुभः प्रगाथः (७ ककुबुष्णिक्; ८ सतोबृहती)॥ स्वरः—१-४, ६ ऋषभः; ५ षड्जः; ७, ८ मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में सोम परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**५७८. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः।**
**महि द्युक्षतमो मदः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) आनन्दरसागर परमात्मन्! (**मधुमत्तमः**) सबसे अधिक मधुर, (**क्रतुवित्तमः**) सबसे अधिक प्रज्ञा और कर्म को प्राप्त कराने वाले, और (**मदः**) हर्षप्रदाता आप (**इन्द्राय**) मेरे आत्मा के लिए (**पवस्व**) आनन्द-रस को प्रवाहित कीजिए। (**मदः**) आपसे दिया हुआ आनन्द (**महि**) अत्यधिक (**द्युक्षतमः**) तेज का निवास कराने वाला होता है॥१॥

इस मन्त्र में 'तमो मदः' की आवृत्ति में यमक अलंकार है। 'तम, तमो, तमो' में वृत्त्यनुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—अत्यन्त मधुर, ज्ञान तथा कर्म के उपदेशक, आनन्ददाता परमात्मा का ध्यान कर-करके योगीजन अपार आनन्दरस से परिपूर्ण हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**५७९. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
वि कोशं मध्यमं युव॥२॥**

**पदार्थ** :—हे **(इषः पते)** अन्न, रस, धन, बल, विज्ञान आदि के स्वामी सोम परमात्मन्! आप **(द्युम्नम्)** तेज को, और **(बृहद् यशः)** महान् यश को **(अभि)** हमें प्राप्त कराइये। हे **(देव)** दान करने, चमकने, चमकाने आदि दिव्य कर्मों से युक्त भगवन्! आप **(देवयुम्)** दिव्य गुणों के अभिलाषी मुझे **(दिदीहि)** दिव्य गुणों से प्रकाशित कर दीजिए। मेरे **(मध्यमम्)** मध्यम **(कोशम्)** कोश को, अर्थात् मध्यस्थ मनोमय कोश को **(वि युव)** खोल दीजिए, जिससे उपरले विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोश में पहुँच सकूँ॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे मेघरूप मध्यम कोश के खुलने से ही ऊपर का सूर्यप्रकाश प्राप्त हो सकता है, वैसे ही कोशों में मध्यस्थ मनोमय कोश के खुलने से ही **विज्ञानमय** और आनन्दमय **कोश की विपुल समृद्धि प्राप्त की जा सकती है, अन्यथा** योग का **साधक मनोमय भूमिका में ही रमता रहता** है॥२॥

अगले मन्त्र में मनुष्यों को परमात्मा की आराधना के लिए प्रेरणा दी गयी है।

**५८०. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं
रजस्तुरम्। वनप्रक्षमुदप्रुतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे मित्रो! तुम **(स्तोमम्)** समूह रूप में विद्यमान, **(अप्तुरम्)** नदी-नद-समुद्र के जलों में वेग से यान चलाने के साधनभूत, **(रजस्तुरम्)** अन्तरिक्षलोक में यानों को तेजी से ले जाने में साधनभूत, **(वनप्रक्षम्)** वनों को जलाने वाले, **(उदप्रुतम्)** जलों को भाप बनाकर ऊपर ले जाने वाले **(अश्वम्)** आग, विद्युत् आदि रूप अग्नि को **(न)** जैसे, शिल्पी लोग **(आ सुन्वन्ति)** उत्पन्न करते हैं तथा **(परि सिञ्चन्ति)** जलादि से संयुक्त करते हैं, वैसे ही **(स्तोमम्)** स्तुति के पात्र, **(अप्तुरम्)** प्राणों को प्रेरित करने वाले, **(रजस्तुरम्)** पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि लोकों को वेग से चलाने वाले, **(वनप्रक्षम्)**

सूर्यकिरणों अथवा मेघ-जलों को भूमण्डल पर सींचने वाले, **(उदप्रुतम्)** शरीरस्थ रक्त-जलों को अथवा नदियों के जलों को प्रवाहित करने वाले सोम परमात्मा को **(आ सोत)** हृदय में प्रकट करो, और **(परि सिञ्चत)** श्रद्धारसों से सींचो॥३॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है। आपः, वनम्, उदकम् ये सब निघण्टु (१।१२) में जलवाची पठित होने से तथा निरुक्त (१२।७) में रजस् शब्द के भी जलवाची होने से 'अप्तुरम्, रजस्तुरम्, वनप्रक्षम्, उदप्रुतम्' ये सब समानार्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु प्रदर्शित व्याख्या के अनुसार वस्तुतः भिन्न अर्थ वाले हैं, अतः यहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार है। त्, म् आदि की आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है। 'तुरम्' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे शिल्पी लोग विद्युत् आदि रूप अग्नि को यानों में संयुक्त करते तथा जल, वायु आदि से सिक्त करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि प्राणों के प्रेरक, द्यावापृथिवी आदि लोकों के धारक, सूर्यकिरणों और मेघजलों के वर्षक परमात्मा को हृदय में संयुक्त कर श्रद्धा-रसों से सींचें॥३॥

अगले मन्त्र में बताया गया है कि कैसे परमात्मा को श्रद्धारसों से सींचो।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**५८१. एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम्।**
२ ३ १ २ ३ १ २
**विश्वा वसूनि बिभ्रतम्॥४॥**

**पदार्थ** :—**(एतम् उ)** इस, सबके समीपस्थ, **(त्यम्)** प्रसिद्ध, **(मदच्युतम्)** आनन्दस्रावी, **(सहस्रधारम्)** सत्य, अहिंसा, न्याय, दया आदि गुणों की सहस्र धाराएँ बहाने वाले, **(वृषभम्)** महाबली, **(दिवोदुहम्)** आकाशरूपी गाय को दुहने वाले अर्थात् आकाश से सूर्य-किरणों, मेघजलों आदि की वर्षा करने वाले, **(विश्वा)** सब **(वसूनि)** ऐश्वर्यों को **(बिभ्रतम्)** धारण करने वाले सोम परमात्मा को **(आ सोत)** हृदय में प्रकट करो, तथा **(परि षिञ्चत)** श्रद्धारसों से सींचो॥४॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि आनन्द की प्राप्ति के लिए रस के भण्डार और सहस्रों धाराओं से रस बरसाने वाले

परमात्मा रूप सोम को अपने हृदय में श्रद्धाभाव से धारण करें॥४॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा कैसा है, इसका वर्णन है।

**५८२. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्।**
**सोमो यः सुक्षितीनाम्॥५॥**

**पदार्थ** :–(**सः**) वह (**सोमः**) सर्वोत्पादक रसमय परमेश्वर, (**सुन्वे**) ध्यान द्वारा हृदय में अभिषुत किया जाता है, (**यः**) जो (**वसूनाम्**) किरणों का, (**यः**) जो (**रायाम्**) धनों का, (**यः**) जो (**इडानाम्**) भूमियों, वाणियों, अन्नों और गायों का, और (**यः**) जो (**सुक्षितीनाम्**) श्रेष्ठ मनुष्यों का (**आनेता**) प्राप्त कराने वाला है॥५॥

इस मन्त्र में 'यः' की चार बार पुनरुक्ति यह द्योतित करने के लिए है कि वह परमेश्वर ही इन पदार्थों को प्राप्त कराने वाला है, अन्य कोई नहीं। 'वसूनाम्, रायाम्' इन दोनों के धनवाची होने के कारण और 'इडानाम्, सुक्षितीनाम्' इनके भूमिवाची होने के कारण प्रथम दृष्टि में एकार्थता प्रतीत होती है, किन्तु व्याख्यात रूप में अर्थ-भेद है। अतः पुनरुक्तवदाभास अलंकार है॥५॥

**भावार्थ** :–जो परमेश्वर जगत् में दिखायी देने वाले सभी पदार्थों का उत्पादक और प्राप्त कराने वाला है, उसकी उपासना से सबको आनन्दरस प्राप्त करना चाहिए॥५॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा क्या करता है, इसका वर्णन है।

**५८३. त्वं ह्या३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः।**
**अमृतत्वाय घोषयन्॥६॥**

**पदार्थ** :–(**अङ्ग**) हे प्रिय (**पवमान**) पवित्रताकारी सोम परमात्मन्! (**त्वं हि**) आप निश्चय ही (**दैव्यम्**) विद्वानों के हितकर कर्म को, धारण करते हो। (**द्युमत्तमः**) सबसे अधिक देदीप्यमान आप (**जनिमानि**) जन्मों अर्थात् जन्मधारी विद्वान् सदाचारी मनुष्यों को (**अमृतत्वाय**) सांसारिक दुःखों से मुक्ति

के लिए (घोषयन्) अधिकारी घोषित करते हो॥६॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर कर्मानुसार फल प्रदान करता हुआ देव पुरुषों का हित ही सिद्ध करता है। वही मोक्ष के अधिकारी जनों को मोक्ष देकर सत्कृत करता है॥६॥

अगले मन्त्र में सोम का धाराप्रवाह वर्णित है।

३ १ २र ३ २ ३ १२ ३ १ २
**५८४. एष स्य धारया सुतोऽ व्या वारेभिः पवते मदिन्तमः।**
१ २ ३ २३ १ २
**क्रीडन्नूर्मिरपामिव॥७॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सोम ओषधि के रस के पक्ष में। (**एषः**) यह (**स्यः**) वह हमारे द्वारा पर्वत से लाया गया, (**अव्याः वारेभिः**) भेड़ के बालों से अर्थात् भेड़ की ऊन से निर्मित दशापवित्रों से (**सुतः**) अभिषुत किया गया, (**मदिन्तमः**) अतिशय आनन्द उत्पन्न करने वाला सोमरस (**अपाम्**) नदियों की (**ऊर्मिः इव**) लहर के समान (**क्रीडन्**) क्रीडा करता हुआ (**धारया**) धारा रूप से (**पवते**) द्रोणकलश में जा रहा है॥७॥

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। (**एषः**) यह अनुभव किया जाता हुआ (**स्यः**) वह (**अव्याः वारेभिः**) भेड़ के बालों से निर्मित दशापवित्रों के तुल्य पवित्रताकारक यम, नियम आदि योगाङ्गों से (**सुतः**) हृदय में प्रकट किया गया, (**मदिन्तमः**) अतिशय आनन्द-उत्पन्न करने वाला सोम परमात्मा (**अपाम् ऊर्मिः इव**) नदियों की लहर के समान (**क्रीडन्**) क्रीडा करता हुआ (**धारया**) आनन्द की धारा के साथ (**पवते**) मेरे आत्मा में पहुँच रहा है॥७॥

इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार है। जलों की लहर के समान क्रीडा करता हुआ सोम ओषधि का रस जैसे दशापवित्रों से छाना हुआ द्रोणकलश में पहुँचता है, वैसे ही यम, नियम आदि योग-साधनों से हृदय में प्रकट किया गया परमात्मारूप सोम मानो क्रीडा करता हुआ आनन्दप्रवाह के साथ योगियों के आत्मा को प्राप्त होता है॥७॥

**भावार्थ** :—समाधिस्थ उपासक लोग परमात्मता के पास से अपने आत्मा में वेगपूर्वक आती हुई आनन्दधारा को साक्षात् अनुभव करते हैं॥७॥

अगले मन्त्र में सोम परमेश्वर का वर्णन किया गया है।

**५८५. य उस्त्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्त-**
**दोजसा। अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव**
**धृष्णवा रुज। ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज॥८॥**

**पदार्थ** :–(**उस्त्रियाः अपि**) निकलने योग्य होती हुई भी (**याः**) जो (**अश्मनि अन्तः**) मेघ के अन्दर रुक जाती हैं, उन (**गाः**) सूर्य-किरणों को (**यः**) जो आप (**ओजसा**) अपने प्रताप से (**निर् अकृन्तत्**) मेघ के बाहर निकाल देते हो, वह आप (**गव्यम्**) भूमि-सम्बन्धी, और (**अश्व्यम्**) सूर्यसम्बन्धी (**व्रजम्**) मण्डल को (**अभितत्निषे**) चारों ओर विस्तीर्ण करते हो। हे (**धृष्णो**) विपत्तियों का धर्षण करने वाले परमात्मन्! आप (**वर्मी इव**) कवचधारी योद्धा के समान (**आरुज**) हमारी विपदाओं को और हमारे शत्रुओं को भग्न कर दो॥८॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। 'उस्त्रियाः अपि याः अन्तरश्मनि' का यदि यह अर्थ करें कि 'जो बहती हुई भी पत्थर के अन्दर रुकी हुई है' तो विरोध प्रतीत होता है, 'बहने के योग्य होती हुई भी मेघ में निरुद्ध' इस अर्थ से विरोध का परिहार हो जाता है। अतः विरोधाभास अलंकार है॥८॥

**भावार्थ** :–जैसे परमेश्वर मध्य में स्थित मेघ की बाधा को विच्छिन्न करके सूर्यकिरणों को भूमि पर प्रसारित कर देता है, वैसे ही जीवात्मा योगमार्ग में आये सब विघ्नों का विदारण कर सफलता प्राप्त करे॥८॥

इस दशति में भी सोम नाम से परमात्मा का और उसके आनन्दरस का वर्णन होने से इस दशति के विषय के साथ उसकी संगति है॥

**इति षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः॥**
**इति पञ्चमोऽध्यायः॥**
**इति पवमानं काण्डम्॥**

# अथ आरण्यं काण्डम्
# अथ षष्ठोऽध्यायः
## अथ षष्ठप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः
### प्रथमा दशतिः

ऋषिः—१ भरद्वाजः; २ वसिष्ठः; ३, ६ वामदेवः; ४ शुनःशेपः; ५ गृत्समदः; ७, ८ अमहीयुः; ९ आत्मा॥ देवता—१-३ इन्द्रः; ४ वरुणः; ५, ७, ८ पवमानः सोमः; ६ विश्वेदेवाः; ९ अन्नम्॥ छन्दः—१ बृहती; २, ४, ५, ९ त्रिष्टुप्; ३, ७, ८ गायत्री: ६ एकपदा त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१ मध्यमः; २, ४-६, ३, ७, ८ गायत्री; ६ एकपदा त्रिष्टुप॥ स्वरः—१ मध्यमः; २, ४-६, ९ धैवतः; ३, ७, ८ षड्जः॥

आदि की तीन ऋचाओं का इन्द्र देवता है। प्रथम मन्त्र में परमात्मा से यश कील प्रार्थना की गयी है।

**५८६. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः।**
**यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र पप्राः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परम यशस्वी परमात्मन्! आप (**नः**) हमें (**ज्येष्ठम्**) अत्यधिक प्रशंसनीय, (**ओजिष्ठम्**) अत्यधिक ओजस्वी, (**पुपुरि**) पूर्णता देने वाला अथवा पालन करने वाला (**श्रवः**) यश (**आ भर**) प्रदान कीजिए, (**यत्**) जिस यश को, हम (**दिधृक्षेम**) धारण करना चाहें। हे (**वज्रहस्त**) वज्रहस्त के समान यशोबाधक पाप, दुर्व्यसन आदि को चूर-चूर करने वाले! हे (**सुशिप्र**) सर्वव्यापक! आपने (**उभे रोदसी**) भूमि-आकाश दोनों को (**पप्राः**) यश से परिपूर्ण किया हुआ है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे परमात्मा से रचा हुआ सारा ब्रह्माण्ड यशोमय है, वैसे ही हम भी यशस्वी बनें॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर का राजा रूप में वर्णन करते हुए राष्ट्र में कौन राजा हो सकता है यह बताया गया है।

**५८७. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य। ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमात्मा (**जगतः**) जगत् के (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों का (**राजा**) राजा है। (**अधिक्षमा**) पृथिवी पर (**यत्**) जो (**विश्वरूपम्**) सभी रूपों वाला धन है, वह (**अस्य**) इसी का है। (**ततः**) उसी धन में से, वह (**दाशुषे**) दानी को (**वसूनि**) धन (**ददाति**) देता है। वह (**अर्वाक्**) हमारी ओर (**उपस्तुतं चित्**) प्रशंसित ही (**राधः**) भौतिक धन को एवं योगैश्वर्य को (**चोदत्**) प्रेरित करे॥२॥

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**इन्द्रः**) शत्रुओं का विदारणकर्ता, यज्ञशीलों का आदरकर्ता, समस्त सद्-गुणों की सम्पत्ति से युक्त ही मनुष्य (**जगतः**) राष्ट्र के (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों का (**राजा**) राजा होने योग्य है। (**अधिक्षमा**) राष्ट्रभूमि पर (**यत्**) जो (**विश्वरूपम्**) सब रूपों वाला धन का भण्डार (**अस्य**) इसका है, (**ततः**) उसमें से, वह (**दाशुषे**) कर देने वाले प्रजाजन के लिए (**वसूनि**) धनों को (**ददाति**) देवे। वह (**उपस्तुतम्**) प्रशंसित (**राधः**) धन को (**अर्वाक्**) नीची स्थिति वाले निर्धनों की ओर (**चोदत्**) प्रेरित करे॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे राजराजेश्वर परमेश्वर दानी को धन देता है, वैसे ही मानव-सम्राट् भी कर देने वाले प्रजावर्ग को सुसमृद्ध करे। इसके लिए भी प्रयत्न करे कि प्रजा में धन की दृष्टि से अधिक विषमता न हो॥२॥

अगले मन्त्र में उस परमेश्वर के धन का वर्णन है।

**५८८. यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः।**
**इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत्॥३॥**

**पदार्थ** :–( **आरजः** ) लोकलोकान्तर पर्यन्त ( **युजः** ) सब पदार्थों से योग करने वाले ( **यस्य** ) जिस परमेश्वर का ( **तुजे जने** ) शीघ्र कार्य करने वाले कर्मयोगी मनुष्य को ( **वनम्** ) सेवनीय ( **स्वः** ) धन प्राप्त होता है, उस ( **इन्द्रस्य** ) परमेश्वर का ( **रन्त्यम्** ) रमणीय ऐश्वर्य ( **बृहत्** ) बहुत बड़ा है।।३।।

**भावार्थ** :–संसार में जहाँ–तहाँ जो अनेक प्रकार का धन बिखरा पड़ा है, वह सब परमात्मा का ही है। पुरुषार्थी जन ही उसे प्राप्त करने के अधिकारी हैं।।३।।

अगले मन्त्र में वरुण देवता है। परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**५८९. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।**
**अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम॥४॥**

**पदार्थ** :–हे ( **वरुण** ) मोक्षप्राप्ति के लिए सब मनुष्यों से वरे जाने वाले परमात्मन्! आप ( **उत्तमं पाशम्** ) उत्कृष्ट कर्मों के बन्धन रूप उत्तम पाश को ( **अस्मत्** ) हमसे ( **उत्** ) उत्कृष्ट फलप्रदान द्वारा छुड़ा दीजिए, ( **अधमम्** ) निकृष्ट कर्मों के बन्धन रूप अधम पाश को ( **अव** ) निकृष्ट फलप्रदान द्वारा छुड़ा दीजिए, ( **मध्यमम्** ) मध्यम कर्मों के बन्धन रूप मध्यम पाश को ( **वि श्रथाय** ) विविध फल देकर छुड़ा दीजिए। ( **अथ** ) उसके पश्चात्, हे ( **आदित्य** ) नित्यमुक्त, अविनाशी, आदित्य के समान प्रकाशमान, सर्वप्रकाशक परमात्मन! ( **तव** ) आपके ( **व्रते** ) निष्काम कर्म में चलते हुए ( **वयम्** ) हम ( **अनागसः** ) निष्पाप होते हुए ( **अदितये** ) मोक्ष के अधिकारी ( **स्याम** ) हो जाएँ।

अथवा उत्तम पाश है आत्मा के ज्ञान आदि के ग्रहण में जो बाधक होते हैं उनसे किया गया बन्धन, मध्यम पाश है मन के श्रेष्ठ संकल्प आदि में जो बाधक होते हैं उनसे किया गया बन्धन, अधम पाश है शरीर के व्यापार में जो बाधक

रोग आदि होते हैं उनसे किया गया बन्धन। उन पाशों से छुड़ा कर परमेश्वर अथवा योगी गुरु हमें सुख का अधिकारी बना देवे।।४।।

**भावार्थ** :—मनुष्य सभी सकाम कर्मों का फल अवश्य पाता है। जो लोग निष्काम होकर परमेश्वर के व्रत में रहते हुए निष्पाप जीवन व्यतीत करते हैं, वे ही मोक्ष के अधिकारी होते हैं।।४।।

अगली ऋचा का देवता पवमान सोम है। उससे प्रार्थना की गयी है।

**५९०. त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे **( सोम )** प्रेरक परमात्मन्! **( पवमानेन )** पवित्रकर्ता **( त्वया )** तुझ सहायक के द्वारा **( वयम् )** हम शूरवीर लोग **( भरे )** जीवन-संग्राम में **( शश्वत् )** निरन्तर **( कृतम् )** कर्म को **( वि चिनुयाम )** विशेषरूप से चुनें। **( तत् )** इस कारण **( मित्रः )** वायु, **( वरुणः )** अग्नि, **( अदितिः )** उषा, **( सिन्धुः )** अन्तरिक्ष-समुद्र अथवा पार्थिव समुद्र, **( पृथिवी )** भूमि **( उत )** और **( द्यौः )** द्युलोक अथवा सूर्य **( नः )** हमें **( मामहन्ताम् )** सत्कार से बढ़ाएँ। **( अथवा—मित्रः )** प्राण, **( वरुणः )** अपान, **( अदितिः )** वाणी, **( सिन्धुः )** हृदय-समुद्र, **( पृथिवी )** शरीर **( उत )** और **( द्यौः )** प्रकाशयुक्त बुद्धि वा आत्मा **( नः मामहन्ताम् )** हमें बढ़ाएँ। **( अथवा—मित्रः )** ब्राह्मणवर्ण, **( वरुणः )** क्षत्रियवर्ण, **( अदितिः )** न पीड़ित की जाने योग्य नारी जाति, **( समुद्रः )** समुद्र के तुल्य धन का संचय करने वाला वैश्यवर्ण, **( पृथिवी )** राष्ट्रभूमि **( उत )** और **( द्यौः )** यशोमयी राजसभा **( न मामहन्ताम् )** हम प्रजाजनों को अतिशय समृद्ध करें।।५।।

**भावार्थ** :—'मेरे दाहिने हाथ में कर्म है, बाएँ हाथ में विजय रखी हुई है।' अथ० ७।५०।८, इस सिद्धान्त के अनुसार संसार में जो कर्म को अपनाता है, वही विजय पाता है। इस कर्मयोग के मार्ग में परमेश्वर के अतिरिक्त अग्नि-वायु-सूर्य आदि बाह्य देव, प्राण-अपान-वाणी-मन आदि आन्तरिक देव और ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि राष्ट्र के देव हमारे सहायक और प्रेरक बन सकते हैं।।५।।

अगली ऋचा का देवता 'विश्वेदेवा:' है। उनसे प्रार्थना की गयी है।

**५९१. इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम्॥६॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मा, जीवात्मा, मन, बुद्धि आदि सब देवो, सब विद्वान् गुरुजनो तथा राज्याधिकारियो! तुम (**इमम्**) इस (**माम्**) मुझको (**एकम् इत्**) अद्वितीय (**वृषणम्**) मेघ के समान धन, अन्न, सुख आदि की वर्षा करने वाला (**कृणुत**) कर दो।।६।।

**भावार्थ** :—जैसे परमात्मा और शरीर में स्थित, समाज में स्थित तथा राष्ट्र में स्थित सब देव परोपकारी हैं, वैसे ही उनसे प्रेरणा लेकर मैं भी निर्धनों के ऊपर धन, अन्न आदि की वर्षा करने वाला, अनाथों का नाथ और दूसरों के दु:ख को हरने वाला बनूँ।।६।।

**अगले दो मन्त्रों का पवमान सोम देवता है। इस मन्त्र में परमात्मा और राजा को कहा जा रहा है।**

**५९२ स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्य:।**
**वरिवोवित् परिस्रव॥७॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अध्यात्म-पक्ष में। हे पवमान सोम अर्थात् सर्वोत्पादक, सकल ऐश्वर्य के अधिपति, रसमय, पवित्रतादायक परमात्मन्! (**स:**) सुप्रसिद्ध आप (**न:**) हमारे (**यज्यवे**) देह-रूप यज्ञ के संचालक (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए, (**वरुणाय**) श्रेष्ठ संकल्पों का वरण करने वाले मन के लिए और (**मरुद्भ्य:**) प्राणों के लिए (**वरिवोवित्**) उनके बलरूप ऐश्वर्य के प्राप्त कराने वाले होकर (**परिस्रव**) हृदय में संचार करो।

(**द्वितीय**) राष्ट्र-परक। हे पवमान सोम अर्थात् सब राज्याधिकारियों को अपने-अपने कर्तव्य कर्मों में प्रेरित करने तथा उनके दोषों को दूर कर पवित्रता देने वाले राजन्! (**स:**) वह प्रजाओं द्वारा राजा के पद पर अभिषिक्त किये हुए आप (**न:**) हमारे (**यज्यवे**) राष्ट्र-यज्ञ के कर्ता (**इन्द्राय**) सेनाध्यक्ष

के लिए, ( **वरुणाय** ) असत्याचरण करने वालों को बन्धन में बाँधने वाले कारागार-अधिकारी के लिए और ( **मरुद्भ्यः** ) योद्धा सैनिकों के लिए ( **वरिवोवित्** ) देने योग्य उचित वेतनरूप धन के प्राप्त कराने वाले होकर ( **परिस्रव** ) राष्ट्र में संचार करो॥७॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर कृपा करके हमारे आत्मा, मन, प्राण, इन्द्रिय आदि को शरीर-राज्य चलाने का बलरूप धन और राजा नियुक्त राज्याधिकारियों को देय वेतनरूप धन सदा देता रहे। जो राजा अन्याय से सेवकों को वेतन से वंचित करता है, उसके प्रति वे पूर्णतः विद्रोह कर देते हैं॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मारूप सोम से धन की याचना की गयी है।

**५९३. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।**
**सिषासन्तो वनामहे॥८॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् सर्वोत्पादक पवित्रतादायक परमात्मन्! ( **अर्यः** ) सबके स्वामी आप ( **एना** ) इन ( **सर्वाणि** ) सब ( **द्युम्नानि** ) धनों को ( **आ** ) प्राप्त कराओ। इन धनों को हम ( **मानुषाणाम्** ) सत्पात्र मनुष्यों को ( **सिषासन्तः** ) दान करने के अभिलाषी होते हुए ( **वनामहे** ) पाना चाहते हैं॥८॥

**भावार्थ** :—जिस धन से दूसरों का हित नहीं होता वह धन धन नहीं, किन्तु पुंजित अपयश ही है, क्योंकि वेद कहता है कि "अकेला खाने वाला पाप का भागी होता है।" (ऋ० १०।११७।६)

अगले मन्त्र का अन्न देवता है। परमेश्वर अपना परिचय दे रहा है।

**५९४. अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम । यो मा ददाति स इदेवमावदहम-न्नमन्नमदन्तमद्मि॥९॥**

**पदार्थ** :—( **अहम्** ) मैं परमेश्वर ( **ऋतस्य** ) जगत् में सर्वत्र दिखायी देने वाले सत्य नियम का ( **प्रथमजाः** ) प्रथम उत्पादक ( **अस्मि** ) हूँ। मैं ( **देवेभ्यः** ) सब चमकने वाले सूर्य, बिजली, अग्नि, तारामण्डल आदियों की उत्पत्ति से ( **पूर्वम्** ) पहले विद्यमान था। मैं ( **अमृतस्य** ) मोक्षावस्था में प्राप्त होने वाले आनन्दामृत का ( **नाम** ) केन्द्र या स्रोत हूँ। ( **यः** ) जो मनुष्य ( **मा** ) मुझे ( **ददाति** ) अपने आत्मा में समर्पित करता है ( **सः इत् एव** ) निश्चय से वही ( **मा** ) मुझे ( **अवत्** ) प्राप्त होता है। ( **अहम्** ) मैं ( **अन्नम्** ) अन्न हूँ, भक्तों का भोजन हूँ और मैं ( **अन्नम् अदन्तम्** ) भोग भोगने वाले प्रत्येक प्राणी को ( **अद्मि** ) खाता भी हूँ, अर्थात् प्रलयकाल में ग्रस भी लेता हूँ, इस कारण मैं अत्ता भी हूँ।

परमेश्वर के अन्न और अत्ता रूप को उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र में इस प्रकार कहा है—मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्नाद हूँ, मैं अन्नाद हूँ। (तै० उप० ३।१०।६) परमेश्वर अत्ता इस कारण है, क्योंकि चर-अचर को ग्रसता है'। (ब्र० सू० १।२।९)

निरुक्त में जो परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत तथा आध्यात्मिक तीन प्रकार की ऋचाएँ कही गयी हैं, उनमें यह ऋचा आध्यात्मिक है। आध्यात्मिक ऋचाएँ वे होती हैं जिनमें उत्तम पुरुष की क्रिया तथा 'अहम्' सर्वनाम का प्रयोग हो अर्थात् जिसमें देवता अपना परिचय स्वयं दे रहा हो।।९।।

इस मन्त्र में 'मैं अन्न खाने वाले को खाता हूँ' में विरोध प्रतीत होने से विरोधालंकार व्यंग्य है।।९।।

**भावार्थ** :—जैसे प्राणी भोजन के बिना, वैसे ही भक्तजन परमेश्वर के बिना नहीं जी सकते। जैसे प्राणी अन्न का ग्रास लेते हैं, वैसे ही परमेश्वर चराचर जगत् को ग्रसता है।।९।।

पूर्व दशति में सोम नाम से परमात्मा का वर्णन होने से तथा इस दशति में भी इन्द्र, वरुण सोम आदि नामों से परमात्मा का ही वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## द्वितीया दशतिः

**ऋषिः—१ श्रुतकक्षः; २ पवित्रः; ३, ४ मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः; ५ प्रथः; ६ गृत्समदः; ७ नृमेधपुरुमेधौ। देवता—१,३,४,७ इन्द्रः; २ पवमानः; ५ विश्वेदेवाः; ६ वायुः॥ छन्दः—१,३,४,६ गायत्री; २ जगती; ५ त्रिष्टुप्; ७ अनुष्टुप्॥ स्वरः—१,३,४,६ षड्जः; २ निषादः; ५ धैवतः; ७ गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र का इन्द्र देवता है। इसमें इन्द्र परमात्मा के कौशल का वर्णन है।

२ ३ १ २          ३    २ ३   १ २
**५९५. त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च।**
१ २     ३  २ ३    १ २
**परुष्णीषु रुशत् पयः॥१॥**

**पदार्थ :—(प्रथम)** गौओं के पक्ष में। हे इन्द्र जगदीश्वर! **(त्वम्)** सर्वशक्तिमान् आपने **(कृष्णासु)** काले रंग की, **(रोहिणीषु च)** और लाल रंग की **(परुष्णीषु)** बहुत स्नेहशील मातृभूत गौओं में **(एतत्)** इस, हमसे प्रतिदिन पान किये जाने वाले **(रुशत्)** उज्ज्वल **(पयः)** दूध को **(अधारयः)** निहित किया है॥

**(द्वितीय)** नदियों के पक्ष में। हे इन्द्र परमात्मन्! **(त्वम्)** जगत् की व्यवस्था करने वाले आपने **(कृष्णासु)** कृषिकर्म को सिद्ध करने वाली, **(रोहिणीषु च)** और वृक्ष-वनस्पति आदियों को उगाने वाली **(परुष्णीषु)** पर्वों वाली अर्थात् टेढ़ा चलने वाली नदियों में **(एतत्)** इस **(रुशत्)** उज्ज्वल **(पयः)** जल को **(अधारयः)** निहित किया है।

**(तृतीय)** नाड़ियों के पक्ष में। हे इन्द्र जगत्पति परमात्मन्! **(त्वम्)** प्राणियों के देहों के संचालक आपने **(कृष्णासु)** नीले रंग वाली शिरारूप **(रोहिणीषु च)** और लाल रंग वाली धमनिरूप **(परुष्णीषु)** अंग-अंग में जाने वाली अथवा रक्त को ले जाने वाली रक्तनाड़ियों में **(एतत्)** इस **(रुशत्)** चमकीले नीले रंग के और चमकीले लाल रंग के **(पयः)** रक्तरूप जल को **(अधारयः)** निहित किया है।

**(चतुर्थ)** रात्रियों के पक्ष में। हे इन्द्र राजाधिराज परमेश्वर!

(त्वम्) दिन-रात्रि के चक्र के प्रवर्तक आपने (कृष्णासु) आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से काले रंग वाली (रोहिणीषु च) और प्रकाश से उज्ज्वल (परुष्णीषु) कृष्ण और शुक्ल पक्षों से युक्त रात्रियों में (एतत्) सबको दीखने वाले इस (रुशत्) चमकीले (पयः) ओस-कण रूप जल को (अधारयः) निहित किया है॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा का ही यह कौशल है कि वह विविध रंगों वाली गौओं में श्वेत दूध को, नदियों में उज्ज्वल जल को शरीरस्थ नाड़ियों में नीले और लाल रुधिर को तथा कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्ष की रात्रियों में ओसरूप जल को उत्पन्न करता है॥१॥

अगले मन्त्र का पवमान देवता है। परमात्मा के ही कौशल से सूर्य आदि अपना-अपना कार्य करते हैं, इसका वर्णन है।

**५९६. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस पवमान सोम के अर्थात् सर्वव्यापक प्रेरक परमात्मा के (**मायया**) बुद्धि और कर्म के कौशल से (**अग्रियः**) आगे रहने वाला (**पृश्निः**) सूर्य (**उषसः**) उषाओं को (**अरूरुचत्**) चमकाता है, और (**उक्षा**) वर्षक बादल (**भुवनेषु**) भूतलों पर (**वाजयुः**) मानो अन्न उत्पन्न करना चाहता हुआ (**मिमेति**) गर्जता है, (**मायाविनः**) मेधावियों के तुल्य विद्यमान पवन (**ममिरे**) अपनी गति से सुदीर्घ प्रदेशों को मापते हैं और (**नृचक्षसः**) मनुष्यों को प्रकाश देने वाली (**पितरः**) पालक सूर्य-किरणें (**गर्भम् आदधुः**) ओषधियों में गर्भ धारण कराती हैं अथवा पानी को भाप बनाकर गर्भरूप में ग्रहण करती हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा ने ही अपने कौशलों से उषा, सूर्य, बादल, पवन एवं किरणों जैसे यन्त्र रचे हैं, जो हमारा बड़ा उपकार करते हैं॥२॥

अगले दो मन्त्रों में इन्द्र देवता है। यहाँ परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

२ ३ २उ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**५९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा।**
१ २ ३ १ २ ३ १ २
**इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥३॥**

**पदार्थ** :–(इन्द्रः इत्) जगदीश्वर ही (**वचोयुजा**) आदेशवचन होते ही नियुक्त हो जाने वाले (**हर्योः**) भूमि-आकाश, दिन-रात, शुक्लपक्ष-कृष्णपक्ष, प्राण-अपान, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय, ऋक्-साम रूप घोड़ों को (**सचा**) एक साथ (**सम्मिश्लः**) संयुक्त करने वाला है। (**इन्द्रः**) वह जगदीश्वर (**वज्री**) वज्रधारी के समान निरंकुशों को नियम में रखने वाला और (**हिरण्ययः**) प्रतापी है॥३॥

**भावार्थ** :–महाप्रतापी परमेश्वर ने ही सौरमण्डल में द्यावापृथिवी आदि रूप, शरीर में प्राण-अपान आदि रूप तथा मनोभूमि में ऋक्-साम आदि रूप अश्वों को सामञ्जस्यपूर्वक नियुक्त किया है॥३॥

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर और राजा से प्रार्थना की गयी है।

२ ३ १ २ ३ १ २
**५९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।**
३ २ ३ १ २ ३ १ २
**उग्र उग्राभिरूतिभिः॥४॥**

**पदार्थ** :–हे (उग्र) शत्रुओं पर प्रचण्ड (इन्द्र) शत्रुविदारक जगदीश्वर अथवा राजन्! आप (**वाजेषु**) संकटों में (**सहस्रप्रधनेषु च**) और सहस्रों का संहार करने वाले घोर देवासुर-संग्रामों में (**उग्राभिः**) उत्कट (**ऊतिभिः**) रक्षा-शक्तियों से (**नः**) हम धार्मिकों की (**अव**) रक्षा कीजिए॥४॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है। 'उग्र, उग्रा' में छेकानुप्रास है॥४॥

**भावार्थ** :–जीवन में पग-पग पर आये हुए संकटों में, बाह्य तथा आभ्यन्तर भीषण संग्रामों में, योगमार्ग में उपस्थित व्याधि, स्त्यान, संशय आदि विघ्नों में और राज्य में उत्पन्न राज्यविप्लव, शत्रु द्वारा चढ़ाई आदि में वीर परमेश्वर और राजा हमारी निरन्तर रक्षा करते रहें॥४॥

अगले मन्त्र के 'विश्वेदेवाः' देवता है। परमेश्वर को धाता, सविता और विष्णु नामों से स्मरण किया गया है।

**५९९. प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्। धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः॥५॥**

**पदार्थ** :–(**यस्य**) जिस परमेश्वर के (**प्रथः च सप्रथः च**) सर्वत्र प्रख्यात होने से 'प्रथ' और सर्वत्र विस्तीर्ण या व्यापक होने से 'सप्रथ' (**नाम**) नाम हैं, (**यत्**) जो (**आनुष्टुभस्य**) अनुष्टुप् छन्द वाले मन्त्रों के पाठपूर्वक दी गयी (**हविषः**) उपासकों की आत्मसमर्पणरूप हवि का (**हविः**) केन्द्र है, उसी (**द्युतानात्**) द्योतमान (**धातुः**) सम्पूर्ण जगत् के धारक, (**सवितुः च**) और सम्पूर्ण जगत् के उत्पादक (**विष्णोः**) सर्वव्यापक परमेश्वर से (**वसिष्ठः**) अतिशय वसुयुक्त अर्थात् विद्या, विनय आदि धन से सम्पन्न विद्वान् मनुष्य (**रथन्तरम्**) आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि से अधिष्ठित शरीर-रथ द्वारा भवसागर को पार कराने वाले ब्रह्मवर्चस को (**आ जभार**) प्राप्त कर लेता है।

रथन्तर साम का भी नाम है जो वसिष्ठ ऋषि से दृष्ट 'अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। (साम० २३३) आदि ऋचा पर गाया जाता है॥५॥

इस मन्त्र में 'प्रथश्च' और 'हवि' की आवृत्ति में यमकालङ्कार तथा उत्तरार्ध में तकार और रेफ की आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास अलंकार है॥५॥

**भावार्थ** :–ध्यान किया हुआ परमेश्वर साधक योगी को वह ब्रह्मवर्चस प्रदान करता है, जिससे वह विषयभोगों की कीचड़ में लिप्त न होता हुआ आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों और शरीर से मोक्ष-साधक कर्मों को करता हुआ भव-सागर पार करके परम् ब्रह्म को पा लेता है॥५॥

अगले मन्त्र का वायुदेवता है। वायु नाम से परमात्मा का आह्वान किया गया है।

६००. नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते।
गन्तासि सुन्वतो गृहम्॥६॥

**पदार्थ** :—हे (वायो) वायु के सदृश अनन्त बल वाले, सबको शुद्ध करने वाले, सबके जीवनाधार, प्राणप्रिय परमात्मन्! (नियुत्वान्) नियन्त्रण और नियोजन के सामर्थ्य वाले आप (आ गहि) मुझे नियन्त्रण में रखने तथा सत्कर्मों में नियुक्त करने के लिए आइए। (अयम्) यह (शुक्रः) पवित्र तथा प्रदीप्त ज्ञान, कर्म और भक्ति का सोमरस (ते) आपके लिए (अयामि) मेरे द्वारा अर्पित है। आप (सुन्वतः) ज्ञान, कर्म और भक्ति का यज्ञ करने वाले यजमान के (गृहम्) हृदय-रूप गृह में (गन्ता) पहुँचने वाले (असि) हो॥६॥

**भावार्थ** :—ज्ञानयज्ञ, कर्मयज्ञ और भक्तियज्ञ सम्मिलित होकर ही परमात्मा की कृपा प्राप्त कराते हैं॥६॥

अगले मन्त्र का देवता इन्द्र है। इसमें यह वर्णन है कि इन्द्र परमात्मा ने ही भूमि और सूर्य को विस्तीर्ण किया है।

६०१. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय।
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम्॥७॥

**पदार्थ** :—हे (अपूर्व्य) अद्वितीय (मघवन्) ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! (यत्) जब, आप (वृत्रहत्याय) सृष्टि के उत्पत्तिकाल में द्यावापृथिवी को फैलाने तथा आकाश में टिकाने में विघ्नभूत मेघों के वध के लिए (जायथाः) तत्पर हुए (तत्) तभी, आपने (पृथिवीम्) भूमि को (अप्रथयः) विस्तीर्ण किया, (उत उ) और (तत्) तभी (दिवम्) सूर्य को (उत् अस्तभ्नाः) आकाश में धारण किया॥७॥

**भावार्थ** :—हमारे सौरमण्डल के जन्म से पूर्व आकाश में जलती हुई गैसों का समूह रूप प्रकाश-पुंजमयी एक नीहारिका थी। हमारी भूमि और अन्य ग्रह उसी से अलग हुए। नीहारिका का बचा हुआ अंश सूर्य कहलाया। नीहारिका से अलग हुई हमारी भूमि भी पहले जलती हुई गैसों का पिण्ड ही थी।

शनैः-शनैः ठण्डी होती हुई वह द्रव रूप को प्राप्त हुई। तब बहुत-सी जलराशि सूर्य के तीव्र ताप से भाप बनकर बादल का रूप धारण कर सूर्य और भूमि के बीच में स्थित हो गयी। तब बादल से किये हुए गाढ़ अन्धकार के कारण भूमि पर सर्वत्र चिरस्थायिनी रात्रि व्याप गयी। सूर्य के ताप का स्पर्श न होने से द्रवरूप भूमि ठण्ड पाकर स्थल रूप को प्राप्त हो गयी। तब ईश्वरीय नियमों से वह विकराल मेघ-राशि बरसकर फिर भूमि पर ही आकर समुद्ररूप में स्थित हो गयी। मेघरूप वृत्र के संहार के पश्चात् स्थलरूप पृथिवी ग्रीष्म, वर्षा आदि विविध ऋतुओं के प्रादुर्भाव से नदी, पर्वत, वनस्पति आदि से युक्त होकर बहुत विस्तीर्ण हो गयी। सूर्य भी अपने आकर्षण के बल से उसे अपने चारों ओर घुमाता हुआ ऊपर आकाश में परमेश्वर की महिमा से बिना ही आधार से स्थित रहा। यही बात इस मन्त्र के शब्दों द्वारा संक्षेप में कही गयी है।

इस दशति में इन्द्र, पवमान, धाता, सविता, विष्णु, वायु नामों से परमेश्वर का स्मरण होने से इसके विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

## तृतीया दशतिः

**ऋषिः—१, ५, ७, १० वामदेवः; २, ३ गोतमः; ४ मधुच्छन्दाः; ६ गृत्समदः; ८, ९ भरद्वाजो बार्हस्पत्यः; ११ हिरण्यस्तूपः; १२, १३ विश्वामित्रः॥ देवता—१ प्रजापतिः; २, ३ पवमानः सोमः; ४–६, १३ अग्निः; ७ रात्रिः; ८ वैश्वानरः; ९ विश्वेदेवाः; १० लिङ्गोक्ताः; ११ इन्द्रः; १२ आत्मा॥ छन्दः—१, ७ अनुष्टुप्; २, ३, ५, ६, ९, ११–१३ त्रिष्टुप्; ४ गायत्री; ८ जगती; १० महापङ्क्तिः॥ स्वरः—१, ७ गान्धारः; २, ३, ५, ६, ९, ११–१३ धैवतः; ४ षड्जः; ८ निषादः; १० पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र का प्रजापति देवता है। प्रजापति परमात्मा, जीवात्मा वा राजा से प्रार्थना की गयी है।

६०२. मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु॥१॥

**पदार्थ** :–(**परमेष्ठी**) सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित (**प्रजापतिः**) ब्रह्माण्ड की सब प्रजाओं का अधिपति परमात्मा, शरीर की मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि प्रजाओं का पति जीवात्मा और राष्ट्र की प्रजाओं का पति राजा (**मयि**) मुझ प्रार्थी में (**वर्चः**) ब्रह्मवर्चस, (**अथ उ**) और (**यशः**) कीर्ति, (**अथ उ**) और (**यज्ञस्य**) उपासना-यज्ञ का अथवा राष्ट्र-यज्ञ का (**यत् पयः**) आनन्दरूप वा समृद्धिरूप जो फल है, उसे (**दृंहतु**) वैसे ही स्थिर करे, (**इव**) जिस प्रकार (**दिवि द्याम्**) प्रजापति परमेश्वर आकाश में सूर्य को, प्रजापति जीवात्मा मस्तिष्क में उज्ज्वल विज्ञान को और प्रजापति राजा राष्ट्र में विद्याप्रकाश को स्थिर करता है॥१॥

इस मन्त्र में श्लेष और उपमा अलंकार हैं॥१॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की कृपा से, आत्मा के पुरुषार्थ से और राजा के **राजधर्मपालन** से मनुष्य ब्रह्मवर्चस, यश और यज्ञानुष्ठान के फल को शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं॥१॥

अगले दो मन्त्रों का पवमान सोम देवता है। इस मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

६०३. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभि-
मातिषाहः। आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि
श्रवांस्युत्तमानि धिष्व॥२॥

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) पवित्रतादायक, करुणारसागार परमात्मन्! (**अभिमातिषाहः**) कामादि शत्रुओं का पराजय करने वाले (**ते**) आपके (**पयांसि**) प्रेमरस और आनन्दरस (**संयन्तु**) हमें प्राप्त हों, (**उ**) और (**वाजाः**) बल (**सम्**) हमें प्राप्त हों, (**वृष्ण्यानि**) पुरुषार्थयुक्त कर्म (**सम्**) हमें प्राप्त हों। (**आप्यायमानः**) हृदय में बढ़ते हुए आप (**अमृताय**) अमरत्व-प्रदान के लिए (**दिवि**) हमारे आत्मा में (**उत्तमानि**)

उत्कृष्टतम ( **श्रवांसि** ) यशों को ( **धिष्व** ) निहित कीजिए॥२॥

यहाँ बढ़ते हुए चन्द्रमा का आकाश में उत्तम चाँदनी को फैलाने का अर्थ ध्वनित हो रहा है। उससे परमात्मा चन्द्रमा के समान है, यह उपमाध्वनि निकलती है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे-जैसे परमात्मा में हमारा ध्यान बढ़ता है, वैसे-वैसे हमारे अन्तःकरण में परमात्मा मानो बढ़ता हुआ हमें आत्मबल, कर्मनिष्ठता और उत्तम यश प्रदान करता है॥२॥

अगले मन्त्र में सोम परमेश्वर की महिमा वर्णित की गयी है।

**६०४. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः। त्वमातनोरुर्वा३न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) सर्वोत्पादक परमात्मन्! ( **त्वम्** ) सर्वशक्तिमान् आपने ( **इमाः** ) इन दृश्यमान ( **विश्वाः** ) सब ( **ओषधीः** ) रोगनिवारक सोमलता आदि ओषधियों को, ( **त्वम्** ) सर्वोपकारी आपने ( **अपः** ) जलों को, ( **त्वम्** ) सब प्राणियों के पालनकर्ता आपने ( **गाः** ) गौओं को ( **अजनयः** ) उत्पन्न किया है। ( **त्वम्** ) सबके विस्तारक आपने ( **उरु** ) विशाल ( **अन्तरिक्षम्** ) अन्तरिक्ष को ( **आतनोः** ) विस्तीर्ण किया है। ( **त्वम्** ) सर्वप्रकाशक आप ( **ज्योतिषा** ) सूर्य की ज्योति से ( **तमः** ) रात्रि के अन्धकार को ( **वि ववर्थ** ) निवारण करते हो॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा द्वारा ही यह चराचररूप सब जगत् उत्पन्न, पालित, पोषित और व्यवस्थित किया जाकर सबको सुख दे रहा है॥३॥

अगले तीन मन्त्रों का अग्नि देवता है। इस मन्त्र में परमात्मा की स्तुति का विषय है।

**६०५. अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥४॥**

**पदार्थ** :—मैं ( **पुरोहितम्** ) जो ध्यानावस्था में सामने स्थित रहता है ऐसे, ( **यज्ञस्य** ) देवपूजा, संगतिकरण और दानरूप

यज्ञ के (देवम्) प्रकाशक, (ऋत्विजम्) ग्रीष्म, वर्षा आदि सब ऋतुओं को संगत करने वाले, अथवा प्रत्येक ऋतु में पूजा करने योग्य, (होतारम्) सुख आदि के देने वाले, (रत्नधातमम्) सद्गुणरूप तथा सोना, चाँदी, हीरे आदि रूप रत्नों के अतिशय दानी (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशमान, प्रकाशक, मलिनता के दाहक, अग्रनायक परमात्मा की (ईडे) पूजा करता हूँ।।४।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर की पूजा के लिए कोई एक ही ऋतु नहीं है, प्रत्युत उसकी सदा सर्वत्र सबको पूजा करनी चाहिए और उससे प्रेरणा तथा बल प्राप्त कर यज्ञ आदि में प्रवृत्त होना चाहिए।।४।।

वेदवाणियाँ परमात्मा का ही यश गाती हैं, यह कहते हैं।

**६०६. ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन्। ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे अग्रनायक परमात्मन्! (ते) प्रसिद्ध विद्वान् जन (नाम) आपके नाम को (प्रथमम्) श्रेष्ठ (अमन्वत) मानते हैं। (गोनां त्रिःसप्त) इक्कीस वेदवाणियाँ, अर्थात् गायत्री आदि इक्कीस छन्दों वाली ऋचाएँ भी (नाम) आपके नाम को (परमम्) श्रेष्ठ (जानन्) जनाती हैं। (जानतीः) आपके नाम को सर्वश्रेष्ठ जनाती हुई (ताः) वे अर्थगर्भित वेदवाणियाँ (यशसा) आपके महिमागान-जनित यश से (अरुणीः) आरोचमान होती हुई (आविर्भुवन्) अध्येताओं के हृदय में प्रकट हो जाती हैं, अपने रहस्यार्थ को खोल देती हैं।।५।।

**भावार्थ** :—वेदवाणियाँ मिलकर जिस परब्रह्म की महिमा को गाते-गाते नहीं थकतीं और जिस यशस्वी परब्रह्म के माहात्म्य-कीर्तन से वे स्वयं भी यशोमयी हो गयी हैं, उसकी महिमा को हम भी क्यों न गायें।।५।।

अगले मन्त्र में नदियों के दृष्टान्त से परमात्मा की महिमा वर्णित है।

६०७. समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति। तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः॥६॥

**पदार्थ** :—( **अन्याः** ) कुछ नदियाँ ( **सं यन्ति** ) एक-दूसरी से मिलकर समुद्र को प्राप्त होती हैं, ( **अन्याः** ) और दूसरी कुछ नदियाँ ( **उपयन्ति** ) स्वतन्त्र रूप से पृथक्-पृथक् समुद्र में पहुँचती हैं। ( **नद्यः** ) वे सभी नदियाँ ( **समानम्** ) एक ही ( **ऊर्वम्** ) समुद्र की अग्नि को ( **पृणन्ति** ) तृप्त करती हैं। इसी प्रकार ( **तम् उ** ) उसी ( **शुचिम्** ) पवित्र ( **दीदिवांसम्** ) देदीप्यमान, ( **अपाम्** ) आप्त प्रजाओं को ( **नपातम्** ) पतित न करने वाले, प्रत्युत उन्नत करने वाले परमात्मारूप अग्नि को ( **आपः** ) आप्त प्रजाएँ ( **उपयन्ति** ) प्राप्त होती हैं॥६॥

इस मन्त्र में व्यङ्ग्य-साम्य वाले दो वाक्यों में एक ही सामान्य धर्म 'पृणन्ति' और 'उपयन्ति' इन पृथक्-पृथक् शब्दों से वर्णित होने के कारण प्रतिवस्तूपमा अलंकार है। 'सम, समा', 'न्या, न्या', 'यन्त्यु, यन्त्य', 'पयन्त्य, पयन्त्या' में छेकानुप्रास है॥६॥

**भावार्थ** :—जैसे व्याप्त नदियाँ एक ही समुद्र को भरती हैं, वैसे ही आप्त प्रजाएँ एक ही परमात्मा को प्राप्त होती हैं॥६॥

अगले मन्त्र का रात्रि देवता है। रात्रिरूप युवति का वर्णन है।

६०८. आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति। अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री॥७॥

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) रात्रि के पक्ष में। ( **भद्रा** ) सुखदायिनी ( **युवतीः** ) रात्रिरूप युवति ( **आ प्रागात्** ) भले प्रकार आयी है, ( **अह्नः** ) दिन की ( **केतून्** ) किरणों को ( **समीर्त्सति** ) समेट रही है। यह ( **रात्री** ) रात्रिरूप युवति ( **विश्वस्य** ) सम्पूर्ण ( **जगतः** ) संसार की ( **निवेशनी** ) विश्रामदायिनी और ( **भद्रा** ) कल्याणकारिणी ( **अभूत्** ) हुई है।

( **द्वितीय** ) योगनिद्रा के पक्ष में। ( **भद्रा** ) सुखदायिनी

(**युवतिः**) योगनिद्रारूप युवति (**आ प्रागात्**) शीघ्र ही योगमार्ग में आयी है, (**अह्नः**) सांसारिक विषयभोग रूप दिन के (**केतून्**) प्रभावों को (**समीर्त्संति**) संकुचित कर रही है। यह (**रात्री**) समाधिदशा रूप योगनिद्रा (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण (**जगतः**) क्रियामय मनोव्यापार को (**निवेशनी**) सुलाने वाली और इसीलिए (**भद्रा**) आनन्दजनक (**अभूत्**) हुई है।।७।।

इस मन्त्र में रात्रि में युवतित्व के आरोप के कारण रूपकालंकार है। तात्पर्य यह है कि जैसे कोई युवति घर में इधर-उधर बिखरी हुई वस्तुओं को समेटती है और पति के लिए सुखदायिनी और विश्रामदायिनी होती है, वैसे ही यह रात्रि दिन में बिखरी किरणों को समेटती है और सबके लिए विश्रामदायिनी होती है।।७।।

**भावार्थ** :–रात्रि के समान योगसमाधिरूप निद्रा योगियों के लिए भद्र, आह्लाददायक और विश्रामदायिनी होती है।।७।।

देवता वैश्वानर अग्नि है। परमेश्वर के प्रति स्तुतिवचनों को प्रवृत्त करने का वर्णन है।

**६०९. प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो**
**विदथा जातवेदसे। वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः**
**सोमइव पवते चारुरग्नये ॥८॥**

**पदार्थ** :–(**प्रक्षस्य**) सब पदार्थों से संपृक्त अर्थात् सर्वव्यापक, (**वृष्णः**) सुख आदि की वर्षा करने वाले, (**अरुषस्य**) दीप्तिमान् परमात्मा का (**नु**) निश्चय ही (**महः**) अत्यन्त महत्त्व व पूज्यत्व है। (**विदथा**) ज्ञानयज्ञ में (**जातवेदसे**) सब उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता वैश्वानर परमात्मा के लिए (**नः वचः**) हमारा स्तुति-वचन (**प्र**) भलीभाँति प्रवृत्त होता है। और, (**नव्यसे**) अतिशय नवीन (**वैश्वानराय**) सब जनों का हित करने वाले (**अग्नये**) उस अग्रनायक परमात्मा के लिए, हमारी (**शुचिः**) पवित्र (**चारुः**) रमणीय (**मतिः**) बुद्धि, विचारधारा (**पवते**) प्रवृत्त हो रही है, (**इव**) जैसे (**शुचिः**) पवित्र (**चारुः**) मनोहर (**सोमः**) सोम ओषधि का रस (**पवते**) द्रोणकलश में

जाने के लिए प्रवाहित होता है, अथवा जैसे (**शुचिः**) चमकीला, (**चारुः**) आह्लादकारी (**सोमः**) चन्द्रमा (**वैश्वानराय**) सूर्य की परिक्रमा करने के लिए (**पवते**) अन्तरिक्ष में गति करता है॥८॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥८॥

**भावार्थ** :—सर्वान्तर्यामी, सुखवर्षक, तेजस्वी, सर्वज्ञ, सब जनों के हितकर्ता, मार्गदर्शक परमेश्वर के प्रति उत्तम स्तोत्र सबको प्रवृत्त करने चाहिएँ॥८॥

अगले मन्त्र के देवता विश्वेदेवाः हैं। उनके प्रति कहा जा रहा है।

**६१०. विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म। मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम॥९॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) अध्यात्म-पक्ष में। (**विश्वे देवाः**) ज्ञानप्रकाशक शरीरस्थ सब मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय रूप देव, (**उभे रोदसी**) प्राण-अपान दोनों, (**अपां नपात् च**) और प्राणों को पतित न होने देने वाला जीवात्मा तथा परमेश्वर (**मम**) मेरे (**यज्ञम्**) विषय और इन्द्रियों के संसर्ग से प्राप्त होने वाले (**मन्म**) विज्ञान को (**शृण्वन्तु**) पूर्ण करें। हे शरीरस्थ देवो! (**वः**) तुम्हारे लिए, मैं (**परिचक्ष्याणि**) निन्दनीय (**वचांसि**) वचनों को (**मा वोचम्**) न बोलूँ—'अहो, मेरा मन कुण्ठित हो गया है, बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, इन्द्रियाँ अशक्त हो गयी हैं' इत्यादि प्रकार से निराशाभरे वचन न कहूँ, प्रत्युत तुम्हारी शक्ति का गुणगान करते हुए तुम्हारे पास से अधिकाधिक लाभ प्राप्त करूँ। हम सभी (**वः**) तुम्हारे (**अन्तमाः**) निकटतम होकर (**सुम्नेषु**) तुम्हारे दिये हुए सुखों में (**मदेम**) तृप्त होवें।

(**द्वितीय**) राष्ट्र-पक्ष में। (**विश्वे देवाः**) सब विद्वान् लोग, (**उभे रोदसी**) दोनों राज-परिषदें अर्थात् सभा और समिति (**अपां नपात् च**) और प्रजाओं का पतन न होने देने वाला राजा (**मम**) मेरे (**यज्ञम्**) राष्ट्रयज्ञ-विषयक (**मन्म**) विचार को (**शृण्वन्तु**) सुनें। हे उक्त देवो! (**वः**) तुम्हारे लिए, मैं

**( परिचक्ष्याणि )** निन्दायोग्य **( वचांसि )** वचन **( मा वोचम् )** न बोलूँ। हम **( वः )** तुम्हारे **( अन्तमाः )** निकटतम रहते हुए **( सुम्नेषु )** तुम्हारे दिये हुए सुखों में **( मदेम )** आनन्दित रहें।।९।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।९।।

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि शरीरस्थ देव आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण व इन्द्रियों की और राष्ट्रस्थ देव विद्वज्जन, राजमन्त्री, न्यायाधीश, राजा आदि की सहायता से सब प्रकार के उत्कर्ष को प्राप्त करें।।९।।

अगले मन्त्र में मन्त्रोक्त द्यावापृथिवी आदि देवता हैं। इसमें यश की प्रार्थना की गयी है।

१ ३ ३ १ २ ३ १ ३र ३ २<br>
**६११. यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती।**<br>
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २<br>
**यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रतिमुच्यताम्।**<br>
३ २ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २<br>
**यशस्व्या३स्याः संसदोऽहं प्रवदिता स्याम्॥१०॥**

**पदार्थ** :–**( द्यावापृथिवी )** सूर्य-भूमि, प्राण-अपान, पिता-माता, सभा-समिति **( मा )** मुझे **( यशः )** कीर्ति प्राप्त करायें। **( इन्द्रबृहस्पती )** विद्युत्-वायु, परमात्मा-जीवात्मा, क्षत्रिय-ब्राह्मण **( मा )** मुझे **( यशः )** कीर्ति प्राप्त करायें। **( भगस्य )** चाँदी-सोना-मणि-मोती आदि रूप, सत्य-अहिंसा-अस्तेय-ज्ञान-वैराग्य आदि रूप, सुराज्य-चक्रवर्ती-राज्य आदि रूप धन की **( यशः )** कीर्ति **( विन्दतु )** मुझे प्राप्त हो। **( यशः )** सब प्रकार की कीर्ति **( मा )** मुझे **( प्रतिमुच्यताम् )** धारण करे। **( अहम् )** मैं **( अस्याः )** इस **( संसदः )** संसत् का **( यशस्वी )** यशस्वी **( प्रवदिता )** वक्ता **( स्याम् )** होऊँ।।१०।।

इस मन्त्र में 'यशः' शब्द की पुनः-पुनः आवृत्ति से यश की अत्यन्त स्पृहणीयता सूचित होती है। 'यशो' की चार बार तथा 'यशो मा' की दो बार आवृत्ति में लाटानुप्रास अलंकार है।।१०।।

**भावार्थ** :–जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य-भूमि, शरीर में प्राण-अपान, समाज में माता-पिता और राष्ट्र में सभा-समिति अपने-अपने यश से भासित हैं और जैसे परमात्मा-जीवात्मा, बिजली-वायु

और ब्राह्मण-क्षत्रिय का यश सर्वत्र फैला हुआ है, वैसे ही हम भी धन, धान्य, ज्ञान, स्वास्थ्य, दीर्घायु, चक्रवर्ती राज्य, अध्यात्म-योग आदि की सम्पदाओं से परम कीर्तिमान् और विविध सभाओं के यशस्वी वक्ता होवें॥१०॥

अगले मन्त्र का देवता इन्द्र है। इन्द्र नाम से परमात्मा, राजा आदि के पराक्रमों का वर्णन है।

**६१२. इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री। अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्॥११॥**

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) परमात्मा, सूर्य और विद्युत् के पक्ष में। में (**इन्द्रस्य**) वीर परमात्मा, पदार्थों को अवयव रूप में विच्छिन्न करने वाले सूर्य और परमैश्वर्य की साधनभूत विद्युत् के (**नु**) शीघ्र (**वीर्याणि**) क्रमशः सृष्टि के उत्पत्त-स्थिति-संहाररूप, आकर्षण-प्रकाशन आदि रूप और भूयान, जलयान, अन्तरिक्षयान तथा विविध यन्त्रों के चलाने रूप वीरता के कर्मों का (**प्र वोचम्**) वर्णन करता हूँ, (**यानि प्रथमानि**) जिन उत्कृष्ट कर्मों को, वह (**वज्री**) शक्तिधारी (**चकार**) करता है। उन्हीं वीरता के कर्मों में से एक का कथन करते हैं—वह परमात्मा, वह सूर्य और वह विद्युत् (**अहिम्**) अन्तरिक्ष में स्थित बादल का (**अहन्**) संहार करता है, (**अपः**) बादल में स्थित जलों को (**अनु ततर्द**) तोड़-तोड़कर नीचे गिराता है, (**पर्वतानाम्**) पहाड़ों की (**वक्षणाः**) नदियों को (**प्र अभिनत्**) बर्फ तोड़-तोड़ कर प्रवाहित करता है।

(**द्वितीय**)—राष्ट्र के पक्ष में। (**इन्द्रस्य**) शत्रुविदारक राजा के (**नु**) शीघ्र ही (**वीर्याणि**) शत्रुविजय, राष्ट्रनिर्माण आदि वीरतापूर्ण कर्मों को (**प्र वोचम्**) भली-भाँति वर्णित करता हूँ, (**यानि प्रथमानि**) जिन श्रेष्ठ कर्मों को (**वज्री**) तलवार, बन्दूक, तोप, गोले आदि शस्त्रास्त्रों से युक्त वह (**चकार**) करता है। वह (**अहिम्**) साँप के समान टेढ़ी चाल वाले, विषधर, राष्ट्र की उन्नति में बाधक शत्रु का (**अहन्**) संहार

करता है, (**अपः**) जलों के समान उमड़ने वाले शत्रु-दलों को (**ततर्द**) छीलता है, (**पर्वतानाम्**) किलों की (**वक्षणाः**) सेनाओं को (**अभिनत्**) छिन्न-भिन्न करता है॥११॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। अहन्, अनुततर्द, प्राभिनत् इन अनेक क्रियाओं में एक कारक का योग होने से दीपकालंकार भी है॥११॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर सूर्य द्वारा अथवा आकाशीय बिजली द्वारा मेघ का संहार कर रुके हुए जलों को नीचे बरसाता और नदियों को बहाता है, वैसे ही राष्ट्र का राजा विघ्नकारी शत्रुओं को मार कर, किलों में भी स्थित सेनाओं को हरा कर राष्ट्र में सब ऐश्वर्यों को प्रवाहित करे॥११॥

अगले दो मन्त्रों का अग्नि देवता है। इस मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा अपना परिचय दे रहे हैं।

**६१३. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽजस्रं ज्योतिर्हविरस्मि सर्वम्॥१२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। मैं परमात्मा (**अग्निः अस्मि**) सबका अग्रनायक और अग्नि के समान प्रकाशक होने से अग्नि नाम वाला हूँ, (**जन्मना**) स्वरूप से ही (**जातवेदाः**) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, वेदों का प्रकाशक तथा सब धनों का उत्पादक हूँ। (**मे**) मेरी (**चक्षुः**) आँख अर्थात् देखने की शक्ति (**घृतम्**) अत्यन्त तीव्र है। (**मे**) मेरे (**आसन्**) मुख में (**अमृतम्**) अमृत है, मैं सदा अमृतत्व का आस्वादन करता रहता हूँ अर्थात् अमर हूँ। मैं (**त्रिधातुः**) जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा संहार रूप तीनों क्रियाओं को करने वाला हूँ, मैं (**अर्कः**) अर्चनीय हूँ। मैं (**रजसः**) सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथिवी आदि लोकों का (**विमानः**) निर्माता अथवा अधिष्ठाता, (**अजस्रं ज्योतिः**) अक्षय तेज वाला, (**हविः**) सबका आह्वानयोग्य, और (**सर्वम्**) सर्वशक्तिमान् (**अस्मि**) हूँ।

यहाँ 'मैं अमर हूँ' इस व्यङ्ग्यार्थ को ही 'मेरे मुख में

अमृत है' इस रूप में अभिहित करने से पर्यायोक्त अलंकार है।

**( द्वितीय )** जीवात्मा के पक्ष में। शरीरधारी जीवात्मा कह रहा है–मैं **( अग्निः अस्मि )** आग हूँ, आग के समान प्रकाशक तथा दुर्गुणों और दुर्जनों को भस्म करने वाला हूँ, **( जन्मना )** आचार्य के गर्भ से द्वितीय जन्म पाने के आरम्भ से ही **( जातवेदाः )** वेदविद्या का विद्वान् हूँ। **( मे चक्षुः )** मेरी आँख में **( घृतम् )** स्नेह है, अर्थात् मैं सबको स्नेहयुक्त आँख से देखता हूँ। **( मे आसन् )** मेरे मुख में **( अमृतम् )** अमृत अर्थात् वाणी का माधुर्य है। मैं **( त्रिधातुः )** सत्त्व–रजस्–तमस्, जाग्रत्–स्वप्न–सुषुप्ति, तप–स्वाध्याय–ईश्वरप्रणिधान, ऋग्–यजुः –साम आदि त्रिगणों से युक्त हूँ। मैं **( अर्कः )** परमेश्वर की अर्चना करने वाला, सदाचारी तथा विद्यावृद्धों एवं वयोवृद्धों का सत्कार करने वाला और सूर्य के समान तेजस्वी हूँ। मैं **( रजसः )** ग्रह–उपग्रह, सूर्य आदि लोकों को **( विमानः )** खगोल–गणित द्वारा मापने आदि में समर्थ, **( अजस्रं ज्योतिः )** अक्षय ज्योति वाला, **( सर्वं हविः )** श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने वाला **( अस्मि )** हूँ॥१२॥

इस मन्त्र में 'अग्निः अस्मि, अर्कः अस्मि', 'मैं आग हूँ, मैं सूर्य हूँ' इस अर्थ में रूपकालंकार है। 'अजस्रं ज्योतिः' की अजस्र ज्योति वाले' में और 'सर्वं हविः' की 'सर्वस्व हवि देने वाले' में लक्षणा है। निरुक्तप्रोक्त त्रिविध ऋचाओं परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत तथा आध्यात्मिक में से यह ऋचा आध्यात्मिक है॥१२॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर के समान मनुष्य का आत्मा भी बहुत–से विशिष्ट गुणों वाला तथा महाशक्तिसम्पन्न है। अतः उसे चाहिए कि महत्त्वाकांक्षी होकर महान् कर्मों में कदम रखे॥१२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा का वर्णन है।

६१४. **पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य।**
**पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमाद**
**मृष्वः॥१३॥**

**पदार्थ** :–**( विपः )** मेधावी **( अग्निः )** अग्रनायक जगदीश्वर

(वेः) पक्षी की अथवा वेगवान् पवन की (अग्रम्) अग्रगामी (पदम्) उड़ान की (पाति) रक्षा करता है। (यह्वः) वही महान् जगदीश्वर (सूर्यस्य) सूर्य के (चरणम्) संवत्सरचक्रप्रवर्तन आदि व्यापार की (पाति) रक्षा करता है। (अग्निः) वही अग्रगन्ता जगदीश्वर (नाभा) केन्द्र-भूत हृदय अथवा मस्तिष्क में (सप्तशीर्षाणम्) मन, बुद्धि तथा पंच ज्ञानेन्द्रिय रूप सात शीर्षस्थ प्राणों के स्वामी जीवात्मा की (पाति) रक्षा करता है। (ऋष्वः) वही दर्शनीय जगदीश्वर (देवानाम्) विद्वानों के (उपमादम्) यज्ञ की (पाति) रक्षा करता है॥१३॥

इस मन्त्र में 'पाति' की अनेक बार आवृत्ति में लाटानुप्रास अलंकार है। पुनः-पुनः 'पाति' कहने से यह सूचित होता है कि इसी प्रकार अन्यों के भी कर्मों की जगदीश्वर रक्षा करता है। पूर्वार्ध में पठित भी 'अग्निः' पद को उत्तरार्ध में पुनः पठित करने से यह सूचित होता है कि उत्तरार्ध की अर्थयोजना पृथक् करनी है॥१३॥

**भावार्थ** :--जगदीश्वर ही सूर्य, वायु, पृथिवी, चन्द्र आदि के, जीवात्मा, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि के और सब विद्वान् लोगों के यज्ञमय व्यापार का रक्षक होता है॥१३॥

इस दशति में प्रजापति, सोम, अग्नि, अपांनपात् एवं इन्द्र नामों से जगदीश्वर की महिमा का वर्णन होने से, तेज और यश की प्रार्थना होने से तथा दिव्य रात्रि का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्वदशति के विषय के साथ संगति है॥

## चतुर्थी दशतिः

**ऋषिः—१, २, ८-१२ वामदेवः; ३-७ नारायणः॥ देवता—१ अग्निः; २ ऋतुः; ३-७ पुरुषः; ८ द्यावापृथिवी; ९, ११ इन्द्रः; १० आत्मन आशीः; १२ गौः॥ छन्दः—१, २ पङ्क्तिः; ३-७, ९, १० अनुष्टुप्; ८,११, १२ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, २ पञ्चमः; ३-७, ९, १० गान्धारः; ८, ११, १२ धैवतः॥**

प्रथम ऋचा का अग्नि देवता है। अग्नि नाम से परमेश्वर, आचार्य और राजा को सम्बोधित किया गया है।

६१५. भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः॥१॥

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**समिधान**) अतिशय प्रकाशयुक्त, (**दीदिवः**) सबको प्रकाशित करने वाले (**अग्ने**) जगन्नायक परमात्मन्! आपकी कृपा से (**आसनि अन्तः**) हमारे मुख के अन्दर (**भ्राजन्ती**) शोभित होती हुई (**जिह्वा**) जीभ (**चरति**) रसों का स्वाद लेती और शब्दों का उच्चारण करती है। (**सः**) वह (**वसुवित्**) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले (**त्वम्**) आप, हे (**अग्ने**) परमात्मन्! (**नः**) हमें (**पयसा**) जल, दूध, घी आदि रस के साथ (**रयिम्**) धन को, और (**दृशे**) कर्त्तव्याकर्त्तव्य के दर्शन के लिए (**वर्चः**) ज्ञान रूप तेज (**दाः**) प्रदान किये हुए हो।।

(**द्वितीय**) आचार्य के पक्ष में। आचार्य रूप अग्नि में स्वयं को आहुत करने के लिए गुरुकुल में आये हुए समित्पाणि शिष्य कर रहे हैं–हे (**समिधान**) स्वयं ज्ञान से प्रदीप्त तथा (**दीदिवः**) शिष्यों को ज्ञान से प्रदीप्त करने वाले (**अग्ने**) विद्वान् आचार्यप्रवर! आपके (**आसनि अन्तः**) मुख के अन्दर (**भ्राजन्ती**) शास्त्रों का उपदेश देने के कारण यश से जगमगाती हुई (**जिह्वा**) जीभ (**चरति**) शब्दों के उच्चारण के लिए तालु, दन्त आदि स्थानों में विचरती है। (**सः**) वह महिमाशाली, (**वसुवित्**) विविध विद्याधनों को प्राप्त कराने वाले (**त्वम्**) आप, हे (**अग्ने**) आचार्यवर! (**नः**) हमारे (**दृशे**) कर्त्तव्य-दर्शन के लिए (**पयसा**) वेदज्ञान रूप दूध के साथ (**रयिम्**) सदाचार की सम्पदा को, और (**वर्चः**) ब्रह्मवर्चस को (**दाः**) हमें प्रदान कीजिए।।

(**तृतीय**) राजा के पक्ष में। सिंहासन पर चढ़े हुए राजा के प्रति प्रजाजन कह रहे हैं–हे (**समिधान**) राजोचित प्रताप से देदीप्यमान, (**दीदिवः**) प्रजाओं को यश से प्रदीप्त करने वाले (**अग्ने**) अग्रनायक राजन्! (**आसनि अन्तः**) आपके धनुष पर (**भ्राजन्ती**) दमकती हुई (**जिह्वा**) डोरी (**चरति**) चलती है अर्थात् खिंचती, छूटती और बाणों को फेंकती है। (**सः**)

वह (**वसुवित्**) प्रजाओं को निवास प्राप्त कराने वाले (**त्वम्**) आप, हे (**अग्ने**) अग्नि के समान जाज्वल्यमान राष्ट्राधिपति! (**दृशे**) राष्ट्र की ख्याति के लिए, प्रजा को (**पयसा**) दूध आदि रसों के साथ (**रयिम्**) धन, धान्य आदि सम्पदा और (**वर्चः**) ब्राह्म तेज (**दाः**) प्रदान कीजिए।

(**चतुर्थ**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। यजमान कह रहे हैं—हे (**समिधान**) प्रज्वलित, (**दीदिवः**) याज्ञिक को तेज से प्रज्वलित करने वाले (**अग्ने**) यज्ञाग्नि! (**आसनि अन्तः**) यज्ञकुण्ड रूप मुख के अन्दर (**भ्राजन्ती**) जगमगाती हुई (**जिह्वा**) तेरी ज्वाला रूप जीभ (**चरति**) लपलपाती है। (**सः**) वह (**वसुवित्**) हविरूप धन को प्राप्त करने वाला (**त्वम्**) तू हे (**अग्ने**) यज्ञाग्नि! (**पयसा**) वर्षाजल के साथ (**रयिम्**) सस्य-सम्पदा रूप तथा बल, बुद्धि, दीर्घायु आदि रूप धन को तथा (**दृशे**) देखने के लिए (**वर्चः**) प्रकाश को (**दाः**) प्रदान कर॥

मुण्डक उपनिषद् के ऋषि ने अग्नि की **जिह्वाएँ इस प्रकार वर्णित हैं—काली, कराली, मन जैसे वेग वाली, अत्यन्त लाल,** धुमैले रंग **की, चिनगारियाँ छोड़ने वाली और सब रंगों वाली** ज्वालाएँ ये अग्नि की **सात** लपलपाती जिह्वाएँ हैं। (मु० २।४) अग्नि के मुख और जिह्वाओं का वर्णन करने के कारण यज्ञाग्निपरक अर्थ में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर मनुष्यों को जल, दूध, घी, ज्ञान आदि और यज्ञाग्नि वृष्टि, जल, बल, बुद्धि, दीर्घायुष्य आदि देता है, वैसे ही आचार्य को शिष्यों के लिए वेदविद्या, सदाचार, ब्रह्मतेज आदि प्रदान करना चाहिए और राजा को राष्ट्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों की उन्नति द्वारा प्रजाओं को सुखी करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र का ऋत देवता है। ऋतुओं की रमणीयता प्रतिपादित की गयी है।

३ १ २र ३ १ २र
**६१६. वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः।**
३ १ २र ३१ २ ३ १ २र ३ १ २र
**वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिरः इन्नु रन्त्यः॥२॥**

**पदार्थ** :–परमेश्वर की सृष्टि में (**वसन्तः**) वसन्त ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) रमणीय है, (**ग्रीष्मः**) ग्रीष्म ऋतु (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) रमणीय है। (**वर्षाणि अनु**) वर्षा-दिनों के अनन्तर (**शरदः**) शरद् ऋतु के दिवस, और (**हेमन्तः**) ऋतु भी, रमणीय है। (**शिशिरः**) शिशिर ऋतु भी (**इत् नु**) निश्चय ही (**रन्त्यः**) रमणीय है॥२॥

इस मन्त्र में 'इन्नु रन्त्यः' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :–जो लोग परमेश्वर-विश्वासी होते हैं वे प्रत्येक ऋतु को रमणीय और आह्लाददायक मानते हुए उससे उत्पादित आनन्द को अनुभव करते हैं। किन्तु जो लोग 'अहह, ग्रीष्मऋतु बड़ी संतापक है, वर्षा ऋतु में कीचड़ हो जाती है, हेमन्त का शीत बड़ा कष्टदायक होता है' इत्यादि प्रकार से दोष खोजते हुए सभी ऋतुओं को धिक्कारते हैं, वे निश्चय ही अभागे हैं॥२॥

अगले पाँच ऋचाओं का पुरुष देवता है। परम पुरुष परमात्मा का वर्णन करते हैं।

**६१७. सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।**
**स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**पुरुषः**) सबका अग्रनेता, सब जगत् में परिपूर्ण और सबका पालनकर्ता परमेश्वर (**सहस्रशीर्षाः**) सहस्रों सिरों वाला अर्थात् अनन्तज्ञानी, (**सहस्राक्षः**) सहस्रों आँखों वाला अर्थात् सर्वद्रष्टा, और (**सहस्रपात्**) सहस्रों पैरों वाला अर्थात् सर्वत्र व्याप्त है। (**सः**) वह (**भूमिम्**) पृथिवी को (**सर्वतः**) सब ओर से (**वृत्वा**) घेरकर (**दशाङ्गुलम्**) दसों इन्द्रियों को (**अति**) अतिक्रान्त करके (**अतिष्ठत्**) स्थित है, अर्थात् दसों इन्द्रियों की पहुँच से परे है। कहा भी है–न वहाँ आँख की पहुँच है, न वाणी की, न मन की॥३॥ (केन उप० १।३)

यास्काचार्य पुरुष शब्द का निर्वचन करते हुए लिखते हैं–पुरी में बैठने से या पुरी में शयन करने से पुरुष कहाता है (पुरिसद् या पुरिश=पुरुष) अथवा यह वृद्ध्यर्थक पूरी धातु से निष्पन्न हुआ (पूरी आप्यायने)। अन्तःपुरुष परमात्मा को पुरुष

इस कारण कहते हैं, क्योंकि वह सारे ब्रह्माण्ड को अपनी सत्ता से पूर्ण किये हुए हैं। कहा भी है, "जिससे अधिक पर या अपर कोई वस्तु नहीं है, जिससे अधिक अणु या महान् कोई वस्तु नहीं है। वह एक पुरुष परमेश्वर वृक्ष के समान निश्चल होकर अपने तेजःस्वरूप में स्थित है, उस पुरुष से यह सकल ब्रह्माण्ड परिपूर्ण है।" (निरु० २।३)।

इस मन्त्र में सहस्र सिर वाला होने आदि रूप तथा भूमि में सर्वत्र व्यापक होने रूप कारण के विद्यमान होते हुए भी इन्द्रियगोचर होने रूप कार्य की उत्पत्ति न होने से विशेपोक्ति अलंकार है।।३।।

**भावार्थ** :-सबको उचित है कि सर्वज्ञाता, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, सर्वत्र भूगोल को व्याप्त करके स्थित तथापि वाणी, आँख, कान, हाथ, पैर आदि की पहुँच से परे विद्यमान परमपुरुप परमात्मा का साक्षात्कार करके अनन्त सुख का भोग करें।।३।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी परमपुरुप का वर्णन है।

**६१८. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।**
**तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि॥४॥**

**पदार्थ** :-(**त्रिपात्**) तीन-चौथाई अंशवाला (**पुरुषः**) पूर्वोक्त परमेश्वर (**ऊर्ध्वः उत् ऐत्**) इस जगत् से ऊपर उठा हुआ है (**इह पुनः**) इस जगत् में तो (**अस्य**) इस पूर्ण परमेश्वर का (**पादः**) एक-चतुर्थांश ही (**अभवत्**) विद्यमान है। (**तथा**) उसी प्रकार से अर्थात् एक-चतुर्थांश की ही व्याप्ति से (**वि-स्वङ्**) विविध पदार्थों में सम्यक् प्राप्त हुआ वह (**अशनानशने अभि**) चेतन-अचेतन को लक्ष्य करके (**व्यक्रामत्**) विविध रूप से चेष्टा कर रहा है, अर्थात् मनुष्य आदि प्राणियों तथा अग्नि, सूर्य, पवन, पर्वत, नदी आदि चेतन-अचेतन के यथायोग्य प्राणन आदि व्यापार को तथा स्थिति आदि व्यापार को कर रहा है।।४।।

**भावार्थ** :-इस चेतन-अचेतन-रूप जगत् में जो महान् कर्तृत्व

दृष्टिगोचर हो रहा है, उसमें परमेश्वर के सामर्थ्य का थोड़ा-सा अंश ही क्रियाशील है, परमेश्वर का वास्तविक सामर्थ्य और स्वरूप तो लोकातिक्रान्त है।।४।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी परम पुरुष का वर्णन है।

१ २ ३२उ ३ २ ३२उ ३ १ २
**६१९. पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।**
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥५॥**

**पदार्थ** :-(**पुरुषः एव**) सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर ही (**इदम्**) इस प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष-रूप (**सर्वम्**) सब (**यद् भूतम्**) जो उत्पन्न हो चुका है, (**यत् च भाव्यम्**) और जो भविष्य में उत्पन्न होने वाला है, उस सबका अधिष्ठाता है। (**सर्वा**) सब (**भूतानि**) उत्पन्न सूर्य, पृथिवी आदि (**अस्य**) इस पुरुष परमेश्वर की महिमा के (**पादः**) चतुर्थांश-मात्र हैं, (**अस्य**) इस जगत्स्रष्टा की महिमा का (**त्रिपात्**) तीन-चौथाई रूप (**अमृतम्**) विनाशरहित है, जो (**दिवि**) प्रकाशमान मोक्षलोक में मुक्तात्माओं से अनुभव किया जाता है।।५।।

**भावार्थ** :-भूत, वर्तमान और भावी सब पदार्थों को परमात्मा ही रचता है, और उनकी व्यवस्था करता है। परमात्मा का भौतिक लोकों से अतिक्रान्त तात्त्विक स्वरूप चर्म-चक्षु से नहीं, प्रत्युत आन्तरिक चक्षु से ही देखा जा सकता है।।५।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी परमपुरुष की महिमा का वर्णन है।।

१ २ ३२उ ३ १ ३ ३ १ २
**६२०. तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः।**
३ १ २ ३ १ २र ३ १ ३र ३ १ २
**उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥६॥**

**पदार्थ** :-(**तावान्**) उतनी पूर्वोक्त (**अस्य**) इस परमेश्वर की (**महिमा**) महिमा है, वस्तुतः तो (**पुरुषः**) वह पूर्ण परमेश्वर (**ततः**) उससे भी (**ज्यायान्**) अधिक बड़ा है। (**उत**) और (**सः**) वह (**अमृतत्वस्य**) मोक्ष का तथा (**यत्**) जो (**अन्नेन**) अन्न के खाने से (**अतिरोहति**) बढ़ता है उस सांसारिक प्राणी-समुदाय का भी (**ईशानः**) अधिष्ठाता है।।६।।

**भावार्थ** :-परमेश्वर की महिमा अवर्णनीय है, जो संसार-

चक्रप्रवर्तन और मोक्ष दोनों का अधिष्ठाता है॥६॥

अगले मन्त्र में परमपुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति वर्णित है।

**६२१. ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।**
**स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥७॥**

**पदार्थ** :-( **ततः** ) उसी निमित्तकारणभूत परम पुरुष परमेश्वर से ( **विराट्** ) विशेषरूप से देदीप्यमान पिण्ड ( **अजायत** ) उत्पन्न हुआ ( **पूरुषः** ) वह सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर ही ( **विराजः अधि** ) उस विशेषरूप से देदीप्यमान पिण्ड का अधिष्ठाता था। ( **जातः सः** ) उत्पन्न हुआ वह विराट् पिण्ड ( **अत्यरिच्यत** ) भूमि आदि खण्डों में बँट गया। वह परमेश्वर ( **भूमिम्** ) भूमि आदि लोकों की उत्पत्ति के ( **पश्चात्** ) पश्चात् ( **अथ उ** ) और ( **पुरः** ) पूर्व भी विद्यमान था॥७॥

**भावार्थ** :-हमारे सौरमण्डल का जन्म कैसे हुआ यह इस मन्त्र में वर्णित किया गया है। प्रारम्भ में विशाल नीहारिका-रूप देदीप्यमान एक पिण्ड उत्पन्न हुआ। आकाश में वेग के साथ घूमते हुए उसमें से कुछ टुकड़े अलग हो गये। बचा भाग सूर्य हुआ और टूटकर अलग हुए खण्ड भूमि, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि हो गये। इसी प्रकार अन्य सौरमण्डलों की भी उत्पत्ति हुई, यह जानना चाहिए। यह सब परमात्मा के अधिष्ठातृत्व में ही सम्पन्न हुआ॥७॥

अगली ऋचा का द्यावापृथिवी देवता है। माता-पिता से प्रार्थना की गयी है।

**६२२. मन्ये वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथाममित-**
**मभि योजनम्। द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो**
**मुञ्चतमंहसः॥८॥**

**पदार्थ** :-हे ( **द्यावापृथिवी** ) भूमि-आकाश के सदृश माता-पिताओ अथवा अध्यापिका-उपदेशिकाओ! मैं ( **वाम्** ) तुम दोनों को ( **सुभोजसौ** ) शुभ पालनकर्ता ( **मन्ये** ) जानता

हूँ, (ये) जो तुम दोनों (अमितं योजनम् अभि) अपरिमित योजन पर्यन्त (अप्रथेथाम्) यश से प्रख्यात हो। हे (द्यावापृथिवी) पृथिवी और सूर्य के तुल्य माता-पिताओ अथवा अध्यापिका-उपदेशिकाओ! तुम हमारे लिए (स्योने) सुखदायक (भवतम्) होवो। (ते) वे तुम दोनों (नः) हमें (अंहसः) पाप से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ॥८॥

**भावार्थ** :—माता-पिताओं और अध्यापिका-उपदेशिकाओं के पास से उत्तम विद्या और उत्तम उपदेश प्राप्त कर सन्तान श्रेष्ठ ज्ञानी, शुभ कर्म करने वाले और निष्पाप होवें॥८॥

अगले मन्त्र का देवता इन्द्र है। इन्द्र नाम से परमात्मा का वर्णन है।

**६२३. हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी।**
**तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यशाली परमात्मन्! (ते) तेरी रचित (श्मश्रूणि) मूँछों के समान प्रतीत होने वाली सूर्यकिरणें (हरी) मलिनताओं को हरने वाली हैं, (उत) और (ते) तेरी रचित (हरितौ) पूर्व-पश्चिमरूप, उत्तर-दक्षिणरूप अथवा ध्रुवा-ऊर्ध्वारूप दिशाएँ (हरी) मलिनता को हरने वाली हैं। (तं त्वा) उस तेरी (वनर्गवः) वनगामी वानप्रस्थ (कवयः पुरुषासः) मेधावी पुरुष (स्तुवन्ति) स्तुति करते हैं॥९॥

इस मन्त्र में 'हरी' की आवृत्ति में यमक तथा 'हरी, हरि, हरी' में वृत्त्यनुप्रास अलङ्कार है। सूर्यकिरणों को श्मश्रु कहने में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलङ्कार है॥९॥

**भावार्थ** :—परमात्मा द्वारा रचित सूर्य, चन्द्र, तारे, दिशाएँ, विदिशाएँ आदि सभी पदार्थ विलक्षण और उसकी महिमा के प्रकाशक हैं॥९॥

अगले मन्त्र में वर्चस् की आकांक्षा की गयी है।

**६२४. यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत।**
**सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि॥१०॥**

**पदार्थ** :–(**यत्**) जो अनुपम (**वर्चः**) तेज (**हिरण्यस्य**) सुवर्ण का होता है, (**उत**) और (**यद् वा**) जो अद्‌भुत (**वर्चः**) तेज (**गवाम्**) गौओं का अथवा सूर्य-किरणों का होता है, और जो (**सत्यस्य ब्रह्मणः**) सत्य ज्ञान का (**वर्चः**) तेज होता है, (**तेन**) उस तेज से, हम (**मा**) अपने-आपको (**संसृजामसि**) संयुक्त करते हैं॥१०॥

**भावार्थ** :–जो सुवर्ण में रमणीयता और बहुमूल्यता का, गायों में परोपकारिता का, सूर्यकिरणों में प्राणप्रदानता का, सत्य वेदज्ञान में शुद्धता का तेज होता है, वह तेज मनुष्यों को भी प्राप्त करना चाहिए॥१०॥

अगले मन्त्र का इन्द्र देवता है। परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**६२५. सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन्।**
**क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु शत्रून्त्सुहना**
**कृधी नः॥११॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) महावीर परमात्मन् अथवा राजन्! आप (**नः**) हमें (**तत्**) वह सबके चाहने योग्य (**सहः**) शत्रुपराजयकारी (**ओजः**) आत्मिक और शारीरिक बल (**दद्धि**) प्रदान करो, (**हि**) क्योंकि, हे (**विरप्शिन्**) महामहिम्! (**अस्य**) इस (**महत्त**) महान् बल के आप (**ईशे**) अधीश्वर हो। आप हमें (**क्रतुं न नृम्णम्**) प्रज्ञा को और बल को (**स्थविरं च वाजम्**) और प्रचुर ऐश्वर्य को (**दद्धि**) प्रदान करो। और (**वृत्रेषु**) दुष्ट शत्रुओं के प्रति (**नः**) हमें (**सहना**) प्रहारों को सह सकने वाला (**शत्रून्**) वधकर्ता (**कृधि**) बनाओ॥११॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलङ्कार है॥११॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर की कृपा से, राजा की सहायता से और अपने पुरुषार्थ से हम बलवान्, धनवान् और शत्रु-विजयी होवें॥११॥

अगले मन्त्र का गौ देवता है। गौओं के साम्य से इन्द्रियों

को कहा जा रहा है।

**६२६. सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि**
**बिभ्रतीर्द्व्यूध्नीः। उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा**
**आपः सुप्रपाणा इह स्त॥१२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्रिय रूप गौओ! (**सहर्षभाः**) जीवात्मारूप वृषभ से युक्त, (**सहवत्साः**) मन रूप बछड़े से युक्त, (**विश्वा रूपाणि**) आँख, कान, त्वचा आदि विभिन्न नामों को (**बिभ्रतीः**) धारण करती हुई, (**द्व्यूध्नीः**) ज्ञान-कर्म रूप दो ऊधसों से युक्त होती हुई तुम (**उदेत**) उद्यम करो। (**उरुः**) बहुत लम्बा, (**पृथुः**) बहुत चौड़ा (**अयम्**) यह (**लोकः**) लोक (**वः**) तुम्हारे उपयोग के लिए (**अस्तु**) हो। (**इमाः**) ये (**सुप्रपाणाः**) सुख से आस्वादन किये जाने योग्य (**आपः**) जलों के समान प्राप्तव्य रूप, रस, गन्ध आदि विषय हैं, (**इह**) इनमें (**स्त**) रहो, अर्थात् इनका यथायोग्य आस्वादन करो॥१२॥

**भावार्थ** :—गायों के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए। जैसे गायें वृषभ और बछड़ों के साथ विचरती हैं, वैसे ही इन्द्रियाँ आत्मा और मन के साथ। जैसे गायें सफेद, काले आदि रूपों को धारण करती हैं, वैसे इन्द्रियाँ आँख, कान आदि रूपों को। जैसे गायें प्रातः-सायं दोनों कालों में भरे हुए ऊधस् वाली होने से 'द्व्यूध्नी' कहलाती हैं, वैसे इन्द्रियाँ ज्ञान और कर्म रूप ऊधस् वाली होने से 'द्व्यूध्नी' होती हैं। जैसे गायें विस्तीर्ण चरागाहों में विचरती हैं, वैसे इन्द्रियाँ विस्तीर्ण विषयों में। जैसे गायें सुपेय जलों को पीती हैं, वैसे इन्द्रियाँ विषयरसों को। इन इन्द्रिय रूप गायों के श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ कर्म रूप दूध का सेवन कर निरन्तर शारीरिक और आत्मिक उन्नति सबको प्राप्त करनी चाहिए॥१२॥

इस दशति में अग्नि की ज्वाला रूप जिह्वा, सब ऋतुओं की रमणीयता, परमपुरुष परमेश्वर की महिमा, माता-पिता के कर्तव्य, ब्रह्मवर्चस एवं बल की प्राप्ति आदि विषयों का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है॥

## पञ्चमी दशतिः

ऋषिः—१ शतं वैखानसाः; २ विभ्राट् सौर्यः; ३ कुत्सः; ४–६ सार्पराज्ञी; ७–१४ प्रस्कण्वः काण्व॥ देवता—१ अग्निः पवमानः; २–१४ सूर्यः॥ छन्दः—१, ४–१४ गायत्री; २ जगती; ३ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१, ४–१४ षड्जः; २ निषादः; ३ धैवतः॥

प्रथम ऋचा का अग्नि पवमान देवता है। अग्नि नाम से परमात्मा, विद्वान् और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**६२७. अग्न आयूँषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।**
**आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **(अग्ने)** अग्रनायक परमात्मन्! विद्वन् अथवा राजन्! आप **(आयूँषि)** हमारे जीवनों को **(पवसे)** पवित्र करो। **(नः)** हमारे लिए **(ऊर्जम्)** बल एवं प्राण को **(इषं च)** और विज्ञान को **(आसुव)** चारों ओर से प्रेरित करो, लाओ। **(दुच्छुनाम्)** दुर्गति को **(आरे)** दूर **(बाधस्व)** धकेल दो॥१॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की उपासना कर, विद्वान् स्त्री-पुरुषों की और राजा की संगति कर, जीवनों में पवित्रता लाकर, बल, प्राणशक्ति, विज्ञान आदि का संचय कर दुःख, दुर्गति आदि को विनष्ट करें॥१॥

आगे इस दशति में सब ऋचाओं का सूर्य देवता है। इस ऋचा में सूर्य के दृष्टान्त से परमात्मा का वर्णन किया गया है।

**६२८. विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपताव-**
**विहुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः**
**पिपर्त्ति बहुधा वि राजति॥२॥**

**पदार्थ** :—**(विभ्राट्)** सूर्य के समान तेजस्वी परमात्मा **(बृहत्)** महान्, **(सोम्यम्)** ज्ञान एवं कर्म रूप सोम से युक्त **(मधु)** मधुर भक्तिरस को **(पिबतु)** पान करे। और वह **(यज्ञपतौ)** यजमान को **(अविहुतम्)** अकुटिल **(आयुः)** जीवन

(**दधत्**) प्रदान करे, (**वातजूतः**) प्राणायाम से प्रेरित (**यः**) जो परमात्मा (**त्मना**) स्वयम् (**प्रजाः**) प्रजाओं की (**अभिरक्षति**) रक्षा करता है तथा (**पिपर्ति**) उन्हें शक्ति से पूर्ण करता है, और (**बहुधा**) सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् आदि अनेक रूपों में (**विराजति**) विशेष रूप से शोभित होता है। यहाँ श्लेष से सूर्य के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए।।२।।

**भावार्थ** :–जैसे तेजस्वी सूर्य समुद्र आदि के जल का पान करता है, वैसे तेजस्वी परमेश्वर भक्तजनों के भक्तिरस का पान करता है। जैसे सूर्य दीर्घायुष्य प्रदान करता है, वैसे परमेश्वर अकुटिल जीवन प्रदान करता है। जैसे अपने अन्दर विद्यमान घनीभूत हवाओं से गतिमान् हुआ सूर्य मनुष्यों की रक्षा करता है, वैसे योगियों के प्राणायाम के अभ्यासों द्वारा हृदय में प्रेरित परमेश्वर उन योगीजनों की रक्षा करता है। जैसे सूर्य प्रजाओं का पालन करता है और प्रतिमास विभिन्न रूपों से प्रकट होता है, वैसे परमेश्वर प्रजाजनों का पालन करता तथा उन्हें पूर्ण बनाता है और अनेक रूपों में उपासकों के हृदय में प्रकाशित होता है।।२।।

अगले मन्त्र में सूर्योदय के समान परमात्मा के उदय का वर्णन है।

**६२९. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥३॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) सूर्य के पक्ष में। (**देवानाम्**) प्रकाशक सूर्य-किरणों की (**चित्रम्**) अद्भुत अथवा रंग-बिरंगी (**अनीकम्**) सेना (**उद् अगात्**) उदय को प्राप्त हुई है, जो (**मित्रस्य**) शरीर में प्राण की तथा बाहर दिन की, (**वरुणस्य**) शरीर में अपान की तथा बाहर रात्रि की और (**अग्नेः**) शरीर में वाणी की तथा बाहर पार्थिव अग्नि की (**चक्षुः**) प्रकाशक है। (**सूर्यः**) सूर्य ने (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और भूमिलोक को तथा

(**अन्तरिक्षम्**) मध्यवर्ती अन्तरिक्षलोक को (**आ अप्राः**) प्रकाश से परिपूर्ण कर दिया है। वह सूर्य (**जगतः**) जंगम मनुष्य, पशु, पक्षी आदि का तथा (**तस्थुषः**) स्थावर वृक्ष, पर्वत आदि का (**आत्मा**) जीवनाधार है।

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। (**देवानाम्**) सत्य, अहिंसा आदि दिव्यगुणों की (**चित्रम्**) चाहने योग्य (**अनीकम्**) सेना (**उद् अगात्**) मेरे हृदय में उदित हुई है, जो (**मित्रस्य**) मैत्री के गुण की, (**वरुणस्य**) पापनिवारण के गुण की और (**अग्नेः**) अध्यात्म-ज्योति की (**चक्षुः**) प्रकाशक है। हे परमात्मसूर्य! आपने (**द्यावापृथिवी**) आनन्दमयकोश तथा अन्नमयकोश को और (**अन्तरिक्षम्**) मध्य के प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय कोश को (**आ अप्राः**) अपने तेज से भर दिया है, अथवा (**द्यावापृथिवी**) द्युलोक और भूलोक को तथा (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्षलोक को (**आ अप्राः**) अपनी कीर्ति से भर दिया है। (**सूर्यः**) वह सूर्यवत् प्रकाशक आप (**जगतः**) जंगम के और (**तस्थुषः**) स्थावर के (**आत्मा**) अन्तर्यामी हो॥३॥

इस मन्त्र में श्लेष और स्वभावोक्ति अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य किरणों को बखेर कर स्थावर-जंगम का उपकार करता है, वैसे ही परमेश्वर हृदय में दिव्यगुणों को विकीर्ण कर मनुष्यों का हित सिद्ध करता है॥३॥

अगले मन्त्र में सूर्य, पृथिवीलोक, परमात्मा, जीवात्मा और स्तोता का वर्णन है।

**६३०. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।**
**पितरं च प्रयन्त्स्वः॥४॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सूर्य के पक्ष में। (**अयम्**) यह (**पृश्निः गौः**) रंग बिरंगा-सूर्य (**आ अक्रमीत्**) चारों ओर अक्ष-परिभ्रमण कर रहा है। (**पुरः**) सामने स्थित हुआ (**मातरम्**) हमारी मातृभूमि को (**असदत्**) किरणों द्वारा प्राप्त होता है, (**च**) और (**पितरम्**) हमारे पितृतुल्य (**स्वः**) अन्तरिक्ष को भी (**प्रयन्**) किरणों द्वारा प्राप्त होता हुआ स्थित है॥

(द्वितीय) भूमण्डल के पक्ष में। (अयम्) यह (पृश्निः) रंग-बिरंगा (गौः) भूमण्डल (आ अक्रमीत्) अपने चारों ओर अक्ष-परिभ्रमण कर रहा है, और (पुरः) पश्चिम से पूर्व-पूर्व की ओर (पितरम्) अपने पिता (स्वः) सूर्य के चारों ओर भी (प्रयन्) गति करता हुआ (मातरम्) अन्तरिक्ष रूप माता की गोद में (असदत्) स्थित है। पृथिवी का भ्रमण भी सूर्य के ही महत्त्व को प्रकट करता है, अतः इस पक्ष में भी मन्त्र का देवता सूर्य होने में कोई दोष नहीं आता।।

(तृतीय) परमेश्वर के पक्ष में। (अयम्) यह (पृश्निः) ज्योतिर्मय (गौः) सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वर (आ अक्रमीत्) शरीर में और ब्रह्माण्ड में चारों ओर गया हुआ है, अर्थात् अन्तर्यामी है, (मातरम्) निश्चयात्मक ज्ञान की जननी बुद्धि के (पुरः) आगे (असदत्) स्थित होता है, (च) और (पितरम्) पालनकर्ता (स्वः) सुख के भोक्ता जीवात्मा को (प्रयन्) प्राप्त होता है।

**चतुर्थ** जीवात्मा के पक्ष में। (अयम्) यह (पृश्निः) चित्र-विचित्र कर्मसंस्कारों से युक्त (गौः) प्रयत्नशील, विज्ञाता जीवात्मा (आ अक्रमीत्) कर्मों के अनुसार मनुष्य-शरीर को प्राप्त होता है। (पुरः) पहले (मातरम्) माता को अर्थात् माता के गर्भाशय को (असदत्) प्राप्त होता है, (च) और जन्म के अनन्तर (स्वः) विज्ञानप्रकाश से युक्त (पितरम्) पिता को (प्रयन्) प्राप्त होता है।।

(पंचम) स्तोता के पक्ष में। (अयम्) यह (पृश्निः) आश्चर्यमय गुणों वाला (गौः) ज्ञानज्योति से सूर्यवत् भासमान स्तोता (आ अक्रमीत्) चारों ओर पुरुषार्थ करता है, (पुरः) आगे होकर (मातरम्) वेदवाणी रूप माता को (असदत्) प्राप्त करता है, (च) और (स्वः) प्रकाशमान (पितरम्) परमात्मा रूप पिता को (प्रयन्) प्राप्त करने का यत्न करता है। निघण्टु ३।१६ के अनुसार गौ स्तोता का वाचक होता है।।४।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।४।।

**भावार्थ** :—सूर्य की स्थानान्तर गति नहीं है, वह अपनी

धुरी पर ही घूमता है और पृथिवी तथा अन्य ग्रहों-उपग्रहों सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति आदियों को अपनी किरणों से प्राप्त होकर प्रकाशित करता है। पृथिवी की दो प्रकार की गति है, पहली उसकी अपनी धुरी पर, जिसके द्वारा अहोरात्र बनते हैं, दूसरी अपनी नियत कक्षा में सूर्य के चारों ओर, जिससे संवत्सरचक्र चलता है। परमेश्वर सर्वव्यापक होता हुआ शरीर में स्थित आत्मा, मन और बुद्धि आदियों का तथा ब्रह्माण्ड में स्थित सूर्य, चन्द्रमा एवं पृथिवी आदियों का संचालन करता है। जीवात्मा शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार माता के गर्भ को प्राप्त करके जन्म ग्रहण करता है, और परमात्मा का स्तोता पुरुषार्थी होकर वेदवाणीरूप माता को तथा पिता परमात्मा को प्राप्त करता है।।४।।

अगले मन्त्र में सूर्य और परमात्मा के तेज का वर्णन है।

**६३१. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।**
**व्यख्यन्महिषो दिवम्॥५॥**

**पदार्थ** :–(**अस्य**) इस सूर्य वा परमात्मा की (**रोचना**) दीप्ति (**प्राणात्**) प्राण-व्यापार के पश्चात् (**अपानती**) अपान व्यापार कराती हुई (**अन्तः**) भूमि पर वा हृदय के अन्दर (**चरति**) विचरती है। यह (**महिषः**) महान् सूर्य वा परमात्मा (**दिवम्**) आकाश को वा जीवात्मा को (**व्यख्यत्**) प्रकाशित करता है।।५।।

इस मन्त्र में अर्थश्लेषालंकार है।।५।।

**भावार्थ** :–जो यह प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान रूप से शरीर में स्थित हुआ प्राणन, अपानन आदि व्यापार करता है, वह परमेश्वर की ही महिमा से करता है, जैसा कि उपनिषत् के ऋषि ने कहा है–'परमेश्वर प्राण का भी प्राण है (केन० १।२)'। परमेश्वर से रचित सूर्य भी अपनी किरणों से प्राणियों को प्राण प्रदान करता हुआ प्राणापान आदि क्रियाओं में सहायक होता है, जैसा कि प्रश्न उपनिषद् में कहा है–'यह सूर्य प्रजाओं का प्राण होकर उदित हो रहा है (प्रश्न० १।८)'। परमेश्वर ही सूर्य के द्वारा आकाशस्थ पिण्डों को भी प्रकाशित

करता है॥५॥

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य और परमात्मा का वर्णन है।

**६३२. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतङ्गाय धीयते।**
**प्रति वस्तोरह: द्युभिः॥६॥**

**पदार्थ** :—यह सूर्य वा परमात्मा (**त्रिंशद् धाम**) मास के तीसों दिन-रातों में (**वि राजति**) विशेष रूप से भासित होता है। उस (**पतङ्गाय**) अक्ष-परिभ्रमण करने वाले सूर्य के लिए वा कर्मण्य परमात्मा के लिए अर्थात् उनका गुण-कर्म-स्वरूप वर्णन करने के लिए (**वाक्**) वाणी (**धीयते**) प्रयुक्त की जाती है। वह सूर्य और परमात्मा (**प्रतिवस्तोः**) प्रतिदिन अह ही (**द्युभिः**) किरणों वा तेजों से, सबको प्रकाशित करता है॥६॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य प्रतिदिन द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोक में प्रकाशित होता है, वैसे ही परमात्मा भी अपनी कृतियों से सर्वत्र यश से भासमान है। उस सूर्य और परमात्मा के गुण-कर्म आदि वर्णन करके लाभ सबको प्राप्त करने उचित हैं॥६॥

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य और परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**६३३. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः।**
**सूराय विश्वचक्षसे॥७॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सूर्य के पक्ष में। (**विश्वचक्षसे**) सर्वप्रकाशक (**सूराय**) सूर्य के लिए, अर्थात् मानो भय के मारे उसे स्थान देने के लिए (**अक्तुभिः**) रात्रियों सहित (**नक्षत्रा**) तारावलियाँ (**अप यन्ति**) अदृश्य हो जाती हैं, (**यथा**) जैसे (**त्ये**) वे, दूसरों के घर में सेंध लगाने वाले (**तायवः**) चोर, सूर्य के आने पर कहीं छिप जाते हैं।

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। जब हृदयाकाश में परमात्मारूप सूर्य उदयोन्मुख होता है तब (**विश्वचक्षसे**)

सर्वप्रकाशक (सूराय) उस प्रेरक परमात्मा के लिए, अर्थात् मानो भय के मारे उसे स्थान देने के लिए (त्ये तायवः यथा) वे उन परपीडक प्रसिद्ध चोरों की भाँति (नक्षत्रा) सक्रिय काम, क्रोध लोभ, मोह आदि (अक्तुभिः) तमोगुण की व्याप्ति रूप रात्रियों सहित (अपयन्ति) हट जाते हैं।।७।।

इस मन्त्र में उपमा और श्लेष अलंकार हैं।।७।।

**भावार्थ** :—जैसे आकाश में सूर्य को उदयोन्मुख देखकर मानो उसकी तीव्र प्रभा से भयभीत हुए तारागण चोरों के समान छिप जाते हैं, वैसे ही तेज के निधि परमेश्वर को हृदयाकाश में उदित होता हुआ देख, उसके दुर्धर्ष प्रताप से त्रस्त हुए काम-क्रोध आदि भाग खड़े होते हैं।।७।।

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य और परमात्मा का वर्णन है।

**६३४. अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु।**
**भ्राजन्तो अग्नयो यथा॥८॥**

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस सूर्य के अथवा सूर्य के समान भासमान परमात्मा के (**केतवः**) प्रज्ञापक (**रश्मयः**) किरणें वा प्रकाश (**जनान् अनु**) उत्पन्न पदार्थों को वा उपासक मनुष्यों को प्राप्त होकर (**भ्राजमानाः**) चमकती हुई (**अग्नयः यथा**) अग्नियों के समान (**वि अदृश्रन्**) दिखायी देते हैं।।८।।

इस मन्त्र में श्लेष और उपमालंकार हैं, उत्प्रेक्षा नहीं, क्योंकि काव्यसम्प्रदाय में यथा शब्द उत्प्रेक्षावाचक नहीं माना गया है।।८।।

**भावार्थ** :—सूर्य की किरणें जब स्वच्छ सोने, चाँदी, तांबे, पीतल, काँच आदि पर पड़ती हैं तब उन पर चमकती हुई वे जलती हुई अग्नि के तुल्य प्रतीत होती हैं। उसी प्रकार मनोभूमि पर पड़ते हुए परमेश्वर के तेज को भी योगी लोग प्रज्वलित अग्नि के तुल्य अनुभव करते हैं।।८।।

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य और परमात्मा का वर्णन है।

**६३५. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।**
**विश्वमाभासि रोचनम्॥९॥**

**पदार्थ** :—हे **( सूर्य )** सूर्य के समान तेजस्वी सर्वप्रेरक परमात्मन्! आप **( तरणिः )** भवसागर से तराने वाले, **( विश्वदर्शतः )** सब मुमुक्षुओं से दर्शन किये जाने योग्य और सर्वद्रष्टा तथा **( ज्योतिष्कृत् )** विवेकख्यातिरूप अन्तर्ज्योति को उत्पन्न करने वाले **( असि )** हो। और **( विश्वम् ) ( रोचनम् )** चमकीले ब्रह्माण्ड को **( आभासि )** चारों ओर से प्रकाशित करते हो।

भौतिक सूर्य भी **( तरणिः )** रोगों से तराने वाला, **( विश्वदर्शतः )** अपने प्रकाश से सब पदार्थों को दिखाने वाला और **( ज्योतिष्कृत् )** पृथिवी आदि लोकों में प्रकाश देने वाला है, और **( विश्वम् )** सब **( रोचनम् )** प्रदीप्त मंगल, बुध, चन्द्रमा आदि ग्रहोपग्रहों को प्रकाशित करता है॥९॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥९॥

**भावार्थ** :—सूर्य तथा परमात्मा के मन्त्रोक्त गुण-धर्मों को जानकर सूर्य के सेवन द्वारा रोगादि का निवारण करना चाहिए **तथा परमात्मा के ध्यान द्वारा दु:खों को दूर कर मोक्ष का** आनन्द प्राप्त **करना चाहिए**॥९॥

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य और परमात्मा का वर्णन है।

३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**६३६. प्रत्यङ्देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।**
३२उ ३क २र ३ २
**प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मारूप सूर्य! आप **( देवानाम् )** विद्या के प्रकाशक आचार्यों की **( विशः )** प्रजाओं अर्थात् विद्या पढ़े हुए स्नातकों के **( प्रत्यङ् )** अभिमुख होते हुए और **( मानुषान् )** अन्य मननशील मनुष्यों के **( प्रत्यङ् )** अभिमुख होते हुए **( उदेषि )** उनके अन्तःकरणों में प्रकट होते हो। और **( विश्वम् )** सभी वर्णाश्रमधर्मों का पालन करने वाले जनों के **( प्रत्यङ् )** अभिमुख होते हुए आप **( दृशे )** कर्त्तव्याकर्त्तव्य को देखने के लिए **( स्वः )** ज्ञानरूप ज्योति प्रदान करते हो।

भौतिक सूर्य भी **( देवानां विशः )** पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश रूप देवों की प्रजाओं मिट्टी, पत्थर, पर्वत, नदी, वृक्ष, वनस्पति आदियों के **( प्रत्यङ् )** अभिमुख होता

हुआ, और (मानुषान्) मनुष्यों के (प्रत्यङ्) अभिमुख होता हुआ उदय को प्राप्त होता है। और (विश्वम्) समस्त सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि ग्रहोपग्रहों के (प्रत्यङ्) अभिमुख होता हुआ (दृशे) हमारे देखने के लिए (स्वः) ज्योति प्रदान करता है॥१०॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'प्रत्यङ्' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है॥१०॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य सब पदार्थों को अपनी किरणों से प्राप्त होकर प्रकाशित करता है, वैसे ही जगदीश्वर समस्त चेतन-अचेतनों को प्रकाशित करता है और सबके हृदय में ज्ञान-प्रकाश को संचारित करता है॥१०॥

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य और परमात्मा का वर्णन है।

**६३७. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु।**
**त्वं वरुण पश्यसि॥११॥**

**पदार्थ** :—हे (**पावक**) हृदयों को पवित्र करने वाले (**वरुण**) पापनिवारक, मुमुक्षुओं से वरणीय, सर्वश्रेष्ठ सूर्यसदृश परमात्मन्! आप (**भुरण्यन्तम्**) शीघ्र पुरुषार्थ करने वाले जीवात्मा को तथा (**जनान्**) उपासक जनों को (**येन**) जिस अद्भुत (**चक्षसा**) ज्ञान से (**अनु**) अनुगृहीत करते हो, उस ज्ञान से (**त्वम्**) आप (**पश्यसि**) स्वयं भी सब कुछ प्राणियों के शुभाशुभ कर्म आदि को जानते हो।

भौतिक सूर्य भी (**पावकः**) शोधक और (**वरुणः**) रोगादि का निवारक होता है, तथा वह (**जनान्**) उत्पन्न प्राणियों को (**भुरण्यन्तम्**) धारण करने वाले भूमण्डल को (**येन**) जिस (**चक्षसा**) प्रकाश से (**अनु**) अनुगृहीत करता है, उससे वह (**पश्यति**) स्वयं भी प्रकाशमान है॥११॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥११॥

**भावार्थ** :—जैसे प्रकाशमान सूर्य अन्यों को प्रकाशित करता है, वैसे ही ज्ञानवान् परमेश्वर अन्यों को ज्ञान देता है॥११॥

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य और परमात्मा का वर्णन है।

**६३८. उद् द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः।
पश्यञ्जन्मानि सूर्य॥१२॥**

**पदार्थ** :–हे (**सूर्य**) चराचर में अन्तर्यामी जगदीश्वर! आप (**अक्तुभिः**) प्रलय-रात्रियों के साथ (**अहा**) सृष्टिरूप दिनों को (**मिमानः**) रचते हुए तथा (**जन्मानि**) प्राणियों के पूर्वापर जन्मों को (**पश्यन्**) जानते हुए (**पृथ**) यशोमय (**रजः**) लोक (**द्याम्**) प्रकाशपूर्ण ब्रह्माण्ड को (**उद् एषि**) संचालित करते हो।

भौतिक सूर्य भी (**अक्तुभिः**) रात्रियों के साथ (**अहा**) दिनों को (**मिमानः**) रचता हुआ और (**जन्मानि**) उत्पन्न पदार्थों को (**पश्यन्**) प्रकाशित करता हुआ (**पृथु**) विस्तीर्ण (**रजः**) लोक (**द्याम्**) द्यौ में (**उदेति**) उदित है॥१२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१२॥

**भावार्थ** :–सौर लोक में परमात्मा से संचालित सूर्य ही दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर आदि के चक्र का प्रवर्तन करता है और सबको प्रकाशित करता है। परमात्मा भी प्रलयरात्रि के अनन्तर सृष्टिरूप ब्राह्म दिन को रचता है और मनुष्यों के जन्म-जन्म में किये हुए शुभाशुभ फल प्रदान करता है॥१२॥

अगले मन्त्र में सूर्य, जीवात्मा और परमात्मा का वर्णन है।

**६३९. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः॥१३॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) सूर्य के पक्ष में। (**सूरः**) सूर्य (**रथस्य**) सौरमण्डलरूप रथ को (**नप्त्यः**) न गिरने देने वाली (**सप्त**) सात (**शुन्ध्युवः**) शोधक किरणों को (**अयुक्त**) पृथिवी आदि ग्रह-उपग्रहों के साथ युक्त करता है। (**स्वयुक्तिभिः**) स्वयं युक्त की गयी (**ताभिः**) उन किरणों से, वह (**याति**) भूमण्डल आदि के उपकार के लिए चेष्टा करता है॥

(**द्वितीय**) जीवात्मा के पक्ष में। (**सूरः**) प्रेरक जीवात्मा (**रथस्य**) शरीर-रूप रथ को (**नप्त्यः**) न गिरने देने वाली

(शुन्ध्युवः) ज्ञान-शोधक ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि (सप्त) इन सात को (अयुक्त) शरीर-रथ में जोड़ता है, और (स्वयुक्तिभिः) स्वयं जोड़ी हुई (ताभिः) उनके द्वारा (याति) जीवन-यात्रा को करता है।

(तृतीय) परमात्मा के पक्ष में। (सूरः) सूर्य, चन्द्र आदि लोकों को चलाने वाले परमात्मा ने (रथस्य) ब्रह्माण्डरूप रथ को, (नप्त्यः) न गिरने देने वाली (सप्त) सात (शुन्ध्युवः) शुद्ध भूमियों को अर्थात् भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् इन क्रमशः ऊपर-ऊपर विद्यमान सात लोकों को (अयुक्त) कार्य में नियुक्त किया है, (स्वयुक्तिभिः) स्वयं नियुक्त की हुई उन सात भूमियों अर्थात् लोकों से, वह (याति) ब्रह्माण्ड-संचालन के व्यापार को कर रहा है॥१३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१३॥

**भावार्थ** :—सूर्य सात रंग की किरणों से सौरमण्डल को, जीवात्मा मन, बुद्धि तथा ज्ञानेन्द्रियरूप सात तत्त्वों से शरीर का और परमेश्वर स्वरचित सात लोकों से ब्रह्माण्ड का संचालन करता है॥१३॥

अगले मन्त्र में पुनः सूर्य, जीवात्मा और परमात्मा का वर्णन है।

**६४०. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।**
**शोचिष्केशं विचक्षण॥१४॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) जीवात्मा के पक्ष में। हे (**देव**) दिव्यशक्तिसम्पन्न, (**विचक्षण**) विविध ज्ञानों से युक्त (**सूर्य**) शरीरस्थ को भलीभाँति चलाने वाले जीवात्मन्! (**शोचिष्केशम्**) तेजरूप केशों वाले (**त्वा**) तुझे (**सप्त**) (**हरितः**) मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय रूप सात घोड़े (**रथे**) शरीररूप रथ में (**वहन्ति**) वहन करते हैं।

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**देव**) दानादिगुणयुक्त, दिव्यगुणकर्मस्वभाव, (**विचक्षण**) सर्वद्रष्टा, (**सूर्य**) शुभ मार्ग में भलीभाँति प्रेरित करने वाले परमात्मन्! (**शोचिष्केशम्**) ज्ञानरश्मिरूप केशों वाले (**त्वा**) तुझ परम पुरुष को (**सप्त**

हरितः ) गायत्री आदि सात छन्दों से युक्त सात प्रकार की वेदवाणियाँ ( **रथे** ) उपासक के रमणीय हृदय में ( **वहन्ति** ) पहुँचाती हैं।

भौतिक सूर्य भी ( **देवः** ) प्रकाशमान तथा प्रकाशक, ( **विचक्षणः** ) विविध पदार्थों का दर्शन कराने वाला और ( **शोचिष्केशः** ) किरणरूप केशों वाला है। उसे ( **सप्त** ) सात ( **हरितः** ) दिशाएँ ( **रथे** ) आकाशरूप रथ में बैठाकर ( **वहन्ति** ) यात्रा कराती हैं।

यहाँ सूर्य का शिशु होना तथा दिशाओं का माता होना ध्वनित हो रहा है। जैसे माताएँ शिशु को बच्चागाड़ी में बैठाकर सैर कराती हैं, वैसे ही दिशाएँ सूर्य को आकाश-रथ में बैठाकर घुमाती हैं।

दिशाएँ चार, पाँच, छः, सात, आठ, दस आदि विभिन्न संख्या वाली सुनी जाती हैं। 'सात दिशाएँ हैं, नाना सूर्य हैं' (ऋ० ९।११४।३) इस श्रुति के अनुसार दिशाओं की सात संख्या भी प्रमाणित होती हैं। चार पूर्व आदि हैं, अधः, ऊर्ध्वा मिलकर छह होती हैं और सातवीं मध्य दिशा है। इस प्रकार सात संख्या पूरी होती हैं।।१४।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। शोचियों में केशों का आरोप शब्द तथा सूर्य में पुरुष का आरोप आर्थ होने से एकदेशविवर्ती रूपक भी है।।१४।।

**भावार्थ** :—जैसे किसी प्रतापी पुरुष को सात घोड़े रथ में वहन करें, वैसे ही किरण-रूप केशों वाले सूर्य-रूप पुरुष को दिशाएँ आकाश-रथ में तथा तेज-रूप केशों वाले जीवात्मा-रूप पुरुष को इन्द्रियरूप घोड़े शरीर-रथ में और ज्ञान-रूप केशों वाले परमात्मा-रूप पुरुष को वेदों के सात छन्द उपासक के हृदय-रथ में वहन करते हैं।।१४।।

इस दशति में अग्नि नामक परमेश्वर से पवित्रता, दुःख-विनाश आदि की प्रार्थना होने से और सूर्य नाम से भौतिक सूर्य, जीवात्मा एवं परमात्मा का वर्णन होने से इस दशति के विषय की पूर्व दशति के विषय के साथ संगति है।

**इत्यारण्यं काण्डम्॥**

**इति षष्ठप्रपाठकः षष्ठोऽध्यायश्च समाप्तः॥**

**इति सामवेद-संहितायां पूर्वार्चिकः॥**

# अथ महानाम्न्यार्चिकः

सामवेद के पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक के मध्य में दस मन्त्रों का एक महानाम्नी आर्चिक है। कुछ लोग इसे पूर्वार्चिक के ही अन्तर्गत मानते हैं। उनके मत में छन्द आर्चिक और महानाम्नी आर्चिक मिलकर पूर्वार्चिक होता है।

इस महानाम्नी आर्चिक के अन्दर आयी सब ऋचाओं का इन्द्र ही देवता है। इनके महानाम्नी संज्ञा होने का कारण यह प्रतीत होता है कि ये ऋचाएँ इन्द्र के महान् नामों का वर्णन करती हैं। यथा मघवान्, शचीपति, अंशु, प्रचेतन, शक्र, वज्रिवान्, वज्री, शविष्ठ, मंहिष्ठ, वाजपति, चिकित्वान्, जेता, अपराजित, अद्रिवान्, वसु, वशी, प्रभु, वृत्रहा, शूर, सखा, सुशेव, अद्वयु ये बहुत से महत्त्वपूर्ण नाम इस आर्चिक में परिगणित हैं। इन महान् नामों से क्योंकि इन्द्र महान् बना है, इसलिए इस आर्चिक का नाम महानाम्नी पड़ गया। ब्राह्मणग्रन्थ में भी कहा है—"इन्द्र ने इन ऋचाओं के द्वारा स्वयं को महान् निर्मित किया, अतः ये महानाम्नी कहलायीं (ऐ० ब्रा० ५।२।२)"।

ब्राह्मणग्रन्थकार यह भी कहते हैं कि इन ऋचाओं से इन्द्र वृत्र का वध करता है और वृत्रवध के समय महान् घोष होता है, इस कारण इनका नाम महानाम्नी पड़ा है। ताण्ड्य महाब्राह्मण में लिखा है कि "क्योंकि (वृत्रवध के समय) महान् घोष हुआ, अतः ये महानाम्नी कहलायीं।" (तां० १३।४।१ कहीं-कहीं इन्हें महानाम्नी इस हेतु से कहा है कि इन्द्र द्वारा महान् वृत्र के वध किये जाने के कारण ये महानाम्नी हैं, जैसे कि जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है कि "उन सब छन्दों को मिलाकर उनसे इन्द्र ने वृत्र का संहार किया। क्योंकि महान् वृत्र का संहार किया, इससे ये महानाम्नी हुईं। (जै० ब्रा० ३।१११) अन्यत्र महामानी होने के कारण इन्हें महानाम्नी कहा गया है, जैसा कि जैमिनीय ब्राह्मण मे ही लिखा है कि— "क्योंकि

प्रजापति ने यह कहा कि इनका परिमाण तो बहुत बड़ा हो गया, इससे ये महानाम्नी कहलायीं। असल में इनका नाम महामानी था, परोक्षवृत्ति का आश्रय लेकर महामानियों को ही महानाम्नी कह दिया गया। (जै० ३।१०४)

इस महानाम्नी आर्चिक में दस ऋचाएँ हैं। प्रथम ऋचा में ९+७+७+७=३० इस प्रकार चार पाद हैं, अतः इसमें विराट् अनुष्टुप् छन्द है। द्वितीय ऋचा में ७+३+८+७=२५ इस प्रकार चार पाद हैं, अतः चतुष्पदा भुरिग् गायत्री है। तृतीय ऋचा में ५+८+८+८+७=३६ इस प्रकार पांच पाद हैं, अतः पञ्चपदा बृहती है। चतुर्थ ऋचा में ७+११+८+७=३३ इस प्रकार चार पाद हैं, अतः भुरिग् अनुष्टुप् है। पाँचवीं ऋचा में ७+५+८+७=२७ इस प्रकार चार पाद हैं, अतः चतुष्पदा निचृद् उष्णिक् है। छठी ऋचा में ५+८+८+८+८=३७ इस क्रम से पाँच पाद हैं, अतः पञ्चपदा भुरिग् बृहती है। सातवीं ऋचा में १२+८+८+८=३६ इस क्रम से चार पाद हैं, अतः पुरस्ताद् बृहती है। आठवीं ऋचा में ८+४+८+८+५+८=४१ इस क्रम से छह पाद हैं, अतः भुरिक् पंक्ति है। नौवीं ऋचा में ८+८+८+८=३२ इस क्रम से चार पाद हैं, अतः अनुष्टुप् है। दसवीं ऋचा में ४+४+५+५=१८ इस क्रम से चार पाद हैं, अतः चतुष्पदा आर्ची गायत्री है।

इन महानाम्नियों को शक्वरी भी कहते हैं। इसकी दस ऋचाओं में तीन त्रिक हैं और अन्त में एक ऋचा पुरीषपदों वाली है। परम्परानुसार प्रत्येक त्रिक में उपसर्गों को हटा देने पर एक-एक शक्वरी हो जाती है। इस प्रकार दस ऋचाओं में तीन शक्वरी हैं और शक्वरी छन्द में ५६ अक्षर होते हैं। उपसर्ग पदों को हटा देने पर तीन शक्वरियाँ इस प्रकार बनती हैं—

**प्रथम त्रिक में स्थित शक्वरी**

शिक्षा शचीनाम्पते (१)। पूर्वीणां पुरूवसो (२) आभिष्ट्वमभिष्टिभिः (३)। इन्द्र द्युम्नाय न इषे (४) राये वाजाय वज्रिवः (५)। शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे (६) मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे (७)॥

इसमें ८-८ अक्षर के सात पाद होने से ८×७=५६ अक्षरों की शक्वरी हो जाती है। यद्यपि प्रथम तीन पादों में प्रत्यक्षतः

७-७ अक्षर ही हैं तो भी व्यूह से उन्हें ८-८ अक्षर का बना लिया जाता है।

**प्रथम त्रिक के उपसर्ग**

विदा मघवन् विदा गातुम् अनुशंसिषो दिशः (१)। स्व३ऽर्न्नांशुः (२)। प्रचेतन प्रचेतये (३)। एवा हि शक्रः (४)। आ याहि पिब मत्स्व (५)॥

**द्वितीय त्रिक में स्थित शक्वरी**

मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे (१) यः शविष्ठः शूराणाम् (२) यो मंहिष्ठो मघोनाम् (३) इन्द्रो विदे तमु स्तुहि (४) तमूतये हवामहे (५) जेतारमपराजितम् (६) स नः स्वर्षदति द्विषः (७)॥

इसमें भी ८-८ अक्षर के सात पाद होने से ८×७=५६ अक्षरों की शक्वरी हो जाती है। यद्यपि द्वितीय और तृतीय पादों में प्रत्यक्षतः ७-७ अक्षर हैं, तो भी पूर्ववत् व्यूह से उन्हें ८-८ अक्षर का कर लिया जाता है।

**द्वितीय त्रिक के उपसर्ग**

विदा राय सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु (१)। अंशुर्न शोचिः (२)। चिकित्वो अभि नो नय (३)। ईशे हि शक्रः (४)। क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् (५)॥

**तृतीय त्रिक में स्थित शक्वरी**

स नः स्वर्षदति द्विषः (१)। स नः स्वर्षदति द्विषः (२) पूर्वस्य यत्ते अद्रिवः (३)। पूर्तिः शविष्ठ शस्यते (४)। नूनं तन्नव्यं संन्यसे (५)। प्रभो जनस्य वृत्रहन् (६)। समर्येषु ब्रवावहे (७)॥ इसमें भी ८-८ अक्षर के सात पाद होने से ८×७=५६ अक्षर की शक्वरी बनती है।

**तृतीय त्रिक के उपसर्ग**

इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे, जेतारमपराजितम् (१)। अंशुर्मदाय (२)। सुम्न आ धेहि नो वसा (३)। वशी हि शक्रः (४)। शूरो यो गोषु गच्छति (५)। सखा सुशेवो अद्वयुः (६)॥

इस प्रकार प्रथम त्रिक में सात शाक्वर पाद और पाँच उपसर्ग हैं। द्वितीय त्रिक में उसी प्रकार सात शाक्वर पाद और पाँच उपसर्ग हैं। तृतीय त्रिक में सात शाक्वर पाद और छह

उपसर्ग हैं। इन्हें उपसर्ग इस कारण कहते हैं, क्योंकि ये पूर्ति के लिए अन्य छन्दों के साथ जोड़े जाते हैं, उपसर्ग में उपपूर्वक सृज धातु है, जो जोड़ने अर्थ में होती है। ऐतरेय ब्राह्मण के षोडशी प्रकरण में कहा भी है कि—"महानाम्नियों के उपसर्गों को छन्दों के साथ जोड़े (ऐ० ब्रा० ४।१।४)।"

प्रत्येक त्रिक में शक्वरी बनाने के लिए उपसर्ग-पदों को पृथक् करने का क्रम सुगमता के लिए निदानकल्प में पूर्व आचार्यों ने दो श्लोकों से प्रदर्शित किया था, जिसे सायणाचार्य ने अपने सामसंहिता के भाष्य में उद्धृत किया है। श्लोक ऊपर संस्कृत-भाग में दर्शाये जा चुके हैं। उनका भाव यह है कि प्रथम और द्वितीय त्रिक में आदि में पठित द्विपदा एक उपसर्ग है, तत्पश्चात् तीन पाद शाक्वर हैं, तदनन्तर एक उपसर्ग और पुनः तीन पाद शाक्वर हैं, फिर अन्तिम उपसर्ग-पाद हैं। तीसरे त्रिक में भी ऐसा ही क्रम है, केवल इतना अन्तर है कि अन्त के दो पाद उपसर्ग हैं।

महानाम्नियों में नौ ऋचाओं अथवा तीन शक्वरियों के अनन्तर पञ्च पुरीष-पदों वाली दसवीं ऋचा है। इन्हें पुरीष-पद इस कारण कहते हैं, क्योंकि इनमें यह वर्णित है कि इन्द्र ही वेद में अग्नि, पूषन् आदि नामों से भी स्मरण किया गया है, इस प्रकार ये इन्द्र की पूर्णता के प्रतिपादक हैं।

महानाम्नियों या शक्वरियों के विषय में ताण्ड्यमहाब्राह्मण में यह गाथा उपलब्ध होती है—

"इन्द्र प्रजापति के पास दौड़कर पहुँचा और कहा कि ऐसा उपाय कीजिए जिससे मैं वृत्र का वध कर सकूँ। प्रजापति ने छन्दों से इन्द्र के लिए एक सबल वस्तु निर्मित करके दी और कहा कि इससे तू वृत्र का वध करने में शक्त हो। वह वस्तु 'शक्वरी' थी; क्योंकि उससे इन्द्र वृत्र के वध में शक्त हुआ, इसी कारण उसका नाम 'शक्वरी' पड़ा। उससे इन्द्र ने वृत्र की सीमा (शिरःसन्धि) का विदारण किया, अतः उस शक्वरी को 'सीमा' भी कहा गया। क्योंकि इन्द्र ने वृत्र का वध करते समय श्रमजन्य, मुख और नासिका से उत्पन्न 'महन्य' शब्द किया, इस कारण 'शक्वरी' का नाम 'महन्या' भी पड़

गया। क्योंकि वृत्र-वध के समय महान् विजय-घोष (नाम) उठा, इस कारण उन शक्वरियों को ही 'महानाम्नी' भी कहा गया।" (तां० ब्रा० १३।४।१)

इस काल्पनिक कथा का इतना ही तात्पर्य समझना चाहिए कि इन शक्वरियों में अधिरूढ़ शाक्वर साम के गान से और इनमें वर्णित इन्द्र परमात्मा के महान् नामों के अर्थ-चिन्तन से पाप-रूप वृत्र समूल नष्ट किये जा सकते हैं। ताण्ड्य ब्राह्मण में ही अन्यत्र कहा भी है-"इन शक्वरियों या महानाम्नियों के द्वारा इन्द्र ने वृत्र का जैसे संहार किया, वैसे ही इनके द्वारा मनुष्य शीघ्र ही पाप का संहार कर सकता है और शीघ्र ही निवासयुक्त हो जाता है।" (तां० ब्रा० १२।१३।२३)

महानाम्नीनां सर्वासाम्-ऋषिः प्रजापतिर्वा विष्णुर्वा विश्वामित्रो वा, देवता इन्द्रः। यथोक्तम् आर्षेयब्राह्मणे-"ऐन्द्रयो महानाम्न्यः, प्रजापतेर्वा विष्णोर्वा विश्वामित्रस्य वा, सिमा वा महन्या वा शक्वर्यो वा" (३।२९) इति।

# अथ महानाम्न्यार्चिकः

ऋषिः—१-१० इन्द्रो वा प्रजापतिर्वा विष्णुर्वा विश्वामित्रो वा। देवता—१-९ इन्द्रः; १० लिङ्गोक्ताः॥ छन्दः—१-९ विराट्; १० पदपङ्क्तिः॥ स्वरः—१-८ गान्धारः; १० पञ्चमः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा से मार्गनिर्देशन की प्रार्थना की गयी है॥

**६४१. विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः।**
**शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**मघवन्**) ज्ञानरूप ऐश्वर्य के धनी परमात्मन्! आप (**विदाः**) हमें जानिए, (**गातुम्**) हमारे आचरण को (**विदाः**) जानिए, (**दिशः**) गन्तव्य दिशाओं का (**अनुशंसिषः**) उपदेश कीजिए। हे (**शचीनां पते**) ज्ञानों और कर्मों के अधिपति! आप हमें भी (**शिक्ष**) ज्ञान और कर्म प्रदान कीजिए। हे (**पुरुवसो**) प्रचुर धन वाले! आप (**पूर्वीणाम्**) श्रेष्ठ दानों के स्वामी हैं, हमें भी उन दानों का पात्र बनाइए॥१॥

इस मन्त्र में अनेक क्रियाओं का एक कारक से योग होने के कारण दीपक अलंकार है। 'विदा' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है। 'पूर्वी, पुरूव' में छेकानुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा से सब मनुष्यों को कर्तव्यज्ञान और कर्मसम्पत्ति प्राप्त करके, पुरुषार्थ से धन कमा कर सदाचारपूर्वक समृद्ध जीवन बिताना चाहिए॥१॥

परमात्मा की स्तुति से हम क्या-क्या प्राप्त करें यह कहते हैं।

**६४२. आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा३ऽन्नांशुः।**
**प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मन्! आप **(आभिः)** इन हमसे माँगी गयी **(अभिष्टिभिः)** अभीष्टसिद्धियों से, हमें कृतार्थ कीजिए। आप **(स्वः न)** सूर्य के समान **(अंशुः)** अंशुमाली हैं। हे **(प्रचेतन)** प्रकृष्ट चेतना वाले जागरूक परमेश्वर! आप हमें **(प्रचेतय)** प्रकृष्ट चेतना वाला जागरूक बनाइए। हे **(इन्द्र)** परमैश्वर्यशालिन्! आप **(नः)** हमें **(द्युम्नाय)** धन, यश और तेज के लिए, तथा **(इषे)** अन्न, रस और विज्ञान के लिए, पुरुषार्थी कीजिए॥२॥

इस मन्त्र में 'प्रचेत' की आवृत्ति में यमक अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की संगति से हम अध्यात्म-ज्योति से प्रकाशमान, जागरूक, धनवान्, अन्नवान्, तेजस्वी, यशस्वी और विज्ञानवान् होवें॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**६४३. एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः। शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि पिब मत्स्व॥३॥**

**पदार्थ** :—हे परमैश्वर्यशालिन् इन्द्र परमात्मन्! आप **(एव हि)** सचमुच ही **(शक्रः)** शक्तिशाली हैं। हे **(वज्रिवः)** वज्रधर के समान शत्रुविदारक! हमें **(राये)** अध्यात्म-सम्पदा और **(वाजाय)** शारीरिक एवं आत्मिक बल का पात्र बनाओ। हे **(शविष्ठ)** बलिष्ठ! हे **(वज्रिन्)** पापों पर वज्र-प्रहार करने वाले! आप **(ऋञ्जसे)** हमें सद्गुणों के अलंकारों से अलंकृत कीजिए। हे **(मंहिष्ठ)** अतिशय दानशील! हे **(वज्रिन्)** ओजस्वी! आप, हमें **(ऋञ्जसे)** परिपक्व करके ओजस्वी बना दीजिए। हे भगवन्! **(आ याहि)** आइए, **(पिब)** हमारे श्रद्धारस का पान कीजिए, **(मत्स्व)** हमें कर्तव्यपरायण देखकर प्रसन्न होइए॥३॥

इस मन्त्र में 'ष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे' की आवृत्ति में यमकालंकार है। 'वज्रि' की तीन बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है। 'आयाहि, पिब, मत्स्व' इन अनेक क्रियाओं का एक कारक के साथ

योग होने के कारण दीपक है॥३॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर सब कर्मों में समर्थ बलिष्ठ, तेजस्वी, सबसे बड़ा दानी, पापादि का विनाशक और गुणों से अलंकृत करने वाला है, उसमें सबको श्रद्धा करनी चाहिए॥३॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**६४४. विदा राये सुवीर्यं भवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु।**
**मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे जगदीश्वर! आप **( राये )** विद्या, आरोग्य, धन, स्वराज्य, चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्य के लिए तथा मोक्ष-रूप ऐश्वर्य के लिए हमें **( सुवीर्यम् )** उत्कृष्ट शारीरिक तथा आत्मिक बल **( विदाः )** प्राप्त कराइए। आप **( वाजानाम् )** बलों के **( पतिः )** अधीश्वर **( भवः )** हैं। **( वशान् )** आपकी कामना करने वाले, **आपकी प्रीति के अधीन हमें ( अनु )** अनुगृहीत **कीजिए। हे ( मंहिष्ठ ) सबसे बड़े दानी, हे ( वज्रिन् )** ओजस्वी **परमेश्वर!** आप **( ऋञ्जसे )** हमें ओज आदि गुणों से अलंकृत कीजिए, **( यः )** जो आप **( शूराणाम् )** शूरवीरों में **( शविष्ठः )** सबसे अधिक बली हैं॥४॥

**भावार्थ** :—जो शरीर और आत्मा से बलवान् है, वही ऐश्वर्य प्राप्त करता है। अतः बलिष्ठ परमेश्वर के समान हम भी बलवान् बनें॥४॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का वर्णन करके उसकी स्तुति के लिए मनुष्यों को प्रेरणा दी गयी है।

**६४५. यो मंहिष्ठो मघोनामंशुर्न शोचिः।**
**चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि॥५॥**

**पदार्थ** :—**( यः )** जो आप **( मघोनाम् )** धनियों में **( मंहिष्ठः )** सबसे अधिक दानी हैं, और **( अंशुः न )** सूर्यकिरण के समान **( शोचिः )** तेजस्वी हैं, वह, हे **( चिकित्वन् )** ज्ञानी, जागरूक परमात्मन्! आप **( नः अभि )** हमारी ओर भी **( नय )** इन दान,

तेज, जागरूकता आदि को लाइए। हे मनुष्य! (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विदे**) उपकार करना जानता है, (**तम् उ**) उसी को (**स्तुहि**) स्तुति से सम्मानित कर॥५॥

इस मन्त्र में 'अंशुः न शोचिः' में उपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—जो जगदीश्वर परम दानी, परम तेजस्वी, परम विद्वान्, परम जागरूक और परम परोपकारी है, उसकी उपासना करके सबको दानी, तेजस्वी, विद्वान्, जागरूक और परोपकारी बनना चाहिए॥५॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का आह्वान किया गया है।

**६४६. ईशे हि शक्रस्तमूतये हवामहे जेतारमपराजितम्।**
**स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्॥६॥**

**पदार्थ** :—(**शक्रः**) शक्तिशाली इन्द्र परमेश्वर (**हि**) निश्चय ही (**ईशे**) सकल जगत् का अधीश्वर है। (**तम्**) उसे, हम (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**हवामहे**) पुकारते हैं। कैसे परमेश्वर को? (**जेतारम्**) जो सब वस्तुओं को जीत लेने वाला है, तथा (**अपराजितम्**) जो स्वयं किसी से पराजित नहीं होता। (**सः**) वह परमेश्वर (**नः**) हमें (**द्विषः**) आन्तरिक तथा बाह्य शत्रु से (**अति स्वर्षत्**) पार करे। (**क्रतुः**) ज्ञान, कर्म, शिव संकल्प और यज्ञ, (**छन्दः**) गायत्री आदि छन्द, (**ऋतम्**) सत्य, और (**बृहत्**) बृहत् नामक साम, हमारे उपकारक हों।

'त्वामिद्धि हवामहे' (साम० २३४) इस ऋचा पर गाया जाने वाला साम बृहत् साम कहलाता है॥६॥

**भावार्थ** :—विजेता, अपराजित परमात्मा का आश्रय लेकर उसके उपासक भी विजयी तथा अपराजित हो जाते हैं॥६॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का आह्वान किया गया है।

**६४७. इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम्।**
**स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः॥७॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रम्**) शूरवीर परमैश्वर्यशाली परमेश्वर को

हम योगाभ्यासी (जन धनस्य) विवेकख्यातिरूप ऐश्वर्य की (सातये) प्राप्ति के लिए (हवामहे) पुकारते हैं। कैसे परमेश्वर को? (जेतारम्) जो शत्रुओं और विघ्नों का विजेता तथा (अपराजितम्) करोड़ों भी शत्रुओं एवं विघ्नों से न हारने वाला है। (सः) वह विजेता परमेश्वर (नः) हमें (द्विषः) अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूप पंच क्लेशों से (अति स्वर्षत्) पार कर दे, (सः) वह अपराजित परमेश्वर (नः) हमें (द्विषः) व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व इन चित्तविक्षेपरूप योगमार्ग के विघ्नों से (अति स्वर्षत्) पार कर दे॥७॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की ही कृपा से योगाभ्यासी जन योग के विघ्नों को जीतकर विवेकख्याति द्वारा मोक्ष प्राप्त करने योग्य होते हैं॥७॥

**संन्यासाश्रम में प्रवेश का अभिलाषी कह रहा है॥**

**६४८. पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय। सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ठ शस्यते। वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे॥८॥**

**पदार्थ** :—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामिन् अथवा धर्ममेघ समाधि में सहायक परमेश्वर! (यत्) क्योंकि (पूर्वस्य) श्रेष्ठ (ते) आपकी (अंशुः) तेज की किरण (मदाय) आनन्द के लिए होती है, इस कारण, हे (वसो) निवासक! (नः) हमें (सुम्ने) मोक्ष के आनन्द में (आ धेहि) स्थित करो। हे (शविष्ठ) बलिष्ठ परमात्मन्! (पूर्तिः) आपसे उत्पन्न की हुई पूर्णता (शस्यते) सबसे प्रशंसा की जाती है। (शक्रः) सर्वशक्तिमान् आप (नूनम्) आज (वशी हि) मेरे वशकर्ता हो गये हो, (तत्) इसलिए, आपके वशवर्ती हुआ मैं (नव्यम्) नवीन प्रतीत होने वाली पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा रूप लौकिक चमक-दमक का (संन्यसे) परित्याग करता हूँ, परित्याग करके संन्यासाश्रम में प्रवेश करता हूँ और उस आश्रम में

रहता हुआ (नव्यम्) स्तुति करने योग्य इन्द्र परमेश्वर को (संन्यसे) भलीभाँति हृदय में धारण करता हूँ, श्लेष से यह दूसरा अर्थ भी जानना चाहिए॥८॥

**भावार्थ** :—भोग-विलास देखने में ही रमणीय प्रतीत होते हैं। वे लोग धन्य हैं जो उनका परित्याग करके, संन्यासाश्रम में प्रविष्ट होकर, निष्काम लोकसेवा के व्रत को स्वीकार कर ब्रह्म में लीन रहते हैं॥८॥

अगले मन्त्र में उपासक परमात्मा से संवाद कर रहा है।

**६४९. प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रवावहै।**
**शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (**प्रभो**) जगदीश्वर! हे (**जनस्य**) मुझ उपासक के (**वृत्रहन्**) पापहर्ता! आओ, मैं और तुम (**अर्येषु**) प्राप्तव्य आध्यात्मिक ऐश्वर्यों के विषय में (**सं ब्रवावहै**) संवाद करें कि कौन-कौन-से ऐश्वर्य मुझे प्राप्त करने तथा तुम्हें देने हैं, (**शूरः**) विघ्नों के वध में शूर (**यः**) जो तुम (**गोषु**) स्तोताओं के हृदयों में (**गच्छति**) पहुँचते हो और जो तुम (**सखा**) स्तोताओं के सखा, (**सुशेवः**) उत्कृष्ट सुख के दाता तथा (**अद्वयुः**) सामने कुछ और पीछे कुछ इस प्रकार के दोहरे आचरण से रहित अर्थात् सदा हितकर ही, होते हो॥९॥

**भावार्थ** :—उपासकों का हार्दिक प्रेम देखकर उनके साथ मानो संवाद करता हुआ परमेश्वर उनका सखा, विघ्नों को हरने वाला तथा मोक्ष के आनन्द को देने वाला हो जाता है॥९॥

अगले मन्त्र में पुरीष-पदों से परमात्मा का स्वरूप वर्णित किया गया है। मन्त्रोक्त पाँच खण्ड पाँच पुरीष-पद कहलाते हैं इनका देवता इन्द्र ही है, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि 'पुरीष इन्द्र देवता वाले हैं। श० ८।७।३।७' ये पद इन्द्र के पूर्णता-द्योतक होने से पुरीष संज्ञा वाले हैं। निरुक्त (२।२२) में 'पुरीष' की निष्पत्ति पूरणार्थक पृ अथवा पूर धातु से की गयी है।

६५०. एवा ह्येवऽ३ऽ३ऽ३व। एवा ह्यग्ने। एवा हीन्द्र। एवा हि पूषन्। एवा हि देवाः। ओं एवा हि देवाः ॥१०॥

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमेश्वर! (एव हि एव) सचमुच आप ऐसे ही पूर्वोक्त गुणों वाले हो। हे (अग्ने) अग्रनायक इन्द्र परमात्मन्! (एव हि) सचमुच आप ऐसे ही हो। हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान्, शत्रुविदारक, विद्याविवेक आदि के प्रकाशक जगदीश्वर! (एव हि) सचमुच आप पूर्वोक्त गुणों से विशिष्ट हो। हे (पूषन्) पुष्टिप्रदाता जगत्पते! (एव हि) सचमुच आप पूर्वोक्त गुणों से युक्त हो। हे (देवाः) इन्द्र परमेश्वर की अधीनता में रहने वाले दिव्यगुणविशिष्ट विद्वानो! (एव हि) सचमुच तुम इन्द्र परमेश्वर की प्रजा हो॥

अन्तिम 'पुरीष पद' भी इन्द्र-विषयक ही है, जैसा कि शतपथकार कहते हैं–'क्योंकि इन्द्र में ही सब देवता स्थित हैं, अतः इन्द्र को सर्वदेवतात्मक कहा गया है॥१०॥ (श० १।६।३।२२)

**भावार्थ** :—इन्द्र परमात्मा में सचमुच मघवत्व, शचीपतित्व, प्रचेतनत्व, शक्रत्व, मंहिष्ठत्व, शविष्ठत्व, वज्रित्व, जेतृत्व आदि वेदोक्त गुण विद्यमान हैं, जिनका सबको अनुकरण करना चाहिए॥१०॥

इति महानाम्न्यार्चिकः समाप्तः॥

# उत्तरार्चिकः

## अथ प्रथमोऽध्यायः

### प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के प्रति मनुष्यों का कर्तव्य वर्णित किया गया है।

६५१. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ इयक्षते॥१॥

**पदार्थ** :—हे ( **नरः** ) मनुष्यो! तुम ( **देवान्** ) अहिंसा, सत्य, न्याय आदि दिव्यगुणों को ( **इयक्षते** ) प्रदान करने की इच्छा वाले ( **अस्मै** ) इस ( **पवमानाय** ) पवित्रता देने वाले, ( **इन्दवे** ) आनन्दरस से भिगोने वाले परमात्मा के लिए ( **उपगायत** ) समीप होकर स्तुतिगीत गाया करो॥१॥

**भावार्थ** :—सब स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि जगदीश के स्तुतिगीतों का कीर्तन कर और उससे प्रेरणा पाकर अपनी उन्नति करें॥१॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्दरस की उपादेयता वर्णित है।

६५२. अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः।
देवं देवाय देवयु॥२॥

**पदार्थ** :—हे पवित्रतादायक सोम परमात्मन्! ( **अथर्वाणः** ) अचंचल चित्तवृत्ति वाले उपासक जन( **ते** ) तेरे ( **मधुना** ) मधुर आनन्द-रस के साथ ( **पयः** ) अपने विशुद्ध ज्ञान और कर्म के दूध को ( **अभि अशिश्रयुः** ) मिलाते हैं। ( **देवयु** ) दिव्यगुणयुक्त परमेश्वर से प्रीति चाहने वाला सारा ही भगवद्भक्त-समाज

(देवाय) दिव्य प्रकाश पाने के लिए (देवम्) तुझ प्रकाशदाता की उपासना करता है॥२॥

इस मन्त्र में 'देवाय, देवयु' में छेकानुप्रास तथा 'देवं, देवा, देव' में वृत्त्यनुप्रास होने से दोनों अलंकारों का एकाश्रयानुप्रवेशरूप संकर है॥२॥

**भावार्थ** :—ज्ञान और कर्म से समन्वित भक्ति ही सब मनुष्यों का कल्याण करती है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**६५३. स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।**
**शं राजन्नोषधीभ्यः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**राजन्**) विश्व के सम्राट् परमात्मन्! (**सः**) वह प्रसिद्ध आप (**नः**) हमारे (**गवे**) गाय, वाणी और इन्द्रियों आदि के लिए (**शम्**) कल्याण को, (**जनाय**) माता, पिता, पुत्र, पौत्र, पत्नी, सेवक आदि जनों के लिए (**शम्**) कल्याण को, (**अर्वते**) घोड़े, प्राण और शत्रुहिंसक वीर के लिए (**शम्**) कल्याण को, (**ओषधीभ्यः**) धान, जौ, गेहूँ, लता, गुल्म, वृक्ष, वनस्पति आदियों के लिए और दोषनिवारक शुद्ध चित्तवृत्तियों के लिए (**शम्**) कल्याण को (**पवस्व**) बरसाइये॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना से सबको शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कल्याण प्राप्त करना योग्य है॥३॥

( २ )

**ऋषिः—कश्यपो मारीचः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्दरूप सोमरसों का वर्णन करते हैं।

**६५४. दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा।**
**सोमाः शुक्रा गवाशिरः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**दविद्युतत्या**) अतिशय देदीप्यमान (**रुचा**) कान्ति तथा (**परिष्टोभन्त्या**) चारों ओर से सहारा देने वाली (**कृपा**)

शक्ति के साथ (**गवाशिरः**) उपासक के आत्मा में आश्रित (**सोमाः**) ब्रह्मानन्द-रस (**शुक्राः**) अत्यन्त पवित्रकारी हो जाते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जब ब्रह्मानन्द-रस उपासक को प्राप्त होते हैं तब वे उसके आत्मा को स्थायी रूप से अतिशय निर्मल कर देते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि हृदय में धारण किया हुआ परमात्मारूप सोम क्या करता है।

**६५५. हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत्।**
**सीदन्तो वनुषो यथा॥२॥**

**पदार्थ** :—(**हेतृभिः**) प्रेरक गुरुजनों के द्वारा (**हितः**) शिष्य के आत्मा में स्थापित किया हुआ, (**हिन्वानः**) तृप्ति प्रदान करता हुआ, (**वाजी**) बलवान् परमात्मा-रूप सोम (**वाजम्**) अन्तःकरण में चल रहे देवासुरसंग्राम पर (**आ अक्रमीत्**) चारों ओर से आक्रमण कर देता है, (**यथा**) जैसे (**सीदन्तः**) प्रयाण करते हुए (**वनुषः**) हिंसक योद्धा लोग [शत्रुओं पर आक्रमण करते हैं।]॥२॥

इस मंत्र में उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—हृदय में धारण किया हुआ परमेश्वर आन्तरिक देवासुरसंग्राम में अपने उपासक को सदा विजय दिलाता है॥२॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा और चन्द्रमा का विषय वर्णित है।

**६५६. ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे।**
**पवस्व सूर्यो दृशे॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) जीवात्मा के पक्ष में। हे (**कवे**) बुद्धिमान्, दूरदर्शी (**सोम**) चन्द्रमा के समान उन्नतिशील जीवात्मन्! तू (**दिवा**) परमात्मा की ज्योति से (**संजग्मानः**) संयुक्त होता हुआ (**स्वस्तये**) उत्कृष्ट जीवन के लिए (**ऋधक्**) उन्नति प्राप्त कर। (**सूर्यः**) सूर्य के समान प्रकाशमान होकर (**दृशे**) मुक्ति का मार्ग देखने के लिए (**पवस्व**) प्रयत्न कर।

(**द्वितीय**) चन्द्रमा के पक्ष में। हे (**कवे**) पृथिवी की परिक्रमा करने वाले (**सोम**) चन्द्रमा! तू (**दिवा**) सूर्य के

प्रकाश से (संजग्मानः) संयुक्त होता हुआ (स्वस्तये) हमारे सुख के लिए (ऋधक्) एक-एक कला से प्रतिदिन बढ़ता चल। पूर्णिमा को (सूर्यः) सूर्य के समान सम्पूर्ण प्रभामण्डल वाला होकर (दृशे) हमारे देखने के लिए (पवस्व) भूमण्डल पर अपनी चांदनी को फैला॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। 'सूर्यः' अर्थात् 'सूर्य के सदृश' में लुप्तोपमा है। चन्द्रमा के पक्ष में जड़ वस्तु में चेतनवत् व्यवहार आलंकारिक है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य से चन्द्रमा प्रकाशित होता है वैसे ही परमात्मारूप सूर्य से हम प्रकाशित होते हैं॥३॥

(३)

**ऋषिः—शतं वैखानसाः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा-रूप सोम की रसधाराओं का वर्णन है।

१ २ ३ २ ३ १ २
**६५७. पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा असृक्षत।**
१ २ ३ १ २ ३ १ २
**अर्वन्तो न श्रवस्यवः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**कवे**) वेदकाव्य के कवि! हे (**वाजिन्**) बली परमेश्वर! (**पवमानस्य**) ते तुझ पवित्र करने वाले की (**सर्गाः**) आनन्द-धाराएं (**श्रवस्यवः**) हमें यशस्वी बनाना चाहती हुई (**असृक्षत**) छूट रही हैं, (**न**) जैसे (**अर्वन्तः**) घोड़े [घुड़साल से छूटते हैं।] घोड़े भी कैसे होते हैं? (**श्रवस्यवः**) घासादि भोज्य को चाहने वाले। अभिप्राय यह है कि जैसे बाहर जाकर चरागाहों में घास चरना चाहने वाले घोड़े घुड़साल में से उत्सुकतापूर्वक निकलते हैं, ऐसे ही आपकी आनन्दधाराएं आप में से निकलकर हमें आनन्दित कर रही हैं॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। 'श्रवस्यवः' में श्लेष है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के उपासक लोग परमात्मा से अपने आत्मा में प्रवेश करते हुए महान् आनन्द के झरनों को साक्षात् अनुभव करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः सोमरस का विषय वर्णित है।

**६५८. अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये।**
**अवावशन्त धीतयः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) सोमौषधिरस के पक्ष में। मैं (**मधुश्चुतम्**) मधुस्रावी सोमरस को (**कोशम् अच्छ**) द्रोणकलश में पहुँचाने के लिए (**अव्यये वारे**) भेड़ के बालों से बनी हुई छन्नी में (**असृग्रम्**) छोड़ता हूँ। मेरी (**धीतयः**) अंगुलियां (**अवावशन्त**) सोमरस को छानने में प्रवृत्त हो रही हैं।

(**द्वितीय**) ब्रह्मानन्द के पक्ष में। मैं (**मधुश्चुतम्**) माधुर्यस्रावी ब्रह्मानन्दरूप सोमरस को (**कोशम् अच्छ**) मन, बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियरूप विज्ञानमय कोश में पहुँचाने के लिए (**अव्यये वारे**) अविनश्वर तथा कामक्रोधादि शत्रुओं का निवारण करने वाले आत्मा में (**असृग्रम्**) छोड़ता हूँ। मेरी (**धीतयः**) स्तुतियां (**अवावशन्त**) प्रभु के गीतों का गान कर रही हैं।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :–जैसे सोमौषधि का रस छन्नी के माध्यम से द्रोणकलश में प्रविष्ट कराया जाता है, वैसे ही ब्रह्मानन्दरस को आत्मा के माध्यम से सभी मन-बुद्धि आदि में प्रविष्ट कराना चाहिए, जिससे हमारे दर्शन, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि सब व्यवहार ब्रह्मानन्दमय हो जाएं।।२।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि ब्रह्मानन्द-रस किस प्रकार मनुष्यों का उपकार करते हैं।

**६५९. अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः।**
**अग्मन्नृतस्य योनिमा॥३॥**

**पदार्थ** :–(**इन्दवः**) ब्रह्मानन्द-रस (**समुद्रम् अच्छ**) हृदय-समुद्र की ओर बहते हुए (**ऋतस्य**) सत्य के (**योनिम्**) गृहरूप मेरे अन्तरात्मा को (**आ अग्मन्**) प्राप्त हुए हैं। किस प्रकार? (**न**) जैसे (**धेनवः**) दूध से तृप्ति प्रदान करने वाली (**गावः**) गौएं (**अस्तम्**) गोशाला को प्राप्त होती हैं।।३।।

इस मन्त्र में उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे गौएं गोशाला को प्राप्त करके अपने दूध आदि से लोगों को तृप्त करती हैं, वैसे ही ब्रह्मानन्द हृदय और आत्मा में प्रविष्ट होकर उपासकों को तृप्ति प्रदान करते हैं।।३।।

**प्रथम अध्याय में प्रथम खण्ड समाप्त**

**( ४ )**

**ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक क्रमांकः १ पर परमात्मा, विद्वान् और राजा के पक्ष में व्याख्या हो चुकी है। यहां यज्ञाग्नि और जीवात्मा के पक्ष में व्याख्या की जा रही है।

**६६०. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।**
**नि होता सत्सि बर्हिषि॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। अग्निहोत्र के माध्यम से परमात्मा के तेज को अपने हृदय में प्रदीप्त करना चाहता हुआ उपासक यज्ञाग्नि का आह्वान कर रहा है। हे (**अग्ने**) यज्ञाग्नि! तू (**आयाहि**) हमारे यज्ञ में आ। किसलिए? (**वीतये**) हवियों को खाने के लिए। (**गृणानः**) मन्त्रपाठ द्वारा हमसे स्तुति किया जाता हुआ अथवा हमारे रोग, पाप आदि को निगलता हुआ तू (**हव्यदातये**) दातव्य तेज आदि को देने के लिए, अथवा होमी हुई सुगन्धित, मधुर, पुष्टिप्रद तथा रोगनाशक गुणों से युक्त हवियों को सूक्ष्म करके वायुमण्डल में फैलाने के लिए आ। (**होता**) होमे हुए द्रव्यों का स्वीकार करने वाला तथा आरोग्य, दीर्घायुष्य आदि को देने वाला तू (**बर्हिषि**) यज्ञवेदि के आकाश में (**नि सत्सि**) बैठ। यहाँ अचेतन यज्ञाग्नि में चेतन के समान व्यवहार आलंकारिक है।

(**द्वितीय**) आत्मोद्बोधन के पक्ष में। हे (**अग्ने**) मेरे अन्तरात्मन्! तू (**आयाहि**) कर्मभूमि में पदार्पण कर। किसलिए? (**वीतये**) कर्म करने के लिए। (**गृणानः**) कर्मयोग का उपदेश करता हुआ तू (**हव्यदातये**) परोपकारार्थ आत्मोसर्ग करने के लिए आ। (**होता**) राष्ट्र के संगठन के लिए लोगों का आह्वान करने वाला तू (**बर्हिषि**) उच्चपद पर (**नि सत्सि**) बैठ।।१।।

इस मन्त्र में श्लेपालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—सबको चाहिए कि ऋतु के अनुकूल हवियों से अग्निहोत्र द्वारा वायुमण्डल को सुगन्धित तथा रोग के कीटाणुओं से रहित करके और यज्ञाग्नि के समान तीव्र तेज को तथा परमात्मा की ज्योति को अपने अन्तःकरण में धारण करके भौतिक एवम् आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करें। साथ ही 'मेरे दाहिने हाथ में कर्म है तो बाएं हाथ में विजय रखी हुई है। य० ७।५२।८ इस वैदिक सन्देश को मुखर करके अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर जनहित के महान् कर्म करने चाहिएं और राष्ट्र के हितार्थ अपना बलिदान देने से भी नहीं हिचकना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में यज्ञाग्नि, आत्माग्नि तथा परमात्माग्नि को सम्बोधन किया गया है॥

**६६१. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।**
**बृहच्छोचा यविष्ठ्य॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। हे (**अङ्गिरः**) चंचल ज्वाला वाले यज्ञाग्नि! (**तं त्वा**) उस तुझको, हम (**समिद्भिः**) समिधाओं से, और (**घृतेन**) घृत से (**वर्धयामसि**) बढ़ाते हैं। हे (**यविष्ठ्य**) अतिशय युवा अग्ने! तू (**बृहत्**) बहुत अधिक (**शोच**) चमक।

(**द्वितीय**) जीवात्मा के पक्ष में। मनुष्य अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन दे रहा है—हे (**अङ्गिरः**) कर्मशील मेरे अन्तरात्मन्! (**तं त्वा**) उस बहुत कर्म करने में समर्थ तुझे, हम (**समिद्भिः**) ज्ञानरूप समिधाओं से, और (**घृतेन**) सत्कर्मरूप घृत से (**वर्धयामसि**) बढ़ाते हैं। हे (**यविष्ठ्य**) अतिशय तरुण! तू संसार में (**बृहत्**) अधिक (**शोच**) चमक।

(**तृतीय**) परमात्मा के पक्ष में है। हे (**अङ्गिरः**) प्राणप्रिय परमात्मन्! (**तं त्वा**) सब कर्मों में समर्थ उन आपको हम (**समिद्भिः**) प्रदीप्त करने के साधन योगांगों से, और (**घृतेन**) स्नेहयुक्त भक्तिभावों से, अपने अन्तःकरण में (**वर्धयामसि**) बढ़ाते हैं। हे (**यविष्ठ्य**) सर्वातिशय समृद्ध भगवन्! तुम हमारे

अन्तःकरण में ( बृहत् ) बहुत अधिक ( शोच ) चमको॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि यज्ञाग्नि को प्रदीप्त तथा संवृद्ध करके स्वयं भी तेज से प्रदीप्त तथा संवृद्ध हों। इसी प्रकार अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर निर्भ्रान्त ज्ञानराशि का संचय करके महान् कीर्ति प्राप्त करें और योगाभ्यास एवं भक्ति से परमात्मा-रूप अग्नि को अपने आत्मा में प्रदीप्त करें॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः यज्ञाग्नि, आत्माग्नि और परमात्माग्नि को सम्बोधन करते हैं।

**६६२. स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।**
**बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **देव** ) उत्तम प्रकाशक ( **अग्ने** ) भौतिक अग्नि, अन्तरात्मन् और परमात्मन्! ( **सः** ) वह प्रसिद्ध, तू ( **नः अच्छ** ) हमारी ओर ( **पृथु** ) विस्तीर्ण, ( **श्रवाय्यम्** ) कीर्तिजन, ( **बृहत्** ) प्रचुर, तथा ( **सुवीर्यम्** ) श्रेष्ठ बल-युक्त भौतिक एवं आध्यात्मिक ऐश्वर्य ( **विवाससि** ) प्रेरित कर॥३॥

**भावार्थ** :—भौतिक अग्नि जैसे यज्ञ में और शिल्पकर्म में उपयोग करने पर स्वास्थ्य, धन, धान्य आदि प्राप्त कराता है, वैसे ही आत्माग्नि उद्बोधन देने पर तथा परमात्माग्नि उपासना करने पर महान् अध्यत्मसम्पत्ति प्रदान करता है॥३॥

( ५ )

**ऋषिः—विश्वामित्रो जमदग्निर्वा॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक २२० पर ब्राह्मण क्षत्रिय के पक्ष में व्याख्या की गयी थी। यहां परमात्मा जीवात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**६६३. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।**
**मध्वा रजांसि सुक्रतू॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **मित्रावरुणा** ) परमात्मा और जीवात्मा! तुम

(नः) हमारे (गव्यूतिम्) इन्द्रियों के स्थितिस्थान देह को (घृतैः) तेजों से (आ उक्षतम्) सींच दो। हे (सुक्रतू) उत्कृष्ट कर्म करने वालो! तुम (रजांसि) देह में स्थित अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय लोकों को (मध्वा) मधु से (आ उक्षतम्) सींच दो॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की उपासना करके और जीवात्मा को उद्बोधन देकर शरीर, अंग-प्रत्यंग तथा मन, बुद्धि आदि को तेजस्वी बनायें॥१॥

अगले मन्त्र में फिर मित्र-वरुण नाम से परमात्मा और जीवात्मा की स्तुति की गयी है।

**६६४. उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः।**
**द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**शुचिव्रता**) पवित्र कर्मों वाले परमात्मा और जीवात्मा! (**उरुशंसा**) बहुत प्रशंसा को प्राप्त, (**नमोवृधा**) नमस्कार को ग्रहण कर बढाने वाले व नमस्कार के प्रदान से वृद्धि को प्राप्त तुम (**दक्षस्य**) बल की (**मह्ना**) महिमा से और (**द्राघिष्ठाभिः**) अतिशय दीर्घ क्रियाओं, सम्पत्तियों वा स्तुतियों से (**राजथः**) राजा बने हुए हो॥२॥

**भावार्थ** :—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सम्राट् महाबली परमेश्वर का ध्यान करके और देहपिण्ड के सम्राट् जीवात्मा को भलीभांति उद्बोधन देकर सब स्त्री-पुरुषों को अपनी उन्नति करनी चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा का आह्वान किया गया है।

**६६५. गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम्।**
**पातं सोममृतावृधा॥३॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मा-जीवात्मा रूप मित्र-वरुणो! (**जमदग्निना**) अग्निहोत्रार्थ अग्नि को प्रज्वलित करने वाले यजमान से (**गृणाना**) स्तुति किये जाते हुए तुम दोनों (**ऋतस्य योनौ**) सत्य के मन्दिर हृदय में (**सीदतम्**) स्थित रहो। हे

(ऋतावृधा) सत्य के बढ़ाने वालो! तुम दोनों (सोमम्) शान्ति की (पातम्) रक्षा करो॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा से प्रेरणा पाकर जीवात्माएं जब जगत् में शान्ति-रक्षा का प्रयत्न करती हैं तभी आपस में सौहार्द और सांमनस्य उत्पन्न होता है॥३॥

(६)

**ऋषि:—इरिम्बिठि:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १९१ क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। अब जीवात्मा के विषय में व्याख्या दी जा रही है। इन्द्र नाम से अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन किया गया है।

१ २ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

**६६६. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्।**

२उ ३ १ २ ३ १ २

**एदं बर्हि: सदो मम॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) अन्तरात्मन्! तू (आयाहि) आ, (ते) तेरे लिए, हमने (सोमम्) ज्ञानरस को (सुषुम) आंख, कान आदि ज्ञान के साधनों से अभिषुत किया है। तू (इमम्) इस ज्ञानरस को (पिब) पी, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त इस ज्ञान का मनन कर। तू (एदं) इस (मम) मेरे (बर्हि:) हृदयासन पर (आ सद:) बैठा हुआ है॥१॥

**भावार्थ** :—मन के माध्यम से ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान का मनन और निदिध्यासन द्वारा पूर्ण साक्षात्कार करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में पुन: उसी विषय का वर्णन है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**६६७. आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना।**

२ ३ १ २

**उप ब्रह्माणि न: शृणु॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) जीवात्मन्! (ब्रह्मयुजा) परमात्मा द्वारा शरीर में नियुक्त, (केशिना) प्रकाश को प्राप्त (हरी) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियरूप अश्व (त्वा) तुझे (वहताम्) ज्ञान और कर्म में प्रवृत्त करें। तू (न:) हम गुरुओं के (ब्रह्माणि) ज्ञानमय

वचनों को ( शृणु ) सुन॥२॥

**भावार्थ** :—शरीर में नियुक्त इन्द्रियों के सदुपयोग से और गुरुओं का उपदेश सुनकर सबको अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का उपदेश किया गया है।

**६६८. ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः।**
**सुतावन्तो हवामहे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) आत्मन्! हे शिष्य! ( **सोमपाम्** ) ज्ञान का पान करने वाले ( **त्वा** ) तुझे ( **सोमिनः** ) ज्ञानवान्, ( **सुतावन्तः** ) शिष्यरूप पुत्रों वाले, ( **ब्रह्माणः** ) ब्रह्मज्ञानी ( **वयम्** ) हम गुरुजन ( **युजा** ) पारस्परिक सहयोग के साथ अथवा तेरे साथ घनिष्ठ सम्बन्धपूर्वक ( **हवामहे** ) विद्या पढ़ाने और सदाचार सिखाने के लिए बुलाते हैं॥३॥

**भावार्थ :—जो स्वयं विद्यावान्, सदाचारी और ब्रह्म का अनुभव प्राप्त किये हुए गुरु होते हैं वे ही शिष्यों को विद्वान्, सदाचारी और ब्रह्मज्ञानी बना सकते हैं॥३॥**

( ७ )

**ऋषिः—विश्वामित्रो गाथिनः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥**
**छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में 'इन्द्राग्नी' नाम से जीवात्मा और मन का आह्वान किया गया है। इन्द्र आत्मा अर्थ में प्रसिद्ध है। अग्नि के विषय में शतपथ ब्राह्मण १०।१।२।३ में कहा है कि 'मन ही अग्नि है'।

**६६९. इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्।**
**अस्य पातं धियेषिता॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्राग्नी** ) आत्मा और मन! तुम दोनों ( **गीर्भिः** ) गुरुओं की वाणियों से ( **सुतम्** ) निष्पादित, ( **नभः** ) सूर्य के समान प्रकाशयुक्त ( **वरेण्यम्** ) वरणीय श्रेष्ठ ज्ञानरस को ग्रहण करने के लिए ( **आगतम्** ) आओ। ( **इषिता** ) तत्पर एवं प्रयत्नशील

होकर तुम दोनों (धिया) बुद्धि द्वारा (अस्य) इस ज्ञान को (पातम्) रक्षा करो॥१॥

इस मन्त्र में 'नभः' अर्थात् 'सूर्य के समान प्रकाशमान' में वाचकधर्मलुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—वाणी का अधिपति गुरु शिष्य को जिस ज्ञान का उपदेश करता है उसे उसको सावधानी के साथ अपने आत्मा, मन और बुद्धि के योगपूर्वक सुनकर और उस पर मनन करके हृदय में धारण कर लेना चाहिए, उसका प्रचार करना चाहिए तथा उसके अनुसार आचरण करना करवाना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**६७०. इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः।**
**अया पातमिमं सुतम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन! (**जरितुः**) विद्याओं का वर्णन करने वाले उपदेष्टा आचार्य का (**सचा**) गुरु-शिष्यों द्वारा साथ मिलकर किया हुआ (**चेतनः**) चेताने वाला (**यज्ञः**) विद्यायज्ञ (**जिगाति**) प्रवृत्त हो रहा है। तुम दोनों (**अया**) इस पद्धति से (**सुतम्**) निष्पादित (**इमम्**) इस विद्या-यज्ञ की (**पातम्**) रक्षा करते हो॥२॥

**भावार्थ** :—गुरु-शिष्य आपस में मिलकर ही ज्ञान-यज्ञ का अनुष्ठान करके राष्ट्र में सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**६७१. इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे।**
**ता सोमस्येह तृम्पताम्॥३॥**

**पदार्थ** :—मैं (**यज्ञस्य**) विद्यायज्ञ की (**जूत्या**) शीघ्र सिद्धि के लिए (**कविच्छदा**) मेधावियों को दुःख, विपत्ति आदि से बचाने वाले (**इन्द्रम् अग्निम्**) आत्मा और मन को (**वृणे**) स्वीकार करता हूँ। (**ता**) वे दोनों (**इह**) इस विद्यायज्ञ में (**सोमस्य**) ज्ञानरस से (**तृम्पताम्**) तृप्ति प्रदान करें॥३॥

**भावार्थ** :—आत्मा-रूप यजमान, मन-रूप होता और आचार्य-रूप ब्रह्मा के द्वारा सम्पादित विद्यायज्ञ सफल एवं प्रभावकारी होता है।।३।।

(८)

**ऋषि:—अमहीयुराङ्गिरस:॥ देवता—पवमान: सोम:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ४६७ पर रसागार परमेश्वर के आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां विद्या के भण्डार गुरु के ज्ञानरस के पक्ष में व्याख्या की जा रही है।

**६७२. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।**
**उग्रं शर्म महि श्रव:॥१॥**

**पदार्थ** :—हे जीवन को पवित्र करने वाले गुरु! (**ते**) आपके (**अन्धस:**) ज्ञानरस का (**जातम्**) उत्पन्न स्वरूप (**उच्चा**) अत्यन्त उच्च है। (**दिवि सत्**) प्रकाश में विद्यमान अर्थात् प्रकाशित उस ज्ञान को (**भूमि**) भूमि के समान स्वत: प्रकाश से रहित मैं (**आददे**) ग्रहण करता हूँ। उसके ग्रहण करने से मुझे (**उग्रम्**) प्रबल (**शर्म**) सुख और (**महि**) महान् (**श्रव:**) यश तथा धन, प्राप्त होगा।।१।।

**भावार्थ** :—गुरु से शास्त्रों का अध्ययन करके और ब्रह्मविद्या का अनुभव प्राप्त करके शिष्य अपने जीवन में शान्त, सुखी और यशस्वी होते हैं।।१।।

द्वितीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५९२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या हुई थी। यहाँ गुरु-शिष्य का विषय वर्णित करते हैं।

**६७३. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्य:।**
**वरिवोवित् परि स्रव॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ज्ञानरस के भंडार गुरु! (**स:**) वह अतिशय गुणी आप (**न:**) हमारे (**यज्यवे**) विद्याध्ययन-यज्ञ के यजमानभूत (**इन्द्राय**) आत्मा के लिए, (**वरुणाय**) श्रेष्ठ मन के लिए और

( **मरुद्भ्यः** ) प्राणों के लिए ( **वरिवोवित्** ) उन उनके अपने-अपने ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले होकर ( **परिस्रव** ) शिष्यों के मध्य विचरण कीजिए॥२॥

**भावार्थ** :—गुरुओं को उचित है कि वे विद्या पढ़ाने के अतिरिक्त शिष्य के आत्मा, मन और प्राणों का भी विकास करें॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ५९३ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित करके व्याख्यात की गयी है। यहाँ गुरु को सम्बोधन है।

**६७४. एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।**
**सिषासन्तो वनामहे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे हमारे अन्तःकरणों को पवित्र करने वाले गुरुवर! ( **अर्यः** ) विद्याओं के स्वामी आप ( **एना** ) इन ( **विश्वानि** ) सब ( **द्युम्नानि** ) विद्याधनों को ( **मानुषाणाम्** ) हम मननशील शिष्यों को ( **आ** ) प्राप्त कराओ। उन विद्याधनों को ( **सिषासन्तः** ) अन्यों को प्रदान करने की इच्छावाले हम ( **वनामहे** ) आपसे सीखते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जो मनुष्य गुरुओं के पास से अनेक प्रकार की भौतिक विद्याओं तथा आध्यात्मिक विद्याओं को पढ़कर अन्यों को पढ़ाते हैं वे ही गुरु-ऋण से मुक्त होते हैं॥३॥

( ९ )

**ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—१ बार्हतः प्रगाथः, २ सतोबृहती॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५११ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ गुरु का वर्णन है।

**६७५. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि। आ रत्नधा**
**योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) ज्ञानरस के खजाने गुरुवर! आप ( **धारया** ) ज्ञान की धारा से ( **पुनानः** ) शिष्यों को पवित्र करते हुए ( **अर्षसि** ) शिष्यों के मध्य जाते हो। ( **रत्नधाः** ) रमणीय गुणों

को धारण करने वाले आप (**ऋतस्य योनिम्**) सत्य के भण्डार परमात्मा को (**आसीदसि**) उपासते हो। आप (**उत्सः**) विद्या के स्रोत, (**देवः**) प्रकाशक और (**हिरण्ययः**) तेजस्वी हो॥१॥

**भावार्थ** :—वही गुरु होने योग्य है जो सब विद्याओं में पारंगत, अध्यापनकला में प्रवीण, चारित्र्यवान्, सच्चरित्र बनाने वाला, शिष्यों का पितृतुल्य, तेजस्वी, गुणवान्, गुणप्रशंसक, परब्रह्म का द्रष्टा और परब्रह्म का साक्षात्कार कराने में समर्थ हो॥१॥

अगले मन्त्र में गुरु के अन्तेवासी शिष्य का वर्णन है।

३ १ २र ३ १ २र ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**६७६. दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।**
३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**आपृच्छ्यं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः॥२॥**

**पदार्थ** :—यह शिष्य (**ऊधः**) विशाल ऊधवाली गुरुरूप गाय से (**दिव्यम्**) अलौकिक (**प्रियम्**) प्रिय (**मधु**) ब्रह्मविद्यारूप मधु को (**दुहानः**) दुहता हुआ (**प्रत्नम्**) प्राचीन, (**सधस्थम्**) गुरु और छात्र जहाँ एक साथ रहते हैं उस गुरुकुल में (**आसदत्**) निवास करता है। आगे प्रत्यक्ष पद्धति से कहते हैं—हे शिष्य! (**नृभिः**) नेता गुरुओं से (**धौतः**) पवित्र किया हुआ, (**विचक्षणः**) पण्डित, और (**वाजी**) आत्मबल से बली बना हुआ तू (**आपृच्छ्यम्**) सबसे प्रश्न करने योग्य, (**धरुणम्**) सब जगत् के आधारस्तम्भ परमेश्वर को (**अर्षसि**) पा लेता है अर्थात् आवागमन के चक्र से छूटकर दुःखों से सदा के लिए मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥२॥

**भावार्थ** :—योग्य गुरु को पाकर ही मनुष्य ब्रह्म का साक्षात्कार और मोक्ष प्राप्त कर सकता है॥२॥

**( १० )**

**ऋषिः—उशनाः काव्यः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५२३ क्रमांक पर जीवात्मा को उद्बोधन देने के पक्ष में की जा चुकी है। यहाँ

शिष्य के प्रति कहते हैं।

**६७७. प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष। अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति॥१॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्य! तू (**तु**) शीघ्र ही (**प्र द्रव**) उत्कृष्ट बनने के लिए प्रयत्न कर, उसके लिए (**कोशम्**) विद्या के खजाने गुरु का (**परि निषीद**) सेवन कर। (**नृभिः**) नेता गुरुजनों की सहायता से (**पुनानः**) स्वयं को पवित्र करता हुआ (**वाजम्**) शारीरिक और आत्मिक बल (**अभ्यर्ष**) प्राप्त कर। ये गुरुजन (**वाजिनम्**) बलवान् (**त्वा**) तुझे (**मर्जयन्तः**) शुद्ध करते हुए (**रशनाभिः**) नियन्त्रणों और मर्यादाओं से (**बर्हिः अच्छ**) ज्ञानकाण्ड व कर्मकाण्ड के प्रति (**नयन्ति**) प्रेरित करते हैं। कैसे? (**वाजिनम् अश्वं न**) जैसे बलवान् घोड़े को योद्धा लोग (**रशनाभिः**) लगामों से नियन्त्रित करके (**बर्हिः अच्छ**) संग्राम की ओर (**नयन्ति**) ले जाते हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालङ्कार है॥१॥

**भावार्थ** :—गुरुओं का हम पर महान् उपकार है, जो हम अबोध जनों को विद्यावान्, तपस्वी तथा पवित्र आचरण वाला बनाकर समुन्नत करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि गुरु किन गुणों से युक्त हो।

**६७८. स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः। पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो धरुणः पृथिव्याः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**स्वायुधः**) भद्र दण्ड वाला, (**देवः**) सुख आदि का दाता, (**अशस्तिहा**) अप्रशस्ति को दूर करने वाला, (**वृजना**) बलों की (**रक्षमाणः**) रक्षा करने वाला, (**पिता**) पितृतुल्य, (**देवानां जनिता**) विद्वानों को उत्पन्न करने वाला, (**सुदक्षः**) उत्तम बल वाला, (**दिवः**) विद्या के सूर्य का (**विष्टम्भः**)

आधारभूत, ( **पृथिव्याः** ) राष्ट्रभूमि का ( **धरुणः** ) धारण करने वाला ( **इन्दुः** ) तेजस्वी गुरु ( **पवते** ) पवित्रता प्रदान करता है॥२॥

**भावार्थ** :—मन्त्रोक्त गुणों से युक्त गुरु का जो सेवन करते हैं वे विद्वान् सदाचारी और प्रशस्त कीर्ति वाले होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः गुरु का वर्णन है।

**६७९. ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।**
**स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां३ गुह्यं नाम गोनाम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हमारा गुरु ( **ऋषिः** ) वेदमन्त्रों के रहस्य का द्रष्टा, ( **विप्रः** ) ब्राह्मण वृत्ति वाला, ( **जनानाम्** ) मनुष्यों में ( **पुरः एता** ) आगे चलने वाला, ( **ऋभुः** ) मेधावान्, ( **धीरः** ) धैर्यवान् और ( **काव्येन** ) काव्य-रचना से ( **उशना** ) जगत् का हित चाहने वाला है। ( **सः चित्** ) वही ( **आसां गोनाम्** ) इन वेदवाणियों का ( **यत्** ) जो ( **अपीच्यम्** ) छिपा हुआ, ( **गुह्यम्** ) रहस्यमय ( **नाम** ) अर्थ है उसे ( **विवेद** ) विशेष रूप से जानता है॥३॥

**भावार्थ** :—जो अति गम्भीर भी वेदादि वाङ्मय के रहस्यार्थ को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष रूप से जानता हो उसी ऋषि, मेधावी ब्राह्मण को गुरुरूप में स्वीकार करना चाहिए॥३॥

**( ११ )**

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ बार्हतः प्रगाथः, २ सतोबृहती॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३३ क्रमांक पर जगदीश्वर के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहां अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन है।

**६८०. अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।**
**ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **शूर इन्द्र** ) शूरवीर हमारे अन्तरात्मन्! हम ( **त्वा अभि** ) तेरे प्रति ( **नोनुमः** ) बारम्बार स्तुति शब्द बोलते हैं।

किस तरह? ( अदुग्धाः ) न दुही हुई ( धेनवः इव ) गौएं जैसे दुहे जाने की उत्कण्ठा को प्रकट करने के लिए बारम्बार शब्द करती हैं। तू कैसा है? ( अस्य ) इस ( जगतः ) दूर-दूर तक जाने वाले मन का ( ईशानम् ) स्वामी, ( स्वर्दृशम् ) आनन्द का द्रष्टा और ( तस्थुषः ) शरीर में अजंगम रूप में स्थित अंग-प्रत्यंगों का भी ( ईशानम् ) स्वामी है। अतः हम ( नोनुमः ) तेरे गुणों का बार-बार वर्णन करते हैं, तुझे उद्बोधन देते हैं॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य के आत्मा में महान् शक्तियां प्रसुप्त पड़ी हैं। सारे शरीरचक्र के अधिष्ठाता उस आत्मा को उद्बोधन देकर सभी लौकिक और आध्यात्मिक सिद्धियां प्राप्त की जा सकती हैं॥१॥

इस प्रकार अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर अब परमात्मा का आह्वान करते हैं।

**६८१. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते। अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे परमेश्वर! ( **अन्यः** ) दूसरा ( **त्वावान्** ) तेरे समान ( **न दिव्यः** ) न आकाशवर्ती और ( **न पार्थिवः** ) न भूमिवर्ती कोई पदार्थ है। तेरे समान ( **न जातः** ) न कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ है, ( **न जनिष्यते** ) न भविष्य में उत्पन्न होगा। हे ( **मघवन्** ) ऐश्वर्यशालिन् ( **इन्द्र** ) परमात्मन्! ( **वाजिनः** ) बलवान् तथा पुरुषार्थी हम ( **अश्वायन्तः** ) श्रेष्ठ प्राणों की कामना वाले और ( **गव्यन्तः** ) इन्द्रियरूप गौओं के श्रेष्ठ ज्ञान व कर्म रूप दूध की कामना वाले होकर ( **त्वा** ) तुझे ( **हवामहे** ) पुकार रहे हैं॥२॥

इस मन्त्र में 'उसके मुख के तुल्य कोई अन्य वस्तु नहीं है, न ही नेत्रों के तुल्य है' इस अर्थ वाली साहित्यदर्पण १०.२० में उदाहृत उक्ति के समान उपमानलुप्तोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—अलौकिक तथा अद्वितीय परमात्मा की उपासना करके बलवान् और पुरुषार्थी होकर सब लोग ऐहलौकिक तथा पारलौकिक अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हैं॥२॥

( १२ )

**ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

इस ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक १६९ पर परमेश्वर तथा राजा के पक्ष में व्याख्या हो चुकी है। यहां जीवात्मा की महिमा वर्णित करते हैं।

**६८२. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।**
**कया शचिष्ठया वृता॥१॥**

**पदार्थ** :—यह ( **चित्रः** ) अद्भुत शक्तिवाला शरीर का अध्यक्ष इन्द्र आत्मा ( **कदा** ) किस अपूर्व ( **ऊती** ) रक्षा के द्वारा, और ( **कया** ) किस अद्वितीय ( **शचिष्ठया** ) अत्यन्त बुद्धिपूर्ण तथा क्रियाकौशलपूर्ण ( **वृता** ) वृत्ति के द्वारा ( **नः** ) हमारा ( **सदावृधः** ) सदा बढ़ाने वाला ( **सखा** ) मित्र ( **भुवत्** ) होता है॥१॥

**भावार्थ** :—जिस आत्मा के बल से सब लोग सम्पूर्ण ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति करने में समर्थ होते हैं उस आत्मा का अवश्य सबको श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए॥१॥

पूर्व मन्त्र में जीवात्मा के बल को स्मरण करके अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हैं॥

**६८३. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।**
**दृढा चिदारुजे वसु॥२॥**

**पदार्थ** :—हे मेरे अन्तरात्मन्! ( **कः** ) सुन्दर, सबसे बड़ा तथा सुखस्वरूप, ( **सत्यः** ) सत्यमय, ( **मदानाम्** ) आनन्दों का ( **मंहिष्ठः** ) सबसे अधिक दाता इन्द्र परमेश्वर ( **त्वा** ) तुझे ( **अन्धसः** ) आनन्द रस से ( **मत्सत्** ) आनन्दित करे और वह ( **दृढा चित्** ) दृढ़ विघ्न-बाधा आदियों को ( **आरुजे** ) छिन्न-भिन्न करने के

लिए (वसु) शक्तिरूप ऐश्वर्य प्रदान करे॥२॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा परमात्मा द्वारा दिये हुए बल और आनन्द से ही बली और आनन्दवान् बनता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**६८४. अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।**
**शतं भवास्यूतये॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) जगदीश्वर! आप (**सखीनाम्**) आपके सखा (**जरितॄणां नः**) हम स्तोताओं की (**शतम् ऊतये**) सौ वर्ष तक प्रीति के लिए (**अविता**) रक्षक (**सु**) भलीभांति (**अभि**) चारों ओर (**भवासि**) होओ॥३॥

**भावार्थ** :—जो जीवात्मा परमात्मा के सखा हो जाते हैं उनका वह महान् कल्याण करता है॥३॥

( १३ )

**ऋषिः—नोधा गौतमः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ बार्हतः प्रगाथः, २ सतोबृहती॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में २३६ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या कर चुके हैं। यहां जीवात्मा का विषय प्रस्तुत किया जाता है।

**६८५. तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।**
**अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मन, इन्द्रिय आदि प्राणो! हम (**वः**) तुम्हारे (**दस्मम्**) दोषों को नष्ट करने वाले, (**ऋतीषहम्**) आक्रमणकारी काम, क्रोध आदि शत्रुओं को परास्त करने वाले, (**वसोः**) निवासप्रद (**अन्धसः**) आनन्दरस से (**मन्दानम्**) आनन्दित होने वाले (**इन्द्रम्**) अपने अन्तरात्मा के (**अभि**) अभिमुख होकर (**स्वसरेषु**) दिनों के उदय के समय अर्थात् प्रभात कालों (**गीर्भिः**) उद्बोधक वाणियों से (**नवामहे**) गुण वर्णनरूप स्तुति करते हैं। किस प्रकार? (**स्वसरेषु**) गोशालाओं में (**धेनवः**)

गोएं ( **वत्सम् अभि** ) नवजात बछड़े के अभिमुख होकर ( **न** ) जैसे रंभाती हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—अपने अन्तरात्मा को भली भांति उद्बोधन देकर, दोषों को दूर करके तथा सद्गुणों को प्राप्त करके हम परम यशस्वी बन सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर से याचना करते हैं।

**६८६. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम्।**
**क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्त्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे॥२॥**

**पदार्थ** :—( **द्युक्षम्** ) अन्तरात्मा में तेज के निवासक, ( **सुदानुम्** ) श्रेष्ठ दानी, ( **तविषीभिः** ) बलों से ( **आवृतम्** ) परिपूर्ण, ( **गिरिं न** ) पर्वत और बादल के समान ( **पुरुभोजसम्** ) बहुत पालन करने वाले, अर्थात् जैसे पर्वत और बादल अनेक ओषधियों तथा वर्षाओं द्वारा पालन करते हैं वैसे ही जड़-चेतन जगत् का पालन करने वाले, ( **क्षुमन्तम्** ) अन्न-भण्डार के भण्डारी, ( **शतिनम्** ) सैकड़ों ऐश्वर्यों से युक्त, ( **सहस्रिणम्** ) सहस्रों गुणों से युक्त, ( **गोमन्तम्** ) गति करने वाले सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि के स्वामी इन्द्र परमेश्वर से हम ( **मक्षु** ) शीघ्र ही ( **वाजम्** ) अन्न, धन, ज्ञान, बल, वेग, सुख आदि की ( **ईमहे** ) याचना करते हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है। विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर है॥२॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को उचित है कि जो परमेश्वर सब विद्याओं और सब ऐश्वर्यों का परम खजाना है उसकी उपासना करके सब विद्याओं तथा समस्त भौतिक और आध्यात्मिक सम्पदाओं को प्राप्त करें॥२॥

( १४ )

**ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ बार्हतः प्रगाथः, २ सतोबृहती॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक २३७ पर परमेश्वरपक्ष

में व्याख्या की गयी थी। यहां ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा आचार्य को बुला रहे हैं॥१॥

६८७. तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम्॥१॥

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! (**सबाधः**) अविद्यारूप बाधा से पीड़ित होने पर (**वः**) आप लोग (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**तरोभिः**) वेगों के साथ (**विदद्वसुम्**) ब्रह्मविद्यारूप धन को प्राप्त कराने वाले (**इन्द्रम्**) आचार्य का (**बृहत्**) बहुत अधिक (**गायन्तः**) महिमा गान करो। मैं भी (**सुतसोमे**) जिसमें विद्यारस का निष्पादन होता है उस (**अध्वरे**) विद्या-यज्ञ में (**भरं न**) कुटुम्बभार को वहन करने वाले गृहस्वामी के समान (**कारिणम्**) कर्मयोगी आचार्य को (**हुवे**) ब्रह्मविद्या ग्रहण करने के लिए पुकारता हूँ॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि ब्रह्म का साक्षात्कार पाने के लिए ऐसे सुयोग्य गुरु का आश्रय लें जिसने स्वयं भी ब्रह्म का साक्षात्कार किया हो॥१॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि वह परमेश्वर कैसा है, जिसका साक्षात्कार आचार्य कराता है।

६८८. न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः।
य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम्॥२॥

**पदार्थ** :—(**शिप्रम्**) सर्वान्तर्यामी (**यम्**) जिस परमेश्वर को (**अन्धसः**) आनन्दरस के (**मदेषु**) तृप्ति-प्रदानों में (**दुध्राः**) दुर्धर शत्रु भी (**न वरन्ते**) नहीं रोक सकते, (**न**) न ही (**स्थिराः**) स्थिर, अविचल (**मुरः**) मनुष्य रोक सकते हैं, (**यः**) जो परमेश्वर (**शशमानाय**) उद्योगी, पुरुषार्थी, (**सुन्वते**) भक्तिरस बहाने वाले (**जरित्रे**) स्तोता के लिए (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय दिव्य ऐश्वर्य (**आदृत्य**) अपने खजाने में से निकालकर (**दाता**) देने वाला होता है॥२॥

**भावार्थ** :–जब परमेश्वर अपने उपासक को ब्रह्मानन्द की वर्षा से तृप्त करना चाहता है तब उसे उस कार्य से रोकने का किसी में सामर्थ्य नहीं होता है॥२॥

**( १५ )**

**ऋषिः–मधुच्छन्दाः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४६८ क्रमांक पर परमेश्वर से प्राप्त होने वाले आनन्दरस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहां आचार्य से प्राप्त होने वाले ब्रह्मज्ञानरस के विषय में व्याख्या करते हैं।

**६८९. स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया।**
**इन्द्राय पातवे सुतः॥१॥**

**पदार्थ** :–हे ( **सोम** ) ब्रह्मज्ञानरस! तू ( **स्वादिष्ठया** ) अत्यन्त स्वादु, ( **मदिष्ठया** ) अतिशय हर्षप्रदायक ( **धारया** ) धारा से ( **पवस्व** ) हमें पवित्र कर। तू ( **इन्द्राय** ) मेरे आत्मा के ( **पातवे** ) पान करने के लिए ( **सुतः** ) आचार्य द्वारा प्रेरित किया गया है॥१॥

**भावार्थ** :–शिष्य को चाहिए कि आचार्य से वह जो भौतिक विज्ञान या ब्रह्म विज्ञान प्राप्त करता है उसे अपने आत्मा में स्थिर रूप से धारण कर ले॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**६९०. रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते।**
**द्रोणे सधस्थमासदत्॥२॥**

**पदार्थ** :–( **रक्षोहा** ) काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि राक्षसों का विनाशक, ( **विश्वचर्षणिः** ) विश्वरूप परमात्मा का दर्शन कराने वाला ब्रह्मज्ञानरूप सोम ( **योनिम्** ) शरीर-स्थिति इत्यादि के कारणभूत, ( **सधस्थम् अभि** ) जिसमें सब ज्ञानेन्द्रियों से उपलब्ध ज्ञान एकत्र स्थित होते हैं उस आत्मा को लक्ष्य करके अर्थात् आत्मा में जाने के लिए ( **अयोहते** ) यम-नियम आदि रूप लोहे के हथौड़ों से ताड़ित अर्थात् संस्कृत ( **द्रोणे** ) मनरूप

द्रोणकलश में ( आ असदत् ) आकर स्थित होता है।।२।।

**भावार्थ** :—गुरुओं से समित्पाणि शिष्य के प्रति प्रवाहित किया हुआ ब्रह्मज्ञान का रस मन के माध्यम से आत्मा को ही प्राप्त होता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**६९१. वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः।**
**पर्षि राधो मघोनाम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन्! आप ( **वरिवोधातमः** ) अतिशय ऐश्वर्य को धारण करने वाले, ( **मंहिष्ठः** ) सबसे बढ़कर दानी, ( **वृत्रहन्तमः** ) सबसे बड़े पापहन्ता ( **भुवः** ) सिद्ध हुए हो। आप ही ( **मघोनम्** ) हम भौतिक धनों के धनियों को ( **राधः** ) सत्य, न्याय, दया, मोक्ष आदि दिव्य धन ( **पर्षि** ) प्रदान करो।।३।।

**भावार्थ** :—वही मनुष्य वस्तुतः धनी है जो भौतिक धन के साथ अध्यात्म धन भी कमाता है।।३।।

( १६ )

**ऋषिः—गौरिवीतिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः ( १ ककुप्, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ ऋषभः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५७८ क्रमांक पर परमात्मा से प्राप्त होने वाले आनन्दरस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहां आचार्य से प्राप्त होने वाले ज्ञानरस का वर्णन है।

**६९२. पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः।**
**महि द्युक्षतमो मदः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) ब्रह्मज्ञान-रस! ( **मधुमत्तमः** ) सबसे अधिक मधुर तू ( **पवस्व** ) हमें पवित्र कर। तेरा ( **मदः** ) आनन्द ( **इन्द्राय** ) मेरे अन्तरात्मा के लिए ( **क्रतुवित्तमः** ) प्रज्ञा तथा कर्म को अत्यधिक प्राप्त कराने वाला होता है। तेरा ( **मदः** ) आनन्द ( **महि** ) अत्यधिक ( **द्युक्षतमः** ) तेज को बसाने वाला होता है।।१।।

**भावार्थ** :—आचार्य से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म के

गुण-कर्म-स्वभाव का ध्यान कर-करके अपने जीवन को पवित्र करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के शान्तिरस का विषय वर्णित है।

**६९३. यस्य ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः।**
**स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम! हे पवित्रतादायक रसागार परमात्मन्! (**यस्य ते**) जिन आपके शान्तिरस का (**पीत्वा**) पान करके (**वृषभः**) भगवान् को भक्तिरस से सींचने वाला उपासक (**वृषायते**) वर्षाकारी बादल के समान आचरण करने लगता है, अर्थात् जैसे बादल गर्मी से झुलसते हुओं पर शान्तिदायक जल बरसाता है, वैसे ही वह अशान्ति से झुलसते हुओं पर शान्तिरस बरसाता है। (**अस्य**) उन आपके शान्तिरस को (**पीत्वा**) पीकर, लोग (**स्वर्विदः**) **मोक्षसुख के प्राप्तकर्ता हो जाते हैं।** (**सुप्रकेतः**) **उत्कृष्ट ज्ञानी (सः) वह आपका उपासक (इषः अभि) इच्छासिद्धियों की ओर (अक्रमीत्) कदम बढ़ाता चलता है,** (**न**) जैसे (**एतशः**) घोड़ा (**वाजम् अच्छ**) संग्राम की ओर पग बढ़ाता है॥२॥

इस मन्त्र में 'वृषभो वृषायते' में मम्मट के मत से वाचलुप्तोपमा तथा दर्पणकार के मत से धर्मलुप्तोपमा है। 'वृष, वृपा' में छेकानुप्रास है। उत्तरार्ध में पूर्णोपमा है॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना से भगवान् का भक्त जैसे स्वयं शान्ति प्राप्त करता है वैसे ही अन्यों के लिए भी शान्ति बरसाता है और उसके सब धर्मानुकूल मनोरथ शीघ्र ही फल जाते हैं॥२॥

(१७)

**ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५६६ क्रमांक पर ब्रह्मानन्दरस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ ज्ञानकर्मोपासनारस का विषय वर्णित है।

६९४. इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः॥१॥

**पदार्थ** :–( **सुताः** ) आचार्य द्वारा प्रेरित ( **इमे** ) ये ( **हरयः** ) ज्ञान-कर्म-उपासनारूप सोमरस ( **वृषणम्** ) बलवान् ( **इन्द्रम्** ) आत्मा की ( **अच्छ** ) ओर ( **यन्तु** ) जाएं। ( **जातासः** ) उत्पन्न हुए ( **इन्दवः** ) चन्द्रकिरणों के समान आह्लाददायक ये रस ( **श्रुष्टे** ) शीघ्र ही ( **स्वर्विदः** ) मोक्षसुख को प्राप्त कराने वाले हों॥१॥

**भावार्थ** :–ज्ञान, कर्म और उपासना के रस ही वास्तविक सोम हैं, जो पीने पर मनुष्य को उन्नत कर देते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

६९५. अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः।
सोमो जैत्रस्य चेतति यथा विदे॥२॥

**पदार्थ** :–( **भराय** ) देवासुरसंग्राम में जीतने के लिए ( **सानसिः** ) संभजनीय, ( **सुतः** ) आचार्य द्वारा शिष्यों में प्रेरित ( **अयम्** ) यह ज्ञान-कर्म-उपासना का रस ( **इन्द्राय** ) आत्मा के लिए ( **पवते** ) प्रवाहित हो रहा है। ( **जैत्रस्य** ) विजयशील उस आत्मा का ( **सोमः** ) वह ज्ञान-कर्म-उपासना का रस ( **चेतति** ) सदैव जागता रहे, ( **यथा** ) जिससे, वह ( **विदे** ) सदा कर्तव्य-अकर्तव्य को पहचानता रहे॥२॥

**भावार्थ** :–ज्ञान, तदनुकूल कर्म और परमेश्वर की उपासना सदैव मनुष्य को संसार के समरांगण में विजय दिलाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन करते हैं।

६९६. अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम्।
वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित्॥३॥

**पदार्थ** :–( **अस्य इत्** ) इस ज्ञान-कर्म-उपासना रूप सोमरस के ही ( **मदेषु** ) उत्साहों में ( **इन्द्रः** ) वीर मनुष्य ( **सानसिम्** ) ग्रहण करने योग्य ( **ग्राभम्** ) धनुष को ( **आ गृभ्णाति** ) थामता

है, ( च ) और ( अप्सुजित् ) समुद्र के जल में तथा अन्तरिक्ष में भी शत्रु को जीतने वाला वह वीर ( वृषणम् ) गोली या गोले बरसाने वाले ( वज्रम् ) बन्दूक, तोप आदि सुदृढ़ हथियार का ( संभरत् ) संधान कर लेता है॥३॥

**भावार्थ** :—ज्ञान-कर्म-उपासना रूप दिव्य सोमरस के पान से अपूर्व उत्साहवान् होकर मनुष्य भूमि, जल, आकाश कहीं भी विद्यमान दुर्दान्त शत्रुओं को भी जीतने में समर्थ हो जाता है॥३॥

## ( १८ )

**ऋषिः—अन्धीगुः श्यावाश्विः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—आनुष्टुभः प्रगाथः ( १ अनुष्टुप् २-३ गायत्री )॥ स्वरः—गान्धारः, २-३ षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ५४५ पर ब्रह्मानन्द के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ प्रकरण प्राप्त ज्ञान, कर्म और उपासना का विषय है।

**६९७. पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे।**
**अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सखायः** ) मित्रो! ( **वः** ) तुम ( **अन्धसः** ) ज्ञान-कर्म-उपासनारूप सोम को ( **पुरोजिती** ) आगे बढ़कर जीतने के लिए, और उस सोम के ( **मादयित्नवे** ) आनन्दप्रदायक ( **सुताय** ) रस को प्राप्त करने के लिए ( **दीर्घजिह्व्यम्** ) लम्बी जीभ वाले अर्थात् दूरस्थ विषयों के भी ग्रहण में समर्थ ( **श्वानम्** ) वेगवान् मन को ( **अपश्नथिष्टन** ) प्रवृत्त करो॥१॥

**भावार्थ** :—ज्ञान, कर्म और उपासना में मन को प्रवृत्त करके उसके मिलने वाला आनन्द सबको प्राप्त करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में ज्ञान, कर्म और उपासना से मिलने वाले आनन्द का वर्णन है।

**६९८. यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः।**
**इन्दुरश्वो न कृत्व्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **सुतः** ) उत्पन्न किया गया ( **यः** ) जो ( **पावकया** )

पवित्र करने वाली (धारया) धारा के साथ (परिप्रस्यन्दते) चारों ओर बहता है, वह (इन्दुः) ज्ञान, कर्म और उपासना से मिलने वाला आनन्द (कृत्व्यः) संग्राम में कुशल (अश्वः न) घोड़े के समान (कृत्व्यः) कृतार्थ करने वाला होता है॥२॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—वे लोग धन्य हैं जो ज्ञान, कर्म और उपासना से प्राप्त होने वाले अगाध आनन्द का अनुभव करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**६९९. तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया।**
**यज्ञाय सन्त्वद्रयः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**दुरोषम्**) जलाये या सुखाये न जा सकने योग्य (**तम्**) उस पूर्ववर्णित (**सोमम्**) ज्ञान-कर्म-उपासनारूप सोमरस को (**नरः**) सज्जन लोग (**विश्वाच्या**) सब उत्कृष्ट विषयों के विवेचन में व्याप्त होने वाली (**धिया**) बुद्धि से (**अभि**) अभिषुत करें, जिससे (**अद्रयः**) किसी भी आन्तरिक या बाह्य शत्रु से विदीर्ण न होने वाले वे लोग (**यज्ञाय**) परमेश्वर की पूजा, विद्वानों के सत्कार, संगठन और परोपकार-रूप यज्ञ के लिए (**सन्तु**) होवें॥३॥

**भावार्थ** :—श्रेष्ठज्ञान, सत्कर्म और परमेश्वर की उपासना को जो अपने जीवन में ग्रहण करते हैं वे सदा विजयी और यज्ञपरायण होते हैं॥३॥

(१९)

**ऋषिः—कविर्भार्गवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ५५४ पर परमेश्वर के विषय में की गयी थी। यहाँ जीवात्मा का विषय है।

**७००. अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधि येषु वर्धते। आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वञ्चमरुहद्विचक्षणः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **चनोहितः** ) भोगों को भोगने के लिए शरीर में प्रेषित, ( **यह्व** ) महाशक्तिशाली जीवात्मा ( **प्रियाणि** ) प्रिय ( **नामानि** ) लचकीले अंगों में ( **पवते** ) जाता है, ( **येषु अधि** ) जिनमें, यह ( **वर्धते** ) महिमा को प्राप्त करता है। ( **बृहन्** ) महान्, ( **विचक्षणः** ) ज्ञानवान् यह जीवात्मा ( **बृहतः** ) महान् ( **सूर्यस्य** ) गतिमय प्राण के ( **वि-स्वञ्चम्** ) विशिष्ट शुभगति वाले ( **रथम् अधि** ) देहरूप रथ पर ( **आ अरुहत्** ) चढ़कर बैठा हुआ है॥१॥

**भावार्थ** :—आत्मा कर्मफल-भोग के लिए प्राणयुक्त देह का आश्रय लेकर शुभाशुभ भोगों को भोगता है॥१॥

अगले मन्त्र में ईश्वररचित वेदों से उपासक क्या फल प्राप्त करता है यह वर्णित है।

**७०१. ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो
अस्या अदाभ्यः। दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां३ नाम
तृतीयमधि रोचनं दिवः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **ऋतस्य** ) सत्यवस्वरूप जगदीश्वर की ( **जिह्वा** ) वेदवाणी ( **प्रियम्** ) प्रिय ( **मधु** ) अध्यात्मज्ञानरूप मधु को ( **पवते** ) बहा रही है। ( **अस्याः धियः** ) इस ज्ञानमयी वेदवाणी का ( **वक्ता** ) वक्ता ( **पतिः** ) जगत्पति परमेश्वर ( **अदाभ्यः** ) अजर-अमर है। इस वेदवाणी के माध्यम से ( **पुत्रः** ) अमृतमय परमात्मा का पुत्र उपासक ( **पित्रोः** ) माता-पिता से भी ( **अपीच्यम्** ) छिपे हुए, ( **दिवः रोचनम्** ) जीवात्मा को प्रकाशित करने वाले ( **तृतीयं नाम** ) तृतीय पद ओंकार को ( **अभिदधाति** ) हृदय में धारण कर लेता है। कहा भी है—"तत्त्वदर्शी विद्वान् लोग विष्णु परमात्मा के उस परमपद का वैसे ही स्वाभाविक रूप से दर्शन करते हैं, जैसे सूर्यप्रकाश में आंख पदार्थों को देखती है (य० ६।५)॥२॥

**भावार्थ** :—प्रकृति, जीवात्मा और ओंकार ये तीन पद हैं। ईश्वररचित वेदों का रहस्यार्थ जानकर मनुष्य अपने माता-पिता से भी अधिक ज्ञानी होकर ओंकार-रूप परमपद को प्राप्त करने योग्य हो जाता है॥२॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस का वर्णन है।

**७०२. अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ हिरण्यये। अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ उषसो वि राजसि॥३॥**

**पदार्थ** :—(**नृभिः**) उपासक जनों द्वारा (**हिरण्यये कोशे**) ज्योतिर्मय विज्ञानमय कोश में (**येमाणः**) नियन्त्रित किया जाता हुआ, (**द्युतानः**) प्रकाशमान ब्रह्मानन्दरूप सोमरस (**कलशान्**) आत्मारूप द्रोणकलशों में (**अव अचिक्रदत्**) कल-कल ध्वनि-सी करता हुआ प्रवेश करता है। (**ऋतस्य**) सच्चे ब्रह्मानन्द-रस को (**दोहनाः**) दुहने वाले उपासक लोग उस रस की (**अभि अनूषत**) स्तुति करते हैं। (**त्रिपृष्ठः**) ज्ञानकर्मोपासनारूप तीन आधारों वाला तू, हे ब्रह्मानन्द-रस! (**उषसः अधि**) उषाकाल में सन्ध्योपासना में (**विराजसि**) विशेष रूप से प्रकाशित होता है॥३॥

**भावार्थ** :—योग द्वारा ब्रह्मानन्द-रस से अपने आत्मा को सींचकर योगी जन कृतार्थ होवें॥३॥

## (२०)

**ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ बार्हतः प्रगाथः, २ सतोबृहती॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ३५ पर परमेश्वरोपासना विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ आत्मोद्बोधन का विषय है।

**७०३. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे। प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे भाइयो! मैं (**यज्ञायज्ञा**) प्रत्येक यज्ञ में (**वः**) तुम्हें (**अग्नये**) अपने अन्तरात्मा में अग्नि प्रज्वलित करने के लिए प्रेरित करता हूँ। (**गिरागिरा च**) और प्रत्येक वाणी द्वारा (**दक्षसे**) आत्मोन्नति के लिए, प्रेरित करता हूं। (**वयम्**) हम सब मिल कर (**अमृतम्**) अमर, (**जातवेदसम्**) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता जीवात्मा को (**प्रप्र**) अधिकाधिक प्रोद्बोधन देते हैं। मैं अलग भी (**मित्रं न**) मित्र के समान (**प्रियम्**) प्रिय उस

जीवात्मा का (प्रप्र शंसिषम्) अधिकाधिक गुणकीर्तन करता हूँ॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य के अन्तरात्मा के अन्दर महान् शक्ति छिपी पड़ी है, उसे जगाकर बड़े-बड़े कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर की कामना की गयी है।

**७०४. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये।**
**भुवद्वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**ऊर्जः**) बल के (**नपातम्**) न गिरने देने वाले परमेश्वर की, मैं (**प्रप्र शंसिषम्**) पुनः पुनः प्रशंसा करता हूँ। (**सः अयम्**) वह यह (**हिन**) निश्चय ही (**अस्मयुः**) हमसे प्रीति करने वाला है। (**हव्यदातये**) देने योग्य सद्गुण आदि के दाता उस परमेश्वर के लिए, हम (**दाशेम**) आत्मसमर्पण करें। वह (**वाजेषु**) देवासुरसंग्रामों में, हमारा (**अविता**) रक्षक (**भुवत्**) होवे, (**वृधः**) वृद्धिकर्ता (**भुवत्**) होवे, (**उत**) और (**तनूनाम्**) हमारे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि शरीरों का (**त्राता**) त्राणकर्ता होवे॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को योग्य है कि परमात्मा को आत्मसमर्पण करके महान् कल्याण प्राप्त करें॥२॥

(२१)

**ऋषिः—भरद्वाजः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ७ पर परमेश्वरोपासना के विषय में की गयी थी। यहाँ गुरु शिष्य को सम्बोधन कर रहा है।

**७०५. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः।**
**एभिर्वर्धास इन्दुभिः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) तपस्वी विद्यार्थी! (**एहि उ**) आ, मैं

( ते ) तेरे लिए ( सु ) भलीभांति ( इत्था ) सच्चे रूप में ( इतराः ) सामान्य वाणियों से विलक्षण प्रकार की ( गिरः ) शास्त्रवाणियों का ( ब्रवाणि ) उपदेश करूं। तू ( एभिः ) इन ( इन्दुभिः ) विद्या रसों से ( वर्धासे ) वृद्धि को प्राप्त कर॥१॥

**भावार्थः**—गुरुओं को चाहिए कि प्रेम से बुलाकर शिष्यों को मनोयोग से पढ़ाएं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७०६. यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्। तत्र योनिं कृणवसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे विद्यार्थिन्! ( **यत्र क्व च** ) जिस किसी भी विज्ञान में ( **ते मनः** ) तेरा मन है, अर्थात् तेरी रुचि है, उसमें ( **उत्तरम्** ) अधिकाधिक ( **दक्षम्** ) बल को, निपुणता को ( **दधसे** ) धारण कर। और ( **तत्र** ) उस विज्ञान में ( **योनिम्** ) घर ( **कृणवसे** ) कर ले, अर्थात् उस विद्या में पारंगत हो जा॥२॥

**भावार्थ** :—जिन भी विद्याओं में शिष्यों की रुचि तथा ग्रहणशक्ति हो उन विद्याओं में गुरुजन उन्हें निष्णात करें॥२॥

अगले मन्त्र में शिष्य गुरु को कह रहे हैं।

**७०७. न हि ते पूर्तमक्षिपद् भुवन्नेमानां पते। अथा दुवो वनवसे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **नेमानां पते** ) हम अपूर्णों के पालनकर्ता आचार्यवर! ( **ते** ) आपका ( **पूर्तम्** ) पालनपूरण ( **अक्षिपत्** ) आँख आदि इन्द्रियों को पतन की ओर ले जाने वाला ( **नहि** ) न ( **भुवत्** ) होवे। ( **अथ** ) और, आप हमारे ( **दुवः** ) सत्कार को ( **वनवसे** ) स्वीकार कीजिए॥३॥

**भावार्थ** :—गुरुजन शिष्यों को भली-भांति पढ़ाकर सदाचार में प्रवृत्त करें और शिष्य उनका श्रद्धा के साथ सत्कार करें॥३॥

( २२ )

**ऋषिः—सोभरिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः ( १ ककुप्, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ ऋषभः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ४०८ पर परमेश्वर, आचार्य और वैद्यराज के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा को कहा जा रहा है।

**७०८. वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः।**
**वज्रिञ्चित्रं हवामहे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अपूर्व्य**) अद्वितीय बल से युक्त, (**वज्रिन्**) काम, क्रोध आदि शत्रुओं पर व्रज-प्रहार करने वाले मेरे अन्तरात्मा! (**अवस्यवः**) प्रगति को चाहने वाले (**वयम्**) हम (**चित्रम्**) अद्‌भुत गुण-कर्म-स्वभाव वाले (**त्वाम्**) आपको (**आह्वयामः**) पुकारते हैं। किस प्रकार? (**न**) जैसे (**कच्चित्**) किसी (**स्थूरम्**) स्थूल बड़ी वस्तु को (**हरन्तः**) दूसरे स्थान पर ले जाते हुए लोग, सहायता के लिए किसी को पुकारते हैं।।१।।

इस मंत्र में उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—प्रगति के मार्ग पर दौड़ने के लिए अपना अन्तरात्मा मनुष्य का परम सहायक होता है।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा का वरण करते हैं।

**७०९. उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।**
**त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमसहायक परमात्मन्! (**कर्मन्**) कर्मों में (**ऊतये**) रक्षा के लिए हम (**त्वा**) आपको (**उप**) प्राप्त होते हैं। भाइयो! देखो (**सः**) वह (**नः**) हमारा (**युवा**) सदा युवा रहने वाला (**उग्रः**) वीर प्रभु, उस पर (**चक्राम**) आक्रमण कर देता है, (**यः**) जो आन्तरिक या बाह्य शत्रु (**धृषत्**) हमें दबाता है। हे परमेश! (**सखायः**) आपके सखा हम (**अवितारम्**) रक्षक, (**सानसिम्**) संभजनीय (**त्वाम् इत हि**) आपको ही (**ववृमहे**) वरण करते हैं।।२।।

**भावार्थ** :—महाशक्तिशाली जीव को भी संसार-समरांगण में विजय पाने के लिए परमात्मा की सहायता अपेक्षित होती है।।२।।

( २३ )

**ऋषि:—नृमेध:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—१ककुबुष्णिक्, २ उष्णिक्, ३ पुरउष्णिक्॥ स्वर:—ऋषभ:॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४०६ क्रमांक पर जगदीश्वर के विषय में की गयी थी। यहाँ शिष्य ब्रह्मवेत्ता आचार्य को कह रहे हैं।

**७१०. अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे।**
**उदेव ग्मन्त उदभि:॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**गिर्वण:**) उपदेशवाणियों के लिए सेवनीय (**इन्द्र**) ब्रह्मवेत्ता आचार्यप्रवर! (**अध हि**) अब हम शिष्यलोग (**कामे**) ब्रह्मसाक्षात्काररूपी मनोरथ की पूर्ति के लिए (**त्वा**) तेरे (**उप ईमहे**) समीप पहुँचते हैं, और (**ससृग्महे**) तेरे साथ निकट संसर्ग प्राप्त करते हैं। कैसे? (**उदा इव**) जैसे जलों के बीच से (**ग्मन्त:**) जाते हुए लोग (**उदभि:**) जलों से संसर्ग को पाते हैं॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है। **'महे, महे'** और 'उदे, उद' में छेकानुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—जब जिज्ञासुजन समित्पाणि होकर आचार्य के प्रति स्वयं को समर्पित करके उसके सान्निध्य में रहते हैं और उससे कुछ भी नहीं छिपाते हैं, तभी वे उसके पास से अपरा विद्या और परा विद्या सीख पाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का विषय है।

**७११. वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि।**
**वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**शूर**) शूरवीर, (**अद्रिव:**) किसी से विदारण न किये जा सकने वाले अजर-अमर इन्द्र प्रभु! (**यव्याभि:**) नहरों द्वारा जल लाकर (**वा: न**) जैसे सरोवर आदि में लोग जल के परिमाण को बढ़ाते रहते हैं, वैसे ही (**वावृध्वांसं चित्**) पहले से बढ़े हुए भी (**त्वा**) तुझे (**ब्रह्माणि**) उपासक के स्तोत्र (**वर्धन्ति**) अपने हृदय में बढ़ाते हैं या समाज में प्रचारित करते

हैं॥२॥

'जो पहले से ही बढ़ा हुआ है उसे भी बढ़ाते हैं' इसमें विरोधालंकार है। बढ़ाने से स्मरण तथा प्रचार अभिप्रेत होने पर विरोध का परिहार हो जाता है॥२॥

**भावार्थ** :—सर्वान्तर्यामी ह्रासवृद्धिरहित भी परमेश्वर लोगों द्वारा भुला दिये जाने से और नास्तिकता का प्रचार हो जाने के कारण मानो ह्रास को प्राप्त हो जाता है। भक्तजनों को चाहिए कि उसके स्तोत्रों का गान करके उसे बढ़ायें तथा उसका प्रचार करें॥२॥

अगले मन्त्र में उपासक क्या करते हैं, यह कहा गया है।

**७१२. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे**
**वचोयुजा। इन्द्रवाहा स्वर्विदा॥३॥**

**पदार्थ** :—उपासक लोग (**इषिरस्य**) सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के (**गाथया**) कीर्तिगान के साथ (**उरुयुगे**) जिसमें पृष्ठवंशरूप विस्तीर्ण धुरा लगा है ऐसे, (**उरौ**) विशाल (**रथे**) देहरूप रथ में (**वचोयुजा**) कहते ही कार्यसंलग्न हो जाने वाले, (**इन्द्रवाहा**) आत्मा से प्रेरित होने वाले, (**स्वर्विदा**) ज्ञान तथा कर्म को प्राप्त कराने वाले (**हरी**) ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-रूप घोड़ों को (**युञ्जन्ति**) कार्यतत्पर कर देते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना के साथ जीवन में ज्ञान का संचय तथा पुरुषार्थ भी करना चाहिए॥३॥

**इति प्रथमोऽध्यायः, प्रथमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ द्वितीयोऽध्यायः
## प्रथमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—श्रुतकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्; २-३ गायत्री॥ स्वरः—१ गान्धारः; २-३ षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १५५ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के पक्ष में हो चुकी है। यहाँ गुरु शिष्य विषय का वर्णन करते हैं।

**७१३. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।**
**विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्यो! (**वः**) तुम (**अन्धसः**) विद्या-रस की (**पान्तम्**) रक्षा करने वाले, (**विश्वासाहम्**) काम, क्रोध, अज्ञान, आलस्य आदि सब शत्रुओं को पराजित करने वाले, (**शतक्रतुम्**) बहुत बुद्धिमान् तथा बहुत कर्मण्य, (**चर्षणीनाम्**) पुरुषार्थी छात्रों को (**मंहिष्ठम्**) अतिशय विद्या और सदाचार का दान करने वाले (**इन्द्रम् अभि**) अगाध ज्ञान आदि ऐश्वर्य से शोभायमान आचार्य को लक्ष्य करके (**प्र गायत**) भलीभांति स्तुति करो॥१॥

**भावार्थ** :—जो शिष्य विद्या के समुद्र, शिक्षण-कला में कुशल, सदाचारी, ब्रह्निष्ठ गुरु की श्रद्धा के साथ सेवा करते हैं वे विद्वान्, सदाचारी, ब्रह्मज्ञानी होकर अभ्युदय प्राप्त करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में आचार्य शिष्यों को कह रहा है।

**७१४. पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्या३ सनश्रुतम्।**
**इन्द्र इति ब्रवीतन॥२॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्यो! तुम (**पुरुहूतम्**) बहुतों से पुकारे जाने वाले, (**पुरुस्तुतम्**) बहुत स्तुति किये जाने वाले, (**गाथान्यम्**) वेदवाणियों को प्राप्त कराने वाले अर्थात् वेदवाणियों के उपदेष्टा, (**सनश्रुतम्**) सनातन रूप से प्रसिद्ध परमेश्वर को ही (**इन्द्रः**

इति) इन्द्र नाम से (ब्रवीतन) कहा करो॥२॥

**भावार्थ** :–यद्यपि इन्द्र का अर्थ आचार्य भी होता है तथापि इन्द्रों का भी इन्द्र परमेश्वर ही है, जैसा कि योगदर्शन १.२६ में वर्णित है कि 'ईश्वर काल से बंधा न होने के कारण प्राचीनों का भी गुरु है॥२॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का वर्णन है।

**७१५. इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजानां नृतुः।**
**महाँ अभिज्ञ्वा यमत्॥३॥**

**पदार्थ** :–(इन्द्रः इत्) जगदीश्वर ही (नः) हमारे लिए (महोनाम्) महान् (वाजानाम्) धन, अन्न, बल, वेग, विज्ञान आदि का (दाता) दाता, और (नृतुः) जगत् के प्रांगण में सब प्राणियों को उन-उनके कर्मों के अनुसार नचाने वाला है। (महान्) महान् वह माता के गर्भ में प्राणियों को (अभिज्ञु) घुटने मोड़े हुए (आयमत्) बांधे रखता है॥३॥

**भावार्थ** :–जगदीश्वर ही सबका उत्पादक, पालक, संहारक और कर्मफलों का प्रदाता है॥३॥

(२)

ऋषिः–वसिष्ठः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में मन्त्रसंख्या १५६ पर परमात्मा और राजा के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा के पक्ष में व्याख्या करते हैं।

**७१६. प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत।**
**सखायः सोमपाव्ने॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (सखायः) साथियो! (वः) तुम (हर्यश्वाय) ज्ञान ग्रहण कराने और कर्मों को कराने वाले ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय रूप घोड़े जिसके पास हैं ऐसे, (सोमपाव्ने) ब्रह्मानन्दरस का पान करने वाले (इन्द्राय) अपने अन्तरात्मा के लिए (मादनम्) हर्षक एवं उदबोधक गीत (प्र गायत) भली-भांति गाया करो॥१॥

**भावार्थ** :—अपने आत्मा को उद्‌बोधन देकर ही सब लोग संसार-समर में विजय तथा ब्रह्मानन्दरस पा सकते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के लिए प्रेरणा है।

**७१७. शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः।**
**चकृमा सत्यराधसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे साथी! तू (**सुदानवे**) उत्कृष्ट दानी इन्द्र परमात्मा के लिए (**उक्थम्**) स्तोत्र का (**उत**) और (**द्युक्षम्**) तेज का निवास कराने वाले उसके गुण-कर्म-स्वभाव का (**शंस इत्**) अवश्य कीर्तन कर (**यथा**) जिस प्रकार (**नरः**) नेता हम लोग (**सत्यराधसे**) सच्चे धन वाले उसके लिए (**चकृम**) स्तोत्र का तथा उसके गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करते हैं।।२।।

इस मंत्र में उपमालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि जगदीश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करके उसके अनुकूल अपना जीवन बनायें।।२।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की स्तुति है।

**७१८. त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो।**
**त्वं हिरण्ययुर्वसो॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! (**त्वम्**) आप (**नः**) हमारे लिए (**वाजयुः**) अन्न, धन, बल, विज्ञान आदि प्रदान करने के इच्छुक होओ। हे (**शतक्रतो**) अनन्त ज्ञान तथा अनन्त कर्मोंवाले जगदीश्वर! (**त्वम्**) आप (**गव्युः**) हमें गाय प्रदान करने के इच्छुक होओ। हे (**वसो**) निवास देने वाले जगदीश्वर! (**त्वम्**) आप (**हिरण्ययुः**) हमें सुवर्ण और ज्योति प्रदान करने के इच्छुक होओ।।३।।

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना करके उसकी कृपा से हम अन्न, धन, गाय, बल, वेग, विज्ञान, श्रेष्ठ संकल्प, श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ विवेक, श्रेष्ठ प्रकाश, श्रेष्ठ कर्म, श्रेष्ठ गुण तथा दुःखों से मोक्ष आदि सभी भौतिक और दिव्य सम्पदा पाने योग्य होवें।।३।।

(३)

ऋषिः—मेधातिथिप्रियमेधौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १५७ पर परमात्मोपासना के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां शिष्यगण आचार्य को कह रहे हैं।

३ १ २   ३ १ २ ३ १ २   ३ २ ३   १ २
**७१९. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।**
१   २ ३   १   २
**कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे आचार्यप्रवर! (**तदिदर्थाः**) वह लौकिक विद्या तथा ब्रह्मविद्या का अध्ययन ही जिनका उद्देश्य है ऐसे (**वयम्**) हम विद्यार्थी (**त्वा**) आपके समीप आते हैं। हे (**इन्द्र**) विद्याओं के अधिपति! (**सखायः**) सहाध्यायी हम (**त्वायन्तः**) आपको चाहते हैं। सभी (**कण्वाः**) मेधावी विद्यार्थी (**उक्थेभिः**) स्तोत्रों से आपकी (**जरन्ते**) स्तुति करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—शिष्यों को चाहिए कि गुरुओं के प्रति सदा ही विनय का व्यवहार करें, नित्य उनकी सेवा करें। कहा भी है—"पढ़ाए हुए जो विप्र छात्र मन-वाणी-कर्म से गुरु का आदर नहीं करते, वे गुरु के कृपापात्र नहीं बनते और न ही पढ़ी हुई विद्या उनकी रक्षा करती है॥१॥ (निरु० २।४)

अगले मन्त्र में पुनः आचार्य को कहा जा रहा है।

१   २ ३   १   २र   ३   १   २ ३ २   ३   १   २
**७२०. न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ।**
२उ   ३   १ २
**तवेदु स्तोमैश्चिकेत॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वज्रिन्**) कठोर नियंत्रण रूप वज्र से शिष्यों को संस्कृत करने वाले गुरुवर! (**अपसः**) विद्याध्ययनरूप कर्म के (**नविष्टौ**) नवीन सत्र के आरम्भ में, मैं (**अन्यत्**) किसी अन्य की (**न घ ईम्**) नहीं (**आ पपन**) स्तुति करता हूँ (**तव इत् उ**) आपकी ही (**स्तोमैः**) सूक्तियों से (**चिकेत**) ज्ञानी बनता हूँ॥२॥

**भावार्थ** :—शिष्यों को चाहिए कि विद्या के लिए यथासम्भव

उस विद्या में निष्णात एक ही गुरु को चुनें, क्योंकि अनेकों को चुनने में उनके पारस्परिक मतभेदों के कारण नाना सन्देह उत्पन्न हो सकते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है।

**७२१. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम् न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।**
**यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥३॥**

**पदार्थ** :-(**देवाः**) विद्वान् गुरुजन (**सुन्वन्तम्**) पुरुषार्थरूप सोमयाग करने वाले विद्यार्थी को ही (**इच्छन्ति**) शिष्यरूप में स्वीकार करना चाहते हैं वे (**स्वप्नाय**) निद्रालु आलसी शिष्य को (**न स्पृहयन्ति**) नहीं पसन्द करते। (**प्रमादम्**) जो विद्याध्ययन से प्रहृष्ट हो जाने वाला है उसके पास वे (**अतन्द्राः**) निरालस्य होकर (**यन्ति**) जाते हैं॥३॥

**भावार्थ :-लौकिक विद्या और ब्रह्मविद्या की भी प्राप्ति पुरुषार्थ से ही होती है। पुरुषार्थी की ही दूसरे लोग भी सहायता करते हैं, निष्कर्मण्य की नहीं॥३॥**

(४)

**ऋषिः-श्रुतकक्षः॥ देवता-इन्द्रः॥ छन्दः-गायत्री॥ स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक १५८ पर परमात्मोपासना के विषय में की गयी है। यहां गुरुजन कह रहे हैं।

**७२२. इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः।**
**अर्कमर्चन्तु कारवः॥१॥**

**पदार्थ** :-(**मद्वने**) ब्रह्मविद्या में आनन्द अनुभव करने वाले (**इन्द्राय**) शिष्यों के आत्मा के लिए (**नः**) हमारी (**गिरः**) वाणियां (**सुतम्**) अभिषुत ज्ञान को (**परिष्टोभन्तु**) परिधारित करें, देवें, जिससे (**कारवः**) स्तुतिकर्त्ता होते हुए वे (**अर्कम्**) पूजनीय परमात्मदेव की (**अर्चन्तु**) पूजा किया करें॥१॥

**भावार्थ** :-शिष्यों को चाहिए कि गुरुओं से लौकिक ज्ञान

और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके गुरुजनों द्वारा उपदेश किये गये मार्ग से परमात्मा का ध्यान करते हुए उसका साक्षात्कार करें॥१॥

अगले मन्त्र में गुरु से उपदेश किये हुए शिष्य परमात्मा का आह्वान कर रहे हैं।

**७२३. यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः।**
**इन्द्रं सुते हवामहे॥२॥**

**पदार्थ** :–(**यस्मिन् अधि**) जिसके अधिष्ठातृत्व में (**विश्वाः श्रियः**) सब शोभाएं विद्यमान हैं, और जिसकी (**सप्त संसदः**) सात ऋत्विज्, सात दिशाएं, सात प्रकार की सूर्यकिरणें, सात छन्द, सात मन बुद्धि-सहित ज्ञानेन्द्रियां और सात आकाशस्थ ऋषि (**रणन्ति**) स्तुति कर रहे हैं, उस (**इन्द्रम्**) जगदीश्वर को (**सुते**) उपासना-यज्ञ में या जीवन-यज्ञ में, हम (**हवामहे**) पुकारते हैं।

सात ऋत्विज् ऋग्वेद २।१।२ में इस प्रकार परिगणित किये गये हैं—होता, पोता, नेष्टा, अग्नीत्, प्रशास्ता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। सोमयाग के सात ऋत्विज् हैं—तीन उद्गाता, एक होता, एक मैत्रावरुण, एक ब्राह्मणाच्छंसी और एक अच्छावाक।

सात दिशाएं हैं—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ध्रुवा, ऊर्ध्वा और केन्द्र। आकाश में स्थित सप्तर्षियों के नाम ये हैं—मरीचि, वसिष्ठ, अङ्गिरस्, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु।

ऋग्वेद ९।११४।३ में सात-सात वस्तुएं गिनाते हुए कहा गया है कि सात दिशाएं हैं, सात होता ऋत्विज् हैं, सात आदित्य-किरणें हैं।

यजुर्वेद २६.१ में सप्त संसद बतायी गयी हैं—अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आपः और वरुण। आठवीं भूतसाधनी पृथिवी कही गयी है॥२॥

**भावार्थ** :—ब्रह्माण्ड में स्थित सभी दिशा, विदिशा आदि पदार्थ, शरीर में स्थित मन, बुद्धि आदि और यज्ञ में स्थित सब ऋत्विज् जगदीश्वर की ही महिमा का गान करते प्रतीत होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में उपासना-यज्ञ का विषय है।

**७२४. त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत।**
**तमिद्वर्धन्तु नो गिरः॥३॥**

**पदार्थ :–( देवासः )** विद्वान् लोग **( त्रिकद्रुकेषु )** जिनमें आत्मा, मन और बुद्धि ये तीन मूल **( केन्द्र )** होते हैं उन व्यवहारों में **( चेतनम् )** चेतना प्रदान करने वाले **( यज्ञम् )** उपासनायज्ञ को **( अत्नत )** फैलाते हैं। **( तम् इत् )** उसी उपासनायज्ञ को **( नः )** हमारी **( गिरः )** स्तुतिवाणियां **( वर्धन्तु )** बढ़ायें।।३।।

**भावार्थ :–**परमेश्वर की उपासना से मनुष्य की आत्मा में चेतना का प्रवाह, जागरूकता, कर्त्तव्यनिष्ठा, शूरता, कर्मण्यता, विजयशीलता, परोपकारिता इत्यादि गुण स्वयं ही आ जाते हैं।।३।।

**( ५ )**

**ऋषिः–इरिम्बिठिः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १५९ क्रमांक पर भक्तिरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां ज्ञान–रस का विषय प्रस्तुत है।

**७२५. अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।**
**एहीमस्य द्रवा पिब॥१॥**

**पदार्थ :–**आचार्य कह रहा है–हे **( इन्द्र )** शिष्य के अन्तरात्मन्! **( अयम् )** यह **( सोमः )** अध्यात्म–विद्या का रस **( ते )** तेरे लिए **( बर्हिषि अधि )** विद्या–यज्ञ में **( निपूतः )** अत्यधिक पवित्र रूप में उपस्थित है। **( एहि )** आ, **( ईम् )** इसके प्रति **( द्रव )** झपट, **( अस्य )** इस अध्यात्म–विद्या के रस को **( पिब )** पान कर।।१।।

**भावार्थ :–**जिसका आत्मा अध्यात्मविद्या के ग्रहण के लिए अत्यधिक उत्कण्ठित है वही गुरु के पास से ब्रह्मज्ञान पा सकता है।।१।।

गुरु से अध्यात्मविद्या ग्रहण कर चुकने के पश्चात् शिष्य परमेश्वर को पुकार रहे हैं।

**७२६. शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः।**
**आखण्डल प्र हूयसे॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**शाचिगो**) जिसकी वाणियां ज्ञान और कर्म का उपदेश करने वाली हैं ऐसे जगदीश्वर! हे (**शाचिपूजन**) ज्ञानी पुरुषार्थियों से पूजे जाने वाले परमात्मन्! (**अयम्**) यह भक्ति-रस (**ते**) आपके (**रणाय**) रमने के लिए (**सुतः**) हमारे द्वारा उत्पन्न किया गया है। हे (**आखण्डल**) दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि को खण्ड-खण्ड करने वाले देव! आप उस भक्ति-रस का पान करने के लिए (**प्रहूयसे**) हमारे द्वारा चाव से बुलाए जा रहे हो।।२।।

**भावार्थ** :–ज्ञान और पुरुषार्थपूर्वक भक्तिभाव से आराधना किया हुआ परमेश्वर उपासकों के दुःख, दारिद्र्य आदि को खण्डित करके उन्हें ऋद्धि-सिद्धि प्रदान करके सुखी करता है।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७२७. यस्ते शृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः।**
**न्यस्मिन् दध्र आ मनः॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**शृङ्गवृषः नपात्**) रश्मियों से वर्षा करने वाले सूर्य को बिना ही आधार के आकाश में स्थिर करने वाले जगदीश्वर! (**यः ते**) जो आपका (**प्र नपात्**) प्रकृष्ट रूप से रक्षक (**कुण्डपाय्यः**) समुद्ररूप कुण्ड जिसमें सूर्य द्वारा पिये जाते हैं, ऐसा वृष्टिरूप यज्ञ है, (**अस्मिन्**) इसमें, उपासक लोग (**मनः**) अपने मन को (**आ निदधे**) निहित करते हैं।।३।।

**भावार्थ** :–जैसे सूर्य समुद्ररूप कुण्डों को पीकर बादल बना कर वर्षा करता है, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि धन कमाकर और योगसिद्धियां प्राप्त करके सत्पात्रों में उनकी वर्षा करें।।३।।

(६)

**ऋषिः–कुसीदी काण्वः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १६७ पर परमेश्वर के

विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ आचार्य को सम्बोधन किया जा रहा है।

**७२८. आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सं गृभाय।**
**महाहस्ती दक्षिणेन॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त गुरुवर! आप (तु) शीघ्र ही (दक्षिणेन) उदारता से (नः) हमारे अन्दर (क्षुमन्तम्) शब्दशास्त्र के ज्ञान से युक्त, (चित्रम्) अद्‌भुत, दिव्य (ग्राभम्) ब्रह्मविद्यारूप धन को (सं गृभाय) संगृहीत कीजिए, जैसे (महाहस्ती) बड़े हाथों वाला कोई पुरुष (दक्षिणेन) दाहिने हाथ से (ग्राभम्) ग्राह्य धन को संगृहीत करता है॥१॥

यहाँ वाचकलुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—शिष्यों को चाहिए कि गुरुओं के पास से सब लौकिक विद्याओं तथा ब्रह्मविद्याओं को यत्न से संचित करें और गुरुओं को चाहिए कि वे प्रेमपूर्वक यत्न से उन्हें दें॥१॥

अगले मन्त्र में आचार्य से ब्रह्मविद्या सीखे हुए शिष्य ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन कर रहे हैं।

**७२९. विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्।**
**तुविमात्रमवोभिः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सर्वान्तर्यामिन् परब्रह्म! हम (हि) निश्चयपूर्वक (त्वा) आपको (तुविकूर्मिम्) उत्पत्ति, धारण, पालन आदि बहुत से कर्मों का कर्त्ता, (तुविदेष्णम्) बहुत से पदार्थों तथा सुख आदियों का दाता, (तुवीमघम्) बहुत धनी और (अवोभिः) रक्षाओं के साथ (तुविमात्रम्) सूर्य, चन्द्र, तारामण्डलादि बहुतों को मापने वाला (विद्म) जानते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को जानकर उसके उपकारों के प्रति कृतज्ञता सबको प्रकट करनी चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर के दान का वर्णन है।

**७३०. न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्।**
**भीमं न गां वारयन्ते॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**शूर**) दानशूर परमात्मन्! (**दित्सन्तम्**) जब आप किसी को भौतिक या दिव्य ऐश्वर्य देना चाहते हो तब (**त्वा**) आपको (**नहि**) न तो (**देवाः**) चमकीले अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि कोई जड़ पदार्थ और (**न**) न ही (**मर्तासः**) मनुष्य (**वारयन्ते**) रोक सकते हैं, (**भीमं गां न**) जैसे भयंकर दुर्दान्त विद्युत् रूप अग्नि को कोई नहीं रोक सकता॥२॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जो कृपालु परमेश्वर सूर्यकिरण, पत्र, पुष्प, फल, वायु, जल आदि वस्तुओं को और सत्य, न्याय, दया, उदारता आदि को बिना मूल्य के ही प्रदान करता है उसकी सबको कृतज्ञता के साथ वन्दना करनी चाहिए॥३॥

**(७)**

**ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १६१ पर परमात्मा तथा गुरु शिष्य के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन है।

**७३१. अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये।**
**तृम्पा व्यश्नुही मदम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**वृषभ**) शक्तिशाली मेरे अन्तरात्मन्! (**सुते**) इस उपासना-यज्ञ के प्रवृत्त होने पर (**त्वा अभि**) तेरे प्रति (**पीतये**) पान करने के लिए (**सुतम्**) श्रद्धा-रस (**सृजामि**) उत्पन्न कर रहा हूँ। इससे तू (**तृम्प**) तृप्त हो, (**मदम्**) हर्ष को (**व्यश्नुहि**) प्राप्त कर॥१॥

**भावार्थ** :—सबको चाहिए कि अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर उसके अन्दर श्रद्धा-रस का संचार करें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन है।

**७३२. मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।**
**मा कीं ब्रह्मद्विषं वनः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे मेरे अन्तरात्मन्! (**मा**) न तो (**मूराः**) मूढ़, अविवेकी (**अविष्यवः**) हिंसा करने के इच्छुक लोग और (**मा**) न ही (**उपहस्वानः**) उपहास करने वाले लोग (**त्वा**) तेरी (**आ दभन्**) हिंसा कर सकें और (**मा कीम्**) न ही तू (**ब्रह्मद्विषम्**) ब्रह्मद्वेषी का (**वनः**) संग कर॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का अन्तरात्मा यदि जागरूक रहे तो उसे कोई भी बाहरी या आन्तरिक शत्रु पराजित नहीं कर सकता॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः अन्तरात्मा को उद्बोधन है।

**७३३. इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दन्तु राधसे।**
**सरो गौरो यथा पिब॥३॥**

**पदार्थ** :—हे मेरे अन्तरात्मन्! (**इह**) इस शरीर में (**गोपरीणसम्**) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां आदि बहुत सी गौएं जिसके पास हैं ऐसे (**त्वा**) तुझे, हमारी उद्बोधक वाणियां (**महे राधसे**) महान् ऐश्वर्य के लिए (**मन्दन्तु**) उत्साहित करें। (**गौरः**) गौर मृग, प्यास से व्याकुल होकर (**यथा**) जैसे, उत्कण्ठा के साथ (**सरः**) जल को, पीता है, वैसे ही तू (**सरः**) वेदवाणी के रस, ज्ञान-रस, कर्म-रस और ब्रह्मानन्द के रस को (**पिब**) पी॥३॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर अपनी महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप सब लौकिक और दिव्य सम्पदाओं को प्राप्त कर सकते हैं॥३॥

## (८)

**ऋषिः—मेधातिथिप्रियमेधौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १२४ पर परमात्मा और अतिथि के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ गुरुजन शिष्य को ब्रह्मानन्द-रस का पान करा रहे हैं।

**७३४. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।**
**अनाभयिन् ररिमा ते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**वसो**) गुरुकुलनिवासी, व्रतपालक ब्रह्मचारी! (**इदम् अन्धः**) यह ब्रह्मविज्ञान, तेरे लिए (**सुतम्**) अभिषुत है, तू इसे (**सुपूर्णन् उदरम्**) पेट भरकर (**पिब**) पान कर। हे (**अनाभयिन्**) निर्भय शिष्य! हम (**ते**) तेरे लिए, यह विज्ञान (**ररिम**) दे रहे हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जिन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है ऐसे गुरुजनों को उचित है कि वे छात्रों को ब्रह्मज्ञान देकर अनुगृहीत करें॥१॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि वह ब्रह्मविज्ञान-रस कैसा है॥

**७३५. नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः।**
**अश्वो न निक्तो नदीषु॥२॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्य! मेरे द्वारा जो तुझे ब्रह्मज्ञान-रस दिया जा रहा है, वह (**नृभिः**) उन्नायक श्रेष्ठ विचारों द्वारा (**धौतः**) धोया गया है, (**अश्नैः**) पाषाणों के समान कठोर व्रताचरणों द्वारा (**सुतः**) अभिषुत किया गया है, (**अव्याः**) रक्षा करने वाली बुद्धि के (**वारैः**) दोषनिवारक तर्कों द्वारा (**परिपूतः**) पवित्र किया गया है, और (**नदीषु**) नदियों में (**निक्तः**) नहलाकर साफ किये गये (**अश्वः न**) घोड़े के समान (**नदीषु**) वेदवाणी की धाराओं में (**निक्तः**) शुद्ध किया गया है॥२॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है। यहाँ श्लेष से सोम ओषधि के पक्ष में भी अर्थ-योजना करनी चाहिए। इससे 'ब्रह्मविज्ञान सोमरस के समान है' यह उपमानोपमेयभाव द्योतित होगा॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे ऋत्विज् लोग सोमलता को पवित्र जल से धोकर, सिल-बट्टों से कूटकर, रस निचोड़ कर, दशापवित्र नामक छन्नी से छानकर शुद्ध हुए सोमरस को अग्नि में होम करते हैं, वैसे ही गुरुजन ब्रह्मविद्यारूप लता को सद्विचारों से धोकर, कठोर व्रताचरणों से कूटकर, बुद्धि के तर्कों से छानकर,

वेदवाणी की धाराओं में पवित्र करके शिष्य की आत्माग्नि में होम करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७३६. तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः।**
**इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्य! (**तम्**) उस ब्रह्मविद्यारूप सोमरस को (**गोभिः**) मधुर वाणियों से (**श्रीणन्तः**) परिपक्व करते हुए हमने (**स्वादुम्**) स्वादु (**अकर्म**) कर लिया है, (**यथा**) जैसे (**यवम्**) जौ के रस को (**गोभिः**) गाय के दूध से मधुर कर लेते हैं। हे (**इन्द्र**) प्रिय शिष्य! (**अस्मिन्**) इस (**सधमादे**) जिसमें साथ मिलकर ब्रह्मज्ञान का पान करते हैं ऐसे विद्या-यज्ञ में (**त्वा**) तुझे, हम ब्रह्मज्ञान का रस पीने के लिए बुला रहे हैं॥३॥

इस मन्त्र में **श्लिष्टोपमालंकार** है॥३॥

**भावार्थ** :—**गुरुओं को** चाहिए कि वे शिष्यों को लौकिक ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान नीरस रूप में नहीं, किन्तु सरस रूप में दें, जिससे उनकी उसमें रुचि हो॥३॥

(९)

**ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक १६५ पर परमात्मा के विषय में की गयी थी। यहाँ अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन है।

**७३७. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते।**
**पिबा त्वा३स्य गिर्वणः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**राधानां पते**) सदिच्छा, महत्त्वाकाङ्क्षा, सत्प्रयत्न, सुख, ज्ञान आदि के स्वामी मेरे अन्तरात्मन्! (**इदं हि**) यह ब्रह्मानन्द-रस (**ओजसा**) बल और वेग के साथ (**अनु सुतम्**) अनुकूल रूप में अभिषुत हुआ है। हे (**गिर्वणः**)

वाणियों से प्रभुभक्ति में संलग्न आत्मन्! तू (अस्य) इस ब्रह्मानन्दरूप सोमरस को (तु) शीघ्र (पिब) पान कर ले॥१॥

**भावार्थ** :—योग का अनुष्ठान करने से ब्रह्मानन्द के रस की धारा जब आत्मा को व्याप लेती है तब योगी कृतकृत्य हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः आत्मा को सम्बोधन है।

**७३८. यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम्।**
**स त्वा ममत्तु सोम्य॥२॥**

**पदार्थ** :—हे मेरे अन्तरात्मन्! (**यः**) जो ब्रह्मानन्दरस (**ते**) तेरी (**स्वधाम् अनु**) आनन्द-भोगेच्छा के अनुकूल (**असत्**) उत्पन्न हुआ है, उस ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस के (**सुते**) अनुभव में आने पर, तू (**तन्वम्**) अपने शरीर को (**नियच्छ**) यम-नियम की रस्सियों से नियन्त्रित करते हुए चल। हे (**सोम्य**) सौम्य आत्मन् (**सः**) वह ब्रह्मानन्द-रस (**त्वा**) तुझे (**ममत्तु**) हर्षित एवं तरंगित कर दे॥२॥

**भावार्थ** :—उपासना से जब ब्रह्मानन्द-रस आत्मा को प्राप्त होता है तब शरीर के तथा मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि के भी सब व्यवहार सात्त्विक हो जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है।

**७३९. प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः।**
**प्र बाहू शूर राधसा॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) तेरे अन्तरात्मन्! वह ब्रह्मानन्द-रस (**ते**) मेरे (**कुक्ष्योः**) दोनों कोखों में (**प्र अश्नोतु**) भली-भांति व्याप जाए, (**ब्रह्मणा**) ब्रह्मज्ञान के साथ (**शिरः**) सिर में (**प्र**) भलीभांति व्याप जाए, हे (**शूर**) शूरवीर मेरे अन्तरात्मन्! (**राधसा**) सिद्धि एवं सफलता के साथ (**बाहू**) दोनों भुजाओं में (**प्र**) भली-भांति व्याप जाए॥३॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मानन्द जब जीवात्मा में व्यापता

है तब उसका प्रभाव देह में स्थित सभी अंगों पर पड़ता है। मन में श्रेष्ठ संकल्प, सिर में ज्ञानेन्द्रियों तथा बुद्धि के व्यापार और भुजाओं में सत्कर्म भली-भांति तरंगित होने लगते हैं॥३॥

( १० )

**ऋषिः—मधुच्छन्दाः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १६४ पर परमात्मा तथा राष्ट्र के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ आत्मोद्बोधन का विषय है॥

२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र

**७४०. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।**

१ २ ३ १ २

**सखाय स्तोमवाहसः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **स्तोमवाहसः** ) गीतों को गाने वाले ( **सखायः** ) तुम ( **तु** ) शीघ्र ही ( **आ एत** ) आओ, ( **निषीदत** ) बैठो, ( **इन्द्रम् अभि** ) अपने अन्तरात्मा को लक्ष्य करके ( **प्र गायत** ) भली भांति उद्बोधन-गीत गाओ॥१॥

**भावार्थ** :—परस्पर मिलकर आत्मा को उद्बोधन देने से वह शक्ति जागती है, जिससे मार्ग की सभी बाधाएं हटायी जा सकती हैं॥१॥

आत्मा को उद्बोधन देने के अनन्तर अब परमात्मा के विषय में कहते हैं।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

**७४१. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्।**

२ ३ २ ३ १ २ ३ २

**इन्द्रं सोमे सचा सुते॥२॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! ( **पुरूणाम्** ) पूर्णों एवं पालनकर्त्ताओं में ( **पुरूतमम्** ) पूर्णतम और सर्वाधिक पालक, ( **वार्याणाम्** ) वरणीय गुणों के ( **ईशानम्** ) अधीश्वर ( **इन्द्रम्** ) परमात्मा के प्रति ( **सुते** ) श्रद्धारस के तैयार हो जाने पर ( **सचा** ) साथ मिलकर ( **प्र गायत** ) स्तुति-गीत गाओ। [यहां 'प्रगायत' शब्द पूर्व मन्त्र से आया है]॥२॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने वाला,

समस्त गुणों से विभूषित परमेश्वर है उसकी सब को मिलकर श्रद्धा के साथ उपासना करनी चाहिए।।२।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**७४२. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्या।**
**गमद् वाजेभिरा स नः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह प्रसिद्ध इन्द्र परमात्मा (**नः**) हमारे (**योगे**) अष्टांगयोग की सिद्धि में (**आ भुवत्**) सहायक होवे। (**सः**) वह (**राये**) अणिमा, लघिमा, महिमा आदि ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए, हमारा सहायक होवे। (**सः**) वह (**पुरन्ध्या**) पालन करने वाली बुद्धि से हमें संयुक्त करे। (**सः**) वह (**वाजेभिः**) अध्यात्म-बलों के साथ (**नः**) हमारे पास (**आगमत्**) आये।।३।।

**भावार्थ** :—योगसिद्धि के मार्ग में जो विघ्न उपस्थित होते हैं वे परमात्मा की सहायता से दूर किये जा सकते हैं।।३।।

(११)

**ऋषिः—शुनःशेपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक १६३ पर योग तथा सेनाध्यक्ष के पक्ष में व्याख्या की गयी थी। यहाँ परमेश्वर, आचार्य तथा बिजली रूप अग्नि का आह्वान है।

**७४३. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे।**
**सखाय इन्द्रमूतये॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। (**सखायः**) हम सहयोगी उपासक लोग (**योगेयोगे**) प्रत्येक नवीन उपलब्धि के लिए, और (**वाजेवाजे**) प्रत्येक बल की प्राप्ति के लिए और (**ऊतये**) प्रगति के लिए (**तवस्तरम्**) अतिशय बलवान् (**इन्द्रम्**) विघ्नविघातक तथा परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की (**हवामहे**) स्तुति करते हैं।

(**द्वितीय**) आचार्य के पक्ष में। (**सखायः**) परस्पर मित्रता में बंधे हुए हम सहाध्यायी लोग (**योगेयोगे**) प्रत्येक विद्या की

प्राप्ति में, और (**वाजेवाजे**) अविद्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदियों के साथ होने वाले प्रत्येक संग्राम में (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**तवस्तरम्**) विद्यावल, योगवल आदि में सर्वाधिक समृद्ध (**इन्द्रम्**) आचार्यप्रवर को (**हवामहे**) वुलाते हैं।

(**तृतीय**) शिल्पविद्या के पक्ष में। यन्त्रकलाओं में विजली का प्रयोग करने वाला शिल्पी कह रहा है—(**सखायः**) हम सहयोगी गण (**योगेयोगे**) पदार्थों के मिश्रण से बनने वाली प्रत्येक नवीन वस्तु के निर्माण में और (**वाजेवाजे**) प्रत्येक वलसाध्य कार्य में (**ऊतये**) शिल्पविद्या के व्यवहार के लिए (**तवस्तरम्**) अतिशय वलवान् (**इन्द्रम्**) विजलीरूप अग्नि को (**हवामहे**) वुलाते हैं, अर्थात् यन्त्रकलाओं में प्रयुक्त करते हैं।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे वल आदि की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए, वैसे ही सब विद्याएं पढ़ने के लिए और अन्तःकरण में होने वाले देवासुर संग्रामों में विजय के लिए विद्वान् सदाचारी गुरु को स्वीकार करना चाहिए। कारखानों में व्यवहारोपयोगी पदार्थों के निर्माण के लिए तथा संग्रामों में शस्त्रास्त्र चलाने के लिए विजली का प्रयोग करना चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति तथा गुरु-शिष्य का विषय है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र

**७४४. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्।**

२ ३ १ २ ३ २ ३ २

**यं ते पूर्वं पिता हुवे॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। मैं उपासक (**प्रत्नस्य**) चिरकाल से वने हुए (**ओकसः**) ब्रह्माण्डरूप घर के (**नरम्**) नेता, (**तुविप्रतिम्**) बहुत से पदार्थों का निर्माण करने वाले तुझ इन्द्र जगदीश्वर को (**अनुहुवे**) अनुकूल करने के लिए पुकारता हूँ, (**यं ते**) जिस तुझ जगदीश को (**पूर्वम्**) पहले (**पिता**) मेरा पिता (**हुवे**) पुकारा करता था।

(**द्वितीय**) आचार्य के पक्ष में। हे बालक! मैं तेरा चाचा आदि (**तुविप्रतिम्**) बहुत सी विद्याओं की प्रतिमूर्ति, (**प्रत्नस्य**) पुरातन

(**ओकसः**) विद्यागृह के (**नरम्**) नेता आचार्य को (**अनु**) अनुकूल करके, तेरे पढ़ाने तथा सदाचार सिखाने के लिए (**हुवे**) पुकारता हूँ, (**यम्**) जिस आचार्य को (**पूर्वम्**) पहले (**ते**) तेरा (**पिता**) पिता अन्य बालकों को पढ़ाने के लिए (**हुवे**) पुकारता रहा है॥२॥

**भावार्थ** :–सब मनुष्यों को परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए और बालकों के संरक्षक पिता, चाचा आदि को चाहिए कि विद्या पढ़ने के लिए बालकों को सुयोग्य गुरु के पास भेजें, जिससे वे विद्वान् होकर कुशल नागरिक बनें॥२॥

आगे पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७४५. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्त्रिणीभिरूतिभिः।**
**वाजेभिरुप नो हवम्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। इन्द्र जगदीश्वर (**यदि**) यदि (**श्रवत्**) हमारी पुकार को सुन ले, तो वह (**घ**) अवश्य ही (**सहस्त्रिणीभिः**) हजारों (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के साथ और (**वाजेभिः**) बलों तथा ऐश्वर्यों के साथ (**नः**) हमारी (**हवम्**) पुकार पर (**उप आ गमत्**) हमारे समीप आ जाए।

(**द्वितीय**) गुरु-शिष्य के पक्ष में। (**यदि**) यदि, यह विद्यार्थी (**श्रवत्**) गुरु-मुख से शास्त्रों को सुन चुकेगा, तो (**सहस्त्रिणीभिः**) सहस्रों (**ऊतिभिः**) विद्याजन्य तृप्तियों तथा (**वाजेभिः**) आत्मबलों के साथ (**नः**) हम नागरिकों के (**हवम्**) उत्सव आदि समारोह में (**घ**) निश्चय ही (**उप आ गमत्**) आयेगा, और अपने विद्वत्तापूर्ण विचारों से हमें कृतार्थ करेगा॥३॥

**भावार्थ** :–हृदय से निकली हुई पुकार को जगदीश्वर अवश्य सुनता है। सुयोग्य गुरुओं के सान्निध्य में गुरुकुल में निवास करने वाले विद्यार्थी विद्वान् होकर समावर्तन संस्कार के पश्चात् जब बाहर आयें तब सब को उपदेश देकर श्रेष्ठ मार्ग में प्रवृत्त करें॥३॥

(१२)

**ऋषिः–नारदः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–उष्णिक्॥ स्वरः– ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३८१ क्रमाङ्क पर परमेश्वर के महत्त्व के विषय में हो चुकी है। यहाँ आचार्य का महत्त्व वर्णित है।

**७४६. इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम्।**
**विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्यवर! आप (**सोमेषु**) ज्ञानरसों के (**सुतेषु**) अभिषुत करने के साथ-साथ, हम विद्यार्थियों के (**क्रतुम्**) कर्म को भी (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय रूप में (**पुनीषे**) पवित्र करते हो। (**वृधस्य**) बढ़े हुए (**दक्षस्य**) उत्साह के (**विदे**) प्राप्त कराने के लिए (**सः**) वह आप (**महान् हि**) बड़े महत्त्वपूर्ण हो॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे विद्याप्रदान करना आचार्य का कर्त्तव्य है, वैसे पवित्र आचार का प्रदान करना भी कर्त्तव्य है। कहा भी है—"**आचार्य को आचार्य इस कारण कहते हैं क्योंकि वह आचार का ग्रहण कराता है॥१॥", निरु० १।४)**

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**७४७. स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः।**
**सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह विद्याप्रदाता आचार्य (**प्रथमे**) श्रेष्ठ (**व्योमनि**) आकाश के समान (**व्यापक**) ओंकारपदवाच्य ब्रह्म में स्थित हुआ (**देवानां सदने**) विद्वानों के सदन गुरुकुल में रहता हुआ (**वृधः**) छात्रों की उन्नति कराने वाला, (**सुपारः**) विद्या के समुद्र से पार करने वाला, (**सुश्रवस्तमः**) अत्यन्त यशस्वी, (**अप्सुजित्**) व्याप्त विद्याओं में तथा शुभकर्मों में अन्यों को जीत लेने वाला अर्थात् अन्यों की अपेक्षा अधिक पारंगत है। मैं (**सम्**) उसकी भलीभांति स्तुति करता हूँ॥२॥

**भावार्थ** :—सुयोग्य, विद्या के सागर, कर्मयोगी आचार्य को पाकर विद्यार्थी भी वैसे ही बनते हैं॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**७४८. तमु हुवे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्।**
१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ २
**भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे॥३॥**

**पदार्थ** :—मैं विद्यार्थी (**वाजसातये**) विद्या-बलों तथा आत्म-बलों की प्राप्ति कराने वाले (**भराय**) अध्ययनाध्यापन रूप यज्ञ के लिए (**तम् उ**) उस (**शुष्मिणम्**) आत्म-बल तथा विद्या-बल से युक्त (**इन्द्रम्**) आचार्य को (**हुवे**) पुकारता हूँ। हे आचार्यवर! आप (**सुम्ने**) सुख के लिए, और (**वृधे**) उन्नति के लिए (**नः**) हमारे (**अन्तमः**) निकटतम (**सखा**) मित्र (**भव**) होओ॥३॥

**भावार्थ** :—निकटता, सखिभाव और सौहार्द के साथ सब लोक-विद्याओं और ब्रह्म-विद्याओं की शिक्षा देता हुआ तथा सुख प्रदान करता हुआ आचार्य छात्रों की चहुंमुखी उन्नति करता रहे॥३॥

**( १३ )**

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ४५ पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ अग्निहोत्र का विषय वर्णित करते हैं।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
**७४९. एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।**
३ १ २र ३ १ २ ३१ २र ३ २ ३ १ २
**प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! मैं (**ऊर्जः नपातम्**) बल और प्राणशक्ति को बढ़ाने वाले, (**प्रियम्**) प्रिय, (**चेतिष्ठम्**) अतिशय जागरूक करने वाले, (**अरतिम्**) गतिशील, (**स्वध्वरम्**) उत्कृष्ट यज्ञ जिससे चलता है ऐसे, (**विश्वस्य दूतम्**) सब यजमानों के लिए दूत का कार्य करने वाले, अर्थात् दूत जैसे सन्देश लाने और ले जाने में दोनों पक्षों के बीच में माध्यम बनता है वैसे ही होमे हुए पदार्थ को सूक्ष्म करके उसके सुगन्ध को सब जगह फैलाने में माध्यम बनने वाले, (**अमृतम्**) सब पदार्थों में अव्यक्त रूप से

स्थित होने के कारण अमर (**अग्निम्**) यज्ञाग्नि में (**वः**) तुम्हारे व अपने हित के लिए (**एना**) इस प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले (**नमसा**) श्रद्धाभाव से वा अन्नादि की हवि से (**आहुवे**) आहुति देता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—अग्निहोत्र से जैसे जल, वायु आदि की शुद्धि होती है, वैसे ही अन्तःकरण की भी शुद्धि होती है तथा शारीरिक, बल, आत्मबल, प्राणशक्ति, जागरूकता और त्याग-भावना की उपलब्धि होती है॥१॥

अगले मन्त्र में अग्निहोत्र के लाभों का वर्णन है।

**७५०. स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः।**
**सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह यज्ञाग्नि (**विश्वभोजसा**) सब का पालन करने वाले (**अरुषा**) चमकते तेज से (**योजते**) संयुक्त होता है तथा यजमानों को संयुक्त करता है। (**सः**) वह यज्ञाग्नि (**स्वाहुतः**) भली प्रकार आहुति दिये जाने पर (**दुद्रवत्**) अत्यधिक गतिमय हो जाता है, ज्वालाओं को लपलपाने लगता है। (**सुब्रह्मा**) श्रेष्ठ ब्रह्मा जिसमें बना है ऐसा (**यज्ञः**) यज्ञ (**वसूनाम्**) आहिताग्नि यजमानों को (**सुशमी**) उत्तम शान्ति देने वाला होता है। वह यज्ञ (**जनानाम्**) अग्निहोत्री जनों को (**देवम्**) प्रकाशक (**राधः**) ज्योतिरूप धन देता है॥२॥

**भावार्थ** :—सुयोग्य ब्रह्मा को अध्यक्ष पद पर नियुक्त करके किया हुआ यज्ञ, सुख, शान्ति और स्वास्थ्य देने वाला, लोगों को ज्योति प्रदान करने वाला तथा अध्यात्ममार्ग में प्रेरित करने वाला होता है॥२॥

(१४)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ३०३ पर प्राकृतिक उषा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ आध्यात्मिक उषा का वर्णन करते हैं।

**७५१. प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः। अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी॥१॥**

**पदार्थ :–( आयती )** आती हुई, **( उच्छन्ती )** हृदय-प्राङ्गण में उदित होती हुई, **( दिवः दुहिता )** तेजस्वी परमात्मा की पुत्री के समान विद्यमान अध्यात्म प्रभा **( चक्षुषा )** अपने दिव्य प्रकाश से **( तमः )** मोहरूप अंधकार को **( अप उ वृणुते )** दूर कर रही है। **( सूनरी )** उत्कृष्ट नेतृत्व करने वाली यह अध्यात्मप्रभारूप उषा **( ज्योतिः )** विवेकख्यातिरूप ज्योति को **( कृणोति )** उत्पन्न कर रही है॥१॥

**भावार्थ :–**परमात्मा की उपासना से हृदय में प्रकट होती हुई दिव्यप्रभा समस्त तामसिकता के जाल को विच्छिन्न करके अन्तःकरण को निर्मल बना देती है॥१॥

अगले मन्त्र में सूर्य और उषा का वर्णन है।

**७५२. उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्। तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि॥२॥**

**पदार्थ :–( प्रथम )** प्राकृतिक सूर्य और उषा के पक्ष में। **( सूर्यः )** सूर्य **( सचा )** एक साथ **( उस्त्रियाः )** किरणों को **( उत्सृजते )** छोड़ता है, जिससे **( उद्यत् )** उदित होते हुए **( नक्षत्रम् )** गतिमय ग्रह-उपग्रह आदि **( अर्चिवत् )** दीप्तिमान् हो जाते हैं। **( उषः )** हे उषा! **( तव इत् )** तेरे **( सूर्यस्य च )** और सूर्य के **( व्युषि )** प्रकाशित होने पर, हम **( भक्तेन )** ऐश्वर्य से **( सं गमेमहि )** संयुक्त होवें।

**( द्वितीय )** अध्यात्म पक्ष में। **( सूर्यः )** सूर्य के समान प्रकाशमय और प्रकाशक परमात्मा **( सचा )** एक साथ **( उस्रियाः )** दिव्य प्रकाश की रश्मियों को **( उत्सृजते )** छोड़ता है, जिससे **( उद्यत् )** उन्नत होते हुए **( नक्षत्रम् )** प्रगतिशील मन, बुद्धि आदि **( अर्चिवत् )** प्रकाशमान हो जाते हैं। **( उषः )** हे अध्यात्मप्रभा! **( तव इत् )** तेरे **( सूर्यस्य च )** और परमात्मा रूप सूर्य के **( व्युषि )** प्रकाशित होने पर, हम **( भक्तेन )** दिव्य ऐश्वर्य से **( संगमेमहि )** संयुक्त होवें॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। उपमानोपमेयभाव व्यङ्ग्य है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे उषा और सूर्य के उदय होने पर सब कुछ प्रकाशित हो उठता है, वैसे ही आध्यात्मिक प्रभा और परमात्मा के उदय होने पर उपासकों का हृदय प्रकाशित हो जाता है।।२।।

( १५ )

**ऋषि:—वसिष्ठ:॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्द:—बार्हत: प्रगाथ: ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वर:—१ मध्यम:; २ पञ्चम:॥**

'अश्विनौ' देवता वाली प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ३०४ पर परमात्मा–जीवात्मा और अध्यापक–उपदेशक के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहां राष्ट्र की उन्नति के लिए ब्राह्मण–क्षत्रियों का आह्वान किया गया है।

**७५३. इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना।**
**अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथ:॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **( अश्विना )** ज्ञान एवं रक्षा से व्याप्त होने वाले ब्राह्मण और क्षत्रियो! **( इमा: उ )** ये **( दिविष्टय: )** यश: प्रकाश की इच्छुक प्रजाएं **( उस्रा: वाम् )** तुम निवासकों को **( हवन्ते )** पुकार रही हैं। हे **( शचीवसू )** कर्म–धन और प्रज्ञा–धन के धनियो! **( अयम् )** यह मैं भी **( अवसे )** रक्षा के लिए **( वाम् )** तुम्हें **( अह्वे )** पुकारता हूँ, **( हि )** क्योंकि, तुम **( विशं विशम् )** प्रत्येक प्रजा के पास **( गच्छथ: )** पहुँचा करते हो।।१।।

**भावार्थ** :—"जहाँ ब्रह्म और क्षत्र एक साथ मिलकर रहते हैं उस राष्ट्र को मैं पुण्यवान् समझता हूँ।" (य० २०.२५) इस वेदोक्ति के अनुसार जो ब्राह्मण और क्षत्रिय राष्ट्र को सौभाग्यशाली बनाने के योग्य होते हैं उनका संरक्षण सब प्रजाओं को प्राप्त करना चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में पुन: उसी विषय का वर्णन है।

**७५४. युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।**
**अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**नरा**) नेतृत्व करने वाले ब्राह्मण और क्षत्रियो! (**युवम्**) तुम (**चित्रम्**) अद्‌भुत (**भोजनम्**) पालन को (**ददथुः**) देते हो। उस पालन को तुम (**सूनृतावते**) प्रिय-सत्य वाणी मेरे लिए भी (**चोदेथाम्**) प्रेरित करो, प्रदान करो। (**समनसा**) अनुकूल मन वाले होते हुए तुम दोनों, अपने (**रथम्**) रथ को (**अर्वाक्**) हमारी ओर (**नि यच्छतम्**) मोड़ो, अर्थात् हमारी ओर आओ, और आकर (**सोम्यम्**) सोमरस से युक्त (**मधु**) मधु को (**पिबतम्**) पीओ, अर्थात् हमारे द्वारा किये गये सत्कार को ग्रहण करो॥२॥

**भावार्थ** :—ब्राह्मण लोग ज्ञान-दान के द्वारा और क्षत्रिय लोग रक्षा-प्रदान द्वारा प्रजाजनों का उपकार करते हैं, अतः उनका यथोचित सत्कार और उनसे लाभग्रहण सबको करना चाहिए॥२॥

(१६)

**ऋषिः—अवत्सारः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में सोम नामक परमात्मा का विषय है।

३ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**७५५. अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः।**
१ २ ३ १ २र
**पयः सहस्त्रसामृषिम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस सोम की अर्थात् सौम्य तेज वाले परमात्मा की (**प्रत्नाम्**) पुरातन, (**सहस्रसाम्**) असंख्यात फल प्रदान करने वाली, (**ऋषिम्**) अनेक कार्यों को सिद्ध करने वाली (**द्युतम्**) सौम्य द्युति का (**अनु**) अनुकूल ध्यान करके (**अह्रयः**) व्याप्त विद्या वाले विद्वान् उपासकजन (**शुक्रम्**) शुद्ध (**पयः**) ब्रह्मानन्दरूप रस को (**दुदुह्रे**) दुह लेते हैं, पा लेते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जो सौम्य, शुद्ध परमात्मा अपने उपासकों के हृदय में शुद्ध ब्रह्मानन्द रस को बहाता है उसकी सौम्य द्युति में ध्यान सब को लगाना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

३ १ २र ३ २ ३ १ २र
७५६. अयं सूर्यइवोपदृगयं सरांसि धावति।
३ २ ३ २ ३ १ २र
सप्त प्रवत आ दिवम्॥२॥

**पदार्थ** :—( **अयम्** ) यह सोम अर्थात् सौम्य परमात्मा ( **सूर्यः इव** ) सूर्य के समान ( **उपदृक्** ) दर्शाने वाला है। ( **अयम्** ) यह सौम्य परमात्मा ( **सरांसि** ) हृदय-सरोवरों में ( **धावति** ) शीघ्र पहुँचता है तथा उन्हें धोकर शुद्ध कर देता है। यह सौम्य परमात्मा ( **सप्तम** ) सात ( **प्रवतः** ) ज्ञानेन्द्रियों सहित मन और बुद्धि को और ( **दिवम्** ) तेजस्वी जीवात्मा को ( **आ** ) प्राप्त होता है तथा उन्हें धोकर शुद्ध करता है॥२॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य सब वस्तुओं को दिखाता है, अपनी किरणों से बादलरूप सरोवरों में पहुँचता है, भूमि-चन्द्रमा आदि सात ग्रहों-उपग्रहों को अपने प्रकाश से शुद्ध करता है और द्युलोक में स्थित होता है, वैसे ही परमात्मा सबको दृष्टि प्रदान करने वाला, सबके हृदय-सरोवरों में पहुँचने वाला, देहवर्ती सात प्राणों को शुद्ध करने वाला और आत्मपुरी में स्थित होने वाला है॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
७५७. अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि।
१ २ ३ १ २र
सोमो देवो न सूर्यः॥३॥

**पदार्थ** :—( **अयम्** ) यह ( **सोमः** ) सौम्य, जगत्स्रष्टा परमात्मा ( **देवः** ) प्रकाशक ( **सूर्यः न** ) सूर्य के समान ( **विश्वानि** ) सब हृदयों को ( **पुनानः** ) पवित्र करता हुआ ( **भुवना उपरि** ) सब भुवनों के ऊपर, उनका अधिष्ठाता बनकर ( **तिष्ठति** ) विराजमान है॥३॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य सौरमण्डल का अधिष्ठाता है, वैसे ही परमात्मा विश्वब्रह्माण्ड का अधिष्ठाता है॥३॥

( १७ )

**ऋषिः—१ शुनःशेपः; २-३ मेध्यातिथिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा में परमात्मारूप सोम का वर्णन है।

**७५८. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः।**
**हरिः पवित्रे अर्षति॥१॥**

**पदार्थ** :—(प्रत्नेन जन्मना) पुरातन स्वभाव के अनुसार (देवेभ्यः) प्रकाशक आत्मा तथा मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों के लिए (सुतः) अभिषुत हुआ (एषः) यह (देवः) प्रकाशक (हरिः) पापहारी परमात्मारूप सोम (पवित्रे) पवित्र हृदय में (अर्षति) पहुँचता है॥१॥

**भावार्थ** :—सुचारु विधि से भलीभांति आराधना किया गया परमात्मा अवश्य ही उपासक को अपनी अनुभूति कराता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७५९. एष प्रत्नेन मन्मना देवो देवेभ्यस्परि।**
**कविर्विप्रेण वावृधे॥२॥**

**पदार्थ** :—(एषः) यह (देवः) प्रकाशक, (कविः) बुद्धिमान् परमात्मारूप सोम (प्रत्नेन मन्मना) पुरातन वैदिक स्तोत्र द्वारा (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के प्रदान के लिए (विप्रेण) बुद्धिमान् विद्वान् उपासक के द्वारा (परि वावृधे) चारों ओर बढ़ता है॥२॥

परमात्मा में वस्तुतः बढ़ना रूप धर्म न होने से यहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—उपासक से वेदमन्त्रों द्वारा भलीभांति उपासना किया गया परमात्मा सर्वत्र प्रचार पाकर मानो बढ़ता है॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७६०. दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे।**
**क्रन्दं देवाँ अजीजनः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे रस के भण्डार परमात्मारूप सोम! (प्रत्नम् इत्) सनातन (पयः) आनन्द-रस को (दुहानः) दुहकर देते हुए, आप (पवित्रे) पवित्र हृदय में (परि षिच्यसे) चारों ओर सींचे जाते हो। (क्रन्दन्) मानो कल-कल शब्द करते हुए, आप

(देवान्) दिव्य तरंगों को (अजीजनः) उत्पन्न करते हो॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की स्तुति से उपासक के हृदय में ब्रह्मानन्द के प्रवाह बहने लगते हैं॥३॥

(१८)

ऋषि:—१, ३ असितः काश्यपो देवलो वा; २ अमहीयुराङ्गिरसः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा में परमात्मा और राजा को सम्बोधन किया गया है।

**७६१. उप शिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे।**
**पवमान विदा रयिम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**पवमान**) (पवित्रताप्रदायक, सर्वान्तर्यामी सोम परमात्मन्! आप (**अप तस्थुषः**) हम से दूर स्थित सद्गुणों को (**उप शिक्ष**) हमारे समीप ले आओ। (**शत्रवे**) काम, क्रोध आदि शत्रु के लिए (**भियसम्**) भय (**आधेहि**) प्रदान करो, और हमें (**रयिम्**) अहिंसा, न्याय आदि दिव्य सम्पत्ति (**विदाः**) प्राप्त कराओ।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**पवमान**) गतिमय, कर्मवीर राजन्! आप (**अप तस्थुषः**) हम से दूर होकर विरोधी पक्ष में स्थित हुए वीरों को (**उप शिक्ष**) दण्डित करो, (**शत्रवे**) शत्रु के लिए (**भियसम्**) भय (**आधेहि**) उत्पन्न करो और हमें (**रयिम्**) धन, धान्य, सुवर्ण आदि सम्पत्ति (**विदाः**) प्राप्त कराओ॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर काम, क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करके स्तोता को सद्गुणों की सम्पदा प्रदान करता है। वैसे ही राष्ट्र में राजा को चाहिए कि शत्रुओं को धूल में मिलाकर प्रजा को सब धन, धान्य आदि प्रदान करे॥१॥

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ४८७ पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं।

**७६२. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।**
**इन्दुं देवा अयासिषुः॥२॥**

**पदार्थ :**–( **प्रथम** ) जीवात्मा के पक्ष में। ( **सुजातम्** ) सुप्रसिद्ध, ( **अप्तुरम्** ) कर्म में त्वरा करने वाले, कर्मशूर, ( **भङ्गम्** ) शत्रु, विपत्ति आदि के भञ्जक, ( **गोभिः परिष्कृतम्** ) वाणियों तथा इन्द्रियों से सुसज्जित ( **इन्दुम्** ) दीप्तिमान् जीवात्मा को ( **देवाः** ) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि देव, बलप्राप्ति के लिए ( **उप उ अयासिषुः** ) समीपता से प्राप्त करते हैं।

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। ( **सु जातम्** ) भलीभांति प्रजाओं के बीच से चुनकर बने हुए, ( **अप्तुरम्** ) कर्मयोगी, ( **भङ्गम्** ) शत्रुओं के भंजक, ( **गोभिः परिष्कृतम्** ) भूमियों से परिष्कृत अर्थात् परिष्कृत भूमियों वाले ( **इन्दुम्** ) तेजस्वी तथा मधुर स्वभाव वाले राजा को ( **देवाः** ) दिव्यगुणों वाले प्रजाजन ( **उप उ अयासिषुः** ) **निकटता से प्राप्त करते हैं।**॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। **विशेषणों** के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार भी है॥२॥

**भावार्थ :**–जैसे देह में स्थित मन, बुद्धि आदि जीवात्मा से ही बल पाते हैं, वैसे ही प्रजाजन वीर राजा से बलवान् बनते हैं॥२॥

तृतीय ऋचा उत्तरार्चिक के आरम्भ में क्रमांक ६५१ पर परमात्मोपासना के विषय में तथा गुरुओं के शिष्यों के प्रति कर्तव्य के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ जीवात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं।

**७६३. उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।**
**अभि देवाँ इयक्षते॥३॥**

**पदार्थ :**–( **प्रथम** ) जीवात्मा के पक्ष में। हे ( **नरः** ) मनुष्यो! तुम ( **देवान्** ) प्रकाशक मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रिय रूप देवों में ( **अभि इयक्षते** ) परस्पर संगति कराने वाले, ( **पवमानाय** ) मन को पवित्र करने वाले ( **अस्मै** ) इस ( **इन्दवे** ) तेजस्वी जीवात्मा

के लिए अर्थात् तेजस्वी जीवात्मा को लक्ष्य करके ( **गायत** ) उद्बोधन-गीत गाओ।

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। हे ( **नरः** ) राष्ट्र के प्रजाजनो! तुम ( **देवान्** ) विद्वान् जनों की ( **अभि इयक्षते** ) पूजा करने वाले, ( **पवमानाय** ) राष्ट्र के प्रदेशों में इधर-उधर संचार करने वाले ( **अस्मै** ) इस ( **इन्दवे** ) तेजस्वी, धन-धान्य-दूध आदि से राष्ट्रभूमि को सींचने वाले राजा के लिए अर्थात् राजा को लक्ष्य करके ( **गायत** ) उद्बोधन-गीत तथा अभिनन्दन-गीत गाओ॥३॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि अपने आत्मा को तथा स्वराष्ट्र के राजा को उद्बोधन देकर वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय उन्नति करें॥३॥

## ( १९ )

**ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या क्रमांक ४७८ पर ब्रह्मानन्द-रस के विषय में की जा चुकी है। यहाँ विद्वान् का विषय वर्णित करते हैं।

**७६४. प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मयः।**
**वनानि महिषाइव॥१॥**

**पदार्थ** :—( **विपश्चितः** ) विद्वान् ( **ऊर्मयः** ) पढ़ायी हुई विद्याओं से शिष्य के हृदय को आच्छादित करने वाले अथवा क्रियाशील, ( **सोमासः** ) शिष्यों को द्वितीय जन्म देने वाले आचार्य लोग ( **अपः** ) शिष्यों के कर्म को ( **प्र नयन्त** ) उत्कृष्ट दिशा में ले जाते हैं, ( **इव** ) जैसे ( **महिषाः** ) महान् सूर्यकिरणें ( **वनानि** ) जलों को, बादल बनाने के लिए ( **प्र नयन्त** ) ऊपर में ले जाती हैं॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे विद्वान् गुरुजन ज्ञान-दान तथा आचार-निर्माण के द्वारा विद्यार्थियों का उपकार करते हैं, वैसे ही विद्यार्थियों को

भी चाहिए कि मन, वचन और कर्म से उनका सत्कार करें॥१॥

अगले मन्त्र में विद्वान् आचार्य के द्वारा दिये जाते हुए ज्ञानरसों का वर्णन है।

**७६५. अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया।**
**वाजं गोमन्तमक्षरन्॥२॥**

**पदार्थ** :—आचार्य से दिये जाते हुए (**बभ्रवः**) धारण-पोषण करने वाले, (**शुक्राः**) पवित्र और प्रदीप्त ज्ञानरसरूप सोम (**ऋतस्य**) सत्य की (**धारया**) धारा के साथ (**द्रोणानि**) शिष्यों के हृदय-रूप द्रोण-कलशों को (**अभि**) लक्ष्य करके तीव्रता से बहते हैं, और (**गोमन्तम्**) प्रकाशमय (**वाजम्**) आत्मबल को (**अक्षरन्**) स्रवित करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—सुयोग्य आचार्य को पाकर विद्यार्थी लोग विद्यावान्, विवेकवान्, सत्यवान्, ज्योतिष्मान्, पवित्रहृदय तथा आत्मबलयुक्त होवें॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७६६. सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।**
**सोमा अर्षन्तु विष्णवे॥३॥**

**पदार्थ** :—(**सुताः**) आचार्य द्वारा प्रेरित (**सोमाः**) ज्ञानरस (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए, (**वायवे**) प्राण के लिए, (**वरुणाय**) वरणीय मन के लिए, (**मरुद्भ्यः**) ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप प्राणों के लिए, अर्थात् इन सबके प्रति (**विष्णवे**) यज्ञार्थ (**अर्षन्तु**) पहुँचें॥३॥

**भावार्थ** :—गुरुजनों से प्रदत्त ज्ञानरसों से विद्यार्थियों के आत्मा, प्राण, मन, इन्द्रियां सब तरंगित होकर देवपूजा, संगतिकरण और दान रूप यज्ञ के लिए समर्थ हो जाते हैं॥३॥

**( २० )**

**ऋषिः—भरद्वाजादयः सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५१४ पर जीवात्मा के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ परमात्मा और उपासक का विषय वर्णित करते हैं।

**७६७. प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा। अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रसागार परमात्मन्! आप (**देववीतये**) उपासक के हृदय में दिव्य गुण उत्पन्न करने के लिए (**अर्णसा**) आनन्द-रस से (**प्र पिप्ये**) भरपूर हो, (**अर्णसा**) जल से (**सिन्धुः न**) जैसे बादल भरपूर होता है। आगे उपासक के प्रति कहते हैं—हे उपासक! (**अंशोः**) अंशुमाली सूर्य के (**पयसा**) वर्षाजल से (**मदिरः**) हर्ष को प्राप्त किसान के समान (**जागृविः**) जागरूक हुआ तू (**मधुश्चुतम्**) आनन्दरूप मधु को चुआने वाले (**कोशम्**) आनन्द के निधि परमात्मा के (**अच्छ**) अभिमुख हो॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—आनन्द-रस की प्राप्ति के लिए आनन्द-रस के खजाने परमेश्वर का ही मनुष्यों को ध्यान करना चाहिए, भौतिक प्रतिमा आदि के पूजने से क्या लाभ है॥१॥

आगे पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**७६८. आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः। तमीं हिन्वन्त्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२॥**

**पदार्थ** :—(**हर्यतः**) चाहने योग्य, (**अर्जुनः**) गौरवर्ण, (**प्रियः**) प्यारा, (**मर्ज्यः**) अलंकार पहनाने योग्य (**सूनुः**) पुत्र (**न**) जैसे (**अत्के**) घोड़े पर बैठाया जाता है, वैसे ही (**हर्यतः**) सर्वान्तर्यामी और कमनीय, (**अर्जुनः**) शुद्ध, सात्त्विक, (**प्रियः**) प्यारा, (**मर्ज्यः**) वक्ष पर अलंकार के समान हृदय में धारण करने योग्य सौम्य परमेश्वर (**अत्के**) उपासकों की आत्मा में (**आ अव्यत**) बैठाया जाता है। (**तम् ईम्**) उसे (**अपसः**) कर्मण्य लोग (**आ हिन्वन्ति**) सर्वत्र ले जाते हैं, प्रचारित करते हैं, (**यथा**) जैसे

नाविक लोग (नदीषु) नदियों में (गभस्त्योः) बाहुओं से (रथम्) जलयान को (आ हिन्वन्ति) ले जाते हैं॥२॥

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है। पूर्वार्ध में श्लिष्टोपमा है॥२॥

**भावार्थ** :—उपासक योगी लोगों को चाहिए कि परमात्मा को अपने आत्मा में धारण करके सर्वत्र उसका प्रचार करें, जिससे संसार में आस्तिकता का वातावरण पैदा हो॥२॥

(२१)

**ऋषिः—श्यावाश्वः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ४७७ पर दिव्य आनन्द-रस के विषय में व्याख्या की गयी थी। यहाँ ज्ञानरस का विषय वर्णित करते हैं।

१ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**७६९. प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम्।**
३ २ ३ १ २
**सुता विदथे अक्रमुः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सुताः**) आचार्य के द्वारा उत्पन्न किये गए, (**मदच्युतः**) आनन्दवर्षक (**सोमासः**) अध्यात्मविद्या के रस (**मघोनाम् नः**) हम विद्या धन के धनियों के (**श्रवसे**) यश के लिए (**विदथे**) विद्या-यज्ञ में (**प्र अक्रमुः**) प्रवाहित हो रहे हैं॥१॥

**भावार्थ** :—शिष्यों को चाहिए कि सुयोग्य गुरुओं के पास जाकर उनके पास से सब अध्यात्म विज्ञान ग्रहण करके परमात्मा का साक्षात्कार करें॥१॥

अगले मन्त्र में अध्यात्मज्ञान और ब्रह्मानन्द का कर्तृत्व वर्णित है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ २
**७७०. आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम्।**
२ ३ १ २र
**अत्यो न गोभिरज्यते॥२॥**

**पदार्थ** :—(**आत्**) ग्रहण किये जाने के अनन्तर (**ईम्**) यह अध्यात्मज्ञान का और ब्रह्मानन्द का रस (**यथा**) जैसे (**हंसः**)

सूर्य ( **गणम्** ) भूमि, चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रहों के गण को वश में किये हुए है, वैसे ही ( **विश्वस्य** ) सब उपासकों की ( **मतिम्** ) बुद्धि को ( **अवीवशत्** ) वश में कर लेता है, बुद्धि में छा जाता है। और, ( **अत्यः न** ) घोड़ा जैसे ( **गोभिः** ) जलों से ( **अज्यते** ) स्नान करा कर साफ किया जाता है, वैसे ही यह अध्यात्मज्ञान का रस ( **गोभिः** ) वेद-वाणियों से ( **अज्यते** ) प्रकट किया जाता है॥२॥

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है॥२।

**भावार्थ** :—ब्रह्मज्ञान का और ब्रह्मानन्द का रस उपासक के आत्मा, मन, बुद्धि आदि में जब व्याप जाता है तब उसकी तरंगों से तरंगित हुआ वह उपासक महाभाग्य का अनुभव करता है॥२॥

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द-रस का विषय है।

**७७१. आदीं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।**
**इन्दुमिन्द्राय पीतये॥३॥**

**पदार्थ** :—( **आत्** ) और तब ( **त्रितस्य** ) ज्ञान-कर्म-उपासना इन तीनों से युक्त जीवात्मा की ( **योषणः** ) पत्नियों के समान सहचारिणी बुद्धियां ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा के ( **पीतये** ) पाने के लिए ( **ईम्** ) इस ( **इन्दुम्** ) भिगोने वाले ( **हरिम्** ) पाप हर्ता ब्रह्मानन्दरस को ( **अद्रिभिः** ) विदीर्ण न होने वाले मनः संकल्पों द्वारा ( **हिन्वन्ति** ) जीवात्मा में पहुँचाती हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जब ब्रह्मानन्द-रस जीवात्मा में व्याप जाता है तब उपासक को परम माहात्म्य का अनुभव होता है॥३॥

## ( २२ )

**ऋषिः—१-२ अग्निश्चाक्षुषः; ३ प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—१-२ उष्णिक्; ३ अनुष्टुप्॥ स्वरः—१-२ ऋषभः; ३ गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा में परमात्मा का तथा उसके आनन्द-रस का वर्णन है।

**७७२. अया पवस्व देवयू रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः।**
**मधोर्धारा असृक्षत॥१॥**

**पदार्थ** :–हे पवित्र करने हारे रसागार परमात्मन्! (**देवयुः**) स्तोता उपासक से प्रीति करने वाले आप (**अया**) इस आनन्दधारा के साथ (**पवस्व**) प्रवाहित होओ। (**रेभन्**) उपदेश करते हुए आप (**विश्वतः**) सब ओर से (**पवित्रम्**) पवित्र अन्तःकरण में (**पर्येषि**) आते हो। आपके पास से (**मधोः**) मधुर आनन्द की (**धाराः**) धाराएं (**असृक्षत्**) छूटती हैं॥१॥

**भावार्थ** :–आनन्द-रस के भण्डार परमेश्वर से प्राप्त आनन्द-धाराएँ उपासक को कृतकृत्य कर देती हैं॥१॥

द्वितीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में क्रमांक ५७६ पर मनुष्य के उत्साह-कर्म के विषय में की गयी थी। यहाँ परमात्मा के विषय में वर्णन है।

**७७३. पवते हर्यतो हरिरति ह्वरांसि रंह्या।**
**अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**हर्यतः**) चाहने योग्य, (**हरिः**) अज्ञान, पाप आदि का हर्ता जगदीश्वर (**रंह्या**) वेग के साथ (**ह्वरांसि अति**) कुटिलताओं को पार कराकर (**पवते**) उपासकों को पवित्र करता है। हे जगदीश्वर! आप (**स्तोतृभ्यः**) स्तुति करने वाले उपासकों के लिए (**वीरवत्**) वीर भावों से युक्त (**यशः**) कीर्ति (**अभ्यर्ष**) प्राप्त कराओ॥२॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के उपासक जन दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख, पाप, कुटिलता आदि से छूटकर वीर्य तथा उत्साह से युक्त होकर जीवन बिताते हैं॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५५३ पर 'कैसा मनुष्य समाज से बहिष्कृत करने योग्य है' इस विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ अन्य प्रकार से व्याख्या की जा रही है।

**७७४. प्र सुन्वानायान्धसो मर्त्तो न वष्ट तद्वचः।**
**अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः॥३॥**

**पदार्थ** :–( **अन्धसः** ) अन्नादि भोज्य पदार्थों को ( **सुन्वानाय** ) उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के लिए ( **मर्तः न** ) उपासक मनुष्य के समान, तुम ( **तत्** ) उस स्तुति-रूप ( **वचः** ) वचन को बोलने की ( **वष्ट** ) कामना करो। और ( **अराधसम्** ) भक्ति न करने वाले ( **श्वानम्** ) कुत्ते की वृत्ति वाले अर्थात् सांसारिक पदार्थों का लोभ करने वाले मनुष्य को ( **अप हत** ) दूर कर दो, किस प्रकार? ( **भृगवः** ) तपस्वी महर्षि ( **मखं** ) न जैसे मन की चंचलता को दूर करते हैं।।३।।

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है।।३।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर की भक्ति करने वाले लोगों को चाहिए कि वे भक्ति न करने वाले, सांसारिक भोगों के लोभियों की संगति न करे।।३।।

**इति द्वितीयोऽध्यायः, प्रथमप्रपाठकश्च समाप्तः॥**

# अथ तृतीयोऽध्यायः

## द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—जमदग्निः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में सोम जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**७७५. पवस्व वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः।**
**अभि विश्वानि काव्या॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) सब को उत्पन्न करने वाले, सब को प्रेरणा देने वाले, सब ऐश्वर्यों से युक्त, रस के भण्डार, चन्द्रमा के समान आह्लादक जगदीश्वर! हमारी (**वाचः**) जिह्वा के (**अग्रियः**) आगे रहने वाले आप (**चित्राभिः**) अद्भुत (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के साथ (**पवस्व**) हमें पवित्र कीजिए। आप (**विश्वानि**) सब (**काव्या**) वेद काव्यों में (**अभि**) ओर व्याप्त हैं। कहा भी है—"जिसने ऋचाएं पढ़कर भी जगदीश्वर को नहीं जाना वह ऋचाओं से क्या करेगा? जो ऋचाओं से उसे जान लेते हैं वे समाधिस्थ हो जाते हैं"॥१॥ (ऋ० १।१६।३९)

**भावार्थ** :—जगदीश्वर जिसकी रक्षा करता है, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**७७६. त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन्।**
**पवस्व विश्वचर्षणे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**विश्वचर्षणे**) सबके द्रष्टा, अथवा सब मनुष्यों के स्वामी जगदीश्वर! (**वाचः**) उपासकों की वाणी के (**अग्रियः**) आगे रहने वाले (**त्वम्**) पवित्रकर्ता आप (**समुद्रियाः**) आनन्दसागर के (**अपः**) रसों को (**ईरयन्**) हमारी ओर भेजते हुए, हमें (**पुनीहि**) पवित्र कीजिए॥२॥

अगले मन्त्र में सोम जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है।

**७७७. तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने सोम तस्थिरे।**
**तुभ्यं धावन्ति धेनवः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**कवे**) मेधावी, दूरदर्शी (**सोम**) जगदीश्वर! (**इमा भुवना**) ये लोकलोकान्तर (**तुभ्यम्**) आपकी ही पूजा के लिए (**महिम्ने तस्थिरे**) महिमावान् हुए हैं। (**तुभ्यम्**) आपकी ही पूजा के लिए (**धेनवः**) गौएं, मेघ-मालाएं और सूर्यकिरणें (**धावन्ति**) दौड़ लगा रही हैं॥३॥

**भावार्थ** :—इस विशाल ब्रह्माण्ड में सूर्य, चांद, तारे, भूमि, ऋतुएं, नदियां, समुद्र, मेघ-घटाएं, गौएं, घोड़े, मनुष्य, मंगल-बुध-बृहस्पति आदि ग्रह सब परमेश्वर की ही महिमा का गान कर रहे हैं॥३॥

(२)

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ परमात्मा, आचार्य तथा राजा से प्रार्थना की गयी है।

**७७८. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।**
**विश्वा अप द्विषो जहि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) तेजस्वी परमात्मन्, आचार्य और राजन्! (**वृषा**) विद्या और सुख की वर्षा करने वाले, (**सुतः**) हम से प्रार्थना और प्रेरणा किये गये आप (**पवस्व**) हमें पवित्र कीजिए। (**जने**) जन-समुदाय में (**नः**) हमें (**यशसः**) यशस्वी (**कृधि**) कीजिए, (**विश्वाः द्विषः**) सब द्वेष-वृत्तियों को और सब द्वेषियों को (**अप जहि**) विनष्ट कर दीजिए॥१॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर, आचार्य और राजा से विद्या, सुख, पवित्रता, कीर्ति और द्वेष-पाप आदि का विनाश प्राप्त करके सब लोग सफल जीवन वाले होवें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं से प्रार्थना की गयी है।

७७९. यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः।
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) तेजस्वी जगदीश्वर, आचार्य और राजन् (**यस्य ते**) जिन आपकी (**सख्ये**) मित्रता में (**वयम्**) हम हैं, वे हम लोग (**पृतन्यतः**) सेना से चढ़ाई करने वाले आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को (**सासह्याम**) अतिशय रूप से बार-बार पराजित कर देवें। और (**तव**) आपके दिये हुए (**उत्तमे**) उत्तम (**द्युम्ने**) यश में, हम रहें॥२॥

**भावार्थ** :—सबको चाहिए कि परमेश्वर की उपासना करके, गुरु को शिष्यभाव से प्राप्त करके और राजा की सहायता पाकर सब काम, क्रोध आदि आन्तरिक रिपुओं को एवं बाह्य शत्रुओं को निर्मूल करके यशस्वी बनें॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं से प्रार्थना है।

७८०. या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे।
रक्षा समस्य नो निदः॥३॥

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम! हे कर्मशूर जगदीश्वर, आचार्य और राजन्! (**धूर्वणे**) हिंसक के लिए (**या**) जो (**ते**) आपके (**भीमानि**) भयंकर, (**तिग्मानि**) तीक्ष्ण (**आयुधा**) हथियार (**सन्ति**) हैं, उनके द्वारा आप (**समस्य**) सब शत्रुओं से की जाने वाली (**निदः**) निन्दा से (**नः**) हमें (**रक्ष**) बचाइये॥३॥

यहाँ अर्थश्लेष अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर दण्डशक्तिरूप शस्त्रास्त्रों से, आचार्य ब्रह्मतेजरूप शस्त्रास्त्रों से और राजा भौतिक शस्त्रास्त्रों से दुष्टों की दुष्टता को दूर करके उनसे की जाने वाली निन्दा से मनुष्यों, शिष्यों और प्रजाजनों की रक्षा करें॥३॥

(३)

**ऋषिः—कश्यपः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५०४ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ जगदीश्वर, आचार्य और राजा तीनों को सम्बोधन है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**७८१. वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः।**
२ ३ १ २
**वृषा धर्माणि दध्रिषे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) सत्कर्मों में प्रेरणा करने वाले जगदीश्वर, आचार्य वा राजन्! (**वृषा**) सुख, विद्या एवं समृद्धि की वर्षा करने वाले आप (**द्युमान्**) तेजस्वी (**असि**) हो। हे (**देव**) सूर्यादियों के प्रकाशक परमात्मन्, वेदविद्या के प्रकाशक आचार्य तथा राजनियमों के प्रकाशक राजन्! (**वृषव्रतः**) धर्म, विद्या एवं समृद्धि की वर्षा करना ही जिनका व्रत है ऐसे आप (**वृषा**) सचमुच बादल हो। (**वृषा**) ब्रह्मबल, आत्मबल अथवा देहबल से युक्त आप (**धर्माणि**) चरित्र के नियमों, विद्या के नियमों तथा राजनियमों को (**दध्रिषे**) धारण करते हो॥१॥

इस मन्त्र में अर्थश्लेष अलंकार है। सोम में वृषत्व (पर्जन्यत्व) का आरोप होने से रूपक है। उस आरोप में 'वृषव्रतः' इस पद का अर्थ हेतु बन रहा है, अतः काव्यलिङ्ग है। 'वृषा' की आवृत्ति में यमक है॥१॥

**भावार्थ** :—जिस राष्ट्र में महान् परमेश्वर सुख आदि की, विद्वान् आचार्य विद्या की और धनी राजा धन की वर्षा करते हैं वह राष्ट्र महिमा से बहुत शोभा पाता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा आचार्य और राजा की स्तुति है।

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**७८२. वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा सुतः।**
१ २र ३ १ २र
**स त्वं वृषन्वृषेदसि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वृषन्**) सुख, सम्पत्ति, विद्या आदि की वर्षा करने वाले परमात्मन्, आचार्य और राजन्! (**वृष्णः ते**) वर्षक आपका (**शवः**) बल (**वृष्ण्यम्**) सुख, शान्ति, धन आदि की वर्षा करने के स्वभाव वाला है। आपका (**वनम्**) तेज भी (**वृषा**) सुख आदि की वर्षा करने वाला है। (**सुतः**) आपसे उत्पन्न किया गया वृष्टिरस, विद्यारस और रक्षारस भी (**वृषा**)

सुख आदि की वर्षा करने वाला है। ( **सः त्वम्** ) वह आप ( **वृषा इत्** ) बादल ही ( **असि** ) हो॥२॥

इस मन्त्र में सोमपदवाच्य परमेश्वर आदि में बादल का आरोप होने से रूपकालंकार है। 'वृष्ण, वृष्ण' में छेकानुप्रास, 'वृषा, वृषा' में लाटानुप्रास और 'वृष्, वृष्, वृषा, वृषा, वृष, वृषे' में वृत्त्यनुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर, राजा और आचार्य ये तीनों ही मनुष्यों को ऐहिक तथा पारलौकिक उन्नति प्राप्त कराने में सहायक होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा, आचार्य और राजा को सम्बोधन है।

**७८३. अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः।**
**वि नो राये दुरो वृधि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे **पवमान सोम** अर्थात् पवित्रताप्रदायक जगदीश्वर, आचार्य और **राजन्**! ( **वृषा** ) **धर्म**, **अर्थ**, **काम** और **मोक्ष** की वर्षा करने वाले आप ( **अश्वः न** ) फैले हुए बादल के समान ( **चक्रदः** ) शब्द करते हो। हे ( **इन्दो** ) तेजस्विन्! आप ( **गाः** ) गौओं, भूमियों और वेदवाणियों को ( **सम्** ) हमें सम्प्राप्त कराओ। ( **अर्वतः** ) घोड़ों, बलों और प्राणों को ( **सम्** ) सम्प्राप्त कराओ। और ( **नः** ) हमारी ( **राये** ) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए ( **दुरः** ) द्वारों को ( **विवृधि** ) खोल दो॥३॥

इस मन्त्र में उपमालंकार तथा अर्थश्लेष है॥३॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर सबके हृदय में स्थित हुआ सत्प्रेरणा देता है, आचार्य विद्यागृह में स्थित हुआ शिष्यों को उपदेश करता है और राजा राष्ट्र में स्थित हुआ राजनियमों को उद्घोषित करता है। वे सभी यथायोग्य दीर्घायुष्य, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्चस् आदि प्रदान करते और रास्ते से विघ्न-बाधाओं को दूर करते हैं॥३॥

( ४ )

**ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४८० क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जगदीश्वर तथा राजा का आह्वान है।

**७८४. वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।**
**पवमान स्वर्दृशम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) पवित्रता देने वाले जगदीश्वर और राजन्! आप (**वृषा हि**) सचमुच सद्गुण, विद्या, सुराज्य, धन आदि की वर्षा करने वाले (**असि**) हो। (**भानुना**) तेज से (**द्युमन्तम्**) देदीप्यमान, (**स्वर्दृशम्**) मोक्ष के आनन्द वा लौकिक सुख का दर्शन कराने वाले (**त्वा**) आपको, हम (**हवामहे**) पुकारते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे उपासना किया हुआ परमेश्वर हृदय को पवित्र करके उसमें दिव्य ऐश्वर्यों को बरसाता है और मोक्ष का आनन्द देता है, वैसे ही राज्य में राजा राष्ट्रवासियों के भ्रष्टाचार को दूर करके, पवित्र आचरण का प्रचार करके, विविध ऐश्वर्यों की वर्षा करके प्रजाओं को सुख प्रदान करे॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर और राजा का वर्णन है।

**७८५. यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः।**
**द्रोणे सधस्थमश्नुषे॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) जगदीश्वर के पक्ष में। हे राजन्! (**यत्**) जब (**आयुभिः**) उपासक मनुष्यों से (**मर्मृज्यमानः**) बार-बार अत्यधिक सात्त्विक भावों से अलंकृत किये जाते हुए आप (**अद्भिः**) भक्तिरसों से (**परिषिच्यसे**) सींचे जाते हो, तब (**द्रोणे**) हृदयरूप द्रोणकलश में (**सधस्थम्**) स्थान (**अश्नुषे**) पा लेते हो।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे राजन्! (**यत्**) जब (**आयुभिः**) राष्ट्रवासी प्रजाजनों द्वारा (**मर्मृज्यमानः**) मालाओं आदि से अलंकृत किये जाते हुए आप (**अद्भिः**) अभिषेकजलों से (**परिषिच्यसे**) सींचे जाते हो, तब (**द्रोणे**) लकड़ी के बने सिंहासन पर (**सधस्थम्**) स्थान (**अश्नुषे**) पा लेते हो॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। सोम ओषधि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे याज्ञिकों द्वारा सोम ओषधि का रस जलों के साथ द्रोणकलश में सींचा जाता है और जैसे प्रजाजनों द्वारा कोई सुयोग्य मनुष्य राजा के पद पर अभिषिक्त किया जाता है, वैसे ही स्तोताओं को चाहिए कि परमेश्वर को भक्तिरसों द्वारा हृदय में अभिषिक्त करें॥२॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय वर्णित है।

१ २ ३ २ ३ १ २
**७८६. आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध।**
३ १ २ ३ १ २
**इहो ष्विन्दवा गहि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**स्वायुध**) उत्कृष्ट दण्डसामर्थ्य वाले जगदीश्वर तथा तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राजन्! (**मन्दमानः**) प्रसन्न होते हुए आप (**सुवीर्यम्**) श्रेष्ठ आत्मबल, धैर्यबल, उत्साहबल और शारीरिक बल को (**आ पवस्व**) हमारे अन्दर प्रवाहित कीजिए। हे (**इन्दो**) तेजस्वी राजराजेश्वर परमात्मन् और राजन्! आप (**इह उ**) यहाँ हमारे हृदय में वा राजगद्दी पर (**सु आगहि**) भलीभांति पधारिए॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे परमात्मा अपने उपासकों का हार्दिक निवेदन सुनकर सज्जनों को उत्साहित और दुर्जनों को दण्डित करता है, वैसे ही राजा को चाहिए कि वह राष्ट्रवासियों का निवेदन सुनकर प्रजा को रक्षित और उत्साहित करे तथा पापी शत्रुओं को बन्दूक, तोप, आकाशीय गोले आदि हथियारों से विनष्ट करे॥३॥

(५)

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और आचार्य को सम्बोधन किया गया है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**७८७. पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः।**
३ १ २र
**सखित्वमा वृणीमहे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! ज्ञान को प्रेरित करने वाले परमात्मा और आचार्य! (**पवमानस्य**) हृदय को पवित्र करने वाले तथा (**पवित्रम्**)

पवित्र हृदय को ( **अभ्युन्दतः** ) आनन्दरस वा विद्यारस से भिगोने वाले ( **ते** ) आपकी ( **सखित्वम्** ) मित्रता को, हम ( **आ वृणीमहे** ) स्वीकार करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर उपासकों के और आचार्य शिष्यों के हृदय को पवित्र करके उसमें आनन्दरस वा विद्यारस को सींचते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं को सम्बोधन है।

**७८८. ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया।**
**तेभिर्नः सोम मृडय॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) ज्ञान के प्रेरक परमात्मन् वा आचार्य! ( **ये ते** ) जो आपकी ( **ऊर्मयः** ) आनन्दरस और ज्ञानरस की लहरें ( **धारया** ) धारारूप से ( **पवित्रम्** ) पवित्र हृदय को ( **अभि** ) लक्ष्य करके ( **क्षरन्ति** ) बहती हैं, ( **तेभिः** ) उनसे ( **नः** ) हमें ( **मृडय** ) सुखी कीजिए॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर स्तोताओं को आनन्दरस की लहरों से और आचार्य शिष्यों को ज्ञानरस की लहरों से तरंगित करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं से प्रार्थना की गयी है।

**७८९. स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम्।**
**ईशानः सोम विश्वतः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा आचार्य! ( **ईशानः** ) समर्थ ( **सः** ) वह प्रसिद्ध आप ( **नः** ) हमें ( **पुनानः** ) पवित्र अन्तःकरण वाला करते हुए ( **विश्वतः** ) सब ओर से ( **रयिम्** ) आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्य को, और ( **वीरवतीम्** ) वीरतायुक्त ( **इषम्** ) प्रगति को ( **आभर** ) प्रदान कीजिए॥३॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर और आचार्य से सत्प्रेरणा प्राप्त करके पवित्र हृदय वाले होकर मनुष्य महान् उन्नति कर सकते हैं॥३॥

( ६ )

**ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—**

गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ३ पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ आचार्य, राजा और भौतिक अग्नि के पक्ष में व्याख्या करते हैं।

**७९०. अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम्।**
**अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) आचार्य के पक्ष में। हम (**होतारम्**) विद्या और आचार के दाता, (**विश्ववेदसम्**) सम्पूर्ण वाङ्मय के ज्ञाता, (**अस्य**) इस किये जाते हुए (**यज्ञस्य**) विद्या-यज्ञ के (**सुक्रतुम्**) सुकर्ता, (**दूतम्**) दुर्गुण, दुर्व्यसन, प्रमाद, आलस्य, दुःख आदि को संतप्त करने वाले (**अग्निम्**) तेजस्वी, कर्मनिष्ठ, अग्रनेता आचार्य को (**वृणीमहे**) गुरु रूप से वरते हैं।

**द्वितीय** राजा के पक्ष में। हम (**होतारम्**) सुराज्य-व्यवस्था से प्रजाओं को सुख देने वाले, (**विश्ववेदसम्**) सम्पूर्ण राजनीतिविज्ञान के ज्ञाता, (**अस्य**) इस किये जाते हुए (**यज्ञस्य**) राष्ट्र-यज्ञ के (**सुक्रतुम्**) सुकर्ता, (**दूतम्**) शत्रुओं तथा भ्रष्टाचारियों के सन्तापक, (**अग्निम्**) अग्रनेता, कर्मठ, सुयोग्य जन को (**वृणीमहे**) प्रजा के बीच से राजा रूप में चुनते हैं।

**तृतीय** भौतिक अग्नि के पक्ष में। हम शिल्पविद्या के ज्ञाता विद्वान् लोग (**होतारम्**) यानों और यन्त्रों में वेगादि गुण को देने वाले, (**विश्ववेदसम्**) सब सुख के साधन जिससे प्राप्त होते हैं ऐसे, (**अस्य**) इस किये जाते हुए (**यज्ञस्य**) शिल्पयज्ञ के (**सुक्रतुम्**) सुसम्पादन में साधनभूत, (**दूतम्**) यन्त्रकलाओं को गति देने वाले (**अग्निम्**) विद्युत् को (**वृणीमहे**) शिल्पक्रियाओं में प्रयुक्त करते हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि जगदीश्वर की उपासना से शुभ प्रेरणा पाकर, सुयोग्य, उत्तम शिक्षा देने वाले आचार्य को वरकर, सब विद्याएं पढ़कर, सदाचार को स्वीकार करके, विद्युत्-विद्या से शिल्पविद्या की उन्नति द्वारा भू-यान, जल-यान और अन्तरिक्ष-यानों को तथा तरह-तरह के यन्त्रों को बना कर राष्ट्र की उन्नति करें॥१॥

अगले मन्त्र में विविध अग्नियों का आह्वान है।

**७९१. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्।**
**हव्यवाहं पुरुप्रियम्॥२॥**

**पदार्थ** :–(**अग्निम् अग्निम्**) प्रत्येक अग्नि को परमात्माग्नि को, आत्माग्नि को, जाठराग्नि को, यज्ञाग्नि को, शिल्पाग्नि को, आचार्याग्नि को, राजाग्नि को (**हवीमभिः**) हवियों के साथ मनुष्य (**सदा**) हमेशा (**हवन्त**) पुकारें, स्वीकार करें। कैसे अग्नि को? (**विश्पतिम्**) जो प्रजाओं का पालक, (**हव्यवाहम्**) दातव्य वस्तुओं को या सद्गुण, विद्या आदि को प्राप्त कराने वाला तथा (**पुरुप्रियम्**) बहुत प्रिय अथवा बहुतों का प्रिय है॥२॥

**भावार्थ** :–आराधना किया हुआ परमात्माग्नि उपासक के आत्मसमर्पण को स्वीकार करके उसे भद्र गुण-कर्म-स्वभाव प्रदान करता है। उद्बोधन दिया गया आत्माग्नि मन, आंख आदि ज्ञानसाधनों से ज्ञान को स्वीकार करके मनुष्य को बल देता है। जाठराग्नि भोज्य, पेय आदि हवि को स्वीकार करके उसे रस-रक्त आदि के रूप में परिणत करता है। यजमान से होमा हुआ यज्ञाग्नि हवियों को स्वीकार करके वायु के माध्यम से आरोग्यकारी सुगन्ध को इधर-उधर ले जाता है। यान-यन्त्र आदि में प्रयुक्त विद्युत्-रूप अग्नि विमानादि यानों को स्थानान्तर में पहुंचाता है और यन्त्र-कलाओं का संचालन कर विविध पदार्थों के निर्माण में साधन बनता है। आचार्यरूप अग्नि समित्पाणि शिष्यों के समर्पण को स्वीकार करके उन्हें विद्या और सदाचार ग्रहण कराता है। राजारूप अग्नि प्रजाओं से राजकर स्वीकार करके प्रजाओं को सुख देता है। इसलिए सब को चाहिए कि इन अग्नियों का व्यवहार में यथायोग्य प्रयोग करें॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा आचार्य और राजा को सम्बोधन है।

**७९२. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे।**
**असि होता न ईड्यः॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**अग्ने**) अग्रनायक तेजस्वी परमात्मन्, आचार्य और राजन्! (**वृक्तबर्हिषे**) उपासना-यज्ञ, विद्या-यज्ञ और

राष्ट्रसेवा-यज्ञ के हेतु जिसने आसन बिछा लिया है ऐसे मनुष्य के लिए ( **जज्ञानः** ) प्रकट होते हुए अर्थात् अपने दर्शन देते हुए आप ( **इह** ) इस उपासना-यज्ञ, विद्या-यज्ञ और राष्ट्र-यज्ञ में ( **देवान्** ) दिव्यगुणों को, विद्वानों को और राष्ट्रसेवकों को ( **आवह** ) उत्पन्न कीजिए। आप ( **होता** ) सुख, सम्पत्ति, विद्या, सदाचार आदि के दाता, और ( **नः** ) हमारे ( **ईड्यः** ) स्तुति-योग्य ( **असि** ) हो॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर उपासना-यज्ञ में स्तोताओं के हृदय में दिव्यगुण उत्पन्न करता है, वैसे ही आचार्य विद्या-यज्ञ में विद्वान् जनों को तथा राजा राष्ट्र-यज्ञ में राष्ट्र-सेवकों को उत्पन्न करे॥३॥

( ७ )

**ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवते—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

अगले मन्त्र में **प्राण-उदान** तथा **ब्रह्म-क्षत्र** विषयों का वर्णन है।

३२ ३१ २ ३ १२३ १२

**७९३. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये।**

२ ३२ ३१२

**या जाता पूतदक्षसा॥१॥**

**पदार्थ** :—( **वयम्** ) हम लोग ( **सोमपीतये** ) यश की रक्षा के लिए ( **मित्रम्** ) बाहर और अन्दर स्थित जीवन हेतु प्राण को अथवा ब्रह्म-बल को, ( **वरुणम्** ) ऊर्ध्वगति तथा बल के हेतु उदान को अथवा क्षत्र-बल को ( **हवामहे** ) पुकारते हैं, ग्रहण करते हैं, ( **या** ) जो ( **पूतदक्षसा** ) पवित्र बल वाले अथवा बल को पवित्र करने वाले ( **जाता** ) हुए हैं॥१॥

**भावार्थ** :—सब लोगों को चाहिए कि शरीर में प्राणनक्रिया के हेतु प्राण को और ऊर्ध्वगति के हेतु उदान को तथा राष्ट्र में ब्रह्म-बल और क्षत्र-बल को बढ़ाकर शरीर तथा राष्ट्र के स्वास्थ्य को उन्नत करें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय वर्णित है।

३२३ १२ ३१ २३२ ३ १२३ १२

**७९४. ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती।**

२ ३ १ २र

**ता मित्रावरुणा हुवे॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) प्राण-उदान के पक्ष में। ( **यौ** ) जो ( **ऋतेन** ) प्राण-क्रिया एवं उदान-क्रिया रूप सत्य व्यापार से ( **ऋतावृधौ** ) सत्यक्रियायुक्त मनोमय एवं विज्ञानमय कोशों को बढ़ाने वाले, ( **ऋतस्य** ) ऋतम्भरा प्रज्ञा, एवं ( **ज्योतिषः** ) ज्योतिष्मती वृत्ति के ( **पती** ) रक्षक हैं, ( **ता** ) उन ( **मित्रावरुणा** ) प्राण-उदान को, मैं ( **हुवे** ) पुकारता हूँ, स्वस्थरूप से शरीर में प्रवृत्त करता हूँ।

**द्वितीय** ब्रह्म-क्षत्र के पक्ष में। ( **यौ** ) जो ( **ऋतेन** ) सत्य ज्ञान और सत्य क्षात्र-बल से ( **ऋतावृधौ** ) सत्यमय राष्ट्र को बढ़ाने वाले, और ( **ऋतस्य ज्योतिषः** ) सत्यरूप ज्योति के ( **पती** ) रक्षक हैं, ( **ता** ) उन ( **मित्रावरुणा** ) ब्राह्मण और क्षत्रियों को, मैं ( **हुवे** ) पुकारता हूँ॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे प्राण और उदान से शरीर का स्वास्थ्य, वैसे ही ब्राह्मण और क्षत्रियों से राष्ट्र का स्वास्थ्य चिरस्थायी होता है॥२॥

अगले मन्त्र में भी वही विषय है।

**७९५. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः।**
**करतां नः सुराधसः॥३॥**

**पदार्थ** :—( **वरुणः** ) शरीर में उदान और राष्ट्र में क्षत्रिय, ( **मित्रः** ) शरीर में प्राण और राष्ट्र में ब्राह्मण ( **विश्वाभिः** ) सब ( **ऊतिभिः** ) रक्षाओं से ( **प्राविता** ) हमारे प्रकृष्ट रूप से रक्षक ( **भुवत्** ) होवें। साथ ही ( **नः** ) हमें ( **सुराधसः** ) उत्तम धन से युक्त तथा उत्तम सिद्धि वाला ( **करताम्** ) करें॥३॥

**भावार्थ** :—प्राण-उदान द्वारा शरीर में स्वास्थ्यरूप तथा योगसिद्धिरूप धन को और ब्राह्मण-क्षत्रिय द्वारा राष्ट्र में विद्या, चक्रवर्ती राज्य आदि धन को सब प्राप्त करें॥३॥

( ८ )

**ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १९८ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय कहा जा रहा है।

**७९६. इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।**
**इन्द्रं वाणीरनूषत॥१॥**

**पदार्थ** :–( इन्द्रम् ) देह के अधिष्ठाता, काम–क्रोध आदि शत्रुओं को पराजित करने वाले वीर जीवात्मा की ( इत् ) निश्चय ही ( गाथिनः ) गायक लोग ( बृहत् ) बहुत अधिक ( अनूषत ) स्तुति करते हैं। ( इन्द्रम् ) जीवात्मा की ( अर्किणः ) मन्त्रपाठी लोग ( अर्कैः ) वेदमन्त्रों से ( अनूषत ) स्तुति करते हैं। ( इन्द्रम् ) उसी जीवात्मा की ( वाणीः ) अन्य वाणियां ( अनूषत ) स्तुति करती हैं॥१॥

**भावार्थ** :–जीवात्मा ही देहराज्य का सम्राट् है, जो मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदियों को यथा स्थान बैठाकर देहराज्य का संचालन करता है॥१॥

**द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में ५९७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय कहते हैं।**

**७९७. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा।**
**इन्द्रो वज्री हिरण्ययः॥२॥**

**पदार्थ** :–( इन्द्रः इत् ) देह का अधिष्ठाता जीवात्मा ही ( वचोयुजा ) कहते ही जुड़ पाने वाले ( हर्योः ) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों का ( सचा ) एक साथ ( आ सम्मिश्लः ) ज्ञान और कर्मों में जोड़ने वाला है। ( इन्द्रः ) वह जीवात्मा ( वज्री ) वाणी रूप वज्र का धारण करने वाला और ( हिरण्ययः ) प्राणमय, ज्योतिर्मय तथा कीर्तिमय है॥२॥

**भावार्थ** :–जिस जीवात्मा की प्रेरणा से ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपने–अपने व्यापारों में नियुक्त होती हैं, जो जीवात्मा वाणीरूप वज्र से कुतार्किकों के कुतर्कों का खण्डन करता है, जो प्राणों का अधिष्ठाता, तेजस्वी और यशस्वी है, उसे उद्बोधन देकर सब लोग अपने अभीष्टों को सिद्ध करें॥२॥

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५९८ क्रमांक पर परमेश्वर

और राजा के पक्ष में व्याख्या की गयी थी। यहाँ जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**७९८. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।**
**उग्र उग्राभिरूतिभिः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मन्! (**उग्रः**) वीर तू (**वाजेषु**) संग्रामों में (**सहस्रप्रधनेषु च**) तथा सहस्रों प्रकृष्ट धन जिनमें प्राप्त होते हैं ऐसे चक्रवर्ती-राज्य साधक महायुद्धों में (**उग्राभिः**) अत्यन्त उत्कृष्ट (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**नः**) हमारी (**रक्ष**) रक्षा कर॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा यदि बलवान् है तो उसे कोई भी पराजित नहीं कर सकता॥३॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा के भी अधिष्ठाता जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है।

**७९९. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि।**
**वि गोभिरद्रिमैरयत्॥४॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्र**) सारे संसार को उत्पन्न करने वाले परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर ने (**दीर्घाय**) दीर्घ (**चक्षसे**) प्रकाश के लिए (**दिवि**) द्युलोक में (**सूर्यम्**) सूर्य को (**आरोहयत्**) चढ़ाया हुआ है। वही (**गोभिः**) सूर्य-किरणों से (**अद्रिम्**) बादल को (**वि ऐरयत्**) विकम्पित करता है, बरसाता है॥४॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की ही यह महिमा है कि वह सूर्य को रच कर उसके द्वारा पदार्थों को प्रकाशित करता, दिन-रात-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-वर्ष के चक्र को चलाता, बादल बनाता, वर्षा करता और प्राण-प्रदान आदि कार्य करता है॥४॥

(९)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र और अग्नि के नाम से जीवात्मा-परमात्मा का विषय वर्णित है।

**८००. इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे।**
**धिया धेना अवस्यवः॥१॥**

**पदार्थ** :–( **अवस्वयवः** ) रक्षा के इच्छुक, हम लोग ( **इन्द्रे** ) जीवात्मा को लक्ष्य करके ( **बृहत्** ) महान् ( **नमः** ) नमस्कार को, ( **सुवृक्तिम्** ) निर्दोष क्रिया को और ( **धिया** ) ध्यान तथा बुद्धि के साथ ( **धेनाः** ) स्तुतिरूप वाणियों को आ ( **ईरयामहे** ) प्रेरित करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की उपासना के लिए और जीवात्मा को उद्बोधन देने के लिए नमस्कार, गुणवर्णनरूप स्तुति और तदनुरूप क्रिया निरन्तर अपेक्षित होती है। पुरुषार्थ के बिना केवल नमस्कार से या स्तुति से कुछ भी नहीं सिद्ध होता॥१॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है।

**८०१. ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये।**
**सबाधो वाजसातये॥२॥**

**पदार्थ** :–( **ता हि** ) उन दोनों इन्द्र और अग्नि अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा की ( **इत्था** ) सत्यभाव से ( **शश्वन्तः** ) बहुत से, ( **सबाधः** ) बाधाओं से पीड़ित ( **विप्रासः** ) विप्र जन ( **ऊतये** ) रक्षा के लिए, और ( **वाजसातये** ) बलप्राप्ति के लिए ( **ईडते** ) स्तुति करते, हैं अर्थात् उनके गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :–सांसारिक दुःखों को दूर करने के लिए तथा विपत्तियों में रक्षा की प्राप्ति और बल की प्राप्ति के लिए जगदीश्वर की उपासना करनी चाहिए और जीवात्मा को उद्बोधन देना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा का आह्वान किया गया है।

**८०२. ता वां गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्तो हवामहे।**
**मेधसाता सनिष्यवः॥३॥**

**पदार्थ** :–( **ता** ) उन ( **वाम्** ) तुम दोनों जीवात्मा और परमात्मा को ( **विपन्युवः** ) विशेष स्तुति से युक्त, ( **प्रयस्वन्तः** ) पुरुषार्थ से युक्त, ( **सनिष्यन्तः** ) पाने के इच्छुक हम श्रद्धालु लोग ( **मेधसाता** ) संगम की प्राप्ति के निमित्त ( **गीर्भिः** ) वेदवाणियों से ( **हवामहे** ) पुकारते हैं।।३।।

**भावार्थ** :–परमात्मा और जीवात्मा को अनुकूल करने के लिए वाणी से स्तुति, शरीर से प्रयत्न और मन से श्रद्धा तीनों अपेक्षित होते हैं।।३।।

( १० )

**ऋषिः–भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वा॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४६९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या दी गयी थी। यहाँ आचार्य का विषय प्रदर्शित किया जा रहा है।

**८०३. वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः।**
**विश्वा दधान ओजसा॥१॥**

**पदार्थ** :–हे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने वाले आचार्य! ( **वृषा** ) विद्या के वर्षक आप ( **धारया** ) ज्ञान-धारा से ( **पवस्व** ) शिष्यों को पवित्र कीजिए। ( **मरुत्वते** ) प्राणायाम का अभ्यास करने वाले शिष्य के लिए ( **मत्सरः** ) ब्रह्मानन्द के स्रावक होइए। साथ ही ( **ओजसा** ) विद्या-बल, सदाचार-बल और ब्रह्मचर्य-बल से ( **विश्वा** ) सब शिष्यों को ( **दधानः** ) धारण कीजिए।।१।।

**भावार्थ** :–वही आचार्य होता है जो शिष्यों को विद्या की धाराओं से स्नान कराता हुआ, उनका पिता के समान पालन करता हुआ उन्हें महान् पण्डित, तेजस्वी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मानन्द में मग्न तथा सदाचारी बनाये।।१।।

इस प्रकार ब्रह्मविद्या में आचार्य का योगदान कहकर अब परमात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

**८०४. तं त्वा धर्त्तारमोण्यो३: पवमान स्वर्दृशम्।**
**हिन्वे वाजेषु वाजिनम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) पवित्रकर्त्ता, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! (**ओण्यो:**) द्युलोक और भूलोक को (**धर्त्तारम्**) धारण करने वाले, (**स्वर्दृशम्**) सूर्य वा मोक्षानन्द का दर्शन कराने वाले, (**वाजिनम्**) बलवान् (**तं त्वा**) उस प्रसिद्ध तुझ को, मैं (**वाजेषु**) बलों के निमित्त से (**हिन्वे**) प्रसन्न करता हूँ॥२॥

**भावार्थ** :—जो जगदीश्वर सूर्य, भूमि आदि को धारण करता है वह विपत्तियों में बल-प्रदान द्वारा अपने उपासकों को भी क्यों न धारण करेगा॥२॥

अगले मन्त्र में पुन: परमात्मा का विषय है।

**८०५. अया चित्तो विपानया हरि: पवस्व धारया।**
**युजं वाजेषु चोदय॥३॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम! हे पवित्रकर्त्ता परमात्मन् (**विपा**) मुझ मेधावी के द्वारा (**चित्त:**) जाने हुए (**हरि:**) दु:खों एवं पापों के हर्ता आप (**अया**) वेगवती (**अनया**) इस (**धारया**) आनन्द-धारा से (**पवस्व**) मुझ स्तोता को पवित्र कीजिए। (**युजम्**) अपने सखा मुझको (**वाजेषु**) जीवनसंग्रामों में (**चोदय**) विजय के लिए प्रेरित कीजिए॥३॥

**भावार्थ** :—स्तुति किया गया परमात्मा स्तोताओं को आनन्द-धाराओं से सींचकर, बल देकर देवासुर संग्रामों में विजयी करता है॥३॥

(११)

**ऋषि:—उपमन्युर्वासिष्ठ:॥ देवता—पवमान: सोम:॥**
**छन्द:—त्रिष्टुप्॥ स्वर:—धैवत:॥**

प्रथम मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा ही मेघों को गर्जाता है।

**८०६. वृषा शोणो अभिकनिक्रदद् गा नदयन्नेषि**
**पृथिवीमुत द्याम्। इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ**
**प्रचोदयन्नर्षसि वाचमेमाम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे सोम परमात्मन्! (**वृषा**) वर्षा करने वाले, (**शोणः**) क्रियाशील आप (**गाः**) विद्युद्वाणियों को (**अभि-कनिक्रदत्**) गर्जाते हुए, तथा उससे (**पृथिवीम्**) भूमि को (**उत**) और (**द्याम्**) आकाश को (**नदयन्**) नादयुक्त करते हुए (**एषि**) व्यवहार करते हो। उस समय ऐसा लगता है कि (**आजौ**) युद्ध में (**इन्द्रस्य इव**) नादयुक्त करते हुए (**एषि**) व्यवहार करते हो। उस समय ऐसा लगता है कि (**आजौ**) युद्ध में (**इन्द्रस्य इव**) मानो सेनापति का (**वग्नुः**) दुन्दुभि आदि का नाद (**आ शृण्वे**) सुनाई दे रहा हो। आप ही (**इमाम्**) इस (**वाचम्**) मनुष्यों से उच्चारण की जाने वाली व्यक्त वाणी को (**प्रचोदयन्**) प्रेरित करते हुए (**आ अर्षसि**) आते हो॥१॥

इस मन्त्र में उत्प्रेक्षालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जल-वाष्पों का ऊपर जाना, मेघवटाओं का निर्माण, विद्युत् का चमकना, मेघों का गरजना इत्यादि सभी कार्य सूर्य, पवन आदि के माध्यम से परमेश्वर ही करता है। इसके करने में हम जैसों का सामर्थ्य नहीं है। वही मनुष्यों को व्यक्त वाणी प्रदान करता है॥१॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा में ब्रह्मानन्दरस का प्रवाह वर्णित है।

**८०७. रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम्।**
**पवमान सन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परि-षिच्यमानः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान सोम**) सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा, शुभगुणों के प्रेरक, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! (**रसाय्यः**) रस से पूर्ण, (**पयसा**) रस से (**पिन्वमानः**) मुझ उपासक के हृदय को सींचते हुए आप (**मधुमन्तम्**) मधुर (**अंशुम्**) आनन्द को (**ईरयन्**) प्रेरित करते हुए (**एषि**) मुझे प्राप्त होते हो। (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए (**परिषिच्यमानः**) झरते हुए आप, वहाँ (**सन्तनिम्**) विस्तार को (**कृण्वन्**) प्राप्त करते हुए (**एषि**) व्याप्त होते हो॥२॥

**भावार्थ** :—आनन्दरस से पूर्ण परमात्मा की आनन्दरस की धारा से सिंचे हुए स्तोताओं के हृदय सरस हो जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय वर्णित है।

**८०८. एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नुम्। परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रस के भण्डार परमात्मन्! (**उदग्राभस्य**) जल में निवास करने वाले ग्राह के समान हिंसक कामादि शत्रु के (**वधस्नुम्**) वज्रशिखर को अर्थात् उसके हिंसकव्यापार को, (**नमयन्**) नीचे करते हुए, दूर करते हुए (**मदिरः**) आनन्दजनक आप (**मदाय**) आनन्द के लिए (**एव**) यथोचित रूप से (**पवस्व**) प्रस्रुत होओ, बहो। और (**सिक्तः**) हृदय में सिंचे हुए आप (**रुशन्तं वर्णम्**) तेजस्वी रूप को (**परि भरमाणः**) धारण करते हुए (**गव्युः**) दिव्य प्रकाश की किरणें प्रदान करना चाहते हुए (**नः**) हमें (**परि अर्ष**) **चारों ओर से प्राप्त होओ॥३॥**

**भावार्थ :—परमात्मा की उपासना से दुर्विचार नष्ट होते हैं,** सद्विचार तथा सद्गुण उत्पन्न होते हैं, दिव्य ज्योति चमकने लगती है और आनन्दरस की धाराएं उपासक को आप्लुत कर देती हैं॥३॥

(१२)

**ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३४ क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के पक्ष में व्याख्यात हुई थी। यहाँ परमात्मा और जीवात्मा का आह्वान है।

**८०९. त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः। त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमात्मन् वा जीवात्मन्! (**कारवः**) कर्मशूर हम (**वाजस्य**) संग्राम की (**सातौ**) प्राप्ति होने पर

(त्वाम् इत् हि) तुझे ही (हवामहे) पुकारते या उद्बोधन देते हैं। (वृत्रेषु) शत्रुओं वा विघ्नों के उमड़ने पर (सत्पतिम्) सज्जनों के पालनकर्ता (त्वाम्) तुझे ही पुकारते या उद्बोधन देते हैं। (नरः) सभी मनुष्य (काष्ठासु) दिशाओं में (अर्वतः) हिंसक शत्रु से रक्षार्थ (त्वाम्) तुझे ही पुकारते या उद्बोधन देते हैं॥१॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की कृपा से और आत्मोद्बोधन से सभी विघ्न और सभी शत्रु क्षण भर में पराजित किये जा सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और जीवात्मा को सम्बोधन है।

**८१०.स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।**
**गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**चित्र**) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाले, (**वज्रहस्त**) दण्डसामर्थ्ययुक्त अथवा शस्त्रास्त्र हाथ में धारण करने वाले, (**अद्रिवः**) **शत्रुओं से विदारण न किये जा सकने** वाले (**इन्द्र**) **परमैश्वर्यवान् परमात्मन् वा जीवात्मन्!** (**स्तवानः**) स्तुति या गुण-वर्णन किया जाता हुआ, (**धृष्णुया**) धर्षक बल से (**महः**) महान् (**सः**) वह प्रसिद्ध (**त्वम्**) तू (**नः**) हमें (**रथ्यम्**) शरीर-रथ के वाहक (**गाम्**) प्राण-बल को तथा (**अश्वम्**) इन्द्रिय बल को (**संकिर**) प्रदान कर, (**न**) जैसे (**जिग्युषे**) संग्राम को जीत लेने वाले योद्धाजन को (**सत्रा**) सदा (**वाजम्**) अन्न, धन आदि का पुरस्कार राजा आदि प्रदान करते हैं॥२॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है।

**भावार्थ** :–आध्यात्मिक विजय के लिए और बाह्य विजय के लिए भी आत्मोद्बोधन के साथ परमात्मा की भी सहायता अपेक्षित होती है॥२॥

(१३)

**ऋषिः–प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः–१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३५ क्रमांक पर परमेश्वर की अर्चना के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ आचार्य का विषय वर्णित करते हैं।

**८११. अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥१॥**

**पदार्थ** :—हे छात्रो! (**वः**) तुम (**सुराधसम्**) उत्तम सिद्धि देने वाले (**इन्द्रम्**) तपस्यारूप ऐश्वर्य से युक्त आचार्य की (**अर्च**) अर्चना करो, अर्थात् समित्पाणि होकर उसकी शरण में जाकर उसकी सेवा करो, (**यथा विदे**) जिससे वह तुम्हारी विद्याग्रहण की योग्यता को जाने। कैसे आचार्य की? (**यः**) जो (**पुरूवसुः**) बहुत विद्यारूप धन वाला, (**मघवा**) विद्या का दान करने वाला आचार्य (**जरितृभ्यः**) स्तोता छात्रों को (**सहस्रेण इव**) मानो हजार मुखों से (**शिक्षति**) शिक्षा देता है॥१॥

इस मन्त्र में 'मानो हजार मुखों से' में उत्प्रेक्षालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—**आचार्य के पास से ही लोकविद्या** और ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है। **इस रूप में उसका महत्त्व** जानकर कृतज्ञतापूर्वक उसका सब को **सम्मान** करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य दोनों का वर्णन है।

**८१२. शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे। गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः॥२॥**

**पदार्थ** :—यह इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा वा विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य (**दाशुषे**) आत्मसमर्पण करने वाले उपासक वा शिष्य के हितार्थ (**धृष्णुया**) अपने धर्षक गुण से (**शतानीका इव**) सौ शत्रुसेनाओं के तुल्य (**वृत्राणि**) उपासक या शिष्य के दोषों पर (**प्र जिगाति**) आक्रमण करता है, और (**हन्ति**) उन्हें नष्ट कर देता है। (**पुरुभोजसः**) बहुत पालन करने वाले (**अस्य**) इस परमात्मा वा आचार्य के (**दत्राणि**) दान (**पिन्विरे**) उपासक वा शिष्य के प्रति प्रवाहित होते हैं, (**गिरेः इव रसाः**) जैसे पर्वत के जल प्रवाहित हुआ करते

हैं॥२॥

इस मन्त्र में दो उपमाओं की संसृष्टि है॥२॥

**भावार्थ** :–परमात्मा वा आचार्य के प्रति समर्पणभाव से पहुँचकर उनकी सहायता से दोषों को दूर कर आनन्द–रस और विद्या–रस प्राप्त करने चाहिएं॥२॥

( १४ )

**ऋषि:–नृमेध:॥ देवता–इन्द्र:॥ छन्द:–बार्हत: प्रगाथ: ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वर:–१ मध्यम:; २ पञ्चम:॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३०२ क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के पक्ष में की गयी थी। यहाँ विद्वान् का विषय वर्णित किया जा रहा है।

**८१३. त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णय:।**
**स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि॥१॥**

**पदार्थ** :–हे ( **वज्रिन्** ) दोषों का वर्णन करने वाले विद्वन्! ( **त्वाम् इत्** ) आपको ही ( **भूर्णय:** ) वैभवशाली ( **नर:** ) लोग ( **इदा** ) इस काल में और ( **ह्य:** ) अतीत काल में ( **अपीप्यन्** ) उपहार आदि प्रदान कर बढ़ाते हैं और बढ़ाते रहे हैं। ( **स:** ) वह, हे ( **इन्द्र** ) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त विद्वन्! ( **स्तोमवाहस:** ) आपके प्रति स्तोत्र या पदार्थ समूह पहुँचाने वाले हम लोगों को, अर्थात् हमारे निवेदन को ( **इह** ) यहाँ ( **श्रुधि** ) आप सुनिए, और सुनकर हमारा आतिथ्य ग्रहण करने तथा हमें उपदेश देने के लिए ( **स्वसरम्** ) हमारे घर ( **उप आगहि** ) आइए॥१॥

**भावार्थ** :–सब उन्नति चाहने वाले लोगों को चाहिए कि विद्वानों का सत्कार करें और विद्वानों को भी चाहिए कि अध्ययन की हुई सब विद्याएं उन्हें दें॥१॥

अगले मन्त्र में गुरुओं के भी गुरु परमात्मा की स्तुति है।

**८१४. मत्स्वा सुशिप्रिन् हरिवस्तमीमहे त्वया भूषन्ति वेधस:।**
**तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वण:॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**सुशिप्रिन्**) सर्वान्तर्यामी, (**हरिवः**) आकर्षणशील सूर्य, चन्द्र आदि लोकों के स्वामी परमात्मन्! आप (**मत्स्व**) हमें आनन्दित कीजिए। (**तम्**) उन आनन्दप्रद आपसे हम (**ईमहे**) याचना करते हैं। (**वेधसः**) मेधावी उपासक (**त्वया**) आपसे (**भूषन्ति**) स्वयं को अलंकृत करते हैं। हे (**उक्थ्य**) प्रशंसनीय, (**गिर्वणः**) वाणियों से संभजनीय (**इन्द्र**) जगदीश्वर! (**तव**) आपके (**श्रवांसि**) यश (**सुतेषु**) आपके पुत्र मनुष्यों में (**उपमानि**) उपमान योग्य होते हैं, अर्थात् मनुष्यों के यश परमात्मा के यशों के समान उज्ज्वल हों इस प्रकार उपमान बनते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—हृदय में परमात्मा को धारण करने से ही लोग अलंकृत होते हैं, शरीर के अंगों में कटक, कुण्डल, स्वर्णहार आदि धारण करने से नहीं॥२॥

## (१५)

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७० क्रमांक पर परमात्मा के आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**८१५. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।**
**देवावीरघशंसहा॥१॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता आनन्दरससागार परमात्मन् वा ज्ञानरससागार आचार्य! (**यः ते**) जो आपका (**वरेण्यः**) वरणीय, (**मदः**) उत्साहप्रद आनन्द-रस वा ज्ञानरस है, (**तेन अन्धसा**) उस आनन्द रस वा ज्ञान रस से (**पवस्व**) हम उपासकों वा शिष्यों को पवित्र करो। और, आप (**देवावीः**) दिव्यगुणप्राप्ति कराने वाले, तथा (**अघशंसहा**) पापप्रशंसक दुर्विचारों का विनाश करने वाले, होओ॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर उपासकों को आनन्दरस प्रदान करता, दिव्य गुण प्राप्त कराता और उनके दुर्विचारों को नष्ट

करता है, वैसे ही शिष्यों को विद्या देना, उनका आनन्द बढ़ाना, उनके दोषों को नष्ट करना और उनमें सद्गुणों का आरोपण करना गुरुओं का कर्त्तव्य है।।१।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर और आचार्य का वर्णन है।

**८१६. जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे।**
**गोषातिरश्वसा असि॥२॥**

**पदार्थ** :–हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्त्ता सद्बुद्धिप्रेरक परमात्मन् वा आचार्य! आप (**अमित्रियम्**) शत्रु से आने वाले (**वृत्रम्**) पाप के (**जघ्निः**) नष्ट करने वाले, (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**वाजम् बल**) को (**सस्निः**) शुद्ध करने वाले, (**गोषातिः**) भूमियों, गायों वा वाणियों के दाता और (**अश्वसाः**) घोड़ों वा प्राणों के दाता (**असि**) हो।।२।।

**भावार्थ :–जगदीश्वर के समान गुरु भी पाप आदि का विनाशक, आत्मबल, मनोबल, बुद्धिबल, चित्तबल आदि को पवित्र करने वाला, समस्त वाङ्मय को पढ़ाने वाला और प्राणों** को परिष्कृत करने वाला होवे।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**८१७. सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः।**
**सीदं छ्येनो न योनिमा॥३॥**

**पदार्थ** :–हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्त्ता, सद्गुण कर्मस्वभावप्रेरक परमात्मन् वा आचार्य! (**अरुषः**) तेज से देदीप्यमान आप (**सूपस्थाभिः धेनुभिः**) भलीभांति उपस्थित तृप्तिप्रद स्तुतिवाणियों वा गायों से (**न**) इस समय (**सम्मिश्लः**) सम्मानित (**भुवः**) होओ। और (**श्येनः योनिं न**) बाज पक्षी जैसी आवासवृक्ष पर अथवा सूर्य जैसे द्युलोकरूप घर में स्थित होता है, वैसे ही (**श्येनः**) प्रशंसनीय गति वाले आप (**योनिम्**) हृदय-मन्दिर वा गुरुकुल रूप गृह में (**आसीदन्**) निवास करने वाले (**भुवः**) होओ।।३।।

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे द्रोणकलश में स्थापित सोमरस गोदुग्ध के साथ मिश्रित कर सम्मानित किया जाता है, वैसे ही हृदय-गृह में स्थापित परमेश्वर का स्तुति-वाणियों से और गुरुकुल में स्थापित आचार्य का धेनुओं से संमान करना चाहिए।।३।।

( १६ )

**ऋषिः—नहुषो मानवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ५४६ पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्या की गयी थी। यहाँ आचार्य का विषय वर्णित है।

**८१८. अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।**
**पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे॥१॥**

**पदार्थ** :—( **पूषा** ) शारीरिक तथा आत्मिक पुष्टि का प्रदाता, ( **रयिः** ) विद्याधन से युक्त, ( **भगः** ) भजनीय, समित्पाणि शिष्यों से सेवनीय ( **अयं सोमः** ) **यह सद्विद्याओं का प्रेरक आचार्य** ( **पुनानः** ) **शिष्यों को पवित्र करता हुआ** ( **अर्षति** ) **क्रियाशील** होता है। ( **विश्वस्य भूमनः** ) **समस्त विस्तृत ज्ञान का** ( **पतिः** ) स्वामी यह आचार्य, ज्ञान-प्रदान द्वारा शिष्यों के सम्मुख ( **उभे रोदसी** ) आकाश-भूमि दोनों को ( **व्यख्यत्** ) प्रकाशित कर देता है। कहा भी है—"आचार्य विस्तृत, गम्भीर इन दोनों द्यावापृथिवी को ब्रह्मचारी के सम्मुख घड़कर प्रकट कर देता है। उन्हें वह ब्रह्मचारी तप से अपने अन्दर धारण करता है। उसमें सब देव अनुकूल मन वाले हो जाते हैं।।१।। (अथ० ११.५.८)

**भावार्थ** :—विद्वान् आचार्य को चाहिए कि वह ब्रह्मचारियों को आकाश-भूमि दोनों के सूर्य, नक्षत्र, जल, वायु, विद्युत्, मेघ, नदी, समुद्र, ओषधि, वनस्पति, भूगर्भ आदि का ज्ञान और चारित्रिक शिक्षा देता हुआ उन्हें पवित्र करे।।१।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द रसों का तथा गुरुओं का वर्णन है।

**८१९. समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः।**
**सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) ब्रह्मानन्द-रस के पक्ष में। ( **प्रियाः** ) परमेश्वर

के प्रिय ( **घृष्वयः** ) मानसिक संघर्ष में संलग्न ( **गावः** ) स्तोताजन ( **मदाय** ) आनन्द-प्राप्ति के लिए ( **सम् उ अनूषत** ) भलीभांति परमेश्वर की स्तुति करते हैं। उसकी स्तुति से प्राप्त ( **इन्दवः** ) दीप्त या सराबोर करने वाले ( **सोमासः** ) ब्रह्मानन्द-रस ( **पवमानासः** ) स्तोताओं को पवित्र करते हुए, उनके सम्मुख ( **पथः** ) कर्त्तव्य-मार्गों को ( **कृण्वते** ) स्पष्ट कर देते हैं।

( **द्वितीयः** ) गुरुओं के पक्ष में। ( **प्रियाः** ) प्रिय, मधुर, ( **घृष्वयः** ) घर्षण अर्थात् पुनः पुनः अभ्यास से उज्ज्वल ( **गावः** ) शिष्यों की वाणियां ( **मदाय** ) आनन्द-प्राप्ति के लिए ( **सम् उ अनूषत** ) गुरुओं की सम्यक् स्तुति करती हैं। वे ( **इन्दवः** ) ज्ञान से दीप्त ( **सोमासः** ) ज्ञानप्रेरक गुरुजन ( **पवमानासः** ) शिष्यों को पवित्र करते हुए, उनके सम्मुख ( **पथः** ) गन्तव्य मार्गों को ( **कृण्वते** ) स्पष्ट कर देते हैं॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ :—मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की और गुरुजनों की भली-भांति स्तुति करके आनन्द-रस तथा ज्ञान-रस को दुहकर उसके पान से स्वयं को पवित्र करके सन्मार्ग का अनुसरण करें॥२॥**

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य को कहा जा रहा है।

**८२०. य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्।**
**यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **पवमान** ) पवित्रकर्ता परमात्मन् वा आचार्य ( **यः** ) जो आपका ( **ओजिष्ठः** ) अतिशय ओजस्वी आनन्दरस वा ज्ञानरस है ( **तम्** ) उस ( **श्रवाय्यम्** ) यश के हेतु रस को ( **आ भर** ) प्रदान कीजिए, ( **यः** ) जो आनन्द-रस या ज्ञान-रस ( **पञ्च चर्षणीः** ) पांच ज्ञान की साधन इन्द्रियों को या पांच प्राणों को ( **अभि** ) अभिव्याप्त कर लेवे, और ( **येन** ) जिस आनन्द-रस वा ज्ञान-रस से, हम ( **रयिम्** ) भौतिक और आध्यात्मिक धन को ( **वनामहे** ) प्राप्त करें॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे परमात्मा अपने उपासक को ऐसा आनन्द प्रदान करता है जिससे वह दिव्य सम्पत्ति पा लेता है, वैसे ही

गुरुओं को चाहिए कि वे विद्यार्थियों को वैसा ज्ञान देवें जिससे धन कमाना सुलभ हो।।३।।

(१७)

ऋषिः—१-२ सिकतानिवावरी, ३ पृश्नयोऽजाः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५५९ पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ बहुत से सोमों का परिचय दिया जा रहा है।

८२१. **वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणा सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सोमः**) एक सोम (**विचक्षणः**) विद्वान् आचार्य है, जो (**मतीनाम्**) ज्ञानों का (**वृषा**) बरसाने वाला होता हुआ (**पवते**) शिष्यों को पवित्र करता है। द्वितीय सोम परमेश्वर है, जो (**अह्नाम्**) दिनों का, (**उषसाम्**) उषाओं का और (**दिवः**) सूर्य का (**प्रतरीता**) उत्तम रूप से तराने वाला अर्थात् व्यतीत कराने वाला है। तृतीय सोम चन्द्रमा है, जो (**सिन्धूनाम्**) समुद्रों का (**प्राणा**) बढ़ाने वाला होता है। चौथा सोम सोमौषधि का रस है, जो (**कलशान्**) द्रोणकलशों को (**अचिक्रदत्**) शब्दायमान करता है। पांचवां सोम ब्रह्मानन्द-रस है, जो (**मनीषिभिः**) मन से किये जाते हुए स्तोत्रों के साथ (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा के (**हार्दि**) हृदय में (**आ विशत्**) प्रविष्ट होता है।।१।।

**भावार्थ** :—वेदों में सामे शब्द के बहुत से वाच्यार्थ होते हैं, जो प्रकरणानुसार वेदज्ञ विद्वानों को समझ लेने चाहिएं।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मारूप सोम का वर्णन है।

८२२. **मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशाँ असिष्यदत्। त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **पूर्व्यः** ) श्रेष्ठ, ( **कविः** ) वेदकाव्य का कवि, क्रान्तद्रष्टा, मेधावी वह सोम परमेश्वर ( **पवते** ) हृदयों को पवित्र करता है। ( **मनीषिभिः** ) बुद्धिमान् ( **नृभिः** ) उपासक जनों से ( **यतः** ) ग्रहण किया हुआ, ध्यान किया गया वह ( **कोशान्** ) शरीरस्थ पंच कोशों में ( **परि असिष्यदत्** ) रस को प्रवाहित करता है। वह ( **त्रितस्य** ) ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों से युक्त उपासक के ( **नाम** ) यश को ( **जनयन्** ) उत्पन्न करता हुआ, ( **मधु** ) आनन्द को ( **क्षरन्** ) झराता हुआ। ( **इन्द्रस्य** ) जीवात्मा के ( **सख्याय** ) सहयोग के लिए, उसके ( **वायुम्** ) प्राण को ( **वर्धयन्** ) बढ़ाता रहता है॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर उपासक को अपना सखा बनाकर उसके लिए दिव्य आनन्द-रूप मधु टपकाता रहता है॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है।

**८२३. अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु**
**लोककृत्। अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो**
**हृदे पवते चारु मत्सरः॥३॥**

**पदार्थ** :—( **अयम्** ) इस ( **पुनानः** ) पवित्र करते हुए सोम ने, सर्वोत्पादक परमात्मा ने ( **उषसः** ) उषाओं को ( **अरोचयत्** ) चमकाया है। ( **अयम्** ) यह सोम, सर्वप्रेरक परमात्मा ( **सिन्धुभ्यः** ) नदियों के लिए ( **लोककृत्** ) यश करने वाला ( **अभवत् उ** ) हुआ है। ( **अयम्** ) यह ( **सोमः** ) रसागार परमात्मा ( **त्रिः सप्त** ) इक्कीस छन्दों से युक्त वेदवाणी रूप गौओं से ( **आशिरम्** ) ज्ञानरूप दुग्ध ( **दुदुहानः** ) दुहता हुआ ( **हृदे** ) उपासक के हृदय के लिए ( **मत्सरः** ) आनन्दजनक होता हुआ ( **चारु** ) सुन्दर रूप में ( **पवते** ) प्रवाहित हो रहा है॥३॥

यहाँ एक सोमरूप कर्त्ता कारक से अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा ही सारे सृष्टि के कार्य का संचालन करता है, उसी ने हमें वेद-रूपिणी गाय दी है, वही स्तोता के हृदय में रस का संचार करता है॥३॥

( १८ )

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा। देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन है।

**८२४. एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।**
**एवा ते राध्यं मनः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मेरे अन्तरात्मा तू ( **एव हि** ) सचमुच ( **वीरयुः** ) वीरों का प्रेमी ( **असि** ) है, ( **एव** ) सचमुच, तू ( **शूरः** ) शूर ( **उत** ) और ( **स्थिरः** ) विपत्तियों तथा युद्धों में अविचल रहने वाला है। ( **एव** ) सचमुच ( **ते** ) तेरा ( **मनः** ) मन ( **राध्यम्** ) सिद्धि प्राप्त करने योग्य है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा यदि अपनी शक्ति को पहचान ले तो संसार में महान् कार्यों को कर सकता है॥१॥

इस प्रकार अपने आत्मा को उद्बोधन देकर अब परमात्मा को कहते हैं।

**८२५. एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः।**
**अधा चिदिन्द्र नः सचा॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **तुविमघ** ) बहुत धनी परमेश! ( **एव** ) सचमुच, तेरा ( **रातिः** ) दान ( **विश्वेभिः** ) सब ( **धातृभिः** ) धारकों के द्वारा ( **धायि** ) धारण किया हुआ है। ( **अध चित्** ) इसके अतिरिक्त, हे ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्यवान् विपत्तिविदारक परमात्मन्! तू ( **नः** ) हमारा ( **सचा** ) नित्य का साथी है॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर यदि हमारा सखा हो जाता है तो हमारे लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता॥२॥

अगले मन्त्र में फिर अन्तरात्मा को उद्बोधन है।

**८२६. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते।**
**मत्स्वा सुतस्य गोमतः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**वाजानां पते**) बलों के अधिपति मेरे अन्तरात्मन्! (**ब्रह्मा इव**) यज्ञ के ब्रह्मा के समान उच्च पद पर विद्यमान तू (**मा उ सु**) कभी मत (**तन्द्रयुः**) आलसी (**भुवः**) हो। और (**गोमतः सुतस्य**) गोदुग्धयुक्त सोमरस से अर्थात् ज्ञानकर्मयुक्त उपासना-रस से (**मत्स्व**) आनन्द लाभ करता रह॥३॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कभी प्रमाद न करें, प्रत्युत जागरूक होकर सब शुभकर्मों में उत्साह धारण करें॥३॥

## (१९)

**ऋषिः—जेता माधुच्छन्दसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा का पूर्वार्चिक में ३४३ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में भाष्य किया गया था। यहाँ जगदीश्वर और आचार्य का विषय वर्णित है।

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**८२७. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।**
३ १२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**विश्वाः**) सब (**गिरः**) वाणियां (**समुद्रव्यचसम्**) समुद्र या अन्तरिक्ष के समान विशाल अर्थात् उदारहृदय, (**रथीनाम्**) रथस्वामियों के मध्य (**रथीतमम्**) श्रेष्ठ रथस्वामी, (**वाजानाम्**) आत्मबलों और विद्याबलों के (**पतिम्**) अधीश्वर, (**सत्पतिम्**) श्रेष्ठ मनुष्यों वा श्रेष्ठ विद्यार्थियों के पालनकर्ता (**इन्द्रम्**) जगदीश्वर वा विद्वान् आचार्य को (**अवीवृधन्**) महिमा से बढ़ाती हैं॥१॥

'समुद्रव्यचसम् इन्द्रम्' में वाचकलुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर ब्रह्माण्डरूप रथ का श्रेष्ठ स्वामी है, वैसे ही आचार्य गुरुकुलरूप रथ का श्रेष्ठ कुलपति होता है॥१॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर वा आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २
**८२८. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।**
२ ३ १ ३२ ३ १ २३१२
**त्वामभि प्र नोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**शवसः पते**) बल के अधीश्वर (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान्, अविद्याविदारक जगदीश्वर वा आचार्य! (**वाजिनः**) बलवान् हम (**ते**) आपकी (**सख्ये**) मित्रता में रहते हुए (**मा भेम**) भयभीत न हों। (**जेतारम्**) सब विघ्नों पर विजय पाने वाले, (**अपराजितम्**) किसी भी बाधा से पराजित न होने वाले (**त्वाम्**) तुझ जगदीश्वर वा आचार्य को (**अभि**) लक्ष्य करके, हम (**प्र नोनुमः**) अतिशय बार-बार स्तुति करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मबल, आत्मबल, विद्याबल आदियों में बलिष्ठ, सब विपत्तियों पर विजय पाने वाले, किसी से भी पराजित न होने वाले जगदीश्वर और आचार्य यदि हमारे साथी हो जाते हैं तो निर्भय रहते हुए हम सम्पूर्ण उत्कर्ष को पा सकते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः जगदीश्वर और आचार्य का विषय वर्णित है।

**८२९. पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः।**
**यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यवान् अविद्याविदारक जगदीश्वर वा आचार्य के (**रातयः**) दान (**पूर्वीः**) श्रेष्ठ हैं। उस जगदीश्वर वा आचार्य की (**ऊतयः**) रक्षाएं (**न विदस्यन्ति**) कभी क्षीण नहीं होतीं, (**यदा**) जब वह (**स्तोतृभ्यः**) अपने सद्गुण व सत्कर्मों के प्रशंसकों को (**गोमतः**) प्रशस्त गाय, वाणी, विद्या, भूमि, इन्द्रिय आदि से युक्त (**वाजस्य**) बल का (**मघम्**) धन (**मंहते**) प्रदान करता है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर के दान, रक्षण आदि सबको नित्य प्राप्त होते हैं, वैसे ही आचार्य के भी सदाचार-विद्या आदि के दान और अविद्या, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि से रक्षण निरन्तर प्रजाओं को प्राप्त करने चाहिएँ॥३॥

**इति तृतीयोऽध्यायः, द्वितीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ चतुर्थोऽध्यायः

## द्वितीयप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

(१)

ऋषिः—जमदग्निः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा में उपासक का व्यवहार वर्णित है।

३१ २ ३ १ २ ३२ ३ १२ ३ १ २
८३०. एत असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः।
१ २ ३ १ २र
विश्वान्यभि सौभगा॥१॥

**पदार्थ** :—(**एते**) ये (**तिरः**) तिरछी गति से (**आशवः**) शीघ्र आगे बढ़ने वाले (**इन्दवः**) तेजस्वी उपासक लोग (**पवित्रम्**) पवित्र व्यवहार को (**असृग्रम्**) उत्पन्न करते हैं। इसीलिए (**विश्वानि**) सब (**सौभगा**) सौभाग्यों को (**अभि**) प्राप्त कर लेते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की उपासना से अपने हृदय को पवित्र करके समाज में सब के प्रति पवित्र व्यवहार यदि किया जाए तो निश्चय ही सब सौभाग्य प्राप्त हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

३ १ २ ३ २ ३२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
८३१. विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः।
१ २ ३ २ ३ १ २
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः॥२॥

**पदार्थ** :—(**वाजिनः**) आत्मबल से युक्त ये सोम अर्थात् सौम्यगुणी उपासक (**पुरु**) बहुत से (**दुरिता**) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (**विघ्नन्तः**) विनष्ट करते हुए, (**तोकाय**) सन्तान के लिए (**सुगा**) आसानी से प्राप्त होने योग्य भद्रों को रचते हुए और (**त्मना**) स्वयं को (**अर्वतः**) घोड़ों के समान प्रगतिशील (**कृण्वन्तः**) करते हुए (**सुष्टुतिम्**) उत्तम प्रशस्ति को (**अभ्यर्षन्ति**) प्राप्त करते हैं। [अभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्—यह वाक्य अगले मन्त्र से यहाँ लाया गया है]॥२॥

**भावार्थ** :—हृदय से की गयी उपासना का यह अनिवार्य

फल होता है कि उपासक के दुरित नष्ट हों, भद्र की प्राप्ति हो और वह आगे बढ़े॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**८३२. कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम्।**
**इडामस्मभ्यं संयतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—ये सोम अर्थात् तेजस्वी उपासक लोग (**गवे**) अपने जीवात्मा और इन्द्रिय समूह के लिए (**वरिवः**) ऐश्वर्य को, और (**अस्मभ्यम्**) हम सखाओं के लिए (**संयतम्**) संयमयुक्त (**इडाम्**) भद्र वाणी को (**कृण्वन्तः**) प्रयुक्त करते हुए (**सुष्टुतिम्**) उत्तम प्रशस्ति को (**अभ्यर्षन्ति**) प्राप्त करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—उपासक के आत्मा, मन, बुद्धि, वाणी, प्राण, इन्द्रिय आदि सब दिव्य ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं और वह अन्यों के प्रति मधुर तथा भद्र वाणी का ही प्रयोग करता हुआ सुप्रशस्ति प्राप्त करता है॥३॥

(२)

**ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा परमेश्वर राज, योगी व चन्द्रमा के विषय में है।

**८३३. राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि।**
**अन्तरिक्षेण यातवे॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमेश्वर के पक्ष में। (**राजा**) विश्वब्रह्माण्ड का सम्राट्, (**पवमानः**) पवित्रतादायक सोम परमेश्वर (**मनौ अधि**) मननशील उपासक के अन्तःकरण में (**मेधाभिः**) धारणावती बुद्धियों के साथ (**ईयते**) पहुँचता है। वही मंगल, बुध, बृहस्पति, पृथिवी, चन्द्र आदि ग्रहोपग्रहों को तथा पक्षी आदियों को (**अन्तरिक्षेण**) आकाश मार्ग से (**यातवे**) गति करने के लिए समर्थ करता है।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में (**राजा**) राष्ट्र का सम्राट् (**पवमानः**) राष्ट्रवासियों के आचरण में पवित्रता उत्पन्न करता हुआ (**मनौ**

अधि ) विद्वान् प्रजावर्ग के मध्य में ( **मेधाभिः** ) शिल्पियों के बुद्धिकौशलों से ( **अन्तरिक्षेण यातवे** ) विमानों द्वारा आकाशमार्ग से यात्रा करने के लिए ( **ईयते** ) समर्थ होता है।

( **तृतीय** ) योगी के पक्ष में। ( **राजा** ) योगिराज ( **पवमानः** ) अपने अन्तःकरण व व्यवहार को पवित्र करता हुआ ( **अन्तरिक्षेण यातवे** ) अन्तरिक्ष से जाने के लिए अर्थात् आकाशगमन की सिद्धि प्राप्त करने के लिए ( **मेधाभिः** ) ध्यानों के द्वारा ( **मनौ अधि** ) मननशील अपनी अन्तरात्मा में तथा सर्वज्ञ परमात्मा में ( **ईयते** ) पहुँचता है, अर्थात् मन को अपने अन्तरात्मा में और परमात्मा में केन्द्रित करता है।

( **चतुर्थ** ) चन्द्रमा के पक्ष में। राजा देदीप्यमान चन्द्ररूप सोम ( **पवमानः** ) अपनी चांदनी से भूमण्डल को पवित्र करता हुआ ( **मनौ अधि** ) दीप्तिमान् सूर्य के अधिष्ठातृत्व में ( **मेधाभिः** ) आकर्षण द्वारा सूर्य के साथ संगम करके ( **अन्तरिक्षेण यातवे** ) आकाशमार्ग से भूमि और सूर्य की परिक्रमा करने के लिए ( **ईयते** ) **प्रवृत्त होता है॥१॥**

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे पक्षी और ग्रह-उपग्रह आकाश में भ्रमण करते हैं और मनुष्य विमानों के द्वारा आकाश में यात्रा करते हैं, वैसे ही योगसिद्धि से योगी लोग भी आकाश में भ्रमण कर सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**८३४. आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर।**
**सुष्वाणो देववीतये॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) रसागार परमात्मन्! ( **देववीतये** ) दिव्य गुणों की प्राप्ति कराने के लिए ( **सुष्वाणः** ) आनन्दरस को अभिषुत किये हुए आप ( **नः** ) हमारे लिए ( **सहः** ) आत्मबल और ( **जुवः** ) वेगों को ( **आभर** ) लाओ, प्रदान करो, ( **वर्चसे** ) कान्ति के लिए ( **रूपं न** ) जैसे रूप प्रदान करते हो॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जब परमात्मा से प्राप्त आनन्द रस की तरंगें

उपासक की हृदयभूमि को आप्लावित करती हैं तब उसके अन्दर सब सद्गुण स्वयं मानो 'मैं पहले' 'मैं पहले' की होड़ लगाते हुए प्रकट हो जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**८३५. आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम्।**
**वहा भगत्तिमूतये॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) तेजस्विन् धनाधीश परमात्मन्! (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**नः**) हमें (**शतग्विनम्**) सैकड़ों लोगों के पास जाने वाले (**गवां पोषम्**) गायों या वाणियों के पोषण को, (**स्वश्व्यम्**) उत्कृष्ट घोड़ों व प्राणबलों के समूह को, और (**भगत्तिम्**) ऐश्वर्यों को दान को (**आ वह**) प्राप्त कराओ॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना से पुरुषार्थ के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सब भौतिक और आध्यात्मिक वैभव पाया जा सकता है॥३॥

(३)

**ऋषिः—कविर्भार्गवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की कामना की गयी है।

**८३६. तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः।**
**चारुं सुकृत्ययेमहे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन्! (**महः दिवः**) महान् आकाश के (**सधस्थेषु**) सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र आदि लोकों में, अथवा (**महः दिवः**) महान् प्रकाशमय जीवात्मा के (**लोकेषु**) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि लोकों में (**नृम्णानि**) धन और बल (**बिभ्रतम्**) स्थापित करने वाले, (**चारुम्**) रमणीय (**तं त्वा**) उस सुप्रसिद्ध तुझ को हम (**सुकृत्यया**) पुण्य कर्म से (**ईमहे**) प्राप्त करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—भूगोल, खगोल और शरीर में सर्वत्र धन और बल को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर शुभ कर्मों से ही पाया जा सकता है, अशुभों से नहीं॥१॥

अथ परमात्मानं राजानं च विशिनष्टि।

१ २ ३क २र ३ १ २ ३ १ २
**८३७. संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम्।**
३ १ ३र ३ १ २
**शतं पुरो रुरुक्षणिम्॥२॥**

**पदार्थ :–( संवृक्तधृष्णुम् )** काम, क्रोध आदि आन्तरिक अथवा बाह्य धर्षणशील शत्रुओं को नष्ट करने वाले, **( उक्थ्यम् )** प्रशंसायोग्य, **( महामहिव्रतम् )** अतिशय पूजनीय कर्मों वाले, **( मदम् )** आनन्दजनक, **( शतं पुरः )** सौ शत्रु-नगरियों को **( रुरुक्षणिम् )** तोड़-फोड़ देने के लिए कृतसंकल्प पवमान सोम को अर्थात् पवित्रकर्ता जगदीश्वर वा राजा को, हम **( ईमहे )** प्राप्त करते हैं। [यहां 'ईमहे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है]॥२॥

**भावार्थ :–**जैसे जगदीश्वर आन्तरिक रिपुओं को नष्ट करता, प्रशंसनीय कर्म करता और अपने उपासकों को आनन्दित करता है, वैसे ही राजा सब विघ्नकारी शत्रुओं को उच्छिन्न करके राज्य की उन्नति वाले कर्म करके प्रजाओं को आनन्दित करे ॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और चन्द्रमा का विषय वर्णित है।

१ २ ३ २३क २र ३ १ २ ३ २
**८३८. अतस्त्वा रयिरभ्ययद्राजानं सुक्रतो दिवः।**
३ १ २ ३ १ २
**सुपर्णो अव्यथी भरत्॥३॥**

**पदार्थ :–( प्रथम )** परमात्मा के पक्ष में। हे **( सुक्रतो )** शुभ कर्म करने वाले मनुष्य! **( राजानं त्वा )** यश से जगमगाने वाले तुझे **( दिवः )** देदीप्यमान अतः इस पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्त्ता जगदुत्पादक परमेश्वर से ही **( रयिः )** ऐश्वर्य **( अभ्ययत् )** प्राप्त हुआ है, जिस ऐश्वर्य को **( सुपर्णः )** शुभ पालनकर्त्ता, **( अव्यथी )** किसी प्रकार की व्यथा से रहित उस परमेश्वर ने तेरे लिए **( भरत् )** दिया है।

**( द्वितीय )** चन्द्रमा के पक्ष में। हे पवमान सोम अर्थात् गति करने वाले चन्द्रमा! **( राजानं त्वा )** दीप्तिमान् तुझे **( अतः दिवः )** इस सूर्यलोक से ही **( रयिः )** प्रकाशरूप धन **( अभ्ययत् )** मिलता है, जिसे **( सुपर्णः )** सुन्दर किरणों वाला **( अव्यथी )** अविचल स्थिर सूर्य **( भरत् )** तेरे अन्दर लाता है ॥३॥

यहां श्लेषालंकार है ॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे मनुष्य जगदीश्वर से सब प्रकार का धन प्राप्त करता है, वैसे ही चन्द्रमा सूर्य से दीप्ति पाता है ॥३॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**८३९. अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे।**
३ १ २
**अभिष्टिकृद्विचर्षणिः॥४॥**

**पदार्थ** :—( **अध** ) और यह बात भी है कि वह पवमान सोम अर्थात् पवित्रता देने वाला जगत्स्रष्टा परमात्मा ( **इन्द्रियम्** ) आंख आदि इन्द्रिय को अथवा आत्मबल को ( **हिन्वानः** ) प्रेरित करता हुआ ( **ज्यायः** ) अत्यन्त प्रशस्त ( **महित्वम्** ) महत्त्व को ( **आनशे** ) प्राप्त करता है। वही ( **अभिष्टिकृत्** ) अभीष्ट प्रदाता और ( **विचर्षणिः** ) विशेषरूप से सब का साक्षात् द्रष्टा है ॥४॥

**भावार्थ** :—जो मन, आंख, कान आदि में मनन करने, देखने, सुनने आदि के सामर्थ्य को तथा आत्मा में बल को निहित करता है उस कामना पूर्ण करने वाले, विश्वद्रष्टा परमात्मा का महत्त्व सब को जानना चाहिए ॥४॥

अगले मन्त्र में भी परमात्मा का ही विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**८४०. विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे साधारणं रजस्तुरम्।**
३ २ ३ २ ३ १ २
**गोपामृतस्य विर्भरत्॥५॥**

**पदार्थ** :—( **विश्वस्मै इत्** ) सभी के लिए ( **स्वः दृशे** ) सुखदर्शनार्थ ( **साधारणम्** ) जो साधारण है, अर्थात् किये कर्मों के अनुसार जो सभी सत्पात्र जनों को बिना पक्षपात के सुख दर्शाता है, ( **रजस्तुरम्** ) जो रजोगुण के द्वारा क्रिया करवाता है, ( **ऋतस्य** ) सत्य का ( **गोपाम्** ) जो रक्षक है, ऐसे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने हारे जगत्स्रष्टा परमात्मा को ( **विः** ) गतिशील जीवात्मा ( **भरत्** ) अपने अन्तःकरण में धारण करे ॥५॥

**भावार्थ** :—परमात्मा सत्य का ही रक्षक है, असत्य का नहीं। उसके न्याय में विश्वास करके सब को सत्कर्म ही करने चाहिएं॥५॥

(४)

**ऋषि:—कश्यप:॥ देवता—पवमान: सोम:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥**

प्रथम ऋचा का भाष्य पूर्वार्चिक में क्रमांक ५०५ पर परमात्मा के विषय में किया गया था। यहां गुरु-शिष्य का विषय दर्शाया जा रहा है।

**८४१. इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभि:।**
**इन्दो रुचाभि गा इहि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) तेजस्वी, विद्या के खजाने आचार्य! (**मनीषिभि:**) चिन्तनशील शिष्यों के द्वारा (**मृज्यमान:**) नमस्कारों से अलंकृत किये जाते हुए आप (**इषे**) इच्छासिद्धि के लिए (**धारया**) विद्या की धारा से (**पवस्व**) शिष्यों को पवित्र कीजिए। आप (**रुचा**) दीप्ति के साथ (**गा: अभि**) स्तोता शिष्यों के प्रति (**इहि**) जाइए ॥१॥

**भावार्थ :—शिष्य समर्पणभाव से गुरुओं के प्रति जाएं और गुरु निश्छल मन से शिष्यों के पास पहुँचकर सब विद्याएं** प्रदान करें॥१॥

अगले मन्त्र में पुन: वही विषय है।

**८४२. पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वण:।**
**हरे सृजान आशिरम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**गिर्वण:**) वेदादि वाङ्मय के लिए सेवनीय! (**हरे**) दोष, दुर्व्यसन, दु:ख आदि को हरने वाले आचार्य! (**पुनान:**) आचरण को पवित्र करते हुए तथा (**आशिरम्**) परिपक्व ज्ञान को (**सृजान:**) उत्पन्न करते हुए आप (**जनाय**) शिष्यजनों के लिए (**वरिव:**) धन और (**ऊर्जम्**) शारीरिक बल तथा प्राणवत्ता (**कृधि**) प्रदान कीजिए ॥२॥

**भावार्थ** :—शास्त्र पढ़ाना, चरित्र को पवित्र करना, दोषों को हरना, व्यायाम, प्राणायाम आदि द्वारा बल और प्राण प्रदान करना, अर्थकारी विद्या सिखाना गुरुओं का कर्त्तव्य है ॥२॥

अगले मन्त्र में विद्यार्थी को सम्बोधन किया गया है।

८४३. पुनानो देववीतय इन्द्रस्य याहि निष्कृतम्।
द्युतानो वाजिभिर्हितः॥३॥

**पदार्थ** :—हे विद्यार्थी! तू (**देववीतये**) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, न्याय, दया, उदारता आदि दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (**पुनानः**) स्वयं को पवित्र करता हुआ (**इन्द्रस्य**) कुलपति आचार्य के (**निष्कृतम्**) घर अर्थात् गुरुकुल को (**याहि**) जा। और वहां (**हितः**) प्रविष्ट किया गया तू (**वाजिभिः**) विज्ञानी गुरुओं के द्वारा (**द्युतानः**) विद्या के तेज से और सच्चरित्रता के तेज से चमकने वाला बन॥३॥

**भावार्थ** :—विद्यार्थी गुरुकुल में ब्रह्मचर्यपूर्वक विधि के अनुसार वेदादि शास्त्रों को पढ़कर, सदाचार की शिक्षा लेकर, योगाभ्यास से आध्यात्मिक उन्नति करके, विद्वान् होकर, समावर्तन के बाद बाहर जाकर पढ़ी हुई विद्या का सब जगह प्रचार करें॥३॥

(५)

**ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय और यज्ञ का विषय वर्णित है।

८४४. अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवाड् जुह्वास्यः॥१॥

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**अग्निना**) नेता जीवात्मा द्वारा (**अग्निः**) नेता परमात्मा (**समिध्यते**) हृदय में प्रदीप्त किया जाता है, जो परमात्मा (**कविः**) दूरदर्शी, बुद्धिमान् (**गृहपतिः**) घरों का रक्षक, (**युवा**) सदा युवक, अर्थात् युवक के समान अपार सामर्थ्य वाला, (**हव्यवाट्**) आत्मसमर्पण को स्वीकार करने वाला अथवा दातव्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, और (**जुह्वास्यः**) वेदवाणी रूप मुख वाला है।

(**द्वितीय**) यज्ञाग्नि के पक्ष में। (**अग्निना**) आहिताग्नि यजमान द्वारा उत्पन्न आग से (**अग्निः**) आहवनीय अग्नि

(**समिध्यते**) प्रदीप्त किया जाता है, जो आहवनीय अग्नि (**कविः**) गतिमय ज्वालाओं वाला, (**गृहपतिः**) घरों का रक्षक, (**युवा**) होमे हुए द्रव्य को जलाकर सूक्ष्म करके स्थानान्तर में पहुंचाने वाला, और (**जुह्वास्यः**) घृत से भरी हुई स्रुवा जिसके ज्वालारूप मुख में पड़ती है ऐसा है॥१॥

इस मन्त्र में श्लेपालंकार है। प्रथम अर्थ में 'जुह्वास्यः' में रूपक है ॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे आत्माग्नि परमात्माग्नि को प्रदीप्त करके उसके तेज द्वारा पहले से भी अधिक दीप्त होकर उत्कर्ष धारण करता है, वैसे ही मनुष्य यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करके उसमें होम के द्वारा वायुशुद्धि करके, आरोग्य प्राप्त कर, अग्नि के समान तेजस्वी होकर स्वयं को उन्नत करता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और यज्ञ का विषय वर्णित करते हैं।

८४५. **यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति।**
**तस्य स्म प्राविता भव॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**देव**) स्वतः प्रकाशमान, सब के प्रकाशक, दानादि गुणों से युक्त, सर्वान्तर्यामी (**अग्ने**) अग्रनायक जगदीश्वर! (**यः**) जो (**हविष्पतिः**) हवियों का स्वामी अर्थात् अपनी हवि देकर तेरी उपासना करने वाला मनुष्य (**दूतम्**) दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदि को दग्ध करने वाले (**त्वा**) तुझ परमात्मा की (**सपर्यति**) उपासना करता है (**तस्य**) उस उपासक का, तू (**प्राविता**) प्रकृष्ट रक्षक (**भव स्म**) हो जा।

(**द्वितीय**) यज्ञ के पक्ष में। हे (**देव**) प्रकाशमान, प्रकाशक गतिमय ज्वालाओं वाले यज्ञाग्नि! (**यः**) जो (**हविष्पतिः**) होम के योग्य सुगन्धित, मधुर, पुष्टिप्रद तथा आरोग्यप्रद द्रव्यों का स्वामी याज्ञिक जन (**दूतम्**) रोग, आलस्य आदियों को दग्ध करने वाले (**त्वा**) तेरी (**सपर्यति**) यज्ञानुष्ठान द्वारा सेवा करता है (**तस्य**) उस याज्ञिक मनुष्य का, तू (**प्राविता**) प्रकृष्ट रक्षक (**भव स्म**) हो जा॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे उपासना किया गया परमेश्वर उपासक के दुर्गुण आदि को दग्ध करके उसे सन्मार्ग पर चलाकर उसकी रक्षा करता है, वैसे ही आरोग्य आदि करने वाले द्रव्यों से होम किया गया यज्ञाग्नि यजमान को आरोग्य आदि प्राप्त कराकर उसका बहुत उपकार करता है॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**८४६. यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति।**
**तस्मै पावक मृडय॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**यः**) जो (**हविष्मान्**) आत्मसमर्पण वाला उपासक (**देववीतये**) दिव्य गुण-कर्मों की प्राप्ति के लिए (**अग्निम्**) सब सुख प्राप्त कराने वाले तुझ परमात्मा को (**आ विवासति**) पूजता है, (**तस्मै**) उस उपासक को, हे (**पावक**) पवित्रतादायक परमात्मन्! आप (**मृडय**) सुखी कीजिए।

(**द्वितीय**) यज्ञ के पक्ष में। (**यः**) जो (**हविष्मान्**) उत्तम होम के द्रव्यों से युक्त याज्ञिक मनुष्य (**देववीतये**) तेज की प्राप्ति के लिए अथवा दिव्य सुख के सम्पादनार्थ (**अग्निम्**) तुझ यज्ञाग्नि का (**आ विवासति**) होम से सत्कार करता है (**तस्मै**) उसे, हे (**पावक**) वायुशुद्धि तथा हृदयशुद्धि करने वाले यज्ञाग्नि! तू (**मृडय**) आरोग्य आदि प्राप्त कराने के द्वारा सुखी कर, अर्थात् यज्ञाग्नि सुखी करे॥३॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे श्रद्धा के साथ आत्मसमर्पणपूर्वक उपासना किया गया परमेश्वर दिव्य गुण-कर्मों को प्रेरित करता है, वैसे ही उत्तमोत्तम हव्य-द्रव्यों से होम किया हुआ यज्ञाग्नि आरोग्य प्रदान से तथा हृदय में तेज, शूरता आदि गुणों की प्रदीप्ति से सुखी करता है॥३॥

(६)

**ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में ब्रह्म-क्षत्र का आह्वान किया गया है।

८४७. मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता॥१॥

**पदार्थ :**—मैं ( **पूतदक्षम्** ) पवित्र बल को देने वाले ( **मित्रम्** ) सबके मित्र ब्राह्मण को, और ( **रिशादसम्** ) हिंसक शत्रुओं को नष्ट करने वाले ( **वरुणं च** ) शत्रुनिवारक क्षत्रिय को ( **हुवे** ) पुकारता हूँ। वे दोनों ( **घृताचीम्** ) राष्ट्र को तेज प्राप्त कराने वाली ( **धियम्** ) ज्ञानशृंखला एवं कर्मशृंखला को ( **साधन्तौ** ) सिद्ध करने वाले होते हैं॥१॥

**भावार्थ :**—राष्ट्र में ब्राह्मण पवित्र ज्ञान-विज्ञान के बल को बढ़ाते हैं और क्षत्रिय शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करते हैं, इसलिए उन्नति चाहने वालों को दोनों का सदा सत्कार और पोषण करना चाहिए॥१॥

**अगले मन्त्र में पुनः ब्रह्म-क्षत्र का विषय वर्णित है।**

८४८. ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे॥२॥

**पदार्थ :**—हे ( **ऋतस्पृशा** ) सत्य ज्ञान और सत्य कर्म को प्राप्त करने वाले, ( **ऋतावृधा** ) सत्य ज्ञान और सत्य कर्म को बढ़ाने वाले ( **मित्रावरुणौ** ) ब्राह्मण-क्षत्रियो! तुम दोनों ( **ऋतेन** ) सत्य ज्ञान और सत्य कर्म से ( **बृहन्तम्** ) विशाल ( **क्रतुम्** ) राष्ट्रयज्ञ को ( **आशाथे** ) व्याप्त करते हो॥२॥

**भावार्थ :**—ब्राह्मण और क्षत्रिय लोग सत्य ज्ञान और सत्य कर्म को स्वयं ग्रहण करके तथा अन्यों को उसकी शिक्षा देकर राष्ट्र की उन्नति रूप यज्ञ को करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः ब्रह्म-क्षत्र का ही विषय है।

८४९. कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया।
दक्षं दधाते अपसम्॥३॥

**पदार्थ :**—( **कवी** ) क्रान्तद्रष्टा, बुद्धिमान्, ( **तुविजाता** ) बहुत

प्रसिद्ध, (**उरुक्षया**) विशाल निवास को देने वाले (**मित्रावरुणा**) ब्राह्मण-क्षत्रिय (**नः**) हमारे (**दक्षम्**) बल को, तथा (**अपसम्**) कर्म को (**दधाते**) पुष्ट करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—राष्ट्रवासियों का बल, कर्म और सुरक्षित निवास ब्रह्म-क्षत्र के समन्वय से ही भलीभांति सिद्ध होता है॥३॥

(७)

**ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता—मरुत इन्द्रश्च॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा और प्राण का विषय है।

**८५०. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा।**
**मन्दू समानवर्चसा॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मरुतों के गण अर्थात् प्राण-गण! तू (**अबिभ्युषा**) निर्भय (**इन्द्रेण**) जीवात्मा के साथ (**संजग्मानः**) संगत होता हुआ (**संदृक्षसे**) दिखायी देता है। तुम दोनों अर्थात् प्राण-गण और जीवात्मा (**मन्दू**) आनन्द देने वाले, तथा (**समानवर्चसा**) तुल्य तेज वाले हो॥१॥

**भावार्थ** :—शरीर में जीवात्मा और प्राण दोनों का समान महत्त्व है। प्राण के विना जीवात्मा और जीवात्मा के विना प्राण कुछ नहीं कर सकता॥१॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा के पुनर्जन्म का विषय है।

**८५१. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।**
**दधाना नाम यज्ञियम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**आत् अह**) देहत्याग के अनन्तर सूक्ष्म शरीर में समाविष्ट ये प्राण पूर्वजन्मकृत कर्मों के संस्कारों के अनुसार (**स्वधाम् अनु**) भोग को लक्ष्य करके, जीवात्मासहित (**यज्ञियम्**) देहयज्ञ के संचालन-योग्य (**नाम**) कर्म को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**पुनः**) पूर्वजन्म के समान फिर भी (**गर्भत्वम्**) माता के गर्भ में स्थिति को (**एरिरे**) प्राप्त करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच सूक्ष्मभूत, मन

और बुद्धि यह सत्रह लिंगों वाला सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के साथ मृत्यु के बाद भी रहता है। पूर्वजन्म के कर्मों के संस्कारानुसार फल भोगने के लिए सूक्ष्म शरीर के साथ जीवात्मा पुनर्जन्म ग्रहण करने के लिए माता के गर्भ में प्रवेश करता है।।२।।

अगले मन्त्र में योगमार्ग में प्राणायाम का महत्त्व कहा गया है।

**८५२. वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः।**
**अविन्द उस्त्रिया अनु॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जीवात्मन्! तू (**वीडु चित्**) दृढ़ भी व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि विघ्नों को (**आरुजद्भिः**) चारों ओर से तोड़ते हुए (**वह्निभिः**) वाहक प्राणों के सहयोग से (**गुहा चित्**) गुफा में भी विद्यमान अर्थात् विघ्नों से निगूढ़ हुई भी (**उस्त्रियाः**) परमात्मा के पास से आती हुई तेज की किरणों को (**अनु अविन्दः**) एक-एक करके प्राप्त कर लेता है।।३।।

**भावार्थ :—जैसे सूर्य किरणों को बादल ढक लेता है, वैसे ही** परमात्मारूप सूर्य के पास से आती हुई तेज की किरणों को योगमार्ग में उपस्थित विघ्न ढक लेते हैं। प्राणायाम की सहायता से वे विघ्न परास्त किये जा सकते हैं।।३।।

**(८)**

**ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा का विषय है।

**८५३. ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम्।**
**इन्द्राग्नी न मर्धतः॥१॥**

**पदार्थ** :—मैं (**ता**) उन इन्द्र और अग्नि अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा को (**हुवे**) बुलाता हूँ, (**ययोः**) जिनका (**इदम्**) यह समाने दिखाई देने वाला (**पुरा**) पहले का (**कृतम्**) किया हुआ (**विश्वम्**) समस्त कार्य (**पप्ने**) सब के द्वारा स्तुति पाता है। (**इन्द्राग्नी**) उपासना किया हुआ परमात्मा और उद्बोधन दिया

हुआ जीवात्मा दोनों (न मर्धतः) कभी हानि नहीं पहुंचाते, प्रत्युत सदा लाभकारी होते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा ने जो ब्रह्माण्ड रचा है और जीवात्मा देह धारण करके जिन महान् कार्यों को अपने बुद्धिकौशल से करता है, उनसे उन दोनों का महान् गौरव प्रकट होता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और जीवात्मा का ही विषय वर्णित है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**८५४. उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे।**
१ २ ३ १ २
**ता नो मृडात ईदृशे॥२॥**

**पदार्थ** :—(**मृधः**) हिंसक काम, क्रोध आदि शत्रुओं के (**विघनिना**) विनाशक, (**उग्रा**) उग्र बल वाले (**इन्द्राग्नी**) परमात्मा और जीवात्मा को, हम (**हवामहे**) पुकारते हैं। (**ता**) वे दोनों (**ईदृशे**) ऐसे विकट देवासुरसंग्राम के उपस्थित होने पर (**नः**) हमें (**मृडातः**) सुखी करें॥२॥

**भावार्थ** :—सबको चाहिए कि परमात्मा की उपासना करके और जीवात्मा को उद्बोधन देकर सब विघ्नों तथा सब शत्रुओं को पराजित करें॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

३ २ ३ १ २र ३ १ २र
**८५५. हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती।**
३ २उ ३ २ ३ १ २
**हथो विश्वा अप द्विषः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सत्पती**) श्रेष्ठों के पालनकर्त्ता परमात्मा और जीवात्मा! (**आर्या**) श्रेष्ठ तुम दोनों (**वृत्राणि**) पापों को (**हथः**) विनष्ट करते हो, (**दासानि**) क्षय करने वाले काम, क्रोध आदि को (**हथः**) विनष्ट करते हो, और (**विश्वाः**) सब (**द्विषः**) द्वेष-वृत्तियों को (**अप हथः**) मार भगाते हो॥३॥

यहाँ 'हथो' की तीन बार आवृत्ति में लाटानुप्रास है। पुनः पुनः 'हथः' कहने से यह द्योतित होता है कि इसी प्रकार अन्य भी दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदि को तुम विनष्ट करते हो॥३॥

**भावार्थ** :—हमें चाहिए कि परमात्मा और जीवात्मा की

सहायता से पाप आदियों को नष्ट करके द्वेषवृत्तियों को समाप्त करके आपस में सौहार्द से बर्तें॥३॥

( ९ )

ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती ); ३ द्विपदाविराट्॥ स्वरः—१ मध्यमः; २-३ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५१८ पर आनन्दरस का पान किये हुए मनुष्यों के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ ज्ञानी गुरुओं का विषय कहा जाता है।

**८५६. अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम्।**
**समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **आयवः** ) क्रियाशील, ( **मनीषिणः** ) मननशील, ( **मत्सरासः** ) उत्साह का संचार करने वाले, ( **मदच्युतः** ) हर्ष की वर्षा करने वाले ( **सोमासः** ) विद्यारस से परिपूर्ण गुरुजन ( **समुद्रस्य** ) ज्ञानसागर के ( **विष्टपे अधि** ) लोक में अर्थात् गुरुकुल में ( **मद्यम्** ) आनन्दजनक ( **मदम्** ) तृप्तिप्रद ज्ञानरस को ( **अभि पवन्ते** ) शिष्यों के प्रति प्रवाहित करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—विद्यार्थी जन सुयोग्य गुरुओं के पास से अमृतवर्षी ज्ञानरस को पाकर, स्नातक होकर अन्यों को वह तृप्तिप्रद ज्ञान-रस पिलाया करें॥१॥

अगले मन्त्र में स्नातक का वर्णन है।

**८५७. तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत्।**
**अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋतं बृहत्॥२॥**

**पदार्थ** :—शिष्य ( **राजा** ) तेज से दीप्त तथा ( **देवः** ) विद्वान् होता हुआ ( **बृहत् ऋतम्** ) महान् सत्यज्ञान, सत्य आचरण और

सत्य ब्रह्मानन्द को (**ऊर्मिणा**) तरंगरूप में (**पवमानः**) अपने आत्मा में प्रवाहित करता हुआ (**समुद्रम्**) ब्रह्मचर्याश्रमरूप समुद्र को (**तरत्**) तैर जाता है, अर्थात् स्नातक बन जाता है। आगे प्रत्यक्षरूप से वर्णन है—हे विद्वान् स्नातक! तू (**मित्रस्य**) मैत्री के निर्वाह तथा (**वरुणस्य**) शिष्य रूप में तुझे वरने वाले आचार्य के (**धर्मणा**) उपदिष्ट धर्म के अनुसार, जनसमाज में (**बृहत्**) महान् सत्यज्ञान, सत्य आचरण और सत्य ब्रह्मानन्द को (**हिन्वानः**) प्रेरित करता हुआ (**अर्ष**) गति कर, व्यवहार कर॥२॥

अथर्ववेद में स्नातक का वर्णन इस रूप में किया गया है—"ब्रह्मचारी देदीप्यमान ज्ञान को अपने अन्दर धारण करता है। उसके अन्दर सब दिव्य गुण समाविष्ट हो जाते हैं। हे ब्रह्मचारी, तू प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, हृदय, ब्रह्म, मेधा इन सबकी शक्ति को अपने अन्दर उत्पन्न करता हुआ हमें भी चक्षु, श्रोत्र, यश, अन्न, रेतस्, रक्त एवं पाचनशक्ति प्रदान कर। इन सब शक्तियों को ब्रह्मचारी ज्ञानसलिल के पृष्ठ ब्रह्मचर्याश्रमरूप समुद्र में तप करता हुआ प्राप्त करता है। वह जब स्नातक बनता है। तब अन्यों का धारक-पोषक और पीतवेषधारी होकर पृथिवी पर बहुत चमकता है। (अथ० ११।५।२४-२६)॥

**भावार्थ** :—स्नातकों को चाहिए कि गुरुओं से अध्ययन किये हुए सब लौकिक और आध्यात्मिक ज्ञान को समाज में फैलाएं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**८५८. नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्र्यः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**नृभिः**) नेता गुरुजनों से (**येमाणः**) नियन्त्रण में रखा जाता हुआ, (**हर्यतः**) प्रिय, (**राजा**) तेज से देदीप्यमान, (**समुद्र्य**) ब्रह्मचर्याश्रमरूप समुद्र में निवास करता हुआ ब्रह्मचारी (**देवः**) दिव्य गुणों से युक्त, और (**विचक्षणः**) विद्वान् हो जाता है॥३॥

**भावार्थ** :—गुरुकुल में गुरुजनों के सान्निध्य में निवास करता हुआ ब्रह्मचारी विद्वान् और सदाचारी होकर स्नातक बनता है॥३॥

( १० )

ऋषिः—पराशरः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५२५ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा और आचार्य के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ महाकवि के कर्म का वर्णन किया जाता है।

**८५९. तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्। गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **वह्निः** ) काव्य का वाहक महाकवि ( **तिस्रः** ) गद्य, पद्य एवं उभयात्मक अथवा अभिधात्मक, लक्षणात्मक एवं व्यंजनात्मक, ( **वाचः** ) वाणियों को ( **प्र ईरयति** ) प्रयुक्त करता है। वह अपने काव्य में ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **धीतिम्** ) धारण को, और ( **ब्रह्मणः** ) परमात्मा की ( **मनीषाम्** ) स्तुति को भी प्रयुक्त करता है। ( **गावः** ) वाणियां ( **गोपतिम्** ) उस वागीश्वर महाकवि के विषय में ( **पृच्छमानाः** ) पूछती हुई ( **यन्ति** ) जा रही हैं—कहां है वह महाकवि जो अपने काव्य में प्रयुक्त करके हमें कृतार्थ करेगा, मानो यह पूछती हैं। ( **मतयः** ) स्तुतियां भी, मानो ( **सोमम्** ) उसी रससिद्ध कवि को ( **वावशानाः** ) चाहती हुई, खोजती हुई, ( **यन्ति** ) जा रही हैं।।१।।

यहां उत्तरार्ध में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—कोई विरले ही रससिद्ध कवि अभिधा, लक्षणा, व्यंजना वाली गद्य, पद्य, उभय रूप वाणी को प्रयुक्त करते हुए सात्त्विक, शान्तरसमय ब्रह्मस्तोत्रों को रचकर अपनी वाणी को कृतकृत्य करते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में परमकवि परमात्मा का वर्णन है।

**८६०. सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः। सोमः सुत ऋच्यते पूयमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते॥२॥**

**पदार्थ** :—(**धेनवः**) तृप्ति प्रदान करने वाली (**गावः**) गौएं या वाणियां (**सोमम्**) परमकवि परमात्मा की (**वावशानाः**) कामना करती हुई (**यन्ति**) जा रही हैं। (**विप्राः**) ज्ञानी लोग (**मतिभिः**) स्तोत्रों से (**सोमम्**) परमकवि परमात्मा को ही (**पृच्छमानाः**) पूछते हुए, जा रहे हैं। (**सुतः**) ध्यान किया हुआ (**सोमः**) परमात्मा (**पूयमानः**) हृदय में प्रेरित होता हुआ (**ऋच्यते**) सहृदयों से स्तुति पाता है। (**सोमे**) उस परमात्मा में (**त्रिष्टुभः**) त्रिष्टुप् छन्द वाले अथवा तीन-तीन पादों से थमे हुए गायत्री छन्द वाले (**अर्काः**) मन्त्र (**सं नवन्ते**) संगत हुए-हुए हैं, अर्थात् उसी का प्रतिपादन कर रहे हैं।।२।।

इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध में असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति अलंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—जगत् में सब प्राणी और सब अचेतन पदार्थ अपने-अपने कर्म में लगे हुए मानो अपने रचयिता परमात्मा को ही खोज रहे हैं।।२।।

अगले मन्त्र में परमकवि परमात्मा के काव्यरस का वर्णन है।

**८६१. एवा नः सोम परिषिच्यमान आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति। इन्द्रमा विश बृहता मदेन वर्धया वाचं जनया पुरन्धिम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) परमकवि परमात्मा के काव्य में उत्पन्न काव्यानन्दरस! (**एव**) सचमुच (**परिषिच्यमानः**) चारों ओर सींचा जाता हुआ (**पूयमानः**) हमारे प्रति प्रेरित होता हुआ, तू (**नः**) हमारे लिए (**स्वस्ति**) कल्याण को (**आ पवस्व**) ला। (**बृहता**) महान् (**मदेन**) तृप्ति के साथ (**इन्द्रम्**) जीवात्मा में (**आ विश**) प्रवेश कर, (**वाचम्**) स्तुतिवाणी को (**वर्धय**) बढ़ा, और स्तोता को (**पुरन्धिम्**) बहुत बुद्धिमान् वा बहुत कर्मवान् (**जनय**) कर।।३।।

यहां अनेक क्रियाओं का एक कर्त्ता कारक से योग होने के कारण दीपक अलंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—हृदय में सींचा जाता हुआ, महाकवि परमात्मा का काव्यानन्दरस सहृदय के हृदय को चमत्कृत करके उसे प्रभुगीतों

का गायक, बहुत मेधावी, बहुत कर्मनिष्ठ, उत्साहवान्, सरस और दयालु बना देता है॥३॥

( ११ )

**ऋषिः—पुरुहन्मा॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २७८ क्रमांक पर परमेश्वर के महत्त्व विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

**८६२. यद् द्याव इन्द्र ते शतंशतं भूमीरुत स्युः।**
**न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **( इन्द्र )** शूरवीर जीवात्मन्! **( यत् )** यदि **( ते )** तेरे सम्मुख **( द्यावः )** द्युलोक **( शतम् )** संख्या में सौ, **( उत )** और **( भूमीः )** भूमियां भी **( शतम् )** संख्या में सौ **( स्युः )** हो जाएं, और **( सूर्याः )** सूर्य **( सहस्रम् )** हजार हो जाएं, तो भी हे **( वज्रिन् )** वज्रधारी के समान शत्रुओं का प्रतिरोध करने में समर्थ जीवात्मन्! वे **( त्वा )** तेरी **( न अनु )** महिमा को नहीं पा सकते, **( न )** न ही **( रोदसी )** धरती-आसमान के बीच **( जातम् )** उत्पन्न कोई भी वस्तु **( अष्ट )** तेरी महिमा को पा सकती है। [अन्यत्र जीवात्मा स्वयं अपनी महिमा उद्घोषित करता हुआ कहता है—"मैं इन्द्र हूँ, मैं कभी धन को हार नहीं सकता। मैं कभी मरता नहीं"॥१॥ (ऋ० १०।४८।५)]

यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जो जीवात्मा अजर, अमर और चेतन है उसकी महिमा को सौ, हजार, लाख, करोड़ गुणा भी होकर ये जड़ सूर्य, पृथिवी आदि प्राप्त नहीं कर सकते॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा दोनों का विषय वर्णित करते हैं।

८६३. आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा। अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः॥२॥

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हे ( **वृषन्** ) सुखों की वर्षा करने वाले, ( **शविष्ठ** ) सबसे अधिक बली जगदीश्वर! आपने ( **महिना** ) महिमा से और ( **शवसा** ) बल से ( **विश्वा** ) सब ( **वृष्ण्या** ) बलों को अर्थात् आत्मबल, विद्युद्बल, वायुबल, सूर्यबल आदि को ( **आ पप्राथ** ) फैलाया है। हे ( **मघवन्** ) ऐश्वर्यशालिन्! हे ( **वज्रिन्** ) वज्रधर के समान दण्डसामर्थ्ययुक्त! आप ( **गोमति व्रजे** ) सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि लोकलोकान्तरों से युक्त इस ब्रह्माण्ड में ( **चित्राभिः** ) अद्भुत ( **ऊतिभिः** ) रक्षाओं से ( **अस्मान्** ) हम उपासकों की ( **अव** ) रक्षा कीजिए।

( **द्वितीय** ) जीवात्मा के पक्ष में। हे ( **वृषन्** ) शरीरस्थ मन, बुद्धि आदि में **सब से अधिक बली मेरे आत्मा!** तू ( **महिना** ) महिमा से और ( **शवसा** ) बल से ( **विश्वा** ) सब ( **वृष्ण्या** ) प्राण, मन, बुद्धि आदि के बलों को ( **आ पप्राथ** ) फैलाता है। हे ( **मघवन्** ) सद्गुणों के ऐश्वर्य से युक्त! हे ( **वज्रिन्** ) वाणीरूप वज्र वाले! तू ( **गोमति व्रजे** ) इन्द्रियरूप गौओं से युक्त शरीररूप गोशाला में ( **चित्राभिः** ) अद्भुत ( **ऊतिभिः** ) रक्षाओं से ( **अस्मान्** ) हमारा ( **अव** ) पालन कर ॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है 'वृष् वृष' और 'शवि, शव' में छेकानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे ब्रह्माण्ड में सब बलवान् पदार्थों में परमेश्वर से उत्पन्न किया हुआ बल है, वैसे ही शरीररूप पिण्ड में प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि में जीवात्मा से दिया हुआ सामर्थ्य है, और जीवात्मा भी परमेश्वर से ही वैसा सामर्थ्य प्राप्त करता है॥२॥

( १२ )

**ऋषिः–मेध्यातिथिः काण्वः॥ देवता:–इन्द्रः॥ छन्दः–बृहती॥ स्वरः–मध्यमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २६१ क्रमांक पर परमेश्वरोपासना विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ आचार्य का विषय वर्णित है।

८६४. वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः। पवित्रस्य
प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते॥१॥

**पदार्थ** :—पुत्रों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने के लिए उनके साथ आए हुए पितृजन आचार्य को कह रहे हैं– हे आचार्यप्रवर! (**वृक्तबर्हिषः**) जिन्होंने अन्तरिक्ष को छोड़ दिया है ऐसे (**आपः न**) बादल के जलों के समान (**वृक्तबर्हिषः**) घरों को छोड़कर आये हुए, (**सुतवन्तः**) पुत्रों सहित (**वयम्**) हम लोग (**त्वा घ**) आपको ही प्राप्त हुए हैं। हे (**वृत्रहन्**) दोषों को मारने वाले श्रेष्ठ आचार्य! (**स्तोतारः**) समित्पाणि होकर आपके पास आये हुए, आपके गुणों का गान करने वाले शिष्यजन (**पवित्रस्य**) विशुद्ध ज्ञान और विशुद्ध आचरण के (**प्रस्रवणेषु**) प्रवाहों में (**परि आसते**) तैरा करते हैं। अतः हमारे पुत्रों का भी उपनयन संस्कार करके इन्हें विद्वान् बनाइये, यह भाव है।।१।।

यहां श्लिष्टोपमालंकार है कारणरूप उत्तरार्ध वाक्य से कार्यरूप पूर्वार्ध वाक्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास भी है।।१।।

**भावार्थ** :—सब माता-पिताओं को चाहिए कि अपने बालकों वा बालिकाओं को आचार्य वा आचार्या के पास सौंपकर उन्हें विद्वान् और विदुषियां बनायें।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य को पुकारा गया है।

८६५. स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव
वंसगः॥२॥

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**वसो**) उपासकों के धनरूप तथा उनमें सद्गुणों का निवास कराने वाले परमात्मन्! (**उक्थिनः**) स्तोता (**नरः**) मनुष्य (**सुते**) श्रद्धारस के (**निरेके**) उमड़ने पर (**त्वा**) आपको (**स्वरन्ति**) पुकार रहे हैं। हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन्! (**कदा**) कब (**सुतम्**) अभिषुत श्रद्धारस के (**तृषाणः**) प्यासे आप (**ओकः**) हृदय-सदन में (**आगमः**) आओगे, (**इव**) जैसे (**वंसगः**) सेवनीय गति वाला, (**स्वब्द**)

उत्कृष्ट वृष्टि जलों का दाता सूर्य (**तृषाणः**) जल का प्यासा होता हुआ, किरणों द्वारा (**ओकः**) भूमिष्ठ समुद्ररूप घर पर आता है।

(**द्वितीय**) आचार्य के पक्ष में। गुरुकुल से बाहर गये हुए तथा आने में देर करते हुए आचार्य को शिष्यगण उत्सुकता से बुला रहे हैं– हे (**वसो**) शिष्यों में विद्या आदि का निवास कराने वाले आचार्य! (**उक्थिनः**) वेदपाठी (**नरः**) ब्रह्मचारी लोग (**सुते**) विद्याध्ययन-सत्र के (**निरेके**) आ जाने पर (**त्वा**) आपको (**स्वरन्ति**) बुला रहे हैं। हे (**इन्द्र**) अविद्या एवं दुर्गुण आदि को विदीर्ण करने वाले आचार्यवर! (**कदा**) कब (**तृषाणः**) शिष्यों की कामना करने वाले आप (**ओकः**) गुरुकुलरूप घर में (**आगमः**) आओगे, (**इव**) जैसे (**वंसगः**) संभजनीय गति वाला (**स्वब्दी**) जल की वर्षा करने वाला सूर्य [जल बरसाने के लिए] (**ओकः**) अन्तरिक्ष रूप घर में आता है॥२॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ :–जैसे जल का प्यासा सूर्य किरणों से समुद्र के पास पहुंचता है, वैसे ही भक्तिरस का प्यासा परमेश्वर** उपासकों के हृदय में जाता है। और जैसे सूर्य अन्तरिक्ष में स्थित जल को भूमि पर बरसाता है, वैसे ही आचार्य विद्यारस को छात्रों पर बरसाता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**८६६. कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्त्रिणम्।**
**पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे।३॥**

**पदार्थ :**–हे (**धृष्णो**) अविद्या, दोष आदि को दूर करने के स्वभाव वाले परमात्मन् वा आचार्य! (**कण्वेभिः**) मेधावी विद्वानों के द्वारा (**धृषन्**) अविद्या, दीनता आदि को दूर करते हुए आप (**सहस्त्रिणम्**) संख्या में हजार (**वाजम्**) विद्या आदि धन को (**आ दर्षि**) प्रदान करते हो। हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यशालिन् (**विचर्षणे**) सर्वद्रष्टा परमात्मन् वा शास्त्रद्रष्टा आचार्य! (**पिशङ्गरूपम्**) पीले रंग वाले वा तेजस्वी रूप वाले, (**गोमन्तम्**) उत्तम वाणी, गाय, भूमि आदि से युक्त (**वाजम्**) सुवर्णरूप वा

ब्रह्मचर्यरूप धन को, हम (मक्षु) शीघ्र ही (ईमहे) आपसे चाहते हैं॥३॥

**भावार्थ :**—परमात्मा और गुरु सुयोग्य उपासकों और शिष्यों को सब सोना, मणि, मोती, गाय आदि तथा विद्या, ब्रह्मचर्य, सदाचार आदि विशाल ऐश्वर्य प्राप्त कराते हैं॥३॥

**(१३)**

**ऋषि:—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३८ क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ धनदाता की प्रशंसा है।

**८६७. तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।**
**आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्॥१॥**

**पदार्थ :—(तरणिः इत्)** आपत्ति में पड़े हुओं को दुःखों से तराने की इच्छावाला मनुष्य ही **(युजा)** सहायक भूत, **(पुरन्ध्या)** बहुतों का धारण करने वाली सहानुभूतिपूर्ण बुद्धि से **(वाजम्)** धन **(सिषासति)** दूसरों को देना चाहता है। इसलिए मैं **(पुरुहूतम्)** बहुतों से पुकारे जाने वाले **(वः)** तुम्हारे **(इन्द्रम्)** धनिक वर्ग को **(गिरा)** वाणी से, उपदेश के द्वारा **(आनमे)** झुकाता हूँ, अर्थात् गरीबों को धन देने के लिए प्रवृत्त करता हूं, **(तष्टा इव)** जैसे शिल्पी **(नेमिम्)** रथ के पहिए की परिधि को **(सुद्रुवम्)** सुचारु रूप से घूमने योग्य बनाता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ :**—मनुष्यों को चाहिए कि ईश्वरोपासना के साथ धनादि के दान द्वारा दीनों की सहायता भी करें॥१॥

अगले मन्त्र में फिर धनदाताओं की प्रशंसा है।

**८६८. न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।**
**सुशक्तिरिन् मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि॥२॥**

**पदार्थ** :—(**द्रविणोदेषु**) धन का दान करने वालों की (**दुष्टुतिः**) निन्दा (**न शस्यते**) नहीं कही जाती। (**स्रेधन्तम्**) धन, अन्न, वस्त्र आदि के दान द्वारा दीनों की सहायता न करके उन्हें चोट पहुंचाने वाले को (**रयिः**) धन (**न नशत्**) प्राप्त नहीं होता। हे (**मघवन्**) धनिक जन! (**पार्ये दिवि**) पार करने योग्य जीवन-व्यवहार में (**मावते**) मुझ जैसे जन के लिए (**यत्**) जो (**देष्णम्**) दातव्य धन है, उसे पाने के लिए मैं (**तुभ्यम्**) आपके सम्मुख (**सुशक्तिः इत्**) सुपुरुषार्थी होता हुआ ही, आता हूँ। अन्यथा पौरुषहीन मनुष्य की धनादि के दान से सदा सहायता कौन करता रहेगा?॥२॥

**भावार्थ** :—दानवीरों का सर्वत्र कीर्तिगान होता है। निर्धनों को भी अपने पुरुषार्थ से धन कमाना चाहिए। सदा मांगते रहने से मनुष्य का स्वाभिमान नष्ट होता है॥२॥

## (१४)

**ऋषिः—त्रितः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४७१ क्रमांक पर ब्रह्मानन्द-रस के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ गुरुकुल का दृश्य वर्णित है।

**८६९. तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।**
**हरिरेति कनिक्रदत्॥१॥**

**पदार्थ** :—विद्यार्थी लोग (**तिस्रः वाचः**) ऋग्, यजुः, साम रूप तीन वेदवाणियों को (**उदीरते**) उच्चारण कर रहे हैं। (**धेनवः**) दूध, मक्खन आदि से तृप्ति देने वाली (**गावः**) गाएं (**मिमन्ति**) रंभा रही हैं। (**हरिः**) दोषों को हरने वाले आचार्य (**कनिक्रदत्**) शास्त्रों का उपदेश करते हुए (**एति**) संचार कर रहे हैं॥१॥

इस मन्त्र में स्वभावोक्ति अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—सस्वर वेदपाठ, वेदार्थों के व्याख्यान, यज्ञार्थ घी देने के लिए तथा गोदुग्ध, दही, मक्खन आदि प्रदान करने के लिए गायें और गुरुओं का उपदेश। यह गुरुकुलों का दृश्य

अत्यन्त मनोहर होता है॥१॥

अगले मन्त्र में वेदवाणी का और चन्द्रमा का विषय वर्णित है।

**८७०. अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः।**
**मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम्॥२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) वेदवाणी के पक्ष में। (**यह्वीः**) महत्त्वशालिनी, (**ऋतस्य मातरः**) सत्यज्ञान का निर्माण करने वाली, (**दिवः शिशुम्**) तेजस्वी परमात्मा के पुत्र मानव को (**मर्जयन्तीः**) शुद्ध-पवित्र करती हुई (**ब्रह्मीः**) ब्रह्मा से प्रोक्त वेदवाणियां (**अभि अनूषत**) गुण-वर्णन द्वारा सब पदार्थों की स्तुति करती हैं।

(**द्वितीय**) चन्द्र के पक्ष में। (**यह्वीः**) महान् (**तस्य मातरः**) वृष्टि-जल का निर्माण करने वाली, (**मर्जयन्तीः**) अपने प्रकाश द्वारा सब का शोधन करने वाली या सब को अलंकृत करने वाली (**ब्रह्मीः**) महान् सूर्य की कान्तियां (**दिवः शिशुम्**) आकाश के शिशु के समान विद्यमान चन्द्रमा को (**अभि**) लक्ष्य करके अर्थात् उसे प्रकाशित करने के लिए (**अनूषत**) जाती हैं॥२॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है। द्वितीय व्याख्या में चन्द्रमा को 'आकाश का शिशु' कहने में लुप्तोपमा है॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे माताएं शिशु को प्राप्त होती हैं वैसे ही वेदवाणियां गुणवर्णन द्वारा सब पदार्थों को प्राप्त होती हैं और सूर्यकिरणें चन्द्रमा को प्रकाशित करने के लिए प्राप्त होती हैं॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**८७१. रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।**
**आ पवस्व सहस्त्रिणः॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) विद्या आदि की हमारे अन्दर प्रेरणा करने वाले, पवित्रकर्त्ता परमात्मन् वा आचार्य आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**विश्वतः**) सब ओर से (**रायः**) ऐश्वर्य के (**सहस्रिणः**) सहस्र फल प्रदान करने वाले (**चतुरः**) चार

(समुद्रान्) समुद्रों को अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को (आ पवस्व) प्रवाहित कर दीजिए।।३।।

यहाँ धर्म, अर्थ काम मोक्ष को धन के समुद्र कहने से उनका समुद्र के समान अगाध तथा परोपकारी होना द्योतित होता है।।३।।

**भावार्थ** :—दयानिधि ईश्वर की और गुरु की कृपा से अध्ययन-अध्यापन, यम-नियम, प्राणायाम, ब्रह्मचर्य, जप, उपासना आदि कर्म से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की शीघ्र ही सिद्धि हमें प्राप्त होवे।।३।।

(१५)

**ऋषिः—ययातिर्नाहुषः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५४७ क्रमांक पर परमानन्द-रस के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ ज्ञानरस का विषय वर्णित है।

**८७२. सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।**
**पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**मधुमत्तमाः**) अतिशय मधुर, (**मन्दिनः**) आनन्दजनक (**सोमाः**) ज्ञान-रस (**इन्द्राय**) शिष्य के जीवात्मा के लिए (**सुतासः**) आचार्य द्वारा अभिषुत किये गये हैं। (**पवित्रवन्तः**) पवित्र मन से सम्बद्ध वे (**अक्षरन्**) आत्मा में क्षरित हो रहे हैं। हे शिष्यो! (**वः मदाः**) तुम्हें आनन्दित करने वाले वे ज्ञान-रस (**देवान्**) दिव्य गुणों वाले दूसरे लोगों को भी (**गच्छन्तु**) प्राप्त हों।।१।।

**भावार्थ** :—सुयोग्य गुरुओं से मधुर पद्धति द्वारा पढ़ाये गये शिष्य ज्ञानी स्नातक होकर, बाहर जाकर अन्य जनों को भी विद्यादान करें।।१।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द और ज्ञान दोनों का विषय वर्णित है।

**८७३. इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।**
**वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः॥२॥**

**पदार्थ** :–( **इन्दुः** ) ज्ञानरस वा ब्रह्मानन्द-रस ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा के लिए ( **पवते** ) क्षरित होता है ( **इति** ) यह ( **देवाः** ) विद्वान् लोग ( **अब्रुवन्** ) कहते हैं। ( **वाचः पतिः** ) वाणी का स्वामी परमेश्वर वा आचार्य ( **मखस्यते** ) आनन्द-प्रदान-यज्ञ वा अध्यापन-यज्ञ करता है, जो ( **विश्वस्य ओजसः** ) सब ब्रह्मबल वा ज्ञानबल का ( **ईशानः** ) अधीश्वर है। अतः उसके पास से सब को ब्रह्मबल और ज्ञानबल प्राप्त करना योग्य है, यह आशय है।।२।।

**भावार्थ** :–आत्मा ही ज्ञान का ग्रहण करने वाला और सुख को भोगने वाला है, यह विद्वानों का अनुभव है। परमेश्वर के पास से ब्रह्मानन्द को और आचार्य पास से ज्ञान को जो ग्रहण करते हैं उनका जीवन सफल होता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य का विषय है।

**८७४. सहस्त्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।**
**सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे॥३॥**

**पदार्थ** :–( **समुद्रः** ) आनन्द वा ज्ञान का समुद्र, ( **वाचमीङ्खयः** ) वाणी को प्रेरित करने वाला, ( **रयीणां पतिः** ) श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव रूप धनों का स्वामी, ( **इन्द्रस्य सखा** ) जीवात्मा का सखा ( **सोमः** ) परमात्मा वा आचार्य ( **दिवे दिवे** ) प्रतिदिन ( **सहस्रधारः** ) हजारों धाराओं से उमड़ता हुआ ( **पवते** ) उपासकों वा शिष्यों के प्रति आनन्दरस वा ज्ञानरस को प्रवाहित करता है।।३।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर श्रेष्ठ उपासकों को प्राप्त होकर उनके प्रति मधुर आनन्दरस को और आचार्य श्रेष्ठ शिष्यों को प्राप्त होकर उनके प्रति मधुर ज्ञानरस को प्रवाहित करता है।।३।।

( १६ )

**ऋषिः–पवित्रः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–जगती॥ स्वरः–निषादः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५६५ क्रमांक पर परमात्मा के पवित्र करने वाले गुण के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ

परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित है।

**८७५. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**ब्रह्मणः पते**) ब्रह्माण्ड के अधिपति परमात्मन् अथवा ज्ञान के अधिपति आचार्य! (**ते**) आपका (**पवित्रम्**) पवित्र आनन्दतत्त्व या ज्ञानतत्त्व (**विततम्**) आप में फैला हुआ है। (**प्रभुः**) आनन्द के देने वा ज्ञान के देने में समर्थ आप (**विश्वतः**) सब ओर से (**गात्राणि**) शरीरों अर्थात् शरीरधारियों को उसे देने के लिए (**पर्येषि**) प्राप्त होते हो। किन्तु (**अतप्ततनूः**) जिसने शरीर को तपाया नहीं है, अर्थात् जिसने तपस्या नहीं की है ऐसा (**आमः**) कच्चा मनुष्य (**तत्**) उस आनन्दतत्त्व या ज्ञानतत्त्व को (**न अश्नुते**) **नहीं प्राप्त करता है।** (**शृतासः इत्**) **पके हुए लोग ही** (**वहन्तः**) **उद्योगी होते हुए** (**तत्**) उस आनन्दतत्त्व **या ज्ञानतत्त्व को** (**सम् आशत**) भली-भांति **प्राप्त** करने में समर्थ **होते** हैं॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास से आनन्दरस को और आचार्य के पास से ज्ञानरस को तपस्वी मनुष्य ही प्राप्त करने योग्य होते हैं, विलासी लोग नहीं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से रचे गए सूर्य के कर्मों का वर्णन है।

**८७६. तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्। अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठ-मधि रोहन्ति तेजसा॥२॥**

**पदार्थ** :—(**तपोः**) तेजस्वी सोम परमात्मा की कृति (**पवित्रम्**) पवित्रता का साधन सूर्य (**दिवः पदे**) द्युलोक में (**विततम्**) फैला हुआ है। (**अस्य**) इस सूर्य की (**अर्चन्तः**) दीप्त होती हुई (**तन्तवः**) किरणें (**व्यस्थिरन्**) विविध स्थानों में स्थित होती हैं। (**अस्य**) इस सूर्य की (**आशवः**) शीघ्रगामी किरणें (**पवितारम्**)

शुद्धिकर्ता वायु की (**अवन्ति**) रक्षा करती हैं। इसी सूर्य के (**तेजसा**) ताप से, समुद्र के जल भाप बनकर (**दिवः पृष्ठम्**) आकाश के पृष्ठ पर (**अधि रोहन्ति**) चढ़ते हैं और मेघ के आकार को प्राप्त करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा ने ही तेजोमय सूर्य रचा है, जिसकी किरणें पदार्थों का शोधन, समुद्रजलों को भाप बनाना, भाप को ऊपर ले जाना, बादल बनाना इत्यादि विविध कार्य करती हैं॥२॥

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५९६ क्रमांक पर परमात्मारूप सोम के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ सोम का वर्णन सूर्यरूप में दर्शाते हैं।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**८७७. अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु**
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः**
३ २ ३ २ ३ १ २
**पितरो गर्भमा दधुः॥३॥**

**पदार्थ** :—यह (**अग्रियः**) आगे जाने वाला (**पृश्निः**) सूर्यरूप पवमान सोम (**उषसः**) उषाओं को (**अरूरुचत्**) चमकाता है। यह (**उक्षा**) वर्षाजल से सींचने वाला सूर्य (**भुवनेषु**) भूमण्डलों में (**वाजयुः**) दूसरों को अन्न देना चाहता हुआ (**मिमेति**) बादल के जल को नीचे फेंकता है। (**अस्य**) इस सूर्य के ही (**मायया**) कर्म से (**मायाविनः**) कर्मयुक्त होते हुए वायु, जल, बिजली आदि (**ममिरे**) पदार्थों का निर्माण करते हैं। और इस सूर्य के ही कर्म से (**नृचक्षसः**) मनुष्यों को प्रकाश देने वाली (**पितरः**) पालक किरणें (**गर्भम् आदधुः**) ओषधी आदियों में गर्भ स्थापित करती हैं॥३॥

**भावार्थ** :—सौरमण्डल में उषा का प्रादुर्भाव, जल की वर्षा, बिजली चमकना, वायु का चलना, बीजों का अंकुरित होना आदि जो कुछ भी कर्म है वह सब सूर्य के द्वारा ही किया जाता है। इस रूप में उसका महत्त्व जानकर उसका उपयोग शिल्प आदि में करना चाहिए। सूर्य में भी सब शक्ति परमात्मा की ही दी हुई है, इस कारण सूर्य का भी सूर्य परमात्मा है यह भी जानना चाहिए॥३॥

( १७ )

**ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः ( १ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ ऋषभः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १०७ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ आचार्य, राजा और यज्ञाग्नि का विषय वर्णित है।

**८७८. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।**
**उपस्तुतासो अग्नये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **उपस्तुतासः** ) प्रशंसित लोगो! तुम ( **मंहिष्ठाय** ) अतिशय दानी, ( **ऋताव्ने** ) सत्यपरायण, ( **बृहते** ) महान्, ( **शुक्रशोचिषे** ) दीप्त तेज वाले ( **अग्नये** ) अग्रनायक आचार्य, राजा वा यज्ञाग्नि के लिए ( **प्र गायत** ) प्रकृष्ट रूप से महिमागान करो।।१।।

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि धन, विद्या आदि के दाता, सत्यनिष्ठ, तेजस्वी महान् जन को ही आचार्यरूप में और राजारूप में चुनें, और उन्हें उचित है कि वे बहुत लाभ देने वाले, सत्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, प्रदीप्त ज्वाला वाले यज्ञाग्नि में मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम किया करें।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा, आचार्य, राजा और यज्ञाग्नि का विषय है।

**८७९. आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।**
**कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **मघवा** ) ऐश्वर्यवान्, ( **समिद्धः** ) तेजस्वी ( **द्युम्नी** ) यशस्वी, ( **आहुतः** ) आत्मसमर्पण से, राजकर आदि के प्रदान से एवं हवि-प्रदान से आहुति दिया हुआ परमेश्वर, आचार्य, राजा वा यज्ञाग्नि ( **वीरवद् यशः** ) वीरपुत्रों या वीरभावों से युक्त कीर्ति को ( **आ वंसते** ) उपासकों, शिष्यों, प्रजाजनों वा यजमानों को प्रदान करता है। ( **अस्य** ) इस परमेश्वर, आचार्य, राजा वा

यज्ञाग्नि की (**भवीयसी**) अतिशय होने योग्य (**सुमतिः**) अनुग्रहबुद्धि या अनुकूलता (**नः अच्छ**) हमारे प्रति (**वाजेभिः**) अन्नों, धनों, बलों, वा विज्ञानों के साथ (**कुवित्**) बहुत अधिक (**आगमत्**) आये॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की उपासना से, गुरु के प्रति श्रद्धा से, राजनियमों के पालन में और यज्ञाग्नि में हवि देने से यथायोग्य वीर सन्तान, वीरभाव, धन, अन्न, बल, आरोग्य, कीर्ति आदि की प्राप्ति करें॥२॥

(१८)

**ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ। देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ३८३ पर परमेश्वर के गुण-कर्मों के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ परमेश्वर, आचार्य और राजा का विषय वर्णित है।

**८८०. तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम्।**
**उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अद्रिवः**) किसी से विदारण न किये जा सकने वाले तथा स्वयं दोषों और शत्रुओं का विदारण करने वाले परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! (**ते**) आपके (**तम्**) उस प्रसिद्ध (**मदम्**) आनन्दप्रद ज्ञान वा बल की हम (**गृणीमसि**) स्तुति करते हैं, जो ज्ञान वा बल (**वृषणम्**) सुख आदि की वर्षा करने वाला, (**पृक्षु**) देवासुरसंग्रामों में (**सासहिम्**) अतिशय रूप से असुरों का पराभव करने वाला, (**उ**) और (**हरिश्रियम्**) मनोहर शोभा वाला है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के समान आचार्य और राजा का भी ज्ञान वा बल अत्यधिक विशाल, प्रजाओं और शिष्यों को सुख देने वाला, विपत्तियों का विदारण करने वाला, कीर्ति देने वाला और उज्ज्वल होवे॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर आचार्य और राजा को सम्बोधन है।

**८८१. येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ।**
**मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! (**येन**) जिस आनन्द, ज्ञान वा बल से, आप (**आयवे**) कर्मयोगी, पुरुषार्थी (**मनवे च**) और मननशील जन के लिए (**ज्योतींषि**) अन्तःप्रकाशों एवं बाह्य प्रकाशों को (**विवेदिथ**) प्राप्त कराते हो, उस आनन्द, ज्ञान वा बल से (**मन्दानः**) आनन्दित होते हुए आप (**अस्य बर्हिषः**) इस हृदयासन पर, कुशासन पर वा राजसिंहासन पर (**वि राजसि**) विशेष रूप से शोभित होते हो।।२।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर आचार्य और राजा से आनन्द, ज्ञान वा बल प्राप्त करके सब लोग सुखी, विज्ञानवान्, बलवान्, पुरुषार्थी और मननशील होते हुए जीवन में सफल हों।।२।।

**अगले मन्त्र में फिर उन्हीं परमेश्वर, आचार्य और राजा को सम्बोधन है।**

**८८२. तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा।**
**वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् परमात्मन् आचार्य वा राजन्! (**पूर्वथा**) पूर्वकाल के समान (**अद्य**) आज भी (**उक्थिनः**) स्तोताजन, शास्त्रों का अध्ययन करने वाले शिष्यजन वा प्रशंसक प्रजाजन (**ते**) आपके (**तत्**) उस आनन्द-ज्ञान बल-धन-प्रदान आदि के कर्म की (**अनु स्तुवन्ति**) अनुक्रम से स्तुति करते हैं। आप (**दिवे दिवे**) प्रतिदिन (**वृषपत्नीः**) वृष अर्थात् धर्म जिनका रक्षक है ऐसे (**अपः**) कर्मों का (**जय**) वश में कीजिए व हमें प्राप्त कराइये, जैसे सूर्यरूप इन्द्र (**वृषपत्नी**) बादल जिनका पति है, ऐसे (**अपः**) जलों को वश करता तथा बरसाता है।।३।।

इस मन्त्र में श्लिष्ट व्यङ्ग्योपमालङ्कार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर सबके हृदय में धर्म की प्रेरणा करता है, वैसे ही गुरुजनों को शिष्यों में और राजा को प्रजाजनों में धर्म की प्रेरणा सदा करनी चाहिए।।३।।

( १९ )

ऋषिः—तिरश्चीः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३४६ क्रमांक पर परमात्म-प्रार्थना के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ परमात्मा, आचार्य और राजा तीनों को सम्बोधन है।

**८८३. श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति।**
**सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( इन्द्र ) दोष दूर करने वाले परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! ( यः ) जो मनुष्य ( **त्वा** ) आपको ( **सपर्यति** ) पूजता वा सत्कृत करता है, उस ( **तिरश्च्याः** ) पुरुषार्थी की ( **हवम्** ) पुकार को ( **श्रुधि** ) सुनो। ( **सुवीर्यस्य** ) उत्कृष्ट बल से युक्त ( **गोमतः** ) प्रशस्त गाय, वाणी आदि से युक्त ( **रायः** ) विद्या, धन-धन्य आदि ऐश्वर्य की ( **पूर्धि** ) पूर्ति करो। आप ( **महान्** ) महान् ( **असि** ) हो॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर अपने पूजक पुरुषार्थी जनों को सब ऐश्वर्यों से पूर्ण करता है वैसे ही राजा प्रजाओं से पुरुषार्थ करवाकर उन्हें धन-धन्य आदि से पूर्ण करे और आचार्य पुरुषार्थी शिष्यों को अपरा विद्या, परा विद्या, आरोग्य, सदाचार आदि से परिपूर्ण करे॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा आचार्य और राजा को सम्बोधन है।

**८८४. यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत्।**
**चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( इन्द्र ) परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! ( यः ) जिस उपासक, शिष्य वा प्रजाजन ने ( ते ) आपके लिए ( **नवीयसीम्** ) अतिशय नवीन, ( **मन्द्राम्** ) आनन्दजनक ( **गिरम्** ) प्रार्थना की वाणी ( **अजीजनत्** ) उच्चारण की है, और ( **चिकित्विन्मनसम्** ) मन को जागरूक करने वाली, ( **प्रत्नाम्** ) श्रेष्ठ, ( **ऋतस्य पिप्युषीम्** ) सत्य को बढ़ाने वाली ( **धियम्** )

ध्यान-धारा वा बुद्धि को (अजीजनत्) तेरे प्रति प्रेरित किया है, उसके लिए (रायः) श्रेष्ठ गुण, श्रेष्ठ धन, श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ आचरण आदि ऐश्वर्य की (पूर्धि) पूर्ति कीजिए। (यहाँ 'रायः पूर्धि' यह वाक्य-पूर्ति के लिए पूर्व मन्त्र से यहाँ लाया गया है)।।२।।

**भावार्थ** :—जो निश्छल मन, समर्पण-भावना और हृदयस्पर्शी शब्दों से परमात्मा, आचार्य वा राजा से याचना करता है उसकी उत्तम गुण, उत्तम धर्म, उत्तम धन, उत्तम विद्या आदि की वृद्धि वे सदा करते हैं।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा, आचार्य और राजा का विषय है।

**८८५. तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थ्यानि वावृधुः।**
**पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे॥३॥**

**पदार्थ** :—(**तम् उ**) उसी (**इन्द्रम्**) परमात्मा, आचार्य वा राजा की, हम (**स्तवाम**) स्तुति करें, प्रशंसा करें, (**यम्**) जिसे (**गिरः**) वेदवाणियां और (**उक्थ्यानि**) स्तोत्र, स्वागत-वचन वा अभिनन्दन-वचन (**वावृधुः**) कीर्तिगान द्वारा बढ़ाते हैं। हम (**अस्य**) इस परमात्मा, आचार्य वा राजा के (**पुरूणि**) बहुत से (**पौंस्या**) बल, धन, विद्या, सद्गुण आदियों को (**सिषासन्तः**) अन्यों को देने की इच्छा वाले होकर (**वनामहे**) मांगते हैं।।३।।

**भावार्थ** :—परमात्मा, आचार्य वा राजा से जो धन, बल, विद्या आदि प्राप्त होता है उसे स्वयं अकेले ही उपभोग नहीं करना चाहिए, किन्तु अन्यों को भी देना चाहिए, क्योंकि किसी को केवल अपनी उन्नति से ही सन्तोष करना उचित नहीं है, प्रत्युत सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।।३।।

**इति चतुर्थोऽध्यायः, द्वितीयप्रपाठकश्च समाप्तः॥**

# अथ पञ्चमोऽध्यायः

## तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—अकृष्टा माषाः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर तथा उसके उपासक का विषय वर्णित है।

**८८६. प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्**
**पयसा धरीमणि। प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत**
**ये त्वा मृजन्त्यृषिषाण वेधसः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) पवित्रकर्ता परमात्मन्! (**ते**) आपकी (**आश्विनीः**) व्याप्त, (**दिव्याः**) आकाश में स्थित, (**धेनवः**) तृप्ति प्रदान करने वाली मेघरूप गौएं (**पयसा**) वर्षाजलरूप दूध से (**धरीमणि**) भूमि पर (**प्र असृग्रन्**) छूटकर आती हैं। वैसे ही, हे (**ऋषिषाण**) ऋषियों से सेवनीय परमेश! (**ये**) जो (**वेधसः**) स्तुतियों के विधाता आपके उपासक (**त्वा**) आपको (**मृजन्ति**) स्तुतियों से अलंकृत करते हैं (**ते**) वे (**अन्तरिक्षात्**) हृदयाकाश से (**स्थाविरीः**) समृद्ध भक्तिधाराओं को (**प्र असृक्षत**) आपके प्रति प्रकृष्ट रूप से छोड़ते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर वर्षा-धाराओं को हमारे प्रति छोड़ता है, वैसे ही उसके प्रति हमें भक्ति-धाराएं छोड़नी चाहिएं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा उससे रचित सूर्य का विषय है।

**८८७. उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति**
**केतवः। यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता**
**नि योनौ कलशेषु सीदति॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सूर्य के पक्ष में। (**ध्रुवस्य सतः**) आकाश में स्थिर रूप से विद्यमान (**पवमानस्य**) पवित्रकर्ता सूर्य की (**केतवः**) प्रकाशक (**रश्मयः**) किरणें (**उभयतः**) भूगोल के

दोनों गोलार्धों में ( परियन्ति ) पहुंचती हैं। ( यदि ) जब ( हरिः ) रसों को हरने वाला किरण-समूह ( पवित्रे अधि ) अन्तरिक्ष में ( मृज्यते ) भेजा जाता है, तब ( योनौ सत्ता ) अन्तरिक्ष में स्थित वह ( कलशेषु ) मंगल, बुध, चन्द्रमा आदि ग्रहोपग्रह-रूप कलशों में ( नि षीदति ) पहुंचता है, और पहुंचकर उन्हें प्रकाशित करता है।

( द्वितीय ) परमात्मा के पक्ष में। ( ध्रुवस्य सतः ) स्थिर, अजर, अमर, सनातन ( पवमानस्य ) पवित्रकर्ता परमात्मा की ( केतवः ) प्रज्ञापक ( रश्मयः ) दिव्य प्रकाश-किरणें ( उभयतः ) प्रातः सायं दोनों कालों में, सध्या-वन्दन के समय ( परि यन्ति ) उपासक को प्राप्त होती हैं। ( यदि ) जब ( हरिः ) दोषों का हर्ता परमात्मा ( पवित्रे अधि ) पवित्र हृदय के अन्दर ( मृज्यते ) भक्तिभावरूप अलंकारों से अलंकृत होता है, तब ( योनौ सत्ता ) हृदयरूप घर में स्थित वह ( कलशेषु ) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि कोशों में ( निषीदति ) स्थिति-लाभ करता है, और वहाँ स्थित होता हुआ आत्मा, मन, बुद्धि आदि सब को प्रभावित करता है।।२।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे सोमरस दशापवित्र नामक छन्नी के मार्ग से होता हुआ द्रोणकलशों में स्थित होता है, और जैसे सूर्य-रश्मि अन्तरिक्ष-मार्ग से ग्रहोपग्रहों में स्थित होती है, वैसे ही परमेश्वर हृदय-मार्ग से देहस्थ पंच कोशों में स्थित होता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर का वर्णन है।

**८८. विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः**
**परि यन्ति केतवः। व्यानशी पवसे सोम धर्मणा**
**पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजसि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( विश्वचक्षः ) विश्वद्रष्टा परमेश! ( ऋभ्वसः ) सूर्यकिरणों को ग्रहोपग्रहों में फेंकने वाले अथवा बुद्धिमान् उपासकों को अपनी शरण में लेने वाले ( प्रभोः सतः ) समर्थ होते हुए ( ते ) आपकी ( केतवः ) प्रज्ञाएं ( विश्वा धामानि ) सब लोकों में ( परि यन्ति ) पहुंचती हैं, अर्थात् सब लोकों में

आपका बुद्धिकौशल दिखायी देता है। हे (**सोम**) पवित्रकर्ता परमात्मन्! (**व्यानशी**) सर्वान्तर्यामी आप (**धर्मणा**) अपने धर्म अर्थात् गुण-कर्म-स्वभाव से (**पवसे**) सबको पवित्र करते हो। (**विश्वस्य**) सम्पूर्ण (**भूमनः**) ब्रह्माण्ड के (**पतिः**) अधीश्वर आप (**राजसि**) अत्यधिक शोभा पाते हो॥३॥

श्लेष से इस मन्त्र की सूर्य के पक्ष में भी योजना करनी चाहिए॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य की किरणें ग्रह-उपग्रह आदियों में दिखायी देती हैं, वैसे ही परमात्मा के बुद्धि-कौशल सर्वत्र दिखायी देते हैं। जैसे सूर्य सब को पवित्र करता है, वैसे ही परमेश्वर भी करता है। जैसे सूर्य सौरलोक का अधिपति है, वैसे ही परमेश्वर समस्त ब्रह्माण्ड का अधिपति है॥३॥

## (२)

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४८४ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ परमात्मा और आचार्य दोनों का विषय वर्णित है।

१ २ ३ २ ३ १ २र ३ २
**८८९. पवमानो अजीजनद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।**
१ २ ३ २ ३ २
**ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**पवमानः**) चरित्र को पवित्र करने वाले परमात्मा वा आचार्य ने (**दिवः**) आकाश की (**चित्रम्**) अद्भुत (**तन्यतुं न**) बिजली के समान (**वैश्वानरम्**) सबका नेतृत्व करने वाली (**बृहत्**) महान् (**ज्योतिः**) विज्ञान-ज्योति को अथवा ज्योतिष्मती प्रज्ञा को (**अजीजनत्**) उत्पन्न कर दिया है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा और योगप्रशिक्षक आचार्य की कृपा से मनुष्यों के अन्तःकरणों में तमोवृत्ति का विनाश और दिव्य ज्योति, विज्ञान-प्रकाश तथा ज्योतिष्मती प्रज्ञा का उदय होता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और आचार्य के विषय का कथन है।

**१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २**
**८९०. पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः।**
**२उ ३ १ २**
**वि वारमव्यमर्षति॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमानः**) जीवन को पवित्र करने वाले (**राजन्**) तेजस्वी परमात्मन् वा आचार्य! जो (**तव**) आपका (**अदुच्छुनः**) दुर्गति तथा दुःख न उत्पन्न करने वाला, (**मदः**) उत्साहकारी (**रसः**) आनन्दरस वा ज्ञानरस है, वह (**अव्यम्**) अविनश्वर, (**वारम्**) दोषनिवारक आत्मा को (**वि अर्षति**) विविध रूप में प्राप्त होता है॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर वा आचार्य से प्रसुत आनन्दरस वा विज्ञानरस को प्राप्त करके मनुष्य का आत्मा कृतार्थ हो जाता है॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं का विषय वर्णित है।

**१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २**
**८९१. पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान्।**
**२ ३ २ ३क २र ३ २**
**ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मन् वा आचार्य! (**पवमानस्य**) चित्त की शुद्धि करने वाले (**ते**) आपका (**द्युमान्**) दीप्तिमान् (**रसः**) आनन्दरस वा ज्ञानरस और (**दक्षः**) ब्रह्मबल (**वि राजति**) विशेष रूप से शोभित है। वह (**स्वःदृशे**) मोक्ष-सुख के दर्शनार्थ (**विश्वं ज्योतिः**) सम्पूर्ण अन्तर्दृष्टि को देता है॥३॥

**भावार्थ** :—आचार्य की सेवा और परमात्मा की उपासना करके लोकविद्या, ब्रह्मविद्या, परम आह्लाद, ब्रह्मवर्चस और दिव्य दृष्टि प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष पाने योग्य हो जाते हैं॥३॥

(३)

**ऋषिः—मेध्यातिथिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४९१ क्रमांक पर परमात्मा से उत्पन्न होने वाले आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ आचार्य से उत्पन्न होने वाले ज्ञान का विषय वर्णित है।

**८९२. प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः।**
**घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **यत्** ) जब ( **गावः न** ) गायों के समान ( **भूर्णयः** ) भरण-पोषण करने वाले, ( **त्वेषाः** ) उज्ज्वल, ( **अयासः** ) शिष्यों के प्रति जाने वाले ज्ञानरस ( **प्र अक्रमुः** ) प्रदान किये जाने आरम्भ होते हैं, तब वे ( **त्वचम्** ) ढकने वाली ( **कृष्णाम्** ) अविद्या-रात्रि को ( **घ्नन्तः** ) नष्ट कर देते हैं।।१।।

यहां उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जब शिष्य विविध लौकिक विद्याओं और ब्रह्मविद्याओं को प्राप्त कर लेते हैं, तब सारी अविद्यारूप निशाएं दूर हो जाती हैं।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित है।

**८९३. सुवितस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम्।**
**साह्याम दस्युमव्रतम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हम ( **सेतुम्** ) रुकावट को ( **अति** ) अतिक्रान्त अर्थात् पार करके ( **सुवितस्य** ) सुप्राप्त आनन्दरसागार परमात्मा के एवं विद्यारसागार आचार्य के ( **दुराय्यम्** ) दुष्प्राप्य आनन्दरस वा विद्यारस को ( **वनामहे** ) सेवन करते हैं। उससे हम ( **अव्रतम्** ) व्रतविरोधी वा सत्कर्मविरोधी ( **दस्युम्** ) उपक्षयकारी काम, क्रोध, आदि छहों रिपुओं को ( **साह्याम** ) पराजित कर देवें।।२।।

**भावार्थ** :—गुरुओं के सत्कार से और परमात्मा की उपासना से विद्या और आनन्द को प्राप्त करके, बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं को पराजित करके सत्कर्मों का आचरण करना चाहिए।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और आचार्य का ही विषय वर्णित है।

**८९४. शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः।**
**चरन्ति विद्युतो दिवि॥३॥**

**पदार्थ** :—( **शुष्मिणः** ) बलवान् ( **पवमानस्य** ) चित्तशुद्धिकर्ता

परमात्मा वा आचार्य का (**स्वनः**) आनन्दप्रवाह वा ज्ञानप्रवाह का शब्द (**वृष्टेः स्वनः इव**) वर्षा के शब्द के समान है, उसे मैं (**शृण्वे**) सुन रहा हूं। (**दिवि**) आकाश के समान मेरे आत्मा में (**विद्युतः चरन्ति**) बिजलियों के सदृश अध्यात्म-ज्योतियां विचर रही हैं॥३॥

यहां उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे वर्षाकाल में शब्द के साथ बादल से जल-धाराएं गिरती हैं और बिजलियां चमकती हैं, वैसे ही आचार्य के पास से ज्ञान का प्रवाह होने पर शब्द आचार्य के मुख से निकलते हैं और ज्ञान को ग्रहण करने वाले जीवात्मा में ज्ञान की ज्योतियां चमकती हैं। उसी प्रकार परमात्मा के पास से आनन्दरस का प्रवाह होने पर भी कोई दिव्य वर्षा की रिमझिम सी सुनाई देती है और अलौकिक ज्योतियों का भी अनुभव होता है॥३॥

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं का विषय वर्णित है।

**८९५. आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्।**
**अश्ववत् सोम वीरवत्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) दीप्तिमान्, ज्ञानरस से भिगोने वाले (**सोम**) प्रेरक परमात्मन् वा आचार्य! आप हमारे लिए (**गोमत्**) श्रेष्ठ गाय से युक्त वा श्रेष्ठ वाणी से युक्त, (**हिरण्यवत्**) सुवर्ण से युक्त, ज्योति से युक्त वा यश से युक्त, (**अश्ववत्**) घोड़ों से युक्त वा प्राणों से युक्त, (**वीरवत्**) वीर पुत्रों से युक्त वा वीरभावों से युक्त, (**महीम्**) बड़ी (**इषम्**) इच्छासिद्धि को (**आ पवस्व**) प्राप्त कराइये॥४॥

**भावार्थ** :—परमात्मा और आचार्य की कृपा से विद्यावान् होकर हम सब प्रकार की लौकिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करके सुखी होवें॥४॥

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं का विषय कहा गया है।

**८९६. पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण।**
**उषाः सूर्यो न रश्मिभिः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे ( **विश्वचर्षणे** ) विश्व ब्रह्माण्ड के द्रष्टा परमात्मन् वा सब विद्याओं के द्रष्टा आचार्य! आप ( **पवस्व** ) अन्तःप्रकाश एवं ज्ञानरस को प्रवाहित करो। उससे ( **मही रोदसी** ) महिमामय आत्मा और मन को ( **आपृण** ) पूर्ण कर दो, ( **न** ) जैसे ( **उषाः** ) उषा और ( **सूर्यः** ) सूर्य ( **रश्मिभिः** ) किरणों से ( **मही रोदसी** ) महान् द्यावापृथिवी को पूर्ण करते हैं॥५॥

यहां श्लिष्टोपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—जैसे उषा और सूर्य के प्रकाश से द्यावापृथिवी भर जाते हैं, वैसी ही परमात्मा और आचार्य द्वारा दी गयी दिव्य अन्तर्ज्योति तथा ज्ञानज्योति से मनुष्य के आत्मा और मन परिपूर्ण होते हैं॥५॥

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**८९७. परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः।**
**सरा रसेव विष्टपम्॥६॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) रसागार परमात्मन् वा आचार्य! आप ( **शर्मयन्त्या** ) सुख देने वाली ( **धारया** ) अध्यात्मप्रकाश की धारा वा ज्ञान की धारा के साथ ( **विश्वतः** ) सब ओर से ( **नः** ) हमें ( **परि सर** ) प्राप्त हों। ( **रसा इव** ) जैसे रसीली वर्षा ( **विष्टपम्** ) भूलोक को प्राप्त होती है॥६॥

यहाँ उपमालंकार है। 'सरा, रसे' में वृत्त्यनुप्रास है॥६॥

**भावार्थ** :—जैसे बादल में से पर्वतों पर हुई वर्षा नदीरूप में भूमि के प्रदेशों को सींचती हुई समुद्र को प्राप्त होती है, वैसे ही परमात्मा वा आचार्य से निकली हुई अन्तःप्रकाश की धारा मन, बुद्धि आदि को सींचती हुई जीवात्मा को प्राप्त होती है॥६॥

( ४ )

**ऋषिः—बृहन्मतिः देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का आह्वान है।

**८९८. आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना।**
**यत्रा देवा इति ब्रुवन्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**बृहन्मते**) महामति से युक्त एवं महामति को देने वाले परमेश! (**यत्र देवाः**) जहाँ दिव्यगुण रहते हैं वहाँ मेरा निवास है (**इति ब्रुवन्**) यह कहते हुए आप (**प्रियेण धाम्ना**) अपने मधुर तेज के साथ (**आशुः**) शीघ्रकारी होते हुए (**परि अर्ष**) हमारे जीवन में चारों ओर व्याप्त हो जाएं॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा प्राप्त करने के लिए अपने आत्मा में दिव्य गुणों को धारण करना चाहिए॥१॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं॥

**८९९. परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः।**
**वृष्टिं दिवः परि स्रव॥२॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक रसागार परमेश्वर! आप (**अनिष्कृतम्**) अपरिष्कृत हृदय को (**परिष्कृण्वन्**) परिष्कृत करते हुए, और (**जनाय**) उपासक मनुष्य के लिए (**इषः**) आक्रमणकारी विघ्नों को (**यातयन्**) हिंसा करते हुए (**दिवः**) आनन्दमय कोश से (**वृष्टिम्**) आनन्दरस की वर्षा (**परि स्रव**) प्रवाहित कीजिए॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे बादल से वर्षा होने पर सूखी भूमि सरस हो जाती है, वैसे ही सब के आत्मा में स्थित परमात्मा के पास से आनन्दरस की वर्षा होने पर आत्मा, मन बुद्धि आदि सब सरस और सप्राण हो जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस का प्रवाह वर्णित है।

**९००. अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ।**
**सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अयम्**) यह हम से अनुभव किया जाता हुआ (**सः**) वह प्रसिद्ध ब्रह्मानन्दरस है, (**यः**) जो (**रघुयामा**) शीघ्र गति वाला होता हुआ (**दिवः परि**) आनन्दमय परमेश्वर के पास से (**पवित्रे आ**) पवित्र हृदय में आकर (**सिन्धोः ऊर्मौ**) आत्मारूप समुद्र की तरंग में (**व्यक्षरत्**) क्षरित हो रहा है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे सोमौषधि का रस दशापवित्र नामक छन्नी से क्षरित होकर द्रोणकलश में गिरता है, अथवा जैसे चाँदनी का रस पवित्र अन्तरिक्ष से क्षरित होकर समुद्र में गिरता है, वैसे ही परमात्मा के पास से आया हुआ आनन्दरस पवित्र हृदय से क्षरित होकर अन्तरात्मा में आता है॥३॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-प्रदाता परमेश्वर का वर्णन है।

**९०१ सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा।**
**विचक्षाणो विरोचयन्॥४॥**

**पदार्थ** :—**(सुतः)** जिसने अपने में से आनन्दरस को प्रवाहित किया है ऐसा यह सोमनामक परमात्मा **(त्विषिम्)** दीप्ति को **(दधानः)** धारण करता हुआ **(ओजसा)** बलपूर्वक **(पवित्रे)** पवित्र हृदय वा आत्मा में **(आ एति)** आ रहा है, और **(विचक्षाणः)** विशेष रूप से अन्तर्दृष्टि को दे रहा है तथा **(विरोचयन्)** विशेष कान्ति को प्रदान कर रहा है॥४॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के साथ मैत्री स्थापित करता हुआ उपासक अन्तर्दृष्टि तथा **ब्रह्मतेज से युक्त** होकर परमानन्दमय हो जाता है॥४॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**९०२. आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः।**
**इन्द्राय सिच्यते मधु॥५॥**

**पदार्थ** :—पवमान सोम अर्थात् चित्तशोधक परमेश्वर **(सुतः)** हृदय में प्रकट होकर **(परावतः)** पराविद्या के ज्ञानी **(अथ उ)** और **(अर्वावतः)** अपरा विद्या के ज्ञानी उपासकों को **(आ विवासन्)** सम्मानित करता है। उस परमेश्वर से झरा हुआ **(मधु)** मधुर आनन्दरस **(इन्द्राय)** जीवात्मा के लिए **(सिच्यते)** सींचा जाता है॥५॥

**भावार्थ** :—जो अपने आपको मधुर ब्रह्मानन्द-रस से स्नान कराते हैं वे निर्मल अन्तःकरण वाले उपासक सर्वथा क्लेशों से

छूटकर परमगति मोक्ष को प्राप्त करते हैं॥५॥

अगले मन्त्र में कौन ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं इसका कथन है।

**९०३. समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।**
**इन्दुमिन्द्राय पीतये॥६॥**

**पदार्थ** :—जो उपासक लोग (**समीचीनाः**) परस्पर मिलकर (**अनूषत**) पवित्रकर्ता परमात्मा की स्तुति करते हैं, और (**हरिम्**) अज्ञान, दुःख आदि को हरने वाले उसे (**अद्रिभिः**) अखण्डित ध्यानों से (**हिन्वन्ति**) अपने अन्दर बढ़ाते हैं, वे (**इन्दुम्**) सराबोर करने वाले ब्रह्मानन्द-रस को (**इन्द्राय**) अपने जीवात्मा को (**पातवे**) पिलाने में समर्थ होते हैं॥६॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को योग्य है कि ध्यानयोग द्वारा परमात्मा की आराधना करके ब्रह्मानन्द को प्राप्त करें॥६॥

**( ५ )**

**ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा॥**
**देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा में परमात्मा का विषय कहते हैं।

**९०४. हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम्।**
**महामिन्दुं महीयुवः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सूरम्**) सूर्य को (**उस्रयः**) किरणें (**हिन्वन्ति**) प्राप्त होती हैं, (**स्वसारः**) विवाहित (**जामयः**) बहिनें (**पतिम्**) अपने पति को (**हिन्वन्ति**) प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार (**महीयुवः**) पूजा के इच्छुक उपासक (**महाम्**) महान्, (**इन्दुम्**) रस से सराबोर करने वाले उपास्य परमात्मा को (**हिन्वन्ति**) प्राप्त होते हैं॥१॥

यहाँ अप्रस्तुत किरणों (उस्रा) और बहिनों (जामयः) का तथा प्रस्तुत पूजेच्छुक उपासकों (महीयुवः) का 'हिन्वन्ति' रूप एक क्रिया से योग होने के कारण दीपक अलंकार है। साथ ही 'स्वसारः' और 'जामयः' दोनों पदों के बहिन वाचक होने के

कारण पुनरुक्ति प्रतीत होने से तथा व्याख्यात प्रकार से उसका परिहार हो जाने से पुनरुक्तवदाभास अलंकार भी है। 'सूर, सारो' तथा 'महा, मही' में छेकानुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—जो लोग परमात्मा को पाने के लिए सर्वभाव से तत्पर होते हैं वे अन्त में उसे पा ही लेते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है।

**९०५. पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः।**
**विश्वा वसून्या विश॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) चित्त को शुद्ध करने वाले (**देव**) आनन्ददायक सर्वप्रकाशक परमात्मन्! (**देवेभ्यः**) प्रकाशक, ज्ञान की साधन मन, बुद्धि, आंख, कान, नासिका, त्वचा और जिह्वा के लिए अर्थात् उन्हें प्रकाशनशक्ति देने के लिए (**सुतः**) प्रवृत्त आप (**रुचारुचा**) अधिकाधिक प्रकाशन-शक्ति से (**विश्वा वसूनि**) उन सब निवासक मन, बुद्धि आदि में (**आ विश**) प्रविष्ट होओ। भाव यह है कि आपके द्वारा दी गयी ज्ञान-प्रदान-शक्ति से पुनः अनुप्राणित ये मन, बुद्धि आदि सदा ही ज्ञान अर्जन करने में जीवात्मा के साधन बने रहें॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य के प्रकाश से सब ग्रहोपग्रह प्रकाशित होते हैं, वैसे ही परमेश्वर के द्वारा प्रकाशित मन, बुद्धि, चक्षु आदि ज्ञान के ग्राहक होते हैं॥२॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**९०६. आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः।**
**इषे पवस्व संयतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) चित्तशोधक परमेश्वर! आप (**देवेभ्यः**) हम प्रकाशयुक्त उपासकों के लिए (**इषे**) अभीष्टसिद्धि के अर्थ (**सुष्टुतिम्**) शुभ स्तुतियुक्त अर्थात् सुप्रशंसित आनन्दवर्षा को, (**दुवः**) सेवा की भावना को और (**संयतम्**) संयम की भावना को (**आ पवस्व**) प्राप्त कराइये॥३॥

**भावार्थ** :—उपासकों को परमेश्वर की उपासना से परम आनन्द, दीनों की सेवा में रस और विषयों से मन तथा इन्द्रियों का निग्रह प्राप्त होता है॥३॥

( ६ )

ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥

प्रथम ऋचा में परमेश्वर का स्वरूप वर्णित है।

**९०७. जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः**
**सुविताय नव्यसे। घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा**
**द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **जागृविः** ) जागरूक परमेश्वर ( **जनस्य** ) सब मनुष्यों का ( **गोपाः** ) रक्षक ( **अजनिष्ट** ) बना हुआ है। ( **सुदक्षः** ) उत्तम बल वाला वह ( **अग्निः** ) अग्रनायक परमेश्वर ( **नव्यसे** ) अतिशय नवीन ( **सुविताय** ) भद्र-प्राप्ति के लिए सहायक होता है। ( **घृतप्रतीकः** ) तेजःस्वरूप, ( **शुचिः** ) पवित्र वह ( **भरतेभ्यः** ) धारणा, ध्यान, समाधि में स्थित जनों के लिए ( **दिविस्पृशा** ) आत्मा को छूने वाले ( **बृहता** ) महान् तेज से ( **द्युमत्** ) दीप्यमान होता हुआ ( **वि भाति** ) शोभित होता है॥१॥

**भावार्थ** :—तेजःस्वरूप परमेश्वर उपासकों का रक्षक होता हुआ उन्हें दिव्य तेज प्रदान करके कृतार्थ करता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति का विषय है।

**९०८. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं**
**वनेवने। स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः**
**सहसस्पुत्रमङ्गिरः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) अग्रनायक परमेश्वर! ( **गुहा हितम्** ) गुहा में निहित अर्थात् गुह्य, ( **वने वने** ) प्रत्येक किरण में वा प्रत्येक जीव में ( **शिश्रियाणम्** ) विद्यमान ( **त्वाम्** ) आपको

(अङ्गिरसः) तपस्वी प्राणायामाभ्यासी जन (अन्वविन्दन्) प्राप्त कर लेते हैं। (सः) वह आप (मथ्यमानः) ध्यान किये जाते हुए (महत् सहः) उपासक के महान् बल (जायसे) हो जाते हो। हे (अङ्गिरः) प्राणों के समान प्रिय! (त्वाम्) आपको (सहसः) बल का (पुत्रम्) पुतला (आहुः) कहते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान होता हुआ भी चर्मचक्षु से दिखायी न देने के कारण गुह्य है। तप और ध्यान से ही वह प्राप्त होने योग्य है। ध्यानी लोग उसके महान् बल और तेज का साक्षात्कार करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का ही विषय वर्णित है।

**९०९. यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समिन्धते। इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन् नि होता यजथाय सुक्रतुः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**यज्ञस्य**) अध्यात्म यज्ञ के (**केतुम्**) ध्वज के समान स्थित अथवा प्रज्ञापक, (**प्रथमम्**) मुख्य, (**पुरोहितम्**) सम्मुख निहित (**अग्निम्**) तेजस्वी परमेश्वर को (**नरः**) उपासक मनुष्य (**त्रिषधस्थे**) ज्ञान, कर्म और उपासना ये तीनों जहां एक साथ स्थित होते हैं उस जीवात्मा में (**समिन्धते**) भलीभांति प्रदीप्त करते हैं। (**इन्द्रेण**) जीवात्मा तथा (**देवैः**) मन, बुद्धि, प्राण एवं इन्द्रिय रूप देवों के साथ (**सरथम्**) शरीररूप समान रथ में स्थित, अथवा (**इन्द्रेण**) सूर्य तथा (**देवैः**) वायु, जल, पृथिवी, मंगल, बुध, चन्द्र, नक्षत्र आदि देवों के साथ (**सरथम्**) ब्रह्माण्डरूप समान रथ में स्थित (**सः**) वह (**होता**) सुख आदि का दाता, (**सुक्रतुः**) शुभ प्रज्ञा वाला तथा शुभ कर्मों वाला अग्नि नामक परमेश्वर (**यजथाय**) देह में सब इन्द्रिय आदि में और बाहर सब सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि में सामंजस्य करने के लिए (**बर्हिषि**) शरीर-यज्ञ वा ब्रह्माण्ड-यज्ञ में (**निषीदत्**) बैठा हुआ है॥३॥

**भावार्थ** :—अपने अन्तरात्मा में महान् परमात्मा-रूप अग्नि

को भली-भाँति प्रदीप्त करके उपासनायज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।।३।।

( ७ )

**ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥**
**छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा में आत्मा और मन तथा राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री का विषय कहते हैं।

**९१०. अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा।**
**ममेदिह श्रुतं हवम्॥१॥**

**पदार्थ :—( प्रथम )** आत्मा और मन के पक्ष में। हे **( ऋतावृधा )** सत्य को बढ़ाने वाले **( मित्रावरुणा )** आत्मा और मन! **( वाम् )** तुम दोनों के लिए **( अयम् )** यह **( सोमः )** ज्ञान एवं कर्म का रस **( सुतः )** अभिषुत है। तुम दोनों **( इह )** यहाँ **( मम )** मेरे **( हवम् )** उद्बोधन को **( श्रुतम् )** सुनो।

**( द्वितीय )** राजा और प्रधानमन्त्री के पक्ष में। हे **( ऋतावृधा )** न्याय को बढ़ाने वाले **( मित्रावरुणा )** राजा और प्रधानमन्त्री! **( वाम् )** तुम दोनों के लिए **( अयम् )** यह **( सोमः )** राजकर **( सुतः )** अर्पित है। तुम दोनों **( इह )** इस राष्ट्र में **( मम )** मेरे **( हवम् )** राष्ट्रोन्नति के आह्वान को **( श्रुतम् )** सुनो।।१।।

यहाँ श्लेषालंकार है।।१।।

**भावार्थ :—**मनुष्यों को चाहिए कि अपने आत्मा और मन को उद्बोधन देकर सब प्रकार का उत्कर्ष सिद्ध करें। इसी प्रकार राजा और प्रधानमन्त्री का कर्तव्य है कि वे प्रजाओं से राजकर लेकर प्रजा के हित के लिए उसे व्यय करें।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**९११. राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे।**
**सहस्रस्थूण आशाते॥२॥**

**पदार्थ :—( प्रथम )** आत्मा और मन के पक्ष में। **( अनभिद्रुहा )** द्रोह न करने वाले, **( राजानौ )** राजाओं के समान विद्यमान

आत्मा और मन (**ध्रुवे**) दृढ़ अंगों वाले, (**उत्तमे**) सर्वोत्कृष्ट, (**सहस्रस्थूणे**) हड्डीरूप बहुत सारे खम्भों वाले (**सदसि**) देहरूप घर में (**आशाते**) निवास करते हैं।

**द्वितीय** राजा और प्रधानमन्त्री के पक्ष में। (**अनभिद्रुहा**) प्रजा से द्रोह न करने वाले, (**राजानौ**) राष्ट्र के उच्चपदों पर विराजमान राजा और प्रधानमन्त्री (**ध्रुवे**) स्थिर, (**उत्तमे**) सर्वोत्कृष्ट, (**सहस्रस्थूणे**) हजार खम्भों वाले (**सदसि**) सभागृह में (**आशाते**) आकर बैठते हैं॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे आत्मा और मन मनुष्य के जीवन को उन्नत करते हैं, वैसे ही राजा और प्रधानमन्त्री राष्ट्र के जीवन को उन्नत करें॥२॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय वर्णित है।

**९१२. ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती।**
**सचेते अनवह्वरम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) आत्मा और मन के पक्ष में। (**ता**) वे दोनों (**घृतासुती**) तेज को प्रेरित करने वाले, (**आदित्या**) ज्ञान से प्रकाशमान, (**दानुनः पती**) दान के अधीश्वर, (**सम्राजा**) देह के सम्राट् आत्मा और मन (**अनवह्वरम्**) अकुटिल अर्थात् सरल मार्ग को (**सचेते**) सेवन करें।

(**द्वितीय**) राजा और प्रधानमन्त्री के पक्ष में। (**ता**) वे दोनों (**घृतासुती**) राष्ट्र में घी-दूध आदि को सींचने वाले, (**आदित्या**) ज्ञान-प्रकाश से भासमान, (**दानुनः पती**) दान के स्वामी अर्थात् दान के देने वाले (**सम्राजा**) तेजस्वी राजा और प्रधानमन्त्री (**अनवह्वरम्**) अकुटिल व्यवहार को (**सचेते**) सेवन करें॥३॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—आत्मा और मन में अगाध शक्ति निहित है। किन्तु उन्हें चाहिए कि वे सरल मार्ग का ही आश्रय लें, कुटिल का नहीं। इसी प्रकार राजा और प्रधानमन्त्री भी सरल मार्ग से ही व्यवहार करते हुए राष्ट्र को उन्नत कर सकते हैं॥३॥

(८)

ऋषि:—गोतमो राहुगण:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १७९ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ जगदीश्वर का कर्म वर्णित किया जा रहा है।

**९१३. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत:।**
**जघान नवतीर्नव॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अप्रतिष्कुत:** ) कोई भी शत्रु जिसका मुकाबला नहीं कर सकता ऐसा ( **इन्द्र:** ) शत्रुविदारक जगदीश्वर ( **दधीच:** ) लोकों के धारणकर्ता तथा अपनी धुरी पर घूमने वाले सूर्य की ( **अस्थभि:** ) अस्थियों के तुल्य किरणों से ( **नव नवती:** ) निन्यानवे प्रतिशत ( **वृत्राणि** ) रोग, मलिनता आदियों को ( **जघान** ) नष्ट कर देता है॥१॥

**भावार्थ** :—अहो, कैसा है जगदीश्वर का महान् कर्म कि वह विशाल सूर्यरूप साधन से प्राय: सभी रोग, मल आदि को नष्ट करके हमारे जीवनों को सुरक्षित कर देता है। यदि वह मलों को हरने वाले सूर्य को न रचता तो भूमण्डल अनेक व्याधियों से और सारे मलों से परिपूर्ण होकर निवासयोग्य भी न रहता॥१॥

अगले मन्त्र में पुन: जगदीश्वर का कर्म वर्णित है।

**९१४. इच्छन्नश्वस्य यच्छिर: पर्वतेष्वपश्रितम्।**
**तद्विदच्छर्यणावति॥२॥**

**पदार्थ** :—इन्द्र जगदीश्वर ( **अश्वस्य** ) अन्तरिक्ष में व्याप्त बादल के ( **पर्वतेषु** ) पहाड़ों पर ( **अपश्रितम्** ) गिरे हुए ( **यत्** ) जिस ( **शिर:** ) जीर्ण-शीर्ण जल को ( **इच्छन्** ) फिर से भाप बनाना चाहता है ( **तत्** ) उस जल को वह ( **शर्यणावति** ) नदियों से युक्त समुद्र में ( **विदत्** ) पा लेता है। अभिप्राय यह है कि जो बादल का जल भूमि पर बरस कर नदियों द्वारा समुद्र में चला जाता है उसे फिर वह सूर्य द्वारा भाप बनाकर अन्तरिक्ष में ले जाकर बादल के रूप में परिणत कर देता है॥२॥

**भावार्थ** :—बादल से वर्षा और बरसे हुए जल से फिर बादल का निर्माण इस चक्र को जगदीश्वर ही चला रहा है। यदि ऐसी उसकी की हुई सुव्यवस्था न होती तो यह भूमण्डल शुष्क एवं वृक्ष ओषधिलता आदि से विहीन हो जाता॥२॥

इस मन्त्र पर सायणाचार्य द्वारा प्रोक्त इतिहास एवं उसका प्रत्याख्यान पूर्वार्चिक मन्त्र क्रमांक १७९ के भाष्य में देखना चाहिए।

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक १४७ पर सूर्य द्वारा चन्द्रमा के प्रकाशित होने के विषय में तथा परमेश्वर द्वारा हृदयों के प्रकाशन के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ उससे भिन्न व्याख्या दी जा रही है।

२३ ३ १२ ३ २ ३ १ २ ३क २र
**९१५. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्।**
३ २ ३ १ २ ३ २
**इत्था चन्द्रमसो गृहे॥३॥**

**पदार्थ** :—**( अत्र ह )** यहाँ **( त्वष्टुः )** प्रदीप्त सूर्य से **( अपीच्यम् )** बाहर गये हुए प्रकाश को, लोग **( गोः )** नाम पृथिवी पर नत हुआ **( असन्वत )** जानते हैं। **( इत्था )** इस प्रकार, पृथिवी को मध्य में करके वह प्रकाश **( चन्द्रमसः गृहे )** चन्द्रमण्डल में गिरता है, उसी से चन्द्रमा प्रकाशित होता है। यह इन्द्र परमेश्वर की ही महिमा है॥३॥

**भावार्थ** :—पृथिवी अण्डाकृति मार्ग से सूर्य की परिक्रमा करती है और चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता हुआ पृथिवी के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा करता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच में पृथिवी के आ जाने से प्रतिदिन चन्द्रमा के सम्पूर्ण गोलार्ध पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ता। चन्द्रमा का जितना अंश पृथिवी की ओट में आ जाता है उतने अंश में सूर्य का प्रकाश न पड़ने से वह अंश अन्धकार से आच्छन्न ही रहता है। चन्द्रमा की कलाओं की ह्रास-वृद्धि का यही रहस्य है। अमावस्या को सम्पूर्ण चन्द्र के पृथिवी से ढक जाने के कारण पूरा ही चन्द्रमा अन्धकार से आवृत रहता है और पूर्णिमा को सम्पूर्ण चन्द्रमा के पृथिवी से छूटे रहने के कारण सम्पूर्ण ही चन्द्रमा प्रकाशित रहता है। यही परमेश्वर द्वारा की हुई व्यवस्था इस मन्त्र में वर्णित हुई है॥३॥

( ९ )

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति का विषय है।

३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
९१६. इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः।
३ २ ३ १ २
अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि॥१॥

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्राग्नी** ) आत्मा और मन! ( **मन्मनः** ) ज्ञानी ( **अस्य** ) इस परमेश्वर की ( **इयम्** ) यह ( **वाम्** ) तुम्हारे द्वारा की गयी ( **पूर्व्यस्तुतिः** ) श्रेष्ठ स्तुति ( **अभ्रात्** ) बादल से ( **वृष्टिः इव** ) वर्षा के समान ( **अजनि** ) हुई है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे बादल से बरसी हुई जलधारा भूमि को आर्द्र करती है, वैसे ही आत्मा और मन से की गयी स्तुति परमेश्वर को आर्द्र (स्नेहयुक्त) करती है। आर्द्र भूमि जैसे वृक्ष, वनस्पति आदि को उत्पन्न करती है, वैसे ही आर्द्र किया गया परमेश्वर स्तोता के हृदय में सद्गुणों को उत्पन्न करता है॥१॥

अगले मन्त्र में आत्मा और मन को उद्बोधन देते हैं।

३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
९१७. शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः।
३ १ २ ३ १ २
ईशाना पिप्यतं धियः॥२॥

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्राग्नी** ) आत्मा और मन! तुम दोनों ( **जरितुः** ) प्रशंसक के ( **हवम्** ) उद्बोधन को ( **शृणुतम्** ) सुनो। ( **गिरः** ) स्तुतिवाणियों को ( **वनतम्** ) उच्चारित करो। ( **ईशाना** ) देह के अधिष्ठाता तुम दोनों ( **धियः** ) ज्ञानों और कर्मों को ( **पिप्यतम्** ) बढ़ाओ॥२॥

यहाँ एक कर्त्ता-कारक से अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य को चाहिए कि आत्मा और मन का उपयोग करके परमेश्वर की उपासना, ज्ञान का संग्रह तथा सत्कर्म करे॥२॥

आगे आत्मा और मन से प्रार्थना करते हैं।

**९१८. मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये।**
**मा नो रीरधतं निदे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन! (**नरा**) नेतृत्व करने वाले तुम दोनों (**मा**) न तो (**पापत्वाय**) पाप कर्म के, (**मा**) न (**अभिशस्तये**) हिंसा के, और (**मा**) न ही (**नः**) हमें (**निदे**) निन्दक के (**रीरधतम्**) वश में करो॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि आत्मा और मन को उद्बोधन देकर पाप, हिंसा, निन्दा आदि से मुक्ति पायें॥३॥

(१०)

**ऋषिः—दृढच्युत आगस्त्यः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ४७४ पर ब्रह्म के पास से आनन्दरस-प्रवाह के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहां गुरु-शिष्य का विषय वर्णित करते हैं।

**९१९. पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे।**
**मरुद्भ्यो वायवे मदः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**हरे**) दोषों को हरने वाले आचार्य! (**दक्षसाधनः**) विद्या, सच्चरित्रता, ब्रह्मचर्य आदि बलों को सिद्ध करने वाले आप (**देवेभ्यः पीतये**) दिव्यगुणी शिष्यों के पान के लिए (**पवस्व**) ज्ञानरस प्रवाहित करो और (**मरुद्भ्यः**) उन प्राणायाम के साधक शिष्यों को (**वायवे**) प्रगति के लिए (**मदः**) उत्साहकारी होओ॥१॥

**भावार्थ** :—आचार्य को चाहिए कि शिष्यों के लिए जो-जो आवश्यक हो वह-वह सब करे, जिससे वे विद्या में पारंगत, सच्चरित्र, ब्रह्मचारी, प्रगतिशील और कर्मयोगी होवें॥१॥

आगे फिर गुरु-शिष्य का ही विषय है।

**९२०. सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः।**
**पवमानो अदाभ्यः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**वृषा**) ज्ञान की वर्षा करने वाला, (**कविः**) मेधावी, (**प्रियः**) शिष्यों से प्रीति रखने वाला, (**अदाभ्यः**) ठगा न जा सकने वाला (**पवमानः**) पवित्रतादायक आचार्य (**योनौ अधि**) गुरुकुलरूप घर में (**देवैः**) दिव्यगुणी शिष्यों के साथ (**सं शोभते**) भली-भांति शोभा पाता है।।२।।

**भावार्थ** :–सुयोग गुरु और सुयोग्य शिष्य आपस में मिलकर बहुत अधिक शोभा पाते हैं।।२।।

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१२१. पवमान धिया हितो३ऽभि योनिं कनिक्रदत्।**
**धर्मणा वायुमारुहः॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**पवमान**) चित्तशोधक आचार्य! (**धिया**) प्रज्ञा और कर्म से (**हितः**) शिष्यों के हितकारी आप (**योनिम् अभि**) यम-नियम आदियों के आश्रय शिष्यवर्ग के प्रति (**कनिक्रदत्**) शास्त्रों का उपदेश करते हुए (**धर्मणा**) धर्म से (**वायुम्**) प्रगतिशील शिष्यवर्ग को (**आरुहः**) परम उन्नति की सीढ़ी पर चढ़ा देते हो।।३।।

**भावार्थ** :–आचार्य विद्या आदि के दान से शिष्यों का बहुत उपकार करते हैं, अतः शिष्यों को चाहिए कि मन, वचन, कर्म से उनका सम्मान करें और दूसरों को विद्या आदि देकर उनका ऋण चुकायें।।३।।

## (११)

**ऋषिः–सप्तर्षयः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः–१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५१६ क्रमांक पर उपास्य-उपासक विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है।

**१२२. तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे।**
**पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीँरति ताँ इहि॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्दो**) विद्यारस से सराबोर करने वाले,

तेजस्वी (सोम) विद्यारस के भण्डार आचार्य! (अहम्) मैं शिष्य (तव सख्ये) आपकी मैत्री में (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (रारण) वेदादि शास्त्रों का उच्चारण करता हूँ। हे (बभ्रो) सब शिष्यों का भरण-पोषण करने वाले आचार्य! (पुरूणि) बहुत से दोष (माम्) मुझ शिष्य को (नि अव चरन्ति) कष्ट दे रहे हैं, (परिधीन् तान्) चारों ओर से घेरने वाले उन दोषों को (अति इहि) दूर कर दीजिए।।१।।

**भावार्थ** :—गुरुओं का यह कर्त्तव्य है कि वे शिष्यों में उत्पन्न हुए दोषों को दूर करके उन्हें निर्मल चरित्र वाला और विद्वान् बनायें।।१।।

आचार्य की सहायता से दोषों को दूर करके अब परमात्मा से निवेदन करते हैं।

**९२३. तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि।**
**घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुनाइव पप्तिम॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (बभ्रो) भरण-पोषण करने वाले (सोम) आनन्दरसागार परमेश्वर! (तव) तेरा (अहम्) मैं उपासक (ते) तेरे (ऊधनि) आनन्दरस के कोश में से (नक्तम्) रात्रि को (उत) और (दिवा) दिन में भी (दुहानः) आनन्दरस को दुह रहा हूँ। और (घृणा) तेज से (तपन्तम्) तपते हुए (सूर्यम्) सूर्य को भी (अति) अतिक्रान्त करके अर्थात् सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होते हुए हम (शकुनाः इव) पक्षियों के समान (परः) भौतिक जगत् से परे विद्यमान तुझ परमात्मा की ओर (पप्तिम) उड़ रहे हैं।।२।।

यहाँ उपमालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—मनुष्य को चाहिए कि वह तेजस्वी और तपस्वी होकर परमात्मा का साक्षात्कार करके उसके आनन्द-रस का आस्वाद लेकर मोक्ष पद को पाये।।२।।

(१२)

**ऋषिः—बृहन्मतिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा का परमात्मा विषयक अर्थ पूर्वार्चिक में ४८८ क्रमांक पर देखना चाहिए यहां आचार्य-शिष्य का विषय वर्णित है।

**९२४. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।**
**शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः॥१॥**

**पदार्थ** :–(**पुनानः**) मनों को शुद्ध करता हुआ (**विचर्षणिः**) सब शास्त्रों का पार-द्रष्टा सोम आचार्य, शिष्यों की (**विश्वाः मृधः**) सब हिंसावृत्तियों को (**अभि अक्रमीत्**) विनष्ट कर देता है। उस (**विप्रम्**) मेधावी ब्राह्मण आचार्य को, शिष्यगण (**धीतिभिः**) शिष्यों के योग्य कर्मों द्वारा (**शुम्भन्ति**) शोभित करते हैं, अर्थात् उसके बताये हुए कर्मों को करते हुए उसके गौरव को बढ़ाते हैं॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे आचार्य शिष्यों के दोषों का परिमार्जन करके उन्हें निष्पाप करता है, वैसे ही शिष्यों को भी चाहिए कि वे आचार्य के आदेश को शिरोधार्य करके उसे प्रसन्न करें॥१॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द का विषय तथा गुरु-शिष्यों का विषय वर्णित है।

**९२५. आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम्।**
**ध्रुवे सदसि सीदतु॥२॥**

**पदार्थ** :–प्रथम ब्रह्मानन्द के पक्ष में। (**अरुणः**) ज्योतिर्मय ब्रह्मानन्दरूप सोम (**योनिम्**) हृदयरूप गृह में (**आ रुहत्**) आरूढ़ होता है। (**वृषा**) बलवान् (**इन्द्रः**) अन्तरात्मा (**सुतम्**) अभिषुत ब्रह्मानन्दरूप सोमरस को (**गमत्**) प्राप्त करता है। हम चाहते हैं कि वह ब्रह्मानन्द (**ध्रुवे सदसि**) अविचल आत्मारूप सदन में (**सीदतु**) स्थित हो जाए, अर्थात् उसका अंग बन जाए॥२॥

**द्वितीय** गुरु-शिष्य के विषय में। (**अरुणः**) तेज से चमकता हुआ विद्यार्थी (**योनिम्**) गुरुकुल में (**आ रुहत्**) प्रविष्ट होता है। (**वृषा**) विद्या की वर्षा करने वाला (**इन्द्रः**) आचार्य (**सुतम्**) पुत्रतुल्य उस विद्यार्थी के पास (**गमत्**) उसका अभिनन्दन करने के लिए जाता है। वह विद्यार्थी (**ध्रुवे**) स्थिर (**सदसि**)

विद्यागृह में (सीदतु) निवास करे, अर्थात् जब तक विद्या पूर्ण न हो जाए तब तक निश्चिन्त होकर वहाँ रहे॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे मनुष्य का आत्मा ब्रह्मानन्द-रस के पाने से कृतार्थ हो, वैसे ही गुरुकुल में प्रविष्ट विद्यार्थी विद्याओं में पारंगत होकर कृतकृत्य हो॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है।

अगले मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**९२६. नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।**
**आ पवस्व सहस्त्रिणम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) तेजस्वी तथा आनन्दरस वा विद्यारस से आर्द्र करने वाले (**सोम**) शुभगुणप्रेरक परमात्मन् वा आचार्य! आप (**नु**) निश्चय से (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**विश्वतः**) सब ओर से (**महाम्**) महान्, (**सहस्त्रिणम्**) हजार की संख्या वाले (**रयिम्**) धन, धान्य, आरोग्य, सच्चरित्रता, न्याय, दया आदि ऐश्वर्य को (**आ पवस्व**) प्राप्त कराओ॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और आचार्य के प्रयत्न से मनुष्य सभी आध्यात्मिक और भौतिक सम्पत्ति को प्राप्त कर सकते हैं॥३॥

(१३)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३९८ क्रमांक पर सेनापति, राजा तथा जीवात्मा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा को सम्बोधन है।

**९२७. पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**हर्यश्व**) आकर्षणशक्तियुक्त हैं व्याप्त सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोक जिसके ऐसे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! आप (**सोमम्**) मेरे भक्तिरस को (**पिब**) पान

कीजिए, स्वीकार कीजिए। वह मेरा भक्तिरस (त्वा) आपको (मन्दतु) आनन्दित करे, जिस भक्तिरस को (सोतुः) रथप्रेरक सारथि की (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (सुयतः) सुनियन्त्रित (अर्वा न) घोड़े के समान (सुयतः) यम-नियम आदियों से सुनियन्त्रित (अद्रिः) अविनश्वर मेरे अन्तरात्मा ने (ते) आपके लिए (सुषाव) अभिषुत किया है।।१।।

यहाँ उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा तप और श्रद्धा के साथ वेदमन्त्रों को गा-गाकर जब परमात्मा के लिए भक्तिरस प्रवाहित करता है तब परमात्मा उसके अन्दर सद्गुणों और सत्कर्मों को प्रेरित कर उसे महान् बना देता है।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा जीवात्मा को कह रहा है।

**९२८. यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि।**
**स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु॥२॥**

**पदार्थ** :—(**हर्यश्व**) ज्ञान कर्म के आहर्ता हैं ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप घोड़े जिसके ऐसे हे जीवात्मन्! (**यः**) जो (**तव**) तेरा (**मदः**) उत्साह (**युज्यः**) तेरा सहयोगी, और (**चारुः**) श्रेष्ठ (**अस्ति**) है, (**येन**) जिस उत्साह से तू (**वृत्राणि**) बाह्य और आन्तरिक रिपुओं को (**हंसि**) विनष्ट करता है, (**सः**) वह उत्साह, हे (**प्रभूवसो**) बहुत गुणों वाले (**इन्द्र**) जीवात्मन्! (**त्वा**) तुझे (**ममत्तु**) आनन्दित करे।।२।।

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा अपनी शक्ति को पहचानकर जब जीवन-संग्राम में उतरता है तब उसकी विजय सुनिश्चित है।।२।।

अब उपासक परमात्मा को सम्बोधन करता है।

**९२९. बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो**
**अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यवान् वा दानवान् परमात्मन्! आप (**मे**) मेरी (**इमाम्**) इस (**प्रशस्तिं वाचम्**) आपके

गुण-गान की वाणी को ( सु आ बोध ) भलीभांति जानिए, ( **याम्** ) जिस वाणी को ( **ते** ) आपके लिए ( **वसिष्ठः अर्चति** ) अपने अन्दर सद्गुणों को अतिशयरूप से वसाने वाला मनुष्य उच्चारण कर रहा है—अर्थात् मैं उच्चारण कर रहा हूं। आप ( **सधमादे** ) सामूहिक उपासना-यज्ञ में ( **इमा ब्रह्म** ) इन स्तोत्रों को ( **जुषस्व** ) स्वीकार कीजिए।।३।।

**भावार्थ** :—जो लोग श्रद्धा से परमात्मा की गुणावलि की प्रशंसा करते हैं वे स्वयं भी गुणी होकर उत्कर्ष प्राप्त करते हैं।।३।।

( १४ )

**ऋषि:—रेभः काश्यपः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ अतिजगती; २-३ उपरिष्टाद् बृहती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३७० क्रमांक पर कैसे परमेश्वर को और कैसे वीर पुरुष को लोग अपना सम्राट् बनाते हैं इस विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ जीवात्मा का विषय वर्णित है।

**९३०. विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं**
**जजनुश्च राजसे। क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं**
**तरसं तरस्विनम्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **विश्वाः** ) सब ( **पृतनाः** ) बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं की सेनाओं के ( **अभिभूतरम्** ) अतिशय पराजेता, ( **वरे** ) उत्कृष्ट ( **स्थेमनि** ) स्थिरता या दृढ़ता में विद्यमान, ( **आ मुरीम्** ) सब ओर विघ्नों और विपत्तियों को मारने वाले, ( **उत** ) और ( **उग्रम्** ) अन्याय तथा अन्यायी के प्रति प्रचण्ड, ( **ओजिष्ठम्** ) सब से बढ़कर ओजस्वी, ( **तरसम्** ) दुःखों से तराने में समर्थ, ( **तरस्विनम्** ) अतिशय वेगवान् ( **इन्द्रम्** ) जीवात्मा को ( **नरः** ) नेता मनुष्य ( **ततक्षुः** ) उद्बोधन देते हैं, ( **च** ) और ( **राजसे** ) साम्राज्य के लिए, ( **क्रत्वे** ) महान् कर्म के लिए, ( **जजनुः** ) नियुक्त करते हैं।।१।।

**भावार्थ** :—मनुष्य अपने आत्मा को उद्बोधन देकर बड़े-बड़े कर्म करने में, यहाँ तक कि चक्रवर्ती साम्राज्य एवं मोक्ष का साम्राज्य पाने में भी, समर्थ हो सकता है।।१।।

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक विषय का वर्णन है।

**९३१. नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे। सुदीतयो**
**वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**विप्राः**) मेधावी ब्राह्मण लोग (**अभिस्वरे**) वेद-स्तोत्र में (**नेमिम्**) रथचक्र में परिधि के समान व्याप्त, (**मेषम्**) सुख से सींचने वाले इन्द्र परमेश्वर को (**चक्षसा**) साक्षात्कार से (**नमन्ति**) अपनी ओर झुका लेते हैं। आगे मनुष्यों को सम्बोधन है–हे (**सुदीतयः**) भलीभांति अविद्या का क्षय करने वाले जनो! (**वः**) तुम (**अद्रुहः**) द्रोह न करने वाले होओ। (**अपि**) साथ ही (**कर्णे**) अपनी और दूसरों की जीवननौका के कर्णधार होने में (**तरस्विनः**) वेगवान् बनो। (**ऋक्वभिः**) प्रशस्त स्तुति वाले स्तोता जनों के साथ (**सम्**) संगति करो॥२॥

**भावार्थ :–मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर का साक्षात्कार करके द्रोहरहित, सब के मित्र, कर्णधार, क्रियाशील, सत्संगतिपरायण और परोपकारी होकर विचरें॥२॥**

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**९३२. समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।**
**स्वः पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**रेभासः**) स्तोता लोग (**इन्द्रम्**) विघ्नविनाशक परमात्मा को (**सोमस्य पीतये**) भक्तिरस के पान के लिए (**सम् उ अस्वरन्**) पुकारते हैं। (**स्वःपति**) दिव्य प्रकाश, आनन्द वा मोक्ष का अधिपति वह (**यदि**) यदि (**वृधे**) वृद्धि करने के लिए (**धृतव्रतः**) संकल्प कर लेता है तो उपासक को (**ओजसा**) आत्मबल से और (**ऊतिभिः**) रक्षाओं से (**सम्**) संयुक्त कर देता है॥३॥

**भावार्थ** :–उपासक की दृढ़ श्रद्धा को देखकर परमेश्वर उसमें ओज और पुरुषार्थ की प्रेरणा करके उसकी निरन्तर रक्षा करता है॥३॥

( १५ )

ऋषिः—पुरुहन्मा॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक २७३ पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय वर्णित है।

**९३३. यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः।**
**विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे॥१॥**

**पदार्थ** :—( **यः** ) जो मेरा आत्मा ( **चर्षणीनाम्** ) मनुष्यों में ( **राजा** ) सम्राट् है, और ( **अध्रिगुः** ) किसी से न रोकी जा सकने योग्य क्रिया वाला जो ( **रथेभिः** ) देहरूप रथों से ( **याता** ) यात्रा करता है, और जो ( **विश्वासाम्** ) सब ( **पृतनानाम्** ) आन्तरिक वा बाह्य शत्रु-सेनाओं का ( **तरुता** ) अतिक्रमण करने वाला है, और ( **यः** ) जो वृत्रहा पाप, विघ्न आदि का विनाशक है, उसे ( **ज्येष्ठम्** ) श्रेष्ठ आत्मा का, मैं ( **गृणे** ) गुण-वर्णन करता हूं॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य के आत्मा में महान् शक्ति निहित है। उद्बोधन मिलने पर वह बड़े से बड़े कार्य कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में मनुष्य को प्रेरणा दी गयी है।

**९३४. इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।**
**हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो महान्देवो न सूर्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **पुरुहन्मन्** ) बहुत से शत्रुओं के विनाशक मानव! तू ( **अवसे** ) प्रगति के लिए ( **तम्** ) उस प्रसिद्ध ( **इन्द्रम्** ) परमवीर परमेश्वर को ( **शुम्भ** ) अपने अन्तरात्मा में शोभित कर ( **यस्य विधर्तरि** ) जिसे धारण करने वाले मनुष्य के अन्दर ( **द्विता** ) दो प्रकार की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। परमेश्वर को अपने अन्दर धारण करने वाले उस मनुष्य द्वारा एक ओर तो ( **हस्तेन** ) हाथ से ( **दर्शतः** ) दर्शनीय ( **वज्रः** ) शस्त्रास्त्र ( **प्रति धायि** ) पकड़ा जाता है, और दूसरी ओर वह ( **देवः सूर्यः न** )

प्रकाशक सूर्य के समान (महान्) महिमाशाली हो जाता है॥२॥

**भावार्थ** :—अपने अन्तरात्मा में परमात्मा को धारण करने से मनुष्य के अन्दर महान् बल, साहस, तेज, धैर्य और शत्रुपराजय-सामर्थ्य उत्पन्न हो जाता है।

(१६)

**ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७६ क्रमांक पर परमात्मा के आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है।

**९३५. परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः।**
**स्वानैर्याति कविक्रतुः॥१॥**

**पदार्थ** :—शिष्यों के (**नप्त्योः**) आत्मा और मन का (**हितः**) हित करने वाला, (**कविक्रतुः**) मेधावान् और सदाचारी आचार्य (**दिवः**) यश से प्रकाशित गुरुकुल के (**प्रिया वयांसि**) प्रिय शिष्यों को (**स्वानैः**) शास्त्रोपदेश के शब्दों के साथ (**परियाति**) प्राप्त होता है॥१॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं विद्वान् सदाचारी और पढ़ाने में चतुर है, वही आचार्य शिष्यों को सुयोग्य बना सकता है॥१॥

अब आचार्य से पढ़ाया हुआ कैसा पुत्र माता-पिता का यश फैलाने वाला होता है, यह कहते हैं।

**९३६. स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत्।**
**महान्मही ऋतावृधा॥२॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह सुयोग्य आचार्य से शिक्षा दिया हुआ, (**शुचिः**) पवित्र हृदय वाला, (**जातः**) स्नातक बना हुआ (**महान्**) गुणों में महान् (**सूनुः**) पुत्र (**जाते**) विद्याओं से प्रसिद्ध, (**मही**) महागुणविशिष्ट, (**ऋतावृधा**) सत्य को बढ़ाने वाले (**मातरा**) माता-पिता को (**अरोचयत्**) यश से प्रदीप्त

करता है।

**भावार्थ** :—सुयोग्य गुरुओं से पढ़ाया हुआ सुयोग्य पुत्र सुयोग्य माता-पिताओं और सुयोग्य गुरुओं की कीर्ति फैलाता है।।२।।

अगले मन्त्र में नवस्नातक को कहा जा रहा है।।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**९३७. प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः।**
३क २र ३ १ २
**वीत्यर्ष पनिष्टये॥३॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् विद्यारस से स्नान किये हुए नवस्नातक! (**जुष्टः**) लोगों का प्रिय, (**अद्रुहः**) द्रोह न करने वाला तू (**क्षयाय**) प्रजाओं में सद्गुण आदि के निवास के लिए, (**पन्यसे जनाय**) अतिशय स्तोता जन उत्पन्न करने के लिए, और (**पतिनष्टये**) शुद्ध व्यवहार के लिए (**वीती**) तीव्रगति से (**प्र प्र अर्ष**) विचरण कर।।३।।

**भावार्थ :—नवस्नातकों का यह कर्त्तव्य है कि वे गुरुकुल से बाहर आकर वेदार्थ का उपदेश करते हुए लोगों को श्रेष्ठ गुण कर्मों से युक्त, परमेश्वर के स्तोता और शुद्ध व्यवहार वाला बनायें।।३।।**

( १७ )

**ऋषिः—१ शक्तिः; २ उरुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ ऋषभः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ५८३ पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की गयी थी। यहाँ आचार्य और शिष्य के विषय का उपदेश करते हैं।

२ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**९३८. त्वं ह्याऽ३ङ्ग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः।**
३ १ २ ३ १ २
**अमृतत्वाय घोषयन्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अङ्ग**) भद्र, (**दैव्य**) विद्वान् गुरु के शिष्य, (**पवमान**) चित्तशुद्धिप्रदाता आचार्य! (**द्युमत्तमः**) अतिशय ज्ञानप्रकाश से युक्त (**त्वं हि**) आप। (**अमृतत्वाय**) सुख के

प्रदानार्थ ( जनिमानि ) घोषणा शिष्यों के ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य रूप द्वितीय जन्मों की ( घोषयन् ) घोषण किया करो॥१॥

**भावार्थ** :—माता-पिता से एक जन्म मिलता है, दूसरा जन्म आचार्य से प्राप्त होता है। जब शिष्य विद्याव्रतस्नातक होते हैं उस समय आचार्य गुणकर्मानुसार यह ब्राह्मण है, यह क्षत्रिय है, यह वैश्य है इस प्रकार स्नातकों को वर्ण देते हैं। उस काल में प्रथम जन्म का कोई ब्राह्मण भी गुण-कर्म की कसौटी से क्षत्रिय या वैश्य बन सकता है, क्षत्रिय भी ब्राह्मण या वैश्य बन सकता है और वैश्य या शूद्र भी ब्राह्मण या क्षत्रिय बन सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में आचार्य का महत्त्व कहा गया है।

**१३९. येना नवग्वा दध्यङ्ङपोर्णुते येन विप्रास आपिरे।**
**देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत॥२॥**

**पदार्थ** :—( **येन** ) जिस **पवमान सोम** से अर्थात् पवित्रकर्ता, **विद्यारस** के **भण्डार आचार्य** से ( **नवग्वा** ) **नवीन शिक्षा** प्राप्त **नवस्नातक** ( **दध्यङ्** ) **धारक गुणों** को **प्राप्त होकर** ( **अपोर्णुते** ) अविद्या के आवरण को दूर करता है, ( **येन** ) जिस आचार्य से उपदेश किए हुए ( **विप्रासः** ) मेधावी ब्राह्मण ( **आपिरे** ) सच्चरित्र की शिक्षा को प्राप्त करते हैं, ( **येन** ) जिस आचार्य से विद्या पाये हुए शिष्य ( **श्रवांसि** ) यशों को ( **आशत** ) प्राप्त करते हैं, वह आचार्य स्वयम् ( **देवानाम्** ) दिव्य गुणों के और ( **चारुणः** ) रमणीय ( **अमृतस्य** ) मोक्ष के ( **सुम्ने** ) सुख में निवास करता है॥२॥

**भावार्थ** :—सुयोग्य आचार्य से शिक्षा दिये हुए छात्र विद्वान्, सच्चरित्र, दिव्यगुणों वाले और जीवन्मुक्त होकर सब जगह विद्या, सच्चरित्रता आदि गुणों को फैलाते हुए यशस्वी होते हैं॥२॥

( १८ )

**ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५७२ क्रमांक पर ब्रह्मानन्द-रस के

विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ वही विषय प्रकारान्तर से दर्शाया जा रहा है।

१ २   ३ २   ३ २उ   ३   २३   १   २
**९४०. सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति।**
१ २   ३ १   २र   ३   १ २
**अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सोमः**) रसनिधि परमेश्वर (**ऊर्मिणा**) आनन्दरस की तरंग से (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ (**अव्यम्**) अविनश्वर (**वारम्**) वरणीय आत्मा के प्रति (**वि धावति**) वेग से जाता है। वह (**वाचः**) स्तुतिवाणी से (**अग्रे**) पूर्व ही (**पवमानः**) बहता हुआ (**कनिक्रदत्**) कल-कल शब्द करता है॥१॥

यहाँ ब्रह्मानन्दरसप्रवाह में कारणभूत स्तुतिवाणी के प्रयोग से पहले ही ब्रह्मानन्द का प्रवाह वर्णित होने के 'कारण से पूर्व कार्योदय होना रूप' अतिशयोक्ति अलंकार है। साथ ही वस्तुतः ब्रह्मानन्द-प्रवाह में लहर और कलकल शब्द न होने पर भी उसमें लहर और कलकल शब्द का सम्बन्ध कथित होने से असम्बन्ध में सम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति भी है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के ध्यान में मग्न स्तोता परमात्मा के पास से झरती हुई आनन्द की तरंगिणी को अपने अन्दर प्रविष्ट होते हुए अनुभव करके कृतार्थ हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति का विषय है।

३ १ २   ३ २ ३   २ ३   १ २ ३ १ २
**९४१. धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडन्तमत्यविम्।**
३ १   २ ३ २   ३ २ ३   १ २
**अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन्॥२॥**

**पदार्थ** :—उपासक लोग (**वाजिमन्**) बलवान्, (**वने क्रीडन्तम्**) ब्रह्माण्डरूप वन में क्रीडा करते हुए, (**अत्यविम्**) अबुद्धिगम्य उस पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता परमात्मा को (**धीभिः**) ध्यानवृत्तियों से (**मृजन्ति**) अपने अन्तरात्मा में अलंकृत करते हैं। वे (**मतयः**) मननशील उपासक (**त्रिपृष्ठम्**) पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौरूप अथवा आत्मा, मन, प्राणरूप तीन स्तरों में निवास करने वाले उस परमात्मा को (**अभि**) लक्ष्य करके (**समस्वरन्**) मिलकर स्तुतिगीत गाते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर जड़-चेतन से परिपूर्ण ब्रह्माण्डरूप

वन को रचकर उसमें क्रीड़ा करता हुआ जगत् का संचालन कर रहा है उस सर्वान्तर्यामी को अपने आत्मा का अलंकार बनाकर योगी जन जब उसका ध्यान करते हैं तब वे सब सिद्धियां पा लेते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है।

**९४२. असर्जि कलशाँ अभि मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः।**
**पुनानो वाचं जनयन्नसिष्यदत्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**मीढ्वान्**) आनन्दरस को सींचने वाला, (**वाजयुः**) स्तोताओं को आत्मबल देने का इच्छुक पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता रसनिधि परमेश्वर (**कलशान् अभि**) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि कोशों को लक्ष्य करके (**असर्जि**) छोड़ा गया है, (**सप्तिः न**) जैसे घोड़ा संग्राम को लक्ष्य करके छोड़ा जाता है (**पुनानः**) पवित्रता देता हुआ वह (**वाचं जनयन्**) उपदेश-वाणी को उत्पन्न करता हुआ (**असिष्यदत्**) अन्तरात्मा में प्रवाहित हो रहा है॥३॥

यहां उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की उपासना से आनन्दरस, आत्मबल, अन्तःकरण की पवित्रता और आत्मोत्थान का संदेश प्राप्त होता है॥३॥

**( १९ )**

**ऋषिः–प्रतर्दनो दैवोदासिः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–त्रिष्टुप्॥ स्वरः–धैवतः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमाङ्क ५२७ पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ भी वही विषय वर्णित है।

**९४३. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः। जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः॥१॥**

**पदार्थ** :–(**सोमः**) सकल जगत् का उत्पत्तिकर्ता परमेश्वर (**पवते**) सर्वगत है, सर्वान्तर्यामी है, जो (**मतीनाम्**) बुद्धियों का

(जनिता) उत्पादक, (दिवः) द्युलोक का (जनिता) उत्पादक, (पृथिव्याः) पृथ्वीलोक का (जनिता) उत्पादक, (अग्नेः) आग का (जनिता) उत्पादक, (सूर्यस्य) सूर्य का (जनिता) उत्पादक, (इन्द्रस्य) बिजली का (जनिता) उत्पादक, (उत) और (विष्णोः) व्यापक सूत्रात्मा प्राण का (जनिता) उत्पादक है।।१।।

**भावार्थ :**—परमात्मा ने ही इन लोकलोकान्तरों को और उनमें स्थित सब अद्भुत पदार्थों को रचा है, क्योंकि जो भी उत्पन्न होता है उसका कर्ता अवश्य होता है यह नियम है और हम जैसे लोगों में जगत् के रचने का सामर्थ्य नहीं है।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण-कर्म वर्णित हैं।

**९४४. ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥२॥**

**पदार्थ :**—(देवानाम्) विद्वान् ऋत्विजों के मध्य में (ब्रह्मा) ब्रह्मा के समान मुख्य, (कवीनाम्) मेधावी काव्यकारों के मध्य में (पदवीः) पद प्रयोग के ज्ञाता के समान प्रवीण, (विप्राणाम्) ज्ञानी ब्राह्मणों के मध्य में (ऋषिः) ऋषि कोटि के मनुष्य के समान द्रष्टा, (मृगाणाम्) पशुओं के मध्य में (महिषः) भारी बोझ को ढोने में समर्थ भैंसे के समान जगत् के भार को वहन करने वाला, (गृध्राणाम्) गिद्ध पक्षियों के मध्य में (श्येनः) बाज के समान शीघ्र गति से शत्रुओं का उच्छेद करने वाला, (वनानाम्) मेघ-जलों के मध्य में (स्वधितिः) विद्युद्वज्र के समान ज्योतिष्मान् (सोमः) सर्वोत्पादक परमेश्वर (रेभन्) उपदेश देता हुआ (पवित्रम्) पवित्र मन को (अति) लांघकर (एति) जीवात्मा को प्राप्त होता है।।२।।

इस मन्त्र में लुप्तोपमालंकार है।।२।।

**भावार्थ :**—संसार में जिस गुण या कर्म में जो सब से अधिक उत्कृष्ट वस्तुएं हैं वे उस गुण या कर्म में कथंचित् परमात्मा का उपमान कह दी जाती हैं। वास्तव में तो क्योंकि परमात्मा सब से बड़ा है, अतः उसका उपमान लोक में मिलना सम्भव नहीं है।।२।।

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय है।

**९४५. प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान् पवमानो मनीषाः। अन्तः पश्यन् वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन्॥३॥**

**पदार्थ** :-( **सिन्धुः** ) समुद्र ( **ऊर्मिं न** ) जैसे लहर को प्रेरित करता है, वैसे ही उपासक परमात्मा के प्रति ( **वाचः** ) स्तुतिवाणियों को ( **प्रावीविपत्** ) प्रेरित करता है। परमात्मा उसकी ( **गिरः** ) स्तुति-वाणी के ( **स्तोमान्** ) समूहों को और ( **मनीषाः** ) बुद्धियों को ( **पवमानः** ) पवित्र करता है। तब ( **वृषभः** ) स्तुतियों की वर्षा करने वाला उपासक ( **गोषु जानन्** ) इन्द्रियों के विषय में जानता हुआ अर्थात् इन्द्रियां बाहर की ओर जाने वाली होती हैं यह जानता हुआ ( **अन्तः पश्यन्** ) अन्तर्दृष्टि करता हुआ ( **इमा** ) इन ( **अवराणि** ) बाह्य ( **वृजना** ) विषय भोगों के बलों को ( **आतिष्ठति** ) दबा देता है॥३॥

**यहाँ उपमालंकार है॥३॥**

**भावार्थ** :-मनुष्यों को चाहिए कि विषय-विलासों से मन लौटाकर अन्तर्दृष्टि करके परमात्मा की उपासना कर आनन्दयुक्त हों॥३॥

## ( २० )

**ऋषिः-प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः; गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः॥ देवता-अग्निः॥ छन्दः-गायत्री॥ स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में २१ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ भी प्रकारान्तर से वही विषय दर्शाया जा रहा है।

**९४६. अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्। अच्छा नप्त्रे सहस्वते॥१॥**

**पदार्थ** :-हे मनुष्यो! तुम ( **वः** ) तुम्हें ( **वृधन्तम्** ) बढ़ाने वाले, ( **अध्वराणाम्** ) यज्ञों के अर्थात् परोपकारार्थ किये जाने वाले कर्मों के ( **पुरूतमम्** ) अतिशय पूरक, ( **अग्निम्** )

ज्ञानप्रकाशक परमेश्वर की, उपासना करो। (नप्त्रे) पतित न होने देने वाले, अपितु उठाने वाले, (सहस्वते) बलवान् उस परमेश्वर के (अच्छ) अभिमुख होओ॥१॥

**भावार्थ** :—सब को चाहिए कि शुभ कर्मों में उत्साहित करने वाले, दुष्कर्मों से निवारण करने वाले, बलवान्, उत्कर्षकारी, बलप्रदाता परमेश्वर की नित्य उपासना करें॥१॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि क्यों हम परमेश्वर के अभिमुख हों।

३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**९४७. अयं यथा न आभुवत् त्वष्टा रूपेव तक्ष्या।**
३ २उ ३ १ २
**अस्य क्रत्वा यशस्वत:॥२॥**

**पदार्थ** :—हम परमेश्वर के अभिमुख होवें (**यथा**) जिससे, वह (**न:**) हम में, हमारे जीवनों में (**आभुवत्**) रम जाए, (**त्वष्टा**) बढ़ई (**तक्ष्या रूपा इव**) जैसे घड़े जाने वाले रूपों में रम जाता है। हम (**यशस्वत:**) यशस्वी (**अस्य**) इस परमेश्वर के (**क्रत्वा**) ज्ञान एवं कर्म से, संयुक्त होवें॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर यदि हमारे जीवनों में व्याप्त हो जाता है तो सदा ही अच्छे-बुरे के विवेक से युक्त हम पुण्य कर्मों को ही करते हुए कीर्तिशाली होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि उपासना किया गया परमेश्वर हमारे लिए क्या करता है।

३ १ २र ३ २उ ३ २ ३ १ २
**९४८. अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते।**
२उ ३ १ २
**आ वाजैरुप नो गमत्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अयम्**) यह (**अग्नि:**) अग्रनायक परमेश्वर (**देवेषु**) उपासक सदाचारी विद्वानों में (**विश्वा: श्रिय:**) सब आध्यात्मिक और बाह्य सम्पदाओं को (**अभि पत्यते**) प्राप्त कराता है। वह (**वाजै:**) दिव्य ऐश्वर्यों तथा बलों के साथ (**न:**) हमें (**उप गमत्**) प्राप्त होवे॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर का उपासक सब प्रकार के भौतिक एवं

आध्यात्मिक बल और ऐश्वर्य अपने पुरुषार्थ से पाने योग्य हो जाता है॥३॥

( २१ )

**ऋषिः—गोतमो राहुगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३४४ क्रमांक पर उपास्य-उपासक और गुरु-शिष्य के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**९४९. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।**
३ १ २ ३क २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) विघ्नों के विदारण करने में समर्थ जीवात्मन्! तू (**इमम्**) इस (**सुतम्**) उत्पन्न हुए, (**ज्येष्ठम्**) अतिशय प्रशंसनीय, (**अमर्त्यम्**) अमर (**मदम्**) उत्साहप्रद वीररस और भक्तिरस का (**पिब**) पान कर। (**ऋतस्य सादने**) सत्य के सदन तेरे हृदय में (**शुक्रस्य**) प्रदीप्त वीर रस की और पवित्र भक्तिरस की (**धाराः**) धाराएं (**त्वा अभि**) तेरे प्रति (**अक्षरन्**) क्षरित हो रही हैं॥१॥

**भावार्थ** :—अपने आत्मा को वीरता की और भक्तिरस की तरंगों से आप्लावित करके, सब दुर्दान्त दुर्गुण, दुर्व्यसन आदियों को और दुष्टजनों को भगाकर देवासुरसंग्राम में विजय सब को प्राप्त करनी चाहिए॥१॥

पुनः जीवात्मा को सम्बोधन किया गया है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**९५०. न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।**
२ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) विघ्नों को विदीर्ण करने वाले जीवात्मन्! (**न किः**) कोई भी नहीं (**त्वत्**) तेरी अपेक्षा (**रथीतरः**) अधिक प्रशस्त रथारोही है, (**यत्**) क्योंकि (**न किः**) तू (**हरी**) ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय-रूप घोड़ों को (**यच्छसे**) शरीररूप रथ में

नियन्त्रित किये रखता है। ( न किः ) कोई भी नहीं ( त्वा ) तेरी ( मज्मना ) बल में ( अनु ) बराबरी करता है। ( न किः ) कोई भी नहीं ( स्वश्वः ) उत्कृष्ट घोड़ों वाला भी ( आनशे ) तेरे बराबर हो सकता है।।२।।

**भावार्थ** :—प्रोद्‌बोधन दिया हुआ जीवात्मा जब वीररस को अपने अन्दर संचारित करता है तब कोई भी अन्य उसकी बराबरी नहीं कर सकता।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः जीवात्मा के उद्‌बोधन का विषय है।

**९५१. इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।**
**सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! तुम ( **इन्द्राय** ) अपने अन्तरात्मा की ( **नूनम्** ) अवश्य ( **अर्चत** ) स्तुति करो, ( **उक्थानि च** ) और उद्‌बोधनगीतों को ( **ब्रवीतन** ) उच्चारण करो। ( **सुताः** ) प्रेरित ( **इन्दवः** ) वीररस और भक्तिरस तुम्हारे अन्तरात्मा को ( **अमत्सुः** ) हर्षित और उत्साहित करें। इस आत्मा के ( **ज्येष्ठम्** ) ज्येष्ठ ( **सहः** ) बल की, तुम ( **नमस्यत** ) प्रशंसा करो।।३।।

**भावार्थ** :—मनुष्य के अपने अन्तरात्मा में महान् बल निहित है। उसे उद्‌बोधन देकर और प्रभुभक्ति से मांजकर सब कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।।३।।

( २२ )

**ऋषिः—भृगुः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा का विषय है।

**९५२. इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह।**
**पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) जीवात्मन्! तू ( **जुषस्व** ) प्रसन्न हो, ( **प्र वह** ) शरीरयात्रा को भली-भांति वहन कर। हे ( **शूर** ) वीर, हे ( **हरिह** ) ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों से व्यवहार करने वाले! तू

(आ याहि) आ। तू (सुतस्य) तैयार हुए वीररस का (पिब) पान कर। (मतिः न) मेधावी पुरुष के समान (चारुः) श्रेष्ठ तू (मदाय) उत्साह के लिए (मधोः) मधुर भक्ति-रस का (चकानः) प्रेमी बन॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा वीररस का पान कर उत्साहवान् होकर, भक्तिरस की तरंगों से तरंगित होकर कठिन से कठिन कार्यों को कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः जीवात्मा का ही विषय है।

**९५३. इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न। अस्य**
**सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जीवात्मन्! (**दिवः न मधोः**) अन्तरिक्ष से प्राप्त मधुर वृष्टिजल के समान मधुर ब्रह्मानन्दरस के अंश से, तू (**नव्यं**) **न** नवीनसदृश (**जठरम्**) अपने उदर को अर्थात् स्वयं को (**पृणस्व**) तृप्त कर। (**स्वः न**) सूर्य के सदृश जगदीश्वर के पास से (**सुतस्य**) अभिषुत (**अस्य**) इस ब्रह्मानन्दरस की (**सुवाचः**) शुभ स्तुति-वाणियों को प्रेरित करने वाली (**मदाः**) तृप्तियां (**त्वा उप अस्थुः**) तेरे सम्मुख उपस्थित हों॥२॥

यहाँ उपमालंकार है। 'नव्यं न' में उत्प्रेक्षा है, नित्य पुरातन भी आत्मा नवीन शरीर को धारण कर मानो नवीन हो जाता है।

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा ब्रह्मानन्द-रस से तृप्त होकर स्वयं सुख-शान्ति प्राप्त करके दूसरों को भी प्रदान करें॥२॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा के कार्यों का वर्णन है।

**९५४. इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न।**
**बिभेद वलं भृगुर्न ससाहे शत्रून् मदे सोमस्य॥३॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रः**) मनुष्य का आत्मा (**मित्रः न**) सूर्य के समान (**तुराषाट्**) शीघ्रता के साथ विघ्नों को पराजित करता है,

(**यति नः**) संन्यासी के समान (**वृत्रम्**) पाप, दुर्व्यसन आदि को (**जघान**) नष्ट करता है, (**भृगुः न**) तपस्वी के समान (**वलम्**) आच्छादक अज्ञान को (**विभेद**) छिन्न-भिन्न करता है, और (**सोमस्य**) वीररस के (**मदे**) उत्साह में (**शत्रून्**) आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को (**ससहे**) परास्त करता है॥३॥

यहाँ मालोपमा अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—वीररस के मद में मनुष्य का आत्मा सब अज्ञान, विघ्न, पाप आदि को पराजित करने में समर्थ हो जाता है॥३॥

**इति पञ्चमोऽध्यायः, तृतीयप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ षष्ठोऽध्याय:

## तृतीयप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्ध:

( १ )

ऋषि:—अकृष्टा माषा:, सिकतानिवावरी, पृश्नयोऽजाश्च ऋषिगणा:॥ देवता—पवमान: सोम:॥ छन्द:—जगती॥ स्वर:—निषाद:॥

प्रथम मन्त्र में सोम नाम से परमात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

**९५५. गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पित:। त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा नर उप गिरेम आसते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्दो** ) तेजस्वी तथा ऐश्वर्य की वर्षा करने वाले परमात्मन्! ( **गोवित्** ) गौएं प्राप्त कराने वाले, ( **वसुवित्** ) धन प्राप्त कराने वाले और ( **हिरण्यवित्** ) सुवर्ण प्राप्त कराने वाले आप ( **पवस्व** ) हमें पवित्र करो। ( **रेतोधा:** ) वीर्यप्रदाता आप ( **भुवनेषु** ) लोकों में ( **अर्पित:** ) व्याप्त हो। हे ( **सोम** ) सर्वोत्पादक परमात्मन्! ( **त्वम्** ) आप ( **सुवीर:** ) श्रेष्ठ वीर प्राप्त कराने वाले और ( **विश्ववित्** ) सर्वज्ञाता ( **असि** ) हो। ( **तं त्वा** ) ऐसे आपकी ( **इमे** ) ये ( **नर:** ) उपासक जन ( **गिरा** ) स्तुतिवाणी से ( **उप आसते** ) उपासना कर रहे हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर ने ही हमारे उपयोग के लिए बहुमूल्य सब पदार्थ नि:शुल्क दिये हुए हैं। ऐसे उपकारक उसको हम कृतज्ञता के साथ स्मरण क्यों न करें?॥१॥

आगे पुन: परमात्मा का ही विषय है।

**९५६. त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वत: पवमान वृषभ ता वि धावसि। स न: पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषु जीवसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले, शुभ

गुणों के प्रेरक परमात्मन्! (त्वम्) आप (विश्वतः) सब ओर (नृचक्षाः) सब मनुष्यों के द्रष्टा (असि) हो। हे (पवमान) पवित्रकर्ता! हे (वृषभः) सुखों की वर्षा करने वाले! आप (ता) उन दृश्यमान सब वस्तुओं में (विधावसि) व्याप्त हो। (सः) वह आप (वसुमत्) निवासक धन से युक्त, (हिरण्यवत्) सुवर्ण से युक्त ज्योति से युक्त, वर्चस् से युक्त और यश से युक्त ऐश्वर्य को (नः) हमारे लिए (पवस्व) प्राप्त कराओ। (वयम्) हम (भुवनेषु) भूलोकों को (जीवसे) जीने के लिए (स्याम) समर्थ हों।।२।।

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामी, धन-धान्य, चांदी-सोना, राज्य आदि देने वाला, ज्योतिप्रदाता, कीर्तिप्रदाता, आरोग्यप्रदाता और दीर्घायुप्रदाता है उसकी उपासना करके उसके रक्षण तथा मार्ग-प्रदर्शन में हम सदा ही रहें।।२।।

**आगे पुनः वही विषय है।**

**९५७. ईशान इमा भुवनानि ईयसे युजान इन्दो हरितः**
**सुपर्ण्यः। तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस्तव व्रते**
**सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्दो) तेजस्विन्, चन्द्रमा के समान आह्लाददायक परमात्मन्! आप (इमा भुवनानि) इन लोकों के (ईशानः) अधिष्ठाता होते हुए (ईयसे) व्याप्त हो। आ (सुपर्ण्यः हरितः) तीव्र गति वाली सूर्य किरणों को (युजानः) भूमि, चन्द्रमा आदि ग्रहोपग्रहों में जोड़ते हुए (ईयसे) व्याप्त होते हो। (ते) आपकी (ताः) वे सूर्य-किरणें (मधुमत्) मधुर, (घृतम्) प्रवाहशील (पयः) वर्षाजल को (क्षरन्तु) बरसायें। हे (सोम) शुभगुणप्रेरक परमात्मन्! (तव व्रते) आपके उपदेश किये हुए कर्म में (कृष्टयः) प्रजाएं (तिष्ठन्तु) स्थित रहें।।३।।

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर सब जगत् को उत्पन्न करके उसकी भलीभांति व्यवस्था करता है, जो मेघों में जल निहित करता तथा बरसाता है, उसके बताये व्रतों का पालन करते हुए सब लोग सुखी हों।।३।।

( २ )

ऋषिः—कश्यपः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रारम्भ में परमात्मा का विषय कहते हैं।

**९५८. पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत।**
**सूर्यस्येव न रश्मयः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **विश्ववित्** ) सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामिन् जगदीश्वर! ( **पवमानस्य** ) पवित्रता देने वाले ( **ते** ) आपकी ( **सर्गाः** ) पावन आनन्दधाराएं ( **न** ) इस समय ( **सूर्यस्य** ) सूर्य की ( **रश्मयः इव** ) किरणों के समान ( **प्र असृक्षत** ) छूट रही हैं॥१॥

यहां उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता का विचार करके मनुष्यों को पाप-विचारों तथा पाप-कर्मों से स्वयं को हटाकर सदा पवित्र अन्तःकरण वाला होना चाहिए॥१॥

आगे फिर उसी परमात्मा का वर्णन है।

**९५९. केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि।**
**समुद्रः सोम पिन्वसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) जगत् को उत्पन्न करने वाले परमात्मन्! आप ( **दिवः परि** ) चमकीले सूर्य से ( **केतुम्** ) प्रकाश को ( **कृण्वन्** ) करते हुए ( **विश्वा रूपा** ) सब रूपों में ( **अभ्यर्षसि** ) व्याप्त हो। वह आप ( **समुद्रः** ) मेघ के समान ( **पिन्वसे** ) रस की वर्षा करते हो॥२॥

यहाँ लुप्तोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर जैसे सूर्य से प्रकाश को और बादल से वर्षा को बिखेरता है, वैसे ही ज्ञान का प्रकाश और आनन्द की वर्षा भी करता है॥२॥

आगे पुनः परमात्मा का ही विषय है।

**९६०. जज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि। क्रन्दन्**
**देवो न सूर्यः॥३॥**

**पदार्थ** :–हे ( **पवमान** ) पवित्रताप्रदायक, परमकारुणिक परमेश्वर! ( **विधर्मणि** ) ज्ञान, इच्छा, सुख आदि के धारणकर्त्ता जीवात्मा में ( **जज्ञानः** ) प्रकट होते हुए, ( **क्रन्दन्** ) उपदेश करते हुए आप ( **वाचम्** ) दिव्य सन्देश को ( **इष्यसि** ) प्रेरित करते हो। और, आप ( **देवः सूर्यः न** ) प्रकाशक सूर्य के समान हो।।३।।

यहाँ उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :–सब के अन्तरात्मा में पहले ही विद्यमान परमेश्वर प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि साधनों से जब प्रकट कर लिया जाता है, तब वह दिव्य सन्देश को सुनाता हुआ सूर्य के समान प्रकाश देता हुआ, मार्गदर्शक होता है।।३।।

( ३ )

ऋषिः–असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्दरूप सोमरसों का वर्णन है।

१ २र ३ १ २ ३ १ २
**९६१. प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः।**

३ २ ३ १ २
**श्रीणाना अप्सु वृञ्जते॥१॥**

**पदार्थ** :–( **पवमानासः** ) पवित्रता देने वाले, ( **इन्दवः** ) दीप्त तथा रस से सराबोर करने वाले ( **सोमासः** ) ब्रह्मानन्दरस ( **अधन्विषुः** ) जीवात्मा को प्राप्त हुए हैं। वे ( **श्रीणानाः** ) उस आत्मा को परिपक्व करते हुए ( **अप्सु** ) उसके द्वारा किये जाते हुए कर्मों में ( **वृञ्जते** ) अपने आपको छोड़ते हैं अर्थात् व्याप्त होते हैं।।१।।

**भावार्थ** :–ब्रह्म के पास से प्राप्त आनन्दरसों से परिपक्व और पूर्णता को प्राप्त मनुष्य शुभकर्मों का ही आचरण करता है, अशुभों का नहीं।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का वर्णन है।

३ १ २र ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**९६२. अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः।**

३ १ २र
**पुनाना इन्द्रमाशत॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रवता** ) ढालू प्रदेश पर ( **यतीः** ) बहते हुए ( **आपः न** ) जलों के समान ( **गावः** ) गतिमय अर्थात् सक्रिय ब्रह्मानन्दरूप सोमरस की धाराएं ( **अभि अधन्विषुः** ) जीवात्मा की ओर दौड़ रही हैं। ( **पुनानाः** ) पवित्रता करती हुई वे ( **इन्द्रम्** ) जीवात्मा को ( **आशत** ) व्याप्त कर रही हैं।।२।।

यहां उपमालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—जल जैसे निचले प्रदेश की ओर दौड़ते हुए उस प्रदेश को पवित्र करते हैं वैसे ही ब्रह्मानन्द नम्र जीवात्मा के प्रति दौड़ते हुए उसे पवित्र करते हैं।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा को सम्बोधन है।

**९६३. प्र पवमानः धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः।**
**नृभिर्यतो वि नीयते॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **पवमान** ) पवित्रता करने वाले ( **सोम** ) आनन्दरस के भण्डार परमात्मन्! ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा के लिए ( **मादनः** ) आनन्ददायक आप ( **प्र धन्वसि** ) उसे प्राप्त होते हो। ( **नृभिः** ) उपासक नरों से ( **यतः** ) ध्यान किये हुए आप ( **वि नीयते** ) विशेष रूप से हृदयप्रदेश में ले जाये जाते हो।।३।।

**भावार्थ** :—अरणियों में व्याप्त भी अग्नि प्रकट होने के लिए मन्थन की अपेक्षा रखता है, वैसे ही हृदय और जीवात्मा में पहले से ही विद्यमान भी परमेश्वर प्रकट होने के लिए ध्यान की अपेक्षा करता है।।३।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**९६४. इन्दो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे।**
**अरमिन्द्रस्य धाम्ने॥४॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्दो** ) रस के भण्डार, चन्द्रमा के समान आह्लाददायक परमेश्वर! ( **यत्** ) जब ( **अद्रिभिः** ) सिल-बट्टों के तुल्य ध्यानों से ( **सुतः** ) अभिषुत आप ( **पवित्रम्** ) पवित्र हृदय-देश में ( **परि दीयसे** ) व्याप्त होते हो, तब ( **इन्द्रस्य** )

जीवात्मा के ( धाम्ने ) तेज के लिए, अर्थात् जीवात्मा को तेज से प्रदीप्त करने के लिए ( अरम् ) पर्याप्त होते हो॥४॥

**भावार्थ** :—ध्यान से प्रकट किया गया परमेश्वर जीवात्मा को तेज से और ब्रह्मवर्चस से अनुप्राणित कर देता है॥४॥

आगे पुनः परमात्मा के विषय का वर्णन है।

**९६५. त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः।**
**सस्निर्यो अनुमाद्यः॥५॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) रस के भण्डार, शुभकर्मों में प्रेरक, चन्द्रमा के समान आह्लाददायक, सर्वान्तर्यामी, परमपिता जगदीश्वर! ( **नृमादनः** ) मनुष्यों को आनन्दित करने वाले, ( **चर्षणीधृतिः** ) मनुष्यों को धारण करने वाले ( **त्वम्** ) आप ( **पवस्व** ) हमें पवित्र कीजिए, ( **यः** ) जो आप ( **सस्निः** ) ( **सर्वथा** ) शुद्ध और ( **अनुमाद्यः** ) अनुनय द्वारा प्रसन्न करने योग्य हो॥५॥

**भावार्थ :—जिस विशुद्ध परमात्मा में पाप की कणिका भी नहीं है वह उपासकों को निर्मल करके पवित्र आनन्दरस से तृप्त करता है॥५॥**

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**९६६. पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः।**
**शुचिः पावको अद्भुतः॥६॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे रसागार, परमाह्लादक, जगदाधार परमेश्वर! ( **वृत्रहन्तमः** ) पापों को अतिशय नष्ट करने वाले, ( **उक्थेभिः** ) स्तोत्रों से ( **अनुमाद्यः** ) प्रसन्न करने योग्य, ( **शुचिः** ) पवित्र, ( **पावकः** ) पवित्र करने वाले, ( **अद्भुतः** ) आश्चर्यकारी गुण-कर्म स्वभाव वाले आप, हम उपासकों को ( **पवस्व** ) पवित्र कीजिए॥६॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं पापों का सब से बढ़कर विनाशक, पवित्र और अद्भुत है वह अन्यों को भी निष्पाप, पवित्र अन्तःकरण वाला और अद्भुत क्यों न करे?॥६॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर कैसा है, यह बताया गया है।

९६७. शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान्।
देवावीरघशंसहा॥७॥

**पदार्थ** :–( सुतः ) अभिषुत किया गया ( स सोमः ) वह रसों का भण्डार परमेश्वर ( शुचिः ) पवित्र, ( पावकः ) पवित्र करने वाला, ( मधुमान् ) मधुर, ( देवावीः ) दिव्यगुणी विद्वानों की रक्षा करने वाला, और ( अघशंसहा ) पापप्रशंसकों का विनाशक ( उच्यते ) कहा जाता है॥७॥

**भावार्थ** :–स्तुति और उपासना से प्रसन्न किया गया परमेश्वर परम आनन्द के समूह को प्रवाहित करता हुआ उपासकों द्वारा अत्यन्त मधुर और पापों का उन्मूलन करने वाला अनुभव किया जाता है॥७॥

( ४ )

**ऋषिः–असितः काश्यपो देवलो वा। देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति का विषय है।

९६८. प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत।
साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः॥१॥

**पदार्थ** :–( कविः ) क्रान्तद्रष्टा और मेधावी यह सोम अर्थात् रस का भण्डार परमात्मा ( देववीतये ) दिव्यगुणों को उत्पन्न करने के लिए ( अव्याः ) शुद्ध चित्तवृत्ति के ( वारेभिः ) विघ्ननिवारक उपाय प्रणव-जप आदियों से ( प्र अव्यत ) प्राप्त होता है। ( साह्वान् ) विपत्तियों को दूर करने वाला वह ( विश्वाः स्पृधः ) सब स्पर्धा करने वाले आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओं को ( अभि ) पराजित कर देता है॥१॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की उपासना से सब दिव्यगुण स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं और विघ्नकारी शत्रु परास्त हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के उपकारों का वर्णन है।

**९६९. स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति।**

**पवमानः सहस्त्रिणम्॥२॥**

**पदार्थ** :–(**पवमानः**) चित्त और आत्मा की शुद्धि करने वाला (**स हि**) वह सोम अर्थात् जगत् को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (**जरितृभ्यः**) स्तोताओं के लिए (**सहस्त्रिणम्**) हजार संख्या वाले, (**गोमन्तम्**) प्रशस्त गाय, प्रशस्त वाणी आदि से युक्त (**वाजम्**) धन को, अथवा (**गोमन्तम्**) अन्तःप्रकाशयुक्त (**वाजम्**) आत्मबल को (**आ इन्वति स्म**) प्राप्त कराता है।।२।।

**भावार्थ** :–प्रेय मार्ग का और श्रेय मार्ग का अवलम्बन करने वाले लोगों से ध्यान किया हुआ परमेश्वर उन्हें मनोवांछित सब श्रेय और प्रेय प्रदान कर देता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**९७०. परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती।**

**स नः सोम श्रवो विदः॥३॥**

**पदार्थ** :–हे परमात्मन् (**विश्वानि**) सब सांसारिक भोगविलास आदि को (**परि**) छोड़कर, आप ही हमारे द्वारा (**चेतसा**) चित्त से और (**मती**) मति से (**मृज्यसे**) अलंकृत किये जा रहे हो, क्योंकि आप हमें (**पवसे**) पवित्र करते हो। हे (**सोम**) परमैश्वर्यशालिन्! (**सः**) वह आप (**नः**) हमें (**श्रवः**) यश (**विदः**) प्राप्त कराओ।।३।।

**भावार्थ** :–जब मनुष्य बाह्य विषयों से मन को हटाकर और परमात्मा में ही केन्द्रित करके परमात्मा का ध्यान करता है तब वह उसे अत्यधिक पवित्रता और अविनश्वर यश प्रदान करता है।।३।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना है।

**९७१. अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम्।**

**इषं स्तोतृभ्य आ भर॥४॥**

**पदार्थ** :–हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता परमैश्वर्यशाली

परमेश्वर! आप (मघवद्भ्यः) दानी धनियों को (ध्रुवम्) स्थिर (रयिम्) धन, और (बृहत्) महान् (यशः) कीर्ति (अभ्यर्ष) प्राप्त कराओ। और (स्तोतृभ्यः) उपासकों के लिए (इषम्) विज्ञान तथा इष्ट सुख (आ भर) लाओ॥४॥

**भावार्थ** :—दानशील लोग ही धनप्राप्ति के अधिकारी होते हैं। और जो परमात्मा की उपासना करते हैं वे विवेकी तथा सुखी होते हैं॥४॥

अब परमात्मा कैसा है यह वर्णन करते हैं।

**९७२. त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ।**
**पुनानो वह्ने अद्भुत॥५॥**

**पदार्थ** :—हे (वह्ने) जगत् के भार के ढोने वाले, (अद्भुत) आश्चर्यकारी गुण, कर्म स्वभाव वाले, (सोम) सबको उत्पन्न करने वाले, सद्भावों को प्रेरित करने वाले, ऐश्वर्यशालिन् जगदीश्वर! **(पुनानः) हृदयों को पवित्र करते हुए (त्वम्) आप (राजा इव) सम्राट् के समान (सुव्रतः) सुकर्म करने वाले हो।** आप **(गिरः) वेदवाणियों में (आविवेशिथ)** प्रविष्ट हो, अर्थात् वेदवाणियां आपका ही वर्णन कर रही हैं, [क्योंकि ऋग्वेद कहता है कि 'जिसने ऋचा पढ़कर परमेश्वर को नहीं जाना उसे ऋचा से क्या लाभ]॥५॥ (ऋ० १.१६४-३९)

यहाँ उपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—जैसे कोई राजा राष्ट्र को उन्नत करने वाले ही कार्य करता है, वैसे ही विश्वब्रह्माण्ड के अधीश्वर परमात्मा के जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि सब कर्म, शुभ, निःस्वार्थ तथा परोपकार करने वाले ही होते हैं॥५॥

आगे परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन है।

**९७३. स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः।**
**सोमश्चमूषु सीदति॥६॥**

**पदार्थ** :—(वह्निः) जगत् के भार को ढोने वाला, (दुष्टरः) दुस्तर, (मृज्यमानः) श्रेष्ठ गुण, कर्म स्वभावों से अलंकृत होने

वाला ( स सोमः ) वह जगत्पति परमेश्वर ( अप्सु ) नद, नदी, समुद्र, बादल आदि के जलों में ( गभस्त्योः ) सौम्य एवं तैजस रूप वाली चन्द्र-सूर्य की किरणों में, ( चमूषु ) द्यावापृथिवी के मध्य विद्यमान विभिन्न लोकों में ( सीदति ) बैठा हुआ है॥६॥

**भावार्थ** :—अगणित ग्रह, उपग्रह, सूर्य नक्षत्र आदियों से युक्त इस अति विस्तीर्ण विश्वब्रह्माण्ड में कोई कण भर भी स्थान नहीं है जहां परमेश्वर विद्यमान न हो॥६॥

अगले मन्त्र में यह कहते हैं कि क्या करता हुआ परमात्मा कहाँ जाता है।

**९७४. क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि।**
**दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम्॥७॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) जगत् के सर्जन करने हारे परमात्मन्! ( **क्रीडुः** ) खेल-खेल में विश्व को चलाने वाले तथा ( **मखः न** ) यज्ञ के समान ( **मंहयुः** ) दूसरों को लाभ पहुँचाने की इच्छा वाले आप ( **स्तोत्रे** ) स्तुतिपरायण मनुष्य के लिए ( **सुवीर्यम्** ) सुवीर्य से युक्त आत्म-बल ( **दधत्** ) प्रदान करते हुए, उसके ( **पवित्रम्** ) निर्मल अन्तःकरण में ( **गच्छसि** ) व्याप्त होते हो॥७॥

यहाँ उपमालंकार है॥७॥

**भावार्थ** :—जैसे यज्ञ सबके उपकार के लिए होता है वैसे ही परमेश्वर भी दूसरों के उपकार में लगा हुआ स्तोता के अन्तरात्मा में बल, उत्साह, पुरुषार्थ और कर्मयोग की प्रेरणा देता है॥७॥

( ५ )

**ऋषिः—अवत्सारः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**९७५. यवंयवं नो अन्धसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव।**
**विश्वा च सोम सौभगा॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) जगदाधार, सर्वैश्वर्यवान् ब्रह्माण्ड के अधिपति परमात्मन्! आप ( **अन्धसा** ) रस से ( **पुष्टंपुष्टम्** )

अत्यधिक परिपुष्ट (**यवंयवम्**) जौ आदि सब भोग्य पदार्थों को (**विश्वा सौभगा च**) और सब सौभाग्यों को (**नः**) हमारे लिए (**परिस्रव**) चारों ओर प्रवाहित करो॥१॥

**भावार्थ** :—जिस जगत्पति ने सब बहुमूल्य पदार्थ रचे हैं, उसी की कृपा से मनुष्य अपने पुरुषार्थ द्वारा उन्हें पा सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के साथ उससे प्रार्थना की गयी है।

**९७६. इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः।**
**नि बर्हिषि प्रिये सदः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) चन्द्रमा के समान आह्लादक प्रेममय प्रभो! (**यथा**) जैसी महान् (**तव**) आपकी (**स्तवः**) स्तुति एवं महिमा है और (**यथा**) जितना महान् (**ते**) आपके (**अन्धसः**) आनन्दरस का (**जातम्**) समूह है, वैसे ही महान् आप हमारे (**प्रिये बर्हिषि**) प्रिय हृदयासन पर (**नि सदः**) बैठिए॥२॥

**भावार्थ** :—**अपनी महिमा के अनुरूप महान्** रसमय जगदीश्वर हमें प्राप्त होकर आनन्दरस से सराबोर कर दे॥२॥

अब जगदीश्वर का आह्वान करते हैं।

**९७७. उत नो गोविदश्ववित् पवस्व सोमान्धसा।**
**मक्षूतमेभिरहभिः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) सर्वैश्वर्यसम्पन्न राजाधिराज परमात्मन्! (**उत**) और, आप (**अन्धसा**) आनन्दरस के साथ (**गोवित्**) गौएं प्राप्त कराने वाले वा दिव्य प्रकाश प्राप्त कराने वाले, (**अश्ववित्**) घोड़े प्राप्त कराने वाले वा प्राण-बल प्राप्त कराने वाले होकर (**मक्षूतमेभिः अहभिः**) शीघ्रतम दिनों में अर्थात् जल्दी ही (**नः**) हमें (**पवस्व**) प्राप्त होओ॥३॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर हमें पुरुषार्थी बनाकर दिव्य सम्पत्ति वा भौतिक सम्पत्ति से परिपूर्ण करे॥३॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की शक्ति का वर्णन करते हुए उसका आह्वान किया गया है।

**९७८. यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य।**
**स पवस्व सहस्रजित्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् क्रियाशील जीवात्मन्! (**यः**) जो आप (**जिनाति**) विघ्नों वा विपत्तियों को विनष्ट करते हो, (**न जीयते**) किसी से पराजित नहीं होते हो, प्रत्युत (**अभीत्य**) आक्रमण करके (**शत्रुम्**) काम, क्रोध आदि शत्रु को (**हन्ति**) मारते हो, (**सः**) वह आप (**सहस्रजित्**) हजारों आन्तरिक एवं बाह्य सम्पदाओं के विजेता होते हुए (**पवस्व**) प्रगति करो॥४॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर का उपासक उसकी मित्रता प्राप्त करके प्रचण्ड से प्रचण्ड बाह्य तथा आन्तरिक शत्रुओं को जीत सकता है॥४॥

**( ६ )**

**ऋषिः—जमदग्निः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में जगत्पति परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**९७९. यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये।**
**ताभिः पवित्रमासदः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) आह्लाद देने वाले, चन्द्रतुल्य, रस के भण्डार जगदीश्वर! (**याः ते**) जो आपकी (**मधुश्चुतः**) मधुस्राविणी (**धाराः**) आनन्द की धाराएं (**ऊतये**) हमारी रक्षा के लिए (**असृग्रम्**) आपके पास से छूटती हैं (**ताभिः**) उन धाराओं के साथ, आप (**पवित्रम्**) हमारे पवित्र अन्तरात्मा में (**आसदः**) विराजो॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के ध्यानी योगी लोग अपने अन्तरात्मा में झरते हुए आनन्द के झरने का अनुभव करते हुए परम तृप्ति प्राप्त करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में आनन्दरस के प्रवाह की आकांक्षा की गयी है।

९८०. सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वाराण्यव्यया।
सीदन्नृतस्य योनिमा॥२॥

**पदार्थ** :–हे पवमान सोम अर्थात् प्रवाहशील ब्रह्मानन्दरस! (**ऋतस्य योनिम्**) सत्य के आश्रय परमात्मा के (**आसीदन्**) पास स्थित हुआ (**सः**) वह प्रशंसनीय तू (**अव्यया**) कठिनाई से अतिक्रमण किये जाने योग्य तथा (**वाराणि**) योगमार्ग से रोकने वाले व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य आदि विघ्नों को (**तिरः**) तिरस्कृत करके (**इन्द्राय पीतये**) जीवात्मा के पान के लिए (**अर्ष**) प्रवाहित हो॥२॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के पास से बहा हुआ परमानन्द का प्रवाह स्तोता की आत्मभूमि को सींचता हुआ उसे सद्गुणरूप सस्यों से श्यामल कर देता है॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

९८१. त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः।
वरिवोविद् घृतं पयः॥३॥

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) रसागार परमेश्वर! (**स्वादिष्ठः**) सब से अधिक मधुर और (**वरिवोवित्**) ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले (**त्वम्**) आप (**अङ्गिरोभ्यः**) प्राणायाम के अभ्यासी योगसाधकों के लिए (**घृतम्**) तेज और (**पयः**) आनन्दरस को (**परि स्रव**) क्षरित कीजिए॥३॥

**भावार्थ** :–जो लोग परमात्मा के ध्यान में मग्न हो जाते हैं उन्हें वह सर्वाधिक रसीला, सर्वाधिक मधुर और सर्वाधिक तेजस्वी अनुभूत होता है॥३॥

(७)

**ऋषिः–अरुणो वैतहव्यः॥ देवता–अग्निः॥ छन्दः–जगती॥ स्वरः–निषादः॥**

प्रथम मन्त्र में भौतिक अग्नि के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा का प्रकाशन है।

९८२. तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतय:। यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्न मासनि॥१॥

**पदार्थ** :—हे ( अग्ने ) भौतिक अग्नि! ( तव ) तेरी ( श्रिय: ) शोभाएं ( वर्ष्यस्य ) बरसाऊ मेघ की ( विद्युत: इव ) बिजलियों के समान, और ( उषसाम् ) उषाओं के ( इतय: इव ) आगमनों के समान ( आ चिकित्रे ) ज्ञात होती हैं, ( यत् ) जब ( ओषधी: ) ओषधियों को ( वनानि च ) और जंगलों को ( अभि ) लक्ष्य करके ( सृष्ट: ) प्रज्वलित हुआ तू ( स्वयम् ) अपने आप ( आसनि ) अपने ज्वालारूप मुख में ( अन्नम् ) खाद्य को ( परि चिनुषे ) चारों ओर से संगृहीत करता है॥१॥

यहां उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की ही यह प्रशस्ति है कि उसने भयंकर ज्वालाओं से जटिल उस देदीप्यमान अग्नि को उत्पन्न किया है जो जंगलों को भस्म करे नवीन वनस्पतियों को अंकुरित करने में सहायक होता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

९८३. वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे। आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य धक्षत:॥२॥

**पदार्थ** :—हे ( अग्ने ) भौतिक अग्नि! ( वातोपजूत: ) वायु से कंपित किया हुआ, ( वशान् अनु ) अभीष्ट वनस्पतियों को लक्ष्य करके ( इषित: ) प्रेरित हुआ तू ( तृषु ) तुरन्त ( यत् ) जब ( अन्ना ) अन्नों अर्थात् भक्ष्य वनस्पति आदियों में ( वेविषत् ) व्याप्त होता हुआ ( वितिष्ठसे ) इधर-उधर चंचल होता है, तब ( अजरस्य ) जीर्ण न होते हुए तथा ( धक्षत: ) जलाते हुए ( ते ) तुझ अग्नि के ( शर्धांसि ) ज्वालारूपी तेज ( रथ्य: यथा ) रथारोही योद्धाओं के समान ( पृथक् ) पृथक्-पृथक् दिशाओं में

(आयतन्ते) उठते हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे रथारोही योद्धा लोग संग्राम में पृथक्-पृथक् विभिन्न दिशाओं में शत्रुओं पर प्रहार करते हैं, वैसे ही जंगलों को भस्म करने के लिए उद्यत अग्नि-ज्वालाएं पृथक्-पृथक् विभिन्न दिशाओं में जलाने का कार्य करती हैं॥२॥

इस प्रकार भौतिक अग्नि के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकाशित करके अब अग्नि नाम से जगदीश्वर की स्तुति करते हैं।

**९८४. मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं मतिम्। त्वामर्भस्य हविषः समानमित् त्वां महो वृणते नान्यं त्वत्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**मेधाकारम्**) धारणावती बुद्धि के प्रदाता, (**विदथस्य**) ब्रह्माण्ड-यज्ञ के वा मनुष्यों के जीवनयज्ञ के (**प्रसाधनम्**) सिद्ध करने वाले, (**होतारम्**) सुख आदि के दाता, (**परिभूतरम्**) अतिशय रूप से विघ्नों को दूर करने वाले, (**मतिम्**) सर्वज्ञ (**त्वाम् अग्निम्**) तुझ अग्रनायक को (**समानम् इत्**) समानरूप से (**अर्भस्य हविषः**) छोटे त्याग के लिए और (**त्वाम्**) तुझे ही (**महः**) महान् त्याग के लिए, लोग (**वृणते**) चुनते हैं, अर्थात् आदर्श रूप से अपने सम्मुख स्थापित करते हैं, (**त्वत् अन्यम्**) तुझ से भिन्न को (**न**) नहीं॥३॥

यहाँ विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। 'तारम्' 'तरम्' में छेकानुप्रास है॥३॥

**भावार्थ** :—त्याग और परोपकार के लिए परमेश्वर को ही आदर्श रूप में सब को अपने सम्मुख रखना चाहिए और उसके पीछे चलकर स्वयं भी त्याग एवं परोपकार करना चाहिए॥३॥

(८)

**ऋषिः—उरुचक्रिरात्रेयः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में मित्र और वरुण की स्तुति है।

९८५. पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
मित्र वंसि वां सुमतिम्॥१॥

**पदार्थ** :—हे ( **मित्र वरुण** ) परमात्मा और जीवात्मा, राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री, अध्यापक और उपदेशक, प्राण-अपान! ( **वाम्** ) तुम्हारी ( **अवः** ) रक्षा ( **नूनम्** ) निश्चय ही ( **पुरूरुणा चित् हि** ) अतिशय विशाल ( **अस्ति** ) है। इसलिए मैं ( **वाम्** ) तुम्हारी ( **सुमतिम्** ) अनुग्रह-बुद्धि को ( **वंसि** ) भजूं॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक और प्राण-अपान की सुरक्षा पाकर शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से हम अति उन्नत हो सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में मित्र और वरुण से प्रार्थना की गयी है।

९८६. ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च।
वयं वां मित्रा स्याम॥२॥

**पदार्थ** :—हे ( **अद्रुह्वाणा** ) द्रोह न करने वाले, मित्र-वरुण अर्थात् परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक और प्राण-अपानो! ( **ता वाम्** ) उन तुम दोनों की, हम स्तुति करते हैं। तुम्हारी अनुकूलता से हम ( **इषम्** ) अन्न, रस, धन, विज्ञान आदि ( **धाम च** ) और तेज ( **सम्यक्** ) समुचित प्रकार से ( **अश्याम** ) प्राप्त करें। हे ( **मित्रा** ) सब के मित्रो! ( **वयम्** ) हम स्तोता लोग ( **वाम्** ) तुम्हारे ( **स्याम** ) हो जाएं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक और प्राण-अपान यथायोग्य उपयोग किये जाने पर महान् उपकार करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उनसे प्रार्थना है।

९८७. पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
साह्याम दस्यून् तनूभिः॥३॥

**पदार्थ** :—हे ( **मित्रा** ) मित्रभूत परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक वा प्राण-अपानो! तुम ( **पायुभिः** )

पालन-साधनों से ( नः ) हमारी ( पातम् ) पालना करो। ( उत ) और ( सुत्रात्रा ) उत्तम त्राण करने वाले गुण-समूह से ( त्रायेथाम् ) हमारा त्राण करो। तुम्हारी सहायता से हम ( तनूभिः ) शरीरों द्वारा ( दस्यून् ) क्षयकारी आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को ( सासह्याम ) पराजित कर देवें।।३।।

**भावार्थ** :-परमात्मा-जीवात्मा, राष्ट्रपति-प्रधानमन्त्री, अध्यापक-उपदेशक, और प्राण-अपान की सहायता पाकर पुरुषार्थ करके हम सदा ही सुरक्षित हो सकते हैं।।३।।

( ९ )

**ऋषिः-कुरुसुतिः काण्वः॥ देवता-इन्द्रः॥ छन्दः-गायत्री॥ स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा के वीररस-पान का विषय है।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ ३२

**९८८. उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः।**

१ २ ३ २ ३ २

**सोममिन्द्र चमूसुतम्॥१॥**

**पदार्थ** :-हे ( इन्द्र ) विघ्नों का विदारण करने में समर्थ जीवात्मन्! तू ( ओजसा सह ) तेज के साथ ( उत्तिष्ठन् ) ऊंचा उठता हुआ ( चमू ) मन-बुद्धि रूप कटोरों में ( सुतम् ) निचोड़े गए ( सोमम् ) वीर-रस को ( पीत्वा ) पीकर ( शिप्रे ) जबड़े आदि अंगों को ( अवेपयः ) चलाता है। [जबड़े आदि को चलाना शत्रु के प्रति उग्रभाव के प्रकाशनार्थ होता है]।।१।।

**भावार्थ** :-मनुष्य अपने आत्मा में वीरता के भावों को तरंगित करके, सब विघ्नों का विदारण करके आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं का उच्छेद करे।।१।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा के वीरकर्म की प्रशंसा है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र

**९८९. अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम्।**

२ ३ १ २ ३ १ २

**इन्द्र यद्दस्युहाभवः॥२॥**

**पदार्थ** :-हे ( इन्द्र ) शरीरधारी जीवात्मन्! ( स्पर्धमानम् ) स्पर्धा करते हुए ( त्वा ) तुझे ( उभे रोदसी ) धरती-आकाश दोनों अथवा माता-पिता दोनों ( अनु अददेताम् ) अनुकूल उत्साह वा

साधुवाद देते हैं, ( यत् ) जब तू ( दस्युहा ) दस्युओं का विनाशक ( अभवः ) होता है॥२॥

**भावार्थ** :—जब मनुष्य उत्साहित होकर दुर्विचारों और दुष्टजनों का वध करता है तब उस कार्य में सब उसका समर्थन करते हैं॥२॥

जीवात्मा में वीरता तभी आती है जब वह ज्ञानी होता है। इसलिए अगले मन्त्र में आचार्य के पास से शिष्य के ज्ञानग्रहण का विषय है।

**९९०. वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतावृधम्।**
**इन्द्रात् परितन्वं ममे॥३॥**

**पदार्थ** :—शिष्य कहा रहा है—( **अहम्** ) मैं शिष्य ( **इन्द्रात्** ) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य से ( **अष्टापदीम्** ) सात विभक्तियों तथा सम्बोधन इन आठ पदों से युक्त अर्थात् सुबन्तरूप, ( **नवस्रक्तिम्** ) प्रथम, मध्यम, उत्तम पुरुषों के एकवचन, द्विवचन बहुवचन रूप नौ विभागों से युक्त अर्थात् तिङन्तरूप, ( **ऋता वृधम्** ) सत्यज्ञान को बढ़ाने वाली, ( **तन्वम्** ) (विस्तृत) ( **वाचम्** ) वाणी को ( **परिममे** ) ग्रहण करता हूं। अभिप्राय यह है कि सब सुबन्त और तिङन्त रूपों को जानकर सम्पूर्ण वाङ्मय में पण्डित हो जाता हूं॥३॥

**भावार्थ** :—सब विद्यार्थियों को चाहिए कि व्याकरणशास्त्र को भलीभाँति पढ़कर तथा अन्य वेदांगों में भी प्रवीण होकर, वेदार्थों को जानकर, विद्वान् होकर अपने विद्यार्थियों को पढ़ाएं॥३॥

( १० )

**ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र और अग्नि के नाम से आत्मा और मन तथा राजा एवं सेनापति का आह्वान किया गया है।

**९९१. इन्द्राग्नी युवामिमे३ऽभि स्तोमा अनूषत।**
**पिबतं शम्भुवा सुतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन तथा राजा और सेनापति! (**युवाम्**) तुम्हारी (**इमे स्तोमाः**) ये स्तोत्र (**अभि अनूषत**) प्रशंसा कर रहे हैं। हे (**शम्भुवा**) कल्याणकारियो! तुम (**सुतम्**) अभिषुत वीररस को (**पिबतम्**) पीओ॥१॥

**भावार्थ** :—वीरता और उद्बोधन को प्राप्त करके ही मनुष्य के आत्मा और मन तथा राजा और सेनापति वैयक्तिक एवं सामाजिक उन्नति करने योग्य होते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय को कहते हैं।

**१९२. या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।**
**इन्द्राग्नी ताभिरा गतम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**नरा**) नेता (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन वा राजा एवं सेनापति! त्यागशील, परोपकारी जन के लिए (**याः**) जो (**वाम्**) तुम्हारी (**नियुतः**) लाख संख्या वाली (**पुरुस्पृहः**) बहुत महत्त्वाकांक्षा वाली उदात्त कामनाएं हैं (**ताभिः**) उनके साथ, तुम (**आ गतम्**) आओ॥२॥

**भावार्थ** :—शरीर में मनुष्य का अन्तरात्मा और मन तथा राष्ट्र में राजा और सेनाध्यक्ष दूसरों का हित करने वाले मनुष्य का ही उपकार करते हैं, स्वार्थ की कीचड़ में लिप्त मनुष्य का नहीं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**१९३. ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्।**
**इन्द्राग्नी सोमपीतये॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**नरा**) नेता (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन एवं राजा और सेनापति! (**इदं सवनम् उप सुतम्**) तुम्हारे लिए यह उद्बोधनस्तोत्र गाया गया है। तुम (**ताभिः**) उन पूर्वमन्त्रोक्त लाख उदात्त कामनाओं के साथ (**सोमपीतये**) वीररस के पानार्थ (**आगच्छतम्**) आओ॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य के आत्मा में तथा राजा एवं सेनाध्यक्ष में

जो बहुत ही महत्त्वाकांक्षाएं रहती हैं वे वीरता से ही सिद्ध की जा सकती हैं। आध्यात्मिक उत्कर्ष भी वीरता से ही सम्भव है, आलसीपन से नहीं॥३॥

( ११ )

ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५०३ क्रमांक पर परमात्मा और वानप्रस्थ के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ प्रकारान्तर से परमात्मा का विषय दर्शाते हैं।

**९९४. अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।**
**सीदन्योनौ वनेष्वा॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) जगत् के स्रष्टा परमात्मन्! ( **योनौ** ) अन्तरिक्ष में ( **वनेषु** ) जलों में ( **आसीदन्** ) रहने वाले, ( **द्युमत्तमः** ) देदीप्यमान, ( **रोरुवत्** ) गर्जना करते हुए बिजलीरूप अग्नि के समान, ( **योनौ** ) घर में, और ( **वनेषु** ) जंगलों में, सब जगह ( **आसीदन्** ) स्थिर हुए, ( **द्युमत्तमः** ) सब से बढ़कर तेजस्वी ( **रोरुवत्** ) कर्तव्य का उपदेश करने वाले आप ( **द्रोणानि अभि** ) आत्मा, मन, बुद्धि, आदि द्रोणकलशों के प्रति ( **अर्ष** ) आइए॥१॥

यहाँ श्लेषमूलक वाचकलुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—घर हो या जंगल हो, पहाड़ हो या गुफा हो, नदियां हों या समुद्र हो, भूमि हो या आकाश हो, बिजली हो या अन्तरिक्ष हो, शरीर हो या आत्मा हो, सभी जगह विराजमान भी जगदीश्वर जब तक ध्यान से प्रकाशित न हो जाए तब तक प्रत्यक्ष नहीं होता॥१॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रसों का आह्वान है।

**९९५. अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।**
**सोमा अर्षन्तु विष्णवे॥२॥**

**पदार्थ** :—( **सोमाः** ) ब्रह्मानन्द-रस ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा के

लिए, (**वायवे**) वेगवान् मन के लिए, (**वरुणाय**) वरने योग्य बुद्धितत्त्व के लिए, (**मरुद्भ्यः**) इन्द्रियों के लिए, और (**विष्णवे**) शरीर में व्यापक प्राण के लिए (**अप्साः**) कर्म को देने वाले एवं पुरुषार्थ की प्रेरणा करने वाले होकर (**अर्षन्तु**) प्रवृत्त होवें।।२।।

**भावार्थ** :—जब परमात्मा के पास से ब्रह्मानन्द-रस आत्मा में उतरते हैं तब शरीर का अंग-अंग स्फूर्तिमान् और पौरुषयुक्त हो जाता है।।२।।

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**९९६. इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः।**
**आ पवस्व सहस्त्रिणम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) परमैश्वर्यशालिन् जगदीश्वर! आप (**नः**) हमारे (**तोकाय**) सन्तान के लिए और (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**विश्वतः**) सब ओर से (**इषम्**) अन्न तथा विज्ञान (**दधत्**) प्रदान करते हुए (**सहस्रिणम्**) हजार संख्या वाले आन्तरिक तथा बाह्य ऐश्वर्य को (**आ पवस्व**) प्राप्त कराइये।।३।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर के ध्यान से बल पाकर मनुष्य सारे विशाल एवं भौतिक ऐश्वर्य को पा सकता है।।३।।

## (१२)

**ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५१५ क्रमांक पर सोम ओषधि के रस के विषय में तथा ब्रह्मानन्द के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ भेड़ के बालों से निर्मित वस्त्रखण्डों से गोदुग्ध को छानने का वर्णन है।

**९९७. सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम्। अश्वयेव**
**हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सोतृभिः**) गोदुग्ध को छानने वालों द्वारा (**अवीनां**

स्नुभिः ) भेड़ के बालों से निर्मित, पर्वतशिखर के समान फैले हुए वस्त्रों से (अधिष्वाणः ) छाना जाता हुआ ( सोमः ) गोदुग्ध ( अश्वया इव ) शीघ्रगामिनी नदी के समान ( हरिता ) तेज ( धारया ) धारा से ( याति ) कड़ाहों में छनता है, ( मन्द्रया ) आनन्ददायिनी ( धारया ) धारा के साथ ( याति ) कड़ाहों में छनता है।।१।।

यहाँ उपमालंकार है। 'याति धारया' की पुनरुक्ति में लाटानुप्रास है।।१।।

**भावार्थ** :–जिस देश में गोदुग्ध की धाराएं बहती हैं वहाँ के लोग हृष्ट, पुष्ट, अधिक बलवान् होते हुए, दीर्घायुष्य पाते हुए, चिरकाल तक यज्ञादि कर्म करते हुए और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए आनन्दित रहते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में दुधारू गायों का वर्णन है।

**९९८. अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः।**
**समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते॥२॥**

**पदार्थ** :–( यदा ) जब ( गोमान् ) गायों का स्वामी ( गोभिः ) गायों के साथ ( अनूपे ) अधिक जल वाले देश में ( अक्षाः ) निवास करता है, तब ( दुग्धाभिः ) दुही हुई भी गायों से ( सोमः ) दूध ( अक्षाः ) झरता रहता है, अर्थात् गायों में इतना अधिक दूध होता है कि दुह लेने के बाद भी पर्याप्त दूध थनों में बचा होकर चूता रहता है। ( समुद्रं न ) समुद्र में जैसे ( संवरणानि ) नदियों के जल पहुंचते हैं, वैसे ही गायों के दूध विशाल कड़ाह आदि में ( अग्मन् ) जाते हैं। ( मन्दी ) हर्षदायक गोदुग्धा-रूप सोम ( मदाय ) गोस्वामियों के हर्ष के लिए ( तोशते ) दुहने के समय शब्द करता है।।२।।

यहाँ उपमालंकार है। 'रक्षाः' की आवृत्ति में यमक है।।२।।

**भावार्थ** :–जिस घर या परिवार में बहुत दूध देने वाली धेनुएं हैं वहाँ के निवासी यथेच्छ गाय के दूध, दही, मक्खन आदि का सेवन करते हुए और गाय के घी से यज्ञ करते हुए तथा परमात्मा का ध्यान करते हुए सदा खूब प्रसन्न रहते हैं।।२।।

( १३ )

**ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और आचार्य से प्रार्थना की गयी है।

**९९९. यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु।**
**तन्नः पुनान आ भर॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) दिव्य आनन्द, विद्या आदि परम ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर वा आचार्य! ( **यत्** ) जो ( **चित्रम्** ) अद्भुत, ( **उक्थ्यम्** ) प्रशंसनीय, ( **दिव्यम्** ) योगसिद्धि, मोक्ष आदि दिव्य, तथा ( **पार्थिवम्** ) सोना, हीरे, मोती, चक्रवर्ती राज्य आदि भौतिक ( **वसु** ) धन है, ( **तत्** ) उस धन को, आप ( **नः** ) हमें ( **पुनानः** ) पवित्र करते हुए ( **आ भर** ) प्रदान कीजिए॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा को प्राप्त हुए और आचार्य द्वारा तरह-तरह की आध्यात्मिक तथा भौतिक विद्याओं में पारंगत किये हुए हम सकल दिव्य एवं पार्थिव धन को एकत्र कर सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है।

**१०००. वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि।**
**हरिः सन्योनिमासदः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मन् वा आचार्य! ( **वृषा** ) आनन्द, विद्या आदि की वर्षा करने वाले आप ( **आयूंषि** ) हमारे जीवनों को ( **पुनानः** ) पवित्र करते हुए ( **बर्हिषि अधि** ) अध्यात्मयज्ञ वा विद्यायज्ञ में ( **स्तनयन्** ) उपदेश करते हुए ( **हरिः सन्** ) पाप, दुर्व्यसन, दुःख आदि को हरने वाले होते हुए ( **योनिम्** ) आत्मारूप सदन में वा गुरुकुल-सदन में ( **आसदः** ) विराजमान होते हो॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा हमारे हृदय में स्थित होकर अपनी प्रेरणा द्वारा और गुरु गुरुकुल में स्थित होकर सब विद्याओं के पढ़ाने तथा चरित्रनिर्माण के द्वारा हमारा उपकार करते हैं, इसलिए उनका पूजन और सत्कार सब को करना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में सोम नाम से परमेश्वर तथा इन्द्र नाम से आचार्य को कहा जा रहा है।

**१००१. युवं हि स्थः स्व:पती इन्द्रश्च सोम गोपती।**
**ईशाना पिप्यतं धियः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) जगत्स्रष्टा परमात्मन्! आप (**इन्द्रः च**) और अज्ञान को दूर करने वाले आचार्य (**युवं हि**) तुम दोनों ही (**स्व:पती**) ज्ञानप्रकाश के स्वामी और (**गोपती**) वाणी के अधिपति (**स्थः**) हो। (**ईशाना**) ज्ञान और वाणी के स्वामी आप दोनों हमारी (**धियः**) श्रेष्ठ प्रज्ञाओं और श्रेष्ठ क्रियाओं को (**पिप्यतम्**) बढ़ाओ॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना से और गुरु के सत्कार से श्रेष्ठ सत्यज्ञान को प्राप्त करके मनुष्य अपने जीवन को उन्नत कर सकते हैं॥३॥

## (१४)

**ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४११ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा, राजा और सेनापति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ मन रूप सेनापति को प्रबोधन दिया गया है।

**१००२. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।**
**तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र**
**नोऽविषत्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**वृत्रहा**) पाप-नाशक (**इन्द्रः**) वीर मन (**नृभिः**) विजय की आकांक्षा वाले मनुष्यों द्वारा (**मदाय**) हर्ष के लिए, और (**शवसे**) बल के लिए (**वावृधे**) बढ़ाया अर्थात् उत्साहित किया जाता है। (**ऊतिम्**) रक्षक (**तम् इत**) उस मन को ही, हम (**महत्सु**) बड़े (**आजिषु**) आन्तरिक और बाह्य संग्रामों में तथा (**अर्भे**) छोटे संग्राम में (**हवामहे**) पुकारते हैं। (**सः**) वह मन (**वाजेषु**) उन युद्धों में (**नः**) हमारी (**अविषत्**) रक्षा

करें॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का मन यदि मर गया तो वह जीवन में कोई भी उन्नति नहीं कर सकता और मन यदि उत्साह से भर गया तो सब विघ्नों को और शत्रुओं को तिरस्कृत करता हुआ वह सब जगह विजय प्राप्त करता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः मन को प्रबोधित किया गया है।

**१००३. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादृदिः। असि दभ्रस्य चिद् वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वीर**) पराक्रमशील मन! तू (**सेन्यः**) सेनाओं में निपुण अर्थात् सेनापति (**असि**) है, और (**भूरि**) भूरि-भूरि (**परादृदिः**) शत्रुओं को दूर फेंकने वाला (**असि**) है। साथ ही (**दभ्रस्य चित्**) क्षुद्र का भी (**वृधः**) बढ़ाने वाला (**असि**) है। तू (**यजमानाय**) यजनशील, परोपकारी मनुष्य के लिए (**शिक्षसि**) बल प्रदान करता है। (**सुन्वते**) वीररस उत्पन्न करने वाले मनुष्य को (**ते**) तेरा (**भूरि**) बहुत अधिक (**वसु**) ऐश्वर्य प्राप्त होता है॥२॥

**भावार्थ** :—जब मनुष्य अपने मन को सेनापति पद पर अभिषिक्त करके आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को जीतने का यत्न करते हैं तब विजय निश्चित मिलती है॥२॥

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ४१४ क्रमांक पर जीवात्मा, राजा और सेनापति के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ प्रसंगागत मन का विषय ही वर्णित है।

**१००४. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम्। युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**यत्**) जब (**आजयः**) आन्तरिक या बाह्य देवासुरसंग्राम (**उदीरते**) उठते हैं, तब (**धृष्णवे**) जो शत्रुओं को परास्त करने वाला है उसी मनुष्य को (**धनम्**) ऐश्वर्य (**धीयते**)

मिलता है। हे (इन्द्र) विघ्नों को विदीर्ण करने वाले मेरे वीर मन! तू (**मदच्युता**) शत्रुओं के मद को चूर करने वाले (हरी) ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय-रूप घोड़ों को (**युङ्क्ष्व**) ज्ञान के ग्रहण और कर्म के करने के लिए नियुक्त कर। (**कम्**) किसी को अर्थात् शत्रु को (हनः) मार, (**कम्**) किसी को अर्थात् मित्र को (**वसौ दधः**) ऐश्वर्य में स्थापित कर। (**अस्मान्**) हम मित्रों को (**वसौ दधः**) ऐश्वर्य में स्थापित कर अर्थात् ऐश्वर्य प्रदान कर।।३।।

**भावार्थ** :—आन्तरिक या बाह्य युद्धों के उपस्थित होने पर मन को उत्साहित करके, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को अपने-अपने विषयों में भली-भांति नियुक्त करके, ठीक-ठीक शत्रुओं की गतिविधि जानकर, उन पर प्रहार करके सब शत्रुओं को पराजित करना और मित्रों को सत्कृत करना चाहिए।।३।।

## (१५)

**ऋषिः—गोतमो राहुगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४०९ क्रमांक पर आत्मिक तथा राष्ट्रिय स्वराज्य के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ सूर्य के स्वराज्य का वर्णन करते हैं।

**१००५. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः। या**
**इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु**
**स्वराज्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**गौर्यः**) चमकीली सूर्यकिरणें (**इत्था**) सचमुच (**वि-सुवतः**) विशेषरूप से भूमि पर बरसते हुए बादल के (**स्वादोः**) स्वादु (**मधोः**) मधुर जल का (**पिबन्ति**) पान करती हैं, (**याः**) जो सूर्यकिरणें (**वृष्णा**) वर्षा करने वाले (**इन्द्रेण**) सूर्य की (**सयावरीः**) सहगामिनी होती हुई (**शोभथा**) शोभन प्रकार से (**मदन्ति**) आनन्दित करती हैं। (**वस्वीः**) निवासक वे किरणें (**स्वराज्यम्**) सूर्य के स्वराज्य के (**अनु**) अनुकूल चलती हैं।।१।।

**भावार्थ** :—अहो, सूर्य का स्वराज्य कैसा दर्शनीय है! किस प्रकार सूर्य-किरणें निर्बाध होकर मेघ से बरसाये हुए नदी, नद, समुद्र आदि में व्याप्त जल को पीकर, पुनः बादल बनाकर फिर मेघ-जल को भूमि पर बरसा देती हैं। वैसे ही हमें भी चाहिए कि हम भी आन्तरिक स्वराज्य तथा अपने राष्ट्र के स्वराज्य की अर्चना करें॥१॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१००६. ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।**
**प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं**
**वस्वीरनु स्वराज्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस इन्द्र नामक सूर्य की (**ताः पृश्नयः**) वे रंग-बिरंगी किरणें (**पृशनायुवः**) मानो चन्द्रमा के साथ स्पर्श को चाहती हुई (**सोमम्**) चन्द्रमा को (**श्रीणन्ति**) प्रकाश से परिपक्व करती हैं। (**इन्द्रस्य**) सूर्य की, वे (**प्रियाः**) प्रिय (**धेनवः**) किरणें (**सायकम्**) दुर्भिक्ष आदि का अन्त करने वाले (**वज्रम्**) मेघ के विद्युत्‌रूप वज्र को (**हिन्वन्ति**) प्रेरित करती हैं। इस प्रकार (**वस्वीः**) वे निवासक किरणें (**स्वराज्यम्**) सूर्य के स्वराज्य के (**अनु**) अनुकूल चलती हैं॥२॥

यहाँ 'पृशनायुवः' में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षा अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—सूर्य-किरणों का ही यह महान् कार्य है कि वे सूर्य के स्वराज्य का अनुसरण करती हुई चन्द्र आदि लोकों को प्रकाशित करती हैं, मेघों में विद्युत्‌रूप वज्र को गरजाती हुई वर्षा करती हैं और सब को बसाती हैं। उसी प्रकार मनुष्यों को भी अपना आन्तरिक एवं बाह्य स्वराज्य प्रकाशित करना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में सूर्यकिरणों और सेनाओं के स्वराज्य का वर्णन है।

**१००७. ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।**
**व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु**
**स्वराज्यम्॥३॥**

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) सूर्य–किरणों के पक्ष में। ( **प्रचेतसः** ) प्रज्ञापक ( **ताः** ) वे सूर्यकिरणें ( **नमसा** ) चन्द्र आदि लोकों के प्रति झुकने के द्वारा ( **अस्य** ) इस सूर्यरूप इन्द्र के ( **सहः** ) बल को ( **सपर्यन्ति** ) बढ़ाती हैं। और ( **पूर्वचित्तये** ) सूर्य के क्षितिज में उदय होने से पूर्व ही उसका ज्ञान कराने के लिए ( **अस्य** ) इस सूर्य के ( **पुरूणि** ) बहुत से ( **व्रतानि** ) प्रकाशप्रदान आदि कर्मों को ( **सश्चिरे** ) कर देती हैं। इस प्रकार ( **वस्वीः** ) वे निवासक किरणें ( **स्वराज्यम्** ) सूर्य के अपने साम्राज्य को ( **अनु** ) अनुक्रम से बढ़ाती हैं।

( **द्वितीय** ) सेना के पक्ष में। ( **प्रचेतसः** ) प्रकृष्ट चित्त वाली ( **ताः** ) वे सेनाएं ( **नमसा** ) नमस्कार के साथ ( **अस्य** ) इस सेनाध्यक्षरूप इन्द्र के ( **सहः** ) बल की ( **सपर्यन्ति** ) प्रशंसा करती हैं। और ( **अस्य** ) इस सेनाध्यक्ष को ( **पूर्वचित्तये** ) पहले ही ज्ञान करा देने के लिए ( **पुरूणि** ) बहुत से ( **व्रतानि** ) शत्रुओं में भय उत्पन्न करना आदि कर्मों को ( **सश्चिरे** ) कर देती हैं। इस प्रकार ( **वस्वीः** ) अपने राष्ट्र के निवास में कारणभूत वे सेनाएं ( **स्वराज्यम्** ) स्वराज्य के ( **अनु** ) अनुकूल आचरण करती हैं।।३।।

**भावार्थ** :–सूर्यकिरणें जैसे सूर्य के साथ मिलकर और सेनाएं जैसे सेनापति के साथ मिल कर स्वराज्य को बढ़ाती हैं, वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर के साथ मिलकर अपने आध्यात्मिक स्वराज्य को बढ़ायें।।३।।

( १६ )

**ऋषिः–जमदग्निः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४७३ क्रमांक पर आनन्दरस के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ सोम ओषधि के रस का तथा ज्ञानरस का विषय वर्णित किया जाता है।

१ २ ३ १ २र ३ १ ३र ३ २
**१००८. असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।**
३र२ ३ १ २
**श्येनो न योनिमासदत्॥१॥**

**पदार्थ** :–( **प्रथम** ) सोमौषधि के रस के विषय में। ( **गिरिष्ठाः** ) पर्वतों पर उत्पन्न, ( **दक्षः** ) बलदायक ( **अंशुः** ) सोम ओषधि

का रस ( **मदाय** ) पीने पर उत्साहवर्धन के लिए ( **अप्सु** ) जलों में ( **असावि** ) निचोड़ा गया है। ( **श्येनः न योनिम्** ) बाज पक्षी जैसे अपने आवास वृक्ष पर बैठता है, वैसे ही यह सोम ओषधि का रस ( **योनिम्** ) द्रोणकलश में ( **आसदत्** ) आकर स्थित हो गया है।

( **द्वितीय** ) ज्ञानरस के विषय में। ( **गिरिष्ठाः** ) वेदवाणी में स्थित, ( **दक्षः** ) आत्मबल देने वाला ( **अंशुः** ) ज्ञानरस ( **मदाय** ) आनन्द प्राप्त कराने के लिए ( **अप्सु** ) विद्यार्थियों के कर्मों में ( **असावि** ) अभिपुत किया जाता है। ( **श्येनः न योनिम्** ) बाज पक्षी जैसे अपने आवास-वृक्ष पर बैठता है, वैसे ही यह ज्ञानरस ( **योनिम्** ) जीवात्मारूप सदन में ( **आसदत्** ) आकर स्थित होता है।।१।।

इस मन्त्र में उपमालंकार तथा श्लेष है।।१।।

**भावार्थ** :—कर्मरहित अकेला ज्ञान नीरस और निष्फल होता है।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**१००९. शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम्।**
**स्वदन्ति गावः पयोभिः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) सोम ओषधि के रस के विषय में। ( **देववातम्** ) सूर्य या मेघ द्वारा बढ़ाये हुए ( **अप्सु** ) जलों में ( **धौतम्** ) धोये हुए, ( **नृभिः** ) ऋत्विज् मनुष्यों से ( **सुतम्** ) अभिपुत किये गये ( **शुभ्रम् अन्धः** ) स्वच्छ सोमरस को ( **गावः** ) गौएं ( **पयोभिः** ) अपने दूधों से ( **स्वदन्ति** ) स्वादु बनाती हैं।

( **द्वितीय** ) ज्ञानरस के विषय में। ( **देववातम्** ) विद्वान् आचार्य से प्रेरित, ( **अप्सु** ) कर्मों में, आचरणों में ( **धौतम्** ) पहुंचाये हुए, ( **नृभिः** ) अन्य मार्गदर्शक गुरुजनों से ( **सुतम्** ) उत्पन्न किये गये ( **शुभ्रम् अन्धः** ) स्वच्छ ज्ञानरस को ( **गावः** ) वेदवाणियां ( **पयोभिः** ) ओंकाररूप दूध से ( **स्वदन्ति** ) मधुर कर देती हैं।।२।।

यहाँ श्लेषालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—भौतिक ज्ञान अध्यात्म ज्ञान से मिलकर महान् कल्याण करने वाला हो जाता है।।२।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

१०१०. आदीमश्वं न हेतारमशूशुभन्नमृताय।
मधो रसं सधमादे॥३॥

**पदार्थ :–** ( **प्रथम** ) सोम ओषधि के रस के विषय में। ( **आत्** ) उसके अनन्तर अर्थात् सोमरस में गाय का दूध मिलाने के पश्चात्, ( **हेतारम्** ) बल बढ़ाने वाले ( **ईम् मधोः रसम्** ) इस मधुर सोम के रस को, योद्धा लोग ( **अमृताय** ) युद्ध में विजय की प्राप्ति के निमित्त ( **अशूशुभन्** ) पीने के लिए पात्रों में अलंकृत करते हैं, ( **हेतारम् अश्वं न** ) जैसे शीघ्रगामी घोड़े को अश्वपाल योग्य अलंकारों से अलंकृत करते हैं।

( **द्वितीय** ) ज्ञानरस के विषय में ( **आत्** ) गुरु के पास से ज्ञान की उपलब्धि के अनन्तर ( **हेतारम्** ) पुरुषार्थ को बढ़ाने वाले ( **ईम् मधोः रसम्** ) इस मधुर ज्ञानरस को, शिष्यगण ( **अमृताय** ) मोक्ष की प्राप्ति के लिए ( **अशूशुभन्** ) योगाभ्यासों से अलंकृत करते हैं।।३।।

यहाँ श्लेष और श्लिष्टोपमा अलंकार हैं।।३।।

**भावार्थ :–** जैसे पीया हुआ सोम ओषधि का रस बल की वृद्धि करने वाला होता हुआ युद्ध में विजय प्राप्त कराता है, वैसे ही आचार्य से ग्रहण किया गया ज्ञान योगाभ्यास से मिलकर मोक्ष प्राप्त कराता है।।३।।

( १७ )

**ऋषिः–१ ऊर्ध्वसद्मा, २ कृतयशाः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–काकुभः प्रगाथः ( १ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती )॥ स्वरः–१ ऋषभः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५७९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधन की गयी थी। यहाँ योगिराज आचार्य को सम्बोधन है।

१०११. अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।
वि कोशं मध्यमं युव॥१॥

**पदार्थ :–** हे ( **इषः पते** ) विज्ञान के स्वामी योगिप्रवर आचार्य! आप ( **द्युम्नम्** ) अध्यात्म तेज, ( **बृहद् यशः** ) विशाल कीर्ति, हम शिष्यों को ( **अभि** ) प्राप्त कराइये। हे ( **देव** ) योगविद्या से प्रकाशित विद्वन्! आप ( **देवयुम्** ) परमात्मदेव के इच्छुक मुझको

(दिदीहि) परमात्मा का दर्शन कराकर प्रकाशित कर दीजिए। **(मध्यमं कोशम्)** पंच कोशों में से बीच में स्थित मेरे मनोमय कोश को (वि युव) उद्घाटित कर दीजिए, जिससे मैं विज्ञानमय और आनन्दमय कोश में आरोहण कर सकूं॥१॥

**भावार्थ** :—योगविद्या में निष्णात आचार्य के अनुशासन में स्थित शिष्य सारी अध्यात्म-विद्या पाकर परमात्मा के साक्षात्कार में समर्थ हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर आचार्य को कहा जा रहा है।

**१०१२. आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः। वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे **(सुदक्ष)** शुभ योगबल से युक्त आचार्यप्रवर! **(चम्वोः)** द्यावापृथिवी के तुल्य परा और अपरा विद्याओं में **(सुतः)** निष्णात आप **(विशाम्)** प्रजाओं के **(वह्निः)** भार को उठाने वाले **(विश्पतिः न)** प्रजापालक राजा के समान **(आ वच्यस्व)** प्रशंसा प्राप्त कीजिए, **(गविष्टये)** दिव्य प्रकाश के इच्छुक मुझ शिष्य के लिए **(धियः)** प्रज्ञानों को **(जिन्वन्)** प्रेरित करते हुए आप **(दिवः)** मूर्धा-लोक से **(वृष्टिम्)** धर्ममेघ समाधि में होने वाली ज्योति की वर्षा को, और **(अपः)** आनन्द-जल की **(रीतिम्)** धारा को **(पवस्व)** प्रवाहित कीजिए॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—योगविद्या में पारंगत आचार्य भौतिक विज्ञानों के पाण्डित्य के साथ-साथ योगविद्या का पाण्डित्य भी शिष्यों में उत्पन्न करता हुआ उनके सम्मुख मानो दिव्य ज्योति एवं ब्रह्मानन्द की धारा को प्रवाहित कर देता है॥२॥

(१८)

**ऋषिः—त्रितः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५७० क्रमांक पर परमात्मा के

महत्त्व के विषय में व्याख्या की गयी थी। यहाँ वही विषय प्रकारान्तर से कहा जा रहा है।

**१०१३. प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।**
**विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता॥१॥**

**पदार्थ** :–( **प्राणा** ) सब को प्राण देने वाला, ( **शिशुः** ) शिशु के समान प्रेम करने योग्य, ( **महीनाम्** ) मंगल, बुध, बृहस्पति, चन्द्रमा आदि की भूमियों के पृष्ठ पर ( **ऋतस्य** ) सूर्य की ( **दीधितिम्** ) किरणावलि को ( **हिन्वन्** ) भेजता हुआ, पवमान सोम अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ( **विश्वा** ) सब ( **प्रिया** ) प्रिय वस्तुओं में ( **परि भुवत्** ) चारों ओर से व्याप्त है। ( **अध** ) और ( **द्विता** ) दो प्रकार के इसके कार्य हैं–बर्फ, नद, नदी, समुद्र, चन्द्रमा, बादल आदि सौम्य कार्य तथा आग, बिजली, सूर्य, आदि तैजस कार्य ।।१।।

**भावार्थ :–जो जगदीश्वर सब प्राणियों को प्राण देता है, सूर्य के प्रकाश को सब जगह बिखेरता है, सर्वान्तर्यामी होता हुआ सब जगत् की व्यवस्था करता है, उसकी सब मनुष्य आराधना क्यों करें?।।१।।**

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है।

**१०१४. उप त्रितस्य पाष्यो३रभक्त यद् गुहा पदम्।**
**यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम्॥२॥**

**पदार्थ** :–( **यत्** ) क्योंकि, वह पवमान सोम अर्थात् सर्वान्तर्यामी जगत्स्रष्टा परमेश्वर ( **पाष्योः** ) द्यावापृथिवी की ( **गुहा** ) गुफाओं में भी ( **त्रितस्य** ) पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ रूप तीन स्थानों में स्थित सूर्य के ( **पदम्** ) किरण-समूह को ( **उप अभक्त** ) पहुंचाता है, ( **अध** ) इस कारण ( **यज्ञस्य** ) शरीर में संगत जीवात्मा के ( **सप्त धामभिः** ) पांच ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि इन सात धामों से ( **प्रियम्** ) उस प्रिय परमेश्वर की, पूजा करो।।२।।

**भावार्थ** :–परमात्मा की कैसी अद्भुत व्यवस्था है कि सूर्य की किरणें विभिन्न लोकों के भूगर्भ में भी पहुंचकर वहाँ अपने

ताप से सुवर्ण आदि धातुओं को उत्पन्न कर देती हैं॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के कार्यों का वर्णन है।

**१०१५. त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वैरयद्रयिम्।**
**मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**त्रितस्य**) सूर्य के (**त्रीणि**) तीन पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक रूप पृष्ठ हैं। उन (**पृष्ठेषु**) तीनों पृष्ठों में, उस पवमान सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमेश्वर ने (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**ऐरयत्**) प्रेरित किया हुआ है। साथ ही (**सुक्रतुः**) उस सुकर्मा परमेश्वर ने (**अस्य**) इस सूर्य के (**योजना**) योजनों को, अर्थात् सूर्य कितने योजन विस्तार वाला है इस माप को भी (**वि मिमीते**) मापा हुआ है॥३॥

**भावार्थ** :—भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक में सब जगह ही जगदीश्वर ने विशिष्ट ऐश्वर्य रखे हुए हैं। सब ग्रह, उपग्रह, सूर्य, नक्षत्र, नीहारिका आदियों का बनाने वाला वह उनके परिमाण को भी ठीक-ठाक जानता है॥३॥

**(१९)**

**ऋषिः—रेभसूनू काश्यपौ॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर का आह्वान है।

**१०१६. पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः।**
**इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रस के भण्डार जगत्पति परमात्मन्! (**सुतः**) आत्मा में प्रकट हुए, (**मधुमत्तरः**) अत्यन्त मधुर आप (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए, (**विष्णवे**) शरीर में व्यापक प्राण के लिए, और (**देवेभ्यः**) इन्द्रियों के लिए (**वाजसातये**) बलप्रदानार्थ (**पवित्रे**) पवित्र हृदय में (**धारया**) आनन्द की धारा के साथ (**पवस्व**) प्रवाहित होओ॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास से आनन्द का झरना झरने पर जीवात्मा, मन, बुद्धि आदि सभी रस से सिक्त और कृतकृत्य हो

जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का वर्णन है।

**१०१७. त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः।**
**वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) पवित्रतादायक रस के भण्डार जगदीश्वर (**हरिम्**) पाप के हरने वाले आपको (**विधर्मणि**) विशेष रूप से सद्गुणों के धारक (**पवित्रे**) पवित्र अन्तरात्मा में (**अद्रुहः**) द्रोहरहित (**धीतयः**) धीवृत्तियाँ (**रिहन्ति**) चाटती हैं, ध्याती हैं, (**जातम्**) नवजात (**वत्सम्**) बछड़े को (**मातरः न**) जैसे गौ माताएं चाटती हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे धेनुएं अपने बछड़े को जीभ से चाटती हुई आनन्द अनुभव करती हैं, वैसे ही मनुष्य परमात्मा को ध्याते हुए आनन्द से तरंगित होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**१०१८. त्वं द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे।**
**प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**महिव्रत**) महान् कर्मों के कर्ता सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**द्यां च**) द्यौ लोक को (**पृथिवीं च**) और भूलोक को भी (**अति**) लांघकर (**जभ्रिषे**) सब को धारण किये हुए हो। हे (**पवमान**) सर्वान्तर्यामिन् आपने (**महित्वना**) अपनी महिमा से (**द्रापिम्**) रक्षा-कवच को (**प्रति अमुञ्चथाः**) धारण किया हुआ है, अर्थात् आपकी महिमा ही आपका रक्षा-कवच है, क्योंकि अलौकिक आपको कवच आदि भौतिक साधनों की अपेक्षा नहीं होती। अथवा, (**द्रापिम्**) निद्रा के (**प्रति अमुञ्चथाः**) छोड़ा हुआ है, अर्थात् सदैव जागरूक होने से आप निद्रा-रहित हो॥३॥

**भावार्थ** :—न केवल द्युलोक तथा भूलोक को, किन्तु उनसे परे भी जो कुछ है उस सब को भी जगदीश्वर ही धारण करता है। वह भौतिक कवच के विना भी रक्षित रहता है और नींद के

विना भी विश्राम को प्राप्त रहता है॥३॥

(२०)

**ऋषिः—मन्युर्वासिष्ठः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५४० क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ ब्रह्मानन्दरस का वर्णन है।

**१०१९. इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय। हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा॥१॥**

**पदार्थ** :—(**गोन्योघाः**) मन, बुद्धि, प्राण एवं इन्द्रियों में प्रवाहित होने वाला, (**वाजी**) वेगवान्, (**इन्दुः**) सराबोर करने वाला ब्रह्मानन्दरस (**पवते**) प्रवाहित हो रहा है। (**सोमः**) अभिषुत वह ब्रह्मानन्दरस (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**मदाय**) उत्साह के लिए (**सहः**) बल (**इन्वन्**) प्रेरित करता है। वह रस (**रक्षः**) पाप को (**हन्ति**) विनष्ट करता है, (**अरातिम्**) अदानवृत्ति को (**परिबाधते**) दूर करता है। (**वृजनस्य**) आत्मिक बल का राजा वह (**वरिवः**) आध्यात्मिक धन को (**कृण्वन्**) उत्पन्न करता है॥१॥

**भावार्थ** :—योगाभ्यास द्वारा आनन्दरस की नदी जीवात्मप्रदेश में जब बहती है तब सब दोष दूर हो जाते हैं और चित्त निर्मल हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्दरस का वर्णन है।

**१०२०. अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः। इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अध**) और, (**अद्रिदुग्धः**) मन-बुद्धि रूप सिलबट्टों से अभिषुत वह ब्रह्मानन्द-रूप सोम (**मध्वा धारया**) मधुर धारा से (**पृचानः**) संपृक्त करता हुआ (**तिरः रोम**) रोमांच उत्पन्न

करता हुआ (**पवते**) प्रवाहित होता है। (**देवः**) प्रकाश का दाता, (**मत्सरः**) मद-जनक (**इन्दुः**) सराबोर करने वाला वह ब्रह्मानन्दरस (**देवस्य**) दिव्यगुणयुक्त (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा की (**सख्यम्**) मैत्री को (**जुषाणः**) सेवन करता हुआ, उसके (**मदाय**) उत्साह के लिए होता है॥२।

यहाँ ध-र-द-म आदि की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्त्यनुप्रास अलंकार है। 'देवो, देव' में छेकानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :-ब्रह्म के पास से बही हुई आनन्दधाराएं जब जीवात्मा को नहला देती हैं तब अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाला जीवन्मुक्त वह बड़े से बड़े दुःख को भी तिनके के बराबर भी नहीं समझता॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि बहता हुआ ब्रह्मानन्दरस क्या करता है।

**१०२१. अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्। इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये॥३॥**

**पदार्थ** :-(**देवः**) दिव्यगुणमय ब्रह्मानन्दरूप सोमरस (**देवान्**) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि को (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ। (**स्वेन रसेन**) अपने रस से (**पृञ्चन्**) स्नान कराता हुआ (**व्रतानि अभि**) कर्मों में (**पवते**) प्रवाहित होता है। (**इन्दुः**) आर्द्र करने वाला आनन्दरस (**ऋतुथा**) समय-समय पर (**धर्माणि**) सत्य, न्याय, दया आदि धर्मों को (**वसानः**) धारण करता हुआ (**दश क्षिपः**) दस इन्द्रियों या दस प्राणों को (**अव्ये सानौ**) पहुंचने योग्य उन्नति-शिखर पर (**अव्यत**) पहुंचा देता है॥३॥

**भावार्थ** :-ब्रह्मानन्द रस जब जीवन में व्याप्त हो जाता है तब मनुष्य के सब अंगों को, सब प्राणों को, सब मन-बुद्धि आदियों को अपने प्रभाव से नचाता हुआ सा चमत्कृत करता है॥३॥

(२१)

**ऋषिः-वसुश्रुत आत्रेयः॥ देवता-अग्निः॥ छन्दः-पङ्क्तिः॥ स्वरः-पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४१९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ आचार्य को सम्बोधन करते हैं।

**१०२२. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम्। यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (देव) ज्ञान-प्रकाश के प्रदाता (**अग्ने**) विद्वन् आचार्य! हम (ते) आपके (**द्युमन्तम्**) तेजस्वी (**अजरम्**) पुराना न होने वाले ज्ञान-समूह को (**इधीमहि**) अपने अन्दर प्रदीप्त करते हैं। (**यत् ह**) जो (**स्या**) वह (**ते**) आपकी (**पनीयसी**) अतिशय स्तुति-योग्य (**समित्**) ज्ञान-दीप्ति (**द्यवि**) प्रकाशित आपके आत्मा में (**दीदयति**) प्रदीप्त हो रही है, उस (**इषम्**) व्याप्त ज्ञानदीप्ति को (**स्तोतृभ्यः**) ईश्वर-स्तोता हम शिष्यों को (**आ भर**) प्रदान कीजिए॥१॥

**भावार्थ** :—जो कोई भी विद्याएं आचार्य जानता है उन सभी को शिष्यों के लिए भलीभांति देवे, जिससे शिष्य विद्वान् होकर अपने शिष्यों को पढ़ायें। इस प्रकार विद्या के पढ़ने-पढ़ाने का क्रम आगे-आगे विना विघ्न के चलता रहे॥१॥

अगले मन्त्र में आचार्य के अधीन निवास करता हुआ शिष्य यज्ञाग्नि में हवि की आहुति देता हुआ कहता है।

**१०२३. आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते। सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**शुक्रस्य**) दीप्त (**ज्योतिषः**) तेज के (**पते**) स्वामिन्! यह (**ते**) तेरे लिए (**ऋचा**) वेदमन्त्र के उच्चारण के साथ (**हविः**) हवि है। हे (**सुश्चन्द्र**) उत्तम आह्लाद देने वाले, (**दस्म**) रोगों को नष्ट करने वाले, (**विश्पते**) प्रजापालक, (**हव्यवाट्**) होमी हुई हवि को जलाकर सूक्ष्म करके वायु के माध्यम से स्थानान्तर में पहुंचाने वाले (**अग्ने**) यज्ञाग्नि! (**तुभ्यम्**) तेरे लिए, हवि (**हूयते**) होमी जा रही है। तू (**स्तोतृभ्यः**)

मन्त्रपाठ द्वारा तेरे गुणवर्णन में तत्पर हम लोगों के लिए (इषम्) अभीष्ट आरोग्य आदि (आ भर) प्रदान कर॥२॥

**भावार्थ** :–गुरुकुल में विद्या पढ़ने के लिए निवास करते हुए सब छात्र नियम से प्रातः–सायम् अग्निहोत्र करते हुए वायुशुद्धि द्वारा आरोग्य आदि को और तेजस्विता को प्राप्त कर सुखी होवें॥२॥

अगले मन्त्र में शिष्य परमेश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं।

**१०२४. ओभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रीणीष आसनि।**
**उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य**
**आ भर॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (सुश्चन्द्र) शुभ आह्लाद देने वाले, (विश्पते) प्रजापालक अग्रनायक परमात्मन्! आप (**आसनि**) खोले हुए मुख के तुल्य **खाली स्थान में (उभे दर्वी)** द्युलोक–पृथिवीलोक दोनों को (**आश्रीणीषे**) चारों ओर से परिपक्व करते हो। (उत उ) और, हे (**शवसः पते**) बल के अधीश्वर! (**उक्थेषु**) प्रशंसित धर्म–कर्मों में (नः) हमें (उत्पुपूर्याः) पूर्ण करो। (स्तोतृभ्य) हम स्तोताओं के लिए (इषम्) अभीष्ट गुण–कर्म–स्वभाव आदि (आभर) लाओ॥३॥

**भावार्थ** :–जैसे जगदीश्वर द्यावापृथिवी को परिपक्व और परिपूर्ण करता है वैसे ही वह स्तोताओं को परिपक्व मति वाला तथा धर्म–कर्म में पूर्ण करे॥३॥

(२२)

**ऋषिः–नृमेधः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–उष्णिक्॥ स्वरः–ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ३८८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ आचार्य शिष्यों को कह रहा है।

**१०२५. इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।**
**ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्यो! तुम ( **विप्राय** ) मेधावी, ( **बृहते** ) महान्, ( **ब्रह्मकृते** ) जल, अन्न, धन, वेद, विद्युत्, प्राण, मन, वाणी, श्रोत्र, हृदय आदियों के रचयिता, ( **विपश्चिते** ) विद्वान् सर्वज्ञ ( **पनस्यवे** ) दूसरों को स्तुतिमान् अर्थात् कीर्तिमान् बनाना चाहने वाले, ( **इन्द्राय** ) विघ्नों के विदारक परमेश्वर के लिए ( **बृहत् साम** ) 'त्वामिद्धि हवामहे' साम०, २३४, ८०९ इस ऋचा पर गाये जाने वाले बृहत् नामक साम को ( **गायत** ) गाओ॥१॥

**भावार्थ** :—आचार्य के अधीन गुरुकुल में निवास करने वाले शिष्यों को चाहिए कि वे अनेक गुणों वाले जगदीश्वर को लक्ष्य करके बृहत् आदि सामों को गायें और स्वयं भी उसके गुणों का अनुकरण करें॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर के गुण-कर्मों का वर्णन है।

**१०२६. त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः।**
**विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) जगदीश्वर! ( **त्वम्** ) आप ( **अभिभूः** ) सब काम, क्रोध आदि शत्रुओं को परास्त करने वाले ( **असि** ) हो, ( **त्वम्** ) आपने ( **सूर्यम्** ) सूर्य को ( **अरोचयः** ) चमकाया है। आप ( **विश्वकर्मा** ) सब कर्मों को करने वाले, ( **विश्वदेवः** ) सबको आनन्द देने वाले तथा ( **महान्** ) महान् ( **असि** ) हो॥२॥

**भावार्थ** :—जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रकाशप्रदान आदि कर्मों से तथा आनन्द देने के द्वारा हमारा उपकार करता है, उस अनन्त महिमा वाले परमेश्वर के स्तुतिगीत सब को गाने चाहिएं॥२॥

आगे फिर वही विषय कहा गया है।

**१०२७. विभ्राजं ज्योतिषा स्वा३रगच्छो रोचनं दिवः।**
**देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) महान् महिमा वाले जगत्पति! ( **ज्योतिषा** ) तेज से ( **विभ्राजन्** ) देदीप्यमान, आप ( **दिवः** ) द्युलोक के ( **रोचनम्** ) दीप्तिमान् ( **स्वः** ) सूर्य में ( **अगच्छः** ) पहुंचे हुए हो।

(**देवाः**) विद्वान् लोग (**ते**) आपकी (**सख्याय**) मैत्री के लिए (**येमिरे**) स्वयं को केन्द्रित करते हैं, लालायित रहते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—ज्योतिष्मान् परमेश्वर से ही ज्योति पाकर आग, बिजली, सूर्य, तारे, चांदी, सोना, हीरे आदि सब चमकते हैं। इसलिए मनुष्यों को भी ज्योति पाने के लिए उसकी मित्रता का आश्रय लेना चाहिए॥३॥

## (२३)

**ऋषिः—गोतमो राहुगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में क्रमांक ३४७ पर जीवात्मा और सेनाध्यक्ष के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहां परमात्मा जीवात्मा को कह रहा है।

**१०२८. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि। आ
त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) सखा जीवात्मा! मैंने (**ते**) तेरे लिए (**सोमः**) आनन्दरस (**असावि**) उत्पन्न किया है( हे (**शविष्ठ**) बलिष्ठ! हे (**धृष्णो**) कामादि शत्रुओं के पराजेता! (**आगहि**) आ। (**इन्द्रियम्**) आत्मबल (**त्वा**) तुझे (**आ पृणक्तु**) परिपूर्ण करे, (**सूर्यः न**) जैसे सूर्य (**रश्मिभिः**) किरणों से (**रजः**) पृथिवी, चन्द्रमा आदि लोकों को, परिपूर्ण करता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के साथ मैत्री करके जीवात्मा अविच्छिन्न आनन्द-रस की धारा को और अनन्त आत्मबल को पा लेता है॥१॥

अथ परमेश्वरो जीवात्मानं नवजन्मनि देहं प्रवेशयति।

**१०२९. आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**वृत्रहन्**) पाप, विघ्न आदि के विनाशक जीवात्मन्! तू (**रथम्**) नवीन शरीर-रूप रथ पर (**आ तिष्ठ**) आकर बैठ। (**ब्रह्मणा**) मुझ परमेश्वर ने (**ते**) तेरे लिए (**हरी**) प्राण-अपान वा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय (**युक्ता**) तुझमें नियुक्त किये हैं। कुमारावस्था में गुरुकुल में प्रविष्ट होने के पश्चात् (**ग्रावा**) विद्वान् उपदेष्टा गुरु (**वग्नुना**) उपदेश-रूप शब्द से (**ते मनः**) तेरे मन को (**अर्वाचीनम्**) धर्म के अभिमुख (**सु कृणोतु**) भली-भांति करे॥२॥

**भावार्थ** :–जीवात्मा माता के गर्भ में प्रवेश करके जन्म लेकर माता और पिता जी की गोद में खेलता हुआ उनके सान्निध्य से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर कुमार अवस्था में यथोचित समय पर गुरुकुल में जाकर गुरुओं से शास्त्राध्ययन करता हुआ मन को धर्म में लगाए॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि गुरुकुल से स्नातक बनकर किस प्रकार क्या करे।

**१०३०. इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्।**
**ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**अप्रतिधृष्टशवसम्**) जिसके बल को कोई दवा नहीं सकता ऐसे, (**इन्द्रम्**) आचार्यों से विद्या ग्रहण किये हुए विद्वान् स्नातक को (**इत्**) ही (**हरी**) रथ में नियुक्त उत्तम घोड़े एवं जलयान तथा विमान में नियुक्त विद्युत् और वायु (**ऋषीणाम्**) मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों के (**सुष्टुतीः**) शुभ मन्त्रार्थोपदेशों में (**मानुषाणां यज्ञं च**) और मनुष्यों के यज्ञ-समारोह में (**उपवहतः**) ले जाएं॥३॥

**भावार्थ** :–आचार्य के गर्भ से द्वितीय जन्म प्राप्त करके विद्वान् द्विज सामाजिक उत्थान के कार्यों में भाग लेता हुआ धर्मपूर्ण यज्ञादि समारोहों में जाएं॥३॥

इस खण्ड में गुरु-शिष्य और परमात्मा-जीवात्मा का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्वखण्ड के साथ संगति है।

**इति षष्ठोऽध्यायः तृतीयप्रपाठकश्च समाप्तः॥**

# चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

(१)

**ऋषिः—अकृष्टा माषाः, सिकतानिवावरी, पृश्नयोऽजाश्च॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

आरम्भ में परमात्मा का और उसके रस का वर्णन है।

**१०३१. ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां**
**जनिता विभूवसुः। दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं**
**मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः॥१॥**

**पदार्थ :—(यज्ञस्य ज्योतिः)** देवपूजा, संगतिकरण, दान आदि रूप यज्ञ का प्रकाश करने वाला, **(देवानाम्)** प्रकाशक सूर्य, चन्द्रमा आदियों का और विद्वानों का **(पिता)** पालनकर्ता, **(जनिता)** सब को जन्मदेने वाला, **(विभूवसुः)** प्रचुर वा व्यापक धन वाला पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता जगत्पति परमेश्वर **(प्रियं मधु)** प्रिय मधुर वर्षाजल को, ज्ञानरस को वा आनन्दरस को **(पवते)** भूमि पर वा उपासक के अन्तरात्मा में प्रवाहित करता है, और **(स्वधयोः)** द्यावापृथिवी में **(अपीच्यम्)** छिपे हुए **(रत्नम्)** चांदी, सोना, मणि, मोती आदि रत्नों को **(दधाति)** परिपुष्ट करता है। इसका **(इन्द्रियः रसः)** जीवात्मा से सेवित ज्ञानरस वा आनन्दरस **(मत्सरः)** स्फूर्तिदायक तथा **(मदिन्तमः)** अत्यन्त उत्साहप्रद होता है॥१॥

**भावार्थ :—**जो सब भौतिक रसों को तथा आध्यात्मिक रस को प्रवाहित करता है वह जगदीश्वर किसका वन्दनीय नहीं है॥१॥

अगले मन्त्र में वर्षक बादल और परमात्मा का वर्णन है।

**१०३२. अभिक्रन्दन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो**
**विचक्षणः। हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानो-**
**ऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा॥२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) बादल के पक्ष में। (**वाजी**) बलवान् सोम अर्थात् वर्षा करने वाला बादल (**अभिक्रन्दन्**) गर्जता हुआ, वर्षाजल द्वारा (**कलशम्**) भूमण्डलरूप कलश में (**अर्षति**) जाता है। वह (**दिवः पतिः**) अन्तरिक्ष का अधिपति, (**शतधारः**) बहुत धारों वाला, और (**विचक्षणः**) कार्यकुशल है। (**हरिः**) जलों को जहाँ-तहाँ ले जाने वाला वह (**मित्रस्य**) सूर्य के (**सदनेषु**) स्थिति-स्थान पर्वत आदि में (**सीदति**) जाता है। साथ ही (**वृषा**) वर्षा करने वाला वह (**अविभिः**) वेगगामिनी (**सिन्धुभिः**) नदियों के द्वारा (**मर्मृजानः**) भूमि के भागों को अतिशय शुद्ध करता है।

(**द्वितीय**) परमात्मा के पक्ष में। (**वाजी**) बलवान् सोम अर्थात् आनन्दवर्षक परमात्मा (**अभिक्रन्दन्**) उपदेश देता हुआ, (**कलशम्**) आत्मा रूप कलश में (**अर्षति**) जाता है। वह (**दिवः पतिः**) जीवात्मा का पालनकर्ता, शतधारः आनन्द की सैकड़ों धाराओं को बहाने वाला, और (**विचक्षणः**) विशेष द्रष्टा है। (**हरिः**) पापों का हर्ता वह (**मित्रस्य**) अपने सखा जीवात्मा के (**सदनेषु**) अन्नमय, प्राणमय मनोमय आदि कोशों में (**सीदति**) स्थित होता है। साथ ही, (**वृषा**) सुख बरसाने वाला वह (**अविभिः**) रक्षा करने वाली (**सिन्धुभिः**) आनन्दरस की नदियों से (**मर्मृजानः**) उपासक के अन्तःकरण को शुद्ध करता है॥२॥

यहां श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—बादल की जल-वर्षा से पृथिवी के समान परमात्मा की आनन्दवर्षा से योगसाधक की मनोभूमि सरस और निर्मल हो जाती है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर का कर्तृत्व वर्णित है।

**१०३३. अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि। अग्रे वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन्! (**पवमानः**) पवित्रकर्ता आप (**सिन्धुनाम्**) नदियों के (**अग्रे**) आगे-आगे (**अर्षसि**) चलते हो, अर्थात् उन्हें आप ही प्रवाहित करते हो।

(**वाचः**) मनुष्यों से उच्चारण की जाती हुई वाणी के (**अग्रे**) आगे (**गच्छसि**) चलते हो, अर्थात् आपकी दी हुई वाक्शक्ति से ही मनुष्य व्यक्त वाणी का उच्चारण करते हैं। (**अग्रियः**) आगे स्थित आप (**गोषु**) सूर्य किरणों में (**गच्छसि**) पहुंचते हो, अर्थात् सूर्य किरणों को भी आप ही प्रकाशित एवं प्रेरित करते हो। और, (**वाजस्य**) अन्न तथा संग्राम के भी (**अग्रे**) आगे, आप ही जाते हो, अर्थात् अन्न आदि की उत्पत्ति और संग्राम में विजय भी आप ही कराते हो। आप (**महत् धनम्**) महान् ऐश्वर्य को (**भजसे**) प्राप्त किये हुए हो। हे (**सोम**) परमात्मन्! (**स्वायुधाः**) उत्तम शस्त्रास्त्र जिसके पास हैं ऐसे सेनापति के समान रक्षा करने में समर्थ आप (**सोतृभिः**) ध्यानयज्ञ करने वाले उपासकों के द्वारा (**सूयसे**) अभिपुत किये जाते हो, अर्थात् वे आपसे अपने लिए आनन्द-रस को क्षरित करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—बाहरी जगत् में और शरीर के अन्दर होने वाली **सारी व्यवस्था को सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ही करता है॥३॥**

## (२)

**ऋषिः—कश्यपः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४८२ क्रमांक पर भक्तिरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ ब्रह्मानन्द-रस का प्रवाह वर्णित है।

**१०३४. असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।**
**शुक्रासो वीरयाशवः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**वाजिनः**) बलवान्, (**शुक्रासः**) पवित्र, (**आशवः**) शीघ्रगामी (**सोमासः**) ब्रह्मानन्द-रस (**गव्या**) इन्द्रियबलों की प्राप्त की इच्छा से, (**अश्वया**) प्राण-बलों की प्राप्ति की इच्छा से, और (**वीरया**) वीर-भावों की प्राप्ति की इच्छा से (**प्र असृक्षत**) परमेश्वर के पास से अभिपुत किये जा रहे हैं॥१॥

**भावार्थ** :—उपासक के आत्मा में जब ब्रह्मानन्द-रस की धाराएं बहती हैं तब मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि का सात्त्विक बल स्वयं ही उपस्थित हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द-रस के प्रवाह का वर्णन है।

**१०३५. शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः।**
**पवन्ते वारे अव्यये॥२॥**

**पदार्थ** :-(**शुम्भमानाः**) शोभित होते हुए, (**ऋतायुभिः**) अध्यात्म-यज्ञ के अभिलाषियों द्वारा (**गभस्त्योः**) मन, बुद्धि रूप द्यावापृथिवियों में (**मृज्यमानाः**) अलंकृत किये जाते हुए ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस (**अव्यये**) अविनाशी (**वारे**) दोषों के निवारक अन्तरात्मा में (**पवन्ते**) प्रवाहित हो रहे हैं॥२॥

**भावार्थ** :-धर्ममेघ-समाधि में जब योगी के अन्तरात्मा में ब्रह्मानन्द के झरने झरते हैं तब उसके मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि सभी रस से सिंचे हुए के सदृश हो जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि ब्रह्मानन्द-रस क्या करें।

**१०३६. ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा।**
**पवन्तामान्तरिक्ष्या॥३॥**

**पदार्थ** :-(**ते सोमाः**) उपासक के अन्तरात्मा में बहते हुए वे ब्रह्मानन्द-रस (**दाशुषे**) परमात्मा को आत्मसमर्पण करने वाले उस उपासक के लिए (**दिव्यानि**) आनन्दमय और विज्ञानमय लोकों से सम्बद्ध, (**पार्थिवा**) अन्नमय और प्राणमय लोकों से सम्बद्ध तथा (**आन्तरिक्ष्या**) मनोमय लोक से सम्बद्ध (**विश्वा वसु**) सब ऐश्वर्यों को (**पवन्ताम्**) प्रवाहित करें॥३॥

**भावार्थ** :-ब्रह्मानन्द अधिगत हो जाने पर देह, प्राण, मन, बुद्धि एवं आत्मा से सम्बद्ध सभी सम्पदाएं वा सिद्धियां योगियों को प्राप्त हो जाती हैं॥३॥

(३)

**ऋषिः-मेधातिथिः॥ देवता-पवमानः सोमः॥ छन्दः-गायत्री॥ स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम ऋचा में सोम नाम द्वारा जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१०३७. पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या।**
**इन्द्रमिन्दो वृषा विश॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) रस के भण्डार जगदीश्वर! (**देववीः**) सदाचारी विद्वानों को प्राप्त होने वाले आप (**रंह्या**) वेग से (**पवित्रम् अति**) पवित्र हृदय-रूप छन्नी को पार करके (**पवस्व**) अन्तरात्मा में परिस्रुत होओ। हे (**इन्दो**) रस से आर्द्र करने वाले जगत्पति! (**वृषा**) आनन्द की वर्षा करने वाले आप (**इन्द्रम्**) जीवात्मा में (**विश**) प्रवेश करो॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे सोमौषधि का रस दशापवित्र नामक छन्नी के माध्यम से द्रोणकलश में पहुंचता है, वैसे ही परमेश्वर से आता हुआ आनन्दरस हृदय के माध्यम से अन्तरात्मा में पहुंचता है॥१॥

आगे पुनः वही विषय कहा गया है।

१०३८. **आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः।**
**आ योनिं धर्णसिः सदः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मन्! आप हमारे द्वारा (**आ वच्यस्व**) स्तुति किये जाओ। आप हमारे लिए (**महि प्सरः**) सत्य, न्याय, शूरता, दया, उदारता आदि के महान् रूप को प्रदान करो। हे (**इन्दो**) रसागार, रस से आर्द्र करने वाले भगवन्! आप (**वृषा**) आनन्दवर्षी और (**द्युम्नवत्तमः**) सबसे अधिक तेजस्वी हो। (**धर्णसिः**) जगत् के धारणकर्ता आप (**योनिम्**) हमारे आत्म-गृह में (**आ सदः**) आकर बैठो॥२॥

यहाँ जगत् का धारक विराट् परमेश्वर छोटे से जीवात्मारूप घर में कैसे समा सकता है, अतः विरूपसंघटनारूप विषमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—आराधना किया गया परमेश्वर उपासक के अन्तरात्मा में आनन्द बरसा-बरसा कर उसका महान् उपकार करता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के ध्यान का फल वर्णित है।

१०३९. **अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः।**
**अपो वसिष्ट सुक्रतुः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**सुतस्य**) अन्तरात्मा में प्रकट किये हुए, (**वेधसः**)

सब जगत् के विधाता सोम नामक परमात्मा की (**धारा**) वेदवाणी की धारा (**प्रियम्**) प्रिय, (**मधु**) मधुर आनन्दरस को (**अधुक्षत**) उपासक के अन्तरात्मा में दुहती है। (**सुक्रतुः**) शुभकर्मों का कर्ता वह परमात्मा (**अपः**) उपासक के कर्मों को (**वसिष्ट**) व्याप्त कर लेता है अर्थात् उपासक के द्वारा शुभ लोकहितकारी कर्म ही कराता है, अशुभ नहीं॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को योग्य है कि वे परमेश्वर के ध्यान से आनन्द की प्राप्ति और शुभकर्मों में प्रवृत्ति करें॥३॥

अब परमात्मा की महिमा वर्णित करते हैं।

**१०४०. महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः।**
**यद्गोभिर्वासयिष्यसे॥४॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन्! (**महान्तम्**) अतिशय महान् (**त्वा अनु**) आपके आदेशानुसार (**महीः**) विशाल, (**सिन्धवः**) प्रवाहमयी (**आपः**) नदियां (**अर्षन्ति**) गति करती हैं, (**यत्**) क्योंकि, आप (**गोभिः**) सूर्यकिरणों से (**वासयिष्यसे**) वर्षा द्वारा उन्हें बसाये रखोगे॥४॥

**भावार्थ** :—नदी आदि सब पदार्थ परमात्मा के निर्धारित नियमों के अनुसार ही चलते हैं, क्योंकि वह जगत् का सम्राट् है॥४॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का शुद्धिकार्य वर्णित है।

**१०४१. समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः।**
**सोमः पवित्रे अस्मयुः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**समुद्रः**) आनन्द-रसों को उमड़ाने वाला, (**विष्टम्भः**) सब को सहारा देने वाला, (**दिवः**) सूर्य का (**धरुणः**) थामने वाला, (**अस्मयुः**) हम से प्रीति करने वाला (**सोमः**) जगत्स्रष्टा परमेश्वर (**पवित्रे**) वायु में और (**अप्सु**) जलों में (**मामृजे**) नित्य शुद्धि करता रहता है॥५॥

**भावार्थ** :—यदि जल, वायु आदि प्राकृतिक पदार्थों को सूर्य द्वारा प्रतिदिन जगदीश्वर शुद्ध न करता रहता तो मलों के पुंज होकर वे किसी के उपयोग के योग्य भी न रहते॥५॥

छठी ऋचा ४९७ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात

की गयी थी। यहाँ बादल के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकट की गयी है।

१०४२. अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सं सूर्येण दिद्युते॥६॥

**पदार्थ** :—परमेश्वर की ही यह महिमा है कि (**हरिः**) वायु से इधर-उधर ले जाया जाता हुआ, (**वृषा**) वर्षा करने वाला बादल (**अचिक्रदत्**) स्वयं को गरजाता है। (**महान्**) विशाल वह बादल (**मित्रः न**) मित्र के समान (**दर्शतः**) दर्शनीय होता है। और वह बादल (**सूर्येण**) सूर्य द्वारा (**सं दिद्युते**) भलीभांति दीप्त होता है, बिजली की छटाओं से भासित होता है॥६॥

यहाँ उपमालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :—बादल जब गरजता है, बिजली चमकाता है और बरसता है तब गरमी की धूप से तप्त लोग उसका मित्र के समान स्वागत करते हैं। बादल के जो उपकार हैं वे वास्तव में परमेश्वर के ही उपकार समझने चाहिएं, क्योंकि वह उसी से संचालित होता है॥६॥

अगले मन्त्र में उपासक को सम्बोधन किया गया है।

१०४३. गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।
याभिर्मदाय शुम्भसे॥७॥

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमेश्वर के उपासक मानव! (**ते**) तेरी (**अपस्युवः**) कर्म की कामना वाली (**गिरः**) वाणियां तुझे (**ओजसा**) तेज से (**मर्मृज्यन्ते**) अधिकाधिक बार-बार अलंकृत करती हैं, (**याभिः**) जिनसे, तू (**मदाय**) आनन्द-प्राप्ति के लिए (**शुम्भसे**) शोभित होता है॥७॥

**भावार्थ** :—वाणी कर्म के साथ ही मनुष्य का भूषण होती है, कर्म के बिना नहीं॥७॥

अब उपासक परमात्मा को कह रहा है।

१०४४. तं त्वा मदाय घृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे।
तव प्रशस्तये महे॥८॥

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रकर्ता रसागार परमात्मन्! (तम् उ) उस (**लोककृत्नुम्**) लोकों के रचयिता (**त्वा**) तुझे हम (**घृष्वये**) बुराइयों से संघर्ष करने में समर्थ (**मदाय**) उत्साह के लिए (**ईमहे**) प्राप्त करते हैं। हम (**महे**) महती (**प्रशस्तये**) प्रशस्ति पाने के लिए (**तव**) तेरे हो जाएं॥८॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के साथ मित्रता संस्थापित करके ही मनुष्य जीवन में सफलता, विजय और यश पा सकता है॥८॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है।

**१०४५. गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत।**
**आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्दो) तेजस्वी, आनन्द-रस से आर्द्र करने वाले परमात्मदेव! आप (**गोषाः**) गायों, वेदवाणियों, भूमियों या इन्द्रियों को देने वाले, (**नृषाः**) पुरुषार्थी वीर सन्तानों को देने वाले, (**अश्वसाः**) घोड़ों और प्राणों को देने वाले, (**उत**) और (**वाजसाः**) बल, अन्न, धन और विज्ञान को देने वाले (**असि**) हो। आप (**यज्ञस्य**) परोपकार-रूप यज्ञ के (**पूर्व्यः**) सनातनकाल से चले आये (**आत्मा**) प्राण हो॥९॥

**भावार्थ** :—अहो, महान् हैं जगदीश्वर के उपकार, जो हमें अनेक बहुमूल्य वस्तुएं उत्पन्न करके देता है, और ऐसा करता हुआ वह सबको परोपकार का उपदेश करता है॥९॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१०४६. अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया।**
**पर्जन्यो वृष्टिमाँइव॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्दो) रस के भण्डार, करुणासागर परमेश! (**वृष्टिमान्**) वर्षा करने वाले (**पर्जन्यः इव**) बादल के समान, आप (**मधोः**) मधुर आनन्द-रस की (**धारया**) धारा के साथ (**अस्मभ्यम्**) हम उपासकों के लिए (**इन्द्रियम्**) जीवात्मा से सेवित आत्मबल (**पवस्व**) प्रवाहित कीजिए॥१०॥

यहाँ उपमालंकार है॥१०॥

**भावार्थ** :—बादल की रस-वर्षा से पृथिवी के समान परमेश्वर

की आनन्द-वर्षा से मनुष्य की आत्मभूमि सरस, सद्गुणों से अंकुरित और हरी-भरी हो जाती है।।१०।।

(४)

**ऋषि:-हिरण्यस्तूप:॥ देवता-पवमान सोम:॥ छन्द:-गायत्री। स्वर:-षड्ज:॥**

प्रथम मन्त्र में सोम नाम से जीवात्मा को उद्बोधन है।

**१०४७. सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रव:।**
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥१॥**

**पदार्थ** :-हे (**पवमान**) गतिशील, कर्मशूर, पवित्रतादायक (**सोम**) ऐश्वर्यवान्, शुभगुणकर्मों के प्रेरक जीवात्मन्! तू (**महि श्रव:**) महान् यश व महान् शास्त्रश्रवण को (**सन**) प्राप्त कर, (**जेषि च**) और संसार के समरांगण में विजयलाभ कर। (**अथ**) और उसके अनन्तर (**न:**) हमें भी (**वस्यस:**) अतिशय ऐश्वर्यवान् (**कृधि**) कर।।१।।

**भावार्थ** :-जो स्वयं परमात्मा का उपासक, पुरुषार्थी, शास्त्र की मर्यादा को सीखा हुआ और विजयशील है वही दूसरों को प्रशस्त गुण-कर्मों वाला परमैश्वर्यशाली बना सकता है।।१।।

आगे पुन: जीवात्मा को उद्बोधन है।

**१०४८. सना ज्योति: सना स्वा३र्विश्वा च सोम सौभगा।**
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥२॥**

**पदार्थ** :-हे (**सोम**) अग्रेगामी जीवात्मन्! तू (**ज्योति:**) दिव्य प्रकाश को (**सन**) प्राप्त कर, (**स्व:**) ब्रह्मानन्द को (**सन**) प्राप्त कर, (**विश्वा च**) और सब (**सौभगा**) सौभाग्यों को (**सन**) प्राप्त कर। (**अथ**) और उसके अनन्तर (**न:**) हमें भी (**वस्यस:**) अतिशय ऐश्वर्यवान् (**कृधि**) कर।।२।।

**भावार्थ** :-जीवात्मा ने सब से उत्कृष्ट मानव-शरीर सब प्रकार की उन्नति करने के लिए प्राप्त किया है। इसलिए उसे चाहिए कि आध्यात्मिक और भौतिक सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष प्राप्त करे।।२।।

अगले मन्त्र में फिर जीवात्मा का ही विषय है।

**१०४९. सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि।**
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) ऐश्वर्य उत्पन्न करने में समर्थ जीवात्मन्! तू ( **दक्षम्** ) बल को ( **उत** ) और ( **क्रतुम्** ) कर्म तथा प्रज्ञान को ( **सन** ) प्राप्त कर। ( **मृधः** ) संग्रामकारी हिंसक काम-क्रोध आदि आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को ( **अप जहि** ) विनष्ट कर। ( **अथ** ) इस प्रकार अपना उत्कर्ष करने के अनन्तर ( **नः** ) हमें भी ( **वस्यसः** ) अतिशय ऐश्वर्यवान् ( **कृधि** ) कर॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य को चाहिए कि स्वयं बल, कर्म, प्रज्ञान, सारे ही ऐश्वर्य को संचित करके तथा विघ्नकारियों को पराजित करके, सब का अगुआ बनकर दूसरों का भी उपकार करे॥३॥

**अब मनुष्यों को प्रेरित करते हैं।**

**१०५०. पवीतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे।**
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥४॥**

**पदार्थ** :—हे ( **पवीतरः** ) पवित्रता के कार्य में संलग्न मनुष्यो! तुम ( **इन्द्राय पातवे** ) जीवात्मा के पान के लिए ( **सोमम्** ) ज्ञान, कर्म, उपासना के रस को ( **पुनीतन** ) पवित्र करो। ( **अथ** ) और उसके अनन्तर, हे पवित्र ज्ञान, कर्म, उपासना वाले मानव! तू ( **नः** ) हमें भी ( **वस्यसः** ) अतिशय ऐश्वर्यवान् ( **कृधि** ) कर॥४॥

**भावार्थ** :—जिनके ज्ञान, कर्म और उपासना पवित्र होते हैं उनकी संगति से दूसरे लोग भी पवित्र अन्तःकरण वाले तथा ऐश्वर्यवान् हो जाते हैं॥४॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**१०५१. त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः।**
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥५॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमात्मन् वा राष्ट्र के स्रष्टा राजन्! आप ( **तव क्रत्वा** ) अपने कर्म वा प्रकृष्ट ज्ञान से,

( तव ऊतिभिः ) और अपनी रक्षाओं से ( सूर्ये ) सूर्यलोक के समान प्रकाशमय एवं सब उन्नतियों से युक्त राष्ट्र में ( नः ) हमें ( आ भज ) भागी बनाओ। ( अथ ) और उसके अनन्तर ( नः ) हमें ( वस्यसः ) अतिशय ऐश्वर्यवान् ( कृधि ) करो।।५।।

**भावार्थ** :—यदि परमात्मा की कृपा, राजा का उद्योग, और प्रजाजनों का पुरुषार्थ हो तो राष्ट्र में सूर्य के समान उन्नति का प्रकाश सर्वत्र फैल जाए।।५।।

आगे पुनः उसी विषय का कथन है।

**१०५२. तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पश्येम सूर्यम्।**
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥६॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रताकारक शुभ गुणकर्मों के प्रेरक परमात्मन् वा राजन्! ( **तव क्रत्वा** ) आपके कर्म वा प्रकृष्ट ज्ञान **से**, ( **तव ऊतिभिः** ) **और आपकी रक्षाओं** से, हम ( **ज्योक्** ) **चिरकाल तक** ( **सूर्यम्** ) **सूर्य** को ( **पश्येम** ) देखते रहें, अर्थात् दीर्घजीवी होवें। ( **अथ** ) **और** ( **नः** ) हमें, आप ( **वस्यसः** ) अतिशय ऐश्वर्यवान् ( **कृधि** ) करो।।६।।

**भावार्थ** :—परमात्मा और राजा की रक्षा तथा प्रेरणा प्राप्त करके विज्ञानयुक्त एवं कर्मण्य होकर प्रजाजन पुरुष की पूर्ण आयु जीने वाले हो जाते हैं।।६।।

आगे फिर परमात्मा और राजा से प्रार्थना है।

**१०५३. अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम्।**
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥७॥**

**पदार्थ** :—हे ( **स्वायुध सोम** ) शस्त्रधारी के समान शासन करने में समर्थ परमात्मन् और उत्कृष्ट शस्त्रास्त्रों से युक्त राजन्! आप ( **द्विबर्हसम्** ) व्यवहार और परमार्थ दोनों के बढ़ाने वाले ( **रयिम्** ) ऐश्वर्य को ( **अभ्यर्ष** ) प्राप्त कराइये। ( **अथ** ) इस प्रकार ( **नः** ) हमें ( **वस्यसः** ) अतिशय ऐश्वर्यवान् ( **कृधि** ) कर दीजिए।।७।।

**भावार्थ** :—भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार का धन

मनुष्य के अभ्युदय और निःश्रेयस के लिए समर्थ होता है॥७॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

३ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
**१०५४. अभ्या३र्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सु सासहिः।**
१ २ ३ १ २
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥८॥**

**पदार्थ** :–हे (**वाजिन्**) बलवान् सोम अर्थात् वीर परमात्मन् वा राजन्! (**अनपच्युतः**) विचलित न होने वाले, (**समत्सु सासहिः**) देवासुरसंग्रामों में शत्रुओं का पराजय करने वाले आप (**अभ्यर्ष**) क्रियाशील होवें। (**अथ**) और इस प्रकार (**नः**) हमें (**वस्यसः**) अतिशय ऐश्वर्यवान् (**कृधि**) करो॥८॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की उपासना करके और राजा को उद्बोधन देकर सब आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं का उच्छेद करके लोग विजयी, ऐश्वर्यवान् तथा सुखी होवें॥८॥

आगे पुनः वही विषय है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१०५५. त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि।**
१ २ ३ १ २
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥९॥**

**पदार्थ** :–हे (**पवमान**) जन-मानस को पवित्रता देने वाले, क्रियाशील परमात्मन् वा राजन् (**विधर्मणि**) विशेष-धर्म-युक्त अन्तरात्मा में वा राष्ट्र में (**त्वाम्**) आप परमात्मा वा राजा को (**यज्ञैः**) उपासनायज्ञों वा राष्ट्रयज्ञों से प्रजाएं (**अवीवृधन्**) बढ़ाती हैं। (**अथ**) अतः, आप (**नः**) हमें (**वस्यसः**) अतिशय ऐश्वर्यवान् (**कृधि**) कर दीजिए॥९॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर को उपासना द्वारा अन्तरात्मा में बढ़ाकर और राजा को राष्ट्रसेवा रूप यज्ञों से राष्ट्र में बढ़ाकर उनकी सहायता से प्राप्त कीर्तियों तथा ऐश्वर्यों से प्रजाजन यशस्वी और ऐश्वर्यवान् होवें॥९॥

आगे पुनः परमात्मा और राजा का ही विषय कहा गया है।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**१०५६. रयिं नश्चित्रमश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर।**
१ २ ३ १ २
**अथा नो वस्यसस्कृधि॥१०॥**

**पदार्थ** :–हे (**इन्दो**) चन्द्रमा के समान आह्लाददायक

परमैश्वर्यशालिन् जगदीश्वर वा राजन्! आप ( **नः** ) हमारे लिए ( **चित्रम्** ) अद्भुत, चित्र-विचित्र ( **अश्विनम्** ) शीघ्रगामी, ( **विश्वायुम्** ) पूर्ण आयु देने वाला अथवा सब मनुष्यों का हित करने वाला ( **रयिम्** ) धन ( **आ भर** ) प्राप्त कराओ। ( **अथ** ) इस प्रकार ( **नः** ) हमें ( **वस्यसः** ) अतिशय ऐश्वर्यवान् ( **कृधि** ) करो।।१०।।

**भावार्थ** :—वही धन वास्तव में धन होता है, जिससे पूर्ण आयु और सब मनुष्यों का हित सिद्ध हो। जो विलास में लिप्त करके आयु को क्षय करने वाला तथा दीनजनों से द्वेष करने वाला धन होता है वह धन नहीं, किन्तु मौत होती है।।१०।।

( ५ )

**ऋषिः—अवत्सारः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा **पूर्वार्चिक में ५०० क्रमांक पर ऐहिक एवं** पारलौकिक उत्कर्ष **के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ मोक्ष-प्राप्ति** का विषय वर्णित किया जाता है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**१०५७. तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।**
२ ३ २ ३ १ २
**तरत्स मन्दी धावति॥१॥**

**पदार्थ** :—( **सः** ) वह ( **मन्दी** ) स्तुतिकर्ता मनुष्य ( **सुतस्य** ) परमेश्वर के पास से परिस्रुत होकर आये हुए ( **अन्धसः** ) ब्रह्मानन्दरूप सोमरस की ( **धारा** ) धारा से ( **धावति** ) अन्तरात्मा को धो लेता है, और ( **तरत्** ) दुःखसागर को तर जाता है। सचमुच, ( **मन्दी सः** ) मुदित हुआ वह ( **धावति** ) लक्ष्य के प्रति दौड़ लगाता है, और ( **तरत्** ) ब्रह्मानन्द-सागर में तैरता रहता है।।१।।

यहाँ प्रथम चरण की तृतीय चरण में आवृत्ति होने पर पादावृत्ति यमक अलंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर के ध्यान में जो लोग मग्न हो जाते हैं वे उसके पास से बहती हुई आनन्द की तरंगिणी से धोये जाकर निर्मलात्मा होते हुए त्रिविध दुःखों से छूटकर मुक्त हो जाते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि ब्रह्मानन्द-रस की धारा क्या करती है।

**१०५८. उस्रा वेद वसूनां मर्त्तस्य देव्यवसः।**
**तरत्स मन्दी धावति॥२॥**

**पदार्थ** :-(**देवी**) सत्य, न्याय, दया आदि दिव्य गुणों से युक्त, (**उस्रा**) ब्रह्मानन्दरूप सोमरस की परमेश्वररूप स्रोत से निकलती हुई धारा (**मर्त्तस्य**) मरणधर्मा मानव के (**वसूनाम्**) ऐश्वर्यों को (**अवसः च**) और रक्षा को (**वेद**) देना जानती है। उस धारा से (**सः मन्दी**) वह स्तोता (**धावति**) अपने अन्तरात्मा को धो लेता है, और (**तरत्**) जन्म-मरण के बन्धन से तथा दुःखसमूह से तर जाता है॥२॥

**भावार्थ** :-ब्रह्मानन्द-रस की धारा से लोग आध्यात्मिक ऐश्वर्य तथा संकटों से रक्षा पाकर सांसारिक दुःख-सागर को तर जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में ध्वस्र और पुरुषन्ति विशेषणों से आत्मा और मन के विषय में कहा गया है।

**१०५९. ध्वस्त्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे।**
**तरत्स मन्दी धावति॥३॥**

**पदार्थ** :-ब्रह्मानन्दरूप सोम की धारा से नहाए हुए हम (**ध्वस्रयोः**) दोषों का ध्वंस करने वाले, (**पुरुषन्त्योः**) बहुत से लाभों को देने वाले आत्मा और मन के (**सहस्राणि**) हजारों ऐश्वर्यों को (**आदद्महे**) ग्रहण करते हैं, क्योंकि (**मन्दी**) परमेश्वर का स्तोता (**सः**) वह आनन्द-मग्न मनुष्य (**धावति**) स्वयं को धो लेता है, और (**तरत्**) दुःख-जाल को तर लेता है॥३॥

**भावार्थ** :-आत्मा और मन को उद्‌बोधन देकर लोग हजारों से भी अधिक लाभों को प्राप्त कर सकते हैं और अन्त में वे परमात्मा में मग्न होकर मोक्षपद पा लेते हैं॥३॥

यहाँ सायणाचार्य 'ध्वस्र' और 'पुरुषन्ति' को किन्हीं विशेष राजाओं के नाम मानते हैं। तदनुसार उन्होंने इस मन्त्र का अर्थ

करते हुए लिखा है कि 'ध्वस्र कोई एक राजा था, पुरुषन्ति कोई दूसरा। उन दोनों राजाओं के सहस्रों धन हम ले लें। वह हमारे द्वारा लिया हुआ धन उत्तम हो। इस प्रकार ऋषि सोम से प्रार्थना कर रहा है।' सायण का यह लिखना संगत नहीं है, क्योंकि सृष्टि के आदि में प्रोक्त वेदों में परवर्ती इतिहास नहीं हो सकता।।३।।

आगे पुनः आत्मा और मन का ही विषय वर्णित है।

**१०६०. आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे।**
**तरत्स मन्दी धावति॥४॥**

**पदार्थ** :–( **ययोः** ) दोषों का ध्वंस करने वाले और बहुत से लाभों को देने वाले जिन आत्मा और मन के ( **त्रिंशतम्** ) तीस और ( **सहस्राणि** ) हजारों ( **तना** ) विस्तीर्ण ऐश्वर्य, हम ( **आदद्महे** ) ग्रहण कर लेते हैं, उन ऐश्वर्यों से ( **सः मन्दी** ) वह स्तोता ( **धावति** ) स्वयं को धो लेता है, और ( **तरत्** ) शो को तर जाता है, **अर्थात् मुक्ति पा लेता है।।**

आत्मा और मन के तीस ऐश्वर्य इस प्रकार हैं ८ योगाङ्ग, २ अभ्यास–वैराग्य, १ प्रणवजप, १ वशीकार, १ अध्यात्मप्रसाद, ३ तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान, ४ वृत्तियां–मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा, ८ अणिमा आदि सिद्धियां, १ विवेकख्याति, १ कैवल्य। अनेक सहस्र ऐश्वर्य उन्हीं के महिमारूप हैं। आत्मा और मन को शुद्ध करके तथा उनका यथोचित उपयोग करके उपासक अगणित ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है यह तात्पर्य है।।४।।

**भावार्थ** :–केवल भौतिक धन ही धन नहीं है, प्रत्युत उसकी अपेक्षा अधिक महान् धन आध्यात्मिक धन है, जिसे पाने के लिए मनुष्यों को यत्न करना चाहिए।।४।।

( ६ )

**ऋषिः–जमदग्निः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में गुरुओं का वर्णन है।।

३ १ २र ३ १ २र ३ २
**१०६१. एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे।**
३ १ २ ३ १ २
**मदिन्तमस्य धारया॥१॥**

**पदार्थ** :—(**एते**) ये (**गृणानाः**) शास्त्रों का उपदेश करते हुए (**सोमाः**) विद्यारस के भण्डार गुरुजन (**महे शवसे**) महान् बल के लिए (**मदिन्तमस्य**) अत्यधिक आनन्ददायक ज्ञान की (**धारया**) धारा के साथ (**असृक्षत**) विद्यादान कर रहे हैं।।१।।

**भावार्थ** :—योग्य गुरुओं से ग्रहण की गयी विद्या शिष्यों की कीर्ति करने वाली होती है।।१।।

अगले मन्त्र में छात्र आचार्य को कह रहे हैं।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१०६२. अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि।**
३ १ २ ३ १ २
**सनद्वाजः परि स्रव॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् विद्यारस के भण्डार आचार्य! (**वीतये**) हम शिष्यों की प्रगति के लिए (**गव्यानि**) इन्द्रियों के (**नृम्णा**) बलों को (**पुनानः**) पवित्र करते हुए, आप (**अभि अर्षसि**) हमारे प्रति आते हो। वे आप (**सनद्वाजः**) अन्न, धन आदि देते हुए (**परि स्रव**) बहो, अर्थात् हमें विद्या पढ़ाओ।।२।।

**भावार्थ** :—कुलपति आचार्य छात्रों के चरित्रों को पवित्र करते हुए, उन्हें अन्न, वस्त्र बल आदि प्रदान करते हुए अगाध विद्या पढ़ाएं।।२।।

आगे फिर वही विषय है।

२ ३ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१०६३. उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः।**
३ २ ३ १ २
**गृणानो जमदग्निना॥३॥**

**पदार्थ** :—(**उत**) और हे सोम अर्थात् विद्वान् आचार्य! (**जमदग्निना**) समित्पाणि अग्निहोत्री शिष्यवर्ग से (**गृणानः**) स्तुति किये जाते हुए आप (**नः**) हम शिष्यों को (**गोमतीः**) वेदवाणी से युक्त, (**परिष्टुभः**) सहारा देने वाली (**विश्वाः**) सब (**इषः**) अभीष्ट अपरा तथा परा नामक विद्याएं (**अर्ष**)

प्रदान करो, पढ़ाओ।।३।।

**भावार्थ** :—आचार्य का भली-भांति सत्कार करके, उसके पास से अध्यात्म विज्ञान और भौतिक विज्ञान सम्पूर्ण निष्ठा के साथ ग्रहण करके, विद्वान् होकर शिष्य समाज में ज्ञान का विस्तार करें।।३।।

(७)

**ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६६ क्रमांक पर परमेश्वरस्तुति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ आचार्य और शिष्य का विषय वर्णित है।

**१०६४. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया। भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥१॥**

**पदार्थ** :—हम (**अर्हते**) सुयोग्य (**जातवेदसे**) विद्वान् आचार्य के लिए (**मनीषया**) मनोयोग के साथ (**इमं स्तोमम्**) इस श्रद्धा-स्तोत्र को (**सं महेम**) भली-भांति पहुंचाएं, (**रथम् इव**) जैसे रथ को अन्यत्र पहुंचाते हैं। अभिप्राय यह है कि जैसे किसी पूज्य जन को अपने घर लाने के निमित्त उसके लिए सुन्दर रथ भेजते हैं, ऐसे ही आचार्य को अपने प्रति अनुकूल करने के लिए उसके प्रति श्रद्धा-वचन प्रेरित करें। (**अस्य**) इस विद्वान् आचार्य की (**संसदि**) संगति में (**नः**) हमें (**भद्रा हि**) कल्याणकारी ही (**प्रमतिः**) श्रेष्ठ विद्या प्राप्त होती है। हे (**अग्ने**) विद्या, विनय आदि के प्रकाशक आचार्य! (**तव सख्ये**) आपके साहचर्य में (**वयम्**) हम शिष्य (**मा रिषाम**) अज्ञान, दुराचार आदि से उत्पन्न होने वाली क्षति को न प्राप्त करें।।१।।

यहाँ उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—विद्वान् सदाचारी शिक्षणकला में कुशल आचार्य को वर कर उसकी संगति में गुरुकुल में निवास करते हुए विनीत छात्र सुयोग्य और निर्दोष बनते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः आचार्य और शिष्य का विषय वर्णित करते हैं।

**१०६५. भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥२॥**

**पदार्थ** :—हे आचार्यप्रवर! (**वयम्**) आपके शिष्य हम (**इध्मम्**) समिधा (**भराम**) लायें अर्थात् समित्पाणि होकर आपके समीप आयें। (**ते**) आपके लिए (**हवींषि**) समर्पण (**कृणवाम**) करें। और फिर (**पर्वणा पर्वणा**) एक-एक खण्ड करके (**चितयन्तः**) पूर्ण ज्ञानी हो जाएं। आप (**जीवातवे**) जीवन के लिए (**प्रतराम्**) अत्यन्त रूप से (**धियः**) हमारी बुद्धियों को (**साधय**) परिष्कृत कीजिए। हे (**अग्ने**) ज्ञानी आचार्य! (**वयम्**) हम शिष्य (**तव सख्ये**) आपके साहचर्य में रहकर (**मा रिषाम**) निन्दा आदि से होने वाली हिंसा को न प्राप्त हों॥२॥

**भावार्थ** :—आचार्य के प्रति जो सर्वथा समर्पित हो जाते हैं वे ही विद्वान् और सदाचारी होते हैं। एक-एक बूंद से जैसे घड़ा भरता है वैसे ही कण-कण करके विद्या ग्रहण कर पण्डित बन जाते हैं॥२॥

आगे फिर आचार्य और शिष्य का ही विषय कहा गया है।

**१०६६. शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यू३श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥३॥**

**पदार्थ** :—हे आचार्यप्रवर! हम शिष्य (**त्वा**) आपको (**समिधं शकेम**) ज्ञान-दानार्थ प्रदीप्त कर सकें। आप (**धियः**) हमारी बुद्धियों को (**साधया**) परिष्कृत करो। (**त्वे**) आपसे (**आहुतम्**) दिये गये (**हविः**) ग्राह्य ज्ञान को (**देवाः**) प्रमुदित शिष्य (**अदन्ति**) ग्रहण करते हैं। आप (**आदित्यान्**) आदित्य ब्रह्मचारी

(**आवह**) समाज को प्राप्त कराओ, (**तान् हि**) उन्हें हम (**अश्मसि**) चाह रहे हैं। हे (**अग्ने**) विद्वन् शिक्षणकला के ज्ञाता आचार्य! (**वयम्**) हम शिष्य (**तव सख्ये**) आपके साहचर्य में (**मा रिषाम**) कभी दोषयुक्त वा क्षतिग्रस्त न हों॥३॥

**भावार्थ** :—शिष्यों की समर्पण-रूप समिधा से जब आचार्य प्रदीप्त हो जाता है तभी वह विषयों के साथ अन्तरंगता स्थापित करके अपनी कमायी हुई सब विद्या उन्हें दे देता है और उनका चारित्रिक विकास भी करता है॥३॥

(८)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—आदित्यः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में मित्र, वरुण, अर्यमा की स्तुति की गयी है।

१ २ ३ २३ १ २ ३१ २ ३ १२
**१०६७. प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्।**
३ १ २ ३ १ २
**अर्यमणं रिशादसम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सूरे उदिते**) सूर्य के उदय होने पर मैं (**वाम्**) तुम दोनों (**मित्रम्**) मित्र जगदीश्वर और (**वरुणम्**) वरणीय जीवात्मा को, तथा (**रिशादसम्**) हिंसक दोषों के नाशक (**अर्यमणम्**) प्राण को (**प्रति गृणीषे**) एक-एक करके गुणवर्णनरूप स्तुति का विषय बनाता हूं॥१॥

**भावार्थ** :—प्रभातकाल में मनुष्यों को चाहिए कि अपने आत्मा को उद्बोधन देते हुए प्राणायामपूर्वक प्रतिदिन परमेश्वर की उपासना करें॥१॥

अगले मन्त्र में मित्र जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

३ १ २ ३ २ ३ २ ३१२३ २३ १२
**१०६८. राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे।**
३१ २र ३ १ २
**इयं विप्रा मेधसातये॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सर्वमित्र जगदीश्वर! (**इयं मतिः**) यह हमारी बुद्धि वा स्तुति (**हिरण्यया राया**) सुवर्णरूप धन के साथ (**अवृकाय**) अखण्डित (**शवसे**) आत्मबल के लिए होवे। और (**विप्रा इयम्**) विशेष रूप से पूर्ण करने वाली यह बुद्धि वा

स्तुति (**मेधसातये**) आपके साथ संगम की प्राप्ति के लिए हो॥२॥

**भावार्थ** :—अपने बुद्धि के बल से और परमेश्वर की स्तुति से हम चांदी, सोना, मणि, मोती आदि धन को, पराजित न होने वाले बल को और परमात्मा के साथ मिलाप को प्राप्त कर लें॥२॥

आगे वरुण और मित्र से प्रार्थना करते हैं।

**१०६९. ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह।**
**इषं स्वश्च धीमहि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**देव**) प्रकाशक, ज्ञानी (**वरुण**) वरणीय जीवात्मन्! हम (**ते**) तेरे (**स्याम**) होवें। हे (**मित्र**) मित्र परमात्मन्! (**सूरिभिः सह**) विद्वानों सहित, हम (**ते**) तेरे (**स्याम**) होवें। (**इषम्**) अभीष्ट ऐश्वर्य को (**स्वः च**) और आनन्द को (**धीमहि**) धारण करें॥३॥

**भावार्थ :—परमात्मा और जीवात्मा की मित्रता प्राप्त करके** सब मनुष्य ज्ञानवान्, प्रकाशवान्, आनन्दवान् और ऐश्वर्यवान् हों तथा मुक्ति को प्राप्त करें॥३॥

(९)

**ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १३४ क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य को संबोधित की गयी थी। यहाँ अपने अन्तरात्मा को उद्‌बोधन दे रहे हैं।

**१०७०. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।**
**वसु स्पार्हं तदा भर॥१॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् मेरे वीर अन्तरात्मन्! तू (**विश्वाः द्विषः**) सब द्वेष करने वाली शत्रु-सेनाओं को (**अपभिन्धि**) चीर दे, (**बाधः**) डालने वाले (**मृधः**) हिंसकों को (**परि जहि**) चारों ओर नष्ट कर दे। जो (**स्पार्हम्**) चाहने योग्य (**वसु**) दिव्य

तथा भौतिक धन है (तत्) उसका (आ भर) उपार्जन कर॥१॥

यहाँ एक कर्ता कारक के साथ अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का अन्तरात्मा यदि प्रबुद्ध है तो वह सब कुछ सिद्ध कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**१०७१. यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति।**
**वसु स्पार्हं तदा भर॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! (**यस्य ते**) जिस तेरे (**भूरेः**) बहुत अधिक (**दत्तस्य**) दिये हुए धन के विषय में (**विश्वम्**) सारा संसार (**आनुषक्**) निरन्तर (**वेदति**) जानता है (**तत्**) उस (**स्पार्हम्**) चाहने योग्य (**वसु**) आध्यात्मिक तथा भौतिक धन को (**आ भर**) हमें भी प्रदान कर॥२॥

**भावार्थ** :—ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी धन बिखरा पड़ा है वह सब परमात्मा का दिया हुआ ही है। हम भी अपने पुरुषार्थ से उस धन के भागी बनें॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में २०७ क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य को सम्बोधित की जा चुकी है। यहाँ अपने अन्तरात्मा को सम्बोधित कर रहे हैं।

**१०७२. यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम्।**
**वसु स्पार्हं तदा भर॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) मेरे वीर अन्तरात्मन्! (**यत्**) जो धन (**वीडौ**) दृढ़ मनुष्य में, (**यत्**) जो धन (**स्थिरे**) अविचल मनुष्य में, (**यत्**) जो धन (**पर्शाने**) बादल के समान सींचने वाले दानशील मनुष्य में (**पराभृतम्**) दूर देश से भी ले आया जाता है, (**तत्**) वह (**स्पार्हम्**) चाहने योग्य (**वसु**) आध्यात्मिक तथा भौतिक धन (**आ भर**) तू अपने पास ला, प्राप्त कर॥३॥

**भावार्थ** :—संसार में दृढ़ स्वभाव वाले, सैकड़ों विघ्नों से भी विचलित न किये जाने वाले परोपकारी जन अपने पराक्रम से जिस ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं उसे मैं क्यों नहीं पा सकता। हे मेरे अन्तरात्मन्! तू भी दृढ़, अविचल और बरसाने वाला होकर सब प्रकार का धन संचित कर॥३॥

( १० )

**ऋषिः—श्यावाश्वः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्राग्नी के नाम से जीवात्मा और प्राण तथा राजा और सेनापति को सम्बोधन करते हैं।

३ २ ३ २उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१०७३. यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु।**
१ २ ३ १ २
**इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति! तुम दोनों (**यज्ञस्य**) शरीर-यज्ञ एवं राष्ट्र-यज्ञ के (**हि**) निश्चय ही (**ऋत्विजा**) ऋत्विज्, संचालक (**स्थः**) हो, (**वाजेषु**) विज्ञानों में तथा (**कर्मसु**) कर्मों में (**सस्नी**) निष्णात हो। तुम दोनों (**तस्य**) उसे देहयज्ञ एवं राष्ट्रयज्ञ को (**बोधतम्**) करना वा कराना जानो॥१॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा और प्राण के आधिपत्य में वैयक्तिक शरीर-यज्ञ को भली-भाँति सञ्चालित करके राजा और सेनापति के सहयोग से राष्ट्र को उन्नत करना चाहिए॥१॥

आगे फिर वही विषय वर्णित है।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**१०७४. तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता।**
१ २ ३ १ २
**इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति! (**तोशासा**) सन्तुष्टि करने वाले, (**रथयावाना**) देहरूप रथ से वा विमान आदि यान से गमन करने वाला, (**वृत्रहणा**) शत्रु, विघ्न, पाप आदि को नष्ट करने वाले, (**अपराजिता**)

पराजित न होने वाले तुम दोनों (**तस्य**) उस-उस कर्म को (**बोधतम्**) करना वा कराना जानो।।२।।

**भावार्थ** :—जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति को नेता बनाकर वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रिय उन्नति सबको सिद्ध करनी चाहिए।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं को सम्बोधन किया गया है।

**१०७५. इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः।**
**इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) जीवात्मा और प्राण एवं राजा और सेनापति। (**वाम्**) आप दोनों को लक्ष्य करके (**नरः**) पुरुषार्थी मनुष्यों ने (**अद्रिभिः**) वाणीरूपी सिलवट्टों से (**इदम्**) इस (**मदिरम्**) आनन्दजनक एवं उत्साहजनक (**मधु**) मधुर वीर रस को (**अधुक्षन्**) दुहा है। आप दोनों (**तस्य**) उस वीररस को (**बोधतम्**) पीना जानो।।३।।

**भावार्थ** :—शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा, मन, प्राण, आदि तथा राष्ट्र के अधिकारी राजा, सेनापति आदि में वीररस का संचार करके उनकी सहायता से सबको उत्कर्ष सिद्ध करना चाहिए।३।।

( ११ )

**ऋषिः—कश्यपः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ गुरु-शिष्य विषय का वर्णन करते हैं।

**१०७६. इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः।**
**अर्कस्य योनिमासदम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्रो**) ज्ञानरस के भण्डार आचार्य! (**मधुमत्तमः**) अतिशय मधुर आप (**मरुत्वते**) उत्कृष्ट प्राण वाले (**इन्द्राय**)

मुझ शिष्य के लिए (**पवस्व**) ज्ञानरस प्रवाहित कीजिए। मैं (**अर्कस्य**) पूजनीय आपके (**योनिम्**) विद्यागृह अर्थात् गुरुकुल में (**आसदम्**) आया हूं।।१।।

**भावार्थ** :—गुरुकुल में प्रविष्ट छात्रों को विद्वान् मधुर स्वभाव वाले गुरुजन प्रेम से सब विद्याएं प्रदान करें, और शिष्य श्रद्धा से उनका सत्कार करें।।१।।

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का ही विषय है।

२ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**१०७७. तं त्वा विप्रा वचोविदः परिष्कृण्वन्ति धर्णसिम्।**
१ २ ३ १ २
**सं त्वा मृजन्त्यायवः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्य! (**धर्णसिम्**) विद्या का ग्रहण करने वाले, (**तं त्वा**) गुरुकुल में प्रविष्ट हुए उस तुझको (**वचोविदः**) सम्पूर्ण वाङ्मय के ज्ञानी (**विप्राः**) ब्राह्मण गुरुजन (**परिष्कृण्वन्ति**) परिष्कृत करते हैं, (**आयवः**) क्रियाशील आचार्य लोग (**त्वा**) तुझे (**सं मृजन्ति**) भलीभांति शुद्ध करते एवं सद्गुणों से अलंकृत करते हैं।।२।।

**भावार्थ** :—गुरुओं का यह कर्त्तव्य है कि वे विद्या और सदाचार के दान से शिष्यों के हृदयों को परिष्कृत, शुद्ध और अलंकृत करें।।२।।

आगे पुनः वही विषय कहा गया है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**१०७८. रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे।**
१ २ ३ १ २
**पवमानस्य मरुतः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**कवे**) मेधावी विद्वद्वर आचार्य! (**पवमानस्य ते**) शिष्यों के जीवनों को पवित्र करने वाले आपके (**रसम्**) विद्यारस को (**मित्रः**) सबके साथ मित्रवत् व्यवहार करने वाला शिष्य, (**वरुणः**) अपने दोषों का निवारण करने के लिए प्रयत्नशील शिष्य, (**अर्यमा**) शत्रुओं का निग्रह करने वाला शिष्य, (**मरुतः**) और अन्य सभी शिष्य (**पिबन्तु**) पान करें।।३।।

**भावार्थ** :—शिष्यों की विभिन्न योग्यताएं और विभिन्न गुण

होते हैं। उनकी योग्यता के अनुसार उनका विकास गुरुओं को करना चाहिए। जिस-जिसमें ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व आदि के गुण हों उस उसको उसके अनुरूप विद्यादान से उस-उस वर्ण का अधिकारी बनाना चाहिए।।३।।

( १२ )

**ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५१७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ भी वही विषय प्रकारान्तर से वर्णित किया जा रहा है।

**१०७९. मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि।**
**रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि॥१॥**

**पदार्थ :**—हे **( सुहस्त्य )** उत्कृष्ट हस्तकला में कुशल जगदीश्वर! **( मृज्यमानः )** श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों से अलंकृत होते हुए आप **( समुद्रे )** अन्तरिक्ष में **( वाचम् )** विद्युद्गर्जना के शब्द को **( इन्वसि )** प्रेरित करते हो। और, हे **( पवमान )** सर्वान्तर्यामिन्! आप **( बहुलम् )** प्रचुर, **( पुरुस्पृहम् )** बहुत चाहने योग्य **( पिशङ्ग रयिम् )** पीले वर्ण के धन सुवर्ण आदि को **( अभि )** हमारी ओर **( अर्षसि )** भेजते हो।।१।।

**भावार्थ :**—अन्तरिक्ष में बादलों का निर्माण, वर्षाकर्म आदि और बिना ही शुल्क लिये बहुमूल्य धन आदि को उत्पन्न करना परमेश्वर का ही कर्म है।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के कर्मों का वर्णन है।

**१०८०. पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने।**
**देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि॥२॥**

**पदार्थ :**—**( वारे )** वरणीय **( अव्यये )** पार्थिवलोक में **( पवमानः )**

पहुंचता हुआ और (**पुनानः**) पवित्रता करता हुआ (**वृषा उ**) सुख आदि की वर्षा करने वाला परमात्मा (**वने**) मेघजल में (**अचिक्रदत्**) विद्युद्गर्जना कराता है। हे (**पवमान**) पवित्रतादायक (**सोम**) जगत्स्रष्टा परमात्मन्! आप (**देवानाम्**) दिव्य अग्नि, जल, वायु आदि के (**निष्कृतम्**) घर अर्थात् भूलोक को (**गोभिः**) सूर्यकिरणों से (**अञ्जानः**) प्रकाशित करते हुए (**अर्षसि**) कर्मण्य बने हुए हो॥२॥

**भावार्थ** :—अन्तरिक्ष में बादल गर्जाना, वर्षा द्वारा भूलोक को पवित्र करना, सूर्यकिरणों द्वारा भूमण्डल को प्रकाशित करना इत्यादि सब कर्म जगत्पति परमेश्वर ही करता है, अन्य कोई नहीं॥२॥

(१३)

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

**प्रथम मन्त्र में जीवात्मा का विषय वर्णित है।**

**१०८१. एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम्।**
**समादित्येभिरख्यत॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सिन्धुमातरम्**) आनन्द-रस बहाने वाली जगदम्बा जिसकी माता है ऐसे (**एतम् उ त्यम्**) इस उस सोम नामक जीवात्मा को (**दश क्षिपः**) इन्द्रियदोषों को दूर फेंकने वाले दस प्राण (**मृजन्ति**) अलंकृत करते हैं। यह सोम जीवात्मा (**आदित्येभिः**) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से प्रकाशित गुरुजनों से (**सम् अख्यत**) विद्याप्रकाश को प्राप्त करता है॥१॥

**भावार्थ** :—प्राणों से युक्त ही मनुष्य का आत्मा शरीर को जीवित किये रखता है और शरीर का अधिष्ठातृत्व करता है। गुरुओं के उपदेश के विना वह स्वयं ज्ञानी नहीं होता।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि आत्मा में ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है।

**१०८२. समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ।**
**सं सूर्यस्य रश्मिभिः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**इन्द्रेण**) मन से (**उत**) और (**वायुना**) प्राण से (**सुतः**) अभिषुत ज्ञानरस (**पवित्रे**) पवित्र जीवात्मा में (**सम् आ एति**) समागत होता है और (**सूर्यस्य रश्मिभिः**) सूर्य की किरणों से अथवा चक्षु की वृत्तियों से (**सम्**) समागत होता है।।२।।

**भावार्थ** :–मनुष्य का आत्मा जिस ज्ञान को संचित करता है उसमें मन, प्राण, नेत्र की वृत्तियां, अग्नि, वायु, सूर्यकिरणें, गुरुजन सभी कारण बनते हैं।।२।।

अगले मन्त्र में फिर ज्ञानरस का विषय वर्णित है।

**१०८३. स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।**
**चारुर्मित्रे वरुणे च॥३॥**

**पदार्थ** :–हे ज्ञानरस! (**सः**) वह (**मधुमान्**) मधुर तू (**नः**) हमारे (**भगाय**) सूर्य तुल्य राजा के लिए, (**वायवे**) गतिमान् सेनाध्यक्ष के लिए, और (**पूष्णे**) पशुपालन, कृषि, व्यापार आदि से समाज का पोषण करने वाले वैश्य के लिए (**पवस्व**) क्षरित हो। और (**चारुः**) रमणीय तू (**मित्रे**) राष्ट्र के मित्र ब्राह्मण में (**वरुणे च**) और शत्रु निवारक क्षत्रिय में (**पवस्व**) क्षरित हो।।३।।

**भावार्थ** :–राष्ट्र में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, राजा, सेनापति, न्यायाध्यक्ष आदि और सामान्य प्रजाजन भी सभी अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ज्ञान का संचय करने वाले होवें, जिससे राष्ट्र प्रगतिपथ पर अग्रसर हों।।३।।

## (१४)

**ऋषिः–शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १५३ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ योग का विषय कहा जाता है।

**१०८४. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।**
**क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सधमादे**) जहाँ मन, बुद्धि इन्द्रियां आदि सब मिलकर प्रहृष्ट होती हैं उस योगयज्ञ में (**नः**) हम उपासकों की (**रेवतीः**) ऐश्वर्यवती मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि वृत्तियां (**तुविवाजाः**) बहुत बलवती होती हुईं (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**सन्तु**) विद्यमान होवें (**याभिः**) जिन वृत्तियों से (**क्षुमन्तः**) निवासयुक्त होकर हम (**मदेम**) आनन्दलाभ करें॥१॥

**भावार्थ** :—प्राणियों के सुखभोगयुक्त होने पर उनके प्रति मैत्री की भावना रखे, दुःखियों के प्रति करुणा की, पुण्यात्माओं के प्रति मुदिता की और अपुण्यशीलों के प्रति उपेक्षा की। इस प्रकार भावना करने वालों के अन्दर शुक्ल धर्म उत्पन्न हो जाता है। उससे चित्त प्रसादयुक्त होता है और प्रसन्न तथा एकाग्र होकर स्थितिपद को पा लेता है। ये चित्तवृत्तियां जब मनुष्य के आत्मा में उद्भूत होती हैं तब चित्तप्रसाद से वह निवासयुक्त और आनन्दवान् हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर योग का ही विषय है।

**१०८५. आ घ त्वावान् त्मना युक्त स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः।**
**ऋणोरक्षं न चक्र्योः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**धृष्णो**) शत्रु को धर्षण करने के स्वभाव वाले परमात्मन्! (**ईयानः**) उपासकों से याचना किये हुए, (**त्मना युक्तः**) आत्मबल से युक्त (**त्वावान्**) स्वसदृश स्वयमेव आप (**घ**) निश्चय ही (**स्तोतृभ्यः**) उपासक योगियों को योगसिद्धि (**ऋणोः**) प्राप्त कराते हो, (**चक्र्योः**) दो रथचक्रों के मध्य में (**अक्षं न**) जैसे धुरी को रथकार प्राप्त कराता है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे दोनों रथ के पहियों को धुरी की कीली से जोड़ने पर ही पहियों का घूमना और रथ का आगे जाना सम्भव होता है वैसे ही योगी को योगसिद्धि होने पर ही उसका लक्ष्य के प्रति आरोहण और मोक्षलाभ सिद्ध होता है॥२॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१०८६. आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम्।**
**ऋणोरक्षं न शचीभिः॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**शतक्रतो**) सैकड़ों कर्मों को करने वाले इन्द्र अर्थात् जगत्पति परमात्मन्! उपासकों द्वारा आपके प्रति (**यत् दुवः**) जो पूजन (**आ**) किया जाता है, उससे प्रेरित आप (**जरितृणाम्**) स्तोताओं के (**कामम्**) मनोरथ को (**आ ऋणोः**) पूर्ण करो, रथ बनाने वाला कारीगर (**शचीभिः**) बुद्धिकौशलों वा कर्मों से (**अक्षं न**) जैसे रथचक्रों के मध्य में धुरी की कीली की पूर्ति करता है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जैसे रथ के पहियों के मध्य में धुरी की कीली जोड़े बिना रथ की गति नहीं हो सकती, वैसे ही परमात्मा के कृपायोग के बिना स्तोताओं की मनोरथपूर्ति सम्भव नहीं होती है॥३॥

(१५)

**ऋषिः–मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री। स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १६० क्रमांक पर परमात्मा, राजा और आचार्य के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ योगमार्ग के गुरु और शिल्पकार का आह्वान किया जा रहा है।

**१०८७. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।**
**जुहूमसि द्यविद्यवि॥१॥**

**पदार्थ** :–हम (**ऊतये**) योगमार्ग में प्रवेश के लिए और सुरूपवान् पदार्थों की प्राप्ति के लिए (**सुरूपकृत्नुम्**) शुभ रूपों को अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधियों को कराने वाले गुरु को और सुन्दर रूपवान् पदार्थों के रचयिता शिल्पकार को (**द्यविद्यवि**) प्रतिदिन (**जुहूमसि**) बुलाते हैं, (**गोदुहे**) गोदुग्ध के इच्छुक गाय दुहने वाले के लिए

( सुदुघाम् इव ) जैसे दुधारू गाय को बुलाते हैं॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे गोदुग्ध पाने के लिए गाय बुलायी जाती है, वैसे ही योगाभ्यास के लिए योगी गुरु और शिल्प की उन्नति के लिए शिल्पकार को बुलाना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, राजा, आचार्य योगी और शिल्पकार का विषय वर्णित है।

**१०८८. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।**
**गोदा इद्रेवतो मदः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् परमात्मा, राजा, आचार्य, योगी वा शिल्पकार! आप ( **नः** ) हमारे ( **सवना** ) उपासना-यज्ञों में, प्रजाओं से किये गये उत्सवों में, शिक्षा-सत्रों में, योग-शिविरों में वा शिल्प-यज्ञों में ( **आगहि** ) आओ ( **सोमपाः** ) रस का पान करने वाले आप ( **सोमस्य** ) भक्ति रस, वीर रस, विद्या रस, ध्यान रस वा कला रस को ( **पिब** ) पान करो। ( **रेवतः** ) ऐश्वर्यवान् आपका ( **मदः** ) उत्साह ( **इत्** ) सचमुच ( **गोदाः** ) अध्यात्म प्रकाशों का, गायों का, वेदवाणियों का, योगशास्त्र के वचनों का वा शिल्पशास्त्र के वचनों का देने वाला है॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना करके और राजा, आचार्य, योगी तथा शिल्पकार का सत्कार करके उनसे यथायोग्य लाभ सब को पाने चाहिएं॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं को सम्बोधन किया गया है।

**१०८९. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्।**
**मा नो अति ख्य आ गहि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् परमात्मा, राजा, आचार्य, योग के गुरु वा शिल्पकार! ( **अथ** ) और हम ( **ते** ) आपकी ( **अन्तमानाम्** ) समीपतम ( **सुमतीनाम्** ) सुमतियों को ( **विद्याम** ) जानें। आप ( **नः अति** ) हमें लांघकर ( **मख्यः** ) अपना उपदेश मत करो, प्रत्युत ( **आगहि** ) हमारे पास आओ और आकर अपनी देनों का

पात्र हमें बनाओ।।३।।

**भावार्थ** :—परमात्मा, राजा, आचार्य, योगी और शिल्पी के जो ज्ञान और कर्म हैं उनसे उपकार लेकर अपने आपको उन्नत करना चाहिए।।३।।

( १६ )

**ऋषिः—१-३ मान्धाता यौवनाश्वः, २ उत्तरार्धस्य गोधाः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—महापङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ३७९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ वीर मानव को उद्बोधन दिया जा रहा है।

**१०९०. उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइव।**
**महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्।**
**देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) वीर मानव! (**यत्**) तो तूने (**उषाः इव**) उषा के समान (**उभे रोदसी**) आकाश-पृथिवी दोनों को (**आ पप्राथ**) अपने यश से पूर्ण किया हुआ है, ऐसे (**महीनां महान्तम्**) महानों में महान् (**चर्षणीनां सम्राजम्**) मनुष्यों के सम्राट् (**त्वा**) तुझे (**देवी जनित्री**) दिव्यगुणमयी माता ने (**अजीजनत्**) जन्म दिया है, (**भद्रा जनित्री**) श्रेष्ठ माता ने (**अजीजनत्**) जन्म दिया है।।१।।

यहाँ उपमालंकार और वीररस है।।१।।

**भावार्थ** :—मनुष्य अपनी महिमा को पहचानकर बड़े-बड़े कार्य कर सकता है।।१।।

आगे फिर वीर मानव को सम्बोधन किया गया है।

**१०९१. दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः।**
**पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः।**
**देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**मन्तुमः**) ज्ञानी वीर मानव! तू (**दीर्घं हि**

अंकुशं यथा ) लम्बे अंकुश के समान ( शक्तिम् ) शक्ति को ( बिभर्षि ) धारण किये हुए है। हे ( मघवन् ) धन के धनी! ( पूर्वेण पदा ) अगले पैर से ( अजः ) बकरा ( वयां यथा ) जैसे शाखा को पकड़ता है, वैसे तू शत्रुओं को ( यमः ) पकड़। तुझे ( देवी जनित्री ) दिव्यगुणमयी जगन्माता ने ( अजीजनत् ) जन्म दिया है, ( भद्रा जनित्री ) श्रेष्ठ मानवी माता ने ( अजीजनत् ) जन्म दिया है।।२।।

यहाँ उपमालंकार है। दो उपमाओं की संसृष्टि है।।२।।

**भावार्थ** :—हे मानव! तू अपनी माता का नाम कलंकित मत करना। तू अपनी अद्वितीय शक्ति को पहचान। मित्रों से सौहार्द और शत्रुओं से संघर्ष करके समरांगण में विजय पा।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**१०९२. अव स्म दुर्हणायतो मर्त्तस्य तनुहि स्थिरम्।**
**अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ अभिदासति।**
**देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे वीर मानव! तू ( **दुर्हणायतः मर्तस्य** ) दुःखप्रद मार करने वाले दुष्ट मनुष्य के ( **स्थिरम्** ) दृढ़ बल को ( **अव तनुहि स्म** ) नीचा कर दे। ( **तम् ईम** ) उसे ( **अधस्पदं कृधि** ) पादाक्रान्त कर दे ( **यः** ) जो शत्रु ( **अस्मान्** ) हम वीरों को ( **अभिदासति** ) दास बनाने का यत्न करता है। तुझे ( **देवी जनित्री** ) दिव्यगुणमयी जगन्माता ने ( **अजीजनत्** ) जन्म दिया है, ( **भद्रा जनित्री** ) श्रेष्ठ मानवी माता ने ( **अजीजनत्** ) जन्म दिया है।।३।।

**भावार्थ** :—हे मानव! गहरी नींद छोड़कर जाग उठ। तू दिव्य जननी का पुत्र है, भद्र जननी का पुत्र है। जो तुझे दास बनाना चाहता है उसके मनसूबे को अपनी वीरता से विफल कर दे। संसार में सब से ऊंचा स्थान प्राप्त कर।।३।।

( १७ )

**ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४७५ क्रमांक पर आनन्दरसप्रवाह के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है।

**१०९३. परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत्।**
**मदेषु सर्वधा असि॥१॥**

**पदार्थ :**—(**गिरिष्ठाः**) पर्वत के समीपस्थ गुरुकुल में स्थित, (**सोमः**) ज्ञानरस का भण्डार आचार्य (**स्वानः**) ज्ञानरस को प्रेरित करता हुआ (**पवित्रे**) शिष्यों के पवित्र आत्मा में (**परि अक्षरत्**) ज्ञानरस को सींचता है। हे आचार्यवर! (**त्वम्**) आप (**मदेषु**) प्रदान किये हुए आनन्दों में (**सर्वधाः**) सब शिष्यों को धारण करने वाले (**असि**) होते हो॥१॥

**भावार्थ :**—आचार्य शिष्य को जो ज्ञान और ब्रह्मानन्द प्रदान करता है उसकी तुलना संसार में नहीं है॥१॥

**आगे फिर गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है।**

**१०९४. त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः।**
**मदेषु सर्वधा असि॥२॥**

**पदार्थ :**—हे सोम अर्थात् ज्ञानरस के भण्डार आचार्य! (**त्वं विप्रः**) आप ब्राह्मण स्वभाव वाले हो, (**त्वं कविः**) आप मेधावी और विद्वान् हो। आपके (**अन्धसः**) ज्ञानरस से (**मधु प्रजातम्**) मधुर ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है। आप (**मदेषु**) प्रदत्त विद्यानन्दों में (**सर्वधा**) सब शिष्यों के धारणकर्ता (**असि**) होते हो॥२॥

**भावार्थ :**—ज्ञान के अगाध समुद्र, ब्राह्मणवृत्ति, मेधावी, विद्वान् आचार्य से जो भौतिक और दिव्य ज्ञान तथा उस ज्ञान से उत्पन्न आनन्द प्राप्त होता है उसके कारण वह सब का पूज्य होता है॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय को कहा गया है।

**१०९५. त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत।**
**मदेषु सर्वधा असि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् ज्ञानरसागार आचार्य! (**विश्वे**) सब (**सजोषसः**) परस्पर समान प्रीतिवाले (**देवासः**) दिव्यगुणयुक्त ब्रह्मचारी शिष्य (**त्वे**) आपसे (**प्रतिम्**) ज्ञानरस के पान को (**आशत**) प्राप्त करते हैं। आप (**मदेषु**) ज्ञानजनित आनन्दों में (**सर्वधाः**) सब शिष्यों को धारण करने वाले (**असि**) होते हो॥३॥

**भावार्थ** :—जो शिष्य तपस्वी, ज्ञानानुरागी, गुरुओं का सत्कार करने वाले और अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि दिव्य गुणों से युक्त होते हैं वे ही आचार्य के पास से ज्ञान ग्रहण करने के अधिकारी और उसके प्रीतिपात्र बनते हैं॥३॥

## (१८)

**ऋषिः—१ ऋणञ्चयः, २ शक्तिः॥ देवता—पवमानः सोमः। छन्दः—१ यवमध्या गायत्री, २ सतोबृहती॥ स्वरः—१ षड्जः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में क्रमांक ५८२ पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ भी वही विषय वर्णित है।

**१०९६. स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम्।**
**सोमो यः सुक्षितीनाम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सः सोमः**) वह सर्वान्तर्यामी परमेश्वर (**सुन्वे**) सब जगत् को उत्पन्न करता है, (**यः**) जो (**रायाम्**) विद्या, आरोग्य, सत्य, अहिंसा, न्याय, वैराग्य आदि धनों का, (**यः**) जो (**इडानाम्**) गायों और भूमियों का, (**यः**) और जो (**सुक्षितीनाम्**) जिनमें उत्कृष्ट मनुष्य निवास करते हैं उन राष्ट्रों का (**आनेता**) लाने वाला है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कौन चांदी, सोना, भूमि, अन्तरिक्ष, नदी, समुद्र, अग्नि, वायु, जल, विद्युत्, सूर्य, वृक्ष, वनस्पति, मनुष्य, गाय, घोड़े आदि जड़-चेतन पदार्थों का, वेदविद्या, सत्य, अहिंसा आदि गुणों का और धार्मिक जनों का उत्पन्न करने वाला हो सकता है? इस कारण उसकी हमें कृतज्ञता पूर्वक प्रशंसा, वन्दना और पूजा करनी चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर की महिमा वर्णित है।

**१०९७.यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः।**
**आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे॥२॥**

**पदार्थ** :–( **यस्य ते** ) जिस जगत्स्रष्टा तुझ जगदीश्वर के उत्पन्न किये रस को ( **इन्द्रः** ) सूर्य ( **पिबात्** ) पीता है, ( **यस्य** ) जिस तेरे उत्पन्न किये रस को ( **मरुतः** ) पवन पीते हैं, ( **यस्य वा** ) और जिस तेरे उत्पन्न किये रस को ( **अर्यमणा** ) शत्रु का नियमन करने वाले बुद्धितत्त्व के साथ ( **भगः** ) मन पीता है, ( **येन** ) जिस तुझे सर्वान्तर्यामी और सर्वप्रेरक परमेश्वर की सहायता से, हम ( **मित्रावरुणा** ) प्राण–अपान को ( **आ करामहे** ) अपने अनुकूल करते हैं, और जिस तेरी सहायता से ( **महे अवसे** ) महान् रक्षा के लिए ( **इन्द्रम्** ) जीवात्मा को ( **आ करामहे** ) अनुकूल करते हैं। ( **सः** ) वह तू सोम परमेश्वर ( **सुनुषे** ) सब भौतिक रसों को वा दिव्य आनन्दरस को अभिषुत करता है। [यहाँ 'स सुन्वे' इसका परिवर्तित रूप 'स सुनुषे' पूर्वमन्त्र से लाया गया है।]॥२॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर के ही रस और शक्ति से सब शरीरस्थ मन, बुद्धि, प्राण आदि और बाह्य सूर्य, चांद, तारे, बादल, पहाड़, समुद्र, धरती–आकाश आदि रसवान् और शक्तिमान् दिखायी देते हैं॥२॥

**( १९ )**

**ऋषिः–पर्वतनारदौ। देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–उष्णिक्॥ स्वरः–ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५६९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हुई थी। यहाँ भी प्रकारान्तर से उसी विषय का वर्णन करते हैं।

**१०९८. तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत।**
**शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः॥१॥**

**पदार्थ** :–हे ( **सखायः** ) साथियो! ( **वः मदाय** ) अपनी आनन्दप्राप्ति एवं उत्साहप्राप्ति के लिए, तुम ( **तम्** ) उस प्रसिद्ध

(**पुनानम्**) पवित्र करने वाले जगत्पति सोम परमेश्वर को (**अभि**) लक्ष्य करके (**गायत**) स्तुतिगीत गाओ। अन्य लोग भी उसे (**गूर्तिभिः**) अपने पुरुषार्थों से (**स्वदयन्त**) प्रसन्न किया करें, (**शिशुं न**) जैसे शिशुरूप यज्ञाग्नि को (**हव्यैः**) हवियों से तृप्त किया जाता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे यज्ञाग्नि हवियों से जागता है वैसे परमात्मा मनुष्य के पुरुषार्थों से प्रसन्न होता है सब को चाहिए कि उसके स्तुतिगीत गाते हुए अपने जीवन को उन्नत करें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है।

**१०९९. सं वत्सइव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते।**
**देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**देवावीः**) सदाचारी विद्वानों का रक्षक, (**मदः**) उत्साह देने वाला, (**इन्दुः**) रस से सराबोर करने वाला, रस का भण्डार परमेश्वर (**हिन्वानः**) स्तोताओं को शुभ गुण-कर्मों में प्रेरित करता हुआ, (**मातृभिः**) गौओं द्वारा (**परिष्कृतः**) जीभ से चाट कर स्वच्छ किये गये (**वत्सः इव**) बछड़े के समान (**मतिभिः**) स्तुतियों से (**परिष्कृतः**) अलंकृत होकर (**समज्यते**) अन्तरात्मा में प्रकट हो जाता है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—गौओं द्वारा जीभ से चाटकर बछड़ा जैसे अलंकृत किया जाता है वैसे ही स्तोताओं द्वारा स्तुतियों से परमेश्वर अलंकृत किया जाता है। तभी छिपा बैठा हुआ वह उपासक के अन्तरात्मा में प्रकट होता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा मनुष्यों का क्या उपकार करता है यह कहते हैं।

**११००. अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये।**
**अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**साधनः**) सिद्धिप्रदाता (**अयम्**) यह पवमान

सोम अर्थात् पवित्रकर्ता परमेश्वर (**दक्षाय**) आत्मबल के लिए होता है। (**अयम्**) यह परमेश्वर (**शर्धाय**) उत्साह देने के लिए, और (**वीतये**) लोगों की प्रगति के लिए होता है। (**सुतः**) ध्यान किया गया (**अयम्**) यह (**देवेभ्यः**) विद्वान् सदाचारी उपासकों के लिए (**मधुमत्तरः**) अतिशय मधुर होता है।।३।।

**भावार्थ** :—श्रद्धा से उपासना किया गया परमेश्वर उपासक को आत्मबल, उत्साह, प्रगति तथा वाणी, कर्म एवं व्यवहार में मधुरता प्रदान करता है।।३।।

(२०)

**ऋषिः—मनुः सांवरणः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५४८ क्रमांक पर परमानन्दरस के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ विद्वान् गुरुओं और राजपुरुषों का **विषय कहते हैं।**

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**११०१. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।**
३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३क २र ३ १ २
**मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**इन्दवः**) मधुर व्यवहार से वा ज्ञानरस से आर्द्र करने वाले, (**अस्मभ्यं गातुवित्तमाः**) हमारे लिए अतिशय मार्ग दिखाने वाले, (**मित्राः**) मित्रभूत, (**स्वानाः**) सद्गुणों को उत्पन्न करने वाले, (**अरेपसः**) निष्पाप, (**स्वाध्यः**) उत्तम ध्यान वाले, (**स्वर्विदः**) दिव्य प्रकाश वा आनन्द को प्राप्त कराने वाले (**सोमाः**) ज्ञानरस के भण्डार गुरुजन वा सत्कर्मों में प्रेरित करने वाले राजपुरुष (**पवन्ते**) शिष्यों वा प्रजाजनों के जीवनों को पवित्र करते हैं।।१।।

**भावार्थ** :—गुरुजन और राजपुरुष यदि विद्वान्, मधुर, मार्गदर्शक, मित्र के समान व्यवहार करने वाले, शिक्षा द्वारा सद्गुण उत्पन्न करने वाले, निरपराध, निर्दोष, अपने कार्य में दत्तावधान और पवित्रकर्ता होते हैं, तभी वे शिष्यों और प्रजाओं की उन्नति करने में समर्थ हो पाते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में फिर गुरुजन और राजपुरुषों का वर्णन है।

**११०२. ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः।**
**सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते॥२॥**

**पदार्थ** :–(**पूतासः**) पवित्र, (**विपश्चितः**) विद्वान् (**दध्याशिरः**) ज्ञान के धारणकर्ता और परिपक्व, (**सूरासः न**) सूर्यों के समान (**दर्शतासः**) दर्शनीय तथा दृष्टि देने वाले, (**जिगत्नवः**) गतिमान् एवं कर्मण्य और (**धृते**) विवेक के प्रकाश में (**ध्रुवाः**) स्थिर रहने वाले जो हों (**ते**) वे ही (**सोमासः**) विद्या, धर्म, आदि की प्रेरणा करने वाले गुरु और राजपुरुष होवें।।२।।

**भावार्थ** :–जो पवित्र आचरण वाले, विविध विद्याओं को पढ़े हुए, दूसरों की सहायता करने वाले, परिपक्वमति, सूर्य के समान प्रकाशक, कर्मशूर स्थिर प्रकाश वाले विघ्नों से बार-बार प्रहार किये जाते हुए भी ग्रहण किये कार्य को न छोड़ने वाले गुरु और राजपुरुष होते हैं वे ही सफल होते हैं।।२।।

आगे फिर उन्हीं का वर्णन है।

**११०३. सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि।**
**इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**अद्रिभिः**) मेघों के समान रस मनों से (**सुष्वाणासः**) उपदेश देने वाले, (**गौः**) राष्ट्रभूमि के (**त्वचि अधि**) पृष्ठ पर (**चितानाः**) शिक्षण कला वा राजनीति को जानने वाले, (**वसुविदः**) विद्याधन वा सुवर्ण आदि धन को प्राप्त कराने वाले गुरु वा राजपुरुष (**इषम्**) अभीष्ट ज्ञान वा धन (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**अभितः**) सब ओर से (**समस्वरन्**) घोषित करें अर्थात् प्रदान करें।।३।।

**भावार्थ** :–गुरुओं वा राजपुरुषों को विद्वान् कीर्तिमान्, विद्योपदेशक तथा अभीष्ट धन आदि प्राप्त कराने वाला होना चाहिए।।३।।

(२१)

**ऋषिः–कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–त्रिष्टुप्॥ स्वरः–धैवतः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५४१ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ वही विषय प्रकारान्तर से वर्णित किया जा रहा है।

**११०४. अया पवा पवस्वैना वसूनि मांश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व। ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) तेजस्वी, आनन्दरस से सराबोर करने वाले परमात्मन्, आप (**अया**) इस (**पवा**) धारा के साथ (**एना**) इन (**वसूनि**) दिव्य और भौतिक धनों को (**पवस्व**) प्रवाहित करो, (**मांश्चत्वे**) अभिमानी काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करने वाले (**सरसि**) गतिशील जीवात्मा में (**प्र धन्व**) पहुंचो, (**पुरुमेधाः चित्**) बहुत मेधावी मनुष्य भी (**तकवे**) प्रगति के लिए (**यस्य**) जिन आपके (**नरम्**) नेतृत्व के गुण को (**धात्**) धारण करता है, (**ब्रध्नः चित्**) महान् (**वातः**) वायु (**न**) जैसे (**जूतिम्**) वेग को (**धात्**) धारण करता है॥१॥

यहां उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—वायु आदि सभी प्राकृतिक पदार्थ और सभी मनुष्य परमात्मा के ही पास से अपनी-अपनी शक्ति पाते हैं, उसके संरक्षण के बिना वे कुछ भी नहीं कर सकते॥१॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मज्ञान के लिए आचार्य-शिष्य विषय का वर्णन है।

**११०५. उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे। षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् ज्ञानरस के भण्डार आचार्य! (**उत**) अब (**श्रवाय्यस्य**) गुरुमुख से सुने जाने वाले ज्ञान के (**श्रुते**) प्रसिद्ध (**तीर्थे**) विद्यातीर्थ गुरुकुल में (**एना**) इन (**पवया**) ज्ञानधारा से (**नः**) हमें (**पवस्व**) पवित्र करो। आगे परोक्षरूप में वर्णन है—(**नैगुतः**) अत्यन्त गुप्त अर्थों का प्रकाशक यह

आचार्य (**रणाय**) रमणीय सुख के लिए (**षष्टिं सहस्रा**) साठ हजार अर्थात् असंख्येय (**वसूनि**) ऐश्वर्यों को (**धूनवत्**) कंपाता अर्थात् प्रदान करता है, (**पक्वं वृक्षं न**) पके फलों वाले वृक्ष को कंपाकर जैसे बाग का माली किसी को असंख्य फल प्रदान करता है।।२।।

यहाँ उपमालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—विद्यातीर्थ गुरुकुल में निवास करता हुआ आचार्य जैसे शिष्यों को विशाल ज्ञानराशि प्रदान करता है, वैसे ही असंख्य सद्गुणों का ऐश्वर्य भी प्रेम से देता है।।२।।

अब नास्तिक शत्रुओं के पराजय के लिए तथा राष्ट्र में परमात्मा के प्रचार के लिए राजा का विषय वर्णित करते हैं।

**११०६. महीमे अस्य वृष नाम शूषे मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे। अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो अचेतः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस सोम अर्थात् वीररस के भण्डार राजा की (**इमे**) ये (**वृषनाम**) वर्षक गुण वाली, (**शूषे**) बलवान् (**मही**) विशाल भुजाएं हैं, जो (**मांश्चत्वे वा**) घोड़ों से होने वाले संग्राम में (**पृशने वा**) अथवा परस्पर स्पर्श जिसमें होता है ऐसे मल्लयुद्ध में (**वधत्रे**) शत्रुओं का वध करने वाली हैं। वह वीर राजा (**निगुतः**) किले, खाई आदि में छिपे हुए शत्रुओं को (**अस्वापयत्**) सुला देता है, अर्थात् धराशायी कर देता है, (**स्नेहयत् च**) और मित्रों पर स्नेह करता है। आगे प्रत्यक्षरूप से वर्णन है-हे सोम, शान्तिप्रिय प्रजाध्यक्ष! आप (**इतः**) इस राष्ट्र से (**अमित्रान्**) द्रोहकारी रिपुओं को (**अप अच**) दूर कर दो, (**अचितः**) अविवेकी, अधार्मिक नास्तिकों को (**अप अच**) दूर कर दो। इस प्रकार राष्ट्र में परमेश्वर के प्रचार के लिए वेदप्रचार के लिए कटिबद्ध होओ।।३।।

**भावार्थ** :—सभी वीर राष्ट्रवासी शत्रुओं को नष्ट करने वाले तथा परमात्मा की पूजा करने वाले तभी होते हैं, जब राष्ट्र का अध्यक्ष उसमें रुचि ले।।३।।

( २२ )

**ऋषिः—बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गौपायना लौपायना वा। देवता—अग्निः॥ छन्दः—द्विपदा विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४४८ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा, राजा और आचार्य तीनों का विषय है।

**११०७. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) अग्रनायक परमात्मन्, राजन् वा विद्वन् आचार्य! आप ( **नः** ) हमारे ( **अन्तमः** ) निकटतम ( **उत** ) और ( **त्राता** ) अपराधों से रक्षा करने वाले, तथा ( **शिवः** ) मंगलकारी, ( **वरूथ्यः** ) और वरणीय ( **भुवः** ) होओ॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा, राजा और आचार्य का संरक्षण पाकर लोग दोषों से मुक्त, निरपराध, निश्छल, निष्पाप, विद्वान्, ब्रह्मज्ञ और सदाचारी हो जाते हैं॥१॥

आगे पुनः उसी विषय को कहा गया है।

**११०८. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **अग्निः** ) अग्रनायक परमात्मा, राजा वा विद्वान् आचार्य ( **वसुः** ) सद्गुणों का निवासक, और ( **वसुश्रवाः** ) विद्यादि धनों से कीर्तिमान् है। हे ( **परमात्मन्** ) राजन् वा आचार्य! आप ( **अच्छ** ) हमारे अभिमुख ( **नक्षि** ) प्राप्त होओ। ( **द्युमत्तमः** ) अत्यधिक तेजस्वी आप ( **रयिम्** ) विविध दिव्य और भौतिक धन ( **दाः** ) दो॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा, राजा और आचार्य के गुण-कर्मों को देखकर उनसे लोगों को लाभ प्राप्त करना योग्य है॥२॥

आगे पुनः वही विषय है।

**११०९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**शोचिष्ठ**) अत्यधिक पवित्र और अतिशय पवित्रकर्ता, (**दीदिवः**) सत्य के प्रकाशक परमात्मन्, राजन् वा आचार्य। (**तं त्वा**) उन आपसे हम (**नूनम्**) निश्चय ही (**सखिभ्यः**) साथियों के (**सुम्नाय**) सुख के लिए (**ईमहे**) याचना करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं पवित्र हृदय वाला और सत्य का समर्थक है वही दूसरों को वैसा बना सकता है॥३॥

(२३)

**ऋषिः—भुवन आप्त्यः साधनो वा भौवनः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—द्विपदा त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४५२ क्रमांक पर अध्यात्म विषय में और राष्ट्र के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ भिन्न अर्थ प्रदर्शित किया जाता है।

**१११०.इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः॥१॥**

**पदार्थ** :—हम (**इन्द्रः च**) हमारा जीवात्मा (**विश्वे च देवाः**) और मन, बुद्धि, प्राण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय रूप अन्य देव मिलकर (**नु कम्**) शीघ्र ही (**इमा भुवना**) इन सब सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, भूमि आदि भुवनों को (**सीषधाम**) सिद्ध करें, अर्थात् उनके विषय में ज्ञान प्राप्त कर तथा साधनों का प्रयोग करके उन्हें अपने अनुकूल करें॥१॥

**भावार्थ** :—विद्वानों को चाहिए कि सब भूगोल और खगोल की विद्याएं जानकर अन्य लोकों से होने वाले सब लाभों को प्राप्त करें तथा उनसे सम्भावित हानियों को दूर करें॥१॥

अगले मन्त्र में अध्यात्म विषय तथा राष्ट्र का विषय वर्णित है।

**१११९. यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु॥२॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रः**) हमारा जीवात्मा (**आदित्यैः सह**) सूर्य के समान ज्ञानसाधक मन बुद्धि सहित ज्ञानेन्द्रियों के साथ मिलकर, अथवा (**इन्द्रः**) राष्ट्र का राजा (**आदित्यैः सह**) विद्वानों के साथ मिलकर (**नः**) हमारे (**यज्ञं च**) यज्ञ को (**तन्वं च**) शरीर

को ( **प्रजां च** ) और सन्तति वा राष्ट्र की प्रजा को ( **सीषधातु** ) सिद्ध करे॥३॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करके सब कुछ सिद्ध कर सकता है। उसी प्रकार विद्वान् प्रजाजन, राजा और राज्याधिकारी मिलकर पुरुषार्थ से सब यज्ञ-सुख, देहसुख, सन्ततिसुख और प्रजासुख सिद्ध कर सकते हैं॥२॥

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है।

**११११२. आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्॥३॥**

**पदार्थ** :—( **इन्द्रः** ) जीवात्मा ( **आदित्यैः** ) मन-बुद्धिसहित ज्ञानेन्द्रियों और ( **मरुद्भिः** ) प्राणों के ( **सगणः** ) गण से युक्त होकर, अथवा ( **इन्द्रः** ) राजा ( **आदित्यैः** ) सूर्यसम प्रकाशक ब्राह्मणों और ( **मरुद्भिः** ) योद्धा सैनिकों के ( **सगणः** ) गण से युक्त होकर ( **अस्मभ्यम्** ) हम मनुष्यों के लिए ( **भेषजा** ) औषध ( **करत्** ) करे॥३॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य के शरीर वा राष्ट्र में जो कुछ भी कष्ट होता है उसका शरीर में स्थित जीवात्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदि वा राष्ट्र में स्थित राज्याधिकारी ब्राह्मण और वीर सैनिक युक्ति से प्रतीकार करें॥३॥

## ( २४ )

**ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—द्विपदा विराट्॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथमा ऋचा पूर्वार्चिक में ४४६ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ गुरु-शिष्य का और राजा-प्रजा का विषय वर्णित है।

**१११३. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत यं जुजोषते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे शिष्यो वा हे प्रजाजनो! ( **वः** ) तुम ( **वृत्रहन्तमाय** ) दोषों वा शत्रुओं के अतिशय विनाशक, ( **विप्राय** ) विद्वान् ( **इन्द्राय** ) आचार्य वा राजा के लिए ( **गाथम्** ) गुणवर्णनपरक स्तोत्र ( **प्र गायत** ) भलीभांति गाओ, ( **यम्** ) जिस स्तोत्र को, वह ( **जुजोषते** ) प्रीति के साथ सेवन करे॥१॥

**भावार्थ** :—शिष्यों को गुरुओं के और प्रजाजनों को राजा के गुणों का कीर्तन करके उनसे यथायोग्य विद्या, विनय, राष्ट्र का उत्थान आदि लाभ प्राप्त करने चाहिएं॥१॥

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४४५ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ गुरु-शिष्य का और राजा-प्रजा का विषय वर्णित है।

**११९४. अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो**
**युवा स इन्द्रः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) गुरु और शिष्य के पक्ष में। ( **स्वर्काः** ) शुभ वेदमन्त्रों का पाठ करने वाले ( **मरुतः** ) प्राणायाम के अभ्यासी शिष्य ( **अर्कम्** ) पूजनीय आचार्यदेव का ( **अर्चन्ति** ) सत्कार करते हैं। ( **श्रुतः** ) प्रसिद्ध, ( **युवा** ) युवा के तुल्य सक्रिय ( **सः इन्द्रः** ) वह आचार्य, उन्हें ( **आ स्तोभति** ) विद्या आदि के प्रदान द्वारा सहारा देता है।

( **द्वितीय** ) राजा और प्रजा के पक्ष में। ( **स्वर्काः** ) सूर्यसम अतितेजस्वी ( **मरुतः** ) राष्ट्रवासी मनुष्य ( **अर्कम्** ) तेजस्वी राजा का ( **अर्चन्ति** ) सत्कार करते हैं। ( **श्रुतः** ) सबके द्वारा जिसके गुण सुने गये हैं ऐसा ( **युवा** ) युवक ( **सः इन्द्रः** ) वह वीर राजा, उनकी ( **आ स्तोभति** ) शरण देकर रक्षा करता है॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—शिष्यों से सत्कार किया गया आचार्य और प्रजाजनों से सत्कार किया गया राजा पूर्णरूप से उनका हित करता है॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४७४ क्रमांक पर परमात्मा के

विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहां गुरु-शिष्य का और राजा-प्रजा का विषय वर्णित है।

**१११५. उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) विद्वन् आचार्य वा परमैश्वर्यशाली वीर श्रेष्ठ राजन्! हम (ते) आपको (**धीमहे**) आचार्य के पद वा राजा के पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। (**तव**) आपके (**मधुमति**) मधुर (**प्रक्षे**) ज्ञान के झरने में वा ऐश्वर्य के झरने में (**उप क्षियन्तः**) निवास करते हुए, हम (**रयिम्**) विद्याधन को वा सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण आदि धन को (**पुष्येम**) पुष्ट रूप से प्राप्त करें।।३।।

**भावार्थ** :—आचार्य के पद पर वा राजा के पद पर यदि सुयोग्य विद्वान् पुरुष प्रतिष्ठापित किया जाए तो वह सब शिष्यों वा प्रजाजनों को विद्वान् वा धनपति कर सकता है।।३।

**इति सप्तमोऽध्यायः, चतुर्थप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथाष्टमोऽध्यायः

## चतुर्थप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

(१)

ऋषिः—१-३ वृषगणो वसिष्ठः; ४-१२ असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—१-३ त्रिष्टुप्; ४-१२ गायत्री॥ स्वरः—१-३ धैवतः; ४-१२ षड्जः॥

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ५२४ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ आचार्य और शिष्य का विषय कहा जा रहा है।

**११९६. प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति। महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**उशना इव**) मनुष्यों के हितकांक्षी परमेश्वर के समान अर्थात् जैसे परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में वेदकाव्य का उपदेश किया था वैसे ही (**काव्यम्**) वेदकाव्य को (**प्र ब्रुवाणः**) छात्रों के लिए उपदेश करता हुआ (**देवः**) दिव्य गुणों से युक्त सोम अर्थात् विद्यारस का भण्डार आचार्य (**देवानाम्**) जगत् के दिव्य पदार्थ सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, नक्षत्र, जल, वायु, अग्नि, पर्वत, नदी, समुद्र आदियों के (**जनिम्**) जन्म की (**विवक्ति**) व्याख्या करता है अर्थात् कैसे उन पदार्थों की उत्पत्ति हुई, उन पदार्थों में क्या गुण हैं, क्या उनका उपयोग है, आदि बातें शिष्यों को बतलाता है। (**महिव्रतः**) महान् व्रतों और महान् कर्मों वाला, (**शुचिबन्धुः**) पवित्र परमेश्वर जिसका बन्धु है ऐसा, (**पावकः**) पवित्रता देने वाला (**वराहः**) जलवर्षी बादल के समान विद्यावर्षी आचार्य (**पदा**) शास्त्रों के सुबन्त एवं तिङन्त पदों का (**रेभन्**) उच्चारण करता हुआ (**अभ्येति**) पढ़ाने के लिए आता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—सब शास्त्रों में पारंगत, सुयोग्य आचार्य शास्त्र के गूढ़ तत्त्व का भी इस प्रकार उपदेश करता है जिससे विद्यार्थियों की बुद्धि में वह विषय हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाता है। स्वयं

पवित्र, दूसरों को पवित्र करने वाला, परमेश्वर का सखा वह आचार्य छात्रों का वन्दनीय होता है॥१॥

कैसे शिष्य कैसे आचार्य के पास विद्या पढ़ने के लिए जाते हैं यह अगले मन्त्र में कहा गया है।

**११९७. प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः। अङ्गोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम्॥२॥**

**पदार्थ** :–(**तृपला**) शीघ्रकारी, (**वृषगणाः**) धार्मिक गणवाले, (**हंसासः**) हंसों के समान नीरक्षीर विवेकी, निर्मल हृदय वाले छात्र (**अमात्**) विद्याबल प्राप्त करने के हेतु से (**वग्नुम् अच्छ**) वाचस्पति आचार्य के प्रति (**अस्तम्**) गुरुकुलरूप घर में (**अयासुः**) जाते हैं। (**सखाय**) सहाध्यायी वे (**साकम्**) एक साथ मिलकर (**अङ्गोषिणम्**) वेदों का आघोष करने वाले, (**पवमानम्**) हृदयों को पवित्र करने वाले, (**दुर्मर्षम्**) दुर्धर्ष, (**वाणम्**) सेवनीय आचार्य को (**प्रवदन्ति**) पढ़ाने के लिए निवेदन करते हैं॥२॥

यहां 'हंसासः' में लुप्तोपमा है। वाणीवाचक 'वग्नु' शब्द लक्षणावृत्ति से 'वाचस्पति' अर्थ को लक्षित करता है, जिसमें वाणी पर अधिकार का अतिशय व्यङ्ग्य है॥२॥

**भावार्थ** :–सुयोग्य गुरुजन सुयोग्य शिष्यों को जब पा लेते हैं तभी दोनों यशस्वी होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में आचार्य शिष्यों को यह उपदेश दे रहा है कि चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित होता है।

**११९८. स योजत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीडन्तं मिमते न गावः। परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**सः**) वह सोम चन्द्रमा (**उरुगायस्य**) विस्तीर्ण ग्रहोपग्रहों में जिसका प्रकाश पहुँचता है ऐसे सूर्य के (**जूतिम्**)

वेगवान् किरणसमूह को ( **योजते** ) अपने साथ जोड़ता है। ( **वृथा** ) अनायास ( **क्रीडन्तम्** ) भूमि और सूर्य के चारों ओर क्रीड़ा करने वाले उस चन्द्रमा को ( **गावः** ) सूर्यकिरणें ( **न मिमते** ) सम्पूर्ण रूप में व्याप्त नहीं करती, किन्तु जितने भाग में सूर्यकिरणें पहुंचती हैं चन्द्रमा का उतना ही भाग प्रकाशित होता है। तो भी कभी-कभी ( **तिग्मशृङ्गः** ) तीक्ष्ण किरणों वाला सूर्य चन्द्रमा को ( **परीणसम्** ) परि व्याप्त ( **कृणुते** ) कर लेता है, तब पूर्णिमा में चन्द्रमा पूर्णतः प्रकाशित हो जाता है। वह चन्द्रमा ( **दिवा** ) दिन में ( **हरिः** ) हरा-काला सा ( **ददृशे** ) दिखाई देता है, ( **नक्तम्** ) रात्रि में ( **ऋजः** ) शुभ्र।।३।।

**भावार्थ** :—पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है और चन्द्रमा पृथिवी के चारों ओर घूमता-घूमता पृथिवी के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा करता है। चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है। चन्द्रमा की जितनी कलाओं पर सूर्य-किरणें पहुंचती हैं उतनी ही कलाएं प्रकाशित दीखती हैं। प्रतिपदा को एक कला, द्वितीया को दो कलाएं, तृतीया को तीन कलाएं, अष्टमी को आठ कलाएं, और पूर्णमासी को सब कलाएं प्रकाशित होती हैं। अमावस्या को चन्द्रमा पर कहीं भी सूर्य किरणों के न पहुंचने से सारा ही चन्द्र-मण्डल अन्धकार से ढका रहता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि सूर्य-किरणें हमेशा चन्द्रमा के एक गोलार्ध पर ही पड़ती हैं, अतः दूसरे गोलार्ध में सदा अन्धेरा ही रहता है। गुरुओं को चाहिए कि चन्द्रमा के प्रकाशित होने का यह नियम तथा भूगोल और खगोल सम्बन्धी अन्य भी नियम शिष्यों को उपदेश करते रहे।।३।।

अगले मन्त्र में गुरुओं का वर्णन है।

**१११९. प्र स्वानासो रथाइवार्वन्तो न श्रवस्यवः।**
**सोमासो राये अक्रमुः॥४॥**

**पदार्थ** :—( **सोमासः** ) विद्वान् गुरु लोग ( **रथाः इव** ) रथों के समान ( **सवानासः** ) शब्द करने वाले, और ( **अर्वन्तः इव** ) आक्रमणकारी योद्धाओं के समान ( **श्रवस्यवः** ) कीर्ति के इच्छुक होते हुए ( **राये** ) विद्या रूप ऐश्वर्य के लिए अर्थात् राष्ट्र में

विद्या-रूप ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिए ( प्र अक्रमुः ) उद्योग करते हैं॥४॥

यहाँ उपमालंकार है॥४॥

**भावार्थ** :—जैसे सड़क पर चलते हुए रथ शब्द करते हैं वैसे ही गुरुजन पढ़ाते समय भाषण करते हैं। जैसे युद्ध करने में उद्भट योद्धागण विजय की कीर्ति चाहते हैं, वैसे ही गुरु लोग राष्ट्र में सुयोग्य विद्वानों को उत्पन्न करके उससे प्राप्त होने वाली कीर्ति की कामना करते हैं॥४॥

अगले मन्त्र में पुनः गुरुओं का ही विषय है।

**११२०. हिन्वानासो रथाइव दधन्विरे गभस्त्योः।**
**भरासः कारिणामिव॥५॥**

**पदार्थ** :—( **इव** ) जैसे ( **हिन्वानासः** ) चलते हुए ( **रथाः** ) रथ, और ( **इव** ) जैसे ( **कारिणाम्** ) भारवाहक कर्मचारियों के ( **भरासः** ) भार ( **गभस्त्योः** ) बाहुओं से ( **दधन्विरे** ) धारण किये जाते हैं। वैसे ही ( **सोमासः** ) विद्वान् गुरुजन राजा द्वारा और गृहस्थ प्रजाजनों द्वारा धन आदि के दान से ( **दधन्विरे** ) धारण किये जाते हैं। यहाँ ( '**सोमासः**' ) पद पूर्वमन्त्र से लगाया गया है॥५॥

यहाँ उपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—जैसे मार्ग पर चलते हुए रथ घोड़ों की लगाम के नियन्त्रण द्वारा बाहुओं से धारण किये जाते हैं और जैसे सिर पर भार ढोते हुए श्रमिक उस भार को बाहुओं से धारण किये रखते हैं, वैसे ही विद्वान् गुरुजन राजकीय सहायता द्वारा धारण किये जाने चाहिएं॥५॥

आगे फिर गुरुओं का ही वर्णन है।

**११२१. राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते।**
**यज्ञो न सप्त धातृभिः॥६॥**

**पदार्थ** :—( **राजनः न** ) राजा लोग जैसे ( **प्रशस्तिभिः** ) विजय-प्रशस्तियों से भासित होते हैं, ( **यज्ञः न** ) मानसयज्ञ जैसे ( **सप्त धातृभिः** ) मन, बुद्धि, पंच ज्ञानेन्द्रिय इन सात होताओं से भासित होता है, अथवा ( **यज्ञः न** ) अग्निष्टोम यज्ञ जैसे ( **सप्त**

धातृभिः ) सप्त होताओं से शोभित होता है वैसे ही ( सोमासः ) विद्वान् गुरुलोग ( गोभिः ) ज्ञान-रश्मियों से वा वेद-वाणियों से ( अञ्जते ) भासित होते हैं॥६॥

यहाँ उपमालंकार है॥६॥

**भावार्थ** :-राजा लोग जैसे प्रशस्ति-गीतों से शोभित होते हैं, यज्ञ जैसे ऋत्विजों से शोभित होता है। वैसे ही गुरुलोग विद्या, ब्रह्मसाक्षात्कार, तेज, तप, प्रेम, क्षमा और मधुर व्यवहार से शोभा पाते हैं॥६॥

सातवीं ऋचा पूर्वार्चिक में ४८५ क्रमांक पर आनन्दरस के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ गुरुओं का वर्णन है।

**११२२. परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा।**
**मधो अर्षन्ति धारया॥७॥**

**पदार्थ** :-( **स्वानासः** ) पढ़ाने के समय शुद्धोच्चारण या भाषण करने वाले ( **इन्दवः** ) तेजस्वी, विद्यारस से भिगोने वाले गुरुलोग ( **मदाय** ) शिष्यों के आनन्द के लिए ( **बर्हणा** ) विरोधियों के सिद्धान्तों का खण्डन करने वाली ( **गिरा** ) वाणी से ( **मधो** ) मधुर ज्ञानरस की ( **धारया** ) धारा के साथ ( **परि अर्षन्ति** ) शिष्यों को चारों ओर प्राप्त होते हैं॥७॥

**भावार्थ** :-शिष्यों के प्रति अगाध प्रेम से परिप्लुत विद्वान् गुरु लोग उनके हित के लिए उन्हें ज्ञानधारा से सींचते हैं॥७॥

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का विषय है।

**११२३. आपानासो विवस्वतो जिन्वन्त उषसो भगम्।**
**सूरा अण्वं वि तन्वते॥८॥**

**पदार्थ** :-( **आपानासः** ) ज्ञानरस के कुएं के तुल्य, ( **सूराः** ) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु लोग ( **विवस्वतः** ) अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य की, तथा ( **उषसः** ) उषा की ( **भगम्** ) शोभा को ( **जिन्वन्तः** ) शिष्यों के हृदयों में प्रेरित करते हुए ( **अण्वम्** ) सूक्ष्म से सूक्ष्म भी विज्ञान को ( **वितन्वते** ) शिष्य की बुद्धि में

फैला देते हैं॥८॥

**भावार्थ** :—जैसे उषा और सूर्य रात्रि के अंधेरे को चीरकर भूमि पर प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही गुरुजन शिष्यों के अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके सूक्ष्म से सूक्ष्म विज्ञान को उनके सम्मुख हस्तामलकवत् कर देते हैं और विद्या की ज्योति से उनके आत्मा को चमका देते हैं॥८॥

आगे फिर वही विषय कहा गया है।

**११२४. अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः।**
**वृष्णो हरसः आयवः॥९॥**

**पदार्थ** :—(**प्रत्नाः**) पुरातन अर्थात् ज्ञान एवं आयु में वृद्ध, (**कारवः**) मौखिक एवं व्यावहारिक विद्याओं के शिल्पकार, (**आयवः**) कर्मयोगी गुरुलोग (**वृष्णः**) सुखवर्षी ज्ञान को (**हरसे**) **शिष्यों के अन्तरात्मा में लाने के लिए** (**मतीनाम्**) शिष्यों की बुद्धियों के (**द्वारा**) द्वारों को (**अप ऋण्वन्ति**) खोल देते हैं॥९॥

**भावार्थ** :—गुरुओं को चाहिए कि वे शिष्यों की बुद्धियों के बन्द द्वारों को खोलकर उन्हें गम्भीर ज्ञान के ग्रहण करने योग्य करके पण्डित बना दें॥९॥

आगे फिर गुरु-शिष्य का विषय है।

**११२५. समीचीनास आशत होतारः सप्तजानयः।**
**पदमेकस्य पिप्रतः॥१०॥**

**पदार्थ** :—(**समीचीनासः**) भली-भांति पढ़ाने आदि कर्म में तत्पर, (**सप्तजानयः**) अग्नि की सात ज्वालाएं जिन्हें पत्नी के समान प्रिय हैं अर्थात् जो अग्निहोत्री हैं ऐसे (**होतारः**) विद्यायज्ञ के होता के समान विद्वान् गुरुलोग (**एकस्य**) एक परमेश्वर के (**पदम्**) स्वरूप को (**पिप्रतः**) छात्रों के अन्तःकरण में भरते हुए (**आशत**) विद्यागृह में कार्यरत रहते हैं।

अग्नि की सात ज्वालाएं मु० उप० १।२।४ में प्रोक्त 'काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरुची'

समझनी चाहिएं॥१०॥

**भावार्थ** :–गुरु–शिष्य आपस में मिलकर विद्या–यज्ञ को सिद्ध करें, और विविध विद्याओं के पढ़ने–पढ़ाने के साथ ब्रह्म के स्वरूप को भी साक्षात् करें तथा करायें॥१०॥

अगले मन्त्र में गुरु के बताये मार्ग द्वारा परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन है।

**११२६. नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे।**
**कवेरपत्यमा दुहे॥११॥**

**पदार्थ** :–मैं गुरु द्वारा निर्दिष्ट उपाय से (**नाभा**) केन्द्रभूत अन्तरात्मा में (**नः**) अपने (**नाभिम्**) केन्द्रभूत परमात्मा को (**आ ददे**) ग्रहण करता हूं, (**चक्षुषा**) अन्दर की आंख से (**सूर्यम्**) सूर्यसम प्रभावान् उस परमात्मा को (**दृशे**) देखने के लिए समर्थ होता हूं। (**कवेः**) कवि सोम परमात्मा की (**अपत्यम्**) सन्तान वेदकाव्य को (**आ दुहे**) दुहता हूं॥११॥

**भावार्थ** :–आचार्य द्वारा वेद दुहने की कला को सीखकर जो वेदार्थों को दुहते हैं और वेदप्रतिपाद्य परमेश्वर की आराधना करते हैं उनका जीवन सफल हो जाता है॥११॥

आगे पुनः परमात्मा के साक्षात्कार का वर्णन है।

**११२७. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्।**
**सूरः पश्यति चक्षसा॥१२॥**

**पदार्थ** :–(**प्रियम्**) प्रिय, (**दिवः**) द्युलोक के (**पदम्**) प्रतिष्ठापक, (**गुहा हितम्**) गुफा में निहित अर्थात् गुह्य सोम नामक परमात्मा को (**अध्वर्युभिः**) योग–यज्ञ के अध्वर्यु–रूप योगप्रशिक्षक गुरुओं के द्वारा शिक्षा दिया हुआ (**सूरः**) विद्वान् उपासक (**चक्षसा**) अन्तर्दृष्टि से (**अभि पश्यति**) साक्षात्कार कर लेता है॥१२॥

**भावार्थ** :–सुयोग्य योगप्रशिक्षक गुरुओं से योग का अभ्यास करके उपासक जन चर्म–चक्षुओं से अदृश्य, सर्वान्तर्यामी परमात्मा

की अनुभूति पाने में समर्थ हो जाते हैं॥१२॥

( २ )

**ऋषिः—१-९ असितः काश्यपो देवलो वा; १०-१२ भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में विद्वानों का विषय वर्णित है।

**११२८. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः।**
**विदाना अस्य योजना॥१॥**

**पदार्थ** :—( **सुश्रियः** ) उत्तम श्री वाले, ( **इन्दवः** ) तेजस्वी, ज्ञानरस से भिगोने वाले विद्वान् गुरु लोग ( **ऋतस्य पथा** ) सत्य के मार्ग से ( **धर्मन्** ) धर्म में ( **असृग्रम्** ) तत्पर होते हैं, क्योंकि वे ( **अस्य** ) इस धर्ममार्ग की योजना क्रियान्वयन-पद्धतियों को ( **विदानाः** ) जानते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—विद्वान् लोग स्वयं भी सत्य और धर्म के मार्ग में चलें तथा योजनाएं बनाकर दूसरों को भी उस मार्ग पर चलाएं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः विद्वान् का विषय है।

**११२९. प्र धारा मधो अग्रियो महीरपो वि गाहते।**
**हविर्हविःषु वन्द्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **अग्रियः** ) अगुआ श्रेष्ठ, ( **हविःषु** ) हवि देने वालों में ( **हविः** ) उत्कृष्ट हवि देने वाला, ( **वन्द्यः** ) वन्दनीय सोम अर्थात् ज्ञान के उत्पादक विद्वान् ( **महीः अपः** ) महान् कर्मों को ( **विगाहते** ) आलोडित करता है अर्थात् ज्ञान के अनुकूल कर्मों का आचरण करता है। उसके पास से ( **मधोः** ) मधुर ज्ञानरस की ( **धारा** ) धारा ( **प्र** ) प्रवाहित होती है॥२॥

**भावार्थ** :—वही विद्वान् प्रशंसनीय है जो ज्ञान के अनुकूल कर्म भी करता है और सबके लिए ज्ञान की मधुर धाराएं बहाता है॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि कैसा गुरु क्या करता है।

११३०. प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने।
सद्माभि सत्यो अध्वर:॥३॥

**पदार्थ** :–(**अग्रिय:**) श्रेष्ठ, (**वृषा**) ज्ञान की वर्षा करने वाला, (**सत्य:**) सत्यनिष्ठ, (**अध्वर:**) यज्ञमय जीवन वाला विद्वान् गुरु (**वने**) जंगल में (**सद्म अभि**) गुरुकुल रूप घर में (**वाच: युजा**) वाणी के योग से (**उ**) निश्चय ही (**प्र अचिक्रदत्**) शिष्यों को कर्तव्यों का उपदेश करता है।।३।।

**भावार्थ** :–पर्वतों के एकान्त में नदियों के संगम पर गुरुकुलों का संचालन करते हुए सत्यनिष्ठ गुरु शिष्यों को पढ़ाकर विद्वान् कर्तव्यपरायण और सदाचारी करें।।३।।

आगे फिर वही विषय है।

११३१. परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति।
स्वर्वाजी सिषासति॥४॥

**पदार्थ** :–(**कवि:**) क्रान्तद्रष्टा, बुद्धिमान्, कविहृदय, विद्वान् आचार्य (**नृम्णा**) बलों को (**पुनान:**) पवित्र करता हुआ (**यत्**) जब (**काव्या**) वेदादि काव्यों की (**परि अर्षति**) व्याख्या करता है, तब (**वाजी**) बलवान् और विज्ञानवान् वह शिष्यों को (**स्व:**) आनन्द (**सिषासति**) प्रदान करना चाहता है।।४।।

**भावार्थ** :–विद्वान् आचार्य की वेदादिशास्त्रों की व्याख्या शिष्यों को परमानन्द देने वाली और उनकी ज्ञानवृद्धि करने वाली होती है।।४।।

आगे फिर गुरु-शिष्य का ही विषय है।

११३२. पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति।
यदीमृण्वन्ति वेधस:॥५॥

**पदार्थ** :–(**यत्**) जब (**ईम्**) इस आचार्य को (**वेधस:**) अन्य विद्वान् गुरु (**ऋण्वन्ति**) प्राप्त होते हैं, तब यह (**विश:**) प्रजाओं को (**राजा इव**) जैसे राजा वैसे (**पवमान:**) पवित्र आचरण वाला करता हुआ (**स्पृध:**) विद्यायज्ञ में विघ्न डालने

वाले स्पर्धालुओं को ( **अभि सीदति** ) दूर कर देता है॥५॥

यहाँ उपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—आचार्य दूसरे सुयोग्य गुरुजनों की सहायता से ही छात्रों को विद्वान् और पवित्र हृदय वाला करने में समर्थ होता है॥५॥

आगे पुनः वही विषय है।

**११३३. अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति।**
**रेभो वनुष्यते मती॥६॥**

**पदार्थ** :—( **प्रियः** ) प्रिय, ( **हरिः** ) चित्त को हरने वाला वा दोषों को दूर करने वाला आचार्य ( **अव्याः वारे** ) पृथिवी के चुने हुए स्थान पर ( **वनेषु** ) एकान्त जंगलों में ( **परि सीदति** ) स्थित होता है। ( **रेभः** ) विद्या का उपदेष्टा वह ( **मती** ) मति से ( **वनुष्यते** ) विद्या के विघ्नों को नष्ट करता है॥६॥

**भावार्थ** :—विद्यारूप यज्ञ के लिए वन का एकान्त प्रदेश ही चुनना चाहिए, जहाँ विद्या में विघ्न डालने वाले नगरों के प्रलोभन न हों॥६॥

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का विषय है।

**११३४. स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति।**
**रणा यो अस्य धर्मणा॥७॥**

**पदार्थ** :—( **यः** ) जो शिष्य ( **अस्य** ) इस सोम के अर्थात् विद्याप्रेरक आचार्य के ( **धर्मणा** ) नियम से ( **रण** ) चलता है, ( **सः** ) वह शिष्य ( **मदेन साकम्** ) उत्साह के साथ ( **वायुम्** ) प्राणविद्या वा पवनविद्या को ( **इन्द्रम्** ) आत्मविद्या वा विद्युद्-विद्या को और ( **अश्विना** ) मन-बुद्धि की विद्या वा सूर्य-चन्द्र की विद्या को ( **गच्छति** ) प्राप्त कर लेता है॥७॥

**भावार्थ** :—शिष्यों को चाहिए कि समर्पणभाव से गुरुओं के संरक्षण में रहते हुए सब विद्याएं पढ़कर वायु, बिजली आदि के प्रयोग से यान, यन्त्र आदि चलाएं, सब भूगोल-खगोल का ज्ञान प्राप्त करें और आध्यात्मिक सिद्धियां पाएं॥७॥

अब ज्ञान तथा ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित करते हैं।

**११३५. आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः।**
**विदाना अस्य शक्मभिः॥८॥**

**पदार्थ** :–(**मधोः**) मधुर ज्ञान-रस वा ब्रह्मानन्द-रस की (**ऊर्मयः**) तरंगें (**मित्रे**) मित्रभूत जीवात्मा में, (**वरुणे**) दोषनिवारक मन में, और (**भगे**) सेवनीय प्राण में (**आ पवन्ते**) आती हैं। (**विदानाः**) उन तरंगों को प्राप्त करने वाले लोग (**अस्य**) इस मधुर ज्ञान वा ब्रह्मानन्द की (**शक्मभिः**) शक्तियों से युक्त हो जाते हैं।।८।।

**भावार्थ** :–ज्ञान व ब्रह्मानन्द की तरंगों से शरीर में स्थित सब कुछ मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियां आदि और रोम--रोम तरंगित हो जाता है।।८।।

आगे पुनः ज्ञान और ब्रह्मानन्द का ही विषय है।

**११३६. अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये।**
**श्रवो वसूनि सञ्जितम्॥९॥**

**पदार्थ** :–हे (**रोदसी**) आत्मा और मन! तुम दोनों (**मध्वः**) मधुर सोम की अर्थात् ज्ञानरस और आनन्दरस की (**सातये**) प्राप्ति के लिए (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**रयिम्**) भौतिक चांदी, सोना आदि धन, (**श्रवः**) यश वा शास्त्रश्रवण, और (**वसूनि**) आध्यात्मिक धारणा, ध्यान, समाधि, योगसिद्धि, विवेकख्याति आदि धन (**सञ्जितम्**) जीतो।।९।।

**भावार्थ** :–ज्ञान वा ब्रह्मानन्द में मन लगाने के लिए पहले धन, धर्म आदि का उपार्जन अपेक्षित होता है।।९।।

दसवीं ऋचा पूर्वार्चिक में ४९८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जगदीश्वर और आचार्य को सम्बोधन किया जा रहा है।

**११३७. आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे।**
**पान्तमा पुरुस्पृहम्॥१०॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक, विद्या-सद्गुणों आदि के प्रेरक जगदीश्वर वा आचार्य! हम (ते) आपके (**मयोभुवम्**) सुखजनक, (**वह्निम्**) जीवनरथ को आगे जाने वाले, (**पान्तम्**) रक्षक, (**पुरुस्पृहम्**) बहुत चाहने योग्य (**दक्षम्**) विद्यावल, धर्मबल और सच्चरित्रता के बल को (**अद्य**) आज (**आ वृणीमहे**) पाना चाहते हैं॥१०॥

**भावार्थ** :—परमात्मा और आचार्य से ग्रहण किये गए विद्या, धर्म, तप, तेज, ब्रह्मवर्चस्, सच्चरित्रता आदि के बल शिष्यों का कल्याण करने वाले होते हैं॥१०॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है।

२ ३ १ २र ३२उ ३ १ २ ३ १ २
**११३८. आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम्।**
२ ३ १ २ ३ १ २
**पान्तमा पुरुस्पृहम्॥११॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् ज्ञान-रस वा ब्रह्मानन्द-रस के प्रेरक परमात्मन् वा आचार्य! हम (**मन्द्रम्**) आनन्दप्रदायक आपको (**आ**) वरते हैं, (**वरेण्यम्**) वरणीय आपको (**आ**) वरते हैं, (**विप्रम्**) विशेष रूप से धन-धान्य-विद्या-आरोग्य आदि से पूर्ण करने वाले आपको (**आ**) वरते हैं, (**मनीषिणाम्**) मनीषी आपको (**आ**) वरते हैं, (**पान्तम्**) विघ्न, विपत्ति, अविद्या आदि से रक्षा करने वाले और (**पुरुस्पृहम्**) बहुत स्पृहणीय आपको (**आ**) वरते हैं। [यहाँ आ की बार-बार आवृत्ति की गयी है। उसके साथ 'वृणीमहे' पद पूर्वमन्त्र से आ जाता है॥११॥

**भावार्थ** :—असंख्य गुणों से विभूषित, शुभ गुण-कर्म-स्वभाव वाले, विपत्तियों को दूर करने वाले, सम्पत्तिप्रदाता, विद्या-आनन्द आदि प्राप्त कराने वाले, सरस सोम-नामक परमात्मा और आचार्य को वर कर, उपासना और सत्कार करके अपरिमित लाभ सबको प्राप्त करने चाहिएं॥११॥

आगे फिर परमात्मा और आचार्य का विषय वर्णित है।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ २
**११३९ आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा।**
२ ३ १ २ ३ १ २
**पान्तमा पुरुस्पृहम्॥१२॥**

**पदार्थ** :—हे (**सुक्रतो**) शुभ ज्ञान वाले वा शुभकर्मा वाले परमात्मन् और आचार्य! आप (**आ**) हमारे पास आओ। हम आपसे (**रयिम्**) धन (**आ**) पाना चाहते हैं, (**सुचेतुनम्**) उत्कृष्ट ज्ञान (**आ**) पाना चाहते हैं। (**तनूषु**) शरीरों के हित के लिए, हम आपको (**आ**) पाना चाहते हैं। (**पान्तम्**) रक्षा करने वाले तथा (**पुरुस्पृहम्**) स्पृहणीय आपको (**आ**) पाना चाहते हैं॥१२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा और आचार्य का सेवन करके सबको धन, ज्ञान, जागरूकता, स्वास्थ्य आदि की सम्पत्ति प्राप्त करनी चाहिए॥१२॥

(३)

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—वैश्वानरः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ भी वही विषय है।

**११४०. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्। कविं सम्राजमतिथिं जनानमासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**मूर्धानम्**) मूर्धा के समान सर्वोपरि विराजमान् (**दिवः**) सूर्य के और (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**अरतिम्**) स्वामी, (**वैश्वानरम्**) सबके नेता, (**ऋते**) यज्ञ में (**आ जातम्**) सर्वत्र प्रसिद्ध, (**कविम्**) वेदकाव्य के कवि, (**सम्राजम्**) ब्रह्माण्ड के राजराजेश्वर, (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**अतिथिम्**) अतिथि के समान पूज्य, (**नः**) हमारे (**पात्रम्**) पालनकर्ता (**अग्निम्**) अग्रनायक परमेश्वर को (**देवाः**) विद्वान् उपासक जन (**आसन्**) मुख से प्रणव-जप आदि करके (**जनयन्त**) अन्तरात्मा में प्रकट करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—सबके वन्दनीय, सब शुभ गुण-कर्म-स्वभावों से युक्त, विश्व के सम्राट् परमात्मा को जानकर, उसकी स्तुति और उपासना करके मनुष्यों को अपनी और दूसरों की उन्नति सिद्ध करनी चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और मोक्ष का विषय वर्णित है।

**११४१. त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते। तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदे:॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अमृत**) अमर परमात्मन्! (**जायमानम् त्वाम्**) अन्तरात्मा में प्रकट होते हुए आपकी (**जायमानं शिशुं न**) पैदा होते हुए शिशु के समान (**विश्वे देवा:**) सब विद्वान् उपासक लोग (**अभि सं नवन्ते**) स्तुति करते हैं। (**तव क्रतुभि:**) आपके कर्तृत्वों से, उपासक जन (**अमृतत्वम्**) मोक्ष को (**आयन्**) प्राप्त कर लेते हैं, (**यत्**) क्योंकि हे (**वैश्वानर**) सब मनुष्यों को धर्मकार्यों में प्रवृत्त करने वाले परमात्मन्! आप (**पित्रो:**) माता-पिता के समान विद्यमान द्यावापृथिवी में (**अदीदे:**) दीप्त हो, प्रख्यात हो॥२॥

**यहाँ उपमालंकार है॥२॥**

**भावार्थ :—जैसे घर में शिशु उत्पन्न होने पर सब गृहवासी हर्ष मनाते हैं, वैसे ही गुह्य परमात्मा के हृदय में प्रकट होने पर साधक जन प्रसन्न होते हैं। मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हुए लोग** परमात्मा की ही व्यवस्था से मोक्ष पाते हैं। विद्वान् भक्तजन आकाश में और भूमि पर सब जगह परमेश्वर की ही विभूति देखते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में पुन: परमात्मा का विषय है।

**११४२. नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त। वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवा:॥३॥**

**पदार्थ** :—(**यज्ञानाम्**) पूजा-कर्मों के (**नाभिम्**) केन्द्र, (**रयीणाम्**) धनों के (**सदनम्**) सदन, (**महाम्**) महान् तेजों के (**आहावम्**) कूप परमात्मा को, लोग (**अभि सं नवन्त**) चारों ओर भलीभाँति स्तुति करते हैं। (**अध्वराणाम्**) हिंसारहित व्यवहारों के (**रथ्यम्**) रथी, (**यज्ञस्य**) परोपकार रूप यज्ञ के (**केतुम्**)

ध्वज के समान स्थित, (वैश्वानरम्) सबके नेता परमात्मा को (देवाः) विद्वान् उपासक (जनयन्त) अपने अन्तरात्मा में प्रकट करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—विविध गुणों के भण्डार जगदीश्वर की पूजा करके योगाभ्यास द्वारा उसका साक्षात्कार अपने अन्तरात्मा में सबको करना चाहिए॥३॥

(४)

**ऋषिः—यजत आत्रेयः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में मित्र-वरुण नाम से परमात्मा और जीवात्मा का विषय वर्णित है।

**११४३. प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा।**
**महिक्षत्रावृतं बृहत्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! (**वः**) तुम (**विपा**) बुद्धिपूर्ण (**गिरा**) वाणी से (**मित्राय**) विपत्ति से त्राण करने वाले परमात्मा के लिए, और (**वरुणाय**) वरण करने योग्य जीवात्मा के लिए (**गायत**) गाओ, अर्थात् उनका गुणगान करो। हे (**महिक्षत्रौ**) महान् बल वाले परमात्मा और जीवात्मा! तुम दोनों का (**ऋतम्**) सत्य ज्ञान और सत्य कर्म (**बृहत्**) महान् है॥१॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा परमात्मा के साथ मित्रता स्थापित करके महान् सत्यज्ञानों को पा सकता है और महान् सत्यकर्मों को कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उसी विषय का कथन है।

**११४४. सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च।**
**देवा देवेषु प्रशस्ता॥२॥**

**पदार्थ** :—(**या**) जो (**सम्राजा**) सम्राट् और (**घृतयोनी**) तेज के घर (**मित्रः च वरुणः च**) परमात्मा और जीवात्मा (**उभा**) दोनों (**देवा**) प्रकाशक और (**देवेषु**) प्रकाश करने वाले अग्नि, सूर्य, बिजली आदि के बीच (**प्रशस्ता**) प्रशस्त है,

उनके लिए (गायत) गुण-गान करो। ['गायत' पद पूर्व मन्त्र से यहाँ लाया गया है]॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर विश्वब्रह्माण्ड का सम्राट् है वैसे ही जीवात्मा शरीर का सम्राट् है। दोनों के प्रकाश को पाकर मनुष्य को महान् बनना योग्य है॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**११४५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य।**
**महि वां क्षत्रं देवेषु॥३॥**

**पदार्थ** :—(ता) वे तुम दोनों मित्र-वरुण अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा (**पार्थिवस्य**) सांसारिक (**दिव्यस्य**) तथा आध्यात्मिक (**महः**) महान् (**रायः**) धन को (**नः**) हमारे लिए (**शक्तम्**) देने में समर्थ होओ। (**देवेषु**) सूर्य, चन्द्रमा, बिजली आदियों में तथा प्रकाशक मन, बुद्धि, प्राण आदियों में (**वाम्**) तुम्हारा (**महि**) महान् (**क्षत्रम्**) बल, निहित है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा और जीवात्मा की सहायता से न केवल लौकिक, किन्तु पारमार्थिक दिव्य धन भी प्राप्त किया जा सकता है। शरीर में स्थित मन, बुद्धि आदि आत्मा और परमात्मा दोनों के बल से और सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि परमात्मा के ही बल से बलवान् बने हुए हैं। अतः हम भी उन दोनों के बल को क्यों न प्राप्त करें॥३॥

(५)

**ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

अगले मन्त्र में इन्द्र नाम से परमेश्वर का आह्वान किया गया है।

**११४६. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।**
**अण्वीभिस्तना पूतासः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! हे (**चित्रभानो**) अद्भुत दीप्ति वाले! आप (**आयाहि**) आओ, इमे ये (**सुताः**) हमारे पुत्र (**त्वायवः**) आपकी कामना कर रहे हैं, और

(**अण्वीभिः**) सूक्ष्म धार्मिक वृत्तियों के कारण, (**तना**) धन से (**पूतासः**) पवित्र हैं॥१॥

**भावार्थ** :—हमें और हमारी सन्तानों को परमेश्वर का उपासक और पवित्र लक्ष्मी वाला होना चाहिए। पाप से कमाया गया धन-धन नहीं, किन्तु साक्षात् पाप ही होता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**११४७. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।**
**उप ब्रह्माणि वाघतः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् परमात्मन्! (**धिया इषितः**) ध्यान द्वारा प्रेरित, (**विप्रजूतः**) मेधावी जीवात्मा से स्तुति किये गये आप (**सुतावतः**) पुत्रवान्, (**वाघतः**) अध्यात्मयज्ञ के वाहक मेरे (**ब्रह्माणि**) स्तोत्रों के (**उप आ गहि**) समीप आओ॥२॥

**भावार्थ** :—परिवार में पत्नी, पुत्र, पौत्र आदि सहित सबको प्रातःसायम् ध्यानपूर्वक परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है।

**११४८. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः।**
**सुते दधिष्व नश्चनः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**हरिवः**) परस्पर आकर्षण वाले सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों के स्वामी (**इन्द्र**) जगदीश्वर! आप (**तूतुजानः**) शीघ्रता करते हुए, हमारे (**ब्रह्माणि**) स्तोत्रों के (**उप आ याहि**) समीप आओ। (**नः**) हमारे (**सुते**) पुत्र आदि सन्तान में (**चनः**) उपासना से मिलने वाला आनन्द-रस (**दधिष्व**) धारण कराओ॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि सपरिवार परमेश्वरोपासना का आनन्द-रस प्रतिदिन प्राप्त करके दैनिक कार्यों में प्रवृत्त हों॥३॥

( ६ )

**ऋषिः—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥**

छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में भौतिक अग्नि के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकट की गयी है।

**११४९. तमीडिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्।**
**कृष्णा कृणोति जिह्वया॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्य! तू (**तम्**) उस अग्नि के (**ईडिष्व**) गुणों का वर्णन कर, (**यः**) जो (**अर्चिषा**) दीप्ति से (**विश्वा वना**) सब वनों का (**परिष्वजत्**) आलिंगन करता है, और (**जिह्वया**) ज्वाला से, उन वनों को (**कृष्णा**) काले (**करोति**) करता है॥१॥

**भावार्थ** :—जो यह भौतिक अग्नि विशाल वनों को जलाता हुआ उन्हें कृष्ण वर्ण वाला तथा घास, वनस्पति आदि के अंकुरित होने योग्य करता है वह सब महिमा परमेश्वर की ही है॥१॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि अग्नि में परमेश्वर की ही दी हुई ज्योति है।

**११५०. य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः।**
**द्युम्नाय सुतरा अपः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**य : मर्त्यः**) जो मनुष्य (**इद्धे**) अग्नि के प्रदीप्त होने पर (**इन्द्राय**) परमात्मा के (**सुम्नम्**) सुखदायक दान की (**आ विवासति**) प्रशंसा करता है, वह (**द्युम्नाय**) तेज और यश के लिए (**अपः**) विकट भी कर्मों को (**सुतराः**) आसानी से सिद्ध होने वाला कर लेता है॥२॥

**भावार्थ** :—प्रज्वलित अग्नि में उसकी अपनी ज्योति नहीं है, प्रत्युत परमात्मा की ही है, ऐसा जो मानता है वह परमात्मा का आराधक होता हुआ तेजस्वी और यशस्वी बनता है। पर जो भौतिकवादी होता है वह भौतिक पदार्थों में ही रमता हुआ भोगों से ही भोगा जाता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर द्वारा रचित वायु और बिजली का

विषय है।

१ १ ५ १. ता नो वाजवतीरिष आशून् पिपृतमर्वतः।
एन्द्रमग्निं च वोढवे॥३॥

**पदार्थ** :—हे इन्द्र-अग्नि अर्थात् वायु और बिजली (**ता**) वे तुम दोनों (**वाजवतीः**) बलसहित (**इषः**) अभीष्ट अन्न-धनादि को, और (**आशून्**) शीघ्रगामी (**अर्वतः**) भूमि, जल एवं अन्तरिक्ष में चलने वाले यानों तथा यन्त्रों को (**पिपृतम्**) प्रदान करो। (**इन्द्रम्**) वायु को (**अग्निं च**) और बिजली को, हम (**वोढवे**) पदार्थों को ढोने के लिए यान आदियों में (**आ**) प्रयुक्त करें।।३।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर का ही वह महत्त्व है कि उसने ऐसे वायु और बिजली रचे हैं, जिनसे बहुत से कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।।३।।

(७)

**ऋषिः—सिकतानिवावरी। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५७ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा की मित्रता के विषय में हो चुकी है। यहाँ सोम ओषधि के रस का विषय वर्णित करते हैं।

११५२. प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न
प्र मिनाति सङ्गिरम्। मर्यइव युवतिभिः समर्षति
सोमः कलशे शतयामना पथा॥१॥

**पदार्थ** :—(**इन्दुः**) सोम ओषधि का रस (**इन्द्रस्य**) यजमान के (**निष्कृतम्**) घर में (**प्र उ अयासीत्**) पहुंचता है। (**सखा**) मित्रतुल्य सोमरस (**सख्युः**) अपने मित्र यजमान के (**संगिरम्**) यज्ञ को (**न प्रमिनाति**) भंग नहीं करता, प्रत्युत सिद्ध करता है। (**सोमः**) सोमरस (**शतयामनापथा**) दशापवित्र नामक छन्नी की सौ छिद्रों वाले मार्ग से छनकर (**कलशे**) द्रोणकलश में (**समर्षति**)

जल की लहरियों के साथ मिला है, (**मर्यः इव युवतिभिः**) जैसे मनुष्य घर की युवतियों के साथ (**समर्षति**) मिलता अर्थात् यथायोग्य व्यवहार करता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे सोम ओषधि का रस सोमयाग को सिद्ध करता है, वैसे ही मनुष्यों को व्यवहार-यज्ञ और उपासना-यज्ञ सिद्ध करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के लिए मनुष्यों को प्रेरणा दी गयी है।

**११५३. प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः। हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेदशिश्रयुः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो (**वः**) तुम्हारी (**मन्द्रयुवः**) आनन्दप्रद परमेश्वर की कामना करने वाली, (**पनस्युवः**) दूसरों के प्रति उत्कृष्ट व्यवहार करने की इच्छुक, (**विपन्युवः**) विशेष स्तुतिशील (**धियः**) बुद्धियां (**संवरणेषु**) उपासना-यज्ञों में (**प्र अक्रमुः**) उपासना आरम्भ करें। (**क्रीडन्तम्**) जगत् की खेलें खेलते हुए, (**हरिम्**) हृदयहारी परमात्मा की (**स्तुभः**) अर्चना करने वाले जन (**अभ्यनूषत**) पूजा करें। परमात्मा की दी हुई (**धेनवः**) गौएं (**पयसा इत्**) दूध से (**अशिश्रयुः**) सब की सेवा करती रहें, अथवा (**धेनवः**) वेदवाणियां (**पयसा इत्**) प्रतिपाद्य अर्थ रूप दूध से (**अशिश्रयुः**) सबकी सेवा करती रहें॥२॥

**भावार्थ** :—खगोल में बहुत से सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि लोक जो इधर-उधर घूम रहे हैं वह मानो जगदीश्वर गेंदों से क्रीडा कर रहा है। वही खिलाड़ी अपने खेल से सब जड़-चेतन-रूप जगत् का संचालन कर रहा है। इस कारण हम क्यों न उसकी अर्चना और वन्दना करें॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**११५४. आ नः सोम संयतं पिप्युषीमिषमिन्दो पवस्व पवमान ऊर्मिणा। या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवीर्यम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे **(इन्दो)** तेजस्वी, आनन्द-रस से भिगोने वाले, **(पवमान)** पवित्रतादायक, **(सोम)** रस के भण्डार, जगत्स्रष्टा परमात्मन्! आप **(नः)** हमारे लिए **(संयतम्)** सुबद्ध, **(पिप्युषीम्)** अतिशय समृद्ध **(इषम्)** अभीष्ट सम्पत्ति को **(ऊर्मिणा)** तरंग रूप में **(पवस्व)** प्रवाहित कीजिए, **(या)** जो सम्पत्ति **(असश्चुषी)** विना प्रतिबन्ध के **(नः)** हमारे लिए **(अहन्)** दिन में **(त्रिः)** तीन बार अर्थात् सोमयाग के तीनों सवनों में **(क्षुमत्)** निवासगृह से युक्त, **(वाजवत्)** अन्न, धन, विज्ञान से युक्त, **(मधुमत्)** मधुर **(सुवीर्यम्)** श्रेष्ठ वीरता से युक्त फल को **(दोहते)** दुहे, प्रदान करे॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से हम पुरुषार्थी लोग अधिकाधिक भौतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति प्राप्त करें॥३॥

## (८)

**ऋषिः—पुरुहन्मा॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४३ क्रमांक पर परमेश्वर के महत्त्व के विषय में की गयी थी। यहाँ फिर वही विषय प्रदर्शित किया जा रहा है।

**११५५. न किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्। इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा॥१॥**

**पदार्थ** :—**(तम्)** उस प्रसिद्ध **(इन्द्रम्)** जगदीश्वर के **(कर्मणा)** कर्म में **(न किः)** कोई नहीं **(नशन्)** प्राप्त कर सकता है, अर्थात् कोई भी उसकी कर्म में बराबरी नहीं कर सकता है, **(यः)** जिस जगदीश्वर ने **(सदावृधम्)** सदा बढ़ते रहने वाले इस ब्रह्माण्ड को **(चकार)** उत्पन्न किया है। **(न)** नहीं **(विश्वगूर्तम्)** सर्वोन्नत, **(ऋभ्वसम्)** अत्यधिक भासमान,

(**अधृष्टम्**) अपराजित, (**ओजसा**) प्रताप से (**धृष्णुम्**) दूसरों को पराजित करने वाले उस जगदीश्वर की (**यज्ञैः**) जगत् के उत्पादन, धारण, पालन आदि यज्ञों में (**नशत्**) कोई बराबरी कर सकता है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के तुल्य कर्म करने वाला और परमात्मा के तुल्य यज्ञ करने वाला संसार में न कोई हुआ है, न है, न भविष्य में होगा॥१॥

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर की महिमा वर्णित करते हैं।

**११५६. अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः। सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवुः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अषाढम्**) किसी से भी परास्त न होने वाले, (**उग्रम्**) पापियों के लिए प्रचण्ड, (**पृतनासु**) काम, क्रोध आदि की सेनाओं को (**सासहिम्**) पुनः-पुनः पराजय देने वाले, उस परमेश्वर की [**कर्मणा न किः नशत् न यज्ञैः**] कर्म और यज्ञ में कोई बराबरी नहीं कर सकता, (**यस्मिन्**) जिसकी अधीनता में (**उरुज्रयः**) बहुत वेगवाली (**महीः**) पृथिवी, चन्द्र आदि लोकों में स्थित भूमियां हैं, जिसके (**जायमाने**) जगत् की उत्पत्ति के अनन्तर प्रसिद्धि प्राप्त करने पर (**धेनवः**) वेदवाणियों ने (**सम् अनोनवुः**) प्रंशसा की, (**द्यावः**) सूर्यों ने, और (**क्षामीः**) भूमिवासिनी प्रजाओं ने (**सम् अनोनवुः**) प्रशंसा की। [इस पदार्थ में 'कर्मणा न किः नशत् न यज्ञैः' ये शब्द पूर्व मन्त्र से लाये गये हैं।]॥२॥

**भावार्थ** :—ब्रह्माण्ड में अनेक सौरमण्डल हैं, जिनके पृथक्-पृथक् सूर्य हैं। वे सब लोक और मानवी प्रजाएं सर्वविजेता परमात्मा की ही महिमा को गाते हैं॥२॥

## (९)

**ऋषिः—पर्वतनारदौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ काश्यपौ वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५६८ क्रमांक पर परमात्मा की उपासना के विषय में की जा चुकी है। यहां अपने अन्तरात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

**११५७. सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।**
**शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **(सखायः)** साथियो! तुम **(आ निषीदत)** आकर बैठो, **(पुनानाय)** मन, बुद्धि आदि को पवित्र करने वाले अपने अन्तरात्मा के लिए **(प्र गायत)** उद्‌बोधन-गीत गाओ। और **(श्रिये)** शोभा के लिए उस सोम नामक अन्तरात्मा को **(यज्ञैः)** देवपूजा, संगतिकरण, दान आदियों से **(परि भूषत)** अलंकृत करो, **(शिशुं न)** जैसे शिशु को सुरम्य वस्त्र, आभूषण आदियों से अलंकृत करते हैं॥१॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा में महान् शक्ति निहित है। उद्‌बोधन-गीतों से उस शक्ति को जगाना चाहिए और नवीन-नवीन गुणों से तथा यज्ञ-भावनाओं से उसे अलंकृत करना चाहिए॥१॥

आगे पुनः उसी विषय का वर्णन है।

**११५८. समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।**
**देवाव्यां३ मदमभि द्विशवसम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! तुम **(गयसाधनम्)** शरीर-रूप घर के परिष्कर्ता, **(देवाव्यम्)** प्रकाशक मन, बुद्धि व ज्ञानेन्द्रियों के रक्षक, **(मदम्)** ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाले, **(द्विशवसम्)** आत्मिक और शारीरिक दो प्रकार के बल से युक्त **(ई)** इस सोम नामक जीवात्मा को **(मातृभिः)** माताओं के समान हितकारिणी श्रद्धाओं से **(अभि सं सृजत)** चारों ओर से संयुक्त करो, **(वत्सं न)** जैसे बछड़े को **(मातृभिः)** गायों से संयुक्त करते हैं॥२॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—विविध गुणों से विभूषित भी आत्मा में माता के समान हित करने वाली श्रद्धा यदि नहीं है, तो वह कुछ नहीं कर सकता। गाय से संयुक्त किया हुआ बछड़ा जैसे उसका दूध पीकर पुष्ट हो जाता है, वैसे ही श्रद्धा से संयुक्त जीवात्मा ब्रह्मानन्द के पान से परिपुष्ट होता है॥२॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**११५९. पुनाता दक्षसाधनं यथा शर्धाय वीतये।**
**यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! तुम (**दक्षसाधनम्**) दक्षता के साधक सोम नामक जीवात्मा को (**पुनात**) पवित्र करो, (**यथा**) जिससे, वह (**शर्धाय**) उत्साह के लिए, और (**वीतये**) प्रगति के लिए हो अर्थात् उत्साहित होकर प्रगति कर सके, और (**यथा**) जिससे (**मित्राय**) मित्र मन के लिए और (**वरुणाय**) दोषनिवारक प्राण के लिए (**शन्तमम्**) शान्तिकारक हो॥३॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा के पवित्र हो जाने पर शरीरस्थ मन, बुद्धि, प्राण आदि सब पवित्र हो जाते हैं॥३॥

**(१०)**

**ऋषि:—अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरा:॥ देवता—पवमान: सोम:॥**
**छन्द:—द्विपदा विराट्पङ्क्ति:॥ स्वर:—पञ्चम:॥**

**११६०. प्र वाज्यक्षा: सहस्रधारस्तिर: पवित्रं वि वारम-**
**व्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**वाजी**) वलवान् (**सहस्रधार:**) अनन्त धाराओं वाला पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने वाला ज्ञानरस (**पवित्रम्**) पवित्र मन को (**तिर:**) पार करके (**अव्यम्**) अविनश्वर (**वारम्**) दोषनिवारक जीवात्मा के प्रति (**प्र वि अक्षा:**) उत्तम प्रकार से विविध रूप में क्षरित हो रहा है॥१॥

**भावार्थ** :—आचार्य से प्रवाहित होता हुआ विज्ञानरस मन के माध्यम से जीवात्मा में प्रविष्ट होकर उसे पवित्र और विद्वान् बना देता है॥१॥

अगले मन्त्र में में फिर उसी विषय को कहा गया है।

**११६१. स वाज्यक्षा: सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभि:**
**श्रीणान:॥२॥**

**पदार्थ** :—(**वाजी**) वेगवान्, (**सहस्ररेता:**) सहस्र वीर्य वाला,

( अद्भिः ) शुभकर्मों से ( मृजानः ) जीवात्मा को अलंकृत करता हुआ, ( **गोभिः** ) विवेक के प्रकाशों से ( **श्रीणानः** ) जीवात्मा को परिपक्व करता हुआ ( **सः** ) वह सोम अर्थात् ज्ञान-रस ( **अक्षाः** ) आचार्य के पास से क्षरित होता है।।२।।

**भावार्थ** :—आचार्य के पास से जो ज्ञान-रस शिष्य द्वारा प्राप्त किया जाता है वह उसके कर्मों को शुद्ध करता है और उसके अन्तरात्मा को परिपक्व करता है।।२।।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय वर्णित है।

**११६२. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः**
**सुतः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) ज्ञानरस! ( **नृभिः** ) नेता गुरुओं से ( **येमानः** ) नियन्त्रित किया जाता हुआ, ( **अद्रिभिः** ) अखण्डित पाण्डित्यों से ( **सुतः** ) प्रेरित किया गया, तू ( **इन्द्रस्य** ) जीवात्मा के ( **कुक्षा** ) गर्भ में ( **प्र याहि** ) उत्तम प्रकार से पहुंच।।३।।

**भावार्थ** :—विद्वान्, नियमपरायण गुरु लोग जब छात्रों को पढ़ाते हैं तब उन छात्रों के अन्तरात्मा में विशुद्ध ज्ञान-रस का प्रवाह सुगमता से प्रकट हो जाता है।।३।।

## ( ११ )

**ऋषिः—भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। देवता— पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

इस सम्पूर्ण सूक्त में एक वाक्य में विद्वानों से प्राप्त कराये जाते हुए ब्रह्मानन्द का वर्णन है।

**११६३. ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे।**
**ये वादः शर्यणावति॥१॥**

**११६४. य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्।**
**ये वा जनेषु पञ्चसु॥२॥**

**११६५. ते नो वृष्टिं दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यम्।**
**स्वाना देवास इन्दवः॥३॥**

**पदार्थ** :–( **ये सोमासः** ) जो ज्ञान–प्रेरक विद्वान् लोग ( **परावति** ) परा विद्या के विषय में, और ( **ये** ) जो ( **अर्वावति** ) अपरा विद्या के विषय में, ( **ये वा** ) और जो ( **अदः** ) इस ( **शर्यणावति** ) शरीर–विद्या के विषय में ( **सुन्विरे** ) ज्ञान देते हैं, ( **ये** ) जो विद्वान् लोग ( **पस्त्यानाम्** ) प्रजाओं के ( **मध्ये** ) अन्दर, ( **ये वा** ) और ( **पञ्चसु जनेषु** ) यजमान, ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता और उद्गाता इन पांच जनों में ( **सुन्विरे** ) ज्ञान देते हैं, ( **ते वे स्वानाः** ) पढ़ाने वाले ( **इन्दवः** ) ज्ञान–रस से भिगोने वाले ( **देवासः** ) विद्वान् लोग ( **नः** ) हमारे लिए ( **दिवः परि** ) द्युतिमय परमात्मा के पास से ( **वृष्टिम्** ) आनन्दरस की वर्षा को, और ( **सुवीर्यम्** ) सुवीर्य से युक्त आध्यात्मिक धन को ( **आ पवन्ताम्** ) प्रवाहित करें॥१–३॥

**भावार्थ** :–आप्त विद्वान् लोग भिन्न–भिन्न लोगों को उन–उन से सम्बद्ध विद्याओं में निष्णात करके और ब्रह्मानन्द प्रदान करके सुयोग्य बनाते हैं, इसलिए उनका सबको सत्कार करना चाहिए॥१–३॥

## ( १२ )

**ऋषिः–वत्सः काण्वः॥ देवता–अग्निः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथमा ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ भी उसी विषय को दर्शाते हैं।

**११६६. आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात्।**
**अग्ने त्वां कामये गिरा॥१॥**

**पदार्थ** :–हे ( **अग्ने** ) अग्रनायक, सर्वज्ञ, तेजस्वी परमात्मन्! मैं ( **गिरा** ) स्तुति-वाणी से ( **त्वाम् कामये** ) तुझे चाहता हूँ। ( **ते वत्सः** ) तेरा पुत्र तुझे पाने के लिए ( **परमात् चित्** ) सुदूर भी ( **सधस्थात्** ) लोक से ( **मनः** ) अपने मन को ( **आयमत्** ) लौटा लाया है॥१॥

**भावार्थ** :–समीप वा दूर जहाँ कहीं भी मेरा मन चला गया है वहाँ से उसे लौटाकर परमात्मा में ही केन्द्रित करता हूँ॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति करते हुए उसका आह्वान किया गया है।

३ २उ ३२उ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**११६७. पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः।**
३ १ २
**समत्सु त्वा हवामहे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे अग्नि अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! आप (**पुरुत्रा**) सभी के प्रति (**सदृङ्**) समदर्शी (**असि**) हो। (**विश्वाः दिशः अनु**) सब दिशाओं में अर्थात् सब क्षेत्रों में (**प्रभुः**) समर्थ हो। हम (**समत्सु**) आन्तरिक तथा बाह्य देवासुरसंग्रामों में (**त्वा**) आपको (**हवामहे**) पुकारते हैं।।२।।

**भावार्थ** :—जो पक्षपात से रहित, सब बातों में समर्थ परमेश्वर विपत्ति के समय शक्ति-प्रदान द्वारा रक्षा करता है उसमें सबको ध्यान लगाना चाहिए।।२।।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का आह्वान है।

३ २ ३ १ २र ३ १ २
**११६८. समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे।**
१ २ ३ १ २
**वाजेषु चित्रराधसम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**समत्सु**) देवासुरसंग्रामों में (**वाजयन्तः**) बल की कामना करते हुए, हम (**अवसे**) रक्षा के लिए (**अग्निम्**) अग्रनायक जगदीश्वर को (**हवामहे**) पुकारते हैं। (**चित्रराधसम्**) अद्भुत धन वाले उसे (**वाजेषु**) धनप्राप्ति के निमित्त (**हवामहे**) हम पुकारते हैं।।३।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर बल देकर ही लोगों की रक्षा करता है। अद्भुत दिव्य एवं भौतिक धनों का स्वामी वह पुरुषार्थियों को ही धन देता है।।३।।

(१३)

**ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-२ ककुबुष्णिक्, ३ पुरउष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४०५ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ क्षात्रधर्म के शिक्षक आचार्य को कह रहे हैं।

**११६९. त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।**
**आ वीरं पृतनासहम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**शतक्रतो**) बहुत बुद्धिमान्, (**विचर्षणे**) शिष्यों पर दृष्टि रखने वाले, (**इन्द्र**) क्षात्रधर्म के शिक्षक आचार्य! (**त्वम्**) आप (**नः**) हमें (**ओजः**) उत्साह और (**नृम्णम्**) बल (**आ भर**) प्रदान कीजिए। साथ ही (**पृतनासहम्**) शत्रु सेनाओं को हराने वाला (**वीरम्**) वीर क्षत्रिय योद्धा (**आ**) प्रदान कीजिए।।१।।

**भावार्थ** :—उस-उस विद्या में निष्णात गुरु ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वा वैश्य राष्ट्र के लिए उत्पन्न करता है।।१।।

आचार्य से प्रार्थना करके अब परमात्मा की स्तुति तथा उससे प्रार्थना करते हैं।

**११७०. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।**
**अथा ते सुम्नमीमहे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वसो**) निवासप्रदाता, (**शतक्रतो**) सैकड़ों कर्मों को करने वाले परमेश! (**त्वं हि**) आप ही (**नः**) हमारे (**पिता**) पिता और (**त्वम्**) आप ही (**माता**) माता (**बभूविथ**) हो। (**अथ**) इसलिए, हम (**ते**) आपसे (**सुम्नम्**) सुख (**ईमहे**) मांगते हैं।।२।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर एक ही होता हुआ सबका पिता के समान पालनकर्ता और माता के समान स्नेह देने वाला वा चरित्र-निर्माता है। वह माता-पिता के तुल्य सबको सुख देता है।।२।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा से प्रार्थना है।

**११७१. त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत।**
**स नो रास्व सुवीर्यम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**शुष्मिन्**) बलवान् (**पुरुहूत**) बहुतों से पुकारे

गये, ( **सहस्कृत** ) बलप्रदाता जगदीश्वर! ( **वाजयन्तं त्वाम्** ) दूसरों को बल देना चाहने वाले आपसे, मैं ( **उपब्रुवे** ) प्रार्थना करता हूँ। ( **सः** ) वह आप ( **नः** ) हमें ( **सुवीर्यम्** ) उत्कृष्ट वीरता से युक्त सन्तान ( **रास्व** ) दीजिए।।३।।

**भावार्थ** :–हम और हमारी सन्तानें बलवान् होकर, शत्रुओं को हराकर, अपना चक्रवर्ती राज्य संस्थापित करके धर्म से प्रजाओं का पालन करें।।३।।

## ( १४ )

**ऋषिः–अत्रिः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–अनुष्टुप्॥ स्वरः–गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३४५ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहाँ परमात्मा और आचार्य का विषय दर्शाया जा रहा है।

**११७२. यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः।**
**राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर॥१॥**

**पदार्थ** :–हे ( **चित्र** ) अद्भुत, ( **अद्रिवः** ) अविनष्ट गुणों वाले ( **विदद्वसो** ) प्राप्त ऐश्वर्य वाले ( **इन्द्र** ) जगदीश्वर वा आचार्य! ( **त्वादातम्** ) आपसे शोधित ( **यत् राधः** ) जो आत्मबल, धर्म, विद्या आदि का धन ( **मे** ) मेरे पास ( **इह** ) यहाँ ( **न अस्ति** ) नहीं है, ( **तत्** ) वह धन, आप ( **उभयाहस्ति** ) जैसे दोनों हाथों से किसी को दिया जाता है वैसे ( **नः** ) हमें आ ( **भर** ) दीजिए।।१।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर और आचार्य की कृपा से शुद्ध से दिव्य और भौतिक धन के हम अधिपति हो जाएं।।१।।

अगले मन्त्र में फिर परमेश्वर और आचार्य का विषय है।

**११७३. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर।**
**विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः॥२॥**

**पदार्थ** :–हे ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा आचार्य!

( यत् ) जिसे, आप ( वरेण्यम् ) ग्रहण करने योग्य ( मन्यसे ) मानते हो ( तत् ) उस ( द्युक्षम् ) धर्म और विद्या के प्रकाश के निवासक अपने दान को ( आ भर ) हमें प्राप्त कराओ। ( ते ) आपके ( अकूपारस्य ) जिसका भरना या संग्रह करना बुरा नहीं है ऐसे ( तस्य ) उस ( दावनः ) दान को ( वयम् ) हम ( विद्याम ) पा लेवें।।२।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर और आचार्य का जो सद्गुण, विद्या, धर्म, सदाचार आदि का दान है उसे पाकर हम अपने आपको उन्नत करें।।२।।

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**११७४. यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत्।**
**तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( इन्द्र ) परमात्मन् वा आचार्य! ( यत् ते ) आपका ( प्र राध्यम् ) प्रसन्न करने योग्य ( बृहत् मनः ) विशाल शक्ति वाला मन ( दिक्षु ) दिशाओं में ( श्रुतम् ) प्रसिद्ध ( अस्ति ) है, ( तेन ) उस मन से, हे ( अद्रिवः ) अविनष्ट बल वाले! आप ( दृढा चित् ) कठिन और दुष्प्राप्य भी ( वाजम् ) धर्म, विद्या आदि के धन के ( सातये ) हमें प्राप्त कराने के लिए ( आदर्षि ) लाओ।।३।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर और आचार्य सत्पात्र जनों को धर्ममार्ग की सुशिक्षा देकर, विद्या आदि का दान करके, पुरुषार्थ की प्रेरणा कर परमैश्वर्यवान् बनाते हैं।।३।।

**इत्यष्टमोऽध्यायः, चतुर्थप्रपाठकश्च समाप्तः॥**

# अथ नवमोऽध्यायः

## पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—प्रतर्दनो दैवोदासिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के आविर्भाव का वर्णन है।

**११७५. शिशुं जज्ञानं हर्यतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन। कविर्गीर्भिः काव्येन कविः सन्त्सोमः पवित्रमत्येति रेभन्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **शिशुं जज्ञानम्** ) पैदा होते हुए शिशु के समान अन्तरात्मा में प्रकट होते हुए ( **हर्यतम्** ) उस प्रिय सोम परमात्मा को, उपासक जन ( **मृजन्ति** ) स्तोत्रों से अलंकृत करते हैं। ( **विप्रम्** ) विशेष रूप से पूर्णता प्रदान करने वाले उस मेधावी परमात्मा को ( **मरुतः** ) प्राण ( **गणेन** ) अपने तरंगसमूह से ( **शुम्भन्ति** ) शोभित करते हैं ( **गीर्भिः** ) प्रेरक वाणियों से ( **कविः** ) दिव्य सन्देश देने वाला और ( **काव्येन** ) वेदकाव्य से ( **कविः** ) काव्यकार ( **सन्** ) होता हुआ ( **सोमः** ) सन्मार्गप्रेरक परमेश्वर ( **रेभन्** ) उपदेश देता हुआ ( **पवित्रम् अत्येति** ) पवित्र हृदय को लांघकर अन्तरात्मा में पहुंचता है॥१॥

यहाँ 'शिशु जज्ञानम्' में लुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—अपने अन्तरात्मा में परमेश्वर को प्रकट करके भक्तिभाव से परिपूर्ण स्तोत्रों द्वारा उसे अधिकाधिक अलंकृत और प्रसादित करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है।

**११७६. ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वर्षाः सहस्रनीथः पदवीः कवीनाम्। तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **यः** ) जो ( **ऋषिमनाः** ) ऋषि स्वभाववाला,

(ऋषिकृत्) उपासकों को ऋषि बनाने वाला, (स्वर्षाः) आनन्दप्रदाता, (सहस्रनीथः) सहस्रनीतियों वाला, (कवीनाम्) क्रान्तदर्शियों को (पदवीः) उच्च पद प्राप्त कराने वाला है, वह (महिषः) महान्, (स्तुप्) सबका आधारस्तम्भ रूप (सोमः) जगदीश्वर (तृतीयं धाम) मुक्ति पद को (सिषासन्) देना चाहता हुआ (विराजम्) विशेष तेज से युक्त मनुष्य को (अनुराजति) अनुरंजित करता है॥२॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर को ऋषिपद प्राप्त कराकर मोक्ष देता है उसकी उपासना करके सब सौभाग्यवान् होवें॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का वर्णन है।

**११७७. चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत्। अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति॥३॥**

**पदार्थ** :—(**चमूषत्**) द्यावापृथिवी में स्थित, (**श्येनः**) प्रशंसनीय कर्मों वाला, (**शकुनः**) शक्तिशाली (**विभृत्वा**) विशेष रूप से भरण-पोषण करने वाला, (**गोविन्दुः**) गायों और भूमियों को प्राप्त कराने वाला, (**द्रप्सः**) आनन्दरस से भरपूर, (**आयुधानि बिभ्रत्**) शस्त्रास्त्रों के धारण करने वाले सेनापति के समान दण्ड देने की शक्ति से युक्त, (**अपाम् ऊर्मिम्**) जलों के धारणकर्ता (**समुद्रम्**) समुद्र वा अन्तरिक्ष को (**सचमानः**) आश्रयस्थान बनाता हुआ अर्थात् उनमें विद्यमान रहता हुआ, (**महिषः**) महान् वह सोम नामक जगत्पति परमेश्वर (**तुरीयं धाम**) पुरुषार्थचतुष्टय में चौथे मोक्ष का (**विवक्ति**) उपदेश करता है।

यहाँ यह शंका होती है कि पूर्वमन्त्र में मोक्ष को तृतीय धाम कहा गया है और इस मन्त्र में चतुर्थ धाम, यह कैसे संगत है? इसका उत्तर है कि 'प्रकृतिलोक, जीवात्मलोक, मोक्षलोक' इस वर्गीकरण के अनुसार मोक्ष तृतीय धाम है और 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' इस वर्गीकरण में चतुर्थ धाम। अतः दोनों संगत हैं॥३॥

**भावार्थ** :—सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् सज्जनों की उन्नति

करने वाले, दुष्टों को दण्ड देने वाले जगदीश्वर, का अनुभव करके सब दुःखों से मुक्ति पानी चाहिए॥३॥

( २ )

ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

**११७८. एते सोमा अभि प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन्।**
**वर्धन्तो अस्य वीर्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **एते** ) ये ( **सोमाः** ) ब्रह्मानन्दरस ( **अस्य** ) इस ( **इन्द्रस्य** ) जीवात्मा के ( **वीर्यम्** ) बल को ( **वर्धन्तः** ) बढ़ाते हुए ( **प्रियम्** ) प्रिय ( **कामम्** ) अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति रूप मनोरथ को ( **अभि अक्षरन्** ) पूर्ण करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को योग्य है कि वे उपासना से ब्रह्मानन्द पाकर अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि प्राप्त करें॥१॥

आगे फिर ब्रह्मानन्द का ही विषय है।

**११७९. पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना।**
**ते नो धत्त सुवीर्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **पुनानासः** ) पवित्रता देते हुए, ( **चमूषदः** ) आत्मा एवं बुद्धिरूप कटोरों में स्थित और ( **वायुम्** ) गतिशील मन में तथा ( **अश्विना** ) प्राण-अपान में ( **गच्छन्तः** ) जाते हुए ( **ते** ) वे तुम सोम अर्थात् ब्रह्मानन्द-रस ( **नः** ) हमें ( **सुवीर्यम्** ) श्रेष्ठ वीर्ययुक्त दिव्यधन ( **धत्त** ) प्रदान करो॥२॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाने पर मन तथा बुद्धि की पवित्रता, प्राण-अपान की कार्यक्षमता और आध्यात्मिक धन स्वयं ही उपासक के पास दौड़े चले आते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में सोम परमात्मा को सम्बोधन है।

**११८०. इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय।**
**देवानां योनिमासदम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) रसागार परमात्मन्! ( **इन्द्रस्य** ) जीवात्मा की ( **राधसे** ) ऐश्वर्य प्राप्ति और सिद्धि प्राप्ति के लिए ( **पुनानः** ) पवित्रता देते हुए आप ( **देवानाम् योनिम्** ) दिव्य मुक्तजनों के घर अर्थात् मोक्षलोक को ( **आ सदम्** ) प्राप्त कराने के लिए ( **हार्दि** ) सबके प्रति सौहार्द को ( **चोदय** ) हमारे अन्तर प्रेरित करो।।३।।

**भावार्थ** :—जन साधारण से विद्वेष करने वाले लोग मोक्ष पाने में समर्थ नहीं होते।।३।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय है।

**११८१. मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः।**
**अनु विप्रा अमादिषुः॥४॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) कर्मानुसार मानव-शरीर में भेजे गए जीवात्मन्! ( **दश क्षिपः** ) दस प्राण ( **त्वा** ) तुझे ( **मृजन्ति** ) अलंकृत करते हैं। ( **सप्त धीतयः** ) मन, बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रियां ये सात ज्ञान-साधन, तुझे ( **हिन्वन्ति** ) तृप्त करते हैं। ( **विप्राः** ) मेधावी विद्वज्जन, तुझे ( **अनु अमादिषुः** ) साथ-साथ उत्साहित करते हैं।।४।।

**भावार्थ** :—जीवात्मा को परमेश्वर ने सब परमोत्कृष्ट साधनों के साथ शरीर में प्रविष्ट किया है। अतः वहाँ निवास करते हुए उसे पूर्ण उन्नति करनी चाहिए।।४।।

अब जगदीश्वर को सम्बोधन करते हैं।

**११८२. देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः।**
**सं गोभिर्वासयामसि॥५॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् जगत्स्रष्टा परमेश्वर! ( **मेष्यः** ) सींचने वाली आनन्द-धाराएं ( **अति सृजानम्** ) छोड़ते हुए, ( **कम्** ) सुखस्वरूप ( **त्वा** ) तुझे ( **देवेभ्यः** ) आत्मा, मन बुद्धि आदि के ( **मदाय** ) हर्ष के लिए हम ( **गोभिः** ) स्तुति वाणियों से ( **संवासयामसि** ) संछादित करते हैं।।५।।

**भावार्थ** :—जगत्पति परमेश्वर उपासकों को आनन्द की धाराओं से सींचता हुआ और उनके आत्मा, मन, बुद्धि आदि को तृप्त करता हुआ उनका उपकार करता है॥५॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय वर्णित है।

**११८३. पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः।**
**परि गव्यान्यव्यत॥६॥**

**पदार्थ** :—(**अरुषः**) आरोचमान अर्थात् तेजस्वी (**हरिः**) जीवात्मा (**कलशेषु**) देहरूप कलशों में (**आ**) आकर (**पुनानः**) मन आदि को पवित्र करता हुआ (**गव्यानि**) सूर्य के समान उज्ज्वल (**वस्त्राणि**) गुण-कर्म-स्वभाव रूप वस्त्रों को परि (**अव्यत**) धारण करता है॥६॥

**भावार्थ** :—तभी देहधारी का जन्म सफल होता है जब वह व्यवहार में अत्यन्त उज्ज्वल गुण, कर्म और स्वभाव को प्रकट करता है॥६॥

अब परमात्मा को सम्बोधन करते हैं।

**११८४. मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः।**
**इन्दो सखायमा विश॥७॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्दो) तेजस्वी वा आनन्दरस से भिगोने वाले परमात्मन्! आप (**मघोनः**) दानी (**नः**) हम लोगों के पास (**आ पवस्व**) आओ, (**विश्वाः**) सब (**द्विषः**) द्वेष-वृत्तियों को (**अप जहि**) मार भगाओ। (**सखायम्**) अपने सखा जीवात्मा में (**आ विश**) प्रविष्ट होवो॥७॥

**भावार्थ** :—तभी परमेश्वर की पूजा सफल है यदि उपासक सब द्वेषभावों को अपने अन्दर से निकालकर सबके साथ मित्र के समान व्यवहार करे॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**११८५. नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम्।**
**भक्षीमहि प्रजामिषम्॥८॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् जगत् को पैदा करने वाले, रस के भण्डार परमात्मन्! ( **नृचक्षसम्** ) मनुष्यों के द्रष्टा, ( **इन्द्रपीतम्** ) उपासक जीवात्माओं से तन्मय होकर पिये गये, ( **स्वर्विदम्** ) दिव्य प्रकाश वा मोक्षसुख प्राप्त कराने वाले ( **त्वा** ) आपको ( **वयम्** ) हम आपके उपासक, पुकार रहे हैं। हम आपसे ( **प्रजाम्** ) सद्गुण रूप सन्तान और ( **इषम्** ) अभीष्ट आनन्द-रस की धारा ( **भक्षीमहि** ) प्राप्त करें।।८।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर का बार-बार ध्यान करके उपासक दिव्य आनन्द-रस को और मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।।८।।

आगे फिर वही विषय है।

**११८६. वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि।**
**सहो नः सोम पृत्सु धाः॥९॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सोम** ) सब सुखों के प्रेरक परमात्मन्! आप ( **दिवः** ) दिव्य आनन्दमय कोश से ( **वृष्टिम्** ) आनन्द की वर्षा ( **परिस्रव** ) बरसाओ, ( **पृथिव्याः अधि** ) पृथिवी पर ( **द्युम्नम्** ) यश और तेज ( **परिस्रव** ) बहाओ। ( **नः** ) हमारी ( **पृत्सु** ) सेनाओं में ( **सहः** ) साहस और बल ( **धाः** ) धारण कराओ।।९।।

**भावार्थ** :—जगदीश्वर जैसे अन्तरिक्ष से जल धाराएं बरसाता है वैसे ही अपने आनन्द के कोश से आनन्द की धाराएं बरसाए। जैसे वह पृथिवी में स्वर्ण आदि धन स्थापित करता है, वैसे ही राष्ट्र में कीर्ति और तेजस्विता स्थापित करे। जैसे वह राष्ट्र की सेनाओं में साहस प्रेरित करता है, वैसे ही हमारी सत्य, अहिंसा आदि की दिव्य सेनाओं में बल और वेग धारण करायें।।९।।

( ३ )

**ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का वर्णन किया गया है।।

**११८७. सोमः पुनानो अर्षति सहस्रधारो अत्यविः।**
**वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम्॥१॥**

**पदार्थ** :–(**पुनानः**) पवित्र करता हुआ, (**सहस्रधारः**) अनन्त आनन्द-धाराओं वाला, (**सोमः**) रस का भण्डार परमेश्वर (**अत्यविः**) पृथिवी को अर्थात् पार्थिवतत्त्वप्रधान अन्नमय कोश को अतिक्रान्त करके (**वायोः**) प्राण के या गतिशील मन के और (**इन्द्रस्य**) बुद्धि वा जीवात्मा के (**निष्कृतम्**) घर में, अर्थात् प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश एवं आनन्दमय कोश में (**अर्षति**) पहुँचता है।।१।।

**भावार्थ** :–उपासक जब स्थूल शरीर से मन को हटाकर प्राण, मन बुद्धि और जीवात्मा में परमात्मा को प्रतिष्ठापित कर लेता है तब उसके आनन्दरस की धार में मग्न हुआ वह परमानन्द का अनुभव करता है।।१।।

**११८८. पवमानमवस्यवो विप्रमभि प्र गायत।**
**सुष्वाणं देववीतये॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**अवस्यवः**) रक्षा चाहने वाले मनुष्यो! तुम (**देववीतये**) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए (**पवमानम्**) पवित्र करने वाले, (**विप्रम्**) विशेष रूप से तृप्ति देने वाले वा पूर्ण करने वाले, (**सुष्वाणम्**) आनन्द-रस को अभिषुत करने वाले परमात्मा को (**अभि**) लक्ष्य करके (**प्र गायत**) उत्कृष्ट गान गाओ।।२।।

**भावार्थ** :–परमात्मा का गुणगान करने और ध्यान करने से उपासक लोग रक्षा, पवित्रता, तृप्ति, पूर्णता और आनन्द प्राप्त करते हैं।।२।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रसों का वर्णन है।

**११८९. पवन्ते वाजसातये सोमाः। सहस्रपाजसः।**
**गृणाना देववीतये॥३॥**

**पदार्थ** :–(**सहस्रपाजसः**) सहस्रों बलों वाले (**सोमाः**) परमानन्द-रस (**गृणानाः**) स्तुति किये जाते हुए (**वाजसातये**) बल देने के लिए, और (**देववीतये**) दिव्यगुण उत्पन्न करने के

लिए ( पवन्ते ) प्रवाहित हो रहे हैं।

**भावार्थ** :—परब्रह्म के पास से परमानन्द प्राप्त करके उपासक जन ब्रह्मबल से युक्त और दिव्य गुणों वाले हो जाते हैं।।३।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**११९०. उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः।**
**द्युमदिन्दो सुवीर्यम्॥४॥**

**पदार्थ** :—( **उत** ) अब, हे ( **इन्दो** ) रस से भिगोने वाले परमेश्वर! आप ( **वाजसातये** ) आत्मबल तथा मनोबल के प्रदानार्थ ( **नः** ) हमारे लिए ( **बृहतीः** ) महान् ( **इषः** ) अभीष्ट आनन्दरस की धाराओं को, तथा ( **द्युमत्** ) तेज से युक्त और ( **सुवीर्यम्** ) श्रेष्ठ वीर्य से युक्त ऐश्वर्य को ( **पवस्व** ) प्रवाहित करो।।४।।

**भावार्थ** :—जगदीश्वर ही आत्मबल, आनन्द, तेज और शक्ति का दिव्य स्रोत है।।४।।

अब आनन्द-रसों का वर्णन करते हैं।

**११९१. अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये।**
**वि वारमव्यमाशवः॥५॥**

**पदार्थ** :—( **वाजसातये** ) संग्राम के लिए ( **हेतृभिः** ) प्रेरक योद्धाओं से ( **हियानाः** ) प्रेरित किये जाते हुए ( **अत्याः न** ) घोड़ों के समान ( **हेतृभिः** ) प्रेरक योगाभ्यासों से ( **हियानाः** ) प्रेरित किये जाते हुए ( **आशवः** ) वेगगामी सोम अर्थात् परमानन्दरस ( **वाजसातये** ) बल देने के लिए ( **वारम्** ) दोषनिवारक, ( **अव्यम्** ) अविनश्वर जीवात्मा के प्रति ( **वि असृग्रम्** ) छोड़े जा रहे हैं।।५।।

यहाँ श्लिष्टोपमा अलंकार है।।५।।

**भावार्थ** :—शीघ्रगामी बलवान् घोड़े जैसे युद्ध में विजय के साधन बनते हैं, वैसे ही योगाभ्यास से उत्पन्न किये गये परम आनन्द बल-प्रदान में कारण बनते हैं।।५।।

आनन्दरस क्या करें यह अगले मन्त्र में कहा गया है।

**११९२. ते नः सहस्त्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम्।**
**स्वाना देवास इन्दवः॥६॥**

**पदार्थ** :-(**ते**) वे पूर्वोक्त (**स्वानाः**) अभिषुत किये जाते हुए, (**देवासः**) स्वयं तेजस्वी तथा दूसरों को तेजस्वी बनाने वाले, (**इन्दवः**) रस से भिगोने वाले सोम अर्थात् परमानन्द-रस (**नः**) हमारे लिए (**सहस्रिणम्**) सहस्रसंख्यक, (**सुवीर्यम्**) सुवीर्ययुक्त (**रयिम्**) अहिंसा, सत्य, भूतदया, माधुर्य, न्याय, उदारता आदि धन को (**आ पवन्ताम्**) लायें।।६।।

**भावार्थ** :-परमात्मा की उपासना से मिले हुए परमानन्द अनन्त दिव्यगुणसम्पदा को प्राप्त कराते हैं।।६।।

अगले मन्त्र में परमानन्द की प्राप्ति का वर्णन है।

**११९३. वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः।**
**दधन्विरे गभस्त्योः॥७॥**

**पदार्थ** :-(**वाश्राः**) रंभाती हुई (**मातरः**) गायें (**वत्सं न**) जैसे बछड़े की ओर जाती हैं, वैसे ही (**वाश्राः**) उपदेश देते हुए (**इन्दवः**) रस से भिगोने वाले ब्रह्मानन्द-रस (**वत्सम् अभि**) प्रिय उपासक की ओर (**अर्षन्ति**) जाते हैं, और (**गभस्त्योः**) बाहुओं में (**दधन्विरे**) धारण किये जाते हैं-अर्थात् ब्रह्मानन्द-रसों की प्राप्ति होने पर उपासक भुजाओं से कर्म करने में संलग्न हो जाता है।।७।।

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है।।७।।

**भावार्थ** :-ब्रह्मानन्द भी सत्कर्मों के बिना शोभा नहीं पाते।।७।।

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**११९४. जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत्।**
**विश्वा अप द्विषो जहि॥८॥**

**पदार्थ** :-हे सोम अर्थात् प्रेरक परमात्मन्! (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए (**जुष्टः**) प्रिय, (**मत्सरः**) आनन्दजनक, (**पवमानः**) पवित्रता देते हुए, (**कनिक्रदत्**) उपदेश करते हुए आप (**विश्वाः**

द्विषः ) सब द्वेषवृत्तियों को वा द्वेष करने वाली काम, क्रोध आदि की सेनाओं को ( अप जहि ) विनष्ट कर दो॥८॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना से अन्तरात्मा में पवित्रता और आनन्द उत्पन्न होते हैं तथा द्वेषवृत्तियां अपने आप नष्ट हो जाती हैं॥८॥

अब ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का फल वर्णित करते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**११९५. अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः।**
१ २ ३ १ २
**योनावृतस्य सीदत॥९॥**

**पदार्थ** :—हे परमानन्द-रसो! ( **अराव्णः** ) अदान के भावों को ( **अपघ्नन्तः** ) विनष्ट करते हुए, ( **पवमानाः** ) पवित्रता देते हुए, ( **स्वर्दृशः** ) अन्तःप्रकाश को दिखाने वाले तुम ( **ऋतस्य योनौ** ) सत्य के मन्दिर जीवात्मा में ( **सीदत** ) बैठो॥९॥

**भावार्थ :—ब्रह्मानन्द जब अन्तरात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है तब सब स्वार्थवृत्तियां नष्ट हो जाती हैं, परार्थ-भावना उत्पन्न होती है और पवित्रता तथा अन्तःप्रकाश चारों ओर स्फुरित होने लगते हैं॥९॥**

( ४ )

**ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री। स्वरः—षड्जः॥**

प्रारम्भ में ब्रह्मानन्द-रसों का वर्णन करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**११९६. सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया।**
१ २ ३ १ २
**इन्द्राय मधुमत्तमाः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **सुताः** ) रिसाये हुए, ( **इन्दवः** ) भिगोने वाले, ( **मधुमत्तमाः** ) अतिशय मधुर ( **सोमाः** ) परमानन्द-रस ( **ऋतस्य** ) सत्य की ( **धारया** ) धारा के साथ ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा के लिए ( **असृग्रम्** ) छोड़े जा रहे हैं॥१॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मानन्द में डूबा हुआ ही मनुष्य उसकी मधुरता को अनुभव कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि स्तोता लोग किस प्रकार क्या करते हैं।

**११९७. अभि विप्रा अनूषत गावो वत्सं न धेनवः।**
**इन्द्रं सोमस्य पीतये॥२॥**

**पदार्थ** :—(**विप्राः**) बुद्धिमान् स्तोताजन (**सोमस्य**) ब्रह्मानन्द-रस के (**पीतये**) पान के लिए (**इन्द्रम्**) जीवात्मा को (**अभि अनूषत**) बुलाते हैं, (**धेनवः**) तृप्ति प्रदान करने वाली (**गावः**) गौएं, अपना दूध पिलाने के लिए (**वत्सं न**) जैसे बछड़े को बुलाती हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे बछड़ा अपनी माता गाय का दूध पीकर तृप्त हो जाता है वैसे ही उपासक लोग परमात्मा के आनन्द-रस को पीकर परम तृप्ति पाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कौन कहाँ निवास करता है।

**११९८. मदच्युत्क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित्।**
**सोमो गौरी अधि श्रितः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**मदच्युत्**) आनन्द को परिस्रुत करने वाला परमेश्वर (**सादने**) जीवात्मा-रूप सदन में (**क्षेति**) निवास करता है। (**विपश्चित्**) और बुद्धिमान् जीवात्मा (**सिन्धोः**) रसागार परमेश्वर रूप सिन्धु की (**ऊर्मौ**) आनन्द की लहर में (**क्षेति**) निवास करता है अर्थात् उसमें झूला झूलने का आनन्द लेता है। (**सोमः**) वह रसागार परमात्मा (**गौरी**) शुभ्र वेदवाणी में (**अधि श्रितः**) स्थित है, वर्णित है॥३॥

**भावार्थ** :—वेद जिसकी महिमा को गाते-गाते नहीं थकते उस आनन्द-सागर परमेश्वर की तरंगों में झूला झूलता हुआ जीव कृतकृत्य हो जाता है॥३॥

अब परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**११९९. दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते।**
**सोमो यः सुक्रतुः कविः॥४॥**

**पदार्थ** :–( **विचक्षणः** ) सर्वद्रष्टा ( **सोमः** ) परमेश्वर, ( **यः** ) जो ( **सुक्रतुः** ) शुभकर्म करने वाला, और ( **कविः** ) जगत्‌रूप दृश्य काव्य का तथा वेदरूप श्रव्य काव्य का कवि है, वह ( **दिवः** ) तेजस्वी जीवात्मा के ( **नाभा** ) केन्द्र भूत प्राण में और ( **अव्या वारे** ) प्रकृति के बाल के समान विद्यमान अर्थात् प्रकृति से निकले हुए व्यक्त जगत् में ( **महीयते** ) महिमा प्राप्त करता है।।

अथर्व० १०.८.३१ में कहा गया है कि "अवि नाम की एक देवता है जो ऋत से परिवृत है, उसी के रूप से ये वृक्ष हरे और हरित माला को धारण करने वाले बने हुए हैं।" इस प्रमाण से अवि शब्द प्रकृतिवाचक होता है।।४।।

**भावार्थ** :–जड़चेतनरूप सब जगत् में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान, सर्वज्ञ सब कर्मों को करने वाला जगदीश्वर सर्वत्र कीर्ति प्राप्त किये हुए है।।४।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा के मिलन का वर्णन है।

**१२००. यः सोमः कलशेष्वा अन्तः पवित्र आहितः।**
**तमिन्दुः परि षस्वजे॥५॥**

**पदार्थ** :–( **यः सोमः** ) जो जगत् को रचने वाला, सर्वान्तर्यामी, रस का भण्डार, परम आह्लादक परमेश्वर ( **कलशेषु** ) बहुत सी कलाओं से युक्त शरीरों में ( **आ** ) निहित है, और ( **अन्तः पवित्रे** ) पवित्र हृदय के अन्दर भी ( **आहितः** ) विद्यमान है ( **तम्** ) उस परमेश्वर को ( **इन्दुः** ) तेजस्वी जीवात्मा ( **परिषस्वजे** ) आलिंगन करता है।।५।।

**भावार्थ** :–परमात्मा की शरण का सहारा लेना जीवात्मा को परमानन्दायक होता है।।५।।

अब परमात्मा की कृपा का वर्णन करते हैं।

**१२०१. प्र वाचमिन्दुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि।**
**जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम्॥६॥**

**पदार्थ** :–( **इन्दुः** ) रस का भण्डार परमात्मा अपने

**(मधुश्चुतम्)** मधुस्रावी **(कोशम्)** आनन्द-रस के कोश को **(समुद्रस्य)** जीवात्मा रूप समुद्र के **(विष्टपि अधि)** धरातल पर **(जिन्वन्)** प्रेरित करता हुआ **(वाचम्)** उपदेश रूप वाणी को **(प्र इष्यति)** देता है॥६॥

यहाँ शब्दशक्तिमूलक ध्वनि से यह ध्वनित होता है कि जैसे चन्द्रमा (इन्दु) समुद्र के धरातल पर अपने चांदनीरूप मधुस्रावी कोश को प्रेरित करता है॥६॥

**भावार्थ** :—उपासकों को जगदीश्वर निरन्तर आनन्द-रस की धाराओं से सींचता रहता है और उन्हें दिव्य सन्देश देता रहता है॥६॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा स्तोता का कैसे उपकार करता है।

**१२०२. नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्तः सबर्दुधाम्।**
**हिन्वानो मानुषा युजा॥७॥**

**पदार्थ** :—**(नित्यस्तोत्रः)** सन्ध्योपासना रूप नित्यकर्म द्वारा स्तुति करने योग्य, **(वनस्पतिः)** तेजों का अधिपति सोम परमात्मा, **(मानुषा युजा)** मनुष्य स्त्री-पुरुषों के **(अन्तः)** अन्तःकरण में **(सबर्दुधाम्)** आनन्द-रस को दुहने वाली **(धेनाम्)** दिव्यवाणी को **(हिन्वानः)** प्रेरित करता रहता है॥७॥

यहाँ 'दुधाम्' कहने से धेना **(वाणी)** में गोत्व का आरोप व्यङ्ग्य है॥७॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना का यही लाभ है कि दिव्य आनन्द और शुभकर्मों में उत्साह प्राप्त होता है॥७॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**१२०३. आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम्।**
**अस्मे इन्दो स्वाभुवम्॥८॥**

**पदार्थ** :—हे **(पवमान)** पवित्रता देने वाले **(इन्दो)** रस से भिगोने वाले परमात्मन्! आप **(अस्मे)** हम में **(सहस्र-वर्चसम्)** अनन्त ब्रह्मवर्चस से युक्त, **(स्वाभुवम्)** अतिशय व्यापक **(रयिम्)**

दिव्य आनन्द रूप धन को (धारय) स्थापित करो॥८॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के उपासक आयुष्मान् तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी, दिव्य आनन्द से युक्त विद्वान् और श्रीमान् बनते हैं॥८॥

अब परमात्मा से होने वाली आनन्द-वर्षा का वर्णन करते हैं।

**१२०४. अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः।**
**सोमो हिन्वे परावति॥९॥**

**पदार्थ** :—(**दिवः**) तेजस्वी जीवात्मा के (**प्रिया**) प्रिय धाम अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशों को (**अभि**) अभिलक्षित करके (**धारया**) धारारूप से (**सुतः**) अभिषुत किया गया (**कविः**) क्रान्तद्रष्टा, (**विप्रः**) विशेष रूप से पूर्णता देने वाला (**स सोमः**) वह रसागार परमेश्वर क्रमशः (**परावति**) सबसे परे स्थित आनन्दमय कोश में (**हिन्वे**) पहुंचता है॥९॥

**भावार्थ** :—रस के भण्डार परमेश्वर में से अभिषुत की गयी आनन्द-रस की धाराएं जीवात्मा को पूर्णरूप से आप्लावित कर देती हैं॥९॥

**(५)**

**ऋषिः—उचथ्यः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रारम्भ में उपासक की स्तोत्रगान की पद्धति का वर्णन है।

**१२०५. उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः।**
**वाणस्य चोदया पविम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे भक्ति को सिद्ध करने वाले उपासक! (**ते**) तेरे (**शुष्मासः**) बलवान् स्तोत्रसमूह (**उदीरते**) उठ रहे हैं। उनकी (**सिन्धोः ऊर्मेः इव**) समुद्र की लहर जैसी (**स्वनः**) गीत की ध्वनि है। तू (**वाणस्य**) वीणादण्ड की (**पवित्रम्**) तन्त्री को (**चोदय**) प्रेरित कर, अर्थात् वीणा-वादन के साथ प्रभु भक्ति के स्तोत्र तरंगित कर॥१॥

**भावार्थ** :—मधुर गीतों के साथ जब सितार, मंजीरे आदि

बाजे ताल-मेल पूर्वक बजाये जाते हैं तब अपूर्व भक्ति का प्रवाह उत्तरंगित होता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के आविर्भाव का वर्णन है।

**१२०६. प्रसवे त उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः।**
**यदव्य एषि सानवि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् रस के भण्डार परमात्मन्! (**ते प्रसवे**) ध्यान द्वारा आपका आविर्भाव होने पर (**मखस्युवः**) उपासना-यज्ञ की पूर्ति चाहने वाले उपासक लोग (**तिस्रः वाचः**) ऋग्, यजुः, साम रूप तीनों वाणियों को (**उदीरते**) उच्चारित करते हैं, (**यत्**) जबकि, आप (**अव्ये सानवि**) जीवात्मा के उन्नत धाम में (**एषि**) पहुंचते हो॥२॥

**भावार्थ** :—सबके अन्तरात्मा में पहले से ही विद्यमान परमात्मा को ध्यान द्वारा और वेदमन्त्रों के गान द्वारा प्रकट करना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में यह कथन है कि कैसे परमेश्वर का किस प्रकार साक्षात्कार करना चाहिए।

**१२०७. अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।**
**पवमानं मधुश्चुतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रियम्**) उपासकों के प्यारे, (**हरिम्**) दुःखों को हरने वाले, (**पवमानम्**) हृदय को पवित्र करने वाले, (**मधुश्चुतम्**) आनन्द को परिस्रुत करने वाले सोम परमात्मा को, उपासक जन (**अव्याः वारैः**) चित्तभूमि के विक्षेप का निवारण करने वाले उपायों से, और (**अद्रिभिः**) ध्यान रूप सिल बट्टों से (**परिहिन्वन्ति**) अपने आत्मा में प्रेपित करते हैं अर्थात् उसका साक्षात्कार करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—योग के विघ्नरूप व्याधि, स्त्यान, संशय आदि तथा दुःख, दौर्मनस्य आदि का निवारण करके ध्यान द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करके सबको आनन्द-रस की धारा में स्नान करना चाहिए॥३॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१२०८. आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।**
**अर्कस्य योनिमासदम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे ( **मदिन्तम** ) सबसे अधिक आनन्ददायक, ( **कवे** ) क्रान्तद्रष्टा सोम अर्थात् रसागार परमात्मन्! आप ( **अर्कस्य** ) अर्चना करने वाले जीवात्मा के ( **योनिम्** ) घर अर्थात् आनन्दमय कोश में ( **आसदम्** ) आसन जमाने के लिए ( **पवित्रम्** ) पवित्र रूप में ( **धारय** ) आनन्द-धारा के साथ ( **पवस्व** ) प्रवाहित होओ।।४।।

**भावार्थ** :—परमात्मा से निकलकर बहती हुई आनन्द-धारा को प्राप्त करके जीवात्मा कृतार्थ हो जाता है।।४।।

अगले मन्त्र में फिर परमेश्वर से प्रार्थना है।

**१२०९. स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।**
**एन्द्रस्य जठरं विश॥५॥**

**पदार्थ** :—हे ( **मदिन्तम** ) सबसे बढ़कर आनन्ददाता जगदीश्वर! आप ( **अक्तुभिः** ) प्रकाशक ( **गोभिः** ) अध्यात्मप्रकाश की किरणों से ( **अञ्जानः** ) प्रकाश देते हुए ( **आ पवस्व** ) आओ। ( **इन्द्रस्य** ) जीवात्मा के ( **जठरम्** ) अन्दर ( **आ विश** ) प्रविष्ट हो जाओ।।५।।

**भावार्थ** :—परमात्मा को प्राप्त करके जीवात्मा प्रकाशमय हो जाता है।।५।।

( ६ )

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में ४९५ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधन करके व्याख्या की गयी थी। यहाँ वीर मनुष्य को सम्बोधन है।

**१२१०. अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा।**
**अवाहन्नवतीर्नव॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्दो** ) तेज से प्रदीप्त वीर! तू ( **अया वीती** )

इस रीति से (**परि स्रव**) व्यवहार कर कि (**यः**) जो मनुष्य (**ते मदेषु आ**) तेरे वीरताजनित उत्साहों के सम्पर्क में आए, वह (**नवनवतीः**) नव्वे-नव्वे योद्धाओं के नौ व्यूहों को (**अवाहन्**) मार गिराए॥१॥

**भावार्थ** :—वीर सेनापति अपनी सेना के योद्धाओं को इस प्रकार उत्साहित करे कि वे शत्रु योद्धाओं के सैकड़ों भी व्यूहों को क्षण भर में छिन्न-भिन्न कर दें। आन्तरिक देवासुरसंग्राम का सेनापति जीवात्मा भी आन्तरिक शत्रुओं को नष्ट करने के लिए ऐसा ही करे॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना तथा वीर मनुष्य को उद्बोधन है।

१ २   ३ २ ३   १ २ ३   १ २   ३ १ २
**१२११. पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शंबरम्।**
२ ३   २ ३ २ ३   १ २
**अध त्यं तुर्वशं यदुम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्दु अर्थात् तेज से प्रदीप्त परमात्मन् वा वीरजन! तुम (**इत्थाधिये**) सत्यकर्मों वाले, (**दिवोदासाय**) विद्या और धर्म के प्रकाश के दाता मनुष्य के हितार्थ (**सद्यः**) शीघ्र ही (**शंबरम्**) शान्ति में विघ्न डालने वाले शत्रु को, (**अध**) और (**त्यम्**) उस (**तुर्वशम्**) हिंसा करने के इच्छुक शत्रु को तथा (**यदुम्**) धर्म के फैलने में रुकावट डालने वाले शत्रु को, और (**पुरः**) उनकी नगरियों को (**अवाहन्**) नष्ट-भ्रष्ट कर दो [यहाँ 'अवाहन्' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है।]॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और वीरों के शौर्यकर्म से सुख, शान्ति, धर्म-कर्म आदि में रुकावट डालने वाले शत्रुओं की सदा ही पराजय और धार्मिक जनों का उत्कर्ष करना चाहिए॥२॥

यहाँ सायणाचार्य के मत में दिवोदास नाम का कोई राजा था और यदु, तुर्वश तथा शम्बर उसके विरोधी राजा थे, जिन्हें सोमरस पीकर मस्त हुए इन्द्र ने दिवोदास के हित के लिए वश में कर लिया था। किन्तु यह संगत नहीं है, क्योंकि सृष्टि के आदि में प्रकट हुए वेद में परवर्ती राजाओं आदि का इतिहास नहीं हो सकता, यह सुधी जनों को निश्चय मानना चाहिए।

अगले मन्त्र में परमेश्वर तथा वीर मनुष्य को सम्बोधन है।

**१२१२. परि णो अश्वमश्वविद्गोमदिन्दो हिरण्यवत्। क्षरा सहस्रिणीरिषः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) सम्पत्ति की वर्षा करने वाले परमात्मन् वा वीर मनुष्य! (**अश्ववित्**) प्राणबल वा अश्व प्राप्त कराने वाले आप (**नः**) हमारे लिए (**अश्वम्**) प्राणबल वा अश्वसमूह (**परिक्षर**) चारों ओर से बरसाओ। (**गोमद्**) वाणी के बल से युक्त वा धेनुओं से युक्त तथा (**हिरण्यवत्**) ज्योति से युक्त वा सुवर्ण से युक्त (**सहस्रिणीः**) सहस्र संख्या वाली (**इषः**) अभीष्ट सम्पदाएं (**परिक्षर**) चारों ओर से बरसाओ।।३।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से सब दिव्य तथा भौतिक सम्पदाएं प्राप्त की जा सकती हैं। साथ ही जो वीर होते हैं उन्हें ही सम्पदाएं हस्तगत होती हैं और वे अन्यों को भी उन्हें प्रदान करते हैं।।३।।

**(७)**

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५१० क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में की जा चुकी है। यहाँ वीररस का विषय दर्शाते हैं।

**१२१३. अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः। गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सोम**) जगाया हुआ वीर रस (**इन्द्रस्य**) जीवात्मा के (**निष्कृतम्**) संस्कृत किये हुए मनरूप घर में (**गच्छन्**) जाता हुआ, (**मृधः**) संग्रामकारियों को (**अपघ्नन्**) हिंसित करता हुआ, और (**अराव्णः**) अदानशील कृपण शत्रुओं को (**अपि**) विनष्ट करता हुआ (**पवते**) प्रवाहित होता है।।१।।

**भावार्थ** :—वीर रस में डूबा हुआ मानव सब आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को विनष्ट कर सकता है।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा वीर मनुष्य से प्रार्थना की गयी है।

**१२१४. महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः।**
**रास्वेन्दो वीरवद्यशः॥२॥**

पदार्थ :—हे (**पवमान**) क्रियाशील परमात्मन् वा वीर मनुष्य! आप (**नः**) हमारे लिए (**महः रायः**) महान् धनों को (**आ भर**) लाओ, (**मृधः**) हिंसक शत्रुओं को (**जहि**) विनष्ट करो। हे (**इन्दो**) तेज से प्रदीप्त परमात्मन् वा वीर मनुष्य! आप (**वीरवत् यशः**) वीरों जैसा यश (**रास्व**) हमें प्रदान करो॥२॥

**भावार्थ** :—संसार में परमात्मा की कृपा को प्राप्त वीर मनुष्य ही धन, धान्य और कीर्ति के सुखों को भोगने तथा भुगाने में और शत्रुओं को जीतने में समर्थ होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में दानवीर परमात्मा तथा दानी मनुष्य को सम्बोधन है।

**१२१५. न त्वा शतं च न हुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्।**
**यत्पुनानो मखस्यसे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे दानवीर परमात्मन् वा दानी मनुष्य! (**यत्**) जब (**पुनानः**) हमें पवित्र करते हुए आप (**मखस्यसे**) दानयज्ञ करने का संकल्प करते हो, तब (**राधः**) धन (**दित्सन्तम्**) दान करना चाहते हुए (**त्वा**) आपको (**शतं च न**) सौ भी (**हुतः**) हमारे कुटिल भाव वा कुटिल जन (**न आमिनन्**) दान के मार्ग से विचलित नहीं कर सकते॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर उन्हीं को अपने दान का पात्र बनाता है जो कुटिल नहीं हैं। दानवीर लोगों को चाहिए कि वे बाधक विघ्नों के बार-बार प्रहार होने पर भी अपने दान के व्रत को न छोड़ें॥३॥

(८)

**ऋषिः—निध्रुविः काश्यपः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४९३ क्रमांक पर परमात्मा के पक्ष में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ भी वही विषय है।

**१२१६. अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचयः।**
**हिन्वानो मानुषीरपः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक जगद्रचयिता परमात्मन्! आप (**अया**) इस (**धारया**) प्रकाश की धारा से, हमें (**पवस्व**) पवित्र कीजिए, (**यया**) जिस प्रकाश-धारा से, आपने (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अरोचयः**) चमकाया है। आप ही (**मानुषीः अपः**) मनुष्यों से प्राप्त करने योग्य आनन्द-रसों को (**हिन्वानः**) प्रेरित करो॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से हम सूर्य के समान तेजस्वी और पवित्र होकर ब्रह्मानन्द के भागी बनें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के कर्तृत्व का वर्णन है।

**१२१७. अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि।**
**अन्तरिक्षेण यातवे॥२॥**

**पदार्थ** :—(**सूरः**) प्रेरक (**पवमानः**) क्रियाशील सोम परमेश्वर ने (**अन्तरिक्षेण**) आकाशमार्ग से (**यातवे**) यात्रा करने के लिए (**मनौ अधि**) मनुष्य के अन्दर (**एतशम्**) प्राण रूप अश्व को (**अयुक्त**) नियुक्त किया हुआ है॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के साथ योग करके और प्राणसिद्धि प्राप्त करके मनुष्य आकाशमार्ग से जाना-आना कर सकते हैं॥२॥

आगे फिर परमेश्वर का कर्तृत्व वर्णित है।

**१२१८. उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे।**
**इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**उत**) और हे मनुष्य! तू (**इन्दुः**) तेज से प्रदीप्त है, (**इन्द्रः**) शत्रुविदारक है (**इति ब्रुवन्**) यह कहते हुए (**सूरः**) प्रेरक परमेश्वर ने (**यातवे**) व्यवहार करने के लिए (**रथे**) शरीररूप रथ में (**त्याः**) उन परम उपयोगी (**हरितः**)

मन, बुद्धि, प्राण सहित ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ियों को **(अयुक्त)** नियुक्त किया हुआ है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का शरीर-रूप रथ परमेश्वर की महान् निर्माण-कला को सूचित करता है॥३॥

(९)

**ऋषि:—वसिष्ठः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रारंभ में पुरोहित के गुणों का वर्णन करते हैं।

**१२१९. अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्। यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! जो **(अग्निभिः सजोषाः)** गार्हपत्य, आहवनीय आदि अग्नियों से प्रीति रखने वाला अर्थात् उनका ज्ञानी हो, उस **(यजिष्ठम्)** यज्ञ के अतिशय साधक, **(अग्निम्)** अग्रगण्य **(देवम्)** विद्वान् को **(वः)** तुम लोग **(अध्वरे)** यज्ञ में **(दूतम्)** दूत के समान माध्यम अर्थात् पुरोहित **(कृणुध्वम्)** बनाओ, **(यः)** जो विद्वान् **(मर्त्येषु)** मनुष्यों में **(निध्रुविः)** अत्यन्त स्थिर मति वाला, **(ऋतावा)** सत्यनिष्ठ, **(तपुर्मूर्धा)** परिपक्व मस्तिष्क वाला **(घृतान्नः)** घी-दूध आदि सात्त्विक पौष्टिक पदार्थ खाने वाला और **(पावकः)** पवित्रकर्ता हो॥१॥

**भावार्थ** :—सुयोग्य ही किसी मनुष्य को अध्यात्म यज्ञ तथा बाह्य यज्ञ में पुरोहित रूप से करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में विद्वान् का विषय है।

**१२२०. प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्। आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति॥२॥**

**पदार्थ** :—**(अश्वः न)** घोड़ा जैसे **(यदा)** जब **(महः**

संवरणात्) विशाल घुड़साल से (व्यस्थात्) छूटता है, तब (अविष्यन्) खाना चाहता हुआ (यवसे) घास पाने के हेतु (प्रोथत्) हिनहिनाता है, वैसे ही जो अग्नि अर्थात् विद्वान् स्नातक (यदा) जब (संवरणात्) गुरुकुल के नियन्त्रण से (व्यस्थात्) छूटता है तब (यवसे) मानव-समाज में (प्रोथत्) पूर्णता लाता है। (आत्) उसके अनन्तर (वातः) समाज का वातावरण (अस्य) इस विद्वान् स्नातक की (शोचिः) दीप्ति के अर्थात् प्रभाव के (अनु वाति) पीछे-पीछे चलता है। आगे प्रत्यक्ष रूप में कहते हैं-(अध) उसके बाद, हे विद्वान् स्नातक! (ते) तेरा (व्रजनम्) चलना-फिरना आदि व्यापार (कृष्णम् अस्ति) आकर्षक हो जाता है॥२॥

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जिसका समावर्तन संस्कार हो चुका है ऐसा विद्वान् स्नातक गुरुकुल से बाहर आकर समाज में विद्या और सच्चरित्र का प्रसार करे॥२॥

अगले मन्त्र में फिर विद्वान् का ही विषय है।

**१२२१ उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः। अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) अग्रनायक विद्वन्! (यस्य) जिस (नवजातस्य) नवस्नातक, (वृष्णः) विद्या, सुख आदि की वर्षा करने वाले (ते) आपकी (अजराः) नष्ट न होने वाली, (इधानाः) जाज्वल्यमान दीप्तियां (उत् चरन्ति) उठती हैं (सः) वह (अरुषः) तेजस्वी (धूमः) अविद्या, भ्रष्टाचार दुःख आदि को कंपा देने वाले आप (द्याम् अच्छ) विद्या आदि के प्रकाश को लक्ष्य करके (एषि) कर्म करते हो। हे (अग्ने) विद्वन्! (दूतः) दूत के समान आचरण करने वाले आप (देवान्) प्रजाजनों से (सम् ईयसे हि) मिलते-जुलते हो॥३॥

**भावार्थ** :—नवस्नातक गुरुकुल से बाहर जाकर अपने तेज के प्रभाव को फैलाकर, अज्ञान, दुराचार आदि को कंपा कर जन-समाज को उन्नत करे॥३॥

( १० )

ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः— षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१२२२. तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।**
**स वृषा वृषभो भुवत्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **महे** ) बड़े ( **वृत्राय** ) विघ्न, विद्रोह, उपद्रव, पाप आदि रूप शत्रु का ( **हन्तवे** ) वध करने के लिए ( **तम्** ) अपने शरीर में अधिष्ठाता रूप से विद्यमान उस ( **इन्द्रम्** ) शत्रुविदारक जीवात्मा को, हम ( **वाजयामसि** ) बलवान् करते हैं। ( **वृषा** ) बलवान् ( **सः** ) वह जीवात्मा ( **वृषभः** ) सुख-सम्पदा की वर्षा करने वाला ( **भुवत्** ) होवे ॥१॥

**भावार्थ** :—अपने अन्तरात्मा को उत्साहित करके सभी बाह्य और आन्तरिक शत्रु जीते जा सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, जीवात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं।

**१२२३. इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स बले हितः।**
**द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **सः इन्द्रः** ) वह परमेश्वर, जीवात्मा वा राजा ( **दामने** ) दान के लिए ( **कृतः** ) प्रेरित हो। ( **ओजिष्ठः** ) अत्यधिक ओजस्वी ( **सः** ) वह ( **बले** ) बल प्राप्ति के निमित्त ( **हितः** ) हमारा हितकारी हो। ( **सः** ) वह ( **द्युम्नी** ) तेजस्वी, ( **श्लोकी** ) यशस्वी, और ( **सोम्यः** ) शान्तिसम्पादक हो॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर से प्रार्थना करके, जीवात्मा को उत्साहित करके और राजा को उद्बोधन देकर हम प्राप्त दान वाले, बली, तेजस्वी, यशस्वी तथा शान्तिमान् होवें॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय में कहा गया है।

**१२२४. गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः।
ववक्ष उग्रो अस्तृतः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**गिरा**) निर्घोष से (**वज्रः न**) जैसे विद्युद्वज्र संयुक्त होता है, वैसे ही (**गिरा**) वेदवाणी वा प्रभावशालिनी वाणी से (**सम्भृतः**) संयुक्त, (**सबलः**) बलवान् (**अनपच्युतः**) अविचलित, (**उग्रः**) प्रचण्ड, (**अस्तृतः**) अहिंसित इन्द्र अर्थात् परमेश्वर, जीवात्मा वा राजा (**ववक्षे**) जगत् के भार को, शरीर को भार को वा राष्ट्र के भार को वहन करता है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जिसकी वाणियों का प्रभाव वज्रनिर्घोष के समान होता है वह बलियों में बली, दुष्टों के प्रति प्रचण्ड, किसी से जीता न जा सकने वाला, शत्रुओं को जीतने वाला जो परमेश्वर, जीवात्मा और राजा है उसे सहायक पाकर सब लोग जीवन–संग्राम में विजयी होवें॥३॥

**( ११ )**

**ऋषिः–उचथ्यः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४९९ क्रमांक पर ज्ञान–यज्ञ के विषय में की गयी थी। यहाँ उपासना–यज्ञ का वर्णन करते हैं।

**१२२५. अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय।
पुनाहीन्द्राय पातवे॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (**अध्वर्यो**) उपासना–यज्ञ के सञ्चालक उपासक! तू (**अद्रिभिः**) ध्यानरूप सिलबट्टों से (**सुतम्**) अभिषुत किये गये (**सोमम्**) भक्तिरस को (**पवित्रे**) हृदय में (**आनय**) ला, और (**इन्द्राय पातवे**) परमात्मा के पान के लिए, उसे (**पुनीहि**) पवित्र कर॥१॥

**भावार्थ** :–छल, छिद्र, आडम्बर आदि से रहित पवित्र भक्तिरस से ही परमेश्वर तृप्त होता है॥१॥

अगले मन्त्र में आनन्द-रस का विषय है।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३२उ ३क २र
१२२६. तव त्य इन्दो अन्धसो देवा मधोर्व्याशत।
१ २ ३ १ २
पवमानस्य मरुतः॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) आनन्द-रस से भिगोने वाले परमात्मन्! (**तव**) आपके (**मधोः**) मधुर, (**पवमानस्य**) पवित्र करने वाले (**अन्धसः**) आनन्द-रस का (**त्ये**) वे (**मरुतः**) प्रशस्त प्राण वाले (**देवाः**) दिव्यगुणी विद्वान् लोग (**व्याशत**) उपभोग करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—प्राणायाम आदि योगाभ्यास से जिन्होंने अपने सब दोषों को जला डाला है ऐसे विद्वान् जन ही ब्रह्मानन्द-रस के अधिकारी होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द-रस का विषय है।

३ २ ३ १ २ ३२उ ३ १ २ ३ १ २
१२२७. दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे।
३ २ ३ १ २
सुनोता मधुमत्तमम्॥३॥

**पदार्थ** :—हे उपासको! तुम (**दिवः**) प्रकाशमान परमात्मा के पास से (**पीयूषम्**) अमृतरूप, (**उत्तमम्**) सर्वोत्कृष्ट, (**मधुमत्तमम्**) अतिशय मधुर (**सोमम्**) आनन्द-रस को (**वज्रिणे इन्द्राय**) वीर जीवात्मा के लिए (**सुनोत**) अभिषुत करो॥३॥

**भावार्थ** :—अमृतरूप, अत्यन्त मधुर, ब्रह्मानन्द की महिमा जानकर भला कौन उसकी आकांक्षा नहीं करेगा॥३॥

(१२)

**ऋषिः—कविः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ पुनः उसी विषय को दर्शाते हैं।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२२८. धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानाम-
३ २ ३ १ २ १ २ ३ २उ ३ १
नुमाद्यो नृभिः। हरिः सृजानो अत्यो न
२र ३ २ ३ १ २ ३ २
सत्वभिर्वृथा पाजांसि कृणुषे नदीष्वा॥१॥

**पदार्थ** :–( **दिवः** ) कर्तव्य-अकर्तव्य के प्रकाश का ( **धर्ता** ) दाता, ( **कृत्व्यः** ) कर्मपरायण, ( **रसः** ) रसीला, ( **देवानाम्** ) प्रकाशक सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत्, नक्षत्र आदियों को ( **दक्षः** ) बल देने वाला, ( **नृभिः** ) मनुष्यों से ( **अनुमाद्यः** ) आराधनीय सोम परमेश्वर ( **पवते** ) सब जड़ चेतन रूप जगत् को पवित्र करता है। आगे प्रत्यक्षवत् वर्णन है– ( **हरिः** ) समुद्र में स्थित जलों को सूर्यकिरणों द्वारा हरकर आकाश में ले जाने वाले आप, हे परमात्मन्! ( **सत्वभिः** ) अपने बलों से ( **सृजानः** ) बादलों से वर्षा करते हुए ( **नदीषु** ) नदियों में ( **वृथा** ) अनायास ही ( **पाजांसि** ) वेगों को ( **कृणुषे** ) उत्पन्न करते हो, ( **सृजानः अत्यः न** ) जैसे जोड़ा जाता हुआ घोड़ा रथ आदि में वेगों को उत्पन्न करता है॥१॥

यहाँ श्लिष्टोपमा अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–जड़ चेतन रूप जगत् में जो कुछ भी बल, वेग, विवेक, प्रकाश आदि है वह सब परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के कृत्य वर्णित हैं।

**१२२९. शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वा३ः सिषासन्**
**रथिरो गविष्टिषु। इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्न-**
**पस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः॥२॥**

**पदार्थ** :–वह सोम परमेश्वर ( **गभस्त्योः** ) आकाश व भूमि रूप हाथों में ( **आयुधा** ) जलों को ( **धत्ते** ) धारण करता है, ( **शूरः न** ) जैसे शूरवीर मनुष्य ( **गभस्त्योः** ) हाथों में ( **आयुधा** ) शस्त्रास्त्रों को ( **धत्ते** ) धारण करता है। ( **रथिरः** ) रथारोही सेनापति के समान ( **गविष्टिषु** ) देवासुरसंग्रामों में ( **स्वः** ) विजय-सुख को ( **सिषासन्** ) देना चाहता हुआ, ( **इन्द्रस्य** ) जीवात्मा के ( **शुष्मम्** ) बल को ( **ईरयन्** ) उन्नत करता हुआ, ( **हिन्वानः** ) वृद्धि प्रदान करता हुआ ( **इन्दुः** ) तेजस्वी परमेश्वर ( **अपस्युभिः** ) कर्मप्रिय, ( **मनीषिभिः** ) बुद्धिमान् स्तोताओं द्वारा ( **अज्यते** ) अन्तरात्मा में प्रकट किया जाता है॥२॥

यहाँ श्लिष्टोपमा अलंकार है, 'रथिरः' में लुप्तोपमा है॥२॥

**भावार्थ** :—प्रकाशप्रदाता, वृष्टिप्रदाता, विजयप्रदाता, बलप्रदाता और वृद्धिप्रदाता परमेश्वर भला किसका वन्दनीय नहीं है॥२॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१२३०. इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरेष्वा विश। प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजाँ उप माहि शश्वतः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे **(सोम)** रस के भण्डार परमात्मन्! **(ऊर्मिणा)** आनन्द-तरंग के साथ **(पवमानः)** प्रवाहित होते हुए, **(तविष्यमाणः)** वृद्धि करना चाहते हुए, आप **(इन्द्रस्य)** जीवात्मा के **(जठरेषु)** अन्दर **(आविश)** प्रवेश करो। आप **(नः)** हमारे लिए **(रोदसी)** द्यावापृथिवी के तुल्य वाणी और बुद्धि को **(प्रपिन्व)** दुहो, अर्थात् उनसे होने वाले लाभ प्राप्त कराओ, **(विद्युत् अभ्रा इव)** बिजली जैसे बादलों को दुहती है। **(धिया)** बुद्धि और कर्म से **(नः)** हमारे लिए **(शाश्वतः)** बहुत से **(वाजान्)** बल, विज्ञान, ऐश्वर्य आदि का **(उपमाहि)** उपहार दो॥३॥

**भावार्थ** :—उपासना रूप कर्तव्यपालन से प्रसन्न हुआ परमेश्वर जीवात्मा को आनन्द की तरंगों में स्नान कराकर कृतार्थ करता है और सब प्रकार की सम्पदा उपहार में देता है॥३॥

(१३)

**ऋषिः—देवातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २७९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा वा राजा दोनों का विषय कहा जा रहा है।

**१२३१. यदिन्द्र प्रागपागुदग्न्यग्वा हूयसे नृभिः। सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे॥१॥**

**पदार्थ** :–( **यत्** ) क्योंकि, हे ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्यवन् शत्रुविदारक परमात्मन् वा राजन्! आप ( **प्राक्** ) पूर्व दिशा में, ( **अपाक्** ) पश्चिम दिशा में ( **उदक्** ) उत्तर दिशा में, ( **न्यक् वा** ) और दक्षिण दिशा में ( **नृभिः** ) पुरुषार्थी जनों से ( **हूयसे** ) भक्ति-प्रदान द्वारा वा करादि-प्रदान द्वारा सत्कार किये जाते हो, इसलिए ( **नृषूतः** ) उपासक जनों से वा प्रजाजनों से प्रेरित आप ( **सिमा** ) सर्वत्र ( **पुरु** ) बहुत अधिक ( **आनवे** ) मानव-समाज में ( **असि** ) उपकारक होते हो। हे ( **प्रशर्ध** ) प्रकृष्ट रूप से शत्रुओं का धर्षण करने वाले परमात्मन् वा राजन्! आप ( **तुर्वशे** ) हिंसकों को वश में करने वाले वीर मनुष्य के ( **असि** ) सहायक होते हो॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे जगदीश्वर सब धार्मिक जनों का सहायक और रक्षक होता है, वैसे ही राजा का यह कर्तव्य है कि वह सब राज्याधिकारियों का तथा प्रजाजनों का सहायक और रक्षक होवे॥१॥

सायणाचार्य ने इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि **अनु नाम का एक राजा था, जिसका राजर्षि पुत्र आनव है और तुर्वश भी एक राजा का नाम है। यह उसकी व्याख्या काल्पनिक होने से तथा योगार्थशैली के विरुद्ध होने के कारण संगत नहीं है।**

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय कहा गया है।

**१२३२. यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा। कण्वासस्त्वा स्तोमेभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि॥२॥**

**पदार्थ** :–( **यद् वा** ) और, हे ( **इन्द्र** ) परमैश्वर्यशाली परमात्मन् वा वीर राजन्! आप ( **रुमे** ) स्तोता वा उपदेशक को, ( **रुशमे** ) हिंसकों के हिंसक को, ( **श्यावके** ) कर्मयोगी को, और ( **कृपे** ) दीनों पर दयालु वा समर्थ मनुष्य को ( **सचा** ) एक साथ ही ( **मादयसे** ) तृप्ति प्रदान करते हो। हे ( **इन्द्र** ) परमात्मन् वा राजन्! ( **ब्रह्मवाहसः** ) स्तुति करने वाले वा ज्ञान देने वाले ( **कण्वासः** ) मेधावी जन ( **स्तोमेभिः** ) स्तोत्रों से वा उद्बोधन-गीतों से ( **त्वा** ) आपको ( **आ यच्छन्ति** ) वश में कर लेते हैं आप ( **आगहि** ) हमारे पास आओ॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर और राजा उन्हीं के सहायक होते हैं जो योगाभ्यासी, दूसरों को उपदेश देने वाले, कर्मशूर, दीनों पर दयालु और शक्तिशाली होते हैं॥२॥

सायणाचार्य ने इस मन्त्र की व्याख्या में रुम, रुशम, श्यावक और कृप नामक चार राजा स्वीकार किये हैं और 'कण्वास:' से कण्वगोत्री ऋषि लिये हैं। वह असंगत है, क्योंकि सृष्टि के आदि में प्रकट हुए वेदों में परवर्ती ऐतिहासिक पुरुषों का उल्लेख नहीं हो सकता।

( १४ )

**ऋषि:—भर्ग: प्रागाथ:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—बार्हत: प्रगाथ: ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वर:—१ मध्यम:, २ पञ्चम:॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २९० क्रमांक पर **परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहाँ आचार्य का विषय कहा गया है।**

**१२३३. उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वच:।**
**सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **इन्द्र:** ) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य ( **न: अर्वाक्** ) हमारे अभिमुख होकर ( **इदम्** ) इस हम से सुनाए जाते हुए ( **उभयं वच:** ) पद्यात्मक और गद्यात्मक दोनों प्रकार के पढ़ाए हुए शास्त्र-वचनों को ( **शृणवत्** ) सुने। ( **मघवान्** ) विद्यादान देने वाला, ( **शविष्ठ:** ) विद्या और चरित्र से बलवान् वह आचार्य ( **सत्राच्या** ) सत्य का अनुसरण करने वाली ( **धिया** ) बुद्धि वा क्रिया से ( **सोमपीतये** ) हमें ज्ञानरस वा ब्रह्मानन्दरस पिलाने के लिए ( **आगमत्** ) हमारे पास आये॥१॥

**भावार्थ** :—गुरुओं को चाहिए कि प्रेम से छात्रों को पढ़ायें और प्रतिदिन पढ़ाये हुए पाठ को अगले दिन सुनें, जिससे इसकी परीक्षा हो सके कि छात्रों ने यह पाठ याद कर लिया या नहीं। सिखाये हुए योगाङ्गों की भी समय-समय पर परीक्षा लें, जिससे छात्र समाधि में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के योग्य हो सकें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः आचार्य का विषय है।

**१२३४. तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः। उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**तं हि स्वराजम्**) विद्या के सूर्य उस आचार्य को, (**तं वृषभम्**) विद्या के वर्षक उस आचार्य को (**धिषणे**) विद्या तथा वाणी ने (**निष्टतक्षतुः**) संस्कृत किया हुआ है। अब प्रत्यक्ष रूप में कहते हैं-(**उत**) और, हे आचार्यवर! आप (**उपमानाम्**) उपमानों के मध्य (**प्रथमः**) श्रेष्ठ होकर (**निषीदसि**) स्थित हो। (**ते मनः**) आपका मन (**सोमकामं हि**) ज्ञानरस के प्रदान का इच्छुक है॥२॥

**भावार्थ** :–वही आचार्य श्रेष्ठ है, जिसका विद्या-वैभव और **वाणी-वैभव दोनों ही उत्कृष्ट हों॥२॥**

**( १५ )**

**ऋषिः–निध्रुविः काश्यपः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री। स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४८३ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ भी प्रकारान्तर से उसी विषय का निरूपण किया जा रहा है।

**१२३५. पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः। वायुमा रोह धर्मणा॥१॥**

**पदार्थ** :–हे सोम! हे रसमय परमात्मन्! (**देवः**) आनन्दायक आप (**आयुषक्**) आयु भर (**पवस्व**) आनन्द-रस को प्रवाहित करते रहो। (**ते**) आपका (**मदः**) आनन्द (**इन्द्रम्**) जीवात्मा को (**गच्छतु**) प्राप्त हो। आप (**धर्मणा**) अपने गुण-कर्म-स्वभाव के साथ (**वायुम्**) हमारे गतिशील मन पर (**आरोह**) सवार हो जाओ, अभिप्राय यह है कि मन को अपने प्रभाव से प्रभावित करो॥१॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर के उपासकों के आत्मा, मन, बुद्धि

आदि परम आनन्द के प्रवाह से परिप्लुत हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है।

**१२३६. पवमान नि तोशसे रयिं सोम श्रवाय्यम्।**
**इन्दो समुद्रमा विश॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) पवित्रतादायक (**सोम**) रसागार परमात्मन्! आप (**श्रवाय्यम्**) कीर्ति उत्पन्न करने वाले (**रयिम्**) आध्यात्मिक तथा भौतिक ऐश्वर्य को (**नितोशसे**) देते हो। हे (**इन्दो**) उपासकों को चन्द्रमा के समान आह्लाद देने वाले परमेश्वर! आप (**समुद्रम्**) जीवात्मा-रूप समुद्र में (**आविश**) प्रवेश करो॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे चन्द्रमा अपने आकर्षण से समुद्र के जल को ऊपर उठाता है, वैसे परमेश्वर अपने चुम्बकीय आकर्षण से जीवात्मा को उन्नत करता है॥२॥

तृतीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४९२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ एक साथ परमात्मा और आचार्य दोनों का विषय वर्णित करते हैं।

**१२३७. अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः।**
**नुदस्वादेवयुं जनम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) आनन्दरस के भण्डार परमात्मन् वा विद्यारस के भण्डार आचार्य! (**क्रतुवित्**) विज्ञानों और कर्मों को प्राप्त कराने वाले, (**मत्सरः**) आनन्ददाता आप (**मृधः**) हिंसावृत्तियों को (**अपघ्नन्**) विनष्ट करते हुए (**पवसे**) मनुष्यों वा विद्यार्थियों के अन्तःकरण को पवित्र करते हो। आप (**अदेवयुम्**) दिव्यगुणों को प्राप्त न करना चाहने वाले (**जनम्**) मनुष्य को वा विद्यार्थी को (**नुदस्व**) उनकी प्राप्ति के लिए प्रेरित करो॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर वेद द्वारा दिव्य गुणों की प्राप्ति का सन्देश देकर, योगाभ्यासियों को ब्रह्मानन्द प्रदान करके कृतार्थ करता है वैसे ही आचार्य छात्रों को क्रियात्मक ज्ञान सहित

आध्यात्मिक एवं भौतिक विविध विद्याएं सिखाकर, उनमें दिव्य गुण उत्पन्न करके उन्हें सुयोग्य बनाए॥३॥

( १६ )

ऋषिः—अम्बरीषः, ऋजिश्वा च॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५४९ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ पर परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना है।

**१२३८. अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम्।**
**इन्दो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्रो**) आनन्दरस तथा विद्यारस से भिगोने वाले तेजस्वी परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! आप (**वाजसातमम्**) अतिशय बल के प्रदाता, (**शतस्पृहम्**) सैकड़ों मनुष्यों से चाहने योग्य, (**सहस्रभर्णसम्**) सहस्रों गुणों को धारण कराने वाले अथवा सहस्रों जनों के पोषक, (**तुविद्युम्नम्**) बहुत यश देने वाले, (**विभासहम्**) शत्रुओं के तेज को अभिभूत करने वाले (**रयिम्**) आध्यात्मिक धन को, सुवर्ण आदि धन को वा विद्याधन को (**नः**) हम उपासकों, प्रजाजनों वा छात्रों को (**अभि अर्ष**) प्राप्त कराओ॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर से ब्रह्मानन्द का धन, राजा से सुवर्ण आदि धन और आचार्य से विद्याधन प्राप्त करके ही उपासक, प्रजाजन और विद्यार्थी कृतकृत्य होते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**१२३९. वयं ते अस्य राधसो वसोर्वसो पुरुस्पृहः।**
**नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वसो**) निवास देने वाले परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! (**वयम्**) हम प्रार्थी लोग (**ते**) आपके (**अस्य**) इस (**वसोः**) निवासक, (**पुरुस्पृहः**) अतिशय चाहने योग्य, (**इषः**) अभीष्ट (**राधसः**) आध्यात्मिक ऐश्वर्य, सुवर्ण आदि ऐश्वर्य का

विद्याधन के ( नि ) अत्यधिक ( नेदिष्ठतमाः ) निकटतम ( स्याम ) होवें। और, हे ( अध्रिगो ) बेरोक गति वाले परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! हम ( ते ) आपके अर्थात् आपसे दिये हुए ( सुम्ने ) सुख से ( स्याम ) होवें।।२।।

**भावार्थ** :—परमात्मा से आध्यात्मिक धन, राजा से भौतिक धन और आचार्य से विद्या-धन पाकर सब लोगों को सुखी होना योग्य है।।२।।

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस वा ज्ञान-रस का विषय है।

**१२४०. परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः।**
**धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः॥३॥**

**पदार्थ** :—( **स्यः** ) वह ( **स्वानः** ) अभिपुत किया जाता हुआ, ( **मदच्युतः** ) उत्साह देने के लिए निकला हुआ ( **इन्दुः** ) भिगोनेवाला आनन्द-रस वा ज्ञानरस ( **अव्ये** ) अव्यय अर्थात् अविनश्वर जीवात्मा में ( **परि अक्षरत्** ) परमात्मा के पास से वा आचार्य के पास से क्षरित हुआ है, ( **यः** ) जो ( **ऊर्ध्वः** ) उत्कृष्ट आनन्द-रस वा ज्ञान-रस ( **गव्ययुः** ) प्रकाश देने का इच्छुक होकर ( **अध्वरे** ) उपासना-यज्ञ वा विद्या-यज्ञ में ( **भ्राजा धारा न** ) मानो प्रदीप्त धारा के साथ ( **याति** ) प्रवाहित हो रहा है।।३।।

यहां उत्प्रेक्षा अलंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—परमेश्वरोपासना-यज्ञ से परमानन्द-रस को और विद्या-यज्ञ से ज्ञान-रस को प्राप्त करके लोग दिव्य प्रकाश पाकर कृतार्थ होवें।।३।।

**( १७ )**

**ऋषिः—अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—द्विपदा विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४२९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ पर फिर परमात्मा का विषय कहते हैं।

**१२४१. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि**
**धाम॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) आनन्दरस के भण्डार परमात्मन्! आप (**महान् समुद्रः**) विशाल बादल हो, (**देवानाम्**) दिव्यगुणों के (**पिता**) उत्पादक और पालक हो। आप (**विश्वा धाम अभि**) सब हृदय-धामों को लक्ष्य करके (**पवस्व**) बरसो॥१॥

यहाँ सोम परमात्मा में मेघत्व (**समुद्रत्व**) का आरोप होने से रूपक अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे बादल भूमि पर बरस कर वनस्पति आदि को उत्पन्न करता है वैसे ही परमेश्वर आनन्दवर्षा करके दिव्यगुणों को सृजता है॥१॥

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१२४२. शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं**
**च प्रजाभ्यः॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) जगत्स्रष्टा परमात्मन्! (**शुक्रः**) तेजस्वी और पवित्र आप (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों से युक्त जनों के लिए (**पवस्व**) तेज और पवित्रता को प्रवाहित करो। (**दिवे**) सूर्य के लिए, (**पृथिव्यै**) भूलोक के लिए, और (**प्रजाभ्यः**) प्रजाजनों के लिए (**शम्**) कल्याणकारी होओ॥२॥

**भावार्थ** :–यथाशक्ति परमात्मा के गुणों को अपने आत्मा में धारण करके हम तेज, पवित्रता और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का विषय है।

**१२४३. दिवो धर्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन् वाजी**
**पवस्व॥३॥**

**पदार्थ** :–हे सोम अर्थात् जगत् के स्रष्टा परमात्मन्! आप (**दिवः**) खगोल में विद्यमान लोकलोकान्तरों के (**धर्ता**) धारण करने वाले, (**शुक्रः**) तेजस्वी एवं पवित्र और (**पीयूषः**) आनन्दरसमय (**असि**) हो। (**वाजी**) बलवान् आप (**विधर्मन्**) विशेष धर्मों से युक्त (**सत्ये**) मुझ सत्य चरित्र वाले उपासक के अन्दर (**पवस्व**) बहो॥३॥

**भावार्थ** :—तेजस्वी, पवित्र और आनन्दवान् परमेश्वर अपने उपासकों को भी तेजस्वी, पवित्र और आनन्दयुक्त कर देता है।।३।।

( १८ )

ऋषिः—उशनाः काव्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा और राजा दोनों का विषय दर्शाते हैं।

**१२४४. प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।**
**अग्ने रथं न वेद्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) जग के नेता परमात्मन् वा राष्ट्र के नेता राजन्! (**प्रेष्ठम्**) अतिशय प्रिय, (**अतिथिम्**) अतिथि के समान सत्कार-योग्य, (**मित्रम् इव**) मित्र के समान (**प्रियम्**) तृप्ति प्रदाता और (**रथं न**) के समान (**वेद्यम्**) प्राप्तव्य (**वः**) आपकी, मैं (**स्तुषे**) स्तुति करता हूँ अर्थात् आपके गुणों का वर्णन करता हूं।।१।।

यहाँ उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे लोग परमात्मा की पूजा करें वैसे ही राजा का भी सत्कार करें और जैसे परमात्मा लोगों को तृप्ति देता है वैसे ही राजा भी प्रजाओं को तृप्त करे।।१।।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय वर्णित है।

**१२४५. कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता।**
**नि मर्त्येष्वादधुः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**कविम् इव**) कवि के समान (**प्रशंस्यम्**) प्रशंसनीय (**यम्**) जिस अग्नि अर्थात् अग्रनायक परमात्मा को (**देवासः इति**) दिव्य गुणों वाले योग-प्रशिक्षक वा योगी लोग (**द्विता**) पालनार्थ तथा शत्रुओं से रक्षार्थ इन दो प्रयोजनों के लिए (**मर्त्येषु**) योगाभ्यासी मनुष्यों में

(नि आदधुः) योगविधि से अनुभव कराते हैं, उसकी मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ। [यहाँ 'स्तुषे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है।]

(द्वितीय) राजा के पक्ष में। (कविम् इव) कवि के समान (प्रशंस्यम्) प्रशंसनीय (यम्) जिस अग्नि अर्थात् अग्रनायक राजा को (देवासः इति) दिव्य गुणों वाले पुरोहित लोग (द्विता) प्रजा के पालनार्थ तथा शत्रुओं से रक्षार्थ दोनों कर्मों के लिए (मर्त्येषु) प्रजाजनों के बीच (नि आदधुः) राजगद्दी पर स्थित करते हैं—उसकी मैं (स्तुषे) गुण वर्णन-रूप स्तुति करता हूँ।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे ब्रह्माण्ड का सम्राट् परमेश्वर लोगों को पालता और उनके शत्रुओं को पराजित करता है वैसे ही वही राष्ट्र में राजा होने योग्य है जो प्रजाओं की पालना तथा शत्रुओं का पराजय कर सकता हो।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**१२४६. त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुही गिरः।**
१ २ ३ २ ३ १ २र
**रक्षा तोकमुत त्मना॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**यविष्ठ**) सबसे अधिक युवा अर्थात् युवा के समान शक्ति सम्पन्न परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**दाशुषः**) आत्मसमर्पण करने वाले (**नॄन्**) उपासक जनों की (**पाहि**) पालना कीजिए, उनकी (**गिरः**) स्तुति-वाणियों को (**शृणुहि**) सुनिए, (**उत**) और (**त्मना**) अपने आप (**तोकम्**) उनकी सद्विचार-रूप सन्तान की (**रक्ष**) रक्षा कीजिए।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**यविष्ठ**) अतिशय युवक राजन्! (**त्वम्**) आप (**दाशुषः**) विद्या के दाता वा धन के दाता (**नॄन्**) पुरुषों की (**पाहि**) रक्षा कीजिए। (**उत**) और (**त्मना**) स्वयम् (**तोकम्**) युद्ध में मृत सैनिकों की सन्तान की (**रक्ष**) पालना कीजिए।।३।।

**भावार्थ** :—जगदीश्वर अपने उपासकों को पालता है और उनकी रक्षा करता है। उसी प्रकार राजा को दो कर्म अवश्य करने चाहिए—एक विद्वानों का पालन और उनका उपदेश सुनना

और दूसरा युद्ध में मारे गये सैनिकों के सन्तान, पत्नी आदि का पालन॥३॥

( १९ )

ऋषि:—नृमेध:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—उष्णिक्॥ स्वर:—ऋषभ:॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३९३ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ फिर उसी विषय का वर्णन करते हैं।

**१२४७. एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्य।**
**गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **( प्रिय )** तृप्तिप्रदाता, **( सत्राजित् )** एक साथ सब शत्रुओं को जीत लेने वाले, **( अगोह्य )** न छिपाये जा सकने योग्य अर्थात् सर्वत्र प्रकाशमान **( इन्द्र )** परमात्मन्! आप **( गिरिः न )** बादल के समान **( सर्वतः )** सब ओर **( पृथुः )** प्रख्यात और **( दिवः पतिः )** तेजस्वी सूर्य के वा जीवात्मा के स्वामी हो॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—यद्यपि परमेश्वर चर्मचक्षु से दिखाई नहीं देता तो भी वह सूर्य के समान सर्वत्र प्रकाशित, तृप्तिप्रदायक, सर्वविजेता, सुख आदि की वर्षा करने के कारण बादल के समान प्रसिद्धि-प्राप्त और सब जड़-चेतन जगत् का अधिपति है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा का विषय है।

**१२४८. अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी।**
**इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे **( सत्य )** सत्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले, **( सोमपाः )** शान्ति के रक्षक जगदीश्वर! आपने **( हि )** निश्चय ही **( उभे रोदसी )** द्यावापृथिवी दोनों को **( अभिबभूथ )** तिरस्कृत किया हुआ है। हे **( इन्द्र )** सर्वान्तर्यामिन्! आप **( सुन्वतः )** शान्ति-स्थापना का **( यज्ञ )** करने वाले को **( वृधः )** बढ़ाने वाले और **( दिवः )** तेजस्वी जन के **( पतिः )** रक्षक **( असि )** हो॥२॥

**भावार्थ** :—संसार में जो शान्ति की स्थापना के लिए यत्न

करते हैं उन्हीं का परमेश्वर सखा होता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और राजा के वीरकर्मों का वर्णन करते हैं।

**१२४९. त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि।**
**हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) परमवीर जगदीश्वर वा राजन्! (त्वं हि) आप निश्चय ही (**शश्वतीनाम्**) बहुत सी (**पुराम्**) शत्रु-नगरियों के (**दर्ता**) भेदन करने वाले, (**दस्योः**) हिंसक शत्रु के (**हन्ता**) विनाशक, (**मनोः**) मननशील शान्तिप्रिय मनुष्य के (**वृधः**) बढ़ाने वाले और (**दिवः**) तेजस्वी जन के (**पतिः**) रक्षक (**असि**) हो॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर दुष्टों का भञ्जक और सज्जनों का रक्षक होता है वैसे ही राजा को भी होना चाहिए॥३॥

**(२०)**

**ऋषिः—जेता माधुच्छन्दसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३५९ क्रमांक पर परमेश्वर, राजा, सेनापति और सूर्य के विषय में की जा चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१२५०. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।**
**इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रः**) यह देहधारी जीवात्मा (**पुराम्**) शत्रु-नगरियों का (**भिन्दुः**) भेदन करने वाला, (**युवा**) यौवन-सम्पन्न, (**कविः**) क्रान्तदर्शी, (**अमितौजाः**) अपरिमित बल वाला, (**विश्वस्य**) सब (**कर्मणः**) क्रियाकाण्ड का (**धर्ता**) धारण करने वाला, (**वज्री**) शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, और (**पुरुष्टुतः**) बहु-स्तुत (**अजायत**) हुआ है॥१॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा में अपूर्व शक्ति निहित है। अपनी शक्ति को पहचानकर वह महान् से महान् कर्मों को कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और जीवात्मा को सम्बोधन है।

**१२५१. त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्।**
**त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अद्रिवः**) अविनश्वर परमेश्वर वा जीवात्मन्! (**त्वम्**) तुम (**गोमतः**) जिसने सत्त्वगुण के प्रकाश को बन्द कर रखा है ऐसे (**वलस्य**) आच्छादक तमोगुण की (**बिलम्**) गुफा को (**अपावः**) तोड़कर खोल देते हो। (**तुज्यमानासः**) हिंसा किये जाते हुए (**देवाः**) प्रकाशक मन, बुद्धि सहित ज्ञानेन्द्रियां वा विद्वान् लोग (**अबिभ्युषः**) भयभीत न होते हुए (**त्वाम्**) तुझ परमात्मा वा जीवात्मा की (**आविषुः**) शरण में जाते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—मन में तमोगुण की अधिकता हो जाने से जब सत्त्वगुण निर्बल हो जाता है तब तमोगुण प्रकाश को रोक लेता है। वह आवरण परमात्मा की प्रेरणा से और जीवात्मा के पुरुषार्थ से तोड़ा जा सकता है॥२॥

आगे फिर परमात्मा और जीवात्मा का विषय है।

**१२५२. इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमैरनूषत।**
**सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**ओजसा**) बल वा प्रताप से (**ईशानम्**) जगत् के वा शरीर के शासक (**इन्द्रम्**) परमेश्वर वा जीवात्मा की, सब लोग (**स्तोमैः**) उनके गुणवर्णन करने वाले स्तोत्रों से (**अभि अनूषत**) स्तुति करते हैं, (**यस्य**) जिस परमेश्वर वा जीवात्मा के (**सहस्रम्**) हजार (**उत वा**) अथवा (**भूयसीः**) उससे भी अधिक (**रातयः**) दान (**सन्ति**) हैं॥३॥

**भावार्थ** :—सबको योग्य है कि परमेश्वर की उपासना करके और जीवात्मा को उद्बोधन देकर उनके दानों को प्राप्त करें॥३॥

**इति नवमोऽध्यायः, पञ्चमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ दशमोऽध्यायः

## पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—पराशरः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५२९ क्रमांक पर परमात्मा और मेघ के विषय में की जा चुकी है। यहाँ फिर परमात्मा का ही विषय वर्णित करते हैं।

**१२५३. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः। वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः॥१॥**

**पदार्थ** :—इसी सोम परमात्मा के शासन में ( **समुद्रः** ) सूर्य ( **परमे** ) उच्च, ( **विधर्मणि** ) विशेष धारणकर्ता द्युलोक में ( **अक्रान्** ) अपनी धुरी पर घूमता है, जो सूर्य ( **प्रजाः जनयन्** ) प्रजाओं को उत्पन्न करता हुआ ( **भुवनस्य** ) सौरमण्डल का ( **गोपाः** ) रक्षक है। ( **पवित्रे** ) अन्तरिक्ष में और ( **अव्ये सानौ अधि** ) पृथिवी के उन्नत प्रदेश में ( **वृषा** ) वर्षा करने वाला, ( **स्वानः** ) भूमि आदि लोकों को उनकी अपनी-अपनी कक्षा में सूर्य के चारों ओर प्रेरित करता हुआ ( **अद्रिः** ) अविनश्वर ( **सोमः** ) जगत्स्रष्टा ( **बृहत्** ) बहुत अधिक ( **वावृधे** ) महिमा को प्राप्त हुआ है॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर ही अपनी महिमा से सूर्य को और उसके चारों ओर भूमि, चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रहों को घुमा रहा है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का कर्म वर्णित है।

**१२५४. मत्सि वायुमिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमानः। मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी देव सोम॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**देव**) आनन्ददायक, (**सोम**) संसार के रचयिता परमात्मन्! आप (**नः**) हमारी (**इष्टये**) अभीष्ट-सिद्धि के लिए, और (**राधसे**) ऐश्वर्य के लिए (**वायुम्**) पवन को (**मत्सि**) हर्षित करते हो, (**पूयमानः**) प्राप्त किये जाते हुए आप (**मित्रावरुणा**) प्राण-अपान को (**मत्सि**) हर्षित करते हो, (**मारुतं शर्धः**) सैनिकों के बल को (**मत्सि**) हर्षित करते हो, (**देवान्**) विद्वान् जनों को (**मत्सि**) हर्षित करते हो, (**द्यावापृथिवी**) आकाश और भूमि को (**मत्सि**) हर्षित करते हो॥२॥

**भावार्थ** :–जो यह प्रकृति में सूर्य, चन्द्र, पवन, भूमि आदियों में, समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदियों में और शरीर में जीवात्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदियों में हर्ष, स्फूर्ति और कर्मनिष्ठा दिखायी देते हैं वह सब परमात्मा द्वारा ही की हुई है॥२॥

तृतीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५४२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ भी उसी विषय का वर्णन करते हैं।

**१२५५. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्। अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**महिषः**) महान् (**सोमः**) जगत् का रचयिता परमेश्वर (**तत्**) उस आगे वर्णित किये गये (**महत्**) महत्त्वपूर्ण कर्म को (**चकार**) करता है (**यत्**) कि (**अपाम्**) जल आदि पदार्थों में भी (**गर्भः**) गर्भरूप से विद्यमान वह (**देवान्**) सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युत् आदियों को वा प्राण, मन, चक्षु, श्रोत्र आदियों को (**अवृणीत**) रक्षणीय रूप में वरता है। (**पवमानः**) उससे कर्मशूर ने (**इन्द्रे**) प्राण, पवन वा मन में (**ओजः**) बल (**अदधात्**) स्थापित किया है, (**इन्द्रः**) उस ज्योतिष्मान् ने (**सूर्ये**) सूर्य में (**ज्योतिः**) ज्योति को (**अजनयत्**) उत्पन्न किया है॥३॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के महान् कर्म बड़े ही आश्चर्यजनक हैं। प्राण में सांस की शक्ति, पवन में गति, मन में संकल्प, सूर्य

में दीप्ति, चांद में चांदनी, नदियों में प्रवाह, पहाड़ों में दृढ़ता वही स्थापित करता है॥३॥

( २ )

**ऋषि:—शुन:शेप:॥ देवता—पवमान: सोम:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥**

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा की गति वर्णित है।

**१२५६. एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयते।**
**अभि द्रोणान्यासदम्॥१॥**

**पदार्थ :—**( एष: ) यह ( अमर्त्य: ) अमर, ( देव: ) कर्मफलों को भोगने वाला जीवात्मा रूप सोम, कर्मों के अनुसार ( द्रोणानि ) देहरूप द्रोण कलशों में ( अभि आसदम् ) बैठने के लिए ( पर्णवी: इव ) पक्षी के समान ( दीयते ) उड़कर जाता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ :—**पक्षी जैसे उड़ता हुआ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाता है, वैसे ही यह जीवात्मा पहले शरीर को छोड़कर कर्मफल भोगने के लिए माता के गर्भ में दूसरे शरीर को प्राप्त करता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा द्वारा कर्मफल दिये जाने का वर्णन है।

**१२५७. एष विप्रैरभिष्टुतोऽपो देवो वि गाहते।**
**दधद्रत्नानि दाशुषे॥२॥**

**पदार्थ :—**( विप्रै: ) विद्वान् उपासकों से ( अभिष्टुत: ) अभिमुख होकर स्तुति किया गया ( एष: ) यह ( देव: ) कर्मफलप्रदाता परमेश्वर ( अप: ) मनुष्यों से किये गये कर्मों का ( विगाहते ) आलोडन अर्थात् निरीक्षण करता है, और ( दाशुषे ) आत्मसमर्पणकर्ता शुभकर्मकारी मनुष्य को ( रत्नानि ) रमणीय फल ( दधत् ) प्रदान करता है॥२॥

**भावार्थ :—**न्यायकारी परमेश्वर शुभकर्मों का शुभ फल और अशुभ कर्मों का अशुभ फल कर्म करने वाले को देता है॥२॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय है।

**१२५८. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः।**
**पवमानः सिषासति॥३॥**

**पदार्थ** :—(**पवमानः**) अपने को पवित्र करता हुआ (**एषः**) यह जीवात्मा (**सत्वभिः**) अपने पुरुषार्थों से विश्वानि सब (**वार्या**) वरणीय वस्तुओं को (**सिषासति**) प्राप्त करना चाहता है, (**यन् इव**) जैसे चलता हुआ (**शूरः**) कोई शूरवीर (**विश्वानि वार्या**) सब प्राप्तव्य स्थानों को प्राप्त कर लेता है।।३।।

यहाँ उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—मनुष्य अपने पुरुषार्थ से सब अभीष्टों को पा सकता है।।३।।

आगे फिर जीवात्मा के विषय का वर्णन है।

**१२५९. एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति।**
**आविष्कृणोति वग्वनुम्॥४॥**

**पदार्थ** :—(**एषः**) यह (**देवः**) कर्मफलों का भोक्ता जीव, कर्मफल भोगने के लिए (**रथर्यति**) शरीररूप रथ की इच्छा करता है। (**पवमानः**) शरीररूप रथ में जाता हुआ यह (**दिशस्यति**) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदियों को दिशा-निर्देश करता है, और (**वग्वनुम्**) व्यक्त वाणी को (**आविष्कृणोति**) प्रकट करता अर्थात् उच्चारण करता है।।४।।

**भावार्थ** :—जीवात्मा मानव-देह पाकर ज्ञान का संचय, सत्कर्मों का आचरण और व्यक्त वाणी से दूसरों को उपदेश यदि करता है तो उसका मनुष्य-जन्म पाना सफल हो जाता है।।४।।

**१२६०. एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः।**
**हरिर्वाजाय मृज्यते॥५॥**

**पदार्थ** :—(**एषः**) यह (**देवः**) विजय की इच्छा वाला, (**पवमानः**) पुरुषार्थी, (**हरिः**) कर्मफलभोग के लिए एक शरीर से दूसरी शरीर में ले जाया गया जीवात्मा (**ऋतायुभिः**) सत्य

आचरण वाले ( **विपन्युभिः** ) परमात्म-स्तोता विद्वानों द्वारा ( **वाजाय** ) बल देने के लिए ( **मृज्यते** ) शुद्ध किया जाता है॥५॥

**भावार्थ** :—मानव-शरीर को प्राप्त जीवात्मा सत्याचारी परमात्म-स्तोताओं की संगति करके स्वयं को उन्नत करे॥५॥

आगे फिर उसी जीवात्मा का विषय है।

**१२६१. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति।**
**पवमानो अदाभ्यः॥६॥**

**पदार्थ** :—( **एषः** ) यह ( **विपा** ) मेधावी विद्वान् के द्वारा ( **कृतः** ) संस्कृत किया हुआ ( **पवमानः** ) पुरुषार्थी, अतएव ( **अदाभ्यः** ) किसी से पराजित न किया जा सकने वाला ( **देवः** ) तेजस्वी जीवात्मा ( **ह्वरांसि** ) कुटिल कर्मों को या कुटिल शत्रुओं को ( **अति** ) दूर करके ( **धावति** ) आगे बढ़ता है॥६॥

**भावार्थ :—विद्वान् आचार्य के द्वारा जब मनुष्य का आत्मा संस्कृत किया जाता है तब मनुष्य बलवान् होकर, सभी बाधाओं को पराजित करके समाज में अग्रगण्य हो जाता है॥६॥**

आगे फिर वही विषय है।

**१२६२. एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया।**
**पवमानः कनिक्रदत्॥७॥**

**पदार्थ** :—( **एषः** ) यह ( **पवमानः** ) पुरुषार्थी जीवात्मा ( **कनिक्रदत्** ) स्तोत्रगान को ध्वनित करता हुआ ( **रजांसि** ) रजोगुणों को ( **तिरः** ) लांघकर ( **धारया** ) सत्त्वगुण की धारा से ( **दिवम्** ) तेजस्वी परमात्मा के प्रति ( **वि धावति** ) वेग से जाता है॥७॥

**भावार्थ** :—रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण को प्रबल करके ही जीवात्मा परमात्मा को पाता है॥७॥

आगे फिर जीवात्मा का विषय है।

**१२६३. एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृतः।**
**पवमानः स्वध्वरः॥८॥**

**पदार्थ** :–(**एषः**) यह (**स्वध्वरः**) शुभ उपासना-रूप यज्ञ का कर्ता, (**अस्तृतः**) विघ्नों से अहिंसित (**पवमानः**) पुरुषार्थी जीवात्मा (**रजांसि**) रजोगुणों और तमोगुणों को (**तिरः**) तिरस्कृत करके (**दिवम्**) तेजस्वी परमात्मा को (**व्यासरत्**) वेग से प्राप्त कर लेता है॥८॥

**भावार्थ** :–मनुष्य को विघ्न तभी मार्ग से डिगाते हैं जब वह रजोगुण और तमोगुण से दबा रहता है॥८॥

नवमी ऋचा पहले ७५८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ मनुष्य के द्वितीय जन्म का विषय है।

**१२६४. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः।**
**हरिः पवित्रे अर्षति॥९॥**

**पदार्थ** :–(**प्रत्नेन जन्मना**) आचार्य से प्राप्त श्रेष्ठ जन्म से (**देवेभ्यः**) दिव्य गुणों के प्रसारार्थ (**सुतः**) उत्पन्न किया हुआ (**एषः**) यह (**हरिः**) दीनों का दुःख हरने वाला मनुष्य (**पवित्रे**) पवित्र कर्म में (**अर्षति**) संलग्न होता है।

आचार्य जब बालक का उपनयन संस्कार करता है तब उसे अपने गर्भ में धारण करता है। तीन रात्रियों तक उसे गर्भ में रखे रहता है। जब वह जन्म लेता है अर्थात् स्नातक बनता है तब उसे देखने के लिए चारों ओर से विद्वान् लोग एकत्र होते हैं (अथ० ११।५।३) आचार्य विद्या से विद्यार्थी को दूसरा जन्म देता है, वही श्रेष्ठ जन्म है, माता-पिता तो शरीर को ही जन्म देते हैं। (आप० १।१।१।१४-१८)। इस द्वितीय जन्म में सावित्री (गायत्री) माता होती है और आचार्य पिता (मनु० २।१७०) इत्यादि प्रमाणों के आधार पर आचार्य और सावित्री के द्वारा जो द्वितीय जन्म प्राप्त होता है, वही श्रेष्ठ है॥९॥

**भावार्थ** :–प्रथम जन्म माता-पिता से प्राप्त होता है, वह मुख्य रूप से शरीर का जन्म होता है। दूसरा विद्या और सदाचार का जन्म आचार्य तथा सावित्री से होता है। द्वितीय जन्म प्राप्त करके मनुष्य पवित्र आचरण वाला हो जाता है। द्वितीय जन्म से ही वह द्विज और उस जन्म की प्राप्ति के बिना शूद्र कहलाता है॥९॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१२६५. एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निषः।
१ २ ३ २
धारया पवते सुतः॥१०॥

**पदार्थ** :–( एषः उ ) यह ( स्यः ) वह ( पुरुव्रतः ) ब्रह्मचर्याश्रम में बहुत व्रत पालन करने वाला, ( जज्ञानः ) आचार्य से जन्म ग्रहण करता हुआ छात्र ( सुतः ) उत्पन्न होकर अर्थात् स्नातक बनकर ( इषः ) प्राप्त विद्याएं ( जनयन् ) दूसरों को पढ़ाता हुआ ( धारया ) वाणी से ( पवते ) करे॥१०॥

**भावार्थ** :–आचार्य के मुख से सब विद्याएं पढ़कर छात्र पवित्र आचरण वाला द्विज होकर स्नातक बना हुआ दूसरों को भी सब विद्याएं पढ़ाता हुआ उन्हें पवित्र आचरण वाला करे॥१०॥

( ३ )

**ऋषिः–असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में मुक्ति के विषय का वर्णन है।

३ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१२६६. एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभिः।
२ ३ १ २ ३ २
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्॥१॥

**पदार्थ** :–( इन्द्रस्य ) परमेश्वर के ( निष्कृतम् ) परम धाम को ( गच्छन् ) जाता हुआ ( एषः ) यह सोम जीवात्मा ( अण्व्या ) सूक्ष्म ( धिया ) ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा ( याति ) लक्ष्य को पा लेता है, जैसे ( शूरः ) कोई शूर मनुष्य ( आशुभिः ) वेगवान् ( रथैः ) रथों द्वारा लक्ष्य को पाता है॥१॥

यहाँ लुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–मुक्ति की प्राप्ति में ऋतम्भरा प्रज्ञा परम सहायक होती है॥१॥

आगे फिर वही विषय है।

३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
१२६७. एष पुरू धियायते बृहते देवतातये।
२ ३ १ २ ३ १ २
यत्रामृतास आशत॥२॥

**पदार्थ** :—( **एषः** ) यह सोम जीवात्मा ( **बृहते** ) महान् ( **देवतातये** ) मोक्ष पद के लाभार्थ ( **पुरु** ) बहुत अधिक ( **वियायते** ) ऋतम्भरा प्रज्ञा को पाना चाहता है, ( **यत्र** ) जिस मोक्षपद में ( **अमृतासः** ) पूर्व अमर जीवात्माएं ( **आशते** ) विद्यमान हैं।।२।।

**भावार्थ** :—मोक्ष की प्राप्ति के लिए मोक्ष की अभिलाषा योगाभ्यास तथा सदाचार की अपेक्षा होती है।।२।।

आगे मन्त्र में आत्मशुद्धि का विषय है।

**१२६८. एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः प्रचक्राणं महीरिषः॥३॥**

**पदार्थ** :—( **महीः** ) महान्, ( **इषः** ) ज्ञान और कर्म की सम्पत्तियों को ( **प्रचक्राणम्** ) अधिकाधिक संचित किये हुए ( **मर्ज्यम्** ) शुद्ध करने योग्य ( **एतम्** ) इस जीवात्मा को ( **आयवः** ) मनुष्य ( **द्रोणेषु** ) उपासना-रस के कुण्डों में ( **उपमृजन्ति** ) शोधते हैं।।३।।

**भावार्थ** :—जीवात्मा जब अविद्या, पाप आदियों से लिप्त हो जाता है तब उसकी शुद्धि के लिए परमेश्वर की उपासना अपेक्षित होती है।।३।।

आगे फिर वही विषय है।

**१२६९. एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा। यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः॥४॥**

**पदार्थ** :—( **यदि** ) यदि ( **भूर्णयः** ) ज्ञान आदि से भरे हुए मनुष्य ( **तुञ्जन्ति** ) स्वयं को परमेश्वर के लिए समर्पित करते हैं तो इस ( **शुन्ध्यावता पथा** ) शुद्धियुक्त मार्ग से ( **अन्तः हितः** ) अन्तर्मुख किया हुआ ( **एषः** ) यह सोम जीवात्मा ( **वि नीयते** ) विशेषरूप से मोक्ष की ओर ले जाया जाता है।।४।।

**भावार्थ** :—अहंकार का परित्याग करके परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण से मोक्ष का मार्ग सरल हो जाता है।।४।।

अगले मन्त्र में जीवात्मा का वर्णन करते हैं।

**१२७०. एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः।**
**पतिः सिन्धूनां भवन्॥५॥**

**पदार्थ** :—वाजी बलवान् (**एषः**) यह सोम जीवात्मा (**सिन्धूनाम्**) शरीरस्थ रक्तवाहिनी नाड़ियों का (**पतिः**) स्वामी (**भवन्**) होता हुआ (**रुक्मिभिः**) तेजस्वी (**शुभ्रेभिः**) स्वच्छ (**अंशुभिः**) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदियों से (**ईयते**) कार्य करता है।।५।।

**भावार्थ** :—शरीर के अधिष्ठाता जीवात्मा को शरीरस्थ मन, बुद्धि, आदि तथा बाह्य साधनों को प्रयुक्त करके सदा ही उन्नति करनी चाहिए।।५।।

अगले मन्त्र में सांड का वर्णन करते हुए देहधारी जीवात्मा का वर्णन है।

**१२७१. एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो३ वृषा।**
**नृम्णा दधान ओजसा॥६॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सांड के पक्ष में। (**ओजसा**) प्रबलता के साथ (**नृम्णा**) बलों को (**दधानः**) धारण करता हुआ (**एषः**) यह (**यूथ्यः**) गौओं के समूह में रहने वाला (**वृषा**) सांड (**शृङ्गाणि**) सींगों को (**दोधुवत्**) कंपाता हुआ (**शिशीते**) पर्वत, खम्भे आदि पर तेज कर रहा है।

(**द्वितीय**) मनुष्य के पक्ष में। (**ओजसा**) बल से (**नृम्णा**) धन को (**दधानः**) कमाता हुआ (**एषः**) यह (**यूथ्यः**) सामाजिक तथा (**वृषा**) अन्यों पर सुख की वर्षा करने वाला मानव (**दोधुवत्**) दोषों को कंपाता हुआ (**शृङ्गाणि**) धर्म, अर्थ, काम मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का (**शिशीते**) अभ्यास करता है।।६।।

यहाँ श्लेष है, प्रथम अर्थ में स्वभावोक्ति अलंकार है।।६।।

**भावार्थ** :—जैसे बलवान् सांड स्वभाव के अनुसार सिर को कंपाता हुआ अपने सींगों को पर्वत आदि पर तीक्ष्ण करता है, वैसे ही बलवान् मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को तीक्ष्ण करे।।६।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि कैसे जीवात्मा कहाँ परमात्मा का अनुभव करता है।

**१२७२. एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवाँ अति।**
**अव शादेषु गच्छति॥७॥**

**पदार्थ** :-( **पिब्दनः** ) जो स्वयं उपासना रस का स्वाद लेता हुआ उसे दूसरों को भी देता है ऐसा ( **एषः** ) यह जीवात्मा ( **परुषा** ) कठोर परिणाम वाले ( **वसूनि** ) भौतिक धनों को ( **अति ययिवान्** ) छोड़कर ( **शादेषु** ) शाद्वलस्थलों में ( **अवच्छति** ) परमात्मा का अनुभव करता है॥७॥

**भावार्थ** :-घास आदि से हरे-भरे रमणीक प्रदेशों में परमात्मा की विभूति का दर्शन सुगम होता है। कहा भी है-पर्वतों के एकान्त में, नदियों के संगम पर ध्यान द्वारा सर्वज्ञ परमेश्वर प्रकट होता है॥७॥ (साम० १४३)

अगले मन्त्र में फिर देहधारी जीवात्मा का विषय है।

**१२७३. एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे।**
**स्वायुधं मदिन्तमम्॥८॥**

**पदार्थ** :-( **एतम् उ** ) इस ( **त्यम्** ) उस ( **स्वायुधम्** ) उत्तम शस्त्रास्त्रों से युक्त ( **मदिन्तमम्** ) अतिशय उत्साहयुक्त ( **हरिम्** ) मनुष्य को ( **दश क्षिपः** ) दस प्रेरक प्राण वा दस प्रेरक इन्द्रियां ( **यातवे** ) गति करने के लिए अर्थात् ज्ञानसम्पादन तथा पुरुषार्थ करने के लिए ( **हिन्वन्ति** ) प्रेरित करती हैं॥८॥

**भावार्थ** :-जैसे चाबुकें घोड़े को चलने के लिए प्रेरित करती हैं वैसे ही दस प्राण वा दस इन्द्रियां देहधारी जीवात्मा को कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं॥८॥

(४)

**ऋषिः-राहुगणः॥ देवता-पवमानः सोमः॥ छन्दः-गायत्री। स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा का विषय वर्णित किया गया है।

१२७४. एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत।
गच्छन्वाजं सहस्रिणम्॥१॥

**पदार्थ** :–( **सहस्रिणम्** ) सहस्र ऐश्वर्यों से युक्त ( **वाजम्** ) बल को ( **गच्छन्** ) प्राप्त करता हुआ ( **एषः उ** ) यह ( **स्यः** ) वह ( **वृषा** ) सुखवर्षी ( **रथः** ) गतिशील सोम जीवात्मा ( **अव्याः वारेभिः** ) रक्षा करने वाली जगन्माता के दोष-निवारक उपायों से ( **अव्यत** ) रक्षा किया जाता है।।१।।

**भावार्थ** :–जगन्माता की उपासना से मनुष्य के दोष दूर होते हैं और उसमें सद्गुण आ जाते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के दर्शन का विषय है।

१२७५. एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
इन्दुमिन्द्राय पीतये॥२॥

**पदार्थ** :–( **त्रितस्य** ) धारणावती बुद्धि से बहुत अधिक बढ़े हुए उपासक की ( **योषणः** ) ध्यानवृत्तियां ( **एतम्** ) इस ( **हरिम्** ) दोषहर्ता ( **इन्दुम्** ) रसनिधि परमेश्वर को ( **इन्द्राय पीतये** ) जीवात्मा द्वारा पिये जाने के लिए ( **अद्रिभिः** ) प्रण-जप आदि रूप सिल-बट्टों से ( **हिन्वन्ति** ) प्रेरित करती हैं।।२।।

**भावार्थ** :–योगाभ्यास द्वारा मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा की कृपा का वर्णन है।

१२७६. एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति।
गच्छं जारो न योषितम्॥३॥

**पदार्थ** :–( **योषितम्** ) पत्नी के पास ( **गच्छन्** ) प्रेम से जाते हुए ( **जारः न** ) पति के समान ( **गच्छन्** ) धार्मिक प्रजा के पास प्रेम से जाता हुआ ( **एषः स्यः** ) यह वह सोम अर्थात् रसागार परमेश्वर ( **श्येनः न** ) सूर्य के समान ( **मानुषीषु विक्षु** ) मानवी प्रजाओं में ( **आसीदति** ) स्थित है।।३।।

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—पति जैसे पत्नी से स्नेह करता है वैसे ही परमेश्वर धार्मिक प्रजा से स्नेह करता है। जैसे आकाश में स्थित सूर्य सब प्रजाओं को भौतिक प्रकाश देकर अनुगृहीत करता है वैसे ही परमेश्वर दिव्य प्रकाश देकर॥३॥

अगले मन्त्र में चन्द्रमा के वर्णन द्वारा जीवात्मा का वर्णन करते हैं।

**१२७७. एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः।**
**य इन्दुर्वारमाविशत्॥४॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) चन्द्र के पक्ष में। ग्रहण से मोक्ष के बाद के चन्द्रमा का वर्णन करते हैं ( **एषः स्यः** ) यह वह ( **मद्यः** ) मोददायी, ( **रसः** ) चांदनी का रस बरसाने वाला, ( **दिवः शिशुः** ) आकाश के शिशु के समान विद्यमान चन्द्रमा ( **अव चष्टे** ) पूर्णतः प्रकाशित हो गया है, ( **यः इन्दुः** ) जो चन्द्रमा पहले ( **वारम्** ) सूर्य और चन्द्रमा के मध्य पृथिवी के आ जाने से आवरण में ( **आविशत्** ) प्रविष्ट हो गया था।

( **द्वितीय** ) जीवात्मा के पक्ष में। ( **एषः स्यः** ) यह वह ( **मद्यः** ) आनन्दित करने योग्य, ( **रसः** ) रस पीने वाला ( **दिवः शिशुः** ) तेजस्वी परमात्मा को पुत्र के समान प्रिय जीवात्मा ( **अवचष्टे** ) परमात्मा का दर्शन कर रहा है, ( **यः इन्दुः** ) जो जीवात्मा, पहले ( **वारम्** ) परमात्मा के दर्शन को रोकने वाले भोग्य जगत् के प्रति ( **आविशत्** ) आकृष्ट था॥४॥

यहाँ श्लेषालंकार हैं। दिवः शिशुः' में लुप्तोपमा है। 'रसः' की रसवर्षक वा रसपायी में लक्षणा है॥४॥

**भावार्थ** :—चन्द्रग्रहण पूर्णमासी को ही होता है। ग्रहणकाल में चन्द्रमा अंशतः या पूर्णतः अन्धकार से ढक जाता है। धीरे-धीरे उसका मोक्ष होता है। पूर्ण मोक्ष के पश्चात् वह पहले के समान पूर्ण चन्द्रमा के रूप में भासित होने लगता है। यह विज्ञानसम्मत प्राकृतिक घटना है, पौराणिक राहु-केतु का वृत्तान्त काल्पनिक ही है। वैसे ही जीवात्मा भी भोग्य जगत् के प्रति आकृष्ट होकर उससे ग्रसा जाता है। उससे मोक्ष के अनन्तर ही वह परमात्मा का

साक्षात् कर पाता है॥४॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा का शरीर में जन्म वर्णित है।

**१२७८. एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः।**
**क्रन्दन्योनिमभि प्रियम्॥५॥**

**पदार्थ** :–( **एषः स्यः** ) यह वह ( **धर्णसिः** ) देह को धारण करने वाला ( **हरिः** ) जीवात्मा ( **पीतये** ) कर्मफलों का स्वाद लेने के लिए ( **सुतः** ) उत्पन्न किया हुआ ( **क्रन्दन्** ) क्रन्दन करता हुआ ( **प्रियं योनिम् अभि** ) जन्म में कारणभूत प्रिय माता-पिता की ओर ( **अर्षति** ) जाता है॥५॥

**भावार्थ** :–माता के गर्भ में दस महीने तक लेटा रहा शिशु बाहर निकल कर कर्मफलों का भोग करता हुआ और श्रेष्ठ नवीन कर्म करता हुआ उन्नति करे॥५॥

**अब देह में स्थित जीवात्मा के साधनों का वर्णन करते हैं।**

**१२७९. एतं त्यं हरितो दश मर्मृज्यन्ते अपस्युवः।**
**याभिर्मदाय शुम्भते॥६॥**

**पदार्थ** :–( **एतं त्यम्** ) इस उस देहधारी जीवात्मा को ( **अपस्युवः** ) ज्ञान और कर्म के उपार्जन की इच्छुक ( **दश हरितः** ) दस इन्द्रियां ( **मर्मृज्यन्ते** ) अतिशय अलंकृत करती हैं, ( **याभिः** ) जिन दस इन्द्रियों से वह ( **मदाय** ) सुखभोगार्थ ( **शुम्भते** ) शोभित होता है॥६॥

**भावार्थ** :–यदि शरीर में ज्ञान प्राप्त करने वाला और कर्म करने वाला जीवात्मा मन, बुद्धि एवं प्राणों सहित ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप साधनों को न प्राप्त करे तो कैसे सफल हो सकता है॥६॥

( ५ )

**ऋषिः–प्रियमेधः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा का विषय वर्णित है।

**१२८०. एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः।**
**अव्यं वारं वि धावति॥१॥**

**पदार्थ** :—( **वाजी** ) बलवान् और ( **नृभिः हितः** ) मनुष्यों द्वारा अन्तःकरण में धारण किया गया ( **विश्ववित्** ) सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, ( **मनसः पतिः** ) मन का अधीश्वर ( **एषः** ) यह सोम परमेश्वर ( **अव्यम्** ) अविनश्वर, ( **वारम्** ) वरणीय जीवात्मा के पास ( **वि धावति** ) शीघ्रता से पहुँचता है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे पिता प्यारे पुत्र के पास पहुंचता है, वैसे ही परमात्मा जीवात्मा के पास प्रेम से पहुंचता है॥१॥

आगे ब्रह्मानन्दरस का विषय वर्णित है।

**१२८१. एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः।**
**विश्वा धामान्याविशन्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **देवभ्यः** ) शरीर में स्थित आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदियों के लिए ( **सुतः** ) अभिषुत किया गया ( **एषः सोमः** ) यह ब्रह्मानन्द-रस ( **पवित्रे** ) पवित्र अन्तरात्मा में ( **अक्षरत्** ) टपका है, और ( **विश्वा धामानि** ) सब अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि कोशों में ( **आविशन्** ) व्याप्त हो रहा है॥२॥

**भावार्थ** :—अन्तरात्मा के पवित्र होने पर ही ब्रह्मानन्दरस का अनुभव होता है॥२॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का विषय कहा गया है।

**१२८२. एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः।**
**वृत्रहा देववीतमः॥३॥**

**पदार्थ** :—( **अमर्त्यः** ) अमरणशील, ( **वृत्रहा** ) विघ्नों का विनाशक, ( **देववीतम्** ) दिव्यगुणों को अत्यधिक प्राप्त करने वाला ( **एष देवः** ) यह स्तोता जीव ( **योनौ अधि** ) परमात्मारूप घर में ( **शुभायते** ) शोभित होता है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे गृहस्वामी की घर से शोभा होती है वैसे ही जीवात्मा की परमात्मा को प्राप्त करने से शोभा होती है॥३॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा का कर्तव्य वर्णित है।

**१२८३. एष वृषा कनिक्रदद्दशभिर्जामिभिर्यतः।**
**अभि द्रोणानि धावति॥४॥**

**पदार्थ** :—(**वृषा**) बलवान् और (**दशभिः जामिभिः**) दस अंगुलियों से अर्थात् अंगुलियों के समान आपस में सम्बद्ध दस यम-नियमों से (**यतः**) नियन्त्रित हुआ (**एषः**) यह सोम जीवात्मा (**द्रोणानि अभि**) सांसारिक भोगों के प्रति (**धावति**) दौड़े॥४॥

**भावार्थ** :—सांसारिक भोगों में अति आसक्ति उचित नहीं है॥४॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का कर्तृत्व और महत्त्व वर्णित किया गया है।

**१२८४. एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि।**
**पवित्रे मत्सरो मदः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**एषः**) इस (**पवमानः**) क्रियाशील सोम परमात्मा ने (**द्यवि अधि**) द्युलोक में (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अरोचयत्**) चमकाया है, और (**मदः**) आनन्दमय यह परमात्मा (**पवित्रे**) पवित्र अन्तरात्मा में (**मत्सरः**) आनन्दजनक होता है॥५॥

**भावार्थ** :—बाहरी जगत् में सूर्य, चाँद, तारावलि आदि में और अन्दर के जगत् मन, मस्तिष्क आदि में जो कर्तृत्व और महत्त्व दिखायी देता है वह सब परमात्मा का ही है॥५॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१२८५. एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता।**
**पतिर्वाचो अदाभ्यः॥६॥**

**पदार्थ** :—(**संवसानः**) सबको अपने तेज से आच्छादित करता हुआ (**एषः**) यह सोम परमेश्वर (**विवस्वता**) अन्धकार

को दूर करने वाले (सूर्येण) सूर्य के साथ (ह्रासते) स्पर्धा करता है। और (अदाभ्यः) जिसे दबाया या पराजित नहीं किया जा सकता ऐसा यह (वाचः पतिः) वाणी का भी स्वामी है।।६।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर सूर्य, बिजली आदि से भी अधिक तेजस्वी और वाचस्पतियों का भी मूर्धन्य है।।६।।

(६)

**ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय है।

**१२८६. एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते।**
**पुनानो घ्नन्नप द्विषः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**अभिष्टुतः**) स्तुति किया हुआ (**कविः**) मेधावी, क्रान्तद्रष्टा (**एषः**) यह सोम परमेश्वर (**पुनानः**) अन्तःकरण को पवित्र करता हुआ (**द्विषः**) द्वेषवृत्तियों को (**अपघ्नन्**) मार भगाता हुआ (**पवित्रे अधि**) पवित्र अन्तरात्मा में (**तोशते**) प्रदीप्त होता है।।१।।

**भावार्थ** :—मलिन दर्पण में जैसे प्रतिबिम्ब भासित नहीं होता वैसे ही मलिन अन्तरात्मा में परमेश्वर प्रकाशित नहीं होता।।१।।

आगे पुनः वही विषय है।

**१२८७. एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित् परि षिच्यते।**
**पवित्रे दक्षसाधनः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**स्वर्जित्**) परमानन्द का विजेता, (**दक्षसाधनः**) बलदायक (**एषः**) यह सोम परमेश्वर (**इन्द्राय**) मन के हितार्थ और (**वायवे**) प्राण के हितार्थ (**पवित्रे**) पवित्र अन्तरात्मा में (**परि षिच्यते**) चारों ओर से सींचा जा रहा है।।२।।

**भावार्थ** :—उपासक के अन्तरात्मा में परमात्मा के प्रकट हो जाने पर मन, बुद्धि, प्राण आदि सभी बलवान् हो जाते हैं।।२।।

आगे फिर परमात्मा का ही विषय है।

१२८८. एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः।
सोमो वनेषु विश्ववित्॥३॥

**पदार्थ** :–(**दिवः मूर्धा**) तेज का शिरोमणि, (**वृषा**) सुख की वर्षा करने वाला, (**विश्ववित्**) सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, (**वनेषु**) एकान्त जंगलों में (**नृभिः**) उपासक मनुष्यों से (**सुतः**) ध्यान द्वारा प्रकट किया गया (**एषः**) यह (**सोमः**) रसमय परमेश्वर, उनके द्वारा (**वि नीयते**) विशेष रूप से जीवन में लाया जाता है॥३॥

**भावार्थ** :–उपासक लोग परमात्मा का साक्षात्कार करके उसे अपने जीवन का अंग बना लें॥३॥

आगे फिर पुनः परमात्मा का विषय वर्णित है।

१२८९. एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः॥४॥

**पदार्थ** :–(**एषः**) यह (**गव्युः**) उपासकों को वेद-वाणियाँ प्राप्त करना चाहता हुआ, (**हिरण्ययुः**) यश और ज्योति प्राप्त कराना चाहता हुआ, (**सत्राजित्**) एक साथ सब काम, क्रोध आदि शत्रुओं को जीत लेने वाला (**पवमानः**) पवित्रताकारक, (**इन्दुः**) आनन्दरस से भिगोने वाला तेजस्वी परमेश्वर (**अचिक्रदत्**) हमें अपने समीप बुला रहा है॥४॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर सदा ही उपासकों के साथ मित्रता स्थापित करने के लिए उद्यत रहता है॥४॥

आगे फिर वही विषय है।

१२९०. एष शुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः।
पुनान इन्दुरिन्द्रमा॥५॥

**पदार्थ** :–(**एषः**) यह (**शुष्मी**) बलवान्, (**वृषा**) आनन्दवर्षक, (**हरिः**) पापों को हरने वाला (**इन्दुः**) रसमय परमेश्वर (**इन्द्रम्**) जीवात्मा को (**आ पुनानः**) चारों ओर से पवित्र करता हुआ (**अन्तरिक्षे**) मनोमय कोश में (**असिष्यदत्**) प्रवाहित हो रहा है॥५॥

**भावार्थ** :—जैसे अन्तरिक्ष में स्थित चन्द्रमा चांदनी के रस को प्रसारित करता है वैसे ही हृदय-प्रदेश में स्थित परमेश्वर आनन्द-रस को प्रवाहित करता है॥५॥

आगे पुनः परमात्मा का वर्णन है।

**१२९१. एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति।
देवावीरघशंसहा॥६॥**

**पदार्थ** :—( **एषः** ) यह ( **शुष्मी** ) बलवान् ( **अदाभ्यः** ) दबाया या हराया न जा सकने वाला, ( **देवावीः** ) दिव्यगुणों का रक्षक, ( **अघशंसहा** ) पापप्रशंसक भावों को नष्ट करने वाला ( **सोमः** ) प्रेरक परमेश्वर ( **पुनानः** ) पवित्रता देता हुआ ( **अर्षति** ) सक्रिय है॥६॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर से प्रेरणा प्राप्त करके सभी मनुष्य पवित्र हृदय वाले हों॥६॥

( ७ )

**ऋषिः—राहुगणः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल बताया गया है।

**१२९२. स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति।
विघ्नन् रक्षांसि देवयुः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **पीतये** ) रसास्वादन करने के लिए ( **सुतः** ) उपासना किया गया ( **सः** ) वह ( **वृषा** ) आनन्द की वर्षा करने वाला ( **सोमः** ) रसमय परमेश्वर ( **पवित्रे** ) पवित्र अन्तरात्मा में ( **अर्षति** ) पहुँच रहा है। ( **देवयुः** ) दिव्यगुण प्रदान करना चाहता हुआ वह ( **रक्षांसि** ) पापों को ( **विघ्नन्** ) विशेष रूप से नष्ट कर रहा है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना से अन्तरात्मा में दिव्यगुण आते हैं और दोष नष्ट होते हैं॥१॥

अब कैसा परमेश्वर क्या करता हुआ कहाँ जाता है यह कहते हैं।

**१२९३. स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः।**
**अभि योनिं कनिक्रदत्॥२॥**

**पदार्थ** :–( **सः** ) वह ( **विचक्षणः** ) विशेष द्रष्टा, ( **धर्णसिः** ) दिव्य गुण–कर्म–स्वभावों का धारण करने वाला, ( **हरिः** ) पाप हरने वाला परमेश्वर ( **कनिक्रदत्** ) उपदेश देता हुआ ( **योनिम् अभि** ) अपने निवासगृहभूत जीवात्मा को लक्ष्य करके ( **पवित्रे** ) पवित्र हृदय में ( **अर्षति** ) पहुंचता है॥२॥

**भावार्थ** :–पवित्रात्मा लोग ही परमेश्वर की प्राप्ति के अधिकारी होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमेश्वर किसे शुद्ध करता है।

**१२९४. स वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति।**
**रक्षोहा वारमव्ययम्॥३॥**

**पदार्थ** :–( **सः** ) वह ( **वाजी** ) बलवान्, ( **रक्षोहा** ) पापनाशक ( **पवमानः** ) पवित्रता देने वाला सोम परमेश्वर ( **दिवः** ) द्युलोक के ( **रोचनम्** ) दीप्त पिण्ड सूर्य को, और ( **अव्ययम्** ) अविनश्वर ( **वारम्** ) दोषनिवारक जीवात्मा को ( **विधावति** ) विविध रूप से शुद्ध करता है॥३॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर यदि शुद्धिकर्ता न हो तो सब जगह मलिनता का साम्राज्य छा जाए॥३॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर का उपकार वर्णित है।

**१२९५. स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत्।**
**जामिभिः सूर्यं सह॥४॥**

**पदार्थ** :–( **सः** ) उस ( **पवमानः** ) क्रियाशील और पवित्रकर्ता परमेश्वर ने ( **त्रितस्य** ) तृतीय लोक द्यौ के ( **सानवि अधि** ) शिखर पर ( **जामिभिः सह** ) बन्धुभूत नक्षत्रों के साथ ( **सूर्यम्** )

सूर्य को (अरोचयत्) चमकाया है॥४॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर द्युलोक में सूर्य और तारावलि को चमकाता है और विना ही आधार के धारण करता है यह उसका उपकार कौन नहीं मानेगा?॥४॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा का विषय है।

**१२९६. स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविददाभ्यः।**
**सोमो वाजमिवासरत्॥५॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह (**वृत्रहा**) विघ्ननाशक, (**वृषा**) सुखवर्षी, (**वारिवोवित्**) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला, (**अदाभ्यः**) अपराजेय, (**सुतः**) उपासना किया गया (**सोमः**) रस का खजाना परमेश्वर (**असरत्**) उपासकों को प्राप्त होता है, (**वाजम् इव**) जैसे कोई वीर युद्ध क्षेत्र को प्राप्त होता है॥५॥

यहाँ उपमालंकार है॥५॥

**भावार्थ** :—जैसे कोई वीर सेनापति युद्धभूमि में पहुँच कर अपने पक्ष के योद्धाओं को विजय दिलाता है, वैसे ही परमेश्वर उपासकों के पास पहुँचकर उन्हें विजयोपहार देता है॥५॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा का विषय है।

**१२९७. स देवः कविनेषितो३ऽभि द्रोणानि धावति।**
**इन्दुरिन्द्राय मंहयन्॥६॥**

**पदार्थ** :—(**कविना**) मेधावी गुरु से (**इषितः**) प्रेरित (**सः**) वह (**देवः**) स्तुतिकर्ता (**इन्दुः**) तेजस्वी जीवात्मा (**इन्द्राय**) परमात्मा को (**मंहयन्**) आत्मसमर्पण करता हुआ (**द्रोणानि अभि**) लक्ष्यों की ओर (**विधावति**) वेग से दौड़ता है॥६॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण करने से जीवात्मा में कोई विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे वह सब विघ्नों को दूर फेंकता हुआ लक्ष्य तक जा पहुँचता है॥६॥

(८)

**ऋषिः—पवित्रो वसिष्ठो वोभौ वा। देवता—पावमान्यध्येतृस्तुतिः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः।**

प्रथम मन्त्र में वेद के अध्ययन का फल वर्णित है।

१२९८. यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥१॥

**पदार्थ** :—( **यः** ) जो मनुष्य ( **ऋषिभिः संभृतं रसम्** ) वेद के रहस्य को जानने वाले ऋषियों ने जिनके रस का आस्वादन किया है ऐसी ( **पावमानीः** ) पवमान देवता वाली ऋचाओं का ( **अध्येति** ) अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन करता है ( **सः** ) वह ( **मातरिश्वना** ) वायु से ( **स्वदितम्** ) स्वादु बनाये गये ( **सर्वम्** ) सब ( **पूतम्** ) पवित्र भोज्य पदार्थ को ( **अश्नाति** ) खाता है॥१॥

यहाँ पावमानी ऋचाओं का अध्ययन सब पवित्र भोज्य पदार्थों के आस्वादन के समान तृप्तिकारी होता है इस प्रकार उपमा में पर्यवसान होने के कारण निदर्शना अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—वैदिक ऋचाओं के अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन से और उसके अनुकूल आचरण से अध्ययन करने वालों का महान् कल्याण होता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वेदाध्ययन का फल कहा गया है।

१२९९. पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥२॥

**पदार्थ** :—( **यः** ) जो मनुष्य ( **ऋषिभिः संभृतं रसम्** ) वेद के रहस्य जानने वाले ऋषियों ने जिनके रस का आस्वादन किया है ऐसी ( **पावमानीः** ) पवमान देवता वाली ऋचाओं को ( **अध्येति** ) अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन करता है ( **तस्मै** ) उस मनुष्य के लिए ( **सरस्वती** ) वेदमाता ( **क्षीरम्** ) दूध, ( **सर्पिः** ) घी, ( **मधु** ) शहद और ( **उदकम्** ) स्वच्छ जल ( **दुहे** ) स्वयं दुह देती है।

वेद में अन्यत्र भी कहा गया है—मैंने वरदात्री वेदमाता की स्तुति की है, आप लोग भी उसका अध्ययन-स्तवन करो, क्योंकि वह द्विजों को पवित्र करने वाली है। वह मुझ वेदाध्येता को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्चस् देकर मेरे आत्मलोक ब्रह्मलोक में निवास करने लगी है। (अथ० १९.७१.१)॥२॥

**भावार्थ** :—वेद का अध्ययन करके और उसके अनुकूल आचरण करके जो पुरुषार्थी होता है वह सब सम्पदाओं को प्राप्त कर सकता है॥२॥

आगे फिर वेद के अध्ययन का ही फल वर्णित है।

**१३००. पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः।**
**ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**पावमानीः**) पवमान देवतावाली ऋचाएं (**हि**) निश्चय ही (**स्वस्त्ययनीः**) कल्याण प्राप्त कराने वाली, (**सुदुघाः**) मधुर दूध देने वाली, और (**घृतश्चुतः**) घी चुआने वाली होती हैं। इनके अध्ययन से (**ऋषिभिः**) वेदरहस्यवेत्ता ऋषिजन (**रसः**) आनन्द-रस का (**संभृतः**) आस्वादन करते हैं, और (**ब्राह्मणेषु**) वेदपाठी ब्राह्मणों को (**अमृतम्**) दुःखमोक्षरूप अमृतत्व (**हितम्**) प्राप्त होता है॥३॥

यहाँ '**सुदुघाः**' और '**घृतश्चुतः**' इन शब्दों के अर्थ से पावमानी ऋचाएं दुधारू गायें हैं यह व्यङ्ग्यार्थ निकलता है॥३॥

**भावार्थ** :—वेदों के अध्ययन से कर्मयोगी होकर लोग सब लौकिक और आध्यात्मिक सम्पदा प्राप्त कर लेते हैं॥३॥

अगले मन्त्र में वेदाध्ययन से हमें क्या प्राप्त हो यह आकांक्षा व्यक्त की गयी है।

**१३०१. पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम्।**
**कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः॥४॥**

**पदार्थ** :—(**पावमानीः**) पवमान देवता वाली ऋचाएं (**नः**) हमारे (**इमं लोकम्**) इहलोक को (**अथ उ**) और (**अमुम्**) परलोक को (**दधन्तु**) सहारा लगायें। (**देवैः**) वेदवेत्ता विद्वानों द्वारा (**समाहृताः**) पढ़ायी गयी वे (**देवीः**) अर्थप्रकाशक ऋचाएं (**नः**) हमारे (**कामान्**) मनोरथों को (**समर्द्धयन्तु**) पूर्ण करें॥४॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि वे वेदों के अध्ययन से स्फूर्ति और सत्प्रेरणा प्राप्त कर इस लोक को, परलोक को और सब मनोरथों को समृद्ध करें॥४॥

अगले मन्त्र में फिर वेदाध्ययन हमें क्या प्राप्त कराये यह कहा गया है।

**१३०२. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।**
**तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः॥५॥**

**पदार्थ** :–( **देवाः** ) दिव्यगुणों से युक्त विद्वान् लोग ( **येन पवित्रेण** ) जिस पवित्र ब्रह्मानन्द से ( **आत्मानम्** ) अपने आत्मा को ( **सदा** ) हमेशा ( **पुनते** ) पवित्र करते हैं, ( **तेन सहस्रधारेण** ) उस हजार धाराओं से बहने वाले दिव्य आनन्द से ( **पावमानीः** ) पवमान देवता वाली ऋचाएं ( **नः** ) हमें ( **पुनन्तु** ) पवित्र करें॥५॥

**भावार्थ** :–पावमानी ऋचाओं के गान से और उनमें वर्णित रसमय परमात्मा में ध्यान लगाने से कोई अद्वितीय दिव्य आनन्दरस का प्रवाह बहता हुआ उपासकों के चित्तों को पवित्र कर जाता है॥५॥

आगे वेदाध्ययन का फल वर्णित करते हैं।

**१३०३. पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।**
**पुण्यांश्च भक्षान्भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति॥६॥**

**पदार्थ** :–( **पावमानीः** ) पवमान देवता वाली ऋचाएं ( **स्वस्त्ययनीः** ) कल्याण करने वाली हैं। ( **ताभिः** ) उन ऋचाओं से वेदों का अध्ययन करने वाला ( **नान्दनम्** ) आनन्द के धाम मोक्ष को ( **गच्छति** ) पा लेता है, ( **पुण्यान् च** ) और पुण्यों से प्राप्त ( **भक्षान्** ) भोगों को ( **भक्षयति** ) भोगता है, ( **अमृतत्वं च** ) और अमृतस्वरूप को ( **गच्छति** ) प्राप्त कर लेता है।

मोक्षधाम का वर्णन वेद में इस प्रकार से किया गया है–"जहाँ आनन्द हैं, मोद हैं, तृप्तियां हैं, प्रमोद हैं, जहाँ मनोरथ करने वाले के मनोरथ पूर्ण होते हैं, उस मोक्षधाम में ले जाकर मुझे अमर कर दो। हे इन्दु! हे रसागार सोम परमात्मन्! मुझ आत्मा के लिए तुम आनन्द को चुआओ" (ऋ० ९।११३।११)॥६॥

**भावार्थ** :–पावमानी ऋचाओं के अर्थज्ञानपूर्वक गान से और तदनुकूल आचरण करने से अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति होती है॥६॥

( ९ )

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की प्राप्ति का विषय वर्णित है।

**१३०४. अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः**
**स्वे दुरोणे। चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं**
**विश्वतः प्रत्यञ्चम्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **यः** ) जो अग्रनेता परमेश्वर ( **स्वे** ) अपने ( **दुरोणे** ) ब्रह्माण्डरूप और जीवात्मारूप घर में ( **समिद्धः** ) प्रदीप्त हुआ ( **दीदाय** ) भासित होता है, उस ( **यविष्ठम्** ) सर्वाधिक युवा, ( **चित्रभानुम्** ) अद्भुत प्रकाश वाले, ( **उर्वी रोदसी** ) विस्तीर्ण द्यावापृथिवी के ( **अन्तः** ) अन्दर ( **स्वाहुतम्** ) जिसने अपनी आहुति दी हुई है ऐसे, ( **विश्वतः प्रत्यञ्चम्** ) सब जगह व्याप्त परमेश्वर को ( **महा नमसा** ) महान् नमस्कार के साथ, हम ( **अगन्म** ) प्राप्त होते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जो सूक्ष्मदर्शी लोग हैं वे आकाश-पृथिवी में सर्वत्र परमात्मा की ही विभूति को देखते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमेश्वर हमें किस तरह उपकृत करे।

**१३०५. स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम**
**आ जातवेदाः। स नो रक्षिषद् दुरिताद-**
**वद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **मह्ना** ) महिमा से ( **विश्वा** ) सब ( **दुरितानि** ) पाप, दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदियों को ( **साह्वान्** ) नष्ट कर देने वाला, ( **जातवेदाः** ) सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी ( **अग्निः** ) अग्रनायक परमेश्वर ( **दमे** ) अन्तरात्मा-रूप घर में ( **आ स्तवे** ) प्रतिष्ठा पाता है। ( **सः** ) वह परमेश्वर ( **नः** ) हमें ( **अवद्यात्** ) निन्दनीय ( **दुरितात्** ) पाप से ( **रक्षिषत्** ) बचाये। ( **गृणतः** ) अर्चना करने

वाले (अस्मान्) हम स्तोताओं को (उत्) और (नः) हमारे (मघोनः) धनिक पुत्र, पौत्र, पत्नी आदि की (रक्षिषत्) रक्षा करे॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा का ध्यान कर, उससे शुभ प्रेरणा पाकर हम और हमारे सम्बन्धी जन सब दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदि को दूर कर देवें॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है।

**१३०६. त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति**
**मतिभिर्वसिष्ठाः। त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं**
**पात स्वस्तिभिः सदा नः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**वरुणः**) पापों के निवारक (**उत**) और (**मित्रः**) विपत्ति से बचाने वाले मित्र हो। (**वसिष्ठाः**) अतिशय विद्या के ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् उपासक लोग (**मतिभिः**) स्तुतियों से (**त्वाम्**) आपको (**वर्धन्ति**) बढ़ाते हैं, अर्थात् जन-जन में प्रसारित करते हैं। (**त्वे**) आपमें विद्यमान (**वसु**) ऐश्वर्य (**सुषणनानि**) सुप्राप्य (**सन्तु**) होवें। (**यूयम्**) आप (**स्वस्तिभिः**) योग-क्षेमों द्वारा (**सदा**) हमेशा (**नः**) हमारी (**पात**) रक्षा करते रहो॥३॥

**भावार्थ** :—जो कुछ भी ऐश्वर्य हमारे हाथ में है वह सब परमात्मा द्वारा प्रदत्त ही है॥३॥

## (१०)

**ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय वर्णित है।

**१३०७. महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँइव।**
**स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥१॥**

**पदार्थ** :—(**यः इन्द्रः**) जो परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर (**वृष्टिमान्**

पर्जन्यः इव ) वृष्टिजल से परिपूर्ण मेघ के समान ( **ओजसा** ) बल से ( **महान्** ) महान् है, वह ( **वत्सस्य** ) अपने पुत्र मानव की ( **स्तोमैः** ) प्रशस्तियों से ( **वावृधे** ) बढ़ता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे पुत्र की प्रशस्तियों से पिता प्रशस्त होता है, वैसे ही पहले से ही बादल के समान महान् भी परमेश्वर मानव की प्रशस्तियों से और अधिक महान् हो जाता है॥१॥

आगे पुनः उसी विषय को कहते हैं।

**१३०८. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।**
**जामि ब्रुवत आयुधा॥२॥**

**पदार्थ** :—( **यत्** ) जब ( **कण्वाः** ) मेधावी स्तोता लोग ( **इन्द्रम्** ) विघ्ननाशक, परमैश्वर्यवान् परमात्मा को ( **स्तोमैः** ) स्तोत्रों से ( **यज्ञस्य** ) अपने १०० वर्ष चलने वाले जीवन-यज्ञ का ( **साधनम्** ) साधक ( **अक्रत** ) बना लेते हैं, तब वे ( **आयुधा** ) रक्षा के साधनभूत शस्त्रास्त्रों को ( **जामि** ) अनावश्यक ( **ब्रुवते** ) कहने लगते हैं अर्थात् जीवन-यज्ञ को तो परमात्मा ने ही सिद्ध कर दिया, इन संगृहीत किये हुए शस्त्रास्त्रों से क्या लाभ? इस प्रकार हथियारों को व्यर्थ बताने लगते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के प्रति आत्म-समर्पण करके उसका रक्षण सबको प्राप्त करना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में सत्य का विषय है।

**१३०९. प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः।**
**विप्रा ऋतस्य वाहसा॥३॥**

**पदार्थ** :—( **यत्** ) जब ( **वह्नयः** ) ब्रह्मयज्ञ को वहन करने वाले उपासक लोग ( **पिप्रतः** ) पालनकर्ता, ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **प्रजाम्** ) उत्पादक परमेश्वर को ( **प्रभरन्त** ) अन्तरात्मा में धारण कर लेते हैं, तब वे ( **विप्राः** ) विद्वान् जन ( **ऋतस्य** ) सत्य के ( **वाहसा** ) प्रचारक हो जाते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—सत्यज्ञान और सत्यकर्म के आदर्श रूप परमात्मा का अनुभव करके और अपने जीवन में सत्य को लाकर ही सत्य का प्रचार आसानी से हो सकता है॥३॥

( ११ )

**ऋषि:—शतं वैखानसा:॥ देवता—पवमान: सोम:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की धाराओं का वर्णन है।

**१३१०. पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत।**
**जीरा अजिरशोचिष:॥१॥**

**पदार्थ** :—( **पवमानस्य** ) अन्तरात्मा को पवित्र करने वाले, ( **जिघ्नत:** ) दोषों को विनष्ट करने वाले, ( **हरे:** ) चित्ताकर्षक परमात्मा की ( **चन्द्रा:** ) आनन्ददायिनी ( **अजिरशोचिष:** ) अक्षय प्रकाश वाली ( **जीरा:** ) शीघ्रगामिनी आनन्द-धाराएं ( **असृक्षत** ) छूट रही हैं॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की आनन्द-धाराओं में डुबकी लगाकर स्तोता जन निर्मल अन्त:करण वाले होकर कृतकृत्य हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणों का वर्णन है।

**१३११. पवमानो रथीतम: शुभ्रेभि: शुभ्रशस्तम:।**
**हरिश्चन्द्रो मरुद्गण:॥२॥**

**पदार्थ** :—( **पवमान:** ) पवित्रकर्ता जगत्स्रष्टा परमेश्वर ( **रथीतम:** ) रथियों में श्रेष्ठ, ( **शुभ्रेभि:** ) शुभ्र गुण-कर्मों से ( **शुभ्रशस्तम:** ) अतिशय निर्मल यश वाला, ( **हरिश्चन्द्र:** ) मनोहर आह्लाद देने वाला, और ( **मरुद्गण:** ) प्राण-रूप या पवन-रूप गणों वाला है॥२॥

**भावार्थ** :—सूर्य, चांद, पवन, बिजली आदि और मानवशरीर जिसके बनाये हुए रथ हैं, ऐसे अत्यन्त यशस्वी, परमानन्ददायक, प्राण आदि को चलाने वाले परमेश्वर का ज्ञान सबको पाना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१३१२. पवमान व्यश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः।**
**दधत्स्तोत्रे सुवीर्यम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) पवित्रकर्ता सोम परमात्मन्! (**वाजसातमः**) अत्यधिक बल को देने वाले आप (**स्तोत्रे**) मुझ उपासक को (**सुवीर्यम्**) सुवीर्य से युक्त गुण-समूह (**दधत्**) प्रदान करते हुए (**रश्मिभिः**) तेज की किरणों के साथ (**व्यश्नुहि**) प्राप्त होओ।।३।।

**भावार्थ** :—जगदीश्वर का स्तोता उससे तेज, बल, वीर्य, सत्य, अहिंसा, न्याय, दया, उदारता आदि प्राप्त करके अतिशय कीर्तिशाली हो जाता है।।३।।

(१२)

**ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—१,२ बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती); ३ द्विपदा-विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—१ मध्यमः, २, ३ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५१२ क्रमांक पर सोमरस के पक्ष में और भक्तिरस के विषय में की जा चुकी है। यहाँ ब्रह्मानन्द-रस का विषय वर्णित करते हैं।

**१३१३. परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः।**
**दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वा३ऽन्तरा सुषाव**
**सोममद्रिभिः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! तुम (**इतः**) इस रसमय परमात्मा-रूप सोम में से (**सुतम्**) निकले हुए आनन्द-रस को (**परि सिञ्चत**) चारों ओर बरसाओ, (**यः सोमः**) जो रस का भण्डार परमात्मा (**उत्तमं हविः**) सबसे अधिक उत्कृष्ट ग्राह्य वस्तु है, (**नर्यः**) मनुष्यों का हित करने वाला (**यः**) जो सोम परमात्मा (**दधन्वान्**) उपासकों को सहारा देने वाला होता है, और जिस (**सोमम्**) रसनिधि परमात्मा को, उपासक (**अद्रिभिः**) ध्यानरूप सिलबट्टों से (**अप्सु अन्तः**) प्राणों के अन्दर (**आ सुषाव**) अभिषुत

करता है॥१॥

**भावार्थ** :—उपासकों को चाहिए कि परब्रह्म के पास से परमानन्द प्राप्त करके उसे दूसरों के लिए भी बरसायें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा को सम्बोधन किया गया है।

**१३१४. नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः। सुते चित्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे रसनिधि परमात्मन्! (**नूनम्**) निश्चय ही (**अविभिः**) अपनी रक्षाओं से (**पुनानः**) हमें पवित्र करते हुए, (**अदब्धः**) किसी से न हराये जा सकने वाले, (**सुरभिन्तरः**) अतिशय सौरभमय आप (**परि स्रव**) आनन्द-रस को प्रवाहित करो। (**अन्धसा**) आनन्द-रस के साथ (**अप्सु**) हमारे **कर्मों में** (**सुते चित्**) **आपके परिस्रुत होने पर** (**उत्तरम्**) **अत्यन्त उत्कृष्ट** (**त्वा**) आपको (**गोभिः**) **आत्मा, मन, एवं बुद्धि से** (**श्रीणन्तः**) पकाते हुए अर्थात् ध्याते हुए, हम (**मदामः**) मुदित होते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा में ध्यान से रक्षा, पवित्रता, सद्गुणों की सुगन्ध और परमानन्द प्राप्त होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के ध्यान का विषय है।

**१३१५. परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**देवमादनः**) विद्वानों को आनन्दित करने वाला, (**क्रतुः**) कर्ममय अर्थात् जगद्धारण के कर्मों का कर्ता, (**विचक्षणः**) विशेष रूप से सबका द्रष्टा, (**इन्दुः**) तेजस्वी और रस से भिगोने वाला परमेश्वर (**चक्षसे**) दर्शनार्थ, अर्थात् साक्षात्कार के लिए (**परि स्वानः**) हमसे ध्यान किया जाता है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा का साक्षात्कार करके हम भी उसके समान दूसरों को आनन्दित करने वाले, कर्मयोगी, विवेकदृष्टि से

सम्पन्न, तेजस्वी और परोपकारी बनें॥३॥

( १३ )

**ऋषिः—वसुर्भारद्वाजः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती। स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ सोम ओषधि का विषय और जीवात्मा का विषय वर्णित किया जा रहा है।

**१३१९. असावि सोमो अरुषो वृषा हरी राजेव दस्मो**
**अभि गा अचिक्रदत्। पुनानो वारमत्येष्यव्ययं**
**श्येनो न योनिं घृतवन्तमासदत्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) सोमौषधि के पक्ष में। ( **अरुषः** ) चमकीले, ( **वृषा** ) रसवर्षक, ( **हरिः** ) हरे रंग के ( **सोमः** ) ओषधिराज सोम में से ( **असावि** ) मैंने रस निकाला है। ( **दस्मः** ) दर्शनीय यह, मानो ( **गाः अभि** ) गाय के दूध में मिलने के लिए ( **अचिक्रदत्** ) बोल रहा है, ( **राजा इव** ) जैसे कोई राजा ( **दस्मः** ) शत्रुओं का विनाशक होता हुआ ( **गाः अभि** ) शत्रुओं की भूमियों पर आक्रमण करके ( **अचिक्रदत्** ) जयघोष करता है। हे ओषधिराज सोम! ( **पुनानः** ) शुद्ध किये जाते हुए तुम ( **अव्ययं वारम् अत्येषि** ) भेड़ के बालों से बनी हुई दशापवित्र नामक छन्नी में से छनकर पार होते हो। देखो, यह ओषधिराज सोम ( **घृतवन्तम्** ) घृतयुक्त ( **योनिम्** ) यज्ञगृह में ( **आसदत्** ) आया है, ( **श्येनः न** ) जैसे वायु ( **घृतवन्तम्** ) जल-कणों से युक्त ( **योनिम्** ) अन्तरिक्ष में ( **आसदत्** ) आता है।

( **द्वितीय** ) जीवात्मा के पक्ष में। ( **सोम** ) प्रेरक जीवात्मा ( **असावि** ) ऐश्वर्यवान् किया गया है। ( **अरुषः** ) ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान, ( **वृषा** ) ज्ञानवर्षक, ( **हरिः** ) देहरूप रथ को चलाने वाला, ( **दस्मः** ) शत्रुओं का विनाशक यह आत्मा ( **गाः अभि** ) इन्द्रियों को लक्ष्य करके ( **अचिक्रदत्** ) कर्तव्य-अकर्तव्य का उपदेश करे, ( **राजा इव** ) जैसे कोई राजा ( **गाः अभि** ) प्रजाओं को लक्ष्य करके ( **अचिक्रदत्** ) राजनियमों

की घोषणा करता है। हे जीवात्मन्! तू (**पुनानः**) स्वयं को पवित्र करता हुआ (**वारम् अति**) रुकावट डालने वाले विघ्नों को पार करके (**अव्ययम्**) अविनश्वर परमात्मा को (**एषि**) प्राप्त कर। (**श्येनः न योनिम्**) बाज पक्षी जैसे उड़ान भरने के लिए अन्तरिक्ष को प्राप्त करता है, वैसे ही यह आत्मा (**घृतवन्तम्**) तेजस्वी (**योनिम्**) जगत् के कारण परमात्मा को (**आसदत्**) प्राप्त करे॥१॥

यहाँ श्लेष और श्लिष्टोपमा अलंकार हैं। प्रथम व्याख्या में 'अभि गा अचिक्रदत्' में व्यङ्ग्योत्प्रेक्षा है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे पक्षी उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंच जाते हैं वैसे ही मनुष्य उन्नति करके परमात्मा को प्राप्त करे॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः सोम नाम से सोम ओषधि और जीवात्मा का वर्णन है।

**१३१७. पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या**
**गिरिषु क्षयं दधे। स्वसार आपो अभि गा**
**उदासरन्त्सं ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) सोम ओषधि के पक्ष में। (**महिषस्य**) महान्, (**पर्णिनः**) पत्तों या डंठलों वाले इस ओषधिराज सोम का (**पर्जन्यः**) बादल (**पिता**) पिता है। यह सोम (**पृथिव्याः नाभा**) भूमि के केन्द्रस्थलों में और (**गिरिषु**) पर्वतों पर (**क्षयम्**) निवास को (**दधे**) धारण करता है। बादल से (**स्वसारः आपः**) बहनों के समान साथ-साथ चलने वाली जल-धाराएं (**गाः अभि**) भूमि-प्रदेशों की ओर (**उद् आ सरन्**) ऊपर से आती हैं। इस प्रकार (**अध्वरे**) वर्षारूप यज्ञ के (**वीते**) प्रवृत्त होने पर वे जल (**गाः**) भूमियों को (**ग्रावभिः**) प्राणों से (**सं वसत**) आच्छादित कर देते हैं।

अथर्ववेद में भी कहा गया कि वर्षा के साथ भूमि पर प्राण बरसता है-प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् (अथ० ११।४।५)॥२॥

(द्वितीय) जीवात्मा के पक्ष में। (**महिषस्य**) महत्त्वशाली, (**पर्णिनः**) ज्ञान-कर्म रूप पंखों वाले इस सोम नामक जीवात्मा का (**पिता**) देह में जन्मदाता और पालनकर्ता (**पर्जन्यः**) मेघवत् सुखवर्षक परमात्मा है। यह आत्मा (**पृथिव्याः**) पार्थिव शरीर के (**नाभा**) केन्द्रभूत हृदय में, और (**गिरिषु**) पर्वत के समान उन्नत मस्तिष्क-प्रकोष्ठों में (**क्षयं**) निवास को (**दधे**) धारण करता है। (**स्वसारः**) शरीर में रखी हुई (**आपः**) ज्ञानवाहक तन्तु-नाड़ियाँ (**गाः अभि**) ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की ओर (**उदासरन्**) ऊपर से आती हैं, और (**अध्वरे**) ज्ञान-यज्ञ तथा कर्म-यज्ञ के (**वीते**) प्रवृत्त होने पर (**ग्रावभिः**) ग्राह्य विषयों के साथ (**संवसते**) मिलती हैं, जिससे मन सहित ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान का ग्रहण और मनसहित कर्मेन्द्रियों से कर्म संपन्न होता है॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ :—वर्षा से जो भूमि पर सोम आदि ओषधियां उत्पन्न होती हैं और प्राण बरसता है तथा शरीर में जो जीवात्मा मन सहित ज्ञानेन्द्रियों वा कर्मेन्द्रियों से ज्ञान ग्रहण करता वा कर्म करता है वह सब जगदीश्वर के ही कर्तृत्व को प्रकट करता है।**

अगले मन्त्र में जीवात्मा को उद्बोधन दिया गया है।

**१३१८. कविर्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभि**
**वाजमर्षसि। अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता**
**वसानः परि यासि निर्णिजम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे शान्तिप्रिय जीवात्मन्! (**कविः**) मेधावी तू (**वेधस्या**) महान् कार्य को करने की इच्छा से (**माहिनम्**) महान् परमात्मा की (**पर्येषि**) उपासना कर। (**मृष्टः**) ब्रुश से रगड़कर साफ किये गये (**अत्यः न**) घोड़े के समान (**मृष्टः**) यम, नियम आदि से शोधित तू, विजयप्राप्ति के लिए (**वाजम् अभि**) देवासुरसंग्राम में (**अर्षसि**) जा। हे (**सोम**) जीवात्मन्! (**दुरिता**) दुर्गुण, दुर्व्यसन आदियों को (**अपसेधन्**) दूर करता हुआ तू (**नः**) हमें (**मृड**) सुखी कर, और (**घृता**) तेजों को (**वसानः**) धारण करता हुआ तू (**निर्णिजम्**) शुद्ध रूप को

(**परियासि**) प्राप्त कर सोम ओषधि के पक्ष में भी अर्थयोजना करनी चाहिए। सोम ओषधि का रस (**माहिनम्**) महान् द्रोणकलश में जाता है, शुद्ध किया जाकर (**वाजम्**) यज्ञ में ले जाया जाता है, पान करने पर (**दुरितानि**) दुर्विचारों को दूर करके सद्विचारों को उत्तेजित करता है और (**घृता**) जलों के साथ मिलता है॥३॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा की उपासना, देवासुरसंग्राम में विजय, दुरितों के ध्वंस, पुण्यकर्मों की समृद्धि और तेज को धारण करके योग-क्षेम को सिद्ध करें॥३॥

(१४)

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः— १ मध्यमः, २ पञ्चमः॥

**प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २६७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की गयी थी। यहाँ भी वही विषय वर्णित है।**

**१३१९. श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**श्रायन्तः इव**) भोजन आदि को पकाते हुए मनुष्य जैसे (**सूर्यम्**) सूर्य का उपयोग करते हैं, अर्थात् सौर चूल्हा बनाकर उस पर भोजन पकाते हैं, वैसे ही तुम (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यशाली परमात्मा के, अर्थात् परमात्मा से उत्पन्न किये हुए (**विश्वा इत् वसूनि**) जल, अग्नि, बिजली, वायु, ओषधी आदि सभी धनों को (**भक्षत**) यथायोग्य सेवन करो। (**जातः**) वह प्रसिद्ध परमात्मा (**ओजसा**) अपने प्रताप से (**जनिमानि**) सभी उत्पन्न वस्तुओं को धारण करता है। हम उसका (**प्रति दीधिमः**) ध्यान करते हैं, (**भागं न**) जैसे कोई अपने प्राप्तव्य दायभाग का ध्यान करता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य हमारे लिए प्राणों का स्रोत है वैसे ही परमेश्वर से रचे हुए सभी पदार्थ अत्यधिक हितकर हैं। उनका

यथायोग्य उपयोग सबको करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में मनुष्य को परमात्मोपासना की प्रेरणा दी गयी है।

**१३२०. अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः। यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे मानव! तू (**अलर्षिरातिम्**) शोभास्पद दान वाले, (**वसुदाम्**) धन के दाता इन्द्रनामक परमैश्वर्यवान् परमात्मा की (**उप स्तुहि**) समीपता से स्तुति कर। (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यशाली परमात्मा की (**रातयः**) दान-परम्पराएं (**भद्राः**) कल्याण करने वाली होती हैं। (**मनः**) अपने मन को (**दानाय**) देने के लिए (**चोदयन्**) प्रेरित करता हुआ (**सः**) वह इन्द्र परमात्मा (**विधतः**) पूजा करने वाले (**अस्य**) इस उपासक के (**कामम्**) मनोरथ को (**न रोषति**) असफल नहीं करता अर्थात् उसका अभीष्ट उसे देता ही है॥२॥

**भावार्थ** :—जो जिसके हित के लिए होता है वह उसे जगदीश्वर देता है॥२॥

(१५)

**ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक २७४ क्रमांक पर परमात्मा और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ जगदीश्वर और आचार्य से प्रार्थना है।

**१३२१. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा विद्या के

ऐश्वर्य से युक्त आचार्यवर! हम ( यतः ) जिस अज्ञान, पाप, दुर्व्यसन, चोर, बाघ आदि से ( भयामहे ) डरते हैं ( ततः ) उससे ( नः ) हमें ( अभयम् ) निर्भयता ( कृधि ) प्रदान करो। हे ( मघवन् ) निर्भयतारूप धन के धनी! ( शग्धि ) हमें शक्ति दो। ( तव ) आपका ( तत् ) वह अभयदान ( नः ) हमारी ( ऊतये ) रक्षा के लिए होवे। आप ( द्विषः ) द्वेषवृत्तियों को ( वि ) विनष्ट कर दो, ( मृधः ) हिंसावृत्तियों को वा काम, क्रोध आदियों को ( वि जहि ) विनष्ट कर दो॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर अपने उपासकों को निर्भय करता है, वैसे ही आचार्य को भी चाहिए कि वह विद्या पढ़ाने के साथ-साथ निर्भयता आदि गुण भी विद्यार्थियों के अन्दर उत्पन्न करे॥१॥

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर और आचार्य को सम्बोधन है।

**१३२२. त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता। तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( राधसः पते ) सकल ऋद्धि-सिद्धियों के अधीश्वर जगदीश वा आचार्यवर! ( त्वं हि ) आप ( महतः ) महान् ( क्षयस्य ) निवासक, ( राधसः ) विद्या, तप, तेजस्विता आदि रूप धन के ( विधर्ता ) विशेष रूप से धारण करने वाले ( असि ) हो। हे ( मघवन् ) विद्या आदि के दानी, ( गिर्वणः ) वाचस्पति ( इन्द्र ) अविद्या आदि के विदारक जगदीश्वर वा आचार्य ( सुतावन्तः ) श्रद्धारस का उपहार लिये हुए ( वयम् ) हम उपासक वा विद्यार्थी ( त्वा ) आपको ( हवामहे ) पुकार रहे हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर सब गुणों का अधिपति है, वैसे ही आचार्य वही हो सकता है जो विद्वान्, वाणी पर अधिकार रखने वाला, तपस्वी, जितेन्द्रिय और शिक्षणकला में कुशल हो॥२॥

(१६)

ऋषिः—भरद्वाजः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर के गुणों का वर्णन करके उससे प्रार्थना की गयी है।

**१३२३. त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे।**
**पवस्व मंहयद्रयिः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) जगत् के रचयिता रसनिधि परमात्मन्! (**त्वम्**) आप (**धारयुः**) आनन्द-धाराओं को देने के इच्छुक, (**मन्द्रः**) तृप्त करने वाले, और (**ओजिष्ठः**) सबसे अधिक ओजस्वी (**असि**) हो। (**मंहयद्रयिः**) जिनका धन वृद्धि प्रदान करने वाला वा कीर्ति देने वाला है ऐसे आप (**अध्वरे**) जीवन-यज्ञ में (**पवस्व**) हमें पवित्र करते हो॥१॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्य परमात्मा की आराधना करके पुण्य, धन, आनन्द और सन्तुष्टि को अपने जीवन में प्राप्त करें॥१॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि आराधना किया गया परमेश्वर क्या करता है।

**१३२४. त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः।**
**इन्दुः सत्राजिदस्तृतः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मन्! (**इन्दुः**) तेजस्वी (**त्वम्**) आप (**सुतः**) आराधना किये हुए (**मदिन्तमः**) अतिशय प्रसन्न, (**दधन्वान्**) धारणकर्ता, (**मत्सरिन्तमः**) अत्यन्त आनन्द देने वाले, (**सत्राजित्**) एक साथ उपासक के सब काम, क्रोध आदि रिपुओं को जीत लेने वाले और (**अस्तृतः**) स्वयं सदा अहिंसित होते हो॥२॥

**भावार्थ** :—सच्चे हृदय से की गयी परमेश्वर की उपासना बहुत से फलों को देने वाली होती है॥२॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

१३२५. त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत्।
द्युमन्तं शुष्ममा भर॥३॥

**पदार्थ** :—हे पवित्र करने वाले, रस के भण्डार परमेश्वर! (**अद्रिभिः**) प्रणव-जप रूप सिलबट्टों से (**सुष्वाणः**) अभिषुत किये जाते हुए (**त्वम्**) आप (**कनिक्रदत्**) पुनः पुनः उपदेश करते हुए (**अभ्यर्ष**) हमें प्राप्त होओ, और (**द्युमन्तम्**) तेज से युक्त (**शुष्मम्**) आत्म-बल (**आ भर**) प्रदान करो।।३।।

**भावार्थ** :—उपासक यदि परमात्मा के पास से कर्तव्य-अकर्तव्य का उपदेश, तेजस्विता और आत्मबल नहीं प्राप्त कर पाता तो उसकी उपासना में कोई त्रुटि है ऐसा समझना चाहिए।।३।।

(१७)

**ऋषिः—मनुराप्सवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५७१ क्रमांक पर ब्रह्मानन्द-रस के विषय में की गयी थी। यहाँ भी उसी विषय का वर्णन करते हैं।

१३२६. पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।
आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः॥१॥

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) रस के भिगोने वाले परमेश्वर! (**देववीतये**) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (**धाराभिः**) आनन्द की धाराओं के साथ (**ओजसा**) वेगपूर्वक (**पवस्व**) हमारे अन्तःकरण में बहो। हे (**सोम**) रस के भण्डार! (**मधुमान्**) मधुर आप (**नः**) हमारे (**कलशम्**) जीवात्मारूप कलश में (**आ सदः**) आकर स्थित होवो।।१।।

**भावार्थ** :—परमात्मा के ध्यान में मग्न योगी लोग परमात्मा के पास से अपनी मनोभूमि में झरते हुए आनन्द-रस के झरने का साक्षात् अनुभव करते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा के आनन्दरसों का वर्णन है।

**१३२७. तव द्रप्सा उदप्रुत इन्द्रं मदाय वावृधुः।**
**त्वां देवासो अमृताय कं पपुः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे रसागार परमेश्वर! (**तव**) आपके (**द्रप्साः**) वेग से बहने वाले आनन्द-रस (**उदप्रुतः**) अन्तःकरण में तरंगें उठाने वाले होते हैं। वे (**इन्द्रम्**) जीवात्मा को (**मदाय**) तृप्तिलाभ के लिए (**वावृधुः**) बढ़ाते हैं। (**देवासः**) विद्वान् लोग (**कम्**) सुन्दर, सर्वोपरि विराजमान सुखस्वरूप (**त्वाम्**) आपको (**अमृताय**) अमर पद की प्राप्ति के लिए (**पपुः**) पान करते हैं।।।२।।

**भावार्थ** :—परमेश्वररूप हिमालय से निकली हुई आनन्द-रस की नदी में ही स्नान करके योगी लोग मोक्ष-पद के अधिकारी होते हैं, भौतिक गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों में स्नान करके नहीं ।।२।।

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१३२८. आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम्।**
**वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सुतासः**) अभिषुत किये हुए (**इन्दवः**) ब्रह्मानन्द-रसो! (**पुनानाः**) पवित्र करते हुए तुम (**नः**) हमें (**रयिम्**) सद्गुणों का ऐश्वर्य (**आ धावत**) प्राप्त कराओ। हे (**रीत्यापः**) वेग से प्रवाहित होने वाले ब्रह्मानन्दो! तुम (**वृष्टिद्यावः**) मस्तिष्क से विज्ञान की वृष्टि करने वाले, और (**स्वर्विदः**) दिव्य प्रकाश प्राप्त करने वाला हो।।३।।

**भावार्थ** :—ब्रह्मानन्द द्वारा अन्तरात्मा के प्रकाशित और पवित्र हो जाने पर मस्तिष्क-भूमि भी उपजाऊ होकर विविध ज्ञान-विज्ञान आदि को उत्पन्न करती हुई योगी को उपकृत करती है।।३।।

**( १८ )**

**ऋषिः—अम्बरीष ऋजिश्वा च॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५२ क्रमांक पर

जीवात्मा की शुद्धि के विषय में की गयी थी। यहाँ गुरु-शिष्य का विषय कहते हैं।

**१३२९. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।**
**यो देवान्विश्वा इत्परि मदेन सह गच्छति॥१॥**

**पदार्थ** :-(**हर्यतम्**) प्रिय, (**हरिम्**) विद्या ग्रहण करने के शील वाले, (**बभ्रुम्**) अज्ञान आदि दोषों से धूसर आत्मा वाले (**त्यम्**) उस विद्यार्थी को, गुरुजन (**वारेण**) दोष-निवारक यम, नियम आदि से (**परि पुनन्ति**) परिशुद्ध करते हैं, (**यः**) जो विद्यार्थी (**मदेन सह**) उत्साह के साथ (**विश्वान् इत् देवान्**) सभी विद्वान् गुरुजनों के पास (**परिगच्छति**) पहुंचता है॥१॥

**भावार्थ** :-गुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे प्यारे विद्यार्थियों के दोषों को निवारण करके उन्हें विद्वान् और प्रशस्त चरित्र वाला बनायें॥१॥

अगले मन्त्र में फिर गुरु-शिष्य का विषय है।

**१३३०. द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम्।**
**प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः॥२॥**

**पदार्थ** :-(**स्वयशसम्**) अपनी कीर्ति से युक्त, (**अद्रिसंहतम्**) पर्वत के समान दृढ़ अङ्गों वाले, (**इन्द्रस्य प्रियम्**) कुलपति आचार्य के प्रिय, (**काम्यम्**) अन्यों से भी चाहे जाने वाले (**यम्**) जिस विद्यार्थी को (**द्विः पञ्च**) दो पंजे अर्थात् (**दस सखायः**) सहयोगी विद्वान् गुरु लोग (**ऊर्मयः**) जल की तरंगों के समान होकर (**प्र स्नापयन्ते**) ज्ञान-नदी में स्नान कराते हैं, वह प्रशस्त होता है॥२॥

यहाँ 'ऊर्मयः' में लुप्तोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :-चार वेद और छह वेदांग ये दस विद्याएं हैं। प्रत्येक विद्या के लिए एक-एक गुरु हो तो दस गुरु हो जाते हैं। वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष से छह विद्याएं ग्रहण करनी चाहिएं, उनके प्रतिपादक वर्तमान ग्रन्थ नहीं, क्योंकि मनुष्यप्रणीत उन उत्तरवर्ती ग्रन्थों का संकेत वेदों में नहीं हो सकता॥२॥

अगले मन्त्र में गुरुजन कह रहे हैं।

**१३३१. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) ज्ञानरस! तू (**वृत्रघ्ने**) व्रतपालन द्वारा दोषों को विनष्ट करने वाले, (**नरे**) पुरुषार्थी, (**दक्षिणावते**) गुरुदक्षिणा देने वाले, (**वीराय**) शूरवीर, (**सदनासदे**) गुरुकुलरूप सदन में निवास करने वाले (**इन्द्राय**) बिजली के समान तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थी के (**पातवे**) पान के लिए (**परि षिच्यसे**) प्रवाहित किया जा रहा है॥३॥

**भावार्थ** :—विद्यार्थियों को चाहिए कि वे स्वेच्छा से व्रतपालक, तपस्वी, शूर, आश्रम-पद्धति से गुरुकुल में ही निवास करने वाले और समावर्तन के समय गुरु दक्षिणा देने वाले हों॥३॥

(१९)

**ऋषिः—अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—द्विपदा विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४३० क्रमांक पर परमेश्वर और राजा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ गुरु-शिष्य का विषय वर्णित है।

**१३३२. पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी
धनाय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) विद्यारस के भण्डार आचार्य! आप शिष्य के (**महे दक्षाय**) महान् उत्साह के लिए (**पवस्व**) ज्ञानधारा को प्रवाहित करो, जिससे वह आपका शिष्य (**अश्वः न**) सूर्य के समान (**निक्तः**) शुद्ध, और (**वाजी**) विद्यावान्, वेगवान् तथा कर्मनिष्ठ होकर (**धनाय**) धन उपार्जन करने के योग्य हो सके॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—शिक्षा का एक यह भी प्रयोजन है कि शिष्य विद्वान्, बलवान् वर्चस्वी और शुद्ध हृदय वाला होकर धन कमाने में समर्थ हो सके॥१॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

१३३३. प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय॥२॥

**पदार्थ** :—हे विद्यार्थी! (**सोतारः**) द्वितीय जन्म देने वाले गुरु लोग (**सोमं रसम्**) ज्ञान-रस को (**ते**) तेरे (**मदाय**) आनन्द के लिए और (**महे द्युम्नाय**) महान् यश के लिए (**प्र पुनन्ति**) भली-भाँति पवित्र कर रहे हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परोपकारक, पवित्र, निर्दोष विद्या से ही मनुष्य आनन्दवान् और यशस्वी होता है।

अगले मन्त्र में समावर्तन संस्कार का वर्णन है।

१३३४. शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम्॥३॥

**पदार्थ** :—(**शिशुं जज्ञानम्**) नवस्नातक के रूप में आचार्य के गर्भ से द्वितीय जन्म प्राप्त करते हुए, (**हरिम्**) जिसके दोष हर लिये गये हैं। ऐसे (**इन्दुम्**) तेजस्वी (**सोमम्**) समावर्तन संस्कार के लिए स्नान किये हुए, विद्या पढ़े हुए ब्रह्मचारी को (**पवित्रे**) कुशों के आसन पर बैठाकर (**देवेभ्यः**) माता, पिता आदि को सौंपने के लिए (**मृजन्ति**) अलंकार धारण कराते हैं।

समावर्तन संस्कार के समय ब्रह्मचारी के अलंकार-धारण के विषय में पारस्करगृह्यसूत्र २।६. २४-२६ और महर्षिदयानन्दप्रणीत संस्कारविधि ग्रन्थ देखना चाहिए। उनके अनुसार उस समय ब्रह्मचारी नये वस्त्र, उपवस्त्र, फूलमाला, आभूषण आदि धारण करता है॥३॥

**भावार्थ** :—व्रताचारी, विद्यालंकार, वेदालंकार, आयुर्वेदालंकार आदि बने हुए ब्रह्मचारी को आचार्य फूलमाला, आभूषण आदि से अलंकृत करके समावर्तन संस्कार करके द्विज बनाकर माता-पिता को लौटा देवे॥३॥

## (२०)

**ऋषिः—अमहीयुः॥ देवता—पवमानः सोमः॥**

छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४८७ क्रमांक पर परमात्मा की प्राप्ति के विषय में और उत्तरार्चिक में ७६२ क्रमांक पर जीवात्मा तथा राजा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा और चन्द्रमा का विषय वर्णित करते हैं।

२ ३ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २र
**१३३५. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।**
१ २ ३ १ २
**इन्दुं देवा अयासिषुः॥१॥**

**पदार्थ :—(प्रथम)** परमात्मा के पक्ष में। **(सुजातम्)** सुप्रसिद्ध, **(अप्तुरम्)** व्यापक चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि लोकों को वेग से चलाने वाले, **(गोभिः)** वेद-वाणियों से **(भङ्गम्)** काम, क्रोध आदि रिपुओं के भंजक, **(परिष्कृतम्)** गुणों से अलंकृत, **(इन्दुम्)** तेज से दीप्त वा आनन्द-रसों से भिगोने वाले परमात्मा को **(देवाः)** विद्वान् लोग वा आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण आदि बल की प्राप्ति के लिए **(उप अयासिषुः)** प्राप्त करते हैं।

**(द्वितीया)** चन्द्रमा के पक्ष में **(सुजातम्)** पृथिवी के सुपुत्र, **(अप्तुरम्)** अन्तरिक्ष में पृथिवी और सूर्य के चारों ओर दौड़ने वाले, **(गोभिः भङ्गम्)** कहीं भूमियों में दराद पड़े हुए, और कहीं **(परिष्कृतम्)** परिष्कृत अर्थात् समतल **(इन्दुम्)** चन्द्रमा को **(देवाः)** सूर्य-किरणें **(अयासिषुः)** प्रकाशित करने के लिए प्राप्त करती हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ :—**जैसे सब जड़ पदार्थ और चेतन प्राणी जगदीश्वर के आश्रय से रहते हैं, वैसे ही हमारे और लोक के मंगल, बुध, पृथिवी, चन्द्रमा आदि ग्रह-उपग्रह सूर्य के आश्रय से रहते हैं, और सूर्य भी जगदीश्वर के अधीन है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का विषय है।

१ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**१३३६. तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव।**
१ २र ३ १ २
**य इन्द्रस्य हृदं सनिः॥२॥**

**पदार्थ :—(तम् इत्)** उस सोम अर्थात् शान्तिदायक परमात्मा को **(नः गिरः)** हमारी वाणियां **(सं वर्धन्तु)** बढ़ायें, प्रचारित

करें। ( शिश्वरीः ) समृद्ध दूध वाली दुधारु गायें ( वत्सम् इव ) जैसे अपने बछड़े को दूध से बढ़ाती हैं। कैसे परमात्मा को? ( यः ) जो सोम परमात्मा ( इन्द्रस्य ) जीवात्मा के ( हृदं सनिः ) हृदय में रहने वाला है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—विद्वान् धार्मिक जनों को चाहिए कि वे अपने उपदेशों से जनता में परमेश्वर के प्रति विश्वास उत्पन्न करें, जिससे सर्वत्र आस्तिकता और धार्मिकता का वातावरण उत्पन्न हो॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१३३७. अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्।**
**वर्धा समुद्रमुक्थ्य॥३॥**

**पदार्थ** :—हे **( सोम )** जगत् के रचयिता शान्तिप्रिय परमात्मन्! आप **( न )** हमारी **( गवे )** सारी धरती को **( शम् )** सुख-शान्ति **( अर्ष )** प्राप्त कराओ, हमें **( पिप्युषीम् )** समृद्ध **( इषम् )** अभीष्ट सम्पदा **( धुक्ष्व )** प्रदान करो। हे **( उक्थ्य )** स्तुतियोग्य! **( समुद्रम् )** सद्गुणों के समुद्र जीवात्मा को अथवा उसमें विद्यमान आनन्द के समुद्र को **( वर्ध )** बढ़ाओ। जैसे **सोम** चन्द्रमा जलों के पारावार समुद्र को बढ़ता है, यह यहाँ ध्वनित होता है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और मनुष्यों के प्रयत्न से सारी धरती सुख, शान्ति तथा प्रचुर सम्पदा प्राप्त करे और उसके निवासी आपस में प्रेम का व्यवहार करें॥३॥

( २१ )

**ऋषिः—त्रिशोकः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १३३ क्रमांक पर अध्यात्म पक्ष में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ अध्यात्म विषय और राष्ट्र का विषय वर्णित करते हैं।

**१३३८. आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्।**
**येषामिन्द्रो युवा सखा॥१॥**

**पदार्थ** :–(**येषाम्**) जिन उपासकों का वा प्रजाजनों का (**युवा**) युवक (**इन्द्रः**) वीर परमेश्वर वा वीर राजा (**सखा**) सहायक हो जाता है, और (**ये घ**) जो (**अग्निम्**) ईश्वर-भक्ति वा राष्ट्र-भक्ति की अग्नि को (**आ इन्धते**) अपने अन्तःकरण में प्रदीप्त कर लेते हैं, वे (**आनुषक्**) निरन्तर (**बर्हिः**) ब्रह्मयज्ञ वा राष्ट्र यज्ञ को (**स्तृणन्ति**) फैलाते हैं॥१॥

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर को ही उपास्य रूप में वरण करें। प्रजाजनों को चाहिए कि युवा तथा राष्ट्र की रक्षा में समर्थ मनुष्य को ही राजा रूप में स्वीकार करें और स्वयं राष्ट्रभक्त हों॥१॥

आगे फिर वही विषय है।

**१३३९. बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः।**
**येषामिन्द्रो युवा सखा॥२॥**

**पदार्थ** :–(**येषाम्**) जिन मनुष्यों का (**युवा**) युवा (**इन्द्रः**) वीर परमेश्वर वा वीर राजा (**सखा**) सहायक हो जाता है, (**एषाम्**) उनका (**बृहन् इत्**) महान् की (**इध्मः**) प्रताप, (**भूरि**) बहुत (**शस्त्रम्**) स्तोत्र वा शस्त्रास्त्र, और (**पृथुः**) विशाल (**स्वरुः**) यज्ञ होता है॥२॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर के उपासक तथा श्रेष्ठ राजा को राजसिंहासन पर बैठाने वाले लोग यशस्वी, विजयी यज्ञपरायण बन जाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में भी उसी विषय का वर्णन है।

**१३४०. अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः।**
**येषामिन्द्रो युवा सखा॥३॥**

**पदार्थ** :–(**येषाम्**) जिन लोगों का (**युवा**) युवा (**इन्द्रः**) वीर परमेश्वर वा वीर राजा (**सखा**) सहायक हो जाता है,

उनका (**शूरः**) शूर जीवात्मा वा शूर सेनापति (**अयुद्धः इत्**) स्वयं दूसरों से युद्ध न किये जा सकने वाला होकर (**युधा**) देवासुरसंग्राम से (**वृतम्**) घिरे हुए काम-क्रोध आदि षड्रिपुवर्ग को वा मानव शत्रुदल को (**सत्वभिः**) अपने पराक्रमों से (**आ अजति**) मार कर दूर फेंक देता है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर को सखा वरण करके योगसाधक लोग योगमार्ग में आये हुए सब विघ्नों का निवारण कर देते हैं, वैसे ही वीर मनुष्य को राजा वा सेनापति के पद पर अभिषिक्त करके प्रजाजन सब शत्रुओं को विनष्ट कर देते हैं॥३॥

(२२)

**ऋषिः—गोतमो राहुगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३८९ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में की गयी थी। यहाँ परमात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं॥२॥

**१३४१. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।**
**ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**यः एक इत्**) जो एक ही है, और (**दाशुषे**) आत्मसमर्पण करने वाले (**मर्ताय**) मनुष्य को (**वसु**) श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव रूप ऐश्वर्य (**विदयते**) विशेष रूप देता है। (**अङ्ग**) हे भाई! वह (**ईशानः**) सबका शासक (**अप्रतिष्कुतः**) किसी से प्रतीकार न किया गया (**इन्द्रः**) इन्द्र नामक परमेश्वर है।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**यः एकः इत्**) जो अकेला ही, सब शत्रुओं को (**विदयते**) विनष्ट कर सके, और (**दाशुषे**) कर देने वाले (**मतार्य**) प्रजाजन को (**वसु**) ऐश्वर्य (**विदयते**) प्रदान करे, और जो (**ईशानः**) शासन में समर्थ तथा (**अप्रतिष्कुतः**) न लड़खड़ाने वाला हो, अङ्ग हे भाई! वही (**इन्द्रः**) राजा बनाया जाना चाहिए॥१॥

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—पाषाण आदि की मूर्ति परमेश्वर नहीं है प्रत्युत जो एक, निराकार, स्तोताओं को ऐश्वर्य देने वाला सर्वाधीश्वर है वही परमेश्वर नाम से कहा जाता है। इसी प्रकार प्रजाओं द्वारा वही नर राजा रूप में चुना जाना चाहिए जो अकेला भी अनेक शत्रुओं को हरा सके और अपनी प्रजाओं का रञ्जन करे॥१॥

आगे फिर वही विषय वर्णित है।

**१३४२. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।**
**उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे परमात्मन्! (**बहुभ्यःआ**) बहुतों में से (**यः चित् हि**) जो (**सुतावान्**) श्रद्धारस को बहाने वाले होकर (**त्वा**) आपकी (**आ विवासति**) पूजा करता है वह (**तत्**) अद्वितीय (**उग्रं शवः**) प्रचण्ड आत्मबल (**पत्यते**) प्राप्त कर लेता है। (**अङ्ग**) हे परमात्मन्! वह आप (**इन्द्रः**) इन्द्र नाम वाले हो।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे राजन्! (**यः चित् हि**) जो प्रजाजन (**बहुभ्यः**) बहुतों में से (**आ**) लाकर, चुनकर (**सुतावान्**) आपका अभिषेक करके (**त्वा**) आपको (**आ विवासति**) सत्कृत करता है, वह (**तत्**) अद्वितीय, (**उग्रं शवः**) प्रचण्ड बल (**पत्यते**) प्राप्त कर लेता है। (**अङ्ग**) हे राजन्! वह आप (**इन्द्रः**) इन्द्र नाम से कहे जाते हो॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर अपने स्तोताओं को आत्मबल देता है, वैसे ही राष्ट्र में राजा भी प्रजाजनों में आत्मविश्वास उत्पन्न करे॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

**१३४३. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।**
**कदा नः शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अङ्ग**) हे भद्र! (**इन्द्र**) वीर परमेश्वर वा वीर राजा आप (**कदा**) कब (**अराधसम्**) समाज-सेवा न करने वाले स्वार्थपरायण (**मर्तम्**) मनुष्य को (**पदा**) पैर से (**क्षुम्पम्

इव ) खुम्भ के समान ( स्फुरत् ) विचलित कर दोगे, ( कदा ) कब ( नः ) हमें ( गिरः ) अपनी सन्देश-वाणियां ( शुश्रवत् ) सुनाओगे॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के समान राजा भी दुष्टों को दण्डित करे और सज्जनों की वाणियां सुने तथा अपनी रमणीय, उपदेशप्रद वाणियां उन्हें सुनाये॥३॥

( २३ )

**ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३४२ क्रमांक पर परमेश्वर की अर्चना के विषय में हो चुकी है। यहाँ भी उसी विषय का वर्णन करते हैं।

**१३४४. गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।**
**ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **शतक्रतो** ) असंख्यात कर्मों वा प्रज्ञाओं वाले जगदीश्वर! ( **त्वा** ) गाये जाने योग्य आपकी ( **गायत्रिणः** ) जिन्होंने वेदों के गायत्री आदि प्रशस्त छन्दों का अध्ययन किया हुआ है ऐसे धार्मिक ईश्वरोपासक लोग ( **गायन्ति** ) सामवेद आदि के गान द्वारा प्रशंसा करते हैं। ( **अर्किणः** ) वेदमन्त्र जिनके ज्ञान के साधन हैं ऐसे लोग ( **अर्कम्** ) सब जनों के पूजनीय आपकी ( **अर्चन्ति** ) नित्य पूजा करते हैं। ( **ब्रह्माणः** ) वेदार्थों को जानकर तदनुसार कर्म करने वाले विद्वान् लोग ( **त्वा** ) जगत् के रचयिता आपको ( **उद्येमिरे** ) अपने प्रति उद्यमवान् करते हैं, ( **वंशम् इव** ) जैसे उत्कृष्ट गुणों और शिक्षाओं से लोग अपने कुल को ( **उद् येमिरे** ) उद्यमी बनाते हैं॥॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि वे परमेश्वर का ही गान और पूजन करें, क्योंकि उसके तुल्य या उससे अधिक अन्य कोई नहीं है॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर के सहायक होने का वर्णन है।

**१३४५. यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।**
**तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति॥२॥**

**पदार्थ** :—मनुष्य (**यत्**) जब (**सानोः सानु**) एक शिखर से दूसरे उच्चतर शिखर पर, अर्थात् एक लक्ष्य को पार करके उससे ऊंचे दूसरे लक्ष्य पर (**आरुहः**) चढ़कर पहुंच जाता है, और (**भूरि**) बहुत से (**कर्त्वम्**) करने योग्य कार्य को (**अस्पष्ट**) करता है, (**तत्**) तब (**इन्द्रः**) विघ्नविनाशक परमेश्वर, उसके (**अर्थम्**) उद्देश्य को (**चेतति**) जान लेता है, और (**वृष्णिः**) बल, सुख, आदि को बरसाने वाला होता हुआ (**यूथेन**) गुणसमूह के साथ (**एजति**) उसे प्राप्त होता है।।२।।

**भावार्थ** :—प्रगति के पथ पर जाते हुए मनुष्य का जगदीश्वर परम सहायक हो जाता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१३४६. युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।**
**अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोमपाः**) सौम्य गुणों के रक्षक (**इन्द्र**) परमात्मन्! जैसे आप (**केशिना**) सूर्य-किरणों से युक्त, (**वृषणा**) बलवान् (**कक्ष्यप्रा**) अपनी-अपनी भ्रमण-कक्षा में वेग से गति करते हुए (**हरी**) परस्पर आकर्षण से युक्त चन्द्रमा और भूमण्डल को, आपस में जोड़ते हो, वैसे ही (**केशिना**) जीवात्मा के प्रकाश से युक्त, (**कक्ष्यप्रा**) अपने-अपने विषय की कक्षा में चलते हुए (**हरी**) ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों को (**युङ्क्ष्व**) परस्पर सहयोग वाला करो। (**अथ**) इस प्रकार (**नः**) हमारी (**गिराम्**) सब प्रार्थना-वाणियों की (**उपश्रुतिम्**) सुनवाई (**चर**) करो।।३।।

यहाँ श्लिष्ट वाचकलुप्तोपमा अलंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे भूलोक और चन्द्रलोक एक-दूसरे के साथ सामंजस्य से वर्तमान हुए सूर्य का परिभ्रमण करते हैं, वैसे ही ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां आपस के सहयोग से मनुष्य का जीवन संचालित करती हैं।।३।।

**इति दशमोऽध्यायः, पञ्चमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः समाप्तः॥**

# अथैकादशोऽध्यायः

## षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

(१)

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—१ इध्मः समिद्धो वाग्निः; २ तनूनपात्; ३ नराशंसः; ४ इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

**१३४७. सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते।**
**होतः पावक यक्षि च॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) अग्रनायक तेजस्वी परमेश्वर! (सुसमिद्धः) अन्तरात्मा में भली भांति प्रदीप्त किये हुए आप (नः) हम उपासकों के लिए, और (हविष्मते) दूसरे आत्मसमर्पणकर्ता के लिए (देवान्) दिव्यगुणों को (आ वह) प्राप्त कराओ। (होतः) हे सुख-प्रदाता! (पावक) हे पवित्रकर्ता आप (यक्षि च) हमारे साथ संगम भी करो।।१।।

**भावार्थ** :—अपने अन्तरात्मा में परमात्माग्नि को प्रदीप्त करके सब लोग दिव्यगुणी होवें।।१।।

आगे तनूनपात् परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१३४८. मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे।**
**अद्या कृणुह्यूतये॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (तनूनपात्) देहधारियों को उठाने वाले, (कवे) दूरदर्शी प्रज्ञा वाले परमात्मन्! आप (अद्य) आज (ऊतये) रक्षा के लिए (नः) हमारे (देवेषु) विद्वानों में (यज्ञम्) त्याग-भावना को (कृणुहि) उत्पन्न करो।।२।।

**भावार्थ** :—राष्ट्रवासियों का जीवन यदि यज्ञमय वा त्यागपूर्ण हो तो राष्ट्र उन्नति की सबसे ऊंची पैढ़ी पर पहुँच सकता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर कह रहा है।

**१३४९. नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये।
मधुजिह्वं हविष्कृतम्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**मधुजिह्वम्**) जिसकी जिह्वा में मधु है ऐसे अर्थात् मधुरभाषी, (**हविष्कृतम्**) आत्मसमर्पण करने वाले, (**इह**) यहाँ (**प्रियम्**) मेरे प्रिय, (**नराशंसम्**) मनुष्यों से प्रशंसनीय जीवात्मा को (**अस्मिन् यज्ञे**) इस पारस्परिक मिलनरूप यज्ञ में, मैं (**उपह्वये**) अपने समीप बुलाता हूं।।३।।

**भावार्थ** :–जीवात्मा जब आत्मसमर्पण कर देता है तब परमात्मा स्वयं ही उसे अपने समीप ले आता है।।३।।

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१३५०. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आ वह।
असि होता मनुर्हितः॥४॥**

**पदार्थ** :–हे (**अग्ने**) अग्रनायक परमात्मन्! (**ईडितः**) पूजा किये हुए, आप (**देवान्**) दिव्यगुणयुक्त हम विद्वान् उपासकों को, आगामी जन्म में (**सुखतमे**) सबसे अधिक सुखदायी (**रथे**) मानवदेह-रूप रथ में (**आ वह**) जीवनयात्रा कराओ। आप (**होता**) कर्मफलों के दाता, और (**मुनर्हितः**) मनुष्यों के लिए हितकारी (**असि**) हो।।४।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर की उपासना से श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित हुआ मनुष्य आगामी जन्म में भी कर्मों के अनुसार मानव योनि प्राप्त करता है।।४।।

(२)

**ऋषिः–वसिष्ठः॥ देवता–आदित्यः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में निष्पाप होने की प्रशंसा की गयी है।

**१३५१. यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा।
सुवाति सविता भगः॥१॥**

**पदार्थ** :–(**यत्**) यदि (**अद्य**) आज (**सूरे उदिते**) सूर्य के

उदय होने पर, मनुष्य ( **अनागाः** ) निष्पाप होता है तो ( **मित्रः** ) सबका मित्र, ( **अर्यमा** ) न्यायकारी, न्यायानुसार कर्मफलों का दाता, ( **भगः** ) भजनीय ( **सविता** ) प्रेरक परमेश्वर, उसे, दिनभर ( **सुवाति** ) सत्कर्मों में प्रेरित करता रहता है॥१॥

**भावार्थ** :—दिन के आरम्भ में यदि श्रेष्ठ विचार रहते हैं तो ऐसी आशा होती है कि परमेश्वर की कृपा से सारा दिन निर्मल व्यतीत होगा॥१॥

अगले मन्त्र में उपासक विद्वान् जनों को सम्बोधन है।

**१३५२. सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।**
**ये नो अंहोऽतिपिप्रति॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सुदानवः** ) शुभ दान वाले उपासक विद्वान् जनो! ( **ये** ) जो आप लोग ( **नः** ) हमारे ( **अंहः** ) पाप वा अपराध को ( **अतिपिप्रति** ) दूर करते हो, उन आप लोगों के ( **यामन्** ) आगमन होने पर ( **सः** ) वह ( **क्षयः** ) हमारा निवासगृह ( **सुप्रावीः** ) भली भांति प्रकृष्ट रूप से रक्षित ( **नु** ) शीघ्र ही ( **प्र अस्तु** ) प्रबल रूप से होवे॥२॥

**भावार्थ** :—कर्तव्य और अकर्तव्य के उपदेशक उपासक विद्वान् जनों के समागम से लोग किसी भी पापकर्म में प्रवृत्त न होते हुए पुण्यशाली होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में जगन्माता अदिति और विद्वान् जनों का वर्णन है।

**१३५३. उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये।**
**महो राजान ईशते॥३॥**

**पदार्थ** :—( **उत** ) और ( **स्वराजः** ) स्वराज्यसम्पन्न उपासक विद्वान् जन तथा ( **अदितिः** ) अखण्डनीय जगन्माता, ( **ये** ) जो ( **अदब्धस्य** ) अटूट ( **व्रतस्य** ) संकल्प तथा कर्म के ( **राजानः** ) राजा हैं, वे ( **महः** ) महान् ऐश्वर्य के ( **ईशते** ) स्वामी होते हैं अर्थात् महान् ऐश्वर्य देने की क्षमता रखते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जो लोग परमात्मा की तथा चरित्रवान् विद्वानों की

संगति करते हैं वे परमैश्वर्यवान् हो जाते हैं॥३॥

( ३ )

ऋषिः—प्रगाथः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्द्रः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १९४ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहाँ जीवात्मा को प्रोद्बोधन है।

**१३५४. उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।**
**अव ब्रह्मद्विषो जहि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अद्रिवः** ) अविदारणीय बल वाले इन्द्र जीवात्मन्! ( **त्वा** ) तुझे ( **सोमाः** ) वीर रस ( **मदन्तु उ** ) उत्साहित करें। तू ( **राधः** ) दिव्य ऐश्वर्य तथा सफलता को ( **कृणुष्व** ) उत्पन्न कर। ( **ब्रह्मद्विषः** ) ब्रह्मद्वेषी भावों को ( **अवजहि** ) विनष्ट कर दे॥१॥

**भावार्थ** :—अपने आत्म-बल को पहचान कर मनुष्य को महान् कर्म करने चाहिएं और विघ्नों को पराजित करना चाहिए॥१॥

आगे फिर जीवात्मा को उद्बोधन है।

**१३५५. पदा पणीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि।**
**न हि त्वा कश्च न प्रति॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जीवात्मन्! तू ( **अराधसः** ) दूसरों के कार्यों को सिद्ध न करने वाले ( **पणीन्** ) स्वार्थभावों को ( **पदा** ) जैसे पैर की ठोकर मार कर किसी को दूर फेंक देते हैं, वैसे ( **नि बाधस्व** ) दूर फेंक दे, तू ( **महान्** ) महान् ( **असि** ) है ( **त्वा** ) तुझे ( **कश्च न** ) कोई भी ( **प्रति नहि** ) प्रतिरुद्ध नहीं कर सकता है, अर्थात् तेरे मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकता है॥२॥

यहां 'पदा' में लुप्तोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे कोई पैर की ठोकर मार कर मार्ग की रुकावट को दूर फेंक देता है, वैसे ही जीवात्मा को चाहिए कि विघ्नरूप आन्तरिक शत्रुओं को दूर कर दे॥२॥

अब जीवात्मा परमात्मा की स्तुति करता है।

**१३५६. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्।**
**त्वं राजा जनानाम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) जगत् के रचयिता परमात्मन्! (त्वम्) आप (सुतानाम्) उत्पन्न प्राणियों और पदार्थों के (ईशिषे) स्वामी हो, (त्वम्) आप ही (असुतानाम्) जो अभी उत्पन्न नहीं हुए, किन्तु भविष्य में उत्पन्न होने वाले हैं, उन प्राणियों और पदार्थों के भी स्वामी हो। (त्वम्) आप ही (जनानाम्) मनुष्यों के (राजा) राजा हो।।३।।

**भावार्थ** :—जीवात्मा के अन्दर जो महान् शक्ति निहित है वह परमात्मा की ही दी हुई है, इस कारण परमात्मा की स्तुति से यहाँ जीव अपने अभिमान को दूर कर रहा है।।३।।

(४)

**ऋषिः—पराशरः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का विषय है।

**१३५७. आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो**
**असदच्चमूषु। सपन्ति यं मिथुनासो निकामा**
**अध्वर्यवो रथिरासः सुहस्ताः॥१॥**

**पदार्थ** :—(जागृविः) जागरूक, (विप्रः) विशेष रूप से पूर्णता प्रदान करने वाला, (मतीनाम्) बुद्धियों के (ऋतम्) व्यापार को (पुनानः) पवित्र करने वाला, (सोमः) सत्कर्मों की प्रेरणा देने वाला परमेश्वर (चमूषु) आत्मा, मन, प्राण, आदि में वा सूर्य, चन्द्र, भूमण्डल आदि लोकों में (आ असदत्) नियामक रूप से स्थित है, (यम्) जिस परमेश्वर को (निकामाः) निरन्तर पाने की लौ लगाये हुए, (रथिरासः) उत्कृष्ट शरीर-रथ वाले, (सुहस्ताः) सिद्धहस्त (अध्वर्यवः) उपासना-यज्ञ के इच्छुक (मिथुनासः) स्त्री-पुरुष (सपन्ति) प्राप्त कर लेते हैं।।१।।

**भावार्थ** :—शरीर और बाह्य जगत् का जो संचालन करता है

उस जगदीश्वर की सबको भली-भांति उपासना करनी चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**१३५८. स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी**
**वी ष आवः। प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती**
**सतो धनं कारिणे न प्र यंसत्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह सोम अर्थात् जगत् का रचयिता परमेश्वर (**उभे रोदसी**) द्यावापृथिवी दोनों को अर्थात् पृथिवी को और द्युलोकवर्ती अन्य ग्रहोपग्रहों को (**पुनानः**) पवित्र करता हुआ, तथा (**सूरे उप**) सूर्य की नियन्त्रण-कक्षा में (**दधानः**) धारण करता हुआ (**आ पप्राः**) सूर्य के प्रकाश से आपूर्ण करता है। (**सः**) वह उन द्यावापृथिवियों को (**वि आवः च**) विस्पष्ट भी करता है। (**सतः**) विद्यमान (**यस्य**) जिस सोम परमेश्वर के रचे हुए (**प्रिया**) प्रिय लगने वाले, (**प्रियसासः**) प्रिय अभीष्ट को देने वाले पदार्थ (**ऊती**) सबकी रक्षार्थ होते हैं, वह हमें (**धनम्**) धन (**प्र यंसत्**) प्रदान करे, (**कारिणे न**) जैसे कर्म करने वाले सेवक को वेतन दिया जाता है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है। 'प्रिया, प्रिय' में छेकानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—इस ब्रह्माण्ड में द्युलोक-पृथिवीलोक के धारण आदि की जो भी व्यवस्था दिखाई देती है वह सब परमात्मा द्वारा ही की गयी है। जैसे सेवक को वेतन दिया जाता है, वैसे ही स्तोता को परमात्मा पुरुषार्थ और ऐश्वर्य देता है॥२॥

अगले मन्त्र में उपासक अपनी कामना प्रकट कर रहा है।

**१३५९. स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि**
**नो ज्योतिषावित्। यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः**
**स्वर्विदो अभि गा अद्रिमिष्णन्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**वर्धिता**) बढ़ाने वाला, (**वर्धनः**) स्वयं बढ़ा हुआ अर्थात् महिमा को प्राप्त, (**पूयमानः**) उपासकों से प्राप्त किया जाता हुआ, (**मीढ्वान्**) सुख सींचने वाला, (**सोमः**) जगत् का

रचयिता परमेश्वर (**ज्योतिषा**) ज्योति के द्वारा (**नः**) हमारी (**अभि आवीत्**) रक्षा करे, (**यत्र**) जिसके आश्रय में विद्यमान (**पदज्ञाः**) मोक्षपद के ज्ञाता, (**नः**) हमारे (**पूर्वे पितरः**) श्रेष्ठ पितृजन (**गाः अभि**) दिव्य प्रकाश की किरणों को प्राप्त करने के लिए (**अद्रिम्**) पर्वत के समान रुकावट डालने वाले तमोजाल को (**इष्णन्**) दूर कर देते हैं, तथा (**स्वर्विदः**) मोक्ष के आनन्द को प्राप्त करने वाले हो जाते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—ज्योतिर्मय परमात्मा की उपासना से मनुष्य भी ज्योतिष्मान् होकर मोक्ष पा लेते हैं॥३॥

## (५)

**ऋषिः—प्रगाथो घौरः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

**प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४२ क्रमांक पर परमेश्वर की उपासना के विषय में की जा चुकी है। यहाँ भी वही विषय वर्णित है।**

**१३६०. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।**
**इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सखाय**) साथियो! तुम (**अन्यत्**) परमेश्वर के अतिरिक्त सूर्य, चांद, वृक्ष, स्थाणु, प्रतिमा आदि को (**मा चित्**) कभी मत (**विशंसत**) पूजो, (**मा रिषण्यत्**) अपूज्यों की पूजा से हानिग्रस्त मत होओ। (**सुते**) श्रद्धारस के अभिषुत होने पर (**सचा**) साथ मिलकर (**वृषणम्**) आनन्द की वर्षा करने वाले (**इन्द्रम् इत्**) परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की ही (**स्तोत**) स्तुति करो, और (**मुहुः महुः**) बार-बार (**उक्था च**) स्तोत्रों का (**शंसत**) कीर्तन करो॥१॥

**भावार्थ** :—एक सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमेश्वर की ही पूजा सबको करनी चाहिए। वेदों में इन्द्र, मित्र, वरुण, आदि बहुत से नामों से एक ही परमेश्वर का प्रतिपादन हुआ है॥१॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि वह परमेश्वर कैसा है।

**१३६१. अवक्रक्षिणं वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम्।**
**विद्वेषणं संवननमुभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अवक्रक्षिणम्**) सूर्य आदि लोकों को आकर्षण द्वारा धारण करने वाले, (**वृषभं यथा**) वर्षा करने वाले बादल के समान (**जुवम्**) उपासकों के पास पहुंचने वाले, अर्थात् बादल जैसे वर्षाजल के द्वारा भूमि पर पहुंचता है वैसे ही आनन्द के उपहारों के साथ उपासक के पास पहुंचने वाले, (**गां न**) बिजली के समान (**चर्षणीसहम्**) दुर्जनों को तिरस्कृत करने वाले, (**विद्वेषणम्**) द्वेष से रहित, (**संवननम्**) स्तोताओं से भजनीय, (**उभयङ्करम्**) द्युलोक-भूलोक दोनों के रचयिता, (**मंहिष्ठम्**) सबसे बड़े दानी, (**उभयाविनम्**) निग्रह और अनुग्रह दोनों गुणों से युक्त इन्द्र परमात्मा की (**स्तोत**) स्तुति करो। [यहाँ 'स्तोत' यह पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है]॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—आकाश में बिना ही आधार के आकर्षण रूप डोर से लोक-लोकान्तरों को धारण करने वाले, सज्जनों को उत्साहित करने वाले, दुर्जनों को दण्डित करने वाले, जगत् के रचयिता, परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर की सबको भली-भांति उपासना करनी चाहिए॥२॥

## (६)

**ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः, २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २५१ क्रमांक पर स्तोत्रों के विषय में की गयी थी। यहाँ स्तोताओं का विषय वर्णित है।

**१३६२. उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते।**
**सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो**
**रथाइव॥१॥**

**पदार्थ** :—( **सत्राजितः** ) सत्य को जीतने वाले, ( **धनसाः** ) भौतिक और आध्यात्मिक धन की प्राप्ति तथा दान करने वाले ( **त्ये** ) वे ( **मधुमत्तमाः** ) अतिशय मधुर व्यवहार वाले, ( **स्तोमासः** ) स्तोता ( **गिरः** ) विद्वान् लोग ( **रथाः इव** ) विमान यानों के समान ( **उदीरते उ** ) ऊपर जाते हैं अर्थात् उद्यमी होते हैं॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के उपासक मन, वाणी और कर्म से सच्चे, परोपकारी, मधुर, बलवान् और पुरुषार्थी होकर अपनी और दूसरों की उन्नति करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में स्तोताओं की उपलब्धि वर्णित करते हैं

**१३६३. कण्वाइव भृगवः सूर्याइव विश्वमिद्धीतमाशत।**
**इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रियमेधासः** ) जिन्हें मेधा प्रिय है ऐसे ( **आयवः** ) मनुष्य ( **इन्द्रम्** ) परमेश्वर की ( **महयन्तः** ) पूजा करते हुए ( **स्तोमेभिः** ) साम के स्तोत्रों से ( **अस्वरन्** ) उसकी स्तुति करते हैं। उसके अनन्तर वे ( **कण्वाः इव** ) मेधावी ब्रह्म वर्चस्वी ब्राह्मणों के समान, और ( **सूर्याः इव** ) सूर्यों के समान ( **भृगवः** ) तेजस्वी होते हुए ( **विश्वम् इत्** ) सभी ( **धीतम्** ) सोचे हुए अभीष्ट को ( **आशत्** ) प्राप्त कर लेते हैं॥२॥

यहां उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के उपासक लोग तेजस्विता और आत्मविश्वास प्राप्त करके पुरुषार्थ करते हुए सब अभीष्ट को पा लेते हैं॥२॥

( ७ )

**ऋषिः—त्र्यरुणस्त्रसदस्यू॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—पिपीलिकामध्या अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४२८ क्रमांक पर अपने अन्तरात्मा और वीर पुरुष के प्रोत्साहन के विषय में व्याख्यात हो चुकी है।

यहाँ परमात्मा का विषय कहते हैं।

**१३६४. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने वाले जगत्स्रष्टा परमात्मन्! आप (वाजसातये) बल देने के लिए हमें (सु) भली-भाँति (**परि प्र धन्व**) चारों ओर से प्राप्त होओ। (**सक्षणिः**) विघ्नों के विनाशक आप (**वृत्राणि**) जीवनमार्ग वा योगमार्ग में आये हुए विघ्नों पर (**परि प्र धन्व**) चारों ओर से आक्रमण कर दो। (**ऋणयाः**) हमारे ऋषिऋण-देवऋण-पितृऋण को तथा अन्य ऋणों को चुकवाने वाले आप (**द्विषः**) द्वेषवृत्तियों को (**तरध्यै**) परास्त करने के लिए (**नः ईरसे**) हमें प्राप्त होओ।

तैत्तिरीय संहिता में तीन ऋण गिनाते हुए कहा गया है कि उत्पन्न होता हुआ ब्राह्मण तीन ऋणों से ऋणी होता है। ऋषियों के प्रति ब्रह्मचर्य से, देवों के प्रति यज्ञ से और पितृजनों के प्रति प्रजा से। जब वह आचार्याधीन ब्रह्मचर्यवास करता है, यज्ञ करता है, और पुत्रवान् हो जाता है तब क्रमशः इन ऋणों से छूट जाता है।।१।। (तै० सं० ६.३.१०.५)

**भावार्थ** :—मनुष्य दूसरों की सहायता का उपयोग करके उनके प्रति ऋणी हो जाता है। माता-पिता, गुरुजन, समाज, राष्ट्र तथा अन्यों के प्रति उसके जो ऋण होते हैं उन्हें परमेश्वर की प्रेरणा से वह उपकार स्मरण पूर्वक सधन्यवाद चुका देता है।।१।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति की गयी है।

**१३६५. अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**पवमान**) पवित्रकर्ता, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! आपने (**सूर्यम्**) सूर्य को (**अजीजनः हि**) उत्पन्न किया है, और (**शक्मना**) अपनी शक्ति से (**विधारे**) विधारक अन्तरिक्ष में (**पयः**) मेघ-जल को (**अजीजनः**) उत्पन्न किया है। आप (**गोजीरया**) भूमण्डल के जीवन की इच्छा से (**पुरन्ध्या**) बहुत अधिक प्रज्ञा तथा क्रिया द्वारा (**रंहमाणः**) शीघ्रकारी होते हो।।२।।

**भावार्थ** :—ब्रह्माण्ड में स्थित सूर्य, विद्युत्, नक्षत्र, बादल आदि सब विलक्षण वस्तुएं परमात्मा ने ही रची हैं, इनके निर्माण में किसी मनुष्य का सामर्थ्य नहीं है। वह सबकी हितकामना से बुद्धिपूर्वक चेष्टा करता है॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४३२ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ परमात्मा के विषय में व्याख्या की जा रही है।

**१३६६. अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये।**
**वाजाँ अभि पवमान प्र गाहसे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) ब्रह्माण्ड के सम्राट् जगदीश्वर! (**महे**) महान् (**समर्यराज्ये**) देवासुरसंग्राम से प्राप्त आन्तरिक साम्राज्य में, हम (**सुतं त्वा**) हृदय में प्रकट हुए आपको (**अनु**) लक्ष्य करके (**मदामसि हि**) मुदित होते हैं। हे (**पवमान**) पवित्र करने वाले परमात्मन्! आप (**वाजान्**) बलों में (**अभि प्र गाहसे**) अवगाहन करते हो, अतः हमें बल दो, यह भाव है॥३॥

**भावार्थ** :—अपने अन्तरात्मा में छिपे हुए परमात्मा को प्रकट करके आत्मबल और परम आनन्द प्राप्त किया जा सकता है॥३॥

(८)

**ऋषिः—अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—द्विपदा विराट्पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४२७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ ब्रह्मानन्द का विषय कहते हैं।

**१३६७. परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे**
**भगाय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) ब्रह्मानन्द रस! (**स्वादुः**) मधुर स्वाद वाला तू (**मित्राय**) मित्र, (**पूष्णे**) पोषणकर्ता, (**भगाय**) सेवनीय (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए (**परि प्र धन्व**) प्रवाहित हो॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के पास से प्रवाहित हुए परमानन्दरस का पान करके जीवात्मा में एक विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः ब्रह्मानन्द का विषय है।

**१३६८. एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम! हे ब्रह्मानन्द! (**सः**) वह (**शुक्रः**) पवित्र, (**दिव्यः**) अलौकिक, (**पीयूषः**) पान करने योग्य तू (**एव**) सचमुच (**अमृताय**) हमारी अमरपद की प्राप्ति के लिए और (**महे**) महान् (**क्षयाय**) निवासक धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिए (**अर्ष**) प्रवाहित हो॥२॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मानन्द रस के पान से मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध कर सकता है॥२॥

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है।

**१३६९. इन्द्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय विश्वे च देवाः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) ब्रह्मानन्द रस! (**सुतस्य**) परमात्मा के पास से प्रवाहित हुए (**ते**) तुझे (**क्रत्वे**) कर्म करने के लिए और (**बलाय**) बल की प्राप्ति के लिए (**इन्द्रः**) जीवात्मा (**पेयात्**) पान करे, (**विश्वे च देवाः**) और अन्य सब प्रकाशक मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रियाँ आदि भी पान करें॥३॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मानन्द-रस के पान से मनुष्य आत्मबली और कर्मयोगी होता है॥३॥

( ९ )

**ऋषिः—हिरण्यस्तूपः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः निषादः॥**

प्रारम्भ में परमात्मा की उपासना का विषय वर्णित करते हैं।

१३७०. सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसूतः
साकमीरते। तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो
नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन॥१॥

**पदार्थ** :–(**सूर्यस्य**) सूर्य की (**रश्मयः इव**) किरणों के समान (**द्रावयित्नवः**) द्रवित करने वाले, (**मत्सरासः**) तृप्ति देने वाले, (**आशवः**) वेगगामी, (**प्रसूतः**) प्रेरित (**सर्गासः**) हमारे भक्तिरस-प्रवाह (**साकम्**) एक साथ (**ततम्**) सर्वत्र फैले हुए, (**तन्तुम्**) मणियों में सूत्र के समान व्याप्त इन्द्र परमात्मा को (**परि ईरते**) चारों ओर से प्राप्त हो रहे हैं, क्योंकि (**इन्द्रात् ऋते**) परमात्मा के अतिरिक्त (**किं चन धाम**) कोई भी ज्योति (**न पवते**) पवित्रता नहीं देती है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की ही उपासना और कृपा से मनुष्य का अन्तःकरण पवित्र होता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल वर्णित है।

१३७१. उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते
अन्तरासनि। पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव
मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति॥२॥

**पदार्थ** :–(**मतिः**) बुद्धि (**उपपृच्यते उ**) प्राप्त हो रही है, (**मधु**) माधुर्य (**सिच्यते**) सींचा जा रहा है, (**आसनि अन्तः**) मुख के अन्दर (**मन्द्राजनी**) आनन्दजनक शब्दों ओंकार, व्याहृति, गायत्री आदि को प्रेरित करने वाली जिह्वा (**चोदते**) स्तुति-मन्त्रों को प्रेरित कर रही है। (**पवमानः**) बहता हुआ अथवा अन्तःकरण को पवित्र करता हुआ (**सन्तनिः**) भली-भाँति फैलने वाला, (**मधुमान्**) मधुर (**द्रप्सः**) ब्रह्मानन्द-रस (**वारम्**) दोष-निवारक अन्तरात्मा को (**परि अर्षति**) प्राप्त हो रहा है, (**सुन्वताम् इव**) जैसे यजमानों की (**पवमानः**) गुरुकुल निवास से स्वयं को पवित्र करती हुई, (**मधुमान्**) मधुर ज्ञान से वा मधुर व्यवहार से

युक्त (**सन्तनिः**) सन्तान स्नातक होकर (**वारम्**) जन-समाज को (**परि अर्षति**) प्राप्त करती है॥२॥

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है। उत्तरार्धगत कारण से पूर्वार्धगत कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। प्, म्, न्, त्, स् की अलग-अलग आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है। 'च्यते' की आवृत्ति में यमक है। शान्तरस है॥२॥

**भावार्थ** :—उपासक के अन्तरात्मा में ब्रह्मानन्द-रस का धाराप्रवाह होने पर विलक्षण मति और विलक्षण माधुर्य अनुभूत होता है॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

**१३७२. उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप**
**यन्ति निष्कृतम्। अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं**
**न निक्तं परि सोमो अव्यत॥३॥**

**पदार्थ** :—(**उक्षा**) प्राणरूप बैल (**मिमेति**) डकरा रहा है, (**धेनवः**) इन्द्रिरूप गायें (**प्रति यन्ति**) बाह्य विषयों से लौट रही हैं। (**देवीः**) दिव्यगुणों वाली मनोवृत्तियां (**देवस्य**) प्रकाशक जीवात्मा को (**निष्कृतम्**) आश्रय को (**उप यन्ति**) प्राप्त कर रही हैं। यह सब क्यों हो रहा है? क्योंकि (**सोमः**) जीवात्मा ने (**अति**) विघ्नों का अतिक्रमण करके (**अर्जुनम्**) श्वेत, निर्मल, (**अव्ययम्**) अविनश्वर (**वारम्**) वरणीय परमात्मा की ओर (**अक्रमीत्**) पग बढ़ाये हैं, और (**निक्तम्**) शुद्ध (**अत्कं न**) कवच के समान, उसे (**परि अव्यत**) चारों ओर धारण कर लिया है॥३॥

चतुर्थ चरण में उपमालंकार है, उत्तरार्धगत कारण से पूर्वार्धगत कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास भी है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के प्राप्त हो जाने पर जीव कवचधारी के समान रक्षित हो जाता है॥३॥

(१०)

**ऋषिः—वशिष्ठः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—विराडनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ७३ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा और बिजली का विषय वर्णित करते हैं।

**१३७३. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्। दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम्॥१॥**

**पदार्थ :–( प्रथम )** जीवात्मा के पक्ष में। हे मनुष्यो! **( नरः )** पौरुषवान् तुम **( अरण्योः )** क्रियाशील मन और बुद्धि की **( दीधितिभिः )** क्रियाओं से अर्थात् मन द्वारा कृत संकल्पों से और बुद्धि द्वारा कृत निश्चयों से **( अग्निम् )** शरीर के नेता जीवात्मा को **( हस्तच्युतम् )** हाथों से शत्रुओं को पराजित करने वाला, **( प्रशस्तम् )** प्रशंसा का पात्र, **( दूरेदृशम् )** दूरदर्शी, **( गृहपतिम् )** देह सदन का पालनकर्ता, और **( अथव्युम् )** विचलित न होने वाला **( जनयत )** करो।

**( द्वितीय )** बिजली के पक्ष में। हे मनुष्यो! **( नरः )** विद्युत्-विद्या की उन्नति करने वाले तुम **( दीधितिभिः )** सूर्य-किरणों के द्वारा **( अरण्योः )** बिजली उत्पन्न करने वाले यन्त्रों के **( हस्तच्युतम् )** संघर्षण-पूर्वक **( प्रशस्तम् )** उत्कृष्ट, **( दूरेदृशम् )** दूर तक प्रकाश करने वाले, **( गृहपतिम् )** घरों के रक्षक, **( अथव्युम् )** गतिशील **( अग्निम् )** बिजली रूप अग्नि को **( जनयत )** उत्पन्न करो॥१॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥१॥

**भावार्थ :–**मनुष्यों को चाहिए कि संकल्प के साधन मन को और निश्चय के साधन बुद्धि को प्रयुक्त कर अपने आत्मा को जगायें और विद्युत्-विद्या के विशेषज्ञ शिल्पियों को चाहिए कि सूर्य-किरणों द्वारा यन्त्रों को चलाकर, बिजली उत्पन्न करके घर आदि में प्रकाश करें, बिजली के तारों द्वारा दूर समाचार भेजें तथा विमान आदि यानों को चलायें॥१॥

अगले मन्त्र में फिर जीवात्मा और बिजली का विषय है।

**१३७४. तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्। दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः॥२॥**

**पदार्थ :–( प्रथम )** जीवात्मा के पक्ष में। **( वसवः )** अपने

अन्दर श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों को निवास कराने वाले मोक्ष पथ के पथिक लोग (**कुतश्चित्**) जहाँ कहीं से भी (**अवसे**) शत्रु से अपनी रक्षा के लिए (**तम्**) उस (**सुप्रतिचक्षम्**) श्रेष्ठ द्रष्टा (**अग्निम्**) जीवात्मा को (**अस्ते**) मोक्ष-धाम में (**न्यृण्वन्**) भेजते हैं, (**यः**) जो (**दक्षाय्यः**) बल बढ़ाने वाला, (**नित्यः**) नित्य, अविनाशी जीवात्मा, मुक्ति से पूर्व (**दमे**) शरीर रूप घर में (**आस**) था।

(**द्वितीय**) बिजली के पक्ष में। (**वसवः**) विद्युत्-विद्या में निवास किये हुए शिल्पी लोग (**कुतश्चित्**) किसी भी भय से (**अवसे**) रक्षा के लिए (**तम्**) उस (**सुप्रतिचक्षम्**) शुभ प्रकाश करने वाले (**अग्निम्**) बिजलीरूप अग्नि को (**अस्ते**) प्रत्येक निवासगृह में (**न्यृण्वन्**) पहुंचाते हैं। (**यः**) जो (**दक्षाय्यः**) बलवान् (**नित्यः**) बिजली रूप अग्नि (**दमे**) कारखाने में (**आस**) था॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—राष्ट्र में जैसे प्रजाजनों को अभ्युदय और निःश्रेयस का पथिक होना चाहिए, वैसे ही शिल्पियों को चाहिए कि बिजली पैदा करके प्रकाश के लिए और यन्त्र आदि को चलाने के लिए तारों द्वारा उसे घर-घर में लगा दें॥२॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**१३७५. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्त्रया सूर्म्या यविष्ठ।**
**त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**यविष्ठ**) अतिशय यौवनयुक्त (**अग्ने**) जीवात्मन् वा विद्युत्! (**प्रेद्धः**) प्रदीप्त किया गया तू (**अजस्रया**) अक्षीण (**सूर्म्या**) तेजस्विता के साथ (**नः पुरः**) हमारे आगे (**दीदिहि**) चमक, (**त्वाम्**) तुझे (**शश्वन्तः**) बहुत से (**वाजाः**) बल (**उप यन्ति**) प्राप्त हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा में बिजली के समान बड़ी भारी शक्ति निहित है। उसका उपयोग करके मनुष्य को तेजस्वी, प्रतापी, अग्रगन्ता और महान् होना उचित है॥३॥

( ११ )

**ऋषिः—सार्पराज्ञी॥ देवता—सूर्यः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ६३० क्रमांक पर सूर्य, भूगोल, परमात्मा, जीवात्मा तथा स्तोता इन पांचों पक्षों में की जा चुकी है। यहाँ चन्द्रमा और सूर्य का सम्बन्ध वर्णन करते हैं।

**१३७६. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।**
**पितरं च प्रयन्त्स्वः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अयम्** ) यह ( **पृश्निः** ) रंगीला ( **गौः** ) गतिमय चन्द्रलोक ( **आ अक्रमीत्** ) उदित हुआ है।, जो ( **पुरः** ) पश्चिम की पूर्व की ओर ( **मातरम्** ) माता पृथिवी के चारों ओर ( **असदत्** ) गति करता है और ( **पितरम्** ) पितृस्थानीय ( **स्वः च** ) सूर्य की भी ( **प्रयन्** ) परिक्रमा करता है।।१।।

**भावार्थ** :—चन्द्रमा पृथिवी से अलग हुआ पिण्ड है ऐसा वैज्ञानिक लोग मानते हैं। इसलिए पृथिवी चन्द्रमा की माता है। सूर्य के प्रभाव से ही वह पिण्ड पृथिवी से अलग हुआ, इस दृष्टि से सूर्य चन्द्रमा का पिता है। चन्द्रमा पृथिवी की परिक्रमा करता-करता पृथिवी के साथ-साथ सूर्य की भी परिक्रमा करता है ऐसा खगोलशास्त्रवेत्ताओं का निरीक्षण है।।१।।

द्वितीया ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ६३१ क्रमांक पर सूर्य और परमात्मा के विषय में की जा चुकी है यहाँ प्राणरूप सूर्य का वर्णन करते हैं।

**१३७७. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती।**
**व्यख्यन्महिषो दिवम्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **अस्य** ) इस प्राणरूप सूर्य की ( **रोचना** ) दीप्ति अर्थात् प्रभावशक्ति ( **प्राणाद् अपानती** ) प्राणन-क्रिया के पश्चात् अपान की क्रिया करती हुई ( **अन्तः** ) शरीर के अन्दर ( **चरति** ) विचरण करती है। ( **महिषः** ) महान्, प्राण ( **दिवम्** ) शरीर के मूर्धा को भी ( **व्यख्यत्** ) प्रकाशित करता है।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे बाह्य सौर जगत् में सूर्य ग्रह-उपग्रहों को

धारण करता है। वैसे ही मानव शरीर में जीवात्मासहित प्राण, मन, बुद्धि मस्तिष्क, इन्द्रियों आदि को धारण करता है॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ६३२ क्रमांक पर सूर्य और परमात्मा के ही विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ प्राण का विषय वर्णित है।

**१३७८. त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते।**
**प्रति वस्तोरह द्युभिः॥३॥**

**पदार्थ** :—यह प्राण ( **त्रिंशद् धाम** ) दिन रात के तीसों मुहूर्तों में ( **वि राजति** ) शरीर में विराजमान रहता है अर्थात् जाग्रत् अवस्था, स्वप्न अवस्था और सुषुप्त अवस्था तीनों में सक्रिय रहता है, जैसा कि श्रुति है—'प्राण अन्य सबके सो जाने पर भी खड़ा जागता रहता है' (अथ० ११।४।२५) इस ( **पतङ्गाय** ) श्वास-उच्छ्वास की गति से पक्षी के समान चेष्टा करने वाले प्राण के लिए, अर्थात् प्राणायाम के काल में ( **वाक्** ) वाणी ( **धीयते** ) रोक ली जाती है, क्योंकि प्राणायाम करते हुए भाषण सम्भव नहीं है। ( **प्रति वस्तोः** ) प्रतिदिन ( **अह** ) निश्चय ही ( **द्युभिः** ) दीप्त-सूर्य-किरणों से यह प्राण बलवान् होता है॥३॥

**भावार्थ** :—दिन रात शरीर को धारण करता हुआ यह प्राण प्राणियों का महान् उपकार करता है॥३॥

**इत्यैकादशोऽध्यायः, षष्ठप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ द्वादशोऽध्यायः
## षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

(१)

ऋषिः—१, २, ४ गोतमो राहूगणः; ३ वसिष्ठः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमेश्वरोपासना का विषय कहते हैं।

३ १ २ ३१ २र ३ १ २
**१३७९. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये।**

३२ ३ १ २ ३२
**आरे अस्मे च शृण्वते॥१॥**

**पदार्थ** :—(अध्वरम्) हिंसारहित ब्रह्मयज्ञ वा देवयज्ञ में (उपप्रयन्तः) जाते हुए हम (आरे) दूर (अस्मे च) और हमारे समीप (शृण्वते) प्रार्थना-वचनों को सुनने वाले (अग्नये) अग्रनायक जगदीश्वर के लिए (**मन्त्रम्**) वेदमन्त्र को (**वोचेम**) उच्चारण करें॥१॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मयज्ञ वा देवयज्ञ करते हुए मनुष्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का ध्यान किया करें और उससे शिक्षा-ग्रहण किया करें॥१॥

आगे पुनः उसी विषय का कथन है।

१ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१३८०. यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु।**

१ २ ३ २ ३ १ २
**अरक्षद्दाशुषे गयम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(पूर्व्यः) पूर्वजों से साक्षात्कार किया गया (यः) जो अग्रनायक परमेश्वर (स्नीहितीषु) वध करने वाली (कृष्टिषु) शत्रु-प्रजाओं के (संजग्मानासु) मुठभेड़ करने पर (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वाले उपासक के लिए (गयम्) आश्रय को (अरक्षत्) सुरक्षित करता है, उस [अग्नये अग्रनायक परमेश्वर के लिए, हम (**मन्त्रं वोचेम**) वेदमन्त्रों का उच्चारण करें]॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वरोपासक के मार्ग से सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं, परमेश्वर उसे अपना सुरक्षित आश्रय और दिव्य सम्पदाएं प्रदान करता है॥२॥

अगले मन्त्र में उपासक अपनी आकांक्षा प्रकट कर रहा है।

**१३८१. स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः।**
**उतास्मान् पात्वंहसः॥३॥**

**पदार्थ** :-( **सः** ) वह ( **शन्तमः** ) अतिशय शान्तिदायक ( **अग्निः** ) अग्रनायक परमेश्वर ( **नः** ) हमारे ( **अमात्यम्** ) साथ रहने वाले ( **वेदः** ) ज्ञान की वा दिव्य धन की रक्षतु रक्षा करे, ( **उत** ) और ( **अंहसः** ) पाप से ( **नः** ) हमें ( **पातु** ) बचाये॥३॥

**भावार्थ** :-परमात्मा में विश्वास से दिव्य गुण रक्षित होते हैं और पाप नष्ट हो जाते हैं॥३॥

अगले मन्त्र में उपासक क्या कहें यह वर्णन है।

**१३८२. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि।**
**धनञ्जयो रणेरणे॥४॥**

**पदार्थ** :-( **उत** ) और ( **जन्तवः** ) **द्वितीय** जन्म ग्रहण किये हुए द्विज उपासक ( **ब्रुवन्तु** ) हर्ष के साथ कहें कि यह ( **वृत्रहा** ) विघ्नविनाशक ( **अग्निः** ) अग्रनायक परमेश्वर ( **उद् अजनि** ) हमारे हृदय में प्रादुर्भूत हो गया है, जो ( **रणे-रणे** ) प्रत्येक देवासुरसंग्राम में ( **धनञ्जयः** ) दिव्य धन प्राप्त कराने वाला है॥४॥

**भावार्थ** :-आन्तरिक और बाह्य देवासुरसंग्राम में परमेश्वर-विश्वासियों की विजय होती है और विजय से उन्हें दिव्य तथा भौतिक धन प्राप्त होते हैं॥४॥

( २ )

**ऋषिः-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता-अग्निः॥ छन्दः-गायत्री॥ स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २५ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधित की गयी है। यहाँ अपने अन्तरात्मा को सम्बोधन है।

**१३८३. अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।**
**अरं वहन्त्याशवः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**देव**) ज्ञान से प्रकाशमान, (**अग्ने**) देह के अधिष्ठाता मेरे अन्तरात्मन्! (**ये तव**) जो तुम्हारे (**साधवः**) भले (**आशवः**) शीघ्रगामी (**अश्वासः**) मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय रूप घोड़े (**अरम्**) पर्याप्त रूप से (**वहन्ति**) देह-रथ को चलाते हैं, उन्हें (**युङ्क्ष्व**) कार्य में तत्पर करो॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा यदि सावधान नहीं है तो उसके मन, इन्द्रिय आदि घोड़े कुमार्गगामी हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१३८४. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये।**
**आ देवान्त्सोमपीतये॥२॥**

**पदार्थ** :—हे अग्ने! हे परमात्मन्! आप (**नः अच्छ**) हमारी ओर (**आयाहि**) आओ, (**वीतये**) प्रगति के लिए (**प्रयांसि**) शान्तरसों को (**अभि वह**) प्राप्त कराओ, (**देवान्**) विद्वानों को (**सोमपीतये**) वीर रस के पान के लिए (**आ**) प्रेरित करो॥२॥

**भावार्थ** :—संसार में सब लोग वीर होकर शान्ति का प्रसार करें॥२॥

इस प्रकार परमेश्वर से प्रार्थना करके अब फिर जीवात्मा को उद्बोधन देते हैं।

**१३८५. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत्।**
**शोचा वि भाह्यजर॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**भारत**) शरीर का भरण-पोषण करने वाले, (**अजर**) अविनाशी (**अग्ने**) जीवात्मन्! तुम (**द्युमत्**) शोभनीय रूप से (**अजस्रेण**) अविच्छिन्न तेज से (**दविद्युतत्**) अतिशय चमकते हुए (**उत् शोच**) उत्साहित होओ, (**वि भाहि**) विशेष यशस्वी होओ॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा जागरूक होकर मन, बुद्धि आदि का अधिष्ठातृत्व करता हुआ तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी होता हुआ अपनी कीर्ति फैलाये॥३॥

( ३ )

**ऋषिः—प्रजापतिः देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५५३ क्रमांक पर और उत्तरार्चिक में ७७४ क्रमांक में व्याख्याता हो चुकी है। यहाँ उससे भिन्न व्याख्या प्रस्तुत है।

१ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २र
**१३८६. प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः।**
२ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
**अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अन्धसः** ) ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस को ( **सुन्वानाय** ) अपने आत्मा के अन्दर प्रसुत करने वाले मनुष्य के लिए ( **प्र** ) प्रशंसात्मक वचन कहो, ( **मर्तः** ) उससे भिन्न साधारण मनुष्य ( **तत् वचः** ) उस प्रशंसात्मक वचन का ( **न वष्ट** ) अधिकारी नहीं है। हे राज्याधिकारियो! तुम ( **अराधसम्** ) परमेश्वर की आराधना न करने वाले, ( **श्वानम्** ) श्वान के समान लोभ आदि में आसक्त, केवल पेट भरने में लगे हुए मनुष्य को ( **अपहत** ) विनष्ट कर दो, ( **भृगवः** ) सूर्य-किरणें ( **मखं न** ) जैसे व्याप्त अन्धकार को विनष्ट करती हैं॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—राज्याधिकारियों को चाहिए कि जो न परमेश्वर की आराधना करता है, न दीन जनों की सेवा करता है, केवल स्वार्थ-साधन में लगा हुआ पशुओं से भी अधिक निकृष्ट जीवन बिताता है, उसे यथायोग्य दंडित करें॥१॥

अब उपासक कहता है।

२ ३ १ २र ३ २उ ३ २ ३क २र
**१३८७. आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः।**
१ २ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
**सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ॥२॥**

**पदार्थ** :—( **जामिः** ) हमारा बन्धु परमेश्वर, हमारे द्वारा ( **अत्के** ) अन्तरात्मा में ( **अव्यत** ) लाया जा रहा है, ( **न** ) जैसे ( **पुत्रः** ) पुत्र ( **ओण्योः** ) माता-पिता की ( **भुजे** ) भुजा में लाया जाता है। वह ( **सरत्** ) हमारी ओर आ रहा है, ( **जारः न** ) जैसे सूर्य ( **योषणाम्** )

रात्रि के प्रति (**सरत्**) आता है, और (**वरः न**) जैसे वर, कन्या से विवाह करके (**योनिम्**) घर में (**आसदम्**) रहने के लिए (**सरत्**) आता है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—पुत्र के समान, पत्नी के समान और वर के समान प्रिय परमेश्वर का प्रेम और श्रद्धा से ध्यान करके स्तोता-जन परम तृप्ति तथा आनन्द पाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर का महत्त्व वर्णित है॥

**१३८८. स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी।**
**हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह (**वीरः**) काम, क्रोध आदि शत्रुओं को कम्पायमान करने वाला वीर सोम परमेश्वर (**दक्षसाधनः**) बल का साधक है, (**यः**) जो (**रोदसी**) द्युलोक और भूलोक को (**तस्तम्भ**) थामे हुए है। (**वेधाः न**) सूर्य के समान वह (**हरिः**) पापहर्ता परमेश्वर (**योनिम्**) आत्मा-रूप घर में (**आसदम्**) बैठने के लिए (**पवित्रे**) पवित्र अन्तःकरण में (**अव्यत**) आता है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जो बलवान् जगदीश्वर सब संसार को धारण करता है उसकी उपासना से सीमित शक्ति वाला भी मनुष्य महान् शक्तिवाला और शत्रुओं को हराने में समर्थ हो जाता है॥३॥

## (४)

**ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ ऋषभः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३९९ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

**१३८९. अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।**
**युधेदापित्वमिच्छसे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे जीवात्मन्! (**सनात्**) सदा (**जनुषा**) शरीधारणरूप जन्म से तू (**अभ्रातृव्यः**) न शत्रुओं वाला, (**अना**) न नेता वाला और (**अनापिः**) न किसी का बन्धु (**असि**) है, (**युधा इत्**) युद्ध से ही (**आपित्वम्**) किसी को बन्धु वा किसी को शत्रु (**इच्छसे**) मानने लगता है॥१॥

**भावार्थ** :—जब शिशु माता के गर्भ से जन्म लेता है तब न उसका कोई शत्रु, न नेता, न ही बन्धु होता है। बड़ा होकर सांसारिक वासनाओं से वासित वह युद्ध आदि से किसी को शत्रु, किसी को नेता और किसी को बन्धु बना लेता है। युद्ध, विद्वेष आदि छोड़कर उसे सबके साथ मित्रता करके आपस में शान्ति के साथ रहना चाहिए॥१॥

**अगले मन्त्र में परमात्मा को संबोधन है।**

**१३९०. न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।**
**यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! आप (**रेवन्तम्**) जिसके पास केवल धन है, दान, परोपकार आदि नहीं है ऐसे मनुष्य को (**सख्याय**) मित्रता के लिए (**न किः**) कभी नहीं (**विन्दसे**) पाते हो। (**ते**) वे केवल धन वाले लोग (**सुराश्वः**) मदिर-पान द्वारा प्रमत्त हुओं के समान धन के मद से प्रमत्त हुए (**पीयन्ति**) हिंसा करते हैं, सताते हैं। (**यदा**) जब, आप धनवान् को (**नदनुम्**) स्तोत्र नाद गुंजाने वाला स्तोता (**कृणोषि**) बनाते हो तब (**समूहसि**) उसे उत्तम स्थिति प्राप्त करा देते हो, (**आत् इत्**) उसके अनन्तर उससे आप (**पिता इव**) पिता के समान (**हूयसे**) बुलाये जाते हो॥२।

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—धन पाकर जो लोग ऐश्वर्य के मद में मस्त नास्तिक होकर न सत्पात्रों में धन का दान करते हैं, न धर्माचार का सेवन करते हैं, न परमेश्वर को उपासते हैं, उनका धन धन

नहीं, किन्तु उनके लिए मौत ही सिद्ध होता है॥२॥

(५)

**ऋषिः—मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४५ क्रमांक पर अध्यात्म और अधिराष्ट्र रूप में की जा चुकी है। यहाँ सूर्य के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकाशित करते हैं।

**१३९१. आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।**
**ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर! (**हिरण्यये**) ज्योतिर्मय (**रथे**) वेगवान् सूर्यमण्डल में (**युक्ताः**) नियुक्त, (**ब्रह्मयुजः**) बड़े-बड़े ग्रह-उपग्रहों से जुड़ने वाली, (**केशिनः**) प्रकाशमान और प्रकाशक (**सहस्रम्**) हजार (**हरयः**) किरणें (**सोमपीतये**) परमानन्द-रस के पान के लिए (**त्वा**) तुझ जगदीश्वर को (**आवहन्तु**) हमारे समीप लायें, (**शतं सहस्रम्**) सौ हजार किरणें तुझे हमारे समीप लायें-सूर्य और सूर्य की किरणें दर्शकों के सामने परमात्मा की ही महिमा को प्रकाशित करती हैं, इस अभिप्राय से यह कहा गया है॥१॥

**भावार्थ** :—अग्नि, वायु, सूर्य, तारे, बादल, नदी, समुद्र आदियों में विद्यमान विभूति को देखकर उनके निर्माता जगदीश्वर में श्रद्धा करके विद्वान् लोग उसकी उपासना से परम आनन्द का अनुभव करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में उपासक को सम्बोधन किया गया है।

**१३९२. आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या। शितिपृष्ठा**
**वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये॥२॥**

**पदार्थ** :—हे उपासक! (**हिरण्यये**) सुनहरे (**रथे**) रथ में (**मयूरशेप्या**) मोर के रंग के अर्थात् हरे-काले रंग के, और (**शितिपृष्ठाः**) श्वेत पीठ वाले (**हरी**) उत्कृष्ट घोड़े (**त्वा**) तुझे (**विवक्षणस्य**) जगत् के भार को वहन करने वाले जगदीश्वर

के (मध्वः) मधुर (अन्धसः) आनन्द-रस के (पीतये) पान के लिए (आ वहताम्) सार्वजनिक उपासना-गृह में पहुंचायें॥२॥

**भावार्थ** :-उपासक लोग रथ में श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर उपासना-भवन में जाकर परमेश्वर की उपासना करके आनन्द प्राप्त करें॥२॥

आगे फिर उपासक को सम्बोधन है।

**१३९३. पिबा त्वा३स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपाइव।**
**परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय**
**पत्यते॥३॥**

**पदार्थ** :-हे (**गिर्वणः**) वाणियों से परमात्मा का भजन करने वाले उपासक! तू (**परिष्कृतस्य**) स्वभावतः संस्कृत, (**रसिनः**) रसीले (**अस्य**) इस (**सुतस्य**) अभिषुत किये गए ब्रह्मानन्द-रस का (**पिब**) पान कर। किस प्रकार? (**पूर्वपाः इव**) सूर्य से पहले भूमिष्ठ जल को पीने वाले वायु के समान। अर्थात् जैसे वायु नदी, समुद्र आदि के जल को पीता है, वैसे ही तू ब्रह्मानन्द-रस को पी। (**इयम्**) या (**चारुः**) रमणीय (**आसुतिः**) ब्रह्मानन्द-रस की धारा (**मदाय**) उत्साह-प्रदान के लिए (**पत्यते**) समर्थ है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :-मनुष्यों को चाहिए कि उपासना में मग्न होकर ब्रह्मानन्द-रस का पान करें॥३॥

(६)

**ऋषिः-१ ऋजिश्वा; २ ऊर्ध्वसद्मा। देवता-पवमानः सोमः॥ छन्दः-काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती)॥ स्वरः-१ ऋषभः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५८० क्रमांक पर परमेश्वर की आराधना के विषय में की गयी थी। यहाँ ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित करते हैं।

**१३९४. आ सोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्। वनप्रक्षमुदप्रुतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! तुम (**स्तोमम्**) स्तुति करने योग्य, (**अप्तुरम्**) प्राणों में गति देने वाले, (**रजस्तुरम्**) पृथिवी, सूर्य आदि लोकों को गति देने वाले, (**वनप्रक्षम्**) जंगलों को वर्षा-जल से सींचने वाले, (**उदप्रुतम्**) जलों को बहाने वाले सोम-नामक परमात्मा को (**आ सोत**) दुहो अर्थात् उससे आनन्द-रस प्राप्त करो और उसे (**अश्वं न**) बादल के समान (**परि सिञ्चत**) चारों ओर बरसाओ॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे बादल भूमि को जल से सींचता है वैसे ही उपासकों को चाहिए कि ब्रह्मानन्द से अपने तथा दूसरों के आत्मा को पुनः-पुनः से सींचे॥१॥

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द का विषय है।

**१३९५. सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने। ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**ऋतजातः**) सत्य में प्रसिद्ध (**यः**) जो सोम जगदीश्वर (**ऋतेन**) सत्य द्वारा (**वि वावृधे**) विशेष रूप से महिमा में बढ़ रहा है, और जो (**राजा**) विश्व का सम्राट् (**देवः**) प्रकाशक, (**ऋतम्**) सत्यस्वरूप तथा (**बृहत्**) महान् है, उस (**सहस्रधारम्**) सहस्र धाराओं वाले, (**वृषभम्**) मनोरथ पूर्ण करने वाले, (**पयोदुहम्**) आनन्दरूप दूध को दुहने वाले (**प्रियम्**) तृप्तिप्रदाता जगदीश्वर को (**देवाय जन्मने**) दिव्य जन्म पाने के लिए (**आसोत**) दुहो अर्थात् उससे आनन्द रस प्राप्त करो और उसे (**परिसिञ्चत**) चारों ओर सींचो। यहाँ 'आसोत, परिसिञ्चत' पद पूर्वमन्त्र से लाये गये हैं॥२॥

**भावार्थ** :—आनन्द रस के भण्डार परमात्मा से आनन्द-रस परिस्रुत करके मनुष्यों को अपना आत्मा पवित्र करना चाहिए॥२॥

(७)

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की गयी थी। यहाँ आचार्य का विषय कहते हैं।

१३९६. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः॥१॥

**पदार्थ** :—(**विपन्यया**) शिष्यों के विनय व्यवहार से (**समिद्धः**) प्रोत्साहित, (**शुक्रः**) पवित्र हृदय वाला, (**आहुतः**) शिष्यों से आत्मसमर्पण किया हुआ (**अग्निः**) विद्या से प्रकाशित आचार्य (**द्रविणस्युः**) शिष्यों को विद्याधन देने का इच्छुक होता हुआ, उनके (**वृत्राणि**) दोषों को (**जङ्घनत्**) अतिशय रूप से नष्ट करे॥१॥

**भावार्थ** :—गुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे विद्या देने के साथ-साथ शिष्यों के दोषों को भी दूर करें॥१॥

आगे फिर आचार्य का विषय वर्णित करते हैं।

१३९७. गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा॥२॥

**पदार्थ** :—जो (**मातुः**) माता सावित्री के (**गर्भे**) गर्भ में स्थित हो चुका है, जो (**पितुः**) मेरे पिता का भी (**पिता**) द्वितीय जन्म देने वाला है, जो (**अक्षरे**) अक्षर परब्रह्म में (**विदिद्युतानः**) विशेष रूप से प्रकाशमान है, और जो (**ऋतस्य**) सत्य ज्ञान के (**योनिम्**) कारणभूत वेद के (**आसीदन्**) निकट स्थित है, वह (**अग्निः**) विद्या से प्रकाशित आचार्य, मेरे (**वृत्राणि**) दोषों को (**जङ्घनत्**) अतिशय रूप से नष्ट करे। [यहाँ अग्निः, वृत्राणि, जङ्घनत् पद पूर्वमन्त्र से लाये गये हैं]॥२॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं सावित्री और आचार्य के गर्भ में रहकर द्विज हो चुका है वही विद्वान् सच्चरित्र आचार्य शिष्यों को विद्वान् बनाने तथा उनके दोषों को दूर करने में समर्थ होता है॥२॥

अगले मन्त्र में भी आचार्य का ही विषय है।

१३९८. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि॥३॥

**पदार्थ** :—हे (**विचर्षणे**) शिष्यों का हित-अहित देखने वाले, (**जातवेदः**) उत्पन्न पदार्थों वा विद्याओं के ज्ञाता (**अग्ने**) आचार्यवर! आप, (**प्रजावत्**) उत्पन्न सृष्टि के विज्ञान से युक्त (**ब्रह्म**) ब्रह्मज्ञान को (**आभर**) हमें प्रदान करो, (**यत्**) जो (**दिवि**) हमारे तेजस्वी आत्मा में (**दीदयत्**) चमके।।३।।

**भावार्थ** :—गुरु लोग विद्यार्थियों को सृष्टिविज्ञान, पदार्थविज्ञान, भूगोल-खगोल आदि के विज्ञान और शिल्पविज्ञान के साथ ब्रह्मविज्ञान भी सिखायें।।३।।

(८)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५२६ क्रमांक पर जीवात्मा-परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ सूर्य के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा प्रकाशित करते हैं।

१३९९. अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त
रसम्। सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म
पशुमन्ति होता॥१॥

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक अन्तर्यामी जगदीश्वर की (**प्रेषा**) प्रेरणा से, और (**हेमना**) ज्योति से (**पूयमानः**) पवित्र किया जाता हुआ (**देवः**) प्रकाशक वा तापमय सूर्य (**देवेभिः**) प्रकाशक वा सन्तापक किरणों द्वारा (**रसम्**) भूमि के जल से (**समपृक्त**) सम्पर्क करता है। (**सुतः**) भाप बनकर ऊपर प्रेरित किया हुआ तथा मेघ के आकार को प्राप्त हुआ वह जल (**रेभन्**) विद्युद्गर्जना करता हुआ (**पवित्रम्**) अन्तरिक्ष में (**पर्येति**) परिभ्रमण करता है, (**इव**) जैसे (**होता**) होता नामक ऋत्विज् (**मिता**) निर्माण किये हुए (**पशुमन्ति**)

धेनुओं से युक्त (सद्म) गो-सदनों में, गोदुग्ध पाने के लिए (पर्योति) चक्कर काटा करता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ :**—जो यह सूर्य अपने ताप से भूमि पर स्थित जल को भाप बनाकर अन्तरिक्ष में बादलों को रचता और बरसाता है वह सब परमेश्वर की ही महिमा है॥१॥

अगले मन्त्र में मानव को उद्बोधन दिया गया है।

**१४००. भद्रा वस्त्रा समन्या३ वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन्। आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ॥२॥**

**पदार्थ :**—हे मानव! (**समन्या**) संग्राम के योग्य, (**भद्रा**) उत्तम (**वस्त्रा**) वस्त्रों को (**वसानः**) पहनता हुआ, (**महान्**) महान् (**कविः**) विद्वान् (**निवचनानि**) स्तोत्रों का (**शसन्**) कीर्तन करता हुआ, (**चम्वोः**) आत्मा और मन में (**पूयमानः**) पवित्र किया जाता हुआ, (**विचक्षणः**) दूरद्रष्टा, (**देवतीतौ**) परमात्मा की पूजा में (**जागृविः**) जागरूक तू (**आवच्यस्व**) चारों ओर प्रशंसा प्राप्त कर॥२॥

**भावार्थ :**—विघ्नों और विपदाओं से भरे होने के कारण संग्राम-तुल्य जीवन में मनुष्य हृदय में वीर-भाव रखकर, वीरोचित वेशभूषा आदि धारण कर, वीरोचित कार्यों को करता हुआ, जागरूक, पवित्र मन वाला परमेश्वर का पूजक होता हुआ यशस्वी बने॥२॥

अगले मन्त्र में विद्वान् को कहा गया है।

**१४०१. समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे। अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा: नः॥३॥**

**पदार्थ :**—हे विद्वन्! (**क्षैतः**) भूमि के निवासी, (**यशसाम्**)

यशस्वियों के मध्य ( **यशस्तरः** ) अत्यधिक यशस्वी, ( **प्रियः** ) सबके प्रिय आप ( **अस्मे** ) हमारे लिए ( **अव्ये सानौ** ) राष्ट्र भूमि के उच्चपद पर ( **संमृज्यते उ** ) अलंकृत वा अभिषिक्त किये जा रहे हो। ( **पूयमानः** ) पवित्र किये जाते हुए आप ( **धन्व** ) अन्तरिक्ष को ( **अभि स्वर** ) जयघोषों से गुंजा दो। हे विद्वानो! ( **यूयम्** ) आप लोग ( **स्वस्तिभिः** ) कल्याणों से ( **नः** ) हम राष्ट्रवासियों की ( **सदा** ) हमेशा ( **पात** ) रक्षा करते रहो।।३।।

**भावार्थ** :—राष्ट्र में पवित्र आचरण वाले विद्वानों को ही उच्च पदों पर प्रतिष्ठित करना चाहिए।।३।।

( ९ )

ऋषिः—**तिरश्चीः**॥ देवता—**इन्द्रः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥ स्वरः—**गान्धारः**॥

**प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३५० क्रमांक पर अध्यात्म विषय में की गयी थी। यहाँ परमेश्वर, आचार्य और राजा का विषय वर्णित करते हैं।**

**१४०२. एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।**
**शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु॥१॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! ( **एत उ** ) आओ, ( **नु** ) शीघ्र ही, तुम और हम मिलकर ( **शुद्धेन साम्ना** ) शुद्ध स्तोत्र से ( **शुद्धम्** ) शुद्ध ( **इन्द्रम्** ) परमात्मा, आचार्य वा राजा के ( **स्तवाम** ) गुणों का वर्णन करें। ( **शुद्धैः उक्थैः** ) शुद्ध स्तोत्रों वा वेदपाठों से ( **वावृध्वांसम्** ) वृद्धि को प्राप्त प्रत्येक स्तोता, शिष्य वा प्रजाजन को ( **अशीर्वान्** ) आशीर्वादों वा गोदुग्धों का अधिपति वह परमात्मा, आचार्य वा राजा ( **शुद्धैः** ) शुद्ध आशीर्वादों वा शुद्ध गोदुग्धों से ( **ममत्तु** ) आनन्दित करे।।१।।

**भावार्थ** :—स्तुति किये गये परमेश्वर, आचार्य और राजा स्तोताओं को आशीर्वाद देकर और दूध, घी आदि ऐश्वर्य देकर बढ़ाते हैं।।१।।

**अगले मन्त्र में भी परमेश्वर, आचार्य और राजा का ही विषय है।**

**१४०३. इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः।**
**शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमेश्वर, आचार्य वा राजन्! (**शुद्धः**) शुद्ध आप (**नः**) हमारे पास (**आ गहि**) आओ, (**शुद्धः**) शुद्ध आप (**शुद्धाभिः**) शुद्ध (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के साथ आओ। (**शुद्धः**) शुद्ध आप, हमें (**रयिम्**) आध्यात्मिक वा भौतिक ऐश्वर्य (**नि धारय**) प्राप्त कराओ। (**शुद्धः**) शुद्ध आप, हे (**सोम्य**) सौम्य परमेश्वर, आचार्य वा राजन्! (**अस्मान्**) हमें (**ममद्धि**) आनन्दित करो॥२॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं ज्ञान, शरीर, मन, वचन और कर्म से शुद्ध है वही दूसरों को शुद्ध कर सकता है॥२॥

आगे फिर वही विषय कहा गया है।

**१४०४. इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे।**
**शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर, आचार्य वा राजन्! (**शुद्धः हि**) शुद्ध आप (**नः**) हमें (**रयिम्**) विद्या, धन, धान्य, आरोग्य आदि का ऐश्वर्य देते हो। (**शुद्धः**) पवित्र आप (**दाशुषे**) आत्मसमर्पण करने वाले वा परोपकार करने वाले को (**रत्नानि**) अहिंसा, सत्य आदि रत्नों को वा भौतिक रत्नों को देते हो। (**शुद्धः**) शुद्ध आप (**वृत्राणि**) विघ्न, दोष वा शत्रुओं को (**जिघ्नसे**) नष्ट करते हो। (**शुद्धः**) शुद्ध आप (**वाजम्**) बल (**सिषाससि**) देना चाहते हो॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर, आचार्य और राजा ज्ञान, कर्म और चरित्र से शुद्ध होते हुए ही विद्या, सत्य, अहिंसा, आरोग्य, धन बल आदि देने और विघ्न, दोष, शत्रु आदि का विनाश करने में समर्थ होते हैं॥३॥

(१०)

**ऋषिः—सुतम्भर आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की स्तुति का विषय है।

**१४०५. अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः।**
**देवस्य द्रविणस्यवः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**द्रविणस्यवः**) धन और बल की कामना वाले हम (**अद्य**) आज (**दिविस्पृशः**) तेज में प्रवेश कराने वाले, (**देवस्य**) तेजस्वी (**अग्नेः**) अग्रनायक परमात्मा के (**सिध्रम्**) स्वभाव-सिद्ध (**स्तोमम्**) गुण-समूह का (**मनामहे**) बार-बार गान करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना से और उसके गुणगान से मनुष्य आध्यात्मिक ऐश्वर्य तथा आत्मबल प्राप्त कर लेता है॥१॥

अगले मन्त्र में यह कथन है कि परमेश्वर हमारे लिए क्या करे।

**१४०६. अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा।**
**स यक्षद् दैव्यं जनम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अग्निः**) अग्रनायक परमेश्वर (**नः**) हमारी (**गिरः**) स्तुति वा प्रार्थना की वाणियों को (**जुषत**) स्वीकार करे, (**यः**) जो परमेश्वर (**मानुषेषु**) मनुष्यों में (**होता**) उनके जीवन-यज्ञ का होता बनकर (**आ**) निवास कर रहा है। (**सः**) वह (**दैव्यम्**) दिव्य गुणों में निष्णात (**जनम्**) विद्वान् जन को (**यक्षत्**) हमें प्रदान करे॥२॥

**भावार्थ** :—जिस राष्ट्र में दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् मनुष्य होते हैं वह राष्ट्र अत्यन्त उन्नत होता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति की गयी है।

**१४०७. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः।**
**त्वया यज्ञं वि तन्वते॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक तेजस्वी परमात्मन्! आप (**सप्रथाः**) यशस्वी, (**जुष्टः**) प्रिय, (**होता**) सुखप्रदाता, और (**वरेण्यः**) सबसे वरण करने योग्य (**असि**) हो। उपासक लोग (**त्वया**) आपकी सहायता से (**यज्ञम्**) जीवन-यज्ञ को (**वितन्वते**)

फैलाते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य अपने जीवन रूप यज्ञ को परम यशस्वी परमेश्वर के सहयोग से ही पूर्ण कर सकते हैं॥३॥

( ११ )

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ५२८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ राजा और जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१४०८. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशंत वाणीः। वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) राजा के पक्ष में। (**वाणीः**) प्रजाओं की वाणियाँ (**त्रिपृष्ठम्**) प्रजा, सभा-समिति और सेना इन तीन पृष्ठों वाले, (**वृषभम्**) बलवान् वा सुखवर्षी, (**वयोधाम्**) अन्न प्रदान करने वाले, (**अङ्गोषिणम्**) राज्य के सब अंगों में व्याप्त होने वाले राजा को (**अभि अवावशन्त**) प्रशंसित करती हैं। (**वनाः**) जंगलों को (**वसानः**) आच्छादित करते हुए (**वरुणः न**) अग्नि के समान (**वना**) तेजों को (**वसानः**) धारण करता हुआ वह राजा (**सिन्धुः**) समुद्र के समान (**रत्नधाः**) रत्नों को धारण करने वाला होता हुआ (**वार्याणि**) वरणीय रत्नों अर्थात् रमणीय ऐश्वर्यों को (**वि दयते**) विशेष रूप से प्रजाओं को प्रदान करता है।

(**द्वितीय**) जीवात्मा के पक्ष में। (**वाणीः**) वेदवाणियां (**त्रिपृष्ठम्**) ज्ञान, कर्म, उपासना रूप तीन पृष्ठों वाले, (**वृषणम्**) बलवान् वा बल बरसाने वाले, (**वयोधाम्**) आयु को धारण करने वाले, (**अङ्गोषिणम्**) ईश-स्तुति करने वाले जीवात्मा की (**अभि अवावशन्त**) स्तुति करती हैं अर्थात् महत्ता वर्णन करती हैं, "तू विद्वान् है, वर्चस्वी है, शरीर-रक्षक है। श्रेष्ठों से मिल,

बराबर वालों से आगे बढ़ (अथ० २।११।४)"। आदि मन्त्रों से आत्मा को उद्बोधन देती हैं। (**वरुणः न**) सूर्य के समान (**वना**) तेजों को (**वसानः**) धारण करता हुआ, (**सिन्धुः**) रत्नों के खजाने समुद्र के समान (**रत्नधाः**) रमणीय सद्गुण रूप रत्नों को धारण करने वाला वह सोम जीवात्मा (**वार्याणि**) निवारण करने योग्य विघ्न आदियों को (**विदयते**) विशेष रूप से विनष्ट कर देता है।

यहाँ श्लेष, श्लिष्टोपमा और लुप्तोपमा अलंकार हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जो राजा प्रजाओं का अनुरञ्जन करता है प्रजा भी उसके गुणगान करती है। वैसे ही जो देहधारी जीवात्मा अपनी शक्ति को पहचानकर अपने तेजों से सब आन्तरिक और बाह्य विघ्नों का उन्मूलन करता है वह सर्वत्र विजयलाभ करता है॥१॥

अगले मन्त्र में राजा और जीवात्मा को उद्बोधन देते हैं।

**१४०९. शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि। तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान् पृतनासु शत्रून्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) राजा के पक्ष में। हे सोम अर्थात् वीर राजन्! (**शूरग्रामः**) शूर योद्धा-गण वाले, (**सर्ववीराः**) सब वीर प्रजाओं वाले, (**सहावान्**) सहनशील, (**जेता**) विजयशील, (**धनानि**) ऐश्वर्यों के (**सनिता**) दाता, (**तिग्मायुधः**) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों वाले, (**क्षिप्रधन्वा**) शीघ्र धनुष वाले, (**समत्सु**) युद्धों में (**अषाढः**) परास्त न होने वाले, (**पृतनासु**) शत्रु-सेनाओं में (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**साह्वान्**) पराजित करने वाले आप (**पवस्व**) पराक्रम दिखाओ।

(**द्वितीय**) जीवात्मा के पक्ष में। हे सोम जीवात्मन्! (**शूरग्रामः**) शूर प्राण-गण वाला, (**सर्ववीरः**) जिसके मन, बुद्धि आदि सब वीर हैं ऐसा, (**सहावान्**) उत्साही, (**जेता**) विजयशील, (**धनानि**) सद्गुणरूप ऐश्वर्यों को (**सनिता**) प्राप्त करने वाला, (**तिग्मायुधः**) तीक्ष्ण शत्रुदाहक तेजों वाला, (**क्षिप्रधन्वा**) वेग से चलने वाले

प्रणव-जप रूप धनुष वाला, ( **समत्सु** ) आन्तरिक देवासुर संग्रामों में ( **अषाढः** ) पराजित न होने वाला, ( **पृतनासु** ) काम, क्रोध आदि की सेनाओं में ( **शत्रून्** ) शत्रुओं को ( **साह्वान्** ) पराजित करने वाला तू ( **पवस्व** ) क्रियाशील हो अथवा स्वयं को पवित्र रख।।२।।

यहाँ श्लेषालंकार है। विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार भी है। ऐसे विलक्षण गुणों से सुशोभित भी तू यदि विक्रम नहीं दिखाता, क्रियाशील नहीं होता अथवा पवित्र आचरण नहीं रखता तो ये गुण भारस्वरूप ही होंगे यह आशय है।।२।।

**भावार्थ** :—देह में मनुष्य का आत्मा और राष्ट्र में राजा यदि शत्रुओं को पराजित करके योगक्षेम करते हैं तो देह और राष्ट्र का स्वराज्य अक्षुण्ण रहता है।।२।।

अगले मन्त्र में परमात्मा और राजा से प्रार्थना की गयी है।

**१४१०. उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन्त्समीचीने आ पवस्वा पुरन्धी। अपः सिषासन्नुषसः स्वा३र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान्॥३॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हे सोम अर्थात् सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! ( **उरुगव्यूतिः** ) विस्तीर्ण मार्ग या कार्यक्षेत्र वाले, सबको ( **अभयानि** ) निर्भय ( **कृण्वन्** ) करने वाले आप ( **समीचीने** ) आपस में संगति रखने वाले ( **पुरन्धी** ) द्युलोक तथा भूलोक को और देहपुरी के धारणकर्ता प्राण-अपान को ( **आ पवस्व** ) पवित्र करो। ( **अपः** ) जलों को, ( **उषसः** ) उषाओं को ( **स्वः** ) सूर्य को और ( **गाः** ) भूमियों को ( **सिषासन्** ) देने वाले आप ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिए ( **महः वाजान्** ) महान् अन्न, धन, बल आदि को ( **सं चिक्रदः** ) बुलाते हो, प्रदान करते हो।

( **द्वितीय** ) राजा के पक्ष में। हे सोम अर्थात् प्रजापालक राजन्! ( **उरुगव्यूतिः** ) राष्ट्र में यातायात के लिए चौड़े मार्ग बनवाने वाले, और उन मार्गों पर ( **अभयानि** ) निर्भयता ( **कृण्वन्** ) करने वाले आप ( **समीचीने** ) भली-भाँति कार्य में तत्पर ( **पुरन्धी** ) स्त्री-पुरुषों को ( **आ पवस्व** ) सहायता के लिए प्राप्त होओ।

आप (अपः) नदी, प्रपात आदि के जलों को, (उषसः) बिजलियों को, (स्वः) सूर्य, को, और (गाः) भूमियों को (सिषासन्) उपयोग में लाने की योजनाएं बनाते हुए (अस्मभ्यम्) हम प्रजाओं के लिए (महः वाजान्) महान्, अन्न, धन आदि (संचिक्रदः) बुलाओ, प्राप्त कराओ॥३॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर ने हमारे लिए भूमि, जल, वायु बिजली, सूर्य-किरणें आदि पदार्थ बिना मूल्य के दिये हुए हैं। राजा का कर्तव्य है कि उनका शिल्पकार्यों में उपयोग करके राष्ट्रवासियों को सुखी करे॥३॥

## (१२)

**ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४८ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहाँ एक-साथ परमात्मा, राजा और आचार्य का विषय वर्णित करते हैं।

**१४११. त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः। त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) परमात्मन्, राजन् व आचार्य! (त्वम्) आप (यशाः) यशस्वी, (ऋजीषी) सरल नीति वाले, और (शवसः पतिः) आत्मबल, देहबल वा विद्याबल के स्वामी (असि) हो। (एकः इत्) अद्वितीय ही (त्वम्) आप (पुरु) बहुत से (अप्रतीनि) अप्रतिद्वन्द्वी अज्ञान, पाप, दुःख, दुर्व्यसन आदि को (हंसि) विनष्ट करते हो। हे परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! आप (अनुत्तः) किसी से प्रेरित किये बिना, स्वतः ही (चर्षणी धृतिः) मनुष्यों को धारण करने वाले होते हो॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर संसार का उपकार करने वाले अपने कार्यों से यशस्वी होता हुआ सरल नीति से सब दोष, दुःख, दुर्व्यसन आदि को नष्ट करता है वैसे ही राजा और गुरु को करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा, राजा और आचार्य को कहते हैं।

**१४१२. तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे। महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्नवन्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (असुर) प्रशस्त प्राणों वाले वा दोषों को दूर करने वाले परमात्मन्, राजन् वा आचार्य! (**प्रचेतसम्**) प्रकृष्ट चित्त वाले (**तम् उ त्वा**) उन प्रसिद्ध आपसे (**नूनम्**) निश्चय ही, हम (**राधः**) दिव्य और भौतिक ऐश्वर्य वा विद्या आदि धन (**ईमहे**) मांगते हैं, (**भागम् इव**) जैसे पुत्र पिता से दायभाग मांगता है। हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् परमात्मन् राजन् वा आचार्य! (**ते**) आपकी (**कृत्तिः**) कीर्ति और (**शरणा**) शरण (**महीव**) महती पृथिवी के समान विशाल है। (**ते**) आपके (सुम्ना) सुख (नः) हमें (**अश्नवन्**) प्राप्त हों।

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर यशस्वी, शरणप्रदाता, सुखदाता, दोष दूर करने वाला, प्राणदाता और धनदाता है वैसे ही राजा और आचार्य को होना चाहिए॥२॥

## (१३)

**ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ ऋषभः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहाँ आचार्य का विषय वर्णित करते हैं।

**१४१३. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे अग्नि अर्थात् तेजस्वी विद्वन्! (**यजिष्ठम्**) अतिशय परमेश्वरपूजक वा पंचमहायज्ञों को करने वाले, (**देवत्रा देवम्**) ज्ञान के प्रकाशक विद्वानों में भी विशिष्ट विद्वान् (**होतारम्**) सुख-प्रदाता, (**अमर्त्यम्**) यशः शरीर से अमर, (**अस्य यज्ञस्य**) इस विद्या-यज्ञ के (**सुक्रतुम्**) सुकर्ता (**त्वा**) आपको, हम विद्यार्थी (**ववृमहे**) आचार्य रूप में वरण करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—आस्तिक, याज्ञिक, चरित्रवान् शिक्षण-कला में कुशल विद्वान् मनुष्य को ही पढ़ाने के काम में लगाना चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में एक साथ परमात्मा, राजा और आचार्य तीनों का विषय है।

**१४१४. अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम्।**
**स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अपाम्**) उत्कृष्ट प्राणों वा उत्कृष्ट कर्मों को (**नपातम्**) अध:पतित न करने वाले, (**सुभगाम्**) अत्यधिक यशस्वी, (**सुदीदितिम्**) उत्कृष्ट तेज देने वाले, (**श्रेष्ठशोचिषम्**) उत्तम तेज से युक्त (**अग्निम् उ**) मार्गदर्शक परमात्मा, राजा वा आचार्य को, हम (**ववृमहे**) वरण करते हैं। (**सः**) वह परमात्मा राजा वा आचार्य (**मित्रस्य**) सूर्य वा प्राण के, (**वरुणस्य**) वायु, बिजली वा अपान के (**सः**) वह परमात्मा राजा वा आचार्य (**अपाम्**) जलों के, व्याप्त लोकों के वा प्राणों के (**सुम्नम्**) सुख वा सुखदायक ज्ञान को (**नः**) हमारे (**दिवि**) तेजोमय जीवात्मा में (**आ यक्षते**) प्राप्त कराये। [यहाँ 'ववृमहे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है]।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर सबकी उन्नति करने वाला, यशस्वी, तेजस्वी, तेज देने वाला, सुखदाता और ज्ञानप्रदाता है। वैसे ही राजा और आचार्य के गुणों का वर्णन होने से इस खण्ड की पूर्व खण्ड के साथ संगति है।

**(१४)**

**ऋषि:—शुन: शेप आजीगर्ति:॥ देवता—अग्नि:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥**

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जगदीश्वर की स्तुति है।

**१४१५. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुना:।**
**स यन्ता शश्वतीरिष:॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक, तेजस्वी, सर्वान्तर्यामी

जगदीश्वर! आप ( **यं मर्त्यम्** ) जिस मनुष्य की ( **पृत्सु** ) देवासुरसंग्रामों में ( **अवाः** ) रक्षा करो, ( **यम्** ) और जिसे ( **वाजेषु** ) आत्मिक, शारीरिक तथा सामाजिक बल की प्राप्ति के लिए ( **जुनाः** ) प्रेरित करो, ( **सः** ) वह ( **शश्वतीः** ) बहुत सी ( **इषः** ) अध्यात्म सम्पदाओं को ( **यन्ता** ) प्राप्त कर ले॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य को विजय के लिए और ऐहिक तथा पारलौकिक समृद्धि के लिए अपने पुरुषार्थ के अतिरिक्त परमात्मा की कृपा भी अपेक्षित होती है॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर की कृपा का फल वर्णित है।

**१४१६. न किरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्।**
**वाजो अस्ति श्रवाय्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **सहन्त्य** ) शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले अग्रणी परमात्मन्! ( **कयस्य चित्** ) युद्ध विद्या के ज्ञाता ( **अस्य** ) इस आपके स्तोता को ( **पर्येता** ) घेरने वाला वा उस पर आक्रमण करने वाला ( **न किः** ) कोई नहीं होता, प्रत्युत ( **वाजः** ) युद्ध ( **श्रवाय्यः** ) उसका यश फैलाने वाला ( **भवति** ) होता है॥२॥

**भावार्थ** :—जिस पर जगदीश्वर कृपा करता है उसे युद्ध में कोई भी हरा नहीं सकता, अपितु वह विजयश्री को प्राप्त करता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१४१७. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता।**
**विप्रेभिरस्तु सनिता॥३॥**

**पदार्थ** :—( **विश्वचर्षणिः** ) सब मनुष्यों पर अनुग्रह करने वाला ( **सः** ) वह अग्रणी जगदीश्वर ( **अर्वद्भिः** ) आक्रमणकारी क्षत्रिय योद्धाओं द्वारा ( **वाजम्** ) संग्राम को ( **तरुता** ) पार कराने वाला ( **अस्तु** ) होवे। और, ( **विप्रेभिः** ) मेधावी ब्राह्मणों द्वारा ( **सनिता** ) ज्ञान आदि को देने वाला ( **अस्तु** ) होवे॥३॥

**भावार्थ** :—निराकार परमेश्वर ब्राह्मणों के माध्यम से ज्ञान का दान, क्षत्रियों के माध्यम से रक्षा, वैश्या के माध्यम से पोषक

पदार्थों का दान करता हुआ मनुष्यों का उपकार करता है।।३।।

( १५ )

**ऋषिः—नोधाः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५३८ क्रमांक पर सोम ओषधि और परमात्मा की प्राप्ति के विषय में की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा की ही प्राप्ति का विषय भिन्न प्रकार से वर्णित है।

**१४१८. साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः। हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी॥१॥**

**पदार्थ** :—( **धीरस्य** ) ध्यान में संलग्न जीवात्मा को ( **साकमुक्षः** ) एक साथ ज्ञान से सींचने वाली, ( **स्वसारः** ) बहिनों के समान प्रिय, ( **धनुत्र्यः** ) तृप्ति प्रदान करने वाली ( **दश** ) दस ( **धीतयः** ) चार वेद और छह वेदांग रूप प्रज्ञाएं ( **मर्जयन्त** ) शुद्ध करती हैं। तब ( **सूर्यस्य** ) सूर्य के समान प्रकाशमान और प्रकाशक परमात्मा का ( **जाः** ) पुत्र ( **हरिः** ) जीवात्मा ( **पर्यद्रवत्** ) परमात्मा को पाने के लिए सक्रिय हो जाता है, और ( **अत्यः न** ) घोड़े के समान ( **वाजी** ) वेगवान् वह ( **द्रोणम्** ) प्राप्तव्य उस अपने पिता परमात्मा को ( **ननक्षे** ) पा लेता है।।१।।

यहाँ उपमालंकार है। द्वितीय चरण में धकार का और चतुर्थ में नकार का अनुप्रास है।।१।।

**भावार्थ** :—वेद-वेदांगों को आचार्य से भलीभांति पढ़कर ज्ञानी और अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाला जीव अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।।१।।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा की प्राप्ति का विषय है।

**१४१९. सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः। मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्त्रियाभिः॥२॥**

**पदार्थ** :–( **वावशानः** ) माँ को चाहता हुआ ( **शिशुः** ) शिशु ( **मातृभिः न** ) जैसे माताओं से धारण किया जाता है, वैसे ही ( **वावशानः** ) परमात्मा को चाहता हुआ, ( **वृषा** ) उसे अपने प्रेम से सींचने वाला, ( **पुरुवारः** ) बहुत-से सद्गुणों को वरने वाला सोम जीवात्मा ( **अद्भिः** ) परमात्मा के पास से आयी हुई आनन्द-धाराओं से ( **सं दधन्वे** ) भली-भाँति धारण किया जाता है और ( **मर्यः न** ) मर्त्य पुरुष जैसे ( **योषाम् अभि** ) पत्नी के प्रति प्रेम से जाता है, वैसे ही ( **निष्कृतम् अभि** ) श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभावों से अलंकृत परमात्मा के प्रति ( **यन्** ) जाता हुआ वह ( **कलशे** ) आनन्द की कलाओं से परिपूर्ण मोक्षधाम में ( **संगच्छते** ) संगत हो जाता है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के प्रति उत्कट प्रेम और उत्कट श्रद्धा उसकी प्राप्ति में बड़े कारण बनते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में आनन्द-प्राप्ति का वर्णन है।

**१४२०. उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः। मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः॥३॥**

**पदार्थ** :–( **उत** ) और, जीवात्मा-रूपी बछड़े को देखकर ( **अघ्न्यायाः** ) जगन्मातारूपिणी दुधारु गाय का ( **ऊधः** ) ऊधस् ( **प्र पिप्ये** ) आनन्दरूप दूध से जब बढ़ जाता है, तब ( **सुमेधाः** ) उत्कृष्ट मेधा वाला ( **इन्दुः** ) जीवात्मा-रूपी बछड़ा ( **धाराभिः** ) आनन्द की धारों से ( **सचते** ) संयुक्त हो जाता है। ( **गावः** ) ज्ञानेन्द्रिय-रूप गौएं ( **पयसा** ) ज्ञान रूप दूध से ( **मूर्धानम्** ) शरीर के प्रधान जीवात्मा को ( **चमूषु** ) प्राण-रूप पतीलों में ( **अभि श्रीणन्ति** ) परिपक्व करती हैं ( **न** ) जैसे ( **निक्तैः** ) शुद्ध ( **वसुभिः** ) सूर्यकिरणों से फल आदि पकते हैं॥३॥

यहाँ उपमा और निगरणरूप अतिशयोक्ति अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जैसे बछड़ा अपनी माँ गाय का दूध पीता है, वैसे ही उपासक जगन्माता के आनन्द-रस का पान करता है॥३॥

( १६ )

ऋषि:—मेधातिथि: काण्व:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—बार्हत: प्रगाथ: ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वर:—१ मध्यम:; २ पञ्चम:॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २३९ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ परमेश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं।

**१४२१. पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमत:। आपिर्नो बोधि सधमाद्ये वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धिय:॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) विघ्नों के विनाशक सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! आप ( **रसिन:** ) रसीले ( **सुतस्य** ) प्रकट हुए मेरे प्रेमरस का ( **पिब** ) पान करो, ( **गोमत:** ) गाय आदि के ऐश्वर्यों से युक्त ( **न:** ) हम लोगों को ( **मत्स्व** ) आनन्दित करो। ( **सदमादे** ) सहयात्रा में ( **वृधे** ) बढ़ाने के लिए ( **आपि:** ) बन्धु बने हुए आप ( **न:** ) हमें ( **बोधि** ) बोध दो। ( **ते** ) आपके ( **धिय:** ) प्रज्ञा और कर्म ( **अस्मान्** ) हम उपासकों की ( **अवन्तु** ) रक्षा करें॥१॥

**भावार्थ** :—यदि हम परमात्मा से स्नेह करते हैं तो वह भी हमसे स्नेह करता है और सद्बुद्धि, सत्कर्म आदि देकर हमारा उपकार करता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर परमेश्वर से प्रार्थना है।

**१४२२. भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये। अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा न: सुम्नेषु यामय॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश्वर! ( **वयम्** ) आपके उपासक हम ( **वाजिन्** ) बलवान् होते हुए ( **ते** ) आपकी ( **सुमतौ** ) सुमति में ( **भूयाम** ) होवें, अर्थात् आपसे मिलने वाली सुमति के पात्र बनें। आप ( **न:** ) हमें ( **अभिमातये** ) अभिमान के ( **मा स्त:** ) वशीभूत मत होने दो। ( **अस्मान्** ) हम स्तोताओं की ( **चित्राभि:** ) अद्भुत

(अभिष्टिभिः) अभीष्ट आध्यात्मिक और भौतिक सम्पत्तियों से (अवतात्) रक्षा करो। साथ ही (नः) हमें (सुम्नेषु) दिव्य आनन्दों में (आ यामय) रमाओ॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य सुमति को पाकर और अभिमान को दूर करके जगदीश्वर से रक्षा किया जाकर सुखी होता है॥२॥

## (१७)

**ऋषिः—रेणुर्वैश्वामित्रः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५६० क्रमांक पर स्तोता के विषय में हो चुकी है। यहाँ सोमयाग का फल वर्णित है।

**१४२३. त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि। चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत॥१॥**

**पदार्थ** :—(**परमे**) उत्कृष्ट, (**व्योमनि**) विशेषरूप से रक्षक सोमयाग में (**अस्मै**) इस यागकर्ता के लिए (**सप्त धेनवः**) गायत्र्यादि सात छन्दों वाली वेदवाणी रूप गौएं (**त्रिः**) दिन में तीन बार अर्थात् प्रातः सवन, माध्यन्दिन-सवन और सायं-सवन में (**सत्याम् आशिरम्**) सत्यरूप दूध (**दुदुह्रिरे**) दुहती हैं। वह यागकर्ता (**यत्**) जब (**ऋतैः**) सत्य के ग्रहण द्वारा (**अवर्धत**) वृद्धि प्राप्त करता है, तब (**निर्णिजे**) आत्मशोधन के लिए (**चत्वारि**) चार, (**चारूणि**) सुरम्य (**अन्या भुवनानि**) अन्य लोकों-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास को (**चक्रे**) अपने लिए निर्धारित कर लेता है अर्थात् याग के काल में गृहस्थ होता है उसके बाद वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में भी प्रविष्ट होता है॥१॥

**भावार्थ** :—याग आत्मशुद्धि और सत्य के अनुष्ठानार्थ होते हैं। जीवन में सत्य को अपनाकर ब्रह्मचर्य से लेकर संन्यास पर्यन्त आश्रमों का पालन करके अपने और दूसरों के दुःख दूर करने चाहिएं॥१॥

आगे परमात्मा के उपासक का विषय है।

**१४२४. स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि शश्रथे। तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा सदो विदुः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**सः**) वह परमेश्वर का उपासक (**चारुणः**) सुन्दर (**अमृतस्य**) उपासनाजन्य दिव्य आनन्द का (**भक्षमाणः**) सेवन करता हुआ (**काव्येन**) वेदकाव्य द्वारा (**उभे द्यावा**) दीप्यमान दोनों अभ्युदय और निःश्रेयस वा ज्ञान और कर्म को (**विशश्रथे**) विश्लेषणपूर्वक जान लेता है। साथ ही (**मंहना**) अपने महत्त्व से (**तेजिष्ठाः अपः**) अतिशय तेजस्वी कर्मों को (**परि व्यत**) धारण कर लेता है अर्थात् जीवन का अङ्ग बना लेता है (**यदि**) जिन्हें (**सदः**) शिष्यभाव से आचार्य से समीप पहुँचने वाले विद्यार्थी (**देवस्य**) ज्ञान के प्रकाशक आचार्य के (**श्रवसा**) उपदेश श्रवण से (**विदुः**) जाना करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की उपासना का यह फल होता है कि उपासक कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेचन करके प्रशस्त कर्मों का ही आचरण करता है, निन्दित का नहीं॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के तेज का विषय है।

**१४२५. ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु। येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत॥३॥**

**पदार्थ** :–(**अस्य**) इस सोम परमात्मा की (**ते**) वे प्रसिद्ध (**अमृत्यवः**) अमरणशील वा न मारने वाली, (**अदाभ्यासः**) पराजित न की जा सकने वाली (**केतवः**) तेज की किरणें (**उभे जनुषी**) दोनों जन्मों को अर्थात् इस जन्म तथा अगले जन्म को (**अनु सन्तु**) अनुगृहीत करें, (**येभिः**) जिन तेज की किरणों से (**मननाः**) मननशील उपासक अपने (**नृम्णा च**) देह-बल से किये जाने योग्य कर्मों को (**दैव्या च**) और आत्म-बल से किये जाने योग्य कर्मों को (**पुनते**) पवित्र कर लेते हैं। (**आत् इत्**)

और उसके अनन्तर ही (राजानम्) तेजस्वी परमेश्वर को (अगृभ्णत) ग्रहण कर पाते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के तेजों का ध्यान करने तथा उन्हें धारण करने से यह लोक, परलोक और सब कर्म शुद्ध हो जाते हैं तथा परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है॥३॥

(१८)

**ऋषिः—कुत्सः। देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में उपासक को प्रेरित किया गया है।

**१४२६. अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानो३ऽभि मित्रावरुणा पूयमानः। अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् शान्तिमय उपासक! (**गृणानः**) परमात्मा की स्तुति करता हुआ तू (**वीती**) वेग से (**वायुम्**) गतिशील मन को (**अभि अर्ष**) परमात्मा के प्रति प्रेरित कर। (**पूयमानः**) पवित्र किया जाता हुआ तू (**मित्रावरुणा**) प्राण-अपान को (**अभि अर्ष**) परमात्मा के प्रति प्रेरित कर, (**धीजवनम्**) ध्यान में वेगवान्, (**रथेष्ठाम्**) देह-रथ में स्थित (**नरम्**) नेता जीवात्मा को (**अभि अर्ष**) परमात्मा के प्रति प्रेरित कर। और (**वृषणम्**) सुखवर्षक, (**वज्रबाहुम्**) शस्त्रास्त्रधारी सेनापति के समान शत्रुओं के विनाश में समर्थ (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**अभि अर्ष**) अपनी ओर प्रेरित कर॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य जब अपने मन, बुद्धि, प्राण-अपान, और जीवात्मा को परमात्मा की ओर प्रेरित करता है तब परमात्मा झट स्वयं ही उसके सम्मुख प्रकट हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**१४२७. अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः। अभि चन्द्रा भर्त्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव सोम॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**देव**) दानादि गुणों से युक्त (**सोम**) जगत्पति

परमात्मन्! आप हमारे लिए (**सुवसनानि**) सुन्दरता से धारण करने योग्य (**वस्त्रा**) वस्त्र (**अभि अर्ष**) प्रदान करो, (**पूयमानः**) मन में विद्यमान काम, क्रोध आदि से पृथक् करके पवित्र रूप में दर्शन किये जाते हुए आप (**सुदुधाः**) दुधारु (**धेनूः**) धेनुएं (**अभि अर्ष**) प्रदान करो। (**नः**) हमारे (**भर्तवे**) भरण-पोषण के लिए (**चन्द्रा**) चांदी और (**हिरण्या**) सुवर्ण (**अभि अर्ष**) प्रदान करो। साथ ही (**रथिनः**) रथ में जुड़ने वाले (**अश्वान्**) घोड़े (**अभि अर्ष**) प्रदान करो॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों के समाज में कोई वस्त्रहीन, गोदुग्धहीन, धनहीन और वाहनहीन न रहे, प्रत्युत सभी श्रीमान् और गुणवान् होवें॥२॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

१४२८. **अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः। अभि येन द्रविणमश्नवामाभ्यार्षेयं जमदग्निवन्नः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे सोम जगदीश्वर! आप (**नः**) हमें (**दिव्या वसूनि**) सत्य, अहिंसा आदि दिव्य ऐश्वर्य (**अभि अर्ष**) प्राप्त कराओ, (**पूयमानः**) मन में विद्यमान काम, क्रोध आदि से पृथक् करके विशुद्ध रूप में दर्शन किये जाते हुए आप (**विश्वा**) सब (**पार्थिवा**) पार्थिव धन (**अभि अर्ष**) प्राप्त कराओ। हम (**येन**) जिसके द्वारा (**द्रविणम्**) दिव्यज्ञान (**अभ्यश्नवाम**) प्राप्त कर सकें, वह (**आर्षेयम्**) आर्ष चक्षु (**जमदग्निवत्**) जैसे प्रज्वलित अग्नि वाले अग्निहोत्री को आप देते हो वैसे ही (**नः**) हमें भी (**अभि अर्ष**) प्रदान करो॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से हम समस्त भौतिक और दिव्य धन तथा आर्ष चक्षु प्राप्त कर लें, जिससे सब सत्य ज्ञान और गूढ़ रहस्य भी हमारे सम्मुख हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाएं॥३॥

(१९)

**ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१, २ अनुष्टुप्; ३ बृहती। स्वरः—१, २ गान्धारः; ३ मध्यमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६०९ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ भी वही विषय प्रकारान्तर से दर्शाया जा रहा है।

**१४२९. यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय।**
**तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अपूर्व्य**) स्वयम्भू, (**मघवन्**) ऐश्वर्यशाली इन्द्र जगदीश्वर! (**यत्**) क्योंकि, आप (**वृत्रहत्याय**) विघ्नों के विनाश के लिए (**जायथाः**) समर्थ हो, (**तत्**) इसी कारण, आप (**पृथिवीम्**) भूमण्डल को (**अप्रथयः**) फैला सके हो, (**उत उ**) और (**तत्**) इसी कारण (**दिवम्**) सूर्य को (**अस्तभ्नाः**) स्थिर कर सके हो॥१॥

**भावार्थ** :—जो विघ्नों को विनष्ट करने में समर्थ होता है वही हाथ में लिये हुए कार्यों में सफल होता है॥१॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की महिमा का वर्णन है।

**१४३०. तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः।**
**तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश्वर! क्योंकि आप विघ्नों के विनाश में समर्थ हो (**तत्**) इसी कारण (**ते**) आपका (**यज्ञः**) सृष्टिरूप यज्ञ (**अजायत**) उत्पन्न हो सका है। (**तत्**) इसी कारण (**अर्कः**) सूर्य (**उत**) और (**हस्कृतिः**) बिजली का अट्टहास उत्पन्न हो सका है। (**तत्**) इसी कारण (**विश्वम्**) सब कुछ (**यत् जातम्**) जो पैदा हो चुका है। (**यत् च जन्त्वम्**) और जो भविष्य में पैदा होना है, उसे आप (**अभिभूः असि**) अपनी महिमा से तिरस्कृत किये हुए हो॥२॥

**भावार्थ** :—विघ्नों के विनाश में समर्थ होने से ही परमेश्वर सूर्य, चन्द्र, बिजली, नक्षत्र आदि से युक्त इस सब जगत् को बनाने और धारण करने में सफल होता है॥२॥

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय है।

**१४३१. आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि। घर्मं**
**न सामं तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्॥३॥**

**पदार्थ** :–हे इन्द्र जगदीश्वर! आपने (**अमासु**) अपरिपक्व ओषधियों में (**पक्वम्**) पका फल, अथवा (**अमासु**) अपरिपक्व गायों में (**पक्वम्**) पका दूध (**ऐरयः**) प्रेरित किया है, (**दिवि**) आकाश में (**सूर्यम्**) सूर्य को (**आरोहयः**) चढ़ाया है। हे मनुष्यो! तुम (**गिर्वणसे**) वाणियों से संभजनीय इन्द्र जगदीश्वर के लिए (**जुष्टम्**) प्रिय (**बृहत्**) महान् (**सामन्**) स्तोत्र को (**धर्मम् न**) अग्नि के समान (**तपत**) परिपक्व और प्रकाशित करो।।३।।

यहाँ उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :–तपस्या से पका हुआ ही स्तोत्र परमात्मा के चित्त को आकृष्ट करता है और फलदायक होता है।।३।।

(२०)

**ऋषिः–अगस्त्यः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–१ स्कन्धोग्रीवी बृहती; २, ३ अनुष्टुप्॥ स्वरः–१ मध्यमः; २, ३ गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द का विषय वर्णित है।

**१४३२. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः।**
**वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (**हरिवः**) ऋक् और साम वाले इन्द्र जगदीश्वर! आप (**मत्सि**) आनन्दित करते हो। (**महः पात्रस्य इव**) रस से भरे हुए बड़े घट आदिपात्र के तुल्य (**ते**) आपका (**मदः**) उत्साहित करने वाला (**मत्सरः**) आनन्द-रूप सोमरस (**अपायि**) मैंने पी लिया है। अब अपने अन्तरात्मा को कहते हैं–हे मेरे अन्तरात्मन्! (**वृष्णे**) बलवान् (**ते**) तेरे लिए यह (**वृषा**) औरों पर सुख वर्षा करने वाला (**वाजी**) बलवान् (**इन्दुः**) आनन्दरूप सोमरस (**सहस्रसातमः**) असंख्य लाभ पहुंचाने वाला है।।१।।

यहाँ उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :–परमेश्वर जल से पूर्ण कलश के समान आनन्द-रस से परिपूर्ण है। उसका आनन्द-रस पान करके स्तोता का आत्मा कृतार्थ हो जाता है।।१।।

अगले मन्त्र में फिर ब्रह्मानन्द के विषय का ही वर्णन है।

**१४३३. आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः।**
**सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशाली जगदीश्वर (**ते**) आपका (**वृषा**) मनोरथ पूर्ण करने वाला, (**मदः**) उत्साहित करने वाला, (**वरेण्यः**) वरणीय, (**सहावान्**) बलवान् (**सानसिः**) संभजनीय, (**पृतनाषाट्**) शत्रु सेनाओं को पराजित करने वाला, (**अमर्त्यः**) अक्षय (**मत्सरः**) आनन्द-रूप सोम (**नः**) हमें (**आ गन्तु**) प्राप्त होवे॥२॥

**भावार्थ** :—रसमय परमेश्वर से परमानन्द-रस पाकर मनुष्यों को शूरतापूर्वक आन्तरिक तथा बाह्य सब शत्रुओं का उन्मूलन करके निष्कण्टक स्वराज्य स्थापित करना चाहिए॥२॥

अब परमात्मा की शूरता वर्णित करते हैं।

**१४३४. त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम्।**
**सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा॥३॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! हे शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले जगदीश्वर! (**त्वं हि**) आप निश्चय ही (**शूरः**) शूरवीर तथा (**सनिता**) उत्साह देने वाले हो। (**मनुषः**) मनुष्य के (**रथम्**) प्रगति के रथ को (**चोदयः**) आगे प्रेरित करते हो। (**सहावान्**) बलवान्, आप (**अव्रतम्**) व्रतहीन और कर्महीन को तथा दस्युम् हिंसक स्वभाव को और हिंसक मनुष्य को (**शोचिषा**) प्रदीप्त अग्निज्वाला से (**पत्रं न**) मिट्टी के घड़े आदि के समान (**ओषः**) संतप्त कर देते हो॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर सज्जनों को पुरस्कार और दुष्टों को दण्ड देता है उससे डरकर दुर्जनों को दुष्टता छोड़ देनी चाहिए और सत्कर्मों में उत्साह दिखाना चाहिए॥३॥

**इति द्वादशोऽध्यायः, षष्ठप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः॥**

# अथ त्रयोदशोऽध्यायः

## षष्ठप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—कविर्भार्गवः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में जगत्स्रष्टा परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१४३५. पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि।**
**अयक्ष्मा बृहतीरिषः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे सोम हे सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! आप ( **दिवः परि** ) उच्च आत्मलोक से ( **नः** ) हमारे लिए ( **अपाम् ऊर्मिम्** ) दिव्य धाराओं की तरंगरूप ( **वृष्टिम्** ) वर्षा को ( **सु आ पवस्व** ) भली-भाँति चारों ओर से प्रवाहित करो, साथ ही ( **अयक्ष्माः** ) नीरोग अर्थात् वासना आदि से रहित ( **बृहतीः इषः** ) उच्च महत्त्वाकांक्षाओं को ( **आ पवस्व** ) हमारे अन्दर उत्पन्न करो॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर अन्तरिक्ष से वर्षा तथा भूमि पर आरोग्यकारी अन्न उत्पन्न करता है वैसे ही वह हमारे अन्दर आनन्द की वर्षा और उच्च महत्त्वाकांक्षाओं को जन्म दे॥१॥

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है।

**१४३६. तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन्।**
**जन्यास उप नो गृहम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे तेज के धाम परमात्मन्! आप ( **तया धारया** ) उस तेज की धारा से ( **पवस्व** ) हमें पवित्र करो, ( **यया** ) जिस धारा से ( **इह** ) यहाँ ( **नः गृहम्** ) हमारे हृदय-सदन में ( **जन्यासः** ) उत्तरोत्तर जन्म लेने वाली ( **गावः** ) तेज की किरणें ( **उपागमन्** ) उपस्थित हो जाएं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास से प्रवाहित होते हुए तेज उसके स्तोताओं को तेजस्वी बना देते हैं॥२॥

आगे फिर परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१४३७. घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः।**
**अस्मभ्यं वृष्टिमा पव॥३॥**

**पदार्थ** :—हे जगत्पति! (**यज्ञेषु**) उपासनारूप यज्ञों में (**देववीतमः**) अतिशय दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाले आप (**धारया**) धारा रूप में (**घृतम्**) स्नेह तथा दीप्ति को (**पवस्व**) हमारे लिए प्रेरित करो। (**अस्मभ्यम्**) हम उपासकों के लिए (**वृष्टिम्**) आनन्दवर्षा को (**आ पव**) रिमझिम बरसाओ।।३।।

**भावार्थ** :—उपासना किया हुआ जगदीश्वर उपासक के लिए अपने प्रेम, आनन्द और अक्षयतेज को प्रदान करता है।।३।।

आगे पुनः उसी विषय में कहते हैं।

**१४३८. स न ऊर्जे व्या३व्ययं पवित्रं धाव धारया।**
**देवासः शृणवन्हिकम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे भक्तवत्सल देव! (**सः**) वह प्रसिद्ध आप (**नः**) हमें (**ऊर्जे**) बल और प्राणशक्ति देने के लिए हमारे (**पवित्रम्**) पवित्र (**अव्ययम्**) अविनाशी अन्तरात्मा को (**धारया**) आनन्द की धारा के साथ (**वि धाव**) शीघ्रता से प्राप्त होवो। (**देवासः**) विद्वान् उपासक लोग (**हि**) अवश्य (**कम्**) सुख से (**शृणवन्**) आपके सन्देशों को सुनें।।४।।

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की मैत्री में निवास करते हुए स्तोता जन बल, प्राणशक्ति, आनन्द और दिव्य सन्देश प्राप्त करके धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं।।४।।

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि उपासना किया हुआ जगदीश्वर क्या करता है।

**१४३९. पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत्।**
**प्रत्नवद्रोचयन्रुचः॥५॥**

**पदार्थ** :—(**पवमानः**) पवित्रतादायक आनन्दवर्षी जगदीश्वर (**रक्षांसि**) काम, क्रोध आदि रिपुओं को और पापों को

(अपजङ्घनत्) नष्ट करता हुआ (प्रत्नवत्) पुरातन अग्नि के समान (रुचः) तेजों को (रोचयन्) प्रदीप्त करता हुआ (असिष्यदत्) बह रहा है।।५।।

यहां उपमालंकार है।।५।।

**भावार्थ :**—परमेश्वर की कृपा से उपासक के अन्तःकरण से वासनाएं क्षीण हो जाती हैं, तेज दमकते हैं और हृदय कालिमा से रहित पवित्र हो जाता है।।५।।

## (२)

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-३ अनुष्टुप्; ४ बृहती॥ स्वरः—१-३ गान्धारः; ४ मध्यमः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३५२ क्रमांक पर परमात्मा और आचार्य के विषय में की जा चुकी है यहाँ जगदीश्वर की उपासना का विषय दर्शाते हैं।

**१४४०. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।**
**अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः॥१॥**

**पदार्थ :**—हे मानव! (नरः) पुरुषार्थी तू (पिपीषते) तेरे श्रद्धारस को पान करने के इच्छुक, (विश्वानि विदुषे) सब जानने योग्य विषयों को जानने वाले, (अरङ्गमाय) पर्याप्त देने वाले, (जग्मये) क्रियाशील, (अपश्चा-दध्वने) पीछे पग न रखने वाले (अस्मै) इस इन्द्र जगदीश्वर के लिए (प्रतिभर) श्रद्धा का उपहार प्रदान कर।।१।।

**भावार्थ :**—परमात्मा में श्रद्धा रखता हुआ मनुष्य कभी जीवन में पतन को प्राप्त नहीं करता।।१ ।।

अगले मन्त्र में मनुष्यों को परमात्मा की उपासना के लिए प्रेरित किया गया है।

**१४४१. एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम्।**
**अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः॥२॥**

**पदार्थ :**—हे मनुष्यो! तुम (सोमपातमम्) तुम्हारे श्रद्धारस को अतिशय पान करने वाले (एनम् प्रति) इस परमात्मा के प्रति

(ईम्) सब ओर से (सोमेभिः) श्रद्धारसों के साथ (एतन) पहुँचो। (ऋजीषिणम्) सरल धार्मिक जनों के पास पहुँचने का जिसका स्वभाव है ऐसे (इन्द्रम् प्रति) जगदीश्वर के प्रति (अमत्रेभिः) महान्, (सुतेभिः) अभिषुत किये हुए, (इन्दुभिः) भिगो देने वाले श्रद्धारसों के साथ (एतन) पहुँचो॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धारस के प्रवाह से मनुष्य का जीवन उज्ज्वल हो जाता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल वर्णित है।

**१४४२. यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ।**
**वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते॥३॥**

**पदार्थ** :—हे उपासको! (**यदि**) यदि (**सुतेभिः**) अभिषुत किये हुए, (**इन्दुभिः**) सराबोर कर देने वाले (**सोमेभिः**) श्रद्धारसों से, तुम इन्द्र परमात्मा को (**प्रतिभूषथ**) अलंकृत करते हो, तो (**मेधिरः**) मेधावी वह इन्द्र (**विश्वस्य**) तुम्हारे सब मनोरथों को (**वेद**) जान जाता है और (**धृषत्**) विघ्नों को परास्त करता हुआ (**तं तम्**) उस-उस मनोरथ को (**इत्**) अवश्य ही (**आ इषते**) पूर्ण करता है॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर में श्रद्धा रखने वाला मनुष्य अभीष्ट की पूर्ति में समर्थ हो जाता है॥३॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मोपासना का विषय है।

**१४४३. अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम्।**
**कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**अध्वर्यो**) उपासना-यज्ञ के इच्छुक! (**अस्मै अस्मै इत्**) इसी इन्द्र जगदीश्वर के लिए (**अन्धसः**) श्रद्धारूप सोम के (**सुतम्**) रस को (**प्र भर**) लाओ। वह इन्द्र जगदीश्वर (**कुवित्**) बहुत अधिक (**समस्य**) सब (**जेन्यस्य**) जीते जाने योग्य (**शर्धतः**) हिंसक शत्रुओं से की जाने वाली (**अभिशस्तेः**) हिंसा वा निन्दा से (**अवस्वरत्**) उद्धार कर देवे॥४॥

भावार्थ :—परमेश्वर में श्रद्धा रखने वाले मनुष्य की कोई भी हिंसा नहीं कर सकता, न ही उसे अपयश का पात्र बना सकता है।।४।।

( ३ )

ऋषिः—असितः काश्यपो देवलो वा॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को प्रेरणा दी गयी है।

**१४४४. बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे।**
**सोमाय गाथमर्चत॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! तुम (**बभ्रवे**) धारण-पोषण करने वाले, (**स्वतवसे**) निज बल वाले, (**अरुणाय**) तेज से जगमगाने वाले (**दिविस्पृशे**) जीवात्मा में सद्गुणों का स्पर्श कराने वाले (**सो माय**) रसनिधि, जगत्स्रष्टा, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के लिए (**गाथम्**) गाने योग्य स्तोत्र को (**अर्चत**) गाओ।।१।।

**भावार्थ** :—जो अपने ही बल से, न कि दूसरे के द्वारा प्रदत्त बल से, बलवान् है, उस तेजस्वी परमात्मा की आराधना करके मनुष्य बलवान् और तेजस्वी बनें।।१।।

आगे फिर मनुष्यों को प्रेरित करते हैं।

**१४४५. हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन।**
**मधावा धावता मधु॥२॥**

**पदार्थ** :—हे उपासको! (**हस्तच्युतेभिः**) हाथ रहित (**अद्रिभिः**) हृदय और मस्तिष्क रूप सिल-बट्टों से (**सुतम्**) अभिषुत किये गये (**सोमम्**) श्रद्धारस को (**पुनीतन**) पवित्र करो। (**मधौ**) अपने मधुर श्रद्धारस में (**मधु**) परमात्मा से प्राप्त मधुर आनन्द-रस को (**आधावत**) मिला दो।।२।।

यहां 'मधा, मधु' और 'धावा, धाव' में छेकानुप्रास अलंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—जब योगी लोगों को ब्रह्मानन्द-रस की अनुभूति हो जाती है तभी उनकी परब्रह्म में श्रद्धा सफल होती है।।२।।

आगे फिर मनुष्यों को प्रेरित किया गया है।

**१४४६. नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन।**
**इन्दुमिन्द्रे दधातन॥३॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! तुम (**नमसा इत**) नमस्कार के साथ ही (**उप सीदत**) परमात्मा की उपासना करो। उस सात्त्विक नमस्कार को (**दध्ना इत्**) रजोगुण से उत्पन्न कर्म के साथ मिलाकर (**अभि श्रीणीतन**) परिपक्व करो। (**इन्दुम्**) परमात्मा के पास से प्रस्रुत हुए आनन्द-रस को (**इन्द्रे**) जीवात्मा में (**दधातन**) धारण कर लो॥३॥

यहाँ एक कर्ता कारक के साथ उपसीदत श्रीणीतन और दधातन इन अनेक क्रियाओं का योग होने से दीपक अलंकार है। दकार आदि का अनुप्रास है। गोदुग्ध सात्त्विक होता है, दही खट्टा होने से राजस। अतः दधि से यहाँ कर्म सूचित होता है॥३॥

**भावार्थ** :—केवल उपासना से अभीष्ट सिद्धि नहीं होती, उसके साथ कर्मयोग भी अपेक्षित होता है॥३॥

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१४४७. अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे।**
**देवेभ्यो अनुकामकृत्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) जगदीश्वर! (**अमित्रहा**) काम, क्रोध आलस्य आदि शत्रुओं के विनाशक, (**विचर्षणिः**) विशेष द्रष्टा, (**देवेभ्यः**) विद्वानों के लिए (**अनुकामकृत्**) अभीष्ट सिद्ध करने वाले आप (**गवे**) स्तोता के लिए (**शम्**) शान्तिदायक होते हुए (**पवस्व**) आनन्द प्रवाहित करो॥४॥

**भावार्थ** :—आराधना किया गया परमेश्वर उपासक के दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि को विनष्ट करके उसे सद्गुण देकर उसके लिए सुख, शान्ति और दिव्य आनन्द प्रवाहित करता है॥४॥

अब परमात्मा को कहते हैं।

१४४८. इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे।
मनश्चिन्मनसस्पतिः॥५॥

**पदार्थ** :–हे (**सोम**) रसागार परमेश! (**मनश्चित्**) मन को चेतना वाले, (**मनसः पतिः**) मन के अधीश्वर, आप (**इन्द्राय**) जीवात्मा के (**पातवे**) पान के लिए, और (**मदाय**) उत्साह के लिए (**परिषिच्यसे**) जीवात्मा में सींचे जा रहे हो॥५॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के ध्यान से प्राप्त हुआ आनन्दरस मन, बुद्धि, प्राण आदि को चेतनामय करता हुआ उपासक को जागरूक किये रखता है॥५॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

१४४९. पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः।
इन्दविन्द्रेण नो युजा॥६॥

**पदार्थ** :–हे (**पवमान**) पवित्रतादायक, (**इन्दो**) रस से सराबोर करने वाले (**सोम**) आनन्द-रस के भण्डार जगदीश! आप (**नः युजा**) हमारे सहायक (**इन्द्रेण**) मन द्वारा (**नः**) हमारे लिए (**सुवीर्यम्**) श्रेष्ठ वीरता से युक्त (**रयिम्**) ऐश्वर्य (**रिरीहि**) प्राप्त कराओ॥६॥

**भावार्थ** :–परमात्मा, जीवात्मा और मन की मित्रता से ही मनुष्य चरम उन्नति करने में समर्थ होता है॥६॥

(४)

**ऋषिः–सुकक्षः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः– षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १२५ क्रमांक पर परमात्मा को सम्बोधन की गयी थी। परमात्मा का प्रचार भी उन्नत राष्ट्र में ही हो सकता है, इसलिए यहाँ राष्ट्रोन्नति के निमित्त राजा का विषय वर्णित करते हैं।

१४५०. उद् घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्।
अस्तारमेषि सूर्य॥१॥

**पदार्थ** :–हे (**सूर्य**) सूर्य के समान प्रतापी वीर! आप

( श्रुतामघम् ) प्रसिद्ध धनों वाले, ( वृषभम् ) बलवान् ( नर्यापसम् ) मनुष्यों के हितकारक कर्मों को करने वाले, ( अस्तारम् ) दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि को परे फेंक देने वाले प्रजाजन को ( घ इत् ) ही ( अभि ) लक्ष्य करके ( उदेषि ) राजा रूप में राष्ट्रगगन में उदित होते हो॥१॥

**भावार्थ** :—जिसके राज्य में सुयोग्य प्रजाएँ हैं वही राजा सुयोग्य माना जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में राजा वा सेनापति की शूरता का वर्णन है।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३क २र
**१४५१. नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा।**
१ २ ३ १ २
**अहिं च वृत्रहावधीत्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **यः** ) जो वीर ( **बाह्वोजसा** ) बाहुबल से ( **नव नवतिं पुरः** ) नव्वे-नव्वे शत्रु योद्धाओं के नौ व्यूहों को ( **बिभेद** ) तोड़ देता है, और जो ( **वृत्रहा** ) शत्रुहन्ता वीर ( **अहिं च** ) **मार-काट करने वाले शत्रुदल को भी** ( **अवधीत्** ) विध्वस्त कर **देता है, वही राजा या सेनापति बनने योग्य है**॥२॥

**भावार्थ :—उसी मनुष्य को राजा** के पद पर वा सेनापति के पद पर अभिषिक्त करना चाहिए जो अकेला होता हुआ भी बहुत से शत्रुओं के छक्के छुड़ा सके॥२॥

अगले मन्त्र में यह कहते हैं कि राजा प्रजाओं के लिए क्या करे।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ २ ३ १ २
**१४५२. स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्।**
३ १ २
**उरुधारेव दोहते॥३॥**

**पदार्थ** :—( **सः** ) वह ( **नः** ) हमारा ( **शिवः** ) मंगलकारी, ( **सखा** ) मित्र ( **इन्द्रः** ) वीर राजा ( **अश्वावत्** ) घोड़ों से युक्त, ( **गोमत्** ) गायों से युक्त ( **यवमत्** ) जौ आदि अन्नों से युक्त धन को ( **दोहते** ) हमारे लिए दुह कर दे, ( **उरुधारा इव** ) जैसे धारों वाली दुधारु गाय दूध देती है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—वही राजा होने योग्य है जो प्रजाजनों को धन, धान्य, गाय, घोड़े आदि सम्पदाओं से समृद्ध कर सके, क्योंकि समृद्ध लोग ही आध्यात्म-मार्ग पर चलना चाहते हैं॥३॥

( ५ )

**ऋषिः—विभ्राट् सौर्यः॥ देवता—सूर्यः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ६२८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ सूर्य के वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा का प्रकाशन है।

३ २ ३ १ २ ३ २उ ३ १ २ ३ १
**१४५३. विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञ-**
२ ३ १ २ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**पतावविह्रुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना**
३ १ २ ३ १ २र
**प्रजाः पिपर्त्ति बहुधा वि राजति॥१॥**

**पदार्थ** :—( **विभ्राट्** ) विशेष रूप से भ्राजमान सूर्य ( **यज्ञपतौ** ) यजमान को ( **अविह्रुतम्** ) अकुटिल ( **आयुः** ) आयु ( **दधत्** ) प्रदान करता हुआ ( **बृहत्** ) विशाल ( **सोम्यम्** ) सोम आदि ओषधियों के रस से युक्त ( **मधु** ) जल को ( **पिबतु** ) पिये, ( **वातजूतः** ) सूत्रात्मक प्राण के द्वारा प्रेरित ( **यः** ) जो सूर्य ( **त्मना** ) अपने-आप ( **अभि रक्षति** ) सम्पूर्ण सौरमण्डल की रक्षा करता है, ( **प्रजाः** ) जड़-चेतन-रूप प्रजाओं को ( **पिपर्ति** ) पालित-पूरित करता है और ( **बहुधा** ) अनेक रूपों में ( **वि राजति** ) विराजमान होता है, क्योंकि प्रत्येक मास में नवीन-नवीन रूप धारण करता है॥१॥

**भावार्थ** :—यह जगदीश्वर की ही महिमा है कि उसने वर्षा करने वाला, बहुत उपकार करने वाला तेज का गोला सूर्यलोक रचा है॥१॥

अगले मन्त्र में सूर्य की ज्योति का वर्णन करके परमात्मा की महिमा प्रकाशित की गयी है।

३ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**१४५४. विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मं दिवो धरुणे**
३ १ २र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
**सत्यमर्पितम्। अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं**
१ २ ३ १ २ ३ २
**ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा॥२॥**

**पदार्थ** :—देखो, ( **विभ्राट्** ) देदीप्यमान, ( **बृहत्** ) विशाल,

(**सुभृतम्**) अत्यन्त पुष्ट, (**वाजसातमम्**) अन्न को बल की अतिशय देने वाली, (**सत्यम्**) सत्य नियमों वाली, (**धर्मन्**) ग्रहोपग्रहों के धारणकर्ता (**दिवः धरुणे**) द्युलोक के स्तम्भरूप सूर्य में (**अर्पितम्**) अर्पित, (**अमित्रहा**) रोग आदि शत्रुओं को नष्ट करने वाली, (**वृत्रहा**) अन्धकार की विनाशक, (**दस्युहन्तमम्**) चोर आदि दस्युओं को दूर करने वाली, (**असुरहा**) अप्रशस्त दुर्भिक्ष आदि को विनष्ट करने वाली, (**सपत्नहा**) एक साथ आक्रमण करने वाले रोग-कृमियों की विनाशक (**ज्योतिः**) सूर्य की ज्योति (**जज्ञे**) प्रादुर्भूत हुई है।।२।।

यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है। 'हा' का चार वार प्रयोग होने के कारण वृत्त्यनुप्रास है। 'तमं' और 'त्रहा' के दो-दो वार प्रयोग में छेकानुप्रास है।।२।।

**भावार्थ** :—रात्रि के घोर अन्धकार को विध्वस्त करती हुई सूर्य की ज्योति परमात्मा की आभा की ओर संकेत करती है।।२।।

अगले मन्त्र में फिर सूर्य की ज्योति का वर्णन है।

**१४५५. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्ध-**
**नजिदुच्यते बृहत्। विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो**
**दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**इदम्**) यह सामने दिखायी देती हुई, (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ, (**ज्योतिषां ज्योतिः**) ज्योतियों की ज्योति अर्थात् प्रकाशक ग्रह-उपग्रह तथा अग्नि-विद्युत्, आदि को भी प्रकाशित करने वाली, (**उत्तमम्**) उत्कृष्टतम (**बृहत्**) विस्तीर्ण सूर्य-ज्योति (**विश्वजित्**) सबको जीतने वाली और (**धनजित्**) धनों को जीतने वाली (**उच्यते**) कही जाती है। (**विश्वभ्राट्**) सम्पूर्ण सौरमण्डल का प्रकाशक, (**भ्राजः**) देदीप्यमान (**सूर्यः**) सूर्य (**दृशे**) देखने के लिए (**महि**) महान्, (**उरु**) विस्तीर्ण, (**सहः**) अन्धकार को तिरस्कृत करने वाले, (**अच्युतम्**) अन्य ज्योतियों से तिरस्कृत न होने वाले (**ओजः**) तेज को (**पप्रथे**) फैला रहा है।।३।।

यहाँ भी स्वभावोक्ति अलंकार है।।३।।

( ६ )

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २५९ क्रमांक पर परमात्मा और आचार्य को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१४५६. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा
ज्योतिरशीमहि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **( इन्द्र )** विघ्नविनाशक, विश्ववेत्ता, सर्वकारी, सर्वशक्तिमान् परमात्मन्! आप **( नः )** हमें **( क्रतुम् )** प्रज्ञा और कर्म को **( आ भर )** प्रदान करो, **( यथा )** जिस प्रकार **( पिता )** पिता **( पुत्रेभ्यः )** सन्तानों को प्रदान करता है। हे **( पुरुहूत )** बहुतों से पुकारे जाने वाले जगदीश्वर! आप **( अस्मिन् यामनि )** इस संसार-मार्ग में **( नः )** हमें **( शिक्ष )** कर्तव्य-अकर्तव्य की शिक्षा दो। **( जीवा )** जीवन से अनुप्राणित हम, आपके पास से **( ज्योतिः )** दिव्य ज्योति को **( अशीमहि )** प्राप्त करें॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे माता, पिता और आचार्य मनुष्य के शिक्षक हैं, वैसे ही परमेश्वर भी है। वह अन्तरात्मा में प्रविष्ट हुआ सदा ही सत्य-असत्य का उपदेश करता रहता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा से प्रार्थना है।

**१४५७. मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासोऽव
क्रमुः। त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति
शूरतरामसि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे **( इन्द्र )** जगदीश! **( मा )** न तो **( अज्ञाताः )** अज्ञात **( वृजनाः )** बलवान् वा युद्ध करने वाले **( दुराध्यः )** बुरे मनसूबे बाँधने वाले शत्रु और **( मा )** न ही **( अशिवासः )** अभद्र परिचित लोग **( नः )** हमें **( अवक्रमुः )** पददलित

कर सकें। हे (शूर) वीर जगदीश्वर! (त्वया) आपकी सहायता से (प्रवतः) उत्कृष्ट आचरण वाले (वयम्) हम आपके उपासक (शश्वतीः) बहुत सी (अपः) नदियों को अर्थात् नदियों के समान उमड़ने वाली बाधाओं को (अति तरामसि) पार कर लेवें॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे शत्रु लोग, वैसे ही सम्बन्धी जन भी कभी-कभी पाप आदि कर्मों में लिप्त करते हैं और विघ्न भी धर्ममार्ग में बाधक होते हैं। परमेश्वर से बल पाकर उन सब को हम लाँघ जाएँ॥१॥

(७)

**ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

अगले मन्त्र में परमेश्वर से रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं।

**१४५८. अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः। विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) विघ्ननाशक परमात्मन्! आप (**अद्य अद्य**) आज-आज, (**श्वः-श्वः**) कल-कल, (**परे च**) और अगले दिनों में भी (**नः**) हमारी (**त्रास्व**) रक्षा करो। हे (**सत्पते**) सज्जनों के पालक! (**विश्वा च अहा**) सभी दिनों में (**जरितॄन् नः**) हम स्तोताओं की (**दिवा नक्तं च**) दिन-रात (**रक्षिषः**) रक्षा करते हो॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों के जीवन में कुसंग आदि के कारण नीचे गिरने के बहुत से अवसर आते हैं। परमेश्वर पर अटूट विश्वास उन अवसरों पर उनकी रक्षा करता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणकर्मों का वर्णन है।

**१४५९. प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्। उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे जगदीश्वर! आप प्रभङ्गी दुष्टों और दुर्गुणों के तीव्र भंजक, ( **शूरः** ) वीर, ( **मघवा** ) ऐश्वर्यवान्, ( **तुवीमघः** ) बहुत दानी, और ( **वीर्याय** ) हमें बल प्रदान करने के लिए ( **कम्** ) निश्चय ही ( **सम्मिश्लः** ) हम से मिलने वाले, हमारे साथ सखित्व स्थापित करने वाले हो। हे ( **शतक्रतो** ) बहुत प्रज्ञा तथा बहुत कर्मों वाले! ( **उभा** ) दोनों ( **वृषणा** ) वर्षा करने वाले वायु और सूर्य ( **ते** ) आपकी ( **बाहू** ) बाहुएं हैं, ( **या** ) जो ( **वज्रम्** ) जल को ( **नि मिमिक्षतुः** ) निरन्तर सींचा करती हैं॥२॥

यहाँ वर्षक वायु और सूर्य में बाहुओं के आरोप के कारण रूपक अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे कोई बाहुधारी मनुष्य बाहुओं में घड़ा आदि पकड़कर भूमि पर जल सींचता है, वैसे ही जगदीश्वर वायु और सूर्य रूप बाहुओं में मेघ रूप घड़े को लेकर वर्षाजल भूमि पर बरसाता है॥२॥

( ८ )

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—सरस्वान्॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में गृहस्थ के कर्तव्य के रूप में परमात्मा की पूजा का वर्णन है।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१४६०. जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः।**
१ २
**सरस्वन्तं हवामहे॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अग्रवः** ) पुरुषार्थी, ( **जनीयन्तः** ) पत्नी को चाहने वाले, ( **पुत्रीयन्तः** ) पुत्र-पुत्री को चाहने वाले, ( **सुदानवः** ) उत्कृष्ट दान करने वाले हम गृहस्थ लोग ( **सरस्वन्तम्** ) आनन्दरसमय परमात्मा को ( **नु** ) शीघ्र ही ( **हवामहे** ) पुकारते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मचारी लोग स्नातक होकर विदुषी, सच्चरित्र, गुणवती कन्या से विवाह करके, प्रशस्त सन्तान उत्पन्न करके,

पंचमहायज्ञ आदि गृहस्थ के कर्तव्यों को पालन करते हुए परमात्मा की उपासना करें॥१॥

( ९ )

**ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—सरस्वती॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

अगले मन्त्र में वेदवाणी का विषय है।

**१४६१. उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा।**
**सरस्वती स्तोम्या भूत्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **उत** ) और ( **प्रियासु प्रिया** ) प्यारी माताओं में अत्यधिक प्रिय, ( **सप्तस्वसा** ) गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती रूप सात बहिनों वाली, ( **सुजुष्टा** ) वेदज्ञ महर्षियों द्वारा भली-भाँति सेवित ( **सरस्वती** ) ज्ञानमयी वेदमाता ( **नः** ) हमारी ( **स्तोम्या** ) स्तुतिपात्र अर्थात् अध्ययन-अध्यापन की पात्र ( **भूत्** ) होवे॥१॥

**भावार्थ** :—वेदों का अध्ययन करके, उनसे सब विद्याएं तथा परमात्मा की उपासना का प्रकार जानकर अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करने चाहिएँ॥१॥

( १० )

**ऋषिः—१ विश्वामित्रः, २ मेधातिथिः, ३ शत वैखानसाः॥ देवता—१ सविता, २ ब्रह्मणस्पतिः, ३ अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में सविता परमेश्वर की उपासना का विषय वर्णित है।

**१४६२. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।**
**धियो यो नः प्रचोदयात्॥१॥**

**पदार्थ** :—ऋचा में तीन पाद हैं। प्रत्येक वेद से एक-एक पाद दुहा गया है। ( मनु० २।७७ ) मनु के इस वचन के आधार पर प्रत्येक पाद का पृथक् अर्थ देखते हैं। १. ( **सवितुः** ) सकल

जगत् की उत्पत्ति करने वाले, सब शुभगुणों के प्रेरक परमात्मा का ( **तत्** ) वह प्रसिद्ध तेज ( **वरेण्यम्** ) वरणीय है। २. ( **देवस्य** ) दाता, प्रकाशमान और प्रकाशक उस परमात्मा के ( **भर्गः** ) तेज को, हम ( **धीमहि** ) धारण करें वा ध्यावें। ३. ( **यः** ) जो सविता प्रभु ( **नः** ) हमारे ( **धियः** ) प्रज्ञाओं और कर्मों को ( **प्रचोदयात्** ) सन्मार्ग पर प्रेरित करे॥१॥

**भावार्थ** :—सकल जगत् के स्रष्टा, सूर्य के समान सब के अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाले, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के तेजों के ध्यान और धारण करने से वह उपासक की बुद्धियों और क्रियाओं को सन्मार्ग में प्रेरित करके उसे सुखी करता है॥१॥

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में १३९ क्रमांक पर जगदीश्वर को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ आचार्य को कहते हैं।

**१४६३. सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।**
**कक्षीवन्तं य औशिजः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **ब्रह्मणः पते** ) वेदों के प्रकाण्ड पण्डित आचार्य! ( **यः** ) जो मैं ( **औशिजः** ) बहुत अधिक वेदाध्ययन का इच्छुक हूँ उस मुझ को, आप ( **सोमानाम्** ) ज्ञानों का ( **स्वरणम्** ) प्राप्तकर्ता, और ( **कक्षीवन्तम्** ) कटिबद्ध ( **कृणुहि** ) कर दो॥२॥

**भावार्थ** :—गुरुओं का यह कर्तव्य है कि वे शिष्यों को विद्वान् और कर्मयोगी बनायें। पुरुषार्थहीन विद्वत्ता कुछ काम नहीं आती है॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ६२७ क्रमांक पर परमात्मा और विद्वान् राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ आचार्य को कहते हैं।

**१४६४. अग्न आयूँषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।**
**आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) चरित्र को ऊँचा उठाने वाले आचार्यवर! आप शिष्यों के ( **आयूंषि** ) जीवनों को ( **पवसे** ) पवित्र करते

हो। ( नः ) हम शिष्यों के लिए ( **ऊर्जम्** ) आत्मबल वा चरित्र-बल, ( **इषं च** ) और अभीष्ट विद्या ( **आसुव** ) प्रदान करो। ( **दुच्छुनाम्** ) दुर्गति करने वाली अविद्या को ( **आरे** ) दूर ( **बाधस्व** ) बाधित कर दो॥३॥

**भावार्थ** :—श्रेष्ठ आचार्य को प्राप्त कर विद्यार्थी पवित्रात्मा और विद्वान् होकर समावर्तन के अनन्तर घर आकर राष्ट्र को उन्नत करें॥३॥

( ११ )

**ऋषिः—यजत आत्रेयः॥ देवता—मित्रावरुणौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा उत्तरार्चिक में ११४५ क्रमांक पर परमात्मा और जीवात्मा के विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय से प्रार्थना करते हैं।

**१४६५. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य।**
**महि वां क्षत्रं देवेषु॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मित्र-वरुणौ अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रियो! ( **ता** ) वे तुम दोनों ( **नः** ) हमें ( **पार्थिवस्य** ) भौतिक, और ( **दिव्यस्य** ) आध्यात्मिक ( **महः** ) महान् ( **रायः** ) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ( **शक्तम्** ) समर्थ बनाओ। ( **देवेषु** ) विद्वानों में ( **वाम्** ) तुम दोनों का ( **महि** ) महान् ( **क्षत्रम्** ) शत्रुजन्य प्रहार से वा अविद्या दुर्व्यसन आदि दोष से त्राण करने का सामर्थ्य है॥१॥

**भावार्थ** :—जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर श्रेष्ठ विद्या, श्रेष्ठ धर्म आदि के प्रदान द्वारा और शत्रुओं से रक्षा द्वारा उपकारक होते हैं वह राष्ट्र अत्यधिक उन्नत हो जाता है॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः ब्राह्मण-क्षत्रिय का विषय वर्णित है।

**१४६६ ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते।**
**अद्रुहा देवौ वर्धेते॥२॥**

**पदार्थ** :—ये मित्र-वरुण अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय ( **ऋतम्** ) राष्ट्र-यज्ञ को ( **ऋतेन** ) सत्य ब्रह्मबल वा सत्य क्षात्रबल से

(सपन्ता) सेवा करते हुए (इषिरम्) प्रेरक (दक्षम्) उत्साह को (आशाते) प्राप्त करते हैं। (अद्रुहा) आपस में द्रोह न करने वाले (देवौ) ब्रह्मवर्चस वा क्षात्र तेज से प्रकाशमान, दानादि गुणों से युक्त ये (वर्धेते) वृद्धि प्राप्त करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—आपस में द्रोह न करते हुए, अपितु सहयोग करते हुए ब्राह्मण और क्षत्रिय ब्रह्मबल और क्षात्रबल का उपयोग करके स्वयं बढ़ते हुए राष्ट्र को भी बढ़ाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में ब्राह्मण-क्षत्रियों का उपकार वर्णित किया गया है।

३ १ २ ३क २र ३२उ ३ १ २
**१४६७. वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः।**
३ २ ३ १ २
**बृहन्तं गर्तमाशाते॥३॥**

**पदार्थ** :—(**वृष्टिद्यावा**) वर्षकामेष्टि द्वारा अन्तरिक्ष से वर्षा कराने वाले, (**रीत्यापा**) नहर आदि में जल प्रवाहित कराने वाले, (**दानुमत्याः**) लाभकारिणी (**इषः**) धन, अन्न, विद्या आदि की सम्पदा के (**पती**) स्वामी मित्र-वरुण अर्थात् ब्राह्मण-क्षत्रिय (**बृहन्तम्**) महान् (**गर्तम्**) राष्ट्ररूप रथ को (**आशाते**) चलाते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—राष्ट्र में ब्राह्मण और क्षत्रिय मिलकर जब ज्ञान-विज्ञान के उत्कर्ष से वर्षा, नदियों पर बाँध का निर्माण, नहरों का निर्माण, धान्य-समृद्धि, भूगर्भ से सोने आदि धातुओं की प्राप्ति शिल्पविद्या से भूयान, जलयान, अन्तरिक्षयान आदि का आविष्कार इत्यादि कर्मों को कराते हैं तब राष्ट्र समृद्धि के शिखर पर पहुँच जाता है॥३॥

## (१२)

**ऋषिः—मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से परमात्मा, सूर्य, प्राण आदि ग्रहण किये गये हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**१४६८. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।**
१ २ ३ २ ३ २
**रोचन्ते रोचना दिवि॥१॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। जो योगी विद्वान् लोग (**ब्रध्नम्**) महान्, (**अरुषम्**) तेजस्वी, अहिंसक, करुणामय, (**तस्थुषः**) सब स्थावर पदार्थों वा दृढ़ स्वभाव वाले मनुष्यों में (**परिचरन्तम्**) व्याप्त इन्द्र परमेश्वर का (**युञ्जन्ति**) अपने साथ योग करते हैं, वे (**रोचना**) दीप्तिमान् होते हुए (**दिवि**) प्रकाशमय मोक्षधाम में (**रोचन्ते**) शोभा पाते हैं।

(**द्वितीय**) सूर्य के पक्ष में। जो पृथिवी, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि लोक (**ब्रध्नम्**) महान्, (**अरुषम्**) आरोचमान, (**तस्थुषः**) सब स्थावर पदार्थों वा मनुष्यों को (**परिचरन्तम्**) अपनी किरणों से व्याप्त करते हुए इन्द्र नामक सूर्य को (**युञ्जन्ति**) वे (**रोचना**) दीप्तिमान् होते हुए (**दिवि**) आकाश में (**रोचन्ते**) चमकते हैं।

(**तृतीय**) प्राण के पक्ष में। जो उपासक लोग (**ब्रध्नम्**) सब अंगों की वृद्धि करने वाले, महान् (**अरुषम्**) क्षति न पहुंचाने वाले, (**तस्थुषः**) शरीर में स्थित सब अंगों को (**परिचरन्तम्**) प्राप्त होने वाले इन्दु नामक प्राण को (**युञ्जन्ति**) प्राणायाम की रीति से अपने अन्दर जोड़ते हैं, वे (**रोचना**) चमकने वाले नक्षत्र जैसे (**दिवि**) आकाश में प्रकाशित होते हैं, वैसे ही (**रोचन्ते**) तेजस्वी होते हैं।।

(**चतुर्थ**) शिल्प के विषय में। जो शिल्पशास्त्र के ज्ञाता विद्वान् लोग (**ब्रध्नम्**) महान्, (**तस्थुषः**) स्थावर वनोषधि आदि को वा मनुष्यों को (**परिचरन्तम्**) प्राप्त होने वाले इन्द्र नामक पार्थिव अग्नि, विद्युत्, वायु वा सूर्य को (**युञ्जन्ति**) भूयान, जलयान तथा विमानों में और यन्त्र-कलाओं में जोड़ते हैं, वे (**दिवि**) आकाश में (**रोचना**) चमकने वाले नक्षत्रों के समान (**रोचन्ते**) यशस्वी होते हैं।।१।।

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है, तृतीय, चतुर्थ व्याख्यानों में लुप्तोपमा भी है।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे योगियों को अपने आत्मा में परमेश्वर के योग से परमात्मा का प्रकाश प्राप्त होता है, और शरीर के अंगों में प्राण के योग से प्राणसिद्धि प्राप्त होती है, वैसे ही सूर्य-किरणों के योग से हमारे सौर मण्डल के सब ग्रह-उपग्रहों को भौतिक प्रकाश प्राप्त होता है और शिल्पियों को यान आदि में अग्नि, वायु, बिजली, सूर्य के योग से यश प्राप्त होता है।।१।।

अगले मन्त्र में दो हरियों का रथ में जोड़ना वर्णित है।

**१४६९. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।**
**शोणा धृष्णू नृवाहसा॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) प्राण-अपान के विषय में। विद्वान् योगी लोग ( **अस्य** ) इस इन्द्र नामक जीवात्मा के ( **रथे** ) शरीररूप रथ में ( **काम्या** ) चाहने योग्य, ( **विपक्षसा** ) प्राणक्रिया और अपानक्रिया रूप विशिष्ट पंखों वाले, ( **शोणा** ) गतिशील, ( **धृष्णू** ) चतुर, ( **नृवाहसा** ) मनुष्य-देह को वहन करने वाले ( **हरी** ) प्राण--अपान रूप दो घोड़ों को ( **युञ्जन्ति** ) प्राणायाम की विधि से उपयोग में लाते हैं।

( **द्वितीय** ) शिल्प के विषय में। शिल्पी लोग ( **अस्य** ) इस सूर्य या बिजली रूप अग्नि के ( **काम्या** ) कमनीय, ( **विपक्षसा** ) परस्पर विरुद्ध गुण वाले, ( **शोणा** ) गतिशील, ( **धृष्णू** ) घर्षणशील, ( **नृवाहसा** ) मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले ( **हरी** ) ऋणात्मक विद्युत् तथा धनात्मक विद्युत् रूप दो घोड़ों को ( **युञ्जन्ति** ) भूयान, जलयान तथा विमानों में जोड़ते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे प्राणायाम का अभ्यास करने वाले विद्वान् लोग प्राण-अपान रूप घोड़ों को नियुक्त करके शरीर-रथ को चलाते हैं वैसे ही शिल्पी लोग ऋण और धन विद्युत् को यान आदि तथा घर आदि में लगाकर यात्रा और प्रकाश किया करें॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा, सूर्य और प्राण का उपकार वर्णित है।

**१४७०. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।**
**समुषद्भिरजायथा:॥३॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् परमात्मन् सूर्य वा प्राण! तुम ( **अकेतवे** ) प्रज्ञान-हीन और कर्म-हीन के लिए ( **केतुम्** ) प्रज्ञान और कर्म को ( **कृण्वन्** ) उत्पन्न करते हुए ( **उषद्भिः** ) उषाओं के साथ ( **सम् अजायथा:** ) प्रकट होते हो। हे ( **मर्या:** ) मनुष्यो! तुम भी वैसा ही करो॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के समान, सूर्य के समान और प्राण के समान मनुष्य भी यदि ज्ञानहीनों में ज्ञान, कर्महीनों में कर्म और रूपहीनों में रूप का विस्तार करें तभी उनका जन्म सफल है॥३॥

( १३ )

ऋषिः—उशनाः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम मन्त्र में आनन्दरस के प्रवाह का वर्णन है।

**१४७१. अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि। त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) जीवात्मन्! ( **अयं सोमः** ) यह ब्रह्मानन्द-रस ( **तुभ्यम्** ) तेरे लिए ( **सुन्वे** ) अभिषुत हो रहा है, ( **तुभ्यम्** ) तेरे लिए ( **पवते** ) प्रवाहित हो रहा है। ( **त्वम् अस्य पाहि** ) तू इसका पान कर, ( **यम्** ) जिस ( **इन्दुम्** ) भिगोने वाले ( **सोमम्** ) ब्रह्मानन्द-रस को ( **मदाय** ) उत्साह के लिए, ( **युज्याय** ) और ब्रह्म के साथ मैत्री के लिए ( **त्वं ह** ) तूने ही ( **चकृषे** ) ब्रह्म के पास से उत्पन्न किया है, और ( **त्वम्** ) तूने ही ( **ववृषे** ) उसके पास से अपने ऊपर उसकी वर्षा की है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के साथ अपने आत्मा का योग करते हुए योगी लोग उसके पास से परमानन्द प्राप्त करके कृतार्थ हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की मैत्री का फल वर्णित है।

**१४७२. स ईं रथो न भुरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि। आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा नवन्त॥२॥**

**पदार्थ** :—( **सः ईम्** ) वह यह ( **भुरिषाट्** ) बहुत-से विघ्नों को परास्त करने वाला, ( **महः** ) महान् सोम नामक जीवात्मा

(पुरूणि वसूनि) बहुत से ऐश्वर्यों को (सातये) प्राप्त करने के लिए (रथः न) रथ के समान (अयोजि) परमात्मा के साथ जुड़ गया है। (आत ईम्) तदनन्तर ही (विश्वा) सब (जाता) बलवान् बने हुए (नहुष्याणि) मनुष्य के मन, बुद्धि आदि (स्वर्षाता) प्रकाश की प्राप्ति हो जाने पर (वने) तेज में (ऊर्ध्वा) ऊर्ध्वगामी होकर (नवन्त) क्रियाशील हो गये हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे रथ जब बिजली रूप अग्नि के साथ जुड़ जाता है तब तुरन्त सक्रिय हो जाता है, वैसे ही परमात्मा की मित्रता में जुड़ा हुआ जीवात्मा स्वयं पुरुषार्थी होकर मन, बुद्धि आदि को भी सक्रिय कर देता है॥२॥

अगले मन्त्र में मनुष्य को प्रेरित किया गया है।

**१४७३. शुष्मी शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या**
**यथा विट्। आपो न मक्षू सुमतिर्भवा नः**
**सहस्राप्साः पृतनाषाण् न यज्ञः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे सोम अर्थात् शान्तिप्रिय मानव! (शुष्मी) बलवान् तू (मरुतां शर्धः न) पवनों के गण के समान (पवस्व) क्रियाशील बन। (दिव्या विट्) दिव्य गुणों वाली विदुषी प्रजा (यथा) जैसे (अनभिशस्ता) अनिन्दित होती है वैसे ही तू अनिन्दित हो। (आप नः) नदियों के समान (मक्षूः) शीघ्र (नः) हमारे लिए (सुमतिः) परोपकार की मति वाला (भव) बन। (सहस्राप्साः) सहस्र रूपों वाले (पृतनाषाट्) न सेनाओं को पराजित करने वाले सेनापति के समान (यज्ञः) आत्म-बलिदान करने वाला बन॥३॥

यहाँ मालोपमा अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य यदि पवनों के समान बलवान् विद्वानों के समान प्रशस्त, नदियों के समान परोपकारी और सेनापतियों के समान आत्म-बलिदान करने वाले हों तो निश्चित ही राष्ट्र सर्वोन्नत हो जाए॥३॥

( १४ )

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१ वर्धमाना गायत्री; २, ३ गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २ क्रमांक पर परमात्मा और सूर्य के विषय में की जा चुकी है। यहाँ परमेश्वर के गुण-कर्मों का वर्णन करते हैं।

**१४७४. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।**
**देवेभिर्मानुषे जने॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनेता, ज्ञानी, सर्वान्तर्यामी, तेजस्वी, पापों को दग्ध करने वाले परमेश्वर! (**त्वम्**) सर्वोपकारी आप (**यज्ञानाम्**) देवपूजा, संगतिकरण, दान रूप व्यवहारों के (**होता**) दाता हो, और (**विश्वेषाम्**) सब को (**हितः**) हितकर्ता हो। साथ ही (**मानुषे जने**) मानव-समाज में (**देवेभिः**) सदाचारी विद्वानों द्वारा [उपासना किये जाते हो]॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर हमारा पिता होकर हमें सब व्यवहार सिखाता है, न्यायकारी और दयालु होकर सब का हित करता है, इस कारण सब लोगों को उसकी पूजा करनी चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१४७५. स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः।**
**आ देवान् वक्षि यक्षि च॥२॥**

**पदार्थ** :—हे अग्ने! हे सब के अग्रनेता परमात्मन्! (**सः**) वह आप (**मन्द्राभिः**) आनन्दायिनी (**जिह्वाभिः**) वेदवाणियों से (**अध्वरे**) जीवन-यज्ञ में (**नः**) हमें (**महः**) तेज (**यज**) प्राप्त कराओ, और (**देवान्**) दिव्यगुणों को (**आवक्षि**) लाओ, (**यक्षि च**) और हमारे साथ संगति करो॥२॥

**भावार्थ** :—जगत्पिता परमेश्वर की यह बड़ी भारी कृपा है कि उसने हमारे लिए वेदवाणी प्रदान की है, जिससे हमें अपने कर्तव्य का बोध होता है तथा जिससे हम तेज, पुरुषार्थ आदि की प्रेरणा पाते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के उपकार का वर्णन है।

१४७६. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा।
अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो॥३॥

**पदार्थ** :—हे (**वेधः**) जगत् के विधाता, (**देव**) सब को प्रकाशित करने वाले, (**सुक्रतो**) शुभ प्रजा और शुभ कर्मों वाले, (**अग्ने**) अग्रनायक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! आप (**हि**) निश्चय ही (**यज्ञेषु**) जीवनयज्ञों में (**अञ्जसा**) शीघ्र या सरलतापूर्वक, हमारे लिए (**अध्वनः**) अभ्युदय के मार्गों को (**वेत्थ**) जानते तथा जनाते हो॥३॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मार्गों को जनाकर हमारा परम मित्र होता है॥३॥

( १५ )

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर का वर्णन है।

१४७७. होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया।
विदथानि प्रचोदयन्॥१॥

**पदार्थ** :—(**होता**) कार्यसिद्धि को देने वाला, (**देवः**) दिव्य गुणों वाला, (**अमर्त्यः**) अमर अग्निनामक परमेश्वर (**विदथानि**) ज्ञानों, कर्मों और उच्च विचारों को (**प्रचोदयन्**) अन्तरात्मा में प्रेरित करता हुआ (**मायया**) ऋतम्भरा प्रज्ञा के साथ (**पुरस्तात्**) सम्मुख (**एति**) आता है॥१॥

**भावार्थ** :—योगाभ्यास द्वारा योगी लोग योगसिद्धि पाकर परमात्मा को बिलकुल सामने देखते हैं॥१॥

आगे फिर वही विषय है।

१४७८. वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते।
विप्रो यज्ञस्य साधनः॥२॥

**पदार्थ** :—(**वाजी**) बलवान् अग्नि नामक परमेश्वर (**वाजेषु**) देवासुरसंग्रामों में (**धीयते**) अन्तरात्मा में धारण किया जाता है,

और ( अध्वरेषु ) हिंसारहित व्यवहारों में ( प्रणीयते ) आगे लाया जाता है। वह ( विप्रः ) विशेष पूर्णता प्रदान करने वाला तथा ( यज्ञस्य साधनः ) जीवन-यज्ञ को सफल करने वाला है॥२॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर सब को सिद्धि देने वाला है उसकी सब लोगों को मनोयोगपूर्वक आराधना करनी चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर क्या करता है यह कहते हैं।

**१४७९. धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे।**
**दक्षस्य पितरं तना॥३॥**

**पदार्थ** :—( वरेण्यः ) वरणीय और श्रेष्ठ वह अग्नि नामक परमात्मा, अपने उपासक को ( तना धिया ) विस्तृत बुद्धि के दान द्वारा ( दक्षस्य ) मनोबल का ( पितरम् ) पिता ( चक्रे ) बना देता है। साथ ही ( भूतानाम् ) उत्पन्न प्रशस्त जनों में ( गर्भम् ) सद्गुणों के गर्भ को ( आ दधे ) स्थापित करता है॥३॥

**भावार्थ** :—उपासना किया हुआ जगदीश्वर उपासक का सखा बनकर उसके बल, विज्ञान और अध्यात्म-धन को बढ़ाता है॥३॥

( १६ )

ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ देवता—अग्निर्हवींषि वा। छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रारम्भ में उपास्य उपासक का विषय वर्णन करते हैं।

**१४८०. आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम्।**
**रसा दधीत वृषभम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! तुम ( सुते ) भक्तिरस के उमड़ने पर ( रोदस्योः ) द्युलोक और भूलोक के ( अभिश्रियम् ) शोभा-सम्पादक, ( श्रियम् ) आश्रय लेने योग्य अग्नि-नामक जगदीश्वर को ( आ सिञ्चत ) भक्तिरस से नहलाओ। ( रसा ) जगदीश्वर से निकली हुई आनन्दरस की नदी ( वृषभम् ) तुम्हारे ज्ञानसिक्त जीवात्मा को ( दधीत ) बल और पुष्टि प्रदान करे॥१॥

यहाँ 'श्रियम्' की पुनरुक्ति में यमक अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जब परमेश्वर के उपासक उसके प्रति भक्तिरस की नदी प्रवाहित करते हैं तब परमेश्वर उनके प्रति आनन्द-रस की नदी बहाता है॥३॥

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है।

**१४८१. ते जानत स्वमोक्यां३ सं वत्सासो न मातृभिः।**
**मिथो नसन्त जामिभिः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**ते**) वे परमेश्वर के उपासक (**स्वम्**) अपने (**ओक्यम्**) हृदय-सदन में विद्यमान परमात्माग्नि को (**जानत**) उपास्य रूप में जानते हैं। और फिर उस परमेश्वर को उपासने के लिए (**मिथः**) आपस में (**जामिभिः**) माँ-बहिन आदि के साथ (**सं नसन्त**) मिलकर बैठते हैं, (**वत्सासः न**) जैसे बछड़े (**मातृभिः**) अपनी माताओं गौओं के साथ (**सं नसन्त**) मिलते है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे बछड़े प्रेम से गौओं के साथ रहते हैं, वैसे ही घर के बालक से लेकर बूढ़े तक सब लोग आपस में एक साथ बैठकर परमात्मा की उपासना किया करें॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

**१४८२. उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि।**
**इन्द्रे अग्ना नमः स्वः॥३॥**

**पदार्थ** :—उपासक लोग (**स्रक्वेषु**) आत्मसमर्पण होने पर (**बप्सतः**) समीप आकर पापों को खा लेने वाले परमात्मा का (**दिवि**) अपने आत्मा में (**धरुणम्**) धारण (**कृण्वते**) करते हैं। और वे (**इन्द्रे**) परमैश्वर्यशाली, विघ्नविदारक (**अग्ना**) अग्रनायक परमात्मा में (**नमः**) नमस्कार समर्पित करके (**स्वः**) प्रकाश को पा लेते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—ध्यान द्वारा परमात्मा को अपने आत्मा में धारण करके, श्रद्धा से नमस्कार करके उपासकों को परम ज्योति प्राप्त करनी योग्य है॥३॥

( १७ )

ऋषिः—बृहद्दिव आथर्वणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रारम्भ में इन्द्र परमात्मा की महिमा वर्णित करते हैं।

**१४८३. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः। सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः॥१॥**

**पदार्थ** :—( तत् इत् ) वह ब्रह्म ही ( भुवनेषु ) सूर्य, नक्षत्र आदि लोकलोकान्तरों में ( ज्येष्ठम् ) ज्येष्ठ ( आस ) है, ( यतः ) जिससे ( उग्रः ) प्रचण्ड, ( त्वेषनृम्णः ) प्रदीप्त ज्योतिरूप धन वाला अथवा प्रदीप्त बल वाला सूर्य ( शत्रून् ) अन्धकार, मलिनता, रोग आदि शत्रुओं को ( नि रिणाति ) विनष्ट करता है, ( यम् अनु ) जिसकी अनुकूलता से ( विश्वे ) सब ( ऊमाः ) रक्षक पृथिवी, मंगल, बुध, चन्द्रमा आदि ( मदन्ति ) प्रकाश और प्राण को प्राप्त करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—ज्येष्ठ ब्रह्म ही सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, मंगल, बुध, बृहस्पति, तारामण्डल आदि लोक-लोकान्तरों का निर्माण करके इस ब्रह्माण्ड का संचालन कर रहा है॥१॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का प्रताप वर्णित है।

**१४८४. वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति। अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु॥२॥**

**पदार्थ** :—( शवसा ) बल से ( वावृधानः ) अतिशय बढ़ा हुआ, ( भूर्योजाः ) बहुत प्रतापी, ( शत्रुः ) दुष्टों का विनाश करने वाला इन्द्र परमेश्वर ( दासाय ) यज्ञ आदि सत्कर्मों का विध्वंस करने वाले को ( भियसम् ) भय ( दधाति ) देता है। हे इन्द्र परमात्मन्! ( अव्यनच्च ) निर्जीव ( व्यनत् च ) और सजीव जगत् ( सस्नि ) आपसे ही संस्नात होता अर्थात् शुद्ध किया जाता है। हे

देव! ( ते ) आपके द्वारा उत्पन्न ( मदेषु ) आनन्दों में ( प्रभृता ) प्रकृष्ट रूप से धारण और पुष्ट किये गये सब प्राणी ( सन्नवन्त ) आपकी स्तुति करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—अनन्त बल वाले जगदीश्वर से दुष्ट लोग भय खाते हैं और सज्जन उससे पालित-पोषित होकर श्रद्धा से उसकी बारम्बार स्तुति करते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का प्रभाव वर्णन करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है।

**१४८५. त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः। स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश्वर! ( **यत् एते** ) जो ये ( **ऊमाः** ) रक्षक माता, पिता, अतिथि, संन्यासी आदि लोग ( **द्विः** ) दो बार, या ( **त्रिः** ) तीन बार ( **भवन्ति** ) जन्म लेते हैं, वे ( **त्वे** ) आपमें ही ( **क्रतुम्** ) किये जाते हुए सब कर्म को ( **अपि वृञ्जन्ति** ) समर्पित करते हैं। आप ( **स्वादुना** ) मेरे स्वादु आनन्द के साथ ( **स्वादोः स्वादीयः** ) अपने स्वादुतर आनन्द को ( **संसृज** ) मिला दो। ( **अदः** ) इस ( **सुमधु** ) अति मधुर अपने रस को ( **मधुना** ) मेरे मधुर जीवन के साथ ( **अभियोधीः** ) मिला दो॥३॥

यहाँ स्वादोः, स्वादी, स्वादु में वृत्त्यनुप्रास है, द, स और ध की आवृत्ति में भी वही अनुप्रास है। 'मधु, मधु' में छेकानुप्रास है॥३॥

**भावार्थ** :—एक जन्म माता-पिता से और दूसरा जन्म आचार्य से पाकर मनुष्य द्विज बनता है, और जो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सन्तान उत्पन्न करता है, वह इसका तृतीय जन्म होता है, क्योंकि 'पिता स्वयं पुत्र के रूप में जन्म लेता है' (निरु० ३।४) यह शास्त्र का वचन है। जो भी द्विज या त्रिज महापुरुष होते हैं वे परमात्मा में ही अपना सर्वस्व अर्पित कर देते हैं और परमात्मा उनके लिए अत्यन्त मधुर अपना आनन्द-रस बरसाता है॥३॥

( १८ )

**ऋषिः—गृत्समदः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ अष्टिः; २, ३ अतिशक्वरी॥ स्वरः—१ मध्यमः; २–३ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४५७ क्रमांक पर सूर्य-चन्द्र और गुरु-शिष्य के विषय में की गयी थी। यहाँ उपास्य-उपासक का विषय दर्शाते हैं।

**१४८६. त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्
सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशम्। स ईं ममाद
महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं
सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्॥१॥**

**पदार्थ :**—(**त्रिकद्रुकेषु**) तीन ऋग्, यजुः, साम रूप साधनों वाले उपासना-यज्ञों में (**महिषः**) महान् जीवात्मा (**विष्णुना**) सर्वव्यापक परमात्मा से (**सुतम्**) चुआए हुए, (**यवाशिरम्**) योगाभ्यास से परिपक्व, (**तुविशुष्मम्**) बहुत बलदायक (**सोमम्**) ब्रह्मानन्द-रस को (**यथावशम्**) यथेच्छ (**अपिबत्**) पीता है। (**सः**) वह ब्रह्मानन्द-रस (**महाम्**) महान्, (**उरुम्**) विस्तृत ज्ञान वाले (**ईम्**) इस जीवात्मा को (**महि कर्म**) महान् कर्म (**कर्तवे**) करने के लिए (**ममाद**) उत्साहित करता है। (**सः**) वह (**देवः**) प्रकाशक, (**सत्य**) सत्य, (**इन्दुः**) उपासक को भिगोने वाला ब्रह्मानन्द-रस (**देवम्**) दिव्य गुण-युक्त, (**सत्यम्**) सत्य के प्रेमी (**एनम् इन्द्रम्**) इस जीवात्मा को (**सश्चत्**) निरन्तर प्राप्त होता रहता है॥१॥

**भावार्थ :**—वेदमन्त्रों के गान पूर्वक मनुष्य जब परमात्मा को ध्याता है तब परमात्मा के पास से धारा-प्रवाह में बहता हुआ परमानन्द-रस उसके आत्मा को निरन्तर नहलाता रहता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर उपास्य-उपासक का विषय है।

**१४८७. साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः।
दाता राध स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं
सश्चद्देवो देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश्वर! आप ( **क्रतुना** ) कर्म और प्रज्ञा के ( **साकम्** ) साथ, और ( **ओजसा** ) बल के ( **साकम्** ) साथ ( **जातः** ) प्रसिद्ध हो। इसी कारण आप ( **ववक्षिथ** ) जगत् के भार को वहन कर रहे हो। आप ( **वीर्यैः साकम्** ) पराक्रमों के साथ ( **वृद्धः** ) प्रवृद्ध, ( **मृधः सासहिः** ) हिंसकों को परास्त करने वाले, ( **विचर्षणिः** ) पुण्यकर्ताओं और अपुण्यकर्ताओं को विवेक पूर्वक देखने वाले हो। हे ( **प्रचेतन** ) उत्कृष्टरूप से चेताने वाले! आप ( **स्तुवते** ) स्तुतिकर्ता जन के लिए ( **राधः** ) सफलता, और ( **काम्यं वसु** ) अभीष्ट ऐश्वर्य के ( **दाता** ) देने वाले हो। ( **सः** ) वह ( **देवः** ) दिव्यगुणों वाला, ( **सत्यः** ) सत्य का प्रेमी ( **इन्दुः** ) तेजस्वी स्तोता ( **एवम्** ) इस ( **देवम्** ) दिव्य गुणों वाले, ( **सत्यम्** ) सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले ( **इन्द्रम्** ) परमैश्वर्यवान् आप जगदीश्वर को ( **सश्चत्** ) प्राप्त कर लेवे॥२॥

**भावार्थ** :—जो ज्ञान, कर्म, बल और पराक्रम में सर्वाधिक है और सदाचारी स्तोता के उत्तम मनोरथों को पूर्ण करने वाला है, उस जगदीश्वर को ध्याकर और पाकर सब मनुष्य पूर्ण मनोरथों वाले हों॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा और उपासक का विषय वर्णित है।

**१४८८. अध त्विषीमाँ अभ्योजसा कृविं युधाभवदा**
**रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे। अधत्तान्यं**
**जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं सश्चद्देवो देवं**
**सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम्॥३॥**

**पदार्थ** :—( **अध** ) और ( **त्विषीमान्** ) प्रशस्त तेज वाला वह इन्द्र जगदीश्वर ( **ओजसा** ) बल से ( **युधा** ) युद्ध द्वारा ( **क्रिविम्** ) हिंसक जन को ( **अभि अभवत्** ) परास्त कर देता है। वही ( **रोदसी** ) द्युलोक और भूलोक को ( **आ पृणत्** ) जल, तेज आदि ऐश्वर्यों से भरपूर करता है। ( **अस्य** ) इस इन्द्र जगदीश्वर के ( **मज्मना** ) बल से, यह सब जगत् ( **प्र वावृधे** ) प्रवृद्ध होता है। वह जगदीश्वर ( **अन्यम्** ) किसी को अर्थात् दुष्टाचारी को ( **जठरे** ) भूकम्प आदि से भूमि को फाड़कर उसके पेट में

**( अधत्त )** डाल देता है, और **( ईम् )** कोई अर्थात् सदाचारी मनुष्य **( प्र अरिच्यत )** इसकी महिमा से बढ़ता है। **( सः )** वह **( देवः )** दिव्यगुणी, **( सत्यः )** सत्य का प्रेमी **( इन्दुः )** तेजस्वी उपासक **( देवम् )** प्रकाश देने वाले, **( सत्यम् )** सत्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले **( एनम् इन्द्रम् )** इस परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर को **( सश्चत् )** प्राप्त करे। हे जगदीश्वर! आप उस उपासक को **( प्रचेतय )** प्रज्ञानयुक्त करो।।३।।

**भावार्थ** :—जो सज्जनों को पीड़ित करते हैं उन्हें जो जगत् का स्रष्टा, अपरिमित बल वाला, न जीता जा सकने वाला जगदीश्वर यथायोग्य दण्डित करता है उसकी सब लोग श्रद्धा और प्रेम से उपासना करके अपने अभीष्टों को पूर्ण करें।।३।।

**इति त्रयोदशोऽध्यायः, षष्ठप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः समाप्तः॥**

# अथ चतुर्दशोऽध्यायः

## सप्तमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—प्रियमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री। स्वरः— षड्जः॥

प्रथमा ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १६८ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ जीवात्मा विषय लेते हैं।

३ १ २र ३१ २ ३ १ २ ३ २
**१४८९. अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।**

३ २ ३ २ ३ १ २
**सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मित्र! तू ( **गोपतिम्** ) इन्द्रियों के स्वामी, ( **सत्यस्य सुनुम्** ) सत्यस्वरूप परमात्मा के पुत्र, ( **सत्पतिम्** ) श्रेष्ठ विचारों के रक्षक इन्द्र नामक जीवात्मा को ( **अभि** ) लक्ष्य करके ( **प्र अर्च** ) बहुत अधिक उद्बोधन-वाक्यों का उच्चारण कर, ( **यथा** ) जिससे वह ( **विदे** ) बोध प्राप्त कर ले॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का अपना आत्मा आदि तीव्र उद्बोधन प्राप्त कर ले तो जगत् में उसके लिए कुछ भी दुर्लभ न हो॥१॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा के अधिष्ठान देह का वर्णन है।

१ २र ३१ २ ३१ २ ३ १ २
**१४९०. आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि।**

२ ३ २ ३ १ २
**यत्राभि संनवामहे॥२॥**

**पदार्थ** :—( **बर्हिषि अधि** ) यज्ञ रूप इस देह में ( **अरुषीः** ) यज्ञ को न हिंसित करने वाले ( **हरयः** ) मन और प्राणसहित ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप घोड़े ( **आ ससृजिरे** ) आकर जुड़े हुए हैं ( **यत्र** ) जिस देह-यज्ञ में स्थित इन्द्र जीवात्मा को, हम ( **अभि संनवामहे** ) संस्तुत करते हैं, उद्बोधन देते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जो लोग शरीर को यज्ञस्थल, उसमें स्थित इन्द्रियों को ऋत्विज् और जीवात्मा को यजमान मानकर पवित्र जीवन बिताते हैं वे सफल होते हैं॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि आत्मा ज्ञान कैसे प्राप्त करता है।

**१४९१. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु।**
**यत्सीमुपह्वरे विदत्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**वज्रिणे**) वीर्यवान् (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए (**गावः**) मन और बुद्धि सहित इन्द्रिय रूप धेनुएं (**मधु**) मधुर (**आशिरम्**) ज्ञानरूप दूध को (**दुदुह्रे**) दुहती हैं, (**यत्**) जिस ज्ञान-दुग्ध को वह इन्द्र जीवात्मा (**सीम्**) सब ओर से (**उपह्वरे**) अपने समीप (**विदत्**) लाता है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा ने जीवात्मा को मन, बुद्धि, इन्द्रियरूप श्रेष्ठ साधन प्रदान किये हैं, जिनसे वह सारा ज्ञान अर्जित कर सकता है॥३॥

**(२)**

**ऋषिः—नृमेधपुरुमेधौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २६९ क्रमांक पर परमेश्वर के विषय में की गयी थी। यहाँ विघ्न दूर करने के लिए परमात्मा और राजा से प्रार्थना करते हैं।

**१४९२. आ नो विश्वासु हव्यमिन्द्रं समत्सु भूषत। उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम॥१॥**

**पदार्थ** :—हे राष्ट्रवासी जनो! तुम (**विश्वासु समत्सु**) सब देवासुरसंग्रामों में (**नः**) हम प्रजाजनों के (**हव्यम्**) आह्वान करने योग्य (**इन्द्रम्**) परमात्मा वा राजा को (**आभूषत**) स्वागत-गानों से अलंकृत करो। हे (**वृत्रहन्**) विघ्न-विदारक, पाप-दल के विध्वंसक, (**ऋचीषम**) स्तोताओं को मान देने वाले परमात्मन् वा राजन्! (**परमज्याः**) प्रबल आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को विनष्ट करने वाले आ, हमारे (**ब्रह्माणि**) ब्रह्म यज्ञों में, तथा (**सवनानि**) सोमयाग के प्रातः सवन, माध्यन्दिन-सवन और सायं-सवनों में (**उप**) आओ॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर नास्तिक पापियों को दण्ड देकर और धर्मात्मा आस्तिक लोगों से मित्रता करके धार्मिकता का पोषण करता है, वैसे ही राजा भी करे।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का वर्णन है।

**१४९३. त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।**
**तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्यवान् जगदीश्वर वा राजन्! (**त्वम्**) आप (**राधसाम्**) ऐश्वर्यों के (**प्रथमः**) श्रेष्ठ (**दाता**) दाता, (**सत्यः**) सत्य के प्रेमी और (**ईशानकृत्**) निर्धनों को भी धन स्वामी बना देने वाले (**असि**) हो। (**तुविद्युम्नस्य**) बहुत धनी वा यशस्वी, (**शवसः पुत्रस्य**) बल के पुत्र अर्थात् अति बली, (**महः**) महान् आपके (**युज्या**) मित्रभाव को, सहयोग को (**वृणीमहे**) हम वरते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परमदानी, अतिशक्तिशाली परमात्मा और राजा की मैत्री को स्वीकार करके निर्धन भी धनवान्, कुछ करने में असमर्थ भी बहुत कार्य कर सकने वाले, सेवक भी स्वामी और निन्दित भी यशस्वी हो जाते हैं॥२॥

( ३ )

**ऋषिः—त्र्यरुणत्रसदस्यू॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—ऊर्ध्वा बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रस का वर्णन है।

**१४९४. प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ**
**निरधुक्षत। इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**यत्**) जो (**प्रत्नम्**) सनातन, (**पूर्व्यम्**) पूर्वजों से अनुभूत, और (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय है, उस (**पीयूषम्**) पान करने योग्य ब्रह्मानन्द-रूप अमृत को (**महः**) महान्, (**गाहात्**) गहन (**दिवः**) प्रकाशमय परमेश्वर से (**आ निरधुक्षत**) उपासक लोग दुहकर प्राप्त कर लेते हैं। (**इन्द्रम् अभि**) जीवात्मा के प्रति

(जायमानम्) उत्पन्न होते हुए उसकी (ते) वे उपासक जन (समस्वरन्) भली-भाँति स्तुति करते हैं।।१।।

**भावार्थ** :—परब्रह्म के पास से जीवात्मा के प्रति प्रवाहित होते हुए आनन्द-रस का उपासक लोग स्वागतगानपूर्वक अभिनन्दन करते हैं।।१।।

आगे पुन: वही विषय है।

**१४९५. आर्दी केचित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत। दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते॥२॥**

**पदार्थ** :—(**आत्**) जब परब्रह्म के पास से बहता हुआ ब्रह्मानन्द-रस जीवात्मा को प्राप्त होने लगता है उसके अनन्तर इस ब्रह्मानन्द के (**आप्यम्**) अपने साथ बन्धुत्व को (**पश्यमानास:**) देखते हुए, (**वसुरुच:**) अग्नि, बिजली और आदित्य के समान कान्तिवाले तेजस्वी (**केचित्**) कोई (**दिव्या:**) दीप्तिमान् ब्रह्म का साक्षात्कार करने में निपुण उपासक (**ईम्**) इस ब्रह्मानन्द-रस की (**अभ्यनूषत**) स्तुति करते हैं। (**सविता**) सूर्य (**दिव: न वारम्**) जैसे आकाश के शिशु चन्द्रमा को अपने प्रकाश से (**व्यूर्णुते**) आच्छादित करता है, वैसे ही (**सविता**) रस का प्रवाहक सोम परमेश्वर उन उपासकों को (**व्यूर्णुते**) आनन्द-रस से आच्छादित करता है।।२।।

;gk mielky d kj g& okje≈बालम्।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा स्नान करता है, वैसे ही परमात्मा के आनन्द-रस से जीव।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा वर्णित है।

**१४९६. अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि मज्मना। यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अध**) और, हे (**पवमान**) क्रियाशील परमात्मन्!

आप ( यत् ) जब ( इमे रोदसी ) इन द्युलोक और भूलोक को ( इमा च ) तथा इन ( विश्वा भुवना ) सब भुवनों को ( मज्मना ) बल से ( अभि ) अभिभूत करते हो, तब ( यूथे न ) जैसे गौओं के झुण्ड में ( निष्ठाः ) स्थित ( वृषभाः ) सांड शोभा पाता है, वैसे ही आप ( विराजसि ) शोभते हो।।३।।

यहाँ उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे गौओं के झुण्ड में वृषभ अपने महत्त्व के कारण पृथक् शोभा पाता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड के लोक-लोकान्तरों के मध्य जगत्स्रष्टा परमेश्वर सर्वाधिक महिमा के कारण पृथक् भासित होता है।।३।।

( ४ )

**ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

**प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २८ क्रमांक पर परमेश्वर को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ जगदीश्वर और आचार्य को सम्बोधन है।**

**१४९७. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्।**
**अग्ने देवेषु प्र वोचः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) जगदीश्वर वा आचार्य! ( **त्वम् उ** ) आप ( **इमाम्** ) इस ( **अस्माकं सनिम्** ) हमें बहुत बोध देने वाले ( **गायत्रम्** ) गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदज्ञान को वा गायत्र नामक साम को ( **देवेषु** ) दिव्य गुणों वाले सत्पात्रों में ( **सु प्रवोचः** ) भली-भाँति उपदेश करते हो।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे सृष्टि के आदि में जगदीश्वर अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नामक ऋषियों के हृदय में चारों वेदों को प्रेरित करता है, वैसे ही गुरु लोग आजकल के सत्पात्र शिष्यों को वेदज्ञान का उपदेश करें।।१।।

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर और आचार्य को कहा गया है।

**१४९८. विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ।**
**सद्यो दाशुषे क्षरसि॥२॥**

**पदार्थ** :—( **प्रथम** ) परमात्मा के पक्ष में। हे ( **चित्रभानो** ) अद्भुत तेज वाले नामक परमात्मन्! आप ( **विभक्ता असि** ) अपने तेज को अन्य सूर्य आदि पदार्थों में बांटने वाले हो। आप ( **सिन्धोः** ) समुद्र या नदी की ( **ऊर्मौ** ) लहर में विद्यमान हो। आप ( **उपाके** ) सबके समीप ( **आ** ) विराजमान हो। आप ( **दाशुषे** ) आत्मसमर्पणकर्ता उपासक के लिए ( **क्षरसि** ) आनन्द को बरसाते हो॥२॥

यहाँ श्लेषालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर सब वस्तुएं अपनी प्रजाओं में बांटते हैं, वैसे ही गुरु लोग सब विद्याएं अपने शिष्यों में बांटें॥२॥

आगे जगदीश्वर और आचार्य से प्रार्थना करते हैं।

**१४९९. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु।**
**शिक्षा वस्वो अन्तमस्य॥३॥**

**पदार्थ** :—हे अग्ने! हे विद्वन् परमात्मन् वा आचार्य! आप ( **परमेषु** ) परा-विद्या से उत्पन्न होने वाले उच्च ( **वाजेषु** ) विज्ञानों में ( **नः आ भज** ) हमें भागी बनाओ, ( **मध्यमेषु** ) अपरा विद्या से उत्पन्न होने वाले मध्यम ( **वाजेषु** ) विज्ञानों में ( **आ भज** ) भागी बनाओ, और ( **अन्तमस्य** ) आपके समीप विद्यमान ( **वस्वः** ) सकल ऐश्वर्य का भी ( **शिक्ष** ) दान करो॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से तथा योग्य गुरुओं की शिक्षा से सब लोग 'परा विद्या वह है जिससे उस अविनश्वर परब्रह्म की प्राप्ति होती है '(मु० २।५)' इस लक्षण वाली पर विद्या को, 'अपरा विद्या है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द, ज्योतिष (मु० २५)' इस लक्षण वाली अपरा विद्या को, और सकल चांदी, सोना, मणि, मोती आदि धन को प्राप्त करें॥३॥

(५)

ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १५२ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ मनुष्य अपनी उपलब्धि का वर्णन कर रहा है।

**१५००. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह।**
**अहं सूर्यइवाजनि॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अहम्** ) मैंने ( **इत् हि** ) निश्चय ही ( **पितुः परि** ) पालनकर्ता पिता, आचार्य वा परमेश्वर से ( **ऋतस्य** ) सत्य ज्ञान और सत्य आचरण की ( **मेधाम्** ) बुद्धि को ( **जग्राह** ) ग्रहण कर लिया है। ( **अहम्** ) सत्यज्ञान वा सत्य आचरण को प्राप्त मैं ( **सूर्यः इव** ) सूर्य के समान सर्वोन्नत, प्रकाशवान् और प्रकाशक ( **अजनि** ) हो गया हूँ॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—**जो माता, पिता वा आचार्य के पास से तथा परमेश्वर की प्रेरणा से सब विद्याओं और सदाचार को सीखकर उनका यथायोग्य सत्कार तथा पूजन करते हैं और दूसरों को विद्याएं तथा सदाचार सिखाते हैं वे प्रशंसित होते हैं॥१॥**

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**१५०१. अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत्।**
**येनेन्द्रः शुष्ममिद् दधे॥२॥**

**पदार्थ** :—( **अहम्** ) मैं महत्त्वाकांक्षी ( **जन्मना प्रत्नेन** ) जन्मना आचार्य के पास से प्राप्त श्रेष्ठ जन्म से ( **कण्ववत्** ) मेधावी विद्वान् के समान ( **गिरः** ) अपनी वाणियों को ( **शुम्भामि** ) सत्य भाषण से अलंकृत करता हूं, ( **येन** ) जिससे ( **इन्द्रः** ) मेरा जीवात्मा ( **शुष्मम् इत्** ) बल को ही ( **दधे** ) धारण करता है॥२॥

**भावार्थ** :—आचार्य और सावित्री के पास से द्वितीय जन्म ग्रहण कर, द्विज होकर जो मन, वाणी और कर्म से सत्य ही अनुष्ठान करता है वह पवित्र आत्मा वाला और सबल आत्मा वाला होकर सबसे सत्कार पाता है॥२॥

अगले मन्त्र में स्तोता अपना अभिप्राय प्रकट कर रहा है।

**१५०२. ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः।**
**ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान्, दोषहन्ता, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! (**ये**) जो निरीश्वरवादी लोग (**त्वाम्**) आपकी (**न तुष्टुवुः**) स्तुति नहीं करते हैं, (**ये च ऋषयः**) और जो तत्त्वदर्शी, वेदार्थवेत्ता, आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने वाले विद्वान् जन (**तुष्टुवुः**) महिमा-वर्णन द्वारा आपकी स्तुति करते हैं वे अपनी इच्छा के अनुसार भले ही व्यवहार करें, किन्तु (**मम**) मेरे स्तोत्र से (**सुष्टुतः**) भलीभांति आराधना किये गये आप, मेरे अन्तरात्मा में (**वर्धस्व इत्**) अवश्य वृद्धि को प्राप्त होओ।।३।।

**भावार्थ** :—कोई लोग कहते हैं कि परमेश्वर नाम की कोई वस्तु है ही नहीं, यदि है भी तो वह उपेक्षा योग्य है। भले ही वे उसकी स्तुति न करें। मेरी जीवन-नौका का तो वही कर्णधार है, इसलिए मैं बार-बार उसका वन्दन करता हूं और अभिनन्दन करता हूं।।३।।

**( ६ )**

**ऋषिः—अग्निस्तापसः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१५०३. अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत।**
**ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिरः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**हे सहस्कृत**) ध्यान-बल से प्रकट किये गये (**अग्ने**) विश्ववन्द्य परमात्मन्! आप (**विश्वेभिः**) सब (**अग्निभिः**) तेजों के साथ (**ब्रह्म**) हमारे अन्तरात्मा को (**जोषि**) प्राप्त होओ। (**ये**) जो तेज (**देवत्रा**) प्रकाशक बिजली, सूर्य आदियों में हैं, और (**ये**) जो तेज (**आयुषु**) मनुष्यों में हैं (**तेभिः**) उनसे (**नः**) हमारी (**गिरः**) वाणियों को (**महया**) महिमामय करो।।१।।

**भावार्थ** :—परमात्मा ने जो अग्नियां रची हैं उनसे तेज के

तत्त्व को लेकर हम अपने वाणी, मन, बुद्धि, आत्मा आदि को तेजस्वी बनायें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः वही विषय है।

**१५०४. प्र स विश्वेभिरग्निभिरग्निः स यस्य वाजिनः।**
**तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः॥२॥**

**पदार्थ** :–( **अग्निः** ) अग्नि नाम से प्रसिद्ध जगदीश्वर ( **सः** ) वह है ( **यस्य** ) जिसके रचे हुए ( **वाजिनः** ) बलवान् मन, बुद्धि, प्राण, आदि और सूर्य, चन्द्र आदि हैं। ( **सः** ) वह ( **विश्वेभिः अग्निभिः** ) अपनी रची हुई आग, बिजली, सूर्य आदि सब अग्नियों के कारण ( **प्र** ) प्रशंसनीय बना हुआ है। ( **वाजैः** ) बलों से ( **परीवृतः** ) घिरा हुआ वह ( **अस्मत्** ) हम में और ( **तोके तनये** ) हमारे पुत्र, पौत्र आदियों में ( **सम्यङ्** ) भली-भाँति ( **आ** ) आये॥२॥

**भावार्थ** :–न केवल हम, प्रत्युत हमारी भावी सन्ततियां भी अध्यात्म मार्ग की पथिक होवें॥२॥

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है।

**१५०५. त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।**
**त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय॥३॥**

**पदार्थ** :–हे ( **अग्ने** ) अग्रनायक, ज्योतिप्रदायक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ जगदीश्वर! ( **त्वम्** ) सर्वशक्तिमान् आप ( **अग्निभिः** ) अपनी ज्योतियों से ( **नः** ) हमारे ( **ब्रह्म** ) जीवात्मा को ( **यज्ञं च** ) और हमारे द्वारा किये जाने वाले उपासना, मानवसेवा आदि यज्ञ को ( **वर्धय** ) बढ़ाओ। ( **आप देवतातये** ) राष्ट्रोत्थानरूप यज्ञ की पूर्ति के लिए ( **नः** ) हमें ( **रायः** ) विद्या, सुवर्ण, धान्य आदि धन के ( **दानाय** ) दान के लिए ( **चोदय** ) प्रेरित करो॥३॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के तेज से तेजस्वी होकर हम परमात्मा के समान परोपकार-यज्ञ में संलग्न होवें और विद्या, धन, धान्य आदि का दान करते हुए समाज को उन्नत करें॥३॥

(७)

**ऋषिः—त्र्यरुणत्रसदस्यू॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—ऊर्ध्वा बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम मन्त्र में सोम नाम से जगत्पति से प्रार्थना की गयी है।

**१५०६. त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः। स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) जगत् के उत्पादक, शुभ गुण-कर्म-स्वभाव के प्रेरक, सबको आह्लाद देने वाले परमात्मन्! (**प्रथमाः**) श्रेष्ठ (**वृक्तबर्हिषः**) उपासना-यज्ञ में कुशाओं का आसन बिछाये हुए यजमान (**महे वाजाय**) महान् बल के लिए और (**श्रवसे**) यश के लिए (**त्वे**) आप में (**धियं दधुः**) ध्यान लगाते हैं। (**सः त्वम्**) वह सब श्रेष्ठ जनों से ध्यान किये गये आप (**नः**) हम ध्यानकर्ताओं को (**वीर्याय**) वीर कर्म के लिए (**चोदय**) प्रेरित कीजिए॥१॥

**भावार्थ :—परमात्मा के ध्यानकर्ता लोग बली होकर शुभ लोकहितकारी कर्मों को करते हुए यशस्वी होते हैं॥१॥**

अगले मन्त्र में जगत्पति के उपकारों का वर्णन है।

**१५०७. अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जन-पानमक्षितम्। शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे सोम नामक जगत्पति परमात्मन्! (**श्रवसा**) यश से प्रसिद्ध आप (**अक्षितम् उत्सं न**) अक्षय जल-स्रोत के समान (**अक्षितं जनपानम्**) मनुष्यों से पान करने योग्य अक्षय आनन्द-रस को (**अभ्यभि हि**) उपासकों के प्रति (**ततर्दिथ**) बहाते हो। और (**गभस्त्योः**) बाहुओं की (**शर्याभिः न**) अंगुलियों से जैसे कोई मनुष्य किसी वस्तु को पकड़ता है वैसे ही आपने (**गभस्त्योः**) द्यावापृथिवी की (**शर्याभिः**) किरणों से (**भरमाणः**) लोक लोकान्तरों को धारण किया हुआ है॥२॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ :—जैसे स्रोत से बहता हुआ जलप्रवाह भूभाग को आप्लावित कर देता है, वैसे ही परमात्मा के पास से बहता हुआ**

आनन्द-रस उपासकों के अन्तःकरण को आप्लावित करता है। और जैसे बाहुओं की अंगुलियों से कोई किसी पदार्थ को धारण करता है, वैसे ही जगदीश्वर द्यावापृथिवी में व्याप्त सूर्य-रश्मियों से विभिन्न लोकों को धारण करता है।।२।।

अगले मन्त्र में फिर उसी विषय में वर्णन है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३
**१५०८. अजीजनो अमृत मर्त्याय कमृतस्य धर्मन्नमृतस्य**
१ २ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**चारुणः। सदासरो वाजमच्छा सनिष्यदत्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अमृत**) अमर सोम जगदीश्वर! आपने (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिए (**ऋतस्य धर्मन्**) जल वा सत्यनियम के धारणकर्ता आकाश में (**चारुणः**) कल्याणकारी, (**अमृतस्य**) अमृतमय बादल वा सूर्य के (**कम्**) सुखकारी जल वा प्रकाश को (**अजीजनः**) उत्पन्न किया है। साथ ही (**वाजम् अच्छ**) बल प्राप्त कराने के लिए (**सनिष्यदत्**) प्रवृत्त होते हुए आप (**सदा**) हमेशा (**असरः**) धार्मिक उपासकों को प्राप्त होते हो।।३।।

**भावार्थ** :—जगदीश्वर का हमारे प्रति कितना उपकार है कि वह हमारे लिए आकाश में जल बरसाने वाले बादल को और तेज के खजाने सूर्य को स्थापित करता है और वही सब विपदाओं तथा विघ्नों से मुकाबला करने के लिए हमें मनोबल भी देता है।।२।।

(८)

**ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा में पूर्वार्चिक में ३८६ क्रमांक पर इन्द्र शब्द से परमात्मा का ग्रहण किया गया था। यहाँ जीवात्मा का ग्रहण करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र
**१५०९. एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु।**
१ २र ३ २
**प्र राधांसि चोदयते महित्वना॥१॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! तुम (**इन्द्राय**) अपने अन्तरात्मा के लिए (**इन्द्रम्**) सराबोर करने वाले ब्रह्मानन्द-रस को (**आ**

सिञ्चत) प्रवाहित करो। वह अन्तरात्मा (सोम्यम्) शान्तिकारी (मधु) उस मधुर ब्रह्मानन्द-रस को (पिबाति) पीये। पीया हुआ वह ब्रह्मानन्द-रस (महित्वना) अपनी महिमा से (राधांसि) ऐश्वर्यों को (प्रचोदयते) प्रेरित करे॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास से बहता हुआ आनन्द-रस जीवात्मा से पान किये जाने पर बहुत कल्याणकारी होता है॥१॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की स्तुति है।

**१५१०. उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम्।**
**नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य॥२॥**

**पदार्थ** :—(**हरीणाम्**) आकर्षण के गुण से एक-दूसरे के साथ बंधे हुए सूर्य, भूमण्डल, मंगल, बुध, चन्द्र, नक्षत्र आदियों के अथवा ज्ञान और कर्म का आहरण करने वाली ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के (**पतिम्**) स्वामी, (**राधः**) ऐश्वर्य को (**पृञ्चन्तम्**) प्रदान करने वाले इन्द्र परमात्मा के (**उप**) समीप होकर, मैं (**अब्रवम्**) स्तुतिवचन बोलता हूं। हे इन्द्र परमात्मन्! (**स्तुवतः**) स्तुति करने वाले, (**अश्व्यस्य**) इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को सन्मार्ग पर चलाने वाले मुझ उपासक के, उस प्रार्थना-वचन को, आप (**नूनम्**) अवश्य (**श्रुधि**) सुनो, पूर्ण करो॥२॥

**भावार्थ** :—आपस में आकर्षण-बल से बिना आधार के आकाश में स्थित लोकलोकान्तरों का और शरीर में यथास्थान स्थित अंग-प्रत्यंगों का एवं मन, बुद्धि, प्राण तथा इन्द्रियों का जो व्यवस्थापक है उस परमात्मा की सब लोग जितेन्द्रिय होकर पुनः-पुनः भलीभांति स्तुति करें॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र परमात्मा की महिमा का वर्णन है।

**१५११. न ह्या३ङ्ग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत्।**
**न की राया नैवथा न भन्दना॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अङ्ग**) प्रिय परमेश्वर! (**पुरा च न**) पहले भी (**त्वत्**) आपकी अपेक्षा (**वीरतरः**) अधिक वीर (**न जज्ञे**) कोई उत्पन्न नहीं हुआ, [अब नहीं है, और भविष्य में नहीं होगा,

इसका तो कहना ही क्या।] (न किः) न ही (भन्दना) कल्याण में आपसे अधिक कोई उत्पन्न हुआ है वा होगा॥३॥

**भावार्थ :**—जगदीश्वर से अधिक वीर, धनी, कर्मण्य, रक्षक और कल्याणकारी अन्य कोई भी न हुआ, न है, न होगा। इसलिए अपने सुख और शान्ति के लिए उसी की वन्दना सब को करनी चाहिए॥३॥

(९)

**ऋषिः—प्रियमेध आङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—निचृदुष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा की महिमा वर्णित है।

१५१२. **नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम्।**
**पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि॥१॥**

**पदार्थ :**—हे मनुष्यो! (**वः**) तुम (**ओदतीनाम्**) प्रकाश से आप्लुत करने वाली उषाओं के (**नदम्**) प्रकाशक जगदीश्वर की, (**योयुवतीनाम्**) स्वयं को अन्यों के साथ मिलाने वाली नदियों के (**नदम्**) कल-कल नाद कराने वाले जगदीश्वर की, और (**वः**) तुम्हारी (**अघ्न्यानाम्**) न मारी जाने योग्य (**धेनूनाम्**) गायों के (**पतिम्**) रक्षक इन्द्र जगदीश्वर की स्तुति करो। हे इन्द्र जगदीश्वर! आप अधार्मिक शत्रुओं पर (**इषुध्यसि**) वाण चलाते हो, अर्थात् उन्हें दण्डित करते हो॥१॥

यहाँ 'नद' की आवृत्ति में यमक अलंकार है और 'तीनां' की आवृत्ति में छेकानुप्रास। नकार की आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है॥१॥

**भावार्थ :**—परमेश्वर की उषाओं को चमकाने वाला, सूर्य को प्रदीप्त करने वाला, बिजलियों को विद्योतित करने वाला, पवन को चलाने वाला, नदियों में कल-कल निनाद कराने वाला, धेनुओं में दूध उत्पन्न करने वाला और दुष्टों का दलन करने वाला है॥१॥

(१०)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५ क्रमांक पर परमेश्वर की उपासना के विषय में की जा चुकी है। यहाँ अग्निहोत्र का विषय कहते हैं।

**१५१३. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम्। उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! (**द्रविणोदाः**) आरोग्यरूप धन वा बल देने वाला, (**देवः**) प्रकाश से परिपूर्ण और प्रकाश देने वाला यज्ञाग्नि (**वः**) तुम्हारी (**पूर्णाम्**) केसर, कस्तूरी आदि से मिश्रित घी से पूर्ण, (**आसिचम्**) सींचने वाली स्रुवा को (**विवष्टु**) ग्रहण करे। तुम (**उत्सिञ्चध्वं वा**) सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित घृत की आहुतियों से उस अग्नि को सींचो (**उपपृणध्वं च**) और आहुति देने से खाली हुई स्रुवा को फिर घृत से भरो। (**आत् इत्**) तदनन्तर ही (**देवः**) प्रदीप्त यज्ञाग्नि (**वः**) तुम अग्निहोत्रियों को (**ओहते**) यज्ञ के लाभ प्राप्त करायेगा।।१।।

**भावार्थ :—बारम्बार आहुति देने से यज्ञाग्नि आरोग्य, दीप्ति आदि लाभों से याज्ञिकों का उपकार करता हुआ परमेश्वर की उपासना में भी सहायक होता है।।१।।**

अगले मन्त्र में फिर अग्निहोत्र का विषय वर्णित है।

**१५१४. तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत। दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे॥२॥**

**पदार्थ** :—(**प्रचेतसम्**) चेताने वाले (**वह्निम्**) अग्नि को (**देवाः**) विद्वान् अग्निहोत्री लोग (**अध्वरस्य**) हिंसारहित यज्ञ का (**होतारम्**) निष्पादक (**अकृण्वत**) करते हैं। वह (**अग्निः**) यज्ञाग्नि (**विधते**) परमेश्वर-पूजक, (**दाशुषे जनाय**) हवि देने वाले अग्निहोत्री को (**सुवीर्यम्**) सुवीर्य से युक्त (**रत्नम्**) आरोग्य आदि रत्न (**दधाति**) प्रदान करता है।।२।।

**भावार्थ** :—यज्ञाग्नि में रोग हरने वाले सुगन्धित द्रव्यों की जो आहुति दी जाती है वह अग्नि-ज्वालाओं द्वारा विच्छिन्न और सूक्ष्म की जाकर वायु के माध्यम से इधर-उधर फैलकर श्वास द्वारा प्राणियों के फेफड़ों में पहुंच कर वहां रक्तवाहिनी पतली-पतली केशिकाओं में खून से सम्बद्ध होकर खून में औषध को प्रविष्ट

करा देती है और खून की मलिनता को हरकर सांस से बाहर निकाल देती है। इस प्रकार प्राणियों को स्वास्थ्य देती है। अग्निज्वालाओं की दीप्ति, ऊर्ध्वगति, दोष-दाहकता इत्यादि गुणों को देखकर यज्ञकर्ता अपने अन्दर भी इन गुणों को धारण करने का यत्न करता है। इस प्रकार अग्निहोत्र से बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के लाभ होते हैं।।२।।

( ११ )

**ऋषि:—सोभरि: काण्व:॥ देवता—अग्नि:॥ छन्द:—बृहती॥ स्वर:—मध्यम:॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४७ क्रमांक पर परमेश्वर की पूजा के विषय में व्याख्या हो चुकी है। यहाँ परमात्मा और राजा का विषय वर्णित करते हैं।

**१५१५. अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधु:। उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिर:॥१॥**

**पदार्थ** :—(**गातुवित्तम:**) कर्तव्य-मार्ग का अतिशय बोध कराने वाले जगदीश्वर वा राजा के (**अदर्शि**) हमने दर्शन किये हैं, (**यस्मिन्**) जिसके आश्रय में रहते हुए प्रजाजन (**व्रतानि**) अपने-अपने कर्तव्य कर्म (**आदधु:**) करते हैं। (**उ सुजातम्**) भली-भाँति अन्तरात्मा में प्रकट हुए अथवा निर्वाचन-पद्धति से राजा के पद पर अभिषिक्त हुए, और (**आर्यस्य वर्धनम्**) श्रेष्ठ मनुष्य को बढ़ाने वाले (**अग्निम्**) अग्रनायक जगदीश्वर वा राजा के पास (**न:**) हमारे (**गिर:**) प्रार्थना-वचन (**उप नक्षन्तु**) पहुंचें।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर कर्तव्यमार्ग का बोधक, आर्यों को प्रोत्साहन देने वाला और दुर्जनों को दण्डित करने वाला है, वैसे ही राजा को भी होना चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय है।

**१५१६. यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वत:। सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत॥२॥**

**पदार्थ** :–( **चर्कृत्यानि** ) अतिशय करने योग्य कर्मों को ( **कृण्वतः** ) करते हुए ( **यस्मात्** ) जिस जगदीश्वर वा राजा से ( **कृष्टयः** ) दुष्ट मनुष्य ( **रेजन्त** ) भय के मारे कापते हैं, उस ( **सहस्रसाम्** ) सहस्र गुणों वा सहस्र पदार्थों के दाता ( **अग्निम्** ) अग्रनायक, जगदीश्वर वा राजा को, आप लोग ( **त्मना** ) स्वयं ( **धीभिः** ) बुद्धियों और कर्मों से ( **सपर्यत** ) पूजित वा सत्कृत करो, ( **मेधसातौ इव** ) जैसे यज्ञ में ( **अग्निम्** ) यज्ञाग्नि को याज्ञिक जन ( **धीभिः** ) आहुति-प्रदान आदि कर्मों से सत्कृत करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे न्यायकारी परमेश्वर से वैसे ही न्यायकारी राजा से दण्ड के भय से पापी लोग कांपें। जैसे सज्जनों को परमेश्वर सहस्र गुण व बल प्रदान करता है, वैसे ही राजा राष्ट्रभक्तों को सहस्र लाभ प्रदान करे। प्रजाजन भी परमेश्वर के भक्त जैसे परमेश्वर की पूजा करते हैं वा याज्ञिक लोग जैसे यज्ञाग्नि का हवियों से सत्कार करते हैं, वैसे ही अपने राजा का सत्कार करें॥२॥

तृतीय ऋचा की पूर्वार्चिक में ५१ क्रमांक पर परमात्मा की महिमा के विषय में व्याख्या की गयी थी। यहाँ परमात्मा और राजा दोनों का विषय कहते हैं।

**१५१७. प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना। अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि॥३॥**

**पदार्थ** :–( **दैवोदासः** ) आनन्द का दाता, ( **देवः** ) प्रकाशक ( **अग्निः** ) अग्रनायक जगदीश्वर वा राजा ( **इन्द्रः न** ) सूर्य के समान ( **मज्मना** ) बल से ( **मातरं पृथिवीम्** ) माता के समान पालन करने वाली भूमि को ( **अनु विवावृते** ) अनुकूलता से पालता है, और ( **नाकस्य** ) सुख की ( **शर्मणि** ) रक्षा में ( **तस्थौ** ) उद्यत रहता है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जैसे जगदीश्वर प्रजाओं को योगक्षेम प्रदान करता है और भूमि का पालन करता है, वैसे ही राजा भी करे॥३॥

( १२ )

ऋषिः—शतं वैखानसाः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ६२७ क्रमांक पर परमात्मा, विद्वान् और राजा को तथा उत्तरार्चिक में १४६४ क्रमांक पर आचार्य को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ योगिराज को सम्बोधन करते हैं।

**१५१८. अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।**
**आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) विद्वान् योगिराज! आप (**नः**) हमारे लिए (**ऊर्जम्**) प्राणबल (**इषं च**) और इच्छासिद्धि को (**आसुव**) प्रदान करो। (**दुच्छुनाम्**) योगमार्ग में विघ्नभूत दुश्चरित्रता को (**आरे**) दूर (**बाधस्व**) धकेल दो॥१॥

**भावार्थ** :—सिद्ध योगियों के निर्देशन में योगाभ्यास करने से जिज्ञासुओं का जीवन निष्कलंक हो जाता है और वे प्राणसिद्धियों को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में यह गया है कि योग-प्रशिक्षक कैसा हो।

**१५१९. अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।**
**तमीमहे महागयम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अग्निः**) विद्वान् योगिराज (**ऋषिः**) परमात्मा का द्रष्टा, (**पवमानः**) अपने तथा दूसरों के जीवन को पवित्र करने वाला, (**पाञ्चजन्यः**) प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान रूप पंच प्राणों का हितकारी, (**पुरोहितः**) और योग-प्रशिक्षण के लिए सम्मुख स्थापित होता है। (**महागयम्**) महाप्राण (**तम्**) उस योगिराज से हम (**ईमहे**) योगसिद्धि की याचना करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—सिद्ध योगियों के समीप योगाभ्यास करने से योगसाधन में तत्पर शिष्यों की योग-साधना सफल होती है॥२॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि योगप्रशिक्षक क्या करे।

**१५२०. अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।**
**दधद्रयिं मयि पोषम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) योगविद्या के पण्डित योगिराज! (**स्वपाः**) शुभ कर्मों वाले आप (**अस्मे**) हमारे लिए (**सुवीर्यम्**) श्रेष्ठ वीर्य से युक्त (**वर्चः**) योगजन्य तेज (**पवस्व**) प्राप्त कराओ, और (**मयि**) मुझ योग के जिज्ञासु में (**पोषम्**) पोषक (**रयिम्**) विवेकख्याति रूप अध्यात्म ऐश्वर्य (**दधत्**) धारण कराओ।।३।।

**भावार्थ** :—योगप्रशिक्षक योगिराज स्वयं शुभकर्मों का कर्ता होता हुआ शिष्यों को भी शुभ कर्म करने का उपदेश दे, और योगाभ्यास के द्वारा उन मुमुक्षु शिष्यों को वर्चस्वी तथा विवेकख्याति से सम्पन्न करके मोक्ष का अधिकारी बना दे।।३।।

( १३ )

ऋषिः—वसूयव आत्रेयाः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा में जगदीश्वर और आचार्य से प्रार्थना करते हैं।

**१५२१. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।**
**आ देवान् वक्षि यक्षि च॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**पावक**) पवित्रताकारक, (**देव**) प्रकाशक (**अग्ने**) अग्रनायक जगदीश्वर वा विद्वान् आचार्य! आप (**रोचिषा**) तेजोमय, (**मन्द्रया**) आनन्द प्रद (**जिह्वया**) वेद-वाणी के द्वारा, हमारे अन्दर (**देवान्**) दिव्य गुण (**आ वक्षि**) लाओ, (**यक्षि च**) और हमारे उपासना-यज्ञ वा शिक्षा-यज्ञ को सफल करो।।१।।

**भावार्थ** :—वेदवाणी के माध्यम से परमेश्वर की उपासना करने से हृदय पवित्र होता है और गुरुमुख से वेदार्थ का अध्ययन करने से शिक्षा सफल होती है।।१।।

आगे फिर उन्हीं से प्रार्थना की गयी है।

**१५२२. तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्।**
**देवाँ आ वीतये वह॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**घृतस्नो**) विद्या-रस तथा आनन्द-रस को बहाने वाले, (**चित्रभानो**) अद्भुत तेज वाले जगदीश्वर वा आचार्य! (**तम्**) उन प्रसिद्ध (**स्वर्दृशम्**) विवेकरूप प्रकाश को

दर्शाने वाले ( त्वा ) आपसे, हम ( ईमहे ) याचना करते हैं। आप ( वीतये ) हमारी प्रगति के लिए ( देवान् ) दिव्य गुणों को ( आ वह ) प्राप्त कराओ॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना से और आचार्यकुल में निवास से आनन्दरस, विद्या-रस तथा कर्तव्य-अकर्तव्य का प्रकाश और जीवन में प्रगति प्राप्त होती है॥२॥

आगे फिर उन्हीं के विषय में कहा गया है।

**१५२३. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि।**
**अग्ने बृहन्तमध्वरे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **कवे** ) क्रान्तदर्शी, अग्ने सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर वा विद्वान् आचार्य! ( **वीतिहोत्रम्** ) जगत् के उत्पादन रूप यज्ञ को वा विद्यायज्ञ को करने वाले, ( **द्युमन्तम्** ) तेजस्वी, ( **बृहन्तम्** ) गुणों में महान् ( **त्वा** ) आपको, हम ( **अध्वरे** ) **उपासना यज्ञ, जीवन-यज्ञ वा विद्याध्ययन-यज्ञ में** ( **समिधीमहि** ) प्रदीप्त करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जो परमात्मा और आचार्य का सेवन करते हैं वे विद्वान्, सदाचारी, गुणवान् और कर्मशूर होते हुए अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करते हैं॥३॥

( १४ )

**ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१५२४. अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि।**
**विश्वासु धीषु वन्द्य॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **वन्द्य** ) वन्दनीय ( **अग्ने** ) अग्रनायक जगदीश्वर! आप ( **गायत्रस्य** ) गायत्री आदि छन्दों से युक्त वेदज्ञान के ( **प्रभर्मणि** ) प्रकृष्ट रूप से ग्रहण करने में, और ( **विश्वासु धीषु** ) सब कर्मों में ( **ऊतिभिः** ) अपनी रक्षाओं के साथ ( **नः** ) हमें अब प्राप्त होओ॥१॥

**भावार्थ** :—ज्ञानप्राप्ति के समय और कर्म करते समय जो जगदीश्वर को नहीं भूलते वे श्रेष्ठ ज्ञान के अनुकूल श्रेष्ठ कर्म ही सदा करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वर से प्रार्थना है।

**१५२५. आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम्।**
**विश्वासु पृत्सु दुष्टरम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक जगदीश्वर! आप (**नः**) हमारे लिए (**सत्रासाहम्**) एक साथ अनेक विपदाओं को दूर करने वाले, (**वरेण्यम्, विश्वासु पृत्सु**) सब संग्रामों में (**दुष्टरम्**) दुस्तर, अच्छेद्य (**रयिम्**) वीरता रूप ऐश्वर्य को (**आभर**) प्रदान करो॥२॥

**भावार्थ** :—परमवीर परमेश्वर का ध्यान करके हम वीरगणों में अग्रगण्य होते हुए सब विपदाओं तथा सब आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को पराजित कर देवें॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

**१५२६. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्।**
**मार्डीकं धेहि जीवसे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक जगदीश्वर! आप (**नः जीवसे**) हमारे जीवन के लिए (**सुचेतुना**) शुभ ज्ञान के साथ (**विश्वायुपोषसम्**) सब मनुष्यों के पोषक, (**मार्डीकम्**) सुखदायक (**रयिम्**) ऐश्वर्य को (**आधेहि**) प्रदान करो॥३॥

**भावार्थ** :—वह ज्ञान ज्ञान नहीं है और वह धन धन नहीं है जो दूसरों के उपकार के लिए न हो॥३॥

(१५)

ऋषिः—केतुराग्नेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा और राजा का विषय है।

**१५२७. अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु।**
**तेन जेष्म धनंधनम्॥१॥**

**पदार्थ** :–(**नः**) हमारी (**धियः**) ध्यान-क्रियाएं वा बुद्धियां (**अग्निम्**) अग्रनायक परमात्मा वा राजा को (**हिन्वन्तु**) प्रेरित करें, (**आजिषु**) युद्धों में (**आशु सप्तिम् इव**) जैसे वेगवान् घोड़े को प्रेरित करते हैं। (**तेन**) उस परमात्मा वा राजा के द्वारा (**धनं धनम्**) प्रत्येक आध्यात्मिक वा भौतिक ऐश्वर्य को, हम (**जेष्म**) जीत लेवें॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–दिव्य सम्पदाओं और भौतिक सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए परमेश्वर और राजा परम सहायक होते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा का विषय है।

**१५२८. यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या।**
**तां नो हिन्व मघत्तये॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**अग्ने**) अग्रनायक परमात्मन् वा राजन्! (**तव यया ऊत्या सेनया**) जिस रक्षक सेना के द्वारा, हम (**गाः अन्तः**) प्रकाश की किरणों को अथवा गाय आदि सम्पत्तियों को (**आकरामहे**) प्राप्त करते हैं (**ताम्**) उस रक्षा को वा सेना को (**मघत्तये**) ऐश्वर्य के प्रदानार्थ (**नः**) हमारे लिए (**हिन्व**) प्रेरित करो॥२॥

**भावार्थ** :–राजा की सेना से रक्षित प्रजाएं जैसे भौतिक सम्पत्तियां प्राप्त करने में समर्थ होती हैं, वैसे ही परमात्मा के रक्षण-सामर्थ्य से रक्षित जन अध्यात्म सम्पत्तियां प्राप्त कर लेते हैं॥२॥

आगे पुनः परमेश्वर और राजा से प्रार्थना है।

**१५२९. आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्।**
**अङ्ग्धि खं वर्तया पविम्॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**अग्ने**) अग्रनायक जगदीश्वर वा राजन्! आप

(**गोमन्तम्**) अन्तःप्रकाश से युक्त अथवा धेनु, पृथिवी आदि से युक्त, (**अश्विनम्**) प्राण-सम्पदा से युक्त अथवा श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त, (**पृथुम्**) अति विशाल, (**स्थूरम्**) अति स्थिर, (**रयिम्**) ऐश्वर्य (**आभर**) प्रदान करो। (**खम्**) हृदयाकाश को वा राष्ट्र के आकाश को (**अङ्ग्धि**) तामसिकता हटाकर निर्मल कर दो। अन्तःशत्रुओं बाह्य शत्रुओं के विध्वंस के लिए (**पविम्**) पवित्रता का वा शस्त्रास्त्रों का (**वर्तय**) प्रयोग करो॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर आन्तरिक विघ्नों वा शत्रुओं को विनष्ट करके अन्तरात्मा को पवित्र करता है, वैसे ही राष्ट्र का राजा बाह्य उपद्रवकारियों को नष्ट करके राष्ट्र को निष्कण्टक करे॥३॥

आगे फिर वही विषय है।

**१५३०. अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि।**
**दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः॥४॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। हे (**अग्ने**) ज्योतिर्मय, प्रकाशक, जगन्नायक परमात्मन्! (**जनेभ्यः**) उत्पन्न प्राणियों के लिए (**ज्योतिः**) प्रकाश (**दधत्**) प्रदान करते हुए आपने (**नक्षत्रम्**) गतिमय, अपनी धुरी पर घूमने वाले, (**अजरम्**) सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक जीर्ण न हुए (**सूर्यम्**) सूर्य को (**दिवि**) आकाश में (**आरोहयः**) चढ़ाया हुआ है।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। हे (**अग्ने**) राष्ट्रनायक राजन्! (**जनेभ्यः**) प्रजाओं के लिए (**ज्योतिः**) विद्या का प्रकाश और बिजली का प्रकाश (**दधत्**) प्रदान करते हुए आपने (**नक्षत्रम् गतिमान् अजरम्**) जीर्णता-रहित (**सूर्यम्**) विद्या और धर्म के सूर्य को (**दिवि**) राष्ट्र-गगन में (**आरोहयः**) चढ़ाया दिया है॥४॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर आकाश में वस्तुतः ही सूर्य को उत्पन्न करता है, वैसे ही जो राजा राष्ट्र में परा विद्या, अपरा विद्या और धर्म का प्रकाश करता है वह भी मानो सूर्य को उत्पन्न करता है॥४॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और राजा को संबोधन करते हैं।

**१५३१. अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठः उपस्थसत्।**
**बोधा स्तोत्रे वयो दधत्॥५॥**

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर सबका ज्ञानदाता, प्रियतम, प्रशस्यतम, सुखसम्पत्तिप्रदाता, आयु देने वाला और जगाने वाला है वैसे ही राष्ट्र में राजा को होना चाहिए।।५।।

( १६ )

**ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २७ क्रमांक पर परमात्मा और सूर्य के पक्ष में की जा चुकी है। यहाँ अग्नि-तत्त्व का महत्त्व वर्णित करते हैं।

**१५३२. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।**
**अपां रेतांसि जिन्वति॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अग्निः** ) अग्नि ही, शरीर में ( **मूर्धा** ) मस्तिष्क है, क्योंकि मस्तिष्क अग्नि प्रधान है। यही सूर्य रूप में ( **दिवः** ) द्युलोक का ( **ककुत्** ) राजा है। ( **अयम्** ) यही पार्थिव अग्नि के रूप में ( **पृथिव्याः** ) पृथिवी का ( **पतिः** ) पालनकर्ता है। अग्नि ही ( **अपाम्** ) जलों के ( **रेतांसि** ) सूक्ष्म अवयवों को ( **जिन्वति** ) भूमि से अन्तरिक्ष की ओर और अन्तरिक्ष से भूमि की ओर प्रेरित करता है अर्थात् वर्षा में कारण बनता है।।१।।

यहाँ एक अग्नि का अनेक रूप में उल्लेख होने के कारण विषय भेदनिबन्धन उल्लेखालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—अग्नि ही सब चेतन-अचेतन जगत् की स्थिति का कारण है। वही आग, बिजली, सूर्य, जाठराग्नि, प्राणाग्नि, वाडवाग्नि आदि के रूप में अनेक प्रकार से विद्यमान होता हुआ हमारा उपकार करता है, जैसा कि श्रुति कहती है—एकं एवाग्निर्बहुधा समिद्धः।।१।। (ऋ० ८।५८।२)]

अगले मन्त्र में परमात्माग्नि का विषय है।

**१५३३. ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वःपतिः।**
**स्तोता स्यां तव शर्मणि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे **(अग्ने)** जगन्नायक, विश्ववन्द्य, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, तेजस्वी, दयालु परमेश! **(स्वः पतिः)** आनन्द और दिव्य प्रकाश के अधिपति आप **(वार्यस्य)** वरणीय, **(दात्रस्य)** दातव्य ऐश्वर्य के **(ईशिषे हि)** स्वामी हो। **(शर्मणि)** आपकी शरण पाने के हेतु, मैं **(तव)** आपके **(स्तोता)** गुण-कर्म-स्वभावों का कीर्तन करने वाला **(स्याम्)** होऊं॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभावों का चिन्तन करने से आंशिक रूप में मनुष्य भी वैसा हो सकता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्माग्नि का विषय है।

**१५३४. उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते।**
**तव ज्योतींष्यर्चयः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे **(अग्ने)** तेजस्वी परमात्मन्! **(तव)** आपकी रची हुई **(शुचयः)** पवित्र, **(शुक्राः)** प्रदीप्त, **(भ्राजन्तः)** जगमगाने वाली **(अर्चयः)** बिजली, सूर्य आदि की प्रभाएं **(तव ज्योतींषि)** आपकी ज्योतियों को **(उदीरते)** प्रकट कर रही हैं।

उपनिषत् के ऋषि ने भी कहा है—परमेश्वर की चमक के आगे न सूर्य की कुछ चमक है, न चांद-तारों की चमक है, न बिजलियों की चमक है। उसी की चमक से जगत् का यह सब कुछ चमक रहा है॥३॥ (कठ० ५.१५)

**भावार्थ** :—इस ब्रह्माण्ड में आग, बिजली, सूर्य, तारे आदि जो भी ज्योतियां हैं वे सब मिलकर भी ब्रह्म की महान् ज्योति की एक किनकी भी प्रकट करने में असमर्थ हैं॥३॥

**इति चतुर्दशोऽध्यायः, सप्तमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथ पञ्चदशोऽध्यायः

## सप्तमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

(१)

ऋषिः—गोतमो राहुगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के विषय में प्रश्न उठाये गये हैं।

**१५३५. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः।**
**को ह कस्मिन्नसि श्रितः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) जगन्नायक परमेश्वर! (जनानाम्) उत्पन्न मनुष्यों के मध्य (कः ते जामिः) कौन तेरा सहायक बन्धु है? अर्थात् कोई नहीं है (कः) मनुष्यों के मध्य कौन ऐसा है (दाश्वध्वरः) जिसका यज्ञ तेरे लिए कुछ फल देने वाला हो? अर्थात् कोई नहीं है, क्योंकि सब लोग अपने ही लाभ के लिए यज्ञ करते हैं, तेरे लाभ के लिए नहीं। (कः ह) तू कौन है? (कस्मिन् श्रितः असि) किसके आश्रित है? अन्तिम दोनों प्रश्नों का उत्तर है—तू (कः ह) निश्चय ही कमनीय, सबसे आगे बढ़ा हुआ और सुखस्वरूप है। (कस्मिन् असि श्रितः) भला किसके आश्रित हो सकता है, अर्थात् किसी के नहीं, क्योंकि तू आत्मनिर्भर है॥१॥

यहाँ काकु वक्रोक्ति अलंकार है, तृतीय प्रश्न में श्लेष है। अथवा यह मन्त्र जिसमें उत्तर छिपा हुआ है ऐसी पहेली है॥१॥

**भावार्थ** :—सबसे महान् परमेश्वर जगत् के संचालन के लिए किसी सहायक बन्धु की या किसी आश्रयदाता की अपेक्षा नहीं करता। न ही किसी के किसी भी कार्य से अपना लाभ चाहता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुणों का वर्णन है।

**१५३६. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः।**
**सखा सखिभ्यः ईड्यः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) जगन्नायक परमेश्वर! (त्वम्) सबके

हितचिन्तक आप (**जनानाम्**) उत्पन्न मनुष्यों के (**जामिः**) सहायक बन्धु, (**प्रियः मित्रः**) और प्रिय मित्र (**असि**) हो। (**सखिभ्यः**) जो आपके साथ मित्रता चाहते हैं उनके लिए (**ईड्यः**) स्तुतियोग्य (**सखा**) मित्र होते हो॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर का कोई सहायक नहीं है, प्रत्युत परमेश्वर ही दूसरों का सहायक बन्धु और प्यारा मित्र होता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

१ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ ३ ३ २ ३ २
**१५३७. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्।**
२ ३ २ ३ १ २र
**अग्ने यक्षि स्वं दमम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) जगन्नियन्ता परमेश्वर! आप (**नः**) हमारे लिए (**मित्रावरुणा**) मैत्री का गुण और दोषनिवारण का गुण (**यज**) प्रदान करो। (**देवान्**) अन्य दिव्य गुणों को (**बृहत् ऋतम्**) और महान् सत्य को (**यज**) प्रदान करो। साथ ही (**स्वं दमम्**) अपने दमन करने के गुण को भी (**यक्षि**) प्रदान करो॥३॥

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर सब गुणों की निधि है, वह हमें भी दिव्य गुण प्रदान करे॥३॥

(२)

**ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्माग्नि का विषय वर्णित है।

३ १ २ ३क २र ३ १ २र ३ २
**१५३८. ईडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः।**
२ ३ १ २ ३ १ २
**समग्निरिध्यते वृषा॥१॥**

**पदार्थ** :—(**ईडेन्यः**) स्तुति के योग्य, (**नमस्यः**) नमस्कार के योग्य, (**तमांसि**) तमोगुणों को (**तिरः**) दूर करने वाला, (**दर्शतः**) दर्शनीय, (**वृषा**) सुखों की वर्षा करने वाला (**अग्निः**) जगन्नायक परमेश्वर (**समिध्यते**) अन्तरात्मा में प्रदीप्त होता है॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर को अपने आत्मा में प्रदीप्त करके उसके

नेतृत्व को पाकर मनुष्यों को अपना जीवन उन्नत करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का फल वर्णित है।

१ २ ३ १ २र ३२ ३ १ २ ३ १ २
१५३९. **वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः।**
२ ३ १ २
**तं हविष्मन्त ईडते॥२॥**

**पदार्थ** :–(**वृषः**) सुखों की वर्षा करने वाला (**अग्निः**) जगन्नायक परमेश्वर (**समिध्यते**) उपासकों द्वारा अपने अन्तरात्मा में प्रदीप्त किया जाता है, जो (**देववाहनः**) विद्वानों के वाहन (**अश्वः**) न घोड़े के समान (**देववाहनः**) दिव्य गुणों का वाहक है। (**तम्**) उस परमेश्वर की (**हविष्मन्तः**) आत्मसमर्पण करने वाले उपासक लोग (**ईडते**) आराधना करते हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे रथ में नियुक्त किया हुआ वेगवान् घोड़ा शीघ्र ही मनुष्यों को लक्ष्य पर पहुंचा देता है, वैसे ही योगाभ्यास से अपने अन्तरात्मा में नियुक्त परमेश्वर दिव्य गुण प्राप्त करा कर उपासकों को शीघ्र ही उन्नत कर देता है॥२॥

आगे फिर परमात्मा का विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
१५४०. **वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि।**
२ ३ १ २ ३ २
**अग्ने दीद्यतं बृहत्॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**वृषन्**) मनोरथों को पूर्ण करने वाले (**अग्ने**) जगन्नायक परमेश्वर! (**वृषणः**) भक्तिरस बरसाने वाले (**वयम्**) हम उपासक (**वृषणम्**) आनन्द-रस के वर्षक, (**बृहत् दीद्यतम्**) बहुत देदीप्यमान (**त्वा**) आपको (**समिधीमहि**) अपने अन्दर प्रदीप्त करते हैं॥३॥

**भावार्थ** :–जो परमात्मा को भक्तिरस से भिगोता है, उसे वह आनन्द-रस से भिगो देता है॥३॥

(३)

**ऋषिः–विरूप आङ्गिरसः॥ देवता–अग्निः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का तेज वर्णित करते हैं।

**१५४१. उत्ते बृहन्तो अर्चय: समिधानस्य दीदिव:।**
**अग्ने शुक्रास ईरते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **दीदिव:** ) सत्य के प्रकाशक, ( **अग्ने** ) विज्ञानवान् जगन्नायक परमात्मन्! ( **समिधानस्य** ) देदीप्यमान ( **ते** ) आपकी ( **बृहन्त:** ) महान्, ( **शुक्रास:** ) पवित्र ( **अर्चय:** ) दीप्तियां ( **उदीरते** ) उठ रही हैं।।१।।

**भावार्थ** :—जब उपासक परमात्मा में तन्मय हो जाता है तब भौतिक अग्नि की ज्वालाओं के समान उसका तेजस्वी रूप उसके सामने प्रकट हो जाता है।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा को हवि अर्पित करते हैं।

**१५४२. उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत।**
**अग्ने हव्या जुषस्व न:॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) ज्योतिर्मय परमेश! हे ( **हर्यत** ) कमनीय! ( **मम** ) मुझ स्तोता की ( **घृताची:** ) स्नेह से आर्द्र वा तेज से युक्त ( **जुह्व:** ) वाणियां ( **त्वा** ) आपको ( **उप यन्तु** ) प्राप्त हों। आप ( **न:** ) हमारी ( **हव्या** ) आत्मसमर्पणरूप हवियों को ( **जुषस्व** ) प्रेम से स्वीकार करो।।२।।

**भावार्थ** :—श्रद्धा और प्रेम से की गयी परमात्मा की स्तुति अवश्य फलदायक होती है।।२।।

अब परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं।

**१५४३. मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।**
**अग्निमीडे स उ श्रवत्॥३॥**

**पदार्थ** :—( **मन्द्रम्** ) आनन्दमय, ( **होतारम्** ) सब पदार्थों के दाता, ( **ऋत्विजम्** ) ऋतुओं में सामञ्जस्य स्थापित करने वाले अथवा प्रत्येक ऋतु में पूजनीय, ( **चित्रभानुम्** ) बहुरंगे सूर्य के रचयिता, ( **विभावसुम्** ) तेज रूप धन के धनी ( **अग्निम्** ) अग्रनेता जगदीश्वर की ( **ईडे** ) मैं स्तुति करता हूं, वा उससे प्रार्थना करता हूं। ( **स: उ** ) वह मेरी स्तुति वा प्रार्थना को

( श्रवत् ) सुने।।३।।

**भावार्थ** :—जो सच्चिदानन्दस्वरूप, सकलसृष्टि का रचयिता, सारे ऋतुचक्र को चलाने वाला, तेजस्वी परमेश्वर है उसकी सब मनुष्यों को प्रेम से वन्दना करनी चाहिए।।३।।

( ४ )

**ऋषि:—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक के भाष्य में ३६ क्रमांक पर परमेश्वर और विद्वान् को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ आचार्य को कहते हैं।

**१५४४. पाहि नो अग्न एकया पाह्युऽत द्वितीयया। पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **( अग्ने )** विद्वान् आचार्य! आप **( एकया )** धर्म का उपदेश करने वाली एक वाणी से **( नः )** हमारी पाहि पालना करो, **( उत )** और **( द्वितीयया )** धर्मानुकूल धन कमाने का उपदेश करने वाली दूसरी वाणी से **( पाहि )** हमारी पालना करो। हे **( ऊर्जां पते )** ब्रह्मबलों के अधिपति आचार्य! आप **( तिसृभिः गीर्भिः )** धर्म, अर्थ और काम का उपदेश करने वाली तीन वाणियों से **( पाहि )** हमारी पालना करो। हे **( वसो )** सद्गुणों के निवासक आचार्य! आप **( चतसृभिः )** धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उपदेश करने वाली चार वाणियों से **( पाहि )** हमारी पालना करो।।१।।

**भावार्थ** :—आचार्य का यह कर्तव्य है कि वह शिष्यों को धर्म, धर्माविरोधी धन, धर्माविरोधी काम और मोक्ष के उपदेश से विद्वान् सदाचारी और मोक्ष का अधिकारी बनाये।।१।।

आगे फिर आचार्य को कहा जा रहा है।

**१५४५. पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव। त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे॥२॥**

**पदार्थ** :--हे अग्ने! हे विद्वान् आचार्य! आप **( विश्वस्मात् )** सब **( अराव्णः )** अदानशील, स्वार्थपरायण **( रक्षसः )** राक्षस-भाव से **( पाहि )** हमें बचाओ, **( वाजेषु )** देवासुरसंग्रामों में **( नः )** हमारी **( प्र अव स्म )** रक्षा करो। **( त्वाम् इत् हि )** आपको ही हम **( देवतातये )** दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए और **( वृधे )** आगे बढ़ने के लिए **( नेदिष्ठम् )** सब से अधिक निकट के **( आपिम् )** बन्धुरूप में **( नक्षामहे )** प्राप्त करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—आचार्य का यह कर्तव्य है कि वह शिष्यों की अन्तरात्मा में होने वाले देवासुरसंग्रामों में दिव्यभावों की विजय के लिए सहायक हो और स्वार्थ-वृत्तियों को विनष्ट करके परोपकार की वृत्तियां उत्पन्न करे॥२॥

( ५ )

**ऋषिः—त्रित आप्त्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

**प्रथम ऋचा में परमात्मा का कर्तृत्व वर्णित है।**

**१५४६. इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि। चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **( राजन् )** विश्व के राजा, सर्वान्तर्यामी परमात्मन्! आप **( इनः )** सब के स्वामी, **( अरतिः )** सर्वव्यापक, और **( समिद्धः )** स्वतः प्रकाशमान हो। आगे परोक्षरूप में कहते हैं—**( रौद्रः )** दुष्टों के लिए भयंकर, **( सुषुमान् )** सज्जनों के लिए रसमय वह परमात्मा **( दक्षाय )** बल प्राप्ति के लिए **( अदर्शि )** साक्षात्कार किया जाता है। **( चिकित् )** सर्वज्ञ वह **( बृहता )** महान् **( भासा )** दीप्ति से **( विभाति )** भासित होता है। **( रुशतीम् )** चमकीली उषा को **( अपाजन् )** व्यतीत कराता हुआ **( असिक्नीम् )** काली रात्रि को **( एति )** प्राप्त करता है। इसी प्रकार काली रात्रि को व्यतीत कराता हुआ चमकीली उषा को प्राप्त करता है यह भी सूचित होता है। अभिप्राय यह है कि सारा दिन-रात्रि आदि का प्रपंच उसी का किया हुआ है॥१॥

**भावार्थ** :–दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतुएं, उत्तरायण, दक्षिणायन, वर्ष इत्यादि सारा ही काल–विभाग और जल, स्थल, आकाश, चांद, सूर्य, तारे इत्यादि सारा देश–विभाग परमेश्वर का ही किया हुआ है, जिसमें वह सम्राट् होकर सब व्यवस्था कर रहा है॥१॥

आगे फिर परमात्मा के कर्तृत्व का वर्णन है।

**१५४७. कृष्णां यदेनीमभि वर्पसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्। ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्वि भाति॥२॥**

**पदार्थ** :–( **यत्** ) जब ( **बृहतः पितुः** ) महान् पालनकर्ता सूर्य की ( **जाम्** ) पुत्री ( **योषाम्** ) उषा–नारी को ( **जनयन्** ) उत्पन्न करना चाहता हुआ अग्नि परमेश्वर ( **एनीम्** ) व्याप्त ( **कृष्णाम्** ) काली रात्रि को ( **वर्पसा** ) सूर्य के रूप से ( **अभिभूत** ) तिरस्कृत करता है, तब ( **सूर्यस्य** ) सूर्य के ( **ऊर्ध्वम्** ) ऊपर स्थित ( **भानुम्** ) प्रकाश–मण्डल को ( **स्तभायन्** ) थामे हुए ( **अरतिः** ) सब का स्वामी वह परमेश्वर ( **दिवः** ) द्युलोक के ( **वसुभिः** ) ग्रह, नक्षत्र आदि लोकों से ( **विभाति** ) विशेष रूप से शोभित होता है॥२॥

**भावार्थ** :–भूमि पर और आकाश में व्याप्त काली रात्रि को छिन्न–भिन्न करके चमकीली उषा को और उसके अनन्तर तीव्र प्रकाश वाले सूर्य को उत्पन्न करता हुआ जगदीश्वर महिमा से अत्यधिक शोभा पाता है॥२॥

अगले मन्त्र में यह वर्णन है कि परमात्मा ही प्राकृतिक घटनाचक्र को संचालित करता है।

**१५४८. भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥३॥**

**पदार्थ** :–( **भद्रः** ) श्रेष्ठ सूर्य ( **भद्रया** ) श्रेष्ठ दीप्ति से ( **सचमानः** ) संयुक्त होता हुआ ( **आगात्** ) आया है। ( **जारः** )

रात्रि को जीर्ण करता हुआ वह (**स्वसारम्**) भली भांति अन्धकार को दूर फेंकने वाली उषा के (**पश्चात्**) पीछे (**अभ्येति**) आता है। (**अग्निः**) अग्रनायक जगदीश्वर (**सुप्रकेतैः**) सुप्रकाशमान (**द्युभिः**) तेजों से (**वितिष्ठन्**) व्याप्त होता हुआ (**रुशद्भिः वर्णैः**) सूर्य के चमकीले रंगों से (**रामम्**) काले अंधेरे को (**अभि अस्थात्**) दूर करता है।।३।।

**भावार्थ** :—रात्रि के बाद उषा, उषा के बाद दिन, दिन के बाद सन्ध्या, सन्ध्या के बाद फिर रात्रि, रात्रि के बाद फिर उषा यह जो चक्र चल रहा है उसका चलाने वाला जगदीश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि मनुष्य में ऐसा सामर्थ्य नहीं है।।३।।

( ६ )

**ऋषिः—उशनाः काव्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के विषय में प्रश्न उठाया गया है।

**१५४९. कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम्।**
**वराय देव मन्यवे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अङ्गिरः**) प्राणप्रिय, (**ऊर्जः नपात्**) बल और प्राणशक्ति को न गिरने देने वाले, (**देव**) प्रकाशक (**अग्ने**) जगन्नायक परमेश्वर! (**वराय**) वरणीय, श्रेष्ठ (**मन्यवे**) मनन करने योग्य वा तेजस्वी (**ते**) आपके लिए (**कया**) किस रीति से, हम (**उपस्तुतिम्**) स्तोत्र को करें? यह प्रश्न है। इसका उत्तर है कि वेदोक्त रीति से ही स्तुति करनी चाहिए।।१।।

**भावार्थ** :—सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की स्तुति वैदिक पद्धति से ही करनी चाहिए, न कि साकार मूर्तिपूजा के प्रकार से।।१।

आगे फिर प्रश्न करते हैं।

१५५०. दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो।
कदु वोच इदं नमः॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**सहसः यहो**) बल के पुत्र अर्थात् अत्यन्त बली परमेश्वर! (**कस्य यज्ञस्य मनसा**) किस यज्ञ के मन से, हम आपको (**आशेम**) आत्मसमर्पण करें? (**कत् उ**) कैसे मैं (**इदं नमः**) इस नमस्कार को (**वोचे**) आपके प्रति कहूं?॥२॥

**भावार्थ** :—अनेक सकाम यज्ञ और निष्काम यज्ञ प्रचलित हैं। पर मैं तो हे जगदीश्वर! आपकी उपासना ही जिसका प्रयोजन है ऐसे यज्ञ से ही आपको आत्मसमर्पण करता हूं, किसी स्वार्थ को मन में रखकर नहीं। कैसे मैं आपको नमस्कार करूं? कुछ लोग साष्टांग प्रणाम करते हैं, कोई अञ्जलि बांधकर प्रणाम करते हैं, कोइ मूर्ति पर सिर नंवाकर प्रणाम करते हैं। पर मैं तो चित्त को ही तेरे प्रति नंवाता हूं, शरीर के अंगों को नहीं॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना है।

१५५१. अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः।
वाजद्रविणसो गिरः॥३॥

**पदार्थ** :—हे अग्ने! हे विश्वनायक जगदीश! (**अध**) सब (**त्वं हि**) आप (**नः**) हमारी (**विश्वाः गिरः**) सब वाणियों को (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**सुक्षितीः**) उत्तम निवास देने वाली और (**वाजद्रविणसः**) बल रूप धन से युक्त अर्थात् बलवती (**करः**) कर दो॥३॥

**भावार्थ** :—श्रद्धा के साथ परमात्मा की उपासना करने से ऐसी वाणी का बल पाया जा सकता है जो श्रोताओं के मन पर प्रभाव उत्पन्न करे॥३॥

(७)

**ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मारूप अग्नि का आह्वान है।

१५५२. अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे। आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे॥१॥

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनेता परमात्मन्! आप (**अग्निभि:**) तेजों के साथ (**आ याहि**) आओ। (**होतारम्**) दाता (**त्वाम्**) आपको, हम (**वृणीमहे**) भजते हैं। (**यजिष्ठं त्वाम्**) हमारे साथ अतिशय संगम करने वाले आपको, हमारी (**हविष्मती**) समर्पणयुक्त (**प्रयता**) पवित्र प्रज्ञा (**बर्हि:**) हृदयासन पर (**आसदे**) बैठने के लिए (**अनक्तु**) प्रकट करे॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर जब स्तोता के अन्तरात्मा में प्रबल संकल्प, उत्साह, वीरता और आशावाद की अग्नियों के साथ आता है तब स्तोता मार्ग से सब विघ्न हट जाते हैं और लक्ष्यप्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है॥१॥

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

१५५३. अच्छा हि त्वा सहस: सूनो अङ्गिर: स्रुचश्चरन्त्यध्वरे। ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम्॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**सहस: सूनो**) बल और साहस के प्रेरक, (**अङ्गिर:**) प्राणप्रिय परमेश्वर! (**अध्वरे**) उपासना-यज्ञ में (**त्वा अच्छ**) आपके प्रति (**हि**) निश्चय ही (**स्रुच:**) मेरी वाणियां (**चरन्ति**) प्रवृत्त हो रही हैं। हम (**यज्ञेषु**) अपने जीवन-यज्ञों में (**ऊर्ज: नपातम्**) बल और प्राणशक्ति के न गिरने देने वाले, (**घृतकेशम्**) प्रदीप्त तेज वाले, (**पूर्व्यम्**) सनातन (**अग्निम्**) आप अग्रनेता परमात्मा से (**ईमहे**) बल की याचना करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—उपासना का यही लाभ है कि उपासक बल के खजाने परमात्मा के पास से अपरिमित बल प्राप्त करके लक्ष्यसिद्धि में सफल हो जाता है॥२॥

(८)

ऋषि:—सुदीतिपुरुमीढौ तयोर्वान्यतर:॥ देवता—अग्नि:॥

छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम मन्त्र में परमेश्वर को आत्म-समर्पण करते हैं।

**१५५४. अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्।**
**अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये॥१॥**

**पदार्थ** :—(**नः**) हमारी (**गिरः**) वाणियां (**शीरशोचिषम्**) व्याप्त तेज वाले, (**दर्शतम्**) दर्शनीय अग्रनायक परमात्मा के (**अच्छ**) प्रति (**यन्तु**) प्रवृत्त हों। साथ ही, हमारे (**यज्ञासः**) उपासना-यज्ञ (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**नमसा**) नमस्कार के साथ (**पुरूवसुम्**) बहुत धन वाले, (**पुरुप्रशस्तम्**) बहुत श्लाघ्य उस अग्नि नामक परमात्मा के (**अच्छ**) प्रति (**यन्तु**) पहुंचे॥१॥

**भावार्थ** :—श्रद्धा के साथ नमस्कारपूर्वक की हो गयी परमात्मा की उपासना सफल होती है, बेमन से की गयी नहीं॥१॥

अब परमेश्वर के गुणों का वर्णन है।

**१५५५. अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम्।**
**द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो**
**विशि॥२॥**

**पदार्थ** :—(**सहसः सूनुम्**) बल के प्रेरक, (**जातवेदसम्**) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, ज्ञान और धन के उत्पादक, (**अग्निम्**) अग्रनायक जगदीश्वर की (**वार्याणाम्**) वरणीय सद्गुणों और श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के (**दानाय**) दान के लिए, मैं स्तुति करता हूँ। (**मर्त्येषु**) मरणधर्मा प्राणियों के मध्य में (**अमृतः**) अमर और (**विशि**) मनुष्य-प्रजा में (**मन्द्रतमः**) अतिशय आनन्द प्रदाता, (**होता**) जीवनयज्ञ का निष्पादक (**यः**) जो अग्नि जगदीश्वर (**द्विता**) दोनों स्थानों में अर्थात् इहलोक में और मोक्षलोक में (**आ भूत्**) सहायक होता है॥२॥

**भावार्थ** :—न केवल इस जीवन में, अपितु जन्म-जन्मान्तरों में और मोक्षलोक में भी जो जगदीश्वर हमारे साथ मित्रता का

निर्वाह करता है वह वन्दनीय क्यों न हो॥२॥

( ९ )

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा का वर्णन करते हैं।

**१५५६. अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम्।**
**तूर्णी रथः सदा नवः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अग्निः** ) जगन्नायक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ( **अदाभ्यः** ) किसी से दबाया या पराजित न किया जा सकने वाला, और ( **मानुषीणां विशाम्** ) मानवी प्रजाओं के ( **पुर एता** ) आगे पहुंचने वाला है। ( **रथः** ) इससे रचा हुआ मानव-शरीर रूप रथ ( **तूर्णीः** ) शीघ्रगामी और ( **सदा नवः** ) सदा स्तुति योग्य होता है॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर कैसा विलक्षण शिल्पकार है कि उससे रचा हुआ आत्मा से अधिष्ठित मानव-देह-रूप रथ चेतन होता हुआ स्वयं ही चलता है, स्वयं ही रुकता है और स्वयं ही कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक करता है॥१॥

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमात्मा की स्तुति से क्या प्राप्त होता है।

**१५५७. अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः।**
**क्षयं पावकशोचिषः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **दाश्वान्** ) आत्मसमर्पण करने वाला ( **मर्त्यः** ) मनुष्य ( **वाहसा** ) परमेश्वर के प्रति किये गये स्तोत्र से ( **प्रयांसि** ) आनन्द-रसों को ( **अभि अश्नोति** ) पा लेता है। साथ ही ( **पावक-शोचिषः** ) पवित्रकारी ज्योति वाले उस परमेश्वर के ( **क्षयम्** ) मोक्षधाम को भी प्राप्त कर लेता है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य को योग्य है कि तेजस्वी जगदीश्वर की स्तुति से स्वयं भी उसके गुणों को धारण करके अभ्युदय तथा निःश्रेयस प्राप्त करे॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण वर्णित हैं।

**१५५८. साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः।**
**अग्निस्तुविश्रवस्तमः॥३॥**

**पदार्थ** :—( **विश्वाः अभियुजः** ) सब आक्रमणकारी काम, क्रोध आदियों को ( **साह्वान्** ) अपने बल से तिरस्कृत करता हुआ, ( **देवानाम्** ) दिव्य गुणों का ( **क्रतुः** ) उत्पादक, ( **अमृक्तः** ) किसी से शुद्ध न किया गया अर्थात् स्वतः शुद्ध ( **अग्निः** ) तेजस्वी परमेश्वर ( **तुविश्रवस्तमः** ) बहुत अधिक यशस्वी है॥३॥

**भावार्थ** :—अनन्त गुणों से युक्त होने के कारण जगदीश्वर की कीर्ति सबसे अधिक बढ़ी हुई है॥३॥

( १० )

**ऋषिः— सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः— काकुभः प्रगाथः ( १ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ ऋषभः; २ पञ्चमः।**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १११ क्रमांक पर यज्ञाग्नि, अतिथि और परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ राष्ट्र-विषयक भद्र की प्रार्थना है।

**१५५९. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो**
**अध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **आहुतः** ) जिसमें आहुति डाली गयी है ऐसी ( **अग्निः** ) राष्ट्रियता की अग्नि ( **नः** ) हमारे लिए ( **भद्रः** ) शुभ हो। ( **रातिः** ) राष्ट्र के लिए की गयी दान की क्रिया ( **भद्रा** ) शुभ हो। हे ( **सुभग** ) सौभाग्यवान् राजन्! ( **अध्वरः** ) तुम्हारे और हमारे द्वारा किया गया राष्ट्र-यज्ञ ( **भद्रः** ) शुभ हो। ( **उत** ) और ( **प्रशस्तयः** ) राष्ट्र की उन्नति से प्राप्ति प्रशस्तियां ( **भद्राः** ) शुभ हों॥१॥

**भावार्थ** :—सब प्रजाजन और राजा, मन्त्री आदि राज्याधिकारी राष्ट्रभक्त होकर मातृभूमि के लिए अपना बलिदान भी करने के लिए सदा तैयार रहें॥१॥

अगले मन्त्र में मनुष्य को उद्बोधन दिया गया है।

**१५६०. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः। अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टये॥२॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्य! तू (**वृत्रतूर्ये**) जिसमें उपद्रवियों का वध किया जाता है ऐसे संग्राम में (**मनः**) अपने मन को (**भद्रम्**) भद्र (**कृणुष्व**) बना, (**येन**) जिस मन से, तू (**समत्सु**) युद्धों में (**सासहिः**) शत्रुओं के छक्के छुड़ाने वाला होता है। (**शर्धताम्**) उपद्रवी शत्रुओं के (**भूरि**) बहुत से (**स्थिरा**) स्थिर बलों को (**अवतनुहि**) नीचा दिखा दे। हम (**ते**) तेरी (**अभिष्टये**) अभीष्ट प्राप्ति के लिए (**वनेम**) मिलकर प्रयत्न करें॥२॥

**भावार्थ** :—भद्र मन से ही युद्ध करके ऐसा यत्न करना चाहिए कि शत्रु भी भद्र हो जाएं, यदि भद्र न हों तो उन्हें विश्वहित के लिए बांधकर कारागार में डाल दे या उनका वध कर दे॥२॥

( ११ )

**ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ९९ क्रमांक पर) परमात्मा, विद्वान् और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ आचार्य से प्रार्थना करते हैं॥

**१५६१. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो। अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) छात्रों को उन्नत करने वाले विद्वान् आचार्यवर! हे (**सहसः यहो**) आत्मबल के पुत्र अर्थात् अतिशय आत्मबल से युक्त! हे (**जातवेदः**) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता! (**गोमतः वाजस्य**) वेदवाणी से युक्त ऐश्वर्य के (**ईशानः**) अधीश्वर आप (**अस्मे**) हमारे लिए (**महि श्रवः**) महान्

शास्त्रज्ञान और उससे उत्पन्न यश ( देहि ) प्रदान करो॥१॥

**भावार्थ** :—आचार्य के पास से विविध विद्याओं का ज्ञान पाकर शिष्य विद्वान् और कीर्तिमान् बनें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा आचार्य और राजा से प्रार्थना करते हैं।

**१५६२. स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा।**
**रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( **पुर्वणीक** ) बहुत सी सेना वाले परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! ( **इधानः** ) प्रकाश देते हुए, ( **वसुः** ) निवास-प्रदाता, ( **कविः** ) मेधावी और क्रान्तद्रष्टा, ( **गिरा ईडेन्यः** ) वाणी से स्तुति करने योग्य ( **अग्निः** ) उन्नति कराने वाले ( **सः** ) वे आप ( **अस्मभ्यम्** ) हम उपासकों, शिष्यों वा प्रजाजनों के लिए ( **रेवत्** ) शोभा के साथ ( **दीदिहि** ) चमको॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा और आचार्य सद्गुणों की सेना से और राजा योद्धाओं की सेना से बढ़ता है तथा अपने उपासकों, शिष्यों और प्रजाजनों को बढ़ाता है॥२॥

आगे फिर परमात्मा, आचार्य और राजा से प्रार्थना है।

**१५६३. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।**
**स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **राजन्** ) सम्राट् ( **तिग्मजम्भ** ) तीक्ष्ण दण्ड वाले ( **अग्ने** ) परमात्मन्, आचार्य वा राजन्! ( **सः** ) वह विविध गुणों और कर्मों से सुशोभित आप ( **त्मना** ) स्वयम् ( **क्षपः** ) रात्रि में, ( **वस्तोः** ) दिन में, ( **उत** ) और ( **उषसः** ) उषाकालों में ( **रक्षसः** ) ब्रह्मचर्य-विरोधी, विद्या-विरोधी और सच्चरित्र-विरोधी दुष्ट विचारों को ( **प्रति दह** ) भस्म कर दो॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर दिन-रात जागरूक होकर उपासकों के सच्चरित्र की रक्षा करता हुआ उनके काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि के भावों को विनष्ट करता है, वैसे ही आचार्य शिष्यों के लिए और राजा प्रजाओं के लिए करे॥३॥

( १२ )

ऋषिः—गोपवन आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—आनुष्टुभः प्रगाथः ( १ अनुष्टुप्; २-३ गायत्री )॥ स्वरः—१ गान्धारः; २-३ षड्जः॥

प्रथम मन्त्र की व्याख्या पूर्वार्चिक में ८७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ यज्ञाग्नि का वर्णन करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २
१५६४. **विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम्।**
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मित्रो! ( **वाजयन्तः** ) बल, आरोग्य और आध्यात्मिक ऐश्वर्य की कामना करते हुए ( **वः** ) तुम ( **विशः विशः** ) प्रत्येक मनुष्य के ( **अतिथिम्** ) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य, ( **पुरूप्रियम्** ) बहुत प्यारे, ( **वः** ) तुम्हें ( **दुर्यम्** ) घर के समान शरण देने वाले ( **अग्निम्** ) यज्ञाग्नि के प्रति ( **वचः** ) वचन को प्रेरित करो। मैं भी ( **शूषस्य** ) बलवान् ज्ञानी परमेश्वर के रचे हुए ( **मन्मभिः** ) वेदमन्त्रों से, यज्ञाग्नि की ( **स्तुषे** ) स्तुति करता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—घर में आये हुए अतिथि के समान यज्ञाग्नि को आहुति देकर सबको सत्कार करना चाहिए॥१॥

अब यज्ञाग्नि की प्रशंसा करते हैं।

१ २र ३ १ २ ३२उ ३ १ २
१५६५. **यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम्।**
३ १ २ ३ १ २
**प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **सर्पिरासुतिम्** ) जिसमें घृत की आहुति दी जाती है ऐसे ( **यम्** ) जिस यज्ञाग्नि की ( **हविष्मन्तः** ) सुगन्धित, मीठे, पुष्टिवर्धक, आरोग्यवर्धक, कस्तूरी, केसर, घी, दूध, शक्कर, शहद, गुड़ूची आदि हव्यों से युक्त ( **जनासः** ) याज्ञिक मनुष्य ( **मित्रं न** ) के समान ( **प्रशस्तिभिः** ) प्रशस्तियों से ( **प्रशंसन्ति** ) प्रशंसा करते हैं, उस अग्नि की मैं भी ( **स्तुषे** ) स्तुति करता हूं। [यहाँ 'स्तुषे' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है।]॥२॥

**भावार्थ** :—आध्यात्मिक जीवन बिताने के इच्छुक मनुष्यों को

चाहिए कि वे अग्निहोत्र से परमात्माग्नि में अपनी आत्मा के होम की प्रेरणा ग्रहण करें॥२॥

अगले मन्त्र में यज्ञाग्नि और अन्तरिक्ष का परस्पर विनिमय दर्शाया गया है।

**१५६६. पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता।**
**हव्यान्यैरयद् दिवि॥३॥**

**पदार्थ** :–(**यः**) जो यज्ञाग्नि (**देवताति**) यज्ञ में (**उद्यता**) डाली गयी (**हव्यानि**) हवियों को (**दिवि**) अन्तरिक्ष में (**ऐरयत्**) पहुंचा देता है, उस (**पन्यांसम्**) अतिशय आदान-प्रदान का व्यवहार करने वाले अर्थात् हवि लेकर बदले में आकाश से वर्षा देने वाले (**जातवेदसम्**) प्रकाशित यज्ञाग्नि की, मैं (**स्तुषे**) स्तुति करता हूं। [यहाँ स्तुषे पद पहले से चला आ रहा है।]

**भावार्थ** :–वर्षा के लिए अग्नि में डाली हुई आहुति अग्नि द्वारा अलग-अलग सूक्ष्म अवयवों में विभक्त होकर गरम वायु के साथ ऊपर आकाश में पहुँचती है। तब ऊपर स्थित पवनों में गति उत्पन्न हो जाती है, जिससे मेघस्थ जल-वाष्पों से जब शीतल पवन टकराते हैं तब वर्षा होती है॥३॥

(१३)

**ऋषिः–भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा॥**
**देवता–अग्निः॥ छन्दः–जगती॥ स्वरः–निषादः॥**

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर के गुणों का वर्णन है।

**१५६७. समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं**
**पुरो अध्वरे ध्रुवम्। विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं**
**कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम्॥१॥**

**पदार्थ** :–(**समिद्धम्**) तेजस्वी (**अग्निम्**) अग्रनायक जगदीश्वर की (**समिधा गिरा**) गिरा तेजोमयी वाणी से, मैं (**गृणे**) स्तुति करता हूं। (**शुचिम्**) पवित्र, (**पावकम्**) पवित्रकर्ता,

(पुरः) सामने (अध्वरे) उपासना-यज्ञ में (ध्रुवम्) स्थिर रूप में विद्यमान, (विप्रम्) विशेष रूप से पूर्णता प्रदान करने वाले, (होतारम्) सुख आदि देने वाले, (पुरुवारम्) बहुत वरणीय अथवा बहुत से दोषों का निवारण करने वाले, (कविम्) क्रान्तद्रष्टा, मेधावी, (जातवेदसम्) सर्वज्ञ, सर्वव्यापक जगदीश्वर से हम (सुम्नैः) सुखकारी स्तोत्रों के द्वारा (ईमहे) याचना करते हैं॥१॥

यहाँ विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जो तेजस्वी, पवित्र, पवित्रकर्ता, स्थिर, छिद्रों को भरने वाला, सद्गुणों का दाता, दुर्गुणों को दूर करने वाला, भक्तवत्सल, क्रान्तद्रष्टा, सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी परमेश्वर है उसका श्रद्धा से सबको भजन करना चाहिए और उससे सद्गुणों की याचना करनी चाहिए॥१॥

आगे फिर वही विषय है।

**१५६८ त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे**
**पायुमीड्यम्। देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं**
**विश्पतिं नमसा नि षेदिरे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशमान, जगन्नायक, प्रकाशप्रदाता परमात्मन्! (दूतम्) दुःखों को दग्ध करने वाले, (अमृतम्) अमर, (हव्यवाहम्) दातव्य पदार्थों वा गुणों को प्राप्त कराने वाले, (पायुम्) पालनकर्ता, (ईड्यम्) स्तुतियोग्य, (जागृविम्) जागरूक, (विभुम्) व्यापक, (विश्पतिम्) प्रजापालक (त्वाम्) आप जगदीश्वर को (देवासः च) विद्वान् योगी लोग भी (मर्तासः च) और सामान्य मनुष्य भी (दधिरे) अपने आत्मा में धारण करते हैं, और (नमसा) नमस्कार के साथ (निषेदिरे च) आपके समीप बैठते हैं॥२॥

यहाँ विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है, अनुप्रास भी है॥२॥

**भावार्थ** :—सब गुणों से समृद्ध, परेपकारी परमात्मा को

छोड़कर अन्य किसी को परब्रह्म के रूप में उपासना करनी उचित नहीं है॥२॥

अगले मन्त्र में गुणकर्मवर्णनपूर्वक परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

१५६९. विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे। यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्म नस्त्रिवरूथः शिवो भव॥३॥

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) जगत् के नायक, सर्वप्रकाशक परमात्मन्! (उभयान्) पूर्वमन्त्रोक्त विद्वान् योगियों तथा सामान्य मनुष्यों दोनों को (विभूषन्) सद्गुण आदियों से अलंकृत करते हुए, (देवानाम्) विद्वानों को (दूतः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त कराने वाले आप (व्रता अनु) अपने नियमों का अनुसरण करते हुए (रजसी) द्यावापृथिवी को (समीयसे) व्याप्त करते हो। (यत्) क्योंकि (ते) आपकी (धीतिम्) धारणा वा ध्यान को, और (सुमतिम्) सुमति को (आ वृणीमहे) हम प्राप्त करते हैं, (अध) इसलिए (त्रिवरूथः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, तीनों में घर के समान निवास करने वाले अथवा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों दुःखों को दूर करने वाले आप (नः) हमारे लिए (शिवः) मंगलकारी (भव स्म) होओ॥३॥

**भावार्थ** :—ध्यान किया गया परमेश्वर उपासकों को सुख-शान्ति देता है॥३॥

(१४)

**ऋषिः—प्रयोगो भार्गवः; पावकोऽग्निर्बार्हस्पत्यो वा, गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरो वा॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में १३ क्रमांक पर) परमात्मा की महिमा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ वेद-वाणियों का वर्णन करते हैं।

**१५७०. उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।**
**वायोरनीके अस्थिरन्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे अग्ने! हे प्रकाशमय जगदीश्वर! (**हविष्कृतः**) आत्मसमर्पणकर्ता उपासक की (**जामयः**) बहिनों के समान हितकारिणी, (**त्वा देदिशतीः**) आपके गुणों का निर्देश करती हुई (**गिरः**) वेदवाणियां (**वायोः**) प्राणप्रिय आपके (**अनीके**) समीप (**उप अस्थिरन्**) उपस्थित हो रही हैं।

अन्यत्र कहा भी है—ऋचाएं उसी अविनाशी सर्वोच्च परमेश्वर का प्रतिपादन करती हैं जिसमें सब दिव्यगुण अवस्थित हैं। जिसने उसे नहीं जाना उसे वेद से क्या लाभ? जो उसे जान लेते हैं वे मोक्ष पद में समासीन हो जाते हैं॥१॥ (ऋ० १।१६४।३९)

**भावार्थ** :—जो परमेश्वर अग्नि के समान स्तोता के हृदय में दिव्य ज्योति प्रज्वलित कर देता है और वायु के समान उसे धौंकता रहता है उसी की महिमा को सब वेद एक स्वर से गाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में अन्तरिक्ष के महत्त्व द्वारा परमात्मा का महत्त्व वर्णित है।

**१५७१. यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्।**
**आपश्चिन्नि दधा पदम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**यस्य**) जिस जगदीश्वर का (**त्रिधातु**) वायु, बिजली और सूर्य इन तीनों धातुओं से युक्त, (**अवृतम्**) न समेटा हुआ अर्थात् विस्तृत (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष (**असन्दिनम्**) खुला हुआ (**तस्थौ**) स्थित है, जिस अन्तरिक्ष में (**आपः चित्**) मेघ-जल भी (**पदम्**) स्थिति को (**नि दध**) धारण किये हुए हैं। [हे मनुष्यो! उसकी महिमा को तुम जानो]॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर से रचे हुए अन्तरिक्ष आदि की महिमा से परमेश्वर की ही महिमा प्रकाशित होती है॥२॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की कृपा का विषय है।

१५७२. पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः।
भद्रा सूर्यइवोपदृक्॥३॥

**पदार्थ** :—( **मीढुषः** ) सुख को सींचने वाले ( **देवस्य** ) प्रकाशक जगदीश्वर का ( **पदम्** ) प्राप्तव्य मोक्षपद ( **अनाधृष्टाभिः** ) अपराजित ( **ऊतिभिः** ) रक्षाओं से युक्त है। और उसकी ( **उपदृक्** ) कृपादृष्टि ( **सूर्यः इव** ) सूर्य के समान ( **भद्रा** ) शुभ है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की शरण में जाकर मनुष्य उसकी कभी क्षीण न हो सकने वाली रक्षा को और अमृतमयी कृपादृष्टि को पा लेता है॥३॥

**इति पञ्चदशोऽध्यायः, सप्तमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः॥**

# अथ षोडशोऽध्यायः

## सप्तमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २५६ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ गुरु-शिष्य के विषय को कहते हैं।

**१५७३. अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य! ( **पूर्वपीतये** ) श्रेष्ठ विद्यारस के पान के लिए ( **आयवः** ) विद्यार्थी जन ( **स्तोमेभिः** ) स्तोत्रों द्वारा ( **त्वा** ) आपसे ( **अभि** ) अभ्यर्थना कर रहे हैं। आपके ही निर्देशन में ( **ऋभवः** ) मेधावी छात्र ( **समीचीनासः** ) आपस में मिलकर ( **समस्वरन्** ) वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं, और ( **रुद्राः प्राणवान्** ) ब्रह्मचारीगण ( **पूर्व्यम्** ) पूर्व कवियों वा ऋषियों से रचे हुए स्तोत्र आदि काव्य का भी ( **गृणन्त** ) गान करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—सुयोग्य ब्रह्मवेत्ता गुरुओं से सुयोग्य शिष्यों द्वारा पढ़ी हुई भौतिक विद्या और ब्रह्मविद्या फलदायक होती है॥१॥

आगे फिर गुरु-शिष्य का ही विषय कहते हैं।

**१५७४. अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥२॥**

**पदार्थ** :—( **इन्द्रः** ) विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य ( **अस्य** )

इस शिष्य के (वृष्ण्यम्) आत्मिक (शवः) बल को (इत्) निश्चय ही (वावृधे) बढ़ाता है। वह शिष्य (सुतस्य) प्राप्त ज्ञान के (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द में वृद्धि को प्राप्त करता है। (अस्य) इस आचार्य की (तम् महिमानम्) उस महिमा की (आयवः) मनुष्य (पूर्वथा) पूर्व की तरह (अद्य) आज भी (अनुष्टुवन्ति) प्रशंसा करते हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—आचार्य शिष्य का जो आत्मबल बढ़ाता है वह उस शिष्य की अपूर्व निधि होती है॥२॥

(२)

ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा का विषय वर्णित है।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१५७५. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः।**
१ २ ३ २ ३ १ २
**इन्द्राग्नी इष आ वृणे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्राग्नी) जीवात्मन् और परमात्मन्! (उक्थिनः) गुणों के प्रशंसक, (नीथाविदः) नीतिज्ञ (जरितारः) स्तोता लोग (वाम्) आप दोनों की (प्र अर्चन्ति) भली भांति स्तुति करते हैं। मैं आप दोनों की सहायता से (इषः) आनन्द-रसों और ज्ञान-रसों को (आवृणे) ग्रहण करता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य जीवात्मा को उद्बोधन देकर और परमात्मा की पूजा करके दिव्य ज्ञान तथा आनन्द को पाकर महान् उन्नति कर सकते हैं॥१॥

आगे फिर उसी विषय में कहते हैं।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
**१५७६. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्।**
३ १ २र ३ १ २
**साकमेकेन कर्मणा॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्राग्नी) जीवात्मन् और परमात्मन्! (एकेन) अद्वितीय (कर्मणा) पुरुषार्थ के (साकम्) साथ (दासपत्नीः) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर रूप दास जिनके स्वामी हैं,

ऐसी (**नवतिं पुरः**) नव्वे शत्रु-नगरियों को पांच ज्ञानेन्द्रियों के विष, पांच कर्मेन्द्रियों के विषय और उन-उनमें आने वाले व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व ये नौ योगमार्ग के विघ्न इस प्रकार नव्वे हो जाते हैं, वे ही नव्वे शत्रु-नगरियां हैं, उन्हें तुम दोनों (**अधूनुतम्**) कंपा डालते हो॥२॥।

**भावार्थ** :—परमात्मा की मित्रता पाकर और जीवात्मा को उद्बोधन देकर योगाभ्यास में संलग्न मनुष्य को सब योग-विघ्नों को दूर करके योगमार्ग में सफलता पाना योग्य है॥२॥

आगे फिर जीवात्मा और परमात्मा का ही विषय उपदिष्ट है।

**१५७७. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः।**
**ऋतस्य पथ्या३ अनु॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) जीवात्मन् और परमात्मन्! (**धीतयः**) ध्यानकर्ता लोग (**ऋतस्य**) सत्य के (**पथ्याः**) मार्गों का (**अनु**) अनुसरण करते हुए (**अपसः परि**) धर्म कर्मों के पार पहुंच कर, तुम दोनों को (**उप प्र यन्ति**) प्राप्त कर लेते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जीवन में सत्य मार्ग का अनुसरण और परमेश्वर की प्राप्ति यह मनुष्य का लक्ष्य है॥३॥

**१५७८. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च।**
**युवोरप्तूर्यं हितम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) जीवात्मन् और परमात्मन्! (**वाम्**) तुम दोनों के (**तविषाणि**) बल (**प्रयांसि च**) और प्रयत्न (**सधस्थानि**) साथ-साथ होते हैं। (**युवोः**) तुम दोनों में (**अप्तूर्यम्**) कर्म के अनुष्ठान की शीघ्रता (**हितम्**) निहित है॥४।

**भावार्थ** :—जीवात्मा और परमात्मा एक-दूसरे के साथी हैं। परमात्मा की मित्रता में जीवन महान् उन्नति कर सकता है॥४॥

(३)

**ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः**

प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २५३ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में हो चुकी है। यहाँ अपने अन्तरात्मा को प्रबोधन है।

**१५७९. शग्ध्यू३ षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।**
**भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर**
**चरामसि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **शचीपते** ) प्रज्ञा और कर्म के स्वामिन्! ( **इन्द्र** ) मेरे अन्तरात्मन्! तू ( **विश्वाभिः** ) सब ( **ऊतिभिः** ) प्रगतियों से ( **उ सु** ) भली भांति ( **शग्धि** ) सशक्त हो। ( **हे शूर** ) शूरवीर! ( **भगं न** ) सूर्य के समान ( **यशसम्** ) यशस्वी और ( **वसुविदम्** ) ऐश्वर्यों को पाने वाले ( **त्वा** ) तेरा, हम ( **अनु चरामसि** ) सेवन करते हैं॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—अपने आत्मा को प्रबुद्ध करके ही मनुष्य उन्नति कर सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति और उससे प्रार्थना है।

**१५८०. पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।**
**न किर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा**
**भर॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! हे परमेश्वर्यशाली जगदीश्वर! आप ( **अश्वस्य** ) सूर्य वा प्राण को ( **पौरः** ) पूर्ण करने वाले ( **गवाम्** ) सूर्य किरणों, पृथिवियों, इन्द्रियों वा धेनुओं की ( **बहुकृत्** ) बहुतायत करने वाले ( **असि** ) हो। हे ( **देव** ) दान आदि गुणों से युक्त! आप सम्पदाओं के ( **हिरण्ययः** ) ज्योतिर्मय ( **उत्सः** ) स्रोत हो। ( **त्वे** ) आप में विद्यमान ( **दानम्** ) दान के गुण को ( **न किः हि** ) कोई भी नहीं ( **परि मर्धिषत्** ) नष्ट कर सकता है। इसलिए मैं ( **यत् यत्** ) जो-जो ( **यामि** ) आपसे मांगता हूं ( **तत्** ) वह

(आभर) मुझे प्रदान कर दो॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और अपने पुरुषार्थ से मनुष्य सारी दिव्य और लौकिक सम्पदा प्राप्त कर सकता है॥२॥

(४)

**ऋषिः—भर्गः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २४० क्रमांक पर परमेश्वर और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ योग-साधना में संलग्न कोई साधक परमात्मा से प्रार्थना करता है।

**१५८१. त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।**
**उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) परमैश्वर्यशालिन् परमात्मन्! (**त्वं हि**) आप (**चेरवे**) मुझ योगाभ्यासी के लिए (**एहि**) आओ। (**वसुत्तये**) योग के ऐश्वर्य का दान करने के इच्छुक मेरे लिए (**भगम्**) योग का ऐश्वर्य (**विदाः**) प्राप्त कराओ। हे (**मघवन्**) दानी! आप (**गविष्टये**) अध्यात्म प्रकाश की किरणों के इच्छुक मेरे ऊपर (**उद् वावृषस्व**) अध्यात्म प्रकाश की किरणों को सींच दो। (**अश्वमिष्टये**) प्राणों के इच्छुक मेरे ऊपर (**उद् वावृषस्व**) प्राण-बल की वर्षा कर दो॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के प्रति ध्यान से योगाभ्यासी मनुष्य प्राणों को ऊपर चढ़ाता हुआ तरह-तरह के अध्यात्म प्रकाशों को और विविध योग-सिद्धियों को पा सकता है॥१॥

आगे फिर परमात्मा को संबोधन है।

**१५८२. त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे। आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! हे परमैश्वर्यशालिन् परमात्मदेव! (त्वम्)

परम दानी आप ( **पुरु** ) बहुत से ( **सहस्राणि** ) हजार, ( **शतानि च** ) और सौ हजार अर्थात् ( **यूथा** ) गौओं के झुण्डों को अर्थात् अध्यात्म प्रकाश के समूहों को ( **दानाय** ) अन्यों को देने के लिए, हम योगाभ्यासियों को ( **मंहसे** ) देते हो। ( **विप्रवचसः** ) बुद्धिपूर्वक वचनों वाले, हम ( **गायन्तः** ) आपकी स्तुति का गान करते हुए ( **अवसे** ) रक्षा के लिए ( **पुरन्दरम्** ) विपत्तिरूप नगरियों को तोड़-फोड़ देने वाले ( **इन्द्रम्** ) वीर आपको ( **आ चकृम** ) अपना सखा बना लेते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—निरन्तर योगाभ्यास की साधना से, परमात्मा के ध्यान से, प्रणव-जप आदि से अनन्त प्रकाश के समूह सामने आते हैं, जिनकी चमक से चमत्कृत हुआ साधक परम स्थिति को पा लेता है॥२॥

**( ५ )**

**ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४४ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की जा चुकी है। यहाँ एक-साथ परमात्मा और आचार्य दोनों को लक्ष्य करके कहते हैं।

१५८३. **यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।**
**मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये॥१॥**

**पदार्थ** :—( **होता** ) ब्रह्माण्ड-यज्ञ वा शिक्षा-यज्ञ का कर्ता, ( **जनानाम्** ) मनुष्यों को ( **मन्द्रः** ) आनन्द देने वाला ( **यः** ) जो परमात्मा वा आचार्य ( **विश्वा वसु** ) सब आध्यात्मिक धनों को वा विद्या-धनों को ( **ददाति** ) देता है ( **अस्मै अग्नये** ) ऐसे अग्रनायक परमात्मा वा आचार्य के लिए ( **प्रथमानि** ) श्रेष्ठ ( **मधोः पात्रा न** ) मधुपूर्ण पात्रों के समान ( **स्तोमाः** ) धन्यवाद के वचन ( **प्र यन्तु** ) पहुंचें॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर पुरुषार्थी को भौतिक और आध्यात्मिक धन प्रदान करता है, वैसे ही आचार्य शिष्यों को विद्या-धन देता है, इसलिए वे दोनों सब के द्वारा अभिनन्दन करने योग्य हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा और आचार्य का विषय है।

१५८४. अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो
मघोनाम्॥२॥

**पदार्थ** :–(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में। (**देवयवः**) दिव्य गुणों की कामना वाले (**सुदानवः**) भली-भाँति आत्मसमर्पण करने वाले उपासक (**रथ्यम् अश्वं न**) रथ को खींचने वाले घोड़े के समान (**रथ्यम्**) ब्रह्माण्ड-रथ को खींचने वाले परमात्मा को (**गीर्भिः**) स्तुति-वाणियों से (**मर्मृज्यन्ते**) अलंकृत करते हैं, और प्रार्थना करते हैं कि हे (**दस्म**) दर्शनीय (**विश्पते**) प्रजापति परमात्मन्! आप हमारे (**तोके तनये**) पुत्र-पौत्रों (**उभे**) दोनों में (**मघोनाम्**) धनियों के (**राधः**) धन के समान (**राधः**) अध्यात्म और धन को, **भौतिक धन** को और सफलता को (**पर्षि**) **सींचो, बहुत रूप में प्रदान करो।**

(**द्वितीय**) **आचार्य के पक्ष में।** (**देवयवः**) अपने पुत्रों को विद्वान् बनाना चाहते हुए (**सुदानवः**) उत्तम दानी गृहस्थ लोग (**रथ्यम् अश्वं न**) रथ को खींचने वाले घोड़े के समान (**रथ्यम्**) विद्या-रूप रथ को चलाने वाले आचार्य को (**गीर्भिः**) प्रशंसा-वचनों से (**मर्मृज्यन्ते**) अलंकृत करते हैं, और कहते हैं कि हे (**दस्म**) दोषों को दूर करने वाले, (**विश्पते**) शिष्य रूप प्रजाओं के पालक आचार्य! आप हमारे (**तोके तनये**) पुत्र और पौत्र (**उभे**) दोनों में (**मघोनाम्**) विद्या-धन के धनी गुरुजनों के (**राधः**) विद्यारूप को (**पर्षि**) सींचो, बहुत रूप में प्रदान करो॥२॥

इस मन्त्र में उपमा और श्लेष अलंकार हैं॥२॥

**भावार्थ** :–परमात्मा और आचार्य की कृपा से हमारी सन्तानें परमेश्वर-पूजक, पुरुषार्थी, विद्यावान् और धार्मिक हों॥२॥

(६)

**ऋषिः–शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता–वरुणः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना करते हैं।

१५८५. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युरा चके॥१॥

**पदार्थ** :—हे (वरुण) दोष-निवारक वरणीय परमात्मन्, राजन्! व आचार्य! (इमं मे हवम्) इस मेरी पुकार को (श्रुधि) सुनो। और (अद्य) आज, मुझे (मृडय च) आनन्दित भी कर दो। (अवस्युः) आपकी रक्षा का इच्छुक मैं (त्वाम्) आपको चाह रहा हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि यथायोग्य परमात्मा, राजा और आचार्य से प्रार्थना करके, अपने दोषों का निवारण करके, सद्गुण और सत्कर्मों को स्वीकार करके उन्नति करें॥१॥

(७)

**ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

आगे पुनः जगदीश्वर, राजा वा आचार्य से प्रार्थना करते हैं।

१५८६. कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर॥१॥

**पदार्थ** :—हे (वृषन्) मनोरथों को पूर्ण करने वाले, मार्ग के विघ्नों को हटाने वाले जगदीश्वर, राजन् वा आचार्य! (त्वम्) आप (कया) सुखदायिनी (ऊत्या) रक्षा द्वारा (नः अभि) हमारे अभिमुख होकर (प्र मन्दसे) हमें भलीभांति आनन्दित करते हो। (कया) उसी सुखदायिनी रक्षा द्वारा, आप (स्तोतृभ्यः) आपके गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करने वाले स्तोताओं को (आभर) आनन्द प्रदान करो॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर, राजा और आचार्य अविद्या, दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन, शत्रु आदि से यदि हमारी रक्षा करें तो वैयक्तिक और सामाजिक महान् उन्नति हो सकती है॥१॥

(८)

**ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २४९ क्रमांक पर जगदीश्वर और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ यज्ञ की सफलता के लिए जगदीश्वर का आह्वान है।

१५८७. इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये॥१॥

**पदार्थ** :–(इन्द्रम् इत्) जगदीश्वर को ही (देवतातये) यज्ञ के आरम्भ के लिए, (इन्द्रम्) जगदीश्वर को ही (अध्वरे) यज्ञ के (प्रयति) प्रवृत्त होने पर, (इन्द्रम्) जगदीश्वर को ही (समीके) यज्ञ समाप्त होने पर (इन्द्रम्) जगदीश्वर को ही (धनस्य) यज्ञफल की (सातये) प्राप्ति के लिए (वनिनः) भक्ति में तन्मय होकर हम (हवामहे) पुकारते हैं॥१॥

**भावार्थ** :–अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त अथवा देवपूजा, संगतिकरण और दानरूप जो भी यज्ञ आयोजित किया जाता है उसमें सदा परमेश्वर का स्मरण रखने से वह सफल होता है।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की महिमा वर्णित है।

१५८८. इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्। इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥२॥

**पदार्थ** :–(इन्द्रः) जगदीश्वर ने (मह्ना) अपनी महिमा से (रोदसी) द्यावापृथिवी को और (शवः) उनके बल को (पप्रथत्) फैलाया है। (इन्द्रः) जगदीश्वर ने ही (सूर्यम्) सूर्य को (अरोचयत्) चमकाया है। (इन्द्रे) जगदीश्वर के आश्रय में ही (विश्वा भुवनानि) सब लोक (येमिरे) नियन्त्रित हैं। (इन्द्रे) जगदीश्वर के आश्रय में ही (स्वानासः) बहते हुए (इन्दवः) जल (येमिरे) नियन्त्रित हैं॥२॥

**भावार्थ** :–ग्रह, उपग्रह, सूर्य, नक्षत्र, नीहारिका आदि सभी लोक जगत्स्रष्टा परमेश्वर की ही महिमा से धारित और नियन्त्रित होकर ठहरे हुए हैं॥२॥

( ९ )

ऋषिः—विश्वकर्मा भौवनः॥ देवता—विश्वकर्मा॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

इस एक ऋचा वाले सूक्त में अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन दिया गया है।

१५८९. विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व
तन्वा३ं स्वाहिते। मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास
इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥१॥

पदार्थ :—हे ( विश्वकर्मन् ) शारीरिक सब कर्मों के कर्त्ता जीव! ( हविषा ) सद्गुणों के आधान द्वारा ( वावृधानः ) समृद्ध हुआ तू ( स्वयम् ) अपने आप ही ( तन्वम् ) शरीर को ( यजस्व ) यज्ञ-कर्मों में नियुक्त कर, ( हि ) क्योंकि, वह ( ते ) तेरी ( स्वा ) अपनी है, उस पर तेरा अधिकार है। ( अभितः ) सब ओर स्थित ( अन्ये ) दूसरे ( जनासः ) उत्पन्न बाह्य तथा आन्तरिक शत्रु ( मुह्यन्तु ) मोह को प्राप्त हो जाएं। ( मघवा ) ऐश्वर्यशाली जगदीश्वर ( इह ) इस जगत् में ( अस्माकम् ) हमारा ( सूरिः ) प्रेरक ( अस्तु ) होवे॥१॥

भावार्थ :—जीव का यह कर्तव्य है कि वह अपने देह को शुभकर्मों में लगाकर परमात्मा की पूजा करते हुए अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करे॥१॥

( १० )

ऋषिः—अनानतः पारुच्छेपिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—अत्यष्टिः॥ स्वरः—गान्धारः॥

ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४६३ क्रमांक पर जीवात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

१५९०. अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति
सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः। धारा पृष्ठस्य
रोचते पुनानो अरुषो हरिः विश्वा यद्रूपा
परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१॥

**पदार्थ** :—या सोम नामक परमेश्वर (**अया**) इस (**हरिण्या**) कष्टों को हरने वाली (**रुचा**) कान्ति से (**पुनानः**) पवित्रता देता हुआ (**सयुग्वभिः**) सहयोगी मन, बुद्धि आदियों द्वारा उपासक के (**विश्वा द्वेषांसि**) सब द्वेषों को (**तरति**) दूर कर देता है। कैसे? (**सूरः न**) सूर्य जैसे (**सयुग्वभिः**) सहयोगी किरणों द्वारा (**विश्वा द्वेषांसि**) सब अन्धकारों को (**तरति**) दूर करता है। (**पृष्ठस्य**) आनन्द सींचने वाले परमेश्वर की (**धारा**) पवित्रता की रस-धार (**रोचते**) मन को भाती है। हे परमेश्वर! (**अरुपः**) तेजस्वी, (**हरिः**) दुःखहर्ता आप, उस धारा से (**पुनानः**) पवित्र करते हो, (**यत्**) जब (**ऋक्वभिः**) वेदपाठियों से तथा (**सप्तास्यैः ऋक्वभिः**) गायत्र्यादि सात छन्दों वाले वेदमन्त्रों से गाये जाते हुए आप (**विश्वा रूपा**) विभिन्न रूपों को (**परि यासि**) प्राप्त करते हो, अर्थात् विभिन्न रूपों में वर्णित किये जाते हो॥१॥

यहाँ उपमालंकार और यमक है॥१॥

**भावार्थ :—जैसे सूर्य अन्धकारों को दूर करता है, वैसे ही जगदीश्वर पुरुषार्थी उपासकों के दुःख, दुर्व्यसन आदि को दूर करता है॥१॥**

अगले मन्त्र में यह कहा गया है कि परमात्मा की उपासना से जीव क्या प्राप्त करता है।

**१५९१. प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्सं रश्मिभिर्यतते**
**दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः। अग्मन्नुक्थानि**
**पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन्। वज्रश्च यद्भवथो**
**अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ॥२॥**

**पदार्थ** :—परमेश्वर की मित्रता प्राप्त करके जीव (**चेकितत्**) विज्ञानवान् होता हुआ (**प्राचीं प्रदिशम्**) प्रकृष्ट दिशा की ओर (**अनुधावति**) अग्रसर होने लगता है। (**दर्शतः**) द्रष्टा वह (**रथः**) रथ के समान वेगवान् होता हुआ (**रश्मिभिः**) तेज की किरणों से (**संयतते**) संयुक्त हो जाता है। इसका (**रथः**) देहरूप रथ (**दैव्यः**) सज्जनों का हित करने वाला, और (**दर्शतः**)

दर्शनीय हो जाता है। शुभगुण प्रेरक, सोम परमात्मा की उपासना से ( **उक्थानि** ) प्रशंसनीय ( **पौंस्या** ) बल ( **इन्द्रम्** ) जीवात्मा को ( **अग्मन्** ) प्राप्त होते हैं, और उसे ( **जैत्राय** ) विजय के लिए ( **हर्षयन्** ) उत्साहित करते हैं, ( **यत्** ) क्योंकि, हे सद्गुणों की प्रेरणा करने वाले जगदीश्वर! आप ( **वज्रः च** ) और आपका व्रजतुल्य दण्ड देने का सामर्थ्य दोनों ( **अनपच्युता** ) अडिग होते हुए ( **समत्सु** ) देवासुर संग्रामों में ( **अनपच्युता** ) अटूट बल वाले ( **भवथः** ) होते हो।।२।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर का सखा शत्रुओं से अपराजित होता हुआ सदा ही उत्कर्ष प्राप्त करता है।।२।।

अगले मन्त्र में उपासक की उपलब्धि का वर्णन है।

**१५९२. त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे। परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः। त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे रोचमानो वयो दधे ॥३॥**

**पदार्थ** :—हे **सोम** अर्थात् शान्त उपासक! ( **त्वं ह** ) तू ( **पणीनां त्यत् वसु** ) दुर्विचाररूप दस्युओं से चुरा लिये गए सद्विचाररूप धन को ( **विदः** ) फिर प्राप्त कर लेता है। ( **मातृभिः** ) मातारूप वेद-वाणियों से स्वयं को ( **संमर्जयसि** ) संशोधित वा अलंकृत कर लेता है। ( **स्वे** ) अपने ( **दमे** ) इन्द्रियों के दमन रूप कार्य में ( **आ** ) तत्पर रहता है। ( **ऋतस्य** ) सत्य की ( **धीतिभिः** ) धारणाओं के साथ ( **दमे** ) घर में ( **आ** ) आता है, ( **यत्र** ) जिस घर में ( **परावतः** ) दूर देश से ( **न** ) जैसे ( **साम** ) साम का संगीत सुनाई देता है, वैसे ही ( **धीतयः** ) स्तुति-वाणियां ( **रणन्ति** ) शब्दायमान होती हैं। वह उपासक ( **त्रिधातुभिः** ) पूर्व-पूर्व जिनमें बलवान् हैं ऐसे सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों से युक्त ( **अरुषीभिः** ) चमकीली दीप्तियों से ( **वयः** ) आनन्द-रस को ( **दधे** ) अपने अन्दर धारण करता है, और ( **रोचमानः** ) तेजस्वी होता हुआ ( **वयः** ) जीवन को ( **दधे** ) धारण करता है।।३।।

यहाँ यमक और उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—परमेश्वर का उपासक अन्तःप्रकाश, जितेन्द्रियता और आनन्द-रस प्राप्त करके चिरकाल तक प्रसन्न रहता है॥३॥

( ११ )

ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—पूषा॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अगले एक ऋचा सूक्त में पूषा परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २
**१५९३. उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।**
३ १ २ ३ १ २
**नृवत्कृणुह्यूतये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे पूषन्! हे पुष्टिप्रदाता जगदीश्वर! आप ( ऊतये ) रक्षार्थ ( नः ) हमारे लिए ( **गोषणिम्** ) अन्तःप्रकाश को प्राप्त करने वाली, ( **उत** ) और ( **अश्वसाम्** ) इन्द्रिय-बलों को प्राप्त करने वाली, ( **उत** ) और ( **वाजसाम्** ) प्राण-बलों को प्राप्त करने वाली, तथा ( **नृवत्** ) पुरुषार्थयुक्त ( **धियम्** ) प्रज्ञा को ( **कृणुहि** ) प्रदान करो॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना से मनुष्यों को आत्मबल, इन्द्रिय-बल, प्राण-बल, प्रज्ञा-बल और पुरुषार्थ-बल प्राप्त करना योग्य है॥१॥

( १२ )

ऋषिः—गोतमो राहुगणः॥ देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

आगे एक ऋचा वाले सूक्त में विद्वान् जनों को सम्बोधन है।

३ १ २ ३ १ २
**१५९४. शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः।**
३ १ २र ३ १ २
**विदा कामस्य वेनतः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **नरः** ) नेता मरुतो! विद्वान् लोगो! तुम ( **शशमानस्य** ) शीघ्रता से प्रयत्न करते हुए, ( **स्वेदस्य** ) पसीने से तर-बतर शरीर वाले, ( **सत्यशवसः** ) सत्य बल वाले ( **वेनतः वा** ) और महत्त्वाकांक्षा से युक्त मनुष्य के ( **कामस्य** ) मनोरथ को ( **विद** ) जानो और पूर्ण करो॥१॥

**भावार्थ** :—परिश्रम के पसीने से नहाये हुए शरीर वाले, सत्य विज्ञान वाले, सत्यबल वाले और सत्य कर्म वाले मनुष्य की ही महत्त्वाकांक्षाएं सिद्ध होती हैं, आलसी की नहीं॥१॥

( १३ )

ऋषिः—ऋजिश्वाः। देवता—विश्वदेवाः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अगले एक ऋचा वाले सूक्त में सन्तान कैसी हों यह विषय है।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २

**१५९५. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।**

३ १ २

**सुमृडीका भवन्तु नः॥१॥**

**पदार्थ** :—( यः ) जो ( नः ) हमारे ( सूनवः ) सन्तान हों, वे ( अमृतस्य ) अविनाशी परमेश्वर वा नित्य वेद की ( गिरः ) वाणियों को ( उप शृण्वन्तु ) अर्थज्ञानपूर्वक गुरुमुख से सुनें। इस प्रकार विद्वान् होकर ( नः ) हमारे लिए ( **सुमृडीकाः** ) अति सुखकारी ( **भवन्तु** ) होवें॥१॥

**भावार्थ** :—आचार्य के मुख से सब वेद आदि शास्त्रों को पढ़कर सब व्यावहारिक विद्याओं में जो पारंगत हो जाते हैं वे ही स्वयं को और समाज को सुखी कर सकते हैं॥१॥

( १४ )

ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—द्यावापृथिव्यौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

अब द्यावापृथिवी के नाम से आत्मा और बुद्धि का विषय कहते हैं।

२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

**१५९६. प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे।**

२ ३ २ ३ १ २

**शुची उप प्रशस्तये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे द्यावापृथिवी! हे आत्मा और बुद्धि! हम ( **प्रशस्तये** ) प्रशस्ति प्राप्त करने के लिए ( **द्यवी** ) तेजस्वी, ( **शुची** ) पवित्र ( **वाम् अभि** ) तुम दोनों के प्रति ( **महि** ) बहुत अधिक ( **उपस्तुतिम्** ) तुम्हारे गुण-कर्मों की प्रशंसा ( **प्र उप भरामहे** ) करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—आत्मा और बुद्धि दोनों ही अपना-अपना महत्त्व रखते हैं। उनसे उपकार सब को लेना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में आत्मा और बुद्धि के आपस के उपकार का वर्णन है।

**१५९७. पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः।**
**ऊह्याथे सनादृतम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**तन्वा**) स्वरूप से (**मिथः**) एक-दूसरे को (**पुनाने**) पवित्र करते हुए तुम दोनों आत्मा और बुद्धि (**स्वेन**) अपने (**दक्षेण**) बल से (**राजथः**) शोभित होते हो। (**सनात्**) चिरकाल से (**ऋतम्**) सत्य को (**ऊह्याथे**) चरितार्थ करते हो॥२॥

**भावार्थ** :—आत्मा और बुद्धि आकाश और भूमि के समान एक-दूसरे के उपकारक होते हुए मनुष्य को अभ्युदय और निःश्रेयस के मार्ग पर भलीभांति चलाते हैं॥२॥

अब दोनों के आश्रय से योगसिद्धि होने का वर्णन करते हैं।

**१५९८. मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम्।**
**परि यज्ञं नि षेदथुः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे आत्मा और बुद्धि! (**मही**) महान् तुम दोनों (**मित्रस्य**) मित्र उपासक की (**साधथः**) योगसाधना को पूर्ण करते हो। (**तरन्ती**) योग के विघ्नों को पार करते हुए, (**ऋतम्**) सत्य को (**पिप्रती**) पूर्ण करते हुए तुम दोनों (**यज्ञम्**) योगी के योग-यज्ञ को (**परि निषेदथुः**) चारों ओर से व्याप्त करते हो॥३॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा के विना बुद्धि और बुद्धि के विना जीवात्मा योग सिद्ध नहीं कर सकते। दोनों आपस में मिलकर ही योगयज्ञ की पूर्ति करते हैं॥३॥

**(१५)**

**ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—**

गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में १८३ क्रमांक पर) परमेश्वर को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ उपासक को सम्बोधन करते हैं।

**१५९९. अयमु ते समतसि कपोतइव गर्भधिम्।**
**वचस्तच्चिन्न ओहसे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे उपासक! (**अयम् उ**) यह इन्द्र नामक परमेश्वर (**ते**) तेरा ही है, जिसे तू (**समतसि**) भलीभांति प्राप्त करता है। कैसे प्राप्त करता है? (**कपोतः इव**) जैसे कबूतर (**गर्भधिम्**) नन्हे-नन्हे शिशुओं को धारण करने वाले अपने घोंसले को प्राप्त करता है। (**तत् चित्**) इस (**नः**) हमारे (**वचः**) वचन पर, हे उपासक! तू (**ओहसे**) विचार कर॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर के साथ अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित करके उपासक को परमेश्वर के गुण अपने में धारण करने का प्रयत्न करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर की स्तुति है।

**१६००. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।**
**विभूतिरस्तु सूनृता॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**राधानां पते**) ऐश्वर्यों के स्वामिन् (**गिर्वाहः**) वेदवाणियों से प्राप्त करने योग्य (**वीर**) शूरवीर परमात्मन्! (**यस्य ते**) जिन आपका (**स्तोत्रम्**) स्तुतिकीर्तन सब जगह होता है, उन आप की (**सूनृता**) सत्य, प्रिया और मधुर वेदवाणी, हमारे लिए (**विभूतिः**) वैभव देने वाली (**अस्तु**) होवे॥२॥

**भावार्थ** :—वेदों को पढ़कर, उनमें विद्यमान सब विद्याओं को जानकर सब मनुष्य वैभवशाली और ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले होवें॥२॥

अब परमेश्वर को संबोधन करते हैं।

**१६०१. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो।**
**समन्येषु ब्रवावहै॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **शतक्रतो** ) अनन्त ज्ञानी और अनन्त कर्मों को करने वाले इन्द्र परमात्मन्! आप ( **अस्मिन् वाजे** ) इस देवासुरसंग्राम में ( **नः ऊतये** ) हमारी रक्षा के लिए ( **ऊर्ध्वः** ) सजग ( **तिष्ठ** ) रहो। ( **अन्येषु** ) दूसरे अवसरों पर भी, आप और मैं ( **संब्रवावहै** ) आपस में अन्तरंग संलाप किया करें॥३॥

**भावार्थ** :—जब-जब बाहरी या आन्तरिक देवासुर संग्राम उपस्थित होते हैं तब-तब परमेश्वर-विश्वास को अपने अन्दर बलवान् करके, आत्मोद्बोधन पाकर सब विघ्नों को विफल करके विजय पानी चाहिए॥३॥

( १६ )

**ऋषिः—हर्यतः प्रागाथः॥ देवता—अग्निर्हवींषि वा॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११७ क्रमांक पर पहले की जा चुकी है। यहाँ अन्य व्याख्या देते हैं।

**१६०२. गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा।**
**उभा कर्णा हिरण्यया॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मानव! उपासना-यज्ञ में तू ( **अवटे** ) आनन्द-रसों के कूप अग्नि परमेश्वर के विषय में ( **गावः** ) वेद-वाणियों को ( **उपवद** ) समीपता के साथ उच्चारण कर। ( **मही** ) महान् द्यावापृथिवी ( **यज्ञस्य** ) पूजनीय परमात्मा की ( **रप्सु-दा** ) कीर्ति गान करने वाली हैं, ( **उभा** ) जो दोनों ( **कर्णा** ) विविध ऐश्वर्यों को बिखेरने वाली तथा ( **हरिण्यया** ) ज्योतिर्मय हैं॥१॥

**भावार्थ** :—ऐश्वर्यो से परिपूर्ण देदीप्यमान द्यु-लोक और पृथिवी-लोक जगदीश्वर की ही महिमा का गान करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में वर्षा वर्णन द्वारा परमात्मा की महिमा दर्शाते हैं।

**१६०३. अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु।**
**अवटस्य विसर्जने॥२॥**

**पदार्थ** :—अग्नि नामक परमात्मा की ही महिमा से ( **अद्रयः** )

बादल (**अभ्यारम् इत्**) आपस में टकराते हैं। तब (**अवटस्य**) मेघ रूप जलभण्डार के (**विसर्जने**) बरसने पर (**पुष्करे**) भूमि के सरोवर में (**मधु**) मधुर वर्षा-जल (**निषिक्तम्**) सिंच जाता है॥२॥

**भावार्थ** :—जो यह भूमि पर स्थित जल सूर्य के ताप से अन्तरिक्ष में जाकर मेघ बनता है और फिर भूमि पर बरस जाता है, वह सब जगदीश्वर का ही कर्तृत्व है॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

१६०४. **सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम्।**
**नीचीनवारमक्षितम्॥३॥**

**पदार्थ** :—परमेश्वर की ही महिमा से सूर्य-किरणें (**उच्चाचक्रम्**) उच्च विद्युत्-रूप चक्र वाले, (**नीचीनवारम्**) नीचे की ओर द्वार वाले, (**अक्षितम्**) अक्षय (**अवटम्**) मेघ-रूप कुएं को (**परिज्मानम्**) भूमि पर चारों ओर फैलाने के लिए (**नमसा**) बिजली-रूप वज्र से (**सिञ्चन्ति**) सींचती हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जिस परमेश्वर की व्यवस्था से मेघों का निर्माण होता है और उनसे वर्षा होती है उसे हृदय में धारण करके योगी लोग धर्ममेघ समाधि को प्राप्त करें॥३॥

(१७)

**ऋषि:—देवातिथि: काण्व:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—बार्हत: प्रगाथ: (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वर:—१ मध्यम:; २ पञ्चम:॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

१६०५. **मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव। महत्ते**
**वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र परमात्मन्! (**उग्रस्य**) अधार्मिकों के प्रति उग्रता दिखाने वाले (**तव**) आपकी (**सख्ये**) मित्रता में रहते हुए हम (**मा भेम**) किसी से भयभीत न हों, (**मा श्रमिष्म**) थकें नहीं। (**वृष्ण: ते**) सुख आदि की वर्षा करने वाले आपका

(महत्) महान् (कृतम्) कर्म (अभिचक्ष्यम्) प्रशंसनीय है। आपकी कृपा से हम अपने राष्ट्र में (तुर्वशम्) हिंसकों को वश में करने वाले तथा (यदुम्) संयमशील मनुष्य-समाज को (पश्येम) देखें॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर से मित्रता स्थापित करने वाले लोग न कभी डरते हैं, न थकते हैं, प्रत्युत सत्कर्मों को करते हुए सदा ही उन्नति के मार्ग पर अग्रसर रहते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के उपासक को कहते हैं।

**१६०६. सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति। मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब॥२॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मा के उपासक! (**वृषा**) बलवान् तू (**सव्याम्**) बायीं (**स्फिग्यम्**) टांग को आगे करके और दाहिनी टांग को पीछे करके (**वावसे**) दौड़ लगाने के लिए खड़ा रह, अर्थात् सदा विक्रमशील रह। (**अस्य**) ऐसे विक्रमशील तेरी (**दानः**) कोई भी हिंसक (**न रोषति**) हिंसा नहीं कर सकेगा। हे उपासक! (**सारघेण मध्वा**) मधुमक्खियों से प्राप्त मधु से (**संपृक्ताः**) संयुक्त (**धेनवः**) गोदुग्ध आदि तैयार हैं। तू (**तूयम्**) शीघ्र (**एहि**) आ (**द्रव**) क्रियाशील हो, (**पिब**) पान कर॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे दौड़ की प्रतिस्पर्धा में प्रतिस्पर्धी लोग घुटने पर मुड़ी हुई बायीं टांग को आगे करके और दाहिनी को पीछे करके आकृति-विशेष में दौड़ने के लिए तैयार खड़े रहते हैं, वैसे ही परमेश्वर का उपासक सदा ही पुरुषार्थ के लिए तैयार रहता है। इसलिए उसके रास्ते में कोई बाधा नहीं डाल सकता, प्रत्युत उसका सभी अभिनन्दन करते हैं॥२॥

(१८)

**ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में २५० क्रमांक पर) परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ एक साथ परमात्मा और आचार्य दोनों को कहते हैं।

**१६०७. इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम। पावक-
वर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (**पुरूवसो**) बहुत ऐश्वर्य से युक्त परमात्मन् वा बहुत विद्याधन से सम्पन्न आचार्य! (**इमाः उ**) ये याः (**मम गिरः**) जो मेरी वाणियाँ हैं, वे (**त्वा**) आपको (**वर्धन्तु**) बढ़ायें अर्थात् आपकी महिमा को प्रकाशित करें। (**पावकवर्णाः**) अग्नि के समान उज्ज्वल वर्ण वाले, तेजस्वी, (**शुचयः**) पवित्र (**विपश्चितः**) विद्वान् लोग (**स्तोमैः**) स्तोत्रों से, आपकी (**अभ्यनूषत**) स्तुति कर रहे हैं॥१॥

यहाँ 'पावकवर्णाः' में वाचकलुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे जगदीश्वर वेदज्ञान के प्रदानद्वारा वैसे ही आचार्य वेदादि शास्त्रों के शिक्षण द्वारा सबका उपकार करता है॥१॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है।

**१६०८. अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रइव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु
विप्रराज्ये॥२॥**

**पदार्थ** :–(**अयम्**) यह परमेश्वर वा आचार्य (**सहस्रम्**) सहस्र बार (**ऋषिभिः**) तत्त्वदर्शी जनों द्वारा (**सहस्कृतः**) बल के साथ स्तुति किया गया (**समुद्रः इव**) समुद्र के समान (**पप्रथे**) यश से प्रख्यात होता है। (**सः**) वह (**अस्य**) इस परमेश्वर वा आचार्य की (**महिमा**) महिमा (**सत्यः**) सत्य है। मैं (**विप्रराज्ये**) विद्वानों के राज्य में (**यज्ञेषु**) उपासना-यज्ञों वा शिक्षा-यज्ञों में (**शवः**) इसके बल की (**गृणे**) स्तुति करता हूं॥२॥

यहां उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे समुद्र जल से विस्तीर्ण होता है वैसे ही जगदीश्वर और आचार्य यश से प्रख्यात होते हैं॥२॥

( १९ )

**ऋषिः—श्रुष्टिगुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः। प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर का वर्णन है।

**१६०९. यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।**
**तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते**
**रयिः॥१॥**

**पदार्थ** :—( **यस्य** ) जिस तुझ इन्द्र परमात्मा का ( **अयम्** ) यह प्रत्यक्ष दिखाई देता हुआ ( **विश्वः** ) सम्पूर्ण संसार है, जो तू ( **आर्यः** ) श्रेष्ठ, ( **दासः** ) दुष्टों का क्षय करने वाला, ( **शेवधिपाः** ) निधियों का रक्षक, और ( **अरिः** ) समर्थ है, और जो तू ( **अर्ये** ) जीवनधार पवन में, ( **रुशमे** ) चमकीले सूर्य में तथा ( **पवीरवि** ) बिजली-युक्त बादल में ( **तिरः चित्** ) विद्यमान है, ऐसे ( **तुभ्य इत्** ) तेरे लिए ही ( **सः** ) वह जगत् में सर्वत्र बिखरा हुआ ( **रयिः** ) धन ( **अज्यते** ) समर्पित है॥१॥

**भावार्थ** :—विश्व का सम्राट्, श्रेष्ठ, सज्जनों का रक्षक, दुष्टों का दलन करने वाला, भूगर्भ में निहित निधियों का रक्षक, सब कुछ करने में समर्थ, सर्वान्तर्यामी जो परमेश्वर है उसी का सब धन है, इस हेतु से ईश्वरार्पण-बुद्धि से उसका सेवन करना चाहिए॥१॥

आगे फिर परमेश्वर का विषय है।

**१६१०. तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।**
**अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे स्वानास**
**इन्दवः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**तुरण्यवः**) सत्कर्मों में शीघ्रता करने वाले, (**विप्रासः**) विद्वान् लोग (**मधुमन्तम्**) मधुर आनन्द से युक्त, (**घृतश्चुतम्**) तेज वा स्नेह को प्रवाहित करने वाले (**अर्कम्**) अर्चनीय इन्द्र परमेश्वर को (**आनृचुः**) पूजते हैं। उसी की कृपा से (**अस्मे**) हमारे लिए (**रयिः**) ऐश्वर्य (**पप्रथे**) सर्वत्र फैला हुआ है, (**वृष्ण्यम्**) सुखों की वर्षा करने वाला (**शवः**) बल भी फैला है, उसी से (**अस्मे**) हमारे लिए (**स्वानासः**) अभिषुत किये जाते हुए (**इन्दवः**) आनन्द-रस हमें प्राप्त होते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर ही हमें तेज, धन, बल, आनन्द आदि प्रदान करता है, इस कारण सबको श्रद्धापूर्वक उसकी वन्दना करनी चाहिए॥२॥

(२०)

**ऋषिः—पर्वतनारदौ॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ५७४ क्रमांक पर) परमेश्वर, राजा और आचार्य को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ जीवात्मा और परमात्मा को सम्बोधन है।

**१६११. गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव।**
**शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सुदक्ष**) श्रेष्ठ बल से युक्त (**इन्दो**) तेजस्वी जीवात्मन् वा परमात्मन्! (**सुतः**) शरीर में जन्मा वा अन्तरात्मा में प्रेरित तू (**नः**) हमारे लिए (**गोमत्**) गाय, पृथिवी आदि से युक्त तथा (**अश्ववत्**) घोड़े, आग, बिजली आदि से युक्त धन को (**धनिव**) प्राप्त करा। (**गोषु च**) और इन्द्रियों में (**शुचिं वर्णम्**) पवित्र सात्त्विक रूप को (**अधिधारय**) धारण करा॥१॥

**भावार्थ** :—भलीभांति उद्बोधन दिया हुआ मनुष्य का आत्मा और भलीभांति आराधना किया हुआ परमात्मा समस्त ऐश्वर्य प्राप्त कराने और मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदियों में पवित्रता संचार करने के लिए समर्थ होते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

१६१२. स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव॥२॥

**पदार्थ** :—हे (हरीणां पते) इन्द्रियों के अथवा आकर्षण गुणयुक्त सूर्य, चन्द्र, भूमण्डल आदियों के स्वामिन्, (इन्दो) तेजस्वी जीवात्मन् वा परमात्मन्! (देवप्सरस्तमः) देहस्थ, मन, बुद्धि आदि देवों को वा ब्रह्माण्डस्थ सूर्य, चन्द्र आदि देवों को अतिशय रूप देने वाला, (नर्यः) मनुष्यों का हितकर्ता (सः) वह तू (नः) हमें (रुचे) तेज देने के लिए (भव) हो, (सख्ये) मित्र को (सखा इव) मित्र जैसे तेज देता है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा जैसे शरीर में स्थित सब मन, बुद्धि, प्राण आदियों को अपने-अपने कर्म में संचालित करता हुआ और उन्हें शक्ति देता हुआ शरीर का सम्राट् होता है, वैसे ही परमेश्वर ब्रह्माण्ड में स्थित सूर्य, चांद, नक्षत्र आदियों को संचालित करता हुआ और उन्हें शक्ति देता हुआ ब्रह्माण्ड का सम्राट् होता है॥२॥

आगे फिर जीवात्मा और परमात्मा का विषय है।

१६१३. सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम्।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम्॥३॥

**पदार्थ** :—हे (इन्दो) तेजस्वी जीवात्मन् वा परमात्मन्! (त्वम्) शक्तिशाली तू (सनेमि) पुरानी मित्रता को (अस्मत्) हमारे प्रति (आ) ला। (अदेवम्) न देने वाले, सहायता न करने वाले (कंचित्) किसी भी (अत्रिणम्) भक्षक पाप, दुर्व्यसन आदि को वा दुर्जन को (अप) दूर कर दे। (साह्वान्) शत्रुओं को पराजित करने वाला तू (बाधः) बाधकों को (परि) चारों ओर विनष्ट कर, (द्वयुम्) सत्य-असत्य दोनों से युक्त अथवा पीछे कुछ और सामने कुछ या मन में कुछ और वचन में कुछ इस द्विविध आचरण वाले, छल-छद्म का व्यवहार करने वाले मनुष्य को (अप) दूर कर दे॥३॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा को प्रोत्साहन देकर और परमात्मा की उपासना करके सब लोग दुष्टों तथा छद्म का आचरण करने

वालों को दूर हटाकर, सज्जनों की संगति करके स्वयं को और समाज को उन्नत करें॥३॥

( २१ )

ऋषिः—अत्रिः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः।

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५६४ क्रमांक पर की जा चुकी है। यहाँ भिन्न प्रकार से व्याख्या करते हैं।

**१६१४. अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते। सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमप्सु गृभ्णते॥१॥**

**पदार्थ** :—परमेश्वर के उपासक विद्वान् लोग **( अञ्जते )** स्वयं का मार्जन करते हैं, **( व्यञ्जते )** स्तुति-वाणियों को व्यक्त करते हैं, **( समञ्जते )** परमात्मा के साथ संगम करते हैं, **( क्रतुम् )** श्रेष्ठ ज्ञान और श्रेष्ठ कर्म का **( रिहन्ति )** आस्वादन करते हैं, **( मध्वा )** मधुर ब्रह्मानन्द से **( अभ्यञ्जते )** अपने आत्मा में सद्गुणों का उबटन लगाते हैं, अर्थात् अपने आत्मा को संस्कृत करते हैं **( सिन्धोः )** रक्त के सिन्धु हृदय के **( उच्छ्वासे )** स्पन्दन में **( पतयन्तम् )** गति देते हुए, **( उक्षणम् )** बल को सींचने वाले, **( पशुम् )** द्रष्टा जीवात्मा को **( हिरण्यपावाः )** ज्योति के रक्षक उपासक लोग **( अप्सु )** अपने कर्मों में **( गृभ्णते )** ग्रहण कर लेते हैं अर्थात् उसकी प्रेरणा के अनुसार कर्म करते हैं॥१॥

यहाँ एक कर्ता कारक के अनेक क्रियाओं से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलंकार है, जैसा कि साहित्यदर्पण में इसका लक्षण किया गया है 'अनेक क्रियाओं में एक कारक हो तो दीपक होता है। (सा० द० १०।४९)' 'ञ्जते' के चार बार पठित होने से वृत्त्यनुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—शरीर में हृदय का स्पन्दन, धमनियों और शिराओं में रक्त का संचार, फेफड़ों में रक्त का शोधन इत्यादि जो कुछ भी कार्य हैं वह सब जीवात्मा के अधीन है और जीवात्मा भी परमात्मा के अधीन है॥१॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा का वर्णन है।

**१६१५. विपश्चिते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति। अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद् वृषा हरिः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे मनुष्यो! तुम (**विपश्चिते**) मेधावान्, (**पवमानाय**) मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि को पवित्र करने वाले जीवात्मा के लिए (**गायत**) गाओ, उसके महत्त्व को वर्णित करो। वह (**अन्धः**) अन्धेरे को तमोगुण को (**अत्यर्षति**) लांघ जाता है, (**मही न धारा**) जैसे बड़ी जलधारा मार्ग में आयी हुई शिला आदि की बाधा को लांघ जाती है। वह जीवात्मा (**जूर्णाम्**) पुरानी, बूढ़ी (**त्वचम्**) त्वचा को, त्वचा-युक्त शरीर को (**अतिसर्पति**) छोड़कर चला जाता है, (**अहिः न**) जैसे सांप (**जूर्णाम्**) पुरानी (**त्वचम्**) केंचुली को (**अति सर्पति**) छोड़कर चला जाता है। साथ ही (**वृषा**) बलवान्, (**हरिः**) शरीर-रथ का वाहक वह जीवात्मा (**अत्यः न**) रथ में जुड़े घोड़े के समान (**क्रीडन्**) क्रीड़ा करता हुआ (**असरत्**) शरीर-रथ को धारण किये हुए चलता है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—न जाने कब जीव शरीर को छोड़कर चला जाए। इसलिए शीघ्र ही धर्म कर्मों में मन लगाना चाहिए, नहीं तो पीछे पछतावा होगा॥२॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर के गुणों का वर्णन है।

**१६१६. अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः। हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः पवते राय ओक्यः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अग्रेगः**) आगे-आगे चलने वाला, (**राजा**) विश्व का राजा, (**अप्यः**) प्राणों के लिए हितकर, (**अह्नां विमानः**) दिनों का निर्माण करने वाला, (**भुवनेषु अर्पितः**) लोकलोकान्तरों में व्यापक सोम परमेश्वर (**तविष्यते**) महिमा-गान द्वारा बढ़ेगा।

**( घृतस्नुः )** वृष्टि-जल को बरसाने वाला, **( सुदृशीकः )** भली भांति दर्शन करने योग्य, **( अर्णवः )** सद्गुणों का समुद्र, **( ज्योतीरथः )** सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि ज्योतिष्मान् पदार्थों को वेग से चलाने वाला, **( ओक्यः )** गृहरूप देह के लिए हितकर **( हरिः )** वह हृदयहारी जगदीश्वर **( राये )** ऐश्वर्य देने के लिए **( पवते )** प्राप्त होता है॥३॥

**भावार्थ** :—दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु, दक्षिणायन, उत्तरायण, वर्ष आदि का और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि का बनाने वाला सबका हितकर्ता परमेश्वर सबके द्वारा वन्दनीय है॥३॥

**इति षोडशोऽध्याय; सप्तमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः समाप्तः॥**

# अथ सप्तदशोऽध्यायः

## अष्टमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**१६१७. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः।**
**चनो धाः सहसो यहो॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) जगन्नायक परमात्मन्! आप ( **विश्वेभिः** ) सब ( **अग्निभिः** ) संकल्प, उत्साह, महत्त्वाकांक्षा, वीरता आदि की अग्नियों के साथ ( **इमम्** ) इस ( **यज्ञम्** ) हमारे जीवन-यज्ञ में आओ। ( **इदम्** ) इस ( **वचः** ) वचन को सुनो। हे ( **सहसः यहो** ) बल के पुत्र अर्थात् अतिबली परमात्मन्! आप हमें ( **चनः** ) आनन्द का अमृत ( **धाः** ) प्रदान करो।।१।।

**भावार्थ** :—अग्निहीन मनुष्य मृत के तुल्य होता है। इसलिए हृदय अग्नियों को प्रज्वलित कर आशावाद के साथ कर्मयोग का सहारा लेकर विजयश्री सबको प्राप्त करनी चाहिए।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा को समर्पण किया गया है।

**१६१८. यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे।**
**त्वे इद्धूयते हविः॥२॥**

**पदार्थ** :—( **यत् चित् हि** ) यद्यपि ( **शश्वता** ) प्रचुर ( **तना** ) धन से, हम ( **देवं देवम्** ) प्रत्येक विद्वान् का ( **यजामहे** ) सत्कार करते हैं, तो भी हे अग्ने! हे जगन्नायक परमात्मन्! वस्तुतः ( **हविः** ) समर्पणीय आत्मा, मन, बुद्धि आदि तथा सब कर्म ( **त्वे इत्** ) आप में ही ( **हूयते** ) हमारे द्वारा समर्पित हैं।।२।।

**भावार्थ** :—यथोचित सत्कार माता, पिता, अतिथि, राजा, आचार्य, उपदेशक, वानप्रस्थ, संन्यासी आदि सभी का करना

चाहिए, किन्तु जगत् के उत्पत्तिकर्ता, धारणकर्ता, संहारकर्ता आदि रूप में एक परमेश्वर की ही पूजा करनी योग्य है॥२॥

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का संबंध वर्णित है।

**१६१९. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः।**
**प्रियाः स्वग्नयो वयम्॥३॥**

**पदार्थ** :-( **विश्वपतिः** ) प्रजापालक राजा के समान सब मनुष्यों को पालनकर्ता, ( **होता** ) देने योग्य वस्तुओं का देने वाला, ( **मन्द्रः** ) आनन्द-प्रदाता, ( **वरेण्यः** ) वरणीय जगदीश्वर ( **नः** ) हमारा ( **प्रियः** ) प्यारा ( **अस्तु** ) होवे। ( **स्वग्नयः** ) शुभ संकल्प, उत्साह, राष्ट्रियता, वीरता आदि अथवा आहवनीय आदि अग्नियों वाले ( **वयम्** ) हम उपासक जन भी उस जगदीश्वर के ( **प्रियाः** ) प्यारे होवें॥३॥

**यहाँ अन्योन्यालंकार है॥३॥**

**भावार्थ :-जब मनुष्य परमात्मा से प्रीति करते हैं तब वह भी उनसे प्रीति करता है॥३॥**

( २ )

**ऋषिः-मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः॥ देवता-इन्द्रः॥ छन्दः-गायत्री॥ स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में इन्द्र नाम से परमात्मा का विषय है।

**१६२०. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।**
**अस्माकमस्तु केवलः॥१॥**

**पदार्थ :-हे साथियो! ( विश्वतः परि ) सबसे ऊपर, हम ( इन्द्रम् ) विघ्ननाशक, परमैश्वर्यवान् परमात्मा को ( जनेभ्यः वः ) आप प्रजाजनों के लिए ( हवामहे ) पुकारते हैं। वह ( अस्माकम् ) हम श्रोताओ का ( केवलः ) अद्वितीय सखा ( अस्तु ) होवे॥१॥**

**भावार्थ :-भले ही माता, पिता, राजा आदि हमें सुख देने वाले होते हैं, परन्तु सदा सहायक, सदा अशरण-शरण, सदा धैर्यप्रदाता सखा तो जगदीश्वर ही है॥१॥**

अब परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

१६२१. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**वृषन्**) सुखों की वर्षा करने वाले, (**सत्रादावन्**) एक साथ दान देने वाले, सत्य के प्रेरक वा सृष्टि यज्ञ के सम्पादक जगदीश्वर! (**अप्रतिष्कुतः**) अविचल (**सः**) वह आप (**अस्मभ्यम्**) आपकी आज्ञा में और पुरुषार्थ में वर्तमान हम उपासकों के लिए (**अमुं चरुम्**) सूर्य के प्रतिबन्धक के समान इस मोक्षमार्ग में रुकावट डालने वाले अविद्या, दुराचार आदि को (**अपावृधि**) दूर कर दो।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य अपने प्रकाश के संचार में बाधा डालने वाले मेघ रूप कपाट को खोलकर भूमण्डल को प्रकाशित करता है, वैसे ही जगदीश्वर हमारे मोक्ष में बाधक अविद्या, दुष्कर्म आदि को हटाकर हमें मोक्ष प्राप्त कराते हैं।।२।।

अब कैसा परमात्मा कि इसके समान किन्हें प्राप्त होता है यह कहते हैं।

१६२२. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः॥३॥

**पदार्थ** :—(**वंसगः**) शान से चलने वाला (**वृषा**) सांड (**यूथा इव**) जैसे गौओं के झुण्ड में जाता है, वैसे ही (**वृषा**) शुभगुणों की वर्षा करने वाला, (**वंसगः**) धर्मसेवी के पास जाने वाला (**ईशानः**) जगदीश्वर (**अप्रतिष्कुतः**) किसी से न रोका जाता हुआ (**ओजसा**) बल के साथ (**कृष्टीः**) उपासक मनुष्यों के पास (**इयर्त्ति**) पहुंच जाता है।।३।।

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जो श्रद्धा से परमेश्वर की उपासना करते हैं परमेश्वर भी उन धर्मात्मा लोगों की अवश्य सहायता करता है और उन्हें बल देता है।।३।।

(३)

**ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः। छन्दः—बार्हतः**

प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४१ क्रमांक पर हो चुकी है। यहाँ परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना करते हैं।

१६२३. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय। अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः॥१॥

**पदार्थ** :—हे (**वसो**) निवासक परमेश्वर वा आचार्य! (**चित्रः**) अद्भुत गुणोंवाले (**त्वम्**) आप (**ऊत्या**) रक्षा के साथ (**नः**) हमारे लिए (**राधांसि**) विद्या-धन, सच्चरित्रता आदि के धन और आध्यात्मिक ऐश्वर्य (**चोदय**) प्रेरित करो। हे (**अग्ने**) विद्वान्, अग्रनायक, तेजस्वी परमेश्वर या आचार्य! (**त्वम्**) आप (**अस्य**) इस (**रायः**) विद्या, सदाचार आदि धन के (**रथीः**) स्वामी (**असि**) हो। इसलिए (**नः**) हमारी (**तुचे**) सन्तान के लिए (**तु**) शीघ्र ही (**गाधम्**) तलस्पर्शी पाण्डित्य (**विदाः**) प्राप्त कराओ॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर सबके आत्मा में ज्ञान, सद्गुण आदि प्रेरित करता है, वैसे ही विद्वान् गुरुजन गृहस्थों को भली-भांति उपदेश करें और उनके पुत्र, पौत्र आदियों को गुरुकुल में सब विद्याएं पढ़ाकर विद्वान् तथा चरित्रवान् बनायें॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमेश्वर और आचार्य को कहते हैं।

१६२४. पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः। अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) परमात्मन् वा आचार्य। (**त्वम्**) आप (**अदब्धैः**) अबाध, (**अप्रयुत्वभिः**) अलग न होने वाले (**पर्तृभिः**) पालन-पूरण के प्रकारों से (**तोकं तनयम्**) पुत्र-पौत्र की (**पर्षि**) पालना करो और उन्हें विद्या आदि से भरपूर करो। (**नः**) हमारे (**दैव्या**) धार्मिक विद्वानों के प्रति किये जाने वाले (**हेडांसि**) अनादररूप अपराधों को, (**अदेवानि च**) और अवांछनीय (**ह्वरांसि**) कुटिल कर्मों को (**युयोधि**) हमसे अलग करो॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की प्रेरणा से और गुरुओं की शिक्षा से सब मनुष्यों को दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि छोड़ने चाहिएं और सद्गुणों तथा सत्कर्मों को प्राप्त करना चाहिए॥२॥

(४)

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—विष्णुः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है।

**१६२५. किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि। मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**विष्णो**) सर्वव्यापक जगदीश्वर! (**किम् इत् ते**) क्या यही आपका (**परिचक्षि**) चारों ओर प्रकाशनीय स्वरूप है (**यत्**) जो आप (**प्र ववक्षे**) कहते हो कि मैं (**शिपिविष्टः**) किरणों से घिरा हुआ अर्थात् तेजस्वी (**अस्मि**) हूं? उससे अतिरिक्त भी आपका स्वरूप है यह कहते हैं—(**एतत् वर्पः**) इस रूप को (**अस्मत्**) हमसे (**मा अप गूहः**) मत छिपाओ (**यत्**) कि आप (**समिथे**) उपासना-यज्ञ में (**अन्यरूपः**) जगत्प्रपंच में अधिष्ठित रूप से भिन्न (**बभूथ**) होते हो॥१॥

**भावार्थ** :—सूर्य आदि जगत्प्रपंच में परमात्मा का जो तेजोमय रूप है वह सबको दृष्टिगोचर होता है, परन्तु उसका जगत्प्रपंचातीत जो वास्तविक रूप है उसका योगी लोग ही साक्षात्कार करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति है।

**१६२६. प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट हव्यमर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्। तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**शिपिविष्ट**) तेज की किरणों से घिरे हुए अर्थात् तेजस्वी सर्वव्यापक विष्णु जगदीश्वर! (**अर्यः**) स्तुतियों

का ईश्वर और ( **वयुनानि विद्वान्** ) कर्तव्य कर्मों को जानने वाला मैं ( **अद्य** ) आज ( **ते** ) आपके ( **तत्** ) उस प्रसिद्ध ( **हव्यम्** ) दान की ( **प्र शंसामि** ) प्रशंसा करता हूं। ( **अतव्यान्** ) अमहान् मैं ( **तवसम्** ) महान् और ( **अस्य रजसः** ) इस रजोगुण के ( **पराके** ) परे ( **क्षयन्तम्** ) निवास करने वाले ( **तम्** ) उस प्रसिद्ध ( **त्वा** ) आपकी ( **गृणामि** ) स्तुति करता हूं।।२।।

**भावार्थ** :—अल्पशक्ति वाला मनुष्य महाशक्ति वाले परमात्मा के गुणों के स्मरण से निरभिमान होकर महान् कार्यों को करने के लिए अपने आत्मा में बल संचित करे।।२।।

आगे फिर उसी विषय में कहा गया है।

**१६२७. वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व**
**शिपिविष्ट हव्यम्। वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे**
**यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे ( **विष्णो** ) सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! मैं ( **आसः** ) मुख से ( **ते** ) आपके लिए ( **वषट्** ) स्तुति को ( **आकृणोमि** ) करता हूँ। ( **तत् मे हव्यम्** ) उस मेरे समर्पण को, आप ( **जुषस्व** ) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो। ( **मे** ) मेरी ( **सुष्टुतयः** ) उत्कृष्ट स्तुति वाली ( **गिरः** ) वाणियाँ ( **त्वा वर्धन्तु** ) आपकी महिमा को बढ़ायें, प्रचारित करें। हे विष्णु जगदीश्वर! ( **यूयम्** ) तुम ( **स्वस्तिभिः** ) कल्याणों द्वारा ( **नः** ) हमारी ( **सदा** ) सदा ( **पात** ) रक्षा करते रहो।।३।।

**भावार्थ** :—जन-जन में जगदीश्वर की महिमा के प्रचार से सब धार्मिक होकर अपने और समाज के जीवन को उन्नत करें।।३।।

## ( ५ )

**ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—१ वायुः; २-३ इन्द्रवायू॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में उपास्य-उपासक का आपस का सम्बन्ध वर्णित है।

**१६२८. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु।**
**आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**वायो**) सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! (**दिविष्टिषु**) विवेक-प्रकाश की प्राप्तियों के हो जाने पर (**शुक्रः**) पवित्र मैं (**ते**) आपके (**मध्वः**) आनन्द-रस के (**अग्रम्**) श्रेष्ठ भाग को (**अयामि**) पा रहा हूँ। हे (**देवः**) मोदमय ! (**स्पार्हः**) स्पृहणीय आप (**सोमपीतये**) मेरे श्रद्धा-रस के पानार्थ (**नियुत्वता**) नियुक्त रथ से जैसे कोई आता है वैसे (**आयाहि**) आओ॥१॥

यहाँ 'नियुत्वता' में लुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे उपासक परमेश्वर के आनन्द-रसों का प्यासा होता है, वैसे ही परमेश्वर भी उपासक के भक्ति-रसों का प्यासा होता है॥१॥

अगले मन्त्र में इन्द्र और वायु के नाम से जीवात्मा और प्राण का साहचर्य वर्णित है।

**१६२९. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः।**
**युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वायो**) प्राण ! तू (**इन्द्रः च**) और जीवात्मा, तुम दोनों (**एषां सोमानाम्**) इन शान्त-रसों के (**पीतिम् अर्हथः**) पान के योग्य हो। (**युवाम् हि**) तुम दोनों की ओर (**इन्दवः**) प्रकाशपूर्ण शान्त-रस (**सध्र्यक्**) एक साथ (**यन्ति**) आते हैं, (**आपः न**) जैसे जल (**निम्नम्**) निचले भू भाग की ओर आते हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा प्राणायाम से और योगसाधना से परमेश्वर के साथ मित्रता संस्थापित करके उससे मधुर शान्त-रस प्राप्त कर सकता है॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१६३०. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती।**
**नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (**वायो**) प्राण ! तू (**इन्द्रः च**) और जीवात्मा (**शुष्मिणा**) बलवान् (**शवसः पती**) बल के रक्षक और (**नियुत्वन्ता**) सदा कार्य-तत्पर रहते हुए (**नः ऊतये**) हमारी रक्षा के लिए (**सरथम्**) एक ही देह-रथ पर चढ़कर (**सोमपीतये**) शान्त रस के पानार्थ (**आयातम्**) आओ।।३।।

**भावार्थ** :–जीवात्मा प्राण के ही साथ देह में आता है और उसी के साथ जीवन में सब कार्य सिद्ध करता हुआ योगाभ्यास द्वारा शान्ति प्राप्त करता है।।३।।

(६)

ऋषिः–रेभसूनू काश्यपौ॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–अनुष्टुप्।। स्वरः–गान्धारः।।

अब परमात्मा और जीवात्मा का विषय वर्णित करते हैं।

**१६३१. अध क्षपा परिष्कृतो वाजाँ अभि प्र गाहसे।**
**यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे॥१॥**

**पदार्थ** :–हे मानव ! (**यदि**) जब (**विवस्वतः**) तमोगुणों को हटाने वाले परमेश्वर की (**धियः**) प्रज्ञाएं (**हरिम्**) तुझ मनुष्य को (**यातवे**) पुरुषार्थ करने के लिए (**हिन्वन्ति**) प्रेरित करती हैं, तब (**क्षपा**) परमेश्वर की दोष क्षीण करने की शक्ति से (**परिष्कृतः**) संस्कृत हुआ तू (**वाजान्**) विविध ऐश्वर्यों में (**अभि प्र गाहसे**) अवगाहन अर्थात् रमण करने लगता है।।१।।

**भावार्थ** :–आत्मशुद्धि और पुरुषार्थ से ही मनुष्य विविध सम्पदाएं पा सकते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में उपासना का विषय कहते हैं।

**१६३२. तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः।**
**यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**अस्य**) इस स्तोता मनुष्य का (**यः**) जो (**इन्द्रपातमः**) परमेश्वर द्वारा अतिशय पान करने योग्य (**मदः**) हर्षदायक भक्ति-रस है, (**तम्**) उसे, हम (**मर्जयामसि**) शुद्ध करते हैं, (**यम्**) जिसे (**पुरा नूनं च**) पहले और आज भी (**सूरयः**) विद्वान् (**गावः**) स्तोता लोग (**आसभिः**) मुखों से

(दधुः) प्रकट करते रहे हैं॥२॥

**भावार्थ** :–आडम्बर से रहित, निश्छल, शुद्ध उपासना ही जगदीश्वर को स्वीकार होती है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर की स्तुति और उसके फल का वर्णन है।

१ २र ३ १ २ ३ २३क २र
**१६३३. तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत।**
३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
**उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रती:॥३॥**

**पदार्थ** :–(**पुनानम्**) पवित्र करने वाले (**तम्**) उस सोम की अर्थात् शुभ गुण-कर्मों की प्रेरणा करने वाले परमात्मा की, स्तोता लोग (**पुराण्या**) सनातन (**गाथया**) वेद-गाथा से (**अभ्यनूषत**) स्तुति करते हैं। (**उत उ**) और (**नाम**) परमात्मा के प्रति नमन को (**बिभ्रती:**) धारण करती हुई (**देवानाम्**) विद्वानों की (**धीतयः**) बुद्धियां और क्रियाएं (**कृपन्त**) शक्तिशालिनी हो जाती हैं॥३॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की स्तुति से स्तोताओं की वाणियां, प्रज्ञाएं और क्रियाएं बलवती होकर जीवन में उन्हें सफल करती हैं॥३॥

(७)

**ऋषिः–शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता–अग्निः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में (१७ क्रमांक पर) परमात्मा को सम्बोधन की गयी थी। यहाँ एक साथ परमात्मा और आचार्य दोनों को कह रहे हैं।

२ ३ २ ३ १२ ३ १ २ ३ १ २र
**१६३४. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।**
३ १ २ ३ १ २
**सम्राजन्तमध्वराणाम्॥१॥**

**पदार्थ** :–(**वारवन्तम्**) मलिनता-निवारक किरण रूप बालों से युक्त (**अश्वं न**) सूर्य के समान (**वारवन्तम्**) दोष-निवारण के सामर्थ्य से युक्त, (**अध्वराणाम्**) सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति आदि यज्ञों के वा शिक्षा-यज्ञों के (**राजन्तम्**) सम्राट् (**अग्नि**

त्वाम्) आप नायक परमात्मा वा आचार्य को (नमोभिः) नमस्कारों से (वन्दध्यै) वन्दना करने के लिए, मैं बुलाता हूँ॥१॥

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य अपने किरण-समूह से भूमि पर स्थित मलिनता आदि को दूर करता है, वैसे ही परमेश्वर और आचार्य अपने स्वच्छ करने के सामर्थ्य से मनुष्यों के पाप, दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःख आदि दूर करते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय है।

**१६३५. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः।**
**मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्॥२॥**

**पदार्थ** :—(सः घ) वह निश्चय ही (सूनुः) शुभ गुण, कर्म, विद्या, आदि का प्रेरक, (पृथुप्रगामा) विस्तृत कर्तव्य मार्ग का उपेदश करने वाला, (सुशेवः) उत्तम सुख देने वाला परमेश्वर वा आचार्य (नः) हमें (मीढ्वान्) विद्या, धन आदि की वर्षाओं से सींचने वाला (बभूयात्) होवे॥२॥

**भावार्थ** :—भलीभांति उपासना किया गया परमेश्वर और भलीभांति सेवा किया गया आचार्य विद्या, शुभ गुण-कर्म आदि के उपदेश से मनुष्यों को सुखी करते हैं॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

**१६३६. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः।**
**पाहि सदमिद्विश्वायुः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे परमात्मन् वा आचार्य! (विश्वायुः) सौ वर्ष की पूर्ण आयु की प्राप्ति का उपदेश देने वाले (सः) वह आप (दूरात् च) दूर से (आसात् च) और समीप से (अघायोः) दूसरों को पापी बनाना चाहने वाले (मर्त्यात्) मनुष्य से (सदम् इत्) सदा ही (अस्मान्) हमें (नि पाहि) निरन्तर बचाते रहो॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की प्रेरणा से और सद्गुरुओं के उपदेश

से सब लोग पापात्माओं की कुसंगति छोड़कर, सत्संग करके नैतिक नियमों और स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए सदाचारी और दीर्घायु होवें॥३॥

(८)

ऋषिः—नृमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में (३११ क्रमाङ्क पर) परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी है, यहाँ परमात्मा और जीवात्मा को सम्बोधन किया जा रहा है।

**१६३७. त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।**
**अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) विघ्नों को दूर करने वाले परमात्मन् वा जीवात्मन्! तुम (**प्रतूर्तिषु**) वेग वाले देवासुरसंग्रामों में (**विश्वा**) सब (**स्पृधः**) प्रतिस्पर्धा करने वाली काम, क्रोध आदि की सेनाओं को (**अभि असि**) परास्त कर देते हो। तुम (**अशस्तिहा**) अप्रशस्तियों को मारने वाले, (**जनिता**) प्रशस्ति कारक श्रेष्ठ गुणों तथा कर्मों को जन्म देने वाले, और (**वृत्रतूः**) पापों की हिंसा करने वाले (**असि**) हो। (**त्वम्**) तुम (**तरुष्यतः**) हिंसकों को (**तूर्य**) विनष्ट करो॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को योग्य है कि परमात्मा से प्रार्थना करके और अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर सभी आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को जीतकर अपने उन्नति के मार्ग को निष्कंटक करें॥१॥

अगले मन्त्र में फिर आत्मा और जीवात्मा को कहा गया है।

**१६३८ अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा। विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) शूर परमात्मन् वा जीवात्मन्! (**ते**) तुम्हारे (**तुरयन्तम्**) शीघ्र कार्य करने वाले (**शुष्मम्**) बल को

( **क्षोणी** ) आकाश-भूमि वा मन-बुद्धि ( **अनु ईयतुः** ) अनुसरण करते हैं, ( **तुरयन्तम्** ) तेजी से चलते हुए ( **शिशुं न** ) शिशु को जैसे ( **मातरा** ) माता-पिता अनुसरण करते हैं, अभिप्राय यह है कि जैसे शिशु के पीछे-पीछे चलने में माता-पिता किसी महान् आनन्द का अनुभव करते हैं, वैसे ही परमात्मा के बल का अनुसरण करने से द्यावापृथिवी और जीवात्मा के बल का अनुसरण करने से मन-बुद्धि विशेष शक्ति प्राप्त करते हैं। हे इन्द्र परमात्मन् वा जीवात्मन्! ( **यत्** ) जब, तुम ( **वृत्रम्** ) काम आदि शत्रु को वा विघ्न समूह को ( **तूर्वसि** ) नष्ट करते हो, तब ( **ते** ) तुम्हारे ( **मन्यवे** ) तेज के सम्मुख ( **विश्वाः** ) सब ( **स्पृधः** ) शत्रु-सेनाएं वा विघ्नों की सेनाएं ( **श्नथयन्त** ) हतप्राय वा दुर्बल हो जाती हैं॥२॥

**भावार्थ** :-द्यावापृथिवी आदि सब कुछ परमात्मा के बल से ही बलवान् दिखायी देते हैं, इसी प्रकार शरीरस्थ मन-बुद्धि आदि जीवात्मा के बल से बलवान् होते हैं। मन में परमात्मा के चिन्तन से और अपनी अन्तरात्मा के उद्बोधन से सब विधान और बाह्य तथा आन्तरिक शत्रु जड़ समेत उखाड़े जा सकते हैं॥२॥

( ९ )

**ऋषिः-गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ देवता-इन्द्रः॥ छन्दः-गायत्री॥ स्वरः-षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १२१ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की गयी थी। यहाँ जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१६३९. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्।**
**चक्राण ओपशं दिवि॥१॥**

**पदार्थ** :-( **यज्ञः** ) परमात्मा की संगति करना रूप यज्ञ ( **इन्द्रम्** ) जीवात्मा को ( **अवर्धयत्** ) बढ़ाता है, शक्तिशाली बनाता है, ( **यत्** ) क्योंकि, वह जीवात्मा ( **दिवि** ) तेजस्वी परमात्मा में ( **ओपशम्** ) निवास ( **चक्राणः** ) करता हुआ ( **भूमिम्** ) पार्थिव शरीर को ( **व्यवर्तयत्** ) भली भाँति चलाता है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास से ही बल प्राप्त करके जीवात्मा शरीररूप राज्य के मस्तिष्क-संस्थान, रक्त-संस्थान, पाचन-संस्थान, श्वास-संस्थान, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों सबका भलीभांति संचालन करने में समर्थ होता है। इसलिए उसे चाहिए कि परमात्मा को कभी न भूले॥१॥

अगले मन्त्र में फिर जीवात्मा का विषय है।

**१६४०. व्या३न्तरिक्षमतिरन् मदे सोमस्य रोचना।**
**इन्द्रो यदभिनद्वलम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रः**) बलवान् जीवात्मा (**सोमस्य**) भक्तिरस के (**मदे**) उत्साह में (**यत्**) जब (**वलम्**) आवरण डालने वाले अर्थात् लक्ष्य-प्राप्ति के बाधक अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष आदि, काम-क्रोध आदि और व्याधि-स्त्यान संशय-प्रमाद-आलस्य आदि विघ्न-समूह को (**अभिनत्**) छिन्न-भिन्न कर देता है, तब (**अन्तरिक्षम्**) मध्यस्थ मनोमय और विज्ञानमय आकाश को तथा (**रोचना**) उसमें प्रकाशमन सद्भाव-रूप नक्षत्रों को (**वि-अतिरत्**) फैला देता है॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा के पास से प्राप्त बल से ही मनुष्य का आत्मा पग-पग पर आये हुए विघ्नों का विध्वंस करके लक्ष्य तक पहुंचने में समर्थ होता है॥२॥

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है।

**१६४१. उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः।**
**अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्॥३॥**

**पदार्थ** :—इन्द्र नामक बलवान् जीवात्मा (**अर्वाञ्चम्**) अपने सामने आये हुए (**वलम्**) पूर्व मन्त्र में कहे गए आवरण डालने वाले विघ्न-समूह को (**नुनुदे**) परे धकेल देता है, और (**गुहा सतीः**) गुफा में छिपी हुई (**गाः**) अध्यात्म-प्रकाश की किरणों को (**अङ्गिरोभ्यः**) प्राणायाम के अभ्यासियों के लिए (**उद् आजत्**) बाहर निकाल लाता है॥३॥

**भावार्थ** :—जिन विघ्न-जालों से घिरे हुए योगाभ्यासी लोग

विवेक-ख्याति के प्रकाश को वा परमात्मा के प्रकाश को नहीं प्राप्त कर पाते उन विघ्नों को प्रयत्नशील जीवात्मा परमात्मा की कृपा से पराजित करके लक्ष्य-प्राप्ति में सफल हो जाता है॥३॥

( १० )

ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा आङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में १७० क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ परमात्मा और जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१६४२. त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम्।**
**आ च्यावयस्यूतये॥१॥**

**पदार्थ** :—हे भाई! तू (**त्यम् उ**) उसी (**सत्रासाहम्**) एक साथ सब विघ्नों को पराजित कर देने वाले, (**विश्वासु गीर्षु**) सब वाङ्मयों में (**आयतम्**) व्याप्त परमात्मा वा जीवात्मा को (**वः**) वरण कर और (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**आच्यावयसि**) अपनी ओर झुका॥१॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर सब वेद-वाणियों में व्याप्त है, क्योंकि श्रुति कहती है कि 'जिसने उसे नहीं जाना वह ऋचा से भला क्या लाभ उठा सकेगा (ऋ० १।१६४।३९)।' जीवात्मा का भी वेदादि वाणियां पद-पद पर वर्णन करती हैं। परमात्मा की शरण में जाकर और अपने अन्तरात्मा को भलीभांति उद्बोधन देकर मनुष्य रक्षित तथा समुन्नत हो सकते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा और जीवात्मा के गुणों का वर्णन है।

**१६४३. युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम्।**
**नरमवार्यक्रतुम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**युध्मं सन्तम्**) योद्धा होते हुए (**अनर्वाणम्**) किसी दूसरे पर आश्रित न रहने वाले, (**सोमपाम्**) वीर रस का पान करने वाले, (**अनपच्युतम्**) विघ्नों से विचलित न होने

वाले (**नरम्**) नेता (**अवार्यक्रतुम्**) जिसके संकल्प वा कर्म को कोई रोक नहीं सकता ऐसे परमात्मा वा जीवात्मा को, हे मानव! तू (**आ च्यावयसि**) अपनी ओर झुका। [यहाँ 'आच्यावयसि' पद पूर्व मन्त्र से लाया गया है]॥२॥

यहाँ 'युध्मं सन्तम् अनर्वाणम्' जो योद्धा होते हुए भी आक्रमणकारी नहीं है—यह अर्थ प्रतीत होने से विरोध भासित होता है, भाष्य में दी गयी व्याख्या से उस विरोध का परिहार हो जाता है। अतः विरोधाभास अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर अधार्मिक, दूसरों को सताने वाले लोगों से मानो युद्ध करके उन्हें पराजित और दंडित करता है। देहधारी जीव भी वीरतापूर्वक दुर्विचारों और दुष्ट जनों से युद्ध करके अदम्य संकल्प-बल से सब शत्रुओं को जीतकर उन्नति की सब से उपरली सीढ़ी पर पहुंचने में समर्थ हो जाता है॥२॥

**आगे परमात्मा और जीवात्मा से प्रार्थना करते हैं।**

**१६४४. शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम।**
**अवा नः पार्ये धने॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**ऋचीषम**) वेदवागीशों का मान करने वाले (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवान् परमात्मा वा जीवात्मा! (**पुरु**) बहुत (**विद्वान्**) विद्वान् तुम (**नः**) हमें (**रायः**) भौतिक और आध्यात्मिक ऐश्वर्य (**आ शिक्ष**) प्रदान करो। (**पार्ये**) मार्ग के पार जाकर प्राप्त करने योग्य (**धने**) धन के निमित्त (**नः**) हमारी (**अव**) रक्षा करो॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की प्रेरणा और जीवात्मा के पुरुषार्थ से मनुष्य निर्धारित मार्ग के पार पहुंच कर महान् ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकते हैं॥३॥

(११)

**ऋषिः—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥**

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर के गुणों का वर्णन है।

१६४५. तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम्।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम्॥१॥

**पदार्थ** :–हे इन्द्र परमैश्वर्यवन् विघ्नविनाशक वीर परमात्मन्! (**तव धिषणा**) आपकी बुद्धि (**तव**) आपके (**त्यत्**) उस प्रसिद्ध (**वरेण्यम्**) श्रेष्ठ वा वरणीय, (**बृहत्**) महान् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रत्व को, परमैश्वर्य को, (**दक्षम्**) बल को, (**क्रतुम्**) प्रज्ञान, कर्म, सङ्कल्प व यज्ञ को (**उत**) और (**व्रजम्**) न्यायरूप वज्र को वा दण्ड–सामर्थ्य को (**शिशाति**) सदैव तीक्ष्ण करती रहती है॥१॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के परमैश्वर्य, बल, प्रज्ञान, कर्म, श्रेष्ठ संकल्प, यज्ञ–भावना, न्याय–प्रदान और दण्ड–सामर्थ्य कभी घटते नहीं, प्रत्युत सदा बढ़े हुए और सदा तीक्ष्ण रहते हैं, जिससे सब लोग लाभान्वित होते हैं॥१॥

अब जगदीश्वर की महिमा वर्णन करते हैं।

१६४६. तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे॥२॥

**पदार्थ** :–हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर! (**तव**) आपके (**पौंस्यम्**) बल को, और (**श्रवः**) यश को (**द्यौः**) द्युलोक और (**पृथिवी**) भूलोक (**वर्धति**) बढ़ाते हैं, गाते हैं, (**त्वाम्**) आपको (**आपः**) नदियां (**पर्वतासः च**) और पर्वत (**हिन्विरे**) कीर्तिमान से बढ़ाते हैं॥२॥

**भावार्थ** :–सूर्य, बादल, बिजली, वायु, पृथिवी, नदियां, पहाड़, समुद्र, लताएं, ऋतुएं, तारावलि, मनुष्य, पशु, पक्षी सभी परमेश्वर की ही महिमा को गा रहे हैं, और गाते–गाते थकते नहीं॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

१६४७. त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम्॥३॥

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! हे परम सम्राट् जगदीश! **( त्वाम् )** आप महाबली की **( विष्णुः )** किरणों से व्याप्त सूर्य **( बृहन् क्षयः )** विस्तीर्ण अन्तरिक्षरूप घर, **( मित्रः )** वायु और **( वरुणः )** अग्नि **( गृणाति )** स्तुति कर रहे हैं। **( मारुतं शर्धः )** मानसून पवनों की सेना भी **( त्वाम् अनु )** आपकी ही अनुकूलता होने पर **( मदति )** हर्ष को प्राप्त करती है॥३॥

**भावार्थ** :—संसार में जो कोई भी पदार्थ अपना-अपना कार्य करते हैं वे सभी परमेश्वर से ही शक्ति पाते हैं॥३॥

( १२ )

**ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ११ क्रमांक पर) परमात्मा और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ परमात्मा, राजा और योगिराज को सम्बोधन है।

**१६४८. नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।**
**अमैरमित्रमर्दय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **( देव )** दान आदि गुणों से युक्त **( अग्ने )** अग्रनायक परमात्मन्, राजन् वा योगिराज! **( ते ओजसे )** तुम्हारे बल और प्रताप के लिए **( कृष्टयः )** मनुष्य **( नमः गृणन्ति )** नमस्कार करते हैं अर्थात् तुम्हारे बल और प्रताप की प्रशंसा करते हैं। तुम **( अमैः )** अपने बलों से **( अमित्रम् )** योग-मार्ग वा जीवन-मार्ग में आते हुए शत्रु को **( अर्दय )** पीड़ित कर डालो॥१॥

**भावार्थ** :—पग-पग पर हमारे निर्धारित लक्ष्य में जो विघ्न आते हैं वे परमेश्वर की प्रेरणा से, राजा की सहायता से और योग-प्रशिक्षक के योग्य प्रशिक्षण से सरलतापूर्वक दूर किये जा सकें हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः उन्हीं से प्रार्थना की गयी है।

**१६४९. कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्।**
**उरुकृदुरु णस्कृधि॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक परमात्मन्, राजन् वा योगिराज! आप (**नः**) हमारे (**गविष्टये**) विवेकख्याति के प्रकाशों की प्राप्ति के लिए अथवा विविध विद्याओं में गवेषणा के लिए (**कुवित्**) बहुत (**रयिम्**) आध्यात्मिक ऐश्वर्य वा भौतिक धन (**सु संवेषिषः**) भलीभांति प्राप्त कराओ। (**उरुकृत्**) बहुत देने वाले आप (**नः**) हमारे लिए (**उरु**) बहुत (**कृधि**) दो॥२॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से और योग-प्रशिक्षक के योग्य मार्गदर्शन से योगाभ्यासी शिष्य आध्यात्मिक धन प्राप्त करके मोक्ष के अधिकारी होवें। और राजा विविध विज्ञानों में अनुसन्धान के इच्छुकों को धन प्राप्त करा कर राष्ट्र में विद्यासूर्य के उदय में सहायक हो॥२॥

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं से प्रार्थना है।

**१६५०. मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा।**
**संवर्गं सं रयिं जय॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक परमात्मन्, राजन् वा योगिराज! (**महाधने**) जीवन-संग्राम में आप (**नः**) हमें (**मा परावर्ग्**) बीच में ही मत छोड़ दीजिए, (**भारभृत् यथा**) जैसे जिसने रक्षा का भार लिया हुआ है वह रक्षणीय को बीच में ही नहीं छोड़ देता, अथवा जैसे बोझ को दूसरे स्थान पर पहुंचाने के लिए नियुक्त किया हुआ मनुष्य भार को बीच में ही नहीं छोड़ देता। साथ ही आप (**संवर्गम्**) जिससे पाप-ताप आदि कटते हैं ऐसे (**रयिम्**) आध्यात्मिक धन को, (**संवर्गम्**) जिससे दीन जनों के दुःख कटते हैं ऐसे (**रयिम्**) भौतिक धन को (**संजय**) प्राप्त कराइये॥३॥

**भावार्थ** :—जो परमात्मा वा योगिराज की शरण में जाते हैं उन्हें वह बीच में ही न छोड़कर देवासुरसंग्राम में विजय करता है। वैसे ही राजा को भी चाहिए कि प्रजाजनों द्वारा प्रारम्भ किये गये महान् कार्यों में उन्हें बीच में ही न छोड़कर धन आदि से उनकी सहायता करके उन्हें सफलता तक पहुंचाये॥३॥

## (१३)

**ऋषिः—वत्सः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १३७ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ राजा के दृष्टान्त से परमात्मा का विषय वर्णित है।

**१६५१. समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।**
**समुद्रायेव सिन्धवः॥१॥**

**पदार्थ** :—जैसे ( **अस्य** ) इस इन्द्र राजा के ( **मन्यवे** ) क्रोध के सम्मुख ( **विश्वाः** ) सब ( **कृष्टयः** ) विनाशक ( **विशः** ) शत्रु सेनाएं ( **संनमन्त** ) झुक जाती हैं, वैसे ही ( **अस्य** ) इस इन्द्र परमात्मा के ( **मन्यवे** ) तेज के सम्मुख ( **विश्वाः** ) सब ( **कृष्टयः** ) योगाभ्यासरूप कृषि करने वाली ( **विशः** ) प्रजाएं ( **सं नमन्त** ) नम्र हो जाती हैं, ( **समुद्राय इव** ) जैसे समुद्र को प्राप्त करने के लिए ( **सिन्धवः** ) नदियां ( **सं नमन्त** ) नम्र अर्थात् नीचे की ओर बहने वाली हो जाती हैं।।।१।।

यहाँ उपमा और श्लेष अलंकार है।।१।।

**भावार्थ** :—जगदीश्वर का प्रताप, प्रभाव और महत्त्व सबसे महान् है जिसके समुख सभी नतमस्तक होते हैं।।१।।

अगले मन्त्र में राजा वा सेनापति के दृष्टान्त से परमात्मा के वीर कर्म का वर्णन है।

**१६५२. वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना।**
**वज्रेण शतपर्वणा॥२॥**

**पदार्थ** :—जैसे ( **वृष्णिना** ) गोली बरसाने वाली बन्दूक से अथवा ( **शतपर्वणा** ) सौ कीलों वाली ( **वज्रेण** ) गदा से, इन्द्र अर्थात् शूरवीर राजा वा सेनापति ( **दोधतः** ) सज्जनों को कँपाने वाले ( **वृत्रस्य** ) दुष्ट शत्रु का ( **शिरः** ) सिर ( **वि बिभेद** ) तोड़ देता है, वैसे ही ( **वृष्णिना** ) सुखवर्षक, ( **शतपर्वणा** ) बहुतों का पालन करने वाले ( **वज्रेण** ) दण्डसामर्थ्य से इन्द्र अर्थात् वीर परमेश्वर ( **दोधतः** ) कँपाने वाले ( **वृत्रस्य** ) पाप के ( **शिरः** ) सिर को अर्थात् प्रभाव को ( **वि बिभेद चित्** ) नष्ट-भ्रष्ट कर देता है।।२।।

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना से सब विघ्न और सब

पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे राजा या सेनापति के शस्त्रास्त्रों से सब शत्रु॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में १८२ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में पहले व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ पुनः व्याख्या करते हैं।

**१६५३. ओजस्तदस्य तित्विषे उभे यत्समवर्त्तयत्।**
**इन्द्रश्चर्मेव रोदसी॥३॥**

**पदार्थ** :—(यत्) जो (इन्द्रः) परमेश्वर ने (चर्म इव) सन्ध्या-वन्दन के लिए जैसे मृगचर्म कोई फैलाता है वैसे ही (उभे रोदसी) दोनों द्यावापृथिवी के समान अपरा और परा नामक दोनों विद्याओं को (समवर्त्तयत्) फैलाया है, (तत्) वह (अस्य) इस परमेश्वर का (ओजः) ज्ञान-बल (तित्विषे) प्रदीप्त हो रहा है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—यह जगदीश्वर की महान् कृपा है कि वह सत्पात्र ऋषियों के हृदय में पराविद्या और अपरा विद्या के ज्ञान को द्यावापृथिवी के समान फैलता है॥३॥

(१४)

**ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१ एकपदापङ्क्तिः; २-३ गायत्री॥ स्वरः—१ पञ्चमः; २-३ षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की शक्ति वा वेदवाणी का वर्णन है।

**१६५४. सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी॥१॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश्वर! आपकी शक्ति वा वेदवाणी (सुमन्मा) शुभ ज्ञान देने वाली, (वस्वी) निवासप्रद, (रन्ती) रमणीय, और (सूनरी) उत्तम नेतृत्व करने वाली है॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की शक्ति का ध्यान करने से और उसकी वेदवाणी का अध्ययन करने तथा श्रवण करने से मनुष्य ज्ञानवान् अपने आत्मा में सद्गुणों का निवास कराने वाले, श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले और सुखी होते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा को बुला रहे हैं।

१६५५. सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि।
ताविमा उप सर्पतः॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**सरूप**) विविध रूपों से युक्त, (**वृषन्**) सुखों की वर्षा करने वाले इन्द्र जगदीश्वर! आप (**इमौ**) इन (**भद्रौ**) कल्याणकारी, (**धुर्यौ**) देह के धुरे को वहन करने वाले आत्मा और मन के (**अभि**) प्रति (**आगहि**) आओ। (**तौ इमौ**) ये वे दोनों आत्मा और मन, (**उपसर्पतः**) आपके समीप पहुंच रहे हैं।।२।।

**भावार्थ** :—जगदुत्पादकत्व, जगद्धारकत्व, जगत्संहारकत्व, न्यायकारित्व, दयालुत्व, निराकारत्व, अजरत्व, अमरत्व, अभयत्व, पवित्रत्व आदि परमात्मा के अनेक रूप हैं, इसीलिए उसे 'सरूप' सम्बोधन किया गया है। स्तोता के आत्मा और मन जब स्वयं परमात्मा को पाने का यत्न करते हैं तब वहीं छिपा बैठा वह उनके लिए प्रकट हो जाता है।।२।।

अब परमात्मा की व्यापकता का वर्णन करते हैं।

१६५६. नीव शीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन्॥३॥

**पदार्थ** :—इन्द्र जगदीश्वर (**दशभिः**) दस (**शृङ्गेभिः**) सींगों से अर्थात् पृथिवी, अप्, तेजस्, वायु, आकाश इन पंच स्थूल भूतों तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द इन पांच सूक्ष्म भूतों से (**दिशन्**) जगत्प्रपंच का सर्जन करता हुआ (**आपस्य**) व्याप्त ब्रह्माण्ड के (**मध्ये**) अन्दर (**तिष्ठति**) विद्यमान है। हे मनुष्यो! तुम उसकी सत्ता में विश्वास करके (**शीर्षाणि**) अपने मस्तिष्कों को (**निमृढ्वम् इव**) मांज लो।।३।।

**भावार्थ** :—चर्मचक्षुओं से जगत् के संचालनकर्ता किसी को न देखते हुए जो लोग परमेश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते वे व्यर्थ ही भ्रम में पड़े हुए हैं। जो श्रद्धा का दीप प्रज्वलित कर लेते हैं वे कण-कण में परमेश्वर को देखते हैं।।३।।

**इति सप्तदशोऽध्यायः, अष्टमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# अथाष्टादशोऽध्यायः

## अष्टमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

(१)

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १२३ क्रमांक पर भक्तिरस के विषय में की जा चुकी है। यहाँ ज्ञानरस का विषय है।

**१६५७. पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय।**
**सोमं वीराय शूराय॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोतारः**) ज्ञानरस को अभिषुत करने वाले मनुष्यो! तुम (**मद्याय**) आनन्दित किये जाने योग्य, (**वीराय**) काम-क्रोध आदि षड् रिपुओं को विशेष रूप से प्रकम्पित करने वाले, (**शूराय**) शूरवीर जीवात्मा के लिए (**पन्यम् पन्यम् इत्**) प्रशंसनीय-प्रशंसनीय ही (**सोमम्**) अध्यात्म ज्ञान-रस को (**आधावत**) पहुंचाओ॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि वे प्रशंसा-योग्य ही भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान का आत्मा में संचय करें, जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस के मार्ग को भली भांति पार कर सकें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा द्वारा जोड़े गये दोनों हरियों के कार्य का वर्णन किया गया है।

**१६५८. एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम्।**
**इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**ब्रह्मयुजा**) परमात्मा द्वारा शरीर में जोड़े गए, (**शग्मा**) सुखदायक वा शक्तिशाली (**हरी**) ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप वा प्राण-अपान रूप दो घोड़े (**सखायम्**) अपने सखा, (**गिर्वणसम्**) प्रशस्त वाणियों से सेवित (**इन्द्रम्**) जीवात्मा को (**इह**) इस देह-रथ में (**गीर्भिः**) वाणियों के साथ (**आवक्षतः**) वहन करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की ही यह महिमा है कि उसके द्वारा जोड़े गये ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय रूप अथवा प्राण-अपान रूप घोड़े देह-रथ को निर्विघ्न चलाते हैं, जिससे उसमें बैठा हुआ जीव जीवन-यात्रा को करता हुआ योगाभ्यास द्वारा मोक्ष-पद का अधिकारी हो जाता है॥२॥

अब जगदीश्वर का आह्वान करते हैं।

**१६५९. पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्।**
**नि यमते शतमूतिः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**वृत्रहा**) विघ्नों को दूर करने वाला, (**सुतम्**) अभिषुत किये हुए श्रद्धा-भक्ति के रस को (**पाता**) पीने वाला इन्द्र जगदीश्वर (**घ**) निश्चय ही (**आ गमत्**) हमारे पास आये। (**अस्मत् आरे**) हम से दूर (**न**) न रहे। (**शतमूतिः**) अनन्त रक्षाओं वाला वह (**नियमते**) हमें नियन्त्रणपूर्वक चलाये॥३॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर को अपने समीप अनुभव करके स्तोता जीव नियमपूर्वक ही जीवन बिताता है॥३॥

(२)

**ऋषिः—श्रुतकक्षः सुकक्षो वा॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में 197 क्रमांक पर परमात्मा के विषय में हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१६६०. आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।**
**न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जीवात्मन्! (**इन्दवः**) आचार्य से प्राप्त ज्ञान-रस और परमात्मा से प्राप्त आनन्द-रस (**त्वा**) तुझ में (**आ विशन्तु**) प्रवेश करें, (**समुद्रम् इव**) समुद्र में जैसे (**सिन्धवः**) नदियां प्रवेश करती हैं। देह में कोई भी मन, प्राण आदि (**त्वाम्**) तुझ जीवात्मा से (**न अतिरिच्यते**) महत्ता में अधिक नहीं है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा शरीर का सम्राट् है। मन, बुद्धि, प्राण, मस्तिष्क, हृदय आदि सब उसी के अनुशासन में हैं। वह यदि जागरूक है तो सारे अभ्युदय या निःश्रेयस को वह प्राप्त कर सकता है॥१॥

अब जीवात्मा को उद्बोधन देते हैं।

**१६६१. विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे।**
**य इन्द्र जठरेषु ते॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**वृषन्**) बलवान् (**जागृवे**) जागरूक (**इन्द्र**) जीवात्मन्! तू (**महिना**) अपनी महिमा से (**सोमस्य**) ज्ञान-रस और आनन्द-रस के (**भक्षम्**) भाग को (**विव्यक्थ**) विस्तारित कर, (**यः**) जो भाग (**ते**) तेरे (**जठरेषु**) अन्दर है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य जिस भी ज्ञान व आनन्द को संचित करता है उसका विस्तार उसे निरन्तर करते रहना चाहिए॥२॥

आगे फिर जीवात्मा को ही कहा गया है।

**१६६२. अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन्।**
**अरं धामभ्य इन्दवः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**वृत्रहन्**) विघ्नविनाशक (**इन्द्र**) जीवात्मन्! (**सोमः**) ज्ञान-रस और आनन्द-रस (**ते कुक्षये**) तेरे पेट के लिए अर्थात् तेरे अपने लिए (**अरम्**) पर्याप्त (**भवतु**) होवे। और (**इन्दवः**) सराबोर करने वाले ज्ञान-रस और आनन्द-रस (**धामभ्यः**) अन्य धामों के लिए भी (**अरम्**) पर्याप्त होवे॥३॥

**भावार्थ** :—स्वयं गुरुजनों से ज्ञान लेकर और जगदीश्वर की उपासना से आनन्द पाकर उस ज्ञान तथा उस आनन्द का प्रसार जन-जन में, घर-घर में और प्रत्येक समाज में करना चाहिए॥३॥

( ३ )

**ऋषिः—शुनःशेप आजीगर्तिः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १५ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की गयी थी। यहाँ भी वही विषय कहा जा रहा है।

**१६६३. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।**
**स्तोमं रुद्राय दृशीकम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**जराबोध**) स्तुतिविज्ञ मानव! तू (**विशे विशे**) प्रत्येक मनुष्य के हितार्थ (**यज्ञियाय**) पूजनीय (**रुद्राय**) दुःखहर्ता परमात्मा के लिए (**तत्**) उस उज्ज्वल (**दृशीकम्**) रमणीय (**स्तोमम्**) स्तोत्र को, गुण-गान को (**विविड्ढि**) कर॥१॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि जगदीश्वर का गुणगान करके यथाशक्ति उसके गुणों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयत्न करें॥१॥

अब परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हुए उससे प्रार्थना करते हैं।

**१६६४. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।**
**धिये वाजाय हिन्वतु॥२॥**

**पदार्थ** :—(**सः**) वह प्रसिद्ध, (**महान्**) गुणों में महान्, (**अनिमानः**) देश और काल से असीमित, (**धूमकेतुः**) फहराती हुई ओ३म् की ध्वजा वाला, (**पुरुश्चन्द्रः**) बहुत आह्लाददायक अग्रनायक परमेश्वर (**नः**) हमें (**धिये**) ज्ञान और कर्म के लिए तथा (**वाजाय**) बल के लिए (**हिन्वतु**) प्रेरित करे॥२॥

**भावार्थ** :—सच्ची परमात्मा की स्तुति वही है, जिससे मनुष्य ज्ञान कमाने, बल संचित करने तथा पुरुषार्थ करने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है॥२॥

अब कैसा परमेश्वर क्या करे यह कहते हैं।

**१६६५. स रेवाँइव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः।**
**उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**रेवान् इव**) महाधनाढ्य के समान (**विश्पतिः**)

प्रजाओं का पालनकर्ता, ( दैव्यः ) विद्वानों का हितकर्ता, ( केतुः ) ज्ञान देने वाला, ( बृहद्भानुः ) महान् तेज वाला ( सः ) वह प्रसिद्ध ( अग्निः ) जगत् का नेता परमेश्वर ( उक्थैः ) स्तोत्रों के द्वारा ( नः ) हमें अर्थात् हमारे प्रार्थना वचनों को ( शृणोतु ) सुने, पूर्ण करे॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे कोई प्रशस्त धन वाला मनुष्य प्रजाओं का पालन करता हुआ, विद्वानों को सम्मान देता हुआ, ज्ञान और तेजस्विता का प्रसार करता हुआ, याचकों के वचनों को सुनता हुआ सब का हित करता है, वैसे ही जगदीश्वर भी करता है। परन्तु इतनी विशेषता है कि परमेश्वर का वैसा करने में कोई स्वार्थ नहीं होता॥३॥

## ( ४ )

**ऋषिः—शंयुर्बार्हस्पत्यः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ११५ क्रमांक पर परमात्मा के गान के विषय में की जा चुकी है। यहाँ भी वही विषय है।

**१६६६. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।**
**शं यद् गवे न शाकिने॥१॥**

**पदार्थ** :—हे साथी! ( वः ) तू ( सुते ) श्रद्धा-रस के उत्पन्न होने पर ( सचा ) अन्य स्तोताओं के साथ ( पुरुहूताय ) बहुतों से बुलाये गये, ( सत्वने ) बलशाली इन्द्र परमात्मा के लिए ( तत् गाय ) उसी गीत को गा ( यत् ) जो गीत ( शाकिने गवे न ) घास भक्षी बैल के समान ( शाकिने ) शक्तिमान् ( गवे ) तुझ स्तोता के लिए ( शम् ) शान्तिदायक हो॥१॥

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—श्रद्धा से भरे हुए चित्त से जिस स्तुति-गीत का उपहार जगदीश्वर को दिया जाता है वह स्तोता के लिए बहुत कल्याणकारी होता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के दान का वर्णन है।

**१६६७. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः।**
**यत् सीमुपश्रवद्गिरः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**वसुः**) बसाने वाला इन्द्र परमेश्वर (**गोमतः**) अध्यात्म प्रकाश से युक्त (**वाजस्य**) बल के (**दानम्**) दान को (**न घ**) कभी नहीं (**नि यमते**) रोकता है, (**यत् सीम्**) जब कि वह (**गिरः**) श्रद्धा से भरी हुई स्तुति-वाणियों को (**उप श्रवत्**) सुन लेता है॥२॥

**भावार्थ** :—श्रद्धालुओं के श्रद्धा से सिंचे हुए, प्रेम से भरे स्तोत्रों से द्रवित होकर जगदीश्वर नये-नये आध्यात्मिक ऐश्वर्य के उपहार स्तोता को भेंट करता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा तथा राजा का विषय कहा गया है।

**१६६८. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत्।**
**शचीभिरप नो वरत्॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) परमात्मा के पक्ष में जो (**दस्युहा**) विघ्नों का विनाशक इन्द्र जगदीश्वर (**कुवित्सस्य**) बहुत दान देने वाले को (**गोमन्तं व्रजम्**) उत्कृष्ट धेनुओं से युक्त गोशाला वा अध्यात्म प्रकाश का समूह (**प्र गमत्**) प्राप्त कराता है, वह (**शचीभिः**) अपने कर्मों से (**नः**) हमारे लिए भी (**अप वरत्**) गाय आदि धनों वा अध्यात्म प्रकाशों का द्वार खोल दे।

(**द्वितीय**) राजा के पक्ष में। (**दस्युहा**) दुष्टों का वधकर्त्ता इन्द्र राजा (**कुवित्सस्य**) गोघातक की (**गोमन्तं व्रजम्**) धेनुओं से युक्त गोशाला में (**प्र गमत् हि**) पहुँचे और (**शचीभिः**) अपनी सेनाओं से, उसकी गौओं को (**नः**) हम धार्मिकों के लिए (**अप वरत्**) छीन लाये॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा दानियों का ही सहायक होता है। दुष्ट गोहत्यारों को यही दण्ड है कि उनकी गौएं छीनकर सज्जनों को भेंट कर दी जाएं॥३॥

( ५ )

ऋषि:—मेधातिथि:॥ देवता—विष्णु:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २२२ क्रमांक पर परमेश्वर और सूर्य के विषय में की जा चुकी है।

**१६६९. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।**
**समूढमस्य पांसुले॥१॥**

**पदार्थ** :—( **विष्णु:** ) सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ( **इदम्** ) इस ब्रह्माण्ड वा मानव-शरीर में ( **विचक्रमे** ) व्याप्त है। उसने ( **त्रेधा** ) तीन स्थानों में अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ में तथा शरीर के प्राण, मन और आत्मा में ( **पदम्** ) पग ( **निदधे** ) रखा हुआ है। तो भी ( **अस्य** ) इस परमेश्वर का वह पग ( **पांसुले** ) धूलि के ढेर में ( **समूढम्** ) छिपे हुए के समान है, अर्थात् चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता है॥१॥

यहाँ लुप्तोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—यहाँ निराकार भी परमेश्वर में पग रखने का वर्णन गौण है। अभिप्राय यह है कि जैसे कोई देहधारी कदम भर कर भूमि के किसी प्रदेश को अपने अधीन कर लेता है वैसे ही जगदीश्वर ने सारे ब्रह्माण्ड को और सारे मानवदेह को अपने अधीन किया हुआ है॥१॥

आगे फिर परमेश्वर का विषय वर्णित करते हैं।

**१६७०. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य:।**
**अतो धर्माणि धारयन्॥२॥**

**पदार्थ** :—( **गोपा:** ) रक्षक, ( **अदाभ्य:** ) किसी से भी हिंसित, पराजित या अपमानित नहीं किया जा सकने वाला, ( **विष्णु:** ) सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ( **त्रीणि पदा** ) प्रकृति, जगत्प्रपंच और जीवात्माएं इन तीनों में ( **विचक्रमे** ) व्याप्त है। ( **अत:** ) इसी कारण से, वह ( **धर्माणि** ) सब पदार्थों में उनके गुण-कर्म-स्वभाव की ( **धारयन्** ) व्यवस्था कर रहा है॥२॥

**भावार्थ** :—जो परमात्मा ब्रह्माण्ड के सब पदार्थों में व्याप्त है वही उनको धारण करने वाला भी है।।२।।

अगले मन्त्र में परमेश्वर के महत्त्व का वर्णन है।

**१६७१. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।**
**इन्द्रस्य युज्यः सखा॥३॥**

**पदार्थ** :–( **विष्णोः** ) सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर के ( **कर्माणि** ) जगत्प्रपंच की उत्पत्ति करना, व्यवस्था करना आदि कर्मों को ( **पश्यत** ) देखो, ( **यतः** ) क्योंकि उसने उन्हें करने के लिए ( **व्रतानि** ) व्रत ( **पस्पशे** ) ग्रहण किये हुए हैं। वह जगत्पति ( **इन्द्रस्य** ) जीवात्मा का ( **युज्यः** ) साथ रहने वाला ( **सखा** ) मित्र है।।३।।

**भावार्थ** :–जैसे व्रती जगदीश्वर इस जगत् में महान् कर्मों को कर रहा है, वैसे ही उसका सखा जीव भी उससे बल पाकर बहुत से कार्य करने में समर्थ होता है।।३।।

अगले मन्त्र में परमात्मा के परमपद के साक्षात्कार का विषय है।

**१६७२. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।**
**दिवीव चक्षुराततम्॥४॥**

**पदार्थ** :–( **विष्णोः** ) सर्वव्यापक जगदीश्वर के ( **तत्** ) उस प्रसिद्ध, ( **परमम्** ) अति उत्कृष्ट ( **पदम्** ) प्राप्त करने योग्य स्वरूप को ( **सूरयः** ) विद्वान् उपासक लोग ( **सदा** ) हमेशा ( **पश्यन्ति** ) वैसे ही स्पष्ट रूप में देखते हैं ( **दिवि इव** ) जैसे सूर्य के प्रकाश में ( **आततम्** ) फैली हुई वस्तु को ( **चक्षुः** ) आँख देखती है।।४।।

यहाँ उपमालंकार है।।४।।

**भावार्थ** :—भले ही स्थूल दृष्टि वाले लोगों को परमात्मा न दिखायी दे, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि वाले विद्वान् स्तोता जन तो उसका वैसे ही साक्षात्कार करते हैं जैसे सूर्य के प्रकाश में

कोई मनुष्य किसी विशाल मूर्त पदार्थ को देखता है॥४॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

१६७३. तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम्॥५॥

**पदार्थ** :–( **विपन्यवः** ) विविध रूप में जगदीश्वर के गुणों को स्तुति करने वाले, ( **जागृवांसः** ) जागरूक ( **विप्रासः** ) विप्रजन ( **यत्** ) जो **विष्णोः** सर्वव्यापक परमेश्वर का ( **परमम्** ) सर्वोत्कृष्ट ( **पदम्** ) प्राप्तव्य स्वरूप है ( **तत्** ) उसे ( **समिन्धते** ) अपने अन्तरात्मा में भलीभांति प्रकाशित कर लेते हैं॥५॥

**भावार्थ** :–जो मनुष्य अविद्या, आलस्य, अधर्माचरण रूप नींद को छोड़कर विद्या, धर्म, योगाभ्यास आदि के आचरण में जागरूक हैं वे ही सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वोत्तम, सर्वव्यापी, सबसे प्राप्त करने योग्य जगदीश्वर को पाने में समर्थ होते हैं॥५॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का शरीर में व्याप्त होना वर्णित है।

१६७४. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्या अधि सानवि॥६॥

**पदार्थ** :–( **यतः** ) क्योंकि ( **विष्णुः** ) व्यापक जगदीश्वर ( **पृथिव्याः** ) पार्थिव शरीर के ( **सानवि अधि** ) उच्च प्रदेश मस्तिष्क में ( **विचक्रमे** ) व्याप्त है, ( **अतः** ) इसी कारण ( **देवाः** ) विद्वान्, जन, उसकी कृपा से मस्तिष्क द्वारा ज्ञान पाकर ( **नः** ) हमारी ( **अवन्तु** ) रक्षा करें॥६॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर ही शरीर के मस्तिष्क आदि अंगों में स्थित हुआ उनके द्वारा सब ज्ञान-ग्रहण आदि करवाता है॥६॥

( ६ )

**ऋषिः–वसिष्ठः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः–१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २८४ क्रमांक पर परमात्मा और

राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ मनुष्य अपने मन को सम्बोधन कर रहा है।

**१६७५. मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन्।**
**आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! हे मेरे मन! (**वाधतः च न**) आकर्षक भी पदार्थ (**त्वा**) तुझे (**अस्मत् आरे**) हम से दूर (**मा उ सु**) न (**नि रीरमन्**) क्रीडा करायें। (**आरात्तात्**) सुदूर देश से भी (**नः**) हमारे (**सधमादम्**) उपासना-यज्ञ में (**आ गहि**) आ जा, (**इह वा सन्**) और यहीं रहता हुआ (**उप श्रुधि**) हमारे आदेश को सुन॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का मन दूर से दूर दौड़ता रहता है और अनेक संकल्प-विकल्प करता रहता है। उसकी यह चेष्टा परमात्मा के ध्यान में बाधक होती है। अतः साधक दूर गये हुए अपने मन को यहाँ वापस लौटा रहा है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की उपासना का विषय है।

**१६७६. इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते। इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे जगदीश्वर! (**इमे हि**) ये (**ते**) तेरे लिए (**ब्रह्मकृतः**) स्तोत्र-पाठ करने वाले उपासक (**सुते**) उपासना-यज्ञ में (**सचा**) एक साथ मिलकर (**आसते**) बैठे हुए हैं, (**मधौ न**) शहद के छत्ते पर जैसे (**मक्षः**) मधु-मक्खियां (**सचा**) मिलकर (**आसते**) बैठी होती हैं। (**वसूयवः**) अध्यात्म धन के इच्छुक (**जरितारः**) स्तोता गण (**इन्द्रे**) परमैश्वर्यशाली तुझ जगदीश्वर में (**कामम्**) अपनी अभिलाषा को (**आदधुः**) रखे हुए हैं, संजोये हुए हैं, (**वसूयवः**) भौतिक धन के इच्छुक लोग (**रथे न**) जैसे रथ में (**पादम्**) अपना पैर रखते हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—मधु बनाने वाली मधुमक्खियां जैसे मधु के छत्ते पर बैठती हैं, वैसे ही उपासना करने वाले लोग उपासनागृह में बैठते हैं। और जैसे भौतिक धन-धान्य आदि अन्य स्थान से लाने के इच्छुक लोग रथ में अपना पैर रखते हैं, वैसे ही सत्य, अहिंसा, योगैश्वर्य आदि के अभिलाषी लोग परमात्मा में अपनी कामना को रख देते हैं।।२।।

( ७ )

**ऋषिः—आयुः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा की स्तुति के लिए प्रेरणा की गयी है।

**१६७७. अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।**
**पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत॥१॥**

**पदार्थ** :—( **पूर्व्यम्** ) सनातन ( **मन्म** ) वेद-स्तोत्र, मेरे द्वारा ( **अस्तावि** ) प्रस्तुत किया जा रहा है। हे साथियो! तुम भी ( **इन्द्राय** ) जगदीश्वर के लिए ( **ब्रह्म** ) स्तोत्र ( **वोचत** ) पाठ करो। ( **ऋतस्य** ) सत्यमय वेद की ( **पूर्वीः** ) श्रेष्ठ ( **बृहतीः** ) बृहती छन्द वाली ये ऋचाएं ( **अनूषत** ) जगदीश्वर की स्तुति कर रही हैं। ( **स्तोतुः** ) स्तोता की ( **मेधाः** ) धारणावती बुद्धियां ( **असृक्षत** ) उत्पन्न हो रही हैं।।१।।

**भावार्थ** :—सामगान द्वारा परमेश्वर की स्तुति करने से स्तोताओं की ऋतम्भरा प्रज्ञाएं उत्पन्न हो जाती हैं।।१।।

अब परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन करते हैं।

**१६७८. समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्।**
**सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रम-**
**मन्दिषुः॥२॥**

**पदार्थ** :–( **इन्द्रः** ) जगदीश्वर ( **बृहतीः** ) विस्तीर्ण ( **रायः** ) सम्पदाओं को ( **सम् अधूनुत** ) भलीभाँति प्रेरित करता है, ( **क्षोणी** ) द्युलोक और भूलोक को ( **सम्** ) भलीभांति प्रेरित करता है, ( **उ** ) और ( **सूर्यम्** ) सूर्य को ( **सम्** ) भली-भांति प्रेरित करता है। ( **शुक्रासः** ) तेजस्वी, ( **शुचयः** ) पवित्र आचरण वाले लोग ( **इन्द्रम्** ) जगदीश्वर को ( **सम् अमन्दिषुः** ) भलीभांति आनन्दित करते हैं, और ( **गवाशिरः** ) तेजों से परिपक्व ( **सोमाः** ) श्रद्धारस ( **इन्द्रम्** ) जगदीश्वर को ( **सम् अमन्दिषुः** ) भलीभाँति आनन्दित करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :–जगदीश्वर ने ही सब सम्पदाएं हमें प्रदान की हैं और वही सूर्य, पवन, द्यावापृथिवी आदि की व्यवस्था को संचालित कर रहा है। अतः सबको चाहिए कि पवित्र अन्तःकरण वाले होकर श्रद्धा से उसकी उपासना करें॥२॥

**( ८ )**

**ऋषिः–अम्बरीष ऋजिश्वा च॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–अनुष्टुप्॥ स्वरः–गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या उत्तरार्चिक में १३३१ क्रमांक पर गुरु-शिष्य विषय में हो चुकी है यहाँ परमात्मा की भक्ति का विषय वर्णित है।

**१६७९. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।**
**नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे॥१॥**

**पदार्थ** :–हे ( **सोम** ) मेरे भक्तिरस! तू ( **वृत्रघ्ने** ) पाप-विनाशक, ( **दक्षिणावते** ) दानी, ( **वीराय** ) काम आदि षड् रिपुओं को विशेष रूप से कंपायमान करने वाले, ( **सदनासदे** ) हृदय-सदन में स्थित ( **नरे च** ) और नेतृत्व करने वाले ( **इन्द्राय** ) जगदीश्वर के ( **पातवे** ) पान करने के लिए ( **परिषिच्यसे** ) प्रवाहित किया जा रहा है॥१॥

**भावार्थ** :–परमात्मा के भक्त लोग पाप-कर्मों का परित्याग करके, प्रचुर ऐश्वर्य प्राप्त करके सब आन्तरिक और बाह्य विघ्नों को नष्ट करने में समर्थ हो जाते हैं॥१॥

आगे फिर वही विषय है।

१ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१६८०. तं सखाय: पुरूरुचं वयं यूयं च सूरय:।**
३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**सखाय:**) साथियो! (**वयं यूयं च सूरय:**) हम और तुम मेधावी उपासक (**तम्**) उस प्रसिद्ध, (**पुरूरुचम्**) बहुत तेजस्वी, (**वाजगन्ध्यम्**) आत्मबल को ग्रहण कराने वाले रसागार सोम प्रभु को (**अश्याम**) प्राप्त कर लें, (**वाजपस्त्यम्**) विज्ञान की प्राप्ति कराने वाले शुभगुणकर्मप्रेरक सोम जगदीश्वर को (**सनेम**) भज लें॥२॥

**भावार्थ** :—सब साथी मिलकर श्रद्धा से तरंगित होते हुए यदि परमात्मा की उपासना करते हैं तो तेज, बल, विज्ञान आदि की प्राप्ति निरन्तर होती रहती है॥२॥

तृतीय ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ५५२ क्रमांक पर जीवात्मा की शुद्धि के विषय में और उत्तरार्चिक में १३२९ क्रमांक पर गुरु-शिष्य के विषय में हो चुकी है। यहाँ मन की शुद्धि का विषय कहते हैं।

२ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २ ३ १ २
**१६८१. परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण।**
२ ३२उ ३ २उ ३ १ २ ३ १ २र
**यो देवान्विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति॥३॥**

**पदार्थ** :—योगाभ्यासी लोग (**त्यम्**) उस (**हर्यतम्**) चाहने योग्य, (**बभ्रुम्**) इन्द्रियों को विषय ग्रहण में सहायता देने वाले, (**हरिम्**) ज्ञान के ग्रहण में साधनभूत मन को (**वारेण**) अशुद्धि-निवारक योगानुष्ठान से (**परि पुनन्ति**) पवित्र करते हैं, (**य:**) जो मन (**मदेन सह**) उत्साह के साथ (**विश्वान् देवान् इत्**) सभी इन्द्रियों में (**परि गच्छति**) उन-उनके विषय को ग्रहण कराने के लिए परिव्याप्त होता है, [क्योंकि मन का व्यापार न हो तो इन्द्रियां विषय को ग्रहण नहीं कर सकतीं]॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों का मन यदि दूषित हो तो वह इन्द्रियों को कुमार्ग पर ही ले जाता है। इसीलिए अध्यात्म जीवन के लिए और परमात्मा के दर्शन के लिए उसका शोधन अत्यन्त आवश्यक है॥३॥

(९)

ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में २८० क्रमांक पर पहले व्याख्या हो चुकी है। यहाँ श्रद्धा का महत्त्व प्रतिपादित किया जा रहा है।

**१६८२. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति। श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥१॥**

**पदार्थ** :–(**त्वावसो**) तुम स्वयं ही जिस स्वयं के धन हो ऐसे (**इन्द्र**) हे जगदीश! (**तम्**) आप में श्रद्धा रखने वाले आपके भक्त को (**कः मर्त्यः**) भला कौन मनुष्य (**आ दधर्षति**) पराजित कर सकता है, अर्थात् कोई नहीं। हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यशालिन्! (**ते**) आप में (**श्रद्धा**) श्रद्धावान् मनुष्य (**हि**) निश्चय ही (**पार्ये दिवि**) पार करने योग्य सम्पूर्ण दिन में (**वाजी**) बल, विज्ञान, अन्न, धन आदि (**सिषासति**) अन्यों को बांटना चाहता है॥१॥

**भावार्थ** :–वही वस्तुतः परमात्मा का श्रद्धालु होता है जो उसकी प्रेरणा से श्रेष्ठ कर्म करे और उसकी कृपा से प्राप्त ऐश्वर्य से दीनों की सहायता करे॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

**१६८३. मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु। तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**हर्यश्व**) परस्पर आकर्षण से युक्त व्याप्त सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों के स्वामी जगदीश्वर! आप (**मघोनः**) धनी मनुष्यों को (**वृत्रहत्येषु**) जिनमें पापों वा पापी दुष्ट शत्रुओं की हत्या की जाती है ऐसे देवासुरसंग्रामों में (**चोदय**) प्रेरित करो, (**ये**) जो धनी मनुष्य (**प्रिया वसु**)

प्रिय धनों को (**ददति**) परोपकार के लिए दान करते हैं। (**तव प्रणीती**) आपके श्रेष्ठ मार्ग दर्शन से, हम (**सूरिभिः**) विद्वान् स्तोताओं सहित (**विश्वा दुरिता**) सब दुःख, दुर्गुण, दुर्व्यसन आदि को (**तरेम**) तर जाएं॥२॥

**भावार्थ** :—व्यक्तियों तथा समाज की उन्नति के लिए धन और दान के साथ पापों का संहार तथा विघ्नों पर विजय भी अपेक्षित होती है॥२॥

## (१०)

ऋषिः—विश्वमना वैयश्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३८५ क्रमांक पर मानव को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ परमेश्वर को सम्बोधन करते हैं।

**१६८४. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः।**
**एवा हि वीर स्तवते सदावृधः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अध्वर्यो**) ब्रह्माण्ड-यज्ञ के संचालक इन्द्र परमात्मन्! आप (**मधोः**) मधुर (**अन्धसः**) आनन्द के (**मदिन्तरम्**) अतिशय तृप्ति देने वाले रस को (**इत्**) निश्चय ही (**आ सिञ्च उ**) उपासक के अन्तरात्मा में सींचो। (**एव हि**) इसी प्रकार (**वीरः**) शूरवीर उपासक (**सदावृधः**) सदा उन्नत होता हुआ (**स्तवते**) प्रशंसा पाता है॥१॥

**भावार्थ** :—ब्रह्मानन्द-रस से पूर्णतः तृप्त हुआ उपासक सदा वृद्धि और उन्नति पाता हुआ सबका प्रशंसापात्र होता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा वर्णन करते हैं।

**१६८५. इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।**
**उदानंश शवसा न भन्दना॥२॥**

**पदार्थ** :—(**हरीणाम्**) एक-दूसरे का आकर्षण करने वाले सूर्य, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र आदि लोकों के और विषयों को ग्रहण करने वाली देह-स्थित इन्द्रियों के (**स्थातः**) अधिष्ठाता,

हे (इन्द्र) जगदीश्वर! (ते) आपकी (पूर्व्यस्तुतिम्) श्रेष्ठ स्तुति को (न किः) न कोई (शवसा) बल से, (न भन्दना) न कल्याण से (उदानंश) लांघ पाता है॥२॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर से अधिक बलवान् और बल-प्रदाता, कल्याणवान् और कल्याणकर्ता संसार भर में कोई नहीं है॥२॥

अब जगदीश्वर को बुलाते हैं।

**१६८६. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।**
**अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे साथियो! (**श्रवस्यवः**) कीर्ति के इच्छुक हम (**वः**) तुम्हारे (**वाजानाम्**) बल, विज्ञान, अन्न, धन आदियों के (**पतिम्**) स्वामी वा पालनकर्ता, और (**अप्रायुभिः**) विना प्रमाद के किये जाने वाले (**यज्ञेभिः**) सृष्टि के उत्पादन, धारण, पालन, न्याय आदि यज्ञों से (**वावृधेन्यम्**) बढ़ी हुई महिमा वाले (**तम्**) उस इन्द्र जगदीश्वर को (**अहूमहि**) बुलाते हैं॥३॥

**भावार्थ** :—सबको चाहिए कि संसार में विद्यमान सब ऐश्वर्यों के स्वामी, सदा परोपकाररूप यज्ञ में संलग्न, महामहिम, राजराजेश्वर जगदीश को पुकारें तथा उसकी स्तुति और उपासना करें॥३॥

(११)

**ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ ऋषभः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १०९ क्रमांक पर व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ परमात्मा की स्तुति का विषय कहते हैं।

**१६८७. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।**
**देवत्रा हव्यमूहिषे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे मानव! तू (**तम्**) उस प्रसिद्ध, (**स्वर्णरम्**) ब्रह्मानन्द वा दिव्य प्रकाश को प्राप्त कराने वाले जगन्नायक

परमात्मा की (**गूर्धय**) अर्चना कर। (**देवासः**) विद्वान्, दिव्य गुणों वाले लोग, उस (**देवम्**) प्रकाशक, (**अरतिम्**) सबके स्वामी जगदीश्वर को (**दधन्विरे**) अपने आत्मा में धारण करते हैं। हे ज्योतिर्मय देव! आप (**देवत्रा**) विद्वान् जनों में (**हव्यम्**) देने योग्य सद्गुण-समूह को (**ऊहिषे**) प्राप्त कराओ।।१।।

**भावार्थ** :—जो मनुष्य श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव वाले परमेश्वर की उपासना करते हैं वे स्वयं भी वैसे हो जाते हैं।।१।।

आगे फिर परमात्मा की स्तुति का विषय है।

**१६८८. विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्। अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोभरे**) भले प्रकार स्तोत्रों का उपहार लाने वाले (**विप्र**) विद्वन्! तू (**विभूतरातिम्**) व्यापक दान वाले, (**चित्रशोचिषम्**) अद्भुत तेज वाले, (**अस्य**) इस (**सोम्यस्य**) ब्रह्मानन्द-रूप सोम के सम्पादक (**मेधस्य**) उपासना-यज्ञ का (**यन्तुरम्**) नियन्त्रण करने वाले, (**पूर्व्यम्**) सनातन (**ईम्**) इस (**अग्निम्**) अग्रनेता जगदीश्वर को (**अध्वराय**) जीवन-यज्ञ की सफलता के लिए (**प्र ईडिष्व**) भली-भाँति स्तुति का पात्र बना।।२।।

**भावार्थ** :—जीवन-यज्ञ की पूर्णता के लिए मनुष्यों को उपासना-यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।।२।।

(१२)

**ऋषिः—सप्तर्षयः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में ५१३ क्रमांक पर) परमात्मा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ जीवात्मा को सम्बोधन करते हैं।

**१६८९. आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया।**
**जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दधिषे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सोम**) ज्ञानरस का आस्वादन करने वाले जीवात्मन्! (**अद्रिभिः**) आदर के योग्य गुरुजनों से (**स्वानः**) प्रेरणा किया जाता हुआ तू (**अव्यया**) भौतिक (**वाराणि**) आच्छादक विघ्न आदि को (**तिरः**) तिरस्कृत कर दे। आगे परोक्ष रूप में कहते हैं—यह (**हरिः**) ज्ञान का आहरण करने वाले जीवात्मा के (**चम्वोः**) मस्तिष्क और हृदय में (**विशत्**) प्रवेश करता है, (**जनः न**) जैसे कोई मनुष्य (**पुरि**) नगरी में प्रविष्ट होता है। आगे फिर प्रत्यक्ष रूप में कहते हैं—हे जीवात्मन्! तू (**वनेषु**) सेवनीय इन्द्रियों और प्राणों में (**सदः**) निवास को (**दधिषे**) धारण करता है॥१॥

**भावार्थ** :—जो यह जीवात्मा देह में प्रविष्ट होकर अणु परिमाण वाला भी होता हुआ अपने सामर्थ्य से अंग-अंग में प्रवेश किये रहता है उसे चाहिए कि जीवन में वा योग-मार्ग में आये हुए सब विघ्नों को दूर करके विजय प्राप्त करे॥१॥

आगे फिर जीवात्मा का विषय है।

**१६९०. स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः। अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**वाजयुः**) अन्न के इच्छुक (**सप्तिः न**) घोड़े के समान (**वाजयुः**) बल और विज्ञान का इच्छुक, (**मीढ्वान्**) अन्यों पर सुख सींचने वाला, (**मेष्यः**) ज्ञान का सेचन करने वाली वेदवाणी के (**अण्वानि**) सूक्ष्म विज्ञान-तत्त्वों को (**तिरः**) प्राप्त करके (**पवमानः**) स्वयं को पवित्र करता हुआ (**सः**) वह (**सोमः**) जीवात्मा (**मनीषिभिः**) मननशील (**ऋक्वभिः**)

वेदज्ञ ( विप्रेभिः ) विद्वानों के द्वारा ( अनुमाद्यः ) हर्षित किये जाने योग्य होता हुआ ( मामृजे ) श्रेष्ठ गुण-कर्मों से अलंकृत किया जाता है॥२॥

यहाँ श्लिष्टोपमा अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि वेद पढ़कर, अपने आत्मा की शक्ति को जान कर, सदाचारी विद्वानों के संग से अपनी उन्नति निरन्तर किया करें॥२॥

( १३ )

**ऋषिः—कलिः प्रागाथः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २७२ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ **जीवात्मा का विषय है।**

**१६९१. वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम्।**
**तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते॥१॥**

**पदार्थ** :—( **वयम्** ) हम कर्मयोगी लोगों ने ( **एनम्** ) इस ( **वज्रिणम्** ) वाणी-रूप वज्र से युक्त अपने अन्तरात्मा को ( **इदा** ) इस काल में, और ( **ह्यः** ) बीते काल में ( **इह** ) इस जीवन-यज्ञ में ( **अपीपेम** ) बढ़ाया है। हे भाई! तू भी ( **तस्मै उ** ) उस अन्तरात्मा के लिए ( **अद्य** ) आज ( **सवने** ) कर्मयोगी-रूप यज्ञ में ( **सुतम्** ) अभिषुत वीर रस को ( **भर** ) अर्पित कर। हे साथियो! तुम सभी ( **नूनम्** ) निश्चय ही ( **श्रुते** ) शास्त्र-ज्ञान में, अपने अन्तरात्मा को ( **आभूषत** ) अलंकृत करो॥१॥

**भावार्थ** :—सब मनुष्यों को चाहिए कि अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर वीरता पूर्ण कर्म करें और विविध विद्याओं के ज्ञान का संचय करें॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा को बुलाया जा रहा है।

**१६९२. वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति।**
**सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया॥२॥**

**पदार्थ** :—(**वारणः**) रोग आदि के निवारक, (**उरामथिः**) फैले हुए अंधेरे को नष्ट करने वाले (**वृकःचित्**) सूर्य के समान (**अस्य**) इन आप जगदीश्वर का (**वारणः**) दुःख आदि का निवारक प्रताप (**वयुनेषु**) आपके कर्मों में (**आ भूषति**) भूषण-रूप है। (**सः**) वह आप, हे (**इन्द्र**) परमात्मन्! (**नः**) हमारे (**इमम्**) इस (**स्तोमम्**) स्तोत्र को (**जुजुषाणः**) सेवन करते हुए (**चित्रया धिया**) अद्भुत प्रज्ञा वा क्रिया के साथ (**प्र आ गहि**) भलीभाँति हमारे पास आओ॥२॥

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है ॥२॥

**भावार्थ** :—जिस जगदीश्वर का प्रताप सूर्य के प्रकाश के समान सर्वत्र फैल रहा है उसकी सबको श्रद्धा के साथ उपासना करनी चाहिए॥२॥

(१४)

**ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में आत्मा और मन का विषय कहा जा रहा है।

**१६९३. इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः।**
**तद्वां चेति प्र वीर्यम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन! (**युवाम्**) तुम दोनों (**वाजेषु**) देवासुरसंग्रामों में (**दिवः**) प्रकाशक परमात्मा की (**रोचना**) ज्योति को (**परिभूषथः**) चारों ओर से प्राप्त करते हो। (**तत्**) वह प्रसिद्ध (**वाम्**) तुम दोनों को पराजित करके परमात्मा की प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुँचे हैं॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य के आत्मा और मन को योग्य है कि आन्तरिक देवासुरसंग्राम में सब आसुरी भावों को पराजित करके

परमात्मा की प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुँचे॥१॥

द्वितीय ऋचा की व्याख्या उत्तरार्चिक में १५७७ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ आत्मा और मन का विषय वर्णित है।

**१६९४. इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः।**
**ऋतस्य पथ्या३ अनु॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन! (**धीतयः**) ज्ञान (**अपसः परि**) कर्मों में ही (**उप प्रयन्ति**) परिसमाप्त हुआ करते हैं। अतः तुम दोनों (**ऋतस्य**) सत्य कर्म के (**पथ्याः**) मार्गों का (**अनु**) अनुसरण करो॥२॥

**भावार्थ** :—कर्महीन अकेले ज्ञान शोभा नहीं पाते॥२॥

तृतीय ऋचा उत्तरार्चिक में १५७८ क्रमांक पर जीवात्मा और परमात्मा के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहाँ आत्मा और मन का विषय कहते हैं।

**१६९५. इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च।**
**युवोरप्तूर्यं हितम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) आत्मा और मन! (**वाम्**) तुम दोनों के (**तविषाणि**) बल (**प्रयांसि**) च और प्रयत्न (**सधस्थानि**) साथ मिलकर होते हैं। (**युवोः**) तुम दोनों का (**अप्तूर्यम्**) कर्मों की शीघ्रता का गुण (**हितम्**) हितकर होता है॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य का आत्मा और मन परस्पर मिलकर ही ज्ञान एकत्र करके, पुरुषार्थ करके बल तथा कर्मों में सिद्धि प्राप्त करते हैं॥३॥

## ( १५ )

**ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में २९७ क्रमांक पर परमात्मा के

विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ प्रश्नोत्तर-शैली से उपास्य-उपासक का विषय वर्णित करते हैं।

**१६९६. क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे। अयं**
**यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः॥१॥**

**पदार्थ :–( सुते )** उपासक के भक्ति-रस के अभिषुत होने पर **( सचा )** एक साथ **( ईम् )** इस भक्ति-रस को **( पिबन्तम् )** पीते हुए इन्द्र परमात्मा को **( कः वेद )** कौन जानता है? **( कत् )** कब, वह उपासक के अन्तरात्मा में **( वयः )** आनन्द-रस को **( दधे )** रख देता है यह भी **( कः वेद )** कौन जानता है? आगे इसका उत्तर दिया गया है–**( अयं यः )** यह जो **( शिप्री )** विस्तीर्ण बल वाला उपासक **( अन्धसः )** आनन्द-रस से **( मन्दानः )** उत्साह प्राप्त करता हुआ **( ओजसा )** आत्म-बल से **( पुर )** आन्तरिक असुरों की किलेबन्दियों को **( विभिनत्ति )** तोड़-फोड़ देता है, वही जानता है॥१॥

**भावार्थ :–**कैसे **परमात्मा** भक्त के भक्तिरस में डूब जाता है और कैसे **उपासक भगवान् के ब्रह्मानन्द-रस** में डूबता है। इस बात को **आत्मसमर्पक** भगवद्-भक्त ही **जानता** है, दूसरा कोई जिसने भक्ति **का प्रसाद** अनुभव नहीं किया इस बात को नहीं जान सकता है॥१॥

आगे जगदीश्वर का वर्णन करते हैं।

**१६९७. दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे। न किष्ट्वा**
**नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा॥२॥**

**पदार्थ :–( वारण )** हाथी **( मृगः )** पशु **( न )** जैसे **( चरथम् )** गण्डस्थलों पर बहने वाला **( दाना )** मदजल को **( दधे )** धारण करता है, वैसे ही **( वारणः )** विपत्तियों का निवारणकर्ता, **( मृगः )** सज्जनों को खोजने वाला इन्द्र जगदीश्वर **( पुरुत्रा )** बहुत अधिक **( चरथम् )** संचार करने वाले **( दाना )** आनन्द-दान को **( दधे )** धारण करता है। हे इन्द्र जगदीश्वर! आप **( सुते )** हमारे भक्तिरस के उमड़ने पर **( आ गमः )** आओ। **( त्वा )** आते हुए आपको **( न किः )** कोई नहीं **( नि यमत् )** रोक सके। **( महान् )** महान् आप **( ओजसा )** प्रताप के साथ **( चरसि )** सर्वत्र व्याप्त हो॥२॥

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे हाथी गण्डस्थलों पर मदजल प्रवाहित करता है, वैसे ही परमेश्वर उपासकों के प्रति आनन्द-रस को बहाता है॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

**१६९८. य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः। यदि**
**स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**यः**) जो इन्द्र जगदीश्वर (**उग्रः सन्**) अधार्मिकों के लिए प्रचण्ड होता हुआ (**अनिष्टृतः**) उनसे अहिंसित रहता है, और (**स्थिरः**) अविचल होता हुआ (**रणाय**) असुरों के साथ युद्ध के लिए (**संस्कृतः**) सज्जित हो जाता है, वह (**मघवा**) ऐश्वर्यवान् (**इन्द्रः**) जगदीश्वर (**यदि**) यदि (**स्तोतुः**) उपासक के (**हवम्**) आह्वान को (**शृणवत्**) सुन ले तो (**न योषति**) उससे अलग न खड़ा रहे, प्रत्युत (**आ गमत्**) उसके अन्तःकरण में आ जाए॥३॥

**भावार्थ** :–उपासक के हृदय से निकली हुई पुकार को जगदीश्वर अवश्य सुनता है और दस्युओं के साथ युद्ध में उसे बल देकर उसकी सहायता करता है॥३॥

(१६)

**ऋषिः–निध्रुविः काश्यपः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में कविकर्म का वर्णन है।

**१६९९. पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः।**
**अभि विश्वानि काव्या॥१॥**

**पदार्थ** :–(**पवमानाः**) स्वयं को तथा दूसरों को पवित्र करते हुए, (**शुक्रासः**) तेजस्वी, (**इन्दवः**) अपने काव्य-रस से सहृदयों को भिगोने वाले (**सोमाः**) शान्त विद्वान् कविजन ही (**विश्वानि काव्या**) सब भक्तिरस के काव्यों की (**असृक्षत**) सर्जना करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :–भगवान् के उपासक कविजन ही भक्तिरस के

काव्यों की सर्जना में समर्थ होते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में सूर्य-किरणों के उपकार-वर्णन द्वारा भगवान् के उपकारों का वर्णन करते हैं।

**१७००. पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत।**
**पृथिव्या अधि सानवि॥२॥**

**पदार्थ** :—परमात्मा से रची हुई (**पवमानाः**) पवित्र करने वाली सूर्य-रश्मियां (**दिवः परि**) द्युलोक से और (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से (**पृथिव्याः**) भूमि के (**सानवि अधि**) उच्च प्रदेशों पर (**असृक्षत**) सूर्य-ताप और मेघ-जल को बरसाती हैं॥२॥

**भावार्थ** :—यदि सूर्य न हो तो भूमि पर प्रकाश, ताप, वर्षा, ऋतुओं आदि का निर्माण कुछ भी न हो, सब जगह घोर अंधेरा व्यापा रहे। ऐसा अद्भुत सूर्य परमात्मा ने ही रचा है, इसलिए उसी की वह महिमा है॥२॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द-रसों का वर्णन है।

**१७०१. पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः।**
**घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**पवमानासः**) पवित्र करने वाले, (**आशवः**) वेगगामी, (**शुभ्राः**) निर्मल (**इन्दवः**) सराबोर करने वाले ब्रह्मानन्द-रस (**विश्वाः**) सब (**द्विषः**) द्वेष-वृत्तियों को (**अप घ्नन्तः**) विनष्ट करते हुए (**असृग्रम्**) अन्तरात्मा में बह रहे हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जब परमात्मा की उपासना से ब्रह्मानन्द-रस स्तोता के अन्तरात्मा में आते हैं तब सब द्वेष-वृत्तियां स्वयं समाप्त हो जाती हैं और विश्व-मैत्री की भावना जाग जाती है॥३॥

(१७)

**ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्राग्नी॥ छन्दः—गायत्री॥**

स्वर:—षड्ज:॥

प्रथम मन्त्र में इन्द्र-अग्नि नाम से ब्रह्म-क्षत्र की प्रशंसा करते हैं।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
**१७०२. तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता।**
३ १ २ ३ १ २
**इन्द्राग्नी वाजसातमा॥१॥**

**पदार्थ** :—(**तोशा**) तेजस्वी वा बढ़ाने वाले, (**वृत्रहणा**) पाप को नष्ट करने वाले, (**सजित्वाना**) साथ मिलकर विजय लाभ करने वाले, (**अपराजिता**) पराजित न होने वाले, (**वाजसातमा**) बल के अतिशय दाता (**इन्द्राग्नी**) ब्रह्म और क्षत्र को, मैं (**हुवे**) बुलाता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—समष्टि रूप से राष्ट्र में और व्यष्टि रूप से व्यक्ति में विद्यमान, प्रवृद्ध, ब्रह्मबल और क्षात्रबल से राष्ट्र तथा मनुष्य बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं को पराजित करके सदा विजयी होता है॥१॥

द्वितीय ऋचा उत्तरार्चिक में १५७५ क्रमांक पर परमात्मा और जीवात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ ब्रह्म-क्षत्र का विषय वर्णित करते हैं।

१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
**१७०३. प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितार:।**
१ २ ३ २ ३ १ २
**इन्द्राग्नी इषे आ वृणे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) ब्राह्मण-क्षत्रियो! (**उक्थिन:**) गुणों के प्रशंसक, (**नीथाविद:**) नीतिज्ञ, (**जरितार:**) ज्ञानवृद्ध लोग (**वाम्**) तुम्हारी (**प्र अर्चन्ति**) प्रशंसा करते हैं। मैं तुमसे (**इष:**) अभीष्ट लाभों को (**आवृणे**) ग्रहण करता हूँ।२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों के चाहिए कि उत्कृष्ट ब्राह्मणों और क्षत्रियों को एकत्र करके राष्ट्र को उन्नत करें॥२॥

तृतीय ऋचा की व्याख्या उत्तरार्चिक में १५७६ क्रमांक पर परमात्मा और जीवात्मा के विषय में की गयी थी। यहाँ ब्रह्म-क्षत्र का विषय वर्णित है।

**१७०४. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्।**
**साकमेकेन कर्मणा॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्राग्नी**) ब्राह्मणो और क्षत्रियो! (**एकेन**) अद्वितीय (**कर्मणा**) पुरुषार्थ से (**साकम्**) एक साथ तुम दोनों (**दासपत्नीः**) विनाशक काम-क्रोध आदि वा अधार्मिक दुष्ट जन जिनके स्वामी हैं ऐसी (**नवतिं पुरः**) नव्वे शत्रु-नगरियों को (**अधूनुतम्**) कंपायमान कर दो॥३॥

**भावार्थ** :—ब्राह्मणों को विद्या तथा ब्रह्मवर्चस का प्रसार करके और क्षत्रियों को शत्रुओं से रक्षा करके राष्ट्र की उन्नति करनी चाहिए॥३॥

(१८)

**ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

**अगले मन्त्र में अग्नि नाम से परमात्मा को सम्बोधन करते हैं।**

**१७०५. उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत।**
**अग्ने ससृज्महे गिरः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सहस्कृत**) आत्मबल से हृदय में प्रकट किये गये (**अग्ने**) अग्रनायक जगदीश्वर! (**प्रयस्वन्तः**) प्रयत्नवान् हम (**रण्वसन्दृशम्**) रमणीय दर्शन वाले (**त्वा**) आपके प्रति (**गिरः**) स्तुति-वाणियों को (**उप ससृज्महे**) उच्चारण करते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की स्तुति के साथ मनुष्यों को प्रयत्न भी करना चाहिए, तभी अभीष्ट कामनाएँ पूर्ण होती हैं॥१॥

अगले मन्त्र में पुनः परमात्मा को कहते हैं।

**१७०६. उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम्।**
**अग्ने हिरण्यसन्दृशः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक, सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर! (**वयम्**) हम आपके उपासक (**हिरण्यसन्दृशः**) सोने के समान

रमणीय (ते) आपकी (शर्म) शरण में (अगन्म) पहुँच गये हैं, (घृणेः) सूर्य के ताप से हटकर (छायाम् इव) जैसे छाया में पहुँचते हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है।

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य की धूप से तपे हुए सिर वाला, पसीने से तर-बतर शरीर वाला, गर्मी से व्याकुल कोई मनुष्य विश्राम के लिए वृक्ष आदि की छाया का आश्रय लेता है, वैसे ही आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विविध कष्टों से व्याकुल लोग विश्राम पाने के उद्देश्य से यदि परमात्मा की शरण में पहुँचते हैं तो वे सब दुःखों से छूटकर अत्यन्त आनन्दवान् हो जाते हैं॥२॥

अब वह परमेश्वर कैसा है जिसकी शरण में हम जाएं यह कहते हैं।

**१७०७. य उग्रइव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः।**
**अग्ने पुरो रुरोजिथ॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) अग्रनायक, तेजस्वी जगदीश! (**यः**) जो आप (**उग्रः इव**) प्रचण्ड धनुर्धारी के समान (**शर्यहा**) वध करने योग्य काम, क्रोध आदि शत्रुओं के और व्याधि, स्त्यान आदि योग-विघ्नों के विनाशक, (**तिग्मशृङ्गः न**) तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य के समान (**वंसगः**) चारु गति वाले तथा सेवनीय होते हुए (**पुरः**) शत्रु की नगरियों वा किलेबन्दियों को (**रुरोजिथ**) तोड़-फोड़ डालते हो, ऐसे आपकी शरण में हम पहुँचते हैं॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना से बल पाकर मनुष्य सब आन्तरिक शत्रुओं तथा योग के विघ्नों को पराजित करके लक्ष्य के प्रति जागरूक होता हुआ अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर लेता है॥३॥

( १९ )

**ऋषिः—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में जगदीश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१७०८. ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्।**
**अजस्रं घर्ममीमहे॥१॥**

**पदार्थ** :—(**ऋतावानम्**) सत्यमय, (**वैश्वानरम्**) सब मनुष्यों के हितकर्ता, (**ऋतस्य**) जल वा (**धन**) और (**ज्योतिषः**) ज्योति के (**पतिम्**) स्वामी वा पालक जगदीश्वर से हम (**अजस्रम्**) अक्षय (**घर्मम्**) तेज वा प्रताप को (**ईमहे**) माँगते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—जो स्वयं प्रतापी, तेजस्वी और सत्यमय होता है वही दूसरों को वैसा बना सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर का कर्तृत्व वर्णित है।

**१७०९. य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वरुत्तिरन्।**
**ऋतूनुत्सृजते वशी॥२॥**

**पदार्थ** :—(**यः**) जो जगदीश्वर (**इदम्**) इस ब्रह्माण्ड को (**प्रतिपप्रथे**) फैलता है, और (**यज्ञस्य**) प्रकाश प्रदाता सूर्य के (**स्वः**) प्रकाश को (**उत्तिरन्**) बिखेरता हुआ, (**वशी**) जगत् की व्यवस्था को चाहता हुआ (**ऋतून**) वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं को (**उत्सृजते**) रचता है, उस जगदीश्वर से हम [अजस्रं घर्मम् ईमहे] अक्षय प्रताप वा तेज माँगते हैं। [यहाँ 'अजस्रं घर्मम् ईमहे' यह अंश वाक्यपूर्ति के लिए पूर्व मन्त्र से लाया गया है]॥१॥

**भावार्थ** :—अहो! जगत्पति की यह कैसी अद्भुत महिमा है कि वह सूर्य को उत्पन्न करके उसके द्वारा सारे सौरमण्डल को भली-भाँति संचालित कर रहा है॥२॥

अब परमात्मा के सम्राड् रूप का वर्णन करते हैं।

**१७१०. अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य।**
**सम्राडेको विराजति॥३॥**

**पदार्थ** :—(**भूतस्य**) जो उत्पन्न हो चुका है उसे, और

(**भव्यस्य**) जो भविष्य में उत्पन्न होना है उसे (**कामः**) इच्छाशक्ति द्वारा पञ्चभूतों से रचने वाला (**अग्निः**) अग्रनायक जगदीश्वर (**प्रियेषु**) प्रिय (**धामसु**) लोकों में (**एकः**) एक अद्वितीय (**सम्राट्**) चक्रवर्ती राजा होता हुआ (**वि राजति**) विशेष रूप से शोभा पा रहा है।।३।।

**भावार्थ** :—एक परमेश्वर ही सब भूत, वर्तमान और भावी पदार्थों का शिल्पी तथा सब लोकों का चक्रवर्ती सम्राट् होता हुआ ब्रह्माण्ड की सब व्यवस्था का संचालन करता है।।३।।

**इत्यष्टादशोऽध्यायः, अष्टमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः॥**

# अथैकोनविंशोऽध्यायः

## अष्टमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः

(१)

ऋषिः—विरूप आङ्गिरसः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१७११. अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वां३स्वाम्।**
**कविर्विप्रेण वावृधे॥१॥**

**पदार्थ** :—(**कविः**) मेधावी, क्रान्तद्रष्टा जीवात्मा (**प्रत्नेन जन्मना**) पुरातन जन्म से अर्थात् पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों के संस्कार वश (**स्वाम्**) अपने इस जन्म में प्राप्त (**तन्वम्**) शरीर को (**शुम्भानः**) सुशोभित करता हुआ (**विप्रेण**) विशेषतया ज्ञान से पूर्ण करने वाले आचार्य के द्वारा (**वावृधे**) उन्नति प्राप्त करता है॥१॥

**भावार्थ** :—पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए और नवीन कर्म करने के लिए जीव मानव-जन्म प्राप्त करता है। माता के गर्भ से उत्पन्न होकर, माता-पिता से यथायोग्य पालित और शिक्षित हो, गुरुकुल में प्रवेश पाकर, आचार्य से विद्या ग्रहण कर, कर्तव्य-अकर्तव्य जान कर, सत्यकर्म करके वह अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर को पुकारा गया है।

**१७१२. ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम्।**
**अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे॥२॥**

**पदार्थ** :—मैं (**अस्मिन्**) इस (**स्वध्वरे**) शुभ अहिंसाव्रताचार वाले (**यज्ञे**) जीवन-यज्ञ में (**ऊर्जः**) आत्मबल और प्राणशक्ति को (**नपातम्**) न गिरने देने वाले, प्रत्युत बढ़ाने वाले, (**पावकशोचिषम्**) शोधक ज्योति वाले (**अग्निम्**) अग्रनायक

परमेश्वर को (आहुवे) पुकारता हूँ॥२॥

भावार्थ :–मनुष्यों को चाहिए कि वे परमात्मा की उपासना से सत्प्रेरणा लेकर अपने जीवन को पवित्र और उन्नत करें॥२॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१७१३. स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा।**
**देवैरा सत्सि बर्हिषि॥३॥**

**पदार्थ** :–(**मित्रमहः**) जिसका तेज हमारा मित्र बनता है ऐसे, हे (**अग्ने**) अग्रनायक परमेश! (**सः**) वह (**नः**) हमारे सखा (**त्वम्**) आप जगदीश (**शुक्रेण**) पवित्र (**शोचिषा**) ज्योति के साथ और (**देवैः**) दिव्य गुणों के साथ (**बर्हिषि**) हमारे हृदयान्तरिक्ष में (**आ सत्सि**) आकर बैठो॥३॥

**भावार्थ** :–परमात्मा की उपासना से मनुष्य प्रकाश को और दिव्य गुणों को प्राप्त कर सकते हैं॥३॥

(२)

**ऋषिः–अवत्सारः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में स्तुतिपूर्वक परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१७१४. उत्ते शुष्मासो अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः।**
**नुदस्व याः परिस्पृधः॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (**अद्रिवः**) किसी से विदीर्ण न किये जा सकने योग्य पवमान सोम अर्थात् पवित्रतादायक सद्गुणकर्मप्रेरक जगदीश! (**ते**) आपके (**शुष्मासः**) बल (**रक्षः**) काम, क्रोध, आदि छहों रिपुओं को और व्याधि, स्त्यान, संशय आदि योग-मार्ग के विघ्नों को (**भिन्दन्तः**) तोड़ते-फोड़ते हुए (**अस्थुः**) दृढ़ता से स्थित रहते हैं। (**याः परिस्पृधः**) जो स्पर्धाशील आन्तरिक वा बाह्य शत्रु-सेनाएं हैं उन्हें आप (**नुदस्व**) परे खदेड़ दो॥१॥

**भावार्थ** :–परमेश्वर की आराधना से मनुष्य सब आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को जीतने के लिए अपार बल, साहस और उद्बोधन प्राप्त करता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की स्तुति की गयी है।

**१७१५. अया निजघ्निरोजसा रथसङ्गे धने हिते।**
**स्तवा अबिभ्युषा हृदा॥२॥**

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम! हे पवित्रतादायक सर्वान्तर्यामी जगदीश! आप (**अया**) इस (**ओजसा**) बल से (**निजघ्निः**) काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करने वाले हो। (**रथसङ्गे**) मानव-देह रूप रथ की प्राप्ति होने पर (**धने हिते**) दिव्य ऐश्वर्य को पाने के लिए, मैं (**अबिभ्युषा**) निर्भय (**हृदा**) हृदय से, (**स्तवै**) आपकी स्तुति करता हूँ।।२।।

**भावार्थ** :—हार्दिक श्रद्धा से स्तुति किया गया जगदीश्वर स्तोता को आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को विनष्ट करने के लिए बल प्रदान करके उसका उपकार करता है।।२।।

अब अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देते हैं।

**१७१६. अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या।**
**रुज यस्त्वा पृतन्यति॥३॥**

**पदार्थ** :—(**अस्य**) इस (**पवमानस्य**) गतिमान् पुरुषार्थी जीव के (**व्रतानि**) व्रत वा कर्म (**दूढ्या**) शत्रु के द्वारा (**आधृषे न**) दबाये नहीं जा सकते। हे मेरे अन्तरात्मन्! (**यः**) जो भी आन्तरिक वा बाहरी शत्रु (**त्वा**) तुझ पर (**पृतन्यति**) सेना से धावा करता है, उसे (**रुज**) नष्ट-भ्रष्ट कर दे।।३।।

**भावार्थ** :—मनुष्य के अन्तरात्मा को योग्य है कि वह प्रबोध और उद्बोधन प्राप्त करके अपनी शक्ति से सब अन्दर के और बाहर के शत्रुओं को परास्त करके देवासुर संग्राम में विजयी हो।।३।।

अगले मन्त्र में उपासक लोग क्या करते हैं यह कहा गया है।

**१७१७. तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम्।**
**इन्दुमिन्द्राय मत्सरम्॥४॥**

**पदार्थ** :—प्रबोध को प्राप्त जागरूक उपासक लोग (**मदच्युतम्**) उत्साहवर्षी, (**हरिम्**) पापहर्ता, (**वाजिनम्**) बलवान् (**मत्सरम्**) तृप्तिप्रद (**तम्**) उस अद्भुत (**इन्द्रम्**) ब्रह्मानन्द-रस को (**नदीषु**) धाराओं के रूप में (**इन्द्राय**) जीवात्मा के लिए (**हिन्वन्ति**) प्रेरित करते हैं॥४॥

**भावार्थ** :—जो लोग परमात्मा की उपासना द्वारा ब्रह्मानन्द की धाराओं से अपने आत्मा को तृप्त करते है, वे धन्य हो जाते हैं॥४॥

(३)

**ऋषिः—विश्वामित्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बृहती॥ स्वरः—मध्यमः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में २४६ क्रमांक पर) परमात्मा और राजा के आह्वान के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा को उद्बोधन देते हैं।

**१७१८. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः। मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) मेरे अन्तरात्मन्! तू (**मन्द्रैः**) तृप्ति देने वाले, (**मयूररोमभिः**) मोरों के रोमों के समान आकर्षक जिनके रोम अर्थात् विषय-ग्रहण सामर्थ्य हैं ऐसे (**हरिभिः**) मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों के साथ (**आयाहि**) आ, अर्थात् ज्ञानक्षेत्र और कर्मक्षेत्र में उतर। आने की इच्छा वाले (**त्वा**) तुझे (**केचित्**) कोई भी बाधक शत्रु वा विघ्न (**मा नियेमुः**) रोक न सकें, (**पाशिनः**) जाल हाथ में लिए व्याध आदि (**इत् न**) जैसे गतिशील पक्षी आदि को जाल में रोक लेते हैं। तू (**धन्वा इव**) धनुर्धारी के समान (**तान्**) उन बाधकों को (**अति इहि**) लांघ जा॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को यह योग्य है कि वे अपने अन्तरात्मा को उद्बोधन देकर बाधक शत्रुओं वा विघ्नों को पराजित करके अपनी उन्नति करें॥१॥

अब जीवात्मा का कर्तव्य बताते हैं।

**१७१९. वृत्रखादो वलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः। स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**इन्द्रः**) मनुष्य का आत्मा (**वृत्रखादः**) पापों का भक्षक, (**वलंरुजः**) धर्म पर पर्दा डालने वाले काम, क्रोध आदि को चकनाचूर करने वाला, (**पुरां दर्मः**) शत्रु की नगरियों को विदीर्ण करने वाला, (**अपाम् अजः**) कर्मों को गति देने वाला, (**हर्योः**) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप घोड़ों के (**रथस्य**) शरीररूप रथ का (**स्थाता**) अधिष्ठाता और (**अभिस्वरे**) देवासुरसंग्राम में (**दृढा चित्**) दृढ़ से दृढ़ विघ्न आदि को (**आ रुजः**) चकनाचूर कर देने वाला होवे।।२।।

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि वे अपने आत्मा की शक्ति को समझ कर, उसका प्रयोग करके, सब बाधाओं को उन्मूलन करके अभ्युदय और निःश्रेयस रूप लक्ष्य को प्राप्त करें।।२।।

अगले मन्त्र में उपमाओं द्वारा परमात्मा का कर्म और जीवात्मा की उपलब्धि वर्णित है।

**१७२०. गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव। प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्याइवाशत॥३॥**

**पदार्थ** :–हे पवमान सोम! हे पवित्रकर्ता जगदीश्वर! (**गम्भीरान्**) अगाध (**उदधीन् इव**) समुद्रों को जैसे आप पुष्ट करते हो और (**गाः इव**) जैसे पृथिवी आदि लोकों को वा धेनुओं को आप पुष्ट करते हो, वैसे ही (**क्रतुम्**) कर्मकर्ता जीवात्मा को (**पुष्यसि**) पुष्ट करते हो। हे जीवात्मन्! (**यवसम्**) घास-चारे को (**धेनवः यथा**) जैसे गायें और (**ह्रदम्**) सरोवर को (**कुल्याः इव**) जैसे शुद्ध जल की नालियां प्राप्त होती हैं वैसे ही (**सुगोपाः**) सुरक्षा करने वाले आनन्द-रस, तुझे (**प्र आशत**) प्रकृष्ट रूप से प्राप्त होते हैं।।३।।

यहाँ चार उपमाएं हैं, अतः उपमालंकार है।।३।।

**भावार्थ** :–जगदीश्वर जैसे जलों से समुद्रों को, दूध से

धेनुओं को और विविध ऐश्वर्यों से पृथिवी आदि लोकों को परिपूर्ण करते हैं, वैसे ही जीवात्मा को सद्गुणों से परिपूर्ण करते हैं। गौएं जैसे घास के पास पहुँचती हैं और छोटी-छोटी नहरें जैसे महान् जलाशय को भरने के लिए उसमें पहुँचती हैं, वैसे ही जगदीश्वर के पास से ब्रह्मानन्द-रस जीवात्मा को प्राप्त होते हैं।।३।।

(४)

**ऋषि:-देवातिथि: काण्व:॥ देवता-इन्द्र:॥ छन्द:-बार्हत: प्रगाथ: (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वर:-१ मध्यम:; २ पञ्चम:॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २५२ क्रमांक पर परमात्मा के आह्वान के विषय में की गयी थी। यहाँ विद्वान् गुरुजन शिष्यजनों को कह रहे हैं।

**१७२१. यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब॥१॥**

**पदार्थ** :-(**यथा**) जैसे (**तृष्यन्**) प्यास (**गौर:**) गौर मृग (**इरिणम्**) मरुस्थल को (**अव**) छोड़कर (**अपा कृतम्**) जल से पूर्ण सरोवर को (**एति**) प्राप्त करता है, वैसे ही हे विद्यार्थी! तू (**न:**) हम गुरुओं से (**आपित्वे**) सम्बन्ध (**प्रपित्वे**) प्राप्त होने पर, हमारे पास (**तूयम्**) शीघ्र (**आ गहि**) आ जा और (**कण्वेषु**) हम मेधावियों के सान्निध्य में (**सचा**) दूसरे सहाध्यायियों के साथ मिलकर (**सु पिब**) भली-भाँति लौकिक विद्याओं के रस का तथा अध्यात्म-विद्याओं के रस का पान कर।।१।।

यहाँ उपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :-जैसे प्यासा मृग जलरहित प्रदेश को छोड़कर जलप्रचुर प्रदेश को चला जाता है, वैसे ही विद्या के प्यासे लोग मूर्खों का संग छोड़ कर विद्वानों का संग करें।।१।।

अगले मन्त्र में जगदीश्वर को सम्बोधन है।

**१७२२. मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते। आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**मघवन्**) ऐश्वर्यशाली (**इन्द्र**) जगत्पति परमेश्वर! (**इन्दवः**) भक्तिरस (**सुन्वते**) भक्त को (**राधोदेयाय**) ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए (**त्वा**) आपको (**मन्दन्तु**) प्रसन्न करें। आप (**चमू**) आत्मा और मनरूप कटोरों में (**सुतम्**) अभिषुत किये हुए (**सोमम्**) भक्तिरस को (**आमुष्य**) उत्सुकता से हर कर (**अपिबः**) पीते हो, (**तत्**) उसके बदले में (**ज्येष्ठम्**) अतिशय प्रशस्य और वृद्ध (**सहः**) बल को (**दधिषे**) उपासक में रख देते हो॥२॥

**भावार्थ** :—भक्तिरस से तृप्त परमेश्वर भक्त को पुरुषार्थ और दिव्य शक्ति प्रदान करता है॥२॥

(५)

**ऋषिः—गोतमो राहुगणः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में २४७ क्रमांक पर परमात्मा और राजा के विषय में की गयी थी। यहाँ जगदीश्वर और आचार्य को सम्बोधन है।

**१७२३. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**शविष्ठ**) आत्मबल से बलिष्ठ जगदीश्वर वा आचार्य! (**देवः**) प्रकाशक और विद्या आदि के दाता (**त्वम्**) आप (**अङ्ग**) शीघ्र ही (**मर्त्यम्**) उपासक मनुष्य वा शिष्य को (**प्र शंसिषः**) प्रशंसा का पात्र बनाओ। हे (**मघवन्**) सकल ऐश्वर्यों से युक्त जगदीश्वर वा विद्या के ऐश्वर्य से युक्त आचार्य! (**त्वत् अन्यः**) आपसे भिन्न कोई (**मर्डिता**) मोक्ष-प्रदान वा विद्या आदि के प्रदान के द्वारा सुखदाता (**न अस्ति**) नहीं है। हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर वा आचार्य! मैं (**ते**)

आपके लिए ( वचः ) प्रार्थना-वचन ( ब्रवीमि ) उच्चारण कर रहा हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की उपासना करके और आचार्य के समीप शिष्य भाव से पहुँच कर मनुष्यों को सब अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में फिर उन्हीं को संबोधन किया गया है।

**१७२४. मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना दभन्। विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ॥२॥**

पदार्थ :—हे ( **वसो** ) निवासप्रद जगदीश्वर वा आचार्य! ( **मा** ) न तो ( **ते** ) आपके ( **राधांसि** ) अहिंसा, सत्य आदि ऐश्वर्य, और ( **मा** ) न ही ( **ते** ) आपकी ( **ऊतयः** ) रक्षाएं ( **अस्मान्** ) हम आपके उपासकों वा आपके शिष्यों को ( **कदा चन** ) कभी भी ( **आदभन्** ) अपनी प्राप्ति से वंचित करें। हे ( **मानुष** ) मनुष्यों के हितकर्ता! ( **चर्षणिभ्यः नः** ) हम मानवों को, आप ( **विश्वा च वसूनि** ) सभी ऐश्वर्य धन, धान्य, विद्या, दीर्घायुष्य, अभ्युदय, निःश्रेयस आदि ( **आ उपमिमीहि** ) चारों ओर से प्राप्त कराओ॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि परमात्मा और आचार्य का सेवन करके सब दिव्य ऐश्वर्य, सब योगविभूतियां और सब रक्षाएं, प्राप्त करें॥२॥

( ६ )

**ऋषिः—वामदेवः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में भौतिक उषा के दृष्टान्त से दिव्य उषा का वर्णन किया गया है।

**१७२५. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः। दिवो अदर्शि दुहिता॥१॥**

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) प्राकृतिक उषा के पक्ष में। (**सूनरी**) उत्तम नेत्री, (**जनी**) प्रकाश की जननी, (**स्वसुः**) वहिन रात्रि के (**परि**) समाप्तिकाल में (**व्युच्छन्ती**) अंधेरे को हटाती हुई, (**दिवः**) द्युलोक की (**दुहिता**) पुत्री (**स्या**) वह उषा (**प्रति अदर्शि**) पूर्व दिशा में दिखायी दे रही है।

(**द्वितीय**) दिव्य उषा के पक्ष में। (**सूनरी**) योगमार्ग में उत्तम नेतृत्व करने वाली, (**जनी**) मोक्ष की जननी, (**स्वसुः**) संसारमार्ग पर डालने वाली अविद्या की (**परि**) समाप्ति पर (**व्युच्छन्ती**) उदित होती हुई, (**दिवः**) प्रकाशमय सविकल्पक समाधि की (**दुहिता**) पुत्री-तुल्य (**स्या**) वह ऋतम्भरा प्रज्ञा (**प्रति अदर्शि**) साक्षात् अनुभव में आ रही है॥१॥

यहाँ श्लेष और स्वभावोक्ति अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :-जैसे प्राकृतिक उषा रात्रि के घोर अंधेरे को हटाकर भूतल पर प्रकाश उत्पन्न करती है, वैसे ही योगमार्ग में ऋतम्भरा प्रज्ञा योग के विघ्नों को दूर करके, अध्यात्म-प्रसाद देती है॥१॥

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है।

**१७२६. अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी।**
**सखा भूदश्विनोरुषाः॥२॥**

**पदार्थ** :-(**प्रथम**) प्राकृतिक उषा के पक्ष में। (**अश्वा इव**) आकाश-व्यापी बिजली के समान (**चित्रा**) चित्र-विचित्र रंग वाली, (**अरुषी**) चमकीली, (**गवां माता**) किरणों की जननी, (**ऋतावरी**) सत्य नियम वाली (**उषाः**) उषा (**अश्विनोः**) आकाश और भूमि की (**सखा**) सहचरी (**अभूत्**) हो गयी है।

(**द्वितीय**) दिव्य उषा के पक्ष में। (**अश्वा इव**) व्याप्त विद्युत् के समान (**चित्रा**) अद्भुत, (**अरुषी**) हिंसा न करने वाली, (**गवां माता**) अध्यात्म-रश्मियों की माता, (**ऋतावरी**) सत्यमयी (**उषाः**) ऋतम्भरा प्रज्ञा (**अश्विनोः**) आत्मा और मन की (**सखा**) सहचरी (**अभूत्**) हो गयी है॥२॥

यहाँ श्लेष और उपमा अलंकार है।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे अटल नियम से प्रतिदिन उदित होती हुई प्रकाशवती प्राकृतिक उषा आकाश-भूमि में व्याप जाती है वैसे ही योगमार्ग में सत्यमयी ऋतम्भरा प्रज्ञा योगसाधक के आत्मा और मन को व्याप लेती है।।२।।

आगे फिर प्राकृतिक और दिव्य उषा वर्णित है।

**१७२७. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि।**
**उतोषो वस्व ईशिषे॥३॥**

**पदार्थ** :—(**प्रथम**) प्राकृतिक उषा के पक्ष में। (**उत**) और, हे (**उषः**) उषा! तू (**अश्विनोः**) द्यावापृथिवी की (**सखा**) सहचरी (**असि**) है। (**उत**) और (**गवाम्**) किरणों की (**माता**) माता (**असि**) माता (**असि**) है। (**उत**) और, तू (**वस्वः**) प्रकाशरूप धन की (**ईशिषे**) अधीश्वरी है।

(**द्वितीय**) दिव्य उषा के पक्ष में। (**उत**) और, हे (**उषः**) उषा के समान वर्तमान ऋतम्भरा प्रज्ञा! तू (**अश्विनोः**) योगी के आत्मा और मन की (**सखा**) सहचरी (**असि**) है, (**उत**) और (**गवाम्**) ईश्वरीय प्रकाशों की (**माता**) माता (**असि**) है। (**उत**) और तू (**वस्वः**) योग-समाधि रूप धन की (**ईशिषे**) अधिष्ठात्री है।।३।।

यहाँ श्लेष अलंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जैसे प्राकृतिक उषा द्यावापृथिवी में व्याप्त होकर ज्योतिरूप धन से सबको धनवान् कर देती है, वैसे ही योगमार्ग में ऋतम्भरा प्रज्ञा आत्मा और मन में व्याप्त होकर योगसिद्धियों के धन से योगियों को कृतार्थ करती है।।३।।

(७)

**ऋषिः—प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १७८ क्रमांक पर पहले

व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ ऋतम्भरा प्रज्ञा का वर्णन है।

**१७२८. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।**
**स्तुषे वामश्विना बृहत्॥१॥**

**पदार्थ** :–(**एषा उ**) यह (**अपूर्व्या**) अपूर्व, (**प्रिया**) प्रिय (**उषाः**) प्रकाशमयी ऋतम्भरा प्रज्ञा (**दिवः**) देदीप्यमान आत्मलोक से (**व्युच्छति**) प्रकट हो रही है। हे (**अश्विनौ**) उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से चमत्कृत मन और आत्मा! मैं (**वाम्**) तुम दोनों की (**बृहत्**) बहुत अधिक (**स्तुषे**) स्तुति करता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :–जब योगी के मानस आकाश में ऋतम्भरा प्रज्ञारूप दिव्य उषा प्रकट होती है तब शरीर में स्थित आत्मा, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदि सभी दिव्य ज्योति से प्रदीप्त हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में मन और आत्मा के गुण-कर्मों का वर्णन है।

**१७२९. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्।**
**धिया देवा वसुविदा॥२॥**

**पदार्थ** :–(**या**) जो मन-आत्मा रूप अश्वीयुगल (**दस्रा**) दोषों को नष्ट करने वाले, (**सिन्धुमातरा**) आनन्दस्राविणी जगदम्बा जिनकी माता है, ऐसे (**रयीणाम्**) सत्य, अहिंसा आदि वा स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य आदि ऐश्वर्यों को (**मनोतरा**) अतिशय दीप्त करने वाले, (**देवा**) बल के दाता और (**धिया**) प्रज्ञा तथा कर्म से (**वसुविदा**) योगसिद्धि रूप ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले हैं, उनकी मैं (**स्तुषे**) स्तुति करता हूं। [यहाँ 'स्तुषे' पद पूर्व मन्त्र से लिया गया है]॥२॥

**भावार्थ** :–मन और आत्मा को साधने से दोषों का क्षय, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य, बल, सत्य-अहिंसा आदि ऐश्वर्य और योगसिद्धियां प्राप्त होती हैं॥२॥

आगे मन और आत्मा का महत्त्व कहा गया है।

३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
१७३०. वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि।
२ ३ २ ३ २ ३ १ २
यद्वां रथो विभिष्पतात्॥३॥

**पदार्थ** :–हे मन और आत्मा रूप अश्वी–युगल! ( **वाम्** ) तुम दोनों के ( **ककुहासः** ) महान् स्तोत्र ( **वच्यन्ते** ) गान किये जाते हैं, ( **यत्** ) क्योंकि ( **जूर्णायाम्** ) वृद्ध ( **विष्टपि अधि** ) अवस्था में भी ( **विभिः** ) इन्द्रिय–रूप अश्वों द्वारा ( **वाम्** ) तुम्हारा ( **रथः** ) शरीररूप रथ ( **पतात्** ) चलता है।।३।।

**भावार्थ** :–वृद्धावस्था में भी जो शरीर भलीभांति कार्य करता है वह सबे प्राणे अपना सहित मन और आत्मा का ही प्रताप है।।३।।

( ८ )

**ऋषिः–गोतमो राहुगणः॥ देवता–उषाः॥ छन्दः–उष्णिक्॥ स्वरः–ऋषभः॥**

प्रथम मन्त्र में उषा नाम द्वारा जगदम्बा से प्रार्थना की गयी है।

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ २
१७३१. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।
१ २ ३ २ ३ १२ ३ १ २
येन तोकं च तनयं च धामहे॥१॥

**पदार्थ** :–हे ( **वाजिनीवति** ) विवेकपूर्ण क्रिया वाली ( **उषः** ) तेजोमयी जगन्माता! तू ( **अस्मभ्यम्** ) हमारे लिए ( **तत्** ) वह प्रसिद्ध ( **चित्रम्** ) अद्भुत भौतिक तथा दिव्य ऐश्वर्य ( **आ भर** ) ला, ( **येन** ) जिससे, हम ( **तोकं च तनयं च** ) पुत्र और पौत्र को ( **धामहे** ) परिपुष्ट करें।।१।।

**भावार्थ** :–उषा के समान तेजस्विनी जगन्माता जगत् की व्यवस्था के लिए सब क्रियाओं को करती हुई अपनी सन्तानों को सब आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्य प्रदान करती हुई सुखकारिणी होती है।।१।।

आगे फिर वही विषय कहा गया है।

१ २ ३ १ २र ३ १ २
१७३२. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि।
३ २ ३ १ २
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति॥२॥

**पदार्थ** :–( **गोमति** ) गौओं और दिव्य प्रकाशों वाली,

(**अश्वावति**) घोड़ों और प्राणबलों वाली, (**विभावरि**) ज्योतिर्मयी, (**सूनृतावति**) प्रिय, सत्य, मधुर वेदवाणी वाली, (**उषः**) हे जगन्माता! तू (**अद्य**) आज (**इह**) इस हमारे जीवन में (**अस्मे**) हमारे लिए (**रेवत्**) दिव्य ऐश्वर्य के साथ उदित होती हुई (**व्युच्छ**) तमोगुण की अधिकता का निवारण कर दे॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे ज्योतिर्मयी उषा रात्रि के अन्धकार को हटाती है, वैसे ही जगन्माता स्तोताओं के मानस-पटल से तमोगुण के साम्राज्य को दूर करके उन्हें सत्त्वगुण की प्रधानता वाला कर देती है॥२॥

अगले मन्त्र में फिर जगदीश्वरी माँ से प्रार्थना करते हैं।

**१७३३. युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः।**
**अथा नो विश्वा सौभगान्या वह॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**वाजिनीवति**) प्रशस्त क्रिया वाली (**उषः**) उषा के समान तेजोमयी जगन्माता! तू (**अद्य**) आज (**अरुणान्**) तेजस्वी (**अश्वान्**) इन्द्रिय-रूप घोड़ों को (**युङ्क्ष्व हि**) ज्ञान के ग्रहण और कर्मों के करने में नियुक्त कर। (**अथ**) तदनन्तर (**नः**) हमारे लिए (**विश्वा**) सब (**सौभगानि**) सौभाग्य (**आवह**) प्राप्त करा॥३॥

**भावार्थ** :—वही माता श्रेष्ठ मानी जाती है जो सन्तान को ज्ञान और कर्म में प्रेरित करे, क्योंकि उसी से सौभाग्य की वृद्धि होती है॥३॥

(९)

**ऋषिः—गोतमो राहूगणः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—उष्णिक्॥ स्वरः—ऋषभः**

प्रथम मन्त्र में प्राण-अपान का विषय कहते हैं।

**१७३४. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत्।**
**अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**दस्रा**) दोषों का क्षय करने वाले (**अश्विना**)

शरीर में व्याप्त प्राणापानो! (**अस्मत्**) हमारा (**वर्तिः**) घर (**आ**) चारों ओर से (**गोमत्**) धेनुओं से युक्त, और (**हिरण्यवत्**) सुवर्ण आदि धनों से युक्त होवे, इस हेतु से तुम (**समनसा**) मन से संयुक्त होकर (**रथम्**) हमारे शरीर-रूप रथ को (**अर्वाक्**) अनुकूल रूप में (**नियच्छतम्**) नियन्त्रित करो॥१॥

**भावार्थ** :—देह के स्वस्थ होने पर ही पुरुषार्थ करके गाय, सुवर्ण आदि धन प्राप्त किये जा सकते हैं और स्वास्थ्य प्राप्त करने का प्राणायाम मुख्य साधन है॥१॥

अगले मन्त्र में प्राणायाम का विषय है।

**१७३५. एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी।**
**उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये॥२॥**

**पदार्थ** :—(**उषर्बुधः**) जो उषा-काल में बोध प्राप्त करते हैं वे लोग (**सोमपीतये**) सुख, स्वास्थ्य, दीर्घायुष्य, शान्ति आदि की रक्षा के लिए (**इह**) इस शरीर में (**देवा**) गमन-आगमन करने वाले, (**मयोभुवा**) सुख देने वाले (**दस्रा**) दोषों को क्षीण करने वाले, (**हिरण्यवर्तनी**) शारीरिक और मानसिक तेज को देने वाले प्राण-अपान रूप अश्विनों को (**आ वहन्तु**) लायें, अर्थात् प्राणायाम को साधें॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को चाहिए कि योग के अङ्ग प्राणायाम के द्वारा सब शारीरिक व मानसिक दोषों को जलाकर, योगसिद्धि प्राप्त करके अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करें॥२॥

आगे फिर उसी विषय को कहते हैं।

**१७३६. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।**
**आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अश्विनौ**) जीवन में व्याप्त प्राणापानो! (**यौ**) जो तुम दोनों (**इत्था**) सचमुच (**जनाय**) योगसाधक मनुष्य के लिए (**दिवः**) तेजस्वी जीवात्मा को (**श्लोकम्**) स्तुतियोग्य (**ज्योतिः**) ज्योति (**चक्रथुः**) उत्पन्न करते हो, वे (**युवम्**) तुम दोनों (**नः**) हमें (**ऊर्जम्**) बल (**आवहतम्**) प्राप्त

कराओ।।३।।

**भावार्थ** :—प्राणायाम द्वारा प्रकाश पर पड़े हुए आवरण के क्षय से ज्योति की प्राप्ति और आत्मा तथा प्राण के बल की प्राप्ति होने पर धारणाओं में मन की योग्यता हो जाती है।।३।।

**( १० )**

**ऋषिः—वसुश्रुत आत्रेयः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—पङ्क्तिः। स्वरः—पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४२५ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ अग्नि नाम से जगदीश्वर का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

**१७३७. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर॥१॥**

**पदार्थ** :—मैं **( अग्निम् )** अग्नि नामक जगदीश्वर **( तं मन्ये )** उसे मानता हूँ **( यः वसुः )** जो धर्मात्माओं को निवास देने वाला है, **( अस्तं यम् )** शरण-रूप जिसके पास **( धेनवः )** दुधारु गायें **( यन्ति )** मातृत्व की प्राप्ति के लिए पहुँचती हैं, **( अस्तम् )** शरण-रूप जिसके पास **( आशवः )** शीघ्रगामी **( अर्वन्तः )** घोड़े **( यन्ति )** वेग की प्राप्ति के लिए पहुँचते हैं, **( अस्तम् )** शरण-रूप जिसके पास **( नित्यासः )** अनादि और अनन्त **( वाजिनः )** जीवात्मा **( यन्ति )** बल के लिए पहुँचते हैं। हे अग्ने जगदीश्वर! आप **( स्तोतृभ्यः )** स्तोताओं को, आपके गुण-कर्म-स्वभाव का कीर्तन करने वाले मनुष्यों को **( इषम् )** अभीष्ट अभ्युदय और निःश्रेयस रूप फल **( आ भर )** प्रदान करो।।१।।

**भावार्थ** :—सभी अपनी-अपनी शक्ति को प्राप्त करने के लिए जिस की शरण में पहुँचते हैं वह परमेश्वर ही मुख्यतः अग्नि शब्दवाच्य है।।१।।

अब यह कहते हैं कि वह अग्नि नामक जगदीश्वर क्या करता है।

१७३८. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं
स्तोतृभ्य आ भर॥२॥

**पदार्थ** :-(**विश्वचर्षणिः**) विश्व का द्रष्टा (**अग्निः हि**) अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर ही (**विशे**) प्रजा को (**वाजिनम्**) बलवान् प्राण (**ददाति**) देता है। (**अग्निः**) वह अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर ही (**सु आभुवम्**) भलीभांति शरीर में जन्म ग्रहण किये हुए जीव को (**राये**) ऐश्वर्य के लिए प्रेरित करता है। (**प्रीतः**) शुभ कर्मों से प्रसन्न हुआ (**सः**) वह अग्नि जगदीश्वर (**वार्यम्**) वरणीय उपासक को (**याति**) प्राप्त होता है। हे जगदीश! (**स्तोतृभ्यः**) आपके गुण-कर्म-स्वभाव की स्तुति करने वाले मनुष्यों को आप (**इषम्**) अभीष्ट अभ्युदय और निःश्रेयसरूप फल (**आ भर**) प्रदान करो॥२॥

**भावार्थ** :-कोई सम्राट् जैसे प्रजाओं को शुभ कर्मों में प्रेरित करता हुआ उन्हें सुख और ऐश्वर्य प्रदान करता है, वैसे ही जगदीश्वर उपासकों को अभ्युदय और मोक्षरूप फल देकर उनका कल्याण करता है॥२॥

आगे फिर अग्नि नामक जगदीश्वर का वर्णन करते हैं।

१७३९. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं
स्तोतृभ्य आ भर॥३॥

**पदार्थ** :-(**सः**) वही (**अग्निः**) अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर है, (**यः**) जो (**वसुः**) सबको ढकने वाला अर्थात् सर्वव्यापक है, उसकी मैं (**गृणे**) स्तुति करता हूँ, (**यम्**) जिसके पास (**धेनवः**) स्तोताओं की वाणियां (**समायन्ति**) पहुँचती हैं, (**रघुद्रुवः**) वेगगामी (**अर्वन्तः**) पृथिवी, चन्द्र आदि लोक (**सम्**) पहुँचते हैं, (**सुजातासः**) सुप्रसिद्ध (**सूरयः**) विद्वान् लोग सम् पहुँचते हैं। हे जगदीश्वर! आप (**स्तोतृभ्यः**) आपके गुण-कर्म-स्वभाव की स्तुति करने वालों को (**इषम्**) अभीष्ट

अभ्युदय और निःश्रेयस रूप फल (आ भर) प्रदान करो।।३।।

**भावार्थ** :—गायें, घोड़े, मनुष्य, सूर्य, चांद, तारे, पृथिवी, मंगल, बुध, बृहस्पति आदि लोक, नदियां, पहाड़, समुद्र, झरने, वृक्ष, लताएं सभी अपने-अपने गुण जिससे पाते हैं वही अग्निशब्दवाच्य जगदीश्वर है।।३।।

( ११ )

**ऋषि:—सत्यश्रवा आत्रेय:॥ देवता—उषा:॥ छन्द:—पङ्क्ति:॥ स्वर:—पञ्चम:॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४२१ क्रमांक पर अध्यात्म प्रभा के विषय में की गयी थी। यहाँ जगन्माता को सम्बोधन है।

**१७४०. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती। यथा चिन्नो अबोधय: सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**सुजाते**) सुप्रसिद्ध, (**अश्वसूनृते**) व्यापक प्रिय सत्य वेदवाणी वाली (**उष:**) उषा के समान जगाने वाली जगन्माता! (**दिवित्मती**) दिव्य प्रकाश से देदीप्यमान तू (**न:**) हमें (**महे राये**) महान् अभ्युदय और मोक्ष रूप ऐश्वर्य के लिए (**अद्य**) आज भी (**बोधय**) वैसे ही जगा (**यथा चित्**) जैसे, (**सत्यश्रवसि**) सच्ची कीर्ति वाले, (**वाय्ये**) खड्डी में धागों के समान फैलाने योग्य हमारे पूर्व जीवन में (**न:**) हमें (**अबोधय:**) जगाती रही है।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे प्राकृतिक उषा सब प्राणियों को और कोई माँ अपनी सन्तानों को जगाती श्रेष्ठ कर्मों में लगाती है, वैसे ही जगदीश्वरी माँ हम अबोधों को जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अपने कर्तव्य-पालन के लिए दिन-रात जगाती रहे, जिससे हम कीर्ति, अभ्युदय और मोक्ष प्राप्त करें।।१।।

अगले मन्त्र में फिर जगन्माता से प्रार्थना की गयी है।

१७४१. या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः। सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**सुजाते**) सुप्रसिद्ध, (**अश्वसूनृते**) व्यापक प्रिय सत्य वेदवाणी वाली (**दिवः दुहितः**) दिव्य प्रकाश को दुह कर देने वाली जगन्माता! (**या**) जो प्रसिद्ध तू (**शौचद्रथे**) अतिशय पवित्र आत्मा रूप रथ वाले, (**सुनीथे**) उत्तम नेतृत्व करने वाले मनुष्य में (**व्यौच्छः**) प्रकाश देती है, (**सा**) वह तू (**सहीयसि**) अतिशय सहनशील, (**सत्यश्रवसि**) सच्ची कीर्ति वाले (**वाय्ये**) खड्डी में धागों के समान फैलाने योग्य मेरे जीवन में भी (**व्युच्छ**) विवेकख्याति का प्रकाश कर॥२॥

**भावार्थ** :—जो पवित्र आचरण वाले नेता लोग होते हैं उनमें पवित्रता और नेतृत्व का बल जगन्माता ही निहित करती है, वैसे ही वह हमारा भी जीवन पवित्र करके, विवेकख्याति का प्रकाश उत्पन्न कर हमें मोक्ष का अधिकारी बना देवे॥२॥

आगे फिर उसी विषय को कहते हैं।

१७४२. सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः। यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते॥३॥

**पदार्थ** :—हे (**सुजाते**) सुप्रसिद्ध, (**अश्वसूनृते**) व्यापक प्रिय सत्य वेदवाणी वाली, (**दिवः दुहितः**) दिव्य प्रकाश को दुह कर देने वाली जगन्माता! (**आभरद्वसुः**) दिव्यधनों को लाने वाली (**सा**) वह तू (**अद्य**) आज (**नः**) हमारे लिए (**व्युच्छ**) तमोगुण वा अविद्या के अन्धकार को दूर करके विवेकख्याति का प्रकाश फैला, (**या उ**) जो तू (**सहीयसि**) अति सहनशील, (**सत्यश्रवसि**) सत्य यश वाले, (**वाय्ये**) सत्संग के लिए प्राप्तव्य किसी महापुरुष में (**व्यौच्छः**) प्रकाश उत्पन्न करती है॥३॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वरी माँ जैसे महापुरुषों के हृदय में प्रकाश

उत्पन्न करती है, वैसे ही हमें भी दिव्य प्रकाश अनुगृहीत करे।।३।।

( १२ )

ऋषिः—अवस्युरात्रेयः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—पङ्क्तिः॥ स्वरः—पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४१८ क्रमांक पर अध्यात्म विषय तथा शिल्प विषय में व्याख्यात की जा चुकी है। यहाँ योगाभ्यास का विषय कहते हैं।

**१७४३. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम्। स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी मम श्रुतं हवम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अश्विनौ**) योगशास्त्र के अध्यापक और योगक्रिया के प्रशिक्षक! (**प्रियतमम्**) अतिशय प्रिय, (**वृषणम्**) बलवान्, (**वसुवाहनम्**) निवासक मन, प्राण, इन्द्रियों आदि से चलाये जाने वाले (**रथम्**) आत्मा से अधिष्ठित शरीर-रथ को (**प्रति**) लक्ष्य करके अर्थात् अध्यात्म और शरीर योग का प्रशिक्षण देने के लिए (**स्तोता**) तुम्हारा प्रशंसक (**ऋषिः**) तत्त्वदर्शी आचार्य (**स्तोमेभिः**) प्रशंसा वचनों से (**वाम्**) तुम दोनों को (**प्रतिभूषति**) अलंकृत कर रहा है अर्थात् तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है। हे (**माध्वी**) प्राणी की मधुविद्या जानने वालो! तुम (**मम**) मुझ योग-प्रशिक्षण चाहने वाले की हवम् पुकार को (**श्रुतम्**) सुनो।।१।।

**भावार्थ** :—जो योग-प्रशिक्षण पाने के इच्छुक हों उन्हें चाहिए कि वे योगकला में कुशल, प्राणविद्या के ज्ञाता योगशास्त्र पढ़ाने वाले और योग-क्रियाओं का प्रशिक्षण देने वाले के पास जाकर अष्टांग योग की विधि से योगाभ्यास करके सब दुःखों से मुक्ति प्राप्त करें।।१।।

अगले मन्त्र में फिर योगाभ्यास का विषय है।

**१७४४. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना। दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अश्विना**) योग के अध्यापक और योग-क्रिया के प्रशिक्षक! तुम दोनों (**अत्यायातम्**) विघ्नों को दूर करके हमें योग सिखाने के लिए आओ। मैं भी योग सीखने के लिए (**सना**) सदा (**विश्वाः**) सब बाधाओं को (**तिरः**) तिरस्कृत कर देता हूं। हे (**दस्रा**) योग-विघ्नों को नष्ट करने वाले, (**हिरण्यवर्तनी**) प्रशस्त मार्ग का अवलम्बन करने वाले, (**सुषुम्णा**) उत्कृष्ट सुख देने वाले, (**सिन्धुवाहसा**) ज्ञान की नदियों को बहाने वाले, (**माध्वी**) प्राणों की मधुविद्या जानने वाले योग के अध्यापक और योग-प्रशिक्षको! तुम दोनों (**मम**) मुझ योग-जिज्ञासु की (**हवम्**) पुकार को (**श्रुतम्**) सुनो॥२॥

**भावार्थ :—वे ही योग के अध्यापक और योग-प्रशिक्षक** प्रशस्त माने जाते हैं जो **योगमार्ग में आये हुए** व्याधि, स्त्यान, संशय, आलस्य आदि विघ्नों को सरल विधि से दूर करना सिखाते हैं और मधुविद्या नामक प्राणविद्या को देने में तथा अष्टांग योग के प्रशिक्षण में चतुर होते हैं॥२॥

आगे फिर वही विषय है।

**१७४५. आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम्। रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अश्विना**) योगशास्त्र के अध्यापक और योग-विधियों के प्रशिक्षक! (**रत्नानि**) योगसिद्धि के रमणीय ऐश्वर्यों को (**बिभ्रतौ**) धारण करने वाले (**युवम्**) तुम दोनों (**नः**) हम योग-जिज्ञासुओं के पास (**आगच्छतम्**) आओ। हे (**रुद्रा**) रोदक योग-विघ्न आदि को दूर करने वाले, (**हिरण्य-वर्तनी**) तेजस्वी मार्ग का अवलम्बन करने, वाले

(**जुषाणा**) प्रीति करने वाले (**वाजिनीवसु**) योगाभ्यास-क्रिया ही जिनका धन है ऐसे, (**माध्वी**) मधुर प्राणविद्या को जानने वाले योगाध्यापक और योगप्रशिक्षको! तुम दोनों (**मम**) मुझे योग-जिज्ञासु की (**हवम्**) पुकार को (**श्रुतम्**) सुनो।।३।।

**भावार्थ** :-वे ही योगाध्यापक और योग-प्रशिक्षक योगविद्या देने में सफल होते हैं जो स्वयं योग-सिद्धियों से युक्त और योगविद्या के धुरंधर होते हैं।।३।।

(१३)

**ऋषिः-बुधगविष्ठिरावात्रेयौ॥ देवता-अग्निः॥ छन्दः-त्रिष्टुप्॥ स्वरः-धैवतः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ७३ क्रमांक पर यज्ञ और परमात्मा के विषय में हो चुकी है। यहाँ यज्ञाग्नि के वर्णन द्वारा जीवात्मा-**परमात्मा** के **विषय** की सूचना दी गयी है।

**१७४६. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवा-**
**यतीमुषासम्। यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः।**
**प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ॥१॥**

**पदार्थ** :-(**धेनुम् इव**) दुधारु गाय के समान (**आयतीम्**) आती हुई (**उषसम्**) **प्रति** उषा को लक्ष्य करके (**जनानाम्**) यजमानों की (**समिधा**) समिधाओं के होम से (**अग्निः**) यज्ञाग्नि (**अबोधि**) प्रबुद्ध हुआ है। (**वयाम्**) शाखा को (**प्र उज्जिहानाः**) ऊपर उठाते हुए (**यह्वाः इव**) बड़े-बड़े वृक्षों के समान (**भानवः**) अग्नि-ज्वालाएं (**नाकम् अच्छ**) सूर्य की ओर (**प्र सस्रते**) उठ रही हैं।।१।।

यहाँ स्वभावोक्ति और उपमा अलंकार हैं।।१।।

**भावार्थ** :-जैसे उषा के आने पर यज्ञाग्नि सूर्य की ओर उठती है, वैसे ही उपासकों की आत्मा रूप अग्नि परमात्मा की ओर उठती है।।१।।

आगे फिर उसी विषय को कहते हैं।

१७४७. अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्। समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान् देवस्तमसो निरमोचि॥२॥

**पदार्थ** :—(होता) होम के साधन अग्नि ने (यजथाम्) यज्ञ करने के लिए (देवान्) विद्वान् यजमानों को (अबोधि) जगा दिया है। प्रातः प्रभात में (सुमनाः) मनों को शुभ बनाने वाली (अग्निः) यज्ञाग्नि (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्वोन्मुख (अस्थात्) स्थित हो गयी है। (समिद्धस्य) प्रज्वलित हुए इस यज्ञाग्नि का (रुशत्) चमकता हुआ (पाजः) रूप (अदर्शि) दिखायी दे रहा है। (महान्) महान् (देवः) प्रकाशक अग्नि ने (तमसः) अन्धकार से निरमोचि छुड़ा दिया है॥२॥

इस मन्त्र में भी स्वभावोक्ति अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे प्रज्वलित, ऊंची ज्वालाओं वाली, चमकती हुई यज्ञाग्नि अंधेरे से छुड़ाती है, वैसे ही देदीप्यमान ऊर्ध्वयात्री, तेजस्वी आत्मा मन-बुद्धि आदि को तमोगुण से छुड़ाता है॥२॥

अगले मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय है।

१७४८. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभि-र्गोभिरग्निः। आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्ता-नामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः॥३॥

**पदार्थ** :—(यत्) जब (ईम्) यह उपासक (गणस्य) स्तुति-समूह की (रशनाम्) शृंखला को (अजीगः) ध्वनित करता है, तब (शुचिः) पवित्र और देदीप्यमान (अग्निः) परमेश्वर (शुचिभिः) पवित्र और देदीप्यमान (गोभिः) तेजों से (अङ्क्ते) उसे प्रकाशित करता है। (आत्) तदनन्तर (वाजयन्ती) उपासक को बलवान् करती हुई (दक्षिणा) आत्मसमर्पण की क्रिया (युज्यते) प्रवृत्त होती है। (ऊर्ध्वः) सर्वोन्नत जगदीश्वर (जुहूभिः) वाणियों से (उत्तानाम्) उच्चारण की हुई स्तुति को (अधयत्) पान करता है॥३॥

**भावार्थ** :—उपासक के हृदय से निकली हुई पवित्र स्तुति को जगदीश्वर अवश्य स्वीकार करता है और उपासक को कृतकृत्य कर देता है॥३॥

(१४)

ऋषिः—कुत्स आङ्गिरसः॥ देवता—उषाः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

अब उषा के दृष्टान्त से आध्यात्मिक प्रभा का वर्णन करते हैं।

**१७४९. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो**
**अजनिष्ट विभ्वा। यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा**
**रात्र्युषसे योनिमारैक्॥१॥**

**पदार्थ** :—(इदम्) यह (ज्योतिषाम्) अग्नि, विद्युत् आदि ज्योतियों में (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठ (ज्योतिः) ज्योति उषा (आगात्) आयी है। (चित्रः) अद्भुत (विभ्वा) व्यापक (प्रकेतः) प्रकाश (अजनिष्ट) उत्पन्न हो गया है। (यथा) जिस प्रकार (प्रसूता) उत्पन्न यह उषा (सवितुः) सूर्य के (सवाय) जन्म के लिए आकाश को खाली कर देती है, (एवा) इसी प्रकार (रात्रि) रात्रि ने (उषसे) उषा के जन्म के लिए (योनिम्) आकाश को (आरैक्) खाली कर दिया है॥१॥

यहाँ उपमा और स्वभावोक्ति अलंकार हैं। 'ज्योति' की आवृत्ति में यमक और 'सवि, सवा' में छेकानुप्रास है। प्राकृतिक उषा के वर्णन से आध्यात्मिक उषा की व्यंजना हो रही है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे रात्रि के अंधेरे को समाप्त करके ज्योतिष्मती उषा आकाश में प्रकट होती है और अपने से अधिक ज्योतिष्मान् सूर्य को प्रकट करती है, वैसे ही अविद्या के घोर अंधेरे को चीर कर ज्योतिष्मती आत्म-प्रभा प्रकट होकर अपने से अधिक ज्योतिर्मयी परमात्म-प्रभा को प्रकट करती है॥१॥

अगले मन्त्र में रात्रि और उषा के वर्णन द्वारा अपरा और पराविद्या का प्रकाश किया गया है।

**१७५०. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदना-**
**न्यस्याः। समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं**
**चरत आमिनाने॥२॥**

**पदार्थ** :—(रुशद्वत्सा) जिसका चमकीला सूर्य रूप बछड़ा

है ऐसी, ( **रुशती** ) लाल वर्ण वाली, ( **श्वेत्या** ) उज्ज्वल उषा ( **आगात्** ) आयी है। ( **कृष्णा** ) काली रात्रि ने ( **अस्याः** ) इस उषा के ( **सदनानि** ) सदनों को ( **आरैक् उ** ) खाली कर दिया है। ये रात्रि और उषा ( **समानबन्धू** ) सूर्य रूप समान बन्धु वाली, ( **अमृते** ) प्रवाह रूप से अमर, ( **अनूची** ) एक–दूसरे के बाद आने वाली, ( **द्यावा** ) अपने–अपने प्रकाश से प्रकाशित, ( **वर्णम्** ) अपने–अपने रूप को ( **आमिनाने** ) एक–दूसरे में प्रविष्ट कराने वाली होकर ( **चरतः** ) गगन–प्रागंण में विचर रही हैं॥२॥

यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है। उषा और रात्रि में काली–गोरी दो बहिनों के व्यवहार का समारोप होने से समासोक्ति भी है। दोनों का अंगाङ्गि भाव संकर है। उषा और रात्रि के वर्णन से परा और अपरा विद्या का अर्थ भी ध्वनित हो रहा है॥२॥

**भावार्थ** :–जैसे रात्रि के बाद चमकीले सूर्य–रूप बछड़े वाली उषा आती है, वैसे ही **अपरा विद्या** के अनन्तर ज्योतिर्मय ब्रह्म–रूप बछड़े **वाली परा विद्या आती है। रात्रि और उषा के समान ये दोनों विद्याएं भी मनुष्यों का कल्याण करने** वाली हैं॥२॥

आगे फिर उसी विषय का **वर्णन** है।

**१७५१. समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे । न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे॥३॥**

**पदार्थ** :–( **स्वस्रोः** ) रात्रि और उषारूप इन दोनों बहिनों का ( **समानः** ) एक ही ( **अनन्तः** ) अनन्त ( **अध्वा** ) मार्ग है। ( **तम्** ) उस आकाश रूप मार्ग पर ( **देवशिष्टे** ) जगदीश्वर के अनुशासन में रहती हुई ( **अन्यान्या** ) एक दूसरी की गलबहियां लेकर ( **चरतः** ) विचर रही हैं। ये ( **सुमेके** ) भली–भाँति नियमों में बंधी हुई, ( **विरूपे** ) काले–गोरे विभिन्न रूपों वाली, और ( **समनसा** ) समान मन वालियों जैसी ( **नक्तोषासा** ) रात्रि और उषा ( **न मेथेते** ) एक–दूसरी की हिंसा नहीं करतीं, ( **न तस्थतुः** ) न कार्य से विरत होती हैं, प्रत्युत सृष्टि से लेकर विश्राम–प्रदान और प्रकाश प्रदान–रूप अपने–अपने कार्य में संलग्न हैं॥३॥

यहाँ रात्रि और उषा में बहिनों का आरोप होने से रूपक अलंकार है। 'समनसा' में लुप्तोपमा है॥३॥

**भावार्थ** :—रात्रि और उषा के समान अपरा और परा विद्या को भी मनुष्य यदि सामञ्जस्य पूर्वक ग्रहण करें तो निश्चय ही अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो सकती है॥३॥

( १५ )

**ऋषिः—अत्रिः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में प्राणायाम का वर्णन है।

१७५२. **आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः। अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अग्निः** ) यज्ञाग्नि ( **आ भाति** ) आभासित हो रही है, ( **उषसाम्** ) उषाओं की ( **अनीकम्** ) किरण-सेना भी ( **आ भाति** ) आभासित हो रही है। ( **विप्राणाम्** ) मेधावी उपासकों की ( **देवयाः** ) परमात्माराधना की इच्छुक ( **वाचः** ) वाणियां ( **उद् अस्थुः** ) उठ रही हैं। हे ( **रथ्या** ) शरीर-रथ को चलाने वाले ( **अश्विना** ) प्राणापानो! तुम दोनों ( **अर्वाञ्चा** ) हमारे अभिमुख होते हुए ( **नूनम्** ) निश्चय ही ( **इह** ) यहाँ ( **पीपिवांसम्** ) समृद्ध ( **घर्मम्** ) प्रातःकालीन ब्रह्मयज्ञ के अच्छ प्रति ( **आ यातम्** ) आओ॥

**भावार्थ** :—उषाकाल में स्वच्छ प्राभातिक वायु में ब्रह्मयज्ञ से किया गया प्राणायाम अपूर्व तेज, जागृति, स्फूर्ति, आरोग्य और बल प्रदान करता है॥१॥

अगले मन्त्र में प्राणापान का महत्त्व वर्णित है।

१७५३. **न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह। दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा॥२॥**

**पदार्थ** :–(उपस्तुता) महत्त्व-वर्णन द्वारा प्रशंसा किये गये, (नूनम्) निश्चय ही (इह) इस शरीर में (अन्ति) समीप होकर (गमिष्ठा) अतिशय गमन-आगमन करने वाले (अश्विना) प्राणापान (संस्कृतम्) संस्कृत जीवन-यज्ञ को (न प्र मिमीतः) हिंसा नहीं करते हैं (दिवा अभिपित्वे) दिन के प्राप्त होने पर अर्थात् प्रातःकाल (अवसा) रक्षा के साथ (आगमिष्ठा) आने वाले प्राणापान (अवर्तिम्) आधि, व्याधि, दुर्गति, दुर्बलता आदि को (प्रति) रोक कर (दाशुषे) हवि देने वाले अग्निहोत्री के लिए (शम्भविष्ठा) अतिशय सुख देने वाले होते हैं॥२॥

**भावार्थ** :–भलीभाँति सेवित प्राणापान रोग आदि के पाशों से मनुष्य का उद्धार करके उसे दीर्घायु करते हैं॥२॥

आगे फिर प्राणापान का **विषय** है।

१७५४. **उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य। दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान॥३॥**

**पदार्थ** :–हे (अश्विना) प्राणापानो! तुम (अह्न) दिन के (सङ्गवे) गोदोहनकाल में अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त में, (प्रातः) प्रातःकाल में (मध्यन्दिने) मध्याह्न में (उत) और (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) अस्त होने के काल में (दिवा) दिन में और (नक्तम्) रात्रि में (शन्तमेन) अतिशय सुखदायक (अवसा) रक्षा के साथ (आयातम्) आओ। (इदानीम्) इस समय (पीतिः) मृत्यु (न आ ततान) अपना फन्दा न फैलाये, अर्थात् हमारा वध न करे॥३॥

**भावार्थ** :–विधिपूर्वक प्रातः-सायं किया गया प्राणायाम दिन-रात सब कालों में कष्ट और मृत्यु से प्राणायाम करने वाले की रक्षा करता है॥३॥

( १६ )

ऋषिः–गोतमो राहूगणः॥ देवता–उषाः॥ छन्दः–जगती॥

स्वरः—निषादः॥

उषाओं का वर्णन करते हैं।

१७५५. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते। निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥१॥

पदार्थ :—(एताः उ) इन (त्याः) उन (उषसः) उषाओं ने (केतुम्) प्रज्ञान को (अक्रत) उत्पन्न कर दिया है। ये (रजसः) अन्तरिक्षलोक के (पूर्वे अर्धे) पूर्व के आधे भाग में (भानुम्) प्रकाश को (अञ्जते) व्यक्त कर रही हैं। (धृष्णवः) शत्रुओं को धर्षण करने वाले योद्धा लोग (आयुधानि इव) जैसे शस्त्रास्त्रों को चमकाते हैं, वैसे ही भूप्रदेशों को (निष्कृण्वानाः) चमकाती हुई, (गावः) गमनशील, (अरुषीः) देदीप्यमान (मातरः) माता उषाएं (प्रतियन्ति) जाती–आती हैं॥१॥

यहाँ उषाओं में मातृत्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है, 'निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः' में उपमा है। ये दोनों स्वभावोक्ति के अंग हैं, अतः अङ्गाङ्गिभाव-रूप संकर है। प्राकृतिक उषा के वर्णन से आध्यात्मिक उषा की व्यंजना हो रही है॥१॥

भावार्थ :—जैसे प्राकृतिक उषा रात्रि के अंधेरे को छिन्न-भिन्न करके भूमि पर प्रकाश उत्पन्न करती है, वैसे ही आध्यात्मिक ज्योतिष्मती प्रज्ञा तमोभाव को दूर करके चित्त प्रसाद उत्पन्न करती है॥१॥

आगे फिर उषा का वर्णन है।

१७५६. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत। अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः॥२॥

पदार्थ :—(अरुणाः) लालिमा वाले (भानवः) प्रकाश वृथा

अनायास ( **उदपप्तन्** ) उठ रहे हैं। ( **अरुषीः** ) चमकीली उषाओं ने ( **स्वायुजः** ) सुख से जुड़ने वाली ( **गाः** ) किरणों को ( **अयुक्षत** ) पूर्व दिशा के आकाश में जोड़ दिया है। ( **उषासः** ) उषाएं ( **पूर्वथा** ) पूर्व दिनों की भांति ( **वयुनानि** ) लोक-जागरण के कर्मों को ( **अक्रन्** ) कर रही हैं। ( **अरुषीः** ) लालिमा वाली ये उषाएं ( **रुशन्तम्** ) चमकीले ( **भानुम्** ) सूर्य का ( **अशिश्रयुः** ) आश्रय लिये हुए हैं॥२॥

यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है। 'पूर्वथा' में उपमा है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे उषाओं के उदय होने पर आकाश और भूतल प्रकाशित हो जाता है तथा मनुष्य जागृति अनुभव करते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं के आविर्भाव होने पर चित्तपटल निर्मल हो जाता है और आत्मा, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियों आदि सब योगसिद्धि के लिए सचेष्ट हो जाते हैं॥२॥

आगे फिर वही उषा वर्णित की जा रही है।

**१७५७. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन**
**योजनेना परावतः। इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे**
**विश्वेदह यजमानाय सुन्वते॥३॥**

**पदार्थ** :—( **अपसः** ) कर्मण्य ( **नारीः न** ) नारियां जैसे ( **आ परावतः** ) दूरदेश से भी आकर ( **समानेन योजनेन** ) समान योजना बनाकर ( **विष्टिभिः** ) कर्मों द्वारा ( **सुकृते** ) धर्मात्मा ( **सुदानवे** ) उत्तम दानी मनुष्य को ( **इषम्** ) अन्न आदि पदार्थ, और ( **सुन्वते** ) भक्तिरस प्रवाहित करने वाले तथा ( **यजमानाय** ) यज्ञ करने वाले पुरुष को ( **अह** ) निश्चय ही ( **विश्वा इत्** ) सभी अभीष्ट वस्तुएं ( **वहन्तीः** ) प्राप्त कराती हुईं, उसका ( **अर्चन्ति** ) सत्कार करती हैं, वैसे ही ये प्राकृतिक और आध्यात्मिक उषाएं भी करती हैं॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जो शुभ कर्म करने वाले धर्मात्मा, परोपकारी

परमेश्वर के उपासक यज्ञकर्ता जन होते हैं उनका जैसे नारियां सत्कार करती हैं, वैसे ही रात्रि के अन्त में लालिमा के साथ छिटकती हुई प्राकृतिक उषाएं तथा योगमार्ग में अनुभव की हुई ज्योतिष्मती प्रजाएं भी उनका अभिनन्दन करती हैं अर्थात् प्रेय-मार्ग तथा श्रेय-मार्ग में उनकी सहायता करती हैं॥३॥

( १७ )

**ऋषिः—दीर्घतमा औचथ्यः॥ देवता—अश्विनौ॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

प्रथम मन्त्र में प्रभातकाल का वर्णन करते हैं।

**१७५८. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यूऽषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा। आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत् पृथक्॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अग्निः** ) यज्ञाग्नि ( **अबोधि** ) यज्ञकुण्ड में प्रबुद्ध हुआ है। पूर्व दिशा में ( **ज्मः** ) क्षितिज से ( **सूर्यः** ) सूर्य ( **उदेति** ) उदित हो रहा है। ( **चन्द्रा** ) आह्लाददायिनी ( **मही** ) महती ( **उषाः** ) उषा ( **अर्चिषा** ) प्रभा के साथ ( **वि आवः** ) आविर्भूत हो गयी है। ( **अश्विना** ) प्राणापानों ने ( **यातवे** ) चलने के लिए ( **रथम्** ) शरीर-रथ को ( **आयुक्षाताम्** ) नियुक्त कर दिया है। ( **देवः** ) प्रकाशक ( **सविता** ) सूर्य ने ( **जगत्** ) जड़-चेतन जगत् को ( **पृथक्** ) अलग-अलग ( **प्रासावीत्** ) प्रकट कर दिया है॥१॥

यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—प्रभात के रमणीय, स्वच्छ, स्फूर्तिदायक काल में सब स्त्री-पुरुषों को प्राणायाम की विधि से अष्टांग योग का अभ्यास करना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में प्राणापान से चालित शरीर-रथ का विषय है।

**१७५९. यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**अश्विना**) प्राणापानो! (**यत्**) जब, तुम (**वृषणम्**) बलवान् (**रथम्**) शरीर-रथ को (**युञ्जाथे**) चलने के लिए नियुक्त करते हो तब (**नः**) हमारे (**क्षत्रम्**) क्षात्रबल को (**घृतेन**) तेज से और (**मधुना**) माधुर्य से (**उक्षतम्**) सींचो (**अस्माकम्**) हम वीरों की (**पृतनासु**) सेनाओं में (**ब्रह्म**) ब्रह्मबल को (**जिन्वतम्**) प्रेरित करो। (**वयम्**) हम वीर (**शूरसाता**) देवासुर संग्राम में (**धना**) दिव्य और भौतिक ऐश्वर्यों को (**भजेमहि**) प्राप्त करें॥२॥

**भावार्थ** :–क्षत्रियों में केवल क्षात्रबल ही नहीं, प्रत्युत ब्रह्मबल भी अपेक्षित होता है। वैसे ही ब्राह्मणों में ब्रह्मबल के अतिरिक्त क्षात्रबल भी अभीष्ट होता है। दोनों के समन्वय से ही व्यक्तियों और राष्ट्रों की उन्नति होती है॥२॥

**आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।**

**१७६०. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो**
**अश्विनोर्यातु सुष्टुतः। त्रिबन्धुरो मघवा विश्व**
**सौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे॥३॥**

**पदार्थ** :–(**अश्विनोः**) प्राणापानों का (**त्रिचक्रः**) आत्मा, मन और प्राण इन तीन चक्रों वाला, (**मधुवाहनः**) मधुर गति वाला, (**जीराश्वः**) वेगवान् इन्द्रिय-रूप घोड़ों वाला, (**सुष्टुतः**) सुप्रशंसित, (**त्रिबन्धुरः**) सत्त्व, रजस्, तमस् इन तीन बन्धनों वाला, (**मघवा**) ब्रह्मबल और क्षात्रबल रूप धन वाला, (**विश्वसौभगः**) सब सौभाग्यों से युक्त (**रथः**) देह-रूप रथ (**अर्वाङ्**) हमारे अनुकूल (**यातु**) चले। साथ ही (**नः**) हमारे (**द्विपदे**) दोपायों, और (**चतुष्पदे**) चौपायों को (**शुभ**) सुख (**आवक्षत्**) प्राप्त कराये॥३॥

**भावार्थ** :–प्राणापानों के ही सामर्थ्य से मनुष्यों का शरीर-रथ सबल, सफल क्रिया वाला, सज्जनों का हितकारी गाय-घोड़े आदि उपयोगी पशुओं को सुख देने वाला और दुष्टों का विध्वंस करने वाला होता है॥३॥

( १८ )

ऋषिः—अवत्सारः॥ देवता—पवमानः सोमः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में आनन्द-वर्षाओं का वर्णन है।

१७६१. प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः।
अच्छा वाजं सहस्रिणम्॥१॥

**पदार्थ** :—हे पवमान सोम अर्थात् पवित्र करने वाले रसागार परमेश्वर! (**असश्चतः**) किसी से भी रुकावट न डाले गये (**ते**) आपकी (**धाराः**) आनन्द-धाराएं (**सहस्रिणम्**) सहस्र संख्या वाले (**वाजम्**) बल को (**अच्छ**) प्राप्त कराने के लिए (**प्र यन्ति**) उपासक के पास पहुँचती हैं, (**दिवः**) न जैसे आकाश से (**वृष्टयः**) वर्षाएं (**वाजम्**) अन्न को (**अच्छ**) प्राप्त कराने के लिए (**प्रयन्ति**) भूतल पर पहुँचती हैं॥१॥

इस मन्त्र में श्लिष्टोपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे मेघ से वर्षा की धाराएं अन्न उत्पन्न करने के लिए खेतों पर बरसती हैं, वैसे ही जगदीश्वर से आनन्द की धाराएं बल उत्पन्न करने के लिए उपासकों के अन्तरात्मा में बरसती हैं॥१॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर क्या करता है यह कहा गया है।

१७६२. अभि प्रियाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति।
हरिस्तुञ्जान आयुधा॥२॥

**पदार्थ** :—(**हरिः**) मनोहर तथा दोषों को हरने वाला परमेश्वर (**विश्वा**) सब (**प्रियाणि**) प्रिय (**काव्या**) हितकर वचनों को (**चक्षाणः**) बोलता हुआ, और (आयुधा) शस्त्रास्त्रों को, अर्थात् काम-क्रोध आदि शत्रुओं के पराजय के लिए शत्रु दलन-सामर्थ्यों को (**तुञ्जानः**) देता हुआ (**अभि अर्षति**) हमारे प्रति आ रहा है, अन्तरात्मा में प्रकट हो रहा है॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर हमारे लिए हितकारी सन्देशों को प्रेरित करता है और शत्रुओं को हराने के लिए बल देता है॥२॥

अब यह कहते हैं कि परमेश्वर किनके अन्दर स्थित होता है।

१७६३. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः।
श्येनो न वंसु षीदति॥३॥

**पदार्थ** :—मनुष्यों को (**आयुभिः**) आयु के वर्षो से (**मर्मृजानः**) अलंकृत करता हुआ, और (**राजा इव**) राजा के समान (**इभः**) निर्भय तथा (**सुव्रतः**) शुभ कर्मों वाला (**सः**) वह पवमान सोम अर्थात् जगत् का उत्पत्तिकर्ता, शुभ गुणकर्मों को प्रेरित करने वाला, शान्त परमेश्वर (**वंसु**) जिन्हें उसकी लौ लगी हुई है उनके अन्दर (**सीदति**) बैठता है, (**श्येनः न**) जैसे बाज पक्षी (**वंसु**) वनों में (**सीदति**) बैठता है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है। पहली पूर्णोपमा है और दूसरी श्लिष्ट पूर्णोपमा, दोनों की संसृष्टि है॥३॥

**भावार्थ :—जिन्हें परमात्मा की चाह होती है** उनके प्रेम से **परवश** हुआ **वह** उनके **हृदय में स्थित होकर** निरन्तर शुभ प्रेरणा करता **रहता** है॥३॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

१७६४. स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि।
पुनान इन्दवा भर॥४॥

**पदार्थ** :—हे (**इन्दो**) आनन्द-रस से भिगोने वाले रसागार जगदीश! (**पुनानः**) पवित्र करते हुए (**सः**) वे धनाधीश आप (**दिवः**) आत्मलोक से (**उत उ**) और (**पृथिव्याः अधि**) पार्थिव देह से (**विश्वा वसु**) सब आत्मबल, योगसिद्धि, आरोग्य आदि धनों को (**नः**) हमारे लिए (**आ भर**) लाओ॥४॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर की कृपा से हम शारीरिक उन्नति और आत्मिक उन्नति करते हुए अभ्युदय और निःश्रेयस के अधिकारी हों॥४॥

**इत्येकोनविंशोऽध्यायः, अष्टमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः समाप्तः॥**

# अथ विंशोऽध्याय:

## नवमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्ध:

(१)

ऋषि:—नृमेध:॥ देवता—पवमान: सोम:॥ छन्द:—गायत्री॥ स्वर:—षड्ज:॥

प्रथम मन्त्र में आनन्द की धारों का वर्णन है।

**१७६५. प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः।**
**देवाँ अनु प्रभूषतः॥१॥**

**पदार्थ** :—(**वृष्णः**) मनोरथों को पूर्ण करने वाले, (**सुतस्य**) प्रकट किये हुए, (**ओजसः**) ओजस्वी, (**देवान्**) विद्वान् उपासकों को (**अनु**) अनुकूलतापूर्वक (**प्रभूषतः**) दिव्य गुणों से अलंकृत करते हुए (**अस्य**) इस पवित्र करने वाले रसागार परमात्मा की (**धाराः**) आनन्द-धारें (**प्र अक्षरन्**) बरस रही हैं॥१॥

**भावार्थ** :—मेघ से पवित्र जल-धारों के समान रसमय परमेश्वर से जो पवित्र और पवित्रतादायिनी परमानन्द की धारें बरसती हैं, उनमें सब को चाहिए कि अपने आत्मा को नहलायें॥१॥

अगले मन्त्र में यह बताते हैं कि कौन कैसे परमेश्वर की आराधना करते हैं।

**१७६६. सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्तः कारवो गिरा।**
**ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**गिरा**) वाणी से (**गृणन्तः**) अर्चना करते हुए (**वेधसः**) मेधावी (**कारवः**) स्तोता लोग (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**जज्ञानम्**) उत्पन्न करने वाले (**सप्तिम्**) सप्तरश्मि सूर्य के समान विद्यमान सोम परमात्मा को (**मृजन्ति**) अपने आत्मा में प्रकट करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—सूर्य के समान प्रकाशक परमेश्वर की उपासना से उपासक के आत्मा में दिव्य ज्योति का प्रकाश फैल जाता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर से प्रार्थना की गयी है।

**१७६७. सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो।**
**वर्धा समुद्रमुक्थ्य॥३॥**

**पदार्थ** :–( **हे प्रभूवसो** ) प्रचुर ऐश्वर्य वाले ( **सोम** ) जगत्पति, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! ( **पुनानाय** ) स्वयं को पवित्र करने वाले उपासक के लिए ( **ते** ) आपके ( **तानि** ) वे प्रसिद्ध तेज ( **सुषहा** ) भली-भाँति काम, क्रोध आदि रिपुओं को परास्त करने वाले होवें। हे ( **उक्थ्य** ) प्रशंसनीय सोम अर्थात् चन्द्रमा के समान आह्लादक परमात्मदेव! आप ( **समुद्रम्** ) ऐश्वर्य के समुद्र को ( **वर्ध** ) बढ़ाओ॥३॥

**भावार्थ** :–पूर्ण चन्द्रमा-रूप सोम जैसे पानी के समुद्र को बढ़ाता है, वैसे ही भक्ति के उपहारों से पूर्ण सोम परमेश्वर उपासक के लिए भौतिक और दिव्य ऐश्वर्य के समुद्र को बढ़ाता है॥३॥

( २ )

**ऋषिः–वामदेवः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–द्विपदा गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४३८ क्रमांक पर परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जगदीश्वर और आचार्य दोनों को कह रहे हैं।

**१७६८. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे॥१॥**

**पदार्थ** :–( **एषः** ) यह जगदीश्वर वा आचार्य ( **ब्रह्मा** ) चारों वेदों का ज्ञाता है, ( **यः** ) जो ( **ऋत्वियः** ) ऋतुओं का स्वामी वा ऋतु-ऋतु में विद्या की वर्षा करने वाला है। उस जगदीश्वर वा आचार्य का ( **इन्द्रः नाम** ) इन्द्र नाम है। उसके द्वारा मैं ( **श्रुतः** ) कीर्तिमान् वा बहुश्रुत किया गया हूँ। उसकी मैं ( **गृणे** ) अर्चना वा स्तुति करता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :–जैसे सृष्टि के आदि में चारों वेदों का प्रकाशक, सब ऋतुओं को रचने वाला परमेश्वर सब के द्वारा पूजा करने योग्य है, वैसे ही वेद-वेदाङ्गों को पढ़ाने वाला, प्रत्येक ऋतु में

विद्या की वर्षा करने वाला आचार्य भी सत्कार के योग्य है॥१॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर वा आचार्य की महिमा वर्णित है।

१७६९. त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**शवसः पते**) अध्यात्म-बल, ब्रह्मबल वा विद्याबल के स्वामी परमेश्वर वा आचार्य! (**गिरः न**) वाणियों के समान (**संयतः**) प्रयत्नशील प्रजाएं भी (**त्वाम् इत्**) आपको ही (**यन्ति**) प्राप्त होती हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे वेदवाणियां जगदीश्वर के गुणों का वर्णन करती हैं और पुरुषार्थी प्रजाएं उसे पाने का यत्न करती हैं, वैसे ही आचार्य की भी वाणियां से स्तुति करनी चाहिए तथा प्रयत्नशील विद्यार्थियों को शिष्यभाव से उसके समीप पहुँचाना चाहिए॥२॥

तृतीय ऋचा पूर्वार्चिक में ४५३ क्रमांक पर परमात्मा, जीवात्मा और राजा को सम्बोधन की गयी थी। यहाँ परमेश्वर और आचार्य को कहते हैं।

१७७०. वि स्रुतयो यथा पथ इन्द्र त्वद् यन्तु रातयः॥३॥

**पदार्थ** :—(**यथा**) जिस प्रकार (**पथः**) राजमार्ग से (**स्रुतयः**) छोटे-छोटे मार्ग विविध दिशाओं में जाते हैं, उसी प्रकार हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर वा आचार्य! (**त्वत्**) आपके पास से (**रातयः**) ऐश्वर्यों के दान वा विद्या-दान (**वियन्तु**) विविध लोगों के पास जाएं॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे राजमार्ग से विविध छोटे-छोटे मार्ग निकाल कर पथिकों का उपकार करते हैं, वैसे ही परमेश्वर और आचार्य से दिव्य गुण-कर्म और विविध विद्याएं निकल कर उपासकों वा शिष्यों को उपकृत करें॥३॥

(३)

**ऋषिः—प्रियमेधः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—आनुष्टुभः**

**प्रगाथः( १ अनुष्टुप्, २–३ गायत्री )॥ स्वरः–१ गान्धारः; २–३ षड्जः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३५४ क्रमांक पर परमात्मा और राजा को सम्बोधित की गयी थी। यहाँ परमात्मा और जीवात्मा को सम्बोधन करते हैं।

**१७७१. आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि।**
**तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम्॥१॥**

**पदार्थ** :–हे **( शविष्ठ )** बलिष्ठ परमेश्वर वा जीवात्मन्! **( तुविकूर्मिम् )** बहुत से कर्मों के कर्ता, **( ऋतीषहम् )** आक्रामक शत्रु-सेनाओं को पराजित करने वाले, **( सत्पतिम् )** सज्जनों के पालनकर्ता ( इन्द्रं त्वा ) सत्य, अहिंसा आदि ऐश्वर्यों से युक्त, विघ्नों को दूर करने में समर्थ आप परमेश्वर वा जीवात्मा को, हम ( ऊतये ) रक्षा के लिए और **( सुम्नाय )** सुख के लिए **( आवर्तयामसि )** अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं, **( यथा )** जिस प्रकार **( रथम् ) रथ को प्रवृत्त किया जाता है**॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–मनुष्य यदि परमेश्वर की उपासना करे और उसका आत्मा यदि जागरूक तथा सक्रिय हो जाए तो वह महान् उत्कर्ष और मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है॥१॥

आगे फिर वही विषय है।

**१७७२. तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते।**
**आ पप्राथ महित्वना॥२॥**

**पदार्थ** :–हे **( तुविशुष्म )** बहुत बलवान्, **( तुविक्रतो )** बहुत प्रज्ञा वाले वा बहुत से यज्ञों को करने वाले, **( शचीवः )** कर्मवान् **( मते )** मननशील परमेश्वर वा जीवात्मन्! आप **( विश्वया )** बहुत प्रकार के **( महित्वना )** महत्त्वों से **( आ पप्राथ )** परिपूर्ण हो॥२॥

**भावार्थ** :–यद्यपि महत्त्व में परमेश्वर जीवात्मा से अधिक है तो भी दोनों ही बलवान् बुद्धिमान्, मननशील और कर्मण्य हैं। जैसे परमेश्वर के बिना ब्रह्माण्ड की व्यवस्था नहीं चल

सकती, वैसे ही जीवात्मा के बिना शरीर की व्यवस्था नहीं होती॥२॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर और जीवात्मा का महत्त्व वर्णित है।

**१७७३. यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः।**
**हस्ता वज्रं हिरण्ययम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे इन्द्र! हे परमेश्वर वा जीवात्मन्! (**महः**) महान् (**यस्य**) ते जिस तेरी (**महिना**) महिमा से (**हस्ता**) मनुष्य के दोनों हाथ (**ज्मायन्तम्**) पृथिवी के समान आचरण करने वाले अर्थात् विशाल, (**हिरण्ययम्**) ज्योतिर्मय (**वज्रम्**) वज्र को (**परि ईयतुः**) ग्रहण करते हैं, वह तू (**महित्वना आपप्राथ**) महिमा से परिपूर्ण है। [यहाँ '**महित्वना आपप्राथ**' यह वाक्यपूर्ति के लिए पूर्व मन्त्र से लिया गया है]॥३॥

**भावार्थ** :—मनुष्य जो विविध शस्त्रास्त्रों का ग्रहण, उन्हें चलाना, शत्रु को जीतना आदि महान् कर्मों को करने में समर्थ होता है वह महिमा परमेश्वर और जीवात्मा की ही है॥३॥

(४)

ऋषिः—दीर्घतमा औचथ्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दःअनुष्टुप् (१ विराट्, २ भुरिक्, ३ निचृत्)॥ स्वरः—पञ्चमः॥

प्रथम मन्त्र में यह कहा गया है कि मनुष्य-जन्म को प्राप्त जीवात्मा कैसा हो।

**१७७४. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३**
**नार्वा। सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा॥१॥**

**पदार्थ** :—(**यः**) जो अग्नि अर्थात् नेता जीवात्मा (**नार्मिणीम्**) हास-विलास युक्त (**पुरम्**) देह-नगरी को (**आ अदीदेत्**) तेज से दीप्तिमान् करता है, वह (**अत्यः**) एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाला अथवा मोक्ष को प्राप्त करने वाला (**कविः**) दूरदर्शी प्रज्ञा वाला, (**नभन्यः न**) आकाशवर्ती वायु के समान (**अर्वा**) दोषों का हिंसक, और (**सूरः न**) सूर्य के समान (**रुरुक्वान्**) तेजस्वी तथा (**शतात्मा**) शरीर से शतायु होवे॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा पूर्वजन्म में किये हुए शुभ कर्मों के अनुसार मानव-देह प्राप्त करके बुद्धि के विवेक से कर्तव्य कर्मों को करता हुआ वायु के समान सब दोषों को विनष्ट करके सूर्य के समान तेजस्वी होता हुआ उत्कर्ष को प्राप्त करे॥१॥

अगले मन्त्र में द्विजन्मा का विषय है।

**१७७५. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि**
**शुशुचानो अस्थात्। होता यजिष्ठो अपां**
**सधस्थे॥२॥**

**पदार्थ** :—( **द्विजन्मा** ) एक जन्म माता-पिता से और दूसरा जन्म आचार्य तथा विद्या से, इस प्रकार जिसने दो जन्म प्राप्त किये हैं वह ( **त्री रोचनानि** ) दैहिक, आत्मिक और सामाजिक तीन तेजों को ( **अभि** ) प्राप्त करके ( **विश्वा रजांसि** ) सब रजोगुणों को ( **शुशुचानः** ) सत्त्व गुण से प्रकाशित करता हुआ, ( **होता** ) होम करने वाला, ( **अपां सधस्थे** ) नदियों के संगम पर ( **यजिष्ठः** ) अतिशय परमेश्वर-पूजा रूप यज्ञ को करने वाला होकर ( **अस्थात्** ) निवास करता है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्य माता-पिता से जन्म पाकर यथासमय गुरुकुल में प्रविष्ट होकर, विद्याएं पढ़कर, तेज प्राप्त करके, आचार्य के गर्भ से दूसरा जन्म पाकर, समावर्तन संस्कार करा कर, स्नातक बनकर, घर जाकर ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ आदि शुभकर्मों को करता हुआ और दूसरे मनुष्यों को उपदेश द्वारा धार्मिक बनाता हुआ जीवन व्यतीत करे॥२॥

आगे फिर द्विजन्मा का विषय है।

**१७७६. अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि**
**श्रवस्या। मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश॥३॥**

**पदार्थ** :—( **यः द्विजन्मा** ) जो माता-पिता से एक और

आचार्य से दूसरा इस प्रकार दो जन्म प्राप्त करके द्विज हो जाता है (सः अयम्) वह यह (होता) सबको विद्या, सुख आदि का देने वाला और होम करने वाला होता है। साथ ही (विश्वा) सब (श्रवस्या) यश के योग्य (वार्याणि) वरणीय यम, नियम आदि कर्मों को (दधे) अपने जीवन में धारण कर लेता है। (यः) और जो (मर्तः) मनुष्य अर्थात् आचार्य (अस्मै) इसे (ददाश) विद्या देता है, वह उस सुशिक्षित विद्वान् द्विज से (सुतुकः) सुपुत्रवान् हो जाता है॥३॥

**भावार्थ** :–आचार्य से विद्या पढ़ कर, स्नातक हो, द्विज बन कर ऐसा आचरण करे जिससे उसका यश सब जगह फैले। ऐसे गुणवान् द्विज से सचमुच आचार्य भी स्वयं को सुपुत्रवान् मानता है॥३॥

**(५)**

**ऋषिः–वामदेवः॥ देवता–अग्निः॥ छन्दः–पदपङ्क्तिः॥ स्वरः–पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ४३४ क्रमांक पर परमेश्वर की अर्चना के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय कहा जा रहा है।

**१७७७. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्।**
**ऋध्यामा त ओहैः॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (अग्ने) जीवननायक परमेश्वर! (अद्य) आज (अश्वं न) व्यापक सूर्य के समान प्रकाशमान, और (क्रतुं न) यज्ञ-कर्म के समान (भद्रम्) भद्र, (हृदिस्पृशम्) हृदय में निवास करने वाले (तम्) उस शरीरवर्ती अपने अन्तरात्मा को (ते ओहैः) तेरे द्वारा प्रेरित (स्तोमैः) वेदमन्त्रों से, हम (ऋध्याम) बढ़ायें, उद्बोधन दें॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :–जो तेजस्वी और कर्मण्य जीवात्मा सबके हृदय में स्थित है उसे उद्बोधक वेदमन्त्रों से अधिकाधिक उद्बोधन देना चाहिए तथा गुणगरिमा से बढ़ाना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का वर्णन है।

१७७८. अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ॥२॥

**पदार्थ** :-(**अध**) हे (**अग्ने**) जीवन को उन्नत करने वाले परमात्मदेव! आप (**भद्रस्य क्रतोः**) शुभकर्म के, (**साधोः दक्षस्य**) साधु बल के और (**बृहतः ऋतस्य**) महान् सत्य के (**रथीः**) स्वामी (**हि**) निश्चय ही (**बभूथ**) हो॥२॥

**भावार्थ** :-जैसे जगदीश्वर श्रेष्ठ कर्म, बल और सत्य का अधिपति है, वैसे ही मनुष्यों को भी होना चाहिए॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

१७७९. एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वा३र्ण ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥३॥

**पदार्थ** :-हे (**अग्ने**) जीवनाधार, सर्वान्तर्यामी जगदीश! आप (**एभिः**) इन (**अर्कैः**) अर्चना के साधन वेदमन्त्रों द्वारा (**नः अर्वाङ्**) हमारे अभिमुख (**भव**) होओ। आप (**स्वः न**) सूर्य के समान (**ज्योतिः**) ज्योतिः स्वरूप हो। (**सुमनाः**) प्रसन्न मन वाले आप (**विश्वेभिः**) सब (**अनीकैः**) सद्गुणों की सेनाओं के साथ वा तेजों के साथ (**न अर्वाङ् भव**) हमारे अभिमुख होओ॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :-जैसे सूर्य अपनी किरणों से हमारे अभिमुख होता है, वैसे ही जगदीश्वर सब सद्गुणों और तेजों के साथ हमें प्राप्त हो॥३॥

(६)

ऋषिः-प्रस्कण्वः काण्वः॥ देवता-अग्निरश्विनावुषाश्च॥ छन्दः-बार्हत प्रगाथः (१ बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः-१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४० क्रमांक पर हो चुकी है। यहाँ योग का विषय दर्शाया जा रहा है।

**१७८०. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य। आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**अमर्त्य**) अमर कीर्ति वाले, (**जातवेदः**) योग का ज्ञान देने वाले (**अग्ने**) योगिराज! (**त्वम्**) आप (**अद्य**) आज (**दाशुषे**) आत्मसमर्पणकर्ता मेरे लिए (**विवस्वत्**) तामस वृत्तियों के अन्धकार को दूर करने वाले, (**उषसः**) योगमार्ग में उदित हुई ज्योतिष्मती प्रज्ञा के (**चित्रम्**) अद्भुत (**राधः**) ऐश्वर्य को, और (**उषर्बुधः देवान्**) उषाकाल में जागने वाले दिव्य गुणों को (**आ वह**) प्राप्त कराओ॥१॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की कृपा से, जीवात्मा के निरन्तर किये जाने वाले प्रयत्न से और योग सिखाने वाले गुरु की शिक्षा से उत्तरोत्तर नवीन-नवीन उपलब्धियाँ योगाभ्यासी को होती हैं और विवेकख्याति द्वारा मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है॥१॥

आगे फिर योग के विषय में कहते हैं।

**१७८१. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्। सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) मार्गदर्शक योगिराज! (**जुष्टः**) सेवन किये हुए आप (**हि**) निश्चय ही (**दूतः**) दोषों को तपा डालने वाले, (**हव्यवाहनः**) प्राप्तव्य योगसिद्धियों को प्राप्त कराने वाले, और (**अध्वराणाम्**) किये जाने वाले अष्टांग योग रूप यज्ञों के (**रथीः**) चालक (**असि**) हो। आप (**अश्विभ्याम्**) प्राणापानों से (**उषसा**) तथा ज्योतिष्मती प्रज्ञा से (**सजूः**) सहायवान् होकर (**अस्मे**) हमें (**सुवीर्यम्**) सुवीर्ययुक्त (**बृहत् श्रवः**) योगशास्त्र का महान् ज्ञान और उससे मिलने वाला यश (**धेहि**) प्रदान करो॥२॥

**भावार्थ** :—अष्टांग योग का अभ्यास करने वाले मनुष्य के लिए प्रणवजप, परमेश्वर की उपासना और योग के गुरु द्वारा

बताये हुए मार्ग का अनुसरण करना लक्ष्य प्राप्ति में परम सहायक होते हैं॥२॥

( ७ )

ऋषि:—बृहदुक्थो वामदेव्य:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—त्रिष्टुप्॥ स्वर:—धैवत:॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३२५ क्रमांक पर चन्द्र-सूर्य और मन-आत्मा के विषय में की जा चुकी है। यहाँ दूसरी व्याख्या दर्शाते हैं।

**१७८२. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार। देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान॥१॥**

**पदार्थ** :—(**समने**) संग्राम में (**बहूनाम्**) अनेक शत्रुओं को (**विधुम्**) बाँधने वाले, (**दद्राणम्**) उनकी दुर्गति करने वाले (**युवानं सन्तम्**) युवा होते भी किसी वीर को (**पलित:**) बूढ़ा काल (**जगार**) निगल लेता है। (**देवस्य**) क्रीडा करने वाले जगत्पति इन्द्र परमेश्वर के (**महित्वा**) महान् (**काव्यम्**) जगत्-रूप दृश्य काव्य को (**पश्य**) देखो, कि (**स:**) वह (**अद्य**) आज (**ममार**) मरा पड़ा है (**य:**) जो (**ह्य:**) कल (**समान**) भलीभाँति सांस ले रहा था, जीवित था॥१॥

**भावार्थ** :—बड़ी भारी शक्ति जिनके पास होती है वे भी मृत्यु के मुख में जाने से नहीं बच पाते, यह देखकर धर्म-कर्मों में और परमात्मा के चिन्तन में मन लगाना चाहिए॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा के गुण वर्णित हैं।

**१७८३. शाक्मना शाको अरुण: सुपर्ण आ यो मह: शूर: सनादनीड:। यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता॥२॥**

**पदार्थ** :—(**शाक्मना**) शक्ति से (**शाक:**) शक्तिमान्, (**अरुण:**) तेज से देदीप्यमान, (**सुपर्ण:**) उत्कृष्ट पालनकर्ता

इन्द्र जगदीश्वर (आ) हमारे पास आये, (यः) जो (महः) महान्, (शूरः) वीर (सनात्) सदा से (अनीडः) बिना घर वाला है। वह (यत् चिकेत) जो कुछ जानता है (तत् सत्यम् इत्) वह सत्य ही होता है, (न मोघम्) असत्य नहीं। वह (स्पार्हम्) चाहने योग्य (वसु) आध्यात्मिक और भौतिक ऐश्वर्य का (उत जेता) विजेता भी होता है। (उत् दाता) और दाता भी॥२॥

**भावार्थ** :—जो इन्द्र परमेश्वर सर्वशक्तिमान् तेजस्वी, मनस्वी, पालनकर्ता, पूर्णकर्ता, महान्, शूर, सत्य ज्ञानवाला, ऐश्वर्यशाली और ऐश्वर्य का दाता है उसकी उपासना और उसका अभिनन्दन सबको करना चाहिए॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१७८४. ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री। ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्म-मुदजायन्त देवाः॥३॥**

**पदार्थ** :—(**मह्नः कर्मणः**) महान् सृष्ट्युत्पत्ति आदि कर्म के किये जाते समय (**ये देवाः**) जो दिव्यगुण, इन्द्र परमेश्वर में (**ऋतेकर्मम्**) विना प्रयत्न के स्वभावतः (**उदजायन्त**) प्रकट हुए, (**येभिः**) जिन दिव्य गुणों से (**व्रजी**) वज्रधारी के समान उस जगदीश्वर ने (**वृत्रहत्याय**) विघ्नों के विनाशार्थ (**औक्षत्**) जीवात्मा को सींचा, (**एभिः**) उन दिव्य गुणों से वह, आज भी (**वृष्ण्या**) सुखवर्षक (**पौंस्यानि**) बलयुक्त कर्मों को (**आददे**) करता है॥३॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर में स्वभावतः सदा रहने वाले जो गुण हैं उन्हीं से वह सारे सृष्टि के कार्य को करता है। उन गुणों में से कुछ अंश वह मनुष्यों में भी निहित कर देता है, जिससे वे विघ्न, पाप, दोष आदि के विनाश में समर्थ होते हैं॥३॥

(८)

**ऋषिः—बिन्दुः पूतदक्षो वा। देवता—मरुतः॥ छन्दः—गायत्री॥**

स्वरः—षड्जः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १७४ क्रमांक पर भक्तिरस, ज्ञानरस आदि के विषय में की जा चुकी है। यहाँ ब्रह्मानन्द-रस का विषय वर्णित करते हैं।

**१७८५. अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।**
**उत स्वराजो अश्विना॥१॥**

**पदार्थ** :—(**अयम्**) यह (**सोमः**) आनन्द-रस (**सुतः अस्ति**) परमेश्वर के पास से परिस्रुत किया गया है। (**स्वराजः अस्य**) निज दीप्ति वाले इस रस को (**मरुतः**) प्राण (**उत**) और (**अश्विनौ**) आत्मा तथा मन (**पिबन्ति**) पीते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—उपासकों द्वारा परमात्मा के ध्यान से जो ब्रह्मानन्द-रस प्राप्त किया जाता है उससे आत्मा, मन, प्राण आदि सभी तरंगित हो जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में यह बताया गया है कि कैसे ब्रह्मानन्द-रस को कौन पीते हैं।

**१७८६. पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः।**
**त्रिषधस्थस्य जावतः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**तना**) विस्तृत रूप से (**पूतस्य**) पवित्र, (**त्रिषधस्थस्य**) आत्मा, मन, प्राण इन तीन स्थानों में स्थित (**जावतः**) वेगयुक्त ब्रह्मानन्द-रस को (**मित्रः**) मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा वृत्तियों से युक्त योगी, (**अर्यमा**) सूर्यवत् तेजस्वी एवं ज्योतिष्मती प्रज्ञा से युक्त योगी और (**वरुणः**) व्याधि, स्त्यान, संशय आदि विघ्नों का जिसने निवारण कर दिया है ऐसे योगी (**पिबन्ति**) पान करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—परिपक्व योगी ही समाधि में स्थित होकर पवित्र ब्रह्मानन्द-रस का आस्वादन करते हैं॥२॥

आगे फिर ब्रह्मानन्द का विषय है।

१७८७. उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः।
प्रातर्होतेव मत्सति॥३॥

**पदार्थ** :—( उत उ नु ) और ( प्रातः ) प्रातःकाल ( सुतस्य ) ब्रह्मयज्ञ द्वारा परिस्रुत, ( गोमतः ) प्रकाशयुक्त ( अस्य ) इस ब्रह्मानन्द-रूप सोमरस के ( जोषम् ) सेवन को ( इन्द्रः ) योगी मनुष्य ( मत्सति ) स्तुति करता है, ( होता इव ) जैसे होम करने वाला मनुष्य अग्नि की स्तुति करता है॥३॥

यहाँ उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे प्रातःकाल देवयज्ञ-अग्नि में होम करने वाला पुरुष अग्नि की स्तुति करता है, वैसे ही योगी ब्रह्मयज्ञ में परमात्मा की संगति से प्राप्त आनन्द की स्तुति करता है॥३॥

( ९ )

**ऋषिः—जमदग्निर्भार्गवः॥ देवता—सूर्यः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः ( १ बृहती, २ सतोबृहती )॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा (पूर्वार्चिक में २७६ क्रमांक पर) परमात्मा, राजा और आचार्य के विषय में व्याख्यात की गयी थी। यहां सूर्य के दृष्टान्त से जीवात्मा को उद्बोधन दे रहे हैं।

१७८८. बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते
सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि॥१॥

**पदार्थ** :—( बट् ) सचमुच, हे ( सूर्य ) सूर्य! तू ( महान् असि ) विशाल है, ( बट् ) सचमुच हे ( आदित्य ) आदित्य! तू ( महान् असि ) महान् है। हे ( पनिष्टम ) सौरमण्डल में सबसे अधिक स्तुति योग्य! ( महः सतः ते ) तुझ तेजस्वी की ( महिमा ) महिमा अद्भुत है। हे ( देव ) प्रकाशक! तू ( मह्ना ) महिमा से ( महान् असि ) महान् है—यह सूर्य की अन्योक्ति से जीवात्मा को कहा गया है॥१॥

यहाँ अन्योक्ति अलंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—सूर्य परिमाण में महान् है, क्योंकि उसकी परिधि आठ लाख कोस की लम्बाई से भी अधिक है; कर्म से महान् है, क्योंकि सब ग्रहोपग्रहों का प्रकाशक और जीवनाधार है; गुरुत्वाकर्षण में महान् है, क्योंकि सब आकाशीय पिण्डों

को अपने आकर्षण से धारण किये हुए है; ज्योति में महान् है, क्योंकि ज्योति का पुंज ही है। इसी प्रकार मनुष्य के आत्मा में भी बहुत बड़ी शक्ति निहित है, उसे पहचानकर वह महान् कर्मों को करे यह उसे उद्‌बोधन दिया गया है॥१॥

आगे फिर उसी विषय को कहते हैं।

**१७८९. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि। मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**बट्**) सचमुच, हे (**सूर्य**) सूर्य! तू (**श्रवसा**) यश से (**महान् असि**) महान् है। (**सत्रा**) सचमुच ही हे (**देव**) ज्योतिर्मय! तू (**महान् असि**) महान् है। (**असुर्यः**) प्राणियों का हितकर्ता तू (**मह्ना**) महिमा से (**देवानाम्**) भूमण्डल, सोम, मंगल, बुध आदि प्रकाशनीयों के (**पुरोहितः**) सामने निहित है, जिससे उन्हें प्रकाशित कर सके। तू (**विभु**) व्यापक, (**अदाभ्यम्**) हिंसा न किये जा सकने योग्य (**ज्योतिः**) ज्योति है—यह सूर्य की अन्योक्ति से जीवात्मा को कहा गया है॥२॥

यहाँ भी अन्योक्ति अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा भी सूर्य के समान यशस्वी, गुणों में महान्, अग्रणी और ज्योतिष्मान् है, इसलिए वह अपने गुणों को पहचान कर महान् कर्मों को करता हुआ अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करे॥२॥

## (१०)

**ऋषिः—सुकक्षः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १५० क्रमांक पर परमात्मा और आचार्य के विषय में की जा चुकी है। यहाँ जीवात्मा को उद्‌बोधन है।

**१७९०. उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते। उप नो हरिभिः सुतम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**मदानां पते**) आनन्ददायक ज्ञानों और कर्मों

के स्वामी जीवात्मन्! तू (नः) हमारी (हरिभिः) ज्ञानेन्द्रियों से (सुतम्) उत्पन्न किये ज्ञान को (उप याहि) प्राप्त कर, (नः) हमारी (हरिभिः) कर्मेन्द्रियों से (सुतम्) किये गये कर्म को (उप याहि) प्राप्त कर॥१॥

**भावार्थ** :—मनसहित ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय रूप साधनों से निष्पन्न किये गये ज्ञान और कर्म का संग्रह करके मनुष्य का जीवात्मा अध्यात्ममार्ग में पग रख कर उन्नति प्राप्त करे॥१॥

आगे फिर जीवात्मा का ही विषय वर्णित है।

३ १ २र ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २
**१७९१. द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः।**
१ २ ३ १ २ ३ २
**उप नो हरिभिः सुतम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(यः इन्द्रः) जो जीवात्मा (वृत्रहन्तमः) काम, क्रोध आदि शत्रुओं का तथा व्याधि, स्त्यान आदि योग-विघ्नों का अतिशय विनाशक (शतक्रतुः) और बहुत से यज्ञ करने वाला, इस प्रकार (द्विता) दो रूपों में (विदे) जाना जाता है, वह (नः) हमारे (हरिभिः) ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से (सुतम्) उत्पन्न किये गये ज्ञान और कर्म को (उप) समीपता से प्राप्त करे॥२॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा के दो प्रकार के कर्म हैं, एक शत्रुओं का वध और दूसरा योग आदि यज्ञ की पूर्ति। उन्हें करने के लिए वह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का उपयोग करके उन्नति के शिखर पर चढ़े॥२॥

अगले मन्त्र में पुनः जीवात्मा को कहते हैं।

१ २र ३ १ २र ३ १ २
**१७९२. त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि।**
१ २ ३ १ २ ३ २
**उप नो हरिभिः सुतम्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (वृत्रहन्) काम, क्रोध आदि छह रिपुओं के और योगमार्ग में आये हुए विघ्नों के विनाशक जीवात्मन्! (त्वं हि) तू निश्चय ही (एषाम्) इन (सोमानाम्) ज्ञान-रसों और कर्म-रसों का (पाता) पान करने वाला (असि) है। (नः) हमारे (हरिभिः) मनसहित ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों

से (सुतम्) उत्पन्न किये गये ज्ञान और कर्म को (उप) समीपता से प्राप्त कर॥३॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा को योग्य है कि वह शुभ ज्ञान और कर्म का सम्पादन करके योग की विधि से परमात्मा के साक्षात्कार द्वारा मोक्ष प्राप्त करे॥३॥

(११)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—भुरिगनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३८२ क्रमांक पर परमात्मा की स्तुति के विषय में की जा चुकी है यहाँ एक साथ आचार्य और परमात्मा दोनों का विषय कहते हैं।

**१७९३. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्। विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः॥१॥**

**पदार्थ** :—हे विद्यार्थियो वा प्रजाओ! तुम (**महेवृधे**) महत्त्व के लिए बढ़ाने **वाले**, (**महे**) महान् इन्द्र अर्थात् आचार्य **वा** परमात्मा के लिए (**प्र भरध्वम्**) उत्तम उपहार लाओ। (**प्रचेतसे**) प्रकृष्ट चित्त वा प्रकृष्ट ज्ञान वाले उसके लिए (**सुमतिम्**) उत्तम स्तुति (**प्र कृणुध्वम्**) भलीभांति करो। हे आचार्य वा परमात्मन्! (**चर्षणिप्राः**) मनुष्यों को विद्या, धन, धान्य और सद्गुणों से पूर्ण करने वाले आप (**विशः**) विद्यार्थियों वा प्रजाओं को (**पूर्वीः**) श्रेष्ठ (**प्रचर**) करो॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे जगदीश्वर मनुष्यों को सुखी करता है वैसे ही आचार्य का भी यह कर्तव्य है कि वह छात्रों को विद्या आदि से पूर्ण करके सुखी करे और उनमें योगाभ्यास आदि की अभिरुचि उत्पन्न कर के उन्हें अध्यात्म मार्ग का पथिक बनाये॥१॥

अगले मन्त्र में फिर परमात्मा और आचार्य का विषय कहा गया है।

**१७९४. उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः। तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः॥२॥**

**पदार्थ** :—(**उरुव्यचसे**) विद्या आदि में बहुत व्याप्ति वाले

(महिने) महान् (इन्द्राय) परमात्मा वा आचार्य के लिए अर्थात् उनकी प्रसन्नता के लिए (विप्राः) विद्वान् जन (सुवृक्तिम्) उत्तम क्रिया और (ब्रह्म) ज्ञान-संग्रह (जनयन्त) करते हैं। (धीराः) बुद्धिमान् वे (तस्य) उस परमात्मा वा आचार्य के (व्रतानि) नियमों को (न मिनन्ति) नहीं तोड़ते हैं॥२॥

**भावार्थ** :—बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिए कि वे परमात्मा और आचार्य से निर्धारित नियमों का सदैव पालन करें और उसके द्वारा प्रेय मार्ग और श्रेय मार्ग में अपनी उन्नति करें॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१७९५. इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे**
**सहध्यै। हर्यश्वाय बर्हया समापीन्॥३॥**

**पदार्थ** :—**(अनुत्तमन्युम्)** अबाधित तेज वाले **(राजानम्)** यश से प्रदीप्त **(इन्द्रम् एव)** परमात्मा वा आचार्य को ही **(वाणीः)** स्तोताओं वा शिष्यों की वाणियां **(सहध्यै)** विघ्नों वा दोषों को निष्प्रभाव करने के लिए **(सत्रा)** उपासना-सत्र में वा विद्या-सत्र में **(दधिरे)** नेता-रूप से स्थापित करती हैं। हे मनुष्य! तू **(हर्यश्वाय)** जिसके बनाये हुए सूर्य, चन्द्र, भूमण्डल आदि लोक आपस में आकर्षण से युक्त हैं ऐसे परमात्मा को पाने के लिए वा जितेन्द्रिय आचार्य को पाने के लिए **(आपीन्)** बन्धुओं को **(संबर्हय)** भलीभांति प्रेरित कर॥३॥

**भावार्थ** :—विद्या-यज्ञ में गुरु और उपासना-यज्ञ में परमेश्वर को प्राप्त करके मनुष्यों को अपने अभीष्ट सिद्ध करने चाहिएं॥३॥

(१२)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—बार्हतः प्रगाथः॥ (१. बृहती, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ मध्यमः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ३१० क्रमांक पर हो चुकी है। दान किसे चाहिए इस विषय में कहते हैं।

**१७९६. यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय। स्तोतारमिद्**
**दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर! (**यावतः**) जितने धन के (**त्वम्**) आप अधीश्वर हो (**एतावत्**) उतने धन का यदि (**अहम्**) मैं (**ईशीय**) अधीश्वर हो जाऊं, तो (**रदावसो**) हे धनदाता! मैं (**स्तोतारम् इत्**) आपके उपासक का ही, उस धन से (**दधिषे**) धारण-पोषण करूँ, (**पापत्वाय**) पाप कर्म के लिए (**न रंसिषम्**) दान न करूं॥१॥

**भावार्थ** :—मनुष्य को चाहिए कि सत्पात्र को ही धन आदि का दान करे, पाप की वृद्धि के लिए कभी दान न दे॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**१७९७. शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद् विदे।**
**न हि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता**
**च न॥२॥**

**पदार्थ** :—यदि मैं धनपति हो जाऊं तो (**कुहचिद्विदे**) जहाँ कहीं भी विद्यमान (**महयते**) परमेश्वर पूजक समाजसेवी मनुष्य को (**दिवेदिव**) प्रतिदिन (**रायः**) धन (**आ शिक्षेयम् इत्**) अवश्य ही दान किया करूं। हे (**मघवन्**) धनपति परमात्मन्! (**त्वत् अन्यत्**) आपसे भिन्न कोई भी (**नः**) हमारा (**आप्यम्**) प्राप्तव्य और (**वस्यः**) अतिशय शरण देने वाला (**नहि**) नहीं (**अस्ति**) है, (**पिता च**) और पिता के समान पालक भी (**न**) नहीं है॥२॥

**भावार्थ** :—दान सदा सुपात्र में ही देना चाहिए, कुपात्र में नहीं॥२॥

## (१३)

**ऋषिः—वसिष्ठः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—विराडनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धारः॥**

प्रथम मन्त्र में उपास्य-उपासक का विषय वर्णित है।

१७९८. श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्। कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा॥१॥

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश्वर! आप (**विपिपानस्य**) जिसने विशेषरूप से ज्ञान-रस और कर्म-रस का पान कर लिया है ऐसे (**अद्रेः**) अविनाशी जीवात्मा की (**हवम्**) प्रार्थना को (**श्रुधि**) सुनो, (**अर्चतः**) पूजक (**विप्रस्य**) मेधावी विद्वान् की (**मनीषाम्**) स्तुति को (**बोध**) जानो। आगे स्तोता को सम्बोधन करते हैं—हे स्तोता! तू (**सचा**) अन्य स्तोताओं के साथ मिलकर (**इमा**) इन (**अन्तमा**) निकटतम (**दुवांसि**) पूजाओं को (**कृष्व**) इन्द्र जगदीश्वर के लिए कर॥१॥

**भावार्थ** :—हार्दिक निश्छल उपासनाओं को ही परमेश्वर स्वीकार करता है, छल-छिद्रों से युक्त, बनावटी उपासनाओं को नहीं॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

१७९९. न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्। सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि॥२॥

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश! (**तुरस्य**) दोषों के हिंसक (**ते**) आपकी (**गिरः**) कर्तव्य का उपदेश करने वाली वाणियों को, मैं (**न अपि मृष्ये**) नहीं छोड़ता अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं करता। आपके (**असुर्यस्य**) बल का (**विद्वान्**) ज्ञाता मैं (**सुष्टुतिम्**) आपकी उत्कृष्ट स्तुति को भी (**न**) नहीं छोड़ता। (**सदा**) हमेशा (**ते**) आपके (**स्वयशः**) निज कीर्ति वाले (**नाम**) नाम को (**विवक्मि**) जपता रहता हूँ॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर का नाम स्मरण करने से और उसकी उपासना करने से सब दोष नष्ट हो जाते हैं और सद्गुण, तेज, बल तथा यश प्राप्त होते हैं॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

१८००. भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित्। मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः॥३॥

**पदार्थ** :—हे इन्द्र जगदीश! (**मानुषेषु**) मनुष्यों में (**ते**) आपके (**सवना**) आनन्द-प्रदान (**भूरि हि**) बहुत हैं। (**मनीषी**) मनस्वी जन (**त्वाम् इत्**) आपको ही (**भूरि**) बहुत-बहुत (**हवते**) पुकारता है। हे (**मघवन्**) धनों के अधीश्वर! आप स्वयं को (**अस्मत्**) हमसे (**ज्योक्**) देर तक (**आरे**) दूर (**मा कः**) मत रखो॥३॥

**भावार्थ** :—उपास्य और उपासक की समीपता से ही उपासना सफल होती है॥३॥

(१४)

**ऋषिः—सुदाः पैजवनः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—शक्वरी॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा के शत्रुविनाश के गुण की प्रशंसा की गयी है।

१८०१. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा। अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥१॥

**पदार्थ** :—हे साथियो! (**अस्मै इन्द्राय**) इस जगदीश्वर के महिमा-गान के लिए, (**पुरोरथम्**) रथ को सबसे आगे रखने वाले (**शूषम्**) इसके बल की (**प्र अर्चत उ**) प्रशंसा करो। वह (**अभीके चित् उ**) अपने सखा के ऊपर आक्रमण होने पर (**लोककृत्**) उसे विजय दिलाने वाला होता है। (**समत्सु**) देवासुरसंग्रामों में (**सङ्गे**) मुठभेड़ होने पर (**वृत्रहा**) पाप आदि शत्रुओं का वधकर्ता होता है। वह जगदीश्वर (**अस्माकम्**) हम वीरों का (**चोदिता**) प्रेरक होता हुआ (**बोधि**) हमें उद्बोधन देवे। (**धन्वसु अधि**) धनुषों पर चढ़ायी हुई (**अन्यकेषाम्**) शत्रुओं की (**ज्याकाः**) डोरियां (**नभन्ताम्**)

टूट जाएं, अर्थात् वे साधनहीन होकर पराजित हो जाएं॥१॥

यहाँ श्लेष से जीवात्मापरक और सेनापतिपरक अर्थ भी जानना चाहिए॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे वीर सेनापति आक्रान्ता शत्रुओं को मारकर अपने राष्ट्र को विजय दिलाता है, वैसे ही परमेश्वर पाप, विघ्न आदि रूप वैरियों को विनष्ट करके अपने उपासकों को विजयी करता है॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का शत्रु-रहित होना वर्णित है।

**१८०२. त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्।**
**अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम्।**
**तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र जगदीश्वर! त्वम्**) आप (**अहिम्**) आनन्द-वर्षा में बाधक विघ्न-समूह को (**अहन्**) नष्ट करते हो, और फिर (**सिन्धून्**) आनन्द के प्रवाहों को (**अधराचः**) जीवात्मा के अभिमुख करके (**अवासृजः**) छोड़ देते हो। आप (**अशत्रुः**) शत्रु-रहित (**जज्ञिषे**) हो। आप (**विश्वम्**) सब (**वार्यम्**) वरणीय उपासक-समाज को (**पुष्यसि**) पुष्टि देते हो। (**तं त्वा**) उन आपका, हम (**परिष्वजामहे**) आलिंगन करते हैं। ऐसा करो, जिससे (**अन्येषाम्**) शत्रुओं की (**धन्वसु अधि**) धनुषों पर चढ़ायी हुई (**ज्याकाः**) डोरियां (**नभन्ताम्**) टूट जाएं॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे सूर्य वर्षा की रुकावट को नष्ट करके बादलों से जल-धाराएं छोड़कर सब प्राणियों और ओषधि आदि को पुष्टि देता है, अथवा जैसे कोई सेनापति ऐश्वर्य-प्रतिबन्धक शत्रु को मार कर राष्ट्र में ऐश्वर्य की धाराएं प्रवाहित करके प्रजा को पोषण देता है, वैसे ही जगदीश्वर आनन्द के प्रतिबन्धक विघ्नों को दूर करके उपासक के अन्तरात्मा में आनन्द की धाराएं बहाकर उसे परिपुष्ट करता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा का शत्रु-विनाश और धन देने के गुण का वर्णन है।

**१८०३. वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति। या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु॥३॥**

**पदार्थ** :–(**विश्वाः**) सब (**अर्यः**) आक्रमण करने वाली; (**अरातयः**) दान-हीन शत्रु-सेनाएं और विघ्न-सेनाएं (**सु**) पूर्ण रूप से (**विनशन्त**) विनष्ट हो जाएं, (**नः**) हमें (**धियः**) योग की धारणा, ध्यान और समाधियां प्राप्त हों। हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर! (**यः**) जो शत्रु (**नः**) हमारा (**जिघांसति**) वध कर देना चाहता है, उस (**शत्रवे**) काम, क्रोध आदि शत्रु पर, आप (**वधम्**) मौत (**अस्ता असि**) डालने वाले हो। (**या**) जो (**ते**) आपकी (**रातिः**) दान की प्रवृत्ति है, वह हमारे लिए (**वसु**) निवासक दिव्य ऐश्वर्य की (**ददिः**) देने वाली हो। (**अन्यकेषाम्**) शत्रुओं की (**धन्वसु अधि**) धनुषों पर चढ़ायी हुई (**ज्याकाः**) डोरियां (**नभन्ताम्**) टूट जाएं, अर्थात् वे साधनहीन असहाय होकर विनष्ट हो जाएं।।३।।

**भावार्थ** :–जैसे राजा वा सेनापति शत्रुओं को मार कर प्रजाओं को धन आदि देता है, वैसे ही अध्यात्म मार्ग में बाधा डालने वाले विघ्नों और काम, क्रोध आदि शत्रुओं को विनष्ट करके जगदीश्वर उपासक को दिव्य ऐश्वर्य प्रदान करता है।।३।।

**( १५ )**

**ऋषिः–मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चाङ्गिरसः॥ देवता–इन्द्रः॥ छन्दः–गायत्री॥ स्वरः–षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**१८०४. रेवाँ इद्रेवत स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः। प्रेदु हरिवः सुतस्य॥१॥**

**पदार्थ** :–हे (**हरिवः**) दोषों को हरने वाले इन्द्र जगदीश्वर!

(सुतस्य) अन्तरात्मा में प्रकट किये गए, (रेवतः) ऐश्वर्यवान् (मघोनः) दानी (त्वावतः) आप जैसे ही आपका अर्थात् जिसके तुल्य या जिससे बढ़कर संसार में अन्य कोई नहीं है ऐसे आपका (स्तोता) उपासक (इत् उ) अवश्यमेव (रेवान् इत्) ऐश्वर्यवान् ही (प्र स्यात्) होवे॥१॥

'त्वावतः' में अनन्वय अलंकार है। 'रेवाँ इद् रेवतः स्तोता' में समालंकार व्यङ्ग्य है।१॥

**भावार्थ** :—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अपने उपासक को भी ऐश्वर्यवान् कर देता है॥१॥

द्वितीय ऋचा पूर्वार्चिक में २२५ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है। इन्द्र जगदीश्वर में श्रद्धा न रखने वाले की क्या गति होती है यह कहते हैं।

**१८०५. उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।**
**न गायत्रं गीयमानम्॥२॥**

**पदार्थ** :—(**अगोः**) सर्वव्यापक इन्द्र जगदीश्वर में श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य का (न) न तो (**शस्यमानम्**) बोला जाता हुआ (**उक्थम्**) स्तोत्र, (न) न (**रयिः**) दिया जाता हुआ धन, (न) और न ही (**गीयमानम्**) गाया जाता हुआ (**गायत्रम्**) गायत्र नामक सामगान (**आ चिकेत**) किसी से आदर किया जाता है॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर में श्रद्धा न करने वाले मनुष्य का स्तोत्रपाठ, धनदान, सामगान आदि सब निष्फल होता है, क्योंकि वह किसी स्वार्थ से ही प्रेरित होकर उन कार्यों को करता है। सब सत्कर्म ईश्वरार्पण-बुद्धि से ही शोभा पाते हैं॥२॥

अब जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं।

**१८०६. मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः।**
**शिक्षा शचीवः शचीभिः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर! आप (**नः**) हमें (**मा**) न

तो ( पीयत्नवे ) हिंसक काम, क्रोध, लोभ आदि के लिए, और ( मा ) न ही ( शर्धते ) बलवान् किसी मानव शत्रु के लिए ( परा दाः ) छोड़ो। हे ( शचीवः ) शक्तिशाली परमात्मन्! आप ( शचीभिः ) अपनी शक्तियों से ( भिक्ष ) हमें शक्तिशाली बनाने की इच्छा करो।।३।।

यहाँ शकार की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है। 'शची' के दो बार पाठ में लाटानुप्रास अलंकार है।।३।।

**भावार्थ** :—जो परमात्मा में श्रद्धावान् होते हैं उनकी न हिंसक हिंसा कर पाते हैं, न हराने वाले शत्रु उन्हें हरा पाते हैं। परमात्मा की प्रेरणा से शक्तिमान् मेधावी और कर्मयोगी होते हुए वे सभी विपदाओं का हनन कर देते हैं।।३।।

( १६ )

**ऋषिः—नीपातिथिः काण्वः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—अनुष्टुप्॥ स्वरः—गान्धार॥**

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३४८ क्रमांक पर व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ उपासक जगदीश्वर को पुकार रहा है।

**१८०७. एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम्।**
**दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **इन्द्र** ) जगदीश्वर! आप ( **हरिभिः** ) आनन्द-रसों के साथ ( **कण्वस्य** ) मेधावी उपासक की ( **सुष्टुतिम्** ) उत्कृष्ट स्तुति में ( **उप-आयाहि** ) आओ। हे ( **दिवावसो** ) दीप्तिधन जगदीश! ( **दिवः** ) तेजोमयी देह-रूप अयोध्या पुरी के ( **शासतः** ) शासक ( **अमुष्य** ) इस मेधावी उपासक की ( **दिवम्** ) तेजोमयी देह-पुरी में, आप ( **यय** ) पहुँचो।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे परमेश्वर ब्रह्माण्ड का शासक है, वैसे ही जीवात्मा देह का शासक है। वह चक्रवर्ती सम्राट् जगदीश्वर स्तोता की देहपुरी में आकर आतिथ्य स्वीकार करे।।१।।

अगले मन्त्र में उपासक फिर परमेश्वर को निमन्त्रण दे रहा है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ २
१८०८. अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥२॥

**पदार्थ** :–(**वृकः**) सूर्य (**उरां न**) जैसे अन्धकार से ढकने वाली रात्रि को (**वि धूनुते**) विकम्पित करता है, वैसे ही (**अत्र**) इस देह-पुरी में (**एषाम्**) इन मरुतों अर्थात् प्राणों का (**नेमिः**) नेता जीवात्मा (**उराम्**) आच्छन्न करने वाली अविद्या-रूपिणी रात्रि को (**वि धूनुते**) विकम्पित करता है। उस (**दिवः**) देह-पुरी के (**शासतः**) शासक (**अमुष्य**) इस जीवात्मा की (**दिवम्**) तेजोमयी देह-पुरी में, (**दिवावसो**) दीप्तिधन परमात्मन्! आप (**यय**) आओ।।२।।

यहाँ उपमालंकार है। देवो, दिवं, दिवा में वृत्त्यनुप्रास है।।२।।

**भावार्थ** :–सूर्य के समान तेजस्वी जीवात्मा जहाँ स्थित होता हुआ अज्ञान, पाप आदि की रात्रि का विदारण करता है वह देह-पुरी निश्चय ही प्रशंसा योग्य और परमात्मा के निवास योग्य है।।२।।

आगे फिर परमात्मा को पुकारा जा रहा है।

२ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २र
१८०९. आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु।
३ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥३॥

**पदार्थ** :–हे जगदीश्वर! (**इह**) इस देहपुरी में (**सोमी**) श्रद्धारस से भरा हुआ (**ग्रावा**) पूजक जीवात्मा (**वदन्**) स्तोत्रों का उच्चारण करता हुआ (**घोषेण**) स्वागत-शब्द से (**त्वा**) आपको (**आ वक्षतु**) अपने पास लाये। हे (**दिवावसो**) दीप्तिधन परमात्मन्! (**दिवः**) तेजोमयी देहपुरी के (**शासतः**) शासक (**अमुष्य**) इस जीवात्मा की (**दिवम्**) तेजोमयी देहपुरी में, आप (**यय**) आओ।।३।।

**भावार्थ** :–जो हार्दिक स्वागत-वचनों के साथ परमात्मा को पुकारता है उसकी प्रार्थना को वह अवश्य सुनता है।।३।।

(१७)

**ऋषिः–जमदग्निर्भार्गवः॥ देवता–पवमानः सोमः॥ छन्दः–**

द्विपदागायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द–रस का विषय कहते हैं।

**१८१०. पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः॥१॥**

**पदार्थ** :–हे ( **सोम** ) ब्रह्मानन्द रस! ( **मधुमत्तमः** ) अतिशय मधुर तू ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा को ( **मन्दयन्** ) मोद प्रदान करता हुआ ( **पवस्व** ) प्रवाहित हो॥१॥

**भावार्थ** :–ब्रह्मानन्द का माधुर्य वही जानता है जो उसका अनुभव करता है॥१॥

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है।

**१८११. ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत॥२॥**

**पदार्थ** :–( **सुतासः** ) परमात्मा द्वारा प्रेरित, ( **विपश्चितः** ) मेधायुक्त, ( **शुक्राः** ) पवित्र ( **ते** ) वे प्रसिद्ध ब्रह्मानन्द–रस रूप सोम ( **वायुम्** ) प्राण को ( **असृक्षत** ) ऊपर की ओर प्रेरित करते हैं॥२॥

**भावार्थ** :–प्राप्त हुए ब्रह्मानन्द योगी के प्राणों को ऊपर की ओर प्रेरित करते हुए उसे मोक्ष प्रदान करते हैं॥२॥

आगे फिर वही विषय कहा गया है।

**१८१२. असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथाइव॥३॥**

**पदार्थ** :–( **मैं** ) इन ब्रह्मानन्द–रूप सोम–रसों को ( **देववीतये** ) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए ( **असृग्रम्** ) अपने अन्तरात्मा में प्रवाहित कर रहा हूँ। ये ( **वाजयन्तः** ) अन्न प्रदान करते हुए ( **रथाः इव** ) रथों के समान ( **वाजयन्तः** ) बल प्रदान कर रहे हैं॥३॥

यहाँ श्लिष्टोपमा अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–जैसे रथ अन्न आदि को लाने में साधन बनते हैं वैसे ही ब्रह्मानन्द–रस अध्यात्म–बल आदि की प्राप्ति में साधन होते हैं॥३॥

( १८ )

**ऋषिः–परुच्छेपो दैवोदासिः॥ देवता–अग्निः॥ छन्दः–**

अत्यष्टिः॥ स्वरः—गान्धारः॥

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में ४६५ क्रमांक पर हो चुकी है। परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन करते हैं।

१८१३. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः।
सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः॥१॥

पदार्थ :—मैं (**अग्निम्**) जगन्नायक परमेश्वर को (**होतारम्**) श्रद्धा का उपहार ग्रहण करने वाला (**वसोः**) दिव्य तथा भौतिक धन का (**दास्वन्तम्**) दाता, (**सहसः**) बल, उत्साह और उद्बोधन का (**सूनुम्**) प्रेरक, (**जातवेदसम्**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, सर्वान्तर्यामी, (**विप्रं न**) और विद्वान् मनुष्य के समान (**जातवेदसम्**) उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता (**मन्ये**) मानता हूं, (**यः देवः**) जो प्रकाशक परमेश्वर (**ऊर्ध्वया**) उन्नत, (**देवाच्या**) प्रकाशक अग्नि, बिजली, सूर्य आदियों में व्यक्त हुई (**कृपा**) शक्ति से (**स्वध्वरः**) उत्कृष्ट जगत्प्रपंच-रूप यज्ञ का संचालक है, साथ ही जो (**आजुह्वानस्य**) यज्ञाग्नि में होमे जाने वाले, (**शुक्रशोचिषः**) चमकीली चमक वाले, (**सर्पिषः**) पिघले हुए (**घृतस्य**) घृत की (**विभ्राष्टिम्**) विशिष्ट दीप्ति में भी (**अनु**) अनुप्रविष्ट है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है। 'जातवेदसं' की आवृत्ति में यमक, और 'देवो, देवा' में छेकानुप्रास है, सकार आदि की अनेक वार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—सूर्य, चन्द्र, बिजली, तारे आदियों में और घृत की आहुति से प्रदीप्त अग्नि-ज्वालाओं में जो प्रभा दृष्टिगोचर होती है वह जगदीश्वर की ही दी हुई है॥१॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

१८१४. यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां
विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये
विशः॥२॥

पदार्थ :—हे (**विप्र**) विशेष रूप से पूर्णता करने वाले जगदीश! (**यजमानाः**) उपासना-यज्ञ के याज्ञिक हम (**यजिष्ठम्**) सबसे बड़े यज्ञकर्ता, (**अङ्गिरसां ज्येष्ठम्**) तपस्वियों में श्रेष्ठ (**त्वा**) आपको (**मन्मभिः**) वेदमन्त्रों से (**हुवेम**) पुकारें। हे (**शुक्र**) तेजस्वी और पवित्र परमात्मन्! (**मन्मभिः**) मननशील (**विप्रेभिः**) विद्वान् उपासकों के साथ मिलकर आपको पुकारें। (**द्याम्**) आकाश को (**परिज्मानम् इव**) मानो सूर्य द्वारा मापने वाले, और (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**होतारम्**) सुखप्रदाता, (**शोचिष्केशम्**) तेजों से प्रकाशमान, (**वृषणम्**) वृष्टिकर्ता (**यम्**) जिन आपकी (**इमाः**) ये (**विशः**) प्रजाएं उपासना करती हैं, उन आपको (**विशः**) वे प्रजाएं, (**जूतये**) बल, वेग आदि की प्राप्ति के लिए (**प्रावन्तु**) प्राप्त कर लें॥२॥

यहाँ 'परिज्मानमिव द्याम्' में उत्प्रेक्षालंकार, 'मन्मभिः' की आवृत्ति में यमक और 'विप्र, विप्रे' में छेकानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—विप्रजनों के साथ मिलकर सामूहिक उपासना से सबको उस परमात्मा की पूजा करनी चाहिए जो सृष्टियज्ञ का संचालक, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, सर्वाधिक तेजस्वी और मनोरथों को पूर्ण करने वाला है तथा जो सूर्य को पूर्व से पश्चिम तक यात्रा कराता हुआ उसके द्वारा मानो आकाश को मापता है॥२॥

• अगले मन्त्र में जीवात्मा का रणकौशल वर्णित है।

१८१५. स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता।
दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्।
निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते॥३॥

**पदार्थ** :–(**विरुक्मता**) दीप्तियुक्त (**ओजसा**) प्रताप से (**पुरू चित्**) बहुत अधिक (**दीद्यानः**) द्युतिमान् (**स हि**) वह अग्नि अर्थात् अग्रनायक जीवात्मा (**द्रुहन्तरः**) द्रोह करने वाले काम, क्रोध आदि शत्रु को पार करने वाला (**भवति**) हो जाता है, (**परशुः न**) परशु के समान (**द्रुहन्तरः**) द्रोह कर्ता का वध करने वाला हो जाता है, (**यस्य**) जिस जीवात्मा की (**समृतौ**) टक्कर होने पर (**वीडु चित्**) बलवान् भी, (**वना इव**) वन के समान (**यत् स्थिरम्**) जो स्थिर है वह भी (**श्रुवत्**) विनष्ट हो जाता है या डगमगा जाता है, जो (**निष्षहमाणः**) शत्रुओं को तिरस्कृत करता हुआ, उन्हें (**यमते**) युद्ध से हटा देता है, (**न अयते**) स्वयं युद्ध से पलायन नहीं करता, अपितु (**धन्वसहा न**) धनुर्धारी के समान (**अयते**) देवासुरसंग्राम में जाता है॥३॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है, तीन उपमाएं हैं। 'द्रुहन्तरः' और 'नायते' की आवृत्ति में यमक है॥३॥

**भावार्थ** :–देहधारी जीवात्मा जड़ जमाये हुए भी आन्तरिक तथा बाह्य सब शत्रुओं का उन्मूलन करके रणकुशल सेनापति के समान देवासुरसंग्राम में विजयी हो॥३॥

**इति नवमप्रपाठकस्य प्रथमोऽर्धः॥**

# नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः

**(१)**

**ऋषिः–अग्निः पावकः॥ देवता–अग्निः॥ छन्दः–१-२ विष्टारपङ्क्तिः; ३-५ सतोबृहती; ६ उपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्॥ स्वरः–१-५ पञ्चमः; ६ धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से परमात्मा के स्वरूप और उपकार का वर्णन है।

**१८१६. अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो। बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यां३ दधासि दाशुषे कवे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **अग्ने** ) जगन्नायक परमेश! ( **तव** ) आपका ( **श्रवः** ) यश, और ( **वयः** ) ऐश्वर्य ( **महि** ) महान् है। हे ( **विभावसो** ) दीप्तिधन! आप ही की ( **अर्चयः** ) दीप्तियां ( **भ्राजन्ते** ) अग्नि, सूर्य, नक्षत्र आदियों में चमक रही हैं। हे ( **बृहद्भानो** ) महातेजस्वी! हे ( **कवे** ) क्रान्तद्रष्टा! आप ( **दाशुषे** ) आत्मसमर्पण करने वाले को ( **शवसा** ) बल के साथ ( **उक्थ्यम्** ) प्रशंसनीय ( **वाजम्** ) आनन्द-रूप ऐश्वर्य ( **दधासि** ) देते हो॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर स्वयं प्रकाशमान होता हुआ दूसरों को प्रकाशित करता है, स्वयं बलवान् होता हुआ दूसरों को बल देता है, स्वयं यशस्वी होता हुआ दूसरों को यशस्वी करता है, स्वयं आनन्दवान् होता हुआ दूसरों को आनन्दित करता है॥१॥

अब परमात्मा कैसा है और क्या करता है यह कहते हैं।

**१८१७. पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना। पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे॥२॥**

**पदार्थ** :—हे अग्रनायक जगदीश्वर! ( **पावकवर्चाः** ) पवित्रकारी तेज वाले, ( **शुक्रवर्चाः** ) उज्ज्वल और पवित्र तेज वाले, ( **अनूनवर्चाः** ) अन्यून तेज वाले आप ( **भानुना** ) ज्योति के साथ, उपासकों के अन्तरात्मा में ( **उदियर्षि** ) उदित होते हो। ( **मातरा** ) माता-पिता के समीप ( **विचरन्** ) विचरण करते हुए ( **पुत्रः** ) पुत्र के समान ( **मातरा** ) द्युलोक और भूलोक में ( **विचरन्** ) विचरण करते हुए आप उनकी ( **उपावसि** ) रक्षा करते हो। साथ ही ( **रोदसी** ) द्युलोक और भूलोक ( **उभे** ) दोनों को ( **पृणक्षि** ) आपस में संयुक्त करते हो॥२॥

यहाँ तीसरे चरण में श्लिष्ट लुप्तोपमा अलंकार है। 'वर्चा' की आवृत्ति में लाटानुप्रास है॥२॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर सूर्य के समान अपने दिव्य तेज से स्तोताओं के हृदय को पवित्र करता है, द्यावापृथिवी की रक्षा करता है और उनके मध्य आपस का सामंजस्य स्थापित करता है॥२॥

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**१८१८. ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः। त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**ऊर्जः नपात्**) बल और प्राणशक्ति को न गिरने देने वाले, प्रत्युत बढ़ाने वाले (**जातवेदः**) सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी जगत्पति परमात्मन्! (**धीतिभिः**) ध्यान-क्रियाओं से (**हितः**) हृदय में धारण किये हुए आप (**सुशस्तिभिः**) उत्तम प्रशस्तियों से (**मन्दस्व**) हमें आनन्दित करो। (**भूरिवर्पसः**) बहुत से रूपों अर्थात् गुणों वाले, (**चित्रोतयः**) मंजुल आचरणों वाले (**वामजाताः**) सेवनीय आचार्य से श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त उपासक (**त्वयि**) आप में (**इषः**) अपनी अभिलाषाओं को (**संदधुः**) संजोये हुए हैं॥३॥

**भावार्थ** :—जो मनुष्य अपने आपको परमात्मा में समर्पित कर देते हैं वे सुप्रशस्तिमान् और सुकीर्तिमान् होते हैं॥३॥

अगले मन्त्र में जगदीश्वर की स्तुति तथा उससे प्रार्थना की गयी है।

**१८१९. इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य। स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम्॥४॥**

**पदार्थ** :—हे (**अमर्त्य**) अमर (**अग्ने**) मार्गदर्शक परमात्मन्! (**इरज्यन्**) सबके ईश्वर होते हुए आप (**जन्तुभिः**) उत्पन्न अभ्यास, वैराग्य, प्रणव-जप, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, ज्योतिष्मती प्रज्ञा, ऋतम्भरा प्रज्ञा, समाधि आदियों से (**अस्मे**) हमारे लिए (**रायः**) अभ्युदय निःश्रेयस रूप ऐश्वर्यों का (**प्रथस्व**) विस्तार करो। (**सः**) वह प्रसिद्ध आप (**दर्शतस्य**) दर्शनीय वा आपके दर्शन में सहायक (**वपुषः**) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय रूप पंच शरीरों के (**वि राजसि**) विशिष्ट राजा हो। आप ही हमारे मन में (**दर्शतम्**) ज्ञान-दर्शन के साधन (**क्रतुम्**) संकल्प को

(पृणक्षि) संयुक्त करते हो॥४॥

**भावार्थ** :—जगदीश्वर की ही सहायता से योगसाधना में संलग्न उपासक अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होते हैं॥४॥

अगले मन्त्र में परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन है।

**१८२०. इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः। रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम्॥५॥**

**पदार्थ** :—हे जगदीश्वर! (**अध्वरस्य**) जीवन-यज्ञ के (**इष्कर्तारम्**) संस्कृत करने वाले, (**प्रचेतसम्**) जागृति प्रदान करने वाले, (**महः**) महान् (**राधसः**) दिव्य धन के (**क्षयन्तम्**) ईश्वर, (**वामस्य**) सेवनीय सुरम्य ऐश्वर्य के (**रातिम्**) दाता आपकी हम उपासना करते हैं, आप (**सुभगाम्**) सौभाग्यकारिणी, (**महीम्**) महती (**इषम्**) अभीष्ट दुःखमुक्ति को, और (**सानसिम्**) संभजनीय (**रयिम्**) भौतिक तथा दिव्य ऐश्वर्य को (**दधासि**) प्रदान करते हो॥५॥

**भावार्थ** :—आराधना किया हुआ परमेश्वर उपासकों को जागरूक करके और उन्हें सारी अभीष्ट लौकिक तथा दिव्य सम्पदा प्रदान करके कृतार्थ करता है॥५॥

अगले फिर उसी विषय को कहा गया है।

**१८२१. ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः। श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा॥६॥**

**पदार्थ** :—(**ऋतावानम्**) सत्यवान्, (**महिषम्**) महान् (**विश्वदर्शतम्**) सबके द्वारा दर्शनीय (**अग्निम्**) अग्रनायक आप जगदीश्वर को (**सुम्नाय**) सुख पाने के लिए (**जनाः**) स्तोता लोग (**पुरः**) अपने सम्मुख (**दधिरे**) धारण करते हैं। (**श्रुत्कर्णम्**) सुनने वाले कानों से युक्त, (**सप्रथस्तमम्**) अतिशय कीर्तिमान्, (**दैव्यम्**) विद्वान उपासकों का हित करने वाले

(त्वा) आपको (मानुषा युगा) पति-पत्नी-रूप मनुष्य-युगल भी (गिरा) स्तुति-वाणी से (सुम्नाय) सुखार्थ (पुरः) अपने सम्मुख (दधिरे) धारण करते हैं॥६॥

**भावार्थ** :—यहाँ निराकार भी परमेश्वर को सुनने वाले कानों से युक्त कहा गया है, इससे उसका श्रोता के समान स्तोताओं के मनोरथों को पूर्ण करने का गुण सूचित होता है। जैसे कानों वाला कोई मनुष्य कानों से स्तोता के निवेदन को सुन कर उसकी कामना को पूर्ण करता है, वैसे ही परमेश्वर बिना कानों के भी कर देता है यह अभिप्राय है। कहा भी है, 'वह बिना आँख के देखता है, बिना कान के सुनता है (श्वेता० ३।१९)' सबको चाहिए कि सत्य के प्रेमी, महान् यशस्वी परमेश्वर को हृदय में धारण करें॥६॥

## (२)

**ऋषिः—सोभरिः काण्वः॥ देवता—अग्निः। छन्दः—काकुभः प्रगाथः (१ ककुबुष्णिक्, २ सतोबृहती)॥ स्वरः—१ ऋषभः; २ पञ्चमः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १०८ क्रमांक पर हो चुकी है। परमात्मा की मैत्री का महत्त्व वर्णन करते हैं।

**१८२२. प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः। यस्य त्वं सख्यमाविथ॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (अग्ने) अग्रनायक जगदीश्वर! (सः) वह मनुष्य (सुवीराभिः) श्रेष्ठ वीरों को प्राप्त कराने वाली, (वाजकर्मभिः) बल एवम् उत्साह उत्पन्न करने वाली (तव ऊतिभिः) आपकी रक्षाओं से (प्र तिरति) वृद्धि पा लेता है अथवा दुःखों को सर्वथा तर जाता है, (यस्य) जिसकी (त्वम्) महाबली आप (सख्यम्) मित्रता को (आविथ) स्वीकार कर लेते हो॥१॥

**भावार्थ** :—कौन उसे बाधा पहुँचाने वा दुःख देने में समर्थ हो सकता है जिसका जगदीश सखा हो॥१॥

अगले मन्त्र में परमात्मा की महिमा के वर्णन-पूर्वक उससे मिलने वाले आनन्द का विषय वर्णित है।

१८२३. तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे। त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि॥२॥

**पदार्थ** :—हे (**सिष्णो**) प्रेमपाश में बांधने वाले जगदीश्वर! (**नीलवान्**) आधारभूत, (**वाशः**) प्रियः, (**ऋत्वियः**) जिसे प्राप्त करने का समय आ गया है ऐसा, (**इन्धानः**) तेज प्रदान करने वाला (**तव**) आपका (**द्रप्सः**) आनन्द-रस (**आददे**) हमसे ग्रहण किया जा रहा है। (**त्वम्**) आप (**महीनाम्**) महती (**उषसाम्**) उषाओं के (**प्रियः**) प्यारे सखा (**असि**) हो। आप (**क्षपः**) रात्रि के (**वस्तुषु**) आच्छादक अन्धकारों में भी (**राजसि**) प्रदीप्त होते हो॥२॥

**भावार्थ** :—जो जगदीश्वर रात्रियों में, उषाओं में, सूर्योदयों में, मध्याह्न-कालों में सांयकालीन सन्ध्याओं में सर्वत्र अपनी महिमा से विराजमान है, उसके साथ मैत्री करके उसके पास के अति मधुर आनन्द-रस सबको प्राप्त करना चाहिए॥२॥

(३)

**ऋषिः—अरुणो वैतहव्यः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—जगती॥ स्वरः—निषादः॥**

जगदीश्वर की महिमा वर्णन करते हैं।

१८२४. तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः। तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा॥१॥

**पदार्थ** :—(**तम्**) उस जगदीश्वर को (**ओषधीः**) ओषधियां (**ऋत्वियं गर्भम्**) सब ऋतुओं में रहने वाले गर्भ के रूप में (**दधिरे**) धारण किये हुए हैं अर्थात् सब ऋतुओं में वह जगदीश्वर ओषधियों के अन्दर निहित रहता है। (**तम्**) उसी जगदीश्वर को (**मातरः आपः**) मातृतुल्य नदियां (**जनयन्त**) प्रकट कर रही हैं। (**तम् इत्**) उसी जगदीश्वर को (**समानम्**) समान रूप से (**वनिनः च**) वन के वृक्ष (**अन्तर्वतीः वीरुधः**

च ) और गर्भवती लताएं ( दधिरे ) अपने अन्दर धारण किये हुए हैं, और ( विश्वहा ) सदा, उसी के नियमों के अनुसार ( सुवते च ) फल भी उत्पन्न करती हैं॥१॥

**भावार्थ** :—ओषधियों के गर्भों में, कल-कल बहती हुई नदियों के जलों में, फलों के भार से झुके हुए सघन वन-वृक्षों के फलों में, फूलती हुई वन-वल्लरियों के चित्र-विचित्र पुष्पों में वही जगत् का रचयिता परमेश्वर प्रतिमूर्त हुआ दिखायी देता है॥१॥

( ४ )

ऋषिः—अग्निश्चाक्षुषः प्रजापतिर्वा॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—**गायत्री**॥ **स्वरः—षड्जः**॥

परमेश्वर का महत्त्व वर्णित करते हैं।

**१८२५. अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति।**
**महिषीव वि जायते॥१॥**

**पदार्थ** :—( **अग्निः** ) संसार का नायक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ( **इन्द्राय** ) जीवात्मा के लिए अर्थात् जीव का हित करने के लिए ( **पवते** ) उसे प्राप्त होता है। ( **शुक्रः** ) पवित्र और तेजस्वी वह ( **दिवि** ) चमकीले द्युलोक में, सूर्य, तारामण्डल आदि में ( **वि राजति** ) विशेषरूप से चमक रहा है। वह ( **महिषी इव** ) पूज्या माता के समान ( **वि जायते** ) प्रसिद्ध होता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार है॥१॥

**भावार्थ** :—परमेश्वर हमारा पिता और माता भी है। पिता होता हुआ वह मनुष्य-शरीर की और ब्रह्माण्ड की व्यवस्था करता है, माता के रूप में वह सबका लालन-पालन करता है॥१॥

( ५ )

**ऋषिः—अवत्सारः काश्यपः**॥ **देवता—अग्निः**॥ **छन्दः—त्रिष्टुप्**॥ **स्वरः—धैवतः**॥

जागरण का महत्त्व वर्णित करते हैं।

१८२६. यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति। यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥१॥

पदार्थ :—सब विद्वानों के मध्य में ( यः ) जो मनुष्य ( जागार ) जागरूक होता है ( तम् ) उसे ( ऋचः ) ऋचाएं ( कामयन्ते ) चाहती हैं। ( यः ) जो मनुष्य ( जागार ) जागरूक होता है ( तम् उ ) उसी को ( सामानि ) साम मन्त्र वा साम गान ( यन्ति ) सहायता के लिए प्राप्त होते हैं। ( यः ) जो मनुष्य ( जागार ) जागरूक होता है ( तम् ) उसे ( अयं सोमः ) यह जगदीश्वर ( आह ) कहता है कि ( अहम् ) मैं ( तव सख्ये ) तेरी मित्रता में ( न्योकाः ) घर बनाये हुए ( अस्मि ) हूँ।।१।।

भावार्थ :—मनुष्यों में जो अविद्या, आलस्य, मोह आदि की नींद को छोड़कर जाग जाता है वही बाह्य जीवन और अध्यात्म जीवन में सफल होता है।।१।।

( ६ )

ऋषिः—अवत्सारः काश्यपः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

इस सूक्त में फिर जागरण के महत्त्व का विषय वर्णित है।

१८२७. अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति। अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥१॥

पदार्थ :—( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् ( जागार ) जागरूक होता है, ( तम् ) उसे ( ऋचः ) ऋचाएं ( कामयन्ते ) चाहती हैं। ( अग्निः ) अग्नि के समान पुरुषार्थी विद्वान् ( जागार ) जागरूक होता है, ( तम् उ ) उसी के पास ( सामानि ) साम-मन्त्र वा साम-गान ( यन्ति ) सहायता के लिए पहुँचते हैं। ( अग्निः ) अग्नि के समान उन्नतिशील विद्वान् ( जागार ) जागरूक होता है, ( तम् ) उसे ( अयं सोमः ) यह

जगदीश्वर (आह) कहता है कि (अहम्) मैं (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (न्योकाः) घर बनाये हुए (अस्मि) हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—जो विद्वान् लोग आलस्य-रहित, निर्भय, आगे बढ़ने वाले, स्फूर्तिमान, धार्मिक, परोपकारी होते हैं वे ही लोकप्रिय तथा सफल होते हैं॥१॥

(७)

**ऋषिः—मृगः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में नमस्कार किया गया है।

**१८२८. नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः।**
**युञ्जे वाचं शतपदीम्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**पूर्वसद्भ्यः**) जो पहले हो चुके हैं उन (**सखिभ्यः**) सखाओं को (**नमः**) नमस्कार हो, (**साकंनिषेभ्यः**) साथ रहने वाले सखाओं को (**नमः**) नमस्कार हो। अग्नि के समान तेजस्वी मैं (**शतपदीम्**) अनेक पादों वाली (**वाचम्**) वेदवाणी को (**युञ्जे**) प्रयोग में लाता हूँ॥१॥

**भावार्थ** :—जो हमसे पहले उत्पन्न हुए वृद्धजन हैं और जो सहयोगी मित्र हैं उन सबको यथायोग्य सत्कार देना चाहिए। धार्मिक कार्यों में तथा परमात्मा की स्तुति में सदा वेदमन्त्रों का प्रयोग करना उचित है॥१॥

अगले मन्त्र में साम का गान करने वाला कह रहा है।

**१८२९. युञ्जे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि।**
**गायत्रं त्रैष्टुभं जगत्॥२॥**

**पदार्थ** :—मैं (**शतपदीम्**) अनेक पादों वाली (**वाचम्**) वेदवाणी को (**युञ्जे**) प्रयोग में लाता हूँ। साथ ही, (**गायत्रम्**) गायत्री छन्द वाले साम को, (**त्रैष्टुभम्**) त्रिष्टुप् छन्द वाले साम को और (**जगत्**) जगती छन्द वाले साम को (**सहस्रवर्तनि**) सहस्र मार्गों से (**गाये**) गाता हूँ॥२॥

भावार्थ :—ऋचाओं पर आश्रित सामों के गान से हृदय और सामाजिक वातावरण पवित्र होता है॥२॥

अगले मन्त्र में सामगान का महत्त्व वर्णित है।

१८३०. गायत्रं त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि सम्भृता।
देवा ओकांसि चक्रिरे॥३॥

पदार्थ :—(गायत्रम्) गायत्री छन्द वाला साम, (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द वाला साम, (जगत्) और जगती छन्द वाला साम, इनमें (विश्वा रूपाणि) दूसरे सामों के भी सब रूप (सम्भृता) समाविष्ट हैं। जो इन सामों को गाता है। उसमें (देवाः) दिव्य गुण (ओकांसि) घर (चक्रिरे) कर लेते हैं॥३॥

भावार्थ :—आठ अक्षरों का गायत्र पाद, ग्यारह अक्षरों का त्रैष्टुभ पाद, और बारह अक्षरों का जागत पाद होता है। प्रायः सभी वैदिक छन्द इन्हीं पादों से बनते हैं। इनमें से किसी एक दो या तीनों पादों से गुंथी हुई ऋचाओं पर सामगान करने से गायक के अन्तरात्मा में अनेक दिव्यगुण समाविष्ट हो जाते हैं॥३॥

(८)

ऋषिः—अवत्सारो वत्सप्रीर्वा॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्रथम मन्त्र में ज्योति का महत्त्व वर्णित है।

१८३१. अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रोज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रः।
सूर्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः॥१॥

पदार्थ :—(अग्निः) पार्थिव अग्नि (ज्योतिः) एक ज्योति है, (ज्योतिः) वह ज्योति ही (अग्नि) वस्तुतः अग्नि है। (इन्द्रः) बिजली (ज्योतिः) एक ज्योति है, (ज्योतिः) वह ज्योति ही (इन्द्रः) वस्तुतः बिजली है। (सूर्यः) सूर्य (ज्योतिः) एक ज्योति है, (ज्योतिः) वह ज्योति ही (सूर्यः) वस्तुतः सूर्य है॥१॥

**भावार्थ** :—यद्यपि अग्नि, विद्युत् और सूर्य ये सब पृथिवी, जल, वायु, तेज और आकाश इन पंच तत्त्वों से मिलकर बने हुए हैं, तो भी अग्नि का अग्नित्व, विद्युत् का विद्युत्त्व और सूर्य का सूर्यत्व ज्योति के कारण से ही है, ज्योति के बिना उनमें कुछ भी महत्त्व अवशिष्ट नहीं रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य का भी मनुष्यत्व अध्यात्म ज्योति के कारण से ही है। इसलिए सब मनुष्यों को चाहिए कि अध्यात्म ज्योति के संचय का प्रयत्न करें।।१।।

अगले मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गयी है।

**१८३२. पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा।**
**पुनर्नः पाह्यंहसः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) प्रकाशकों के प्रकाशक, जगन्नायक, सर्वान्तर्यामी परमेश! आप (**पुनः**) फिर-फिर (**ऊर्जा**) बल और प्राणशक्ति के साथ, (**पुनः**) फिर-फिर (**इषा**) अभीष्ट आनन्द के साथ (**आयुषा**) और दीर्घायुष्य के साथ (**नि वर्तस्व**) हमें निरन्तर प्राप्त होते रहो। (**पुनः**) फिर-फिर (**नः**) हमें (**अंहसः**) पाप से (**पाहि**) बचाते रहो।।२।।

**भावार्थ** :—मनुष्य निर्बल होने से पुनः पुनः निरुत्साह, दैन्य, दुःख, अज्ञान, पाप आदियों से लिप्त होता रहता है। वह परमात्मा की उपासना से पुनः पुनः, बल, प्राण, सुख, सद्विद्या, धर्म, दीर्घायुष्य आदि प्राप्त कर सकता है।।२।।

आगे फिर परमात्मा से प्रार्थना है।

**१८३३. सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया।**
**विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**अग्ने**) जगन्नायक, सर्वप्रकाशक, रसागार परमात्मन्! आप (**रय्या सह**) दिव्य ऐश्वर्य के साथ (**निवर्तस्व**) हमें निरन्तर प्राप्त होते रहो। (**विश्वप्स्न्या**) सब योगियों से आस्वाद ली जाने वाली (**धारया**) आनन्द-धारा में, हमें (**विश्वतः**) सब ओर से (**परिपिन्वस्व**) सींचते रहो।।३।।

**भावार्थ** :—आनन्द-रस का पुंज परमेश्वर अपने उपासकों को आनन्द-धारा से सींचता और दिव्य ऐश्वर्यों से सनाथ करता है॥३॥

( ९ )

**ऋषि:—गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की व्याख्या पूर्वार्चिक में १२२ क्रमांक पर हो चुकी है। इसमें धनपति होकर मैं क्या करूं इसका वर्णन है।

**१८३४. यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्।**
**स्तोता मे गोसखा स्यात्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जगदीश्वर आचार्य वा राजन्! (**यत्**) यदि (**यथा त्वम्**) जैसे आप हो वैसे (**अहम्**) मैं (**वस्वः**) दिव्य ऐश्वर्य का, विद्या-धन का वा भौतिक धन का (**एकः इत्**) अद्वितीय (**ईशीय**) स्वामी हो जाऊँ तो (**मे**) मेरा (**स्तोता**) प्रशंसक (**गोसखा**) दिव्य प्रकाशों का, समस्त वाङ्मय का वा धेनुओं का सखा (**स्यात्**) हो जाए॥१॥

**भावार्थ** :—यदि मैं जगदीश के समान सत्य, अहिंसा, योगसिद्धि आदि दिव्य धनों का स्वामी हो जाऊँ तो सत्पात्रों को दिव्य धन बाँटू, यदि मैं आचार्य के समान विद्या-धनों का स्वामी हो जाऊँ तो शिष्यों को विविध विद्याओं का अध्यापन करूं, यदि मैं राजा के समान चांदी, सोना, गाय आदि धनों का स्वामी हो जाऊं तो निर्धनों को चांदी सोना, गाय आदि धन वितीर्ण करूं॥१॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१८३५. शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।**
**यदहं गोपतिः स्याम्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**शचीपते**) सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर! (**यदि अहम्**) यदि मैं (**गोपतिः**) भूमियों वा धेनुओं का स्वामी हो जाऊं, तो उन भूमियों वा धेनुओं को (**दित्सेयम्**) मैं दान

करने का संकल्प लूं और (अस्मै मनीषिणे) इस मेधावी विद्वान् को (शिक्षेयम्) उनका दान कर दूं॥२॥

**भावार्थ** :—धनपतियों का यह कर्तव्य है कि वे जिस धन के स्वामी हों उस धन का कम से कम शतांश सत्पात्रों को अवश्य दान करें॥२॥

अगले मन्त्र में वेदवाणी-रूप धेनु का विषय है।

३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ २
**१८३६. धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।**
१ २र ३ १ २
**गामश्वं पिप्युषी दुहे॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) जगदीश्वर! ते आपकी (सूनृता) सत्य और मधुर, (धेनुः) तृप्ति देने वाली वेदवाणी (सुन्वते) भक्ति-रस प्रवाहित करने वाले (यजमानाय) उपासक के लिए (पिप्युषी) बढ़ाने वाली होती हुई (गाम्) अन्तः प्रकाश को, और (अश्वम्) प्राण-बल को (दुहे) दुहती है॥३॥

**भावार्थ** :—वेद पढ़ने से मनुष्यों की परमेश्वरोपासना में प्रवृत्ति होती है और उससे अन्तःप्रकाश, प्राणबल और पुरुषार्थ के लिए प्रेरणा मिलती है॥३॥

(१०)

**ऋषिः—त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वाम्बरीषः॥ देवता—आपः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम मन्त्र में ब्रह्मानन्द की धाराओं का विषय है।

२ ३ १ २र ३ २ ३ १ २ ३ १ २
**१८३७. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।**
३ १ २र ३ १ २
**महे रणाय चक्षसे॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (आपः) ब्रह्मानन्द-रस की धाराओ! तुम (हि) निश्चय ही (मयोभुवः) शान्ति देने वाली (स्थ) हो (ताः) वे तुम (नः) हमें (ऊर्जे) ब्रह्मबल के लिए, (महे) महत्ता के लिए (रणाय) देवासुर संग्राम के लिए और (चक्षसे) अन्तःप्रकाश के लिए (दधातन) धारण करो॥१॥

**भावार्थ** :—उपासक जब परमात्मा के पास से आनन्द की धाराओं को प्राप्त करता है तब ब्रह्मबल, आत्मोत्कर्ष और विजय आदि स्वयं ही आ जाते हैं॥१॥

अगले मन्त्र में ब्रह्मानन्द की धाराओं के रस की प्रार्थना है।

**१८३८. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।**
**उशतीरिव मातरः॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ब्रह्मानन्द की धाराओ! (**यः**) जो (**वः**) तुम्हारा (**शिवतमः**) अतिशय शान्तिदायक (**रसः**) रस है (**तस्य**) उसका (**इह**) इस जीवन में (**नः**) हमें (**भाजयत**) भागी बनाओ, पान कराओ, (**उशतीः**) सन्तान से प्रेम करती हुई (**मातरः इव**) माताएं जैसे अपने स्तनों का दूध अपनी सन्तान को पिलाती हैं॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—माता के स्तन के दूध में जो माधुर्य है वही ब्रह्म के पास से प्राप्त आनन्द-धाराओं में है ऐसा विद्वान् उपासक लोग अनुभव करते हैं॥२॥

आगे फिर ब्रह्मानन्द की धाराओं का ही विषय है।

**१८३९. तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।**
**आपो जनयथा च नः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**आपः**) ब्रह्मानन्द की धाराओ! (**तस्मै**) उस प्रयोजन के लिए, हम (**वः**) तुम्हें (**अरम्**) पर्याप्त रूप से (**गमाम**) प्राप्त कर लें, (**यस्य**) जिस अभ्युदय और निःश्रेयस रूप प्रयोजन के (**क्षयाय**) हमारे अन्दर निवास कराने के लिए, तुम (**जिन्वथ**) गति करती हो। तुम (**नः**) हमें (**जनयथ च**:) नवजीवन से अनुप्राणित भी कर दो॥३॥

**भावार्थ** :—परमात्मा की उपासना से जो दिव्य आनन्द प्राप्त होता है उससे मनुष्य अपने जीवन में परम उत्कर्ष और मोक्ष भी पा सकता है॥३॥

(११)

**ऋषिः—उलो वातायनः। देवता—वायुः॥ छन्दः—गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥**

प्रथम ऋचा की पूर्वार्चिक में १८४ क्रमांक पर पहले

व्याख्या की जा चुकी है। यहाँ वात शब्द से जीवात्मा-सहित प्राण का ग्रहण है।

**१८४०. वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।**
**प्र न आयूंषि तारिषत्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**वातः**) जीवात्मा सहित प्राण (**भेषजम्**) औषध को (**आ वातु**) प्राप्त कराये, जो (**नः**) हमारे (**हृदे**) हृदय के लिए (**शम्भु**) रोगों को शान्त करने वाली तथा (**मयोभु**) सुखकारी हो। (**नः**) हमारे (**आयूंषि**) आयु के वर्षों को (**प्र तारिषत्**) बढ़ाये॥१॥

**भावार्थ** :—देह में स्थित जीवात्मा जब पूरक, कुम्भक और रेचन की विधि से शुद्ध वायुमण्डल में प्राणायाम का अभ्यास करता है तब रक्त की शुद्धि द्वारा रोगशान्ति और दीर्घ आयु प्राप्त होती है॥१॥

अगले मन्त्र में प्राण के महत्त्व का वर्णन करते हुए उससे प्रार्थना की गयी है।

**१८४१. उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।**
**स नो जीवातवे कृधि॥२॥**

**पदार्थ** :—(**उत**) और, हे (**वात**) जीवात्मा-सहित प्राण! तू (**नः**) हमारा (**पिता**) पिता के समान पालनकर्ता (**असि**) है, (**उत**) और (**नः**) हमारा (**भ्राता**) भाई के समान भरणपोषणकर्ता, (**उत**) तथा (**सखा**) सखा के समान सहायक है। (**सः**) वह (**नः**) हमें (**जीवातवे**) स्वस्थ जीवन के लिए (**कृधि**) समर्थ कर॥२॥

यहाँ वात में पितृत्व, भ्रातृत्व और सखित्व के आरोप होने से रूपक अलंकार है॥२॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा-सहित प्राण के द्वारा ही प्राणियों के जन्म, वृद्धि, क्षतिपूर्ति, आरोग्य और दीर्घायुष्य आदि होते हैं॥२॥

आगे पुनः उसी विषय का कथन है।

१८४२. यददो वात ते गृहे३मृतं निहितं गुहा।
तस्य नो धेहि जीवसे॥३॥

**पदार्थ** :–हे (**वात**) जीवात्मा-सहित प्राण! (**यत् ते गृहे**) जो तुम्हारे शरीर रूप घर में (**गुहा**) हृदय-गुहा के अन्दर (**अदः**) यह (**अमृतम्**) अक्षय परमात्मा-रूप ज्योति (**निहितम्**) रखी हुई है, (**जीवसे**) जीवन के लिए (**तस्य नः धेहि**) उसकी हमें प्राप्ति कराओ॥३॥

**भावार्थ** :–प्राणायाम द्वारा प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाने पर, मन में धारणाओं की योग्यता उत्पन्न हो जाने पर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि से हृदय में निहित परमात्म-ज्योति प्रकाशित हो जाती है॥३।

(१२)

**ऋषिः–सुपर्णः॥ देवता–सूर्यः॥ छन्दः–त्रिष्टुप्॥ स्वरः–धैवतः।**

प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से जगदीश्वर के गुण-कर्मों का वर्णन है।

१८४३. अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं
बिभ्रदत्कं सुपर्णः। सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः
परि स्वयं मेधमृज्रो जजान॥१॥

**पदार्थ** :–(**वाजी**) बलवान्, (**विश्वरूपः**) सब रूपों को देने वाला, (**सुपर्णः**) श्रेष्ठ पालनकर्ता, (**ऋज्रः**) सर्वव्यापक वह अग्निनामक परमेश्वर (**जनित्रम्**) वृष्टि के उत्पादक, (**हिरण्ययम्**) सुनहरे (**अत्कम्**) विद्युत्रूप वज्र को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ, (**ऋतुथा**) ऋतुओं के अनुकूल (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**भानुम्**) तेज को (**वसानः**) बसाता हुआ (**स्वयम्**) अपने आप (**मेधम्**) सृष्टि-यज्ञ को (**जजान**) चला रहा है॥१॥

**भावार्थ** :–संसार में जो कुछ भी प्राकृतिक घटना-चक्र चल रहा है उस सबको परमेश्वर ही संचालित करता है॥१।

अगले मन्त्र में परमेश्वर की महिमा वर्णित है।

**१८४४. अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत् सम्बभूव। अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः॥२॥**

**पदार्थ** :–(**अप्सु**) नदियों में जो (**विश्वरूपम्**) सब रूपों वाला (**रेतः**) जल (**शिश्रिये**) आश्रित है, (**यत्**) और जो (**पृथिव्याम् अधि**) भूमि के अन्दर (**तेजः**) तेज (**सम्बभूव**) उत्पन्न हुआ है, उस सबको (**ऋञ्जः**) सर्वव्यापक अग्नि नामक जगदीश्वर ने ही (**जजान**) उत्पन्न किया है। [यहाँ 'ऋञ्जः' और 'जजान' ये दोनों पद पूर्व मन्त्र से लाये गये हैं।] वही जगदीश्वर (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**स्वम्**) अपनी (**महिमानम्**) महिमा को (**मिमानः**) प्रकट कर रहा है। उसी की महिमा से (**वृष्णः**) वर्षा करने वाले (**अश्वस्य**) व्यापक बादल का (**रेतः**) जल (**कनिक्रन्ति**) बहुत अधिक गरजता है॥२॥

**भावार्थ** :–नदियों में, भूमि पर, अन्तरिक्ष में, द्युलोक में सूर्य में, बादल में सभी जगह जगदीश्वर की ही महिमा दृग्गोचर हो रही है॥२॥

आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।

**१८४५. अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार। सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः॥३॥**

**पदार्थ** :–(**यज्ञः**) पूजनीय यह अग्नि नामक जगदीश्वर (**युक्तः**) आकर्षण के बल से आपस में जुड़े हुए (**सहस्रा**) सहस्रों नक्षत्रों को (**वसानः**) बसाता हुआ (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**भानुम्**) तेज को (**दाधार**) धारण कर रहा है। यह जगदीश्वर (**सहस्रदाः**) सहस्र वस्तुओं का दाता, (**शतदा**) सौ रत्नों का दाता, (**भूरिदावा**) बहुत-बहुत दूध-दही-मक्खन आदि का और विद्या-धर्म आदि का दाता, (**दिवः धर्ता**) द्युलोक का धारणकर्ता, और (**भुवनस्य**) ब्रह्माण्ड का (**विश्पतिः**) प्रजापति है।

**भावार्थ** :–जगदीश्वर ही हमारे सौरमण्डल को, असंख्य तारों को, सारे ही ब्रह्माण्ड को धारण करता हुआ हमें सब सम्पदाएं देता है॥३॥

( १३ )

ऋषि:—वेन:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—त्रिष्टुप्॥ स्वर:—धैवत:॥

प्रथम ऋचा पूर्वार्चिक में ३२० क्रमांक पर सूर्य के दृष्टान्त से परमात्मा के विषय में व्याख्यात हो चुकी है। यहाँ जीवात्मा का विषय कहते हैं।

**१८४६. नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे वेन! हे परमेश्वर की कामना करने वाले जीवात्मन्! (**हिरण्यपक्षम्**) ज्ञान-कर्म-रूप सुनहरे पंखों वाले, (**वरुणस्य दूतम्**) वरणीय मन को सन्मार्ग पर प्रेरित करने वाले, (**यमस्य**) नियन्ता प्राण के (**योनौ**) देह रूप घर में (**शकुनम्**) शक्ति से शोभित, (**भुरण्युम्**) देह के धारक-पोषक, (**सुपर्णम्**) अष्टांग योग-रूप शुभ पंखों से युक्त तथा (**नाके**) मोक्ष के निमित्त (**उपपतन्तम्**) प्रयत्नशील (**त्वा**) तुझे (**यत्**) जब (**अभ्यचक्षत**) प्रभु-प्रेमी लोग देखते हैं, तब वे (**हृदा**) हृदय से (**वेनन्तः**) तुमसे प्रेम करने लगते हैं॥१॥

**भावार्थ** :—देह के अधिष्ठाता जीवात्मा की जब अध्यात्म मार्ग में रुचि हो जाती है तब वह अष्टांग योग के अभ्यास से मोक्ष पा सकता है॥१॥

अब मुक्तावस्था में जीवात्मा का स्वरूप वर्णित करते हैं।

**१८४७. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि। वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वा३र्ण नाम जनत प्रियाणि॥२॥**

**पदार्थ** :—(**ऊर्ध्वः**) जागरूक और उन्नत, (**गन्धर्वः**) वाणी वा इन्द्रियों को धारण करने वाला जीवात्मा (**नाके अधि**) मोक्षावस्था में (**अस्थात्**) स्थित होता है। वेन अर्थात् कमनीय परमेश्वर (**अस्य**) इस जीवात्मा के (**प्रत्यङ्**) अभिमुख होकर

(**चित्रा**) विविध (**आयुधा**) रक्षा-साधनों को (**बिभ्रत्**) धारण करता है। तब मोक्षावस्था में जीवात्मा (**दृशे कम्**) परमात्मा के दर्शन के लिए (**सुरभिम्**) सद्गुणों से सुरभित (**अत्कम्**) स्वरूप को (**वसानः**) धारण करता हुआ (**स्वः न**) सूर्य के समान (**प्रियाणि नाम**) प्रिय तेजों को (**जनत**) करता है॥२॥

यहाँ उपमालंकार है॥२॥

**भावार्थ** :–मुक्तावस्था में जीवात्मा की लौकिक आकांक्षाएं समाप्त हो जाती हैं, तेजोमय होकर वह परमात्मा के साहचर्य से दिव्य आनन्द का अनुभव करता है॥२॥

अगले मन्त्र में मोक्षावस्था में जीवात्मा का परमात्मदर्शन वर्णित है।

**१८४८. द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्। भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि॥३॥**

**पदार्थ** :–(**द्रप्सः**) पानी की बूंद के सदृश अणु परिमाण वाला जीवात्मा (**यत्**) जब (**समुद्रम् अभि**) आनन्द के सागर परमात्मा की ओर (**जिगाति**) जाता है, तब (**विधर्मन्**) विशेष रूप से धारक मोक्ष लोक में वह जीव उस परमात्मा को (**गृध्रस्य चक्षसा**) गिद्ध जैसी तीव्र दृष्टि से (**पश्यन्**) देखता है। (**तृतीये रजसि**) तृतीय धाम मोक्ष-लोक में (**शुक्रेण**) पवित्र (**शोचिषा**) तेज से (**चकानः**) प्रदीप्त होता हुआ (**भानुः**) परमात्मा रूप सूर्य उस जीवात्मा के (**प्रियाणि**) आनन्द वर्षा के प्रदान आदि अभीष्टों को (**चक्रे**) सिद्ध करता है॥३॥

इस मन्त्र में परमात्मा में भानुत्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है॥३॥

**भावार्थ** :–मोक्ष के लिए प्रयत्न करता हुआ जीव रस सींचने वाले तेजस्वी जगदीश्वर को प्राप्त करके रस सिक्त और तेजस्वी हो जाता है॥३॥

**इति विंशोऽध्यायः, नवमप्रपाठकस्य द्वितीयोऽर्धः॥**

# अथैकविंशोऽध्यायः

## नवमप्रपाठकस्य तृतीयोऽर्धः

( १ )

ऋषिः—अप्रतिरथ ऐन्द्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम मन्त्र में सेनापति के दृष्टान्त से जीवात्मा का वर्णन है।

**१८४९. आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः**
**क्षोभणश्चर्षणीनाम्। सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः**
**शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः॥१॥**

**पदार्थ** :—( आशुः ) शीघ्रकारी, ( शिशानः वृषभः न ) तीक्ष्ण सींगों वाले बैल के समान ( भीमः ) विघ्न डालने वालों के लिए भयंकर, ( **घनाघनः** ) द्वेषियों का वध करने वाला, ( **चर्षणीनाम्** ) बाधा डालने वाले मनुष्यों को ( **क्षोभणः** ) विक्षुब्ध कर देने वाला, ( **सङ्क्रन्दनः** ) शत्रुओं को रुलाने वाला, ( **अनिमिषः** ) लक्ष्य पर अपलक दृष्टि रखने वाला, ( **एकवीरः** ) अद्वितीय वीर, ( इन्द्रः ) सेनापति के तुल्य जीवात्मा ( साकम् ) एक साथ ( शंत सेनाः ) सौ आन्तरिक और बाह्य सेनाओं को ( अजयत् ) जीत सकता है॥१॥

यहाँ उपमालंकार तथा वीर रस है॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे राष्ट्र में वीर सेनापति अपने पराक्रम से सब शत्रु सेनाओं को जीत लेता है वैसे ही शरीर में जीवात्मा आन्तरिक और बाह्य देवासुरसंग्राम में सब विघ्नकारियों को जीत कर अपना साम्राज्य स्थापित करे॥१॥

आगे पुनः वही विषय है।

**१८५०. सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण**
**दुश्च्यवनेन धृष्णुना। तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं**
**युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा॥२॥**

**पदार्थ** :—हे ( युधः नरः ) योद्धा नरो! तुम ( सङ्क्रन्दनेन )

शत्रुओं को रुलाने वाले, ( **अनिमिषेण** ), लक्ष्य पर अपलक दृष्टि रखने वाले, ( **जिष्णुना** ) विजयशील, ( **युत्कारेण** ) युद्ध करने वाले, ( **इषुच्यवनेन** ) विपक्षियों से विचलित न किये जा सकने वाले, ( **धृष्णुना** ) स्वयं विपक्षियों को विचलित कर देने वाले, ( **इषुहस्तेन** ) हाथ में बाण आदि शस्त्रास्त्र धारण करने वाले, ( **वृष्णा** ) अस्त्रों की वर्षा करने वाले, ( **इन्द्रेण** ) सेनापति के समान वीर जीवात्मा के द्वारा ( **तत्** ) उस युद्ध को ( **जयत** ) जीत लो, ( **तत्** ) उस आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुदल को ( **सहध्वम्** ) पराजित कर दो॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे शस्त्रास्त्रधारी वीर सेनापति के नेतृत्व में योद्धा लोग संग्राम को जीत लेते हैं वैसे ही अपने जीवात्मा को उद्बोधन देकर, उसे नेता बनाकर सब आन्तरिक तथा बाहरी युद्धों को सब लोग जीतें॥२॥

**आगे फिर उसी विषय का वर्णन है।**

**१८५१. स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन। संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यू३ग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता॥३॥**

**पदार्थ** :—( **सः** ) वह देह में जन्मा हुआ जीवात्मा ( **इषुहस्तैः** ) शरपाणि योद्धाओं द्वारा, ( **सः** ) वह जीवात्मा ( **निषङ्गिभिः** ) तूणीरधारी योद्धाओं द्वारा ( **वशी** ) शत्रुओं को वश में करने वाला होता है। ( **स इन्द्रः** ) वह वीर जीवात्मा ( **युधः** ) युद्धकर्ता शत्रु के ( **गणेन** ) दल के साथ ( **संस्रष्टा** ) टक्कर लेने वाला होता है। ( **संसृष्टजित्** ) मुठभेड़ करने वालों का विजेता, ( **सोमपाः** ) वीररस का पान करने वाला, ( **बाहुशर्धी** ) बाहुबल से युक्त, ( **उग्रधन्वा** ) प्रचण्ड धनुष वाला और ( **प्रतिहिताभिः** ) प्रेरित बाणों से ( **अस्ता** ) शत्रुओं को धराशायी कर देने वाला होता है॥३॥

**भावार्थ** :—कुशल सेनाध्यक्ष जैसे अपने शस्त्रास्त्रधारी योद्धाओं द्वारा बलवान् भी शत्रुओं को धराशायी कर देता है, वैसे ही देहधारी वीर जीवात्मा अपने पक्ष के वीरों को उद्बोधन देकर

आन्तरिक और बाह्य संग्राम को शीघ्र ही जीत ले॥३॥

( २ )

ऋषिः—अप्रतिरथ ऐन्द्रः॥ देवता—१ बृहस्पतिः; २-३ इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा को देवासुर संग्राम में विजय के लिए उद्बोधन दिया गया है।

**१८५२. बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम्॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (**बृहः पते**) दिव्यगुणों की विशाल सेना के अधिपति जीवात्मन्! (**रक्षोहा**) पाप वा दुर्जन रूप राक्षसों का वधकर्ता तू (**अमित्रान्**) विघ्नों और शत्रुओं को (**अपबाधमानः**) तिरस्कृत करता हुआ (**रथेन**) शरीर-रथ से (**परिदीय**) चारों ओर पहुंच। (**सेनाः**) काम-क्रोध आदि की और दुर्जनों की सेनाओं को (**प्रभञ्जन्**) तोड़ता-फोड़ता हुआ, (**प्रमृणः**) हत्यारे दुर्विचारों वा हिंसक मनुष्यों को (**युधा**) आन्तरिक और बाह्य देवासुरसंग्राम से (**जयन्**) जीतता हुआ (**अस्माकम्**) हम सदाचारी, धार्मिक, न्यायकारी जनों के (**रथानाम्**) रथों का (**अविता**) रक्षक एधि हो॥१॥

**भावार्थ** :—जीवात्मा को चाहिए कि सेनापति के समान उत्साह बटोर कर आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं को खदेड़ता हुआ सद्भावों और सज्जनों की रक्षा करे॥१॥

अगले मन्त्र में फिर वही विषय है।

**१८५३. बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः। अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जीवात्मन्! (**बलविज्ञायः**) ब्रह्मबल का ज्ञाता, (**स्थविरः**) अनुभव में वृद्ध, (**प्रवीरः**) अतिशय

वीर, (**सहस्वान्**) उत्साही, (**वाजी**) विज्ञानवान् (**सहमानः**) सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करने वाला, (**उग्रः**) प्रतापी, (**अभिवीरः**) मन, प्राण, आदि वीरों से युक्त, (**सहोजाः**) बल में प्रसिद्ध, (**गोवित्**) विवेक की किरणों को और श्रेष्ठ वाणियों को प्राप्त तू (**जैत्रम्**) विजयशील (**रथम्**) रथ पर आतिष्ठ बैठ॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे स्वयं वीर तथा वीर योद्धाओं से युक्त सेनापति जयशील रथ पर चढ़कर भयंकर युद्ध को भी जीत लेता है, वैसे ही वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञ, सहनशील, मन-बुद्धि-प्राण आदि वीरों से युक्त, प्रभाववान्, प्रतापी, देह-रथ के अधिष्ठाता जीवात्मा को योग्य है कि अपने प्रौढ़ मनोबल से सभी बाह्य और आन्तरिक संग्रामों को जीत लेवे॥२॥

अब जीवात्मा के नेतृत्व में विजयलाभ करने के लिए वीरों को प्रोत्साहन देते हैं।

**१८५४. गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म**
**प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं**
**सखायो अनु सं रभध्वम् ॥३॥**

**पदार्थ** :—(**गोत्रभिदम्**) अविद्या, अस्मिता आदि क्लेश रूप पर्वतों को तोड़ने वाले, (**गोविदम्**) विवेक-प्रकाश की किरणों को प्राप्त करने वाले, (**वज्रबाहुम्**) अशुद्धि के क्षय तथा ज्ञान की दीप्ति के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि रूप वज्र को ग्रहण करने वाले, (**अज्म**) देवासुरसंग्राम को (**जयन्तम्**) जीतने वाले, (**ओजसा**) बल से (**प्रमृणन्तम्**) आन्तरिक शत्रुओं को कुचलने वाले (**इमम् अनु**) इस जीवात्मा को अनुसरण करके, हे (**सजाताः**) शरीर के साथ उत्पन्न मन, बुद्धि, प्राण, आदियो! तुम (**वीरयध्वम्**) वीरता दिखाओ। हे (**सखायः**) मित्रो! तुम (**इन्द्रम् अनु**) जीवात्मा का अनुसरण करते हुए (**संरभध्वम्**) वीरता पूर्ण कार्यों को आरम्भ करो॥३॥

**भावार्थ** :—शरीर के अन्दर जीवात्मा नाम का महापराक्रमी सेनापति पूरी रणसज्जा के साथ विद्यमान है, जिसे सब विघ्नों को पराजित करके देवासुर संग्राम में विजय पाना योग्य है॥३॥

(३)

**ऋषिः—अप्रतिरथ ऐन्द्रः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा-रूप सेनापति से रक्षा की प्रार्थना की गयी है।

**१८५५. अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः। दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो३ऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सहसा**) आत्मबल से (**गोत्राणि**) व्याधि, स्त्यान, संशय आदि योग-विघ्नों के तथा बाह्य विघ्नों के किलों का (**अभि गाहमानः**) अवगाहन करता हुआ, (**अदयः**) आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं पर दया न दिखाने वाला, (**वीरः**) वीर, (**शतमन्युः**) अनन्त तेज वाला, (**दुश्च्यवनः**) शत्रुओं से विचलित न किया जा सकने वाला, (**पृतनाषाट्**) शत्रुसेनाओं को पराजित कर देने वाला, (**अयुध्यः**) शत्रुओं के लिए जिससे युद्ध कर पाना असम्भव होता है ऐसा (**इन्द्रः**) जीवात्मा-रूप सेनापति (**युत्सु**) आन्तरिक तथा बाह्य देवासुरसंग्रामों में (**अस्माकं सेनाः**) हमारी यम-नियम आदि की सेनाओं को और धार्मिक योद्धाओं की सेनाओं को (**प्र अवतु**) भलीभांति रक्षित करे॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे राष्ट्र में कोई वीर सेनापति स्वपक्षीय सेनाओं की शत्रुओं से रक्षा करता है और दुष्ट शत्रुओं का शस्त्रास्त्रों से वध करता है, वैसे ही देह में स्थित जीवात्मा प्रबोध प्राप्त करके अपने संकल्प के बल से और भुजाओं के बल से सब आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं को पराजित करे॥१॥

अगले मन्त्र में जीवात्मा की सेनाध्यक्षता में विजयार्थ युद्ध प्रयाण का वर्णन है।

**१८५६. इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्॥२॥**

**पदार्थ** :–( **बृह: पति:** ) महान् शरीर-रूप राष्ट्र का रक्षक ( **इन्द्र:** ) वीर जीवात्मा-रूप सेनापति ( **आसाम्** ) इन देव-सेनाओं का ( **नेता** ) नेता हो। ( **दक्षिणा** ) त्याग की भावना, ( **यज्ञ:** ) परमेश्वरपूजारूप यज्ञ ( **सोम:** ) और शान्ति का व्रत ( **पुर: एतु** ) आगे-आगे चले। ( **अभिभञ्जतीनाम्** ) अदिव्य भावों तथा अधार्मिक दुष्ट-जनों को तोड़ती-फोड़ती-कुचलती हुई, ( **जयन्तीनाम्** ) विजय का उत्कर्ष प्राप्त करती हुई ( **देवसेनानाम्** ) दिव्यभावों तथा सदाचारी विद्वान् जनों की सेनाओं के ( **अग्रम्** ) आगे-आगे ( **मरुत:** ) प्राण तथा वायुवत् बलिष्ठ शूरवीर लोग ( **यन्तु** ) चलें॥२॥

**भावार्थ** :–सबको चाहिए कि अपने जीवात्मा को सेनापति बनाकर त्याग, परमात्मा की उपासना और विश्वशान्ति का आदर्श सामने रख कर, सत्य-अहिंसा आदि दिव्य गुणों की तथा बलिष्ठ योद्धाओं की सेना लेकर, प्राणपण से युद्ध करके देवासुरसंग्राम में विजय प्राप्त करें॥२॥

**अब वीरों के विजय-घोष का वर्णन करते हैं।**

**१८५७. इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञः आदित्यानां मरुतां**
**शर्ध उग्रम्। महामनसां भुवनच्यवानां घोषो**
**देवानां जयतामुदस्थात्॥३॥**

**पदार्थ** :–( **वृष्ण:** ) महाबली ( **इन्द्रस्य** ) विघ्नविदारक जीवात्मा का, ( **राज्ञ:** ) संकल्प बल से राजित ( **वरुणस्य** ) श्रेष्ठ मन का और ( **आदित्यानाम्** ) दोषापहारी ( **मरुताम्** ) प्राणों का ( **उग्रम्** ) उग्र ( **शर्ध:** ) बल ( **उदस्थात्** ) ऊपर उठे। ( **महामनसाम्** ) बड़े हौसले वाले, ( **भुवनच्यवानाम्** ) ब्रह्माण्ड को डिगा देने वाले, ( **जयताम्** ) विजय-लाभ करने वाले ( **देवानाम्** ) दिव्य भावों का और धर्मात्मा रण-बांके वीरों का ( **घोष:** ) विजय-घोष ( **उदस्थात्** ) ऊपर उठे॥३॥

यहाँ 'भुवनच्यवानाम्' में असम्बन्ध में सम्बन्धरूप अतिशयोक्ति अलंकार है। वीर रस है॥३॥

**भावार्थ** :–उत्साही आत्मा, मन, प्राण आदि शरीरस्थ रण-बांके वीरों की और राष्ट्र के सेनापति आदि वीरोद्भटों की देवासुरसंग्राम में विजय निश्चित होती है॥३॥

( ४ )

ऋषि:—अप्रतिरथ ऐन्द्र:॥ देवता—इन्द्र:॥ छन्द:—त्रिष्टुप्॥ स्वर:—धैवत:॥

प्रथम मन्त्र में इन्द्र जीवात्मा को प्रोद्बोधन दिया गया है।

**१८५८. उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि। उद् वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषा:॥१॥**

**पदार्थ** :—हे **(मघवन्)** शरीर के अधिष्ठाता ऐश्वर्यशाली जीवात्मन्! **(आयुधानि)** शस्त्रास्त्रों को **(उद्धर्षय)** ऊपर उठाओ, **(मामकानाम्)** मेरे **(सत्वनाम्)** वीरों के **(मनांसि)** मनों को **(उत्)** ऊपर उठाओ, उत्साहित करो। हे **(वृत्रहन्)** पापहन्ता, विघ्नहन्ता, शत्रुहन्ता जीवात्मन्! **(वाजिनाम्)** बलवान् योद्धाओं के **(वाजिनानि)** रण-कौशल **(उद् यन्तु)** ऊपर उठें, **(जयताम्)** विजय लाभ करते हुए **(रथानाम्)** रथारोहियों के **(घोषा:)** विजय-घोष **(उद् यन्तु)** ऊपर उठें॥१॥

यहाँ वीर रस है। 'उद्' की आवृत्ति में लाटानुप्रास, 'वाजिनां, वाजिना' में यमक और यकार, नकार, मकार, तकार का अनुप्रास है॥१॥

**भावार्थ** :—जो कोई राजा या सेनापति शस्त्रास्त्रों को तेज करता है, अपने पक्ष के वीरों के मनों को उत्साहित करता है, विजय-दुन्दुभि बजाता है, वह सब कार्य उसके शरीर में स्थित जीवात्मा का ही होता है। इसलिए उसी को सम्बोधन किया गया है। आत्मा के उद्बोधन से ही बाह्य विजय के समान ही आन्तरिक विजय भी प्राप्त होती है॥१॥

अब विजय की प्रार्थना करते हैं।

**१८५९. अस्माकमिन्द्र: समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु॥२॥**

**पदार्थ** :—**(अस्माकम् इन्द्र:)** हमारा सेनापति-तुल्य जीवात्मा

(ध्वजेषु समृतेषु) हमारे ध्वजों के शत्रु-ध्वजों से टकराने पर (जयतु) विजय-लाभ करे। (अस्माकं याः इषवः) हमारे जो वाण हैं (ताः जयन्तु) वे विजय-लाभ करें। (अस्माकं वीराः) हमारे रण-कुशल वीर योद्धा (उत्तरे भवन्तु) विजयी हों। हे (देवाः) जीतने के अभिलाषी मन, बुद्धि आदियो! (अस्मान् उ) हमारी (हवेषु) देवासुरसंग्रामों में (अवत) रक्षा करो॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे सेनापति से प्रोद्बोधन पाकर रणबांकुरे सैनिक शीघ्र ही शत्रुओं को जीत लेते हैं, वैसे ही अपनी अन्तरात्मा को प्रोत्साहन देना वीरों के विजय में हेतु बनता है॥२॥

अगले मन्त्र में शत्रुओं को मोह में डालने की प्रेरणा दी गयी है।

**१८६०. असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना। तां गूहत तमसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानात्॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**मरुतः**) प्राणो वा वीर सैनिको! (**असौ या**) यह जो (**ओजसा**) अपने बल से (**स्पर्धमाना**) हमसे स्पर्धा करती हुई (**परेषाम्**) शत्रुओं की (**सेना**) सेना (**नः अभ्येति**) हमारी ओर बढ़ी आ रही है, (**ताम्**) उस सेना को (**अपव्रतेन**) जिसमें कार्य बन्द हो जाते हैं ऐसे (**तमसा**) अन्धकार से (**गूहत**) आच्छन्न कर दो, (**यथा**) जिससे (**एतेषाम्**) इनमें (**अन्यः**) एक (**अन्यम्**) दूसरे को (**न जानात्**) न जान सके॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे युद्ध में सम्मोहनास्त्र के प्रयोग द्वारा घोर अन्धकार के व्याप्त हो जाने पर शत्रु एक-दूसरे को ही नहीं देख पाते वैसे ही जीवात्मा के प्राणायाम द्वारा प्रयुक्त सम्मोहन से सभी आन्तरिक काम-क्रोध आदि वा अविद्या-अस्मिता आदि शत्रु सर्वथा मोह को प्राप्त हो जाएं॥३॥

(५)

**ऋषिः—१-२ अप्रतिरथ ऐन्द्रः; ३ पायुर्भारद्वाजः॥ देवता—**

१ अप्वा; २ इन्द्रो मरुतो वा; ३ इषवः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २-३ अनुष्टुप्॥ स्वरः—१ धैवतः; २-३ गान्धारः॥

प्रथम मन्त्र में शत्रुओं को व्याधि वा भय से पीड़ित करने का वर्णन है।

१८६१. अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि। अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेना-मित्रास्तमसा सचन्ताम्॥१॥

**पदार्थ** :—हे ( अप्वे ) व्याधि वा भीति! ( परेहि ) शत्रुदल में जा। ( अमीषाम् ) इन शत्रुओं के ( चित्तम् ) चित्त को ( मोहयन्ती ) मोहित करती हुई ( अङ्गानि ) इनके अंगों को ( गृहाण ) जकड़ दे। ( अभिप्रेहि ) शत्रुओं के प्रति जा, उनके ( हृत्सु ) हृदयों में ( शोकैः ) शोकों से ( निर्दह ) दाह उत्पन्न कर दे। ( अमित्राः ) शत्रु ( अन्धेन ) घने ( तमसा ) मोह के अन्धकार से ( सचन्ताम् ) संयुक्त हो जाएं॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे व्याधि वा भय से ग्रस्त शत्रु किंकर्तव्यविमूढ़ और दग्ध हृदय वाले होकर पराजित हो जाते हैं वैसे ही आन्तरिक देवासुरसंग्राम में काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि वा व्याधि स्त्यान-संशय-प्रमाद-आलस्य आदि रिपु व्याधि-ग्रस्त वा भयोद्विग्न से होकर झट विनष्ट हो जाएं॥१॥

अगले मन्त्र में वीरों को उद्बोधन दिया गया है।

१८६२. प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु। उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥२॥

**पदार्थ** :—हे ( नरः ) वीर-पुंगव योद्धाओ! ( प्रेत ) आगे बढ़ो, ( जयत ) विजय पाओ। ( इन्द्रः ) तुम्हारा वीर अन्तरात्मा ( वः ) तुम्हें ( शर्म ) कल्याण ( यच्छतु ) प्रदान करे। ( वः ) तुम्हारी ( बाहवः ) भुजाएं ( उग्राः ) उग्र ( सन्तु ) हों, ( यथा ) जिससे, तुम ( अनाधृष्याः ) अपराजेय ( असथ ) हो जाओ॥२॥

इस मन्त्र में वीर रस है॥२॥

**भावार्थ** :—मनुष्यों को उद्बोधन तभी मिल सकता है यदि

उनका आत्मा बलवान् हो। इसलिए अपने आत्मा को बली बनाकर, उद्बोधन पाकर जीवन-संग्राम में सबको विजय प्राप्त करनी चाहिए॥२॥

अब अपनी सेना को उद्बोधन देते हैं।

**१८६३. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः॥३॥**

**पदार्थ** :—हे (**ब्रह्मसंशिते**) धनुर्वेद के ज्ञाता सेनापति द्वारा तीक्ष्ण अर्थात् उत्साहित की हुई (**शरव्ये**) शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल सेना! (**अवसृष्टा**) प्रेरित की हुई तू (**परापत**) शत्रुओं पर टूट पड़। (**गच्छ**) जा, (**अमित्रान्**) शत्रुओं को (**प्रपद्यस्व**) प्राप्त कर। (**अमीषाम्**) इनके मध्य (**कंचन**) किसी को भी (**न उच्छिषः**) बचा न रहने दे॥३॥

**भावार्थ** :—जैसे सेनापति से प्रेरित वीरों की सेना शत्रुओं को जीत लेती है वैसे ही शरीर के अध्यक्ष जीवात्मा से प्रेरित सात्त्विक वीर भावों की सेना तामस दुर्भावों पर विजय पा लेती है। तामस भावों को निःशेष कर देना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि नाममात्र भी वे यदि बचे रहें तो फिर बढ़ जाते हैं॥३॥

(६)

**ऋषिः—पायुर्भारद्वाजः॥ देवता—१-२ इन्द्रः; ३ संग्रामाशिषः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ पङ्क्तिः॥ स्वरः— १ धैवतः; २ गान्धारः; ३ पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में शत्रुसेना के समूलोच्छेद का विषय है।

**१८६४. कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना। मैषां मोच्यघहारश्च नेन्द्र वयांस्येनाननुसंयन्तु सर्वान्॥१॥**

**पदार्थ** :—(**सुपर्णाः**) सुदृढ़ पंखों वाली (**कङ्काः**) चीलें (**एनान्**) इन शत्रुओं का (**अनुयन्तु**) पीछा करें। (**असौ**) सेना वह शत्रु-सेना (**गृध्राणाम्**) गिद्धों का (**अन्नम् अस्तु**)

भोजन बनें। हे (इन्द्र) सेनापतितुल्य जीवात्मन्! (एषाम्) इन शत्रुओं में से (अघहारः च न) पाप का भागी कोई भी (मा मोचि) जिन्दा न छूटे। (एनान् सर्वान्) इन सबको (वयांसि) मांसभक्षी पक्षी (अनु संयन्तु) पीछा करें, इन्हें खा जाएं।।१।।

**भावार्थ** :—जैसे बाह्य युद्ध में मारे गये शत्रु गिद्ध आदि मांसभक्षक पक्षियों से समाप्त किये जाते हैं, वैसे ही आन्तरिक देवासुर संग्राम में जीवात्मा से मारे गये काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाम भी न बचे ऐसा प्रयत्न मनुष्यों को करना चाहिए।।१।।

आगे फिर उसी विषय को कहा गया है।

**१८६५. अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रुयतीमभि।**
**उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**मघवन्**) दिव्य ऐश्वर्य वाले, (**वृत्रहन्**) शत्रुहन्ता (**इन्द्र जीवात्मन्!**) (**अस्मान् अभि**) हमारे प्रति (**शत्रुयतीम्**) शत्रुता का आचरण करने वाली (**ताम्**) उस विकराल (**अमित्रसेनाम्**) रिपु-सेना को, तू (**अग्निः च**) और तैजस मन (**उभौ**) दोनों (**प्रतिदहतम्**) भस्म कर दो।।२।।

**भावार्थ** :—जैसे राजा और सेनापति के उद्योग से सब बाह्य शत्रु निःशेष हो जाते हैं वैसे ही आन्तरिक देवासुरसंग्राम में जीवात्मा और मन सब विघ्नों और रिपुओं को दग्ध करने में समर्थ होते हैं।।२।।

अगले मन्त्र में युद्ध में विजय की प्रार्थना है।

**१८६६. यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव।**
**तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा**
**शर्म यच्छतु ॥३॥**

**पदार्थ** :—(**यत्र**) जिस समरांगण में (**बाणाः**) बाण आदि अस्त्र (**सम्पतन्ति**) गिरते हैं, (**विशिखाः कुमाराः इव**) जैसे चूड़ाकर्म संस्कार कराये हुए शिखा-रहित बालक चलने का अभ्यास करते हुए पग-पग पर गिरते हैं, (**तत्र**) उस समरांगण

में ( **ब्रह्मणः पतिः** ) ज्ञान का रक्षक जीवात्मा और महान् राष्ट्र का रक्षक सेनापति तथा ( **अदितिः** ) कुतर्कों से खण्डित न होने वाली बुद्धि और राष्ट्रभूमि ( **नः** ) हमें ( **शर्म** ) कल्याण यच्छतु प्रदान करे, ( **विश्वाहा** ) सदा ( **शर्म** ) कल्याण ( **यच्छतु** ) प्रदान करे। [निरुक्त (१०।४०)] में कहा गया है कि किसी वाक्य को दोहराने में बहुत सा चामत्कारिक अर्थ प्रकट होता है। जैसे—'अहो, दर्शनीय है, अहो दर्शनीय है', इस वाक्य में, उसी के अनुसार यहाँ 'शर्म यच्छतु' वाक्य को दुहराने में बहुत-सा अर्थ समाविष्ट है।]॥३॥

इस मन्त्र में उपमालंकार है॥३॥

**भावार्थ** :—बाह्य संग्राम में सेनापति प्रतिपक्षी योद्धाओं को तेज बाणों से काट कर अपने पक्ष वालों को सुख देवे। वैसे ही आध्यात्मिक देवासुरसंग्राम में जीवात्मा काम-क्रोध आदि रिपुओं का छेदन-भेदन करके मनोभूमि को शत्रु-रहित करे॥३॥

## ( ७ )

**ऋषिः—शासो भारद्वाजः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१-२ अनुष्टुप्; ३ विराड् जगती॥ स्वरः—१-२ गान्धारः; ३ निषादः॥**

प्रथम मन्त्र में जीवात्मा और सेनापति को उद्बोधन देते हैं।

**१८६७. वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।**
**वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१॥**

**पदार्थ** :—हे ( **वृत्रहन् इन्द्र** ) पापहन्ता जीवात्मन्, और शत्रुहन्ता सेनापति तुम ( **रक्षः** ) राक्षसी स्वभाव को वा राक्षसी स्वभाव वाले दुर्जन को ( **विजहि** ) विनष्ट करो, ( **मृधः** ) संग्रामकारी काम-क्रोध आदियों को वा हिंसक मानवी शत्रुओं को ( **विजहि** ) विनष्ट करो, ( **वृत्रस्य** ) पुण्य पर पर्दा डालने वाले पाप वा पापी के ( **हनू** ) आक्रमण और बचाव के उपायों को वा जबड़ों को ( **विरुज** ) चूर-चूर कर दो। ( **अभिदासतः** ) दंशन छेदन-भेदन करने वाले ( **अमित्रस्य** ) शत्रु के ( **मन्युम्** ) प्रदीप्त-प्रभाव को वा क्रोध को ( **वि** ) विध्वस्त कर दो॥१॥

**भावार्थ** :—जैसे राष्ट्र में सेनापति संहारकारी शत्रुओं का मर्दन करता है, वैसे ही शरीर में जीवात्मा राक्षसी स्वभाव को, हिंसक काम-क्रोध आदियों को, धर्म पर पर्दा डालने वाले पाप को, और बिच्छू के समान काटने वाली कुटिलता को विध्वस्त करे॥१॥

आगे पुनः वही विषय कहा गया है।

**१८६८. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।**
**यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२॥**

**पदार्थ** :—हे (**इन्द्र**) जीवात्मन् वा सेनापति! तुम (**नः**) हमारे (**मृधः**) हिंसकों को (**विजहि**) विनष्ट करो, (**पृतन्यतः**) सेना से आक्रमण करने वाले काम-क्रोध आदि को वा बाहरी शत्रुओं को (**नीचा यच्छ**) नीचा दिखाओ। (**यः**) जो आन्तरिक वा बाहरी शत्रु (**अस्मान्**) हम धार्मिकों को (**अभिदासति**) सर्वथा क्षीण करना चाहता है, उसे (**अधरं तमः गमय**) घोर दुर्गति प्राप्त कराओ वा निचले कारागार में डाल दो॥२॥

**भावार्थ** :—जैसे सेनापति दुष्ट शत्रुओं का वध कर देता है अथवा उन्हें कारागार में डाल देता है, वैसे ही शरीर का अधिष्ठाता जीवात्मा सब आन्तरिक शत्रुओं की घोर दुर्गति करके वा उन्हें विनष्ट करके अपने निष्टकण्टक साम्राज्य को स्थापित करे॥२॥

अगले मन्त्र में इन्द्र जीवात्मा के विषय-साधनों का वर्णन है।

**१८६९. इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीका-**
**वसह्यौ। तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां**
**जितमसुराणां सहो महत् ॥३॥**

**पदार्थ** :—(**इन्द्रस्य**) सेनापति-तुल्य जीवात्मा की (**बाहू**) प्राण-अपान रूप भुजाएं (**स्थविरौ**) स्थिर, (**युवानौ**) तरुण, (**अनाधृष्यौ**) मन और शरीर के मलों से अपराजेय, (**सुप्रतीकौ**) शत्रु के प्रति भलीभांति आगे बढ़ने, वाली और (**असह्यौ**)

रोग आदियों से असह्य हैं। (योगे आगते) अष्टांग योग के उपस्थित होने पर, योग-साधक (तौ) उन प्राण-अपान-रूप भुजाओं का (युञ्जीत) प्रयोग करे, (याभ्याम्) जिनसे (असुराणाम्) आधि-व्याधि-रूप दैत्यों का (महत् सहः) विशाल बल (जितम्) जीत लिया जाता है॥३॥

यहाँ उपमेय प्राण-अपान के निगरणपूर्वक उपमानभूत बाहुओं का वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलंकार है। 'स्थविर' अर्थात् बूढ़े होने पर भी 'युवा' यह विरोधालंकार ध्वनित होता है। ऊपर की व्याख्या से उस विरोध का परिहार हो जाता है॥३॥

**भावार्थ** :—योगाभ्यास में पूरक, कुम्भक आदि प्राणायाम से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट हो जाते हैं और प्रकाश के आवरण का क्षय हो जाने पर धारणाओं में मन की योग्यता हो जाती है। इसलिए प्राण-अपान सेनापति की बाहुओं के समान सहायक होते हैं॥३॥

## (८)

**ऋषिः—शासो भारद्वाजः॥ देवता—संग्रामाशिषः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्; २ अनुष्टुप्; ३ पङ्क्तिः॥ स्वरः—१ धैवतः; २ गान्धारः; ३ पञ्चमः॥**

प्रथम मन्त्र में विजयाभिलाषी को आशीर्वाद दिया जा रहा है।

**१८७०. मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१॥**

**पदार्थ** :—हे अध्यात्म पथ के पथिक जीवात्मन्! (ते) तेरे (मर्माणि) मन, बुद्धि, चक्षु आदि मर्म-स्थलों को (वर्मणा) ब्रह्म-रूप कवच से (छादयामि) ढकता हूँ। (राजा) विश्व का सम्राट् (सोमः) जगदीश्वर (त्वा) तुझे (अमृतेन) आनन्द-रस से (अनुवस्ताम्) आच्छादित करे। (वरुणः) दोषनिवारक, वरणीय, विद्वान् आचार्य (ते) तेरे लिए (उरोः) विस्तृत अध्यात्म ज्ञान के (वरीयः) अतिशय उत्कृष्ट तत्त्व को (कृणोतु)

प्रदान करे। (**जयन्तं त्वा**) अध्यात्म क्षेत्र में और बाह्य क्षेत्र में विजय लाभ करते हुए तेरे (**अनु**) पीछे-पीछे (**देवाः**) मन, प्राण आदि भी (**मदन्तु**) लहलहायें।।१।।

**भावार्थ** :–योगमार्ग में पैर रखता हुआ मनुष्य ब्रह्मकवच से रक्षित होकर, गुरुजनों का मार्ग निर्देश पाकर, ब्रह्मानन्द का अनुभव करता हुआ मन, बुद्धि, प्राण आदियों के साथ अतिशय विजयी होता है।।१।।

अगले मन्त्र में शत्रुओं को भर्त्सना दी जा रही है।

**१८७१. अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहयइव।**
**तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**अमित्राः**) आन्तरिक और बाह्य शत्रुओ! तुम (**अन्धाः**) अन्धे और (**अशीर्षाणः अहयः इव**) फन-कटे सांपों के समान प्रभाव-रहित (**भवत**) हो जाओ। (**अग्निनुन्नानां तेषां व**) अग्नि के समान ज्वलन्त दृढ़ संकल्प से दूर किये हुए उन तुम शत्रुओं में से (**वरं-वरम्**) प्रधान-प्रधान को चुन-चुन कर (**इन्द्रः**) हमारा अन्तरात्मा (**हन्तु**) विनष्ट कर दे।।२।।

यहाँ उपमालंकार है।।२।।

**भावार्थ** :–भयंकर फनाटोप दिखाने वाले विषधर भी फन कट जाने पर कुछ भी कर सकने में असमर्थ हो जाते हैं। वैसे ही प्रबल संकल्प से जिनका बल हर लिया गया है ऐसे आन्तरिक और बाह्य सब शत्रु निष्क्रिय और मृत हो जाएं।।२।।

अगले मन्त्र में वधेच्छु के विनाश का उपाय दर्शाते हैं।

**१८७२. यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति।**
**देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म**
**ममान्तरम्॥३॥**

**पदार्थ** :–(**यः**) जो (**नः**) हमें (**स्वः**) अपना दुर्भाव, (**अरणः**) पराया दुर्भाव, (**यः च**) और जो (**निष्ठ्यः**) शत्रु

का दुर्भाव (जिघांसति) नष्ट करना चाहता है, (तम्) उस काम-क्रोध आदि दुर्भाव का (सर्वे) सब (देवाः) दिव्यगुण वा सदाचारी विद्वान् जन (धूर्वन्तु) वध कर दें। (ब्रह्म) महान् जगदीश्वर (मम) मेरा (अन्तरम्) आन्तरिक (वर्म) कवच अर्थात् रक्षा-साधन हो जाए, (शर्म) जगदीश की शरण (मम) मेरा (अन्तरम्) आन्तरिक (वर्म) कवच अर्थात् रक्षा-साधन हो जाए॥३॥

**भावार्थ** :—कभी मनुष्य निज मन से उत्पन्न पाप में प्रवृत्त होता है और कभी परिचित जन से प्रेरित वा शत्रु से प्रेरित पाप में लिप्त होता है। दिव्य विचारों से, विद्वानों के संग से और परमेश्वर के ध्यान-चिन्तन से उन पापों को नष्ट करके वह निष्पाप और सच्चरित्र हो सकता है॥३॥

**(९)**

**ऋषिः—१ जय ऐन्द्रः; २-३ गोतमो राहुगणः॥ देवता—१ इन्द्रः; २-३ विश्वेदेवाः॥ छन्दः—१-२ त्रिष्टुप्; ३ विराट्स्थाना त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥**

प्रथम मन्त्र में मानव को उद्बोधन दिया गया है।

**१८७३. मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ**
**जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं**
**वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व॥१॥**

**पदार्थ** :—हे (इन्द्र) वीर मानव! तू (भीमः) भयंकर, (कुचरः) भूमि पर विचरने वाले, (गिरिष्ठाः) पर्वत की गुफा में निवास करने वाले (मृगः न) शेर के समान (भीमः) दुष्टों के लिए भयंकर, (कुचरः) भू-विहारी और (गिरिष्ठाः) पर्वत के सदृश उन्नत पद पर प्रतिष्ठित हो। (परावतः) सुदूर देश से (परस्याः) और दूर दिशा से (आ जगन्थ) शत्रुओं के साथ युद्ध करने के लिए आ (सृकम्) गतिशील, (तिग्मम्) तीक्ष्ण (पविम्) वज्र को, शस्त्रास्त्रसमूह को (संशाय) और अधिक तीक्ष्ण करके (शत्रून्) शत्रुओं को (वि ताढि) विताड़ित कर, (मृधः) हिंसकों को (वि नुदस्व) दूर भगा दे॥१॥

यहाँ श्लिष्टोपमालंकार है।।१।।

**भावार्थ** :–मनुष्यों को चाहिए कि वीरता का संचय करके जैसे बाहरी शत्रुओं को पराजित करें वैसे ही आन्तरिक शत्रुओं को भी निर्मूल करें।।१।।

अगले मन्त्र में अपनी आकांक्षा प्रकट की गयी है।

**१८७४. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्ष-भिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥२॥**

**पदार्थ** :–हे (**देवाः**) विद्वानो! हम (**कर्णेभिः**) कानों से (**भद्रम्**) भद्र वचन (**शृणुयाम**) सुनें। हे (**यजत्राः**) पूजनीय माता, पिता, आचार्य, वानप्रस्थ, संन्यासी आदि जनो! हम (**अक्षभिः**) आंखों से (**भद्रम्**) भद्र दृश्य (**पश्येम**) देखें। (**तुष्टुवांसः**) **जगदीश्वर की स्तुति करने वाले हम लोग** (**स्थिरैः**) दृढ़ (**अङ्गैः**) सिर आदि अंगों से वा ब्रह्मचर्य आदि अंगों से, और (**तनूभिः**) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि शरीरों से (**यत्**) जो (**देवहितम्**) सज्जनों का हित करने वाली वा परमात्मदेव द्वारा निहित कम से कम सौ वर्ष की (**आयुः**) आयु है वह (**व्यशेमहि**) प्राप्त करें।।२।।

**भावार्थ** :–मन, बुद्धि, प्राण, आंख, कान आदि जो अनुपम साधन मनुष्यों को परमात्मा ने दिये हैं उनके सदुपयोग से भद्र जीवन बिताते हुए पूर्ण आयु प्राप्त करके आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति निरन्तर करनी चाहिए।।२।।

अब अन्त में स्वस्ति की प्रार्थना करते हैं।

**१८७५. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥३॥**

**पदार्थ** :–( **वृद्धश्रवाः** ) महान् कीर्ति वाला ( इन्द्रः ) जगत्पति परमेश्वर ( **नः** ) हमें ( **स्वस्ति** ) मंगल ( **दधातु** ) प्रदान करे। ( **विश्ववेदाः** ) सब धन का स्वामी ( **पूषा** ) पुष्टिप्रदाता जगदीश्वर ( **नः** ) हमें ( **स्वस्ति** ) मंगल ( **दधातु** ) प्रदान करे। ( **अरिष्टनेमिः** ) जिसकी व्याप्ति रूप परिधि कभी टूटती नहीं ऐसा ( **तार्क्ष्यः** ) सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी परमपिता ( **नः** ) हमें ( **स्वस्ति** ) मंगल ( **दधातु** ) प्रदान करे। ( **बृहस्पतिः** ) महती वेदवाणी का अधीश्वर, सर्वज्ञानमय, प्राचीनों का भी गुरु सर्वेश ( **नः** ) हमें ( **स्वस्ति** ) मंगल ( **दधातु** ) प्रदान करे।।३।।

**भावार्थ** :–इन्द्र आदि विविध नामों से वेद में वर्णित, प्रसिद्ध कीर्ति वाले, सुपुष्टिदायक, सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ, लयसहित सामगानों द्वारा गाये गये जगदीश्वर के ध्यान से यथाशक्ति यथासम्भव उसके गुणों को अपने आत्मा में धारण करके सब मनुष्य ऐहिक और **पारमार्थिक** श्रेष्ठ अस्तित्व, श्रेष्ठ मंगल **और श्रेष्ठ पूजा को निरन्तर प्राप्त करें।।३।।**

**इस अध्याय में जीवात्मा को प्रोद्बोधन** देते हुए देवासुर **संग्राम में विजयार्थ प्रेरित करने, आशीर्वाद** देने तथा स्वस्ति **की प्रार्थना** होने **से** इस **अध्याय की पूर्व** अध्याय के साथ संगति है, यह **जानना** चाहिए।

**इत्येकविंशोऽध्यायः, नवमप्रपाठके तृतीयार्धः समाप्तः॥**

**इत्युत्तरार्चिकः॥**

**इति सामवेदसंहिता॥**

# मन्त्रानुक्रमणिका


| मन्त्रः | क्रमाङ्कः |
|---|---|
| **अ** | |
| अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे | ५२९, १२५३ |
| अक्षन्नमीमदन्त | ४१५ |
| अगन्म महा नमसा | १३०४ |
| अगन्म वृत्रहन्तमं | ८९ |
| अग्न आ याहि वीतये | १,६६० |
| अग्न आ याह्यग्निभिः | १५५२ |
| अग्न आयूंषि | ६२७, १४६४, १५१८ |
| अग्न ओजिष्ठमा भर | ८१ |
| अग्निं तं मन्ये यो | ४२५,१७३७ |
| अग्निं दूतं वृणीमहे | ३,७९० |
| अग्निं नरो दीधितिभिः | ७२,१३७३ |
| अग्निं वो देवमग्निभिः | १२१९ |
| अग्निं वो वृधन्तम् | २१,९४६ |
| अग्निं सूनं सहसो | १५५५ |
| अग्निं हिन्वन्तु नो | १५२७ |
| अग्निं होतारं मन्ये | ४६५, १८१३ |
| अग्निः प्रत्नेन जन्मना | १७११ |
| अग्निः प्रियेषु धामसु | १७१० |
| अग्निनाग्निः समिध्यते | ८४४ |
| अग्निमग्निं हवीमभिः | ७९१ |
| अग्निमिन्धानो मनसा | १९ |
| अग्निमीडिष्वावसे | ४९ |
| अग्निमीळे पुरोहितं | ६०५ |
| अग्निरस्मि जन्मना | ६१३ |
| अग्निरिन्द्राय पवते | १८२५ |
| अग्निरुक्थे पुरोहितो | ४८ |
| अग्निर्ऋषिः पवमानः | १५१९ |
| अग्निर्जागार तमृचः | १८२७ |
| अग्निर्जुषत नो गिरः | १४०६ |
| अग्निर्ज्योतिर्ज्योति | १८३१ |
| अग्निर्मूर्द्धा दिवः | २७,१५३२ |
| अग्निर्वृत्राणि जंघनद् | ४,१३९६ |
| अग्निर्हि वाजिनं विशे | १७३८ |
| अग्निस्तिग्मेन शोचिषा | २२ |
| अग्ने केतुर्विशामसि | १५३१ |
| अग्ने जरितर्विश्पतिः | ३९ |
| अग्ने तमद्याश्वं न | ४३४, १७७७ |
| अग्ने तव श्रवो वयो | १८१६ |
| अग्ने त्वं नो अन्तमः | ४४८,११०७ |
| अग्ने देवाँ इहा वह | ७९२ |
| अग्ने नक्षत्रमजरमा | १५३० |
| अग्ने पवस्व स्वपा | १५२० |
| अग्ने पावक रोचिषा | १५२१ |
| अग्ने मृड महाँ असि | २३ |
| अग्ने यजिष्ठो अध्वरे | १०० |
| अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये | २५,१३८३ |
| अग्ने रक्षा णो अंहसः | २४ |
| अग्ने वाजस्य गोमतः | ९९,१५६१ |
| अग्ने विवस्वदा भरा | १० |
| अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं | ४०,१७८० |
| अग्ने विश्वेभिरग्निभिः | १५०३ |
| अग्ने सुखतमे रथे | १३५० |
| अग्ने स्तोमं मनामहे | १४०५ |
| अग्रेगो राजाप्यस्त | १६१६ |
| अग्रे सिन्धूनां पवमानो | १०३३ |
| अचिक्रदद् वृषा हरिः | ४९७,१०४२ |

अचेत्यग्निश्चिकित्ति ४८७
अचोदसो नो धन्वन् ५५५
अच्छा कोशं मधुश्चुत ६५८
अच्छा नः शीरशोचिषं १५५४
अच्छा नो याह्या १३८४
अच्छा व इन्द्रं मतयः ३७५
अच्छा समुद्रमिन्दवो ६५९
अच्छा हि त्वा सहसः १५५३
अजीजनो अमृत मर्त्याय १५०८
अजीजनो हि पवमान १३६५
अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते ५६४,१६१४
अतश्चिदिन्द्र न उपा २१५
अतस्त्वा रयिरभ्ययद् ८३८
अतीहि मन्युषाविणं २२३
**अतो देवा अवन्तु १६७४**
**अत्यायातमश्विना १७४४**
अत्या हियाना न ११९१
अत्रा वि नेमिरेषा १८०८
अत्राह गोरमन्वत १४७,९१५
अथा ते अन्तमानां १०८९
अदर्दरुत्समसृजः ३१५
अदर्शि गातुवित्तमः ४७,१५१५
अदाभ्यः पुरएता १५५६
अदृश्रन्नस्य केतवो ६३४
अद्य नो देव सवितः १४१
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र १४५८
अध क्षपा परिष्कृतो १६३१
अध ज्मो अध वा ५२
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा १४८८
अध धारया मध्वा १०२०
अध यदिमे पवमान १४९६
अधा त्वं हि नस्करो १५५१
अधा हिन्वान इन्द्रियं ८३९
अधा हीन्द्र गिर्वण ४०६,७१०
अधा ह्यग्ने क्रतोः १७७८
अधि यदस्मिन् ५३९
अधुक्षत प्रियं मधु १०३९
अध्वर्यो अद्रिभिः ४९९,१२२५
अध्वर्यो द्रावया त्वं ३०८
अनवस्ते रथमश्वाय ४४०
अनु ते शुष्मं तुरयन्तम् १६३८
अनु त्वा रोदसी उभे ९८९
अनु प्रत्नस्यौकसो ७४४
अनु प्रत्नास आयवः ५०२
अनु हि त्वा सुतं ४३२,१३६६
अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः ९९८
अन्तश्चरति रोचनास्य ६३१,१३७७
**अन्धा अमित्र भवता १८७१**
**अपघ्नन्तो अराव्णः ११९५**
**अपघ्नन्पवते मृधो ५१०,१२१३**
**अपघ्नन्पवसे मृधः ४९२, १२३७**
अप त्यं वृजिनं रिपुं १०५
अप त्ये तायवो ६३३
अप द्वारा मतीनां ११२४
अपां नपातं सुभगं १४१४
अपां फेनेन नमुचेः २११
अपादु शिप्रयान्धसः १४५
अपामिवेदूर्मयस्त ५४४
अपामीवामप स्त्रिधमप ३९७
अपिबत्कद्रुवः सुत १३१
अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै ३२२
अप्सा इन्द्राय वायवे ९९५
अप्सु रेतः शिश्रिये १८४४
अबोधि होता यजथाय १७४७
अबोध्यग्निः समिधा ७३,१७४६
अबोध्यग्निर्ज्म उदेति १७५८

अभिक्रन्दन्कलशं १०३२
अभि गव्यानि वीतये १०६२
अभि गावो अधन्विषु ९६२
अभि गोत्राणि सहसा १८५५
अभि ते मधुना पयो ६५२
अभि त्यं देवं सविता ४६४
अभि त्यं मेषं पुरु ३७६
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं ५२८,१४०८
अभि त्वा पूर्वपीतये २५६,१५७३
अभि त्वा वृषभा सुते १६१,७३१
अभि त्वा शूर नोनुमः २३३,६८०
अभि द्युम्नं बृहद्यशः ५७९,१०११
अभि द्रोणानि बभ्रवः ७६५
अभि द्विजन्मा त्री १७७५
अभि प्र गोपतिं १६८,१४८९
अभि प्रयांसि वाहसा १५५७
अभि प्र वः सुराधसम् २३५,८११
अभि प्रियं दिवस्पदम् ११२७
अभि प्रियाणि काव्या १७६२
अभि प्रियाणि पवते ५५४,७००
अभि प्रिया दिवः १२०४
अभि ब्रह्मीरनूषत ८७०
अभि वस्त्रा सुवसना १४२७
अभि वाजी विश्वरूपो १८४३
अभि वायुं वीत्यर्षा १४२६
अभि विप्रा अनूषत ११९७
अभि वो वीरमन्धसो २६५
अभि व्रतानि पवते १०२१
अभि सोमास आयवः ५१८,८५६
अभि हि सत्य सोमपा १२४८
अभी नवन्ते अद्रुहः ५५०
अभी नो अर्ष दिव्या १४२८
अभी नो वाजसातमं ५४९,१२३८
अभी पतस्तदा भरेन्द्र ३०९
अभी षु णः सखीना ६८४
अभ्यभि हि श्रवसा १५०७
अभ्यर्ष बृहद्यशो ९७१
अभ्यर्ष स्वायुध १०५३
अभ्यारमिदद्रयो १६०३
अभ्यार्षानपच्युतो १०५४
अभ्रातृव्यो अना ३९९,१३८९
अमित्रसेनां मघवन् १८६५
अमित्रहा विचर्षणिः १४७७
अमी ये देवा स्थन ३६८
अमीषां चित्तं प्रतिलोभ १८६१
अयं त इन्द्र सोमो १५९,७२५
अयं दक्षाय साधनो ११००
अयं पुनान उषसो ८२३
अयं पूषा रयिर्भगः ५४६,८१८
अयं भराय सानसि ६९५
अयं यथा न आभुवत् ९४७
अयं वां मधुमत्तमः ३०६
अयं वां मित्रावरुणा ९१०
अयं विचर्षणिर्हितः ५०८
अयं विश्वा अभि ९४८
अयं विश्वानि तिष्ठति ७५७
अयं स यो दिवस्परि ९००
अयं सहस्रमानवो दृशः ४५८
अयं सहस्रमृषिभिः १६०८
अयं सहस्रा परि युक्ता १८४५
अयं स होता यो १७७६
अयं सूर्यइवोपदृगयं ७५६
अयं सोम इन्द्र तुभ्यम् १४७१
अयमग्निः सुवीर्यस्य ६०
अयमु ते समतसि १८३,१५९९
अया चित्तो विपानया ८०५
अया धिया च गव्यया १८८
अया निजघ्निरोजसा १७१५

अया पवस्व देवयुः ७७२
अया पवस्व धारया ४९३,१२१६
अया पवा पवस्वैना ५४१,११०४
अया रुचा हरिण्या ४६३,१५९०
अया वाजं देवहितम् ४५४
अया वीती परि स्रव ४९५,१२१०
अया सोम सुकृत्यया ५०७
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः ६३९
अयुक्त सूर एतशम् १२१७
अयुद्ध इद्युधा वृतम् १३४०
अरं त इन्द्र कुक्षये १६६२
अरं त इन्द्र श्रवसे २०९
अरण्योर्निहितो जातवेदा ७९
अरमश्वाय गायत ११८
अरूरुचदुषसः पृश्नि ५९६, ८७७
अर्चत प्रार्चता नरः ३६२
अर्चन्ति नारीरपसो १७५७
अर्चन्त्यर्कं मरुतः ४४५,१११४
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधु १७६०
अर्षा नः सोम शं १३३७
अर्षा सोम द्युमत्तमो ५०३,९९४
अलर्षिराति वसुदामुप १३२०
अवक्रक्षिणं वृषभं १३६१
अव द्युतानः कलशाँ ७०२
अव द्रप्सो अंशुमती ३२३
अवसृष्टा परा पत १८६३
अव स्म दुर्हणायतो १०९२
अवा नो अग्न ऊतिभिः १५२४
अव्या वारे परि ११३३
अव्या वारैः परि १२०७
अश्वं न गीर्भी १५८४
अश्वं न त्वा वारवन्तं १७,१६३४
अश्विना वर्तिरस्मदा १७३४
अश्वी रथी सुरूप २७७
अश्वेव चित्रारुषी १७२६
अश्वो न चक्रदः ७८३
अषाढमुग्रं पृतनासु ११५६
असर्जि कलशाँ ९४२
असर्जि रथ्या यथा ४९०
असर्जि वक्वा रथ्ये ५४३
असावि देवं गो ३१३
असावि सोम इन्द्र ३४७,१०२८
असावि सोमो अरुषो ५६२,१३१६
असाव्यंशुर्मदाय ४७३,१००८
असि हि वीर सेन्यो १००३
असृक्षत प्र वाजिनो ४८२,१०३४
असृग्रं देववीतये १८१२
असृग्रमिन्दवः पथा ११२८
असृग्रमिन्द्र ते गिरः २०५
असौ या सेना १८६०
अस्तावि मन्म १६७७
अस्ति सोमो अयं १७४,१७८५
अस्तु श्रौषट् पुरो ४६१
अस्मभ्यं त्वा वसु ५७५
अस्मभ्यं रोदसी ११३६
अस्मभ्यमिन्दविन्द्रिय १०४६
अस्माअस्मा इदन्धसो १४४३
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु १८५९
अस्य प्रत्नामनु द्युतं ७५५
अस्य प्रेषा हेमना ५२६,१३९९
अस्य व्रतानि नाधृषे १७१६
अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ६९६
अस्येदिन्द्रो वावृधे १५७४
अहं प्रत्नेन जन्मना १५०१
अहमस्मि प्रथमजा ५९४
अहमिद्धि पितुष्परि १५२,१५००

## आ


आ गन्ता मा रिषण्यत ४०१
आग्निं न स्ववृक्तिभिः ४२०
आग्ने स्थूरं रयिं १५२९
आ घ त्वावान् १०८५
आ घा गमद्यदि ७४५
आ घा ये अग्नि १३३,१३३८
आ जागृविर्विप्र ऋतं १३५७
आ जामिरत्के अव्यत १३८७
आ जुहोता हविषा ६३
आ तिष्ठ वृत्रहन् १०२९
आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं १६७,७२८
आ तू न इन्द्र वृत्रहन् १८१
आ ते अग्न इधीमहि ४१९,१०२२
आ ते अग्न ऋचा हविः १०२३
आ ते दक्षं मयोभुवं ४९८,११३७
आ ते वत्सो मनो ८,११६६
आ त्वा गिरो रथी ३४९
आ त्वा ग्रावा वदन् १८०९
आ त्वाद्य सबर्दुघां २९५
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी ६६७
आ त्वा रथं यथोतये ३५४,१७७१
आ त्वा रथे हिरण्यये १३९२
आ त्वा विशन्त्विन्दवः १९७,१६६०
आ त्वा सखायः सख्या ३४०
आ त्वा सहस्रमा शतं२४५,१३९१
आ त्वा सोमस्य गल्दया ३०७
आ त्वेता नि षीदतेन्द्र १६४,७४०
आदह स्वधामनु ८५१
आदित्प्रत्नस्य रेतसो २०
आदित्यैरिन्द्रः सगणो ११९२
आदीं केचित्पश्यमानास १४९५
आदीं त्रितस्य योषणो ७७१
आदीं हंसो यथा गणं ७७०
आदीमश्वं न हेतारम् १०१०
आ नः सुतास इन्दवः १३२८
आ नः सोम संयतम् ११५४
आ नः सोम सहो जुवो ८३४
आ न इन्दो शतग्विनं ८३५
आ नस्ते गन्तु मत्सरो १४३३
आ नो अग्ने रयिं भर १५२५
आ नो अग्ने वयोवृधं ४३
आ नो अग्ने सुचेतुना १५२६
आ नो भज परमेष्वा १४९९
आ नो मित्रावरुणा २२०,६६३
आ नो रत्नानि बिभ्रता १७४५
आ नो वयोवयः शयं ३५३
आ नो विश्वासु हव्य २६९,१४९२
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या ८६३
आ पवमान धारय १२०३
आ पवमान सुष्टुतिं ९०६
आ पवस्व मदिन्तम १२०८
आ पवस्व महीमिषं ८९५
आ पवस्व सहस्रिणं ५०१
आ पवस्व सुवीर्यं ७८६
आपानासो विवस्वतो ११२३
आपो हि ष्ठा मयोभुवः १८३७
आ प्रागाद् भद्रा युवतिः ६०८
आ बुन्दं वृत्रहा ददे २१६
आ भात्यग्निरुषसा १७५२
आभिष्ट्वमभिष्टिभिः ६४२
आ मन्द्रमा वरेण्यमा ११३८
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिः २४६,१७१८
आमासु पक्वमैरय १४३१
आ मित्रे वरुणे भगे ११३५
आयं गौः पृश्निरक्रमी६३०,१३७६

आ यः पुरं नार्मिणी १७७४
आ यद् दुवः शतक्रत १०८६
आ ययोस्त्रिंशतं तना १०६०
आ याहि वनसा सह ४४३
आ याहि सुषुमा हि १९१,६६६
आ याह्ययमिन्दवे ४०२
आ याह्युप नः सुतं २२७
आ योनिमरुणो रुहद् ९२५
आ रयिमा सुचेतुनमा ११३९
आ वंसते मघवा वीर ८७९
आ व इन्द्रं कृविं २१४
आ वच्यस्व महि १०३८
आ वच्यस्व सुदक्ष १०१२
आविर्मर्या आ वाजं ४३५
**आविवासन्परावतो ९०२**
आविशन्कलशं **सुतो** ४८९
आ वो राजानमध्वरस्य ६९
आशुः शिशानो वृषभो १८४९
आशुरर्ष बृहन्मते ८९८
आ सुते सिञ्चत १४८०
आ सोता परि षिञ्च ५८०,१३९४
आ सोम स्वानो अद्रि ५१३,१६८९
आ हरयः ससृज्रिरे १४९०
आ हर्यताय धृष्णवे ५५१
आ हर्यतो अर्जुनः ७६८

**इ**

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं ७२१
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः ९१४
इडामग्ने पुरुदंसं सनिं ७६
इत ऊती वो अजरं २८३
इत एत उदारुहन् ९२
इत्था हि सोम इन्मदो ५१०
इदं त एकं पर ६५
इदं वसो सुतमन्धः १२४,७३४
इदं वा मदिरं मध्व १०७५
इदं विष्णुर्वि चक्रमे २२२,१६६९
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिः १७४९
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं १८५५
इदं ह्यन्वोजसा सुतं १६५,७३७
इनो राजन्नरतिः समिद्धः १५४६
इन्दुः पविष्ट चारुर्मदाय ४३१
इन्दुः पविष्ट चेतनः ४८१
इन्दुरिन्द्राय पवत ८७३
इन्दुर्वाजी पवते ५४०,१०१९
इन्दो यथा तव स्तवो ९७६
इन्दो यदद्रिभिः सुतः ९६४
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन् ९३४
**इन्द्रं धनस्य सातये ६४७**
**इन्द्रं नरो नेमधिता ३१८**
इन्द्रं **वयं महाधन** १३०
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्यु १७९५
इन्द्रं विश्वा अवीवृधं ३४३, ८२७
इन्द्रं वो विश्वतस्परि १६२०
इन्द्रः स दामने कृतः १२२३
इन्द्र आसां नेता १८५६
इन्द्र इद्धर्योः सचा ५९७,७९७
इन्द्र इन्नो महोनां ७१५
इन्द्र इषे ददातु नः १९९
इन्द्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठः २२६
इन्द्र क्रतुं न आ भर २५९,१४५६
इन्द्र जठरं नव्यं ९५३
इन्द्र जुषस्व प्र वहा ९५२
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ५८६
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवो ४१२
इन्द्र त्रिधातु शरणं २६६
इन्द्र नेदीय एदिहि २८२

इन्द्रमग्निं कविच्छदा ६७१
इन्द्रमच्छ सुता इमे ५६६, ६९४
इन्द्रमिद् गाथिनो १९८,७९६
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं २४९,१५८७
इन्द्रमिद्धरी वहतो १०३०
इन्द्रमीशानमोजसा १२५२
इन्द्र वाजेषु नोऽव ५९८,७९८
इन्द्र शुद्धो न आ गहि १४०३
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं १४०४
इन्द्रश्च वायवेषां १६२९
इन्द्रं सुतेषु सोमेषु ३८१,७४६
इन्द्रस्तुरापाण्मित्रो ९५४
इन्द्रस्ते सोम सुतस्य १३६९
इन्द्र स्थातर्हरीणां १६८५
इन्द्रस्य नु वीर्याणि ६१२
इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ १८६९
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य १८५७
इन्द्रस्य सोम पवमान १२३०
इन्द्रस्य सोम राधसे ११८०
इन्द्राग्नी अपसस्पर्यु १५७७,१६९४
इन्द्राग्नी अपादियं २८१
इन्द्राग्नी आ गतं ६६९
इन्द्राग्नी जरितुः सचा ६७०
इन्द्राग्नी तविषाणि १५७८,१६९५
इन्द्राग्नी नवतिं पुरः १५७६,१७०४
इन्द्राग्नी युवामिमे ९९१
इन्द्राग्नी रोचना दिवः १६९३
इन्द्रा नु पूषणा वयं २०२
इन्द्रा पर्वता बृहता ३३८
इन्द्राय गाव आशिरं १४९१
इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा ३३९
इन्द्राय नूनमर्चतो ९५१
इन्द्राय पवते मदः ५२०
इन्द्राय मद्वने सुतं १५८,७२२
इन्द्राय साम गायत ३८८,१०२५
इन्द्राय सोम पातवे मदाय १४४८
इन्द्राय सोम पातवे वृत्र १३३१
१६७९
इन्द्राय सोम सुषुतः ५६१
इन्द्रा याहि चित्रभानो ११४६
इन्द्रा याहि तूतुजान ११४८
इन्द्रा याहि धियेषितो ११४७
इन्द्रायेन्दो मरुत्वते ४७२,१०७६
इन्द्रे अग्ना नमो ८००
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे ८५०
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो १८०
इन्द्रो अंग महद् भयमभि २००
इन्द्रो दधीचो अस्थभि १७९,९१३
इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे ७९९
इन्द्रो मदाय वावृधे ४११,१००२
इन्द्रो मह्ना रोदसी १५८८
इन्द्रो राजा जगतश्चर्ष ५८७
इन्द्रो विश्वस्य राजति ४५६
इन्धे राजा समर्यो ७०
इमं मे वरुण श्रुधी १५८५
इमं वृषणं कृणु ५९१
इमं स्तोममर्हते जात ६६,१०६४
इम इन्द्र मदाय ते २९४
इम इन्द्राय सुन्विरे २९३
इम उ त्वा वि चक्षते १३६
इममिन्द्र सुतं पिब ३४४,९४९
इममू षु त्वमस्माकं २८,१४९७
इमा उ त्वा पुरुवसो २५०, १६०७
इमा उ त्वा पुरूवसोभिः १४६
इमा उ त्वा सुतेसुते २०१

| | |
|---|---|
| इमा उ वां दिविष्टय | ३०४,७५३ |
| इमा नु कं भुवना | ४५२,१११० |
| इमास्त इन्द्र पृश्नयो | १८७ |
| इमे त इन्द्र ते वयं | ३७३ |
| इमे त इन्द्र सोमाः | २१२ |
| इमे हि ते ब्रह्मकृतः | १६७६ |
| इयं वामस्य मन्मन | ९१६ |
| इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व | १८१९ |
| इषं तोकाय नो | ९९६ |
| इषे पवस्व धारया | ५०५,८४१ |
| इष्कर्तारमध्वरस्य | १८२० |
| इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं | १५१ |
| इह त्वा गोपरीणसं | ७३३ |
| इहेव शृण्व एषां | १३५ |

**ई**

| | |
|---|---|
| ईङ्खयन्तीरपस्युवः | १७५ |
| ईडिष्वा हि प्रतीव्यां | १०३ |
| ईडेन्यो नमस्यस्तिर | १५३८ |
| ईशान इमा भुवनानि | ९५७ |
| ईशिषे वार्यस्य हि | १५३३ |
| ईशे हि शक्रस्तमूतये | ६४६ |

**उ**

| | |
|---|---|
| उक्थं च न शस्यमानं | २२५,१८०५ |
| उक्थमिन्द्राय शंस्यं | ३६३ |
| उक्षा मिमेति प्रति | १३७२ |
| उग्रा विघनिना मृध | ८५४ |
| उच्चा ते जातमन्धसो | ४६७,६७२ |
| उत त्या हरितो रथे | १२१८ |
| उत नः प्रिया प्रियासु | १४६१ |
| उत न एना पवया | ११०५ |
| उत नो गोमतीरिषो | १०६३ |
| उत नो गोविदश्व | ९७७ |
| उत नो गोषणिं धिय | १५९३ |
| उत नो वाजसातये | ११९० |
| उत प्र पिप्य ऊध | १४२० |
| उत ब्रुवन्तु जन्तव | १३८२ |
| उत वात पितासि | १८४१ |
| उत सखास्यश्विनो | १७२७ |
| उत स्या नो दिवा | १०२ |
| उत स्वराजो अदिति | १३५३ |
| उता यातं संगवे | १७५४ |
| उतो न्वस्य जोपमा | १७८७ |
| उत्तिष्ठन्नोजसा सह | ९८८ |
| उत्ते बृहन्तो अर्चयः | १५४१ |
| उत्ते शुष्मास ईरते | १२०५ |
| उत्ते शुष्मासो अस्थू | १७१४ |
| उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः | १९४,१३५४ |
| उदग्ने भारत द्युमद | १३८५ |
| उदग्ने शुचयस्तव | १५३४ |
| उदपप्तन्नरुणा भानवो | १७५६ |
| उदुत्तमं वरुण पाश | ५८९ |
| उदु त्यं जातवेदसं | ३१ |
| उदु त्ये मधुमत्तमा | २५१,१३६२ |
| उदु त्ये सूनवो गिरः | २२१ |
| उदु ब्रह्माण्यैरत | ३३० |
| उदुस्त्रियाः सृजते | ७५२ |
| उद्गा आजदङ्गिरोभ्यः | १६४१ |
| उद्घेदभि श्रुतामघं | १२५,१४५० |
| उद् द्यामेषि रजः | ६३८ |
| उद्धर्षय मघवन् | १८५८ |
| उद्यस्य ते नवजातस्य | १२२१ |
| उप च्छायामिव घृणे | १७०६ |
| उप त्रितस्य पाष्यो | १०१४ |
| उप त्वा कर्मन्नूतये | ७०९ |
| उप त्वाग्ने दिवेदिवे | १४ |
| उप त्वा जामयो | १३,१५७० |

उप त्वा जुह्वो १५४२
उप त्वा रण्वसंदृशं १७०५
उप नः सवना गहि १०८८
उप नः सूनवो गिरः १५९५
उप नो हरिभिः १५०,१७९०
उप प्रक्षे मधुमति ४४४,१११५
उपप्रयन्तो अध्वरं १३७९
उप शिक्षापतस्थुषो ७६१
उप स्रक्वेषु बप्सतः १४८२
उपह्वरे गिरीणां १४३
उपास्मै गायता ६५१,७६३
उपो मतिः पृच्यते १३७१
उपो षु जातमप्तुरं ४८७,७६२
१३३५
उपो षु शृणुहि गिरो ४१६
**उपो हरीणां पतिं १५१०**
**उभयं शृणवच्च २९०, १२३३**
**उभयतः पवमानस्य ८८७**
उभे यदिन्द्र रोदसी ३७९,१०९०
उरुगव्यूतिरभयानि १४१०
उरुव्यचसे महिने १७९४
उरुशंसा नमोवृधा ६६४
उपस्तच्चित्रमा भरा १७३१
उषा अप स्वसुष्टमः ४५१
उषो अद्येह गोमत्य १७३२
उस्रा वेद वसूनां १०५८

**ऊ**

ऊर्जा मित्रो वरुणः ४५५
ऊर्जो नपाज्जातवेदः १८१८
ऊर्जो नपातं स हिनाय ७०४
ऊर्जो नपातमा हुवे १७१२
ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये ५७
ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये १६०१
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि १८४७

**ऋ**

ऋचं साम यजामहे ३६९
ऋजुनीती नो वरुणो २१८
ऋतमृतेन सपन्ते १४६६
ऋतस्य जिह्वा पवते ७०१
ऋतावानं महिषं १८२१
ऋतावानं वैश्वानरं १७०८
ऋतेन मित्रावरुणा ८४८
ऋतेन यावृतावृधा ७९४
ऋधक् सोम स्वस्तये ६५६
ऋषिमना य ऋषिकृत् ११७६
ऋषिर्विप्रः पुरएता ६७९

**ए**

एतं त्यं हरितो दश १२७९
एतं त्रितस्य योषणो १२७५
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप १२६८
एत असृग्रमिन्दव ८३०
एतमु त्यं दशक्षिपो मृजन्ति १०८१
एतमु त्यं दशक्षिपो हरिं १२७३
एतमु त्यं मदच्युतं ५८१
एता उ त्या उषसः केतुम् १७५५
एते सोमा अभि प्रिय ११७८
एते सोमा असृक्षत १०६१
एतोन्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं ३५०
१४०२
एतोन्विन्द्रं स्तवाम सखायः ३८७
एदु मधोर्मदिन्तरं ३८५,१६८४
एना विश्वान्यर्य आ ५९३,६७४
एना वो अग्निं नमसः ४५,७४९
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत ३८६, १५०९
एन्द्र नो गधि प्रिय ३९३,१२४७
एन्द्र पृक्षु कासु २३१
एन्द्र याहि हरिभिरुप ३४८,१८०७

एन्द्र याह्युप नः परा ४५९
एन्द्र सानसिं रयिं १२९
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो १७७९
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः १४४१
एवा नः सोम परिषिच्य ८६१
एवा पवस्व मदिरो ८०८
एवा मृताय महे क्षयाय १३६८
एवा रातिस्तुवीमघ ८२५
एवा हि शक्रो राये ६४३
एवा ह्यसि वीरयु २३२,८२४
एवा ह्येव एवा ६५०
एष इन्द्राय वायवे १२८७
एष उ स्य पुरुव्रतः १२६५
एष उ स्य वृषा रथो १२७४
एष कविरभिष्टुतः १२८६
एष गव्यूरचिक्रदत् १२८९
एष दिवं वि धावति १२६२
एष दिवं व्यासरत्तिरो १२६३
एष देवः शुभायते १२८२
एष देवो अमर्त्यः १२५६
एष देवो रथर्यति १२५९
एष देवो वि मन्युभिः १२६०
एष देवो विपाकृतो १२६१
एष धिया यात्यण्व्या १२६६
एष नृभिर्वि नीयते १२८८
एष पवित्रे अक्षरत् १२८१
एष पुरू धियायते १२६७
एष प्र कोशे मधुमाँ ५५६
एष प्रत्नेन जन्मना ७५८,१२६४
एष प्रत्नेन मन्मना ७५९
एष ब्रह्मा य ऋत्विय ४३८,१७६८
एष रुक्मिभिरीयते १२७०
एष वसूनि पिब्दनः १२७२
एष वाजी हितो १२८०
एष विप्रैरभिष्टुतो १२५७
एष विश्वानि वार्या १२५८
एष वृषा कनिक्रदद् १२८३
एष शुष्म्यदाभ्यः १२९१
एष शुष्म्यसिष्यदत् १२९०
एष शृंगाणि दोधुव १२७१
एष सूर्यमरोचयत् १२८४
एष सूर्येण हासते १२८५
एष स्य ते मधुमाँ ५३१
एष स्य धारया सुतः ५८४
एष स्य पीतये सुतः १२७८
एष स्य मद्यो रसोऽव १२७७
एष स्य मानुषीष्वा १२७६
एष हितो वि नीयते १२६९
एषो उषा अपूर्व्या १७८,१७२८
एह देवा मयोभुवा १७३५
एह हरी ब्रह्मयुजा १६५८
एह्यू षु ब्रवाणि ते ७,७०५

### ऐ

ऐभिर्ददे वृष्ण्या १७८४

### ओ

ओजस्तदस्य तित्विष १८२,१६५३
ओभे सुश्चन्द्र विश्पते १०२४

### औ

और्वभृगुवच्छुचिम् १८

### क

क इमं नाहुषीष्वा १९०
क ईं वेद सुते सचा २९७,१६९६
क ईं व्यक्ता नरः ४३३
कद्रू सुपर्णा अनु १८६४
कण्वा इन्द्रं यदक्रत १३०८
कण्वाइव भृगवः १३६३

कण्वेभिर्धृष्णवा ८६६
कदा चन स्तरीरसि ३००
कदा मर्तमराधसं १३४३
कदा वसो स्तोत्रं २२८
कदु प्रचेतसे महे २२४
कनिक्रन्ति हरिरा ५३०
कया ते अग्ने अङ्गिर १५४९
कया त्वं न ऊत्याभि १५८६
कया नश्चित्र आ १६९,६८२
कविमग्निमुप स्तुहि ३२
कविमिव प्रशंस्यं १२४५
कविर्वेधस्या पर्येषि १३१८
कवी नो मित्रावरुणा ८४९
कश्यपस्य स्वर्विदो ३६१
कस्तमिन्द्र त्वा २८०,१६८२
कस्ते जामिर्जनानां १५३५
कस्त्वा सत्यो मदानां ६८३
कस्य नूनं परीणसि ३४
कायमानो वना त्वं ५३
किमित्ते विष्णो १६२५
कुवित्सस्य प्र हि १६६८
कुवित्सु नो गविष्टये १६४९
कुष्ठः को वामश्विना ३०५
कृण्वन्तो वरिवो गवे ८३२
कृष्णां यदेनीमभि १५४७
केतुं कृण्वं दिवस्परि ९५९
केतुं कृण्वन्नकेतवे १४७०
को अद्य युंक्ते धुरि ३४१
क्रत्वा महाँ अनुष्वधम् ४२३
क्रीडुर्मखो न मंहयुः ९७४
क्वास्य वृषभः १४२
क्वेयथ क्वेदसि २७१
क्षपो राजन्नुत १५६३

ग

गम्भीराँ उदधीँरिव १७२०
गर्भे मातुः पितुः १३९७
गव्यो षु णो यथा १८६
गायत्रं त्रैष्टुभं जगद्विश्वा १८३०
गायन्ति त्वा गायत्रिणो ३४२,१३४४
गाव उप वदावटे मही११७,१६०२
गावश्चिद्घा समन्यवः ४०४
गिरस्त इन्द ओजसा १०४३
गिरा व्रजो न सम्भृतः १२२४
गिर्वणः पाहि नः १९५
गृणाना जमदग्निना ६६५
गृणे तदिन्द्र ते शव ३९१
गोत्रभिदं गोविदं १८५४
गोमन्न इन्दो अश्ववत् ५७४,१६११
गोवित्पवस्व वसुविद् ९५५
गोषा इन्दो नृषा १०४५
गौर्धयति मरुताम् २४९

घ

घृतं पवस्व धारया १४३७
घृतवती भुवनानामभि ३७८

च

चक्रं यदस्याप्स्वा ३३१
चन्द्रमा अप्स्वान्तरा ४१७
चमूषच्छ्येनः शकुनो ११७७
चर्षणीधृतं मघवानमु ३७४
चित्रं देवानामुदगादनीकं ६२९
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य ६४

ज

जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र ३१७
जघ्निर्वृत्रममित्रियं ८१६
जज्ञानः सप्त मातृभिः १०१
जज्ञानो वाचमिष्यसि ९६०

जनस्य गोपा अजनिष्ट ९०७
जनीयन्तो न्वग्रवः १४६०
जराबोध तद्विविड्ढि १५,१६६३
जातः परेण धर्मणा ९०
जुष्ट इन्द्राय मत्सरः ११९४
जुष्टो हि दूतो असि १७८१
ज्योतिर्यज्ञस्य पवते १०३१

त

तं गाथया पुराण्या १६३३
तं गूर्धया स्वर्णरं १०९,१६८७
तं ते मदं गृणीमसि ३८३,८८०
तं ते वयं यथा गोभिः ७३६
तं त्वा गोपवनो गिरा २९
तं त्वा घृतस्नवीमहे १५२२
तं त्वा धर्तारमोण्योः ८०४
तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं ८३६
तं त्वा मदाय घृष्वय १०४४
तं त्वा विप्रा वचोविदः १०७७
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः ११०९
तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो ६६१
तं दुरोपमभी नरः ६९९
तं वः सखायो मदाय ५६९,१०९८
तं वो दस्ममृतीषहं २३६,६८५
तं वो वाजानां पतिम् १६८६
तं सखायः पुरूरुचम् १६८०
तं हिन्वन्ति मदच्युतम् १७१७
तं हि स्वराजं वृषभम् १२३४
तं होतारमध्वरस्य १५१४
तक्षद्यदी मनसो वेनतो ५३७
ततो विराडजायत ६२१
तत्ते यज्ञो अजायत १४३०
तत्सवितुर्वरेण्यं १४६२
तदग्ने द्युम्नमा भर ११३
तदद्या चित्त उक्थिनो ८८२
तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं १४८३
तद्विप्रासो विपन्यवो १६७३
तद्विष्णोः परमं पदं १६७२
तद्वो गाय सुते सचा ११५,१६६६
तपोष्पवित्रं विततं ८७६
तमग्निमस्ते वसवो १३७४
तमस्य मर्जयामसि १६३२
तमिद्वर्धन्तु नो गिरो १३३६
तमिन्द्रं जोहवीमि ४६०
तमिन्द्रं वाजयामसि ११९,१२२२
तमीडिष्व यो अर्चिषा ११४९
तमु अभि प्र गायत ३८२
तमु त्वा नूनमसुर १४१२
तमु ष्टवाम यं गिर ८८५
तमु हुवे वाजसातये ७४८
तमोषधीर्दधिरे गर्भं १८२४
तया पवस्व धारया १४३६
तरणिं वो जनानां २०४
तरणिरित्सिषासति २३८, ८६७
तरणिर्विश्वदर्शतो ६३५
तरत्स मन्दी धावति ५००,१०५७
तरत्समुद्रं पवमान ८५७
तरोभिर्वो विदद्वसु २३७,६८७
तव क्रत्वा तवोतिभिः १०५२
तव त्य इन्दो अन्धसो १२२६
तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव १६४५
तव त्यन्नर्यं नृतोप ४६६
तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं १६४६
तव द्रप्सा उदप्रुत १३२७
तव द्रप्सो नीलवान् १८२३
तव श्रियो वर्ष्यस्येव ९८२
तवाहं नक्तमुत सोम ९२३

तवाहं सोम रारण ५१६,९२२
तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं २७०
तस्मा अरं गमाम १८३९
ता अय नमसा सहः १००७
ता अस्य पृश्नायुवः १००६
ता नः शक्तं ११४५,१४६५
ता नो वाजवतीरिपः ११५१
ताभिरा गच्छतं ९९३
ता वां गीर्भिर्विपन्युवः ८०२
ता वां सम्यगद्रुहाणेष ९८६
तावानस्य महिमा ६२०
ता सम्राजा घृतासुती ९१२
ता हि शश्वन्त ईडत ८०१
ता हुवे ययोरिदं ८५३
तिस्रो वाच ईरयति ५२५,८५९
तिस्रो वाच उदीरते ४७१,८६९
तुचे तुनाय तत्सु ३९५
तुभ्यं सुतासः सोमाः २१३
तुभ्येमा भुवना कवे ७७७
तुरण्यवो मधुमन्तं १६१०
तुविशुष्म तुविक्रतो १७७२
ते अस्य सन्तु केतवो १४२५
ते जानत स्वमोक्यं १४८१
ते नः सहस्रिणं रयिं ११९२
ते नो वृष्टिं दिवस्परि ११६५
ते पूतासो विपश्चितः ११०२
ते मन्वत प्रथमं ६०६
ते विश्वा दाशुषे १०३६
ते सुतासो विपश्चितः १८११
ते स्याम देव वरुण १०६९
तोशा वृत्रहणाहुवे १७०२
तोशासा रथयावाना १०७४
त्यं सु मेषं महया ३७७
त्यमु वः सत्रासाहं १७०,१६४२
त्यमु वो अप्रहणं ३५७
त्यमू षु वाजिनं देव ३३२
त्रातारमिन्द्रमवितारम् ३३३
त्रिंशद्धाम विराजति ६३२,१३७८
त्रिकद्रुकेषु चेतनं ७२४
त्रिकद्रुकेषु महिषो ४५७,१४८६
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः ६१८
त्रिरस्मै सप्त धेनवो ५६०,१४२३
त्रीणि त्रितस्य धारया १०१५
त्रीणि पदा वि चक्रमे १६७०
त्वं जामिर्जनानामग्ने १५३६
त्वं दाता प्रथमो राधसाम् १४९३
त्वं द्यां च महिव्रत १०१८
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं ७१८
त्वं न इन्द्रा भर ओजो ४०५,११६९
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो ४१,१६२३
त्वं नृचक्षा असि सोम ९५६
त्वं नो अग्ने अग्निभिः १५०५
त्वं नो अग्ने महोभिः ६
त्वं पुरू सहस्राणि १५८२
त्वं यविष्ठ दाशुषः १२४६
त्वं राजेव सुव्रतः ९७२
त्वं वरुण उत मित्रः १३०६
त्वं वलस्य गोमतः १२५१
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु १०९४
त्वं समुद्रिया अपो ७७६
त्वं सिन्धूँरवासृजो १८०२
त्वं सुतो मदिन्तमो १३२४
त्वं सुष्वाणो अद्रिभिः १३२५
त्वं सूर्ये न आ भज १०५१
त्वं सोम नृमादनः ९६५
त्वं सोम परि स्रव ९८१

त्वं सोमासि धारयु: १३२३
त्वं ह त्यत्पणीनां १५९२
त्वं ह त्यत्सप्तभ्य: ३२६
त्वं हि क्षैतवद्यश: ८४
त्वं हि न: पिता वसो ११७०
त्वं हि राधसस्पते १३२२
त्वं हि वृत्रहन्नेषाम् १७९२
त्वं हि शश्वतीनाम् १२४९
त्वं हि शूर: सनिता १४३४
त्वं ह्याङ्ग दैव्य पवमान ५८३,९३८
त्वं ह्येहि चेरवे २४०,१५८१
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं ६१
त्वमग्ने यज्ञानां होता २,१४७४
त्वमग्ने वसूँरिह ९६
त्वमग्ने सप्रथा असि १४०७
त्वमंग प्र शंसिषो २४७,१७२३
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने ४२
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि ३११,१६३७
त्वमिन्द्र बलादधि १२०
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी २४८
१४११
त्वमिन्द्राभिभूरसि १०२६
त्वमिमा ओषधी: ६०४
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र १३५६
त्वमेतदधारय: कृष्णासु ५९५
त्वया वयं पवमानेन ५९०
त्वया ह स्विद्युजा वयम् ४०३
त्वष्टा नो दैव्यं वच: २९९
त्वां दूतमग्ने अमृतम् १५६८
त्वां यज्ञैरवीवृधन् १०५५
त्वां रिहन्ति धीतय: १०१७
त्वां विश्वे अमृत ११४१
त्वां विष्णुर्बृहन् १६४७
त्वां शुष्मिन्पुरुहूत ११७१
त्वामग्ने अङ्गिरसो ९०८
त्वामग्ने पुष्करा ९
त्वामिच्छवसस्पते १७६९
त्वामिदा ह्यो नरो ३०२,८१३
त्वामिद्धि हवामहे २३४,८०९
त्वावत: पुरूवसो १९३
त्वे अग्ने स्वाहुत ३८
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति १४८५
त्वे विश्वे सजोषसो १०९५
त्वेषस्ते धूम ऋण्वति ८३
त्वे सोम प्रथमा वृक्त १५०६

द

दधन्वे वा यदीमनु ९४
दधिक्राव्णो अकारिषं ३५८
दविद्युतत्या रुचा ६५४
दाना मृगो न वारण: १६९७
दाशेम कस्य मनसा १५५०
दिव: पीयूषमुत्तमं १२२७
दिवो धर्तासि शुक्र: १२४३
दिवो नाभा विचक्षणो ११९९
दीर्घं ह्यंकुशं यथा १०९१
दुहान ऊधर्दिव्यम् ६७६
दुहान: प्रत्नमित्पय: ७६०
दूतं वो विश्ववेदसम् १२
दूरादिहेव यत्सतो २१९
देवानामिदवो १३८
देवेभ्यस्त्वा मदाय ११८२
देवो वो द्रविणोदा: ५५, १५१३
दोषो आ गाद् बृहद् १७७
द्युक्षं सुदानुं तविषी ६८६
द्रप्स: समुद्रमभि १८४८
द्विता यो वृत्रहन्तम: १७९१
द्विर्यं पञ्च स्वयशसम् १३३०

**ध**

धर्ता दिवः पवते ५५८,१२२८
धानावन्तं करम्भिणम् २१०
धिया चक्रे वरेण्यः १४७९
धीभिर्मृजन्ति वाजिनम् ९४१
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता १८३६
ध्वस्त्रयोः पुरुष १०५९

**न**

न कि इन्द्र त्वदुत्तरं २०३
न कि देवा इनीमसि १७६
न किरस्य सहन्त्य १४१६
न किष्टं कर्मणा २४३,११५५
न किष्ट्वद्रथीतरो ९५०
न की रेवन्तं सख्याय १३९०
न घा वसुर्नि यमते १६६७
न घेमन्यदा पपत ७२०
न तमंहो न दुरितम् ४२६
न तस्य मायया १०४
न ते गिरो अपि १७९९
न त्वा बृहन्तो अद्रयो २९६
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो ६८१
न त्वा शतं च न १२१५
नदं व ओदतीनाम् १५१२
न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु ८६८
नमः सखिभ्यः पूर्व १८२८
नमसेदुप सीदत १४४६
नमस्ते अग्न ओजसे ११,१६४८
न यं दुध्रा वरन्ते ६८८
नराशंसमिह प्रियम् १३४९
नव यो नवतिं पुरो १४५१
न संस्कृतं प्र मिमीतो १७५३
न सीमदेव आप २६८
न हि ते पूर्तमक्षिपद् ७०७
न हि त्वा शूर देवा ७३०
न हि वश्चरमं च २४१
न ह्याङ्ग पुरा च न १५११
नाके सुपर्णमुप यत् ३२०,१८४६
नाभा नाभिं न आ ११२६
नाभिं यज्ञानां सदनम् ११४२
नित्यस्तोत्रो वनस्पतिः १२०२
नि त्वा नक्ष्य विश्पते २६
नि त्वामग्ने मनुर्दधे ५४
नियुत्वान्वायवा गह्ययम् ६००
नीव शीर्षाणि मृढ्वं १६५६
नूनं पुनानोऽविभिः १३१४
नू नो रयिं महामिन्दो ९२६
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्र ११८५
नृभिर्धौतः सुतो अश्नैः ७३५
नृभिर्येमानो हर्यतो ८५८
नेमिं नमन्ति चक्षसा ९३१

**प**

पदं देवस्य मीढुषो १५७२
पदा पणीनराधसो १३५५
पन्यंपन्यमित्सोतार १२३,१६५७
पन्यांसं जातवेदसम् १५६६
परि कोशं मधुश्चुतम् ५७७
परि त्यं हर्यतं ५५२,१३२९, १६८१
परि द्युक्षं सनद्रयिम् ४९६
परि नः शर्मयन्त्या ८९७
परि नो अश्वमश्वविद् १२१२
परि प्र धन्वेन्द्राय ४२७,१३६७
परि प्रासिष्यदत्कविः ४८६
परि प्रिया दिवः कविः४७६,९३५
परि यत्काव्या कविः ११३१
परि वाजपतिः कविः ३०
परि विश्वानि चेतसा ९७०

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं ८९९
परि स्य स्वानो अक्षर १२४०
परि स्वानश्चक्षसे १३१५
परि स्वानास इन्दवो ४८५,११२२
परि स्वानो गिरिष्ठाः ४७५,१०९३
परीतो षिञ्चता सुतं ५१२,१३१३
पर्जन्यः पिता महिषस्य १३१७
पर्यू षु प्र धन्व वाज ४२८,१३६४
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिः १६२४
पवते हर्यतो हरिरति ५७६,७७३
पवन्ते वाजसातये ११८९
पवमान धिया हितो ९२१
पवमान नि तोशसे १२३६
पवमानमवस्यवो विप्र ११८८
पवमान रसस्तव ८९०
पवमान रुचारुचा ९०५
पवमान व्यश्नुहि १३१२
पवमान सुवीर्यं रयिम् १४४९
पवमानस्य जिघ्नतः १३१०
पवमानस्य ते कवे ६५७
पवमानस्य ते रसो ८९१
पवमानस्य ते वयम् ७८७
पवमानस्य विश्ववित् ९५८
पवमाना असृक्षत पवित्रम् ५२२
पवमाना असृक्षत सोमाः १६९९
पवमाना दिवस्पर्यन्त १७००
पवमानास आशवः शुभ्रा १७०१
पवमानो अजीजनद् ४८४,८८९
पवमानो अभि स्पृधो ११३२
पवमानो असिष्यदद्रक्षा १४३९
पवमानो रथीतमः १३११
पवस्व दक्षसाधनो ४७४,९१९
पवस्व देव ४८३, १२३५
पवस्व देववीतय ५७१,१३२६
पवस्व देववीरति पवित्रं १०३७
पवस्व मधुमत्तमः ५७८,६९२
पवस्व वाचो अग्रियः ७७५
पवस्व वाजसातमो ५२१
पवस्व वाजसातये १०१६
पवस्व विश्वचर्षण ८९६
पवस्व वृत्रहन्तम ९६६
पवस्य वृष्टिमा सु १४३५
पवस्व सोम द्युम्नी ४३६
पवस्व सोम मधुमाँ ५३२
पवस्व सोम मन्दयन् १८१०
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः ४२९
१२४१
पवस्व सोम महे ४३०,१३३२
पवस्वेन्दो वृषा सुतः ४७९,७७८
पवित्रं ते विततं ब्रह्म ५६५,८७५
पवीतारः पुनीतन १०५०
पातं नो मित्रा पायुभिः ९८७
पाता वृत्रहा सुतमा १६५९
पात्यग्निर्विपो अग्रं ६१४
पान्तमा वो अन्धसः १५५,७१३
पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः १८१७
पावका नः सरस्वती १८९
पावमानीः स्वस्त्ययनीः १३००
पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ता १३०३
पावमानीर्दधन्तु न १३०१
पावमानीर्यो अध्येति १२९९
पाहि गा अन्धसो २८९
पाहि नो अग्न एकया ३६,१५४४
पाहि विश्वस्माद्रक्षसो १५४५

पिबन्ति मित्रो अर्यमा १७८६
पिबा त्वास्य गिर्वणः १३९३
पिबा सुतस्य रसिनो २३९,१४२१
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु ३९८,९२७
पुनरूर्जा नि वर्तस्व १८३२
पुनाता दक्षसाधनं ११५९
पुनानः कलशेष्वा ११८३
पुनानः सोम जागृवि ५११
पुनानः सोम धारयापः ५११,६७५
पुनानासश्चमूषदः ११७९
पुनाने तन्वा मिथः १५९७
पुनानो अक्रमीदभि ४८८,९२४
पुनानो देववीतये ८४३
पुनानो वरिवस्कृध्यूर्ज ८४२
पुनानो वारे पवमानो १०८०
पुरः सद्य इत्थाधिये १२११
पुरां भिन्दुर्युवा कविः ३५९,१२५०
पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि ११६७
पुरु त्वा दाशिवान् ९७
पुरुष एवेदं सर्वम् ६१९
पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ७१४
पुरूतमं पुरूणाम् ७४१
पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवः ९८५
पुरोजिती वो अन्धसः ५४५,६९७
पूर्वस्य यत्ते अद्रिवः ६४८
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयः ८२९
पौरो अश्वस्य पुरुकृद् १५८०
प्र कविर्देववीतये ९६८
प्र काव्यमुशनेव ५२४,१११६
प्र केतुना बृहता ७१
प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य ६०९
प्र गायताभ्यर्चाम देवान् ५३५
प्रजामृतस्य पिप्रतः १३०९
प्र त आश्विनीः पवमान ८८६
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट १६२६
प्रति त्यं चारुमध्वरं १६
प्रति प्रियतमं रथं ४१८,१७४३
प्रति वां सूर उदिते १०६७
प्रति ष्या सूनरी जनी १७२५
प्र तु द्रव परि कोशं ५२३,६७७
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः ७३९
प्र ते धारा असश्चतः १७६१
प्र ते धारा मधुमती ५३४
प्र ते सोतारो रसम् १३३३
प्रत्ने पीयूषं पूर्व्यम् १४९४
प्रत्यग्ने हरसा हरः ९५
प्रत्यङ्देवानां विशः ६३६
प्रत्यस्मै पिपीषते ३५२,१४४०
प्रत्यु अदर्श्यायति ३०३,७५१
प्रथश्च यस्य सप्रथश्च ५९९
प्र देवमच्छा मधुमन्तः ५६३
प्र दैवोदासो अग्निर्देव ५१,१५१७
प्र धन्वा सोम जागृवि ५६७
प्र धारा मधो अग्रियो ११२९
प्र न इन्दो महे तु ५०९
प्र पवमान धन्वसि ९६३
प्र पुनानाय वेधसे ५७३
प्रप्र क्षयाय पन्यसे ९३७
प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं ३६०
प्र भंगी शूरो मघवा १४५९
प्र भूर्जयन्तं महाँ ७४
प्रभो जनस्य वृत्रहन् ६४९
प्र मंहिष्ठाय गायत १०७,८७८
प्र मन्दिने पितुमदर्चता ३८०
प्र मित्राय प्रार्यम्णे २५५
प्र यद् गावो न भूर्णय ४९१,८९२

प्र युजा वाचो अग्रिय: ११३०
प्र यो राये निनीषति ५८
प्र यो रिरिक्ष ओजसा ३१२
प्र व इन्द्राय बृहते २५७
प्र व इन्द्राय मादनम् १५६,७१६
प्र व इन्द्राय वृत्रहन् ४४६,१११३
प्र वां महि द्यवी १५९६
प्र वाचमिन्दुरिष्यति १२०१
प्र वाज्यक्षा: सहस्रधार ११६०
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो १५७५,१७०३
प्र वो धियो मन्द्रयुवो ११५३
प्र वो महे मतयो यन्तु ४६२
प्र वो महे महेवृधे ३२८,१७९३
प्र वो मित्राय गायत ११४३
**प्र वो यह्वं पुरूणाम् ५९**
**प्र सम्राजं चर्षणीनाम् १४४**
प्र सम्राजमसुरस्य ७८
प्र स विश्वेभिरग्निः १५०४
प्रसवे त उदीरते १२०६
प्र सुन्वानायान्धस: ५५३,७७४, १३८६
प्र सेनानी: शूरो अग्रे ५३३
प्र सो अग्ने तवोतिभि: १०८,१८२२
प्र सोम देववीतये ५१४,७६७
प्र सोम याहीन्द्रस्य ११६२
प्र सोमासो अधन्विषु: ९६१
प्र सोमासो मदच्युत: ४७७,७६९
प्र सोमासो विपश्चितो ४७८,७६४
प्र स्वानासो रथा ११११
प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छा १११७
प्र हिन्वानो जनिता ५३६
प्र होता जातो महान् ७७
प्र होत्रे पूर्व्यं वचो ९८
प्राचीमनु प्रदिशं याति १५९१
प्राणा शिशुर्महीनां ५७०,१०१३
प्रातरग्नि: पुरुप्रियो ८५
प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न ९४५
प्रास्य धारा अक्षरन् १७६५
प्रियो नो अस्तु विश्पति १६११
प्रेता जयता नर: १८६२
प्रेद्धो अग्ने दीदिहि १३७५
प्रेष्ठं वो अतिथिं ५,१२४४
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि ४१३
प्रैतु ब्रह्मणस्पति: प्र ५६
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य ५५७, ११५२
**प्रोथदश्वो न यवसे १२२०**
**प्रो ष्वस्मै पुरोरथ १८०१**

## ब

बट् सूर्य श्रवसा महाँ १७८९
बण्महाँ असि सूर्य २७६,१७८८
बभ्रवे नु स्वतवसे १४४४
बलविज्ञाय: स्थविर: १८५३
बृबदुक्थं हवामहे २१७
बृहदिन्द्राय गायत २५८
बृहद्भिरग्ने अर्चिभि: ३७
बृहद्वयो हि भानवे ८८
बृहन्निदिध्म एषाम् १३३९
बृहस्पते परि दीया १८५२
बोधन्मना इदस्तु १४०
बोधा सु मे मघवन् ९२९
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं ३२१
ब्रह्म प्रजावदा भर १३९८
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो ४३९
ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं ६६८

ब्रह्मा देवानां पदवीः ९४४
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः २२९

भ

भगो न चित्रो अग्निः ४४९
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम १८७४
भद्रं नो अपि वातय ४२२
भद्रंभद्रं न आ भरेष १७३
भद्रं मनः कृणुष्व १५६०
भद्रा वस्त्रा समन्या १४००
भद्रो नो अग्निराहुतः १११,१५५९
भद्रो भद्रया सचमान १५४८
भरामेध्मं कृणवामा १०६५
भिन्धि विश्वा अप १३४,१०७०
भूयाम ते सुमतौ १४२२
भूरि हि ते सवना १८००
भ्राजन्त्यग्ने समिधान ६१५

म

मघोनः स्मत वृत्रहत्येषु १६८३
मघोन आ पवस्व ११८४
मत्सि वायुमिष्टये १२५४
मत्स्यपायि ते महः १४३२
मत्स्वा सुशिप्रिन् ८१४
मदच्युत्क्षेति सादने ११९८
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञम् १३४८
मनीषिभिः पवते पूर्व्यः ८२२
मन्दन्तु त्वा मघवन् १७२२
मन्द्रं होतारमृत्विजम् १५४३
मन्द्रया सोम धारया ५०६
मन्ये वां द्यावापृथिवी ६२२
मयि वर्चो अथो यशो ६०२
मर्माणि ते वर्मणा १८७०
महत्तत्सोमो महिष ५४२,१२५५
महाँ इन्द्रः पुरश्च नो १६६
महाँ इन्द्रो य ओजसा १३०७
महान्तं त्वा महीरन्वापो १०४०
महि त्रीणामवरस्तु १९२
मही मित्रस्य साध १५९८
महीमे अस्य वृष ११०६
महे च न त्वाद्रिवः परा २९१
महे नो अद्य बोधयो ४२१,१७४०
महो नो राय आ भर १२१४
मा चिदन्यद्विशंसत २४२,१३६०
मा ते राधांसि मा त १७२४
मा त्वा मूरा अविष्यवो ७३२
मा न इन्द्र परा २६०
म न इन्द्र पीयत्नवे १८०६
मा न इन्द्राभ्या दिशः १२८
मा नो अग्ने महाधने १६५०
मा नो अज्ञाता वृजना १४५७
मा नो हृणीथा अतिथिम् ११०
मा पापत्वाय नो ९१८
मा भेम मा श्रमिष्म: १६०५
मित्रं वयं हवामहे ७९३
मित्रं हुवे पुतदक्षं ८४७
मूर्धानं दिवो अरतिं ६७,११४०
मृगो न भीमः कुचरो १८७३
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो ११८१
मृज्यमानः सुहस्त्या ५१७,१०७९
मेंडिं न त्वा वज्रिणं ३२७
मेधाकारं विदथस्य ९८४
मो षु त्वा वाघतश्च २८४,१६७५
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुः ८२६

य

यं जनासो हविष्मन्तो १५६५
यं रक्षन्ति प्रचेतसो १८५
यं वत्रेषु क्षितय ३३७

य: पावमानीरध्येति १२९८
य: सत्राहा विचर्षणि २८६
य: सोम: कलशेष्वा १२००
य: स्त्रीहितीषु पूर्व्य: १३८०
य आनयत्परावत: १२७
य आर्जीकेषु कृत्वसु ११६४
य इदं प्रतिपप्रथे १७०९
य इद्ध आ विवासति ११५०
य इन्द्र चमसेष्वा १६२
य इन्द्र सोमपातमो ३९४
य उग्र सन्ननिष्टृत: १६९८
य उग्रइव शर्यहा १७०७
य उस्त्रिया अपि या ५८५
य ऋते चिदभिश्रिष: २४४
य एक इद्विदयते ३८९,१३४१
य ओजिष्ठस्तमा भर ८२०
यच्चिद्धि शश्वता १६१८
यच्छक्रासि परावति २६४
यजा नो मित्रावरुणा १५३७
यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं ३३४
यजिष्ठं त्वा यजमाना १८१४
यजिष्ठं त्वा ववृमहे ११२,१४१३
यज्जायथा अपूर्व्य ६०१,१४२९
यज्ञं च नस्तन्वं च ११११
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् १२१,१६३९
यज्ञस्य केतुं प्रथमं ९०९
यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा १०७३
यज्ञायज्ञा वो अग्नये ३५,७०३
यत इन्द्र भयामहे २७४,१३२१
यत्ते दिक्षु प्रराध्यं ११७४
यत्र क्व च ते मनो ७०६
यत्र बाणा सम्पतन्ति १८६६
यत्सानो: सान्वारुहो १३४५
यत्सोम चित्रमुक्थ्यं ९९९
यत्सोममिन्द्र विष्णवि ३८४
यथा गौरो अपा कृतं २५२,१७२१
यददो वात ते गृहे १८४२
यदद्भि: परिषिच्यसे ७८५
यदद्य कच्च वृत्रहन् १२६
यदद्य सूर उदिते १३५१
यदा कदा च मीढुषे २८८
यदिन्द्र चित्र म इह ३४५,११७२
यदिन्द्र नाहुषीष्वा २६२
यदिन्द्र प्रागपागुदक् २७९,१२३१
यदिन्द्र यावतस्त्वमेता ३१०,१७९६
यदिन्द्र शासो अव्रतं २९८
यदिन्द्राहं यथा १२२, १८३४
यदिन्द्रो अनयद्रितो १४८
यदि वीरो अनु ष्याद् ८२
यदीं गणस्य रशनामजीग: १७४८
यदी वहन्त्याशवो ३५६
यदी सुतेभिरिन्दुभि: १४४२
यदुदीरत आजय: ४१४,१००४
यद् द्याव इन्द्र ते शतं २७८,८६२
यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना १७५९
यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा ६२४
यद्वा उ विश्पति: शित: ११४
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके १२३२
यद्वाहिष्ठं तदग्नये ८६
यद्वीडाविन्द्र यत्स्थिरे २०७,१०७२
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र ११७३
यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा १४१५
यया गा आकरामहै १५२८
यवंयवं नो अन्धसा ९७५
यशो मा द्यावापृथिवी ६११
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य: १३४२

यस्त इन्द्र नवीयसीम् ८८४
यस्ते अनु स्वधामसत् ७३८
यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र ११६
यस्ते मदो युज्यश्चारु ९२८
यस्ते मदो वरेण्यस्तेना ४७०, ८१५
यस्ते शृंगवृषो णपात् ७२७
यस्त्वामग्ने हविष्पतिः ८४५
यस्माद्रेजन्त कृष्टयः १५१६
यस्मिन्विश्वा अधि श्रियो ७२३
यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य १०९७
यस्य ते पीत्वा वृषभो ६९३
यस्य ते महिना महः १७७३
यस्य ते विश्वमानुषग् १०७१
यस्य ते सख्ये वयम् ७७९
यस्य त्यच्छमबरं मदे ३९२
यस्य त्रिधात्ववृतं १५७१
यस्यां विश्व आर्यो १६०९
यस्येदमा रजोयुजस्तुजे ५८८
या इन्द्र भुज आभरः २५४
या ते भीमान्यायुधा ७८०
या दस्रा सिन्धुमातरा १७२९
या वां सन्ति पुरुस्पृहो ९९२
यावित्था श्लोकमा १७३६
या सुनीथे शौचद्रथे १७४१
यास्ते धारा मधुश्चुतो ९७९
युंक्ष्वा हि केशिना १३४६
युंक्ष्वा हि वाजिनी १७३३
युंक्ष्वा हि वृत्रहन् ३०१
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषम् १४६८
युञ्जन्ति हरी इषिरस्य ७१२
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी १४६९
युञ्जे वाचं शतपदीं १८२९
युध्मं सन्तमनर्वाणं १६४३
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं ७५४
युवं हि रथः स्वः पती १००१
ये ते पन्था अधो दिवो १७२
ये ते पवित्रमूर्मयः ७८८
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुः १५०२
येन ज्योतींष्यायवे ८८१
येन देवाः पवित्रेण १३०२
येना नवग्वा दध्यङ् ९३९
येना पावक चक्षसा ६३७
ये सोमासः परावति ११६३
यो अग्निं देववीतये ८४६
योगेयोगे तवस्तरं १६३,७४३
यो जागार तमृचः १८२६
यो जिनाति न जीयते ९७८
यो धारया पावकया ६९८
यो नः स्वोऽरणो १८७२
यो न इदमिदं पुरा ४००
योनिष्ट इन्द्र सदने ३१४
यो नो वनुष्यान् ३३६
यो मंहिष्ठो मघोनाम् ६४५
यो रयिं वो रयिन्तमो ३५१
यो राजा चर्षणीनां २७३,९३३
यो वः शिवतमो १८३८
यो विश्वा दयते वसु ४४,१५८३

र

रक्षोहा विश्वचर्षणि ६९०
रयिं नश्चित्रमश्विनम् १०५६
रसं ते मित्रो अर्यमा १०७८
रसाय्यः पयसा पिन्व ८०७
राजानावनभिद्रुहा ९११
राजानो न प्रशस्तिभिः ११२१
राजा मेधाभिरीयते ८३३
रायः समुद्राँश्चतुरः ८७१

राया हिरण्यया मतिः १०६८
राये अग्ने महे त्वा ९३
रुशद्वत्सा रुशती १७५०
रेवतीर्नः सधमाद १५३, १०८४
रेवाँ इद्रेवत स्तोता १८०४

व

वच्यन्ते वां ककुहासो १७३०
वयं घ त्वा सुतावन्त २६१,८६४
वयं घा ते अपि स्मसि २३०
वयं ते अस्य राधसो १२३९
वयः सुपर्णा उप सेदु ३१९
वयमिन्द्र त्वायवो १३२
वयमु त्वा तदिदर्था १५७,७१९
वयमु त्वामपूर्व्य ४०८,७०८
वयमेनमिदा २७२, १६९१
वयश्चित्ते पतत्रिणः ३६७
वरिवोधातमो भुवो ६९१
वरुणः प्राविता भुवन् ७९५
वषट् ते विष्णवास आ १६२७
वसन्त इन्नु रन्त्यो ६१६
वसुरग्निर्वसुश्रवा ११०८
वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत २९२
वाचमष्टापदीमहं ९९०
वाजी वाजेषु धीयते १४७८
वात आ वातु भेषजम् १८४,१८४०
वातोपजूत इषितो ९८३
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा १६३०
वायो शुक्रो अयामि ते १६२८
वार्ण त्वा यव्याभिः ७११
वावृधानः शवसा भूर्योजाः १४८४
वाश्रा अर्षन्तीन्दवो ११९३
वास्तोष्पते ध्रुवा २७५
विघ्नन्तो दुरिता पुरु ८३१
वि चिद् वृत्रस्य दोधतः १६५२
वि त्वदापो न पर्वतस्य ६८
विदा मघवन् विदा ६४१
विदा राये सुवीर्यम् ६४४
विद्मा हि त्वा तुविकूर्मि ७२९
विधुं दद्राणं समने ३२५,१७८२
वि न इन्द्र मृधो जहि १८६८
विपश्चिते पवमानाय १६१५
विभक्तासि चित्रभानो १४९८
विभूतराति विप्र चित्र १६८८
विभूपन्नग्न उभयान् १५६९
विभोष्ट इन्द्र राधसो ३६६
विभ्राजं ज्योतिषा स्वः १०२७
विभ्राड् बृहत्पिबतु ६२८,१४५३
विभ्राड् बृहत्सुभृतं १४५४
वि रक्षो वि मृधो जहि १८६७
विव्यक्थ महिना वृषन् १६६१
विशोविशो वो ८७, १५६४
विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः १५८९
विश्वतोदावन्विश्वतः ४३७
विश्वस्मा इत्स्वर्दृशे अभिभूतरम् ८४०
विश्वस्य प्र स्तोभ ४५०
विश्वाः पृतना ३७०, ९३०
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ८८८
विश्वानरस्य वस्पति ३६४
विश्वेदेवा मम शृण्वन्तु ६१०
विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं १६१७
वि षु विश्वा अरातयोः १८०३
विष्णोः कर्माणि पश्यत १६७१
वि स्रुतयो यथा पथः ४५३,१७७०
वीडु चिदारुजत्नुभिः ८५२
वीतिहोत्रं त्वा कवे १५२३

वृकश्चिदस्य वारण १६९२
वृत्रखादो वलं रुज: १७१९
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीष ३२४
वृषणं त्वा वयं वृषन् १५४०
वृषा पवस्व धारया ४६९,८०३
वृषा पुनान आयूंषि १०००
वृषा मतीनां पवते ५५९,८२१
वृषा यूथेव वंसगा १६२२
वृषा शोणो अभि ८०६
वृषा सोम द्युमान् ५०४,७८१
वृषा ह्यसि भानुना ४८०,७८४
वृषो अग्नि: समिध्यते १५३९
वृष्टिं दिव: परि ११८६
वृष्टिद्यावा रीत्यापे १४६७
वृषणस्ते वृष्ण्यं शव: ७८२
वेत्था हि निर्ऋतीनां ३९६
वेत्था हि वेधो अध्वन: १४७६
व्यान्तरिक्षमतिरन्मदे १६४०

## श

शं नो देवीरभिष्टये ३३
शं पदं मघं रयीषिणे ४४१
शंसेदुक्थं सुदानव ७१७
शकेम त्वा समिधं १०६६
शग्ध्यू षु शचीपत २५३,१५७९
शचीभिर्न: शचीवसू २८७
शतानीकेव प्र जिगाति ८१२
शशमानस्य वा नर: १५९४
शाक्मना शाको अरुण: १७८३
शाचिगो शाचिपूजनायम् ७२६
शिक्षा ण इन्द्र राय १६४४
शिक्षेयमस्मै दित्सेयं १८३५
शिक्षेयमिन्महयते १७९७
शिशुं जज्ञानं हरिम् १३३४
शिशुं जज्ञानं हर्यतम् ११७५
शुक्रं ते अन्यद्यजतम् ७५
शुक्र: पवस्व देवेभ्य: १२४२
शुचि: पावक उच्यते ९६७
शुनं हुवेम मघवान ३२९
शुभ्रमन्धो देववातम् १००९
शुम्भमाना ऋतायुभि: १०३५
शुष्मी शर्धो न मारुतं १४७३
शूरग्राम: सर्ववीर: १४०९
शूरो न धत्त आयुधा १२२९
शृणुतं जरितुर्हवम् ९१७
शृण्वे वृष्टेरिव स्वन: ८९४
शेषे वनेषु मातृषु ४६
श्रत्ते दधामि प्रथमाय ३७१
श्रायन्तइव सूर्यं २६७,१३१९
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं २०८
श्रुधि श्रुतकर्ण वह्निभि: ५०
श्रुधी हवं तिरश्च्या ३४६,८८३
श्रुधी हवं विपिपानस्य १७९८
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे

## स

सं ते पयांसि समु यन्तु ६०३
सं देवै: शोभते वृषा ९२०
सं मातृभिर्न शिशुर्वाव १४१९
सं वत्सइव मातृभि: १०९९
संवृक्तधृष्णुमुक्थ्यं ८३७
स इधानो वसुष्कवि: १५६२
स इषुहस्तै: स निषङ्गिभि: १८५१
स ईं रथो न भुरिषा १४७२
सखाय आ नि षीदत ५६८,११५७
सखाय आ शिषामहे ३९०
सखायस्त्वा ववृमहे ६२
सख्ये त इन्द्र वाजिनो ८२८

स घा तं वृषणं रथ ४२४
स घा नः सूनुः १६३५
स घा नो योग आ ७४२
स घा यस्ते दिवो ३६५
सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण १८५०
सत्यमित्था वृषेदसि २६३
सत्राहणं दाधृषिम् ३३५
स त्रितस्याधि सानवि १२९५
स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त ८१०
सदसस्पतिमद्भुतम् १७१
सदा गावः शुचयोः ४४२
सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा १९६
स देवः कविनेषितो १२९७
स नः पवस्व शं गवे ६५३
स नः पुनान आ भर ७८९
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा ६६२
स न इन्द्रः शिवः १४५२
स न इन्द्राय यज्यवे ५९२,६७३
स न ऊर्जे व्याव्ययम् १४३८
सना च सोम जेषि १०४७
सना ज्योतिः सना १०४८
सना दक्षमुत क्रतुमप १०४९
सनादग्ने मृणसि यातु ८०
सनेमि त्वमस्मदा अदेवम् १६१३
स नो दूराच्चासाच्च १६३६
स नो भगाय वायवे १०८३
स नो मन्द्राभिरध्वरे १४७५
स नो महाँ अनिमानो १६६४
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने १७१३
स नो विश्वा दिवः १७६४
स नो वृषन्नमुं चरुम् १६२१
स नो वेदो अमात्यमग्नी १३८१
स नो हरीणां पत १६१२
स पवस्य मदिन्तम १२०९
स पवस्व य आविथेन्द्रम् ४९४
स पवित्रे विचक्षणो १२९३
स पुनान उप सूरे दधान १३५८
स पूर्व्यो महोनां वेनः ३५५
सप्त त्वा हरितो रथे ६४०
सप्तिं मृजन्ति वेधसो १७६६
स प्रथमे व्योमनि ७४७
स भक्षमाणो अमृतस्य १४२४
समत्स्वग्निमवसे ११६८
समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः ६०७
स मर्मृजान आयुभिरिभो १७६३
समस्य मन्यवे विशो १३७,१६५१
स मह्ना विश्वा दुरितानि १३०५
समानो अध्वा स्वस्रोः १७५१
स मामृजे तिरो अण्वानि १६९०
समिद्धमग्निं समिधा गिरा १५६७
समिन्द्रेणोत वायुना १०८२
समिन्द्रो रायो बृहती १६७८
समीचीना अनूषत ९०३
समीचीनास आशत ११२५
समी वत्सं न मातृभिः ११५८
समुद्रो अप्सु मामृजे १०४१
समु प्रिया अनूषत ८१९
समु प्रियो मृज्यते १४०१
समु रेभासो अस्वरन् ९३२
समेत विश्वा ओजसा ३७२
सम्मिश्लो अरुषो भुवः ८१७
सम्राजा या घृतयोनी ११४४
स योजत उरुगायस्य ११९८
स योजते अरुषा ७५०
सरूप वृषन्ना गहीमौ १६५५
स रेवाँइव विश्पतिः १६६५

स वर्धिता वर्धनः १३५९
स वह्निरप्सु दुष्टरो ९७३
स वाजं विश्वचर्षणि १४१७
स वाजी रोचनं दिवः १२९४
स वाज्यक्षाः सहस्त्ररेता ११६१
स वायुमिन्द्रमश्विना ११३४
स वीरो दक्षसाधनो १३८८
स वृत्रहा वृषा सुतो १२९६
सव्यामनु स्फिग्यम् १६०६
स सुतः पीतये वृषा १२९२
स सुन्वे यो वसूनां ५८२, १०९६
स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो ९३६
सह रय्या नि वर्तस्वाग्ने १८३३
सहर्षभाः सहवत्सा उदेत ६२६
सहस्तन्न इन्द्र दद्ध्योज ६२५
सहस्त्रधारं वृषभं पयः १३९५
सहस्त्रधारः पवते समुद्रः ८७४
सहस्त्रशीर्षा: पुरुषःसहस्राक्षः ६१७
स हि पुरू चिदोजसा १८१५
स हि ष्मा जरितृभ्यः ९६९
साकं जातः क्रतुना साकम् १४८७
साकमुक्षो मर्जयन्त ५३८, १४१८
सा नो अद्या भरद्वसुर्व्युच्छा १७४२
साह्वान्विश्वा अभियुजः १५५८
सिञ्चन्ति नमसावटमुच्चा १६०४
सीदन्तस्ते वयो यथा ७०४
सुत एति पवित्र आ ९०१
सुता इन्द्राय वायवे ७६६
सुतासो मधुमत्तमाः ५४७, ८७२
सुनीथो घा स मर्त्यो २०६
सुनोत सोमपाव्ने सोम २८५
सुप्रावीरस्तु स क्षयः १३५२
सुमन्मा वस्वी रन्ती १६५४
सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघा१६०,१०८७
सुवितस्य वनामहेति ८९३
सुषमिद्धो न आ वह १३४७
सुषहा सोम तानि ते १७६७
सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि ३१६
सुष्वाणासो व्यद्रिभि ११०३
सूर्यस्येव रश्मयो द्राव १३७०
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे १७३९
सो अर्षेन्द्राय पीतये ९८०
सोमं गावो धेनवो ८६०
सोमं राजानं वरुणमग्निम् ९१
सोमः पवते जनिता ५२७,९४३
सोमः पुनान ५७२, ९४०
सोमः पुनानो अर्षति ११८७
सोमः पूषा च चेततु १५४
सोमानां स्वरणं १३९,१४६३
सोम उ ष्वाणः सोतृभिः५१५,९९७
सोमाः पवन्त इन्दवः ५४८,११०१
स्तोत्रं राधानां पते १६००
स्वरन्ति त्वा सुते नरो ८६५
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः १८७५
स्वादिष्ठया मदिष्ठया ४६८, ६८९
स्वादोरित्था विषूवतः ४०९,१००५
स्वायुधः पवते देव ६७८

## ह

हथो वृत्राण्यार्या हाथः ८५५
हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ६२३
हस्तच्युतेभिरद्रिभिः १४४५
हिन्वति सूरमुस्त्रयः ९०४
हिन्वानासो रथाइव ११२०
हिन्वानो हेतृभिर्हितः ६५५
होता देवो अमर्त्यः १४७७

# सामवेद

## (सम्पूर्ण हिन्दी भाष्य, शब्दार्थ सहित)

सामवेद का यह भाष्य महर्षि दयानन्द की शैली, संस्कृत और आर्य भाषा-हिन्दी में उनकी विचारसरणी पर किया गया है। पाठक देखेंगे कि मन्त्र-मन्त्र में, पद्य-पद्य में किस प्रकार ऋषि दयानन्द के भावों को प्रतिष्ठित किया गया है।

-स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

सामवेद उपासना का वेद है। यह हृदय का वेद है। उपासना क्यों करें? किसकी उपासना करें? कहाँ करें? कैसे करें? इन सभी प्रश्नों का उत्तर सामवेद में मिलेगा। परमात्मा को ढूँढ़ने के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। वह तो हमारे हृदय-मन्दिर में ही विद्यमान् है।

-स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

यह भाष्य सरल है, व्याकरण के अनुकूल है और गौरवपूर्ण है। इसे पढ़कर पाठक को वेद के महत्त्व और गुण-गरिमा का ज्ञान होगा। इस वेद भाष्य में गहराई तक उतरने का प्रयत्न किया गया है। पढ़िए, वेद-सागर में गोते लगाइए, वेद की शिक्षाओं को जीवन में धारण करके अपने जीवन को आनन्दमय बनाइए।